हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

एकादश भाग

[द्वादशमाध्यन्दिन — निद्राचोर]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XI

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prâchyavidyâmahârnava

Siddhânta-vâridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintâmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad and Kâyastha Patrikâ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism; Hony Archæological Secretary Indian Research Society, Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal; &c. &c. &c.

Printed by P. C. Bose at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9 Visvakosha Lane Baghbazar, Calcutta

1926.

हिन्दी

विश्वकोष

(एकादश भाग)

द्वादशमासकर्त्तव्य (सं० क्ली०) द्वादशसु मासेषु कर्त्तव्यं कर्म। विष्णुके प्रीत्यर्थ बारह महीनोंको तिथिके भेदसे दानहोमादि कर्मभेद। कृत्यतत्त्वमें द्वादशमास कर्मों के समस्त विषय सविस्तार वर्णित हैं।

द्वादशमासिक (सं० क्ली०) मासि भवं ठञ्, मासिक, मृतदिनावधि द्वादशप्रमाण पूरण मासमें कर्त्तव्य प्रेतोद्देशक श्राद्धभेद, जो श्राद्ध किसीके मरनेके बारहवें महीनेमें किया जाता है। परन्तु बादसे प्रतिमास प्रेतोद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है उसको मासिक श्राद्ध और बारहवें महीनेमें इस तरहका जो श्राद्ध किया जाता है उसे द्वादशमासिक श्राद्ध कहते हैं।

द्वादशयात्रा (सं० स्त्री०) द्वादशसु मासेषु द्वादशविधा यात्रा। स्कन्दपुराणोक्त देवोत्सवमें मासविशेषके यात्राभेद। इसका विषय स्कन्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन इन्द्रद्युम्नने जैमिनिसे कहा 'हे मुने! चैत्रादि बारहों महीनोंमें द्वादशविध यात्रा और पूजादिको जो विधि है वह आप कृपया मुझसे कहिये, क्योंकि यह विषय जाननेकी मुझे विशेष इच्छा है।"

इन्द्रद्युम्नके इस प्रश्न पर जैमिनीने इस प्रकार उत्तर दिया था 'हे इन्द्रद्युम्न! देवदेव जगन्नाथ कृष्ण द्वादश मासमें जो द्वादश यात्रा दिखाते हैं उसे ध्यान दे कर सुनिये। वैशाखमास अक्षयतृतीयाको चन्दनयात्रा, ज्येष्ठमासमें स्नानयात्रा, आषाढ़में रथ, श्रावणमें शयनयात्रा, भाद्रमें दक्षिणपार्श्वपरिवर्त्तन, आश्विनमें वामपार्श्वपरिवर्त्तन, कार्त्तिकमें उत्थान, अग्रहायणमें छादनो, पौषमें पुष्याभिषेक, माघमें शाल्योदनी, फाल्गुनमें दोलयात्रा और चैत्रमें मदनभञ्जिका ये ही बारह प्रकारको यात्राएँ हैं। इसका एक एक यात्रोत्सव करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं।

द्वादशराजमण्डल (सं० क्ली०) द्वादशानां राज्ञां मण्डलं उत्तरपदद्विगु। द्वादशविध राजाओंके मण्डल। इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—राजा अपने कल्याणके लिये बारह प्रकारके राजमण्डलके विषय पर विचार कर सकते हैं। अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र, अरिमित्रमित्र, विजिगीषु, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, आसार, मध्यम, विजिगीषुमध्यम और अरि तथा विजिगीषुका भूम्यन्तर मध्यम मण्डल ये बारह राजमण्डल हैं।

(अग्निपुराण १०० अ०)

द्वादशरात्र (सं० पु०) द्वादशभिः रात्रिभिर्निर्वृत्तं तद्धितार्थद्विगुः अच् समासान्तः। १ द्वादशदिनसाध्य द्वादशाह नामक अहीन यागभेद। बारह दिनोंमें होनेवाला यज्ञ। २ सत्रियज्ञभेद, यह यज्ञ प्रजा और समृद्धिकी कामना के लिये किया जाता है। द्वादशानां रात्रीणां समाहारः समाहारद्विगु अच् समासान्तः। ३ समाहृत रात्रिभेद।

द्वादशलोचन (सं॰ पु॰) द्वादश लोचनानि यस्य। कार्त्तिकेय।

द्वादशवर्गी (सं॰ स्त्री॰) द्वादशानां वर्गाणां समाहारः समाहारद्विगौ ङीप्। नीलकण्ठताजिकोक्त वर्षकालमें ग्रहोंके फलाफल निकालनेके लिये वर्गोंकी समष्टि। इसका विषय ताजकमें इस प्रकार लिखा है—

क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, चतुर्थांश, पञ्चमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टम, नवम, दशम, एकादश और द्वादशांश इन्हींको द्वादशवर्ग कहते हैं। इन बारह वर्गोंमें शुभफल और अशुभवर्गमें अशुभफल होता है। विषम राशिके प्रथम होराके अधिपति रवि और द्वितीय होराके अधिपति चन्द्र है। समराशिके प्रथम होराके अधिपति चन्द्र और द्वितीय होराके अधिपति रवि हैं। क्षेत्राधिपति जो ग्रह हैं, वही प्रथम द्रेक्काणके अधिपति हैं और उसे राशिको पञ्चमराशिके अधिपति ग्रह द्वितीय द्रेक्काणके अधिपति तथा नवमराशिके अधिपति ग्रह तृतीय द्रेक्काणके अधिपति है।

स्वीय राशिके अधिपति ग्रह प्रथम चतुर्थांशके अधिपति, और उस राशिको चतुर्थराशिके अधिपति द्वितीय चतुर्थांशके, सप्तमराशिके अधिपति तृतीय चतुर्थांशके एवं दशमराशिके अधिपति चतुर्थ चतुर्थांशके अधिपति होते हैं। विषमराशिके प्रथम पञ्चमांशके अधिपति मङ्गल, द्वितीय पञ्चमांशके अधिपति शनि, तृतीय पञ्चमांशके अधिपति वृहस्पति, चतुर्थ पञ्चमांशके अधिपति बुध एवं पञ्चम पञ्चमांशके अधिपति शुक्र हैं। समराशिके प्रथम पञ्चमांशके अधिपति शुक्र, द्वितीय पञ्चमांशके अधिपति बुध, तृतीय पञ्चमांशके अधिपति मङ्गल हैं। जिस राशिके द्वादशांश अधिपतिका निर्णय करना हो, उस राशिके अधिपतिको प्रथम द्वादशांशके अधिपति, उसको द्वितीयराशिके अधिपतिको द्वितीय द्वादशांशके अधिपति और उस राशिको तृतीयराशिके अधिपतिको तृतीय द्वादशांशके अधिपति इत्यादि रूपमें चतुर्थादि द्वादशांशके अधिपति जानना चाहिये।

स्फुटाङ्कको राशिके अङ्कको अंश बना कर उसे अंशके साथ जोड़ना और पीछे युक्ताङ्कको ६से गुणा करना चाहिये। बाद गुणनफलमें ३०से भाग दे कर जो भागफल निकले उसमें १ जोड़ना चाहिये। अब योगफल और शेष अवधिको गणना करके जो राशि पाई जायगी उस राशिके अधिपति ग्रहको षष्ठांशके अधिपति समझना चाहिये। यदि ३०से भाग देनेसे लब्धिका अङ्क १२से अधिक हो, तो उसे फिर १२से भाग दे कर शेष अङ्क ग्रहण करके काम करना चाहिये। इसी तरह यदि सप्तम अंशादिके अधिपतिका निर्णय करना हो तो स्फुटको राशिके अङ्कको अंश बना कर उसे अंशमें जोड़ना और पीछे ७से गुणा करना चाहिये। अष्टमांशाधिपतिके निर्णय करनेमें ८से, दशमांशाधिपतिमें १०से और एकादशांशाधिपतिमें ११से गुणा करना पड़ता है। और दूसरे सभी कार्य पूर्ववत् अर्थात् षष्ठांशाधिपतिको नाईं करने होते हैं।

ग्रहोंके बलसाधनके लिये इस तरह द्वादशवर्गका निर्णय करना पड़ता है—जिस ग्रहका द्वादशवर्ग स्थिर करना हो, वह ग्रह यदि अपने क्षेत्रादिमें या स्वोच्चवर्गमें अथवा मित्रवर्गमें अथवा शुभवर्गमें हो, तो वह ग्रह श्रेष्ठ अर्थात् शुभफलप्रद है। फिर, जो ग्रह नीच क्षेत्रादिमें या शत्रु वर्गमें हो वह अशुभफल देता है। द्वादशवर्ग निर्णय करके दो श्रेणीका निर्णय करना चाहिये और सोच विचार कर यह देख लेना चाहिये कि यदि द्वादशवर्गोंमें शुभग्रहके वर्ग अधिक हों, तो दशाफल और भावफल शुभ होगा। यदि अशुभग्रहके वर्ग अधिक हों, तो दशाफल और भावफल अशुभ समझा जाता है।

किन्तु पापग्रह यदि अधिक शुभग्रहमें हो, तो वह शुभफल और यदि शुभग्रह अधिक शुभवर्गस्थ हो, तो वह अत्यन्त शुभफल देता है। शुभग्रह भी यदि अधिक अशुभ ग्रहके वर्गमें हो, तो अशुभ ही फल होता है और अशुभग्रह यदि अधिक अशुभ वर्गस्थ हो, तो वह अत्यन्त अशुभ फलप्रद माना गया है।

लग्न और अन्यान्य भाव यदि शुभग्रहके अधिक वर्गयुक्त हो, तो शुभफल और यदि अशुभग्रहके अधिक वर्गयुक्त हो, तो लग्न तथा अन्यान्य भावोंके अशुभफल होते हैं। इसी तरह लग्न और अन्यान्य भावोंके अधिपति यदि स्वीय क्षेत्रादिवर्गमें उच्च हो वा मित्रक्षेत्रादिवर्गमें अथवा शुभग्रहके अधिक वर्गस्थ हो, तो शुभफल एवं शुक्र-

वङ्ग, गन्धक, ताम्र, अभ्र, समुद्रफेन, गेरूमिट्टी, स्वर्ण, सीसा, चितामूल, हिङ्गु, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायनका बीज, अमलवायन, अजवायन, पीपरका मूल लहसुन जीरा और कालाजीरा इन सबको एकमें मिला कर अदरखके रससे घोटते हैं। बाद १ रत्तीकी गोली बनानी पड़ती है। इसके सेवन करनेसे वातरक्त कुष्ठ, अपच और अन्यान्य समस्त वेदनाएं जाती रहती हैं।

द्वादशायुष (सं० पु०) द्वादश वर्षाणि आयुः यस्य। कुक्कुर, कुत्ता। यह बारह वर्ष तक जीता है इसीसे इसका नाम द्वादशायुष् पड़ा है।

द्वादशार (सं० क्ली०) द्वादश अरा यथाक्रमयनभेदो यस्य। १ द्वादशकोण रथचक्रादि। २ तन्त्रोक्त सुषुम्ना नाड़ीके मध्य ब्रह्मस्थित द्वादशदल पद्म।

द्वादशाशन (सं० क्ली०) द्वादशविध अशन। सुश्रुतके अनुसार पथ्यकारीके भेदसे बारह प्रकारके आहार।

सुश्रुतमें बारह प्रकारके अन्न सेवनके नियम कहे गये हैं। यथा—शीतल, उष्ण स्निग्ध, रूक्ष द्रव, शुष्क, एककालिक द्विकालिक, औषधयुक्त और मात्राहीन। ये सब दोष शान्तिके लिए प्रशस्त हैं। तृष्णा उष्णता, मद एवं दाहपीड़ित, रक्तपित्त तथा विषरोगी, स्त्रीसम्भोगमें क्षीण रोगियोंके लिए शीतल अन्न; कफवातरोग विरेचनान्तमें संस्थायी और क्लिन्नदेहोंके लिए उष्ण अन्न, वातिक, रूक्षदेह व्यायामवर्जित एवं व्यायामशील के लिये स्निग्धअन्न; मेदुर, कफ, मेहरोग वा स्थूल देहके लिये रूक्ष अन्न; शुष्कदेह, पिपासार्त्त वा दुर्बलके लिये द्रवअन्न; मेहरोग तथा व्रणसे शरीर क्लिन्न होनेमें शुष्क अन्न; दुर्बलाग्नि व्यक्तिके लिये एकाल भोजन; समाग्नि व्यक्तिके लिए दिवारात्रिमें द्विभोजन; औषधद्वेषीके लिये औषधके साथ अन्न तथा दुर्बलाग्नि रोगीके लिये मात्राहीन अर्थात् बहुत अल्प अन्न प्रशस्त है। इन नियमसे भोजन करनेसे दोषकी शान्ति होती है।

द्वादशाह (सं० पु०) द्वादशभिरह्नोभिर्निर्वृत्त अच्, तद्धितलुक्, द्वादश अहः कर्मधारय वा द्वादशानां अह्नां समाहार टच् समासान्तः। १ द्वादशदिनसाध्य याग भेद। प्राचीनकालका एक यज्ञ जो बारह दिनोंमें किया जाता था। २ द्वादश दिनसमाहार, बारह दिनोंका समुदाय। ३ द्वादश दिन, बारह दिन। ४ द्वादश दिन पर्यन्त सन्यासमें नियोजित, वह जो बारह दिनों तक सन्यासमें रहा हो। ५ मूल कर्मकर, वह जिसने पहले काम किया हो। ६ बारह दिनों तक रहनेवाला ज्वर। ७ वह श्राद्ध जो किसीके निमित्त उसके मरनेसे बारहवें दिन किया जाय।

द्वादशी (सं० स्त्री०) द्वादश डिनात् ङीप्। तिथिविशेष प्रत्येक पक्षकी बारहवीं तिथि।

वामनपुराणमें लिखा है, कि द्वादशीतिथि कामरूपिणी और कल्मषोन्नाशा है। इस तिथिमें जो स्त्री वा पुरुष द्वादशीव्रतपरायण हो कर रह जाता है, वह स्वर्गको जाता है।

अगहन महीनेकी शुक्लाद्वादशीका नाम मत्स्यद्वादशी, पूस महीनेकी शुक्लाद्वादशी कूर्म द्वादशी, माघ महीनेकी वराहद्वादशी फाल्गुन महीनेकी नृसिंहद्वादशी, चैत महीनेकी वामनद्वादशी, वैशाख महीनेकी जामदग्न्य द्वादशी, तथा जेठ महीनेकी रामद्वादशी, यह बारह द्वादश शुक्लपक्षकी द्वादशी है। आषाढ़ महीनेकी कृष्णद्वादशी, सावन महीनेकी बुद्धद्वादशी, भादों महीनेकी कल्कि-द्वादशी, आश्विन महीनेकी पद्मनाभद्वादशी और कार्त्तिक महीनेकी नारायणद्वादशीको शुक्लपक्षकी द्वादशी समझनी चाहिये।

इन द्वादशीका व्रत [illegible] कहलाता है। यह व्रत बहुत फलदायक माना गया है। सौभाग्यकामीके लिये यह एक उत्कृष्ट व्रत है। (वराहपु०)

वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको पिपीतक द्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें केवल शीतल जलमें केशवको स्नान करानेसे मनुष्य पवित्र होता है।

श्रवणानक्षत्रयुक्ता शुक्लद्वादशीका नाम श्रवण-द्वादशी है। यह तिथि पापनाशक मानी गई है। भाद्रमासकी शुक्लद्वादशी तिथिमें श्रवणा नक्षत्रका योग होता है और उस दिन यदि बुधवार पड़े, तो शतगुण फल प्राप्त होते हैं। उस दिन उपवास करनेसे सब प्रकारके फल मिलते हैं। यह द्वादशी यदि दो दिन तक रहे, तो जिस दिन एकादशीयुक्ता होगी, उस दिन निम्नोक्त वचनानुसार उपवास करना चाहिये। जैसे—

"द्वादशी च प्रकर्त्तव्या एकादश्यान्विता विभोः।
सदा कार्या च विद्वद्भिर्विष्णुभक्तैश्च मानवैः॥"
(स्कन्दपु०)

द्वादशीका योग यदि एकादशीके साथ हो, तो विष्णुभक्त मानवोंको एकादशीके दिन ही उपवास करना चाहिये। द्वादशीके दिन श्रवणानक्षत्रका योग न हो कर यदि एकादशीके ही दिन हो, तो उस तिथिको विजया कहते हैं और वह भक्तोंके लिये विजयप्रदा है। जहां तिथि और नक्षत्रके योगसे उपवास होता है, वहां किसी एकका क्षय हुए विना भोजन नहीं करना चाहिये और यदि श्रवणानक्षत्रकी वृद्धि पाई जाय, तो भी तिथिके क्षय होनेसे ही भोजन करनेका विधान है अर्थात् एकादशीतिथि क्षय होनेसे द्वादशीमें पारण करना चाहिये।
(तिथितत्त्व)

यदि एकादशीके उपवास दिन श्रवणानक्षत्रका योग न हो कर द्वादशीके दिन हो, तो दोनों दिन उपवास करना चाहिये।

एकादशीके दिन उपवास करके फिर द्वादशीके दिन उपवास करनेका विधान है; क्योंकि दोनों तिथिके देवता हरि हैं। यदि इसमें कोई आपत्ति करे, तो एक व्रत आरम्भ करके जब तक वह समाप्त न हो, तब तक दूसरा व्रत करना उचित नहीं है। एकादशीके व्रतानुसार एकादशीके दिन उपवास किया गया है, उसका पारण नहीं करनेसे एकादशीका व्रत समाप्त नहीं होता है। अभी किस तरह द्वादशीका व्रत हो सकता है, किन्तु उसमें विशेष वचनानुसार एकादशी और द्वादशी दोनों ही दिन उपवास करना होगा, इसमें विधिका लोप देखा जाता है। क्योंकि निम्नोक्त वचनोंका तात्पर्य यह है— जो दोनों दिन उपवास करनेमें असमर्थ हों उन्हें द्वादशीके दिन भोजन न करके एकादशीके दिन ही भोजन कर लेना चाहिये। इस तरह द्वादशीमें उपवास करनेसे एकादशीजनित समस्त पुण्य भी निःसन्देह मिल सकते हैं। इस द्वादशी उपवासको काम्य समझना चाहिये। क्योंकि मार्कण्डेयपुराणके वचनानुसार देखा जाता है कि जो द्वादशीके दिन उपवास करके पूतस्वभाव रहते हैं वे चक्रवर्त्तित्व और अतुल श्रीलाभ करते हैं।

कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वादशी मन्वन्तरा है और अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीका नाम अखण्डद्वादशी है। विष्णुपदकी कामना करके उपवास करना चाहिये। इस दिन यथाविधान संकल्प करके विष्णुको पञ्चगव्य द्वारा स्नान करा कर यथा शक्ति उपचारसे पूजा करनेका विधान है। पीछे जो और धानसे पूर्ण एक पात्रको ले कर इस मन्त्रसे निवेदन करना चाहिये। मन्त्र—

"ओं सप्तजन्मसु यत्किञ्चिन्मया खण्डव्रतं कृतं।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथा खण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम।
तथाऽखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥"

इस मन्त्रसे प्रार्थना करके दक्षिणा देनी चाहिये।
(कृत्यचन्द्रिका)

भीम एकादशीके बाद जो एकादशी हो अर्थात् माघ मासकी शुक्लाद्वादशीके दिन षट्तिलाचरण करना होता है।

तिलस्नान, तिलवपन, तिलहोम, तिलको जलमें निःक्षेप, तिलदान और तिलभोजन यही छः तिलाचरण हैं। जो इसे करते वे सब प्रकारके पापोंसे मुक्त होते तथा तीन सौ वर्ष तक स्वर्गमें वास करते हैं। (तिथितत्त्व)

गोविन्दद्वादशी—फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पुष्यानक्षत्रयुक्त द्वादशीको गोविन्दद्वादशी कहते हैं। उस दिन गङ्गास्नान अतिशय पुण्यजनक है। गङ्गास्नानका मन्त्र—

"महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे।
गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि।" (तिथितत्त्व)

द्वादशीतिथिमें निम्न बारह प्रकारके द्रव्य वर्जन करना चाहिये, यथा—कांसा, मांस, सुरा, क्षौद्र, लोभ, मिथ्याकथन, मैथुन, दिवानिद्रा, अञ्जन, शिलापिष्ट द्रव्य और मसूर।

जो चातुर्मास्य व्रताचरण करना चाहते, उन्हें आषाढ़मासकी शुक्लाद्वादशी वा पूर्णिमाके दिन व्रतारम्भ और कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन शेषसमाप्त करना चाहिए।

द्वादशीके पारणके विषयमें द्वादशीके प्रथम भाग छोड़ कर पीछे पारण करनेका विधान है। क्योंकि द्वादशीके

प्रथम भागका नाम हरिवासर है। अतः उस समय पारण कदापि नहीं करना चाहिये। (तिथितत्त्व)

द्वादशीके दिन पूतिका (पोईका साग) भक्षण स्त्रियोंके लिये निषिद्ध है। फिर भी यहां पर निषेध करके निषेध करने पर भी अधिक दोषजनक समझा जाता है।

द्वादशीतिथिमें तुलसी नहीं तोड़नी चाहिये। जो उस दिन तुलसी तोड़ते हैं वे मानो विष्णुका शिरश्छेद करते हैं।

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि संक्रान्ति, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि और सन्ध्याके समय तुलसी तोड़ना मानो विष्णुका शिरश्छेद करना है।

द्वादशीके दिन सायंकालमें प्रातः सन्ध्या नहीं करना चाहिये और जो करते हैं वे ब्रह्महा होते हैं।

स्मृतिमें लिखा है कि द्वादशी, अमावस्या पूर्णिमा और जिस दिन श्राद्ध किया जाता है उस दिन सायंकालमें सन्ध्योपासना करना मना है, केवल गायत्रीका जप किया जा सकता है।

जो द्वादशीतिथिमें मैथुनकर्म करते, वे तिर्यग् योनिमें जन्म लेते हैं और कभी विष्णुलोकको नहीं जा सकते।

हेमाद्रिव्रतखण्डमें दशावतार द्वादशीका विषय इस प्रकार लिखा है—अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीतिथि भगवान् विष्णुरूपी मत्स्यकी अतिशय प्रिया है। इसीसे एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीके दिन सुवर्णमय मत्स्य ब्राह्मणको देना चाहिये। 'विष्णुर्मे प्रीयता-मस्य'। इसी मन्त्रसे दान देना होता है। जो इस तरह व्रताचरण करते वे सब प्रकारके सुख प्राप्त कर अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं। (हेमाद्रिव्रत०)।

पौषमासकी शुक्लाद्वादशी तिथि कूर्मकी अतिशय प्रिया है। उस दिन सुवर्णमय कूर्म तैयार कर कूर्मावतारका माहात्म्यादि श्रवण करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो इस तरह दान करते हैं वे समग्र सौभाग्य प्राप्त कर विष्णुलोकको जाते हैं। इसी प्रकार विधानानुसार माघमासकी शुक्लाद्वादशीमें वराह, फाल्गुनकी शुक्लाद्वादशीमें नारसिंह, चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें जामदग्न्यराम, ज्येष्ठमासकी शुक्लाद्वादशीमें दाशरथि राम और सीता, आषाढ़मासकी शुक्लाद्वादशीमें रोहिणीराम, श्रावणमासकी शुक्लाद्वादशीमें श्रीकृष्ण भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें कल्कि आदि सुवर्णमय मूर्त्तियां बना कर उन्हें उन अवतारोंके गुणादि कीर्त्तन पाठ करनेके बाद ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो इस दशावतार द्वादशी व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सब प्रकारके सुख भोग कर विष्णुलोकको जाते हैं। (हेमाद्रिव्रत०।)

विविध द्वादशीव्रत—इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें मदन और हरिकी पूजा करनी चाहिये, इसे मदनद्वादशीव्रत कहते हैं। जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पाते हैं। माघमासकी शुक्लाद्वादशीमें भीमद्वादशीव्रत करना पड़ता है। उस दिन विष्णुकी पूजा करनेसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षका गोविन्दद्वादशीव्रत करनेसे गोविन्द सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। आश्विनमासकी शुक्लाद्वादशीमें व्रत करके भगवान् नारायणको पूजा करनी पड़ती है, इसे विशोक द्वादशीव्रत कहते हैं। यह व्रत करनेसे सब शोक जाते रहते हैं। अग्रहायणमासकी शुक्लाद्वादशीमें नारायणकी पूजा कर लवण दान करनेसे सब प्रकारके धनदानका फल मिलता है। भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें गोवत्सकी पूजा करनी चाहिये, इसका नाम गोवत्सद्वादशीव्रत है। माघमासकी अवभ्रस्नानपूजा कृष्णद्वादशीको तिल-द्वादशी कहते हैं। उस दिन तिलस्नान तिलहोम तिल नैवेद्य तिलमोदक तिलदीप, तिलोदक और तिलदान करके ब्राह्मणोंको अर्चना करनी चाहिये। बाद यथाविधि होम और उपवास कर 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रसे वासुदेवको पूजा करनेका विधान है। जो यह षट्तिल द्वादशीव्रत करते हैं, वे कुल सहित स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें मनोरथ द्वादशीव्रत करके भगवान्को आराधना करनी चाहिये। चैत्रादि बारह नाम द्वारा द्वादशीव्रत कर एक वर्ष तक भगवान् नारायणको पूजा करनी पड़ती है। जो यह व्रताचरण करते वे कभी नरकमें नहीं जाते हैं, उन्हें सर्वदा स्वर्ग-सुख मिलता है। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें सुमतिद्वादशीव्रत करनेसे सुमति लाभ होती है।

भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन जो अनन्तद्वादशीव्रत करते, वे सब क्लेशोंसे विमुक्त होते हैं। माघमासमें शुक्लाद्वादशीके दिन यदि मूला अथवा अश्लेषानक्षत्र पड़े, तो 'कृष्णाय नमः' कह कर तिल द्वारा होम करके भगवान्‌को आराधना करनी चाहिये। इसीको तिल-द्वादशी कहते हैं। पौषमासको शुक्लाद्वादशीका नाम सम्प्राप्तिव्रत है। जो मनुष्य यथाविधान यह व्रत करते, उन्हें किसी चीजको कमी नहीं रहती है। भाद्रमासकी शुक्लपक्षको श्रवणानक्षत्रयुक्त द्वादशी सबसे श्रेष्ठ है, इसका नाम श्रवणाद्वादशी व्रत है। इस दिन उपवास करनेसे अक्षयफल मिलता है। नदीसङ्गमादि पुण्य तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे जो फल मिलता है इस द्वादशीमें भी वही फल मिलता है। बुधवार और श्रवणा नक्षत्रयुक्त द्वादशीमें जो कोई पुण्यकार्य किया जाता है, उसीमें महाफल प्राप्त होता है। जो यथाविधान इस व्रतका अनुष्ठान करते, उन्हें अशेष फल मिलता है। अगहनमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें अखण्डद्वादशीव्रत करना चाहिये। सम्यक्‌रूपसे उपवास, पञ्चगव्य जलसे स्नान और पञ्चगव्य भक्षण कर भगवान् विष्णुकी पूजा तथा ब्राह्मणोंको जौ और धानयुक्त पात्र दान करनेका विधान है। बाद भगवान्‌का इस प्रकार स्तव करना पड़ता है, 'हे भगवन्! हमने सप्त जन्ममें जो कुछ खण्डव्रत किया है, वह आपके प्रसादसे अभी अखण्ड हो जावे। हे पुरुषोत्तम! जिस तरह आप ही यह समस्त अखण्ड जगत् हैं, उसी तरह हमारा व्रत भी अखण्ड हो जावे। प्रतिमास द्वादशीके दिन इसी तरह विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। जो उक्त प्रकारसे विष्णुकी पूजा करते हैं, उनकी आयु, आरोग्य, सौभाग्य और राज्यभोगादिकी वृद्धि होती है। (अग्निपु० १२४-१२६ अ०)

द्वापर (सं० पु०) द्वौ परौ प्रकारौ विषयो यस्य, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ संशय। द्वाभ्यां सत्यत्रेताभ्यां परः पृषोदरा० साधुः। २ सत्यत्रेतायुगान्तर युगभेद, बारह युगोंमें तीसरा युग। भाद्रमासकी कृष्णात्रयोदशी वृहस्पतिवारको द्वापरयुगकी उत्पत्ति हुई थी। यह युग ८६४००० वर्षका माना गया है। इस युगमें श्रीकृष्ण और बुद्धका अवतार, आधे पुण्य और आधे पापमें हुआ था। राजा शाल्व, विराट, हंसध्वज, कंस, मयूरध्वज, बभ्रुवाहन, रुक्माङ्गद, दुर्योधन, युधिष्ठिर, परीक्षित, जनमेजय, विष्वक्सेन, शिशुपाल, जरासन्ध, उग्रसेन और कंस इसी युगमें हो गये हैं। इस युगके मनुष्योंकी परमायु एक हजार वर्ष थी और उनके शरीरका परिमाण सात हाथ था। प्राण रुधिरगत अर्थात् जब तक देहमें रक्त रहता, तब तक जीवन नाश नहीं होता था। यजुर्वेदका अधिकार अर्थात् कार्यकलापादि यजुर्वेदके अनुसार था। ताम्रपात्रका व्यवहार होता था और सभी मनुष्य अर्द्धधर्मरत, प्रलापी, सर्वदाचपल, ज्ञाननिष्ठ, कपट और वाक्यकुशल थे।

द्वापरयुगके धर्मभेदादिका विषय मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

त्रेता युगका काल जब क्षीण होने लगा, तब द्वापरने धीरे धीरे अपना प्रभुत्व जमा लिया। त्रेतायुगमें प्रजाकी जो सब सिद्धि थी, वह द्वापर युगके लगते ही जाती रही। प्रजा अत्यन्त लोभी हो चली, वणिक्‌गण आपसमें विवाद करने लगे। सभी तत्त्वोंका निश्चय करनेके लिये कोई रह न गये। सब वर्णोंका नाश और कर्मका विपर्यय आरम्भ हुआ। रजोगुण और तमोगुणके कार्य धीरे धीरे बढ़ने लगे। जिनके करनेसे त्रेतामें पाप नहीं लगता था, वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे। वर्णधर्म, वर्णाश्रम आदि सङ्कीर्ण होने लगे। अज्ञानके कारण श्रुति स्मृति आदिका यथार्थ बोध लुप्त होने लगा। मनुष्य अपनी अपनी समझके अनुसार अर्थ लगाने लगे। जब धर्मतत्त्वकी ऐसी गड़बड़ी उपस्थित हुई, तब आपसमें अनेक प्रकारके मतभेद चलने लगे। द्वापरमें धर्मादि व्याकुलित हो कर कलिमें एक दम नष्ट हो गये। सभी मनुष्य इस प्रकार अनेक तरहके विपर्ययमें पड कर व्याधियोंसे बलहीन तथा तेजहीन हो गये और क्लेश उनके चारों ओर घिर आये। इस सबकी मति ह्रास हो जानेसे वेदवेदाङ्गोंके अवबोधके लिये टीका टिप्पणी होने लगी जिसमें अनेक प्रकारके मतभेद चलने लगे, कोई कुछ भी स्थिर कर न सके। इस समय प्रत्येक मनुष्यका-समय कष्टकर जान पड़ने लगा। प्रायः

किसीकी मनमें शान्ति न थी। इस तरह द्वापर अपनी तरफ अपना विक्रम प्रकाश कर धीरे धीरे लोगोंको खोने लगा। इस कलिने भी बार द्वापरके राज्यमें अपना अधिकार जमा लिया। (मत्स्यपु० १४४ अ०) कलि देखो।

द्वामुष्यायण (स० पु०) द्व्यामुष्यायण पृषोदरादित्वात् साधु। १ वह पुरुष जो दो मनुष्योंका पुत्र हो। २ महात्मा गौतम मुनि। ३ वह पुरुष जो दो ऋषियोंके गोत्रमें उत्पन्न हुआ हो।

द्वार (स० क्लो०) द्वारयति-णिच्। १ प्रवेशनिर्गमस्थान, घरमें आने जानेके लिये दीवारमें खुला हुआ स्थान, दरवाजा। २ उपाय, तरकीब।

द्वार (स० स्त्री०) द्व णिच्-अच्। १ प्रवेशनिःसरणस्थान, दरवाजा। २ किसी ओट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तुमें वह छिद्र या खुला स्थान जिससे हो कर कोई वस्तु आर पार या भीतर बाहर आ सके, मुख, सुराख। ३ इन्द्रियोंके मार्ग या छिद्र। ४ उपाय, साधन, जरिया। सांख्यकारिकामें अन्तःकरण ज्ञानका प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेन्द्रियां उसके द्वार बतलाई गई हैं। ५ मेघ और पक्ष।

द्वार—आसामकी ग्वालपाड़ा अधीनके दो द्वार हैं, एक पूर्वद्वार, दूसरा पश्चिमद्वार।

पूर्वद्वार—यह अभी ग्वालपाड़ा जिलेमें शामिल है। इसके उत्तरमें भूटान गिरिमाला, पूर्वमें मानस नदी जो इस भूभागको कामरूप जिलेसे विभक्त करती है। दक्षिणमें अपर ग्वालपाड़ा जिला और पश्चिममें गङ्गाधर या सङ्कोसी नदी है जो पश्चिम द्वारसे इस भूखण्डको पृथक् करती है। यह अक्षा० २६ १८´ से २६ ५३ उ० और देशा० ८९ ५१´ से ९१ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ११६८८२ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः ६० हजार है। इसका प्रधान शहर बिजनी है, किन्तु यहांके मुकदमें आदि धुबड़ी अदालतमें किये जाते हैं।

पूर्वद्वारकी भूमि पहाड़के नीचे होने पर भी अधिकांश समतल है। यहांकी ऊंची जमीनकी मध्य केवल ५०० फुट तक भूमि पर पहाड़ देखा जाता है। इस विस्तृत समभूमिमें कहीं कहीं जङ्गल भी है और अनेक नदियां बहती हैं जिनमेंसे मानस, चम्पामती, पाग्ला नदी, आई, कानामाकरा, सम्मामती, गौराङ्ग, मरा गाङ्गा, गङ्गिया, गुरुपाला और गङ्गाधर। गङ्गाधरमें बारहों महीने नावें आदि चलती हैं। अन्यान्य नदियोंमें केवल वर्षाकालमें ही नावें जाती आती हैं। यहांकी सभी नदियां भूटान गिरिमालासे निकल कर ब्रह्मपुत्रमें गिरती हैं।

यहांके जङ्गलमें मूल्यवान् काठ पाये जाते हैं। इसी कारण जङ्गल-विभाग सबसे अधिक प्रवीण है। जङ्गलमें शाक, पीपल और आयु नामक काष्ठोत्पादक गुल्म पाया जाता है। जङ्गली जन्तुओंमें हाथी, गैंडा, भैंस, बाघ भालू, सूअर और हरिण प्रधान हैं।

इस अञ्चलके लोग धान और पाटोंकी खेती करते हैं। प्रत्येक ग्रामके चारों ओर बांस और केलेके अनेक पेड़ देखे जाते हैं।

१८६४-६५ ई०में भूटान युद्धके बाद यह भूभाग अङ्गरेजाधीन हुआ।

१६वीं शताब्दीमें वर्त्तमान कोचबिहारके राजाके आदिपुरुष विश्वसिंह इस अञ्चलमें रहते थे और यहींसे उन्होंने भावीराज्यका सूत्रपात किया। पीछे उत्तराधिकारियोंमें आपसमें गृहविवाद हो जानेसे यह भूभाग कई अंशोंमें विभक्त हो गया और प्रत्येक भूभाग राजकुमारोंमें बांट दिया गया। इस तरह बिजनी, सिदलीद्वार और दरङ्गके राजाओंने अपने अधिकृत वर्त्तमान सम्पत्ति प्राप्त की।

मुगलोंने जब आसाम पर चढ़ाई की तब इस भूभागका पश्चिमांश मुगलोंके अधिकारस्थ ग्वालपाड़ाके अधीन हुआ। उस समय अधीन राजगण ब्रह्मपुत्रके तीरवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे। पूर्वद्वारमें बहुत दिनों तक भूटियाका आधिपत्य रहने पर भी आश्चर्य है कि यहांके अधिवासियोंमें भूटिया जातीय लोकसमाजका चिह्नमात्र भी दीख नहीं पड़ता। किन्तु मुसलमान धर्मका प्रभाव अब भी प्रबल है। १७०२ ई०में भूटिया लोग कोचबिहार पर बहुत अत्याचार करने लगे। कोचबिहारके राजाने इन इलाकोंको कर दे कर उनको शान्त की। तदनुसार अङ्गरेज गवर्मेण्टने राजाको

भूटियाके अत्याचारसे बचाया। कोचबिहार देखो।

१८६२ ई०में ब्रटिश-राजदूत भूटानराज्यमें अपमानित हुए। इसका बदला चुकानेके लिये १८६४ ई०के दिसम्बर महीनेमें अंगरेजी सेना भेजी गई। १८६५ ई०में भूटियाके राजा सन्धि करनेको राजी हुए जिसके अनुसार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ब्रटिश गवर्मेण्टको दे दिये गये। ब्रटिश गवर्मेण्ट भी भूटानराजको प्रति वर्ष २५०००) रुपये देनेमें स्वीकृत हुई। इसके अलावा यह भी शर्त ठहरी कि ब्रटिशगवर्मेण्ट अपने इच्छानुसार ५० हजार रुपये तक भी दे सकती है। तभीसे वहां कोई गड़बड़ी न हुई। अभी सारे भूभागमें शान्ति विराजती है। किन्तु ई० १८९७ सालके आषाढ़ मासके भूमिकम्पसे द्वार भूभागके नाना स्थानोंमें महती क्षति हुई है।

सन्धि होनेके बादसे भूटानद्वार दो भागोंमें विभक्त हुआ—पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार। पूर्वद्वारकी सीमा पहले ही लिखी जा चुकी है। पहले पहल यह भूभाग एक डेपुटी-कमिश्नरके शासनाधीन हुआ और दतमा श्राममें इसका सदर बनाया गया। १८६६ ई०के दिसम्बर महीनेमें द्वारका पश्चिमांश वङ्गमें और पूर्वांश आसाममें मिला दिया गया। १८७४ ई०में आसाम एक चीफ-कमिश्नरके अधीन एक स्वतन्त्र प्रदेशके जैसा गिना जाने लगा और पूर्वद्वार वङ्गसे अलग कर लिया गया। किन्तु ग्वालपाड़ा और पूर्वद्वारका शासनकार्य एक राजपुरुषके अधीन होने पर भी यहांकी शासन प्रणाली न्यारी थी। १८६८ ई०को १६वीं धाराके अनुसार यहांकी स्थावर सम्पत्ति, राजस्व, मालगुजारी आदिका मुकद्दमा दीवानी अदालतके अन्तर्गत नहीं किया गया। यहांका भूभाग खास गवर्मेण्टके अधीन है।

यहां कोच, मेच, कछाड़ी और राभाजातिका वास है। सबसे हिन्दुओंमें कोलिताकी संख्या ही अधिक है। यहांके हिन्दूलोग अधिकांश वैष्णव और गोस्वामीके शिष्य हैं।

इस अञ्चलमें तीन प्रकारके धान होते हैं—आशु, बोरो और आमन या हैमन्तिक।

वाणिज्यमें रेंड़ीका तेल, कपास, रबर और आश्र नामक रंग प्रधान है।

पश्चिमद्वार—हिमालयके नीचे वङ्गालके लाटके अधीन एक खण्ड भूभाग, द्वार प्रदेशका पश्चिम खण्ड कहलाता है। जलपाईगुड़ी जिलेमें भी इस भूभागके अन्तर्गत हिमालय पर्वतका कोई कोई अंश है। पश्चिम द्वारका समस्त भूभाग जङ्गलमय है। बीच बीचमें नदी बह गई है जिससे आबादमें बहुत लाभ पहुंचाता है। भूटान-युद्धके बाद १८६४-६५ ई०में यह भूखण्ड अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हो कर वङ्गालके छोटे लाटके अधीन हो गया है। १८८१-८४ ई०में चायकी खेती करनेके लिये अनेक लोग यहांकी जमीन खरीदने लगे। आज कल यहां चायकी खेती बहुत होती है। यहाका जलवायु अस्वास्थ्यकर है। चायके बगीचे जितने ही अधिक प्रतिवर्ष लगाये जाते हैं उतने ही देशका अस्वास्थ्य भी दूर होता जाता है। पश्चिमद्वार प्रदेशकी पूर्व सीमा स्वर्णकोशी नदी और पश्चिम सीमा तिस्ता नदी है। यह अञ्चल नौ परगनोंमें विभक्त है, (१) मालका ११८ वर्गमील, (२) भाटिबाड़ी १२८ वर्गमील, (३) मयना ३०० वर्गमील, (४) चकात्त-चत्रिय १३८ वर्गमील, (५) मदारी १८४ वर्गमील, (६) लक्ष्मीपुर १६५ वर्गमील, (७) मराघाट ३४२ वर्गमील, (८) मयनागुड़ी ३०८ वर्गमील और (९) चेङ्गमारी १४६ वर्गमील।

द्वारक (सं० क्लो०) द्वारेण प्रयस्तेन कायति कै-क। द्वारकापुरी।

द्वारकण्टक (सं० पु० क्लो०) द्वारस्य कण्टक-इव। कपाट, किवाड़।

द्वारका—१ बरोदाराज्यके अमरेली प्रान्तके ओखामण्डल तालुकका एक बन्दर और हिन्दू-तीर्थ। यह अक्षा० २२° २२' उ० और देशा० ६९° ५' पू० अहमदाबादसे २३५ मील दक्षिण-पश्चिम तथा बरोदा शहरसे २७० मील पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७५३५ है। यह बरोदाराज गायकवाड़के अधीन है। यहां एक दल बम्बई प्रदेशके देशीय पदातिक रहते हैं, इसके अलावा यहां 'ओखामण्डल बैटलियन' नामक गोरासैन्य भी है।

यहां द्वारकानाथका एक मन्दिर है जहां प्रतिवर्ष प्रायः दश हजार यात्री समागम होते हैं। हिन्दुओंका विश्वास है कि यह मन्दिर ऐश्वरिक क्षमतासे एक

धर्मात्मा आनर्त्तने कहा, "हे राजन् ! इस समस्त राज्यमें आपका कुछ भी नहीं है, सभी भगवान् श्रीकृष्णका है।" यह सुन कर शर्यातिने क्रुद्ध हो कर उन्हें राज्यसे बाहर निकलवा दिया। समुद्रके किनारे आ कर आनर्त्तने वैकुण्ठपतिकी शरण ली। तब वैकुण्ठनाथने वैकुण्ठसे सौ योजन भूखण्ड उत्पाटन करके भीमनादी सागर पर सुदर्शनचक्रके ऊपर उसे स्थापित किया। उसी भूखण्ड पर आनर्त्तने पुत्रपौत्रादि क्रमसे राज्य किया। उनके रेवत नामक एक पुत्र हुए जिनसे रैवतगिरिकी उत्पत्ति हुई। इन्होंने ही कुशस्थली वा द्वारावतीपुरी निर्माण की। २ कर्पास, कपास।

द्वारकादास—शेखावतीके एक राजाका नाम। ये खण्डेलराज गिरिधरदासके बड़े पुत्र थे। पिताके मरनेके बाद ये उनके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। परन्तु उनके सिंहासनारूढ़ होनेके थोड़े ही दिन बाद इन्हें एक बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ा। शेखावत सम्प्रदायके आदिपुरुष नूनकरण थे। उन्हींके वंशधर जो उस समय मनोहरपुरके अधीश्वर थे, उन्होंने अपनी स्वाभाविक नीचताके वशवर्त्ती हो कर इन्हें उस विपत्तिमें फंसाया था। दिल्लीके बादशाह एक सिंह पकड़ लाये। प्रचलित रीतिके अनुसार उन्होंने उस सिंहसे युद्ध करनेके लिये विज्ञापन निकाला। इस विज्ञापनके निकलते ही मनोहरपुरके राजाने बादशाहसे कहा—हमारी जातिके रायसलोत द्वारकादास जो प्रसिद्ध वीर नाहरसिंहके शिष्य हैं वे ही इस सिंहसे लड़ सकते हैं। बादशाहने सिंहसे लड़नेके लिए द्वारकादासको आज्ञा दी। द्वारकादास मनोहरपुरपतिकी चालाकी ताड़ तो गए, परन्तु उन्होंने बादशाहकी आज्ञाका बड़ी धीरतासे पालन किया। मैदान दर्शकोंसे भर गया, द्वारकादास भी स्नान करके और पूजाकी सामग्री ले कर वहां उपस्थित हुए। द्वारकादासने जा कर सिंहको एक टीका लगा दिया और उसके गलेमें माला पहना दी ; तदनन्तर अपने आसन पर धीर भावसे बैठ कर वे पूजा करने लगे। द्वारकादासके आचरणको देख लोग विस्मित हो रहे थे। मनोहरपुरके राजा मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इसी समय सिंह द्वारकादासके पास जा कर उनका शरीर सूंघने लगा। पुनः जब बादशाहने बुलाया, तब द्वारकादास वहांसे उठ कर बादशाहके समीप चले गए। बादशाहने समझा कि अवश्य ही यह दैवीशक्तिसे बलवान् है। प्रसन्न हो कर बादशाहने द्वारकादाससे इच्छानुसार मांगनेके लिए कहा। द्वारकादासने यही मांगा, कि आजसे किसीको ऐसी विपत्तिमें न फंसाना।

अन्तमें द्वारकादास खाँजहान्‌के हाथसे मारे गए। कहते हैं, खाँजहान् और द्वारकादास दोनों परम मित्र थे। एक समय बादशाह किसी कारणसे खाँजहान्‌से अप्रसन्न हुए और द्वारकादासको उन्होंने कहला भेजा कि खाँजहान्‌को जीता हुआ या मार कर मेरे यहां ले आओ। इस आज्ञाको सुन कर द्वारकादासको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने खाँजहान्‌से कहला भेजा कि इस घृणित कार्यको सम्पन्न करनेका भार मुझ पर रखा गया, अतएव आप स्वयं बादशाहके यहां जा कर आत्मसमर्पण करें या यहांसे कहीं भाग जांय। खाँजहान्‌ने ऐसा करना अनुचित समझा। दोनों वीर संग्रामक्षेत्रमें जा कर लड़ने लगे, एक दूसरेके प्रहारसे दोनों ही पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

द्वारकाधीश (सं० पु०) १ श्रीकृष्णचन्द्र। २ कृष्णकी वह मूर्त्ति जो द्वारकामें है।

द्वारकानाथ (सं० पु०) द्वारकाधीश देखो।

द्वारकानाथ ठाकुर—कलकत्तेके एक मान्यगण्य जमींदार। १७८४ ई०में इनका जन्म हुआ था। शेरबोर्न साहबके स्कूलमें इन्होंने पहले पहल पढ़ना लिखना सीखा। थोड़े ही दिनोंके मध्य अंगरेजी, बङ्गला और पारसी भाषामें इनका अच्छा प्रवेश हो गया। पीछे मुख्तारी पास कर ये कितने राजाओं और जमींदारोंके विश्वासभाजन हो गए। पिताके मरने पर जमींदारीकी देख रेख इन्हींको करना पड़ता था। मुख्तारीमें इन्होंने खूब रुपये कमाये। धीरे धीरे इन्होंने बोर्ड, कष्टम और अफीम-विभागकी दीवानी भी पाई थी। इस प्रकार प्रचुर अर्थ उपार्जन कर स्वाधीनभावसे 'व्यवसाय करनेके उद्देश्यसे १८३४ ई०में इन्होंने 'कार ठाकुर' नामक एक वाणिज्यालय स्थापित किया। अङ्गरेजोंके आदर्शमें वाणिज्य-कोठी बंगाली द्वारा यदि स्थापित

द्वारकानाथमित्र—बङ्गालके एक प्रसिद्ध व्यक्ति। १८३३ ई०में हुगली जिलेके अगुनसी ग्राममें इनका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनकी असाधारण प्रतिभा चमकने लगी थी। चार वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने घर पर पढ़ना लिखना सीख लिया था। १८४६ ई०में जब इनकी उमर सात वर्षकी हुई, तब हुगली ब्रॉंच स्कूलमें भर्त्ती हुए। इस समयसे ले कर जितनी परीक्षाएं इन्होंने पास कीं, सभीमें इन्हें वृत्ति मिलती गई थी।

आप बड़े इतिहासप्रिय थे। पढ़नेकी क्षमता भी आपसे इतनी थी कि ऐलिसनप्रणीत यूरोपके इतिहास-का एक एक खण्ड आप एक ही दिनमें पढ़ लेते थे। इनकी स्मरणशक्ति भी वैसी ही प्रबल थी। पन्द्रह दिन-में ही इन्होंने ऐलिसनका उक्त इतिहास मुखस्थ कर लिया था। पिताके मरने पर इन्हें नौकरी करनेकी विशेष इच्छा हुई। उपयुक्त नौकरी कहीं नहीं मिलने पर इन्होंने दृढ़संकल्प कर लिया, कि जब तक वकालत पास न कर लूं तब तक अच्छे ओहदेकी नौकरी भी क्यों न मिल जाय, तो भी नहीं कर सकता। यह चिन्ता इनके हृदय-में रात दिन जाग्रत् रही। घर पर भी इन्होंने आइन पढ़ना आरम्भ कर दिया और उत्तम श्रेणीमें वकालत पास कर ही ली।

तदनन्तर आप सदर दीवानी अदालतमें वकालत करनेके लिए प्रविष्ट हुए। धीरे धीरे इनकी वकालत खूब चली, थोड़े दिनोंमें लाखों रुपये उपार्जन कर लिये। १८६२ ई०में "हाई-कोर्ट" स्थापित हुआ। सर बार्नेस पीकक प्रधान विचारपति हुए। द्वारकानाथकी योग्यता और बुद्धिकी प्रखरता देख वे दाँतों उंगली काट कर रह गए।

सत्य और न्यायनिष्ठाको इन्होंने मरते समय तक भी नहीं छोड़ा। इनकी दानशीलता और उदारता भी प्रशंसनीय थी। दरिद्र विपन्नोंसे विना कुछ लिये ही उनके मुकदमे की पैरवी करते थे।

१८६७ ई० ६ जूनको हाईकोर्टके प्रकृत प्रथम देशीय विचारपति जज शम्भुनाथके मरने पर द्वारकानाथ ही उस पद पर अभिषिक्त हुए। इस समय इनकी अवस्था केवल ३३ वर्षकी थी।

१८७२ ई०के नवम्बर मासमें ये गलक्षत रोगसे आक्रान्त हुए और यही रोग भारी बन कर इनकी मृत्युका कारण हुआ। अङ्गरेजी आहारादिके आप बड़े प्रिय थे। जबसे गलक्षत रोगका आक्रमण हुआ, तबसे इन्होंने उक्त आहारादिका बिलकुल बहिष्कार कर दिया। ये कहते थे, कि हम लोगोंके लिये देशीय प्रथाका आहारादि ही स्वास्थ्यकर है, इसका व्यतिक्रम करनेसे निश्चय ही स्वास्थ्य-नाश होगा। एक दिन कथाप्रसङ्गमें द्वारका-नाथने कहा था, "मानवधर्मशास्त्रके प्रणेता मनुका कहना है, कि मानसिक और शारीरिक उन्नतिके सिवा आत्मतत्त्वमें अधिकारी हो नहीं सकता। मैं जो इतना कष्ट भोग रहा हूं यह केवल मनुके नियमादि उल्लङ्घनका विष-मय फल है। यदि इस यात्रासे किसी तरह रक्षा मिल जाय, तो मैं हिन्दू जीवनका ही अवलम्बन करूंगा।" इसी आधार पर मोक्षमूलरने एक पत्र लिखा था, "यूरोप-में जो अच्छी अच्छी चीजें हैं उन्हें ले लो, लेकिन यूरो-पीय मत बनो। तुम लोग मनुके वंशधर हो, रक्षप्रसविनी भारतकी सन्तान हो, सत्यानुसन्धित्सु हो, सभी जिस ईश्वरकी सेवा करते हैं, तुम लोग भी उन्हींके उपासक हो, तो फिर व्यर्थ अन्य जातिके अनुयायी क्यों होते हो? तुम लोग जो हो उसी पर आरूढ़ रहो।"

१८७४ ई०की २५वीं फरवरीको दिनके चार बजे बङ्गालकी मणिमालाके एक अत्युज्ज्वलमणि द्वारकानाथ करालकालके गालमें पतित हुए।

द्वारकानाथ विद्याभूषण—बङ्गालके एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान्। १७४२ शकमें दाक्षिणात्य वैदिक 'यं'शोके ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। ये ईश्वरचन्द्र विद्या-सागरके समसामयिक थे। दोनों एक ही कालेजमें काम करते थे। इन्होंने रोमराज्यका इतिहास, भूषणसार नामक बङ्गला व्याकरण और विश्वेश्वरविलाप नामक एक क्षुद्रकाव्यकी रचना की थी। 'सोमप्रकाश' नामक एक सुविख्यात संवादपत्रका भी आप सम्पादन करते थे। १८८६ ई०की २२वीं अगस्तको आप इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधार गए।

द्वारकेश (सं० पु०) द्वारकायाः ईशः। वासुदेव, द्वारका-नाथ।

द्वारगोप (स० पु०) द्वार गोपायति गुप-अण्। द्वारपाल।

द्वारचार (स० पु०) विवाहकी एक रीति जो बरातके लड़कीवालेके दरवाजे पर पहुंचने पर होती है।

द्वारछेकाई (हिं० स्त्री०) १ विवाहमें एक रीति। जब विवाहका वर वधू सहित अपने घर आता है, तब कोई बहिन दरवाजे पर उसकी बहन उसकी राहको रोकती है। ऐसे समय जब वर उसे कुछ नेग दे देता है, तब वह राह छोड़ देती है। २ द्वारछेकाईमें दिये जानेका नेग।

द्वारदातु (स० पु०) द्वार ददाति दा-तुन्। भूमिसह वृक्ष।

द्वारदारु (स० पु०) १ शाकवृक्ष। २ भूमिसह वृक्ष।

द्वारप (स० पु०) द्वार पाति पा-क। १ द्वाररक्षक। २ विष्णु।

द्वारपण्डित (स० पु०) एक प्रधान पण्डित जो किसी राजाके दरबारमें रहते थे।

द्वारपति (स० पु०) द्वारस्य पतिः ६-तत्। द्वारपाल।

द्वारपाल (स० पु०) द्वार पालयतीति पालि-अण्। १ द्वाररक्षक। इसका पर्याय—प्रतीहार, द्वाःस्थ, दाःस्थित, दर्शक, वेत्रधारक, दौवारिक, मर्त्तरक्ष, गर्वाट, दण्डधारी, द्वारस्थ, क्षत्ता, द्वारपालक, दौवारिक, वेत्री, उत्सारक और दण्डी है। दौवारिक देखो।

२ तन्त्रोक्त देवताभेद, द्वाररक्षक देवता। इन देवताओंकी पूजा पहले की जाती है। ३ तीर्थभेद। महाभारतमें इसे सरस्वतीके किनारे लिखा है। इसमें स्नान दानादि करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है।

द्वारपालक (स० पु०) पालयतीति पालि-ण्वुल्, द्वारस्य पालक द्वारपाल-स्वार्थे कन्। द्वारपाल।

द्वारपालिक (स० पु०) द्वारपालका अपत्य द्वारपालको रेवत्यादित्वात् ठक्। द्वारपालीका अपत्य, द्वारपाल की सन्तति।

द्वारपिण्डी (स० स्त्री०) द्वारस्य पिण्डी पिण्डिकेव। देहली, चौखट, दहलीज।

द्वारपूजा (हिं० स्त्री०) १ विवाहमें एक कृत्य। जब बरात ले कर वर पहले पहल आता है तब कन्या वाले के द्वार पर यह कृत्य किया जाता है। इसमें कन्याका पिता द्वार पर स्थापित कलश आदिका पूजन करके अपने इष्ट मित्रों सहित वरको उतारता और मधुपर्क देता है। २ जैनियों की एक पूजा।

द्वारबलिभुज (स० पु०) द्वारदत्त बलिं भुङ्क्ते भुज क्विप्। १ बक, बगला। २ काक कौवा।

द्वारयन्त्र (स० क्ली०) द्वारस्य यन्त्र मध्यलो० कर्मधा०। तालक, ताला।

द्वारवती (स० स्त्री०) द्वाराणि सन्त्यस्याः, या चतुर्वर्गाणां मोक्षद्वाराणि सन्त्यत्र द्वारा मतुप् मस्य व। द्वारका। इसका पर्याय—द्वारका, द्वारावती, वनमालिनी, द्वारिका अब्धिनगरी और द्वारकापुरी है। इस पुरीके विषयमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्णने समुद्रके पास पहुंच कर उससे कहा था, 'हे समुद्र! मैं यहां एक पुरी बनाना चाहता हूं, इसलिये तुम एकसौ योजन विस्तृत एक स्थान प्रदान करो, पीछे मैं तुम्हें प्रत्यर्पण कर दूंगा।' इस तरह समुद्रके किनारे स्थान पा कर श्रीकृष्णने विश्वकर्माको बुला कर उनसे एक बृहद् पुरी बनानेको आज्ञा दी। इस पर विश्वकर्माने श्रीकृष्णसे कहा, 'हे भगवन्! किस प्रकारकी पुरी निर्माण करूं?' श्रीकृष्णने कहा, कि एक ऐसी सुमनोहर पुरी बनाओ जो एक सौ योजन विस्तृत हो और जिसमें पद्मरागादि मणि जड़ी हुई हों। कुबेरके भेजे हुए ० लाख यक्षों और महेशके भेजे हुए वैतालकी सहायतासे विश्वकर्माने एक अपूर्व पुरी निर्माण की। स्वर्ग वा मर्त्यमें इस तरहकी मनोहर नगरी और कहीं नहीं थी। इस पुरीसे वैभवमें सूर्य भी पराजित हुए थे। यह तीर्थोंमें एक प्रधान तीर्थ है।

इस द्वारका सिद्धतीर्थके जैसा और दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। यह सभी तीर्थोंसे श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रद है। इस पुरीमें प्रवेश करनेसे ही सब प्रकारके जन्मजन्मान्तरके पाप नष्ट हो जाते हैं। यहां तीर्थ दान, देवतापूजा तथा गङ्गादि तीर्थसे चतुर्गुण फलदायक है।

हरिवंशके ११६वें अध्यायमें द्वारकापुरीका विषय विविध रूपसे वर्णित है। हरिवंशमें एक जगह लिखा है, कि वहां चारों वर्णके समस्त द्वार विद्यमान हैं, जहां

जानेसे चारों वर्ण मोक्षलाभ करते हैं, ऐसी पुरीका नाम तत्त्ववेत्ता पण्डितोंने चतुर्वर्गके मोक्षद्वार समझ कर द्वारवती रखा है।

यह पुरी पीठस्थानोंमेंसे एक है। यहां भगवती रुक्मिणीके रूपमें विराजती हैं। (देवीभाग० ७।३०।६८) पृथ्वी पर जो ७ मोक्षदायिका पुरी हैं उनमेंसे द्वारका एक है।

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।
एतास्तु पृथिवी मध्ये न गण्यन्ते कदाचन॥
पुरी द्वारावती विष्णोः पाञ्चजन्योपरिस्थिता।
मुक्तिदा एताः सर्वाश्च एकत्र गणिताः सुरैः॥"
(भूतशुद्धितन्त्र)

देवताओंने अयोध्या, मथुरा, द्वारवती आदिकी गणना मोक्ष क्षेत्रोंमें की है। इनमेंसे द्वारवती पुरी श्रीकृष्ण पाञ्चजन्य शङ्खके ऊपर धारण किये हुए हैं।

द्वारका देखो।

द्वारवर्त्मन् (सं० पु०) द्वार, फाटक।

द्वारवृत्त (सं० पु०) कृष्णपिप्पली, काली पीपल।

द्वारशाखा (सं० स्त्री०) द्वारस्य शाखा ६-तत्। द्वारका अवयव, दरवाजेका भाग।

द्वारसमुद्र—महिसुर राज्यके अन्तर्गत हसन जिलेका एक प्राचीन शहर। इसका वर्त्तमान नाम हलेबिड़ है। यह अक्षा० १३°१३' उ० और देशा० ७६° ०' पू० बानावर रेलवे स्टेशनसे १८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोक-संख्या प्रायः १५२४ है। १०४० ई०से ले कर १३१० ई० तक इस नगरमें "होयशल बल्लाल" नामक देवगिरियादव-वंशीय एक शाखाने प्रभूत पराक्रमसे राज्य किया था। इसी नगरमें उन लोगोंकी राजधानी थी। यद्यपि वे कलचुरी वा चेदि राजाओंके अधीन थे तो भी उन लोगों-का प्रताप कम नहीं था। होयशल बल्लाल देखो। प्रवाद है, कि इस वंशके प्रतिष्ठाता राजा शल वा होयशलने इस नगरको स्थापित किया। चेन्नबासव-कालज्ञान नामक तामिल इतिहासमें इनका राजत्वकाल ९८४ ई०से १०४३ ई० तक लिखा हुआ है। १२वीं शताब्दीमें वीर सोमेश्वर नामका इस वंशके १०वें राजाने इस नगरका जीर्ण संस्कार किया। इसी कारण इनके समयके उत्कीर्ण शिलालिपिमें इन्हींको नगरके निर्माणकर्त्ता बतलाया है। सोमेश्वरने इस नगरमें एक बड़ा और अति उत्कृष्ट शिल्पकार्यविशिष्ट शिव और विष्णुका मन्दिर निर्माण किया जिनमेंसे होयशलेश्वरका मन्दिर सबसे बड़ा है। भार-तीय अट्टालिका-शिल्पके इतिहासलेखक फार्गुसनने इस मन्दिरके कारुकार्यकी विशेष प्रशंसा की है। मन्दिरकी लम्बाई २०० फुट और चौड़ाई २५ फुट है। इसके सभी पत्थर मर्मर-पत्थर सरीखे चमकीले और चिकने हैं। मन्दिरके एक कटिबन्धमें दो हजार हाथी खोदे हुए हैं। यह ७०० फुट लम्बा है। छोटे मन्दिरमें केदारेश्वर नामक विष्णुकी प्रतिमा है। इसके ऊपर वृक्ष आदि के उत्पन्न हो जानेसे थोड़े दिन हुए यह तहस नहस हो गया है। १३१० ई०में दिल्लीसम्राट् अलाउद्दीन् खिलजीके सेनापति मालिक काफुर और ख्वाजा हाजीने द्वारसमुद्र पर आक्रमण किया था और इसे अपने कब्जे-में कर लिया था। होयशल बल्लालराज भगाये जाने पर उन्होंने तोन्दानूर नगरमें राजधानी स्थापित की। इसके निकट जैनके ग्राम और अट्टालिकाओंके ध्वंसावशेष विद्यमान हैं।

द्वारस्तम्भ (सं० पु०) द्वारस्य स्तम्भः ६ तत्। द्वाराङ्ग-स्तम्भ, दरवाजे परका खंभा।

द्वारस्थ (सं० पु०) द्वारे तिष्ठतीति स्था-क। १ द्वारपाल। (त्रि०) २ द्वारस्थित मात्र, जो दरवाजे पर बैठा हो।

द्वार (हिं० पु०) १ द्वार, दरवाजा, फाटक। २ मार्ग, राह।

द्वारा (हिं० अव्य०) कर्त्तृत्वसे, साधनसे, जरियेसे।

द्वारादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणभेद। द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर, स्फ्यकृत, स्वादु, मृदु, श्वस् और स्व ये ही द्वारादि हैं।

द्वाराधिप (सं० पु०) द्वारे द्वारस्य वा अधिप.। द्वारा-ध्यक्ष, दरवाजेका मालिक।

द्वाराध्यक्ष (सं० पु०) द्वारे अध्यक्ष। प्रतीहार, द्वार-पाल, ड्योढ़ीदार।

द्वारावती (सं० स्त्री०) द्वाराणि प्रशस्तबहुलप्रतिद्वाराः सन्त्यत्र, द्वार-मतुप् मस्य व, निपातनात् पूर्वदीर्घश्च। द्वारका। द्वारवती और द्वारका देखो।

द्वारिक (सं॰ पु॰) द्वारं पालयत्वेनास्त्यस्य ठन्। द्वारपाल, दरबान।

द्वारिका (सं॰ स्त्री॰) प्रशस्तानि द्वाराणि सन्त्यस्यां ठन् टाप् च। द्वारकापुरी।

द्वारिकादास—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने सम्वत् १८२१ के पूर्व माधवनिदानभाषा नामक एक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की।

द्वारिकाप्रसाद—१ हिन्दीके एक कवि। ये ब्राह्मण जातिके थे। इन्होंने चौताळपाटिका नामक एक पुस्तक लिखी है।

२ हिन्दीके एक कवि। ये फटवारा जिला बांदाके निवासी तथा कायस्थजातिके थे। इनका जन्म सम्वत् १८२३में हुआ था। ये स्वरज्योतिषी और रैवता-रामायण नामक दो ग्रन्थ लिख गए हैं।

द्वारिकेश—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता सुमधुर तथा सराहनीय होती थी। इन्होंने 'द्वारिकेशजीकी भावना' नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

द्वारिन् (सं॰ त्रि॰) द्वारं पालनतया अस्त्यस्येति इनि। १ द्वारपाल। (त्रि॰) २ द्वारयुक्त, जिसमें दरवाजा हो।

द्वार्य (सं॰ त्रि॰) द्वारि भवः यत्। द्वारभव, जो दरवाजे पर हो।

द्वार्वती (सं॰ स्त्री॰) द्वारवती।

द्वाल (हिं॰ पु॰) दुवाल देखो।

द्वालबन्द (हिं॰ पु॰) दुवालबंद देखो।

द्वाली (हिं॰ स्त्री॰) दुवाली देखो।

द्वाविंश (सं॰ त्रि॰) द्वाविंशतेः पूरणः डट्। द्वाविंशति संख्याका पूरण, बाईसवां।

द्वाविंशति (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका विंशतिः द्वौ च विंशतिश्च इति वा आत्, बहुत्वेऽपि एकवचन। १ दो अधिक विंशति, बाईसकी संख्या २२। २ तत् संख्यायुक्त जो संख्यामें बीस और दो हो, बाईस।

द्वाविंशतितम (सं॰ त्रि॰) द्वाविंशत्याः पूरण पूरणे तमप्। द्वाविंश संख्याका पूरण, बाईसवां।

द्वाविंशतिधा (सं॰ अव्य॰) द्वाविंशति विधार्थे-धा। द्वाविंशति प्रकार, बाईस तरहका।

द्वाषष्ट (सं॰ त्रि॰) द्वाषष्टि पूरणे डट्। द्वाषष्टि संख्याका पूरण बासठवां।

द्वाषष्टि (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका षष्टिः। १ दो अधिक षष्टि, बासठकी संख्या, ६२। २ तत् संख्यायुक्त जो गणनामें साठ और दो हो, बासठ।

द्वाषष्टितम (सं॰ त्रि॰) द्वाषष्ट्याः पूरणः पूरणे तमप्। द्विषष्टि संख्याका पूरण, बासठवां।

द्वासप्तत (सं॰ त्रि॰) द्वासप्ततेः पूरणः डट्। द्विसप्ततिका पूरण, बहत्तरवां।

द्वासप्तति (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका सप्ततिः। १ वह संख्या जो सत्तरसे दो अधिक हो, बहत्तरकी संख्या, ७२। (त्रि॰) द्वासप्तति प्रमाणमस्य डन्, द्वासप्तत्याः पूरण पूरणे तमप्। २ द्वासप्ततितम बहत्तरवां।

द्वास्थ (सं॰ पु॰) द्वारि तिष्ठतीति स्था-क 'सुपरे द्वारि वा विसर्गलोपे वक्तव्य'। पा ८।३।३६। इति विकल्पे विसर्ग लोपः। द्वारपाल, दरबान।

द्वास्थित (सं॰ पु॰) द्वारि स्थितः विसर्गस्य पाक्षिकलोपः। द्वारपाल।

द्वास्थितदर्शक (सं॰ पु॰) पश्यतीति दृश-ण्वुल्, द्वास्थितः सन् दर्शकः। दौवारिक, द्वारपाल।

द्वि (सं॰ त्रि॰) द्वित्व संख्या, दो। दो वाचक शब्द ये हैं,—पक्ष नदीकूल अश्विधारा, रामपुत्र, चक्षु, हस्त, स्तन, सहचर, दस्राश्वि, नारदपर्वत, अश्विनीकुमार और भार्यापति।

द्विक (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां कायतीति कै-क। १ द्वय दो। द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमिति कन् पूरणप्रत्ययस्य च लुक्। २ द्वितीयक, दूसरा। द्वयोरवयवं द्वौ अवयवौ वा यस्य कन्। ३ द्वित्व, दो बार, दोहरा। ४ जिसमें दो अवयव हों। (पु॰) दो ककारो यत्र। ५ काक, कौआ। ६ चक्रवाक, चकवा।

द्विककार (सं॰ पु॰) द्वौ ककारौ ककारवर्णौ यत्र। १ काक, कौआ। २ कोक, चकवा।

द्विककुद (सं॰ पु॰) द्वे ककुदी यस्य। उष्ट्र, ऊंट।

द्विकर (सं॰ त्रि॰) द्वौ करोति कृ ट। १ द्वित्वसंख्या व्यापारक। द्वौ करौ यस्य। २ द्विभुज, दो भुजा। ३ करद्वय, दो हाथ।

द्विकर्म्मक (सं॰ त्रि॰) जिसके दो कर्म हों।

द्विकल (सं॰ पु॰) छन्दःशास्त्र या पिङ्गलमें दो मात्राओंका

समूह। इसके दो भेद हैं, एकमें तो दोनों मात्राएं पृथक् पृथक् रहती हैं और दूसरेमें एक ही अक्षर दो मात्राओंका होता है। पहलेका उदाहरण जैसे—जल, मल, वन, धन इत्यादि और दूसरेका-वा, जा, मा, आ, श्रा इत्यादि।

द्विकार्षापण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीतं ठक्. तस्य वा लुक्.। दो कार्षापण द्वारा क्रीत, जो दो काहन वा रुपयेमें खरीदा गया हो।

द्विकार्षापणिक (सं० त्रि०) द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीतं ठक्. पक्षे ठकोऽलोपः। द्विकार्षापण, जो दो काहन वा रुपयेमें खरीदा गया हो।

द्विकौडविक (सं० त्रि०) द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य ठञ्. द्वाभ्यां कुडवाभ्यां क्रीतं वा ठक्. न तस्य लुक्, उत्तरपद-वृद्धिः। १ द्विकुड़व प्रयोजनक, जिसे दो कुड़वकी जरूरत हो। २ द्विकुड़व द्वारा क्रीत, जो दो कुडवमें खरीदा गया हो।

द्विचार (सं० पु०) गोरा और सच्चो।

द्विगु (सं० त्रि०) द्वौ गावौ यस्य गौणत्वात् गोह्रस्वः। १ दो गो सम्बन्धो, जिसके दो गायें हों। २ समासविशेष, वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद संख्यावाचक हो। पाणिनिके मतसे द्विगु एक पृथक् समास नहीं है। उनके मतसे अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व ये ही चार प्रकारके समास हैं। द्विगु और कर्मधारय समासोंको गिनती स्वतन्त्र समासोंमें नहीं है।

पाणिनिने इस समासको तत्पुरुष समासके अन्तर्भुक्त किया है। व्याकरणमें जो कुछ समास निर्दिष्ट हैं, उनके मतसे यह एक पृथक् समास है। मुग्धबोध व्याकरणमें इस समासका 'ग' यही संख्याकृत हुआ है अर्थात् ग कहनेसे ही द्विगु समासका बोध होता है। द्विगु समासके लक्षणमें इस प्रकार लिखा है—"संख्या पूर्वो द्विगुः।" (पा २।१।५२) संख्यावाचक पद पहले रहनेसे द्विगु समास होता है, अर्थात् जिस कर्मधारयके पूर्वपदमें संख्यावाचक शब्द हो, उसे द्विगुसमास कहते हैं। द्विगुसमासके तीन भेद हैं—तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार। "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" (पा २।१।५१) तद्धितार्थमें उत्तरपदके बाद भी समाहार मालूम पड़ने पर भी द्विगुसमास होता है। "तद्धितार्थे द्विगुपञ्चभिर्गोभिः क्रीतः" इस जगह समास हो कर 'पञ्चगु' यह पद हुआ। इस तद्धितार्थ प्रत्यय बाद समास होनेसे तद्धितार्थ द्विगु हुआ।

उत्तरपदद्विगु—पञ्चहस्ताःप्रमाणमस्य' इस वाक्यमें समास हो कर पञ्चहस्तप्रमाण ऐसा पद हुआ। इस जगह प्रमाण शब्द उत्तरपदके बाद रहनेसे पञ्च और हस्त इन दो पदोंका द्विगु समास हुआ। संख्यावाचक शब्दका जिस जगह समाहार ज्ञान पड़े, उस जगह समाहारद्विगु होता है। समाहारद्विगु होनेसे अकारान्त शब्दका उत्तर ईप् होता है। *यथा—त्रयाणां लोकानां* समाहारः त्रिलोकी, चतुर्णां पदानां समाहारः चतुष्पदी इत्यादि। समाहार-द्विगुमें भुवन प्रभृति शब्दके बाद ईप् न होता। *यथा*—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं इस जगह 'त्रिभुवनी' ऐसा रूप हो सकता है, किन्तु सूत्रके अनुसार ऐसा नहीं होता है। चतुर्युग पञ्चरात्र इत्यादि। समासान्त सर्व, पुण्य, संख्यावाचक और अव्ययके परवर्ती अहन् शब्दके बाद अन् और अहन्को जगह अह्न होता है। *यथा*—द्वयो रह्नोः भवः द्व्यह्नः, पञ्चसु अहःसु भवः पञ्चाह्नः। समाहारद्विगुमें संख्यावाचकके परवर्त्ती अहन् शब्दकी जगह अह्न नहीं होता है। *यथा*—द्वयो रह्नोः समाहारः द्व्यह, त्र्यह, दशाह इत्यादि। संख्यावाचक और अव्ययशब्दके परवर्त्ती अङ्गुलि शब्दके उत्तर अण् होता है। *यथा*—षड़ङ्गुलो प्रमाणस्य, द्व्यङ्गुलं। तद्धितार्थ द्विगुसमासमें गो शब्दके उत्तर ट समासान्त नहीं होता। *यथा*—पञ्चभि र्गोभिः क्रीतः पञ्चगु, इस जगह समासान्त होनेसे 'पञ्चगव' ऐसा पद होता। समाहारद्विगुमें नौ शब्दके उत्तर 'ट' समासान्त होता है। *यथा*—द्वयोर्नावोः समाहारः द्विनाव, किन्तु तद्धितार्थ द्विगुमें ट नहीं होगा। *यथा*—'पञ्चभि र्नौभिः क्रीतः पञ्चनौ' इस जगह ट समासान्त नहीं हुआ। इसोसे पञ्चनौ ऐसा पद बना। द्विगुसमास होनेसे द्वि और त्रि शब्दके परवर्त्ती अञ्जलि शब्दके उत्तर विकल्पसे ट समासान्त होता है। *यथा*—द्वे अञ्जलो प्रमाणमस्य द्व्यञ्जलं द्व्यञ्जलि। विकल्पविधानके कारण 'द्व्यञ्जल और द्व्यञ्जलि ये ही दो पद होंगे। समास देखो।

द्विगुण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां गुण्यते गुण-कर्मणि अच्। दो द्वारा गुणित, दुगना, दूना।

द्विगुणाकृत (सं॰ त्रि॰) द्विगुण कर्षण कृत क्षेत्र। (संख्यायाः गुणान्तायाः। पा ५।४।५८) बारम्बारकर्षित क्षेत्र, जो जमीन दो बार जोती गई हो।

द्विगुणाकर्ष (सं॰ त्रि॰) द्विगुणो कर्षो यस्य। 'कर्ष श्लक्ष्ण' इति कथ शब्द परे पूर्व स्थ दीर्घ। दो द्वारा गुणित, दोसे गुणा किया हुआ।

द्विगुणित (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां गुणित। १ दोसे गुणा किया हुआ, जिसे दुगना किया हो। २ दूना, दुगुना।

द्विघटिका (सं॰ स्त्री॰) दो घड़ियोंके हिसाबसे निकाला हुआ मुहूर्त। यह मुहूर्त होराके अनुसार निकाला जाता है। रात दिनकी साठ घड़ियां दो दो घड़ियोंमें विभक्त की जाती हैं और पुनः यथाक्रम उनका विचार किया जाता है। इस मुहूर्तमें दिनका विचार नहीं होता, सब दिन सब ओरको यात्रा हो सकती है। यह उस समय काममें लाया जाता है जहां कई दिन ठहरने का समय नहीं रहता।

द्विचक्र (सं॰ पु॰) १ दानवभेद, एक असुरका नाम। (त्रि॰) २ दो चक्रयुक्त जिसमें दो चक्के या पहिये हों।

द्विचत्वारिंश (सं॰ त्रि॰) द्विचत्वारिंशत् पूरण डट्। जिस संख्या द्वारा ४२ संख्या पूरण हो, बयालीसवां।

द्विचत्वारिंशत् (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका चत्वारिंशत्। १ दो अधिक चत्वारिंशत् बयालीसकी संख्या, ४२। (त्रि॰) द्विचत्वारिंशत्तम, बयालीसवां।

द्विचरण (सं॰ त्रि॰) दो चरणो यस्य। १ द्विपादयुक्त, जिसके दो पांव हों। (स्त्री॰) २ रागिनीभेद, एक रागिनीका नाम। ३ पादद्वय, दो पांव।

द्विज (सं॰ पु॰) द्विर्जायते मुञ्जं इत्ती द्वियन्द जन-ड (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१) १ संस्कृत ब्राह्मण, वह ब्राह्मण जिसका संस्कार हुआ हो।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जब यथाविधि संस्कृत हो जाते अर्थात् जब उनके उपनयनादि संस्कारकार्य सम्पन्न हो जाते तब उन्हें द्विज कहते हैं।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है कि पहले मातापितासे उत्पन्न, पीछे मौञ्जिबन्धनसे द्वितीय जन्म होता है। (उपनयन संस्कारको मौञ्जिबन्धन कहते हैं।) यह संस्कार हो जानेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाते हैं। २ संस्कृत ब्राह्मण। एक समय अम्बरीषने वशिष्ठदेवसे पूछा था, 'हे ऋषि! कैसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये और किस तरह वह दानदाताके उद्धारका कारण होता है, यह कृपा कर हमें बतलाइये।' इस पर वशिष्ठने कहा था कि, 'जिन्हें जाति, कुल, वृत्त अर्थात् सदाचार, स्वाध्याय और शास्त्रका ज्ञान हो उन्हें द्विज कहते हैं। हे राजन्! केवल जाति, कुल और शास्त्रज्ञानादि द्विजत्वके प्रतिकारण नहीं होते, उपरोक्त समस्त गुण जिनमें पाये जाय उन्हींको द्विज कहते हैं। ३ दन्त, दांत पहले दांतके गिर जानेसे उसकी जगह दूसरा दांत निकल आता है। इसीसे दांतको द्विज कहते हैं। ४ अण्डज प्राणी। ५ तुम्बुरु, नेपाली धनिया। ६ पक्षी, चिड़िया। ७ चन्द्रमा। पुराणमें लिखा है, कि चन्द्रमा को दो बार जन्म हुआ था। एक बार ये अत्रि ऋषिके पुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र मथनके समय समुद्रसे निकले थे। ८ सर्प, सांप। (त्रि॰) ९ द्विजातमात्र, जो दो बार उत्पन्न हुआ हो, जिसका जन्म दो बार हुआ हो।

द्विज—१ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सम्वत् १८१६में समायकाय नामक एक पुस्तक लिखी।

२ एक हिन्दी-कवि। इनका जन्म संवत् १८६०में हुआ और कविता काल १८८९के लगभग समझना चाहिए। इन्होंने रासानन्दगिरि नामक एक छन्द ग्रन्थ अनुप्रास एवं भावपूर्ण बनाया है। इनकी कविता अच्छी होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"जगत जगत छम जम्बुकी जमदि घरे,
सुंदर सुमन देखो केहरी कहत है।
सुधा रस पैर जाती कल मलाहूल जाती,
दीपक प्रकाश कञ्जु शोभा धरत है।
कमन कुमार निम्न मदन मुकुर और,
न बन समान उपमा न परसत है।
द्विज कवि जान बड़ी राधिका कुमार जू,
मेरे जान चन्द्र जिय जामिनि जगत है॥"

द्विजकवि मन्नालाल—एक हिन्दी कवि। ये बनारसके निवासी थे। इन्होंने प्रेमतरङ्ग नामको एक पुस्तक लिखी है।

द्विजवाहन (स॰ पु॰) द्विजः गरुड़ःवाहनं यस्य। नारायण, विष्णु।

द्विजव्रण (स॰ पु॰) द्विजस्य दन्तस्य व्रणः। दन्तार्बुद, दांतका एक रोग।

द्विजश्रम (स॰ पु॰) द्विजैः श्रमः ६-तत्। राजमाष बर्बट, मटवांस। ब्राह्मण इसे नहीं खाते।

द्विजश्रेष्ठ (स॰ पु॰) द्विजेषु श्रेष्ठः ७-तत्। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विजसेवक (स॰ पु॰) द्विजानां सेवकः ६ तत्। १ शूद्र। (त्रि॰) २ द्विजसेविमात्र, द्विजोंकी सेवा करनेवाला।

द्विजसत्तम (स॰ पु॰) द्विजेषु सत्तमः। द्विजश्रेष्ठ।

द्विजाँच (स॰ पु॰) पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़।

द्विजा (स॰ स्त्री॰) द्विर्जायते जन ड, टाप्। १ रेणुका नामक गन्धद्रव्य सामान्यका बोध। इसका पर्याय—रेणुका, राजपुत्री, नन्दिनी कपिला, द्विजा भस्मगन्धा, पाण्डुपत्नी, कौन्ती और हरेणुकादि है। २ भार्गी, भारङ्गी। ३ पालङ्की पालकका साग। यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है, इसीसे इसका नाम द्विजा पड़ा है। स्त्रियां टाप। ४ द्विजपत्नी, ब्राह्मण या द्विजकी स्त्री।

द्विजायन (स॰ पु॰) ब्राह्मण।

द्विजाग्र्य (स॰ पु॰) द्विजेषु अग्र्यः। विप्र, ब्राह्मण।

द्विजाङ्गिका (स॰ स्त्री॰) कटुकी, कुटकी।

द्विजाङ्गी (स॰ पु॰) द्विजस्य पक्षिणोऽङ्गमिव अङ्ग यस्याः ङीप कटुका, कुटकी।

द्विजाति (स॰ पु॰) द्वे जाती यस्य। १ ब्राह्मण। २ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य। ३ अण्डज। ४ दन्त, दाँत। ५ पक्षी।

द्विजातिमुख्य (स॰ पु॰) द्विजातिषु मुख्यः। ब्राह्मण श्रेष्ठ।

द्विजानि (स॰ पु॰) द्विजाया यस्य, बहुव्रीहौ जायायाः आदेशः। द्विभार्यक, वह पुरुष जिसके दो स्त्रियां हों।

द्विजायनी (स॰ स्त्री॰) द्विजः यस्या प्राप्यतेऽनयेति अय करणे ल्युट्। स्त्रियां ङीप्। यज्ञोपवीत।

द्विजालय (स॰ पु॰) द्विजानां पक्षिणां आलयः। १ तरु कोटर पेड़का खोखला भाग जिसमें चिड़ियां अपना घोंसला बनाती हैं। २ ब्राह्मणका घर।

द्विजिह्व (स॰ पु॰) द्वे जिह्वे यस्य। १ सर्प साँप। २ सूचक, चुगलखोर। ३ खल, दुष्ट। ४ चोर, चौर। ५ दुःसाध्य। ६ रोगविशेष, एक रोग। (त्रि॰) ७ द्विजिह्वाविशिष्ट जिसे दो जीभें हों।

द्विजेन्द्र (स॰ पु॰) द्विज इन्द्र इव उपमित समासः। १ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मण। द्विजानां इन्द्रः ६ तत्। २ चन्द्रमा। ३ कपूर, कपूर। पक्षीन्द्र, गरुड़।

द्विजेष्टक (स॰ पु॰) निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

द्विजेश (स॰ पु॰) द्विजानां ईशः ६ तत्। १ गरुड़। २ चन्द्रमा। ३ कपूर। ४ द्विजेश्वर, ब्राह्मण।

द्विजोत्तम (स॰ पु॰) द्विजेषु उत्तमः। ब्राह्मण।

द्विजोपासक (स॰ पु॰) द्विजमुपास्ते उप-आस-ण्वुल्। द्विजसेवक, शूद्र।

द्विट्सेवा (स॰ स्त्री॰) द्विषो सेवा। शत्रुकी सेवा।

द्विट्सेवी (स॰ त्रि॰) द्विट्सेवा विद्यतेऽस्य इनि। राजशत्रुसेवी, जो राजाके शत्रुसे मिला हो या मिलता रहता हो। शत्रुसे ऐसे मनुष्यका दण्ड वध लिखा है।

द्विठ (स॰ पु॰) द्वे ठकारो लेखनाकारो यस्य। १ विसर्ग। २ वह्निजाया स्वाहा। (क्ली॰) ३ दो ठकार।

द्वित (स॰ पु॰) १ देवभेद, एक देवताका नाम। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। इनके तीन भाई थे, एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय (स॰ क्ली॰) द्वे अवयवो यस्य द्विअवयवे तयप्। १ द्वय, दोनों मनुष्य। (त्रि॰) २ द्वित्वसङ्ख्याविशिष्ट जो दोसे मिल कर बना हो। ३ दोहरा।

द्वितीय (स॰ त्रि॰) द्वयोः पूरणः द्वि-तीय (द्वेस्तीयः। पा ५।२।५४) १ द्वय दूसरा। (पु॰) २ पुत्र, बेटा। आत्मा ही पुत्र रूपसे जन्मग्रहण करती है, इसीसे द्वितीय शब्दका अर्थ पुत्र हुआ है।

द्वितीयक (स॰ क्ली॰) द्वितीयेन रूपेण ग्रहण कम्। १ वैमात्रिक द्वितीयरूप द्वारा ग्रहण। द्वितीयेऽह्नि भवं कन्। २ द्वितीय दिनभव रोग वह रोग जो प्रत्येक दूसरे दिन होता हो। (त्रि॰) ३ द्वय दूसरा।

द्वितीयविपन्ना (स॰ स्त्री॰ द्वितीया विपन्ना। गाम्भारी एक बड़ा पेड़।

द्वितीया (स॰ स्त्री॰) द्वितीय टाप। १ गेहिनी, पत्नी। २ तिथिविशेष प्रत्येक पक्षकी दूसरी तिथि दूज। पश्चिमे कुमारका जन्म द्वितीया तिथिमें हुआ था, इसीसे यह

तिथि शुभकर मानी गई है। इस तिथिमें जो पुष्पाहार ले कर अश्विनोकुमारके उद्देशसे एक वर्ष तक व्रत करते हैं, वे अश्विनोकुमार सरीखे रूप और गुणसम्पन्न होते हैं।

रथद्वितीया—आषाढ़मासको शुक्लद्वितीयाको रथ-द्वितीया कहते हैं। इस तिथिमें पुष्यानक्षत्रका योग होनेसे शुभ होता है। यदि नक्षत्रका योग न हो, तो केवल तिथिमें ही यह उत्सव करना चाहिये। इसमें भद्राके साथ राम और कृष्णको रथ पर बिठाते हैं और पीछे अनेक ब्राह्मणोंको खिलाते पिलाते हैं। रथयात्रा देखो।

मनोरथ-द्वितीया—श्रावणमासको शुक्लाद्वितीयाका नाम मनोरथ द्वितीया है। इस तिथिमें दिनमें वासुदेवको पूजा और रातमें चन्द्रोदय होने पर अर्घ्य देना चाहिये। पीछे ब्राह्मणादिको भोजन करा कर आप भोजन करना चाहिये।

भ्रातृद्वितीया—कार्त्तिकमासको शुक्लद्वितीयाका नाम भ्रातृद्वितीया है। इस दिन बहनको भाईकी पूजा करनी चाहिये। जो नहीं करतीं, वे सात जन्म तक भ्रातृ-हीन रहती हैं। भाई प्रफुल्ल चित्तसे बहनके हाथसे भोजन करते हैं। इस दिन यम, चित्रगुप्त और यम-दूतका पूजन करनेका विधान है। यमको अर्घ्य देना चाहिये। पूजा और अर्घ्यदान भाई तथा बहन दोनोंको करना चाहिये।

अर्घ्यमन्त्र—

"ओं एह्येहि मार्त्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश।
भ्रातृद्वितीया कृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन् नमस्ते॥"

प्रणाममन्त्र—

"ओं धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज।
पाहि मां किङ्करैः सार्द्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते॥"

यमुनाको पूजा कर नमस्कार करना चाहिये—

"ओं यमस्वस नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते।
वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते॥"

भाईको खिलाते समय बहन यही मन्त्र पढ़ कर अन्न देती है—

"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभं।
प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥"

बहन यदि बड़ी हो, तो केवल 'भ्रातस्तवाग्रजाताहं' यही कहना चाहिये। (तिथितत्त्व) माघमासको दोनों पक्षोंको द्वितीया तिथि वर्जनीय है। तिथि देखो।

द्वितीया व्रतका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—द्वितीया व्रत करनेसे स्वर्गादि फल प्राप्त होता है। पुष्पाहारी हो कर द्वितीया तिथिमें अश्विनोकुमारको पूजा करनेसे रूप, सौभाग्य और स्वर्गलाभ होता है तथा कार्त्तिकमासको शुक्लद्वितीयामें यमको पूजा करनेसे स्वर्गलाभ और नरक परिहार होता है। श्रावण-मासको कृष्णा द्वितीयामें अशून्यव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतमें विष्णु और लक्ष्मीको एक वर्ष तक पूजा कर प्रतिमासमें शय्या, फल और सोमके उद्देशसे समन्त्रक अर्घ्यदान तथा सोमरूपी हरि और लक्ष्मीका पूजन करना पड़ता है। पीछे रातमें घीसे होम कर ब्राह्मणको शय्या, दीपान्नभाजन समेत आसन, छत्र, पादुक, जलकुम्भ, प्रतिमा और पात्र देनेका विधान है। जो स्त्रीके साथ इस व्रतका अनुष्ठान करते वे मुक्ति पाते हैं। कार्त्तिकमासको शुक्लद्वितीया तिथिमें कान्ति-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस तिथिमें नक्ताहारी हो कर व्रतका अनुष्ठान और रामका पूजन करना पड़ता है। वर्ष भर इस प्रकार करनेसे कान्ति, आयु और आरो-ग्यादि लाभ होता है। पौषमासको शुक्लाद्वितीयासे ले कर चार दिन तक विष्णुव्रत करना चाहिये। पहले दिन सिद्धार्थसे, दूसरे दिन कृष्णतिलसे, तीसरे दिन वचसे और चौथे दिन सर्वौषधिके जलसे स्नान करना पड़ता है। कृष्ण, अच्युत, अनन्त, हृषीकेश इत्यादि नामसे पूजा कर यथाक्रम शशी, चन्द्र, शशाङ्क और इन्दु इन नामसे पद, नाभि, चक्षु और मस्तकका यथा-क्रम पूजन करना चाहिये। जब तक चन्द्रमा उदित रहे, तभी तक रातमें भोजन करते हैं। इस प्रकार व्रत करने-से छः मासमें सब पाप दूर हो जाते और वर्षके अन्तमें अभीष्ट कामना सिद्ध होती है। पूर्व समयमें देवताओंने यह व्रत किया था। अतः सभीको यह व्रत करना चाहिये। (अग्निपु० ११२ अ०)

द्वितीयाकृत (सं० त्रि०) द्वितीयं वारं कृतं डाच्, (कृञो द्वितीय तृतीय शम्बबीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) बार-

इव कर्षितक्षेत्र, वह खेत जो दो बार जोता गया हो।

द्वितीयामा (सं० स्त्री०) द्वितीया हरिद्रावत् भामातीति भामा-च। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

द्वितीयाश्रम (सं० पु०) द्वितीयः आश्रमः। गार्हस्थ्य आश्रम। मनुमें लिखा है कि जीवितकालके द्वितीयभागमें विवाहादि करके घरमें रहे, इसी अवस्थाका नाम द्वितीयाश्रम है। यह द्वितीयाश्रम सब आश्रमोंका प्रधान है। जो इस आश्रममें रहकर शास्त्रके आश्रमधर्मका प्रतिपालन करते हुए काल व्यतीत करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। भविष्यत्में वे दूसरे दूसरे आश्रमको सहजमें उत्तीर्ण कर संसारबन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। इस आश्रममें रहकर इन्द्रियां तरह तरहके उत्पात मचाने लगती हैं। शास्त्रानुसार आश्रमधर्म प्रतिपालन करनेसे सब प्रकारके पुण्य लाभ होते हैं। जिस दिनसे इस आश्रमधर्मका व्यतिक्रम हुआ है, उसी दिनसे आर्य जातिकी प्रकृत अवनति आरम्भ हुई है। ब्रह्मचर्याश्रममें जो शिक्षा प्राप्त होती है, द्वितीयाश्रममें उसके कार्यक्षेत्रमें जो सम्यक्रूपसे उत्तीर्ण हो सकते हैं, वे ही प्रकृत मनुष्य हैं।

शास्त्र और व्यवस्थामें अविचलित भक्ति रख कर उसका अनुष्ठान करनेसे ही आश्रमधर्मका प्रतिपालन हो सकता है।

द्वितीयिन् (सं० त्रि०) द्वितीयो भागो भाग्यत्वेनास्त्यस्य इनि। अर्द्धभागभाग्य।

द्वित्र (सं० त्रि०) द्वौ वा त्रयो वा विकल्पार्थे डच्। (बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्। पा ५।४।७३) निपातनात् अच्समासान्तोऽयं। दो या तीन।

द्वित्व (सं० क्ली०) द्वयोर्भावः। १ दोका भाव। २ दोहरे होनेका भाव।

द्विदण्डि (सं० अव्य०) द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे इच् समासान्तः। दण्डद्वययुक्त प्रहरण, मिले हुए दो डंडों का प्रहार।

द्विदण्ड्यादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणविशेष। पदस्थानका बोध होनेसे अव्ययीभाव समासमें द्विदण्ड आदि कर इच् समासान्त होता है। द्विदण्डि द्विमुसलि, उभाञ्जलि उभयाञ्जलि, उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति, उभाकर्णि, उभयाकर्णि, उभापाणि उभयापाणि, उभाबाहु, उभयाबाहु एकपदि, प्रोष्ठपदि, आढ्यपदि सपदि, निकुच्यकर्णि, संहतपुच्छि और अन्तेवासि ये सब द्विदण्ड्यादि गण हैं।

द्विदत् (सं० त्रि०) द्वौ दन्तौ यस्य, दन्तशब्दस्य दतृ आदेशः (वयसि दन्तस्य दतृ। पा ५।४।१४१) दन्तद्वय युक्त वत्सादि, वह बछड़ा जिसके केवल दो दांत निकले हों।

द्विदल (सं० त्रि०) द्वे दले यस्य। १ द्विभागयुक्त, जिसमें दो दल या पिंड हों। २ द्विपत्रयुक्त कमल, जिसमें दो पत्ते हों। ३ जिसमें दो पटल या पखड़ियां हों। (पु०) ४ वह अन्न जिसमें दो दल हों, दाल।

द्विदश (सं० त्रि०) द्वाधिका द्विसहिता वा दशसंख्या येषां डच् समासान्तः। द्विसहित दश संख्यायुक्त, जो संख्यामें दशसे दो अधिक हो, बारह।

द्विदाम्नी (सं० स्त्री०) द्वे दाम्नी बन्धनसाधने यस्याः ततो ङीप्। रस्सीद्वययुक्ता गाभी, वह गाय जो दो रस्सियोंसे बंधी हो। इस तरहकी गाय नटखट होती है।

द्विदिन (सं० पु०) द्वाभ्यां दिवा दिनाभ्यां निर्वृत्तादि तद्धितार्थे द्विगुः। द्विदिन साध्य द्विरात्र यागभेद, वह यज्ञ जो दो दिनोंमें समाप्त होता हो।

द्विदैवत (सं० त्रि०) द्वे दैवते यस्य। १ द्विदेवताक चरु-प्रभृति, दो देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला चरु आदि। २ जिसके दो देवता हों। (पु०) ३ इन्द्राग्नी देवताक विशाखानक्षत्र।

द्विदेह (सं० पु०) द्वाभ्यां देहोऽस्येति, गजाननत्वादेवास्य तथात्वं। गणेश। इनका सिर एक बार कट गया था फिर हाथीका सिर जोड़ा गया था। इसीसे द्विदेहके गणेश समझा जाता है।

द्विद्वादश (सं० पु०) १ द्वितीय द्वादशक। वर और कन्याकी द्वितीय और द्वादश राशिभेद।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि यदि वरके जन्मलग्नसे कन्याका जन्मलग्न दूसरे पड़े और कन्याके जन्मलग्नसे वरका जन्मलग्न बारहवें पड़े, तो वह अत्यन्त निन्दनीय है। इस द्वादशराशिमें यदि विवाह हो तो वह बहुत अशुभ होता है। (स्त्री०) २ द्वितीय और द्वादश, दूसरा धनस्थान और बारहवां व्ययस्थान।

द्विधा (सं० अव्य०) द्वि प्रकारे धाच्। १ द्वि प्रकार, दो तरहसे। २ दो खण्डोंमें, दो टुकड़ोंमें।

द्विधागति (सं॰ पु॰) द्विधा द्विप्रकारा गतिर्यस्य। १ कुम्भीर, घड़ियाल। २ शिशुमार। (त्रि॰) ३ द्विप्रकार गतियुक्त, जिसकी चाल दो प्रकारकी हो।

द्विधातु (सं॰ पु॰) द्वे धातु यस्य देवगजदेहवत्त्वादेवास्य तथात्वं। १ गणेश। द्विधातु ताम्रादि धातुद्वये यत्र। (क्लो॰) २ धातुद्वय, दो धातुओंके मेलसे बनी हुई मिश्रित धातु। (त्रि॰) ३ जो दो धातुओंके संयोगसे बना हो।

द्विधात्मक (सं॰ पु॰) द्विधा आत्मा यस्य कप्। जातिकोष, जायफल।

द्विधालेख्य (सं॰ पु॰) द्विधा लिख्यते यत्र लिख आधारे ण्यत्। १ हिन्ताल वृक्ष, एक प्रकारका पेड़। (त्रि॰) २ द्विप्रकार लेखनीय, जो दो तरहसे लिखा जा सके।

द्विनग्नक (सं॰ पु॰) द्विः द्वितीयो नग्नक इव। दुश्चर्मा, वह पुरुष जिसको लिङ्गेन्द्रियके मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा जन्मकालसे हो न हो।

द्विनवति (सं॰ स्त्री॰) द्वाधिका नवतिः। १ दो अधिक नवति संख्या, वह संख्या जो नव्वेसे दो अधिक हो, बानवेकी संख्या, ८२। (त्रि॰) २ तत्संख्यायुक्त, जिसमें बानवेकी संख्या हो।

द्विनिष्क (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं तद्धितार्थे द्विगुः। १ दो निष्क द्वारा क्रीत, जो दो निष्कमें खरीदा गया हो। द्वौ निष्कौ परिमाणमस्य अण्, तस्य लुक्। २ तत् परिमाणयुक्त, दो निष्क तौलका।

द्विप (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्वाभ्यां शुण्डमुखाभ्यां पिबति पा-क। १ हस्ती, हाथी। यह शूंड़ और मुंह दोनोंसे पानी पीता है, इसीसे इसका नाम द्विप पड़ा। (पु॰) २ नागकेशर।

द्विपक्ष (सं॰ पु॰ स्त्री॰) द्वौ पक्षौ यस्य। १ पक्षिमात्र, चिड़िया। (पु॰) २ एक मास, दो पक्षमें एक महीना होता है, इसीसे द्विपक्षका अर्थ एक मास रखा गया है। (त्रि॰) ३ जिसके दो पर हों। ४ जिसमें दो पक्ष हों।

द्विपञ्चमूल (सं॰ क्लो॰) द्विधा पंचमूलो। दशमूल। दशमूल देखो।

द्विपञ्चाशत् (सं॰ स्त्री॰) द्वाधिका पञ्चाशत्। १ दो अधिक पञ्चाशत, वह संख्या जो पचाससे दो अधिक हो, बावनकी संख्या। (त्रि॰) २ तत् संख्यान्वित, बावन।

द्विपञ्चाशत्तम (सं॰ त्रि॰) द्वि पञ्चाश, पूरणे तमप्। दो अधिक पञ्चाशत् संख्याका पूरण, बावनवां।

द्विपण्य (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां पणाभ्यां क्रीतं ततो यत्। दो पण द्वारा क्रीत, जो दो पणमें खरीदा गया हो।

द्विपत्रक (सं॰ पु॰) द्वे पत्रे यस्य। संज्ञायां कन्। १ चण्डालकन्द। २ द्विदल कमल।

द्विपथ (सं॰ क्लो॰) द्वयोः पथोः समाहारः। ततो समासान्त (ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे। पा ५।४।७४) १ पथद्वय, दो राह, वह स्थान जहां दो पथ आ कर मिलते हों। इसका पर्याय—चारुपथ है। द्वौ पन्थानौ यत्र। (त्रि॰) २ मार्गद्वययुक्त देशादि।

द्विपद (सं॰ पु॰) द्वे पदे यस्य। १ मनुष्य। २ पक्षी। ३ द्विपद घटित समास, जहां दोनों पदमें समास हो, उसे द्विपद कहते हैं। ४ ज्योतिषके अनुसार मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनु लग्नका पूर्व भाग। (क्लो॰) द्वयो पदयोः समाहारः। ५ पदद्वय, दो पैर। ६ वास्तु मण्डलस्थ कोष्ठभेद, वास्तु मण्डलका एक कोठा।

द्विपदा (सं॰ स्त्री॰) द्वौ पादौ यस्य, टाप् पादस्य पद्भावः। द्विपादयुक्ता ऋक्, वह ऋचा जिसमें केवल दो पाद हों।

द्विपदिका (सं॰ स्त्री॰) द्वा पादौ दण्डौ यत्र वुन्। १ वह जिसके दो पांव हों। द्विपदी-स्वार्थे कन् ह्रस्व। २ गीतिभेद, शुद्धरागका एक भेद।

द्विपदी (सं॰ स्त्री॰) द्वौ पादौ यस्याः पादः अन्त्यलोपे कुम्भपद्यादित्वात् ङीप्, ततो पद्भावः। १ ऋक् भिन्न द्विपदयुक्त गीतिभेद, दो पदोंका गीत। २ मात्रावृत्तभेद, वह छन्द जिसमें दो पद हों। ३ एक प्रकारका चित्रकाव्य। इसमें किसी दोहे आदिको कोष्टोंको तीन पंक्तियोंमें इस प्रकार लिखते हैं—दोहेके पहले चरणका आदि अक्षर पहले कोठेमें, पुनः एक एक अक्षरके बाद पहली पंक्तिके कोठोंमें भरते हैं। इसके बाद छूटे हुए अक्षर दूसरी पंक्तिके कोठोंमें एक एक करके रख दिये जाते हैं। इसी तरह तीसरी पंक्तिके कोठोंमें दोहेके दूसरे चरणके अक्षर एक एक अक्षर छोड़ते हुए रखते हैं। इन्हीं तीन कोष्ठ पंक्तियोंसे पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़नेका क्रम यह होना चाहिये कि पहले कोठेके अक्षरको पढ़कर उसके नीचेवाले कोठेके अक्षरको पढ़े।

द्विमीढ़ (सं० पु०) हस्तिनापुरकारक हस्तिनृपसुतभेद. हरिवंशके अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्तिका एक पुत्र। ये अजमीढ़के भाई थे।

द्विमुख (सं० पु० स्त्री०) द्वे मुखे यस्य। १ मुखद्वययुक्त राजसर्प, दो मुँहवाला सांप, मूँगी। (त्रि०) २ मुखद्वययुक्त, जिसके दो मुँह हो। स्त्रियां स्वाङ्गत्वात् न ङीप्। (पु०) ३ कृत्रिम रोगभेद, एक प्रकारका बनावटी रोग। द्वि एवस्याः स्ववत्समुखे यस्याः ङीप्। ४ धेनु, गाय। गाय जब अर्धप्रसूतावस्थामें रहती है, तब बच्चेका मुँह लगा कर उसके दो मुँह हो जाते हैं, इसीसे गायका नाम द्विमुखा पड़ा। काशीखण्डमें लिखा है, कि इस तरहकी अर्धप्रसूता गाय जो दान करता है, उसे कपिलादानके समान फल होता है। यह दान अत्यन्त पुण्यजनक है। स्त्रियां टाप्। ५ द्विमुख जलौका, वह जोंक जिसके दो मुँह हों।

द्विमुखाहि (सं० पु०) द्विमुखं अहिः सर्पः। सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप। इसका पर्याय—अहीवलि, राजाहि, राजसर्प, द्विमुख और सर्पभुक् है।

द्विमुनि (सं० अव्य०) द्वौ मुनी पाणिनिकात्यायनौ संख्या 'संख्यावंशेन' इति सूत्रेण अव्ययीभावः। तुल्यविद्यायुक्त मुनिद्वय, समान विद्यावाले दो मुनि।

द्विमुषली (सं० अव्य०) द्वे मुषले यत्र प्रहरणे अव्ययीभाव इच् समासान्तः। मुषलद्वययुक्त प्रहरण, दो मुसलोंका प्रहार।

द्विमूर्द्ध (सं० त्रि०) द्वौ मूर्द्धानौ यस्य यच् समासान्तः। शीर्षद्वययुक्त, जिसके दो सिर हों।

द्वियजुष (सं० स्त्री०) द्वे यजुषी उपधाने यस्याः। १ इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञोंमें यज्ञकुण्ड-मण्डप आदिके बनानेमें काम आती थी। द्वे यजुषी इव शरीरे यस्य। (पु०) २ यजमान।

द्वियमुन (सं० अव्य०) द्वयोर्यमुनयोः समाहारः। दो यमुनाका समाहार, दो यमुनाका मेल।

द्विर (सं० पु०) द्वौ रौ रेफौ वाचकशब्दे यस्य। मधुकर, भ्रमर, भौंरा।

द्विरद (सं० पु०) द्वौ रदौ दन्तौ प्रधानतया यस्य। १ हस्ती, हाथी। २ दुर्योधनका एक भाई। (त्रि०) ३ दो दन्तयुक्त, दो दांतवाला।

द्विरदान्तक (सं० पु० स्त्री०) द्विरदानां हस्तिनां अन्तकः। सिंह, शेर।

द्विरदाराति (सं० पु०) द्विरदस्य अरातिः ६-तत्। १ शरभ, एक प्रकारका जन्तु जिसके आठ पैर होते हैं। २ सिंह।

द्विरदाशन (सं० पु० स्त्री०) द्विरदं अश्नाति अश भोजने ल्यु। १ सिंह। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

द्विरभ्यस्त (सं० त्रि०) द्विवारं अभ्यस्तः। द्विगुणित, दूना, दुगना।

द्विरशन (सं० क्ली०) द्विवारं अशनं। दो बार भोजन।

द्विरसन (सं० पु० स्त्री०) द्वे रसने जिह्वे यस्य। द्विजिह्व, सर्प, सांप।

द्विरागमन (सं० क्ली०) द्विर्द्विवारं आगमनं। विवाहके बाद स्त्रियोंका पिताके घरसे स्वामीके घरमें दूसरा बार आना। द्विरागमनका विषय सत्कृत्यमुक्तावलीमें इस प्रकार लिखा है—

विवाह होनेके बाद पिताके घरसे उस वधूका स्वामीके घरमें दूसरा बार आनेका नाम द्विरागमन है।

द्विरागमनके समय वर्षादि और विशुद्ध काल आदिका विचार करना होता है। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि यदि विवाह-मासमें वधू पिताके घरसे स्वामीके घरमें न गई हो, तो पहले युग्म वर्षादिका विषय देखना चाहिये। यदि ऐसा न हुआ हो, तो देखनेका प्रयोजन नहीं पड़ता, अर्थात् विवाह-मासमें यदि द्विरागमन हो गया हो, तो उक्त विषयका विचार नहीं करना चाहिये। आठवें वर्षमें कन्याका द्विरागमन हो, तो सासकी मृत्यु, दशवें वर्षमें ससुरकी मृत्यु और बारहवें वर्षमें स्वामीकी मृत्यु होती है। इसी कारण आठवां, दशवां और बारहवां वर्ष द्विरागमनके लिये अशुभ माना गया है। विवाहिता स्त्री पिताके घरमें भोजन करके यदि उसी दिन स्वामीके घरमें भी भोजन करे, तो उसका दुर्भाग्य होता है और कुल नायिकागण उसे शाप देती हैं।

द्विरागमनका विहित तिथिनक्षत्रादि—पुष्या, हस्ता, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रेवती, मृगशिरा और रोहिणी नक्षत्र; वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमास, वृहस्पति, शुक्र,

सोम और बुधवार तथा चन्द्र और तारा विशुद्ध होने पर कन्या, मिथुन, मीन तुला और मकर लग्नमें द्विरागमन प्रशस्त है। पञ्चाङ्गमें द्विरागमन नहीं करना चाहिये। उस मासमें यदि मलमास पड़े तो भी द्विरागमन निषिद्ध है। किसी किसीके मतसे बुधवारमें द्विरागमन प्रशस्त नहीं है। (रत्नमुक्तावली)

मुहूर्तदीपिकामें इस प्रकार लिखा है—

विवाहके बाद पिताके घरसे वधू को स्वामीके घरमें दूसरी बार आती है उसीको द्विरागमन कहते हैं। जीवके रवि शुद्धि होने पर अग्रहायण फाल्गुन और वैशाख इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेके शुक्लपक्षमें प्रति पौषम शुक्र और संक्रान्तिका दिन छोड़ कर यात्रा-प्रकरणोक्त एवं गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें वधू का आगमन अत्यन्त प्रशस्त है। एक ग्राममें एक घरसे अर्थात् एक घरसे दूसरे घर जानेमें प्रतिशुक्रके लिए दोष नहीं लगता। यात्रा-प्रकरणोक्त शुभ दिनमें क्षिप्रादिसे यात्रा और गृह-प्रवेशोक्त शुभदिनमें स्वामीगृहमें प्रवेश प्रशस्त है।

ज्योतिःशास्त्र ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

विवाहके बाद दूसरी बार स्वामीके गृहमें आगमन करनेका नाम द्विरागमन है। यह यदि विवाहमासमें न हुआ हो, तो शुक्रअस्तादिका विचार करना पड़ता है। अयुग्मवर्षमें वैशाख अग्रहायण और फाल्गुनमासमें, रवि, गुरु और चन्द्रशुद्धिके शुक्लपक्षमें; कन्या, मिथुन, तुला मीन वा वृषलग्नमें शुभग्रहयुक्त वा उससे देखे जानेसे; सोम, बुध, वृहस्पति और शुक्रवारमें; नक्षत्रमें, मृगा, पुष्या, अश्विनी, हस्ता, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणा, धनिष्ठा शतभिषा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्र पद रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवतीनक्षत्र को यात्राकथित तिथिमें द्विरागमन प्रशस्त है। किन्तु अस्तगत और मध्य अन्य शुक्र होने पर कभी नहीं होता। पांचवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे आपदा, दशवें वर्षमें सहदरको और बारहवें वर्षमें पतिकी मृत्यु होती है। एक ग्राममें अथवा एक घरमें अथवा दुर्भिक्ष वा राष्ट्र-विप्लवादिके समय कामाके साथ आनेसे अस्त व शुक्रादि का दोष नहीं लगता है। पहले स्वामीके घरमें आनेके समय या पिताके घरमें भोजन नहीं करके यदि स्वामी के घरमें आ कर भोजन करे, तो उसका दुर्भाग्य होता है। (ज्योतिःशास्त्र)

ये सब नियम बारह वर्ष तक लागू हैं। बारह वर्ष बीत जाने पर यात्रोक्त शुभ दिन देख कर द्विरागमन किया जा सकता है।

द्विरात्र (स० त्रि०) द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तः तद्धितार्थे-द्विगौ ठञ् तस्य लुक्, अच् समासान्तः। १ रात्रिद्वय-साध्य यागभेद, दो रातमें होनेवाला एक यज्ञ। (क्ली०) द्वयोरात्र्योः समाहारः। २ अहोरात्र, दो रात।

द्विरात्रीण (स० त्रि०) द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तादि ख, तस्य न लुक्। रात्रिद्वय साध्य, दो रातमें होनेवाला।

द्विराप (स० पु०) द्विः द्विवार मुखशुण्डाभ्यां अप्सम् पिबति पा क। हस्ती, हाथी। यह पहले सूंड़से पो कर पीछे मुखसे पोता है, इसीसे इसका नाम द्विराप पड़ा।

द्विराषाढ़ (स० पु०) द्वि आषाढ़। मिथुनस्थित रविसे लेकर शुक्ल प्रतिपदादि अमावस्यान्त मासद्वय मिथुनके सूर्यसे लेकर शुक्ल प्रतिपदादि अमावस्याके अन्त तक दो महीने। आषाढ़ मासमें मलमास होनेसे ऐसा होता है।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि जब सूर्य मिथुन राशिमें हो और उस महीनेमें दो अमावस्या हों, तो उसे द्विराषाढ़ कहते हैं। बाद श्रावण मासमें विष्णुका शयन होता है। २ मालवाके मासभेद, भविष्यपुराणके अनुसार एक प्रकारका महीना।

द्विरुक्त (स० त्रि०) द्विः द्विवार यथा तथा उक्त। दो बार कथित जो दो बार कहा गया हो।

द्विरुक्ति (स० स्त्री०) वच क्तिन् द्विः द्विवार उक्ति। दो बार कथन।

द्विरूढ़ा (स० स्त्री०) ऊढ़ अते इति वह कर्मणि क्त। द्विः ऊढ़ा विवाहिता वह स्त्री जिसका एक बार एक पतिसे और दूसरी बार दूसरे पतिसे विवाह हुआ हो। इसका पर्याय—दिधिषु और पुनर्भू है।

द्विरेतस (स० पु०) द्वे रेतसी कारणे यस्य। अश्वतर, दो भिन्न भिन्न पशुओंसे उत्पन्न पशु, जैसे गदहे और घोड़ेसे उत्पन्न खच्चर। २ गाय और भैंससे उत्पन्न पशु। ३ दोगला।

द्विरेफ (सं० पु० स्त्री०) द्वौ रेफौ रकारवर्णौ यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। २ वर्ब्बर, एक प्रकारकी मक्खी।

द्विरेफगणसम्मता (सं० स्त्री०) पुष्पवृक्षभेद, एक प्रकारका फूलका पेड़।

द्विर्वचन (सं० क्ली०) द्विर्द्विवारं उच्यते वच-कर्म्मणि ल्युट्। १ द्विरुक्ति, दो बार कथन।

द्विलक्षण (सं० त्रि०) द्वे लक्षणे प्रकारौ यस्य। प्रकारद्वय युक्त, दो तरहका।

द्विवक्त्र (सं० पु०) द्वे वक्त्रे यस्य। १ मुखद्वययुक्त राजसर्प, एक प्रकारका सांप जिसके दो मुंह होते हैं। २ दानवभेद, एक असुरका नाम।

द्विवचन (सं० क्ली०) द्वौ द्वित्वमुच्यते अनेन वच करणे ल्युट्। द्वित्वबोधक 'औ', 'भ्या' प्रभृति विभक्ति। विभक्ति देखो।

द्विदशक (सं० पु०) द्विगुणितः दशः संज्ञाया कन्। षोड़शकोण गृहभेद, वह घर जिसमें सोलह कोण हों।

द्विवर्ष (सं० त्रि०) द्वे वर्षे वयोमानं यस्य ठक् तस्य लुक्। १ द्विवर्षवयस्क गवादि, दो वर्षका बछड़ा। द्वे वर्षे अधीष्टो भूतो भृतो भावी वा ठञ्, तस्य नित्यं लुक्। २ जो दो वर्ष तक सत्कारके लिये नियुक्त हो। ३ कर्म्मकर, काम करनेवाला। ४ स्वसत्ता द्वारा व्याप्त, जो अपने बल या प्रभावसे फैला हुआ हो। स्वार्थे क। (पु०) ५ द्विवर्षवयस्क, वह जिसकी उमर दो वर्षकी हो।

द्विवार्त्ताकी (सं० स्त्री०) बृहतीद्वय, छोटी और बड़ी कण्टकारी, भटकटैया।

द्विवाहिका (सं० स्त्री०) द्विप्रकारं वाहयति वाहि ण्वुल्। दोला, हिंडोला, भूला।

द्विविंशतिकीन (सं० क्ली०) द्वाविंशति कम इति तत् परिमाणमस्य वा ख। तत्संख्या परिमित, वह जो चालीसके बराबर हो।

द्विविद (सं० पु०) १ एक बन्दर। नरकासुरके साथ इसकी गाढ़ी मित्रता थी। यह बलदेवके हाथ मारा गया। २ श्रीरामचन्द्रके सहगामी वानरोंका अन्यतम। रामायणके अनुसार एक बन्दर जो रामचन्द्रकी सेनाका एक सेनापति था। इस बन्दरका नाम कीर्त्तन करनेसे ऐकाहिक ज्वर जाता रहता है।

द्विविध (सं० त्रि०) द्वि विधे यस्य। दो प्रकार, दो तरहका।

द्विविन्दु (सं० पु०) द्वौ विन्दु लेखनाकारे यस्य। विसग वर्णभेद, विसर्ग।

द्विविषम् (सं० क्ली०) पारद कृष्णातिविषा, सफेद और काली अतीस।

द्विविस्त (सं० त्रि०) द्वे अविस्ते इति परिमाणमस्य वा ठक् तस्य वा लुक्। विस्त द्वयार्ह, दो बिलस्तका।

द्विवृन्त (सं० पु०) नखरञ्जक वृक्ष, मेंहदीका पेड़।

द्विवृहती (सं० स्त्री०) कण्टकारिकाबृहती। भटकटैया और विहती।

द्विवेद (सं० त्रि०) द्वौ वेदौ अधीते वेद ब्राह्मणकात् अण् तस्य लुक्। द्विवेदाध्यायी, दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी (सं० पु०) ब्राह्मणोंकी एक जाति, दूबे। यह ब्राह्मण जातिकी एक उपाधि है। पूर्वकालमें आज तक ब्राह्मणोंका मुख्य कर्त्तव्य वेदका पढ़ना तथा पढ़ाना चला आया है। इसी तरह पहले सभी ब्राह्मण वेद पढ़ते थे। पूर्व समयमें ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदोंके पढ़े हुए ही ब्राह्मण कहाते थे। उक्त चार वेदोंको चारम हिता भी कहते हैं तथा इनके जाननेवालेको ही ऋषिगण ब्राह्मण मानते थे। परन्तु समयके हेर फेरसे जब ब्राह्मण जातिमें वेदका अभाव होने लगा, तब ऋषियोंने ब्राह्मणोंका उपाधि उनके योग्यतानुसार बांधी, जैसे, चारों वेदके जाननेवाले चतुर्वेदी, दो वेदोंके जाननेवाले द्विवेदी इत्यादि। अमुक वंश यदि चारों वेदोंको नहीं पढ़ सकता है, तो तीन वेदोंको अवश्य ही पढ़े, ऐसा नियम जिस ब्रह्मकुलमें नियत किया गया वह कुल त्रिवेदी कहाया जो आजकल बिगड़ कर भाषामें तिवाड़ी हो गया है। इसी तरह जिस ब्रह्मकुलमें केवल दो वेद पढ़ सकनेकी योग्यता थी उन्हें द्विवेदी पद प्रदान किया गया, जो आजकल दूबे भी कहाता है। ये पदवियां प्रायः कानकुब्ज ब्राह्मणोंमें ही विशेषरूपसे पायी जाती हैं।

द्विवेशरा (सं० स्त्री०) द्वौ वेशौ गमनावस्थानरूपौ राति ददातीति रा दाने क। लघुरथ, दो पहियोंकी छोटी गाड़ी। इसका पर्याय गन्त्री और लम्बी है।

द्विव्रण (सं० पु०) द्विविधो व्रणः कर्मधा०। सुश्रुतोक्त शारीर और आगन्तुक द्विविध व्रण शारीर और आगन्तुक नामके दो प्रकारके घाव। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

व्रण दो प्रकारका है शारीर और आगन्तुक। जो घाव वायु, रक्त, पित्त और कफसे फोड़े आदिके रूपमें होता है, उसे शारीरव्रण और जो किसी मनुष्य, पशु पक्षी हिंस्र जन्तुके दाँतसे अथवा पतन, पीड़न प्रहार अग्नि, क्षार विष तीक्ष्ण औषध सेवन करनेसे अथवा काष्ठ, चर्म, पत्थर, अस्थि आदि शस्त्रादिके आघातसे हो, उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं। ये दोनों प्रकारके व्रण एकसे होते हैं। भिन्न-भिन्न कारणोंसे इनकी उत्पत्ति होनेसे इसे द्विव्रणीय कहते हैं। विशेषता यह है, कि सभी प्रकारके आगन्तुक व्रणमें शरीरसे जो शोणित निकला करता है उसे रोकनेके लिये पित्तके प्रतिकारको नाईं शीतल क्रियाको आवश्यकता है और उसे जोड़नेके लिये मधु और घृतका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। द्विव्रण अर्थात् दो प्रकारके व्रणोंका भेद करनेका यही कारण है। पीछे दोनों प्रकारके व्रणके दोषके अनुसार शारीरिक व्रणकी नाईं प्रतिकार करना होता है। दोषका उपद्रव कमसे कम पन्द्रह प्रकारका है। कोई कहते हैं, कि व्रणकी दुष्टावस्था में चार सब दोष सोलह प्रकारका है। व्रण शब्द देखो।

व्रणका लक्षण दो प्रकारका है, सामान्य और विशेष। शरीरके विदीर्ण होनेसे उसका होना सामान्य लक्षण और इसमें वातपित्तादिका लक्षण प्रकाश होना विशेष लक्षण है। वायुसे जो व्रण निकलता है वह छोटा, सोम होन, अरुण वर्णविशिष्ट और रूक्ष होता है तथा उससे वह धड़ मन्द करता है वेदना भी बहुत होती है और शीतल तथा स्निग्ध पीप निकलती है।

पित्तसे उत्पन्न व्रण—यह घाव पीला होता तथा उसके चारों तरफ पीली पीली फुन्सी निकल आती है। यह घाव बहुत जल्द बढ़ जाता है और इससे लाल रंगका उष्ण रस हमेशा निकला करता है। कफसे जो घाव निकलता है उसमें बहुत खुजली होती है रंग पाण्डु वर्ण होता है, वेदना कम होती है और उससे सफेद, शीतल तथा गाढ़ी पीप निकलती है।

रक्तसे उत्पन्न व्रणका रंग मूंगेका होता है, इससे वेदना अधिक होती है, गन्ध आमिषको आती है और शोणितस्राव होता है। वायुपित्तजन्य व्रण तोद, दाह और धूम उद्गारविशिष्ट, पीत और अरुण वर्ण तथा पीत वर्णका आस्रावयुक्त होता है।

वातश्लेष्मजन्य व्रण—कण्डूयन और तोदविशिष्ट तथा कठिन होता है। इससे हमेशा पाण्डु वर्णका आस्राव निकलता रहता है।

पित्तश्लेष्मजन्य व्रण—भार, दाह और कण्डूतायुक्त तथा पीतवर्ण होता है। इससे जो पीप निकलती है, उसका रंग कुछ लाली लिये पीला होता है।

वातरक्तजन्य व्रण—रूक्ष तथा, अतिशय तोदविशिष्ट, अल्पदाहित और रक्तवर्ण होता तथा उससे रक्त वर्णका आस्राव निकलता है।

पित्तरक्तजन्य व्रण—घृतमण्डके जैसा वर्ण और मत्स्य धौत जलको तरह गन्धविशिष्ट, कोमल और प्रसारण होता है और उससे उष्णजल की पीप निकलती है।

वातपित्त शोणितजन्य व्रण—स्फुरण, तोद दाह और धूमोद्गमविशिष्ट पीतवर्ण, शुद्ध और रक्तस्रावी होता है।

जिस व्रणका रंग जिह्वा तलके जैसा हो, मृदु, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, वेदना और आस्रावशून्य तथा सुव्यवस्थित हो वह शुद्धव्रण समझा जाता है।

वातपित्त श्लेष्मजन्य व्रण वातपित्तश्लेष्मासे उत्पन्न वेदनाविशिष्ट होता तथा उससे तीन वर्णके आस्राव निकलते हैं।

द्विव्रण रोगका उपद्रव दो प्रकारका है, एक रोगका और दूसरे रोगीका। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच व्रणके उपद्रव हैं तथा ज्वर, अतिसार, मूर्च्छा, हिक्का, वमन, अरुचि, श्वास अजीर्ण और तृष्णा ये सब रोगीके उपद्रव हैं। विशेष विवरण व्रणमें देखो।

द्विशत (सं० क्लो०) द्विगुणं शतं। १ शतद्वय, दो सौ। २ तत् संख्याका पूरण, दो सौ संख्याका पूरण।

द्विशतक (सं० त्रि०) द्विशतेन क्रीतं कन्। द्विशत द्वारा क्रीत जो दो सौमें खरीदा गया हो।

द्विशततम (सं० त्रि०) द्विशत पूरणे-तमप्। दो सौ संख्याका पूरण।

द्विशतिका (सं॰ स्त्री॰) द्वे द्वे शते ददाति वुन्। दो बार दो सौ दान।

द्विशती (सं॰ स्त्री॰) द्वयो शतयो: समाहार: ङीप्। शतद्वय समाहार, दो सौका समूह।

द्विशत्य (सं॰ वि॰) द्विशतेन क्रीतं ततो यत्। द्विशत द्वारा क्रीत, जो दो सौमें खरीदा गया हो।

द्विशफ (सं॰ पु॰) द्वौ शफौ यस्य। द्विखुर पशु, वह पशु जिनके खुर फटे हों, दो खुरवाला पशु।

गाय, बकरा, भैंस, काला सूअर, ऊंट, भेंडा और हिरन ये सब दो खुरवाले पशु हैं।

द्विशरीर (सं॰ पु॰) द्वे-चरस्थिरात्मके शरीरे अवयवे यस्य। चरस्थिरात्मक मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि। ज्योतिषके अनुसार कन्या मिथुन, धनु और मीन राशियाँ जिनका प्रथमार्द्ध स्थिर और द्वितीयार्द्ध चर माना जाता है।

द्विशस् (सं॰ अव्य॰) द्वौ द्वौ ददाति करोति वा शस्। १ एक क्रिया द्वारा दोकी व्याप्ति। २ दो और दो।

द्विशाण (सं॰ वि॰) द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं ठञ् तस्य लुक्। शाणद्वय क्रीत, जो दो शाणमें खरीदा गया हो।

द्विशाण्य (सं॰ वि॰) द्विशाण-यत्। शाणद्वय क्रीत, जो दो शाणमें खरीदा गया हो।

द्विशाल (सं॰ वि॰) दो शालायुक्त, जिसमें दो कोठरियाँ हों।

द्विशीर्ष (सं॰ पु॰) द्वे शीर्षे यस्य। १ अग्नि, आग। (वि॰) २ जिसके दो सिर हों।

द्विशूर्प (सं॰ वि॰) द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं ठञ् तस्य लुक्। १ द्विशूर्प द्वारा क्रीत, जो दो शूर्पमें खरीदा गया हो। (क्ली॰) द्वयो: शूर्पयोः समाहारः द्वि शूर्पी, तया क्रीतं ठञ् तस्य न लुक् उत्तरपदवृद्धिः। २ द्विशौर्पिक, वह जो दो शूर्पमें खरीदा गया हो।

द्विशृङ्गिका (सं॰ स्त्री॰) द्वे शृङ्गे इव फले यस्याः कप् अत इत्वं। मेढ़्रशृङ्गी, मेढ़ासिंगी लता।

द्विशृङ्गिन् (सं॰ वि॰) द्विशृङ्ग-इनि। दो शृङ्गयुक्त, जिसके दो सींग हों।

द्विष (सं॰ पु॰) द्वेष्टीति द्विष-क्विप्। १ शत्रु, दुश्मन। (वि॰) २ द्वेष्टा, द्वेष करनेवाला, विरोधी।

द्विष (सं॰ त्रि॰) द्विष् कर्त्तरि क। द्वेषकारक, शत्रु, दुश्मन।

द्विषत् (सं॰ वि॰) द्वेष्टीति द्विष-शतृ। द्विषोऽमित्रे। पा ३।२।१३१) शत्रु, दुश्मन।

द्विषन्तप (सं॰ वि॰) द्विषन्तं तापयति तप-णिच् (द्विषत् परयोस्तापे। पा ३।२।३९) इति खच्। (खचि ह्रस्व। पा ६।४।९४) ततो मुम् (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) शत्रुन्तप, शत्रुओंको पीड़ा पहुंचानेवाला।

द्विषट् (सं॰ वि॰) द्विगुणितो षट्। द्वादश, बारह।

द्विषष्टिक (सं॰ वि॰) द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा ठञ्, उत्तरपदवृद्धिः। जो बासठ दिनमें हुआ हो।

द्विषा (सं॰ स्त्री॰) एला, इलायची।

द्विषेण्य (सं॰ वि॰) द्विष-एण्यन् किच्च। द्वेषशील, द्वेष या ईर्षा करना हो जिसका स्वभाव हो।

द्विष्ट (सं॰ वि॰) द्विष-क्त। १ द्वेषविषय, जिससे द्वेष हो। द्वयष्ट पृषोदरादित्वात् साधु। (क्ली॰) २ ताम्र, तांबा।

द्विष्ठ (सं॰ वि॰) द्वयोस्तिष्ठति यः द्वि-स्था-क अम्बाम्बेति षत्वं। उभयस्थ, जो दोके बीच अवस्थित हो।

द्विस् (सं॰ अव्य॰) द्वि सुच्। द्विवार क्रियादि, दो बार काम काज।

द्विसप्तत (सं॰ वि॰) द्विसप्तत्यायुत शतादि ड। द्विसप्ततियुत शतादि। बहत्तर, सत्तरसे दो अधिक।

द्विसप्तति (सं॰ स्त्री॰) द्व्यधिका सप्ततिः। संख्या, बहत्तरकी संख्या। (वि॰) २ द्विसप्तति संख्याका पूरण, बहत्तरवां।

द्विसमधा (सं॰ अव्य॰) द्विसम प्रकार: प्रकारार्थे धाच्। द्विसम प्रकार, बहत्तर तरहसे।

द्विसम (सं॰ वि॰) द्वे समे परिमाणमस्य, ठञ् तस्य लुक्। १ द्विवर्ष परिमाण, दो वर्षका।

द्विसहस्र (वि॰) द्वाभ्यां सहस्राभ्यां क्रीतं द्वे सहस्रे परिमाणमस्य वा अण् तस्य वा लुक्। १ द्विसहस्र क्रीत, जो दो हजारमें खरीदा गया हो। २ द्विसहस्र परिमाण, दो हजार। ३ द्विगुणित सहस्र, हजारका दूना।

द्विसहस्राक्ष (सं॰ पु॰) द्विराहृत्तं सहस्रं द्विगुणं द्विगुणसहस्रं अक्षीणि यस्य षच् समासान्तः। अनन्त। इनके

एक प्रकार सुंदर है। इसके मुंहमें दो आंखें होनेसे इस दो प्रकार आंखें हुई, इसीसे इसका नाम द्विमुख साप पड़ा है।

द्विसांवत्सरिक (सं० त्रि०) द्विवत्सर भूतादि ठञ्। जो दो वर्षमें हुआ हो।

द्विसाप्ततिक (सं० त्रि०) द्विसप्तति भूतादि ठञ्, उत्तरपदवृद्धि। जो बहत्तर दिनोंमें हुआ हो।

द्विसाहस्र (सं० त्रि०) द्वाभ्यां सहस्राभ्यां क्रीत वा सहस्रं परिमाणमस्य वा अण् बाहु भवो न लुक्। १ द्विसहस्र, दो हजार। २ दो सहस्र परिमाण।

द्विसीत्य (सं० त्रि०) द्विवार सीतया सहित द्वितीयावत्। (नौवयो धर्मेति। पा ४।४।९१) यत्। दो बार हलकर्षित खेत, वह खेत जो दो बार जोता गया हो।

द्विसुवर्ण (सं० त्रि०) द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीत ठञ् ततो ठञो लुक्। १ दो सुवर्ण द्वारा क्रीत, जो दो मोहरमें खरीदा गया हो। (क्ली०) २ स्वर्णद्वय दो सोना।

द्विस्तना (सं० स्त्री०) द्वौ स्तनाविव अवयवौ यस्याः स्वाङ्गत्वात् न ङीष्। ईंटका प्रतिभेद।

द्विस्तावा (सं० स्त्री०) द्वि द्विगुणिता तावती। वेदीका समावर्त्त जो परिमाण है, उससे द्विगुण परिमाणको वेदीको द्विस्तावा कहते हैं।

द्विःसिद्धान्न (सं० क्ली०) द्विः पक्व अन्न कर्मधा०। द्विःसिद्धान्न उबाले हुए धानका चावल, भुजिया चावल। यह देश विदेशमें विख्यात है, किन्तु ब्राह्मणोंके भक्षण और देवपूजन आदिमें इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है। यति, विधवा और ब्रह्मचारीके लिये यह अभक्ष्य माना गया है। ताम्बूल खाना उन लोगोंके लिये जैसा निषिद्ध है वैसा ही यह भी है।

द्विहन् (सं० पु०) द्वाभ्यां मुखादन्ताभ्यां हन्ति हन-क्विप्। हस्ती, हाथी।

द्विहरिद्रा (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

द्विहल्य (सं० त्रि०) हलन कर्षेयत् द्विवार। दो बार हलकर्षित, वह खेत जो दो बार हलसे जोता गया हो।

द्विहायन (सं० त्रि०) दो हायनो वय यस्य। १ द्विवयस्क पश्वादि, दो वर्षका बछड़ा इत्यादि। द्वाभ्यां हायनाभ्यां समाहारः। समाहारद्विगुः। (क्ली०) २ वयद्वय, दो वय। समाहार द्विगुमें स्त्रीलिङ्गमें ङीप् होना चाहिये था किन्तु 'पात्रादित्व'के लिये विशेष सूत्रके अनुसार ङीप् नहीं हुआ।

द्विहीन (सं० त्रि०) द्वाभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां हीन। क्लीवलिङ्ग शब्द।

द्विहृदया (सं० स्त्री०) द्वे हृदये यस्याः गर्भिणी स्त्री, गर्भवती।

द्वीन्द्रिय (सं० पु०) वह जन्तु जिसके दो ही इन्द्रियां हों।

द्वीन्द्रियग्राह्य (सं० पु०) द्वाभ्यां इन्द्रियाभ्यां ग्राह्य। इन्द्रियद्वय ग्रहणीय गुण, वह पदार्थ जो चमड़े और चक्षु द्वारा ग्रहण करने योग्य हो।

द्वीप—चारों ओर सागर परिवेष्टित भूखण्ड, जलका वह भाग जो चारों ओर जलसे घिरा हो। द्वीप छोटा और बड़ा हो सकता है। बड़े द्वीपोंको महाद्वीप और बहुत से छोटे छोटे द्वीपोंके समूहको द्वीपपुञ्ज वा द्वीपमाला कहते हैं। भूतत्त्ववेत्ता अनुमान करते हैं कि इन छोटे छोटे द्वीपोंमें जिनका आकार प्रायः गोल नहीं है, वे पहले एक वृहत् भूखण्ड थे। पीछे समुद्रके वेगसे विभक्त हो गये हैं अथवा धीरे धीरे एक दूसरेसे भिन्न कर एक बड़े भूखण्डके रूपमें परिणत हो गये हैं। बहुतसे द्वीप प्रायः किसी न किसी महादेश वा उपद्वीपके सम्मुखस्थ हैं, भूगोल जाननेवाले ऐसा अनुमान करते हैं कि ये द्वीप उन सब देशोंके इतने निकट थे कि वे एक दूसरेसे मिले हुए होंगे पड़ते थे। अभी भी उन सब द्वीपोंको अन्तगत देख कर ऐसा बोध होता है कि वे एक समय सुसंलग्न रह कर एक एक महादेशके रूपमें अवस्थित थे। पीछे समुद्रके वेगसे वा किसी दूसरे भूमिकम्प आदि कारणसे विच्छिन्न हो गये हैं।

द्वीप दो प्रकारके होते हैं साधारण और प्रवालज। साधारण द्वीप दो प्रकारसे बनते हैं—एक तो भूगर्भस्थ अग्निसे महीपर्वत समुद्रके नीचेसे उभड़ आते हैं, दूसरे आसपासकी भूमिके कट जानेसे और वहां पानी आ जानेसे बन जाते हैं। प्रवालज द्वीपोंकी सृष्टि मूंगेसे होती है। ये बहुत सूक्ष्म कीड़े हैं। ये एकत्र मिलके आकारके पिंड बना कर समुद्रतलमें एकत्रित रहते हैं। इनमें

क्षुद्र कीड़ोंके शरीरसे सहस्रों वर्ष में जमा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्रके ऊपर निकल आता है, इसीका नाम प्रवालज द्वीप है। इन दोनोंके अलावा एक तीसरे प्रकारका द्वीप भी होता है जिसे सरिद्भव कहते हैं। इस तरहके द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियोंके मुहाने पर जहां वे समुद्रमें गिरती हैं बन जाते हैं।

दक्षिणसागरमें तथा पूर्वसागर और भारतसागरके संगमस्थान पर सबसे बड़े बड़े द्वीप पाये जाते हैं। दक्षिणसागरमें स्वाभाविक कारणसे उत्पन्न द्वीपावलीको छोड़ कर प्रवालकीट अर्थात् मूंगोंके कीड़े द्वारा बनाई हुई द्वीपावलीकी संख्या कम नहीं है। इसके अलावा वहां आग्नेयगिरिसङ्कुल द्वीपावली भी यथेष्ट हैं।

पृथ्वीके चार महादेशोंको अभी तीन वृहत् द्वीप कह सकते हैं। जब स्वेजकी नहर काटी नहीं गई थी, तब एशिया, यूरोप और अफ्रिका इन तीनोंके एक जगह रहनेसे एक बड़ा द्वीप बन गया था, इसके अलावा अमेरिका भी दो खण्ड मिल कर एक बड़ा द्वीप था। अभी स्वेज-नहरके कट जानेसे अफ्रिकाको भी एक स्वतन्त्र वृहत् द्वीप कह सकते हैं। इसके सिवा उत्तरसागरमें ग्रीनलैण्ड, पूर्वसागरमें अष्ट्रेलिया, भारतसागरमें वोर्निंयो, पपुआ, सुमात्रा; दक्षिण महासागरमें मदागास्कर और पश्चिमसागरमें ग्रेटब्रटेन अतिवृहत् द्वीप है। इनमेंसे अष्ट्रेलिया पृथ्वीके अन्यान्य द्वीपोंसे बड़ा है। दक्षिणसागरमें अटलाण्टिक और उत्तरसागरके ग्रीनलैण्डका सर्वांश अब तक भी आविष्कृत नहीं हुआ है। आविष्कृत हो जानेसे क्या हो जायगा कह नहीं सकते। बहुतोंका अनुमान है, कि ये दो भूखण्ड दो मेरुस्पर्शी दो महादेशोंके अंशमात्र हैं। प्रवालद्वीप देखो। अनेक वृहत् नदीके गर्भमें और नदीके मुहाने पर जो सब चर पड़ कर आबादी हो गये हैं, उन्हें भी द्वीप कहते हैं। भारतवर्षमें गङ्गा और ब्रह्मपुत्र तथा अमेरिकाके आमेजन नदीमें इस प्रकारके द्वीपोंकी संख्या अधिक है; भूमिकम्पसे भी बहुतसे द्वीप लुप्त हो जाते हैं और उस समय समुद्रका जल देशमें प्रवेश कर देशांशको विच्छिन्न करके द्वीपके रूपमें परिणत कर देता है। बङ्गालके पूर्वपश्चिम कोणके बङ्गोपसागरका कोई कोई द्वीप इसी तरह उत्पन्न हुआ है।

पौराणिक द्वीपका विषय भागवतमें इस प्रकार लिखा है—

सूर्यदेव सुमेरुपर्वतका प्रदक्षिण करते हैं, इसी कारण पृथ्वीके आधे भाग पर प्रकाश पहुंचता है और आधा भाग अंधेरेमें रहता है। इस पर महाराज प्रियव्रतने अत्यन्त तपःप्रभावसे प्रदीप्त हो कर प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यके रथके समान वेगशाली ज्योतिर्मय रथद्वारा रातको भी दिन बनाऊंगा। इस तरह प्रतिज्ञा कर उन्होंने सात बार द्वितीय सूर्यको नाईं सूर्यके पीछे पीछे परिभ्रमण किया था। इनके रथके पहियेके धसनेसे सात समुद्र उत्पन्न हुए, उन सात समुद्रोंमें सात द्वीप बने, जिनके नाम ये है—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। जम्बूद्वीपका विस्तार जितना है, उससे लाख योजन विस्तृत लवण सागरसे यह परिवेष्टित है। जम्बूद्वीप द्वारा सुमेरुपर्वत घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप भी लाख योजन विस्तीर्ण लवण-सागरसे उसी तरह घिरा है। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीपसे दूना है। इसी द्वीपमें लवणसमुद्र वेष्टित है। यहां बड़ा पाकरका पेड़ है जिसकी ऊंचाई जम्बूद्वीपके जामुनके पेड़की ऊंचाईके समान है। इसी प्लक्ष या पाकरके वृक्षसे प्लक्ष द्वीप नाम हुआ है। वह वृक्ष हिरण्मय है और उसमें सप्तजिह्व अग्नि अवस्थान करती है। प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपति हैं। उन्होंने इस द्वीपको सातवर्षमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंको प्रदान किया था। शिव, यवस, सुभद्र, समन्त, क्षेम, जीमूत और अभय इस सात वर्षोंमें ७ नदी और ७ पर्वत बहुत प्रसिद्ध हैं। सप्तगिरिके नाम मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल है। अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा ये ही सात नदियां प्रसिद्ध हैं। ये सब स्थान बहुत पवित्र माने जाते हैं। यहांके सभी मनुष्य स्वभावतः ही धार्मिक हैं।

शाल्मलिद्वीप इक्षुर सोद सागरसे परिवेष्टित है। यह प्लक्षद्वीपसे भी दूना बड़ा है। यहां प्लक्षवृक्षके समान एक विशाल शाल्मली वृक्ष है। इसी वृक्षके नामानुसार इस द्वीपका नाम शाल्मली द्वीप पड़ा है। इस द्वीपके

अधिपति प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहु हैं। इन्होंने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें उन्होंके नामानुसार सात वर्षोंमें विभाग किया है जिनके नाम सुरोचन सौमनस्य रमणक, देववर्ष, पारिभद्र आप्यायन और अभिज्ञात हैं। इन सात वर्षोंमें सात पर्वत और ७ नदी बहुत प्रसिद्ध हैं। पर्वतोंके नाम—स्वरस, शतशृङ्ग वामदेव, कुन्द कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति तथा नदियोंके नाम अनुमति सिनीवाली सरस्वती, कुहू रजनी, नन्दा और राका हैं। यह स्थान भी पुण्यजनक है। क्षीरोदसागरके बहिर्भागमें कुशद्वीप अवस्थित है। प्रियव्रतके पुत्र राजा हिरण्यरेता इस द्वीपके अधिपति हैं। यह द्वीप उस द्वीपसे द्विगुण है। यहां देवकृत एक कुशस्तम्ब रहनेसे ही इसका नाम कुशद्वीप हुआ है। यह कुशस्तम्ब सर्वदा अग्निकी नाईं दैदीप्यमान है। राजा हिरण्यरेताने भी इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंको प्रदान किया जिनके नाम ये हैं—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्रनाम और देवनाम। इन सात वर्षोंमें ७ सीमापर्वत और सात नदी हैं। सात पर्वतोंके नाम बभ्रु, चतुःशृङ्ग, कपिल चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण हैं तथा रसकुल्या मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला नामकी सात नदियां हैं। इस स्थानमें सभी मनुष्य पण्डित और धार्मिक होते हैं। पांचवां क्रौञ्चद्वीप है जो कुश द्वीपके बहिर्भागमें अवस्थित है। यह द्वीप कुशद्वीपसे दूना बड़ा है और क्षीरोदसमुद्रसे वेष्टित है। यहां क्रौञ्च नामक एक श्रेष्ठ पर्वत है इसीसे इसका नाम क्रौञ्च द्वीप रखा गया है। कार्त्तिकेयके बाणसे इस पर्वतका नितम्बदेश और समस्त निकुञ्ज उन्मथित हुए थे। प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठ इस द्वीपके अधिपति हैं। उन्होंने इसे सात वर्षोंमें विभाग कर अपने सात पुत्रोंमें बांट दिया। इन सातवर्षोंमें सात वर्ष पर्वत और सात नदी हैं। पर्वतोंके नाम हैं शुक्ल, वर्द्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द नन्दन और सर्वतोभद्र तथा नदियोंके अभया, अमृतौघा, आर्यका तीर्थवती, रूपवती पवित्रवती और शुक्ला। इन सब नदियोंका जल बहुत पवित्र और निर्मल है। इस स्थानके सभी मनुष्य धर्मशील होते हैं।

छठवां द्वीप शाकद्वीप है जो बत्तीस लाख योजन विस्तृत है। दधिसमुद्र इस द्वीपके चारों ओर परिवेष्टित है। यहां शाक नामक एक महापादप वृक्ष है जिसके पत्तेका भीतरी भाग कड़ा और बाहरी भाग मुलायम है। इसी वृक्षसे इस द्वीपका नामकरण हुआ है। इसकी गन्ध बहुत मनोरम है जिससे समस्त द्वीप आमोदित हुआ करता है। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि हैं। इन्होंने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात वर्षोंमें विभाग कर प्रत्येकको एक एक विभाग प्रदान किया। इसमें भी ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोता, देवपाल और महानस नामके सात पर्वत तथा अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चनदी, सहस्रस्रुति और निजधृति नामकी सात नदियां हैं।

दधिसागरके बाद पुष्करद्वीप है जो शाकद्वीपसे दूना बड़ा है तथा चारों ओर स्वादु जलसागरसे वेष्टित है। इस द्वीपमें एक बड़ा पुष्कर है जिसमें अग्निशिखाकी नाईं एक लाख निर्मल स्वर्णमय पत्र सर्वदा प्रकाश पाते हैं। इन पत्तोंमें भगवान् नारायणका उपवेशनस्थान माना गया है। यहां मानसोत्तर नामक एक बड़ा पर्वत है जो पूर्व और पश्चिमवर्षके सीमापर्वतरूपमें अवस्थित है और जिसकी ऊंचाई तथा चौड़ाई दशहजार योजन है। इस द्वीपमें लोकपालोंकी चार पुरियां हैं जिनके ऊपर भागमें सूर्यका रथ है जो सुमेरुपर्वतके चारों ओर परिभ्रमण करता है। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र हैं। इनके रमणक और धातक नामक दो पुत्र हैं। राजा वीतिहोत्रने इस द्वीपको दो वर्षोंमें विभाग कर अपने दो पुत्रोंको एक एकका अधिपति बनाया। पीछे उन्होंने ईश्वरकी उपासना करके अपना प्राण छोड़ा। (भागवत ५ स्कन्ध) (क्ली०) द्वे अपी यत्र इति २ अतो बाहुलकात् अ। २ व्याघ्रचर्म, बाघका चमड़ा। (पु०) द्विगता द्वयोर्दिशोर्वा गता आपो यत्र काकाक्षिगोलकन्यायेन द्वयोरिव ऽपि चतुर्दिक्षु इति सिद्धिः। ३ तोयोच्छित पुलिनमात्र, चर। ४ अवलम्बन स्थान, आधार। ५ कबोलवृक्ष, कबोल नामका पेड़।

द्वीपकर्पूर (सं० पु०) द्वीपस्य द्वीपान्तरस्थ कर्पूर। चीन कर्पूर, चीनी कपूर।

ज्ञान इस मीमांसा है, उस भेदको यदि नित्य मानें, तो जीव चैतन्य और ब्रह्म चैतन्यमें एक वास्तविक भेद मानना होगा। किन्तु इस प्रकारका भेद माननेसे 'एकमेवाद्वितीयं' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके साथ विरोध उत्पन्न होता है। यदि यह कहें कि द्वैतवादियोंने इन सब श्रुतियोंकी द्वैतमूलक व्याख्या की है, तो उससे विरोध जानेकी सम्भावना ही क्या? किन्तु इसके उत्तरमें प्रकृत मीमांसा बहुदूरवर्त्ती मानव बुद्धिका विषय नहीं है। जिन्होंने इन सबकी व्याख्या की है, वे निःसंदेह मुक्तस्वभावके हैं, एक एक महापुरुष अवतार स्वरूप हैं। किसी एक मनुष्यका अल्पपोलकल्पित बुद्धि द्वारा विचार करना उचित नहीं है। चैतन्यके उपाधिगत नाना प्रकारके भेद मालूम पड़ जानेसे वस्तुतः कोई भेद नहीं रहेगा। इस संसारमें जो एक है और अद्वितीय है, वही ब्रह्म है। ब्रह्मविषयक अपरोक्षज्ञान प्राप्त करनेमें वह एक और अद्वितीय पदार्थ किस स्वरूपका है उसे जानना जरूरी है। जिसका परिणाम है, अर्थात् जो आज एक प्रकारका आकार धारण करता है, कल दूसरे प्रकारका, वह एक और अद्वितीय नहीं हो सकता। इस संसारमें जितने जीव हैं, उनमें जिस जिस विषयकी विभिन्नता है, वह विषय चैतन्य पदार्थ नहीं है, किन्तु उनमें जिस विषयकी एकता है, वही चैतन्य पदार्थ है। इस प्रकार एक और अद्वितीय क्या है उसीका अन्वेषण करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जाता है।

द्वैतवादी जीव चैतन्यको ब्रह्मचैतन्यसे यदि पृथक् समझते हैं तो वे ब्रह्मचैतन्यविषयक अपरोक्षज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अपने चैतन्य सम्बन्धमें ही मानवका अपरोक्षज्ञान सम्भव है, क्योंकि पुरुष अपने चैतन्यको ही स्वयं अनुभव कर सकते हैं। चैतन्य इन्द्रियग्राह्य पदार्थ नहीं है, वह अतीन्द्रिय है। अतः दूसरेके चैतन्यके विषयमें उसका अपरोक्षज्ञान कदापि नहीं हो सकता। जीवका चैतन्यविषयक जो अपरोक्षज्ञान है अर्थात् 'मैं' इस ज्ञानको उपाधिशून्य करनेकी कोशिश करके उपाधिशून्य चैतन्यका अपरोक्षज्ञान प्राप्त करनेके सिवा ब्रह्मज्ञानका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। ब्रह्मज्ञान नहीं होनेसे मुक्ति नहीं होती। किन्तु द्वैतवादियोंके मतसे जीवकी उपाधि नित्य है। सुतरां उस उपाधिको भूल जानेकी वे कोशिश भी नहीं करते। अतः अद्वैतवादीकी मुक्ति जिस प्रकार ब्रह्ममें लीन होना अर्थात् मैं ही ब्रह्म हो जाना है, उस प्रकार द्वैतवादीकी मुक्ति नहीं है। उन लोगोंका कहना है, कि जो कुछ उनके पास है, उसे वे भगवच्चरणोंमें अर्पण कर ईश्वरसेवा ही परम पुरुषार्थ है। ऐसी अवस्थामें उपाधि रह जाती है, क्योंकि उनके मतसे उपाधि नित्य है। किन्तु अद्वैतवादीके मतसे चैतन्यकी जो जीव-उपाधि है वह अज्ञानमूलक है। आत्मज्ञान हो जानेसे वह उपाधि जाती रहती है।

ब्रह्मका जो असीम अखण्ड अस्तित्व है, न सत्ता उसमें अस्तित्वका कोई उपाय नहीं है। सुतरां मनुष्य किसी प्रकार उस असीम भावको बतला नहीं सकता। "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (श्रुति) मनके साथ वहां गमन नहीं कर सकता, लौट आता है, वे जो अवस्थामें उसे निरुपाधि कहते हैं। किन्तु सृष्टिके साथ सम्बन्ध रख कर हम लोग परमात्माको जगत्कारण आदि नामोंसे पुकारा करते हैं। प्रकृति ही इसकी सृष्टिशक्ति है इसके साथ ही उस सम्बन्धका सूत्रपात है। अतः प्रकृति ही सभी उपाधियोंकी जड़ है। आकाश, वायु, आदि पञ्चभूत उपाधिस्वरूप हैं, यह जड़ जगत् उपाधिस्वरूप है। जीवका स्थूल सूक्ष्म कारण-शरीर भी उपाधिस्वरूप है। ब्रह्म इन औपाधिक रूपोंमें सभी जगह वर्त्तमान है। ये सब उपाधियां ब्रह्मसे ही निकली हैं। अवश्य कुछ भी न हो, ब्रह्मकी ही शक्ति अनन्तरूपसे प्रकाश पाती है। अतः ब्रह्मकी सत्तासे ही उनकी सत्ता है। ब्रह्मके साथ समस्त जगत् अभेद है, अभी ब्रह्म शुद्ध है, कुछ भी विकृत हो कर नहीं रहती। "अन्नाय एव यत्" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।" (श्रुति) ब्रह्मसे वह सारा व सार सृष्टि स्थिति और भङ्ग होता है। सभी ब्रह्मशक्तिके आविर्भाव हैं जब मनुष्यको यह ज्ञान हो जाता है तब उपाधिको फिर भिन्न समझ नहीं सकते। अनन्त अनन्त उपाधि-में ब्रह्म अनुस्यूतरूपसे देखे जाते हैं। अविद्यावशिष्ट

अपनी सृष्ट जीवके कारण शरीरमें वे प्राज्ञ नामसे, सूक्ष्म-देहमें तैजस नामसे, स्थूल देहमें विश्व नामसे जीवरूपमें प्रकाश पाते हैं और सर्व जीवोंके कारण शरीर-समष्टिमें वे (ब्रह्म) सर्वेश्वर नामसे, सूक्ष्म देह समष्टिमें हिरण्यगर्भ नामसे और स्थूल देह-समष्टिमें वैश्वानर नामसे नियन्ता और कारणस्वरूपमें प्रकाश पाया करते हैं। जीवको इन त्रिविध देहरूप उपाधियोंमें ब्रह्म ही स्वयं जीवरूप में प्रकाश पाते हैं। अद्वैतवादियोंके मतमें कोई पदार्थ क्यों न हो, वह ब्रह्मके बाहर नहीं है, सभीमें उनका कुछ न कुछ संबन्ध है। वे सभी पदार्थोंमें सत्तारूपसे वर्त्तमान हैं। उनकी सत्तामें सभीकी सत्ता है, अतः ब्रह्म ही सब कुछ है। उनकी सत्ताका अभाव होनेसे सभी इन्द्रजालवत् तिरोहित हो जाते हैं। जीवरूपमें अन्तःकरणरूप उपाधिके योगसे वे सुख, दुःख हैं और जन्म जन्मान्तर परिभ्रमण करते हैं। परमात्माके जीवभावको उपाधि अविद्या है, उसके अन्तर्गत देह और अन्तःकरण है तथा ईश्वरभावकी उपाधि माया है और उनके अन्तर्गत समस्त जगत् कार्य हैं। एक सहज दृष्टान्तसे यह समझमें आ जायगा —मान लो, एक सुवर्णकुण्डल है, सुवर्ण कहनेसे जिसका बोध होता है, सुवर्णकुण्डल कहनेसे उसका बोध नहीं होता। किन्तु सुवर्ण और सुवर्णकुण्डलमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, अगर है भी, तो सिर्फ उपाधिगत भेद है। यहां सुवर्णनिर्मित वस्तु कुण्डल यह उपाधि पा कर अन्यान्य सुवर्णसे कुछ विभिन्नता हो गई है। इसी प्रकार जिसका कोई विशेष नाम नहीं है, वह उपाधिशून्य है। किन्तु जब कोई विशेष नाम मिल जाता है, तब वह उपाधियुक्त होता है। जिसके नहीं रहनेसे 'मेरा' और 'मैं' का ज्ञान नहीं रहता, वही मेरा चैतन्य है। जिसके नहीं रहनेसे अन्यान्य जीवोंका आत्मा और अस्तित्व ज्ञान नहीं रहता, वही उनका चैतन्य है। ब्रह्मविषयमें शास्त्रकार लोग कहते हैं, कि वे ही आत्मपुरुष है, वे ही चैतन्यमय पुरुष हैं।

जहां कहीं चैतन्य देखोगे, वहीं ऐसा मालूम पड़ेगा कि चैतन्य पदार्थ सभी जगह एक है। ऐसी हालतमें अपने चैतन्यको किसी विशेष नामसे पुकार नहीं सकोगे। उस समय अपनेको उपाधिशून्य समझोगे। किन्तु आपाततः जीवकी अपज्ञानको उपाधि है, जीव कहनेसे इतर जन्तुसे भिन्नका बोध होता है। इस प्रकार पृथक् ज्ञानका नाम उपाधि है। जीव जब तक अपनेको उपाधिशून्य चैतन्यमय पुरुषके जैसा नहीं समझेगा, तब तक जीवको जीव उपाधि रहेगी। भेदज्ञान होनेसे ही उपाधिकी सृष्टि हुई है। द्वैतवादियोंके मतसे जीव-चैतन्यके साथ जीव-चैतन्यका कोई भेद नहीं है, लेकिन ब्रह्म-चैतन्यके साथ अवश्य भेद है और यह भेद नित्य है। अतः जीवकी उपाधि जीव छोड़ कर कभी भी वह निरुपाधिक नहीं हो सकता। अद्वैतवादी कहते हैं कि जीवके उपाधिशून्य हुए बिना उसकी मुक्ति नहीं होती, अर्थात् वह पुरुष पुण्यात्मा होने पर भी स्वर्गादि भोगके बाद फिर उसे इस लोकमें जन्म लेना पड़ता है। अद्वैतवादियोंके मतसे चैतन्य पदार्थ सर्वत्र एक है। जीव नामधारी चैतन्य सोपाधिक है और ब्रह्मचैतन्य निरुपाधिक। जीवकी उपाधि रहने या नहीं रहने देना उस जीवकी स्वय चेष्टाके ऊपर निर्भर है। उपाधिका नहीं रहना ही परम पुरुषार्थ है। द्वैतवादी लोग कहते हैं, कि जीव नियत उपासक है, वेदोक्त सभी देवता उसके उपास्य पदार्थ हैं। किन्तु इन सब देवताओंने विशेष विशेष कर्मोंके अधिष्ठाता हो कर विशेष विशेष नाम पाये हैं। सभी देवता नित्य नहीं हैं, सुतरां वे नित्य सुख प्रदान कर नहीं सकते। चैतन्यसत्ता निबन्धन देवगण कर्मफलानुसार सुख देते हैं। भिन्न भिन्न देवताओंके उस चैतन्यने भिन्न भिन्न उपाधि पाई है। देवता उपाधिगत चैतन्य अवच्छिन्न चैतन्य हैं, यह वैदिकज्ञानकाण्डसे जाना जाता है। एक अद्वितीय चैतन्यमय पुरुष ही नित्य पदार्थ है। ज्ञानमार्गका अवलम्बन करके उसकी उपासना द्वारा जीव नित्य सुख प्राप्त कर सकता है। उस चैतन्यमय पुरुष-विषयक मानस व्यापारका नाम ही उसकी उपासना है। प्रणवमन्त्रादि उस पुरुषके वाचक हैं। अद्वैतवादी पुरुषार्थसाधनके लिये पुरुषाकार अवलंबन करके स्वयं निर्गुण पुरुषत्वपद पानेकी इच्छा करते हैं। द्वैतवादी नित्य पुरुषके नित्य उपासक हो कर उपासक रहनेके लिए ही

परमतत्त्व है। देहसे अर्थात् पुरुष स्वभावतः मुक्त होने पर भी देहाभिमान निबन्धन उनके दुःखका कारण हो जाता है। इस दुःखको निवृत्त करना ही पुरुषका पुरुषार्थ है। प्रकृत पुरुष सम्बन्धीय अविवेक निबन्धन पुरुष अपनेको सोपाधिक समझा करते हैं। इस अविवेकको दूर कर सकनेसे अर्थात् प्रकृति पुरुषके स्वरूपका ज्ञान हो जानेसे ही मोक्षलाभ होता है। इस मतमें जीवात्मा वा परमात्मा पृथक नहीं हैं, अर्थात् इनके स्वरूपमें कोई भेद नहीं है। जीव जो अपनेको सोपाधिक समझता है, वही उसके बन्धनका कारण है। सांख्यकार असंख्य पुरुष स्वीकार करते हैं। पुरुष असंख्य होने पर भी मैं पुरुष, तुम पुरुष, वे भी पुरुष इत्यादि, किसीमें किसी प्रकारका प्रभेद नहीं है। कोई कोई कहते हैं, कि इनके मतसे जब पुरुषगत कोई पार्थक्य नहीं है, तब ये भी अद्वैतवादी हैं। यह मत अद्वैत है वा द्वैत, इसका विचार करना अनावश्यक है, किन्तु यह द्वैत कह कर ही प्रसिद्ध है। इसीसे हम लोग सांख्यको द्वैतवादी मानते हैं। सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षु वेदान्तदर्शनके अद्वैतवादको अपने मतमें अर्थात् द्वैत मतमें खींच लानेकी चेष्टा की है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें इन सब मतोंका खण्डन किया है।

चित्तमें जब द्वैतभाव प्रबल रहता है, तब मनुष्य 'मैं'के अतिरिक्त एक औरको खोजमें बाहर निकलता है। उस समय चित्तमें मिथुनभावात्मक वृत्ति उत्पन्न होती है, अर्थात् वृत्ति युगपत् अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी हो कर चित्तमें उदय होती है। जिस प्रकार खण्डलौह चुम्बकको पत्थरके निकट रखनेसे उस लोहेमें मिथुनभावात्मक शक्तिका प्रकाश होता है, उसी प्रकार सुखभोगकी कामना रहनेसे मनुष्यके चित्तमें मिथुनभावात्मक द्वैतभाव उत्पन्न हुआ करता है। उस समय चित्तका एक प्रान्त आत्माभिमुखी और दूसरा प्रान्त बाह्य विषयाभिमुखी हो जाता है, उस समय मनुष्य अपनेको भी अच्छा समझता है और सुखप्रद बाह्य विषयको भी। भोक्ता और उपभोग्य ये दोनों ज्ञानके ज्ञान हैं तथा एक दूसरेसे पृथक् नहीं रह सकते। भोक्ताके नहीं रहनेसे उपभोग्यका अर्थ कुछ नहीं और उपभोग्य पदार्थ नहीं रहनेसे भोक्ता नहीं रह सकता। भोक्ता और उपभोग्य ये दोनों एक ज्ञानके ही प्रान्तस्वरूप हैं। चित्तमें जब द्वैतभावकी प्रसन्नता देखी जाती है, तब मनुष्य अपनेको प्रीतिसुखका भोक्ता समझता है और इसीसे 'मैं'के सिवा एक औरको उपभोग्य पदार्थ मानता है। द्वैतवादमें भक्त लोग अपनेको प्रीतिसुखके भोक्ता समझते हैं, सुतरां उसके आराध्य पदार्थको उपभोग्यपदार्थ स्वरूप देखना ही पसन्द करते हैं। आराध्य पदार्थका अनुभव कर जो प्रीतिसुख मिलता है, उस सुखभोगके लिये ही द्वैतवादी आराध्य पदार्थको द्वैतभावसे भक्ति करते हैं। द्वैतवादीको ब्रह्मप्रीति सकाम है, क्योंकि द्वैतवादी यदि खूब गौरसे ख्याल करें, तो मालूम पड़ेगा कि वे अपनेको सुखभोक्ता समझते हैं और उस भोगेच्छाको त्याग करनेकी उनकी इच्छा नहीं रहने पर भी वे जीवोंका जीव नाम मिटानेको कभी ख्वाहिस नहीं करते। जब तक मैं सुख दुःखका भोक्ता हूं, तब तक मेरी 'जीव' यह उपाधि रहेगी। क्योंकि जो सुख दुःख भोग करता है, उसीका नाम जीव है। जिनको ब्रह्मप्रीति निष्काम है, वे ही अद्वैतवादी हैं। द्वैतभाव और अद्वैतभावकी प्रीतिमें जो प्रभेद है, वह एक उदाहरण दे कर समझाते हैं। मान लो, दो मनुष्यने घूमते घूमते एक प्रस्फुटित पद्मपुष्प देखा। पद्मकी शोभा तथा सुगन्धसे दोनोंके मनमें एक प्रकारकी तृप्ति आ गई। फिर दोनों सौन्दर्यसे आकृष्ट हो कर पद्मको देखने लगे, कुछ काल तक देखते रहनेके बाद एकने दूसरेसे कहा, 'भाई! देखो! इस पद्मको सुगन्ध ऐसी मनोरम है, कि दिन रात इसकी गन्ध लेनेकी इच्छा होती है।' दूसरेने कहा, 'इस पद्मका सौन्दर्य देख कर मेरी इच्छा होती है कि मैं पद्मके साथ मिल जाऊं। यह पद्म जिस तरह सरोवरमें खिल कर हंसता है, उसी तरह मेरी भी पद्म हो जानेकी इच्छा है जिससे मैं भी उसीके जैसा खिल कर हंस सकूं।' दोनोंमेंसे एक तो पद्मको द्वैतभावसे पसन्द करता था और दूसरा अद्वैतभावसे। एक तो पद्मके सौन्दर्यमें अपने अहंज्ञानको मिला देनेका इच्छुक था और दूसरा अपने अहंज्ञानको अलग रख कर पद्मका सौन्दर्य ही उपभोग करना चाहता था। जिस प्रीतिमें अहंज्ञानको विसर्जन करनेकी आग्रहता उत्पन्न होती है, वही अद्वैत

भावकी प्रीति है। जहां अपने पृथक् नामको अलग रखनेकी इच्छा होती है, वहीं द्वैतभावकी प्रीति है। द्वैतभावकी प्रीतिमें मनुष्यके मनमें सुखभोगकी वासना प्रच्छन्नभावसे छिपी रहती है, इसी कारण अद्वैत ब्रह्मवादियोंने द्वैतवादके विरुद्ध अनेक प्रकारके तर्क वितर्क किये हैं। अद्वैतवादी कहते हैं, कि 'ब्रह्मनाम'-रूप अग्निमें अपने धर्म कर्म, नाम आदिकी आहुति देना ही ब्रह्मोपासना है। इसमेंसे अपने 'जीव' नामकी अर्थात् सुखदुःखभोक्ता इस नामकी आहुति देना ही ब्रह्मोपासनाकी पूर्णाहुति है। जब अहं ज्ञान बिलकुल तिरोहित हो जाता है, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जो कुछ है सभी ब्रह्म है ऐसा ज्ञान हो जाता है, तभी ब्रह्मोपासनाकी चरमसीमा तक पहुंच जाता है, उस समय द्वैत और अद्वैत इस प्रकारका कोई विवाद उपस्थित नहीं होता। सभी ब्रह्मस्वरूपमें अनुभूयमान होते हैं। द्वैतवादी भी ब्रह्माग्निमें सब धर्म कर्मोंकी आहुति दे कर उपासना करते हैं, किन्तु वे पूर्णाहुति देना नहीं चाहते। छिपे हुए भावमें उनका अहं ज्ञान रह जाता है। जो द्वैत भावसे भक्तिरसमें सिक्त हो कर आनन्द उपभोग करना चाहते वे ब्रह्मको अपनेसे पृथक समझ कर ब्रह्मरूपकी उपासना करना पसन्द करते हैं। किन्तु अद्वैतवादी ब्रह्माग्निमें आत्मविसर्जन करनेके लिये ही ब्रह्म नामको पसन्द करते हैं। द्वैतवाद और अद्वैतवाद इन दो विषयोंकी आलोचना करनेसे जान पड़ता है कि द्वैतवादके पसन्द करनेसे ही संसारचक्र प्रवर्त्तित हुआ है और अद्वैतवादके पसन्द करनेसे इस संसारचक्रकी निवृत्ति हुआ करती है। जिस प्रकार पृथ्वी और सूर्यमें एक आकर्षण सम्बन्ध है—दोनों पदार्थ एक दूसरेसे आकृष्ट हो कर परस्पर मिल जानेकी चेष्टा करते हैं—जीव भी उसी प्रकार ब्रह्मके साथ मिल जानेके लिये सदा चेष्टा करता है। सूर्य पृथ्वीको अपनी तरफ लगातार खींच रहा है, किन्तु पृथ्वी उसमें मिलती नहीं, सो क्यों? इसका ज्ञान हो जानेसे ही जीव क्यों ब्रह्मपदमें लीन नहीं हो सकता अर्थात् जीव और ब्रह्मका जो अलग अलग अर्थ रखा गया है, वह मालूम हो जायेगा। सूर्य पृथ्वीको अपने साथ मिला लेनेके लिये खींचता है और पृथ्वी भी उसी ओर आकृष्ट तो होती है लेकिन पृथिवीकी किसी दूसरी ओर जानेकी चेष्टा है। इसी कारण पृथिवी सूर्यके साथ नहीं मिल सकती, केवल सूर्यके चारों ओर घूमती है। ब्रह्म-कर्षण जीव भी प्रतिदिन आकृष्ट होता है, किन्तु जीव उस आकर्षणशक्तिके साथ मिलने नहीं जाता अपनी इच्छानु-गामी हो कर दूसरी ओर चला जाता है और इसी कारण जीव संसारचक्र पथ पर घूमता रहता है। जीव भी ब्रह्मशक्तिको या तो ज्ञान कर या प्रेममें उसको भजि जाता है, क्योंकि जब तक जीव ब्रह्मशक्तिमें नहीं मिलेगा, तब तक वह उस आदिशक्ति द्वारा आकृष्ट होता ही रहेगा। सांख्यदर्शनमें भी लिखा है कि जब तक मनुष्य-को विवेकका ज्ञान नहीं होगा, तब तक प्रकृति उसे छोड़ ही नहीं सकती। ज्ञान उत्पन्न करा कर प्रकृति तिरोहित हो जायेगी, केवल पुरुषको ज्ञान करानेके लिये ही प्रकृति उससे मिलती है। एक बार ज्ञान हो जानेसे मनुष्यको फिर प्रकृति दर्शन नहीं होता। उस आकर्षणशक्ति द्वारा आकृष्ट होना ही वह पसन्द करता है और इसीसे उस ब्रह्मपदार्थमें मिल कर एक होना नहीं चाहता। ब्रह्मपदार्थमें मिल जानेके सिवा कोई दूसरा लक्ष्य देख कर उसी ओर जानेकी कोशिश करता है और इसी कारण पृथिवीकी भांति घूमता रहता है, केवल जन्ममृत्युके रूपमें दुःख भोगता है। पृथ्वीकी केन्द्राभिमुख-गतिकी किसी शक्तिको यदि बन्द कर दिया जाय, तो पृथ्वी सूर्यसे आकृष्ट हो कर थोड़े ही दिनोंमें उससे मिल जा सकती है। उसी प्रकार जीव यदि ब्रह्मपदार्थमें मिल जानेके सिवा किसी और लक्ष्यकी ओर झुक जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें वह ब्रह्मद्वारा आकृष्ट हो कर ब्रह्मपदमें लीन हो जा सकता है।

चाहे चेतन जगत् हो, चाहे जड़ जगत् हो सभीमें आकर्षणका नियम एक है। चेतन जीवके आकर्षणका नाम ही प्रेम, स्नेह, प्रणय और भक्ति है। यदि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थको आकर्षण करे तथा एक आकर्षणकी शक्तिके कोई दूसरी प्रतिकूल शक्ति न रहे, तो उस आकर्षणकी शक्तिके वशमें वे परस्पर मिल कर एक होनेके लिये अग्रसर होते हैं और अन्तमें मिल कर एक ही हो जाते हैं। चेतन जगत्‌में भी प्रीति-भक्तिका कार्य देखने-

में आता है उससे एक मन स्नेहके वशमें आ कर दूसरेके साथ मिल कर एक हो गया है ऐसा देखनेमें नहीं आया। जीवके मनमें प्रीति है और उसके साथ साथ एक प्रतिकूल शक्ति भी है। इसीसे जीव प्रिय हो कर भी स्नेहके आधार पदार्थके साथ मिल कर एक नहीं हो सकता। प्रीतिकी प्रतिकूल-शक्तिका नाम काम है अर्थात् स्वार्थ-सुखाभिलाष है। इन दो शक्तियोंके वशसे जीव स्नेहके आधार पदार्थके चारों ओर घूमा करता है। पृथिवीकी केन्द्राभिमुखगति और जीवके स्वार्थ-सुखकी प्रवृत्ति ये दोनों एकसी तुलना की जा सकती है।

सर्व कामना परित्याग कर केवल एक मात्र ईश्वरमें तथा अद्वैतभावमें भक्ति करो, मनके जितने प्रकारके बन्धन हैं उन्हें काट कर मनको छोड़ दो। ऐसा करनेसे ही मनकी गति ईश्वरकी ओर हो जायेगी और अन्तमें वह मन ईश्वरके साथ मिल जायगा। किन्तु जो द्वैतभावसे ईश्वरकी भक्ति करना पसन्द करते हैं, वे यदि सब कामनाओंको छोड़ भी दें, तो भी एक कामना छोड़ी नहीं जा सकती। ईश्वरमें भक्ति संस्थापन करके उनके ध्यानमें स्वयं जिस सुखका अनुभव हो सकता है, द्वैतवादी उस सुखकामनाको त्याग करनेमें समर्थ नहीं हैं। उनकी एक पृथक् अस्तित्वकी रक्षा करनेकी जो अभिलाषा है वह द्वैतवादीके मनमें रह जाती है और वे अहङ्कारशून्य नहीं हो सकते। विश्वरूप ईश्वरके सिवा हम लोगोंके पृथक् अस्तित्व है, यही ज्ञान अहङ्कार है और यही अहङ्कार निबन्धन मनुष्यके संसारचक्रको बदलता है। निष्काम ईश्वर-प्रीति-अभ्यासकी जो प्रकृत ईश्वरोपासना कहना चाहते, वे ही अद्वैतवादी हैं। जिनके कोई कामना नहीं हैं, वे अपने पृथक् अस्तित्वको अलग रखना नहीं चाहते। जिन्होंने ईश्वर-प्रीतिके स्रोतमें अपनेको डुबो दिया है, वे उस स्रोतके सहारे अनन्त ब्रह्मसमुद्रमें जा मिलेंगे। किन्तु जो ईश्वर-प्रीतिरूपी नदीमें रहनेकी इच्छा करते हैं उन्हें किसी न किसी आवर्त (भंवर)में रहना होता है। ईश्वर प्रीतिरूपी नदीमें छः प्रधान आवर्त हैं। इन ६ आवर्तोंको पार करनेसे ही ब्रह्मसमुद्रमें पहुंच सकते हैं। सांख्ययोगिगण इन छः आवर्तोंको षट्चक्र कह कर मानते हैं। इन षट्चक्रोंको भेद कर ब्रह्मसमुद्रमें मिल जानेसे ही जीव मुक्ति लाभ कर सकता है। दो मनके एक साथ मिल जाना ही प्रीति-चर्चाका चरमफल है। दो मनके मिल कर एक हो जानेसे प्रीतिका वेग नहीं रहता। अद्वैतवादी कहते हैं, कि जिस भक्तिके फलसे जीव और ईश्वरका भेद ज्ञान नहीं रहता है, वही प्रकृत ब्रह्मप्रीति है। किन्तु जो भक्ति निबन्धन जीव ईश्वरसे आकृष्ट होने पर भी भेदज्ञानको दूर करना नहीं चाहता, उसकी वह भक्ति ईश्वरके अनन्या भक्ति नहीं है। इस श्रेणीके भक्त यदि अपने अन्तरकी सम्यक् आलोचना कर देखें, तो वे समझ सकेंगे कि उनके मनकी गति केवल ईश्वराभिमुखी नहीं होती। उनके सुख भोगकी वासनाका बीज उस समय भी उनके हृदयमें जाग्रत् है। मनुष्यमात्रकी ही सुखभोगकी वासना इतनी प्रबल है, कि निःस्वार्थ प्रीतिरसका आस्वादन कैसा है यह हम लोग नहीं जान सकते। अद्वैतभावकी प्रीति हम लोगोंके संसारमें अधिक वंशवती होने नहीं पाती, इस प्रकारका अधिकारी होना अनन्य सुलभ है। इसी कारण अद्वैतभावकी भक्ति किस प्रकारकी है, वह जन साधारणको मालूम नहीं। द्वैतभावके प्रणयी पृथक् पृथक् नहीं रह सकते। वे किसी दूसरे प्रणयीकी तलाशमें रहते हैं और उसे पसन्द कर उसीके साथ प्रीति करते हैं। किन्तु अद्वैतभावमें भावक अकेले रह कर स्वयं अपनेमें ही सन्तुष्ट रहते हैं, जहां द्वैतभावके स्रोतको बहते देखते हैं, वहीं उस स्रोतमें मिल जानेकी जो तोड़ कर चेष्टा करते हैं। द्वैतभावके प्रणयके मादकता-शक्तिनिबन्धन जनता अद्वैतभावकी रसका ग्रहण नहीं कर सकते। इसीसे अद्वैतवाद साधारण लोगोंके मनमें प्रतिष्ठा लाभ नहीं कर सकता, उस समय भी उनकी चित्तशुद्धिका अभाव रहता है। अतः चित्तका मालिन्य रहनेसे वस्तुका भी स्वरूप देखनेमें नहीं आ सकता। निर्मल दर्पणमें किसी पदार्थका प्रतिबिम्ब देखनेसे जैसा उस वस्तुका स्वरूपज्ञान होता है वैसा मलिन दर्पण देखनेसे नहीं होता, वरन् उसमें विकृत आकार दीख पड़ता है। इसी कारण सबसे पहले अधिकारी होना आवश्यक है। विज्ञानभिक्षुने सांख्यदर्शन-

है शास्त्रमें कहा है कि ईश्वर ईश्वर करके कितना ही तर्क वितर्क क्यों न किया जाय पर उनके स्वरूपका ज्ञान होना अत्यन्त दुरूह है। ईश्वर दुर्ज्ञेय है, इसीसे ईश्वर नहीं है ऐसा कहनेमें भी कोई आपत्ति नहीं।

"ईश्वरो हि दुर्ज्ञेय इति मिथ्यात्वे"

द्वैतवाद ठीक है या अद्वैतवाद ठीक है, यथार्थमें ईश्वरके अतिरिक्त और कोई पदार्थ है वा नहीं अथवा वेदान्त ब्रह्म ही ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थान करते हैं, इसकी मीमांसा कौन करेगा? आप्तवाक्य पर विश्वास किया जाय और यदि शास्त्रको माना जाय, तो जिस प्रकार द्वैतवादका विश्वास करेंगे उसी प्रकार अद्वैतवादका भी करना होगा। तब अप्रमाणित करनेकी कोई बात न रहेगी। इसीसे वचनोंको समान भावसे मान कर उन्हीं के अनुसार काम करना होगा। ऐसा नहीं होनेसे शास्त्र पर कोई विश्वास नहीं कर सकते। पर हां, शास्त्रका अभिप्राय ठीक कर समझना उचित है। संसारमें जन्म ले कर जो जीव उपाधियुक्त हो कर निरन्तर त्रिविध त्रिताप से अभिभूत होता है, उस त्रितापसे उद्धार होना ही पुरुषार्थ है, मोक्षमुक्त होना ही जीवका कर्त्तव्य है। जीवनका जो प्रधान लक्ष्य है उसका प्रतिविधान ही सबसे पहले विधेय है।

प्रधान लक्ष्यकी उपेक्षा कर व्यर्थ कामोंमें समयको बिताना जीवका कर्त्तव्य नहीं है। मायाके बन्धनसे जीव जो भांति बन्द हो गई है। इस बन्धनको काटना होगा इसके लिये श्रवण मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। द्वैतवाद वा अद्वैतवादको ले कर तर्क वितर्क नहीं हो सकता। श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे इसकी मीमांसा आपसे आप हो जायगी, किसीके निकट किसी उपदेशकी आवश्यकता नहीं रहेगी। उस समय द्वैतवादी वा अद्वैतवादकी सार्थकता हृदयङ्गम हो जायगी। भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरका स्वरूप निर्देश कर ईश्वरवाचक प्रणवादि मन्त्र जप आदिको मन स्थैर्यका कार्य बतलाया है, अर्थात् प्रणवादि मन्त्रका जप करते करते आपसे आप मन स्थिर हो जायगा, तब फिर मन चारों ओर विचित्र न हो कर ध्येय वस्तुमें प्रति आसक्त हो जायगा। किन्तु योगी उन्होंने फिर यह भी कहा है—"यथाभिमतध्यानाद्वा।" (पात० १।३९ सूत्र) जिस किसी मनोज्ञ वस्तुके अर्थात् जिसके मनमें आ जानेसे मन प्रफुल्ल और शान्ति होता है, एकाग्रता सिद्धिके लिये उसीका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे एकाग्रता सिद्ध होती है। यदि रामकी मूर्त्ति अच्छी लगे, तो राममूर्त्तिका ही ध्यान करना चाहिये, यदि कृष्णकी मूर्त्ति अच्छी लगे तो उसीकी चिन्ता करनी चाहिये और यदि बुद्धकी मूर्त्ति पसन्दमें आ जाय, तो उसीका ध्यान करना कर्त्तव्य है। तात्पर्य यह कि किसी एक अभिमत वा वाञ्छित वस्तुका अवलम्बन कर एकाग्रता सीखनी चाहिये। यह शिक्षा समाप्त हो जानेसे अर्थात् ध्येय पदार्थमें चित्तस्थैर्यका अभ्यास पड़ जानेसे वा दृढ़ हो जानेसे, तुम जहां चाहोगे वहां एकाग्र हो सकते हो। यथा अन्तर्जगत्का नाड़ीचक्र, यथा बहिर्जगत्का चन्द्र सूर्य, क्या स्थूल, क्या सूक्ष्म सभीमें चित्त प्रयोग और उनमें तन्मय हो सकता है। यही योग शास्त्रका उद्देश्य है। किसी शक्तिमें चित्तको स्थिर करनेसे द्वैत वा अद्वैतमें जो गड़बड़ी है वह जाती रहती है, इसमें सन्देह नहीं। महामति शङ्कराचार्यने जो अद्वैतमतका विचार कर संस्थापन किया है, उनमें द्वैतमत छिपे तौर पर विराजमान है। फिर सांख्यादि दर्शनमें जो द्वैतभाव समर्थित हुआ है वह भी कुछ गौर कर देखा जाय, तो अद्वैतमतकी शिक्षा और किसीका ज्ञान नहीं होता। सांख्यादि दर्शनके बहुपुरुष और वेदान्त दर्शनकी समष्टि व्यष्टि है, नाना भेदव्यपदेश इत्यादिमें द्वैत और अद्वैत दोनों ही सिद्ध होते हैं। मान लो, घटाकाश और मठाकाश, घड़ा तोड़फोड़ देनेसे जिस प्रकार घटाकाश महाकाशमें लीन हो कर एक हो जाता है, तब केवल एक ही रह जाता है। ब्रह्म अपने रूपमें जब जीवोपाधि पाते हैं तब वहीं द्वैत कहते हैं, जब जीवको उपाधि तिरोहित हो जाती है, जब जीवचैतन्य ब्रह्मचैतन्यमें मिल जाता है तब 'एकमेवाद्वितीयं' के सिवा फिर किसीका ज्ञान नहीं होता। सांख्यमें जब पुरुषमत कोई एकत्व नहीं है, तब अद्वैतमत स्थापन करना उतना कठिन नहीं है जो कुछ हो इस प्रकार द्वैत और अद्वैतको ले कर उनका विचार और मीमांसा करना अतिशय

दुरूह है तथा मानवबुद्धिका अबोधगम्य है, यह पहले ही कह चुके हैं। इसीसे जिन्होंने जिस मतका संस्थापन करनेकी चेष्टा की है, उन्होंने ही वह मत संस्थापन किया है। न्याय वैशेषिकने जीवात्मा और परमात्मा तथा सांख्यपातञ्जलने प्रकृति पुरुष एवं वेदान्तिकने ब्रह्म और अविद्या वा मायाको स्वीकार किया है। इन सब मतोंमें द्वैत और अद्वैत इन दो विषयोंमें केवल नामका फर्क बतलाया है और कुछ भी नहीं।

जो कुछ हो, थोड़ा इस पर और विचार करके तब शेष करेंगे। द्वैत प्रीतिरससे जिनका वैराग्य उत्पन्न हुआ है वे ब्रह्म नामक अद्वैत भक्तिका संस्थापन करके समस्त कामना सुख-दुःख-ज्ञानको विसर्जन करनेकी हमेशा कोशिश करते हैं।

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥"

(गीता २।५५)

हे पार्थ! जो मनोगत सभी कामनाओंका परित्याग कर जो कुछ उनके पास हैं उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं, उन्हें स्थितप्रज्ञ कहते है। इस प्रकारके स्थितप्रज्ञ मनुष्य ही यथार्थमें अद्वैतज्ञानी हैं। हमारे सिवा संसारमें जितने पदार्थ हैं सभी हमसे बाह्य विषय हैं।

"तस्मै सहोवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स। तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत् पादते। रयिञ्च प्राणश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥" (प्रश्नोपनिषद्)

ऋषिने उससे कहा, कि उस प्रजापतिने प्रजाकी कामना कर तपस्या की। इस तपस्यासे मिथुन उत्पन्न हुआ। यह मिथुन अर्थात् रयि और प्राण अन्न तथा अत्ता अर्थात् जो अन्न भोग करते हैं, यही दोनों हमारी अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करेंगे। इसी मिथुनसे संसारचक्र प्रवर्त्तित हुआ है। जो अपनेको मिथुनसे पृथक् समझते हैं, उन्हींके हृदयमें मानो प्रकृति पुरुष और विवेकका ज्ञान हुआ है तथा वे ही द्वैत प्रीतिरसमें अनासक्त हैं। अद्वैत भावमें चित्त स्थिर करना बहुत कठिन है और वह साधनाकी चरमावस्था है।

विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद इन तीन प्रकारके मतोंका विषय अलग अलग बतलाया जाता है। द्वैत और अद्वैतका विषय एक साथ मिला कर कहा जा चुका है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उन्होंने वेदान्तसूत्रका अवलम्बन कर विशिष्टाद्वैतवाद का संस्थापन किया है। इसमें अद्वैतमतका खण्डन किया गया है। इस खण्डनमें निम्नोक्तयुक्तियां प्रदर्शित हुई हैं—

अद्वैतमतप्रवर्त्तक शङ्कराचार्यके मतावलम्बियोंका कहना है, कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है और श्रुतिप्रतिपाद्य है। जगत्प्रपञ्च कुछ भी सत्य नहीं, सभी मिथ्या हैं, जिस प्रकार भ्रमवश रस्सीसे सर्पज्ञान। जिस तरह रस्सीका निश्चय हो जानेसे सांपका भ्रम जाता रहता है, उसी तरह अविद्या द्वारा यह जगत्प्रपञ्च ब्रह्म ही कल्पित होता है। ब्रह्मका ज्ञान हो जानेसे हो उस अविद्याकी निवृत्ति हो कर जगत्प्रपञ्चकी निवृत्ति हो जायेगी। अविद्या भावपदार्थ है, किन्तु सत् वा असत् पदका वाच्य हो नहीं सकता, इस कारण उसे सदसद निर्वचनीय कहते हैं। विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जानेसे अविद्याका नाश हो जाता है। किन्तु इस विषयमें जो उपनिषद् वाक्य अद्वैतमतावलम्बियोंने प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया था, उससे उल्लिखित भावस्वरूप अविद्या सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि श्रुतिमें जो अनृत शब्द है, उसका अर्थ है सांसारिक अल्प फलजनक कर्म और जो माया शब्द देखा जाता है, उसका अर्थ है विचित्र सृष्टिजननी त्रिगुणात्मिका प्रकृति। सुतरां उन सब श्रुतियों द्वारा अविद्या सिद्ध नहीं होती और 'मैं नहीं जानता' इस प्रकारके अनुभव द्वारा भी उक्त भावरूप अविद्या सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि 'मैं नहीं जानता' इस अनुभव द्वारा ज्ञानभावका ही बोध हुआ करता है, न कि भावरूप अविद्याका। फिर उसे युक्तिसिद्ध कह कर भी स्वीकार नहीं कर सकते, कारण वह ब्रह्मज्ञानस्वरूप है, सुतरां किस प्रकार उसे आश्रय कर अविद्यारूप अज्ञान रह सकेगा। प्रकाशको आश्रय कर क्या कभी अन्धकार रह सकता है? अतएव भावरूप अविद्या अलीक और युक्तिविरुद्ध है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार जब युक्तिविरुद्ध विषयके ऊपर अद्वैतमत संस्थापित हुआ

है, तब वह किसी मतमें बिना मनुष्यका आदरणीय और ग्राह्य नहीं हो सकता। रामानुजके मतसे पदार्थ तीन प्रकारका है, चित्, अचित् और ईश्वर। चित् जीवपद-वाच्य, भोक्ता, असङ्कुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञान स्वरूप और नित्य है, अनादि कर्मरूप अविद्यावेष्टित भगवदाराधना और तत्पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव है। कैवल्यको भी मानो में विमल कर उसे फिर भोग करनेसे वह जितना सुख होता है, जीव भी उतना ही सुख। अचित्भोग्य है, ज्ञानशून्य है, अचेतन स्वरूप है, जड़ात्मक असत् है एवं भोगत्व और विकारास्पदत्व आदि स्वभावशाली है। वह अचित्पदार्थ तीन प्रकारका है, भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसे भोग किया जाता है उसे भोग्य कहते हैं, जैसे अन्न जल आदि। जिसके द्वारा भोग किया जाता है, उसे भोगोपकरण कहते हैं, जैसे भोजनपात्रादि और जिसमें भोग किया जाता है, उसे भोगायतन कहते हैं जैसे, शरीरादि। ईश्वर सबाके नियामक हरिपदवाच्य है, जगत्के कर्त्ता है, उपादान है और सबके अन्तर्यामी है तथा अपरिच्छिन्न ज्ञान ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति तेज आदि गुणास्पदता-रूप स्वभावशाली है। चित् और अचित् उनका शरीर स्वरूप है और पुरुषोत्तम वासुदेवादि उनको संज्ञा है। वे परमकारुणिक और भक्तवत्सल है तथा उपासकों को यथोचित फल देनेकी इच्छासे लीलास्वरूप पांच प्रकारको मूर्त्तियां धारण करते हैं।—प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादि, द्वितीय रामाद्यवतारस्वरूप विभव, तृतीय वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार संज्ञा क्रान्तव्यूह, चतुर्थ सूक्ष्म और सम्पूर्ण छह गुण वासुदेव नामक परमब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी को सभो जीवों के नियन्ता है। इन पांच मूर्त्तियों को क्रमशः उपासना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तर उपासनाका अधिकार बढ़ता है। अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योगके भेदसे भगवान्‌को उपासना भी पांच प्रकार-को है। देवमन्दिरका मार्जन और अनुलेपन आदिको अभिगमन गन्धपुष्पादि पूजोपकरणके आयोजनको उपादान, पूजाको इज्या, अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्र जप, स्तोत्रपाठ, नामसङ्कीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्र

अभ्यासको स्वाध्याय तथा देवतानुसन्धानको योग कहते हैं। इस प्रकार उपासना कर्म द्वारा चित्तमलका नाश हो जानेसे भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तोंको निजपद प्रदान करते हैं। उस पद प्राप्त हो जानेसे भक्तजनके यथार्थ रूपका ज्ञान हो जाता है, तब फिर पुनरावृत्ति कुछ भी नहीं होता। चित् और अचित्‌के साथ ईश्वर के भेद, अभेद और भेदाभेद तीन हो हैं। देखो जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली घट और मनुष्यमें पर स्पर भेद है, उसी प्रकार पूर्वोक्त स्वभाव और स्वरूपका वैलक्षण्य क्रमशः चिदचित्‌के साथ ईश्वरका भी भेद स्वीकार करना होगा। फिर जिस तरह मैं सुन्दर हूं मैं स्थूल हूं इत्यादि व्यवहार निजभौतिक शरीरके साथ जीवात्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चिदचित् सभी वस्तु हो ईश्वरके शरीर हैं, सुतरां शरीरात्मरूपमें चिदचित् सभी वस्तुओंके साथ ईश्वरका अभेद है, ऐसा भी कहना होगा। पुनः जिस प्रकार एक मात्र मृत्तिका के हो विभिन्न घटशरावादि नाना रूपमें अवस्थान करने के कारण घटके साथ मृत्तिकाका भेदाभेद प्रतीत होता है, उसी प्रकार एकमात्र परमेश्वरके चिदचित् नाना रूपमें विराजमान होनेके कारण चिदचित्‌के साथ उनका भेदाभेद भी है, ऐसा कहना होगा। क्योंकि ईश्वरके आकार स्वरूप चिदचित्‌का परस्पर भेद है वह और उन दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मरूपमें अभेदवश भेदाभेद होता है। फिर देखो, जिसका जो अन्तर्यामी होता है, वही उसका शरीर कहलाता है जिस तरह भौतिक देहका अन्तर्यामी जीव होनेसे भौतिक देह जीवका शरीर है, उसी तरह जीवके अन्तर्यामी ईश्वर है सुतरां जीव भी ईश्वरका शरीर कहना होगा। जिस प्रकार मैं सुन्दर हूं मैं स्थूल हूं इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माका शरीरात्मभावसे अभेद प्रतीत होता है उसी प्रकार 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतो! तू हो ईश्वर है इत्यादि श्रुतिमें जीवात्माको भी ईश्वरको शरीरात्मके भावमें अभेद बतलाया है। अन्यत्र उनके वास्तविक अभेद मतलब नहीं होता। अतएव इन श्रुति द्वारा जीवात्मा और परमात्माका ऐक्य स्वीकार करना तथा भ्रमत्मपक्ष हो समझा जाना भी

केवल मूढ़ताका कार्य है, वह सहजमें अनुमित हो सकता है। श्रुतिने जहां ईश्वरको निर्गुण बतलाया है, उसका तात्पर्य यह कि मनुष्यकी नाईं रागद्वेषादि गुण ईश्वरके नहीं हैं। फिर जहां उन्होंने पदार्थके नानात्व विषयों का निषेध किया है, उसका तात्पर्य यह कि ईश्वर चित्, अचित् समुदाय वस्तुकी आत्मा हैं। सुतरां सभी वस्तु ईश्वरात्मक हैं। ईश्वरसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं है। रामानुजने इसी प्रकार विशिष्टाद्वैतवाद संस्थापन किया है और शङ्कराचार्य पर दोषारोपण करके ऐसा कहा है, कि जगत् को रज्जु सर्पवत् जानना अयुक्त है। क्योंकि सत्यस्वरूप ईश्वरको आश्रय करके असत्य नहीं रह सकता, वे सत्य सङ्कल्प हैं। जो कारण है, वही सत्य है। ईश्वर जीवके अन्तर्यामी हैं, अतः वे जीवात्मासे ठीक उसी प्रकार पृथक् हैं जिस प्रकार 'मैं' जब शरीरसे अलग हो जाता है तब अपनेको कभी कभी शरीरसे पृथक् समझते हैं। 'तत्वमसि श्वेतकेतो' हे श्वेतकेतो! तू ही ब्रह्म है। इस श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है, कि हे श्वेतकेतो! तुम्हारे जीवात्माको जो अन्तरात्मा है, वे ही ईश्वर हैं। फलतः श्वेतकेतु स्वयं ईश्वर हैं, ऐसा इस वाक्यका अभिप्राय नहीं हैं। 'एकमेवाद्वितीय' इस वाक्यका तात्पर्य यह नहीं, कि केवल एक ईश्वर ही हैं और कुछ नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि ईश्वर स्वजातीय और विजातीय भेदरहित हैं। उनका स्वजातीय या विजातीय दूसरा कोई नहीं है। अर्थात् दो ब्रह्म नहीं हैं। एक, एव और अद्वितीय इन तीन शब्दोंके द्वारा ही स्वजातीय और विजातीयका निरास हुआ है। यह संसार और सभी जीव उससे पृथक् हैं। अतः ब्रह्म जगत् और जीवविशिष्ट है, अर्थात् सभीमें मिले हुये हैं और आत्माके रूपमें सभीके अन्तर्यामी हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं रह सकता। अतएव ईश्वरके साथ जगत् और जीवका एक प्रकारसे भेद और एक प्रकारसे अभेद भी है। शङ्करभाष्यमें और वेदान्तसूत्रमें जीवात्मा, जगत् और ब्रह्मके विषयमें जो विचार है उसमेंसे जितना अद्वैतवाद प्रकाश पाता है वह कुछ भी दोषावह नहीं है। न्याय और वैशेषिकदर्शनमें परमेश्वर, परमाणु और जीवात्मा इन तीनोंको एकमात्र नित्य बतलाया है। इस हिसाबसे द्वैतवाद ही दोषावह समझा जाता है। अद्वैतके मतमें पहले उसीका खण्डन है। इस मतमें ब्रह्मसे ही सब पदार्थ निकले हैं। सृष्टिके आरम्भमें दूसरा कोई पदार्थ नहीं था। श्रद्धास्पद रामानुज स्वामीका मत इन दो मतोंके मध्यवर्तीके जैसा प्रतीत होता है और वह कितने पुरुष तथा प्रकृतिवादके जैसा है। अतः बहुतेरे मनुष्य अद्वैतवादका मनोहर तात्पर्य नहीं समझ कर ऐसा ख्याल करते हैं, कि मनुष्यात्माको ही ब्रह्म समझना यथार्थमें भूल है, मरनेके बाद जीवात्मा ब्रह्म हो जाता है, ब्रह्मसे जीवात्माको कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार कोई कोई शङ्करके मतका समर्थन करते हैं। इस मतका खण्डन करनेके लिये रामानुजने विशिष्टाद्वैत मतमें शारीरकसूत्रका भाष्य किया है।

माध्वभाष्य अथवा द्वैतवाद।—मध्वाचार्यने द्वैतवाद का अवलम्बन करके वेदान्तसूत्रका भाष्य प्रणयन किया। उनके मतानुसार जीवात्मा सूक्ष्म निराकार है, अमर पदार्थ है और ईश्वरका सेवक है। "तत्वमसि-श्वेतकेतो" इस श्रुतिका अर्थ इस प्रकार है—हे श्वेतकेतो। तू ही ब्रह्म है। यहां पर कर्मधारयसमास नहीं होगा, किन्तु षष्ठीतत्पुरुषसमास द्वारा 'तत्' शब्दका अर्थ 'तस्य' ऐसा होगा। अतएव उक्त वाक्यका अर्थ यों होगा-'श्वेतकेतो! तस्य त्वं असि।' तुम उसीके हो, अर्थात् तुम उसीके नियत सेवक सहचर और अनुचर हो। सुतरां जीव ब्रह्म नहीं है। इस मतके अनुसार परमेश्वर स्वतन्त्र अर्थात् पूर्ण स्वाधीन हैं। जीव अस्वतन्त्र अर्थात् परमेश्वराधीन है। जो जीव और ईश्वरमें अभेद समझ कर अर्थात् अद्वैतभावमें केवल ईश्वरको उपासना करते हैं, वे अन्तमें नरकको प्राप्त होते हैं। जगत् ब्रह्म भी नहीं है, भ्रम भी नहीं है, अद्वैतवादी लोग जाज्वल्यमान जगत्को जो रज्जु सर्पवत् समझते हैं तथा जीवको ही ब्रह्म मानते हैं वह युक्तिसंगत नहीं है। अतएव जगत् और जीव सत्य है तथा ब्रह्मसे पृथक् है। 'एकमेवाद्वितीयं' अद्वैतवादी इस श्रुतिका अर्थ इस प्रकार करते हैं—ब्रह्म ही एक तथा अद्वितीय है, अर्थात् जिनसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है वे ही अद्वितीय हैं। अद्वैतवादियोंके इस प्रकारके

मतानुसार जगत् और जीवका नहीं होना साबित होता है। अतएव इस प्रकारका अर्थ नितान्त असङ्गत है। 'एकमेवाद्वितीय' इस श्रुतिमें 'एक' इस शब्दका अर्थ एक है अर्थात् बहुत नहीं, 'एव' शब्दका अर्थ अयोगव्यवच्छेदक अथवा इतरव्यवच्छेदक अर्थात् अन्यसम्बन्धाभाव है। अन्य जो द्वितीयादि हैं उनके साथ सम्बन्धका अभाव है। जिस प्रकार कतिपय पदार्थोंको एक, दो, तीन, चार करके गिननेसे इसका प्रत्येक अङ्क ही अन्यकीसम्बन्धव्यापक अर्थात् अन्यसे स्वतन्त्र है, उसी प्रकार परमेश्वरका एकत्व, दो, तीन, चार आदि अन्यान्य उपाधियोंसे स्वतन्त्र है। 'एव' शब्दका और एक अर्थ है वह है अयोगव्यवच्छेदक अर्थात् जिससे सर्वदा एकत्व युक्त हो अर्थात् जो एक पदार्थ है, जिन्हें अनेक भागों में विभक्त नहीं कर सकते और जो अखण्ड अनेक नहीं हो सकते हैं। अङ्कका आद्यन्तमर्थ जैसा स्वभाव है, परमेश्वरके एकत्वका भी वैसाही स्वभाव है। अतएव वे अद्वितीय हैं, द्वितीय शब्दका अर्थ यहां जगत् और जीव में है जो प्रथम है, वैसी प्रथमावधि है, जगत् और जीव उन्होंके कार्य हैं, अतएव वे स्रष्टा हो कर वह कभी नहीं हो सकते, इसलिये वे अद्वितीय हैं। यहां पर 'अ'शब्दका अर्थ न है अर्थ है 'न द्वितीय' 'स द्वितीय न है', द्वितीय जो यह जगत् और जीव है सो वे नहीं हैं। जैसे 'अब्राह्मणमानय' ब्राह्मणसे जो अन्य है उसे जिस तरह अब्राह्मण कहते हैं, उसी तरह द्वितीयारम्भक द्वितीय अर्थात् जगत् और जीवसे जो अन्य हैं, वे ही अद्वितीय हैं। अब 'एकमेवाद्वितीय' श्रुतिका अर्थ यह हुआ कि परमेश्वर एक ही हैं, उनके सिवा अनेक नहीं हैं तथा वे जगत् और जीवसे भिन्न हैं। अद्वैतवादी जो कहते हैं, कि 'नेह नानास्ति किञ्चन' परमेश्वरसे भिन्न और कुछ नहीं है, लेकिन यह अर्थ असङ्गत है। इस श्रुतिका अर्थ ऐसा होना चाहिये—इस एक ब्रह्ममें नाना पदार्थ नहीं हैं। अद्वैतवादी जीव जगत्को जो ब्रह्ममें अध्यास करते हैं, इससे यह बात भी खण्डित होती है। फिर अद्वैतवादीने माया अविद्या, अज्ञान आदिका जो बहुशाब्द अर्थ लगाया है मध्वाचार्य उसे स्वीकार नहीं करते हुए कहते हैं कि इन सब शब्दोंका अर्थ केवल ईश्वरकी इच्छाशक्ति मात्र है। इनके मतसे अद्वैतवादियोंने कष्टकल्पना कर व्यासकृत वेदान्त-सूत्रका जो अर्थ लगाया है वह अग्राह्य है। इस मतसे जीव भृत्य और ईश्वर सेव्य है, वेद अपौरुषेय सिद्धान्त-बोधक और स्वतःप्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों द्वारा सब अर्थ सिद्ध हुआ करते हैं। इन सब विषयोंमें पूर्णप्रज्ञ, मध्वाचार्य और रामानुज इन तीनोंका मत एक है। किन्तु रामानुजने जो भेद, अभेद और भेदाभेद इन तीन तत्त्वोंको स्वीकार किया पूर्णप्रज्ञने वह नहीं किया। वे कहते हैं, रामानुजने पूर्वोक्त विरुद्ध तीनों तत्त्वोंको अङ्गीकार कर शङ्कराचार्यके अद्वैतमतकी प्रतिपोषकता की है, अतएव उनका मत अत्यन्त अग्राह्य है। आनन्दतीर्थने शारीरक मीमांसाका जो भाष्य किया है, उस ओर दृष्टिपात करनेसे जीव और ईश्वरमें जो परस्पर भेद है, उसमें तनिक भी संशय नहीं रहता। उस भाष्यमें एक जगह लिखा है, "स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इस श्रुतिका जीव और ईश्वरमें परस्पर भेद नहीं है, ऐसा तात्पर्य नहीं; बल्कि 'तस्य त्वं' अर्थात् उन्हीं का तू है ऐसा तात्पर्य है, षष्ठीसमास द्वारा इसमें जीव ईश्वरका सेवक समझा जाता है। फिर इसका ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है, कि जीव ब्रह्मसे भिन्न है। इस मतमें दो ही तत्त्व हैं, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। इनमेंसे भगवान् सर्व-दोष-विवर्जित अशेष सद्गुणोंके आश्रय स्वरूप हैं, अतः वे ही स्वतन्त्रतत्त्व हैं और जीवगण अस्वतन्त्रतत्त्व अर्थात् ईश्वराधीन हैं। इस प्रकार सेव्यसेवकभावापन्न ईश्वर और जीवका जो भेद है, वह भी उसी तरह सुनिश्चित है, जिस तरह राजा और नौकरमें परस्पर भेद देखा जाता है। अतएव जो जीव और ईश्वर को अभेद चिन्ताकी उपासना किया करते हैं तथा उस उपासनाका अनुष्ठान करते हैं उन्हें परलोकमें कुछ भी फल नहीं मिलता। यदि कोई नौकर राजपद पानेकी इच्छा करे अथवा मैं राजा हूँ ऐसा अपनेको समझे तो राजा उसे भारी दण्ड देते हैं। फिर जो मनुष्य अपना अपकर्ष घोषणपूर्वक राजाका गुणानुकीर्तन करता है, राजा खुश हो कर उसे समुचित पारितोषिक देते

हैं। अतएव ईश्वरके गुणोत्कर्षादिके कीर्त्तनरूप सेवाके अतिरिक्त कोई अभिलषित फल प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं। इस मतसे ईश्वरकी सेवा तीन प्रकारकी है—अङ्कन, नामकरण और भजन। इनमेंसे अङ्कनकी पद्धति साकल्यसंहिताके परिशिष्टमें विशेष रूपसे लिखी गई है और उसकी अवश्यकर्त्तव्यता तैत्तिरीयक उपनिषदमें प्रतिपादित हुई है। नारायणके चक्रादि अस्त्रका चिह्न जिससे अङ्गमें चिरकाल तक विराजित रहे तप्त लोहादि-यन्त्र द्वारा वैसा ही करना चाहिये। दाहिने हाथमें सुदर्शनचक्रका और बायें हाथमें शङ्खका चिह्न धारण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उस चिह्नको देख कर भगवान्का स्मरण हमेशा होता रहेगा और वाञ्छित फलकी भी सिद्धि होगी। द्वितीय सेवा नामकरण है। इसमें अपने पुत्रोंका केशवादि नाम रखना चाहिये, इसके बाद पीछे ईश्वरका नामकीर्त्तन हुआ करेगा। तीसरी सेवा भजन है। इसमेंसे कायिकभजन तीन प्रकारका है-दान, परित्राण और परिरक्षण। वाचिक चार प्रकारका है—सत्य, हित, प्रिय और स्वाध्याय अर्थात् शास्त्रपाठ। मानसिक तीन प्रकारका है—दया, स्पृहा और श्रद्धा। जैसे—

"सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्।"

इस वाक्य द्वारा शूद्र भी यदि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणकी पूजा करे, तो वह ब्राह्मणकी पवित्रतादि गुणविशिष्ट हो सकता है, ऐसा अर्थ होता है। उसी प्रकार "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस श्रुतिवाक्य द्वारा ब्रह्मज्ञ और ब्राह्मण-में कुछ भेद न रह कर ऐसा अर्थ समझा जायगा कि ब्रह्मज्ञानी मनुष्य ब्रह्मके जैसा सर्वज्ञत्वादि गुणसम्पन्न होते हैं। श्रुतिमें माया, अविद्या, नियति, मोहिनी प्रकृति और वासना इन छः शब्दोंका प्रयोग है, जिनका अर्थ भगवान्की इच्छामात्र है। अद्वैतवादियोंकी कल्पित अविद्या नहीं है। फिर जो प्रपञ्च शब्द कहा गया है उसका अर्थ प्रकृष्ट पञ्च भेद है। वे पञ्चभेद ये हैं—जीवेश्वर भेद, जड़ेश्वरभेद, जड़जीवभेद और जीवोंका तथा जड़ पदार्थोंका परस्पर भेद। यह प्रपञ्च सत्य एवं अनादि सिद्ध है। विष्णुका सर्वोत्कर्ष प्रतिपादन करना सभी आगमका प्रधान उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे मोक्ष ही नित्य है और शेष तीन पुरुषार्थ अस्थायी हैं। अतएव प्रधान पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्तिके लिए कोशिश करना सभी बुद्धिमान् मनुष्योंका मुख्य कर्त्तव्य है। किन्तु ईश्वर-को प्रसन्न किये बिना मोक्षलाभ नहीं हो सकता और बिना ज्ञानके प्रसन्नता भी नहीं हो सकती। ज्ञानशब्द-से विष्णुके सर्वोत्कर्ष ज्ञानका बोध होता है। केवल मन्दबुद्धि व्यक्ति ही जीवप्रेरक विष्णुको जीवसे पृथक् नहीं समझ सकते। बल्कि सुबुद्धि व्यक्तियोंके अन्तःकरणमें विष्णु और जीवका परस्पर भेद है, यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि सभी देवगण अनित्य, क्षरशब्द साध्य और लक्ष्मी अक्षर शब्दवाच्य हैं। उस चराचरमें विष्णु प्रधान हैं और स्वातन्त्र्य शक्ति विज्ञानसुखादि गुणसमूहकी आधार स्वरूप हैं, दूसरे सभी विष्णुके अधीन हैं। इन सबका सम्यक्-ज्ञान हो जानेसे विष्णुके साथ सहवास होता है। सभी दुःख दूर हो जाते हैं तथा नित्य सुखका उपभोग होता है। श्रुतिमें लिखा है, कि एक वस्तुका अर्थात् ब्रह्मका तत्त्वज्ञान हो जानेसे सभी वस्तुका ज्ञान हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिस तरह ग्रामस्थ प्रधान व्यक्तियों-को जान सकनेसे ग्राम जाना जाता है और पिताको जान लेनेसे पुत्र जाना जाता है, अर्थात् पुत्रको जानने-की और अपेक्षा नहीं रहती है, इत्यादि। अद्वैतमत वादी व्यासकृत वेदान्तसूत्रका जो कूट अर्थ लगाते हैं, वह कुछ नहीं है। यह सूत्र सभीके मध्य कई एक सूत्रोंको यथाश्रुत व्याख्याके रूपमें लिखा गया। जैसे—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्रमें 'अथ' शब्दके तीन अर्थ हैं, आनन्तर्य, अधिकार और मङ्गल। फिर 'अतः' इस शब्दका अर्थ है हेतु, यह गरुड़पुराणके ब्रह्मनारद सम्वादमें लिखा है। जब नारायणको प्रसन्न किये बिना मोक्ष नहीं होता तथा उनका ज्ञान हुए बिना प्रसन्नता नहीं होती, तब ब्रह्मजिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करना हरएकका अवश्यकर्त्तव्य है। यही उस सूत्रका फलितार्थ है। 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रमें ब्रह्मका लक्षण लिखा है जिसका अर्थ है—जिससे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार हुआ करता है, तथा जो

नित्य निर्दोष अशेष सद्गुणसम्पन्न है वही नारायण ब्रह्म है। इस प्रकारके ब्रह्मका प्रमाण क्या है? ऐसा पूछने पर कहा है, 'शास्त्रयोनित्वात्'। शास्त्र उसको जिज्ञासामें प्रमाण हैं, अत ब्रह्म ही सभी शास्त्रोंके प्रतिपाद्य हैं। किस प्रकार ब्रह्मका शास्त्रप्रतिपाद्यत्व स्वीकार किया जा सकता, इस आशङ्का पर कहा है 'तत्तु समन्वयात्' *सभी शास्त्रोंके उपक्रम और उपसंहारमें ब्रह्मके ही प्रति*पादित होनेसे उस आशङ्काका समन्वय अर्थात् समाधान हुआ है।

पूर्णप्रज्ञ इस प्रकार आनन्दतीर्थके भाष्यका अवलम्बन कर ये सब विषय लिख कर गये हैं। मध्वमन्दिर और मध्व ये दो पूर्णप्रज्ञके नाम हैं।

वल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद—वल्लभाचार्य पञ्चदश शताब्दीमें अर्थात् शङ्कराचार्यके आठ सौ वर्ष पीछे आविर्भूत हुए। इन्होंने वेदमार्गपर विष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैत मतानुसार वेदान्तसूत्रका भाष्य किया है। इनके मतसे जगत् और जीव मायाविशिष्ट नहीं हैं, किन्तु स्वयं ईश्वरका परिणाम है। शङ्कराचार्यके मतानुयायी अद्वैतवादिगण जिस तरह जगत्को 'रज्जुसर्प'वत् मान कर ब्रह्ममें अध्यास करते हैं, उसे ये स्वीकार नहीं करते। किन्तु ये जगत् और जीवको ब्रह्मके साथ नित्य शुद्ध अभेद मानते हैं। 'रज्जुसर्पवत्' वा 'शुक्तिकारजतवत्' शब्दके बदलेमें ये 'कटककुण्डलवत्' अथवा 'स्वर्णकुण्डलवत्' इत्यादि उपमाओंका व्यवहार करते हैं अर्थात् जिस तरह सर्पसे सर्पका कुण्डल पृथक् नहीं है उसी तरह स्वर्णसे स्वर्णालङ्कार पृथक् नहीं। वल्लभके मतसे इस जगत्के सभी पदार्थ और सभी जीव ब्रह्म हैं। इस मतको शङ्कराचार्यके मतावलम्बी कितने नवीन अद्वैतवादियोंने भी माना है।

इस प्रकार जो जैसा समझते हैं उन्होंने उसीके ऊपर निर्भर कर द्वैत और अद्वैतका मत प्रस्थापन किया है। कितने श्रुतियोंसे तो मालूम होता है, कि ब्रह्म ही जगत् और जीवात्मा रूपमें परिणत हुए हैं, फिर कितनी श्रुतियां ऐसी भी हैं जिन्हें पढ़नेसे जाना जाता है कि ब्रह्म जीव और जगत् ये सब पृथक् हैं। न्याय और वैशेषिक-दर्शन तथा सांख्यपातञ्जलमें द्वैतवाद स्वीकृत हुआ है। सूत्रके भाष्य द्वैतवाद मिश्रित और अद्वैतवाद शुद्ध भावसे लिखित है। किन्तु शङ्कराचार्यने जिस प्रणाली पर शारीरक भाष्य लिखा है उसके पढ़नेसे सहसा बोध होता है कि परमात्माके सिवा मानवका कोई स्वतन्त्र जीवात्मा नहीं है। पर जीवात्मा यह नाम जो सुना जाता है, वह केवल नाममात्र है *अर्थात् उनकी उपाधि है। इस मतसे संसार मोह*निद्राकी तरह मिथ्या माया है, सभी मानो ऐन्द्रजालिक व्यापार हैं, ब्रह्मज्ञान होनेसे ही ये सब तिरोहित हो जायगी।

द्वैत और अद्वैतवादका विषय एक तरहसे कहा गया। अद्वैतवादका विशेष विशेष विवरण शङ्कराचार्य और वेदान्त शब्दमें लिखा है। द्वैत और अद्वैत मत ले कर जो विवाद चला आ रहा है उसकी मीमांसा करना असम्भव है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शास्त्रमें जो सब बातें लिखी हैं, वे सभी भ्रान्त वा असत्य नहीं हैं। ईश्वरका जो एकत्व है उसका बोध होता है, शून्यगर्भ एकत्व नहीं है। किन्तु वैचित्र्यगर्भ एकत्व है अर्थात् ईश्वरने अपने अभ्यन्तरस्थित वैचित्र्यको अपनी ऐसी शक्ति द्वारा व्यक्त रूपमें विकसित किया है, यही सृष्टि है। वेदान्तमें लिखा है कि जिस तरह मकड़ी अपने अन्तर्भूत उपादानसे अपनी इच्छानुसार जाल बनाती है, ब्रह्म भी उसी तरह अपने अभ्यन्तरसे सृष्टि उत्पादन करते हैं। यथार्थमें यह है, कि ईश्वरकी शक्ति ईश्वरसे अवश्य अभिन्न है। अतएव ईश्वरका एकत्व शून्यगर्भ एकत्व नहीं है, वैचित्र्यगर्भ एकत्व है। मूलमें विकार जो ईश्वरके एकत्वके अन्तर्भूत है उसीको कोई माया, कोई अविद्या, कोई प्रकृति मानते हैं। परमेश्वरकी ऐसी शक्ति ही जगत्के समस्त वैचित्र्यका मूल है और वह शक्ति ब्रह्मसे पृथक् नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह कि वैचित्र्य सम्भावनाका मूल है। चाहे जो जैसा नाम क्यों न रख ले, माया प्रकृति वा शक्ति किसी नामसे क्यों न पुकारे नामसे कुछ होता जाता नहीं। वैचित्र्य सम्भावनाका एक मूल ईश्वरके अन्तर्भूत है इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रकार एकत्व वा बहुत्व माननेसे

द्वैत और अद्वैतवादमें कोई गड़बड़ी रहने नहीं पाती। परमेश्वर अनन्तरूपमें सगुण और निर्गुण दोनों हो हैं तथा द्वैत और अद्वैत सब कुछ वे ही हैं। वेदान्त-शास्त्रमें लिखा है कि ईश्वरको शक्तिका केवल एक पाद संसारमें व्यपित हुआ है और अवशिष्ट तीन पादोंमें जगत्‌का अतीत है अर्थात् ईश्वरका स्वरूपाश्रित है किन्तु जगत्‌को ईश्वर माननेसे यही समझा जायगा कि ऐशीशक्तिके ही चतुष्पाद हैं। ऐसा होनेसे स्वयं ईश्वर ही जगत् रूपमें परिणत हैं, ऐसा समझा जाता है, किन्तु श्रुति और ज्ञान दोनों हो इसके विरोधी हैं। ईश्वर कालातीत पुरुष हैं, जगत् उनका कालिक प्रतिरूप है। सुतरां उनके कालातीत स्वरूपसे जो कालिक प्रतिरूप भिन्न हैं ऐसा समझना गलत है। उस स्वरूप और प्रतिरूपके मध्य अतीव घनिष्ट सम्बन्ध विद्यमान है। क्योंकि जो प्रतिरूप है वह स्वरूपका ही प्रतिरूप है। इस प्रकार एक ओर ईश्वर और जगत्‌की भिन्नता अर्थात् द्वैतभाव है, तथा दूसरी ओर दोनोंका घनिष्ट-सम्बन्ध अर्थात् अद्वैतभाव सम्पूर्णरूपसे प्रकट होता है। द्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों हो वर्त्तमान हैं। द्वैतवाद शुद्ध केवल यही है कि ब्रह्मका कालिकप्रतिरूप ईश्वरके कालातीत स्वरूपसे भिन्न है।

शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य और वेदान्त देखो।

द्वैतवादिन् (सं० त्रि०) द्वैतं जीव ईश्वरश्च इति वदति वद-णिनि। जीव और ईश्वरके भेदवादी, ईश्वर और जीवमें भेद माननेवाला।

द्वैताद्वैत (सं० क्ली०) द्वैतञ्च अद्वैतञ्च। जीव और ईश्वरका भेद और अभेद जो जीव और ईश्वरके भेद तथा अभेद दोनोंको ही मानते हैं उन्हें द्वैताद्वैतवादी कहते। उनके मतसे जीवके साथ ईश्वरका भेद भी है और अभेद भी।

यथार्थमें जो द्वैत भी नहीं है और अद्वैत भी नहीं वही पारमार्थिक सत्य है। और वे ही द्वैत और अद्वैत हैं। जो इस तरह ईश्वरके स्वरूपज्ञान लाभ कर सकते हैं, वे परम पद पाते हैं।

द्वैतिन् (सं० त्रि०) द्वैतं भेदः सत्यतया अस्त्यस्य इनि। द्वैतवादी नैयायिक प्रभृति।

द्वैतीयीक (सं० त्रि०) द्वितीय सोयाद्वीकक्, वा स्वार्थे ईकक्। द्वितीय, दूसरा।

द्वैधम् (सं० अव्य०) द्वि-प्रकारे धमुञ्। प्रकारद्वय, दो तरहसे।

मनुने लिखा है, कि कार्यार्थ सिद्धिके लिये स्वामी और बल इन्हीं दो स्थितिका नाम पण्डितोंने 'द्वैधम्' बतलाया है।

द्वैध (सं० अव्य०) द्वि धा (संख्याया विधार्थे-धा। पा ५।३।४५) १ द्विप्रकार, दो तरहसे। (पु०) २ विरोध, परस्पर विरोध।

द्वैधीभाव (सं० पु०) अद्वैधस्य द्वैधस्य भावः। द्वैध-च्वि-भू-भावे घञ्। १ द्विधाभाव, विरोध, परस्पर विरोधी। २ षड्गुण्यान्तर्गत द्वैधरूप भाव, राजनीतिके षड्गुणों मेंसे एक जिसमें प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रख कर दूसरा उद्देश्य प्रगट किया जाता है अर्थात् भीतर कुछ और भाव बाहर कुछ और।

अग्निपुराणमें लिखा है. कि बलवान् शत्रुके निकट वाक्यसे आत्मसमर्पण कर काकचक्षुको नाईं सर्वदा द्वैधीभावसे रहना चाहिये अर्थात् कौवेको आंखें जिस तरह चारों ओर रहती हैं उसी तरह बलवान् शत्रुके निकट बहुत सावधानीसे रहना चाहिये।

द्वैप (सं० पु०) द्वैपिनो विकार द्वैपं द्वैप-अञ् (प्राणि-रजतादिभ्यो अञ्) १ व्याघ्रविकार, बाघसे सम्बन्ध रखनेवाली या बाघसे निकली या बनी हुई वस्तु। (क्ली०) २ व्याघ्रचर्म, बाघका चमड़ा। द्वीपेन चर्मणा परिवृतो रथः इति पुनरञ् (द्वैपवैयाघ्रादञ्। पा ४।२।१२) ३ व्याघ्रचर्म द्वारा आवृत रथ, बाघके चमड़ेसे ढका हुआ रथ। द्विपिन इदं अण्। (त्रि०) ४ द्वीपसम्बन्धी, बाघके चमड़ेका।

द्वैपक (सं० पु०) द्वीपे भवः धूमादित्वात् वुञ्। द्वीपभव, जो द्वीपान्तरमें हो।

द्वैपदिक (सं० पु०) द्विपदां ऋचं वेद अधीते वा उक्थादित्वात् ठक्। १ द्विपदाध्यायी, द्विपदा ऋक् पढ़नेवाला। २ तद्वेत्ता, द्विपदा ऋक् जाननेवाला।

द्वैपायन (सं० पु०) द्वीपं अयनं उत्पत्तिस्थानं यस्य, स एव, स्वार्थे अश्मादित्वात् वा अण्। व्यासदेव। इन

की कन्या मत्स्यगन्धाके गर्भसे यमुनाके किनारे एक द्वीपमें हुआ था इसीसे इनका नाम द्वैपायन पड़ा है।

महाभारतमें लिखा है कि सत्यवतीने पराशरसे वर पा कर उन्हींके साथ अपनी इच्छा पूरी की जिससे उन्हें गर्भ रहा। उसी समय उस गर्भसे व्यासका जन्म हुआ। योगवान् पाराशर ने उसी यमुनाद्वीपमें जन्मग्रहण किया। इन्होंने माताकी आज्ञा ले कर घोर तपस्या की थी। जन्म हो जानेके बाद ये द्वीपमें छिपा दिये गये थे, इसीसे इनका नाम द्वैपायन हुआ है। वेदव्यास देखो। २ ह्रदविशेष। इसमें दुर्योधन पाण्डवोंके भयसे भाग कर छिपा था। कुरुपाण्डवकी लड़ाईमें जब सब योद्धा मारे गये तब दुर्योधन बहुत दुःखित हो यहाँ भाग आये थे।

द्वैपारायणिक (सं० पु०) द्वयोः पारायणयोः समाहारः द्विपारायणं वर्त्तयति ठञ्, प्रत्ययविधौ तदन्तग्रहण प्रतिषेधेऽपि संख्यापूर्वस्य तदन्तग्रहणं। पारायणद्वय वर्ती, दो पारायण सतातुष्ठान करनेवाला।

द्वैप्य (सं० त्रि०) द्वीपे भवः द्वीपस्य इदं वा द्वीप यञ् (द्वीपादनुसमुद्रं यञ्। पा ४।३।१०, द्वीप सम्बन्धीय।

द्वैभाज्य (सं० त्रि०) १ द्विभागयुक्त, जिसके दो भाग हों। २ जो दो भागोंमें विभक्त हो।

द्वैमातुर (सं० पु०) द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्विमातृ-अण्-उत्व (मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११५) गणेश। गणेशकी द्विमातृत्वका विषय स्कन्दपुराणके गणेशखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

पूर्व समयमें वरेण्य राजाके घरमें लोगोंकी रक्षाके लिये, विप्रोंको मान्य करनेके लिये साधुओंको रक्षाके लिये और स्वधर्मको पालनेके लिये मैं जन्म लूंगा। इतना कह कर गणेशने पुष्पिका देवीके गर्भमें प्रवेश किया था। जब गर्भ महीना आया तब पुष्पिकाने एक विकट सन्तान प्रसव की जिसके चार बाहु, हाथी सरीखा शरीर और दांत थे। आँखें सुन्दर थीं और शरीर तेजोमय था तथा चारों हाथोंमें चार अस्त्र लिए हुए थे। पुष्पिका इस अद्भुत शिशुको देख कर रोने लगी कि यह क्या अरिष्ट उपस्थित हुआ। राजा वरेण्य पुष्पिकाका क्रन्दन सुन कर अमात्योंके साथ वहाँ आ पहुँचे और बालकको आकृतिको देख कर डर गये। बाद उन्होंने नौकरोंने कहा कि, 'पार्श्वमुनिके आश्रमके पास एक जलाशय है वहीं तुम लोग इसे छिपा आओ।' नौकर भी राजाके आज्ञानुसार बालकको उस तालाबमें छिपा आया। दूसरे दिन पार्श्वमुनि जब स्नान करनेके लिये जलाशय पर गये तो उस अद्भुत बालकको देख अत्यन्त आश्चर्यान्वित और भयभीत हो पड़े। 'मेरे आश्रममें इस बालकको कौन छिपा गया है? मालूम पड़ता है कि किसी देवताने तपस्याका फल देनेके लिये ऐसा शरीर धारण किया है अथवा स्वयं परमात्माने अपने इच्छानुसार सब मनुष्योंकी रक्षाके लिये ऐसा परिग्रह धारण किया है।' ऐसा कह कर पार्श्व मुनि उस बालकको अपनी आश्रममें ले जा कर यत्नपूर्वक पालने लगे। बालक को देख कर मुनीकी स्त्री दीपवत्साने अपने स्वामीसे कहा था, 'हे स्वामिन्! आप अत्यन्त आश्चर्य रूपधारी जिस बालकको प्राप्त कर लाये हैं, न जिनावरके समान आकारवाले हैं, ब्रह्मोंके आत्मस्वरूप हैं, बहुत तपस्याके फल हैं और योगियोंके परम ध्येय सनातन परब्रह्म हैं, सूर्य इन्होंसे तेज ले कर इन लोगोंको प्रकाश देते हैं। वेदान्तमें इन्हीं को 'नेति नेति' कहते हैं, ये नहीं हैं ये नहीं हैं।' ऐसा कह कर दीपवत्साने उस शिशुको गोदमें ले कर स्तन पिलाया। द्वितीयाके चन्द्रमाकी नाईं यह बालक प्रतिदिन बढ़ने लगा। यद्यपि पुष्पिकाके गर्भसे जन्मग्रहण कर दीपवत्साके पाले पोसे गये थे, इसीसे इनका एक नाम द्वैमातुर पड़ा है। २ जरासन्ध। जरासन्ध देखो। (त्रि०) ३ द्विमातृज, जिसकी दो माताएं हों।

द्वैमातृक (सं० पु०) द्वे मातरौ यस्य सः द्विमातृकः स एव स्वार्थे अण्। नदीवृष्टिजलजनित शस्यप्रधान देश, वह भूमि या क्षेत्र जहां खेती नदीके जल द्वारा भी की जाती है और वर्षा भी होती है।

द्वैमित्रि (सं० पु०) दो मित्र या मित्रके पुत्र।

द्वैयह्नकाल्य (सं० त्रि०) द्व्यहरूप कालो यस्य तस्य भावः ष्यञ्, पदान्तात्वो द्वाभ्यां पूर्वमैच्। द्व्यहकाल कालका भाव जो दो दिनोंमें हो उसका भाव।

द्वैयह्निक (सं० त्रि०) द्वयो रह्नोर्भवः ठञ्, समासान्त विधेरनित्यत्वात् न टच् ततो यकारादेशः। जो दो दिनमें किया जाय या दो दिनका हो।

द्वैयाहाविक (सं॰ त्रि॰) द्वयोराहावयो निपानयोर्भवः धूमादित्वात् वुञ् ततो ऐच्। जिसमें दो निपान या हौज हो।

द्वैयोग्य (सं॰ क्ली॰) द्वि संयुक्त, जिसमें दो मिला हो।

द्वैरथ (सं॰ क्ली॰) द्वे रथौ यत्र युद्धे स्वार्थे अण्। दो रथ द्वारा उपलक्षित युद्ध, वह लड़ाई जो दो रथों द्वारा की जाय।

द्वैराज्य (सं॰ क्ली॰) वह राज्य जो दो राजाओंमें विभक्त हो।

द्वैरात्रिक (सं॰ त्रि॰) द्वयो रात्रीर्भवः 'द्विगोर्वा रात्रहः संवत्सराच्च' इति सूत्रेण पक्षे ठञ्। जो दो रातमें हो।

द्वैराश्य (सं॰ क्ली॰) द्वौ राशी यस्य, तस्य भावः ष्यञ्। द्विविधराशियुक्तत्व, दो तरहकी राशियोंके मिले रहनेका भाव।

द्वैवर्षिक (सं॰ त्रि॰) द्वैवात्सरिक, जो दो वर्षके बाद हो।

द्वैविध्य (सं॰ क्ली॰) द्विविधस्य भावः ष्यञ्। १ प्रकार द्वय, दो प्रकार होनेका भाव। २ भ्रम, दुवधा।

द्वैशाण (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं ठञ्, तस्य अलुक्। दो शाण द्वारा क्रीत, जिसके खरीदनेमें दो शाण लगे हों।

द्वैपणीया (सं॰ स्त्री॰) द्वे पणमिव स्वार्थे अण् द्वैपणं तदर्हति छ। नागवल्लीका एक भेद।

द्वैसमिक (सं॰ त्रि॰) द्वयोः समयोर्वर्षयोर्भवः समायाः यत्, पक्षे ठञ्। वर्षद्वयभव, जो दो वर्षमें हो।

द्वैहायन (सं॰ क्ली॰) द्विहायनस्य भावः युवादित्वादण्। दो वर्षका भाव।

द्व्यंश (सं॰ क्ली॰) द्वयो वंशयोः समाहार, पात्रादित्वात् न ङीप्। भागद्वय, दो भाग।

द्व्यक्ष (सं॰ त्रि॰) द्वे अक्षिणी यस्य ष समासान्त। नेत्रद्वय युक्त, जिसके दो आँखें हों।

द्व्यक्षर (सं॰ क्ली॰) द्वयोरक्षरयोः समाहारः। १ वर्ण-द्वय, दो अक्षर। द्वे-अक्षरे यत्र। २ वर्णद्वयात्मक मन्त्र-भेद, एक प्रकारका मन्त्र जिसमें केवल दो अक्षर हों।

द्व्यङ्गुल (सं॰ त्रि॰) द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य, ततो अ, समासान्तः। अङ्गुलिद्वय परिमित दो उँगलीका। द्वयो-रङ्गुल्योः समाहारः। (क्ली॰) २ अङ्गुलिद्वयमात्र, दो उँगली।

द्व्यञ्जल (सं॰ पु॰) द्वावञ्जली परिमाणमस्य। (द्वित्रिभ्या-मञ्जलेः। पा ५।४।१०२) इति सूत्रेण टच् समासान्तः। अञ्जलिद्वय परिमित, दो अंजलिका। द्वयोरञ्जल्योः समा-हार। (क्ली॰) २ अञ्जलि द्वयमात्र, दो अञ्जलि।

द्व्यणुक (सं॰ क्ली॰) द्वौ अणू कारणे यस्य, कप्। परमाणु समवेतद्वय, वह द्रव्य जो दो अणुओंके संयोगसे उत्पन्न हो, दो अणुओंका एक संघात।

द्व्यन्य (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यामन्यः इति पञ्चमीतत्पुरुषः। द्विभिन्न, जो दो भागोंमें बँटा हो। द्वयोरन्ययोः समा-हारः। (क्ली॰) २ अन्य द्वयका सम्मीलन, किसी दो का मेल।

द्व्यर्थ (सं॰ त्रि॰) द्वौ अर्थौ यस्य। अर्थद्वययुक्त शब्दादि, वे शब्द जिनके दो अर्थ हों।

द्व्यशीति (सं॰ स्त्री॰) द्वयधिका अशीति अशीतिपर्य्यन्त-दाशात् न आत्। १ द्व्यधिकाशीति संख्या, वह संख्या जो गिनतीमें अस्सीसे दो अधिक हो, बयासीकी संख्या। (त्रि॰) द्वयशीत संख्याका पूरण, बयासीवाँ।

द्व्यष्ट (सं॰ क्ली॰) द्वि-हेम रूप्ये अश्नुते कारणतया व्याप्नोति अश-क्त। ताम्र, ताँबा।

द्व्यह (सं॰ पु॰) द्वयो रह्नोः समाहारः ततो टच् समा-सान्तः। दिनद्वय, दो दिन।

द्व्यहीन (सं॰ त्रि॰) द्वाभ्यां अहोभ्या निर्वृत्तादि द्विगो-र्वा 'रात्रह:संवत्सराच्च' इति सूत्रेण ख, सूत्रे अहरिति निर्देशात् न टच् समासान्तः। १ दिनद्वयसाध्य, दो दिनमें होनेवाला। (पु॰) २ क्रतुभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

द्व्यामुष्यायण (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

द्व्याचित (सं॰ त्रि॰) द्वे-आचिते सम्भवति अवहरति पचति वा ठञ्, तस्य लुक्। १ आचितद्वयके मध्य अपनेमें समावेशक। २ अवहारक, ले जानेवाला। ३ पाचक, पकानेवाला।

द्व्याढक (सं॰ त्रि॰) द्वे आढ़के सम्भवति अवहरति पचति वा, ठञ्, तस्य लुक्। १ आढ़कद्वयके मध्य अपने भागमें समावेशक। २ आढ़कद्वय अवहारक, चार सेर ढो कर ले

उनका वर्ण बादलसा है और वे इसमें या रक्तवस्त्र पहना करती हैं। उनका ध्यान करके दश बार मन्त्र जपना होता है, इस प्रकार ध्यान करनेसे वे चतुर्वर्ग प्रदान करती हैं।

ध (सं० क्लो०) दधाति सुखमिति धा-ड। १ धन, दौलत। (पु०) दधाति धरति विश्वमिति धा-ड। २ ब्रह्मा, जो विश्वको धारण करते हैं, उन्हींका नाम ध है। दधाति निधिं। ३ कुवेर, कुवेरके पास सब निधियां हैं, इसीसे कुबेरका नाम ध पड़ा है। दधाति जीवानां शुभाशुभमिति। ४ धर्म, धर्म ही जीवोंके शुभाशुभका कारण हैं। ५ धकार वर्ण।

धई (हिं स्त्री०) एक पौधा। इसके मूल या कन्दको छोटानागपुरको पहाड़ी जातियोंके लोग खाते हैं।

धंगर (हिं पु०) ग्वाल, अहीर, चरवाहा।

धंदर (हिं० पु०) एक प्रकारका धारीदार कपड़ा।

धंधक (हिं० पु०) १ काम धंधेका आडम्बर, बखेड़ा। २ एक प्रकारका ढोल।

धंधकधोरी (हिं पु०) काम धंधेका बोझ लादे रहनेवाला।

धंधरक (हिं० पु०) कामधन्धेका आडम्बर, जंजाल, बखेड़ा।

धंधरकधोरी (हिं० पु०) धंधकधोरी देखो।

धंधला (हिं० पु०) १ कपटका आडम्बर, झूठा ढोंग। २ हीला, बहाना।

धंधलाना (हिं क्रि०) छल छन्द करना, ढंग रचना।

धंधा (हिं० पु०) १ धन या जीविकाके लिये उद्योग, काम काज। २ व्यवसाय, उद्यम, पेशा।

धंधार (हिं० पु०) लकड़ीका लम्बा औजार। इससे भारी पत्थर और लकड़ी आदि उठाई जाती हैं।

धंधारी (हिं० स्त्री०) गोरखधन्धा जिसे गोरखपन्थी साधु लिये रहते हैं।

धंधाला (हिं० स्त्री०) कुटनी, दूती, दलाल।

धंधेरो (हिं० पु०) राजपूतोंको एक जाति।

धंधोर (हिं० पु०) १ होलिका, होली। २ आगकी लपट, ज्वाला।

धँस (हिं० पु०) जल आदिमें प्रवेश, डुबकी, गोता।

धँसन (हिं० स्त्री०) १ धँसनेको क्रिया या ढंग। २ गति, चाल।

धँसना (हिं० क्रि०) १ किसी नरम वस्तुके भीतर किसी कड़ी वस्तुका दाब पा कर घुसना गड़ना। २ इधर उधर दबा कर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पैठना। ३ नीचेकी ओर बैठ जाना। ४ किसी गड्ढी या नींव पर खड़ी वस्तुका जमीनमें और नीचे तक चला जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके, बैठ जाना।

धँसनि (हिं स्त्री०) धँसन देखो।

धँसान (हिं० स्त्री०) १ धँसनेकी क्रिया या ढंग। २ ढाल, उतार। ३ दलदल।

धँसाना (हिं० क्रि०) १ गड़ाना, घुभाना। २ प्रवेश कराना, पैठाना। ३ न चेके और बैठाना।

धँसाव (हिं० पु०) १ धँसनेको क्रिया। २ दलदल।

धक (हिं० स्त्री०) १ हृत्कम्पका शब्द या भाव, दिलके जल्दी जल्दी कूदनेका भाव या शब्द। २ उद्वेग, चोप, उमंग। ३ एक प्रकारकी जूं जो लोखसे बड़ी होती है।

धक (हिं० क्रि० वि०) अचानक, एकबारगी।

धकधकाना (हिं० क्रि०) १ उद्वेग, भय, धड़कना। २ भभकना, दहकना, लपटके साथ जलना।

धकधकाहट (हिं० स्त्री०) १ जो धक धक करनेकी क्रिया या भाव, धड़कन। २ आशंका, खटका।

धकधकी (हिं० स्त्री०) १ जी धक धक करनेकी क्रिया या भाव।

धकपक (हिं० स्त्री०) १ जीकी धड़कन, धकधकी। (क्रि० वि०) २ डरते हुए।

धकपकाना (हिं० क्रि०) भय खाना, डरना, दहशत खाना।

धकापेल (हिं० स्त्री०) धक्कमधक्का, रेलापेल।

धकार (हिं० पु०) 'ध' अक्षर।

धकियाना (हिं० क्रि०) धक्का देना, ढकेलना।

धकेलना (हिं० क्रि०) धक्का देना, टेलना, ढकेलना।

धकेलू (हिं० पु०) धक्का देनेवाला, ढकेलनेवाला।

धकैत (हिं० वि०) धक्कमधक्का करनेवाला, धक्का देनेवाला।

धक्कपक (हिं० स्त्री०) धकपक देखो।

धक्कमधक्का (हिं० पु०) १ बहुतसे मनुष्योंका परस्पर धक्का देनेका काम। २ रेलापेल, धकापेल।

धक्का (हि॰ पु॰) १ आघात, या प्रतिघात, टक्कर, रेला, झोंका। २ ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगोंके शरीर एक दूसरेसे रगड़ खाते हों, कसमकस। ३ दुःखकी चोट, सन्ताप। ४ कुश्तीका एक पेंच। इसमें अपना पैर आगे रख कर विपक्षीकी छाती पर दोनों हाथोंसे सहसा धक्का या थपेड़ दे कर उसे गिराते हैं। ५ ढकेलनेकी क्रिया, झोंका। ६ आपदा, विपत्ति, आफत।

धक्कामुक्की (हि॰ स्त्री॰) मुठभेड़, मारपीट।

धगड़ (हि॰ पु॰) उपपति, जार।

धगड़बाज (हि॰ वि॰) व्यभिचारिणी, कुलटा।

धगड़ा (हि॰ पु॰) उपपति, जार।

धगड़ी (हि॰ स्त्री॰) व्यभिचारिणी स्त्री, कुलटा औरत।

धगरा (हि॰ पु॰) धगड़ा देखो।

धगरिन (हि॰ स्त्री॰) चांगर जातिकी स्त्री। यह गर्भ जात शिशुका नाल काटती है।

धगली (हि॰ वि॰) १ पतिकी दुलारी, खसमकी मुंह लगी। २ कुलटा, छिनाल।

धग्गड़ (हि॰ पु॰) धगड़ देखो।

धचका (हि॰ पु॰) आघात, धक्का, झटका, झोंका।

धज (हि॰ स्त्री॰) १ सुन्दर रचना, शोभित करनेवाली। २ चाल, सुन्दर ढङ्ग। ३ बैठने उठनेका ढब, ढङ्ग। ४ ठसक, नखरा। ५ आकृति, शोभा, रूपरङ्ग।

धजबड़ (हि॰ स्त्री॰) तलवार।

धजा (हि॰ स्त्री॰) १ ध्वजा, पताका। २ धज, आकृति, डीलडौल। ३ कपड़ेकी धज्जी कतरन, चीर।

धजीला (हि॰ वि॰) सुन्दर ढङ्गका, तरहदार, सजीला।

धज्जी (हि॰ स्त्री॰) १ कटा हुआ लम्बा पतला टुकड़ा। २ लोहेकी चद्दर या कागजोंके पतले लम्बे कटे हुए धज्जी पट्टी।

धट (सं॰ पु॰) घ धन घटति सङ्कलति प्राप्नोति तौल्य तोलनमिति घ-घट अच्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। १ तुला, तराजू। धकार शब्दका अर्थ धर्म है और टकार शब्दसे कुटिल मरका बोध होता है, अतः इसमें जो धारण करे उसीका नाम धट है। २ तुलाराशि। ३ परीक्षाभेद, तुलापरीक्षा। ४ धर्म। ५ धन द्रव्य।

धटक (सं॰ पु॰) धटेन तुलया कायतीति कै-क। १ चतुर्दश बल परिमाण, एक प्राचीन तौल जो ४२ रत्तियोंका होता था। २ मन्दोष्ण, इसका पर्याय—धव धट, मन्दितव, स्थिर, मौर और मुरम्बर है।

धटकर्कट (सं॰ पु॰) धटस्य कर्कटः ६-तत्। तुलाके शिक्षाचारमें ईषद्युक्त कर्कटके सदृश आकार बीसकभेद, यह डोरेकी कील जो तराजूकी डंडीके जुड़े हुए सिरेमें लगा होता है।

धटपरीक्षा (सं॰ स्त्री॰) धटस्य तुलायाः परीक्षा ६-तत्। तुलापरीक्षा। तुलापरीक्षा देखो।

धटिका (सं॰ स्त्री॰) पञ्चसेरात्मक परिमाण, पांच सेरकी एक तौल, पसेरी। धटो स्वार्थे कन् टाप्। २ चीर, वस्त्र। ३ कौपीन, लंगोटी।

धटी (सं॰ स्त्री॰) धन घट्, निपातनात्, गस्य ट गौरादित्वात् ङीष्। १ चीर कपड़ेका वस्त्र। २ कौपीन, लंगोटी। ३ गर्भाधानके बाद स्त्रियोंके परिधेय वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो स्त्रियोंको गर्भाधानके पीछे पहननेको दिया जाता है।

ज्योतिषके अनुसार गर्भाधानके पीछे मूला, श्रवणा हस्ता, पुष्या, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद या मृगशिरा नक्षत्रोंमें कोई अच्छे दिन धटी वस्त्र पहनाना चाहिये।

धटिन् (सं॰ त्रि॰) १ तुलाधारक डांडी पकड़नेवाला। (पु॰) २ तुलाराशि। ३ शिव।

धटीदान (सं॰ क्ली॰) धटग वोरवस्त्र दान। गर्भाधानान्तर जो सम्प्रदायक चीरवस्त्र दान, गर्भाधानके पीछे स्त्रियोंको जो चीरवस्त्र दान दिया जाता है, उसीको धटी दान कहते हैं।

धड़ग (हि॰ वि॰) नङ्गा। इस शब्दका प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नङ्ग' शब्दके साथ समस्त रूपमें होता है।

धड़ (हि॰ पु॰) १ शरीरका मोटा बिचला भाग। इसके अन्तर्गत छाती पीठ और पेट होते हैं। सिर और हाथ पैरको छोड़ कटिके ऊपरके भागको धड़ कहते हैं। २ पेड़का सबसे मोटा बड़ा भाग। यह भाग जड़से कुछ दूर ऊपर तक रहता है और इससे डालियां निकल कर इधर उधर फैली रहती हैं पेड़ी, तना। (स्त्री॰) १ वह आवाज जो किसी वस्तुके एकबारगी गिरने, वेगसे गमन करने आदिसे होती है।

धड़क (हिं० स्त्री०) १ हृदयका स्पन्दन, दिलके कूदने या उछलनेकी क्रिया। २ हृदयके स्पन्दनका शब्द, दिलके कूदनेकी आवाज, तड़प, तपाक। ३ भय, आशङ्का आदिके कारण हृदयका अधिक स्पन्दन, अंदेशे या दहशतसे दिलका जल्दी जल्दी और जोर जोरसे कूदना। ४ आशङ्का, खटका, अंदेशा।

धड़कन (हिं० स्त्री०) हृदयका स्पन्दन, दिलका कूदना।

धड़कना (हिं० क्रि०) १ हृदयका स्पन्दन करना, छातीका धकधक करना। २ किसी भारी वस्तुके गिरनेकासा शब्द करना, धड़धड़ आवाज करना।

धड़का (हिं० पु०) १ दिलकी धड़कन। २ दिल धड़कनेकी आवाज। ३ खटका, अंदेशा, भय। ४ डंडे आदि पर रखी हुई काली हाँडी जो चिड़ियोंको डरानेके लिये खेतोंमें रखी जाती है। ५ गिरने पड़नेकी आवाज।

धड़काना (हिं० क्रि०) १ हृदयमें धड़क उत्पन्न करना, जी धकधक करना। २ आशंका उत्पन्न करना, जी दहलाना, डराना। ३ धड़धड़ शब्द उत्पन्न कराना।

धड़क्का (हिं० पु०) धड़का देखो।

धड़टूटा (हिं० वि०) १ जिसकी कमर झुकी हुई हो। २ कुबड़ा।

धड़धड़ (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी वस्तुके गमन करनेसे उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द। (क्रि० वि०) २ धड़धड़ शब्दके साथ। ३ बेधड़क, विना रुकावटके।

धड़धड़ाना (हिं० क्रि०) धड़धड़ शब्द करना।

धड़ल्ला (हिं० पु०) १ धड़धड़ शब्द, धड़ाका। २ भीड़ भाड़ और धूमधाम। ३ गहरी भीड़, कसामस।

धड़वा (हिं० पु०) एक प्रकारकी मैना।

धड़वाई (हिं० पु०) वह जो कोई चीज तौलता हो।

धड़ा (हिं० पु०) १ बाट, बटखरा। २ तुला, तराजू। ३ चार सेरकी एक तौल।

धड़ाका (हिं० पु०) धड़ धड़ शब्द।

धड़ाधड़ (हिं० क्रि० वि०) १ लगातार धड़ाकेके साथ। २ बराबर जल्दी जल्दी, बिना रुके हुए।

धड़ाबंदी (हिं० स्त्री०) १ धड़ा बाँधनेका काम। २ लड़ाईके पहले दो पक्षोंका अपनी अपनी सेनाका बल एक दूसरेके बराबर करना।

धड़ाम (हिं० पु०) ऊपरसे एकबारगी कूद या गिर कर जोरसे जमीन, पानी आदि पर पड़नेका शब्द।

धड़ी (हिं० स्त्री०) चार या पांच सेरकी एक तौल।

धत् (हिं० अव्य०) १ तिरस्कारके साथ हटानेका शब्द, दुतकारनेकी आवाज। २ वह शब्द जो हाथीको पीछे हटानेके लिये किया जाता है।

धत (हिं० स्त्री०) बुरा अभ्यास, खराब आदत, बुरी बान।

धतकारना (हिं० क्रि०) १ तिरस्कारके साथ हटाना, दुरदुराना। २ धिक्कारना, लानत देना।

धता (हिं० वि०) जो भगाया गया हो, जो दूर किया गया हो।

धतिया (हिं० वि०) बुरा अभ्यासवाला, बुरी लतवाला।

धतींगड़ (हिं० पु०) १ हट्टपुष्ट मनुष्य, मोटा ताजा आदमी, मुस्तंड। २ जारज, दोगला।

धतींगड़ा (हिं० पु०) धतींगड़ देखो।

धतूरा (हिं० पु०) दो तीन हाथ ऊँचा एक पौधा। इसके १०।१२ भेद हैं। पृथ्वीके समस्त ग्रीष्मप्रधान तथा नातिशीतोष्णप्रदेशमें यह बहुत उपजता है। सभी प्रकारके धतूरे विषैले होते हैं। बहुत प्राचीनकालसे औषधादिमें इनका व्यवहार चला आ रहा है। पर यूरोपखण्डमें बहुत थोड़े ही दिनोंसे इसका प्रचार है। प्राचीन ग्रीस और रोमके लोग इसका व्यवहार जानते थे, यह प्रतीत नहीं होता।

अरबी और संस्कृतसाहित्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्राचीनकालके लोग धतूरेके गुणोंसे अच्छी तरह जानकार थे। किन्तु वर्त्तमान समयमें इसकी विभिन्न श्रेणियोंमेंसे कौन औषधके काम आता है और कौन नहीं, इसके विषयमें अनेक मतभेद हैं। बहुतोंका कहना है, कि जिस धतूरेमें बैंगनी रंगके फूल लगते हैं, वह सफेद फूलवाले धतूरेसे अधिक विषैला होता है, पर यह भ्रम है। क्योंकि इस देशमें जितने प्रकारके धतूरे देखे जाते हैं, उनमेंसे प्रायः सभीमें उक्त दो रंगोंके फूल लग सकते हैं। अतः यह कह सकते हैं, कि फूल देख कर धतूरेके गुणका पता लगाना युक्तिसिद्ध नहीं है।

धतूरेके १०।१२ भेद होने पर भी वे साधारणतः सफेद

आध घण्टेके बाद उसे आध छटांक काले धतूरेके पत्तोंका रस पीनेको दे। इसके साथ साथ मिसरी खानेको देवें अथवा जिस किसी उपायसे हो सके, वमन वेग रोकनेकी कोशिश करते रहें। रोगी जिससे किसी दूसरेका अनिष्ट कर न सके, इस तरह उसे अच्छी तरह बांध कर दो पहर तक धूपमें बैठाये रखना चाहिये। ऐसा करनेसे रोगी धीरे धीरे उन्मत्त हो जायगा और ठीक पगले कुत्ते सरीखा काम करने लगेगा। यदि ये सब लक्षण दीख पड़ें, तो जानना चाहिये कि उसे सचमुच पगले कुत्ते ने काटा था और अब आरोग्य लाभ करनेमें कोई सन्देह नहीं है। शामको रोगीके शिर पर कुछ काल तक पानी ढालना चाहिये। इससे रोगी बहुत विरक्त हो जायगा और चीत्कार करके लोगों पर टूट पड़नेकी कोशिश करेगा। पीछे उसे मूअरका मांस, लोणी मछली, उरद और बड़ आदि खानेको देना चाहिये। इतना करने पर रोगीको निरोग समझे और सभोसे उसे प्रतिदिन थोड़ा खाने को दे। जिस रोगीको इससे पहले ही जलातङ्क पहुंच गया हो और यदि उसकी चिकित्सा करनी हो, तो सबसे पहले उसकी खोपड़ीको तेज छुरीसे थोड़ा चिर कर कुछ लोहू बाहर निकाल डालना चाहिये। बाद काले धतूरेके पत्तोंसे उस जगह रगड़ देना चाहिये और साथ साथ थोड़ा रस भी पिला देना चाहिये।"

डाक्टर धर्मदास वसु कहते हैं, "मैं इस पौधेको कई बार काममें लाया हूं। शरीरका कोई स्थान सूज कर जब दर्द होने लगता है, तब मैं वहां ताजे पत्तोंका रस लगा देता अथवा उसकी एक पुलटिस तैयार कर देता हूं। आंखका दर्द दूर करनेमें भी ताजे पत्तोंका रस बहुत उपकारी है। इससे आंखकी सूजन बिलकुल जाती रहती है। सूखे पत्ते और छोटी डालियोंको जला कर उसका धूंआ मुंहसे खींचनेसे दमा रोग जाता रहता है और चिलममें रख कर तमाकूकी नाईं पीनेसे दमाका वेग कम जाता है, किन्तु अधिक धूमपान करनेसे शिर चकराने लगता और मूर्च्छा आ जाती है। सुनते हैं, कि इसके बीज जलातङ्करोगमें विशेष उपकारी है। और इसकी बाल प्रमेगमें विशेष व्यवहृत होती है।"

फिर किसी चिकित्सकका कहना है, कि कानके दर्दमें काले पत्तोंका रस दो तीन बूंद कानमें डालनेसे बहुत उपकार होता है।

डाक्टर थर्णटन कहते हैं, "दमारोगमें सूखे पत्तोंका धूमपान फायदामन्द है। वातकी यन्त्रणा दूर करनेके लिये तथा ग्रन्थिस्फीति दबानेके लिये पत्तोंके रसका बाह्य प्रयोग करना चाहिये और जहां स्त्रियोंके स्तनमें स्फोटक होनेकी सम्भावना हो, वहां उसे दूर करनेके लिये तथा अधिक दूधका गिरना रोकनेके लिये इसके पत्तोंकी पुल्टिस देनी चाहिये।

युक्तप्रदेशके हकीम लोग काटे हुए स्थानका दर्द दूर करनेके लिए रोगीको उसकी सूखी जड़ आध ग्रेन मात्रा में पानके साथ खिलाते हैं, इसके बीज भी ध्वजभङ्गरोग चङ्गा करनेके लिये निम्नलिखित प्रकारसे व्यवहृत होते हैं:- १५ धतूरा फलके बीजको अच्छी तरह सुखा और चूर कर उसे दश सेर गायके दूधके साथ अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। पीछे उस दूधसे जहां तक हो सके घी निकाल लेते हैं। प्रति दिन दो बार करके उस घीको जननेन्द्रियमें लगाते और एक बार करके चार ग्रेन खिलाते हैं।

मह्हिसुरमें इस रोगको आराम करनेके लिये दहीके साथ प्रतिदिन एक बार करके इसके पत्तोंका रस खानेको दिया जाता है।

किसी दूसरे डाक्टरका कहना है, इसके पत्तोंका वात पीड़ामें वाह्यप्रयोग विशेष फलप्रद है।

कर्णमूल प्रदाहमें इसको गाढ़ा करके प्रलेप देनेसे शूजन और व्यथा कम हो जाती है।

इसके पत्तोंको सिद्ध कर उसकी पुल्टिस स्फोटक इत्यादिमें देनेसे यन्त्रणा दूर होती है और पीप बहुत जल्द बाहर निकल आती है। फिर धतूरे और हल्दी-की एक साथ पीस कर प्रलेप देनेसे स्तनप्रदाह जाता रहता है।

अब सफेद धतूरेका विषय लिखा जाता है। सफेद धतूरा इस देशमें बहुतायतसे उत्पन्न होता है। इसके फूल काले धतूरेके फूलोंसे कुछ छोटे हैं। इसके सिवा और कोई प्रभेद नहीं है। रंग सफेद अथवा बाहरी भाग कुछ नीला होता है।

सफेद धतूरेके दो भेद हैं उन दोनोंके अंग्रेजी वैज्ञानिक नाम यथाक्रम Datura alba और Datura stramonium है। औषधमें Datura albaके बीज और पत्ते डाक्टरोंसे व्यवहृत होते हैं। बीजसे अरिष्ट क्षार और प्रतीप से सार होता तथा पत्तोंसे पुल्टिस बनती है। सूखे पत्तोंका धूम पान करनेसे दमा, श्वासकास, आमवात, स्नायुविकारका आक्षेपोक्ति आदि रोग जाते रहते हैं। पत्तोंसे जो क्षार और अरिष्ट बनता है उससे मादकता और अवसन्नता उत्पन्न होती है। कुछम काम कर बहुतसे डाक्टर अफीमके बदले इसी अरिष्टका व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं और इसके बीस बूंद एक ग्रेन अफीमके समान कार्यकारी हैं। सारका भी इसी तरह बेलेडोनाके बदले काममें लाते हैं। परिमाण चौथाई ग्रेन दिन भरमें तीन बार है। यह मात्रा क्रमशः बढ़ा कर तीन ग्रेन तक हो जाती है। डाक्टर लिखते हैं कि अस्थिशुक्रसन्धिमें, वातजुष्ट हाथ और पैरोंकी गांठकी सूजनमें, बवासीर अर्बुद अथवा स्तनोंकी कठिन फोड़ेमें पत्तोंकी पुल्टिस देनेसे यन्त्रणा दब जाती है। खांसी और दीर्घकालस्थायी दमा सम्बन्धी पीड़ामें अक्सर पत्तोंका "प्लेस्टर" काममें दिया जाता है, किन्तु उपरमें किसी प्रकारका फोड़ा या जख्म हो, तो पुल्टिस अथवा प्लेस्टर देनेकी कुछ भी जरूरत नहीं। क्योंकि उससे भीतरमें विष प्रवेश कर जानेकी सम्भावना रहती है। बहुतसे स्तनपीड़ामें दूधका गिरना रोकनेके लिये इस देशकी स्त्रियां धतूरेके पत्तोंकी पुल्टिस देती हैं। धतूरेके प्रयोगसे आंखोंकी पुतली फैल जाती है और जब यदि अधिक विस्तृत हो जाय तो समझना चाहिये कि और अधिक इसका प्रयोग करनेसे अनिष्ट होगा।

किसी तरह पक्षाघातके बाद उत्पन्न हो तो कोई कोई चिकित्सक अन्य उत्कृष्ट औषधके नहीं रहनेसे धतूरेका ही व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं। अपस्मारके कालमें दिनमें तीन चार बार धतूरेके पत्तोंकी पुल्टिस देनी चाहिये। यदि स्तनके ऊपर घाव आदि निकले हों, तो पहले उसे कुछ गरम जलसे परिष्कार कर देना उचित है। बाद धतूरेका अरक बोतलसे सोलह बुन्द जलमें मिला कर दिनमें तीन चार बार करके पिलाना चाहिये। जब तक आक्षेप घटने न लगे तब तक औषधका प्रयोग करते रहना चाहिये। किन्तु इसी बीच यदि आंखोंकी पुतलियां अस्वाभाविकरूपसे विस्तारित हो जाय और मस्तिष्कके ऊपर औषधका असर पड़े, तो धतूरा सेवन करनेमें कुछ हानि नहीं है। यदि आक्षेप कुछ विलम्बसे आरम्भ हो एक बार और कुछ काल तक स्थायी रहे तो जब तक आक्षेप बन्द न हो तब तक औषधका प्रयोग इसी तरह ठहर ठहर कर करना उचित है। शरीरके ऊपर धतूरेकी क्रिया लक्षित होने पर भी यदि रोग कुछ भी न हटे तो और अधिक प्रयोगसे कुछ उपकार नहीं है वरन् अनिष्ट ही होनेकी सम्भावना रहता है। इसमें अक्सर बीच बीचमें रोगीके मेरुदण्ड पर बर्फका मरहम अच्छी तरह लगाना उचित है। रोगीको एक अन्धेरे घरमें रखे और उसके शरीरमें जिसमें ठण्डी हवा न लगे ऐसा ही प्रबन्ध करते रहें। प्रयोजन पड़ने पर तारपीनकी पिचकारी दे कर रोगीका मल त्याग करा सकते हैं। रोगीको सबल बनाये रखनेके लिये शराब और ब सी अण्डेको अच्छी तरह दूधके साथ मिला कर उसी दूधको पीने देना चाहिये अथवा और कोई दूसरा पुष्टिकर एवं उत्तेजक खाद्य पदार्थ दे सकते हैं।

धतूरिया (हिं॰ पु॰) ठगोंका एक सम्प्रदाय। पूर्व समयमें ये लोग पथिकोंको धतूरा खिलाकर बेहोश कर देते और लूट लेते थे।

धत्ता (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका छन्द। इसके विषम चरणोंमें १८ और सम चरणोंमें १३ मात्राएं होती हैं। अन्तमें तीन लघु होते हैं। यह दो दो पंक्तियोंमें लिखा जाता है।

धत्तानन्द (हिं॰ पु॰) एक छन्द। इसकी प्रत्येक पंक्तिमें ११+७+१३के विरामसे ३१ मात्राएं होती हैं। अन्तमें एक नगण होता है।

धत्तूर (सं॰ पु॰) धयति पिबतीति प्राणिनि धे बाहुलकात् उरच् धत्तेरादित्वात् साधु। धुस्तूर, धतूरा।

धधक (हिं॰ स्त्री॰) १ आगकी लपटके ऊपर उठनेकी क्रिया आगकी चौड़ लपट, लौ।

धधकना (हिं॰ क्रि॰) १ लपटके साथ जलना, दहकना। २ प्रज्वलित करना, दहना

धन (सं० क्लो०) धनति रौतीति धन रवे पचाद्यच्। १ स्नेहपात्र, अत्यन्त प्रिय व्यक्ति, जोवनसर्वस्व। २ गोधन, चौपायोंका झुण्ड जो किसीके पास हो। ३ जीवनोपाय। ४ द्रविण, सम्पत्ति, द्रव्य, दौलत।

इतरमें लिखा है, कि धन रहनेसे कुलहीन मनुष्य भी कुलीन कहलाता है। मनुष्य धन द्वारा सब प्रकारकी तकलीफोंसे उत्तीर्ण होते हैं। धनके समान श्रेष्ठवस्तु और दूसरा कोई नहीं है। इस कारण सभीको यत्नपूर्वक धन उपार्जन करना चाहिये।

इसका संस्कृत पर्याय—द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, रिक्थ, वसु, हिरण्य, द्रविण, द्युम्न, अर्थ, रैविभव, काञ्चन, लक्ष्मभोग, सम्पद, वृद्धि, श्री और व्यवहार्य है। (राजनि०) शब्दरत्नावलीके मतसे—रै, भोग और स्व है। वैदिक पर्याय—मघ, रेक्णः, रिक्थ, वेद, वरिव, श्वात्र, रत्न, रयि, क्षत्र, भग, मीलु, गय, द्युम्न, इन्द्रिय, वसु, राय, राध, भोजन, तना, नृम्ण, बन्धु, मेधस्, यशस्, ब्रह्म, द्रविण, श्रव, वृत्र और वृत है। (वेदनिघण्टु २ अ०)

पितृलोकमें धन प्राणके समान माना गया है। जो धन है, वही वहिश्चर प्राण है, जो धन चुराता है, वह मानो प्राण चुराता है। इसका तात्पर्य यह कि धन प्राणतुल्य है। (कूर्मपु० ३१ अ०)

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि शुक्ल, शबल और कृष्ण यही तीन प्रकारके धन हैं। फिर इस धनके सात विभाग बतलाये हैं। क्रमायत्त, प्रीतिदाय और भार्याके साथ प्राप्त ये तीन प्रकारके धन सब वर्णोंके अविशेष धन नहीं हैं। इसके सिवा हरएक वर्णके लिए तीन प्रकारका विशेष धन निर्दिष्ट है। ब्राह्मण याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करके जो धन प्राप्त होता है, वह विशुद्ध है और यही ब्राह्मणोंका विशेष धन है। युद्ध करके जो धन उपार्जन किया जाता, अर्थात् करज, दण्डज, और वध्य व्यक्तिका अपहारज यह तीनों क्षत्रियोंका विशेष धन है। वैश्योंका कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करना ही विशेष धन है। शूद्रका केवल अनुग्रहप्राप्ति अर्थात् दया दिखला कर जो धन उन्हें दिया जाता है, वही उनका विशेष धन है। ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि विपद्में पड़ गये हों, तो वे सूदखोरी, कृषिवाणिज्य आदि कर सकते हैं, इसमें वे पापभागी नहीं हो सकते।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिकके भेदसे धन तीन प्रकारका है।

तामस धन—पाशवताके लिये अर्थात् अत्याचारादि दिखला कर जो धन उपार्जन किया जाता है, दूसरेको कष्ट दे कर जो धन प्राप्त किया जाता, कृत्रिम रत्नप्रकृति तथा समुद्रयान गिरिरोहण आदि दुष्कर कर्म द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है, व्याज अर्थात् शठ हो कर ब्राह्मणोंका वेश बना कर जो धन जमा किया जाता है, उसे कृष्ण अर्थात् तामस धन कहते हैं।

राजस धन—कुसीद (सूदखोरी), वाणिज्य, कृषि, शुल्क तथा नाचगान करके जो धन जमा किया जाता है तथा किसीका उपकार कर उसके प्रत्युपकार स्वरूप जो धन मिलता है उसे राजस धन कहते हैं। (शुद्धितत्व)

सात्त्विक धन—श्रुत अर्थात् अध्यापनादि द्वारा प्राप्त धन, शौर्य अर्थात् जयादिलब्ध धन, तपस्या अर्थात् जप होम स्वस्त्ययनादि द्वारा लब्ध धन, कन्याके साथ आगत धन अर्थात् कन्याके श्वशुरोंने उसे जो धन दिया है, शिष्यागत अर्थात् शिष्यने गुरुको गुरुदक्षिणा स्वरूप जो धन दिया है, होत्रकार्य द्वारा प्राप्त धन तथा उत्तराधिकारियोंसे जो धन मिलता है, वह विशुद्ध और सात्त्विक धन है। (शुद्धितत्व)

कुब्ज, वामन, खञ्ज, क्लीव, श्वित्ररोगी, पगला और अंधा ये सब धनके अधिकारी नहीं हो सकते।

(वामनपु० ७५ अ०)

भार्या, दास और पुत्र ये तीनों निर्धन हैं। ये तीन जिसके हैं अर्थात् जिसके पुत्र स्त्री आदि हैं, वे उसीका धन पाते हैं। (मत्स्यपु० ३१ अ०)

यत्नपूर्वक धन उपार्जन करना हरएकका कर्त्तव्य है, किन्तु अन्याय तौरसे धन जमा करना बिलकुल ठीक नहीं। न्यायपूर्वक यदि थोड़ा भी धन उपार्जित हो तो उसीमें सन्तोष रखना चाहिये।

मनुने कहा है—दूसरेको कष्ट दिये बिना, वेदविरोधी, नास्तिक, दुष्ट और दुर्जनके घर गये बिना तथा आत्माको क्लेश पहुंचाये बिना जो कुछ थोड़ा धन जमा किया जाय उसीको यथेष्ट समझना चाहिये अर्थात् उसीमें सन्तोष रखना बुद्धिमानोंका काम है।

"आपदर्थे धनं रक्षेत्" इस नीतिके अनुसार अर्थात् आपद्कालके लिये थोड़ा धन अवश्य जमा रखना चाहिये। किन्तु अति सञ्चय करना भी हानिकारक है। रामायणके लङ्काकाण्डमें श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे धनको इस प्रकार प्रशंसा की है—

जिस तरह पर्वतसे छोटी छोटी नदियां निकलती हैं, उसी तरह विस्तृत धनसे सब क्रियायें प्रवर्त्तित होती हैं। जो धनहीन हैं, वे लोगोंके निकट मन्दबुद्धि समझे जाते हैं। ग्रीष्मकालमें छोटी छोटी नदियां जिस तरह सूखी पड़ जाती हैं, उसी तरह निर्धन मनुष्य सब क्रियाओंसे वञ्चित हो जाते हैं। जिनके धन है उन्होंके बन्धुबान्धव हैं, वे ही मूर्ख होने पर भी पण्डित तथा गुणी कहलाते हैं और जिनके धन नहीं है उनके कोई नहीं है। धन रहनेसे हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम और दम आदि उत्पन्न होते हैं। दुर्दिन आ जाने पर जिस तरह ग्रहगण खराब फल देते हैं, उसी तरह धन नहीं रहनेसे सब कोई उनकी अवज्ञा करते हैं। धन रहनेसे सब प्रकारका धर्म कर्म किया जा सकता है। फिर धन होनेसे नरकका मार्ग परिष्कार होता है। संसारी व्यक्तिके लिये धन अत्यावश्यक है, किन्तु मुमुक्षुके लिये इसका ठीक विपरीत है। उन लोगोंका यही एक मात्र परित्यागका विषय है। शङ्कराचार्यने कहा था कि इस संसारमें परित्याज्य विषय क्या है? "किमत्र हेयं कनकं च कान्ता" कञ्चन और स्त्री ये दोनों हेय अर्थात् परित्यागके योग्य हैं। जब तक धनादिमें मोह रहेगा, तब तक जीवका कैवल्य पद अगम ही रहेगा। शङ्कराचार्यने और भी कहा है—

'अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यं।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः॥'
(मोहमुद्गर)

अर्थ अर्थात् धनको प्रतिदिन अनर्थ समझना चाहिये। इससे कुछ भी सुख नहीं मिलता। धनियोंके पुत्र होनेसे भी सन्देह बना रहता है, यह रीति सब जगह कही गई है।

जो धनकी इच्छा करते हैं, उन्हें अग्निकी आराधना करनी चाहिये। अग्निदेवके सन्तुष्ट होनेसे धन मिलता है।

धन नहीं रहनेसे जीविकानिर्वाह नहीं होती है, इसीसे ब्राह्मणोंकी जीविकाके लिये धनोपार्जनके विषयमें मनुने इस प्रकार उपदेश दिया है—

ब्राह्मणको उचित है कि वे गुरुके घरमें जीवन-कालका एक चौथाई भाग रह कर पीछे विवाह करके घरमें रहें। गार्हस्थ्यधर्मका प्रतिपालन करनेमें धन-का प्रयोजन पड़ता है। तब उन्हें अद्रोह अर्थात् दूसरे को बिना कष्ट पहुंचाये शीलाञ्छादि वृत्ति अवलम्बन कर अल्पद्रोह (याचना करके लोगोंसे धन मांगनेका नाम अल्पद्रोह है) द्वारा धन उपार्जन कर जीवन धारण करना चाहिये। मातापिता और कुटुम्बोंके प्रतिपालनके लिये वे अनिन्दित निज कर्म द्वारा तथा शरीरको कष्ट दिये बिना धन सञ्चय कर सकते हैं। धनसञ्चयके लिये कौन काम निन्दित और कौन काम अनिन्दित है वह कहते हैं—ऋत अमृत मृत, प्रमृत और सत्यानृत इन के द्वारा ब्राह्मण धन सञ्चय कर जीवन निर्वाह कर सकते हैं। श्ववृत्ति अर्थात् नौकरी करके धन जमा करना ब्राह्मणोंके लिये बिलकुल मना है। खेतोंसे धान काट ले जानेके बाद जो सब धान वहां गिरे रहते हैं उन्हें एकत्र कर जीवन धारण करनेका नाम उञ्छवृत्ति है। इसी उञ्छवृत्तिका नाम ऋत है। जो आपसे आप मिल जाय उसे अमृत कहते हैं। (क्योंकि इसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, बल्कि लाभ ही होता है, इसीसे इसका नाम अमृत हुआ।) याचना कर अर्थात् भीख मांग कर जो धन जमा किया जाता है उसे मृत कहते हैं। (लोगोंसे कुछ चीज मांगना मरनेके बराबर है इसीसे याचित धनका नाम मृत पड़ा है।) जमीन जोत कर जो सब अनाज उपजाये जाते उन्हें प्रमृत कहते हैं। (चूंकि जमीन जोतते समय अनेक प्राणियोंका वध होता है, इसीसे यह अत्यन्त कष्टकर और पापजनक होनेके कारण इसका नाम प्रमृत हुआ है।) वाणिज्य द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है उसे सत्यानृत कहते हैं। (वाणिज्य करनेमें सच और झूठ बोलना पड़ता है, इसीसे इसका नाम सत्यानृत पड़ा है।) इन्हीं सब वृत्तियोंसे धन जमा कर ब्राह्मणोंको जीवन निर्वाह करना चाहिये, किन्तु श्ववृत्ति अर्थात् नौकरी करके कभी धन

बुध हो वह मनुष्य भी धनशाली होता है। जिसके जन्म-लग्नसे पाँचवें स्थानमें यदि रवि स्वक्षेत्रमें तथा ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति रहे, तो वह मनुष्य प्रभूत धनाधिपति होता है। जिसके जन्मलग्नसे पाँचवें स्थानमें बृहस्पति स्वक्षेत्रमें तथा ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र और मङ्गल रहे, वह मनुष्य भी धनशाली होगा। जिसके जन्मलग्नमें रवि स्वक्षेत्रमें रहे और उन पर मङ्गल वा बृहस्पतिका योग अथवा दृष्टि पड़ती हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है। जिसके जन्मलग्नमें मङ्गल स्वक्षेत्रमें रहे और चन्द्र, शुक्र, वा शनिका योग हो वा उनकी दृष्टि पड़ती हो, उस हालतमें भी मनुष्य धनवान् होता है। जिसके जन्मलग्नमें बृहस्पति स्वक्षेत्रमें हो और उन पर यदि बुध मङ्गलकी दृष्टि पड़ती हो, तो वह अवश्य ही धनी होगा। जिसके जन्मलग्नमें शुक्र स्वक्षेत्रमें हो और शनि वा बुधका योग हो वा उनकी दृष्टि पड़ती हो, वह मनुष्य भी धनवान् होता है।

धनहीन योग—जिसके लग्नाधिपति बारहवें स्थानमें और बारहवें स्थानके अधिपति लग्नमें रह कर मारकाधिपतिसे युक्त वा देखे जाते हों, वह मनुष्य धनहीन होता है। लग्नाधिपति छठें स्थानमें और छठें स्थानके अधिपति लग्नमें रह कर मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो वह अवश्य निर्धन होगा। जिसका लग्न यदि चन्द्र और केतुसे युक्त वा दृष्ट हो, तो वह मनुष्य राजवंशमें जन्म ले कर भी धनहीन होता है। यदि लग्नाधिपति ग्रह षष्ठाधिपति, अष्टमाधिपति वा द्वादशाधिपतिसे युक्त हो कर पापग्रहसे देखे जाते हों, अथवा वह लग्नाधिपति ग्रह पञ्चमाधिपतिसे दृष्ट वा युक्त हो कर किसी शुभग्रहसे न देखे जाते हों, तो वह मनुष्य धनहीन होगा।

पञ्चमाधिपति यदि छठें स्थानमें और नवमाधिपति दशवें स्थानमें रहे और उन पर यदि मारकाधिपतिकी दृष्टि पड़ती हो, तो जातव्यक्ति निर्धन होता है। लग्नगत पापग्रह नवमाधिपति वा दशमाधिपतिसे नियुक्त हो कर मारकाधिपतिसे युक्त वा देखे जाते हों, तो जात मनुष्य धनरहित होता है। जिस जिस घरके अधिपति अष्टम, षष्ठ और द्वादश स्थानमें रहे, उस उस घरमें यदि अष्टमाधिपति, षष्ठाधिपति और द्वादशाधिपति रहते हों तथा उन पर पापग्रह वा शनिकी दृष्टि पड़ती हो, तो वह जातबालक दुःखी, चञ्चल और धनहीन होता है। जिस नवांशमें चन्द्रमा अवस्थान करते हों और उस नवांशके अधिपति यदि मारक स्थानमें हों अथवा मारकाधिपतिसे युक्त हों, तो वह मनुष्य दरिद्र होता है। लग्नाधिपति जिस नवांशमें हो और उस नवांशके अधिपति यदि द्वादश, षष्ठ वा अष्टम स्थानमें रह कर मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो जात बालक धनहीन होगा। लग्नाधिपति षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थानमें रहकर यदि पाप संयुक्त हो और मारकाधिपतिसे देखे जाते हों, तो जात-मनुष्य राजवंशीय होने पर भी धनहीन होता है। (पाराशरी)

धनयोगके विषयमें सनातन यवन—लग्न और चन्द्रमाके दशवें स्थानमें जो ग्रह रहेगा, उसी ग्रहके द्वारा धनप्राप्तिका विचार करना होगा। यदि लग्न और चन्द्रके दशवें स्थानमें रवि हो, तो मनुष्य पितृधन पाता है। यदि चन्द्रमा हो, तो मातासे, यदि मङ्गल हो, तो शत्रुसे, बुध हो, तो मित्रसे, बृहस्पति हो, तो भाईसे, शुक्र हो, तो स्त्रीसे और यदि शनि हो, तो नौकरसे धन मिलेगा, ऐसा विचार करना चाहिये। यदि लग्न और चन्द्रमाके दशवें स्थानमें कोई ग्रह न रहे, तो चन्द्र और सूर्यके दशमाधिपति ग्रह जिस नवांशमें रहेंगे उसी ग्रहको राशिके अधिपति-ग्रहकी वृत्तिका अवलम्बन कर धन उपार्जन करना चाहिये। रविके नवांशमें रहनेसे तृण अर्थात् सुगन्धिद्रव्य, सुवर्ण, पशम और औषध व्यवसायके अवलम्बन द्वारा. चन्द्रके नवांशमें रहनेसे कृषिकर्म, जलज द्रव्यका व्यवसाय, वा स्त्रियोंके आश्रयमें रह कर; मङ्गलके नवांशमें रहनेसे धातु और मट्टीका व्यवसाय, अग्निक्रिया, अस्त्रव्यवसाय, अथवा साहसिक कार्य द्वारा; बुधके नवांशमें रहनेसे लिपिव्यवसाय अथवा शिल्पकार्य द्वारा. बृहस्पतिके नवांशमें रहनेसे मनुष्य द्विजकर्त्तव्य याजन-व्यवसाय, देवसेवा और खनिज पदार्थके व्यवसायद्वारा; शुक्रके नवांशमें रहनेसे रत्न, रौप्य और गोमहिषादि व्यवसायके अवलम्बनद्वारा एवं नवांशाधिपति यदि शनि हो, तो अधिक परिश्रम, वधकार्य, भारवहन, नीचकर्म और

द्विलग्नाधिनाथ द्वारा धन प्राप्त होता है। कर्माधिपति त्रिक स्थानमें रहें तो उस घरको द०। और धनाढ्य मानी प्रचुर धनप्राप्ति और कार्यसिद्धि होती है।

लग्नाधिपति यदि मित्रके गृहमें रहे, तो मित्रसे और यदि निजगृहमें रहे तो निजसे अर्थ प्राप्त होता है। यदि वह ग्रह तुङ्गस्थ हो, तो निज बाहुबल द्वारा धनोपार्जन होगा, ऐसा स्थिर करना चाहिये। धनवान् धनपति यदि ग्यारहवें स्थानमें लग्न और धनस्थानमें रहे, तो अनेक तरहसे धन मिलते हैं।

धनवान् योग—जन्मकालके निज धनु मीन, मेष कर्कट और वृश्चिक राशिमें रवि और मङ्गलके एकत्र रहनेसे धनयोग होता है अर्थात् वह मनुष्य धनवान् होता है।

धनहीन योग—लग्नसे दशवें स्थानमें, रविके ग्यारहवें स्थानमें और चन्द्रसे आठवें स्थानमें यदि कोई ग्रह न रहे तो जात बालक निर्धन होता है। (बृहज्जातक)

चन्द्र और शनि यदि एक घरमें रहें अथवा शुक्र और मङ्गल एक जगह रहें, तो वह मनुष्य धनहीन होता है।

धनप्राप्तिनक्षत्र—अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्या, उत्तर फल्गुनी, हस्ता, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद और रोहिणी हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

६ [illegible]। धन-राशि पथ। ७ शब्द। ८ योगचिह्न + (Plus)

धनक (स० पु०) धनस्य काम: इच्छा धन-कन्। १ धनेच्छा, धनकी इच्छा। २ राजा कृतवीर्यके पिता।

धनक (हिं० पु०) १ धनुष, कमान। २ टोपी आदिमें लगाने जानेका एक प्रकारका पतला गोटा। ३ एक प्रकारकी ओढ़नी।

धनकटी (हिं० स्त्री०) १ धानकी कटाई या कटाईका समय। २ एक प्रकारका कपड़ा।

धनकर (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी कड़ी मट्टी। इसमें धान बोया जाता है और जब तक अच्छी वर्षा नहीं होती तब तक इसमें हल नहीं चल सकता है। २ धानका खेत।

धनकुट्टी (हिं० स्त्री०) १ धान कूटनेका काम। २ धान कूटनेका औजार, ओखली, मूसल। ३ एक प्रकारका लाल छोटा कीड़ा। यह हवामें इधर उधर उड़ता है। इसका सारा बदन लाल पर मुंह काला होता है। यह अपना अगला धड़ इस प्रकार नीचे ऊपर हिलाता है मानो वे कूटनेको टेकते।

धनकुबेर (हिं० पु०) वह जो कुबेरके समान धनी हो, अत्यन्त धनी मनुष्य।

धनकेलि (स० पु०) धने केलि: क्रीड़ा यस्य। कुबेर।

धनकोटा (हिं० पु०) हिमालयके कम ऊंचे स्थानोंमें मिलनेवाला एक झाड़ या पौधा। इससे नैपाली कागज बनता है।

धनक्षय (स० पु०) धनस्य क्षय:। धनका क्षय, अर्थका नाश।

धनखर (हिं० पु०) वह खेत जिसमें धान बोया जाता हो धनाक।

धनगर्व (स० पु०) धनस्य गर्व: ६ तत्। धनजनित अहङ्कार, धनका घमंड।

धनगांव—मध्य-भारतका एक सामन्त राज्य। यहांके अधिपतिका उपाधि ठाकुर है। ये सिन्धिया और होलकर दोनोंसे वृत्ति पाते हैं और अंगरेजोंको कर देते हैं।

धनघाट—बङ्गालके हजारीबाग जिलेका एक गिरिसङ्कट। सहरघाटीसे भी कर गिरिसङ्कट तक एक पक्की सड़क बनी गई है। इस राह हो कर गाड़ी आदिके नहीं चलनेसे वाणिज्य नहीं होता।

धनगुप्त (स० पु०) १ वह जो बहुत यत्नसे धनको रक्षा करते हैं। २ एक वणिकका नाम।

धनचन्द्र—छन्दानुशासन मधुरवृत्तावलीका नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

धनचिड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

धनच्छु (स० स्त्री०) धन च्छति नाशयतीति च्छो-बाहुलकात् उ। कठ्ठु पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया।

धनञ्जय (स० पु०) धनं जयति जन्यादयति जि खच् मुम्। १ अग्नि, आग। 'धनञ्जयेन हुताशनम्' अग्निसे धनकी प्रार्थना करनी चाहिये अग्निही धनाधिष्ठाता देवता हैं, इसीसे धनञ्जय शब्दसे अग्निका बोध होता है। २ चित्रकाय, चीता। धनं जयति अतीन् निर्जित्य धन मति जि-खच् मुम्। ३ तृतीय पाण्डव, अर्जुन।

अर्जुनने कहा है, कि मैं समस्त देश जीत कर केवल धनका आश्रय करके उसमें अवस्थान किया था, इसीसे मेरा नाम धनञ्जय हुआ है। (महाभारत ४।४२।१३)

काशीदासके महाभारतमें धनञ्जय नामकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

किसी समय योगेश्वर नामक शिवकी पूजाके लिये गान्धारी और कुन्तीमें विवाद छिड़ा। शिवजी इस विवादको दूर करनेके लिये मन्दिरमें आविर्भूत हो कर बोले, 'तुम लोग क्यों वृथा विवाद करती हो? कल सवेरे तुम दोनोंमेंसे जो एक हजार सुवर्ण चम्पक पुष्प ले कर सबसे पहले मेरी पूजा करेगी, उसीकी यह मेरी मूर्त्ति हो जायगी।' गान्धारीने यह सुन कर अपने बड़े लड़के दुर्योधनको सुवर्ण चम्पककी कथा कही। रात्रिकालमें दुर्योधन अनेक स्वर्णकार द्वारा उक्त पुष्प तैयार कराने लगे। इधर कुन्ती देवीके मुखसे महावीर अर्जुनने यह बात सुन कर बहुत तड़के अपने दरवाजे परसे गाण्डीव धनुष द्वारा दो वायव्य तीर छोड़े। दोनों तीरोंने धनपति कुबेरको पराजित कर उनकी पुरीसे बहुत जल्द एक सहस्र सुवर्णचम्पक ला कर शिवजीको आच्छन्न कर दिया। तभीसे कुन्तीदेवी गान्धारीके पहले शिवका पूजन करने लगी। शिवविग्रह कुन्तीका हुआ। इस तरह अर्जुन कुबेरके भण्डारको जीत कर धन लाये थे, इसी कारण उनका धनञ्जय नाम पड़ा है। विराटपर्व) ४ अर्जुन वृक्ष। ५ विष्णु। अर्जुन देखो। ६ देहमरुत्, शरीरस्थ पांच वायुओंमेंसे एक। यह वायु पोषण करनेवाली मानी गई है। सुबोधिनी टीकामें लिखा है, कि मरनेपर भी यह वायु बनी रहती है। इससे शरीर फूलता है। यह वायु ललाट, स्कन्ध, हृदय, नाभि, अस्थि और त्वचामें रहती है। ७ नागभेद, एक नागका नाम जो जलाशयोंका अधिपति माना गया है। ८ गोत्रविशेष, एक गोत्रका नाम। ९ सोलहवें द्वापरके व्यास। (त्रि०) १० धनञ्जय गोत्रसम्भूत, धनञ्जयके गोत्रका।

धनञ्जय—एक जैन कवि। इनके बनाये हुए ग्रन्थका नाम 'धनञ्जयीनाममाला' है। बहुतोंका अनुमान है, कि "राघवपाण्डवीय" नामक द्व्यर्थकाव्यकार धनञ्जय और ये जैन कवि अभिन्न व्यक्ति हैं। क्योंकि जैन कवि धनञ्जय भी "द्विसन्धान" अर्थात् द्व्यर्थकाव्य रचनामें पटु थे, इस कारण कवि राजशेखर अपनी "हरिहरावली" में उल्लेख कर गये हैं। इनकी बनाई हुई नामावली, धनञ्जयकोष, धनञ्जयनिघण्टु, प्रमाणनाममाला और निघण्टुभाष्य नामक और भी कितनी पुस्तकें पाई जाती हैं।

धनञ्जय—कुस्थलपुरके अधिपति। गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तसे ये पराजित और बन्दी हुए, पीछे छोड़ दिये गये थे।

समुद्रगुप्त देखो।

धनञ्जय—१ कामकशतक, सूक्तिकर्णामृत और गणरत्नमालाधृत एक प्राचीन कवि। २ चन्द्रप्रभा काव्यके रचयिता। ३ धर्मप्रदीप और सम्बन्धविवेक नामक ग्रन्थोंके रचयिता। ४ दशरूपकके प्रणेता, इनके पिताका नाम विष्णु था।

धनञ्जय सिंह—भविष्य ब्रह्मखण्डके ३८वें अध्यायमें गङ्गा और गण्डकीके मध्य विशाल नामक राज्यका वर्णन है। उस विशालदेशमें दीर्घहार नामक एक विभाग है, जिसमें वनकेलि नामक एक वृहत् ग्रामका भी उल्लेख देखा जाता है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है कि इसी केलिग्राममें धनञ्जयसिंह नामक एक योगी वास करेंगे। वे कलिकालमें आविर्भूत हो कर साधना द्वारा छोटे छोटे देवताओंको वशीभूत भी करेंगे। उनके प्रभावसे वे त्रिकालज्ञ होंगे। एक रातको कुछ डकैत उनके आश्रममें प्रवेश कर उनका शिर काट डालेंगे। इसी अपराधसे वनकेलि ग्राम ध्वंस हो जायगा।

विशाल और वनकेलि देखो।

धनतेरस (हिं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशी। यह दिवालीके दो दिन पहले होती है। इस दिन रातको लक्ष्मीका पूजन होता है।

धनद (सं० पु०) धनं ददाति इति पालयतीति देङ् पालने क। (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) कुबेर। देवीभागवतमें लिखा है कि ब्रह्मा इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर इन्हें धनाधिपति बनाया था।

पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा और विश्रवाके पुत्र कुबेर हैं। रामायणके उत्तरकाण्डमें इनकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—

पुलस्त्य नामक तपःपरायण एक ऋषि थे। उनके विश्रवा नामक तपःस्वाध्यायादि सम्पन्न एक पुत्र हुए। एक दिन भरद्वाज ऋषि विश्रवा आश्रममें गये और वहां इन्हें सद्गुणविशिष्ट देख ऋषिने देववर्णिनी नामक अपनी कन्याको इन्हें अर्पण किया। कालक्रमसे देववर्णिनीके एक सन्तान उत्पन्न हुई। विश्रवाने ज्योतिःशास्त्रानुसार गणना करके देखा कि यह पुत्र धनद गुणसम्पन्न और धनाध्यक्ष होगा। तब ऋषियोंने इन्हें पिता अनुरूप देख इनका नाम वैश्रवण रखा। पीछे वैश्रवण यथासमय धर्म ही एकमात्र परमगति है, ऐसा स्थिर कर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। इस तरह निराहार हजार वर्ष बीत गये। बाद वायु भोजन तथा कुछ कुछ जल पान कर एक हजार वर्ष और बीते। ब्रह्माजी इनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न हो कर वर देनेके लिये इनके सामने उपस्थित हुए और बोले, "तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूं, अभी तुम अभिलषित वर मांगो।" इस पर वैश्रवणने कहा, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे वर दीजिये जिस से मैं लोकपाल और धनाध्यक्ष होऊं।' ब्रह्माजी 'तथास्तु' कह कर चले गये। (रामायण उत्तरकाण्ड ३ सर्ग) २ हिज्जल वृक्ष, समुद्रफल। धनद धान्यविशेषास्त्यस्येति अच्। ३ हिमालयका एक देव। ४ धनञ्जय वायु। ६ अग्नि। ७ चित्रकवृक्ष, चीता। धन ददाति दा क। (त्रि०) ८ दाता, धन देनेवाला।

धनदण्ड (स० पु०) धनेन दण्डः। मनूक्त धनग्रहणरूप दण्ड मनुके अनुसार एक प्रकारका दण्ड जिसमें अपराधीसे धन लिया जाता है।

पहले वाक्‌दण्ड, तब धिक्‌दण्ड, उसके पीछे धन दण्ड देनेका विधान है। दण्ड देखो।

धनदतीर्थ (स० पु०) ब्रजके अन्तर्गत कुबेरतीर्थ।

धनदत्त (स० पु०) १ धन देनेवाला। २ नामभेद, किसीका नाम।

धनदेव (स० पु०) एक कविका नाम।

धनदस्तोत्र (स० क्ली०) धनदस्य कुबेरस्य स्तोत्र। कुबेरका स्तोत्र।

धनदा (स० त्रि०) १ धन देनेवाली। (स्त्री०) २ देवीका एक नाम। ३ आश्विन कृष्णा एकादशीका नाम।

धनदाक्षी (स० स्त्री०) धनदस्य कुबेरस्य अक्षीव पिङ्गलं पुष्पमस्याः षच् समासान्तः ततो ङीष्। १ कुबेराक्षी लताकरञ्ज। २ पाटल वृक्ष, पाड़रका पेड़।

धनदानुज (स० पु०) धनदस्य अनुजः ६ तत्। १ रावण कुम्भकर्ण आदि। ये लोग विश्रवाके औरस और कैकसी के गर्भसे धनदके बाद उत्पन्न हुए थे, इसीसे इन्हें धनदानुज कहते हैं। इनकी उत्पत्तिका विवरण रामायणमें इस प्रकार लिखा है—

विश्रवाने कैकसी नामक एक स्त्रीका पाणिग्रहण किया। पीछे कैकसीके गर्भसे बीभत्सरूप दशग्रीव बीस भुजावाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसीका नाम रावण था। पीछे कुम्भकर्ण, तब शूर्पणखा नामक एक कन्या और सबसे पीछे धार्मिक गुणिगुणसम्पन्न विभीषण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

धनदायन (हि० पु०) एक पौधा। इसके काढ़ेसे कनी कपड़ों पर मांड़ी देते हैं।

धनदायिका (स० स्त्री०) धन ददाति धन-दा-ण्वुल्। धनदात्री देवीभेद, धन देनेवाली एक देवीका नाम।

धनदायिन् (स० त्रि०) धन ददाति दा-णिनि। १ धन दाता, धन देनेवाला। (पु०) २ अग्नि। 'धनमिच्छेत् हुताशनात्' अग्निसे धनके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। अग्नि सन्तुष्ट होनेसे धन देते हैं। इसीसे अग्निका नाम धनदायी पड़ा है।

धनदेव (स० पु०) धनस्य देवः धनाधिष्ठात्री देवता, कुबेर।

धनदेश्वर (स० पु०) काशीस्थित कुबेरका स्थापित किया हुआ एक शिवलिङ्गका नाम।

धनधान्य (स० पु०) धन और धान्य आदि, सामग्री और सम्पत्ति।

धनधाम (स० पु०) घरबार और रुपया पैसा।

धननन्द—महावंशके मतसे नन्दवंशीय शेष राजा। कालाशोकके दस पुत्र थे। ये दसों एक ही समयमें राज्य करते थे। इन्होंने सब मिला कर बाईस वर्ष तक राज्य किया। धीरे धीरे सबसे छोटे धननन्द जब राज्यके मुख्य पद पर अधिष्ठित हुए, तब उनके साथ चाणक्य पण्डित का विवाद हुआ। चाणक्यने बहुत चालाकीसे इन्हें मार

कर मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्तको सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित किया। नन्द देखो।

धननाथ (सं० पु०) कुवेर।

धनन्दा (सं० स्त्री०) धेन धनेन आनन्दं ददाति दा क, वा धनं ददते धन बाहुलकात् खच्-मुम्। बुद्धशक्तिभेद।

धनपति (सं० पु०) धनानां पतिः ६-तत्। १ कुवेर। २ देहस्थित वायुभेद, शरीरकी एक वायुका नाम। इस धनपतिका उत्पत्ति-विवरण वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

ऋषिश्रेष्ठ महातपाने कहा था कि मैं धनपतिका उत्पत्तिविवरण कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो, यह अत्यन्त पापनाशक है। शरीरस्थित धनदवायु जिस तरह उत्पन्न हुई, सो सुनो। सबसे पहले शरीरमें वायु अन्तःस्थित थी। पीछे प्रयोजन होने पर उस वायुको समस्त देवदेवताओंने मूर्त्तिविशिष्ट किया था। उसी अमूर्त्त वायुको उत्पत्ति यहां कही जाती है। ब्रह्माने जब संसारकी सृष्टि की, तब उनके मुखसे वायु देवता निकले। ब्रह्माने उनसे मूर्त्तिमान् हो कर शान्तभाव धारण करनेके लिये कहा और वर दिया, "देवताओंको जितना धन है, सबके रक्षक तुम हो और इसीसे तुम धनपति नामसे विख्यात होगे।" इसके अतिरिक्त ब्रह्माने उन्हें एकादशीतिथि दे कर कहा, 'जो एकादशीके दिन आगमें पका अन्न न खायेगा उसके प्रति प्रसन्न हो कर तुम धनधान्य दोगे। इसी प्रकार धनपतिकी मूर्त्तिकी उत्पत्ति हुई थी। यह मूर्त्ति सब प्रकारके पापोंको नाश करनेवाली है। जो ध्यान दे कर इस वृत्तान्तको सुनता या पढ़ता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं और अन्तमें वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।

धनपति कुवेरके कानोंमें कुण्डल, गलेमें माला, हाथमें गदा और शिर पर मुकुट हैं। इनका वर्ण पीला और ये श्रेष्ठ-विमान पर बैठे हुए हैं और चारों ओर गुह्यक (कुवेरके दूत) घेरे हुए हैं। ये महोदर, महाकाय तथा अष्ट ऋद्धि समन्वित हैं। धनपति कुवेरके प्रसन्न होनेसे धन प्राप्त होता है। ३ एक सौदागर। ये उज्ञानि नगरमें रहते थे। इनके दो स्त्रियां थीं जिनके नाम खुल्लना और लहना थे।

जब ये अपने देशके राजा विक्रमकेशरीसे सिंहल द्वीपको भेजे गये थे, वहां शालवान राजाने इन्हें कैद कर लिया। पीछे इनके पुत्र श्रीमन्तने इन्हें कारामुक्त किया था। (कविकंकण चण्डी) श्रीमन्त देखो। (त्रि०) ४ धनाध्यक्ष, जिन पर धनकी रक्षाका भार सौंप गया हो।

धनपति १ सूक्तिकर्णामृतधृत एक प्राचीन कवि। २ ज्ञानमुक्तावली नामक एक ज्योतिःग्रन्थके रचयिता। ३ दिव्यसिन्दूरसार नामक एक वैद्यक ग्रन्थकार।

धनपतिमिश्र—विद्यारत्नाकर और शङ्करदिग्विजयडिण्डिम नामक दोनों ग्रन्थोंके रचयिता। शेषोक्त ग्रन्थ १७९८ ई० में रचा गया था। इनके पिताका नाम रामकुमारमिश्र, श्वशुरका सदानन्दव्यास, गुरुका बालगोपालतीर्थ और पुत्रका नाम शिवदत्तमिश्र था।

धनपत्र (सं० पु०) वही, खाता।

धनपात्र (सं० पु०) धनवान्, धनी।

धनपाल (सं० त्रि०) धनं पालयति पालि-अण्। १ धनरक्षक, धनकी रक्षा करनेवाला। (पु०) २ कुवेर। ३ सूक्तिकर्णामृत और भोजप्रबन्धधृत एक प्राचीन कवि। ४ एक प्राचीन वैयाकरणिक। इनके ग्रन्थमें 'आर्य' और 'द्राविड़'का उल्लेख है। ये मैत्रेयरक्षित, काश्यप और पुरुषकारके पूर्ववर्त्ती थे। माधवीय धातुवृत्तिमें इनका उल्लेख सब जगह किया गया है।

५ एक जैन ग्रन्थकार। ये "पैशाचीनाममाला" नामक प्राकृत अभिधानकर्त्ता थे। हेमचन्द्र और भानुजीके ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है। इनके पिताका नाम सर्वदेव और भाईका नाम शोभन था।

६ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ पाये जाते हैं, ऋषभपञ्चाशिका और तिलकमञ्जरी। तिलकमञ्जरी इनकी लड़कीका नाम था। ये भोजराजकी सभामें रहते थे। एक दिन राजाके साथ इनका विवाद हुआ। राजाकी आज्ञासे इनका तिलकमञ्जरी नामक ग्रन्थ नष्ट कर दिया गया। उस समय उक्त ग्रन्थका नाम तिलकमञ्जरी नहीं था। इतने दिनोंकी परिश्रम और यत्नकी वस्तुके नष्ट हो जानेसे कवि धनपाल बहुत दुःखसे समय व्यतीत करने लगे। एक दिन उनकी लड़की तिलकमञ्जरीने उनसे पूछा कि आप

देखना उदास क्यों है ? इस पर कविने सब बातें कह सुनाईं। तिलक हँस कर बोले, "इसके लिये चिन्ता क्यों ! आप प्रतिदिन जितने श्लोक लिखते थे उन्हें मैं रोज रोज कण्ठस्थ कर लिया करता था जो आज तक मो सब स्मरण है। मैं कहता जाता हूं आप उन्हें लिखते जांय।" इस तरह वह ग्रन्थ फिरसे नवीन बनाया गया। कविने बहुत प्रसन्नचित्तसे अपनी कन्याके नाम पर उस काव्यका नाम तिलकमञ्जरी रखा। काव्यप्रकाशमें इसका वर्णन है।

धनपिशाचिका (स० स्त्री०) धने पिशाचिकेव। धनाशा धनका लोभ। इसका नामान्तर तृष्णा है।

धनप्रयोग (स० पु०) धनस्य वृद्ध्यर्थं प्रयोगः। धनको किसी व्यापारमें लगाने या व्याज पर उधार देनेका काम, रुपया लगानेका काम। धन प्रयोग करनेमें विशुद्ध नक्षत्रादिका विचार करना आवश्यक है। मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इसके विषयमें यों लिखा है—स्वाती, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, धनिष्ठा और अश्विनी इन सब नक्षत्रोंमें ऋणदान करना चाहिये।

मङ्गलवारको ऋण न लेना चाहिये और बुधवारको न देना चाहिये। मङ्गलवारको ऋणपरिशोध करना अच्छा है। सोमवारको ऋण करना चाहिये। हस्ता नक्षत्र, रविवार और संक्रान्तिमें जो ऋण लिया जाता है वह कभी परिशोध नहीं होता वर वह पुत्रपौत्रादि तक क्रमशः बढ़ता जाता है। यदि इन सब निषिद्ध दिनोंमें ऋण लिया भी जाय, तो उसे यथापूर्वक बहुत जल्द परिशोध कर देना चाहिये।

पूर्वभाद्रपद, भरणी कृत्तिका, अश्लेषा मघा, पूर्वफल्गुनी, ज्येष्ठा, मूला पूर्वाषाढ़ा, स्वाति, विशाखा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंमें धनप्रयोग अर्थात् ऋणदान नहीं करना चाहिये। किन्तु अनुराधा, मृगशिरा और रेवतीमें ऋण लेना अच्छा है, पर दान भूल कर भी न करे।

धनप्रिया (स० स्त्री०) धनवत् प्रिया। काकजम्बूवृक्ष, एक प्रकारका जामुन।

धनफल (स० क्ली०) धनानां फलं। दानभोगादि।

धनभक्ष (स० पु०) धनभोग।

धनभूति—मौर्यके पीछे बाद शुङ्गवंशी राजा प्रबल हो उठे। पहली या दूसरी शताब्दीमें मध्यभारतके समीप नागौद (नगोध) नामक स्थानमें भरहुत नामका एक स्तूप बनाया गया। इस स्तूपके एक स्तम्भमें उत्कीर्ण लिपि पढ़नेसे मालूम होता है कि शुङ्ग वंशके राजाओंके समयमें गार्गीके पुत्र विश्वदेवके प्रपौत्र, गोतीके पौत्र, अगर और वात्सीके पुत्र धनभूतिने यह तोरण (फाटक) निर्माण और समाप्त किया गया था। अब सभी पण्डित अनुमान करते हैं, कि वे धनभूति शुङ्गोंके अधीन सामन्त और राजा होंगे। इस स्तूपके दूसरे स्तम्भलेखमें धनभूतिके बाद उनके पुत्र युवराज वधपालका नाम पाया गया है।

धनमद (स० पु०) धनाय ये मदः या धनस्य मदः। धनके लिये मत्तता, धनका घमण्ड। धन होनेसे मनमें एक प्रकारका गर्व आ जाता है, उसीको धनमद कहते हैं।

धनमित्र—एक वणिक्। महाकवि कालिदास-प्रणीत शकुन्तला नाटकमें इसका नाम पाया जाता है। जिस समय राजा दुष्मन्त माधव्यके साथ शकुन्तलाके विरहसे कातर हो कर उपवनमें भ्रमण कर रहे थे, उस समय मन्त्रीने राजाको इसकी अपुत्रक अवस्थामें मृत्युका सम्वाद लिपि द्वारा सुनाया था। इस पर राजाने कहा था, कि धनमित्रके अनेक स्त्रियां हैं, उनमेंसे जो पतिव्रता होगी उसीकी सन्तान इसकी उत्तराधिकारी होगी।

(शकुन्तला ६ अङ्क)

धनमाली (स० पु०) एक असुरका सरदार।

धनमूल (स० क्ली०) धनमेव मूलं यस्य। धन हो जिसका मूल है अथ जो जिसका कारण है।

धनमोहन (स० पु०) एक वणिक् पुत्रका नाम।

धनराज—महादेवीटीपिका नामक ज्योतिषके ग्रन्थकार।

धनर्च (स० पु०) धनाय अर्चा यस्य। धनार्थ अर्चाकुल अग्नि, अग्नि जिसकी आराधना करनेसे धन मिलता है।

धनलुब्ध (स० त्रि०) धनलोभी, धनका लालची।

धनलोभ (स० पु०) धनाय धनस्य वा लोभ। धनके लिये लोभ, धनकी अभिलाषा।

धनवत् (स० त्रि०) धनमस्त्यस्येति धन मतुप्, मस्य व। धनविशिष्ट, धनस्वामी, धनी, धनाढ्य।

धनवती (सं० स्त्री०) धनवत् स्त्रियां ङीप्। १ धनिष्ठा-नक्षत्र, धनदेवता इस नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता हैं, इसीसे धनवती शब्दसे धनिष्ठानक्षत्रका बोध होता है। (त्रि०) २ धन रखनेवाली।

धनवा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास।

धनवान् (हिं० वि०) जिसके पास धन हो, दौलतमन्द।

धनविजयवाचक—लोकनालिकसूत्र नामक ग्रन्थके भाषा-वृत्तिकार, प्रायः ११४१ सम्वत्में इन्होंने उक्त ग्रन्थको रचना की थी। ये गच्छप्रधान विजयदेवसूरि और श्राद्ध-प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिके रचयिता विजयसिंहके सम-सामयिक थे।

धनशाली (हिं० वि०) धनवान्, धनिक, दौलतमन्द।

धनसञ्चय (सं० पु०) धनस्य सञ्चयः। अर्थसञ्चय, धनका जमा करना। आपद्‌कालके लिये धनसञ्चय अवश्य कर्त्तव्य है।

धनसनि (सं० त्रि०) सन सम्पत्तौ-इन् धनस्य सनिः। धन-लाभयुक्त, जिसे धन मिला हो।

धनसम्पत्ति (सं० स्त्री०) धनाढ्यता, धनपात्र होनेका भाव।

धनसा (सं० त्रि०) किसीको धन देनेका स्वीकार करना, धन देना।

धनप्राप्ति (सं० स्त्री०) धन वा अर्थ उपार्जन।

धनसार (हिं० पु०) अनाज रखनेकी कोठरी या घेरा। इसमें अनाज रखने वा निकालनेके लिये केवल दो खिड़कियां होती हैं।

धनसिंह—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त चम्पादेशके अधिपति। ये खड्गसिंहके पुत्र और उज्जयनीपति विक्रमादित्यके समकालवर्त्ती थे। जब इनके चाचा अटकसिंह युवा-वस्थामें मर गये, तब ये ही सिंहासन पर बैठे। राज्या-रोहणके समय इनकी उमर थोड़ी थी। इन्हींके समयमें सौगतोंने प्रवल हो कर चम्पाके एकांश विशाल प्रदेश पर अधिकार जमा लिया था। धनसिंह बाध्य हो कर उन्हें कर देने लगे थे। एक दिन बहुत दुःखित हो ये विक्रमादित्यके निकट सहायता पानेके उद्देशसे जा रहे थे, किन्तु रास्तेमें गङ्गाके किनारे वज्राघातसे इनकी मृत्यु हो गई।

धनसिरी (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

धनसू (सं० पु०) १ धन उत्पादन, धन सञ्चय करना। २ धूम्याट नामक पक्षिविशेष, धनेस नामकी चिड़िया।

धनस्थ (सं० त्रि) धन-स्था-क। धनवान्, धनी, धनाढ्य।

धनस्थान (सं० क्ली०) धनचिन्तनार्थं स्थानं। लग्नसे दूसरा स्थान। इस स्थानमें धनके शुभाशुभ विषयका विचार किया जाता है।

धनस्पृहा (सं० स्त्री०) अर्थकाम, धनलिप्सा, धनकी अभिलाषा।

धनस्यक (सं० त्रि०) लालसया धनमिच्छति धन क्यच्, लालसायां सुक्, धनस्य नामधातुः ततो ण्वुल्। १ लालसा द्वारा धनेच्छु, धनकी लालसा रखनेवाला। (पु०) २ गोक्षुरक, गोखरू।

धनस्वामी (सं० पु०) धनदेवता, कुवेर।

धनहर (सं त्रि०) धनं हरति हृ ताच्छील्यादौ ट। १ धन-हरणशील, धन चुरानेवाला। (क्ली०) २ चोर नामक गन्धद्रव्य। ३ तस्कर, चोर।

धनहारी (सं० त्रि०) १ दायभागी, जो दूसरेके धनका उत्तराधिकारी होता है। (स्त्री०) २ चोर नामक गन्ध-द्रव्य। इसका पर्याय—चण्डा, घेम और दुष्पत्रक है। ३ ग्रन्थिपर्णी भेद।

धनहीन (हिं० वि०) निर्धन, कंगाल।

धनहृत (सं० त्रि०) धनं हरति हृ-क्विप् तुक्। १ धनहारी, धन हरनेवाला। (पु०) २ चण्डालकन्द।

धना (सं० स्त्री०) १ रागिणीविशेष, एक रागिणी। २ आर्द्र धान्यक, गीला धनिया। ३ धान्यक, धनिया।

धनाकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) धनाभिलाष, धनकी अभिलाषा।

धनागम (सं० पु०) धनस्य आगमः ६ तत्। अर्थागम, धनका आना या मिलना।

धनाढ्य (सं० त्रि०) समृद्धिशाली, धनवान्, मालदार।

धनाधिकारिन् (सं० त्रि०) धनं अधिकरोति अभि-कृ-णिनि। धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, भंडारी।

धनाधिकृत (सं० त्रि०) धनेन अधिकृतः। धन द्वारा अधिकृत, जो धन दे कर ले लिया गया हो।

धनाधिगोप्तृ (सं० त्रि०) धनं अधिगोपायति अधि-गुप-तृच्। १ धनपालक, खजानची, भंडारी। स्त्रियां ङीप्। (पु०) २ कुवेर।

अधिपति देवता वसु हैं और इनकी आकृति मृदङ्गकीसी है। फलित-ज्योतिषके अनुसार धनिष्ठा नक्षत्रमें जिसका जन्म होता है, वह दीर्घकाय, कामातुर, कफयुक्त, उत्तम शास्त्रवेत्ता, विवादी, बहुपुत्रयुक्त, मल्लहस्तविशिष्ट और कीर्त्तिमान् होता है। किसीका मत है कि धनिष्ठानक्षत्रमें जन्म होनेसे वह दाता, धनवान्, शूर, गीताप्रिय और धनलोभी होता है।

उत्तराषाढ़ाके शेष तीन पाद एवं श्रवणा और धनिष्ठाका प्रथमार्द्ध मकरराशि है। धनिष्ठाके शेषार्द्ध शतभिषा और उत्तरभाद्रपदके प्रथम तीन पाद कुम्भराशि है।

नक्षत्र देखो।

धनी (सं० स्त्री०) धनमस्त्यस्याः अच. गौरादित्वात् ङीष्। युवती स्त्री, बहू।

धनी (हिं० वि०) १ धनवान्, जिसके पास धन हो, मालदार। २ दक्षतासम्पन्न, जिसके पास गुण आदि हों। (पु०) ३ धनवान् पुरुष, मालदार आदमी। ४ अधिपति, मालिक, स्वामी। ५ पति, शौहर।

धनीयक (सं० क्ली०) धनाय हितं धन-छ, संज्ञायां कन्। धन्याक धनिया।

धनु (सं० पु०) धनतीति धन (भृमृशीत्वरोति। उण् १।७) इति उ। १ चाप, धनुस्, कमान। २ प्रियङ्ग वृक्ष, पियालका पेड़। ३ ज्योतिषकी बारह राशियोंमेंसे नवीं राशि। इसके अन्तर्गत मूला और पूर्वाषाढ़ानक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ाका एक चरण आता है। ४ फलित ज्योतिषमें एक लग्न। इसका परिमाण ५।१७।२० है। प्रत्येक रात दिनमें बारह लग्न हैं। पौषमासमें सूर्योदय धनु लग्नमें होता है। धनुस् देखो। (त्रि०) ५ धनुर्द्धर, धनुस धारण करनेवाला। ६ शीघ्रगन्ता, बहुत तेज जानेवाला।

धनुआ (हिं० पु०) १ धनुस्, कमान। २ तांतकी डोरीका वह लम्बो कमान जिससे धुनिए रुई धुनते हैं।

धनुःकाण्ड (सं० क्ली०) शरासन और शर, तीर और कमान।

धनुःखण्ड (सं० क्ली०) धनुषो खण्डं। धनुस्, कमान।

धनुःपट (सं० पु०) धनुष इव पटो विस्तारो यस्य। पियालवृक्ष।

धनुःशाखा (सं० स्त्री०) धनुषः शाखा यस्याः। मूर्वा, मुर्रा। धनुरवयव इव शाखा यस्याः। पियालवृक्ष।

धनुःश्रेणी (सं० स्त्री०) धनुषः श्रेणीव। १ मूर्वा, मुर्रा। २ महेन्द्रवारुणी।

धनुक (हिं० पु०) धनुस् देखो।

धनुकबाई (हिं० पु०) एक प्रकारका रोग जो लकवेकी तरहका होता है। इसमें रोगीके नयड़ ऐंठ जाते हैं और मुंह नहीं खुलता।

धनुकी—चम्पारण जिलेके सिमरौन परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मोतिहारी रास्तेके ऊपर अवस्थित है। यहां सप्ताहमें दो बार हाट लगती है।

धनुर्केतकी (सं० स्त्री०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

धनुगुम (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

धनुराज (सं० पु०) शाक्य मुनिके पूर्व पुरुषोंका नामभेद।

धनुर्गुण (सं० पु०) धनुषो गुणः ६-तत्। ज्या, धनुसकी डोरी, पतंचिका, चिल्ला।

धनुर्गुणा (सं० स्त्री०) धनुषो गुणो यस्याः। मूर्वा, मुर्रा, मरोरफली।

धनुर्ग्रह (सं० पु०) धनुस् ग्रह-अच्। १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ धनुर्द्धर। ३ धनुर्विद्या।

धनुर्ग्राह (सं० पु०) धनुस् ग्रह-घञ्। धनुर्ग्रह।

धनुर्जयनारायण—उड़ीसाके अन्तर्गत केवझर राज्यके एक राजा। केवझर देखो। इनका पूरा नाम महाराज धनुर्जयनारायण भञ्जदेव था। ये अपने पिताके दासीपुत्र थे। पहले उक्त राज्य मयूरभञ्ज राज्यके अन्तर्गत रहा। लगभग ढाई सौ वर्ष पहले यह स्वतन्त्रराज्य हो गया। मयूरभञ्ज राजाके भाई इस प्रदेशके राजा हुए। क्रमशः उनके वंशके २७ राजाओंने यहां राज्य किया। सत्ताईसवें राजाके कोई औरसपुत्र न था, केवल एक दासीके गर्भसे धनुर्जय नारायणका जन्म हुआ था। दासीका नाम फुलबाई था। १८६१ ई०में वृद्ध राजाके मरने पर वृटिश गवर्मेण्टने धनुर्जयनारायणको गद्दी पर बिठाया।

दासीपुत्रके राजा होनेसे भुइया और जुयाङ्ग जातिके लोग बहुत बिगड़े। उन्होंने दत्तकपुत्रके रूपमें एक मनुष्यको उत्तराधिकार बना कर महाउपद्रव मचा दिया। अन्तमें वृटिश सरकारकी सेना भेज कर यह उपद्रव

प्राप्त करना पड़ा। धनुर्जयनारायणके अभिषेकके समय जो गोलमाल हुआ था उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

१८६१ ई०की २२वीं मार्चको केउञ्झरके राजाका त्रिवेणीमें देहान्त हुआ। इनके कुमारी नामक दासीके गर्भसे धनुर्जय और चन्द्रशेखर नामक दो पुत्र थे। १ले अप्रिलको बड़े धनुर्जयनारायण राजगद्दी पर बैठे। ८वीं अप्रिलको मयूरभञ्जकी रानीने यह खबर भेज दी कि स्वर्गीय महाराज उनके पोते वृन्दावनको दत्तक-पुत्र बना गये हैं, वही बालक अभी केउञ्झरका प्रकृत उत्तराधिकारी है। अतः उसे अभिषेक करनेके लिये मैं आ रही हूं। करदराज्यसमूहके परिदर्शकोंने मयूरभञ्जकी रानीको इस काममें हाथ डालनेसे मना किया, लेकिन उन्होंने एक भी न सुनी और अपनी फौजको वहां भेज भी दिया। वृन्दावन रानी तथा कई एक प्रधान व्यक्तियोंकी सहायतासे छिपके राज्यगद्दी पर अभिषिक्त हुए। अन्तमें दत्तक ग्रहणकी बात मिथ्या साबित होने पर भी रानी धनुर्जयनारायणका पक्ष न ले कर वृन्दावनके पक्षका ही समर्थन करने लगीं। पीछे करद राज्यके परिदर्शकोंने जब राजद्रोहिके आवश्यमान-कालका अनुसन्धान किया, तब धनुर्जयनारायण ही उचित उत्तराधिकारी ठहराये गये। वृन्दावनकी ओरसे पहले हाईकोर्टमें, पीछे विलायत तक अपील की गई, किन्तु अब कुछ भी न हुआ। इसी समय महान् गवर्मेण्टने भी धनुर्जयको ही केउञ्झरका राजा कायम किया। १८६० ई० तक यह विवाद चलता रहा। पीछे उसी वर्षके सितम्बरमासमें धनुर्जयके होने बालिग पर उन्हें प्रकाश्यरूपसे राज्याभिषेक करनेका हुक्म दिया गया। कटकमें जब उन्हें राज्यभार देनेका समय आया, तब रानीने मुकदमेके निष्पत्ति काल तक अभिषेक बन्द रखनेकी प्रार्थना की। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने जब परिदर्शकोंसे उपाय मांगे, तब उन्होंने कहा, कि कटकमें राज्यभार अर्पण करनेके समय केउञ्झरके सामन्तोंने जिस भावसे नवराजके प्रति सम्मान और वश्यता दिखलाई है, इसमें भयका कारण कुछ भी नहीं है। राजाको राज्यमें भेज देनेसे ही सब गड़बड़ी मिट जायेगी और सरकारी परिदर्शक आनन्दपुर तक उन्हें पहुंचा आवें। राजप्रासादमें प्रवेश होनेके पहले ही रानी धनुर्जयको राजा मानेगी या नहीं यह धनुर्जय पहले ही जानना चाहते थे।

परिदर्शकोंने पार्वतीय जातिके सरदारोंको तथा राज्यके प्रधान कर्मचारियोंको वशीभूत करके उन्हें बागी होनेसे मना किया। केवल रत्ननायक नामक एक पार्वतीय सरदार कभी भी वशीभूत न हुआ। कोर्ट आफ-को तार द्वारा इसकी खबर दी गई। उन्होंने अभिषेक कार्य समाप्त करनेकी ही आज्ञा दी।

उधर रानी छिप कर पार्वतीय जातियोंके साथ षड़यन्त्र कर रही थी, नवम्बर मासमें यह बात खुल गई। इनमेंसे मुंडया और भुयाङ्ग लोग ही प्रधान थे। सिपाहियोंकी संख्या भी अधिक थी। वहीं मुंडया सरदार रत्ननायक था। पीछे रानीने इस बातकी सूचना दी 'यदि नव भूपति राजप्रासादमें प्रवेश करेंगे, तो मैं प्रासाद छोड़ कर चली जाऊंगी। मेरे प्रासाद छोड़नेसे, सम्भव है कि मुंडया और भुयाङ्ग लोग बागी हो जायेंगे।' परिदर्शकोंने रानी तथा पार्वतीय लोगोंको समझानेके लिये सरदारको भेजा। उन्होंने वहां जा कर देखा, कि रानीके लोगोंने अन्यान्य सरदारोंको बहका कर मयूरभञ्ज भेज दिया है। इसी बीच एक दल पार्वतीय लोग कलकत्तेमें लाटके निकट उनका प्रकृत आदेश क्या है यह जाननेके लिये आये। कोर्ट आफने कहा, यदि विलायतकी अपीलमें राय नहीं बदली जायगी, तो धनुर्जय ही राजा होंगे। पार्वतीय लोग भी इसे स्वीकार कर अपने स्थानको चल दिये। पीछे कोर्ट आफके आदेशानुसार जब सब कोई आनन्दपुरमें एकत्रित हुए, तब ग्रामवासियोंने राजाकी वश्यता स्वीकार की और बहुत आदरसे उनकी अभ्यर्थना की तथा साथ साथ कर भी दिया। उधर रानी षड़यन्त्र करने लगीं।

इसके बाद राजाने दलबलके साथ केउञ्झरकी यात्रा की। रास्तेमें रसद घट गई और सब कोई पद पदमें विद्रोहियोंके आक्रमणकी आशा करने लगे। उस समय भी ग्रामके मण्डल वशवर्ती थे छोटे नहीं थे। क्रमशः अन्तमें सब कुशलपूर्वक राजधानीमें पहुंचे। वहां उन्होंने

देखा कि रानी भागनेकी तैयारियां कर रही हैं। केवल रानी छोड़ कर राजप्रासादके सभी राजपरिवारोंने धनुर्जयको राजा स्वीकार किया। रानी जरा भी शान्त न हुई।

दिसम्बरमासमें धनुर्जय राजा हुए। कुमार सरदारोंमेंसे अनेकोंको वाध्य हो कर राजाकी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी। भुंइयोंमेंसे एक भी इसमें शामिल न हुआ।

अन्तमें इतनी गड़बड़ी उठी, कि रानीको दूसरी जगह पहुंचाये विना यह विद्रोह शान्त नहीं हो सकता, ऐसा उन्होंने स्थिर कर लिया। रानीको जगन्नाथ भेज देनेकी मन्त्रीकी सलाह हुई। १८६८ ई०की १६वीं जनवरीको रानी जगन्नाथ जानेके रास्ते पर राजधानीसे ३॥ कोस दूर वसन्तपुर नामक ग्राममें रहने लगीं। इस समय निकटस्थ जङ्गलोंके भुंइया लोग झुण्डके झुण्डमें तीर धनुष कुल्हाड़ी अपने अपने हाथोंमें लिये रानीके समीप आने लगे। मि० रावेनशने पुलिससेनाकी सहायतासे उनमेंसे बहुतोंको पकड़ा। रानीके निकट ला कर उन्हें कहा गया कि क्या रानी अपनी सन्तानको इस दुर्दशावस्थामें रखनेकी इच्छा करती है? इस पर रानीने भुंइयोंको उनका पक्ष छोड़ देनेको कहा। बाद उन्होंने मुक्ति पा कर राजाकी अधीनता स्वीकार कर ली। रत्ननायक राजाकी वश्यता स्वीकार न कर बहुत चालाकीसे भाग गया।

बाद रानी भुंइयाके कहने सुननेसे वसन्तपुरसे आ कर राजप्रासादमें रहने लगीं। १८६८ ई० की १३वीं फरवरीको धनुर्जयनारायण भुंइया लोगोंसे अभिषिक्त हुए। इस अभिषेकमें विशेषता यह है—अभिषेकके पहले ही राजा सभामें जा कर पान मिष्टान्न और माल्यादि प्रदान कर चले जाते हैं। कुछ समयके बाद वे फिर एक भीमकाय भुंइया सरदारकी पीठ पर सवार हुए सभास्थलमें आते हैं। सरदार उन्हें अपनी पीठ पर लिये अवाध्य अश्वको नाईं नाचने लगता है। सभाके शिष्ट और ब्राह्मण लोग शास्त्रीय रीतिके अनुसार अभिषेक द्रव्यादि ले कर बैठते हैं, उसके विपरीत और एक वेदी बनी रहती है और उस पर एक लाल वस्त्र रखा रहता है। राजा सरदारकी पीठ पर आरोहण करके नाचते नाचते उसी ओर जाते हैं। उस समय और कितने भुंइया उनके पीछे पीछे चलते हैं। सभामें थोड़ी दूरके फासले पर भुंइया लोग अपना जातीय बाजा बजाते हैं। वेदीके समीप जा कर एक दूसरा भुंइया राजाको अपनी पीठ पर ले कर उस वेदी पर बैठता है। राजा उसकी पीठ पर ठीक जिस तरह सिंहासन पर बैठा जाता है, उसी तरह बैठते हैं। इस समय भुंइया सरदार लोग राजाके निकट उनके अनुचररूपमें कोई पताका, कोई पंखा, कोई छत्र, कोई चन्द्रातपधारी हो कर खड़ा रहता है। यह अनुचर होनेका एक विशेष नियम है। ३६ सरदार पुरुषानुक्रमसे अनुचरके रूपमें अन्यान्य राजाओंके समय खड़े होते आये हैं। उन्हीके वंशधर उसी उसी अनुचरके रूपमें खड़े होनेके अधिकारी होते हैं। बाद कोई एक प्रधान सरदार एक जंगली लता ला कर उसे राजाको पगड़ीमें खोंस देता है। यही उन लोगों द्वारा मुकुट धारणका अनुकल्प है। इस समय पुनः बाजा बजता है. भाट लोग स्तुतिगान और ब्राह्मण लोग सामगान करते हैं। बाद एक प्रधान सरदार राजाके कपालमें चन्दनकी टीका देता है, पीछे वहां जितने राजकर्मचारी रहते हैं, सभी टीका देते हैं।

इसके अनन्तर पञ्चगव्य द्वारा स्नानादि और शास्त्रोक्त अभिषेकक्रिया सम्पन्न होती है। बाद एक तलवार राजाके हाथमें दी जाती है। यह तलवार इस राजवंशका अत्यन्त प्राचीन अस्त्र है। अभी मोरचा लग जानेसे वह नष्ट हो गई है। पीछे एक सरदार राजाके निकट घुटना टेक गला बढ़ा कर बैठ जाता है। राजा उस तलवारसे गलेको स्पर्श करते हैं। पूर्व समयमें गला सचमुच काट डाला जाता था और इसी सरदारवंशसे प्रति अभिषेकके समय एक एक मनुष्यकी बलि दी जाती थी और उन्हें पुरुषानुक्रमसे जागीर मिलती थी। पहले मृत व्यक्तिका पुनर्दर्शन नहीं होता था, उसीसे आज कल यह नियम प्रचलित है कि तलवार स्पर्शके बादही वह मनुष्य उसी समय वहांसे हठात् भाग जाय और तीन दिन तक दिखाई न दे। पीछे चौथे दिनमें जिस तरह मानो किसीने देवकृपासे पुनर्जीवन लाभ किया हो, उसी तरह वह राजाके सामने उपस्थित होता है।

धनुर्यज्ञ (सं० पु०) धनुःसम्बन्धी उत्सव। मिथिलाके राजा जनकने अपनी कन्या सीताके विवाहार्थ वर चुननेके लिए इस प्रकारका यज्ञ किया था।

धनुर्यास (सं० पु०) धनुरिव यासः। धन्वयास, दुरालभा, जवासा। (स्त्री०) धनयी लतेव। २ सोमवल्ली, सोमलता।

धनुर्वक्र (सं० पु०) धनुरिव वक्रं यस्य। कुमारानुचर, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

धनुर्वात (सं० पु०) १ एक वायुरोग। इसमें शरीर धनुषकी तरह झुक कर टेढ़ा हो जाता है। २ धनुकबाई।

धनुर्विद्या (सं० स्त्री०) धनुषो विद्या। धनुरादिका प्रयोग और संहारज्ञापक विद्याभेद, धनुष चलानेकी विद्या, तीरंदाजोका हुनर।

धनुर्वीज (सं० पु०) भल्लातकवृक्ष, भिलावां।

धनुर्वृक्ष (सं० पु०) धनुषो वृक्षः। १ धन्वनवृक्ष, धामिनका पेड़। २ वंश, बांस। ३ भल्लातक भिलावां। ४ अश्वत्थ, पीपलका पेड़।

धनुर्वेद (सं० पु०) धनुंषि उपलक्षणेन धनुरादीन्यस्त्राणि विद्यन्ते ज्ञायन्तेऽनेनेति, विद करणे घञ्। धनुर्विद्याबोधक शास्त्र।

जिस शास्त्र द्वारा धनुष चलानेके कौशलादि जाने जांय, उसे धनुर्वेद कहते हैं। प्राचीन कालमें सभी हिन्दू राजगण अभ्यासपूर्वक धनुर्वेद पढ़ते थे। धनुर्विद्यामें जो श्रेष्ठ होते थे, वे ही राजसमाजमें प्रसिद्ध तथा माननीय समझे जाते थे। आजकल सन्याल, कोल, भील असभ्य जातिके सिवा सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका उतना आदर नहीं है सही, किन्तु जब बन्दूक, गोली, आदिका प्रचार नहीं था, तब सभी सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका विशेष आदर था।

रामायण, महाभारत आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें धनुर्विद्याका यथेष्ट विवरण पाया जाता है। मिस्रदेशके पिरामीडमें भी धनुर्धारी वीरोंकी अतिप्राचीन मूर्त्तियां खोदी हुई हैं। ग्रीसके होमर और रोमके भर्जिल आदिके प्राचीन ग्रन्थोंमें भी धनुर्विद्याका विषय अच्छी तरह वर्णित है।

प्राचीन कालमें प्रायः सभी सभ्य देशोंमें धनुर्विद्याका यथेष्ट आदर रहने पर भी किस तरह विभिन्न देशीय महावीरगण धनुर्विद्या पढ़ते थे, उसके विषयमें सुप्रणालीबद्ध पुस्तकादि भारतवर्षके सिवा और कहीं भी देखनेमें नहीं आती है। यों तो पारसी भाषामें भी दो एक धनुर्विद्याविषयक ग्रन्थ हैं, किन्तु वे इतने प्राचीन नहीं हैं। उनमेंसे कोई कोई संस्कृत धनुर्वेदके अनुवाद जैसा मालूम पड़ता है।

सबसे पहले आर्य ऋषियोंने क्षत्रिय-राजकुमारोंको सिखानेके लिए जिस धनुर्विद्याविषयक ग्रन्थका प्रचार किया, वही धनुर्वेद नामसे प्रसिद्ध है। मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थमें धनुर्वेदको यजुर्वेदका उपवेद लिखा है।

पूर्वकालमें अनेक धनुर्वेद प्रचलित थे; जिनमेंसे आज कल शुक्रनीति और कामन्दकनीतिवर्णित धनुर्वेद, अग्निपुराणोक्त धनुर्वेद, वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद, वीरचिन्तामणि, लघुवीरचिन्तामणि, वृद्धशार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युद्धकल्पतरु नीतिमयूखप्रभृति ग्रन्थोंमें धनुर्वेदकी कथा पाई जाती है।

ब्राह्मणोंके निकट जिस तरह अपनी अपनी शाखाका वेद, चिकित्सकके निकट जिस तरह आयुर्वेद और सङ्गीतालापियोंके निकट जिस तरह गन्धर्ववेद आदृत है, प्राचीनकालमें क्षत्रियोंके निकट धनुर्वेद भी उसी तरह समादृत था। जिस तरह केवल आयुर्वेद पढ़नेसे कुछ नहीं होता, वरं उसकी परीक्षा नाड़ी देख कर ही होती है, जिस तरह आलाप आदिका ज्ञान हुए बिना गन्धर्ववेद पढ़नेसे कोई फल नहीं होता, उसी तरह धनुर्वेद केवल पढ़नेकी वस्तु नहीं है, बल्कि उसके अनुसार शिक्षा वा कार्य करना आवश्यक है। किस प्रणाली द्वारा धनुर्विद्या सीखनेसे प्रकृत वीरपदवाच्य हो सकता है, उसीका सदुपदेश धनुर्वेदमें विधिवद्ध हुआ है। धनुर्वेदके आचार्य गण उसीके अनुसार क्षत्रियोंको सिखलाते तथा शिक्षाकार्य करते थे। अग्निपुराणमें लिखा है, कि सबसे पहले ब्रह्मा और महेश्वरने धनुर्वेदका प्रचार किया। किन्तु वे सब धनुर्वेद लुप्त हो गये हैं। मधुसूदनसरस्वतीने प्रस्थानभेदमें लिखा है कि विश्वामित्रने जिस धनुर्वेदका प्रकाश किया था, वही यजुर्वेदका उप-

र्वेद है। इसमें इस उपवेदका कुछ संक्षिप्त परिचय भी दिया है। उसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद। प्रथम दीक्षापादमें धनुर्लक्षण (धनुषके अन्तर्गत सब हथियार लिये गये हैं) और अधिकारियोंका निरूपण है। आयुध चार प्रकारके कहे गये हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्रमुक्त। मुक्तामुक्त जैसे बल्लम, अमुक्तआयुध जैसे खड्ग। मुक्तामुक्त, जैसे भाला, बरछा। मुक्तको अस्त्र और अमुक्तको शस्त्र कहते हैं। ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपात, प्राजापत्य और आग्नेयादिके भेदसे नाना प्रकारके आयुध हैं। सादि-दैवत और समन्त्र चारों प्रकारके आयुधोंमें जिनका अधिकार है, वे ही क्षत्रियकुमार हैं और उनकी अनुवर्ति ये चार प्रकारके हैं,—पदाति, रथी, गजारोही और अश्वारोही। इनके अतिरिक्त दीक्षा, अभिषेक, शाकुन और मङ्गलादिका निरूपण प्रथम पादमें है। आचार्यका लक्षण और सब प्रकारके अस्त्रशस्त्रादिका विषय संग्रह नामक द्वितीय पादमें दिखलाया गया है। तृतीय पादमें गुरु और सम्प्रदायसिद्ध विशिष्ट विशिष्ट अस्त्र, उनके अभ्यास, मन्त्रदेवता और सिद्धि आदि विषय हैं। प्रयोग नामक चतुर्थ पादमें देवार्चना, सिद्धि, अस्त्रशास्त्रादिके प्रयोगोंका निरूपण है।

वैशम्पायनका धनुर्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि अस्त्रोंमें सबसे पहले धनुषका प्रचार हुआ था पीछे वेणपुत्र पृथु राजाके समयमें धनुष प्रचलित हुआ।

(ब्रह्माने पृथुको दर्शन दे कर कहा था) पहले मैं दुष्टोंको दमन करनेके लिए अस्त्र तैयार करूंगा। अब अस्त्र तुम्हारे पास रख कर दुष्टोंको शिक्षा देगो। अभी मैंने सोच रखा है, कि अब तुम्हें दे कर धनु अर्थात् आयुधका प्रचार करूंगा। हे पुत्र! इस कारण तुम्हें अस्त्र शस्त्र दूंगा।'

शार्ङ्गधरमें लिखा है, कि प्रधानतः धनुष दो प्रकारका है, पहले जिस धनुषसे फेंका जाता है वह यौगिकधनुष और शुद्धधनुष दूसरा है। जिस धनुषका व्यवहार बहुत समयमें हो सके, वही उत्तम धनुष है। धनुर्धारीके बलकी अपेक्षा धनुष यदि अधिक भारी हो, तो धनुर्धारी थोड़ा ही परिश्रममें थक जाता है, सुतरां उसका लक्ष्य ठीक नहीं रहता। युक्तिकल्पतरुके मतसे युद्धधनुष दो प्रकारका होता है, पहला शार्ङ्ग या सींगका बना हुआ और दूसरा बांसका बना हुआ।

वैशम्पायन लिखते हैं, कि शार्ङ्गधनुषमें तीन जगह झुकाव होता है, पर वैणव अर्थात् बांसके धनुषका झुकाव बराबर क्रमसे होता है। पुराण पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि विष्णुके शार्ङ्गधनु था, किन्तु वह धनुष मनुष्योंके दुष्प्राप्य है। विश्वकर्माने उसे बनाया था और वह सात बित्ता लम्बा था। जो शार्ङ्गधनुष मनुष्यके काममें आता, वह ६॥ बित्तेका होता है और अश्वारोही तथा गजारोही उसे काममें लाते हैं। रथी और पैदलके लिये बांसका ही धनुष ठीक है।

बांसका धनुष होनेसे पहले उसकी गांठ जांचनी पड़ती है। ९, ५, ७ और ८ गांठवाला धनुष उत्तम माना गया है। ४, ६ या ८ गांठवाला धनुष खराब है अतः उसे परित्याग कर देना चाहिये। बहुत पुराने जले तथा चिरे बांसका धनुष अच्छा नहीं होता है। जिस धनुषके भीतर या बाहर अथवा हाथकी जगह पर कटा हो या फटा हो, जो घुनरोग हो या दुर्घाक्रान्त हो, वायु हो या वायुदोष हो अथवा जिसके गांठ या तलेमें गांठ हो, वैसा धनुष काममें नहीं लाना चाहिये। अच्छे रंगका अर्थात् पक्का, कोमल और मजबूत धनुष ही व्यवहारके योग्य है।

धनुषका प्रमाण—अग्निपुराणके अनुसार चार हाथका धनुष उत्तम, साढ़े तीन हाथका मध्यम और तीन हाथका अधम माना गया है। छोटा धनुष पदाति-के लिये कामका होता है। प्राचीनकालमें दो कोटियों-को गुणोक भी होती थी। यह ६ हाथ लम्बी और ६ [illegible] या उससे कुछ अधिक चौड़ी बनाई जाती थी। उस पर पत्थर फेंका जाता था, इसीसे इसका सार्थक नाम अश्मक्षेपक पड़ा है।

धनुषकी डोरी—डोरी पाटकी और कनिष्ठा अंगुलीके बराबर मोटी होनी चाहिये। इसमें किसी प्रकारका जोड़ न रहे, वह जहां तक दृढ़ और चिकनी हो, वहां तक अच्छा है। डोरीकी मोटाई सब जगह एकसी होनी चाहिये। इस प्रकारकी डोरीमें युद्धके समय काम आ सकती है।

पक्का बांस छिल कर भी डोरी बनाई जाती है। उसे समूचा सूतेसे ढक देना पड़ता है। इस तरहकी डोरी बहुत मजबूत होती है और काफी टान सह सकती है। यदि सूता न हो, तो हिरण, भैंसे, बैल एवं छागको मरी हुई गाय या वकरेकी तांतकी डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है। इसके सिवा प्राचीनकालमें अकवनके पेड़की सूखी छाल मूर्वालताके सूतेसे डोरी बनाई जाती थी। धनुर्वेदमें उसका पूरा व्यौरा है।

शर-विधान—तीर बनानेके लिये कैसा नरकट लेना चाहिये उसके विषयमें वृद्धशार्ङ्गधरने इस प्रकार लिखा है—जो नरकट न तो उतना मोटा हो और न उतना पतला ही हो, जो कच्चा न हो, पक्का हो पर खराब मट्टी पर न उपजा हो, जिसमें गांठ न हो और पक कर जिसका रंग पाण्डुवर्ण हो गया हो, वैसा ही नरकट तीरके उपयुक्त है। कठिन, सुगोल तथा उत्तम स्थान पर जो नरकट उपजता है, उसका तीर बहुत अच्छा तथा टिकाऊ होता है। वाण (शर) दो हाथसे अधिक लम्बा और छोटी उंगलीसे अधिक मोटा न होना चाहिये। जहां तक सरल अर्थात् सीधा हो, वहां तक अच्छा है। अगर उसमें कहीं टेढ़ापन हो, तो उसे किसी औजारसे ठीक कर लेना चाहिये।

तीरमें पंख नहीं लगानेसे उसकी गति सीधी नहीं रहती है। पंख रहनेसे वह हवाको काटता जाता है, सुतरां तीर ठीक सीधा चलता है, टेढ़ा जाने पर भी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होता। किस तरहका पंख लगाना चाहिये, इसके विषयमें वृद्धशार्ङ्गधर यों लिखते हैं—काक, हंस, शश, मयूर, क्रौंच, वक तथा चील इन सब पक्षियोंका पंख उत्तम है। प्रत्येक तीरमें कमसे कम ४ पंख बराबर बराबर दूरी पर देना चाहिये। एक एक ६ उंगलीका पंख रहनेसे काम चल सकता है। पर जो सब वाण शार्ङ्गधनुके लिए बनाने होंगे, उसमें दश उंगलीका पंख देना आवश्यक है। बांसके धनुषमें भी ६ उंगलीका पंख काफी है।

शर तीन प्रकारके कहे गए हैं, जिसका अगला भाग मोटा हो, वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुषजातीय और जो सर्वत्र बराबर हो, वह नपुंसकजातीय कहलाता है। स्त्री जातीय शर बहुत दूर तक जाता है। पुरुषजाति वस्तुभेदके योग्य है और नपुंसक जातीय निशाना साधनेके लिए अच्छा होता है।

फल—सुलक्षणयुक्त शरके आगे जिस तरहका फल लगाना चाहिए। उसके विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं—सब फल सुधार तीक्ष्ण और अक्षत होना चाहिए। फलके तैयार हो जाने पर उस पर वज्र लेप देना पड़ता है। वज्र देखो।

वाणके फल अनेक प्रकारके होते हैं—आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचन्द्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदन्त, द्विभल्ल, कर्णिक, काकतुण्ड, प्रभृति। भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका फल बनता है।

आरामुखके द्वारा कवच और चर्म, अर्द्धचन्द्र द्वारा प्रतियोद्धाका मस्तक, क्षुरप्रद्वारा प्रतियोद्धाका कार्मुक (धनुष), भल्ल द्वारा हृदय, द्विभल्ल द्वारा नजदीकमें आया हुआ शर, काकतुण्ड द्वारा ३ उंगलीका लोहा और गोपुच्छ द्वारा अनेक द्रव्य भिद सकते हैं। इनके सिवा लौहकण्टक मुख नामक फलसे तीन उंगली छेद हो सकता है।

फलमें लेप देनेका नियम—लेपके गुण दोषके अनुसार अस्त्रकी धार अच्छी और बुरी होती है। इसी कारण धनुर्वेदमें लेप देनेकी व्यवस्था बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखी गई है। भिन्न भिन्न अस्त्रोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका लेप देनेको कहा है। शरके फलमें किस तरहका लेप देना चाहिये, वह नीचे लिखा जाता है।

वृद्धशार्ङ्गधर लिखते हैं—पीपर, सेंधा नमक और कुट इन तीनोंको गायके मूतसे पीसना चाहिये। पीसते समय विशेष ध्यान रहे जिससे औषधका अवयव नष्ट न हो जाय। पीछे उसीको शरके फलमें अथवा किसी दूसरे अस्त्रमें लगा कर अच्छी तरह दग्ध करना चाहिये। बाद अग्निकुण्डसे उठा कर उसे तेलमें डुबो देना चाहिये। ऐसा करनेसे अस्त्रकी स्वाभाविक शक्तिकी अपेक्षा विशेष शक्ति उत्पन्न हो जायगी। इसके सिवा वृहत्संहिता आदि ग्रन्थोंमें और भी दूसरे प्रकारके लेपका उल्लेख है।

पायस देखो।

जो वाण सारा लोहेका होता है, उसे नाराच कहते

कंधे तक आकर्षण करनेका नाम स्कन्ध है। इन पांचोंमें चित्रयुद्धके समय कैशिक, लक्ष्यके नीचे होने पर शाङ्गिक, तिर्यक् होने पर वत्सकर्ण, दृढवेधके समय भरत और दृढ़भेद तथा दूर निक्षेपके समय स्कन्ध व्ययका प्रयोजन पड़ता है।

वैशम्पायनने धनुष पकड़ने और वाण छोड़नेके विषयमें इस प्रकार उपदेश दिया है—

धनुर्वेदोक्त विधिके अनुसार बायें हाथसे धनुषको पकड़ कर दाहिने हाथ द्वारा उसमें डोरी लगानी चाहिये। बाद धनुषको पीठको ओर आश्रय कर मध्य-स्थान पकड़ना चाहिये। धनुषकी पीठ पर चार अङ्गुल और उसके नीचे द्वादशाङ्गुल दृढ़तासे रखना पड़ता है। बायें हाथसे इस तरह मुट्ठी बांध कर दाहिने हाथमें तीर लेते हैं और उसके मूलभागको डोरीमें लगाते हैं। तीरको इस प्रकार पकड़ना चाहिये कि वह उंगलीके बीचमें पड़ जाय। बाद उसे कान तक खींच कर लक्ष्यके प्रति मन और दृष्टि स्थिर करके छोड़ना चाहिये। उस समय आत्मरक्षाकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जब तीर छूटते मात्र लक्ष्य विद्ध होते देखें तभी समझना चाहिये कि धनुर्धारी कृतहस्त हो गया है। (वैशम्पायन)

लक्ष्य—तीर द्वारा जो विद्ध करना होगा, वही लक्ष्य है। युद्धके समय कितने प्रकारके लक्ष्यभेद करने पड़ते हैं, उसका कुछ निश्चय नहीं है। कोई तो चक्र जैसा घूमता है, कोई वायुके वेगमें दौड़ता है, किसीमें छिपा कर वाण फेंका जाता है और कोई बहुत कठिन तथा कोई बहुत बड़ा होता है। भिन्न भिन्न लक्ष्य भिन्न भिन्न उपायसे किया जाता है। किस तरह वे सब लक्ष्य विद्ध करनेसे कृतकार्य हो सकता है, धनुर्वेदमें उसका उपयुक्त उपदेश दिया गया है। वैशम्पायन, शार्ङ्गधर आदिने जो चार प्रकारके विभिन्न लक्ष्योंका उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं—

स्थिर, चल, चलाचल और द्वयचल यही चार प्रकारके लक्ष्य हैं। पहला स्थिरलक्ष्य है। यह लक्ष्य सीखनेके बाद चललक्ष्य, उसमें भी सिद्ध हो जानेसे चलाचल और तब द्वयचल सीखना पड़ता है। सामनेमें कोई एक स्थिर वस्तु रख कर और अपने भी स्थिरभावसे खड़ा हो कर उसे तीन प्रकारसे विद्ध करना चाहिये। इस स्थिरलक्ष्यका निशाना अच्छी तरह हो जानेसे उसे स्थिरवेधी कहते हैं। बाद समीपमें और नव उससे भी कुछ दूरमें एक सचल लक्ष्य रखना चाहिये और आप उसके सामने स्थिरभावसे खड़ा रहे। स्थिर भावसे खड़ा रह कर आचार्यके उपदेशानुसार उस सचल लक्ष्यको विद्ध करना चाहिये। जो इस तरहका लक्ष्यवेध सीख जाता है, उसे चलवेधी कहते हैं। धनुर्धारीको किसी एक स्थिर लक्ष्यके चारों ओर चाहे पांव परसे हो अथवा घोड़े पर चढ़ कर हो, घूम घूम कर उसे विद्ध करना चाहिये। इस तरहके लक्ष्यका नाम चलाचल है। यह एक अद्भुत व्यापार है। जब तक चल लक्ष्य अच्छी तरह सीख न गया हो, तब तक चलाचल लक्ष्य नहीं सीखा जाता है। वेध्य और धनुर्धारी दोनों जब प्रबल वेगसे घूम रहे हों, ऐसी अवस्थामें यदि धनुर्धर उस सचल लक्ष्यको यत्नपूर्वक भिद सके, तो उसे द्वयचल कहते हैं।

किस हाथसे किस तरहका लक्ष्यसन्धान सीखना चाहिये उसके विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं,—पहले बायें हाथसे, पीछे दाहिने हाथसे बाण खींचने, लगाने और छोड़नेके लिये सीखना चाहिये। जो मनुष्य पहले बायें हाथसे तीर चलाना सीखता है, वह बहुत जल्द धनुर्विद्यामें कृतहस्त हो जाता है। बायें हाथसे सीख जाने पर दाहिने हाथसे तीर चलानेका अभ्यास करना चाहिये। बाद दोनों हाथसे नाराच और तीर चलानेको लिखा है। दहिने हाथके अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर पुनः बायें हाथसे अभ्यास करना चाहिये। विशेषतः कैशिक नामक आकर्षण-क्रियामें समविषम दोनों प्रकारसे ही अभ्यास करना पड़ता है। जो अपने बायें हाथको दहिने हाथके समान बना सके और दहिने हाथ सरीखा बायें हाथसे भी नाराचका प्रयोग कर सके, धनुर्विद्योद्धगण उन्हें सव्यसाची मानते हैं।

शिक्षाके समय जिस तरह लक्ष्य स्थापन करना पड़ता है, उसके विषयमें भी शार्ङ्गधरने ऐसा लिखा है,—

सूर्योदयके समय पश्चिमको ओर, अपराह्णमें पूर्वको ओर और अवरोधके समय उत्तरको ओर लक्ष्य स्थापन

कर शराभ्यास करना चाहिये। युद्धकालके अतिरिक्त और दूसरे समयमें दक्षिणकी ओर लक्ष्य करना उचित नहीं है। अभ्यासके समय कितनी दूर पर लक्ष्य स्थापन करना चाहिये उसके विषयमें यों लिखा है —

६० धनु अर्थात् २४० हाथकी दूरी पर लक्ष्य रख कर विद्ध करना उत्तम, ४० धनु (१६० हाथ) पर मध्यम और २० धनु (८० हाथ) पर रख कर विद्ध करना अधम माना गया है।

२४० हाथकी दूरी पर लक्ष्य स्थापन करके तीर चलानेका अभ्यास करना कुछ सहज बात नहीं है। इसीके द्वारा उस समयके वीरोंका बाहुबल और बाणका वेग कितना अधिक था, वह आप साफ जाना जाता है। आइ'बरमें एक जगह लिखा है, कि तीर ५०० हाथ तक जा सकता है। आज कलकी सामान्य बन्दूककी गोली सम्भव है, कि ५०० हाथ तक नहीं पहुंच सकती।

कितनी बार अभ्यास करना चाहिये, इसके विषयमें भी ऐसा उपदेश है —

जो पूर्वाह्न और अपराह्न में ४०० बार लक्ष्य विद्ध करके थक जाता है, वह उत्तम धनुर्धारी, जो ३०० बारमें थकता वह मध्यम और जो २०० बारमें थकता है, वह अधम धनुर्धारी माना गया है। यथार्थमें जब तक शरीर और मनमें थकावट न आ जाय तब तक परिश्रम करते रहना चाहिये।

पुरुषप्रमाण अर्थात् १॥० हाथ ऊँचा चन्द्रवत् गोला कर काष्ठफलकमें लक्ष्य स्थापन करनेको लिखा है।

जो उस चन्द्रक लक्ष्यका ऊर्ध्वभाग बेध करता, वह श्रेष्ठ, जो नाभि बेध करता वह मध्यम और जो पैर बेध करता है, वह निकृष्ट समझा जाता है।

अग्निपुराणमें लिखा है कि जो बाणभङ्ग, शतावर्त्त, काष्ठच्छेदन, बिन्दुक और गोलक जानता है, वह गुणी होता है।

एक मनुष्य सामने खा कर बाण छोड़े और दूसरा उस सम्मुखागत बाणको आधे पथ तिरछा हो कर या बाणको तिरछा कर छेद डाले। जो ऐसे भी बाण छेद कर सकता है, उसे बाणछेदी कहते हैं। शतावर्त्त नामक विलक्षण धनुके प्रकारका है जिसमेंसे वरा-टिका प्रधान है। एक काठके टुकड़ेमें कांटेसे एक कौड़ी बांध कर उसे घुमाते रहे। उस घूमती हुई कौड़ी पर निशाना लगानेका नाम वराटिका है। जो इस तरहका लक्ष्य भेद कर सकता है, वह उत्तम धनुर्धारी कहलाता है। निशाना मारनेकी जगह गोपुच्छके आकार की एक पतली मोटी लकड़ी रख कर उसे दूरसे सुरप्र नामक बाण द्वारा छेद करना सीखना चाहिये। इस तरह काठ छेद करते करते काष्ठच्छेद हो जाता है। युद्धके समय इसी लिये भल्लदण्डादि छेदना आवश्यक है, इसीसे इसका अभ्यास करना चाहिये।

लक्ष्यस्थानमें सफेद कागजको फूल सरीखा एक सफेद बिन्दु बनावे। पीछे उस बिन्दुका भेदना सीखे। जो इस तरह बिन्दुको बेध कर सकता है वह चित्रवेधी होता है। दूर और सामनेमें रह कर कोई आदमी काठका दो गोला फेंके। बाद धनुर्धरको गोपुच्छाकृति बाण द्वारा उन दो गोलाओंको नजदीक पहुंचने न पहुंचने ही छेद करना चाहिये अथवा भेद डालना चाहिये। इस तरह गोला बेध करनेमें जो पटु हो गया हो वह धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राजपूज्य होता है।

इस तरह कभी रथ परसे, कभी हाथी परसे, कभी घोड़ा परसे या कभी जमीन परसे बाणसन्धानका अभ्यास करना चाहिये।

रामायणमें कई जगह शब्दभेदी बाणका उल्लेख है। राजा दशरथने शब्दभेदी बाण द्वारा हाथी समझ कर अन्धमुनिके लड़के सिन्धुको मारा था। जब मेघनाद मेघकी आड़में रह कर बाण चला रहा था, तब लक्ष्मणने शब्दभेदी बाणका प्रयोग किया था। दूसरे दूसरे बाणप्रयोग की शिक्षा जैसी आसान है, शब्दवेध शिक्षा उतनी ही कठिन है। यह कठिन अभ्यासका फल है। जिस तरह यह अभ्यास उत्पन्न होता है महाभारतके अर्जुनचरित में हम लोगोंको उसका कुछ कुछ आभास मिलता है। अर्जुन द्रोणाचार्यके सर्वप्रधान शिष्य और प्रिय होने पर द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामाको अर्जुनसे अधिक चाहते थे। इस कारण वे कभी कभी छिपके अश्वत्थामाको कोई कोई शिक्षा सिखाया करते थे। अर्जुनको असाधारण प्रतिभा देख कर द्रोण मनहीमें

शंका करते थे कि अर्जुन भृणाचरसे ही सब बातका पता लगा सकता है। इस कारण उन्होंने पाचक ब्राह्मणको बुला कर कहा, कि देखो! अर्जुनको कभी भी अन्ध-कारमें खाने मत देना। पाचक भी उस दिनसे वैसा ही करने लगा। एक दिन अर्जुन जब भोजन कर रहे थे, तब संयोगवश हवासे दीप बुझ गया। अर्जुन दीपको अपेक्षा न कर भोजन करने लगे। अन्धकारमें ठीक यथा स्थानमें हाथ जाता है और कोई प्रतिबन्धक नहीं होता इससे उन्होंने समझा, कि यह केवल अभ्यास है। उसी समय उनके मनमें ऐसा ख्याल हो आया, कि अभ्यास करनेसे अदृश्य लक्ष्य भी अनायास ही भिद सकता है। यह सोच कर तभीसे वे अन्धेरी रातमें ठीक दो पहरको उठ कर अन्धकारमें लक्ष्यका अभ्यास करने लगे। इसी तरह उन्होंने अन्धकारमें लक्ष्यवेध सीखा था। शब्दवेधक्रिया भी इसी तरह अभ्यास करते करते सीखी जाती है। इस-के विषयमें शार्ङ्गधर इस प्रकार लिखते हैं—

लक्ष्यस्थानसे दो हाथ दूर पर एक कांसेका बरतन रखे और एक आदमी उस बरतनको कंकड़से आघात करता रहे। आघातमात्र जहांसे शब्द निकलेगा, ठीक उसी जगह ध्यान लगाये रहे। बाद केवल कर्णेन्द्रिय द्वारा मनको दृढ़ कर लक्ष्यका निश्चय करना चाहिए। फिर एक आदमी शब्द निकालनेके लिए उस बरतनको कंकड़से आघात पहुंचावे। तिस पर भी लक्ष्यका यदि निश्चय न हो, तो शब्दस्थानके अनुसार लक्ष्य स्थिर करना चाहिए। पीछे इसी तरह रोज रोज दृढ़ अभ्यास द्वारा क्रमशः दूरसे उस बरतनको रखे और कंकड़से मार कर केवल उसी शब्दके अनुसार लक्ष्यवेध करना सीखे। धीरे धीरे उसी शब्दसे लक्ष्यके प्रति वाण छोड़ना चाहिए। यह अभ्यस्त हो जाने पर शब्दभेदका ज्ञान हो जायगा। यह दुष्कर अभ्यास सभीके भाग्यमें बदा नहीं रहता है।

कौन कब सिद्ध लाभ कर सकता है, यह धनुर्वेद पढ़नेसे ही बहुत कुछ मालूम हो जायगा। अभी बन्दूक गोला गोली द्वारा जो सब कार्य किये जाते हैं, प्राचीन कालमें योद्धा लोग असाधारण शिक्षा और बाहुबलके प्रभावसे धनुर्वाण प्रयोग द्वारा वे सब कार्य करते थे। दिनोंदिन मनुष्य विलासी और क्षीणजीवी होते जा रहे हैं, एवं पूर्ववत् साहस और बाहुबलके अभावसे अभी केवल कौशल द्वारा अपने परिश्रमके लाघवका उपाय ढूंढ रहे हैं, क्योंकि फलसे अभी रोज रोज अभिनव अस्त्रादिकी सृष्टि होती जा रही है।

धनुर्विद् प्रयोगो मंहारान् वेत्ति जानाति विद-क्षिप्। (त्रि०) २ धानुष्क, धनुष चलानेवाला, रुमर्नत। (पु०) ३ विष्णु। ४ अठारह विद्याके मध्य विद्याभेद, अठा-रह विद्यामेंसे एक।

धनुष (सं० पु०) धन बाहुलकात् उषन्। १ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। २ कुक्कुर, कुत्ता।

धनुषाक्ष (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

धनुष्कपाल (सं० पु०) धनुषः कपालमिव 'इसुसोः सामर्थ्ये' इति षत्वं। धनुषका अवयव।

धनुष्कर (सं० पु०) करोति धनुस् कृ ट (दिवा विभेति। पा ३।२।२१) १ चापकारक शिल्पिभेद, धनुष बनानेवाला कारीगर। धनुः कर यस्य, ततो षत्वं। २ धानुष्क, वह जिसके हाथमें धनुषबाण हो।

धनुष्कोटितीर्थ (सं० पु०) एक तीर्थस्थान जो रामेश्वरसे दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां समुद्रमें स्नान करनेका माहात्म्य है। रामनादके सेतुपति उपाधिधारी राजाओंने बहुत रुपए खर्च करके इस तीर्थका उद्धार और संस्कार किया।

धनुष्पाणि (सं० त्रि०) धनुः पाणौ यस्य, इसुसोः सामर्थ्ये इति षत्वं। धनुर्हस्त, जिसके हाथमें धनुष हो।

धनुष्मत् (सं० त्रि०) धनुर्धार्यत्वेनास्त्यस्य मतुप्। धनुर्धर, योद्धा, वीर।

धनुष्मान् (सं० पु०) उत्तर दिशाका एक पर्वत।

धनुस् (सं० क्ली०) धनतीति धन शब्दे धन-उसि स च णित् (अर्त्तिपृवपीति। उण् २।११८) शरनिक्षेपयन्त्र, तीर फेंकनेका अस्त्र। इसका संस्कृत पर्याय—चाप, धन्व, शरासन, कोदण्ड, कार्मुक, इष्वास, स्थावर, गुणी, शरा वाप, लस्तक, विष्णता, अस्त्र धनु, तारक और काण्ड।

धनुस् दो प्रकारका होता है, शार्ङ्ग और वांश, कोमल और अत्यन्त कठिन। यह सुख और समृद्धिका कारण है। धनुष सममुष्टि परिमाणका होना चाहिए, विषम-मुष्टिका होनेसे विपत्तिको आशङ्का बनी रहती है।

जिस धनुस में तीन जगह झुकाव होता है, उसे प्राकृ और जिसमें सब जगह झुकाव होता है, उसे वैष्णव अर्थात् बांसका धनुष कहते हैं। प्राकृ धनुस् सात बित्तेका होता है। मत्स्य, मर्त्य, पाताल आदिमें कहीं भी वैष्णव पुरुषोत्तमके सिवा और किसीसे साधन नहीं हो सकता है। जो प्राकृ धनुस् तीन बित्तेका होता है, वह सब धनुषोंमें निकृष्ट समझा जाता है।

प्रायः प्राकृ धनु अश्वारोहियों और गजारोहियोंके लिए बनाया जाता है। रथी और पैदलके लिए बांस का ही धनुस् ठीक है। धनुर्वेदमें बांसके धनुषका लक्षण इस प्रकार कहा है—

बांसके धनुषमें तीन पांच या सात गांठें होनी चाहिये। जिस बांसके धनुषमें नौ गांठें हों, उसे कोदण्ड कहते हैं। चार, छः और आठ गांठवाला धनुस् काममें न लाना चाहिये। जो बांस अतिजीर्ण हो या अपक्व हो, घिसा हो, दग्ध हो, छिद्रमय हो तथा हाथ रखनेकी जगह गुणहीन हो, गुणाक्रान्त हो अथवा कीड़ोंसे युक्त हो, ऐसे बांसका धनुस् कदापि नहीं बनाना चाहिये। इनमेंसे कहीं बांसका जो धनुस् बनता है, वह बहुत जल्द टूट जाता है, और अलक्ष्य वीर्य बांसका धनुस कड़ा होता है। घिसे हुए बांसके धनुस से उद्वेग और आत्मीयोंके साथ कलह उत्पन्न होता, दग्ध होनेसे घर जलता, छिद्रमय होनेसे पराजय होती तथा हाथ रखनेकी जगह खराब होनेसे लक्ष्यवेध नहीं होता है। जो धनुस हीन हो उसमें यदि तीर जमा कर निशाना लगाया जाय, तो कृतकार्य नहीं हो सकता और उस तरह का धनुस लड़ाईमें टूट जाता है। जिस धनुस के गले या तलेमें गांठ हो वह त्यागने योग्य है और साथ ही साथ अशुभकर भी है। ऊपर कहे गये दोष जिन धनुषों में न पाये जांय, वे ही श्रेष्ठ हैं तथा सब कामोंमें सिद्धप्रद हैं। जिस धनुस के ऊपर सींगे जाते हैं, उसे उपधनुष अर्थात् गुणेश कहते हैं। इस प्रकारका धनुस तीन हाथ लम्बा और दो उंगली चौड़ा होना चाहिये। धनुर्वेद देखो।

२ हठयोगदीपिकोक्त आसनविशेष, हठयोगका एक आसन।

हाथसे बाम और पैरकी उंगली पकड़ते हुए धनुष् आकर्षण करनेको धनुरासन कहते हैं। जलाशयतन्त्र-में चार हाथके आसनको धनुरासन माना है। ३ राशि विशेष, मेषादि बारह राशियोंमेंसे नवीं राशि।

धनु राशिकी संज्ञा—पृष्ठोदयराशि, सुवर्णसदृशवर्ण, समराशि अत्यन्त शब्दकारी पर्वतचारी दिनबली, पूर्वदिक्स्वामी, दृढ़ाङ्ग, क्षत्रियवर्ण, पीतवर्ण, अग्निमण्डल, उग्रस्वभाव, पित्तप्रकृति, अल्प सन्तानयुक्त, अल्पस्त्री प्रसङ्गप्रिय, द्विस्वभाव, क्रूर, अग्निराशि और उग्र स्वभाव। अन्त्यभागमें चतुष्पाद है। (नीलकण्ठीय ताजक)

महोत्पल-धृत यवनेश्वरके मतसे धनुकी संज्ञा ये हैं—धनुर्विधिष्ठ, पुरुषाकार, पश्चाद्भागमें घोड़ेका आकार, धनुर्देश, उच्च नीच भूमि, घोटक बलवान् अश्वधारी पुरुष, यज्ञस्थानादि एवं अश्वस्थान। इन सब संज्ञाओंमें अनेक प्रकारकी गणनाएँ हो सकती हैं जैसे हृत और नष्ट वस्तु कहां पर अवस्थित है, प्रश्नगणनामें उसका ज्ञान एवं राशिके जिस तरह शरीर विभाग हैं उसी उसी स्थानमें ग्रहोंके अवस्थानानुसार व्रणादिका चिह्न तथा ग्रहोंके बलाबलसे अङ्गप्रत्यङ्गकी हानि या दीर्घत्व इत्यादि का ज्ञान होता है। इस राशिके जो स्वभाव और स्थान आदि ऊपर लिखे गये, उनका ज्ञान इस राशि पर किसी ग्रहका अवस्थान या दृष्टि पड़नेसे होता है। फिर उन सब राशियों पर ग्रहका अवस्थान और दृष्टि पड़नेसे स्वभावादिका ज्ञास, वृद्धि एवं विपरीत हो सकता है।

धनुकी संज्ञा ये सब हैं—दीर्घ विषम द्विस्वभाव, क्रूर, अग्नि, पृष्ठोदय, पुरुष दिनबली, सुवर्ण, बृहस्पति का क्षेत्र, बृहस्पतिका मूलत्रिकोण, केतुका उच्च तुङ्ग, राहुका नीच, पूर्वदिक्स्वामी, पर्वतचर घोटक, क्रूर, अल्पप्रसू, मध्य और पश्च। धनुराशि धनुर्धारी होती है। इसके देवताका कमर तक घोड़ा सरीखा और शेष अंश धनुर्धारी मनुष्य सरीखा होता है। यह पांच विषम क्रूर है।

धनुका प्रथम आधा भाग द्विपद संज्ञा और शेष आधा भाग चतुष्पाद संज्ञा है। मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, धनु और मकर इन छहकी रात्रि संज्ञा है। ये राशि पृष्ठउदयकी होती है।

मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा प्रथम पाद धनुराशि है अर्थात् जो उस नक्षत्रमें जन्मग्रहण करता है, उसकी धनुराशि होती है।

धनुराशिमें जो जन्म लेता है, उसका स्कन्ध और मुख खर्व होता तथा वह शिल्पधनत्यागी, कवि, वीर्यवान्, वक्ता, दन्त, कर्ण, अधर और नासिका स्थूल कर्मोंमें उद्यत, शिल्पवेत्ता, कुब्जस्कन्ध, कुनखयुक्त, स्थूलहस्त, प्रगल्भताविशिष्ट, धर्मवेत्ता और बन्धुद्वेषी होता है तथा वह बलसे वशीभूत नहीं होता, मगर प्रीतिसे वशीभूत होता है। मतान्तरसे धनुराशिमें जन्म होनेसे वह कार्मुककी नाईं गुणयुक्त, कीर्त्तिमान्, पूजनीय, कुलनाथ, रसवेत्ता, बन्धुओंका एकमात्र आश्रय, अनेक धनजनयुक्त, देवद्विजसेवापरायण, मृदुगतिविशिष्ट और प्रसन्नशील होगा।

धनुराशिमें रविप्रभृति ग्रहोंके रहनेसे निम्नलिखित फल मिलते हैं—

धनुराशिमें रविके रहनेसे मनुष्य अनेक प्रकारके द्रव्योंसे युक्त, राजाकी नाईं कार्ययुक्त, विख्यात, प्राज्ञ, देवद्विजपरायण, शास्त्रार्थ और हस्तिशिक्षामें निपुण, व्यवहारयोग्य, साधुओंके पूजक, प्रगल्भ, मनोहर, विस्तीर्ण देहविशिष्ट, बन्धुओंके हितकारी और सत्त्वयुक्त होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि चन्द्रमासे देखे जांय, तो वह वाक्य, विभव, बुद्धि और पुत्रयुक्त, नृपतुल्य, शोकहीन तथा सुन्दर शरीरवाला होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि मङ्गलसे देखे जांय, तो वह युद्धमें यशस्वी, स्पष्ट वक्ता, धृति और सौख्यसम्पन्न तथा तीक्ष्ण होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि बुधसे देखे जांय, तो जातबालक मधुर वाक्यसम्पन्न, लिपिवेत्ता, काव्यकलावित्, गोष्ठीपालक और धातुज्ञ होगा। धनुराशिस्थित रवि यदि बृहस्पतिसे दृष्ट हों, तो मनुष्य राजभवन विचरणकारी वा राजा, हस्ती, अश्व और धनयुक्त एवं विद्वान् होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि शुक्रसे दृष्ट हों, तो वह सुगन्ध माल्यादिके साथ सर्वदा दिव्य स्त्रीभोगरत और शान्त होता है। धनुराशिस्थित रवि यदि शनिसे दृष्ट हों, तो जातबालक अशुचि, परान्नाकाङ्क्षी, नीचानुरत, चतुष्पद क्रीड़नशील और अत्यन्त चपल होता है।

धनुराशिमें चन्द्रमाके रहनेसे मनुष्य कुब्जाङ्ग, हस्तचञ्चल, स्थूलहृदय और कटिदेशयुक्त, पीनबाहु, वाग्मी, दीर्घमुख, दीर्घकण्ठविशिष्ट, जलतटवासी, शिल्पवेत्ता, गुप्तगुह्यदेश, शूर, वृथाभिमानी, अस्थिसार, बहुकाव्यवेत्ता, स्थूलकण्ठोष्ठनासिकासम्पन्न, ईश्वर, कृतज्ञ, धर्मयुताङ्घ्रि और प्रगल्भ होता है।

धनुराशिस्थित चन्द्रमा यदि रविसे देखे जांय, तो जातबालक नृपति, धनवान्, शूर, विख्यात पौरुष, अनुपम सुख और वाहनयुक्त, यदि मङ्गलसे देखे जांय, तो सेनापति, धनवान्, सौभाग्यसम्पन्न, विख्यात पौरुष और अनुपम भृत्ययुक्त, यदि बुधसे देखे जांय, तो बहुभृत्यसम्पन्न, बहुसारयुक्त, ज्योतिष और शिल्पादि क्रियानिपुण तथा लग्नाचार्य। यदि बृहस्पतिसे दृष्ट हों, तो अनुपम देहविशिष्ट, राजमन्त्री, धन, धर्म और सुखान्वित, यदि शुक्रसे दृष्ट हों तो सुखी, अतिशय विषयी, सौभाग्यसम्पन्न, पुत्रार्थाभिलाषी एवं मित्रयुक्त और यदि शनिसे दृष्ट हों, तो वह प्रियवादी, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, सत्यवादी, मनोहर तथा राजपुरुष होता है। धनुराशिमें मङ्गलके रहनेसे मनुष्य बहु क्षत द्वारा कृशाङ्ग निष्ठुर वाक्यभाषी, पराधीन, रथ वाजी और पदातिकके साथ युद्धकारी, रथ द्वारा दूसरी सैन्यके भेदक, विफल श्रमकर, सर्वदा खिन्न, परस्पर क्रोधनिष्ठचित्तसम्पन्न तथा गुरुजनोंमें असत्यभाषी। यदि धनुराशिमें बुध रहे तो दानगुणमें विख्यात, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, वीर्यवान्, मन्त्रणाकुशल, कुलप्रधान, महाविभवसम्पन्न, यज्ञ और अध्यापनारत, मेधावी, वाक्पटु, दाता और लिपिकुशल होता है।

धनुराशिमें यदि बृहस्पति रहे, तो जातबालक व्रत, दीक्षा और यज्ञादि कर्मोंमें आचार्य, संस्थानविहीन, अर्थसम्पन्न अर्थात् सञ्चय करनेमें विशेष पटु, प्रसन्न, दाता, अपने सुहृत् पक्षका प्रिय व्यवहारकारी, राजमन्त्री वा सेनाध्यक्ष, नाना देशनिवासी एवं निर्जन तीर्थमें यज्ञकारी होता है।

धनुराशिमें शुक्रके रहनेसे वह सधर्म इच्छास्वरूप श्रमजनित फलयुक्त, जगत्प्रिय, कमनीय शरीरसम्पन्न, कुलीन, विद्वान्, गो मयुक्त, सचरित्र, स्त्रीसौभाग्ययुक्त,

धनेपिन् (सं० त्रि०) धनेच्छु, धन चाहनेवाला।

धनोरो—मध्यभारतके वर्धा जिलान्तर्गत आर्वी तह-सीलका एक ग्राम। यह वर्धाशहरके १३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः एक हजार है। अधिवासी क्षपक और तांत हैं। यहां प्रति शुक्र-वारको हाट लगती है।

धनोपम (सं० पु०) धनलोभ, धनका लालच।

धनौती—बिहारके अन्तर्गत चम्पारण जिलेकी एक नदी। पहले गण्डक नदीको उपनदी हड़ाकी एक शाखा लाल-वेगी नदीसे यह धनौती उत्पन्न हुई थी। अभी इसकी लम्बाई ११३ मील है। उत्पत्तिस्थानके समीप इसमें अधिक जल है। यह सीताकुण्डके निकट शिखरिणी नदीमें जा गिरी है। मोतिहारी शहरके निकट इस नदीके ऊपर रेल जानेका एक लोहेका पुल बना है। धनौती नाम धनवती शब्दका अपभ्रंश है। भविष्य-ब्रह्मखण्डके जिस अध्यायमें चम्पादेशका वर्णन है, उसीमें धनवती नामका भी उल्लेख है। (भविष्य ब्रह्मखण्ड ४२।५)

धनौदा (धरनौदा)—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत गुणा उप-विभागका एक छोटा सामन्तराज्य। इसमें ३२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः पांच हजार है। यहांके राजा ठाकुर कहलाते हैं। ये ठाकुर छत्रशालके वंशज हैं। छत्रशालने १८४३ ई० में रघुगढ नामक किला और धनौदा राज्य जागीरके रूपमें पाया था। ये खीची चौहान-वंशीय राजपूत हैं।

धनौरा—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५८' उ० और देशा० ७८° १८' ३०" पू०के मध्य गङ्गा नदीसे ४½ कोस पूर्व और मुरादाबाद शहर से २२½ कोस पश्चिम पक्की सड़कके ऊपर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः पांच हजार है। यहां चीनीका विस्तृत कारबार है।

धन्धुक—१ बम्बईके अहमदाबाद जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २१° २६' से २२° ३१' उ० और देशा० ७१° १८' से ७२° २३ पू० में अवस्थित है। भूपरिमाण १२८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२८५५८ है। इसमें ३ शहर और २०४ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन काली और समतल है। इसके पश्चिममें एक पहाड़ है। जंगल बहुत कम है। मध्य भागमें रुई और पूर्वांशमें गेहूं उपजता है। यहां जलका अधिक अभाव है, एक भी बड़ी नदी नहीं है। केवल भादर और उतावली नाम-की दो छोटी नदियां प्रवाहित हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २२° २१' उ० और देशा० ७१° ५८' पू० अहमदाबाद शहरसे ६२ मील दक्षिण पश्चिम और सूरतसे १०० मील उत्तर-पश्चिममें भादर नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १०३१४ है। यहां जलका बहुत अभाव है। अधिवासियोंमें मोढ़ाओंकी संख्या अधिक है। बारहवीं शताब्दीमें यहां प्रसिद्ध जैनशिक्षक हेमचन्द्रका जन्म हुआ था। उन्हींका जन्मस्थान होनेके कारण यह शहर प्रसिद्ध है। अनहिलवाड़के कुमारपाल उनके स्मरणार्थ यहां झेहर नामका एक मन्दिर निर्माण कर गये हैं। १८६० ई०में यहां म्युनिसिपालिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय प्रायः १६०००) रु० की है। यहां एक सब-जज की अदालत, अस्पताल और छह स्कूल हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान है।

धन्ना (हिं० पु०) धरना देना।

धन्नासिका (सं० स्त्री) रागिणीविशेष। इसका ग्रह षड्ज है और यह ऋषभवर्जित है तथा वीर और शृङ्गार-रसके लिये गाई जाती है।

यह रागिणी श्यामवर्णा, अत्यन्त मनोहारिणी, युवती, और विदुषी है। चित्रफलकमें अपने कान्तको चित्रित करती और कान्तविरहमें सर्वदा रोदन करती है। इसके नेत्रजलसे नाक और दोनों स्तन धोए जाते हैं।

धन्नासेठ (हिं० पु०) प्रसिद्ध धनाढ्य, भारी मालदार, बहुत धनी आदमी।

धन्नी (हिं० स्त्री०) १ पञ्जाबके नमकवाले पहाड़ोंके आस पास मिलनेवाली गायों बैलोंकी एक जाति। २ घोड़ेकी एक जाति। ३ बेगारका आदमी।

धन्य (सं० पु०) धनाय हितः धन-यत्। १ अश्वकर्णवृक्ष, एक प्रकारका शालवृक्ष। (त्रि०) २ पुण्यवान्, सुकृती, श्लाघ्य, बड़ाईके योग्य। जो अपने नाम, यश और कीर्त्ति आदि द्वारा विख्यात हों, वे ही धन्य हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें धन्यत्वके

जिसमें सनत्कुमारसे इस प्रकार कहा गया है:—

त्रिलोकमें वासुकीके मध्यभागमें शतयोजन जम्बूद्वीप धन्य है, क्षीरोदसागर धन्य है, जहाँ हमारे जैसे जन्तुगण विद्यमान हैं, वसुधादेवी धन्य हैं, जहाँ सात सागर प्रवाहित हैं। इन लोगोंके आधार श्रीकृष्णके अंशस्वरूप अनन्तदेव धन्य हैं, जगत्के विधाता पितामह ब्रह्मा धन्य हैं, चारों वेद धन्य हैं, यज्ञसमूह और व्यवस्थाकर्त्ता धन्य हैं, समस्त शुभकर्म धन्य हैं और परमात्मा श्रीकृष्णदेव तो निश्चित धन्य हैं, केवल मैं धन्य नहीं हूं। ३ धनलभ्य जिससे धन प्राप्त हो। ४ धनके लिये स योग्यादि ५ साध्य प्रम समीप। ६ सुखी, सुकृती। ७ कृतार्थ। ८ विष्णु। ९ नास्तिक। १० धान्यक, धनिया। ११ कैवर्त्तमुस्ता, कैवरी मोथा।

धन्यधाम—मणिरामपुरकोल यशोर प्रदेशका एक ग्राम।

धन्यवाद (स० पु०) १ साधुवाद, प्रशंसा, वाह वाह। २ कृतज्ञता सूचक शब्द प्रशंसा।

धन्यविष्णु—मातृविष्णुके छोटे भाई। मध्यभारतके सागर जिलेकी खुराई तहसीलके अन्तर्गत एरण नामक ग्राममें ताल पत्थरके स्तम्भमें एक लिपि खोदी हुई है। लिपि पढ़नेसे जाना जाता है कि यह स्तम्भ एक ध्वजस्तम्भ है जिसे महाराज मातृविष्णु और उनके छोटे भाई धन्यविष्णुने प्रतिष्ठित किया है। गुप्तसम्राट् बुधगुप्तके समय यह लिपि खोदी गई है। इसके पास ही वराहमन्दिरमें वराहप्रतिमाके वक्षःस्थल पर उत्कीर्ण एक लिपि पढ़नेसे मालूम होता है कि महाराज मातृविष्णुके भाई धन्यविष्णुने इस वराहप्रतिमा और मन्दिरका निर्माण किया। यह लिपि राजा तोरमाणके समयमें उत्कीर्ण हुई है।

धन्यव्रत (स० क्ली०) धन्य धनजनक व्रत। धनजनक व्रतविशेष यह व्रत जो धन प्राप्तिके लिये किया जाता है। कुबेर पहले शूद्र थे पीछे यही व्रत करके वे धनपति हो गये।

वराहपुराणके अनुसार यह सौभाग्यवर्द्धनव्रत है। अगस्त्य इस व्रतके उपदेशक हैं। निर्धन मनुष्य भी यह व्रत करके धनी हो सकता है। अग्रहण महीनेकी शुक्ल प्रतिपद् तिथिमें रातको विष्णुरूपी अग्निकी पूजा की जाती है। बादमें वैश्वानर नामक भगवान्के दोनों पैर, अग्निके उदर, हविर्भुक्के दोनों वक्ष, द्रविणके दोनों भुज, संवर्त्तके मस्तक और ज्वलनके सर्वाङ्गका पूजन करते हैं। अन्तमें भगवान्के सामने विधानके अनुसार कुण्ड बना कर उसमें उक्त नाम से हुत मन्त्रसे होम करना होता है। पीछे व्रत करनेवालेको घी मिली हुई [illegible] खानेको लिखा है। अग्रहण महीनेसे ले कर फागुन तक इसी नियमसे चलना पड़ता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदमें भी इसी तरहकी पूजा करनेका विधान है। बाद चैत्रसे तीन महीनोंमें घृतयुक्त पायस भोजन कर इसी तरहका पूजन करते हैं और इसी नियमसे आषाढ़ महीने तक चलना पड़ता है। बाद श्रावणमाससे ले कर कार्त्तिक तक सत्तू खा कर रहना पड़ता है। इस प्रकार एक वर्ष ब्रह्मचारी रह कर व्रत समाप्त करते हैं। समाप्तिके दिन अग्निको स्वर्णप्रतिमा बना उन्हें एक जोड़ रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प, कुङ्कुम, रक्त चन्दन आदिसे सजा कर पूजा करते हैं। बाद एक सर्वगुणसम्पन्न प्रियदर्शन ब्राह्मणका विधानके अनुसार पूजन कर उन्हें एक जोड़ रक्तवस्त्र (धोती और ओढ़ना) और कुछ अर्थ दे कर निम्नलिखित मन्त्रसे दान देना चाहिये। मन्त्र—

"धन्योऽस्मि धनधन्योऽस्मि भाग्यवेद्योऽस्मि भाग्यवान्।
धन्यभावेन चैतेन व्रतेन स्यां सदा सुखी॥"

इस व्रतके फलसे मनुष्य इस जन्ममें सौभाग्य धन और धान्यशाली होता है। पूर्वजन्म और इस जन्मके पाप भी इस व्रतके फलसे दग्ध हो कर व्रतधारी इसी जन्ममें विशुद्धात्मा हो जाता है। इस व्रतकी कथा सुनने और पढ़नेसे भी मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पूर्वकालमें धनद कुबेर जब शूद्रयोनिमें थे, तब वे यही कथा सुन कर सुखी हो गये थे। (वराहपु० ६१ अ०)

धन्या (स० स्त्री०) धन्य टाप्। १ आमलकी, छोटा आंवला। २ उपमाता। ३ पिण्डारक वनदेवताभेद। ४ धन्याक धनिया। ५ मनुकी एक कन्या जिसका विवाह ध्रुवके साथ हुआ था।

धन्याक (स० क्ली०) धनाति सन्तर्पयति (पिनाक्यादयश्च। उण् ४।१५) इति सूत्रेण आक प्रत्ययेन साधु। स्वनामख्यात शाकजातीय क्षुप [illegible], धनिया

(Coriandrum Sativum)। इसका संस्कृत पर्याय—छत्रा वितुन्नक, कुस्तुम्बुरु, धान्याक, धनिक, धनक धानेय, धन्य, धनिका, छत्राधान्य, सुगन्धि, शाकयोग्य, सूक्ष्मपत्र, जनप्रिय, धान्यबीज वोनधान्य और वेधक है। भावप्रकाशके मतमे इसका पर्याय—कुस्तुम्बुरु, धेनिका, धन्यक, धान्य और धानेयक है। इसका गुण—मधुर, शीतल, कषाय, पित्तज्वर, काम, तृष्णा, छर्दि और कफनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—दीपन, स्निग्ध, हृद्य, मूत्रल, लघु, तिक्त, कटु, वीर्यकारक, पाचन, रुचिकर, ग्राही, स्वादुपाक, त्रिदोष, दाह, श्वास, अर्श और क्रमिनाशक है।

यह पौधा भारतवर्षमें सब जगह बोया जाता है। प्राचीनकालमें धनिया प्रायः भारतवर्षमें हो मिस्र आदि पश्चिमके देशोंमें जाता था, पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस, इंगलैंड आदि यूरोपके कई देशोंमें इसकी खेती अधिक होने लगी है। इसका पौधा एक हाथसे बड़ा नहीं होता है। इसकी टहनियां बहुत नरम और लताको तरह लचीली होती हैं। पत्ते बहुत छोटे और कुछ गोल होते हैं। पर उनमें टेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुतसे कटाव होते हैं। पत्तोंकी सुगन्ध बहुत अच्छी होती है, इसी कारण से चटनीमें हरे पीस कर डाले जाते हैं। टहनियोंके छोर पर इधर उधर कई सीकें निकलती हैं, जिनके सिरे पर छत्तेको तरह फैले हुए सफेद फूलोंके गुच्छे लगते हैं। जब फूल झड़ जाते हैं, तब गेहूंसे भी छोटे छोटे लम्बोतरे फल लगते हैं जो सुखा कर काममें लाये जाते हैं।

हिन्दुस्तानमें इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न भिन्न ऋतुओंमें होती है। धनियेको अच्छी तरह पीस कर उसे छान लें और तब उनमें गुड़ और पानी मिला कर एक नीचे मट्टीके बरतनमें रख छोड़ें। पीछे उसमें कपूर आदि सुगन्धद्रव्य मिला कर सेवन करनेसे पित्तका नाश होता है।

धन्याकक्वाथ—क्वाथविशेष। धनियेके काढ़ेको बासी करके चीनीके साथ बहुत सबेरे सेवन करनेसे बहुत शीघ्र अन्तर्दाह और पैत्तिक ज्वर विनष्ट होता है।

धन्व (सं० क्लो०) धनतीति धन शब्दे (उल्वादयश्च। उण् ४।९५) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। १ धनु, धनुष, कमान, चाप। २ धन्वन्तरिके पिता। ३ दुरालभा, जवासा, धमासा।

धन्वङ्ग (सं० पु०) धन्वो धनुष इव अङ्गं यस्य। धन्वनवृक्ष, धामिनका पेड़। (Grewia asiatica) इसका संस्कृत पर्याय-रक्तकुसुम, धनुर्वृक्ष, महाबल, रुजासह, पिच्छिलक, रूक्ष और स्वादुफल है। इसका गुण-कटु, उष्ण, कषाय, कफनाशक, दाह और शोषकर, ग्राहक तथा कण्ठामयनाशक है। इसके फलका गुण—कषाय, शीतल, स्वादु, कफ और वायुनाशक है। २ वंश, बांस।

धन्वचर (सं० त्रि०) धन्वना धनुषास्त्र चरतीति चर-ट। धानुष्क, जो धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

धन्वज (सं० त्रि०) धन्वनि मरुदेशे जायते जन-ड। मरुभव, मरुदेशमें उत्पन्न।

धन्वतरु (सं० पु०) सोमवल्ली।

धन्वदुर्ग (सं० क्लो०) धन्वना निर्जलस्थलेन वेष्टितं दुर्गं। दुर्गभेद, ऐसा दुर्ग या गढ़ जिसके चारों ओर पांच पांच योजन तक निर्जल और मरुभूमि हो।

धन्वन् (सं० क्लो०) धन्यते गम्यते दुर्गमादि स्थनेऽनेनेति धन्व-कनिन्। १ धनु, धनुष, कमान, चाप। २ स्थल, सूखी जमीन। ३ जलहीन देश, मरुदेश। ४ आकाश, आसमान।

धन्वन (सं० पु०) धन्वति दृढत्वं गच्छति धन्व-गतौ ल्यु। वृक्षविशेष, धामिनका पेड़। धन्वङ्ग देखो।

धन्वन्तर (सं० क्लो०) चतुर्हस्त परिमित दण्डरूप परिमाणभेद, चार हाथको एक माप।

धन्वन्तरि (सं० पु०) धनुरुपलक्षणत्वात् शल्यादि चिकित्साशास्त्रं तस्य अन्तं अच्छतीति ऋ गतौ (अच इः। उण् ४।१३८) इति इ। समुद्रोत्थित देववैद्यभेद, देवताओंके वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमन्थनके समय समुद्रसे निकले थे। इनकी कथा भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है—

एक दिन देवराज इन्द्रने जब अपनी दृष्टि संसारकी ओर डाली, तब व्याधिसे अत्यन्त पोड़ित मनुष्योंको देख उनका हृदय दयासे भर आया। तब इन्द्रने धन्वन्तरिको बुला कर कहा, 'हे धन्वन्तरि! मैं आपसे कुछ अनुरोध

करता हूँ, वह यह है कि आप प्राणियोंके प्रति दया दरसाइये। परोपकारके लिये महात्माओंको नाना प्रकारके क्लेश सहने पड़ते हैं। भगवान् विष्णुने भी मत्स्यादि शरीर धारण कर प्राणियोंकी रक्षा की है। पृथ्वीके जिस ओर दृष्टि डाली जाती है उधर ही देखा जाता है कि प्राणीमात्र प्रतिनियत व्याधि द्वारा पीड़ित हो कर नाना प्रकारके दुःख भोग रहे हैं। अतः आप इनके उपकारके लिये भूलोकमें जा कर काशीधामका राजा होवें और व्याधि समूहकी चिकित्साके लिये आयुर्वेद शास्त्र प्रकाश करें। इतना कह कर इन्द्रने धन्वन्तरिको सब आयुर्वेद शास्त्र सिखला दिये। धन्वन्तरि इन्द्रसे सब आयुर्वेदशास्त्र सीख कर काशीधामको आये और इन्होंने किसी क्षत्रियके घरमें जन्मग्रहण किया। यहाँ ये दिवोदास नामसे प्रसिद्ध हुये। इन्होंने बाल्यकालमें ही सब वासना छोड़ कर पञ्चवर्षमें ही ब्रह्माकी तपस्या की। ब्रह्माने इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर इन्हें काशीका राजा बनाया। राजा हो कर इन्होंने प्राणियोंके उपकारके लिए आयुर्वेद शास्त्र प्रचार किया। पीछे ये धन्वन्तरिसंहिता नामक एक ग्रन्थ लिख कर शिष्योंको पढ़ाने लगे। (भावप्र० पूर्वख०)

हरिवंशमें इनका उत्पत्ति विवरण इस प्रकार लिखा है—

महामति जनमेजयने वैशम्पायनसे प्रश्न किया था 'हे महात्मन्! देव धन्वन्तरि किस लिए इस लोकमें मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए थे? इसके उत्तरमें वैशम्पायनने कहा था—पूर्वकालमें जब देवता और असुरगण समुद्र मन्थन कर रहे थे तब समुद्रसे ये उत्पन्न हुए। इनके उत्पन्न होते ही दिशाएँ चमक उठीं। उस समय ये निष्कामभावसे खड़े थे और ध्यानपरायण थे। सामने भगवान् विष्णुको देख ये स्तब्ध हो रहे, इस पर भगवान्ने इन्हें अब्ज कह कर पुकारा। भगवान्के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की, 'हे प्रभो! आप लोकनाथोंके ईश्वर और जगत्के विधाता हैं। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः यज्ञमें मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय।' विष्णुने कहा, 'हे वत्स! देवताओंने यज्ञभागको कल्पना कर दी है और वे महर्षियोंके बीच विधिपूर्वक प्रदान कर गये हैं। अभी तुम्हारे लिए होममात्र विधान करनेमें मेरी शक्ति नहीं है। पर तुम इस जन्ममें देवताओंके पुत्र हुए हो, दूसरे जन्ममें विशेषख्याति प्राप्त करोगे। अणिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भसे ही प्राप्त रहेंगी और तुम उसी शरीर द्वारा देवत्व लाभ करोगे। द्विजातिगण चरु, मन्त्र, व्रत और जपादि द्वारा तुम्हारी अर्चना करेंगे। तुम्हीं आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करोगे।' ब्रह्मा भी ये सब जानते हैं इतना कह कर विष्णु अन्तर्धान हो गये।

इसके बाद द्वापरयुगमें सुनहोत्रके पुत्र काशिराज धन्व पुत्रके लिए कठोर तपस्या करने लगे। 'जो उपास्य देवता मुझे पुत्र देंगे मैं उन्हें मानूँ। मेरे पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करें।' इस अभिप्रायसे काशीराजने अब्जदेवकी आराधना की। बाद भगवान् अब्जने राजाकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर उनसे कहा, "हे सुव्रत! तुम जो वर चाहो मांगो, वह मैं अभी तुम्हें दूंगा। इस पर राजाने कहा 'भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे कीर्तिमान् पुत्र होवें।' 'तथास्तु' कह कर अब्जदेव अन्तर्धान हो गये। पीछे देव धन्वन्तरि राजाके घरमें जन्म ले कर सर्वरोगप्रशमन महाराज काशीराजके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भरद्वाज ऋषिसे आयुर्वेद शास्त्रका अध्ययन करके उसे फिर चिकित्सा क्रियाके साथ आठ भागोंमें विभक्त किया। वह विभक्त आयुर्वेद इन्होंने शिष्योंको सिखला दिया। धन्वन्तरिके केतुमान् नामक एक पुत्र हुए। (हरिवंश २८ अ०)

जब देवराज इन्द्र महामुनि दुर्वासाके शापसे श्रीभ्रष्ट हो गये तब देवताओंने विष्णुके आदेशसे समुद्रमन्थन किया। उस मन्थनमें मन्दरपर्वत मन्थनदण्ड, कूर्मराज उस मन्दरके अधिष्ठान और वासुकि मन्थनरज्जु हुए थे। स्वयं भगवान् विष्णु इसे अधिष्ठान करने लगे। समुद्रमन्थनमें पहले चन्द्र पीछे लक्ष्मी और तब सुरा उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ पारिजाततरु सुरभि गौ बाद शङ्खमें अमृत लिये धन्वन्तरि, और सबसे अन्तमें विष उत्पन्न हुआ। पुराणमें उक्त द्रव्योंकी उत्पत्तिमें फर्क पड़ता है। भागवतके अनुसार सबसे पहले विष, सुरभि उच्चैःश्रवा, ऐरावत, कौस्तुभ पारिजात, अप्सरागण

लक्ष्मी, वैजयन्ती और कस्तूप ; विष्णु पुराणके अनुसार यथाक्रमसे सुरभि, वारुणी, पारिजात, अप्सरागण, चन्द्र, विष अमृतके साथ धन्वन्तरि और लक्ष्मी ; मत्स्यपुराणके अनुसार विष, सुरा, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ, चन्द्र, अमृतके साथ धन्वन्तरि, लक्ष्मी, अप्सरा, सुरभि, पारिजात, ऐरावत, वारुणाच्छत्र और कर्णाभरण उत्पन्न हुआ। इसी समुद्र-मन्थनमें धन्वन्तरि जन्मग्रहण करके देववैद्य कहलाने लगे। ये वैदग्ध, मन्त्रतन्त्रज्ञ और वैनतेय थे। तथा इन्होंने शङ्करका शिष्यत्व स्वीकार किया था। (विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, महाभारत और भागवत।)

२ महाराज विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक।

धन्वन्तरिग्रस्ता (सं० स्त्री०) धन्वन्तरिणा ग्रस्ता। कटुकी, कुटकी।

धन्वन्तरिपञ्चकम् (सं० क्ली०) धन्वन्तरि कृत ग्रन्थविशेष, धन्वन्तरिकी बनाई हुई एक किताब।

धन्वन्य (सं० त्रि०) धन्वनि मरुदेशे भवः यत्। मरुदेश-भव, जो मरुदेशमें उत्पन्न हो।

धन्वपति (सं० पु०) धन्वनः मरुदेशस्य पतिः ६ तत्। मरुदेशाधिपति, मरुदेशका मालिक।

धन्वमांस (सं० क्ली०) निर्जलदेश पशुमांस मरुभूमिके पशुओंका मांस।

धन्वयवास (सं० पु०) धन्वदेशोद्भवः यवासः। दुरालभा, जवासा, धमासा। दुरालभा देखो।

धन्वसह (सं० पु०)धन्वं धनुर्ग्रहं सहते सह-अच्। धनुर्धर, योद्धा, वीर।

धन्वाकार (सं० त्रि०) धनुषके आकारका, कमानकी सूरतका, टेढ़ा।

धन्वायन (सं० त्रि०) धन्वा मरुदेशो ऽयत्यनेन करणे ल्युट्। मरुदेश-गमनसाधन, जिससे मरुदेश पार किया जाय।

धन्वायिन् (सं० त्रि०)धन्वना सह एति गच्छति इ-णिनि। १ धनुर्धर। (पु०) २ रुद्रदेव।

धन्विन् (सं० त्रि०) धनुश्चापो ऽस्त्यस्येति व्रीह्यादित्वात् इनि। १ धनुर्धर, वीर। २ विदग्ध। (पु०) धन्वमस्त्यस्येति धन्व इनि। ३ दुरालभा जवासा। ४ अर्जुनवृक्ष। ५ बकुल, मौलश्रीवृक्ष। ६ पार्थ, धनञ्जय, अर्जुन। ७ विष्णु। ८ महादेव। ९ तामस मुनिके एक पुत्रका नाम। १० धनुराशि।

धन्विन (सं० पु० स्त्री०) धन्व याद्दलक्षात् इनन्। शूकर, सूअर।

धन्विस्थान (सं० क्ली०) धन्विनां स्थानं ६-तत्। धनुष्कों या योद्धाओंकी एक स्थिति।

धप (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी और मुलायम चीजके गिरनेका शब्द। (पु०) २ धौल, थप्पड़, तमाचा।

धपना (हिं० क्रि०) १ बहुत तेजीसे चलना दौड़ना। २ झपटना, लपकना।

धप्पा (हिं० पु०) १ थप्पड़, धौल। २ क्षति, नुकसान, हानिका आघात।

धप्पाड़ (हिं० स्त्री०) दौड़।

धबधब (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी और मुलायम चीजके गिरनेका शब्द। २ भद्दे, मोटे मनुष्यके पैर रखनेका शब्द।

धबला (हिं० पु०) एक प्रकारका ढीला ढाला पहनावा, जिससे कमरके नीचेका अंग ढाका जाता है।

धब्बा (हिं० पु०) १ पड़ा हुआ चिह्न जो देखनेमें बुरा लगे, निशान, दाग। २ कलङ्क, दोष, ऐब।

धम (सं० त्रि०) धमतीति धम-अच्। १ अग्नि-संयोग-कर्त्ता। २ शब्दकर्त्ता, आवाज करनेवाला।

धम (हिं० स्त्री०) भारी चीजके गिरनेका शब्द, धमाका।

धमक (सं० पु०) धमतीति ध्मा-क्न् ध्म-कुम्, धमादेशश्च (क्वो धमच। उण् २।३५) १ कर्मकार, लोहार। २ धौंकने वाला।

धमक (हिं० स्त्री०) १ भारी वस्तुके गिरनेको आवाज। २ पैर रखनेकी आवाज। ३ गड्ढा। ४ वह आघात जो किसी भारी शब्दसे हृदय पर मालूम हो, दहल। ५ आघात आदिसे उत्पन्न कम्प या विचलता। ६ आघात, चोट।

धमकना (हिं० क्रि०) १ धम शब्दके साथ गिरना, धमाका करना। २ व्यथित होना, रह कर दर्द करना।

धमकाना (हिं० क्रि०) १ भय दिखाना, डराना। २ डाँटना, घुड़कना।

धमकी (हिं० स्त्री०) त्रास दिखानेकी क्रिया, डर दिखाने-का काम।

धमगज्जर (हिं॰ पु॰) १ उपद्रव, उत्पात, ऊधम। २ युद्ध, लड़ाई।

धमधन (स॰ पु॰) धम विचारे दिन। पार्वतीके कोप सम्भूत कुमारानुचर गणभेद, कार्त्तिकेयके गण जो पार्वतीके क्रोधसे उत्पन्न हुए थे। स्त्रियां टाप्। २ धमधमा, कुमारानुचर मातृभेद। (भारत शल्यपर्व ४७ अ॰)

धमधूसर (हिं॰ वि॰) स्थूल और भद्दे डौल आदमी, बहुत मोटा आदमी।

धमन (स॰ पु॰) धमति इत्यिरमनेनेति धम-करणे ल्युट्। १ नल नामक तृणभेद, नरकट, नरसल। २ धमनेका काम। ३ वह भट्टी जिसमें हवा दी जाती है। ४ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (वि॰) ५ क्रूर, कठोर।

धमना (हिं॰ क्रि॰) धौंकना, फूंकना।

धमनि (स॰ स्त्री॰) धमति इति धम अनि (अर्त्तिसृधमीति। उण् २।१०२) १ धमनी, नाड़ी। २ ग्रहभादके भाई ह्रादकी पत्नी जो वातापि इल्वलकी मां थी। ३ ग्रीवा। गलवर्त्ता कुत्सायां गमयति प्राप्नोति अनया भाययति वा विकृतिं साध्यधातुविभागेन वा धमति इति अथ दर्भं अपि पश्यति धमति हस्तनखा गायत्रीयादि इत्यथा। ४ वाक्। ५ शब्द।

धमनी (स॰ स्त्री॰) धमनि बाहुलकात् ङीप्। १ नाड़ी शरीरके भीतरकी वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदिका संचार होता रहता है।

इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

प्रधान धमनियां चौबीस हैं जो नाभिसे निकलती हैं किसी किसी पण्डितका कहना है, कि शिरा, धमनी और स्रोत इनमें कोई फर्क नहीं है, धमनी शिराका विकार मात्र है। पर यह ठीक नहीं है। मतविषय, मलमूत्रधारण और श्वास, तथा क्रियाकी भिन्नतायुक्त स्रोत शिरासे धमनी भिन्न है। शास्त्रमें इसे पृथक् बतलाया है और लौकिक व्यवहारमें भी धमनी शब्दसे शिरा नहीं समझी जाती है। मगर दोनोंके एक जगह रहने तथा शरीरके एक ही प्रकारके कार्य करनेसे ये दोनों एक ही समझे जाते हैं। दोनोंकी क्रियामें भिन्नता है सही, किन्तु बहुत सूक्ष्म है। अतः दोनोंकी क्रिया एक ही समझी जाती है।

ये सब धमनियां नाभिसे निकल कर दस ऊपरकी ओर गई हैं, दस नीचेकी ओर तथा चार बगलकी ओर। ऊपर जानेवाली १० धमनियां द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, श्वास, उच्छ्वास, जंभाई, छींक, हास्य, कथन, रोदन आदि काम होते हैं। ये दस धमनियां हृदयमें पहुंच कर तीन तीन शाखाओंमें विभक्त हो कर तीस हो जाती हैं। इनमेंसे दो दो वात, पित्त, कफ, शोणित और रस वहन करती हैं। इसके अतिरिक्त आठ शब्द, रूप, रस और गन्ध वहन करनेवाली हैं। फिर इन्हींसे मनुष्य बोलता है, इन्हींसे शब्द करता है, इन्हींसे सोता है, जगता है और इन्हींसे रोता है। स्त्रियोंके स्तनोंमें दो धमनियां दूध वहन करतीं, और पुरुषोंके शरीरमें दो शुक्र। यही तीस ऊपरकी धमनियां नाभिसे ले कर उदर, पार्श्व, पृष्ठ, हृदय, स्कन्ध, ग्रीवा और बाहु तक व्याप्त हैं।

यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियोंकी बात। अब अधोगामिनी धमनियोंके कार्य दिखलाये जाते हैं।

अधोगामिनी धमनियां इसी प्रकार वायु, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव आदि इनको नीचेकी ओर ले जाती हैं। जो दस धमनियां पित्ताशयमें जा कर वहां खाये पीए हुए रसको उष्णतासे पृथक् करती हैं, रस पहुंचा कर शरीरको तृप्त करती हैं, ऊर्ध्व- और तिर्यक्गत धमनियोंमें रस देती हैं तथा रसका स्थान पूर्ण एवं मूत्र, पुरीष, स्वेद प्रभृतिको परस्पर पृथक् कर देती हैं वे भी आमाशय और पक्वाशयके बीचमें पहुंच कर तीन तीन भागोंमें विभक्त हो कर तीस हो जाती हैं। इनमेंसे दो दो धमनियां वात, पित्त, कफ, शोणित और रस वहन करती हैं। आंतोंसे लगी हुई दो अन्नवाहिनी हैं, दो जलवाहिनी और दो मूत्रवाहिनी। मूत्रवस्तिमें लगी हुई दो धमनियां शुक्र उत्पन्न करनेवाली और दो प्रवर्त्तित करने वा निकालनेवाली हैं। ये दोनों धमनियां स्त्रियोंके शरीरमें आर्त्तव वहन करती हैं। मोटी आंतसे लगी हुई दो मलको निकालती हैं। बाकी आठ धमनियां नाभिसे अधोभागमें जा कर पक्वाशय, कटि, मूत्र, पुरीष गुह्यदेश, बस्ति, मेढ्र और उरु आदि स्थानोंको पोषण करती हैं।

अब तो तिर्यग्गामिनी धमनियोंके कार्य बतलाये

गये। अब तिर्यक्‌गामिनी धमनियोंके कार्य दिख-लाए जाते हैं। तिर्यक्‌गामिनी धमनियां उत्तरोत्तर सहस्रों लाखों सूक्ष्म सूक्ष्म शाखाओं प्रशाखाओंमें हो कर शरीरको छिद्रयुक्त बना देती हैं। इन सब सूक्ष्म धमनियोंके मुंह प्रत्येक लोमकूपमें लगे हुए हैं। इनके द्वारा भीतरका स्वेद बाहर निकलता और शारीरिक रस भीतर और बाहरसे सन्तर्पित होता है अर्थात् भीतरकी गर्मी लोमकूप द्वारा बाहर निकलती है और बाहरकी वायु जल आदि इसी तरह छिद्र द्वारा भीतर जाता है। इसी-से रस सन्तर्पित हुआ करता है। आधुनिक शरीर-तत्त्व-वेत्ताओंका कहना है, कि उक्त दो प्रकारके कामोंके लिये शरीरके ऊपरके भागमें दो प्रकारके छिद्र हैं। अभ्यङ्ग, परिषेचन, अवगाहन और लेपनक्रिया द्वारा तैलादिका वीर्य शरीरमें प्रवेश करता है। उसमें त्वक् पक जाता और स्पर्शके लिये सुख वा असुखका अनुभव होता है। सर्वाङ्गगामिनी धमनियोंका विषय तो कहा गया। अब मृणालसूत्रमें जिस तरह छिद्र रहते हैं, उसी तरह धमनीके भीतर भी छिद्र हैं। इन सब छिद्रोंसे शरीरमें रससञ्चारित होता है। पूर्वकथित समस्त मूलोंसे शिरा और धमनीको छोड़ कर जो सब छिद्रयुक्त नाड़ियां देहमें प्रवाहित होती हैं, उन्हें स्रोत कहते हैं। यदि शिरा वा धमनी आदिके विद्ध करते समय स्रोत विद्ध किया जाय तो निम्नलिखित फल पाये जाते हैं। जो सब स्रोत श्वास, अन्न, जल, रस, रक्त, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष और शुक्र वहन करते हैं, उनमेंसे श्वासवाही दो हैं। उन दोनोंका मूल हृदय और सारी रसवाहिनी धमनियां हैं। यह मूल यदि कहीं पर विद्ध हो जाये, तो क्रोशन अर्थात् यातनासे कातर और शरीर झुक जाता, मोहन अर्थात् भ्रम उत्पन्न होता, भ्रमण तथा वेपन आदि उपद्रव होते और कभी कभी मृत्यु भी हो जाया करती है। अन्न-वाहिनीस्रोत दो हैं, आमाशय और अन्नवाहिनी धम-नियां उनका मूल हैं। इस मूलके विद्ध होनेसे शूल, अन्न-में अरुचि, वमन, पिपासा और दृष्टिका व्याघात अथवा मृत्यु हो जाती है। उदकवाही स्रोत दो हैं, तालु और क्लोम उनका मूल है। इस मूलके विद्ध होनेसे पिपासा या उसी समय मृत्यु हो जाती है। रसवाही स्रोत दो हैं, हृदय और रसवाहिनी धमनियां उनका मूल हैं। इस मूल-को विद्ध करनेसे शोष अथवा श्वासवाही स्रोत विद्ध करने-से जो सब लक्षण पाये जाते हैं, वही लक्षण इसमें भी होते हैं, यहां तक कि मृत्यु भी हो जाया करती है। रक्त-वाही स्रोत दो हैं, यकृत्, प्लीहा और रक्तवाहिनी धमनियां उनका मूल है। इस मूलके विद्ध होनेसे देह श्यामवर्ण, ज्वर, दाह, पाण्डुता, अतिशय रक्तनिःसरण और चक्षु रक्तवर्ण ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं। मांसवाही स्रोत दो हैं, स्नायु, त्वक् और रक्तवाहिनी धमनियां उनका मूल है। इस मूलको विद्ध करनेसे श्वयथु, मांसशोष, शिरा-ग्रन्थि, अथवा मृत्यु तक भी हो जाती है। मेदवाही स्रोत दो हैं, कटी और दोनों वृक्क उनका मूल है। इस मूलको विद्ध करनेसे स्वेद निःसरण, अङ्गकी स्निग्धता, तालुशोष स्थूलशोष और पिपासा आदि उपद्रव दिखाई पड़ने लगते हैं। मूत्रवाही स्रोत दो हैं जिनका मूल वस्ति और मेढ़्र है। इसके विद्ध होनेसे वस्तिदेश स्फीत, मूत्रनिरोध और मेढ़्रकी स्तब्धता हो जाती है। पुरीषवाही स्रोत दो हैं, पक्वाशय और गलदेश इनका मूल है। इसके विद्ध होनेसे आनाह, दुर्गन्धता और आंतमें ग्रन्थिरोग ये सब उपद्रव होने लगते हैं। आर्त्तववाही स्रोत दो हैं, गर्भाशय और आर्त्तववाहिनी धमनी इनका मूल है। इस मूलके विद्ध हो जानेसे स्त्री वन्ध्या होती, मैथुन सह्य नहीं कर सकती तथा आर्त्तव शोणित नाश होता है। इन्हीं सब कारणोंसे बहुत सावधानीके साथ धमनी शिरा आदिको विद्ध करना होता है।

नाभिसे उत्पन्न धमनी २४ हैं।—नाभिसे ऊर्द्ध्वगामिनी १०, अधोगामिनी १० और तिर्यक्‌गामिनी ४, यही २४ धमनियां हैं। प्रत्येक ऊर्द्ध्वगामिनी धमनी हृदयमें पहुंच कर तीन तीन शाखाओंमें विभक्त हो कर ३० हो जाती है।

ऊर्द्ध्वगामिनी ३० धमनियोंके कार्य—वायुवाहिनी २, शब्दवाहिनी २, शब्दकारिणी २, पित्तवाहिनी २, रूप-वाहिनी २, निद्राविधायिनी २, श्लेष्मावाहिनी २, रस-वाहिनी २, चेतनकारिणी ४, रक्तवाहिनी २, गन्धवाहिनी अश्रुवाहिनी २, रसवाहिनी २, वाक्‌शक्तिवाहिनी २,

धमार (हिं॰ स्त्री॰) १ उपद्रव, उत्पात, उछल-कूद। २ नटोंकी उछल-कूद, कलाबाजी। ३ विशेष प्रकारके साधुओंकी दहकती आग पर कूदनेकी क्रिया। (पु॰) ४ एक प्रकारका ताल जो होलीमें गाया जाता है। ५ एक प्रकारका गीत जो होलीमें गाया जाता है।

धमारिया (हिं॰ पु॰) १ उछल कूद करनेवाला नट, कलाबाज। २ वह जो होलीमें धमार गाता हो। ३ वह साधु जो अग्निमें कूद पड़ता हो। (वि॰) ४ उपद्रव करनेवाला, शान्त न रहनेवाला, उत्पाती।

धमारी (हिं॰ वि॰) उपद्रवी, उत्पाती।

धमाल (हिं॰ पु॰ स्त्री॰) धमार देखो।

धमासा (हिं॰ पु॰) दुरालभा, जवासा।

धमि (सं॰ स्त्री॰) १ अन्त्र, अँतड़ी। २ धमनी, नाड़ी।

धमिका (हिं॰ स्त्री॰) १ लोहारिन। २ लोहारकी स्त्री।

धमूका (हिं॰ पु॰) १ प्रहार, आघात, धमाका। २ मुक्का, घूँसा।

धमेख (हिं॰ स्त्री॰) काशीसे दो कोसकी दूरी पर अवस्थित एक स्तूप। जहां बुद्धदेवने अपना धर्मचक्र अर्थात् धर्मोपदेश आरम्भ किया था उसी स्थान पर यह स्तूप बनाया गया था।

धम्मन (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

धम्माल (हिं॰ स्त्री॰) धमार देखो।

धम्मिल (सं॰ पु॰) धमतीति धम-विच् मिलतीति मिल क। पृषोदरादित्वादित्वात् साधुः। संयतकेश, बंधी चोटी, जूड़ा।

धय (सं॰ वि॰) धेट श। पानकर्त्ता, पीनेवाला।

धर (सं॰ पु॰) धरति पृथिवीमिति धृ-अच्। १ पर्वत, पहाड़। २ कार्पासतूलक, कपासका डोंड़। ३ कूर्मराज, कच्छप जो पृथ्वीको ऊपर लिये हैं। ४ वसुदेव, एक वसुका नाम। ५ विष्णु। ६ श्रीकृष्ण। ७ व्यभिचारी पुरुष, विट। (त्रि॰) ८ धारक, धारण करनेवाला, ऊपर लेनेवाला। ९ ग्रहण करनेवाला, थामनेवाला।

धर (हिं॰ स्त्री॰) धरने वा पकड़नेकी क्रिया।

धरकना (हिं॰ क्रि॰) धड़कना देखो।

धरण (सं॰ क्ली॰) धरतीति धृ ल्युट्। परिमाणभेद, एक तोल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं १/६ शतमान, कहीं १९ निष्पाव, कहीं १/१० कर्ष, कहीं १/१० पलको मानी गई है। धृ-ल्युट्। ३ धारण, रखने थामने, ग्रहण करनेकी क्रिया। (पु॰) ४ अद्रिपति। ५ लोक, संसार-जगत्। ६ स्तन। ७ धान्य, धान। ८ दिवाकर, सूर्य। ९ सेतु, पुल। १० अर्कवृक्ष, अकवन, मदार। ११ वैद्यक परिमाणविशेष।

धरणप्रिया (सं॰ स्त्री॰) जिनोंका एक शासनदेवता।

धरणि (सं॰ स्त्री॰) धरति जीवान्‌ इति धृ-अनि (अर्त्ति सृ-धृ धमीति। उण् २।१०३) १ पृथ्वी। २ शाल्मलीवृक्ष। ३ कन्दभेद। ४ एक वोधक। ५ धमनी नाड़ी।

धरणिज (सं॰ पु॰) धरणितो जायते जन ड। १ मङ्गल। २ नरकासुर। (त्रि॰) ३ धरणिजात मात्र, जो पृथ्वीमें उत्पन्न हो। स्त्रियां टाप्। ४ सीता।

धरणिधर (सं॰ पु॰) धरति इति धृ-अच्, धरण्याः धरः। १ पर्वत, पहाड़। २ कच्छप। ३ विष्णु। ४ शिव, महादेव। ५ शेषनाग।

धरणिरुह (सं॰ पु॰) धरण्यां रोहति रुह-क। वृक्ष, पेड़।

धरणी (सं॰ स्त्री॰) धरणि वा ङीष्। १ पृथ्वी। २ शाल्मली वृक्ष। ३ नाड़ी। ४ कन्दविशेष। इसका पर्याय—धारणीया धीरपत्री, सुकन्दक, कन्दालु, वनकन्द, कन्दाढ्य और दण्डकन्दक है। इसका गुण—मधुर, कफ, पित्त, आमय, रक्तदोष, कुष्ठ और कण्डूतिनाशक है। ५ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। ६ पुनर्नवा, एक छोटा पौधा। ७ मेदा।

धरणीकन्द (सं॰ पु॰) धरणी एव कन्दः। धरणी नामक मूलविशेष, वनकन्द।

धरणीकीलक (सं॰ पु॰) धरण्याः पृथिव्याः कीलक इव। पर्वत, पहाड़। पुराणमें लिखा है, कि पहाड़ पृथ्वीको कीलकी नाईं दबा कर संभाले हुए हैं, इसीसे पहाड़का ऐसा नाम पड़ा है।

धरणीधर (सं॰ पु॰) धरणिधर देखो।

धरणीध्रुत् (सं॰ पु॰) धरणीं भरति धृ-क्विप् तुक्। १ पर्वत। २ अनन्तदेव।

धरणीन्द्रवर्मा—कम्बोजदेशमें प्रकाशित खोदितलिपिसे मालूम पड़ता है, कि व्याधपुरके राजाओंमेंसे १५वें राजा

नील है। यह दरभङ्गा महाराजके अधिकारभुक्त है। यह तीन भागोंमें विभक्त है, प्रत्येक भागको जिला कहते हैं। उत्तर-पश्चिममें वीरनगर जिला, दक्षिणमें भवानीपुर और पूर्वमें गण्डोयाग जिला है। कोसी नदीमें जब बाढ़ आ जाती है, तब इस परगनेको महती क्षति होती है। वर्तमान शताब्दीमें नदीका पश्चिमी किनारा टूट जानेसे भवानीपुर जिलेकी अच्छी अच्छी जमीन नीचे पड़ गई है। आजसे कुछ पहले वीरनगरको ओर नदीके टूट जानेसे कितने शस्यपूर्ण ग्राम नष्ट हो गये हैं। उस समय वीरनगरके अन्तर्गत त्रिपनिया नामक स्थानमें एक नीलकी कोठी थी, अभी उसका चिह्नमात्र भी नहीं है। धुआं निकलनेकी चिमनी तक भी बालूसे ढक गई है। जिस तरह गङ्गा जमीनकी उर्वरता बढ़ानेके लिये अपने स्रोतमें पंक लाती है, उसी तरह कोसी अपने साथ धोला गिरिका बालू ला कर जमीनको ऊसर बनाती है। दरभङ्गाके राजा इस परगनेको देखनेके लिये कभी नहीं आते हैं। क्योंकि उन लोगोंका विश्वास है कि कोसी नदी पार होनेसे अशुभ होता है। इसी कारण इस परगनेमें मालगुजारीकी दर एक सी नहीं है।

३ बम्बई प्रदेशमें गुजरातके अन्तर्गत सूरत एजेन्सीका एक देशीय राज्य। इसके उत्तरमें सूरत जिलेका चिकली उपविभाग और बांसदाराज्य, पूर्वमें सर्गाना और डाङ्ग राज्य, दक्षिणमें नासिक जिला तथा पश्चिममें सूरत जिलेका बलसार और पार्दी तालुक है। यह राज्य उत्तरदक्षिणमें २० कोस और पूर्वपश्चिममें १० कोस तक विस्तृत है। इसमें धरमपुर नामका एक शहर और २७२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या लगभग १००४३० है, जिनमेंसे ८८२८० हिन्दू, १८५८ मुसलमान और २२८ पारसी हैं। राज्यका अल्पांश खेतीके लिये उपयुक्त है और अवशिष्ट पहाड़ और जङ्गलसे आच्छन्न है। दमनगङ्गा, कोलक, पर, औरङ्ग और अम्बिका नदी इस राज्यके बीच होती हुई काम्बे समुद्रमें गिरी हैं। जलवायु अस्वास्थ्यकर नहीं है। यहां महुएका फूल, अर्घ काष्ठ, सखुआकाठ, बाँस, धान, उरद, चना, ईख, चटाई, टोकरी, पंखा, गुड़, खैर और मट्टीके अच्छे अच्छे बरतन पाये जाते हैं। नासिक स्टेशनके रास्ते पर इस राज्यका प्रधान शहर 'धरमपुर' अवस्थित है। इस राज्यके वर्त्तमान अधिपति शिशोदिया राजपूत हैं। वर्त्तमान राजाका नाम महाराणा श्रीनारायणदेव जी रामदेवजी है। इन्हें ८ सलामी तोपें मिलती हैं। ये अपने राज्यमें प्रजाको प्राणदण्ड भी दे सकते हैं। किन्तु इसमें पोलिटिकल एजेण्टसे अनुमति लेनी पड़ती है। इस राज्यमें खून आसामीको यावज्जीवन कारादण्ड मिलता है। राज्यकी आमदनी ६ लाख रुपयेकी है। राजाके २०७ सेना और ४ कमान हैं। इस राज्यको पहले रामनगरमें राजा राज्य करते थे। उस समय यह पश्चिममें सागर उपकूल तक विस्तृत था। १५७६ ई०में रामनगरके राजाने टोडरमलके साथ बरोधनगरमें मुलाकात कर अकबरके अधीन सैनिक विभागका एक माननीय पद और उपाधि ग्रहण की थी। १८वीं शताब्दीमें महाराष्ट्रोंने इनके राज्यके ७२ ग्राम अधिकार कर लिये थे। पेशवा यहांके राजासे जो कर पाते थे, वह बेसिन नगरके १८०२ ई०में सन्धिपत्रके अनुसार अंगरेजोंको मिला करता है। यहां २३ स्कूल १ अस्पताल और एक कोढ़ियोंका अस्पताल है।

४ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २० ३५ उ० और देशा० ७३ १४ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६३४४ है जिसमेंसे ५३१६ हिन्दू और ८०७ मुसलमान हैं।

धरमपुरी—मध्य भारतकी भील एजेन्सीके मध्य धार राज्यका एक परगना। लोकसंख्या प्रायः १८ हजार है। इसका प्रधान शहर धरमपुरी नर्मदा नदीके उत्तरी किनारे अक्षा० २२ १० उ० और देशा० ७५ २३ पू०। धार नगरसे ३६ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। मुसलमानोंके समय इस शहरमें १०००० अट्टालिकायें थीं, जिनका भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है। इसके मध्य हो कर खरजा नामकी एक नदी प्रवाहित है, जिसका प्राचीन नाम गर्दभा नदी है।

धरमपुरी—मन्द्राजके सलेम जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११ ५४ से १२ २७ उ० और देशा० ७७ ४१ से ७८ १८ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८४१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २०६०३० है। कावेरी नदी पश्चिममें सनत्कुमार नदीसे मिल कर तालुकके उत्तर-

धरहारकग्राम—भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त कोकटदेशान्तर्गत अङ्गदेशके मध्य यह ग्राम अवस्थित है। गङ्गाके दक्षिणी किनारे कलिके ४ हजार वर्ष पहले राजा देवपालसे यह ग्राम स्थापित हुआ। (भ०ब्र०ख० ४२।४७ अ०)

धरा (सं० स्त्री०) धरति जीवसंघानिति। धृ-अच् या ध्रियते शेषेन इति धृ-अप्-टाप्। १ पृथिवी, जमीन, धरती।

सब मनुष्योंको धारण किये हुये है इसलिए धरा और बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वी नाम हुआ है। २ गर्भाशय। ३ मेद। ४ नाड़ी। ५ महादान विशेष। धरा दानका विषय मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

मत्स्यदेव धरादानके विषयमें कहते है, कि यह दान सब दानोंमें श्रेष्ठ तथा पापनाशक है। जो यथाविधि इस दानका अनुष्ठान करते हैं उनका समस्त अमङ्गल नाश होता है। इस दानके करनेमें पहले जम्बुद्वीपाकार सोनेकी धरा बनानी पड़ती है। इसके मध्य-भागमें मेरु पर्वत भी देना पड़ता है। इसके आठ ओर आठ लोकपाल, नौ वर्ष, सौ नदी, सौ नद एवं सात समुद्र विशिष्ट करना होता है। इसे रत्नादि द्वारा जड़ते हैं और इसमें वसु, रुद्र, चन्द्र और सूर्यकी कल्पना करनी पड़ती है। यह धरा प्रस्तुत करनेमें सहस्र पल सुवर्ण लगता है, अशक्त होने पर कमसे कम पांच सौ, तीन सौ, दो सौ या एक सौ पल। जो नितान्त अशक्त हों, वे केवल पांच पलसे कुछ अधिक सुवर्ण द्वारा धरा बना सकते हैं।

ऋत्विकको मण्डपमें भूषण और आच्छादन प्रभृति एवं वेदी और उसके ऊपर कृष्णाजिन रख कर तिल फेंकना चाहिये। अठारह प्रकारके धान, लवणादिरस और आठ पूर्ण कुम्भ चारों ओर रखते हैं। रेशमीको चांदनी और चारों ओर पताका लगानी चाहिये। इस प्रकार अच्छी तरह सजा कर विधिपूर्वक अधिवासादि करते हैं। पुण्यके दिनमें विशुद्ध भावसे शुक्लवस्त्र और शुक्लमालादि पहन कर वेदी प्रदक्षिण करते और निम्नलिखित मन्त्रसे दान देते हैं—

"नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः।
धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे॥
वसून् धारयसे यस्मात् वसुभातीवनिर्मला।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयार्णवात्॥
चतुर्मुखोऽपि नागच्छेत् तस्माद् यत्र तवाचले।
अनन्ताय नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्दमात्॥
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा॥
बुद्धिर्वृहस्पतौ जाता मेधा मुनिषु संस्थिता।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वम्भरा स्थिता॥
धृतिः क्षमा स्थिरा क्षौणी पृथ्वी बहुमती रसा।
एताभिर्मूर्त्तिभिः पाहि देवि संसारकर्दमात्॥"

यह मन्त्र पढ़ कर धरादान करना चाहिये। सुवर्णनिर्मित धराका आधा भाग वा चौथाई भाग ब्राह्मणको और शेष भाग ऋत्विकोंको देनेका विधान है।

इस प्रकार जो धरा दान करते हैं, वे विष्णुपदको पाते हैं और अर्कवर्णके विमान पर चढ़ कर विष्णुपुरमें जाते और वहां तीन कल्प तक वास करते हैं। ऐसे मनुष्योंके इक्कीस पुरुष उद्धार हो जाते हैं।

हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दान-विधिका विषय विस्तृत रूपसे वर्णित है। ६ तौलकी बराबरी, सटखरा। ७ चार सेरकी एक तौल। ८ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक तगण और गुरु होता है।

धराऊ (हिं० वि०) बहुमूल्य, मामूलीसे अच्छा।

धराकदम्ब (सं० पु०) धराजातः कदम्बः धरायां वर्षाकाले जातः कदम्बः। धारा कदम्बवृक्ष, एकप्रकारका कदम्ब।

धराङ्कुर (सं० पु०) धराया अङ्कुर इव। वायुफल।

धराकुष्माण्ड (सं० पु०) भूमिकुष्माण्ड।

धरातल (सं० पु०) १ पृथ्वी, धरती। २ सतह। इसमें मोटाई गहराई वा ऊंचाईका कुछ भी विचार नहीं किया जाता है। ३ लंबाई और चौड़ाईका गुणनफल, रकबा।

धरात्मज (सं० पु०) धराया आत्मजः ६ तत्। १ मङ्गल ग्रह। २ नरकासुर। स्त्रियां टाप्। ३ सीता।

धराधर (सं० पु०) धराया धरो धारकः। १ विष्णु। २ पर्वत। ३ अनन्त। ४ शेषनाग। ५ वारेन्द्र श्रेणीके वात्स्यगोत्रज ब्राह्मणोंका आदिपुरुष। (त्रि०) ६ धराके उद्धारकर्त्ता, पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला।

धराधर (सं० पु०) सङ्गीतमें एक तालका नाम।

धराधार (सं० पु०) शेषनाग।

धराधिप (सं० पु०) धराया अधिप। नृप, राजा।

धराधिपति (सं० पु०) धराधिप देखो।

धराधीश (सं० पु०) नृप, राजा।

धराना (हिं० क्रि०) १ पकड़ाना, थमाना। २ स्थिर कराना, रखाना। ३ स्थिर करना, निश्चय करना, ठहराना।

धरान्तरचर (सं० त्रि०) धरान्तर चरट। दूसरी पर विचरण करनेवाला।

धरापति (सं० पु०) धराया पति। पृथिवीका राजा।

धरापुत्र (सं० पु०) मङ्गलग्रह।

धराभृत (सं० पु०) धरां पृथिवीं बिभर्त्ति भृ क्विप् तुक् च। पृथिवीधर पृथ्वीके मालिक।

धरामर (सं० पु०) धरायां पृथिव्यां अमरो देवः। ब्राह्मण।

धरासूनु (सं० पु०) धरायाः सूनुः। १ मङ्गल। २ नरकासुर।

धराक (सं० पु०) एक प्रकारका अस्त्र। विश्वामित्र और वशिष्ठकी लड़ाईमें विश्वामित्रने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था।

धरहर (हिं० पु०) मकानका वह भाग जो खंभेकी तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हो और जिस पर चढ़नेके लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियां लगी हों, मिनार।

धरिया (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजन।

धरित्री (सं० स्त्री०) धरति जीवजातमिति धृ-इत्र (अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः। उण्। ४।१८४) ततो गौरादित्वात् ङीष्। पृथिवी, भूमि।

धरिमन् (सं० पु०) ध्रियते स्वर्गमिन्द्रियैरिति धृ-इमनिच् (हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् । उण् ४।१४७) १ रूप। २ तुला परिमाण।

धरी (हिं० स्त्री०) १ चार सेरकी एक तौल। २ रखनी रखेली स्त्री। ३ एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां कानोंमें पहनती हैं।

धरीमन् (सं० पु०) धरिमन् छान्दसो दीर्घः। १ धारभूत वैदिक्रम काल। (त्रि०) २ धारक।

धरुण (सं० पु०) धरतीति धृ बाहुलकात् उनन्। १ धारक, जो धारण करता हो। २ उदक, जल, पानी। ३ अग्नि, आग। ४ धरा, पृथ्वी। ५ एकविंशति, इक्कीस की संख्या। ६ आदित्य, सूर्य। ७ ब्रह्मा। ८ स्वर्ग। ९ नीर, जल, पानी। १० सम्मत, राय।

धरैया (हिं० पु०) धरेला देखो।

धरेल (हिं० स्त्री०) रखेली स्त्री।

धरेला (हिं० पु०) वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याह के ही ग्रहण कर ले।

धरोत्तम (सं० पु०) धराया उत्तम। शिव, महादेव।

धरोहर (हिं० स्त्री०) वह द्रव्य जो किसीके पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका मालिक जब मांगेगा तब वह दे दिया जायगा। थाती, अमानत।

धरौंडी (हिं० स्त्री०) भारतवर्षमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह विशेष कर हिमालयकी तराईमें बिपाशा नदीके किनारेसे ले कर सिक्किम तक पाया जाता है। यह पेड़ केवल भारतवर्षमें ही नहीं मिलता, वरन् अफ्रिका और अमेरिकाके गरम भागोंमें भी पाया जाता है। इसकी टहनियां लम्बी और पत्तियां सींकके दोनों ओर आमने सामने लगती हैं। इसमें सफेद भाव का पीले फूल लगते हैं। इस पेड़का कोई भाग कट जानेसे उसमेंसे पीला दूध निकलता है जिसे पानीमें घोलनेसे काला पीला रंग तैयार हो सकता है। इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो दवाके काममें आता है। छाल और जड़ सांप काटने और बिच्छूके डंक मारनेकी दवा समझी जाती है।

धरौना (हिं० पु०) बिना विधिपूर्वक विवाह किये स्त्रीको रखनेकी काम।

धर्णसि (सं० पु०) धृ बाहुलकात् असि। १ बल, ताकत। २ धारणीय अन्नादि, धारण करने योग्य अन्न।

धर्णि (सं० त्रि०) धृ नि। धारक, धारण करनेवाला।

धर्त्तव्य (सं० त्रि०) धृ तव्य। १ धारणीय, पकड़ने योग्य। २ स्थाप्य, रखने योग्य। ३ पतनीय, गिरने योग्य।

धर्त्ता (सं० पु०) १ धारण करनेवाला। २ कोई काम ऊपर लेनेवाला।

धत्तूर (सं० पु०) धुस्तुर पृषोदरादित्वात् साधु । धुस्तूर, धतूरा ।

धर्त्र (सं० क्लो०) धरति ध्रियते वा धृ-त्र (गुधृवीपचीति । उण् ४।१६६) १ गृह, घर । २ धर्म । ३ क्रतु, यज्ञ । ४ गुण । (त्रि०) ५ धारक, धारण करनेवाला ।

धर्म (सं० क्लो०) धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्माभिरिति वा धृ-मन् । (अर्तिस्तुसुहस्रिति । उण् १।१३८) शुभादृष्ट, पुण्य, श्रेय, सुकृत, सत्कर्म, कल्याणकारी कर्म, सदाचार, वह आचरण वा वृत्ति जिससे जाति वा समाजको रक्षा और सुख-शान्तिको वृद्धि हो, तथा परलोकमें अच्छी गति मिले।

जैमिनि-कृत मीमांसादर्शनके प्रारम्भमें हो लिखा है—"अथातो धर्मजिज्ञासा" अर्थात् धर्मकी मीमांसा दर्शनका मूलतत्त्व है । धर्म क्या है ? उसका लक्षण क्या है ? किस कार्यके करनेसे धर्म होता है, कौनसे कार्यके करने पर धर्म नहीं होता ? इत्यादि शङ्काओंके समाधानके लिए पहले धर्मका लक्षण करना उचित एवं आवश्यक है । धर्मजिज्ञासाका अर्थ धर्म जाननेकी इच्छा है । धर्म जाननेकी आवश्यकता क्या है और धर्मके क्या क्या साधन है ? कौनसा धर्म प्रसिद्ध है, कौनसा अप्रसिद्ध ? धर्मका लक्षण कोई किसी तरहसे करते है और कोई किसी तरहसे । इन सब बातोंकी मीमांसा कर जैमिनिने "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" ऐसा सूत्र निर्देश किया है । क्रियाके प्रवर्तक वचनका नाम चोदना (अर्थात् आचार्य द्वारा प्रेरित हो कर योगादि करना) है, इसीको धर्म कहते हैं । आचार्यके उपदेशानुसार यज्ञादि करना हो धर्म है । जो कार्य मनुष्यके मङ्गलके लिए होते हैं, उसीका नाम धर्म है । जिससे भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तथा सूक्ष्मव्यवहित और विप्रकृष्ट अर्थका परिज्ञान होता है, उसको धर्म कहते हैं । जो भी कुछ श्रेयस्कर अर्थात् मङ्गलजनक है, वही धर्म है ।

"य एव श्रेयस्कार स एव धर्म शब्देनोच्यते ।"

(मीमांसा १।२ सूत्रभाष्य०)

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका कुछ विशेष वर्णन करते हैं । बात यह है, कि जिस कार्यके अनुष्ठानसे पुरुषका मङ्गल होता है, उसका नाम धर्म है । ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिसका फल मङ्गलके सिवा अमङ्गल न हो । धर्मानुष्ठान कारण है और मङ्गल उसका कार्य । न्यायदर्शनमें सुख और दुःखका लक्षण इस प्रकार लिखा है—धर्मजन्य सुख होता है और अधर्मजन्य दुःख ।

धर्म करनेसे उसका फल अवश्य ही मिलेगा और अधर्म करनेसे दुःख भी अनिवार्य है । इस बातका कोई भी खण्डन नहीं कर सकता । इस मतसे भी यही प्रकट होता है, कि जिससे सुख होता है, वह धर्म है, और जिससे अधर्म होता है, वह अधर्म । भला हो चाहे बुरा, हर एक कार्यके अनुष्ठानमें हमारे एक संस्कार उत्पन्न होता है, वही संस्कार कालान्तरमें शुभाशुभ फल देता है । इस संस्कारको अदृष्ट वासना आदि नाना संज्ञाएं हैं । कुछ भी हो, नामके पार्थक्यसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं । जिस प्रकार बीज बोनेसे वृक्ष और फलादिकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार वासना वा संस्कार कालान्तरमें प्रबुद्ध हो कर अपना फल प्रदान करते हैं, जिसका कि कोई निवारण नहीं कर सकता । यदि ऐसा ही है, तो यह निश्चित है कि जो जैसा काम करता है, वह वैसा ही फल पाता है । इस जगत्में कोई भी निष्क्रिय नहीं बैठ सकता; बुरा भला जो बन पड़े, करना ही पड़ता है और उसका फल भी अवश्यम्भावी है । धर्म ही यदि सुखका कारण है, तो किस कर्मके करनेसे धर्म होता है, यह भी विवेचनीय है । जगत्में कुछ कार्य तो ऐसे हैं, जिनका फल तत्काल मिलता है और कुछ कार्य ऐसे है कि जिनका फल प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता । यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि 'जिस कार्यका फल प्रत्यक्षगम्य नहीं है, वह कार्य धर्मका है या अधर्मका, इस बातका निर्णय कैसे हो ? इसके उत्तरमें सिर्फ इतना ही कहना है, कि ऋषियोंने जो कहा है एवं जो वेद-बोधित है, वही एक मात्र सत्य और धर्म है । कौन व्यक्ति धर्मको जान सकता है, इसके उत्तरमें वेदान्तभाष्यमें लिखा है—

"आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते सधर्मं वेद नेतरः ॥"

(वेदान्तद० शांकरभा०)

ऋषियोंने धर्मविषयक जो उपदेश दिया है, उसका

किसी प्रकारका संस्कार उत्पन्न नहीं होता। उनका चित्त सर्वदा विषयोंसे विरक्त रहता है और वे अभिसन्धि पूर्वक कोई भी कार्य नहीं करते। वे जीव-धारणके लिए किसी न किसी कार्यका अनुष्ठान करते रहते हैं, सही पर उससे किसी प्रकारका संस्कार उत्पन्न नहीं होता। कारण वे सर्वदा कामनाशून्य रहते हैं और कृतकर्म ईश्वरके लिए छोड़ देते हैं। क्षण भर भी वे उन्हें अपने चित्तमें स्थान नहीं देते। यही कारण है कि उनके संस्कारों या संसार बीजोंकी उत्पत्ति नहीं होती। मनुष्य शुक्ल, कृष्ण अथवा मिश्र किसी तरहका कर्मोपार्जन क्यों न करे, कोई भी कर्म उसे एक समय और एक प्रकारसे फल नहीं दे सकता। कुछ कर्म ऐसे हैं जो जन्मान्तरमें जाति, जन्म, आयु और भोग प्रसव करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो सिर्फ उसी जन्ममें स्व स्व जातिके अनुसार भोगोपयुक्त स्मृति वा स्मरणात्मक ज्ञान उपस्थित करते हैं। जन्मजन्मान्तरमें सञ्चित असंख्य कर्म-वासनाएं ऐसी हैं जो मरण कालमें अभिव्यक्त हो कर पुनर्जन्मकी प्रारम्भक होती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो उसी जन्मके उपयुक्त भोगादि (वा व्याधि)के कारण हैं। जो कुछ भी कहा गया है, उसका मूल धर्म ही है। जगत्‌में जो कुछ वैषम्य देखनेमें आता है, उसका मूल धर्म और अधर्म है। एक व्यक्ति राजा होता है, एक भीख मांगता फिरता है; दोनों मनुष्य हैं, फिर क्यों इतना वैषम्य? इसका कारण एकमात्र धर्माधर्म ही है जिसने जैसा पुण्य-पाप उपार्जन किया है, वह वैसा फल पा रहा है और वर्त्तमानमें जो जैसा आचरण कर रहा है, उसके अनुसार भविष्यमें वह वैसा ही फल पावेगा। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अपने अपने आश्रम-धर्मका पालन करना नितान्त आवश्यकीय है। गीता आदिमें भी लिखा है—

"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥" (गीता ३।३५)

सम्पूर्णरूपसे परधर्म अनुष्ठित होनेकी अपेक्षा, कथञ्चित् अङ्गहानि होने पर भी, स्वधर्म साधन श्रेष्ठ है। परधर्म अत्यन्त भयसङ्कुल है। स्वधर्म पालन कर चुकने पर यदि देहान्त भी हो जाय तो भी वह कल्याणकारी होता है। इसका तात्पर्य यह है, कि अर्जुन मोहवश अपना अर्थात् क्षत्रियका धर्म त्याग कर परधर्म अर्थात् ब्राह्मणोंका धर्म (भिक्षादि अवलम्बन) ग्रहण करना चाहते हैं। इस पर श्रीकृष्ण उन्हें समझा रहे हैं कि "यह तुम्हारे लिए अधर्म है; क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये जो धर्म है, क्षत्रियोंके लिये वही अधर्म है। अतएव इस स्वधर्म (युद्धादि)के अवलम्बन करने पर यदि मरण भी हो जाय तो भी वह श्रेयस्कर है।" इससे प्रमाणित होता है कि एक वर्णके लिए जो धर्म बतलाया गया है, दूसरे वर्णके लिए वही अधर्म है। ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, जिस वर्णके लिए जो धर्म बतलाया गया है, उसका उल्लङ्घन करना ही अधर्म है। प्रत्येक वर्णके लिए विभिन्न धर्मका निर्देश किया गया है। इसीलिए "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" ऐसा वचन प्रयुक्त हुआ है। परधर्म अर्थात् अन्य आश्रमके धर्मको ग्रहण करना उचित नहीं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और भिक्षु ये चार आश्रम हैं। इन चार आश्रमधर्मोंका पालन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

"सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्त्ति हि॥" (मनु ६।८९)

इन चारों आश्रमवासियोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है। कारण गृही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति तीनों आश्रमवासियोंको भिक्षादि द्वारा पोषण करता है। जिस प्रकार समस्त नद और नदियां समुद्रमें जा कर आश्रय लेती हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमवासी गृहस्थाश्रमियों पर निर्भर किये हुए हैं। चारों आश्रमके लिए दशधर्म कहे गये हैं।

"चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं॥
दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिं॥"

(मनु ६।९१-९३)

धृति अर्थात् सन्तोष, क्षमा, दम अर्थात् बाह्य विषयोंसे मनको रोकना, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या,

दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु ।
गवां गृहेषु गोष्ठेषु विद्यमानोऽपि पश्यति ॥
कृशता ते न भविता धर्मेतेषु स्थलेषु च ।"

(ब्रह्मवैवर्त्त श्रीकृष्णजन्मख० ४२ अ०)

समस्त वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता नारी, प्राज्ञ व्यक्ति, वानप्रस्थावलम्बी, भिक्षु, धर्मशील नृप, सद्वैद्य, द्विजसेवापरायण शूद्र और सत्संसर्गस्थित गृहस्थ इनके पास धर्म सम्पूर्णरूपसे और सर्वदा अवस्थान करता है। अश्वत्थ, वट, विल्व, तुलसी, चन्दन, देवपूजार्ह पुष्पवृक्ष, देवालय, तीर्थस्थान, वेदवेदाङ्गश्रवणकारी व्यक्ति, वेदपाठका स्थान, श्रीकृष्णके नामादि कीर्तनका स्थान, व्रत, पूजा, तप, विधिविहित यज्ञ, साक्षिस्थल, दीक्षा, परीक्षा, शपथस्थल, गोष्ठ, गोष्पदभूमि और गोगृह इन स्थानोंमें धर्म अवस्थान करता है; और इसीलिए उक्त स्थानोंमें किये हुए धर्ममें मलिनता नहीं आती।

देवता आदिका धर्म वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

सुकेशि नामक एक राक्षसने ऋषियोंके पास जा कर ऐसा प्रश्न किया कि "इस जगत्में श्रेय क्या है?" ऋषियोंने उत्तर दिया—"इस काल और परकालमें धर्म ही श्रेय है; साधुगण धर्मका आश्रय लेते हैं, इसलिये वे पूज्य हैं। धर्ममार्गके अवलम्बन करने पर ही सब सुखी हो सकते हैं।" इस पर सुकेशिने पुनः प्रश्न किया कि "धर्मका लक्षण क्या है और क्या करनेसे धर्माचरण होता है?" ऋषियोंने कहा—यागयज्ञादि क्रिया, स्वाध्याय-तत्त्वविज्ञान, विष्णुपूजनमें रति और विष्णुकी स्तुति करना देवताओंका परम धर्म है। बाहु-पराक्रम और संग्रामरूप सत्कार्य, नीतिशास्त्रकी निन्दा और हरिभक्ति करना दैत्योंका धर्म है। योगानुष्ठान, स्वाध्याय, ब्रह्मविज्ञान, विष्णु और शङ्करकी भक्ति करना भी दैत्योंका परम धर्म है। नृत्यगीतादिमें अभिज्ञता और सरस्वतीमें स्थिर भक्ति करना गन्धर्वोंका धर्म है। पौरुष कार्यमें अभिलाष, भवानी और भगवान् सूर्यके प्रति भक्ति एवं गन्धर्व विद्या उपार्जन करना विद्याधरोंका धर्म है। समस्त अस्त्र और शस्त्रविद्याओंमें निपुणता प्राप्ति करना किंपुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मचर्य और योगाभ्यासमें सर्वदा आसक्ति, समस्त स्थानोंमें इच्छानुसार गमनागमन, नित्य ब्रह्मचर्य और जप सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति करना पितृगणोंका धर्म है। धर्मज्ञान ऋषियोंका धर्म है। स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दम, यजन, मात्सर्य, अहिंसा, क्षमा, जितेन्द्रियत्व, शौचत्व, मङ्गल कार्योंमें श्रद्धा और देवताओंकी भक्ति करना मानवोंका धर्म है। धनाधिपतित्व, भोग, स्वाध्याय, शङ्करोपासना, अहङ्कार और मत्सराराहित्य गुह्यकोंका धर्म है। पर भार्यामें अभिलाष, परकीय अर्थमें लोलुपता, वेदाभ्यास और शङ्करमें भक्ति करना राक्षसोंका धर्म है। अविवेकता, अज्ञान, अशुचि, मिथ्यावादित्व और आमिष-भोजनमें लोभ करना पिशाचोंका धर्म है।" (वामनपु० ११ अ०)

धर्मके अगम्य स्थान—

"एतदन्येषु कृशता यदगम्यश्च तत् शृणु ।
पुंश्चलीषु तद्गृहेषु गृहेषु नरघातिना ॥
नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च शठेषु च ।
देवतागुरुविप्रेषु च स्यानां धनहारिषु ॥
अमत्सरेषु धूर्तेषु चौरेषु रतिभूमिषु ।
दुरोदरसुरापानकलहानां स्थलेषु च ॥
शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ।
दस्युमस्तेषु देवेषु तालच्छायासु गर्भिषु ॥
असिजीविमसीजीविदग्धग्रामयाजिषु ।
वृषवाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु ॥
भर्तृनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ।
दीक्षासन्ध्याविष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च ॥
स्वाङ्गकन्याविक्रयिषु स्वमोपिद्विकथिष्वथ ।
शालग्रामसुरग्रन्थभूमिविक्रयिषु प्रभो ॥
मित्रद्रोहकृतघ्नेषु सत्यविश्वासघातिषु ।
शरणागतहीनेषु आश्रितघ्नेषु तेषु च ॥
शश्वन्मिथ्योक्तिशीलेषु तथासीमापहारिषु ।
कामात् क्रोधात्तथा लोभान्मिथ्यासाक्षिप्रवादिषु ॥
पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु ।
स्थानेष्वेतेषु निन्द्येषु नाधिकारस्तव प्रभो ॥"

(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्णजन्म० ४२ अ०)

पुंश्चली नारी (अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री) और उसका

इन्द्रियाणां यमश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरं ।
गङ्गास्नानं शिवो देवो विप्रपूजात्मचिन्तनं ॥
ध्यानं नारायणस्यैतत् संक्षेपाद्धर्मलक्षणं ।"

(विष्णुधर्मोत्तर)

यजन, तपस्या, दान, सर्वभूतोंमें दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सत्य, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, साधुओंकी सेवा, संन्यास, देवार्चन, गुरुशुश्रूषा, ब्राह्मण-पूजा, इन्द्रियसंयम मात्सर्य-राहित्य गङ्गास्नान, शिवपूजा, आत्मचिन्तन और नारायणका ध्यान इन सब कृत्योंको धर्म कहते हैं।

विश्वामित्रने धर्मका लक्षण इस प्रकार किया है—

"यमार्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः ।
स धर्मो यं विगर्हितं तमधर्मं प्रचक्षते ॥" (विश्वामित्र)

"प्रवृत्तश्च निवृत्तश्च द्विविधं कर्मवैदिकं ।
सर्गादौ सृजता सृष्टं ब्रह्मणा वेदरूपिणा ॥
प्रवृत्तसंज्ञको धर्मो गुणतस्त्रिविधो भवेत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भेदतः ॥
काम्यबुध्या च यत्कर्म मोक्षोऽपि फलवर्जितं ।
क्रियते द्विज ! कर्मेह तत्सात्त्विकमुदाहृतं ॥
मोक्षायेदं करोमीति संकल्प्य क्रियते तु यत् ।
तत्कर्म राजसं ज्ञेयं न साक्षात् मोक्षकृत् भवेत् ॥
कार्यबुध्यानपेक्षं यत् कर्मविघ्नपेक्षया ।
क्रियते द्विजवर्जेह तत्तामसमुदाहृतं ॥"

आगमतत्त्वज्ञ आर्यगण जिस कार्यको करते एवं जिसकी प्रशंसा करते हैं, उसे धर्म कहते हैं और जिसकी वे निन्दा करते हैं, उसे अधर्म। ब्रह्माने सृष्टिके पहले प्रवृत्त और निवृत्त इन दोनों प्रकारके वैदिक कर्मोंका निर्देश किया है। इनमेंसे प्रवृत्त लक्षणवाले कर्मका नाम धर्म है, जो गुणभेदानुसार तीन प्रकारका है—सात्विक, राजसिक और तामसिक। जिस कर्ममें किसी प्रकार फलकी कामना नहीं रहती, उसे सात्विक धर्म कहते हैं; इसके अनुष्ठानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। मोक्षके निमित्त संकल्प करके जो कार्य किया जाता है, उसका नाम राजसिक धर्म है। कार्यमें विविध अपेक्षा न करके केवल कार्यबुद्धिसे जो कार्य किया जाता है, उसे तामस धर्म कहते हैं। आश्रमों तथा द्विजादि वर्णके धर्मका वर्णन उन्हीं शब्दमें देखो।

नाना अर्थोंमें इस 'धर्म', शब्दका व्यवहार होता है। यह शब्द संस्कृत भाषाका है। संस्कृतमें जिन जिन अर्थोंमें इसका व्यवहार होता है, हिन्दीमें भी उन्हीं अर्थोंमें होता है। इसके सिवा और भी एक विशेष अर्थमें इसका व्यवहार दृष्टिगोचर होता है, उसी अर्थकी यहां प्रधानता है। इसलिए पृथिवीमें नाना जातियों और नाना देशोंमें नाना प्रणालियोंसे ईश्वरोपासना की जाती है। इन विभिन्न ईश्वरोपासनाकी प्रणालियोंको साधारणतः "धर्म" कहते हैं। परन्तु जिस भाषासे यह शब्द लिया गया है, उस भाषाके कोई भी प्राचीन ग्रन्थमें "धर्म" शब्दका ऐसा अर्थ दृष्टिगत नहीं होता। "हिन्दूधर्म" "जैनधर्म" "बौद्धधर्म" "मुसलमानधर्म" ईसाईधर्म" इत्यादि स्थलोंमें "धर्म" शब्दका जो अर्थ किया जाता है एवं हिन्दी भाषामें ऐसे प्रयोगसे 'धर्मका' जो अर्थ निकाला जाता है, वह अर्थ संस्कृत भाषामें नहीं है!

संस्कृत भाषामें सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें "धर्म" शब्दका उल्लेख है। जैसे—

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥" (ऋक् १।२२।१८)

अर्थात् परमेश्वरने आकाशमें त्रिपाद परिमित स्थानमें त्रिलोक निर्माण कर उनमें 'धर्मों'को धारण किया है। यहां 'धर्म' शब्दका अर्थ जगन्निर्वाहक नियमोंका समूह होता है। अंगरेजीमें laws कहनेसे जिस अर्थका बोध होता है यहां "धर्म" शब्दका प्रायः वैसा ही अर्थ होता है।

२ मनुष्योंके लिए जो कर्तव्य और आदरणीय व्रत लाया गया है, वही धर्म है। स्मृतिशास्त्रमें धर्म शब्दका ऐसा ही अर्थ मिलता है।

श्रुति और स्मृतियोंमें धर्म शब्दके अर्थका जो विरोधाभास पाया जाता है, उसकी विद्वानोंने इस प्रकार मीमांसा की है, कि दोनों ही परमेश्वर द्वारा प्रतिष्ठित वा व्यवस्थित हैं, इसमें विशेष छानबीनकी जरूरत नहीं।

३ स्मृतिकारोंमें मनु ही प्रधान समझे जाते हैं। उन्होंने अपनी संहिताके द्वितीय अध्यायमें 'धर्म" की मीमांसा करते हुए कहा है, कि रागद्वेष परिशून्य विद्वान् और साधुगण समाजमें जिन नियमोंका पालन करते हैं,

उसीको धर्म कहते हैं। इसी अर्थसे मर्यादा, आचमनाचार, सदाचार आदिको धर्म कहा गया है।

४ पुराणों में धर्मका पदार्थ हिसाबसे नहीं पाता। नाना स्थानों पर नाना अर्थोंमें धर्म शब्द प्रयुक्त हुआ है। थोड़े थोड़े से वो अर्थ आख्यानादि आदिमें प्रविष्ट हुए हैं। धर्म शब्दके किसप्रकार कितने भी लौकिक प्रयोग देखे जाते हैं नीचे उनका विस्तृत विवरण दिया जाता है।

५ मनोवृत्तियों को धर्म कहते हैं, जैसे—दयाधर्म, चाहे वा परमधर्म, सत्यधर्म, क्रोध अपकृष्ट धर्म। मनुके मतसे, जहां सदाचार धर्मके नामसे कहा जाता है, वहीं सदाचार धर्मके अर्थमें सङ्कोचन और कल्याण हो कर ऐसा अर्थ होता है।

६ इन्द्रियोंके कार्योंका भी धर्मके नामसे उल्लेख होता है; जैसे—चक्षुका धर्म दर्शन मनका धर्म चिन्ता इत्यादि। वैदिक अर्थसे इस अर्थको उत्पत्ति हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

७ कर्त्तव्य भी धर्म कहलाता है, जैसे—पिताका धर्म, पुत्रका धर्म, पतिपत्नीका धर्म, सत्यका धर्म इत्यादि। यह भी स्मृत्युक्त 'सदाचार' अर्थसे उद्धृत है।

८ गुणकी क्रियाका नाम भी धर्म है, जैसे—शीतका धर्म सङ्कोचन, तापका धर्म सम्प्रसारण इत्यादि। यह वैदिक अर्थसे उद्धृत है।

९ इच्छानुसारिणी क्रियाको भी धर्म कहते हैं, जैसे—चोरधर्म, दस्युका धर्म, व्यवसायका धर्म इत्यादि। यह अर्थ भी स्मृत्युक्त मर्यादा, आचमनाचार आदि अर्थसे उत्पन्न है।

१० देशभेदसे मनुष्यके जो लौकिक और आचारगत व्यवहारादिकी विभिन्नताको भी धर्म कहते हैं, जैसे—अंग्रेजों का धर्म, रोमकों का धर्म इत्यादि। इसको भी उत्पत्ति आचार अर्थसे है।

११ पदार्थके गुणको धर्म कहते हैं जैसे—जीव धर्म। यहां धर्म शब्दसे आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि गुण जो केवल जीवमें ही होते हैं, वृक्षादिमें नहीं बोध होता है, इसी प्रकार वृक्षधर्म, मनुष्यधर्म, पशुधर्म आदिसे वृक्षत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व आदिका बोध होता है।

१२ काल एवं गुणादिके भेदसे मानवाचारके भेदको भी धर्म कहा जाता है; जैसे—कालधर्म, युगधर्म, मनुके समयका धर्म, युधिष्ठिरके समयका धर्म, अकबरके समयका धर्म, धर्मेतिहासिक धर्म इत्यादि।

१३ कुछ विभिन्न विशेष व्यापारकी समष्टिको भी धर्म कहते हैं, जैसे—सामाजिक धर्म, लौकिक धर्म, मानसिक धर्म, नैतिक धर्म, दैहिक धर्म, मानसिक धर्म इत्यादि।

इन अर्थोंके अतिरिक्त धर्म शब्दका एक विशेष अर्थ और भी है, जिसका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है (जैसे—"हिन्दूधर्म" "जैनधर्म" "बौद्धधर्म" आदि)। अब उसीके सम्बन्धमें विशद आलोचना की जाती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म मुसलमान-धर्म आदि शब्दों पर हिन्दीमें जैसा अर्थ होता है, संस्कृतमें वैसा नहीं होता। हिन्दीमें यह अर्थ कैसे प्रचलित हुआ, यहांसे थोड़ा इसकी कुछ आलोचना करनी चाहिए। अंग्रेजी भाषाके बहुतसे शब्द इस समय हिन्दी भाषाके अङ्गीभूत हो गये हैं और कुछ शब्दों के अर्थ एवं भाव भी हिन्दी भाषामें तदानयनका ग्रह ना अर्थके निकट सम्बन्धयुक्त शब्दोंमें संक्रामित हो कर उन शब्दोंका एक एक नया अर्थ कर डाला है। अंग्रेजीके Religion, nation, आदि शब्द इसी (जिसके) जाति के हैं। अंग्रेजीके Religion शब्दसे विभिन्न जातीय विभिन्न ईश्वरोपासना प्रथाओंका बोध होता है। संस्कृतमें ईश्वरोपासना प्रथाको 'आचार' शब्दके पर्यायान्तर्गत है; सुतरां धर्म शब्दसे आचारका बोध कराते हुए क्रमशः अर्थ बढ़ चित हो कर आचारके विभिन्नांश भी धर्मके नामसे कहे जाने लगी। ऐसी दशामें 'रिलीजन' शब्दका अर्थ 'धर्म' शब्दमें प्रविष्ट हो गया। रिलीजन शब्दका हूबहू प्रतिशब्द हिन्दी वा संस्कृत भाषामें न होनेके कारण बहुत कुछ समकक्षविशिष्ट होनेसे क्रमशः 'धर्म' शब्द ही बहुत व्यवहृत होने लगा। अंग्रेजी Religion शब्दमें और हिन्दी धर्म शब्दमें कितनी असङ्गति है यहां बतला देना उचित है। रिलीजन् कहनेसे पारलौकिक विश्वास, ऐश्वरिक विश्वास, विभिन्न उपासना प्रणाली और तन्मूलक उत्साह-भावविलासादिका ही एकीभूत

भाव हृदयमें उदित होता है, धर्म शब्दके आचारार्थसे भी उन समस्त भावोंका आभास पाया जाता है, किन्तु 'रिलीजन्' देशादिके भेदसे सत्य वा मिथ्या हो सकता है, ऐसा भाव धर्म शब्दमें किसी प्रकार भी प्रकट नहीं होता। ईश्वरोपासनाकी प्रणाली एक सत्य हो और एक मिथ्या, यह हो ही नहीं सकता। धर्मका अर्थ जब आचार होता है, तब जो आचार मेरे लिये आदरणीय है, वह दूसरेके लिए अनादरणीय हो सकता है, किन्तु मिथ्या नहीं हो सकता; ऐसा ही अर्थ प्रकट होता है। मेरा Religion सत्य है, दूसरेका मिथ्या है, ऐसा कहा जा सकता है, किन्तु मेरा धर्म सत्य है, दूसरेका मिथ्या है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। धर्म शब्दमें ऐसा भाव कुछ भी नहीं है। धर्म एक है बहुत नहीं, परन्तु रिलीजन् कभी भी एक नहीं हो सकता। Religion और धर्म शब्दमें इस प्रकारका पार्थक्य देख कर तथा धर्म शब्दके अर्थको हिन्दी भाषामें परिस्फुट करनेके लिये बहुत दिनसे अनेक विद्वान् अनेक शब्दोंकी आलोचना कर रहे हैं। उनकी गवेषणाके फलस्वरूप सम्प्रति एक शब्द स्थिरीकृत हुआ है, जिसका विवरण नीचे दिया जाता है।

गीताके चतुर्थ अध्यायमें लिखा है—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते लोकेऽस्मिन् पार्थ सर्वशः॥ ११॥"

अर्थात् जो जिस रूपसे मेरा भजन करता है, मैं उससे उसी प्रकारसे भजन करता हूं। इस श्लोकमें सभी मेरे 'पथ'का ही अनुवर्तन करते हैं।

गीताके इस श्लोकके 'वर्त्म' शब्दसे 'भजनमार्ग' अर्थ प्रकट होता है। श्रीधरस्वामीने अपनी टीकामें समझाया है, कि इन्द्रादि बहुदेवोपासकगण भी अपने अपने देवताओंकी उपासना द्वारा भगवान्‌की ही उपासना करते हैं। अब श्रीधरस्वामीकी कल्पित इन्द्रादि बहुदेवोपासनाको यदि और भी विस्तृत अर्थबोधक मान लिया जाय, तो भी दोष नहीं आता। कारण हिन्दूधर्ममें किसी भी धर्मको मिथ्या वा अफलदायी नहीं माना है। इसके सिवा और भी एक प्रसिद्ध श्लोक देखनेमें आता है—

"वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥"

अर्थात् वेद परस्पर विभिन्न विधानदाता हैं, स्मृतियां भी वैसी ही हैं। ऐसे कोई भी मुनि नहीं हुए जो स्वतन्त्र मतावलम्बी न हों। धर्मका तत्त्व गुहामें पड़ा है, दुर्बोध्य है, इसलिए महाजन जिस प्रकार वा जिस मार्ग पर चल रहे हैं, वही पन्था है।

इस स्थल पर 'पन्था' शब्दका अर्थ भी उपासना-प्रणाली है। जरा स्थिरचित्तसे विचार कर देखा जाय तो मालूम होगा कि इसका अर्थ बहुत अंशोंमें अंग्रेजी Religion शब्दके समान हो सकता है। गीताके 'वर्त्म'को भी 'पन्था' कहा जाय, तो कोई हानि नहीं। Religion और धर्ममें जितना प्रभेद है, इस श्लोकके 'धर्म' और 'पन्था'में उतना ही प्रभेद सूचित होता है। इस श्लोकसे मालूम होता है, कि धर्मतत्त्व मालूम नहीं है, कौनसा धर्म आचरणीय है इसका निर्णय करना भी असम्भव है; किन्तु महाजन जिस 'पन्था' पर चल कर उसे दूसरोंके लिए निर्देश कर गये हैं, वह अपेक्षाकृत सुपरिज्ञात है, मानो इशारेसे उसे ही अवलम्बन करनेको कहा जा रहा है। अब यह निर्णय करना चाहिए कि उक्त श्लोक कहे हुए महाजन कौनसे हैं? हिन्दुओंकी समझसे ऋषिगण ही महाजन हैं; सुतरां ऋषि नामक महाजन जिस मार्ग पर चले हैं, वही 'पन्था' है। इस तरह यदि ईसामसीह, महम्मद, बुद्ध, जरथुस्त्र आदिको भी महाजन मान लिया जाय, तो कोई हानि नहीं; क्योंकि जिस प्रकार धर्मतत्त्वको अबोध्य समझ कर उसके उद्धारके लिए ऋषिगण विभिन्न 'पन्था' बता गये हैं, उसी प्रकार ईसामसीह, महम्मद आदि भी उसी धर्मतत्त्वके निरूपणके लिए एक एक पथ निर्देश कर गये हैं। इस प्रकार विवेचना करके इस 'पन्था' शब्दको यदि अंग्रेजी Religion शब्दका हिन्दी वा संस्कृत भाषाका प्रतिशब्द मान लिया जाय, तो सम्भवतः कोई हानि नहीं। 'पन्था' शब्दका यथार्थ अर्थ 'पथ' वा 'उपाय' है। हिन्दी भाषामें पन्था वा शब्दका प्रयोग न हो, ऐसा नहीं। उदाहरणार्थ 'कबीरपन्थी' 'नानकपन्थी' 'तेरापन्थी' 'बीसपन्थी' 'ढूंढियापन्थी' 'अघोरपन्थी' आदि अनेक शब्द मिल सकते हैं। इसी

होते हैं, राज्योंका संगठन और ध्वंस होता है, अति-भयानक और वर्वर आचारादि भी मानव समाजमें आदरके साथ गृहीत होते हैं, अति घृणा और निष्ठुर कार्य भी आचरणीय होते हैं, तथा जो शक्ति अति महान् वीरताके कार्य, आत्मत्यागके काय और भक्तिके कार्य कराती है एवं भीषण युद्ध, विद्रोह और विप्लव उपस्थित करती है, एवं स्वाधीनता, सुख और शान्तिको प्रतिष्ठा करती है, उस प्रबलता शक्तिके सूक्ष्मतत्त्वों का निरूपण होगा।

अन्यान्य व्यापारों की तरह पन्थों का भी एक इतिहास है। इस इतिहासका जितना भी परिज्ञान हो सके, उतना ही जान लेना उचित है। किस प्रकारसे उत्पन्न और विस्तृत हुए हैं, किस तरहसे उनको उन्नति और ध्वंस हुआ है, उनकी सृष्टिके मूलमें व्यक्तिगत वा जातिगत ज्ञानको कार्यकारिता कितनी है, यदि सम्भव हो, तो किन किन नियमों के वशमें उनकी उन्नति हुई है, इसके निरूपण ; शिल्प, विज्ञान और तत्त्वविद्याके साथ उनकी कितनी घनिष्ठता है, राज्य और समाजके साथ उनका कितना सम्पर्क है तथा नीतिके साथ कितना सम्बन्ध है, उनका पारस्परिक ऐतिहासिक सम्बन्ध क्या है अर्थात् कौन किससे उत्पन्न हुआ है वा कुछ पन्थ एक विशेष पन्थसे उत्पन्न हैं वा नहीं, इत्यादि तथा विश्वजनीन धर्मके साथ उनमेंसे प्रत्येकका सम्पर्क कैसा है ? इन सब बातोंका जानना आवश्यक और उचित है। इस प्रकार की आलोचनासे पन्थों का क्रमविकाश निर्द्धारित हो सकता है।

क्रमविकाश निर्द्धारण करनेसे पहले पन्थों का संगठन पर विचार करना उचित है। प्रत्येक पन्थके दो प्रधान उपादान पाये जाते हैं—एक भानुभविक (Theoretical) और दूसरा आनुष्ठानिक (Practical) ; इनमेंसे पहलेको धर्मभाव और दूसरेको धर्मकार्य कहा जा सकता है।

धर्मभाव सम्भवतः अस्फुट धारणा (Aague concebtions), पौराणिक कथा (concrete myths), प्रचलित रीति (PreCise dogmas) इत्यादिसे उत्पन्न हैं और वे प्रवाद धर्मशास्त्रों में प्राप्त हो सकते हैं। इसके सिवा सभी धर्मोंमें महाजनोपदेश (Doctrine) नामसे भी एक विषय पाया जाता है। ये उपदेश हो इन धर्मोंके प्रधान लक्षण हैं ; परन्तु ये चाहे कितने हो महान् क्यों न हो, मात्र उन्हें हो धर्म नहीं कहा जा सकता। उनके सिवा प्रत्येक पंथमें कुछ नियम और आचार हैं, उनमें भी बहुतसे नैतिक (Moral) और आचारिक (Ethical) उच्चभावको लिये हुए हैं। इन दोनोंमें एक ऐसा सम्बन्ध है, कि एक दूसरेसे पृथक् कर लिया जाय तो फिर किसी भी धर्मकी सत्ता न रहेगी। इन दोनों भागोंको एकत्र करनेसे एक धर्मका संगठन तो होता है, किन्तु वह एक विश्वास (Belief) पर अनुप्राणित हुआ करता है। धर्मके संगठनके समय जो उपदेश और आचारादि संश्लिष्ट होते हैं, उन्होंसे इस विश्वासकी उत्पत्ति है।

इन विषयोंके सूक्ष्मतत्त्व जाननेके लिए एकमात्र तुलनात्मक आलोचना ही उपाय है। तुलनात्मक पद्धतिसे समालोचना करने पर पंथ दो भागोंमें विभक्त हो जाते हैं। १म इसका आनुष्ठानिक विभाग है, अर्थात् प्रत्येकके पौराणिक, औपदेशिक और आचरिक मूलतत्त्वोंका अनुसन्धान कर जिसके साथ जिसका जितना सादृश्य हो, उनके पारस्परिक विचार और आलोचना-द्वारा एक मूल स्थिर किया जा सकता है। इसीसे क्रमविकाश प्रदर्शित हो सकता है। इस क्रमविकाशके स्थिर करनेसे पहले, उन्होंने जिस नियमसे मानवके सभ्यता-विकाशके इतिहासका आविष्कार किया है, उस नियमसे मानवका आदिम कालमें एक स्थानमें वास, एक भाषाका व्यवहार इत्यादि स्वीकार कर प्रत्येक धर्ममें व्यवहृत शब्दादिका समत्व वा नैकट्य तथा आचारादिका समत्व वा नैकट्य निरूपित कर समस्त पंथोंको प्रथमतः दो प्रधान विभागों में विभक्त किया है—(१) प्राचीन आर्यधर्म और (२) सेमितिकधर्म।

यूरोप और एशियाकी जितनी भी सभ्य जातियां आर्यजातिसे उद्भूत हुई हैं, उनमें एक ही धर्म था, ऐसा मान लिया गया है। यूरोपकी आर्यजातिमें जर्मनजाति अति प्राचीन है और एशियाकी आर्य-जातिमें हिन्दू जाति। इसलिए उक्त उभय जातिके एकत्व

समयके धर्मको प्राचीन आर्यधर्म वा हिन्दू-धर्ममें भी धर्म कहा जा सकता है। आर्योंके सिवा और जो सभ्य जातियां एशियाके पश्चिम खण्डमें वास करती हैं, उनके आदिम अवस्थाके धर्मको हम नियमानुसार सैमितिक* धर्म कह सकते हैं।

प्राचीन आर्यधर्म—ऐतिहासिक कालमें जिन धर्मों वा पन्थोंकी उत्पत्ति हुई है अर्थात् [illegible] मत, बौद्धमत, खृष्टमत, महम्मदीय मत तथा अन्यान्य आधुनिक कुछ मत जिनके उत्पत्तिभाव और अंशका इतिहास मालूम है, उनकी उत्पत्ति और पारस्परिक सम्बन्धका निर्णय करना सहज है। किन्तु जो प्रागैतिहासिक हैं, जिनके उत्पत्तिभाव और अनेक विश्वास अथवा विधयादि स्वप्रतीत नहीं है, उनके पारस्परिक सम्बन्धके निर्णयके लिए उनके भी और आचार व्यवहारादिकी तुलना करना आवश्यक है। अध्यापक मोक्षमूलरका कहना है, कि भाषागत सादृश्यके निरूपण-द्वारा जैसे मानव-इतिहासके अनेक जटिल विषय मीमांसित हुए हैं उसी प्रकार इसमें भी हो सकते हैं। इस प्रकारसे पाश्चात्य विद्वानोंने भाषातत्त्वके अवलम्बन पर मीमांसा की है कि प्राच्य अन्य जातियों (भारतीय आर्यगण, पारसिक आर्यगण, फ्रिगीय (Phrygian) आर्यगणके तथा पाश्चात्य आर्यों (ग्रीक, रोमक, जर्मन, (Norseman) और स्लेवो लाटीय (Letto-slavs) केल्ट (Celts) आदि जातियों में जो ईषत् विभिन्न धर्म थे, वे सब उस प्राचीन आर्य वा हिन्दूधर्मसे ही उत्पन्न हुए थे। उसके बाद उनमेंसे कौनसा धर्म किससे निकला और कैसे उसका क्रमविकास हुआ, इसका निर्णय कैसा भी हो पाता है, परवर्ती (क, ख) तालिकामें दिया जाता है, देख लें। यहां एक बात विशेषरूपसे कही जाती है, वह यह है कि पाश्चात्य विद्वान् हिन्दुओंकी तरह वे इसको अनादि वा अपौरुषेय नहीं मानते। वे किसी भी धर्मको ऐसा नहीं मानते; सबको ऐतिहासिक दृष्टिसे देखते हैं। और तो क्या, बाइबिलको इसी निगाहसे देखते हैं। उनकी इस दृष्टिमें हिंसा वा कुटिलता नहीं है। ऋग्वेदको उन्होंने भी जगत्में सर्वापेक्षा प्राचीन और प्रामाण्य ग्रन्थ माना है। ऋग्वेदके विषयमें उन लोगोंका कहना है, कि इसके प्राचीनत्वके विषयमें लोगोंका जितना विश्वास है, वास्तवमें वह उतना प्राचीन नहीं है। इसमें भी प्राचीनतम कालका वर्णन पाया जाता है। उस प्राचीनतम कालके धर्मविश्वासादि और आचारादिके साथ आधुनिक कालके आचारादिको मिश्रण-अवस्थामें रखकर, होता उद्गाता ब्रह्मा आदि द्वारा ऋग्वेद गठित हुआ है। जरथुस्त्रके प्राचीन पारसिक धर्मके विषयमें भी ऐसा कहा जा सकता है। प्राचीन आर्यजातिकी रीति-नीतियोंने अन्य आकारमें संगठित हो कर उस ग्रन्थकी सृष्टि की है। अध्यापक डैमिष्टेटर (M. Jar Demestater)-का कहना है, कि जरथुस्त्र नामक एक वा अनेक धर्मसंस्कारक प्राचीन आर्य राजनीतिको अपनी अपनी मतानुसार परिवर्तन कर उस रूपमें गठन कर गये हैं। वैदिक और जरथुस्त्रीय ग्रन्थोंमें जो एकत्व वा ऐक्य दृष्टिगोचर होता है उससे अनुमित होता है कि किसी समय [illegible]प्राच्य आर्योंका साधारण धर्म था। (क, ख तालिकामें उसी धर्मको " प्राच्य आर्यधर्म " कहा गया है।) यह प्राच्य आर्यधर्म ईरानीय और 'भारतीय' के भेदसे दो प्रकारका हो गया था। ईरानीयसे जरथुस्त्रीय और भारतीयसे वैदिक धर्मकी सृष्टि हुई है। विशेष विवरण (क ख) तालिकामें देखो।

सैमितिकधर्म—सैमितिक धर्मके विषयमें पाश्चात्य विद्वान् अब तक भी विशेष आलोचना नहीं कर पाये हैं। कारण आलोचनाके योग्य अभी तक उतनी सामग्री संग्रहीत नहीं हुई है। ईसाई-धर्मके पहले अरमीयों के (Aramaeans), महम्मदीय धर्मके पहले प्राचीन अरबियों और प्राचीन यिहुदियोंके जो धर्म प्रचलित थे, उनकी आलोचना द्वारा जितना सम्भव था उतनी गवेषणा करके देखा गया है कि प्राचीन आर्यधर्मकी तरह उनका भी एक मूल था; किन्तु भाषागत सादृश्य,

* यूरोपीय मतसे नोयाके तीन पुत्र थे—शेम, हेम और जाफेत। इनमें हेमके वंशधर आफ्रिकामें और जाफेतके वंशधर इसी खण्डमें वास करते थे (इन्हींसे आर्योंकी उत्पत्ति है)। शेमके वंशधर पश्चिम एशियामें रहे। इन्हीं शेमके नामानुसार 'सेमिटिक' (Semitic) शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आर्योंके सिवा अन्य सभ्यजातियोंके लिए यही शब्द प्रयुक्त होता है।

आचारगत सादृश्य और नैकट्यको छोड़ देने पर भी समस्त सेमितिक धर्मोंमें कुछ विशेषताएं यह पाई जाती है कि उनमेंसे प्रत्येक मानव और ईश्वरमें राजा प्रजा या प्रभु दासका सम्बन्ध समझते थे। उनमेंसे प्रत्येक का आनुष्ठानिक भाग बहुत थोड़ा था और वे ही एकेश्वरवादी थे। अरब और इसरायेल देशके धर्मका शेष तथ्य एकेश्वरवाद है। सेमितिक धर्मका क्रमविकाश (म' त रिकामें देखना चाहिए।

अफ्रीकाका आदिम धर्म—मिस्रके प्राचीन पंथ सेमितिक वा आर्य पंथोंके लक्षणाक्रान्त नहीं है। इसमें प्राचीन और आधुनिक उपादान इस ढंगसे मिश्रित है, कि उससे बहुतोंने अनुमान कर लिया है कि आर्य और सेमितिक जातिके पार्थक्य संघटित होनेसे पहले जब वे एक जातिके रूपमें अवस्थित थीं, उस समय सम्भवतः उनके धर्मपंथोंका आकार कुछ कुछ ऐसी ढंगका था। बहुतोंने इस बृहत् जातिको भूमध्य सागरोपवर्त्ती वा काकेशीय जातिके नामसे प्रसिद्ध करना चाहा है। और बहुतसे इस अनुमानको स्वीकार करनेके लिए तैयार भी नहीं हैं। उनका कहना है, कि नोयाके तीन पुत्र हाम सेम और जाफेत ही हामितिक, सेमितिक और जाफेतिक नामसे तीन जातियां कल्पित हुई थीं, उन सबका किसी जगह एकत्र मिल कर रहना और उससे किसी समयमें एक बृहत् जातिका अनुमान करना केवल कल्पनामात्र है। कारण इसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। शेषोक्त विद्वानोंका कहना है, कि प्राचीन मिस्रके विषयमें हमें जितना मालूम है, उससे कहा जा सकता है कि मिस्रके लोग उस समय 'पुन्त' (Punt) नामकी एक जातिके साथ वाणिज्यादि करते थे। बाइबिलमें इस जातिका 'फुत्' (Phut) नामसे उल्लेख है। इन पुन्तोंके साथ उनके धर्ममतका सादृश्य था; और तो क्या पुन्तोंके देशको (पश्चिम अरबको) 'पवित्रभूमि' (*Ta* neter) कहते थे। कुशों' (Cushites)-के विषयमें भी यह बात कही जा सकती है। मिस्रके दक्षिणस्थ आदिम जाति 'कुश' नामसे अभिहित होती थी। सेमितिक जातिके वासके पूर्वकालवर्त्ती इथिओपीय और कानानवासी जाति भी इसी प्रकारसे मिस्रोंके साथ जातितत्त्वानुसार वा मौलिक उत्पत्तिके अनुसार निकट सम्बन्धविशिष्ट मालूम पड़ती है। बाइबिलके जेनिसिस् नामक खण्डमें 'फुत्' और कुशोंको भी उन्हीं जातियोंमें शामिल कर लिया गया है। इन चार जातियोंके एकत्व पर विचार करनेसे, उनके धर्मके सम्बन्धमें यह अनुमान होता है कि किसी समय सेमितिक धर्मपन्थकी तरह इनका भी एक स्वतन्त्र पन्थ था, और उसे अब 'सेमितिक धर्म' कह सकते हैं। दक्षिण-मेसोपोटेमियाके धर्मपंथकी आकादीय वा सुमेरीय (Accadian or Sumerian) आख्या दी गई है। यह भी अनेकांशमें मिस्रके धर्मानुकूल है। इमोशग (Imoshag) वा बर्बरों (Berbers) में इसलाम-धर्मके प्रचारसे पहले जो धर्म था, उसकी भी प्रायः मिस्रके पंथके साथ घनिष्टता थी, ऐसा अनुमान किया जता है। इमोशगगण लिबीय (Libyans),गेतुलीय (Gaetulions) मरितेनीय (Mauriteneans) और नुमिडीय (Numidians) जातियोंके पूर्व पुरुष थे। इसीसे गवेषणा द्वारा ज्ञान हो सकता है कि मिस्रजातिके अनेक आचार व्यवहार इनमें भी प्रचलित हैं। परन्तु वास्तवमें ये सभी जातियां किसी समय मिस्र-जातिसे संश्लिष्ट थीं या नहीं वा उनसे उत्पन्न हुई हैं वा नहीं, अथवा प्राचीन कालमें मिस्र-जातिके प्रभावसे इनमें उक्त विषय अनुकरणादि द्वारा प्रविष्ट हुए वा नहीं; इत्यादि बातोंका निर्णय करना कठिन है।

पूर्वोक्त विषयोंको गवेषणा-पूर्वक आलोचना करके पाश्चात्य विद्वानोंने यहां तक स्थिर किया है, कि मिस्रके धर्म-पंथोंके जितने भी भौतिक आचार (Magic rites) और जैववादिक प्रथाएं (Animistic customs) देखनेमें आती हैं, वे सब अफरीकाके सर्वत्र समस्त प्राचीन धर्मोंमें प्रायः समान हैं। बहुतेरे, इस प्रकारके एकत्व वा सादृश्यको देख कर ऐसा भी अनुमान करते हैं और उसको बहुतसे विश्वास भी करते हैं, कि किसी समय एशियावासी औपनिवेशिकोंने ऐतिहासिक कालारम्भके बहुत पहले इन जातियोंको जीत कर, उन्होंने मिल-जुल कर वास किया था, सम्भवतः उन्हींके द्वारा इनमें ऐसे महानुभाव प्रचारित हुए थे। यदि ऐसा ही है, तो

मानना होगा कि मिसरके प्राचीनयुगका धर्म एक निग्रिसीय धर्ममतसे उद्भूत है। इसके सिवा अफ्रिकाके अन्यान्य मौलिक धर्मों की आलोचना करने से यही स्थिर किया जाता है कि उनमें परस्पर कई अंशों के साथ भिन्न है। पाश्चात्य विद्वानोंने गवेषणा द्वारा अफ्रिकाके सम्पूर्ण धर्मपंथों को प्रधानतः चार भागोंमें विभक्त किया है यथा—(१म) कुशीयमत (Cushites) जो मिसरको उत्तर-पूर्वीय जातियोंमें प्रचलित है, (२य) असलो निग्रिसीयमत (Nigritian proper) जो मध्य और पाश्चात्य अफ्रिका-वासी निग्रोमें प्रचलित है, (३य) बाण्टु वा काफ्रेरिय मत (Bantu) जो काफ्रियोंमें प्रचलित है, और (४र्थ) खोइखोइन वा हटेण्टटीयमत (Khoi Khoin) जो दक्षिण अफ्रिकाके हटेण्टट और बुशमेनोंमें प्रचलित है। किन्तु आज इन चारों विभागों का ज्ञानवीनका भाव वर्णन नहीं किया जा सकता, कारण बाहुल्यमात्र है। १म विभागके कशवादि-के सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वान् अब तक विशेष कुछ स्थिर नहीं कर सके हैं। २य विभागके प्रधान लक्षण प्रेतरूपी पुरुषोंकी अर्चना, प्रकार्चना, पशार्चना (विशेषतः सर्पार्चना) आदि है। इनमें पौराणिक आख्यान (Mythology) नहीं है, और है भी तो अति सामान्य उन्हीं परसे पाश्चात्य विद्वान् अनुमान करते हैं कि इनमें एके-श्वरवादकी क्षीण भित्ति भी है। प्रायः सभी जातियां एक प्रधान देवताका अस्तित्व स्वीकार करती हैं। इस देवताको सर्वदा पूजार्चना करनेकी आवश्यकता नहीं होती। बहुतोंके मतसे वे प्रधान देवता ही स्वर्गवासी एवं वृष्टि वा सूर्यके अधिष्ठाता हैं। चन्द्रोपासना सर्वा-पेक्षा विस्तृत है और गाछोंके प्रति असाधारण भक्ति सर्वत्र देखनेमें आती है। ३य विभागका मत, जिसे हम बाण्टु मत कहते हैं, प्रेतोपासना (Religion of spirits) मात्र है। जिन प्रेतों की काफ्रि लोग अर्चना करते हैं वे उनके मृत पुरुषों के प्रेतों से विशेष विभिन्न नहीं हैं; परन्तु समस्त प्रेत एक प्रेतनायक (Ruling spirit)-के अधीन हैं। ये प्रेतनायक जातिभेदसे विभिन्न हैं और उन उन जातियों के मूल आदिपुरुष समझे जाते हैं। यह प्रेतोपासना अवमत चार भागोंमें विभक्त है।

प्रेत नायकों के नामानुसार ही ये विभाग कल्पित होते हैं। इन प्रेतनायकों की उपासना मूलतः चन्द्रोपासना मात्र है। ४र्थ विभाग खोई खोइन मतमें हटेण्टटोंके प्रधान देवताका नाम तानी वा सुनिकोआव (Tani or Tsunikoab) अर्थात् टूटे घुटनों का प्रेत' (wounded knee) और नामाक्वोआओंके प्रधान देवताका नाम हियेत्सोएबिब (Heitsi-eibib) अर्थात् 'काष्ठमुख प्रेत' (Wooden Face) है। बाण्टुओं की तरह ये देवता भी तदुपासक जातिके आदिपुरुष समझे जाते हैं और चन्द्रमूर्ति हैं। अन्धकारके अधिष्ठाता प्रेतके साथ इनका बराबर युद्ध होता रहता है। खोई खोइन मतमें प्रेतोपासना नहीं है।

मध्य एशियाका धर्म—जातितत्त्वविदोंके मतसे चीन, जापान और कोरियावासी समस्त तुरान जातियां तथा मलय जाति, अमेरिकाकी असभ्य जाति, उत्तर सागरोप-कूलवर्ती एस्किमो, पाटागोनीय, फिउजीय (Fugians) आदि सभी जातियां एक वृहत् जातिके अन्तर्गत हैं। इस वृहत् जातिको वे मङ्गोलीय जाति कहते हैं। अमे-रिकाके मौलिक धर्मके साथ तुरानके मौलिक धर्मका सादृश्य देख कर अध्यापक मुलर आदिने इनका ऐक्य स्वीकार किया है। आश्चर्यका विषय यह है कि इन बहु दूरवर्ती जातियों में प्रधान देवताओं के नाम प्रायः एक-से हैं। तुरानीय और जापानीय जातिमें देवता और मानवका जैसा सम्बन्ध कल्पित है, उनकी अपेक्षा बहुत उन्नत चीन-वासियोंमें भी वैसा ही सम्बन्ध कल्पित होता है। चीन-वासियोंके प्रधान देवता 'सियेन' (Sien) समस्त देव और मानव राज्यके सम्राट हैं; मानवगण प्रजाकी तरह उनके इच्छाधीन हैं। इनमें भी पितृपुरुषों के प्रेतों पर भक्ति पायी जाती है और अत्यन्त श्रद्धाके साथ उनकी अर्चना की जाती है। इन धर्मोंके प्रधान लक्षण ये हैं— भौतिक इन्द्रजाल पर विश्वास, झाड़ फूंक कवच तावीज आदि पर विश्वास। पाश्चात्य विद्वानोंने इसे शिवमर्मवाद (Shamanism) नामसे अभिहित किया है। इस धर्ममतने क्रमशः अभिव्यक्त हो कर चीनमें त्रिविध मूर्त्ति धारण की है,—१म प्राचीनपंथ, २य कनफुशी मत (Confucianism) और ३य तावोमत (Taoism

ये तीनों पंथ बौद्धमतके प्रभावसे संक्षिप्त हो गये हैं। जापानमें भी इसी प्रकार विविध अभिव्यक्ति हुए हैं, १म कामि-नो-मइसु (Kami-no moasu) नामक प्राचीन पंथ। जापानी भाषामें इसका अर्थ 'पंथ' (The way) अर्थात् देवोपासनाप्रणाली होता है, चीनी भाषामें इसे शिनताओ (Shintao) कहते हैं। परन्तु चीनों-के मतमें प्रेतोपासनाको देवोपासना नहीं कहा है। मिकाडो नामके याजकगण इनके प्रधान हैं। २य कानफुची मत है कि यह ईसाकी सातवीं शताब्दीमें चीनसे जापानमें प्रविष्ट हुआ था। उसके बाद ३य बौद्धमत है जो कोरियासे यहां प्रचलित हुआ था। परन्तु ईसाकी छठी शताब्दीमें वह इस देशसे बिलकुल दूरीभूत हुआ था और फिर ईसाकी सातवीं शताब्दीमें उसने वहां प्राधान्य पाये।

तूरानीय धर्ममें फिनिक शाखाकी सभी जातियां युम (Yum) युम्मल (Yummal), युम्बल (Yambal) और युमला (Yumla) नामक एक प्रधान देवताकी अर्चना करती हैं। लाप्लैण्डवासियोंके तथा एस्थोनीय और फिनलैण्डवासियोंके धर्ममतमें जर्मन वा स्कान्दनेभियाके धर्ममतके पौराणिक उपादान यथेष्ट प्रविष्ट हुए हैं। इतना होने पर भी शेषोक्त दो जातियोंके धर्ममत भी तूरानीय धर्मके पुष्ट उदाहरण हैं, इसमें सन्देह नहीं। मुसलमानीय मत ग्रहण करनेसे पहले तुरुष्क देशका आदिम धर्म भी अधिकांशमें तूरानीय लक्षणाक्रान्त था। एस्किमो लोगोंके धर्ममें अमेरिकाके मौलिक धर्मसे बहुतसे उपादान ग्रहण किये गये हैं। साविरियाके स्विस्प्रेतवाद (Shamanism)में अमेरिकाके उपादान मिश्रित होने पर एस्किमोके धर्ममतकी सृष्टि हुई है। इनका प्रेत-राज्य समुद्र, अग्नि, पर्वत और वायुमण्डलमें आवद्ध है। इनके प्रेतनायक वा प्रधान-देवताका नाम 'तरुगर्सुक (Torgarsuk है।

अमेरिकाके मौलिक धर्मका विभाग इस प्रकार है—

१। एस्किमो-मत, यह कनाडासे मेक्सिको उपसागर तक विस्तृत है। इन देशोंकी विभिन्न जातियां किचेमनिट, (Kitchemanitoo), मिचावो (Michabo), वाहकोण्डा (Wabconda), अण्डुआगुई (Andua-gui) और ओको (Oki) नामक प्रधान देवताकी उपासना करती है। ये स्वर्गवासी वायुदेवता हैं। अन्य समस्त देवता और सूर्य चन्द्र भी इनके अधीन हैं। इन जातियोंमें प्रत्येक वंशके एक एक इष्टदेवता हैं, जो एक एक विशेष पशुमात्र हैं अर्थात् किसी वंशकी गाय, किसीकी बकरी और किसी वंशका गधा इष्ट देवता है।

२. अजीतक-मत (Aztec arce)—अजतीक, तलतेक, नाहुआ आदि कुछ जातियां इसी मतको मानती हैं, जिनका भैङ्कुवार द्वीपसे निकारागुआ तक वास है। इस मतमें मेक्सिको वासियोंकी उपासना-प्रणालीके बहुतसे महान् भाव संयोजित हैं।

३. आंण्टलियोंका प्राचीन मत—इसमें युकेटनवासी मयजाति (Mayas in Yucatan) और नाचेज (Natchez) जाति शामिल है। इस मतको पौराणिक गल्पावली (Mythology) बहुत विस्तृत और कौतूहलोद्दीपक है, जिनमें अनेक महान्-भाव भी हैं। यहांकी सभ्यताके विस्तारके साथ इन महान्-भावोंमें बहुत कुछ संकीर्णता आ गई है।

४, मुयस्कामत (Muyscas)—इस धर्मको माननेवाले 'चिब्चा' (Chibchas) कहलाते हैं। यह मत दक्षिण-अमेरिकामें प्रचलित है। निकारागुआ-वासियों-का मत ही इनके मतकी भित्ति है। निकारागुआ वासियोंके प्रधान देवता 'फोमागाजदाद' हो (जो कि समस्त मनुष्यके सृष्टिकर्त्ता और अपने शक्तिदेवता चन्द्रके सृष्टिकर्त्ता हैं) इनमें 'फोमागाटा' नामक प्रधान देवता हुए हैं। इन लोगोंने अपेक्षाकृत सभ्य हो कर 'बोचिका' नामक देवताको प्रधान आसन दिया है और अब 'फोमागाटा'को उसका 'शत्रु' समझने लगे हैं तथा चन्द्रको भी शत्रुकी भार्या मानने लगे हैं। इनमें इन उद्भावना और कल्पनाओंका प्रचार पेरुवासी इङ्कों के संसर्गसे नहीं हुआ है।

५, कुइचुआ-मत (Quichua)—अयमरा (Aymara) आदि जातियोंमें यही मत प्रचलित है। पेरुवासी इङ्कोंकी सूर्योपासना इनमें प्रचलित है। इन लोगोंने स्वयं ही अपने प्राचीन धर्मका संस्कार कर अब उसे प्रायः अध्यात्मवाद (Theism) तक ले गये हैं, परन्तु अभी तक एकेश्वरवाद (Monotheism) अव-

छ्मने नहीं कर सके हैं। इनके धर्ममें इस अभिव्यक्ति-के मूल पर एशिया या यूरोपका किसी प्रकारका प्रभाव नहीं पड़ा है। इनसे धर्मोत्पत्तिकी सम्पूर्ण तथा प्राकृतिक उन्नति कहा जा सकता है।

६ युवनिय जाति और पञ्जोपायों का मत—इसके विषयमें विशेष कुछ मालूम नहीं हो सका है। ब्राजिल-वासियोंने टुपिगुआरोनो (Tupiguarono) नामक प्रधान देवताकी कल्पना की है।

युरोपीय धर्मका प्रभाव-पोलिनेशीय भाषामें सामान्य सामान्य विभेद देखनेमें आते हैं, जिनमें मलयमत, पोलिनेसीयमत, मेलानेसीयमत आदि प्रधान हैं। ये सभी मत मूलतः प्रायः एकसे हैं, किन्तु अब तक इसकी मीमांसा नहीं हुई है। १म, मलयमत—मलयद्वीपपुञ्जमें पहले ब्राह्मण्यधर्म था, जिसका सम्पूर्ण रूपसे प्रभाव देखनेमें आता है। इससे पहलेकी अवस्था अज्ञात है। इसके बाद बौद्धमत, फिर मुसलमानमत और फिर ईसाई मतका प्रचार हुआ था। २य, पोलिनेसीयमत—मालागासी (Malagasy) और मडागास्कर-वासी होवाओंमें (Hovas) प्रचलित रीति नीति ही प्राचीन पोलिनेसीय धर्मके सदृश है। इस धर्मका प्रधान अङ्ग (Taboo) 'टाबू' या पवित्रीकरण है। आचार्य विशेषके द्वारा स्थान या वस्तुको जो निषिद्ध बना देते हैं, एक बार कोई भी विषय पवित्रीकृत होने पर फिर वह किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं होता। मडागास्करवासियोंमें देवताओं द्वारा प्रचलित संस्कारके पहले इस प्रथाका विशेष आदर था। मलयद्वीपमें इसे 'पामली' (Pamali) कहते हैं और मडागास्करमें 'कुनयुण्डा' (Kuinyunda)। पोलिनेसीय मतमें प्रधान देवताका नाम तारोआ या तङ्गारोआ (Taroa or Tangaroa) है। ३य, मेलानेसीय मत—इसमें प्रधान देवताका नाम 'न्डेङ्गई' (Ndengui) है।

भारतवर्षके दाक्षिणात्य प्रदेशमें मुण्डा गोंड़ कि कोल आदि द्राविड़ीय जातिकी धर्मालोचना करने पर हिन्दुओंका प्राधान्य ही अधिक पाया जाता है।

आधुनिक धर्म प्रथाओं का विवरण एक प्रकार है जो हुआ। इस विषयमें और भी एक ज्ञातव्य विषय है। सभ्य जगत्में अब तक वर्तमान या लुप्त जितने भी धर्म हैं, उनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। जो धर्म उन्नतिशील एवं अधिकतर महान् भाव समन्वित हैं, उनका एक विभाग और जिन धर्मोंमें लौकिक अवस्थाके भाव अधिक हैं और महान् भावोंका अपेक्षाकृत अभाव है, उनका द्वितीय विभाग बनाया जा सकता है। प्रथम विभागको 'सुगठितधर्म' (Organized religions) कह सकते हैं, इस श्रेणीमें ब्राह्मण्य धर्म (हिन्दूधर्म), जैनधर्म (आर्हतधर्म) बौद्धधर्म, यहूदीधर्म, मुसलमानधर्म तथा अन्यान्य दो एक धर्मोंको शामिल किया जा सकता है। द्वितीय विभागका नाम 'असंगठितधर्म' (Inorganized religions) कह सकते हैं, इस श्रेणीमें जापानके आदिमधर्म, दाक्षिणात्यके अनार्य धर्म, अरबके प्राचीनधर्म इत्यादिकी तथा अन्यान्य असभ्य जातियोंके धर्मोंकी गणना हो सकती है। इन समस्त धर्मोंकी सूक्ष्म अभिव्यक्तिवादक नियमानुगत है, आलोचना द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि अभी सुगठित धर्म भी मूलतः किसी एक असंगठित धर्मसे उत्पन्न है। समाजकी उन्नतिका अविच्छिन्न सम्बन्ध वर्तमान है। सामाजिक प्रयोजनानुसार ही धर्मके आचार-व्यवहारका तथा बहुत कालसे प्रचलित मूल सूत्रोंका भी परिवर्तन हुआ करता है। आधुनिक पुरातत्त्ववित् किसी धर्मकी बात पकड़ कर विचार करनेकी अपेक्षा ऐतिहासिक कारण अनुसन्धान द्वारा एक सुगठित धर्मके आविर्भावके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंने जो मत प्रकट किया है, उसकी आलोचना करना उत्तम है, इस लिए यहां उसीका उल्लेख किया जाता है।

पाश्चात्य विद्वानोंने स्थिर किया है, कि ब्राह्मण्य धर्मके चरम प्रभावके समयमें, जब ब्राह्मणोंके प्रादुर्भावसे अन्यान्य वर्ण अत्याचार और अनाचार सहने लगे तब अधिकांश मनुष्योंके तत्कालीन मनोभावोंके लिए उपयोगी अहिंसाधर्ममूलक बौद्धमतका प्रचार हुआ। इस मतमें वर्णगत आचार व्यवहारके पक्षपातको छोड़ कर केवल ब्राह्मण्य धर्मकी नीति और तत्त्वज्ञान मात्र गृहीत हुआ। इस प्रकारसे अनेक मतोंका विकास हुआ। आर्यधर्मकी भारतीय शाखामें दो धर्मोंकी बात कही

गई है। ईरानीय शाखामें भी ऐसा ही हुआ है। जो द्वैतवाद ऋग्वेदमें प्रच्छन्नभावसे था, वह जरथुस्त्रीय धर्मके संस्कारके समय "जन्दअवस्ता" ग्रंथमें गृहीत हुआ। आर्यधर्मके विषयको छोड़ कर यदि सेमितिक धर्मकी ओर दृष्टिपात किया जाय, तो वहां भी ऐसी ही दीख पड़ती है। ब्राह्मण्य धर्मके साथ बौद्धधर्मका जैसा सम्पर्क है, जुड़ाके प्राचीन धर्म (judaism)-के साथ खृष्टीय धर्मका भी ठीक वैसा ही संबन्ध हैं। आर्य धर्ममें अब बौद्धधर्मको भी ठीक वैसी ही दशा है। दोनों ही जन्मस्थानसे दूरीभूत एवं भिन्न देशवासियों द्वारा अवलम्बित हुए हैं। बुद्धको मृत्युके प्रायः ३शताब्दी बाद महाराज अशोकने तन्मतावलम्बी हो कर बौद्ध धर्मके आचार व्यवहारकी विधि-व्यवस्था स्थिर करनेके लिए एक सङ्घको बुलाया था। इसी तरह ३२५ ई०में रोमक-सम्राट् कनृष्टण्टाइनने खृष्टीय मत-संग्रहके लिए एक सङ्घ स्थापन किया था, जो 'निकीय-समिति' (Council of Nikæa)के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समिति द्वारा 'नाइसिन रीति'(Nicene-creed) विधिबद्ध हुई थी। अशोक-सङ्घके फलस्वरूप जैसे बौद्धमतकी सङ्घानुनीति और सामान्यतः जीवननिर्वाह विधि संग्रहके साथ साथ भिक्षु श्रमणादिकी पूजा, बुद्धचिह्नावशेषकी अर्चना, धर्मग्रन्थ सेवा, जपमाला-व्यवहार, बौद्ध-याजकोंका श्रेष्ठत्व स्वीकार, उनके प्रति देवतुल्य भक्ति प्रदर्शन, प्रधान याजक लामाके प्रति बुद्ध-सदृश सम्मान प्रदर्शन इत्यादि आचार व्यवहार प्रचलित हुए थे, उसी प्रकार रोमक याजकों द्वारा प्रतिष्ठित आडम्बर-बहुल खृष्टीय मत (Latin Church)-मेंसे नवनीति (New Testament) का स्वातन्त्र्य साधन भी यूरोपीय राज-शक्तिकी सहायताका फल हैं। जरथुस्त्रीय मत जैसे वैदिक बहु-देववादका प्रतिषेधक हैं, उसी प्रकार महम्मदीय मत भी, ६ठी शताब्दीमें प्रचलित पौत्तलिक आचारपूर्ण खृष्टीय मतका प्रतिषेधक है।

सुगठित धर्मोंके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा गया है, वह अगठित धर्मोंके विषयमें भी कहा जा सकता है। हां, इतना अवश्य है कि अगठित समाजके इतिहासके अभावके कारण दृष्टान्त द्वारा प्रमाणित करनेके लिये बहुत तर्क वितर्क उद्धृत करने पड़ेंगे। समाज आदिम अवस्थासे जैसे धीरे धीरे उन्नति प्राप्त करती है, सामाजिकोंका मनोभाव भी क्रमशः उसी प्रकार महान् भाव धारण करनेमें समर्थ हो जाता है और साथ साथ उन समाजोंके धर्मोंमें भी नैतिक व्यवहारिक महान् भाव स्थान पाने लगते हैं। इस क्रमविकाशमें भी एक स्तरसे दूसरे स्तरमें विशेष याथार्थ्यका निरूपण किया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानोंने मौलिक भावापन्न वर्तमान धर्मोंकी अवस्थाकी पर्यालोचना कर इस तरहके स्तरोंका निर्देश किया है। भाषातत्वविद् डा० सेस प्रमुख दार्शनिक विद्वानोंने इस मतका पोषण किया हैं। इनके मतसे मनुष्यके हृदयमें ईश्वरके विषयमें एकत्वका ज्ञान (Unity of God) होनेसे पहले ही वह धर्मके छः स्तरोंको अतिक्रम करता है और उन छः स्तरोंके बाद उसके हृदयमें धर्मका चोरमलार्प "एकेश्वरवाद" अभिव्यक्त होता हैं। डा० सेसके मतसे मौलिक धर्मके छः स्तर इस प्रकार हैं—१म पितृप्रेतोपासना (Ancestor-worship), २य जड़देववाद * (Fetishism), ३ पशुदेववाद (Totemism), ४र्थ विश्वप्रेतवाद (Shamanism), ५म अद्वैतवाद (Henotheism), ६ष्ठ द्वैतवाद वा बहुदेववाद (Polytheism)। यहां डा० सेसने इन विभागोंका जैसा पौर्वापर्य निर्णय किया है, वैसा ही लिखा गया है। अध्यापक फ्लैडेरर (Prof. Pfliederer) आदि विद्वानोंने अन्य प्रकारसे स्तरोंकी कल्पना की है। इनके मतसे, सर्वप्रथम आदिम प्राकृतिक भाव (a kind of indistinct chaotic naturism) था, उसके बाद उसीसे प्रेतवादकी (Spiritism) उत्पत्ति हुई; फिर उससे जैववाद (Anthropomorphic Polythism) और जैववादसे देवश्रेष्ठवाद (Henotheism) उत्पन्न हुआ। अध्यापक सी० पी० टियल (Prof C. P. Tiele) आदि विद्वानोंने धर्मके जो विभाग किये है, बहुतसे उसे ही न्यायसङ्गत समझते हैं। उन लोगोंके मतसे, प्रथम जैवदेववादके (Animism) प्राधान्य और बहुप्रेतदेवविशिष्ट ऐन्द्रजालिक धर्म

* जड़वादका अर्थ Materialism नहीं है।

(Polydaemonistic magical religions), द्वितीय बहुदेवात्मक जातीयधर्म (Polytheistic national religions), इय आत्मगत धर्म (Monistic) वा अध्यापक टुलीके मतानुसार Monotheistic religions और चर्म सार्वजनीन वा विश्वजनीन धर्म (Universal or world-religions) है। डा॰ डी॰ ब्रोसेस (Dr De Brosses) ने गत १८वीं शताब्दीमें जड़देववाद (Fetishism)-को ही आदिम अवस्था माना है, परन्तु अध्यापक म्याक्स मूलरने इसे असत बता कर तर्क वितर्क द्वारा पितृप्रेतोपासनाको ही पूर्ववर्ती अवस्था सिद्ध किया है।

१४। पितृप्रेतोपासना (Ancesto worship)—मानवके अन्तःकरणमें धर्म-विषयक जो स्वतःजात बुद्धि प्रच्छन्नभावसे विद्यमान थी उसका प्रथम विकाश पितृप्रेतोपासनासे ही है। असभ्य अवस्थामें मूढ़ मानव अदृष्ट और दृष्ट व्यापारके पार्थक्यको न समझ सकनेसे दोनोंकी सत्यता और सत्ता समान रूपसे अनुभव करता है। इस स्वप्नमें वह मृत आत्मीय स्वजनको, जीविता-वस्थामें जैसे परिच्छदसे विभूषित देखता है, उस कारण विद्यमानताका अनुभव करता है। इस अवस्थामें उसके मनमें मृत आत्माके अवस्थान, भ्रमण, गमन इत्यादि कार्योंकी आलोचना होनेसे उसमें क्रमशः अलौकिक प्रभावकी बातें उदित होती हैं। इस प्रकारसे मृत आत्माओंमें अलौकिक प्रभावको जोड़ कर, असभ्य मानवका मूढ़ मन जीवितोंसे पृथक उनको भी अचल, अज्ञान, अशरीर प्रेतरूपमें कल्पना कर लेता है। अपने वह स्वप्नमें उनके दर्शनके साथ अपने दैनिक जीवनके कार्यकलापादिका मिलान कर शुभाशुभका निर्णय करनेकी कोशिश करता है। इस चेष्टासे उसने क्रमशः वह उन प्रेतोंमेंसे किसीको शुभदाता और किसीको अशुभदाता समझ उनमें उपकारी बन्धु और अपकारी शत्रुकी कल्पना कर बैठता है। फिर क्रमशः परस्पर पक्षापक्षको आलोचना कर प्रेतविशेषके गुण विशेषको विचार कर जानता है। इस तरह जब प्रेत, प्रेतका कार्य, क्षमता इत्यादिका उद्घाटन-कार्य समाप्त हो जाता है तब वह उन अनिष्टकारी प्रेतोंको तुष्ट अपने प्रभाव और कार्योंका पुनः पुनः स्मरण कर अपने आप भीत और आकुलित होने लगता है, एवं क्रमशः उनकी तुष्टिके लिए बलि, पूजा, उपहारादि देनेकी कल्पना करता रहता है। वह समझता है कि जैसे जीवित व्यक्तिके असन्तुष्ट होने पर उसे उपहारादि दे कर सन्तुष्ट किया जा सकता है उसी प्रकार इन प्रेतोंको भी उपहारादि द्वारा वश कर देने पर उनसे अनिष्टकी आशङ्का नहीं रह सकती। अब प्रेतोंके वासस्थानकी निर्णयकी आवश्यकता पड़ी, कारण स्थान निर्णीत हुए बिना उपहारादि दिये कहां जांय? इसलिए उस समयके विभिन्न मानव हृदयोंने अपनी अपनी रुचिके अनुसार एक एक प्रेतके लिए एक एक जड़ पदार्थमें (वृक्ष पर्वत नदी आदिमें) वा एक एक जीवदेहमें उनके आवासकी कल्पना कर ली। इस कल्पनाके साथ ही प्रेतोंके मृदु वा भीषण गुणोंके साथ कल्पित वासस्थान (जीव वा जड़) की अवस्थाके अनिष्टताका भी अनुमान किया गया। उत्तर अमेरिकामें रहनेवाली हुरन जाति (Huron) एक जातीय घुघुओंमें (Turtle-dove) मृत आत्माओंके आवासकी कल्पना करती है। इसी प्रकार कुछ लोग एक प्रकारके लाल रंगके निरीह जीवोंमें मृत आत्माओंके वासकी कल्पना कर उनके सामने बलि चढ़ाते हैं। पीड़ाकी अवस्थाके समय कार्योंकी असुविधा और आशङ्कादिके कामनेमें विघ्न आनेके कारण उनकी शान्तिके लिए पहले पहल इस प्रकारकी पूजाका प्रचार हुआ और कालान्तरमें वही फिर धर्मभाव समझा जाने लगा एवं उसकी पुष्टि होने लगी। इस प्रकारसे प्रेतोपासना आदि उपासनावृत्तिका परिस्फुरण कर देता है। हिन्दुओंकी श्राद्धपद्धति इस प्रेतोपासनाकालकी रीतिविधियोंका उन्नत संस्कार है।

१५। जड़देववाद (Fetishism)—बहुतोंका मत है कि पितृप्रेतोपासनाके बाद मानवको जब प्राकृतिक प्रभाव हो जाने पर उसके मनमें जड़देववादका भाव जागरित हुआ। जब पार्थिव पदार्थोंमें पितृप्रेतोंका वास है, ऐसा विश्वास अच्छी तरह जम गया, तब लोग कालान्तरमें प्रेतों व पितृगणको भूल गये और छोटी छोटी कुछ वस्तुओंमें उपकारी और कुछमें अपकारी देवता

निग्यवास मानने लगे। फिर क्रमशः उन प्रेतों और उनके अध्युषित पदार्थोंमें अभेदज्ञान हो गया, तो दोनोंको एक समझने लगे। कालान्तरमें इस ज्ञान-परिणतिको प्राप्ति होने पर उन अध्युषित पदार्थोंकी प्रयोजनीयता और उपकारिताके तारतम्यानुसार उनको पूजाका नियत्व और स्थिरीकृत हुआ। इसी समय तीर धनुष, बरछा, फलवान् वृक्षादिमें पूज्यत्व आरोपित हुआ। परन्तु यह पूज्यत्व-बुद्धि तभी तक रहती थी, जब तक वे पदार्थ कार्योपयोगी रहते थे, बादमें उनको कोई कदर नहीं थी और न अब है। जो लोग इस जड़देव वादको ही धर्मप्रवृत्तिके स्फुरणकी प्रथमावस्था मानते हैं उनका कहना है, कि वस्तुओंकी प्रयोजनीयताके तारतम्यानुसार उनके प्रति पहले एक प्रीति, फिर यत्न और यत्नसे फिर उन पर अल्प भयविशिष्ट एक प्रकारकी मृदु पर साथ ही सुदृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई एवं कालान्तरमें उसीसे उनका पूज्यत्व कल्पित हुआ। पीछे इसी प्रकार एक पूजित वस्तुके अभाव वा ध्वंससे अन्य एक नवीन वस्तुके प्रतिष्ठाकालमें, उनके हृदयमें जाननेकी इच्छा प्रकट हुई। तब वे विचारने लगे, कि जिस वस्तुको पूजते थे, उसके बदले इस वस्तुको स्वीकार किया; यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र है, परन्तु इसमें ऐसी कौनसी वस्तु है, और उसमें भी थी, जिसके लिए ये पूजित हुईं। इस तर्कको मीमांसा करते हुए उन लोगोंने उन वस्तुओंमें निहित शक्तियोंको प्रेत समझ लिया और ऐसा समझना उनके लिए सहज होथा, क्योंकि अनाधार शक्तिमात्रको समझनेकी क्षमता उनमें उस समय तक थी नहीं। इस प्रकारसे शेषोक्त मतावलम्बियोंने प्रेतदेववादको परवर्ती माना है। मक्षमूलरने इस मतका खण्डन करते हुए कहा है, कि दो पूजित वस्तुमेंसे साधारण गुणको चुन कर अलग कर लेना और उनमें प्रेतोंकी कल्पना करना अति उन्नत अवस्थाका कार्य है। जो लोग वस्तुसे वस्तुके गुणको पृथक् समझ सकते हैं, वे वस्तुओंमें प्रेतत्व तो दूर रहा, देवत्वकी भी कल्पना नहीं करना चाहेंगे, और पितृपुरुषोंकी आत्मा या प्रेतोंके ज्ञानकी सहजताकी अपेक्षा वस्तुओंमें गुण-समष्टिमूलक प्रेतोंकी कल्पना करना सहज भी नहीं है। कुछ भी हो, यहां ऐसे सूक्ष्म विचारोंका उल्लेख करना व्यर्थ है, क्योंकि हमें संक्षेपमें लिखना है।

फलतः इस जड़देववाद-अवस्थाको पूजा प्रणाली कालान्तरमें नाना प्रकारसे संस्कृत हो कर उत्तरकालके अपेक्षाकृत उन्नत पन्थोंके आचार व्यवहार और रीति-नीतिके अन्तर्गत हो गई थी। किसी किसी वर्तमान धर्ममें अब भी वह देखनेमें आती है। इसका पाल-डियम सेमितिक बेथ्‌ एल्‌, एफिसीय प्रस्तर (जो स्वर्गसे गिरा था), हारामिसका दण्ड, अपोलोका तीर आदि प्राचीन ग्रीसीय पूज्य वस्तुएं इस आदिम जड़देववादके उन्नत संस्कार हैं। हिन्दूधर्ममें पञ्चवटीपूजा, तुलसी, वट, विल्व, नवपत्रिका आदि वृक्षपूजा, विश्वकर्मा-पूजामें शिल्पयन्त्रादिकी पूजा; षष्ठी पूजामें उदुखल मूषल, मन्थन-दण्ड, शिल-लोढ़ा इत्यादिकी पूजा प्रचलित है। यह हिन्दुओंको जड़देवोपासक अवस्थाका अवशेष मात्र है। इन्द्रके वज्र, शिवके त्रिशूल, विष्णुके चक्र इत्यादिकी कल्पना और पूजा भी उसी अवस्थाका विषय है।

३य। पशुदेववाद (Totemism)—जड़देववादके समयमें ही इस भावका परिस्फुरण हुआ था। जिस समय जिस रूपसे पितृ-प्रेतोपासनासे जड़में पूज्यत्व अर्पण किया गया था, ठीक उसी समय उसी रूपसे पशु-ओंमें भी पूज्यत्व अर्पित हुआ था। पितृप्रेतोपासनाके समय प्रेतोंके वास-निर्णयार्थ मानव-हृदयकी रुचि, सुविधा और कल्पित घनिष्ठता द्वारा पितृप्रेतोंके वासके लिए जीवदेह या जड़देह निर्दिष्ट हुई थी। जड़से जड़-देववाद और जीवसे पशुदेववादकी उत्पत्ति हुई। पशु देववाद बहुत सङ्कीर्ण है। कोई एक विशेष जातीय पशु किसी एक वंशीय मानवोंके इष्टदेवता माने जाते हैं। जिस जातिके पशु जिस वंशके देवता हैं, वे ही पशु उस वंशके लोगोंके लिए चिरकाल उपास्य, अवध्य और अखाद्य हैं। पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है, कि जिस वंशमें जो पशु देवता माना जाता है, सम्भव है कि उस वंशमें उस पशुकी भांति किसी न किसी विषयमें सादृश्यविशिष्ट कोई एक व्यक्ति हुआ हो और लोगोंने उसे वही नाम प्रदान किया हो; क्रमशः वही नाम उसके वंशमें उपाधिसूचक हो गया हो और कालान्तरमें जब

मय इतिहासको लोग भूल गये, तब तद्रूप उपाधिधारी किसी व्यक्तिने अपनी उपाधिके हेतुभूत पशुको ही उसकी निशानी देखते हुए उस पर पवित्रता आरोपित की हो और यही धीरे धीरे टोटममें परिणत हुई हो। पूर्वोक्त अमेरिकाके एल्गानक्वियनोंमें बहुतसे अपनेको 'मिचाबो' (Michabo) अर्थात् महाशशक (The great hare)-के वंशज बतलाते हैं। भारतमें भी मयूरभञ्ज, उदयपुर आदि स्थानोंके हिन्दू क्षत्रिय (उत्कलीय) राजा अब भी अपनेको मयूरवंशज मानते और बड़ी भक्तिके साथ मयूरोंको पालते हैं। यहां तक कि मयूरके मर जाने पर वे अशौच भी मानते हैं। यह भी अति प्राचीन-कालकी पशुदेवप्रथाका भग्नावशेष है। हिन्दुओंकी गो-पूजा भी सम्भवतः इस पशुदेवोपासक अवस्थाकी किसी एक प्रथाका उन्नत संस्कार है। देवदेवियोंके वाहनोंकी कल्पना और उनकी पूजा भी इसी पशुदेववादका उन्नत संस्कार है।

४। शिसमैनवाद (Shamanism)—जड़देववादके बाद जब मानवकी दृष्टि अज्ञातीत प्राकृतिक शक्ति और क्रियाओं पर पड़ी, तब उनके प्रभावको देख कर वह और भी मुग्ध हो गया; किन्तु उस समय प्राकृतिक कारण न समझ सकनेके कारण, उसने उन प्राकृतिक शक्तियोंमें भी महाप्रभावशाली प्रेतोंकी कल्पना कर डाली। वायु, तूफान, वर्षा आदिमें प्रेतोंकी कल्पना की; फिर धीरे धीरे अदृष्ट वस्तुओंमें भी गुप्तक्रियाओंका उपलब्धि करना होता और उसके क्रमशः प्रेतोंका वह भौतिक भाव किसीके भी मनमें जागरूक नहीं रहा। कालक्रमके साथ मानवके मनकी धारणा-शक्तिकी वृद्धि होने लगी और वह अब समस्त वस्तुओंके प्रेतोंका पृथक् अस्तित्व समझने लगा। वस्तुओंके गुण प्रेतोंमें ही आरोपित हुए, और इसी लिए प्रेतगण ही प्राकृतिक शक्तियोंके नियन्ता एवं प्राकृतिक क्रियाओंके कर्त्ता समझे जाने लगे। जर्मनीके विद्वानोंने प्रेतोंकी इस अवस्थाको The thing in itself कहा है। इस समय मनुष्यका मन प्रेतराज्यकी महिमामें इतना मुग्ध हो गया था कि उसे किसकी किसी भी विषयमें प्रेतशून्यता दीख न पड़ती थी; यही कारण है जो प्रेतोंकी संख्या इतनी बढ़ गई थी। उस समय प्रत्येक व्यक्तिके लिए प्रत्येक प्रेतकी पूजादि करना दुष्कर हो गया। कृषिकार्य, आहारान्वेषण, सन्तानपालन इत्यादि कार्योंमें व्यस्त होनेके कारण कोई भी उनकी पूजाके समय न निकाल सका और इसी कारण लोगोंने अपने अपने परिवारके एक एक व्यक्तिको (जो साधारणतः अयोग्य होता था) पूजाके लिए नियुक्त किया। दूसरे पर उपासनादिका भार सौंप कर धीरे धीरे लोग उससे निश्चिन्त हो गये, कि दो एक पीढ़ीके बाद उन पूजकोंके सिवा और कोई प्रेतादिकी खबर भी न लेता था। पूजक अब उन पूजाके विषयमें जो कुछ भी कहते थे, उसका ही अविचलित चित्तसे पालन करते थे। कालान्तरमें ये पूजक ही ऐन्द्रजालिक, पुरोहित वा याजकश्रेणीमें गिने जाने लगे। इसीसे सामाजिक कुलपतिकी प्रथा (Patriarchal society) गठित हुई। बहुतोंका अनुमान है, कि भारतमें दोय कालके पहले यज्ञविधाता ऋषिसम्प्रदायकी सृष्टि भी इसी प्रकार हुई हो। साइबेरिया प्रदेशमें इन याजकों और ऐन्द्रजालिकोंको "शमन" (Shaman) कहते हैं। डा॰ रीसका अनुमान है, कि यह 'शमन' शब्द बौद्ध-भिक्षुकबोधक "श्रमण" शब्दका अपभ्रंश है। बौद्धधर्मकी अवनतावस्थामें श्रमणगण तान्त्रिक इन्द्रजाल आदि क्रियामें निपुणता लाभ कर लोगोंको मुग्ध करनेकी चेष्टा करते थे। इसी कारण पाश्चात्य विद्वानोंने ऐन्द्रजालिक प्रभाव और प्रेतोपासनामूलक धर्मकी अवस्थाका Shamanism नामसे उल्लेख किया है।* ग्रीनलैण्ड प्रदेशमें ऐसे ऐन्द्रजालिकोंको "अङ्गेकोक" (Ango-Kok) कहते हैं। हिन्दुओंमें सांपका विष तथा भूत उतारनेवाले गुणियों वा ओझाओंकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार है। पञ्चानन्द, घण्टाकर्ण, महाकाल, शीतला, मनसा, जराहर, वनदेवी आदि देवदेवियोंकी कल्पनाओंका आधार भी यही है। वैदिक देवता वरुण वायु, इन्द्र सोम, अग्नि, उषा आदिकी उत्पत्ति भी धर्मकी इसी अवस्थामें हुई है; परन्तु इतना अवश्य है कि वेद

* हिन्दीमें 'प्रेतवाद' कहनेसे अंग्रेजी नामके साथ सामञ्जस्य तो रहता, पर अर्थ परिस्फुटित नहीं होता, इस कारण भावार्थको ले कर 'शिसमैनवाद' अर्थात् शिसकी समस्त वस्तुओंमें प्रेमवादकी कल्पना ऐसा नाम दिया गया है।

प्रतिपादित देवताओंका एकत्व और ईश्वरत्व बहुत समय पीछे कल्पित हुआ है।

अध्यापक टिएलके विभागमें जो जैववाद (Animism)-को प्रथम अवस्था बतलाया गया है, वह इन चार अवस्थाओंके धर्मविभागको एकत्रीभूत मंसा है। उनके मतसे, इस तरह धर्मके विकाशका सूक्ष्म रूपसे निर्णय करना असाध्य है। आपके बनाए हुए द्वितीय विभाग (Polytheistic national religions) को प्रथमावस्था भी विश्वप्रेतवादमें शामिलकी जा सकती है।

५ द्वैतवाद और ६ अद्वैतवाद (Polytheism and Henotheism) ये दोनों अवस्थाएं प्रायः समसामयिक हैं। मक्षमूलर पहले अद्वैतवाद और पीछे द्वैतवादकी कल्पना करते हैं, किन्तु डा०मेस दोनोंको एक ही समयमें उत्पन्न बतलाते हैं। विश्वप्रेतवादमें सामाजिक उन्नतिके साथ साथ जब मानव-चिन्ताने विभिन्न प्रेतोंको महिमान्वित देव उनमें (प्रेतत्वको भूलकर) देवत्व स्वीकार किया, तब द्वैतवादको उत्पत्ति हुई और द्वैतवादके साथ साथ अद्वैतवाद भी उत्पन्न हुआ। द्वैतवाद और अद्वैतवादकी विभिन्नता दिखानेके लिए डा० मेसने कहा है, कि द्वैतवाद (Polytheism)-में बहुदेवत्व स्वीकृत हुआ है। और अद्वैतवाद (Henotheism)में बहुदेवत्वका अनुभव मात्र, होता है।

वर्त्तमानमें सुगठित धर्मावलम्बियोंमें जो द्वैतवाद और अद्वैतवादके विषयमें विवाद देखनेमें आता है, उसके साथ इस मौलिक द्वैतवाद वा अद्वैतवादका सम्बन्ध बहुत पृथक् है। मौलिक द्वैतवादके देवतागण सिर्फ प्राकृतिक शक्तियोंके अधिष्ठातामात्र समझे जाते हैं। उस समय अध्यात्मभावकी कोई कल्पना विकसित नहीं हुई थो। उसके बाद क्रमशः मानव-प्रकृतिमें परिवर्तन होनेके कारण मानवी कल्पना जब इन देवताओंके विषयमें चिन्ता करते करते नाना प्रकार क्रीड़ाए करने लगी, तब मानव-प्रकृतिको एक शक्तिसे विभिन्न कार्य होते देख उसके लिए विभिन्न देवताओंकी कल्पना न कर एक एक देवतामें नाना प्रकार गुणारोप करने लगी। इस गुणारोपके साथ साथ नाना प्रकारके नामकरण होने लगे। सूर्य आपोनो हुए, दिवाकर हुए, तपन हुए; वायु मरिस् हुई, पवन हुई, गन्धवह हुई इत्यादि। बादमें, एक देवतामें विभिन्न गुणारोप करनेसे जब देखा, कि कुछ गुण कुछ देवताओंमें साधारणतः पाये ही जाते हैं, तब लोगोंने सन्दिग्धचित्तसे दोनों देवताओंको एक समझना शुरू कर दिया। क्रमशः यह भाव दोसे बहुतोंमें संक्रमित हो गया। जब सन्देहका भाव दूर हो गया, तब मौलिक अद्वैतवादको सृष्टि हुई। मक्षमूलरने अद्वैतवादका पूर्वत्व स्वीकार कर कहा है, कि विश्वप्रेतवादके बाद मानव-कल्पना बहुत अस्पष्ट भावसे काम करती रही है। उस समय लोग, विभिन्न प्रेतोंके विभिन्न कार्य और शक्तियोंका परिमाण स्थिर न कर सकनेके कारण समय समय पर एक कार्यके साथ अन्य एक प्रेतका सम्बन्ध स्थिर करने लगे। यह गड़बड़ी जब परम्पर सभो प्रेतोंमें फैल गई, तब लोग बहुत्वमें एकत्वका अनुभव करने लगे; कारण तो कुछ और है, पूजा किसो औरको करने लगे। अन्तमें उनमेंसे एकको श्रेष्ठ पद पर (Chief-god) स्थापित किया। फ्लेडरने जो मौलिक अद्वैतवादके विषयमें लिखा है, वह ऐसाहो है। वैदिक बहुदेवत्वका एकत्व प्रायः इसी अवस्थाका परिचायक है।

इसो समय और एक घटना हुई। प्राचीनकालके अर्द्धविस्मृत (वा प्रायः विस्मृत) प्रेततत्त्वादि कालधर्मकी क्षीण स्मृतिके साथ इस समयके अपूर्व शक्तिसम्पन्न एक वा बहुभावात्मक देवताओंका मिश्रण हो जानेसे कल्पनाचारी याजकादि द्वारा नाना आख्यानोंको सृष्टि होने लगी इन कथनोंको सृष्टिमें प्रधान कारण याजकों द्वारा की गई उभयकालके धर्मतत्त्वोंको सत्ता प्रमाणित करनेकी चेष्टा है। और यदि यह चेष्टा न को जाती, तो भी नवदेवताओंके साथ प्राचीनकालके उपास्य प्रेत पशुरूपो देवताओंके संघर्षसे एक दलको अवश्य ही चिर-विसर्जित होना पड़ता। क्योंकि एक दलके सत्वके साथ अन्य दलका सामञ्जस्य न रक्खा जाता, तो याजक-सम्प्रदायके स्वार्थमें बाधा पड़ती। कुछ भी हो, इस प्रकार तत्त्वकथासंश्लिष्ट जो उपाख्यान प्रचलित हुए उन्हींसे आचार, व्यवहार, रीति, नीति नियन्त्रित होने

लगी। प्रत्येक धर्ममें "पौराणिक कथा" (Mythology) नामसे इसकी प्रसिद्धि है। इन रचनाओंके प्रसादसे देवताओंमें भी पिता पुत्रादिका सम्बन्ध निर्णीत हुआ और जो जो जीव प्रेतात्मवादमें देवताओंके वासस्थान समझे जाते थे, अब वे ही उनके वाहन समझे जाने लगे। नागधर्ममें अधिक उग्रता होनेके कारण वह अग्निका वाहन समझे जाने लगे। अग्नि धर्ममें सबसे तेजोरूप है, इसलिये इसे पवनका वाहन मान लिया। इसी प्रकार अन्यान्य वाहनोंके विषयमें समझना चाहिये। इसके बाद क्रमशः मानव-हृदयमें भय भीति, श्रद्धा और भक्तिका विकाश हुआ और फिर मन्दिरादि बनने लगे। इस आदिम देवात्मवादकी सृष्टिके साथ ग्रीक और रोमक देवताओंकी उत्पत्ति हुई। हिन्दुओंके वैदिक देवताओंका भाव इसमें भी उक्त अवस्थाका परिचायक है। उस समय मानवकी कल्पना मनुष्य और पशुके सिवा अन्य किसी भी जीवके आकारको धारणा नहीं कर सकती थी, इसीलिये समस्त देवता इन्द्रवरुणादि कुछ मनुष्यकी मनोवृत्तिके समान मनोवृत्ति विशिष्ट कल्पित होने लगी। किन्तु जिन देवताओंकी कल्पना पशुसे हुई, उनका आकार आदि (अर्थात् मनुष्य और पशुकी मिश्रित आकृति) कल्पित हुआ। इसके बाद कुछ नराकार, नरमुख सर्पाकार मूर्तियां कल्पित हुईं। मनुष्याकार होने पर भी देवताओंको मानवापेक्षा अधिक बहु अर्थात् प्रतिपत्व सिद्ध करनेके लिए उनके चतुर्भुज, दशहस्त, त्रिपद त्रिनेत्र, लोलरसना दिगम्बर, मुण्डमाल, विराटदेह इत्यादिकी कल्पना की गई। ब्रह्माण्डभाण्डोदर, सर्वान्तर्यामिन, विश्वरूप इत्यादि भाव भावोंकी कल्पना भी इसी समय हुई होगी। इसके बाद जब मानवहृदयमें सौन्दर्यानुभव शक्ति विकसित हुई, तब उसने परम श्रद्धाके आधारभूत उन भीषणमूर्ति देवदेवियोंमें भी सौन्दर्य मिला कर आश्चर्यके पात्रमें अभिराम, गुप्त सामर्थ्य रूपमें भी योगमूर्ति, कोमलादि और उज्ज्वल अङ्गोंमें भी पद्मश्याम वर्ण इत्यादिकी कल्पना की। फिर रत्नाकहार विचित्रवसनादि तथा पूर्ण सौन्दर्यके उपयुक्त विष्णु, मदन कार्त्तिकेय, रति, लक्ष्मी सरस्वती, मिनर्भा, मिनस, क्यूपिड इत्यादि देवता भी कल्पित हुए।

धर्मतत्त्वमें मानवीकरण—इसके बाद देवताओंके साथ मानवका सम्बन्ध स्थापन करनेके लिए देवताओंका मानवीकरण किया गया, अर्थात् मानवके प्रयोजनकी सिद्धिके लिए देवता मानवादिका आकार धारण कर मनुष्योंमें आ कर रहते हैं इत्यादि कल्पना की गई। पीछे यह कल्पना और भी आगे बढ़ी। मानवको भी देवता बना कर स्वर्ग नरककी कल्पना की गई। मानव यदि देवमानवको अङ्गीकार कर कार्य करे, तो वह किसी समय देवत्व लाभ कर देवलोकमें स्थान पा सकता है, इत्यादि कल्पनाएं भी प्रचलित हुईं। इसीलिए हिन्दुओंके सालोक्य, सारूप्य सामीप्य और सार्ष्टि इस तरह चार प्रकार मुक्तियोंकी कल्पना की गई है। फिर इन्द्रलोक चन्द्रलोक, सूर्यलोक, वैकुण्ठ गोलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक इत्यादि स्थानोंकी कल्पना हुई। हिन्दूधर्ममें राम कृष्णकी कथा तथा इतिहासमें बुद्धचैतन्य ईसाकी कथा इनको छोड़ देने पर भी मुसलमानोंके पीर, हिन्दुओंके परमहंस आदि और यूरोपीय (Saint और Martyr आदि) की कथा इस श्रेणीमें आ जाती है। सत्यपीर, माणिकपीर, गुरुनानक, भो मौला साह, शाह फरीद आदि कितने ही और हिन्दु-मुसलमानोंके उपास्य हो गये हैं, इसका निर्णय करना असाध्य है। मि० आयकका कहना है (१८७२ ई०में) कि अंग्रेज-सेनापति जनरल निकलसनको दाक्षिणात्यवासी गुरुद्वारा नामक असभ्य जातिने देवत्व प्रदान किया था। यह जाति उनको नाम पर पूजा और भक्ति अर्पण किया करती है। यह ज्यादा दिनकी बात नहीं है।

धर्मके विभागोंका ऐसा परिवर्त्तन सभी जातियोंमें एक ही समयमें और एक ही प्रकारसे हुआ हो, ऐसा नहीं। जिस जातिकी सामाजिक उन्नति जितनी शीघ्र हुई थी, उस जातिकी आध्यात्मिक उन्नति भी उतनी ही जल्दी हुई थी। जनरल निकलसनके देवत्वलाभसे यह ही समझ सकते हैं, कि जिस समय हिन्दू, ईसाई, बौद्ध आदि धर्म अध्यात्म-सम्पूर्ण मोक्षज्ञान पर पहुंच चुके थे, उस समय भी गुरुद्वारोंका धर्म प्रेतवादसे कुछ भी बाहर न निकल सका था।

धर्म की अभिव्यक्तिका वर्णन हो चुका। अब अध्यात्म

(१२२ पृष्ठमें परवर्त्ती अंश)

("ख" तालिका)
प्राच्य आर्य धर्म
प्राचीन ईरानीय
प्राचीन भारतीय
पश्चिम शाखा (मद्र पारसिक)
पूर्व शाखा (बल्ख़िया)
पश्चिमशाखा
पूर्व शाखा
प्राचीन वैदिक
नववैदिक
जरथुस्त्रीय धर्म (मज़द धर्म) (Mazdaism)
ब्राह्मण्य धर्म
जैन
बौद्ध
प्राचीन पारसिक धर्म
मद्रीय मगी धर्म
एकिमेनाडियोंका धर्म (Achæmenaides)
वैदान्तिक धर्म (उ० मीमांसा)
पूर्व मीमांसा (?)
दिग०
श्वेता०
हीन-यान०
यान महा-
हिन्दू धर्म
शासनादर्शोंके अधीन मज़द धर्म (Mazdayacnic)
दक्षिण शाखा
उत्तर शाखा
आधुनिक अनेक शाखाएं
मुसलमानोंके संघर्षसे प्रायः पारस्यके सर्वत्र विलुप्त हो गया है और भारतके अधिकांश स्थानोंमें मुसलमानोंके संघर्षसे विनष्ट हो चुका है।

("ग" तालिका)
प्राचीन सेमितिक धर्म।
दक्षिण शाखा
(प्राचीन अरबीय धर्म)
उत्तर शाखा
उत्तर अरबका धर्म
सेबीय (Sabæan) वा
हिमेरितीय (Hemyaritic) धर्म
(मेसोपोटेमियाके धर्मका संस्रव)
पश्चिम शाखा
पूर्व शाखा
बाबिलोनीय धर्म
(विदेशीय धर्मोंका संस्रव)
आसिरीय धर्म.
हानेफियोंका धर्म
महम्मदीय व
इसलाम धर्म
१ हिब्रू धर्म
प्राचीन इस्रायेल धर्म
मूसा-द्वारा संस्कृत धर्म
इस्राइलीका धर्म
जुडाका धर्म
संस्कर्ताओं (Prophets) का
संस्कृत धर्म
जुडा धर्म (Judaism)
गम्मेल धर्म वा
प्रथम खृष्टीय धर्म।
मोआबिटीक (Moabitic) और अमोनाइटिक (Ammonitic) धर्म।
२ कैनानाइटिक धर्म-समूह (Cannanitic)
३ फिनिशीय
बिब्लो लोगोंका धर्म (Gebal) जिबल धर्म।
टायर और सीडनका धर्म।
४ मोरिय और फिलिष्टाइनका धर्म।
५ एशिया माइनरका सेमितिक (Semitic) धर्म।
६ अर्मियन (Armæan) धर्म-समूह।

टिएल-द्वारा वर्णित धर्मके आध्यात्मिक विभागोंका वर्णन किया जाता है। आपने समस्त धर्मोंको प्राकृत और नैतिक इस तरह दो भागोंमें विभक्त किया है। प्राकृतधर्म (Nature-religions)का स्वरूप धर्मके तात्त्विक पक्षों को विस्तृत आलोचनाके बिना समझाया नहीं जा सकता। जैवदेववाद (Animism)में प्राकृत धर्मकी अवस्था कैसी थी, यह बात अनुमानसे जानी जा सकती है भाषाके द्वारा समझा देना बहुत कठिन है। ऐसी दशामें जैवदेववादमें जब तक मानवकी रीति नीतिके साथ धर्मका आचार व्यवहार सम्मिलित नहीं हुआ था तब तकके समयको हम को प्राकृत अवस्थाके अन्तर्गत मान सकते हैं। किसी समय सभी धर्मोंकी ऐसी अवस्था थी, यह बात उन्नत धर्मों के अन्तर्गत जैवदेववादको किसी किसी प्रथाओंके अवशेष निम्नाङ्गके धर्मोंमें जैवदेववादको वर्तमानता देखकर स्पष्ट समझमें आ जाती है। इसकी पूर्व वर्ती अवस्थाको बहुजीव (Polyzoic stage) आख्या दी है। पौराणिक आख्यानों के मिथिभाग (Original Myths) से इस अवस्थाका बहुत सुस्पष्टरूपसे अनुमान किया जा सकता है। अध्यापक टिएलने धर्मकी प्राकृत अवस्थाको तीन भागोंमें विभक्त किया है—(१म) बहुप्रेतदैविक इन्द्रजालमय अवस्था (Polydemonistic Magical religions) इस समय जैवदेववादका प्राधान्य ही इसका प्रधान लक्षण था, (२य) संस्कृत इन्द्रजालमय अवस्था (Purified Magical religions or Therianthropic Polytheism), इस समय भी जैवदेववादका प्राधान्य था, पर उसमें पशु और मानवरूपी देवताओंकी उत्पत्ति हो चुकी थी। (३य) प्राकृत शक्तिमें मनोविज्ञ क्षमताविशिष्ट अर्द्धनैतिक अर्द्धप्राकृत देववादकी अवस्था (Religions in which the powers of nature are worshipped (as manlike though super-human and semi-ethical beings or Anthropomorphic polytheism)। इनमेंसे फिर प्रथम अवस्थाके तीन भाग कल्पित हुए। प्रथम भागकी अवस्था अत्यन्त अपरिस्फुट थी। उस समय प्रेतों द्वारा प्राकृतिक घटना (natural phenomena) नियमित और उनमेंसे भासित होता था उन्हीं सबके प्रति मानव मनमें वैमत्य कल्पित होता। एकको विशेषरूपसे क्षमताशाली मान कर उसीको परात्पर समझते थे। द्वितीय भागकी अवस्था में इन्द्रजाल पर विश्वास होनेसे मानव हृदय भीति और अनीति वर्जन और प्रवर्त्तनका भाव समझने लगा था। तृतीय भागमें समस्त अन्यान्य शक्तियोंमें सबके आधिक्य और आधिपत्यके कारण धर्मके आचार व्यवहारादि सभी कार्य प्रणोदित हो गये थे।

द्वितीय अवस्थामें यद्यपि मनुष्याकारकी कल्पनाका प्रारम्भ हो गया था तथापि पश्वाकार देवताओंका ही अधिक प्राधान्य था; परन्तु ऐसा होने पर भी उस समय में देवताओंका आत्मभाव (Spiritual) उत्पन्न हुआ था किन्तु उस समय भी वह पशुपादि तथा जीव देहमें आबद्ध था। इसी समयसे देवताओंका आकार नरकाय पशुमुख वा पश्वाकार नरमुख था। उस समय देवता और प्रेतोंमें पार्थक्य ज्ञान हो जानेसे प्रेतपूजा तथा ऐन्द्रजालिक आचार और झाड़ फूंक आदिका ह्रास हो गया था। ऐसी अवस्थामें प्राचीन और वर्तमान आचार व्यवहारका एकत्र मिश्रण हो जानेसे एक प्रकारका अज्ञात कारणजात आचार व्यवहार (Mystic rituals) विकसित होता रहा। इसी अवस्थामें समय सुगठित और अगठित (organized and unorganized) ये दो भेद दृष्टिगोचर हुए।

३य अवस्थाके देवताओंमें सभी मनुष्याकार और मनोविज्ञ शक्तिसम्पन्न हैं। वे ही प्राकृतिक शक्तियोंके नियन्ता प्राकृतिक घटनाओंके अधिष्ठाता और सुख एवं दुःखदाता हैं। उस समय उनके पूर्वाकार पशुपक्ष प्रस्तरादि वाहन भूषण वा चिह्न (Symbols) हो गये और वे पवित्र समझे जाने लगे। इन देवताओंने उस समय नाना रूप धारण किये। उनके अनुसार नाना प्रकारकी कथाएं प्रचलित हो गईं। इसी समय देव और दैत्य की कल्पना हो गई। प्राचीन ग्रीकदेववादके पिशाच शाकिनी प्रेत, दैत्य, Centaurs Harpies, Satyrs इत्यादि, जिनको अब पौराणिक आख्यानोंसे निवृत्त कर विस्मृतिके गड्ढेमें डालनेका कोई उपाय नहीं रहा, ये देवताओंके अनुचर या दास समझे जाने लगे। किन

का भूतनाथत्व, गणेशका गणाधिपत्व, कालीका योगिनी-डाकिनी-शङ्खिनीत्व और देवासुरका महत्त्व, ये सब कल्पनाएं इसी अवस्थाके अन्तर्गत हैं।

नैतिक धर्म (Ethical religion) – बहुतोंका कहना है, कि जब अधिकांश धर्मपन्थ किसी न किसी शास्त्र-ग्रन्थके विधिनियमादिके आधार पर गठित हुए हैं, तब दो एकके लिए नैतिकादि भेदोंकी कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन? गवेषणा-द्वारा विद्वानोंने स्थिर किया है, कि आदिम कालमें मानवके हृदयमें भय, विस्मय और प्रसन्नता-के कारण जो एक उच्च एवं महान् भाव उत्पन्न हुआ और वह कालान्तरमें श्रद्धा एवं भक्ति (ईश्वरभक्ति)-के रूपमें परिणत हो गया है, वह भाव जिससे साधारणतः पृथिवीमें सर्वत्र विस्तृत हो जाय, धर्मके ऐसे सर्वजनीन नियमादि होना चाहिए। सत्य, दया, (अहिंसा) माया, स्नेह, उपकार इत्यादि सुनीतियां विश्वजनीन हैं। ईश्वरमें भक्तिप्रदर्शनके नियमादि भी विश्वजनीन होने चाहिए, क्योंकि ऐसा न होनेसे धर्ममें संकीर्णता रह जायगी। अब तक जितने भी धर्मपन्थोंके विषय ज्ञात हुए हैं, उनमें सिर्फ बौद्ध, खृष्टीय और महम्मदीय पंथ-को ही विश्वजनीन कहा जा सकता है; इनमें प्रायः साम्प्रदायिकता नहीं है। अध्यापक किउननेन इसलाम-धर्मको भी इस श्रेणीसे निकाल दिया है। उनके मतसे इसलाम धर्ममें भी ऐसे कुछ नियम मौजूद हैं, जो सर्वत्र सब जातियोंके लिये पालनीय नहीं हैं। उनके मतसे इसलामधर्म विशेषात्मक (Particularistic) है, विश्वात्मक (Universalistic) नहीं। अध्यापक रवेनहफ (Prof Rauwenhoff) इन तीनोंमेंसे किसी को भी 'विश्वात्मक' नहीं मानते। इस मतभेदकी मीमांसा किसी दिन हो सकेगी या नहीं, मालूम नहीं। किन्तु अधिकांश विद्वानोंका यही मत है कि उक्त तीनों धर्मों-में अन्य धर्मोंकी अपेक्षा साम्प्रदायिकताका लक्ष्य बहुत कम है। इनमें ईश्वरके प्रति भक्ति, उनका प्रीतिआकर्षण, स्वर्गगमनका लोभ इत्यादि विषयके अनुशीलनकी अपेक्षा मानव-मन और मानव अन्तःकरण (Mind and heart) की प्रसारवृद्धि और उन्नतिसाधनकी शिक्षा-विधि अधिक पायी जाती है।

ईसाई-धर्मावलम्बी पाश्चात्य विद्वानोंने इस प्रकारका सिद्धान्त निर्णीत कर अन्तमें उक्त तीनों धर्मोंमेंसे ईसाई धर्मको ही प्राधान्य दिया है। यदि उनकी युक्ति और तर्क पर विश्वास किया जाय और साथ ही अपने अपने धर्म-विश्वासको शिथिल किया जाय तो सम्भव है उनकी मीमांसा सत्य प्रतीत होने लगे। परन्तु अन्य धर्मावलम्बी इस बातको स्वीकार नहीं करते।

अब यहां पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रदर्शित धर्म-पंथोंकी गठन-प्रणालीके विभागोंका उल्लेख कर यह निबन्ध समाप्त किया जाता है,—

१ प्राकृतधर्म (Nature-religions)।

(क) बहुप्रेतदैविक इन्द्रजालमय अवस्था (Poly-demonistic magical religions under the control of animism)—इस अवस्थामें असभ्य बर्बरोंके धर्म भी शामिल हैं। इन धर्मोंका वर्तमान आकार भी पूर्वावस्थाका भग्नावशेष है।

(ख) सुगठित इन्द्रजालमय अवस्था (Purified or organized magical religions i. e. Therianthropic Polytheism)—यह अगठित और सुगठित-के भेदसे दो प्रकारका है। इस अवस्थाके अन्तर्गत जितने भी धर्म हैं, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

१ अगठित। (Unorganized)	२ सुगठित (Organized)
जापान-वासियोंका प्राचीन धर्म-'कामिनो मट्सु।'	मय, नाचेज आदि अमेरिकावासियोंका अर्द्धगत धर्म।
द्राविडीय अनार्यधर्म।	प्राचीन चीन धर्म।
फिनलैण्ड और एष्टोंका धर्म।	प्राचीन वाबिलोनीय या काल्दीय धर्म।
प्राचीन अरबीधर्म।	मिश्रका धर्म।
प्राचीन पिलसगीय धर्म।	
प्राचीन इटलिका धर्म।	
ग्रीक-प्रभावके पहलेका एट्रसीय धर्म।	
प्राचीन स्लावोनीय धर्म।	

(ग) मनुष्याकार अलौकिक शक्तिविशिष्ट अर्धमानव अर्धनैतिक देववादकी उपासना (Worship of man like but Super human and semiethical beings i. e. Anthropomorphological Polytheism)—इस अवस्थामें निम्नलिखित धर्म शामिल है—

प्राचीनतम वैदिक धर्म (भारतवर्ष)।

जरथुस्त्रीय मतके पूर्ववर्ती इरानीय धर्म (मैकडिया, मिदिया का मद्र और पारस्य)।

बाबिलोनीय और आसीरीय सभ्य धर्म।

अन्यान्य उन्नत सेमितिक धर्म (फिनिकीय, कानान, अरमिय वा अरेमिय), मिसरी, केल्टिक, जर्मनीय, ग्रीकीय और रोमक प्राचीन धर्म।

२ नैतिक धर्म।

(क) साम्प्रदायिक वा जातिगत देववादकी उपासना (National nomistic or nomotheistic)—इस अवस्थामें निम्नलिखित धर्म शामिल है,—ताओ (Taoism), कनफ्यूचीय (Confucianism), ब्राह्मधर्म (अर्हत् धर्म समस्त विभागों सहित), मज्द मत (Mazdaism) वा जरथुस्त्रीय मत, मूसामत (Mosaism), और यहूदी मत (Judaism)।

हिन्दू, क्रिश्चान, बौद्ध, जैन, महम्मदीय धर्म आदि शब्दोंमें उनके सर्वांश विस्तृत विवरण देखो।

१ एक देवता। ये ब्रह्माके दक्षिण स्तनसे उत्पन्न हुए हैं। (दशपु० ३।१०)।

दक्ष प्रजापतिने धर्मदेवको १३ कन्यायें दान दीं। इन सब पत्नियोंमें धर्मके अनेक सन्तान हुई जिनमेंसे श्रद्धाके गर्भसे शुभ, मैत्रीके गर्भसे प्रसाद, दयाके गर्भसे अभय, शान्तिके गर्भसे सुख, तुष्टिके गर्भसे हर्ष, पुष्टिके गर्भसे गर्व, क्रियाके गर्भसे योग, उन्नतिके गर्भसे दर्प, बुद्धिके गर्भसे अर्थ, मेधाके गर्भसे स्मृति, तितिक्षाके गर्भसे मङ्गल, प्रश्रयके गर्भसे विनय और मूर्त्तिके गर्भसे नर और नारायण उत्पन्न हुए। (भागवत)

वराहपुराणमें धर्मकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

एक दिन ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करनेके अभिलाषी हो अतिशय चिन्तापरायण हुए थे। चिन्ता करनेसे उनके दक्षिणाङ्गसे शुक्लाम्बरधारी और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपनादियुक्त एक पुरुष आविर्भूत हुए। उन्हें देख कर ब्रह्माने कहा, 'तुम चतुष्पाद वृषाकृति हो अतः तुम ज्येष्ठ हो कर प्रजाका पालन करो।' इतना कह कर वे स्थिर हो रहे। यही धर्म सत्ययुगमें चतुष्पाद, त्रेतामें त्रिपाद, द्वापरमें द्विपाद और कलिमें एक पाद द्वारा प्रजाका पालन करते हैं। ये ब्राह्मणोंको सम्पूर्णरूपसे क्षत्रियोंकी तीन भागमें वैश्योंको दो भागसे और शूद्रोंकी एक भाग द्वारा रक्षा करते हैं। गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति ये ही चार पाद हैं। वेदमें इनका त्रिशृङ्ग नाम रखा गया है। इनके आद्यन्त ओंकार दो सिर और सप्त हस्त हैं, उदात्तादि तीन स्वर द्वारा बद्ध हैं। ब्रह्माने यह भी कहा था, 'धर्मदेव! आजसे तुम्हारा त्रयोदशी तिथि नाम पड़ा। इस तिथिमें तुम्हारे उद्देशसे जो उपवास करेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त हो जायेंगे।

वामनपुराणमें लिखा है, कि धर्मके अहिंसा नामक भार्याके गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे बड़ेका नाम सनत्कुमार, द्वितीयका सनातन, तृतीयका सनक और चतुर्थका नाम सनन्द था। किन्तु दूसरे पुराणमें ये ब्रह्माके मानसपुत्र माने गए हैं।

३ धनु। ४ यम। ५ सोमप। ६ धनुष। ७ अर्हत्, जिन। ८ न्याय। ९ स्वभाव। १० आचार। ११ उपमा। १२ क्रतु। १३ अहिंसा। १४ उपनिषद्। १५ आत्मा। १६ जीव। १७ भाग्याख्य लग्नभेद, जात लग्नसे नवम स्थानको धर्मस्थान कहते हैं। यह नवम स्थान देख कर मानव किस प्रकार भाग्यसम्पन्न और धार्मिक होगा वह जाना जा सकता है। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—धर्म भावमें प्रवृत्ति भाग्योपपत्ति, चरितशुद्धि, तीर्थयात्रा और प्रश्रय ये सब शुभाशुभ अर्थात् नवम स्थानमें निरूपित होंगे। तन्मादि अन्यान्य स्थानोंका ज्ञान कर पीछे भाग्यस्थानका विचार करना नितान्त आवश्यक है। कारण आयु, विद्या, यश और वित्त ये सभी भाग्याधीन हैं। सविलग्न पण्डितोंको अन्यान्य विषयोंका परित्याग कर यत्नपूर्वक भाग्यका विचार करना चाहिए। भाग्यवान व्यक्तिका जीवन माता, पिता और बन्धु सभी वश हैं। जिनके विपुल वित्त है, वही व्यक्ति कुलीन, पण्डित,

मेधावी, शास्त्रज्ञ, वक्ता, सुखी, भाग्यशाली और बहुगुणान्वित नहीं होते।

लग्न और चन्द्रसे नवम स्थानको भाग्यालय कहते हैं। इस स्थानका अधिपति शुभग्रह यदि तत्स्थानस्थ हो, अथवा उस स्थानमें उक्त शुभग्रहसे देखा जाता हो, तो मनुष्य स्वदेशोद्भव भाग्यफल भोग करता है। और यदि वह भाग्यस्थान अधिपति भिन्न स्वीय उच्चगृहस्थ शुभग्रहसे दृष्ट वा युक्त हो, तो मानव देशान्तरमें भाग्यवान् होता है। किन्तु क्रूरग्रहसे देखे जानेपर मनुष्य विविध दुःख भोग करता है। भाग्येश्वर यदि बलवान् हो कर भाग्यस्थानमें अथवा स्वगृहमें विराज करे, तो उस स्थानके ग्रहसंस्थानकी विवेचना कर शुभाशुभ फलका विचार करना होता है।

जिसके जन्मकालमें लग्नस्थ, तृतीयस्थ और पञ्चमस्थ बलवान् ग्रहके नवमस्थानमें दृष्टि रहे, वह व्यक्ति रूपवान्, विलासशील और बहुलाभयुक्त होता है। जिस मनुष्यके जन्मकालमें नवमस्थ ग्रह स्वगृहस्थ हो कर शुभग्रहसे लक्षित हो, वह मनुष्य भाग्यशाली और मानस सरोवरमें हंसकी तरह निज कुलका भूषणस्वरूप होता है। नवमस्थ रवि और मङ्गल यदि पूर्णेन्दुयुक्त तथा बलवान् हो, तो मनुष्य अपने वंशके मर्यादानुसार शुभग्रहकी दशामें राजमन्त्री अथवा राजा होता है। यदि कोई ग्रह भाग्यस्थानमें रहे और वह ग्रह उसका उच्चस्थान हो, तो मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। शुभग्रहसे देखे जाने पर वह मनुष्य बलवान्, विलासशील और राजा होगा, ऐसा जानना चाहिए। (जातकाभरण)

जन्मकालमें सूर्य यदि नवम स्थानमें रहे, तो मनुष्य निरन्तर भाग्यहीन होता है। किन्तु यदि वह नवम स्थान सूर्यका सम्पूर्ण उच्चस्थान हो तो मनुष्य पुण्य कार्यका अनुष्ठान करता और राजपद पाता है। सूर्यके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य भाग्यहीन और पुण्यहीन होता है। पर हाँ, यदि स्वीय उच्चस्थानमें रहे, तो मनुष्य निर्मल धर्मसञ्चय करता है। मतान्तरमें सूर्यके नवमगृहमें रहनेसे मानव सत्यवादी, उत्तम केशयुक्त, कुलजनहितकारी, देवब्राह्मणभक्त, प्रथम वयसमें रोगयुक्त, यौवन कालमें दृढ़तर, बहुधनसम्पन्न, दीर्घजीवी और उत्तम शरीरवाला होता है। यदि पूर्णचन्द्र नवम रहे, तो मनुष्य सौभाग्यशाली, बहुधनसम्पन्न और पितृयज्ञपरायण होता है। किन्तु नवममें यदि क्षीण चन्द्र रहे, तो उक्त समुदाय फल अल्पपरिमाणमें होगा। मतान्तरमें पूर्णचन्द्रके नवमस्थानमें रहनेसे मनुष्य सौभाग्यशाली, बहुधनसम्पन्न और कामिनियोंके सन्तोषजनक होगा। किन्तु यदि वह नवम गृहस्थित चन्द्र नीच गृहस्थित या क्षीण हो, तो मनुष्य ऐश्वर्यशाली न हो कर निर्धन, तथा मूढ़ और सत्यविरोधी होगा। मङ्गलके नवमस्थानमें रहनेसे मानव रक्तवस्त्र-व्यवसायी, पाशुपतव्रतपरायण और सौभाग्यहीन होगा। मतान्तरमें मङ्गलके नवम गृहमें रहनेसे मनुष्य रोगयुक्त, बहुधनद्वारा पूर्ण, सौभाग्यहीन, कुत्सितवस्त्रपरिधानकारी, साधु समीपमें सुवेशसम्पन्न और शिल्पविद्यामें अनुरागयुक्त होता है। इसके अलावा उसका नयन, केश और शरीर पिङ्गलवर्णका होगा ऐसा जानना चाहिए। यदि बुध नवम गृहमें रहे और वह नवम गृह यदि पापग्रह हो, तो मनुष्य मन्दभावमें और बौद्धमतावलम्बी वा अन्य कोई विधर्माक्रान्त होगा। किन्तु यदि वह बुध स्फुटरश्मि अर्थात् उज्ज्वल हो, तो मनुष्य सौभाग्यशाली, सुबुद्धि और धार्मिक होता है। मतान्तरसे यदि नवम गृहमें बुध रहे और वह नवमगृह यदि शुभ हो, तो मनुष्य स्त्रीपुत्रसम्पन्न तथा धनवान् होगा। किन्तु यदि वह नवमगृह पापग्रहका स्थान हो, तो मनुष्य दुःखितान्तःकरण और वेदनिन्दक होगा तथा वह बौद्धधर्म वा अन्य किसी अनार्य धर्मको आश्रय करेगा। वृहस्पतिके नवम गृहमें रहनेसे मनुष्य भाग्यशाली, राजप्रिय, धनवान्, गुणवान्, देवताओंके उद्देशसे यज्ञपरायण, परमार्थज्ञ, कुलवर्द्धन और प्रचुर कीर्त्तिशाली होगा ऐसा समझना चाहिए। शुक्रके धर्मस्थानमें रहनेसे मनुष्य बहुविध तीर्थपरिभ्रमण द्वारा पवित्र शरीरसम्पन्न तथा देवब्राह्मण और गुरुके प्रति भक्तिपरायण होगा। वह मनुष्य अपने बाहुबलसे परम सौभाग्य उपार्जन कर आनन्द पूर्वक कालयापन करेगा। शनिके धर्मस्थानमें रहनेसे मानव दाम्भिक कर्मद्वारा भाग्यसञ्चय करेगा और वह मनुष्य सर्वदा पितृगणवञ्चक, अधार्मिक और कुपथगामी होगा। मतान्तरमें शनिके

धर्मकोट—पञ्जाब प्रदेशके फिरोजपुर जिलेके अन्तर्गत जीरा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ५७' उ० और देशा० ७५° १४' पू० फिरोजपुर शहरसे ४१ मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६७३१ है। हिन्दूकी संख्या ही अधिक है।

इसका प्राचीन नाम कोटाजपुर था। १७७० ई०में सिखोंके सरदार तारासिंहने यहां धर्मकोट नामक एक दुर्ग निर्माण किया। उसी दुर्गके नामानुसार इसका प्राचीन नाम बदल गया है। तारासिंहका दुर्ग अभी नष्ट हो गया है। यहांकी सभी सड़कें पक्की हैं। अनाजका वाणिज्य अधिक होता है। इसके आसपास और कोई दूसरा शहर नहीं रहनेसे लुधियानाके बाद यहींका बाजार जोरों चलता है। यहां एक सराय भी है। १८६७ ई०में म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय लगभग ३८००) रु० है। यहां केवल एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक सरकारी चिकित्सालय है।

धर्मकोष (सं० पु०) धर्मः कोष इव, धर्मस्य कोषः समूहो वा। १ धर्मरूप रक्षणीय वस्तु। २ धर्मसमूह।

धर्मक्षेत्र (सं० क्ली०) धर्मस्य क्षेत्रं। १ धर्मार्जनार्थ क्षेत्र, कर्मभूमि, भारतवर्ष। भारतवर्ष ही एकमात्र धर्म उपार्जनका स्थान है, इसीसे भारतवर्षको धर्मक्षेत्र कहते हैं। २ कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्रकी धर्मक्षेत्रमें गिनती की गई। (पु०) ३ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार।

धर्मगहनाभ्युद्गतराज (सं० पु०) बुद्धका नामान्तर।

धर्मगुप् (सं० त्रि०) धर्मं गोपायति गुप-क्विप्। १ धर्मरक्षक। (पु०) २ विष्णु।

धर्मगुप्त (सं० पु०) १ एक वणिक्। इसकी लड़कीका नाम देवस्मिता था। (कथासरित्सा०) २ पाटलिपुत्रनगरवासी एक वणिक्। इसकी स्त्रीका नाम था चन्द्रप्रभा। इसके केवल एक कन्या थी जिसका नाम सोमप्रभा था। ३ रामदासका पुत्र।

धर्मग्रन्थ (सं० पु०) वह ग्रन्थ जिसमें किसी जन-समाजके आचार व्यवहार और उपासना आदिके सम्बन्धमें शिक्षा हो।

धर्मघट (सं० पु०) धर्मार्थं देयो घटः धर्माय घटः सुगन्धोदकपरिपूर्णकलसः। और वैशाख मासमें प्रतिदिन दातव्य सुगन्धोदकपूरित कलस, सुगन्धित जलसे भरा हुआ घड़ा जो वैशाखमें दान किया जाता है। वैशाख मासमें धर्मघटव्रत करना चाहिये।

भविष्यपुराणमें लिखा है, कि चैत्रमास गत होने पर जब सूर्य मेषराशिमें उदित हों अर्थात् वैशाख मासके दोषादिरहित समयमें यह व्रत चार वर्ष तक किया जाता है। इसमें प्रतिदिन घड़ेको चन्दनादिसे लिप्त कर भोज्यके साथ दान देते हैं। धर्मघटव्रतका विषय दूसरे प्रकारसे भी लिखा है—

शीतल और सुगन्धित जलसे घड़ेको भर कर उसके गलेमें सफेद चन्दन और पुष्पमालासे शोभित करते हैं। बाद उसमें दही और अक्षत दे कर उसके ऊपर एक सरवा रख छोड़ते हैं। घड़ेके साथ साथ छाता और जूता भी दान करनेका विधान है। धर्मघटव्रत निम्नलिखित प्रयोगके अनुसार करना चाहिये—

महाविषुव-संक्रान्ति अर्थात् चैत्र-संक्रान्तिके दिन पहले स्वस्तिवाचन करके 'सूर्यः सोमः' यह मन्त्र पढ़ कर संकल्प किया जाता है। संकल्प,—"अद्येत्यादि वैशाखे मासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ महाविषुव-संक्रान्त्यां अमुक गोत्रा श्रीअमुकी देवी यमालयगमननिवारण-पूर्वक श्रीविष्णुप्रीतिकामा अद्यारभ्य वर्षचतुष्टयं यावत् प्रतिवर्षीय मेषस्थरवौ प्रत्यहं गणपत्यादि नानादेवता-पूजापूर्वकं श्रीविष्णुपूजा सभोज्यघटदानकथा श्रवण रूप धर्मघटव्रतमहं करिष्ये।" इस प्रकार संकल्प करके सङ्कल्पसूक्त पाठ करना पड़ता है। जिस वर्षमें यह व्रत आरम्भ किया जाय, उस वर्षमें इसी प्रकार सङ्कल्प करना चाहिये। बाद दूसरे वर्षमें निम्नलिखित प्रकारसे,—"अद्येत्यादि महाविषुवसंक्रान्त्यां मत्सङ्कल्पित धर्मघटव्रत कर्मणि यथाविधि गणपत्यादि नाना देवता पूजापूर्वकं श्रीविष्णुपूजा सभोज्यघटदानकथा श्रवणमहं करिष्ये।" पीछे एक ब्राह्मणको प्रतिनिधि स्वरूप हो कर विधानपूर्वक सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि और भूतशुद्धि करके शालग्रामशिला या घटकी पूजा करनी चाहिये। 'आं हृदयाय नमः' इस प्रकार अङ्गन्यास और कराङ्ग-न्यास कर नारायणका ध्यान करना चाहिये। बाद 'ॐ भगवते नमः' इस मन्त्र द्वारा षोड़शोपचारसे आपू

धर्मचन्द्रगणि—एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने 'सिद्धजयन्ती चरित्र' नामक ग्रन्थ बनाया है। ये मानतुङ्गके भांजा थे।

धर्मचरण (सं० पु०) धर्माचरण।

धर्मचर्या (सं० स्त्री०) धर्मस्य चर्या। धर्माचरण, धर्मका अनुष्ठान।

धर्मचारिणी (सं० स्त्री०) धर्मं चरतीति चर-णिनि-ङीप्। जाया, सहधर्मिणी, स्त्री।

धर्मचारिन् (सं० त्रि०) धर्मं तत्साधनकर्म चरति चर-णिनि। धर्मसाधन कर्मकारक, धर्मका आचरण करनेवाला।

धर्मचिन्तक (सं० पु०) चिन्तयति इति चिन्तकः धर्मस्य चिन्तकः। धर्मचिन्ताकारी, वह जो धर्मसंबन्धी बातोंका विचार करता हो।

धर्मचिन्तन (सं० क्ली०) चिन्ति भावे ल्युट्, धर्मस्य चिन्तनं ६-तत्। धर्मचिन्ता, धर्मसम्बन्धी विषयका विचार।

धर्मचिन्ता (सं० स्त्री०) चिन्ति भावे अ टाप्। धर्मस्य चिन्ता। धर्मविषयकी चिन्ता, धर्मविषयका विचार।

धर्मचिन्ति (सं० पु०) शाक्य मुनिका नामान्तर।

धर्मज (सं० पु०) धर्मार्थं जायते जन-ड। धर्मपत्नीसे उत्पन्न प्रथम औरस पुत्र। पुत्र नहीं होनेसे पितृऋण शोध नहीं होता है। पितृऋण परिशोधके लिए धर्मपत्नीसे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न हो, उसे धर्मज कहते हैं।

मनुने लिखा है कि जिस ज्येष्ठ पुत्रकी उत्पत्तिसे ही पिता पितृऋणसे मुक्त होता है और स्वयं अनन्तत्व लाभ करता है उसी ज्येष्ठ पुत्रको धर्मज कहते हैं और शेष सन्तान कामज पुत्र हैं। धर्मात् जायते जन ड। २ धर्मपुत्र युधिष्ठिर। युधिष्ठिर देखो। ३ बुद्धभेद, एक बुद्धका नाम। (क्ली०) ४ दिव्यभेद। (पु०) ५ नरनारायण। (त्रि०) ६ धर्मतः जातमात्र, धर्मसे उत्पन्न।

धर्मजन्मन् (सं० पु०) धर्मतो जन्म यस्य। युधिष्ठिर।

धर्मजन्य (सं० क्ली०) धर्मेण जन्यः ३-तत्। धर्म द्वारा जात सुख, वह सुख जो धर्मसे होता है।

धर्मजिज्ञासा (सं० स्त्री०) ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा, धर्मार्थं धर्माचरणाय जिज्ञासा। वेदवाक्यविचार, धर्मके विषयमें सन्देहके उपस्थित होनेसे वेदवाक्य द्वारा जो धर्मकी मीमांसा की जाती है, उसे धर्मजिज्ञासा कहते हैं।

धर्मजीवन (सं० पु०) याजनप्रतिग्रहादिना परस्य धर्ममुत्पाद्य जीवति जीव-ल्यु। ब्राह्मणविशेष, जो ब्राह्मण धर्मकृत्य करा कर जीविका निर्वाह करता हो, उसे धर्मजीवन कहते हैं।

मनुने लिखा है कि धर्मजीवन ब्राह्मण यदि धर्मभ्रष्ट हो, तो राजा उसे दण्ड देवें।

धर्मज्ञ (सं० त्रि०) धर्मं जानातीति ज्ञा क। धर्मज्ञानविशिष्ट, धर्मको जाननेवाला।

धर्मठाकुर—पश्चिम और दक्षिण बङ्गालकी हाड़ी, पोद, डोम, कैवर्त्त आदि निम्नतम हिन्दू-जातिके उपास्य देवता। इनका नाम साधारणतः धर्मठाकुर, धर्मराज वा धर्मराय है। इसके सिवा विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न नाम प्रचलित हैं। धर्मठाकुरकी मूर्त्ति या प्रतिमाका कोई एक निश्चित आकार नहीं है, कहीं घटमें, कहीं सिन्दूरमण्डित प्रस्तरमें, कहीं किसी एक प्रकारकी मूर्त्तिके रूपमें इनकी पूजा होती है। इनकी प्रतिमाके अनेक भेद हैं। कहीं कच्छपाकार, कहीं त्रिकोणाकार और कहीं शिवलिङ्गके अर्द्धभागके समान इनकी मूर्त्ति बनती हैं, इसके सिवा और भी अनेक प्रकारकी प्रतिमाएं हैं। नाना स्थानोंमें इनके मन्दिर हैं। मन्दिरमात्रमें प्रतिमा हो, ऐसी कोई नियम नहीं, कहीं प्रतिमा होती हैं, कहीं प्रस्तरखण्ड होता है और कहीं घट ही रक्खा रहता है। बहुत जगह मन्दिर भी नहीं हैं, कहीं आप वृक्षके नीचे, कहीं पुष्करिणीके तट पर और कहीं मैदानमें किसी विशेष स्थान पर अनावृत दशामें पड़े हुए हैं। इनकी नित्यपूजा नहीं होती, भक्तगण मन्नत मानने पर विशेष दिनमें जा कर धर्मठाकुरकी पूजा करते हैं। कहीं कहीं नित्यपूजाकी व्यवस्था भी हो गई है। धर्मका प्रतिमात्मक जो कुछ भी देखनेमें आता है, उनमेंसे अधिकांश पर चांदी वा पीतलकी टोपी लगी हुई होती है। सिन्दूरकी ये टोपियां भी जगह जगह मोमसे वा कीलसे चिपका दी जाती हैं। इनमें आंखोंकी कल्पना करते हैं। इनको कहीं तो विष्णुरूपमें पूजा होती है, बलि नहीं चढ़ती; कहीं शिवरूपमें पूजे जाते हैं, पर पञ्चानन्दको पूजाकी भांति बलि नहीं चढ़ती और कहीं कहीं छाग

जहां ब्राह्मण्यप्रभाव अधिक है, वहां "धां धों धं" यह मन्त्र धर्मका बीजमन्त्र समझा जाता है। जहां धर्ममें विष्णुमूर्तिकी कल्पना की जाती है, वहां विष्णु-स्नानका संस्कृत मन्त्र ही नाना परिवर्तित और भ्रमपूर्ण आकारमें धर्मके स्नानमन्त्रके रूपमें व्यवहृत होता है। परन्तु इनका ध्यानमन्त्र स्वतन्त्र है, वह भी नाना स्थानोंमें नाना प्रकार है।

घनराम नामक बंगाली कविका मत है, कि रमाई पण्डित (एक बंगाली विद्वान्) इस पूजाके प्रवर्तक हैं। उन्हींकी रची हुई पद्धतिके अनुसार इनकी पूजा होती है।

इतिहास।—धर्मठाकुरकी पूजा आदिका विवरण लिख चुके। अब इस बातका निर्णय करना चाहिए कि धर्म-पूजा कबसे और कैसे प्रचलित हुई? धर्मठाकुरकी महिमाको प्रकट करनेवाला कोई संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। हां, चण्डीमङ्गल आदि बंगला ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है और कुछ मङ्गलगीत भी देखनेमें आते हैं।

मनराम चक्रवर्ती-प्रणीत श्रीधर्म-मङ्गल नामक बंगला पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होता है कि गौड़पति धर्मपालकी साली रञ्जावतीके पुत्र लाउसेनके द्वारा इस पूजाका प्रचार हुआ है। रमाई पण्डितने रञ्जावतीको धर्म-पूजाका उपदेश दिया था। मेदिनीपुरमें मयनागढ़ नामक स्थानमें रामाई पण्डितका आश्रम था। इसी आश्रममें मयनावतीने कण्टकशय्या पर शयन कर धर्मकी तपस्या पूर्वक उन्हींके वरपुत्रके रूपमें लाउसेनको गर्भमें धारण किया था। लाउसेनने ही मयनागढ़के राजा हो कर रामाई पण्डितके उपदेशानुसार धर्म-पूजाकी कथा चलाई थी।

शून्यपुराणके मतसे, धर्मठाकुर वेदके अपौरुषेयत्व और नित्यत्वको नहीं मानते। इनका कोई आकारादि नहीं है, ये महाशून्यके मध्य शून्य मूर्तिमें अवस्थित हैं और शून्यसे ही सृष्टि करते हैं। यह भाव किसी भी हिन्दू पुराणादि शास्त्रमें नहीं देखनेमें आता। शून्यवाद तो बौद्ध दर्शनकी भित्ति है। लाउसेन और मैनागढ़ देखो।

धर्मण (सं० पु०) धर्म इव आमिंकवदित्यर्थः; नमतीति नम-ड। १ वृक्षभेद, धामिनवृक्ष। २ सर्पविशेष, धामिन [illegible]। ३ पक्षीविशेष, धामिन पक्षी।

धर्मतः (सं० अव्य०) धर्म-तसिल्। धर्मानुसारसे, धर्मका ध्यान रखते हुए, धर्मको साक्षी करके। २ धर्मके निकट, धर्मके द्वार पर।

धर्मतत्त्व (सं० क्लो०) धर्मस्य तत्त्वं ६-तत्। धर्मरहस्य, धर्मका निगूढ़ मर्म।

धर्मतीर्थ (सं० क्लो०) धर्मकृतं तीर्थ। तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

महाभारतमें लिखा है, कि धर्मतीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है। यहां धर्मने तपस्या की थी, इसीसे यह तीर्थ धर्मतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। इस तीर्थमें स्नान करनेसे धर्मशील होता है और स्नान करनेवालेका सातवां कुल पवित्र हो जाता है।

धर्मत्व (सं० क्लो०) धर्मस्य भावः धर्म-त्व। हृत्तिमत्व, आधेयत्व।

धर्मत्राता—एक बौद्ध धर्म पुस्तकके प्रणेता। इनका पूरा नाम भदन्त वा आर्यधर्मत्राता है। इन्होंने बौद्ध धर्म ग्रन्थ धर्मपदके उत्तरदेशीय पाठानुसारसे 'उदानवर्ग' नामक बुद्धोक्ति संग्रह की। ये वसुमित्रके मामा और सम्भवतः आर्यदेवके छात्र थे। सुतरां ये पहली शताब्दीमें वर्त्तमान थे ऐसा अनुमान किया जाता है। उनके अन्यान्य ग्रन्थोंमें "धर्मपदसूत्र" चीनी भाषामें २२४ ई०को अनुवादित हुआ है। तारानाथके मतसे ये ब्राह्मण राहुलके समकालिक थे। राहुल वसुमित्रादि चार व्यक्ति वैभाषिक आचार्योंके समसामयिक रहे। धर्मत्राताके भाजा वसुमित्र यदि कनिष्कके समयके सभापण्डित हुए हों, तो धर्मत्राता ४० ई० में विद्यमान थे ऐसा कहा जा सकता है।

धर्मद (सं० पु०) धर्मं स्वधर्मफलं ददाति अन्यस्मै संक्रामयति दा-क। १ दूसरे स्वधर्मफलका संक्रामक। २ धर्मोत्पादक। ३ कुमारानुचर मातृभेद।

धर्मदान (सं० पु०) वह दान जो किसी निमित्तसे वा विशेष फलकी प्राप्तिके अर्थ न किया जाय, केवल धर्म वा सात्त्विक बुद्धिकी प्रेरणासे किया जाय।

धर्मदार (सं० क्लो०) धर्मार्थं अग्न्याधानाद्यर्थं दाराः। धर्मपत्नी।

धर्मदासगणि—एक जैनग्रन्थकार। इनकी बनाई हुई

ज्ञान, योग और निष्कामयाग इत्यादि इन विविध मोक्ष-धर्मका यथार्थ तत्त्वका ज्ञाता और संशयविहीन हुआ हूं। उन्होंने मुझे राज्यमें अवस्थान करनेका निषेध नहीं किया. मैं उन्हींके उपदेशानुसार विषयरागविहीन हो विविध मोक्षधर्मका अवलम्बन पूर्वक परब्रह्ममें मन लगा कर कालहरण कर रहा हूं। वैराग्य ही मोक्ष प्राप्तिका श्रेष्ठ उपाय है; ज्ञानसे वैराग्यकी उत्पत्ति होती है। ज्ञान द्वारा योगाभ्यास और योगाभ्यास द्वारा आत्मज्ञानके प्रभावसे ही मनुष्य योगाभ्यासनिरत हो कर सुख दुःखादिका परित्याग और मृत्युको अतिक्रम कर परमपद लाभ कर सकता है। मैं उसी आत्मज्ञानको प्राप्त कर मोक्षसे छुटकारा पा चुका हूं और निःसङ्ग एवं सुख दुःखादिसे विहीन हो चुका हूं। जिस प्रकार जल-सिक्त क्षेत्र बीजसे अङ्कुर उत्पन्न करता है, उसी तरह कर्म ही मनुष्योंको पुनः उत्पन्न करता है। जिस तरह भूना हुआ बीज उत्तम भूमिमें बोए जाने पर भी वह अङ्कुरित नहीं होता, उसी तरह भगवान् पञ्चशिखके अनुग्रहसे हमारा विषयज्ञानरूप बीजविषयमें अवस्थित होने पर भी अङ्कुरित नहीं होता। मैंने बन्धनोंके आयतनस्वरूप धर्मार्थ काममंकुल राज्यमें रहते हुए ही मोक्षधर्मरूप प्रस्तर पर शाणित त्यागरूप असिके द्वारा ऐश्वर्यरूप पाश और स्नेहरूप बन्धनको छेद दिया है। अयि शुभे! पहले मैंने तुम्हें संन्यासिनि समझा था और परम समादरके साथ तुम्हारा स्वागत किया था। किन्तु अब तुम्हारी अवस्था और रूपलावण्यको देख कर मुझे तुम्हारे योगके विषयमें सन्देह होता है। और मैं मुक्त हूं या नहीं, यह जाननेके लिए तुमने जो मेरे शरीरको रुद्ध किया है, वह तुम्हारे त्रिदण्डधारणके सर्वथा प्रतिकूल आचरण है। तुम त्रिगुणधारिणी हो कर भी योगधर्मको रक्षा नहीं कर रही हो। अब मैं स्पष्टतः तुम्हारे योगधर्मसे परिभ्रष्ट समझ रहा हूं। तुम अपनी बुद्धि द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हुई हो, इससे तुम्हारे व्यभिचार दोषकी ही पुष्टि होती है। देखो, प्रथमतः तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो और मैं क्षत्रिय, सुतरां हम दोनोंके सहवाससे वर्णसङ्कर सन्तान होनेकी सम्भावना है। दूसरे तुम भिक्षुकी हो और मैं गृहस्थ; सुतरां हम दोनोंके संसर्गसे उत्पन्न आश्रम सङ्कर होगी। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो या नहीं, यह भी मुझे नहीं मालूम; और न तुम्हें ही मेरे विषयमें कुछ मालूम है। तुम्हारे पति यदि जीवित हों, तो तुम परभार्या हो, अगम्या हो। मैं यदि तुम्हें ग्रहण करूं, तो वर्णसङ्कर सन्तान होगी। अब तुम कपटता छोड दो और यह बतलाओ कि किस अभिप्रायसे तुम ऐसा विपरीत आचरण कर रही हो, साथ ही अपनी जाति, शास्त्रज्ञान, व्यवहार, ब्रतभाव, स्वभाव और आगमन-प्रयोजनको प्रकट करो।" धर्मध्वजने इस तरह सुलभाका तिरस्कार किया; परन्तु सुलभा किञ्चिन्मात्र भी विरक्त न हुई; प्रत्युत और भी मधुर स्वरसे बोली—"महाराज! वक्तव्य वाक्य अष्टादश दोषशून्य एवं अष्टादश गुणयुक्त होना चाहिये। सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन इन पञ्चाङ्गोंसे युक्त पद समूहको ही वाक्य कहा जा सकता है, जनसमाजमें जिन वाक्योंका प्रयोग किया जाता है, वे सब सार्थक, प्रसिद्ध पदयुक्त, प्रसादगुणसम्पन्न, संक्षिप्त, मधुर और असन्दिग्ध होने चाहिए। मैं आपको काम, क्रोध, लोभ, भय, दैन्य, दर्प, लज्जा, दया वा अभिमानवश उत्तर नहीं दे रही हूं, आपको उत्तर देना उचित समझ कर ही उसमें प्रवृत्त हुई हूं।" इसके बाद सुलभाने अपना परिचय देना शुरू किया। सुलभाका उत्तर सम्पूर्ण आध्यात्मिक था। उन्होंने शरीर और आत्माके भेदविज्ञानकी व्याख्या करते हुए राजाके द्वारा लगाये गये दोषोंका परिहार कर दिया। राजा भी निरुत्तर हो गये। (भारत शान्तिपर्व ३२१ अ०)

२ काञ्चनपुरके एक राजा, जिनका उल्लेख वेतालपचीसीमें मिलता है। इनके शृङ्गारवती, मृगाङ्कवती और तारावती नामक तीन महिषी थीं। एक दिन शृङ्गारवतीके शरीर पर कमल गिर पड़ा था, जिससे वे मूर्च्छित हो गई थीं। मृगाङ्कवतीके शरीर पर चन्द्र-किरणके पड़नेसे ही उन्हें पीड़ा हो गई थी और तारावतीके शरीर पर धान कूटनेका शब्द सुनने मात्रसे विस्फोटक हुआ था। ऐसी कोमलाङ्गी स्त्रियोंको पा कर राजा धर्मध्वज महा सुखसे कालातिपात करते थे।

धर्मध्वजी (सं० त्रि०) धर्मः धर्मचिह्नं स एव ध्वजस्येति

ध्वजोऽस्ति धर्मध्वज इति। जो धर्मको ध्वजा धारण करता हो और वास्तवमें धार्मिक न हो, पापात्मा हो। जो अपनेको धर्मात्मा बन कर लोगों पर अपना महत्त्व जमाना चाहते हैं, उन्हें धर्मध्वजी या पापात्मा कहते हैं।

"धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥" (मनु ४।१९५)

जो सदा लुब्ध हैं अर्थात् जिनके हृदयमें धनका लोभ निरन्तर जाग्रत है और उसके धर्मको ध्वजा या तिलकादि धारण कर जनसमाजमें अपनेको धार्मिक बतलाते हैं वे छद्मवेशधारी, लोकवञ्चक परद्रव्यापहारक और सर्वाभिसन्धक हैं तथा दूसरेके गुणको सहन न कर सबको तुच्छ समझते हैं ऐसे व्यक्तियोंको बैडाल-व्रतिक या धर्मध्वजी कहा जाता है, जो ऐसा आचरण करते हैं, वे तिर्यग योनिमें जन्म लेते हैं।

धर्मन् (सं॰ पु॰) ध्रियते इति धृ मनिन्। १ धर्म, पुण्य कर्म। (त्रि॰) २ धारक, धारण करनेवाला।

धर्मनद (सं॰ स्त्री॰) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

धर्मनन्दन (सं॰ पु॰) नन्दयतीति नन्दनः धर्मस्य नन्दनः ६ तत्। धर्मपुत्र, युधिष्ठिर।

धर्मनन्दिन् (सं॰ पु॰) एक बौद्ध पण्डित। इन्होंने कई बौद्ध शास्त्रोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया था।

धर्मनाथ (सं॰ पु॰)—जैनोंके वर्तमान काल तीर्थङ्करोंमेंसे पन्द्रहवें तीर्थङ्कर। इनके पिताका नाम राजा भानुराय और माताका रानी सुप्रभादेवी (सुव्रतादेवी) था। ये कुरुवंशमें माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन अयोध्याके अन्तर्गत रत्नपुरी नगरीमें मति-श्रुत-अवधिज्ञान सहित उत्पन्न हुए थे, इन्द्रादि देवोंने इनका जन्म महोत्सव (जन्मकल्याणक) किया था। इनका गोत्र काश्यप था।

चतुर्दश तीर्थङ्कर भगवान् अनन्तनाथके मोक्ष जानेके चार सागर (अर्थोंमित समय प्रमाण) बाद भगवान् धर्मनाथ आविर्भूत हुए। इनके जन्मके पहले पल्यके अर्धभाग धर्मका मार्ग बन्द था। ये माघ शुक्ल त्रयोदशीको सर्वार्थसिद्धि नामक विमानसे च्युत कर माताके गर्भमें आये। गर्भमें आनेसे ६ मास तक पहले रत्नवर्षण हुई। देवियोंने माताकी सेवा की तथा इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक महोत्सव किया। इनके शरीरका वर्ण सुवर्णके समान, परिमाण ४५ धनु (१८० हाथ) और आयु १० लाख वर्षकी थी। ढाई लाख वर्ष तक कुमारावस्थामें रह कर आप राज्याभिषिक्त हुए थे। पाँच लाख वर्ष राज्यसम्पदका सुख अनुभव करते हुए राज्य किया। अनन्तर एक दिन उल्कापात होते देख आपको संसारसे वैराग्य हो गया, उसी समय लौकान्तिक देवोंने आ कर स्तुतिपूर्वक आपके वैराग्यका अनुमोदन किया। अपने पुत्र सुधर्मको राज्य दे कर आपने माघ शुक्ल १३शीके दिन शालिवनमें दीक्षा धारण की। इन्होंने तपकल्याणकका उत्सव किया। दीक्षा धारण करते ही आपको (४र्थ) मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान्के साथ १००० एक हजार राजाओंने दीक्षा ग्रहण की थी। भगवान्ने छ दिन तक उपवास कर पाटलीपुत्रके राजा धन्यसेनके यहाँ आहार ग्रहण किया। देवोंने राजा धन्यसेनके घर आश्चर्य किये।

पश्चात् एक वर्ष तप करनेके उपरान्त शालिवनमें सप्तच्छदवृक्षके नीचे पौष शुक्ला पूर्णिमाके दिन चार घाति कर्मों को नष्ट कर भगवान् धर्मनाथने केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने उसी समय समवशरणकी रचना की और केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। उस समय भगवान्के अरिष्ट आदि ४३ गणधर थे, ९०० ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्वके ज्ञाता ३६०० अवधिज्ञानी, ४०७०० शिक्षक मुनि, ४५०० केवली, ७००० विक्रिया ऋद्धिधारक मुनिराज, ४००० मनःपर्ययज्ञानी, २८०० वादी मुनि ६४००० मुनि, ६२४०० आर्यिका, २००००० (व्रती) श्रावक और ४००००० (व्रती) श्राविकाएं मौजूद थीं।

इसके बाद भगवान् धर्मनाथने एक मास आयु अवशेष रहने तक आर्यखण्डमें विहार कर धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की और अन्तमें सम्मेदशिखर (पारसनाथ) पहाड़ पर पधारे। शेष एक मासमें अघातिया चार कर्म आयु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मका नाश कर ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन ८०८ मुनियों सहित निर्वाण प्राप्त हुए। भगवान्का शरीर कर्पूरवत् उड़ गया केवल केश और नख पड़े रहे। जिनको इन्द्रने क्षीरसागरमें निक्षेप किया और निर्वाणकल्याणक उत्सव मनाया।

(श्रीमान् बाबू ... इन्द्रगुप्त)

धर्मनाम (सं० पु०) धर्म नामिरिव यस्य, अच् समासान्तः। १ विष्णु। २ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

धर्मनिष्ठा (सं० त्रि०) धर्मे निष्ठा यस्य। धर्मपरायण, धर्ममें जिसकी आस्था हो, धार्मिक।

धर्मनिष्ठ (सं० स्त्री०) धर्मस्य धर्मे वा निष्ठा। धर्म-विषयमें आन्तरिक आस्था, धर्ममें श्रद्धा भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मनीति (सं० स्त्री०) धर्मस्य नीति नीतिशास्त्रविषयक शास्त्र, जिस शास्त्रसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका अवधारण और उसके फलाफलका हाल मालूम हो, उसे धर्मनीति कहते हैं। धर्मनीतिमें ज्ञान नहीं रहनेसे धर्मानुष्ठान नहीं होता है, इसीसे जो धर्मानुष्ठानके अभिलाषी हैं, उन्हें धर्मनीति अच्छी तरह जान लेनी चाहिये।

धर्मनेत्र (सं० पु०) १ यदुवंशीय एक राजा पुत्रका नाम। २ पुरुवंशीय एक राजा ३ पौरव वंशीय तंसु राजाके एक पुत्रका नाम।

धर्मनैपुण्यकाम (सं० पु०) धर्मस्य नैपुण्यं अतिशयं कामयते कम-अण्। वह जो धर्मके विषयमें निपुण होनेकी इच्छा करता हो।

धर्मपट्ट (सं० पु०) विधिविशिष्ट लिखित पत्र, वह व्यवस्था-पत्र जो किसी राजा या धर्माधिकारीकी ओरसे दिया जाय।

धर्मपति (सं० पु०) १ राजविधिके अधिकारी या शान्ति रक्षक, धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष, धर्मात्मा। धर्मस्य पति यस्मात्। २ वरुण देवता। धर्मः पतिरिव यस्य। ३ धर्मशील।

धर्मपत्तन (सं० क्ली०) १ श्रावस्ती नगरी, धर्मपुरी। तत्कारणतया अस्त्यस्य अच्। २ गोलमिर्च। ३ वृहत्-संहिताके अनुसार एक देश जो कूर्म विभागके दक्षिण देशके निकट अवस्थित माना गया है। कहीं कहीं धर्मपत्तनकी जगह धर्मपट्टन भी लिखा पाया गया है।

मन्द्राजके अन्तर्गत मलवार जिलेमें कोटायम् तालुककी अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११° ४६' उ० और देशा० ७५° ३०' पू०। धर्मपत्तन नामक नदीके मुहाने पर अवस्थित है। भूपरिमाण ६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६ हजार है। यह पहले कोलत्तिरि राज्यके अन्तर्गत था। १७३४ ई०में ईष्टइण्डिया कम्पनी को यह स्थान दिया गया था। १०८८ ई०में यह चिरक्कल-के राजामें अधिकृत हुआ, किन्तु दूसरे वर्ष में पुनः अंग-रेजोंके हाथ लगा।

४ मन्द्राजके अन्तर्गत मलवार जिलेकी एक नदी। यह तलचेरी नगरसे डेढ कोस उत्तर समुद्रमें जा मिली है।

धर्मपत्नी (सं० स्त्री०) धर्मार्थं धर्माचरणाय पत्नी। वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्रकी रीतिसे विवाह हुआ हो, विवाहिता स्त्री।

दक्षस्मृतिमें लिखा है, कि विवाहिता और दोष-रहित स्त्रीको धर्मपत्नी कहते हैं। ब्याह कर लाई हुई दूसरी स्त्रीको कामपत्नी कहा गया है।

मनुने लिखा है कि पितृपूजनमें तत्परा तथा पतिव्रता धर्मपत्नी यदि विशिष्ट पुत्रकामी हो, तो उसे गृह्योक्त मन्त्रों द्वारा मध्यम पिण्ड अर्थात् पितामहका पिण्ड खिलाना चाहिये। मध्यम पिण्ड खानेसे उस धर्मपत्नीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है वह बहुत आयुष्मान्, यशस्वी, मेधासम्पन्न, धनवान्, प्रजावान्, सत्वगुणविशिष्ट और धार्मिक होता है। २ धर्मदेवकी पत्नी। दक्षप्रजा-पतिने धर्म को दश कन्यायें दी थीं जिनके नाम ये कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति।

धर्मपत्र (सं० क्ली०) धर्मसाधनं पत्रं यस्य, धर्माय यज्ञादिकार्यार्थं पत्रं यस्य। यज्ञोडुम्बर, गूलर। इसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्योंमें काम आते हैं।

धर्मपथ (सं० पु०) धर्मस्य पन्था। धर्ममार्ग, कर्त्तव्य पथ।

धर्मपथिन् (सं० पु०) धर्मपथानुसारी, कर्त्तव्यनिष्ठ, धर्मात्मा।

धर्मपर (सं० त्रि०) धर्मः परो यस्य। धर्मासक्त, कर्त्तव्य-परायण, धर्ममें जिसकी आस्था हो। जिसका एक मात्र धर्म ही प्रधान हो, उसे धर्मपर कहते हैं।

धर्मपरायण (सं० त्रि०) धर्मः परः अयनो यस्य। जो धर्मको परम पदार्थ समझता है, जो साध्यके अनुसार धर्मपथ पर चलता है और यथाशक्ति धर्म कार्यका

अनुष्ठान करता है तथा कभी अधर्म कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त नहीं होता है उसीको धर्मपरायण कहते हैं। इसका पर्याय—धर्मात्मा धार्मिक, धर्मशील और धर्मनिष्ठ है।

धर्मपरिणाम (सं॰ पु॰) धर्मरूप परिणाम। पातञ्जलोक्त चित्तधर्मोंका व्युत्थान और निरोध धर्मका अभिभव तथा प्रादुर्भावरूप परिणामभेद। पातञ्जलमें धर्मका परिणामका विषय इस प्रकार लिखा है।—

"एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः।"
(पात॰ द॰ ३।१३)

प्रत्येक भूत और प्रत्येक इन्द्रियमें जो धर्म लक्षण और अवस्था ये तीन प्रकारके परिणाम विद्यमान हैं उन्हें चित्त-परिणाम समझना चाहिये। चित्तमें जिस तरह निरोध, समाधि और एकाग्रता ये तीन प्रकारके परिणाम हैं, उसी तरह पृथिव्यादि भूतोंमें भी इन्द्रियादि भौतिक वस्तुमें धर्म, लक्षण और अवस्था ये तीन प्रकारके परिणाम हैं। धर्मपरिणाम किस प्रकारका है सो कहते हैं। मृत्तिकारूप धर्मीका पिण्डतारूप धर्मको अन्यथा हो कर अन्य एक घटाकार धर्मके आविर्भूत होनेका नाम धर्मपरिणाम है, लक्षण परिणाम है अर्थात् कालिक परिणाम है। काल तीन प्रकारका है, अतीत वर्त्तमान और अनागत अर्थात् भविष्यत्। प्रत्येक वस्तु जो अतीतकाल वा अतीतसोपानका अतिक्रम कर वर्त्तमान कालमें वा वर्त्तमान सोपानमें आती है और वर्त्तमान सोपानका परित्याग कर अनागत अर्थात् भविष्य सोपानमें जाती है। इस प्रकारके कालिक परिणामका नाम लक्षण-परिणाम है। वस्तु जब अतीत सोपानमें रहती है तब उसका स्वरूप एक प्रकारका रहता है, किन्तु वर्त्तमान सोपानमें आनेसे उसका वह स्वरूप नहीं रहता एक दूसरे ही प्रकारका हो जाता है। फिर जब वह भविष्यत् गर्भमें प्रवेश करती है तब फिर वह भी नहीं रहती, बिलकुल बदल जाती है। इसीके अनुसार हम लोग घटादि का नूतनत्व और पुरातनत्व आदि व्यावहारिक व्यवहार किया करते हैं। इस प्रकारके परिवर्त्तनरूप परिणामका नाम अवस्था-परिणाम है। चित्तप्रभृति वा पुरुष भिन्न अन्य जितनी वस्तु हैं, सभीको इस प्रकारके तीनों परिणामके अधीन समझना चाहिये।

धर्म परिणाममें जो धर्मीका उल्लेख किया है, उसके विषय पर थोड़ा और विचार करना आवश्यक है। 'शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।' (पात॰ द॰ ३।१४) जो धर्म वा शक्तिविशेषका आधार है उसका नाम धर्मी है। प्रत्येक धर्मी अर्थात् प्रत्येक प्राकृतिक द्रव्य ही शान्त, उदित और अव्यपदेश्य इन तीन प्रकारके धर्मोंसे संयुक्त है। इस विषयको यहां पर कुछ बढ़ा चढ़ा कर लिखना आवश्यक है। वस्तुका जो धर्म वा शक्ति अपना काम समाप्त करके अथवा अपना व्यापार पूरा करके अस्तमित हो गई है उस धर्म का नाम है शान्तधर्म, जैसे घटका मृद और बीजका अङ्कुर इत्यादि। बीज अपना अङ्कुररूप काम शेष कर चुका है, अर्थात् वह अङ्कुर होनेके पहले बीज था, किन्तु अभी वह बीज नहीं है, अङ्कुर हो गया है। मानों वह बीज नष्ट हो गया है वा सड़ गया है। इसी प्रकार घट वा घटमृत्तिका भी अपना जलाहरणादि काम शेष कर धर्मान्तर प्राप्त किया है। अतः अभी वह घट नहीं है, मृत्तिका खण्डमात्र है। इसलिये अङ्कुरका शान्तधर्म बीज है और मृत्तिकाखण्डका शान्तधर्म घड़ा। इस प्रकार घटकालमें घटको, बीजकालमें बीजको, मृत्तिकाखण्डकालमें मृत्तिका-खण्डको उदित वा वर्त्तमान् धर्म मानना चाहिये। वर्त्तमान धर्म वर्त्तमानमें है, उसमें एक दूसरे प्रकारका धर्म वा कार्य शक्ति छिपी हुई है, जिससे इसमेंसे वह अन्यथाभाव वा परिवर्त्तित होता है। जो जिस समय अनागत या भविष्यत् सोपानमें आरूढ़ रहता है, वह उस समय उसका अव्यपदेश्य अर्थात् नामशून्य धर्म है अथवा उसे निर्माण शक्तिके जैसा निर्णय करना चाहिये। इस अनागत और अव्यपदेश्य धर्म और कारणोंको कार्यशक्तिके समान जनना चाहिये अर्थात् वस्तुकी भविष्यत् कार्यशक्ति ही अव्यपदेश्य नामक धर्म है। यह अव्यपदेश्य धर्म वा अनागत कार्यशक्ति इतनी सूक्ष्म है कि वह अभीकी अवस्थामें किसी तरह दृष्टिगम्य नहीं होती। मान लो, हमने एक वटबीज देखा, उस समय उसका उदितधर्म अर्थात् बीजभाव ही बस रहा है किन्तु उस बीजमें जो वृक्ष है उसे क्या कोई देख सकता ? कभी नहीं। क्यों नहीं देख सकता ? इसका कारण यह है, कि वह

शक्तिरूपसे अनागत सोपानमें अदृश्य रहता है, इसी कारण कोई उसे देख नहीं सकता। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु ही छिपी रहती है, जब तक काल और आकार उपयुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह उसी अवस्थामें वर्त्तमान रहती है। सुतरां सभी सभीके कारण हैं और सभी सभीके कार्य हैं, यह असम्भव नहीं। तुम जिस किसी वस्तुका उल्लेख करोगे, वह कारण और कार्य दोनों होगा। बीज अङ्कुरका कारण है और अङ्कुर भी बीजका कारण है।

दूसरी बात यह है, कि सभी वस्तुओंमें सभी वस्तुओंके आविर्भाव होनेकी सम्भावना है। बीजसे नेत्र, मृत्तिका और कदलीका आविर्भाव देखा जाता है। सुतरां दूसरे प्रकारके आविर्भावकी शक्ति रहती भी रह सकती है, यह सहजमें अनुमान किया जा सकता है। किस प्रकारके देशसे, किस प्रकारके कालसे और किस प्रकारकी क्रियाके संयोगसे, किस क्रिया द्वारा कब और किस प्रकारका आविर्भाव होता है, वह कौन कह सकता? किस प्रकारके कारणका उपलक्ष्य कर कब कौन शक्ति अभिव्यक्त होती है, उसका कौन निश्चय कर सकता? फलतः सभी वस्तुओंमें सब शक्ति निहित वा अनभिव्यक्त-रूपसे रहती है। उपयुक्तकाल, उपयुक्तदेश और उपयुक्त कर्म वा क्रियाके मिलनेसे ही वह शक्ति अभिव्यक्त होती, आविर्भूत होती वा कार्यरूपमें प्रकाश पाती है। काल और क्रिया आदिकी विचित्रता है। सुतरां सभी जगह सर्वकार्य शक्तिके रहने पर भी देश, काल और क्रियाके भेदसे कभी कहीं तो कुछ होता है और कभी कुछ भी नहीं होता। वेत्रबीजके दावदग्ध होनेसे ही मट्टी और उससे फिर कदलीवृक्षका आविर्भाव होता है, अन्यथा अन्य प्रकारका हो जाता है। कुङ्कुम काश्मीरादि देशोंमें ही होता है, दूसरी जगह नहीं, ग्रीष्मकालमें ही उपजता है, दूसरे समयमें नहीं उपजता। मनुष्योचित क्रियादिके नहीं होनेके कारण मृगी मृगके सिवा मनुष्य प्रसव नहीं करती। किन्तु यदि उसमें मनुष्योचित क्रियादिका समावेश हो जाय तो उसके गर्भसे मनुष्यके उत्पन्न नहीं होनेका कोई कारण नहीं रहता। सभी द्रव्य सर्वशक्तिके आश्रय हैं, उनकी अभिव्यक्ति देश, काल, आकार और क्रिया ये सब निमित्तनिचयके अधीन हैं। सुतरां देशकालादिका व्यभिचार नहीं होनेसे ही कार्यकारणभाव स्थिर रहता है, अन्यथा दूसरे प्रकारका हो जाता है। उस अन्य प्रकारको या व्यभिचारोत्पन्न कार्यनिचयको मनुष्य अद्भुत मानते हैं, लेकिन यथार्थमें वह अद्भुत नहीं है। परिणामकी भिन्नताके प्रति परिणामक्रमकी भिन्नताका रहना ही कारण है, यह सबको विदित हो गया है। (पा०भ०द०)

धर्मपाठक (सं० पु०) धर्मं धर्मशास्त्रं पठति पठ ण्वुल्। १ मन्वादि प्रणीत धर्मशास्त्रके पढ़नेवाले। २ राजविधि अधिकारी या शान्तिरक्षक सभ्यभेद। ३ एक प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित।

धर्मपाल (सं० पु०) धर्मं पालयति पालि अण्। वर्णाश्रम धर्मरक्षक दण्ड। केवल दण्डके भयसे लोग धर्मका पालन करते हैं। जो अन्याय काम करते हैं, वे दण्डसे शासित होते हैं। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है,— इस लोकमें जिससे सब कोई वशीभूत होते हैं, उसीका नाम दण्ड है। जिससे धर्मका लोप न हो, वरं उसका दिनों दिन प्रचार हो, उसीको व्यवहार कहते हैं। भगवान् मनु कह गये हैं, कि जो सुविहित दण्ड द्वारा प्रिय और अप्रिय मनुष्यका भरण-पोषण करते हैं, वे साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। दण्ड प्रधान देवता हैं जिनका तेज प्रज्वलित अग्निकी नाईं और रूप नीलोत्पल दलकी नाईं श्यामल है, जिनके चार दाढ़, चार बाहु, दो जिह्वा, आठ चरण और असंख्य चक्षु हैं; जिनके कान अत्यन्त तीखा हैं, शरीरके रोंगटे खड़े हैं, मस्तक जटाजालसे जड़ित है, मुखमण्डल ताम्रवर्ण है और शरीर कृष्णसार मृगकी नाईं चमड़ेसे ढका हुआ है। इस प्रकार दण्ड उग्र मूर्त्ति धारण किये हुए हैं। खड्ग, धनुस्, गदा, शक्ति, त्रिशूल, शर, मूषल, परशु, चक्र, पाश, दण्ड और तोमर प्रभृति जितने अस्त्र हैं, दण्ड उनमेंसे सभीका आकार धारण कर किसीको छिन्न, किसीको भिन्न और किसीको पीड़ा पहुँचाया करता है। दण्डके कई एक नाम बतलाये गये हैं, जैसे,— असि, विशसन, धर्म, तीक्ष्णवर्त्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, धर्मपाल, अक्षर,

देवेन्द्रसिंहके शिष्य और सिंहतिलकके गुरु थे। इनका जन्म १३३१ सम्वत्में हुआ था। ये १३४१ सम्वत्में दीक्षित हुए और १३५८ संवत्में सूरिपद तथा १३७१ सम्वत्में गच्छेशपद पा कर १३८९ संवत्में ५८ वर्षकी अवस्थामें परलोकको सिधारे।

धर्मप्रभास (सं० पु०) बुद्धका नामान्तर।

धर्मप्रमाण (सं० त्रि०) धर्म एव प्रमाणं यस्य। जिसका मानो धर्म हो, धर्म हो जिसका प्रमाणस्वरूप हो। धर्मः प्रमाणं यस्मिन्। धर्मानुसारसे धर्मको मानो करके।

धर्मप्रवक्त, (सं० पु०) धर्मं सन्दिग्धार्थं अयं धर्म इति प्रवक्ति प्र वच तृच्। धर्मनिर्णायक राजाओंके व्यवहारस्थानस्थ सभ्यभेद। राजाओंको उचित है कि वे इस पद पर ब्राह्मणको नियुक्त करें। उपयुक्त ब्राह्मण नहीं मिलने पर क्षत्रिय और वैश्य नियुक्त किये जा सकते हैं, किन्तु इस पद पर शूद्रको कदापि नियुक्त न करें, करनेसे राज्यका नाश होता है।

मनुने लिखा है, कि जातिमात्रोपजीवी ब्राह्मणको अथवा जो अपनेको ब्राह्मण बतला कर इधर उधर घूमते हैं, किन्तु क्रियानुष्ठानरहित और ज्ञानशून्य हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको भी यदि राजाकी इच्छा हो तो अपने धर्मप्रवक्ता-पद पर नियुक्त कर सकते हैं, किन्तु शूद्र कैसा ही क्यों न हो, नियुक्त नहीं किये जा सकते। जिस राजाके सामनेमें हो शूद्र न्याय और अन्याय पर विचार करता हो, उस राजाका राज्य शीघ्र ही धूलमें मिल जाता है।

धर्मप्रवचन (सं० पु०) धर्मं प्रवक्ति प्र वच ल्यु। शाक्य मुनि।

धर्मप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) धर्मप्रवृत्तिः। धर्मविषयक प्रवृत्ति, धर्ममें श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मप्रस्थ (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां धर्म प्रतिनियत हो वर्त्तमान हैं, यहां जो कूप खुदवा कर उसमें स्नान करते और देवता तथा पितृगणका तर्पण करते हैं, उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। (भारत वनपर्व, ८४ अ०)

धर्मप्रिय (सं० पु०) धर्मः प्रियः यस्य। एक बौद्धाचार्य।

धर्मवती (सं० स्त्री०) धर्मकी लड़की, धर्मसे उत्पन्न होनेवाली लड़की। ([illegible])

धर्मवर्द्धन (सं० पु०) राजविशेष, एक राजाका नाम। (राजतरङ्गिणी)

धर्मबल (सं० पु०) धर्मका बल। धर्मकी शक्ति।

धर्मवाणिजिक (सं० पु०) धर्मं वाणिजिक इव। जो कर्मफलकी कामना करके धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें धर्मवाणिजिक कहते हैं। ऐसा देखा जाता है, कि देवताके उद्देश्यसे यदि अमुक कार्य सिद्ध होने पर अमुक देवताकी पूजा एक रुपयेसे करूंगा, जो ऐसा कहता है, वह साधम है। धर्म द्वारा तत्क्षण कामनाकी सिद्धि होगी, ऐसी इच्छासे आदान प्रदानके कारण इसका नाम धर्मवाणिजिक हुआ है।

धर्मबुद्धि (सं० स्त्री०) धर्मे बुद्धिः। धर्मज्ञान, धर्म अधर्मका विवेक, भले बुरेका विचार।

धर्मभगिनी (सं० स्त्री०) धर्मतः भगिनी। १ धर्मके अनुसार मानी हुई बहन। २ गुरुकन्या, गुरुकी बेटी।

धर्मभय (सं० पु०) धर्मस्य भयः। धर्मका भय। अधर्म करनेसे धर्मके यहां दण्ड मिलता और परलोकमें अनेक यातना भोगनी पड़ती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

धर्मभाणक (सं० पु०) भारतादि पाठक, कथा पुराण बांचनेवाला, कथक्कड़।

धर्मभिक्षुक (सं० पु०) मनूक्त नवविध धर्मार्थ भिक्षाजीव, वह जिसने धर्मार्थ नौ प्रकारकी भिक्षावृत्ति ग्रहण की हो। मनुने कहा है कि पुत्रकी कामनासे विवाह चाहनेवाला, यज्ञकी इच्छा रखनेवाला, पथिक, जो यज्ञमें अपना सर्वस्व लगा कर निर्धन हो गया हो, गुरु, माता और पिताके भरणपोषणके लिये धन चाहनेवाला अध्ययनकी इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी और रोगी ये नव धर्मभिक्षुक ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं। इन्हें यज्ञकी वेदीके भीतर बैठा कर दक्षिणाके सहित अन्नदान देना चाहिये। इनके अतिरिक्त और जो ब्राह्मण हों, उन्हें वेदीके बाहर बैठाना चाहिये।

धर्मभीरु (सं० त्रि०) धर्मे भीरुः। जो धर्मके भयसे डरता हो।

धर्मयुज् (सं० त्रि०) धर्मेण युज्यते युज कर्मणि क्विप्। १ धर्मयुक्त। (क्लो०) २ न्यायार्जित द्रव्य, न्यायसे उपार्जन किया हुआ धन।

धर्मयुद्ध (सं० पु०) वह युद्ध जिसमें किसी प्रकारका अन्याय या नियमका भङ्ग न हो।

धर्मरक्षित—योनदेशीय कोई स्थविर। धर्माशोक बौद्ध धर्मप्रचारके लिये नाना देशोंमें स्थविर भेजे थे जिनमेंसे धर्मरक्षित अपरान्तक (सूरतके निकटवर्त्ती) देश भेजे गये थे। वहां पहुंच कर इन्होंने बुद्धोपदेश "अग्नि खण्डोपमन"के विषयमें उपदेश दिया था। कहते हैं, कि इनकी वक्तृता सुननेके लिये प्रतिदिन ७० हजार मनुष्य समागम होते थे। पीछे एक क्षत्रिय वर्णसे हजारसे अधिक परिवार इनके शिष्य हुए। जब महास्तूप स्थापित हुआ था, तब भिन्न भिन्न देशोंसे बौद्ध याजकादि सशिष्य उपस्थित हुए थे। उस समय प्रधान स्थविर धर्मरक्षितके निकट कौशाम्बी मन्दिरसे ३० हजार याजक और उज्जयिनीके दक्षिणगिरि मन्दिरसे ४० हजार छात्र पहुंचे थे।

धर्मरत (सं० क्लो०) जीमूतवाहन कृत स्मृतिनिबन्धभेद।

धर्मरथ (सं० पु०) सगर राजाके एक पुत्रका नाम। महावीर सगरने समस्त देश जीत कर अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञका घोड़ा छोड़ा गया। उस घोड़ेने समस्त देश देशान्तरोंको अतिक्रम कर रसातलमें प्रवेश किया। वहां पुरुषोत्तम कपिलके रूपमें रहते थे। सगरके लड़कोंको जब मालूम हुआ कि घोड़ेको कपिल मुनिने बांध रखा है, तो उन्होंने ऋषि पर आक्रमण किया। पीछे तंग हो कर ऋषिने जब अपनी आंखें खोलीं तो चारके अतिरिक्त और शेष उसी जगह भस्म हो गये। उन चारोंके नाम बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और महावीर थे। ये ही चार सगरके वंशधर बच रहे। (हरिवंश १४अ०) २ अनुवंशीय दिविरथके एक पुत्रका नाम। ये रोमपाद नामसे प्रसिद्ध थे।

धर्मराज (सं० पु०) धर्मेण राजते राज-अच्। १ जिन। इनके मतसे अहिंसा ही परम धर्म है। अहिंसारूप धर्म द्वारा शोभित होनेके कारण धर्मराज शब्दसे जिनका अर्थबोध होता है। धर्मस्यासौ राजा चेति, समासे टच्, समासान्तः। २ यम। यम सभीके धर्माधर्मका विचार करते हैं, इसीसे यमको धर्मराज कहते हैं। ३ नरपति, राजा। ४ युधिष्ठिर। ५ धर्मप्रधान। ६ धर्मठाकुर।

धर्मराजपरीक्षा (सं० स्त्री०) धर्मराजस्य परीक्षा। धर्म और अधर्मकी परीक्षा। इसका विषय बृहस्पतिने इस प्रकार लिखा है—

धर्म और अधर्मको दो श्वेत और कृष्ण मूर्त्तियां भोजपत्र पर बना कर उनकी प्राणप्रतिष्ठा करे। बाद गायत्र्यादि और सोमसमन्त्रसे आमन्त्रण कर श्वेत और कृष्ण पुष्पसे उनकी पूजा करे। पीछे उन्हें पञ्चगव्ययुक्त कर मट्टीके बराबर पिण्डोंमें रखे। फिर दोनों पिण्डोंको दो नए घड़ोंमें रख कर अभियुक्तको बुलावे और किसी घड़ेपर हाथ रखनेके लिये कहे। यदि उसका हाथ धर्मपिण्डवाले घड़े पर पड़े, तो उसे शुद्ध अर्थात् पापहीन समझे।

कौन मनुष्य दण्ड पाने योग्य है, कौन अर्थ प्रार्थी है अथवा कौन पातकी है, यदि इसकी परीक्षा करनी हो, तो इस प्रकार धर्मपरीक्षा करनी चाहिये। पहले चांदीकी धर्ममूर्त्ति और सीसे या लोहेकी अधर्ममूर्त्ति बनावे। बाद भोजपत्र या पट पर धर्म और अधर्म सफेद और काले अक्षरमें लिखें और तब धर्म और अधर्मकी मूर्त्तिकी प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक पूजा करे। पञ्चगव्य और गन्धमाल्यादि द्वारा अभ्युक्षण कर उनकी अर्चना करनी होती है। पीछे श्वेत पुष्पसे धर्मकी और कृष्ण पुष्पसे अधर्मकी पूजा करते हैं और गोबर या मट्टीके दो बराबर पिण्ड बना कर उसमें धर्माधर्म लिखे हुए भोजपत्र या पट रख छोड़ते हैं। फिर दोनों पिण्डोंको मट्टीके बरतनमें डाल कर पवित्र स्थानमें रख देते हैं। बाद अपराधीको उस स्थानपर ला कर लोकपालोंका आवाहन करने बाद धर्मका आवाहन कर यह प्रतिज्ञापत्र लिख देना होता है कि अगर मैं निष्पाप हूं, तो धर्म मेरे हाथमें आ जावें। ऐसा करके धर्माधर्म लिखित दोनों घड़ोंमेंसे किसी एकको स्पर्श करे। यदि उसका हाथ धर्मपर पड़े, तो उसे निर्दोष और अधर्मपर पड़े तो दोषी समझना चाहिये। इस प्रकार विचारक धर्मपरीक्षा द्वारा धर्माधर्मका विचार कर दण्डका विधान

हरे। यदि धनिपुत्र निर्दोष हो, तो उसे बिना कोई दण्ड दिये छोड़ देना चाहिये। परीक्षाके स्थान पर विद्वान् ब्राह्मण और साधु व्यक्तियोंका रहना आवश्यक है। धर्मकी प्राणप्रतिष्ठाकी जगह 'धीं धां, धौं धौं' इत्यादि प्राणप्रतिष्ठा विधिके अनुसार करनी होती है। (दिव्यतत्त्व)

धर्मराजाध्वरीन्द्र—इनकी उपाधि दीक्षित थी। इन्होंने 'वेदान्तपरिभाषा' और अद्वैतपरिभाषा रचना की है। वेङ्कटनाथके कृति व यतीन्द्र इनके गुरु थे। इनके पुत्रका नाम था रामकृष्ण।

धर्मराजिका (सं॰ स्त्री॰) १ राजविधिके ऊपर राजप्रशस्ति २ धर्मका प्रमाण ज्ञापक शिलालेखादि।

धर्मराय (सं॰ त्रि॰) धर्म राति ददाति रा-अच्। १ धर्मदाता। स्त्रियां ङीप्। २ यम, अग्नि, पावी।

धर्मरुचि (सं॰ पु॰) बौद्धिकके अधिष्ठाता एक देवताका नाम।

धर्मलक्षण (सं॰ क्ली॰, धर्मो लक्ष्यते ज्ञायते येन लक्ष करणे ल्युट्।) १ धर्मप्रमापक वेदादि। स्त्रियां ङीप्। २ मीमांसा। भावे ल्युट् धर्मस्य लक्षणं, ६-तत्। ३ धर्मका लक्षण। ४ धर्मका साधन।

धर्मलुप्तोपमा (सं॰ स्त्री॰) वह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् उपमान और उपमेयमें समानरूपसे पाई जानेवाली बातका कथन न हो।

धर्मवत् (सं॰ त्रि॰) धर्मविद्यतेऽस्य, धर्म मतुप् मस्य वः। धर्मयुक्त, धार्मिक।

धर्मवर्द्धन (सं॰ त्रि॰) १ धर्मपोषक, धर्मका प्रतिपालक। (पु॰) २ महादेव।

धर्मवर्म (सं॰ त्रि॰) धर्मवर्म इव यस्य। १ जिसका धर्म वर्मस्वरूप हो, धार्मिक। जिस तरह कवचधारी पर कोई हथियार आक्रमण नहीं कर सकता है उसी तरह धर्मरूप कवचधारी पर विपत्ति पड़नेसे आपदा नहीं रहती। (क्ली॰) धर्म वर्मेव। २ धर्मरक्षक।

धर्मवत्सल (सं॰ त्रि॰) धर्मप्रिय, कर्त्तव्यनिष्ठ।

धर्मवाद (सं॰ पु॰) धर्मसम्बन्धीय तर्क।

धर्मवादिन् (सं॰ त्रि॰) धर्म वदति धर्म-वद-णिनि। धर्मवक्ता, धर्मोपदेश देनेवाला।

धर्मवासर (सं॰ पु॰) धर्मस्य वासरः। पूर्णिमा। इस दिन पुण्यकार्यादि किये जाते हैं, इसीसे इसका नाम धर्मवासर पड़ा है।

धर्मवाहन (सं॰ पु॰) धर्म वाहयतीति वह णिच् ल्यु, वा धर्मो वृषः वाहनं यस्य। १ शिव, महादेव। (क्ली॰) २ धर्मका ज्ञापक। धर्मस्य धर्मराजस्य वाहनं ६-तत्। ३ धर्मराजका वाहन महिष भैंसा।

धर्मवाह्य (सं॰ त्रि॰) विधिबहिर्भूत धर्मबहिर्भूत जो किसी धर्मको नहीं मानता हो।

धर्मविद् (सं॰ त्रि॰) धर्म वेत्ति विद क्विप्। धर्मज्ञ, धर्म जाननेवाला।

धर्मविदुत्तम (सं॰ पु॰) धर्मविदां उत्तमः। विष्णु।

धर्मवित्तम (सं॰ पु॰) अयमेषामतिशयेन धर्मवित् तमप्। १ विष्णु। (त्रि॰) २ धार्मिकोंमें श्रेष्ठ।

धर्मविद्या (सं॰ स्त्री॰) धर्मस्य विद्या ६-तत्। १ मीमांसादि विद्या। २ धर्मोपलक्षित शास्त्र। (त्रि॰) ततो कन्। धर्मविद्यक, धर्मशास्त्र जाननेवाला।

धर्मविप्लव (सं॰ पु॰) धर्मस्य विप्लवः ६-तत्। धर्मका व्यतिक्रम। जब कभी धर्मका विप्लव उपस्थित होता है, तभी भगवान् लोकस्थितिके निमित्त अवतीर्ण होते हैं। उनके अवतारसे ही धर्मविप्लव निवृत्त हो जाता है।

धर्मविवर्द्धन (सं॰ पु॰) धर्माचरण।

धर्मविवेक (सं॰ पु॰) धर्मस्य विवेको यत्र। हलायुधकृत निबन्धग्रन्थभेद।

धर्मविवेचन (सं॰ क्ली॰) धर्मस्य विवेचन ६-तत्। १ धर्म निर्णय, धर्म अधर्मका विचार। मनुने लिखा है कि जिस राजाके सामने शूद्र न्यायान्यायका विचार करता है उस राजाका राज्य शीघ्र ही दुःखमें मिल जाता है। २ धर्मके सम्बन्धमें चिन्तन। ३ दूसरेके किये हुए कर्मका विचार, किसीके दोषी या निर्दोष होनेका निर्णय।

धर्मवीर (सं॰ पु॰) वीररसके वीरभेद, वीर रसके अनुसार वह जो धर्म करनेमें साहसी हो।

वीररसमें चार प्रकारके वीरोंका कथा वर्णित है दानवीर, युद्धवीर, धर्मवीर और दयावीर। धर्मवीर युधिष्ठिर हैं।

युधिष्ठिरने कहा है कि राज्य, देह धन, भार्या, भ्राता, पुत्र और जो कुछ मेरे अधीन हैं वे सबके सब एकमात्र धर्मके लिये उद्यत हैं। वीररस देखो।

धर्मवैतंसिक (सं॰ पु॰) धर्मे वैतंसिक इव। वह जो

पापके द्वारा धन कमा कर लोगोंको दिखाने और धार्मिक प्रसिद्ध होनेके लिये बहुत दान पुण्य करता हो।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो पापके द्वारा धन कमा कर लोकदिखावके लिये ब्राह्मणोंको धन दान देता है, उसे धर्मवैतंसिक कहते हैं। यह अत्यन्त पापाचारी होता और अन्तकालमें राग तथा मोहादियुक्त हो कर कलुष योनिको प्राप्त होता है।

धर्मव्याध (सं० पु०) धर्मप्रधानो व्याधः मध्यलो०। एक धार्मिक व्याध, मिथिलापुरवासी एक व्याध। इसका विषय वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है— किसी समय काशीके राजा अनेक ब्रह्महत्याके पापोंसे मुक्त होनेके लिए अपने पुत्रको राज्य सौंप कर पुष्कर तीर्थको गये। वहां वे पुण्डरीकाक्षकी पूजा तन मनसे करने लगे। एक दिनकी बात है, कि उनके शरीरसे भयङ्कर नीलाभ पुरुष आविर्भूत हुआ। राजाने उससे पूछा कि तुम कौन हो? किस लिए यहां आये हो? इस पर उसने जवाब दिया, 'हे राजन्। पहले आप दक्षिण प्रदेशमें राजा थे। एक समय अनवधानतावशतः मृग-वेशधारी मुनिको आपने मार डाला। तभीसे मैं ब्रह्महत्या पापके रूपमें आपके शरीरके अभ्यन्तर था। अभी पुण्डरी काक्षकी पूजाके फलसे मैंने आपको छोड़ दिया।' यह सुन कर राजाने कहा कि आजसे तुम धर्मव्याध नामसे प्रसिद्ध होगे। महाभारतमें इसकी कथा इस प्रकार है— कौशिक नामक कोई वेदाध्यायी, तपस्वी और धर्म शील तपोधन थे किसी समय वे एक पेड़के नीचे बैठ कर वेदपाठ कर रहे थे। उस पेड़ पर एक बगलो बैठो थी। इतनेमें उसने उस ब्राह्मणके ऊपर बीट कर दी। कौशिकने क्रुद्ध हो कर उसकी ओर देखा और वह मर कर गिर पड़ी। ब्राह्मणने उसे मरी देख कर बहुत दुःख प्रकट किया और वे भिक्षा मांगनेके लिए बाहर निकल पड़े। इधर उधर घूमते फिरते वे पूर्व परिचित किसी गृहस्थके घर पहुंचे और भिक्षा मांगी। गृहिणीने उन्हें बैठनेके लिये कहा। इसी बीचमें उसका स्वामी भूखा प्यासा कहींसे आ गया। तब वह पतिव्रता नारी आये हुए अतिथि ब्राह्मणकी उपेक्षा करके पतिशुश्रूषामें लग गई। पीछे जब उसे उस ब्राह्मणको सुधि हुई, तब वह भिक्षा ले कर तुरन्त आई। वहां उसने ब्राह्मणको ज्वलन्त अग्निकी नाईं क्रोधान्वित देख कर मधुर वचनसे कहा, "प्रभो। मुझे क्षमा कीजिए, मेरे परम देवता स्वामी आप ही के जैसे भूखे प्यासे आ पहुंचे थे, उन्हींकी सेवाशुश्रूषामें मैं लगी हुई थी, यही विलम्ब होनेका एक मात्र कारण है।" यह सुन कर कौशिक और भी क्रोधित हो उठे और बोले, "तुमने ब्राह्मणोंसे अधिक अपने स्वामीको ही श्रेष्ठ समझा। तुम गृहस्थ धर्ममें रह कर ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करती हो, मर्त्यलोकमें मनुष्योंकी बात तो दूर रहे, इन्द्र भी ब्राह्मणकी अवज्ञा नहीं कर सकते। क्या तू यह नहीं जानती अथवा किसी बूढ़ेसे भी नहीं सुनी कि ब्राह्मण लोग अग्निके सदृश हैं। जब ये क्रुद्ध होते हैं तब पृथ्वीको भी दग्ध कर सकते हैं। यह सुन कर स्त्रीने कहा, "हे द्विज! मैं बगली नहीं हूं। आप अपना क्रोध रोकिए। आपके क्रोधसे मेरा क्या हो सकता है? मैं ब्राह्मणका सब प्रभाव जानती हूं। मुझे इस विषयमें क्षमा कीजिए। हे द्विजोत्तम! सब देवताओंमें स्वामी मेरे परम देवता हैं। आपके क्रोधसे जो बगली जल मरी है, सो मैं पतिकी शुश्रूषाके फलसे जानती हूं। क्रोध मनुष्योंके शरीरका परम शत्रु है। जो क्रोध और मोहको त्याग देते हैं उन्हींको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। संसारमें जो सत्य बोलते, गुरु-को सन्तुष्ट रखते और हिंसित होने पर हिंसा नहीं करते, वे ही ब्राह्मण हैं। आप ब्राह्मण हैं सही, किन्तु आप धर्मके तत्त्वसे अवगत नहीं हैं। यदि आपको धर्म-का यथार्थ तत्त्व जानना हो, तो मिथिलापुरवासी धर्म-व्याधके पास जाइये। वह व्याध आपको धर्मका तत्त्व अच्छी तरह बतला देगा।' कौशिक क्रोधको त्याग कर स्त्रीके मुखसे यह आश्चर्यजनक बात सुन कर अवाक् हो गये और अपनेको धिक्कारते हुए धर्मकी जिज्ञासा करने-के लिये मिथिलाकी ओर चल पड़े।

वहां जा कर उन्होंने देखा कि वह तपस्वी व्याध नाना प्रकारके पशुओंका मांस रख कर बेंच रहा है। इधर उस व्याधको जब यह हाल मालूम हुआ, कि कोई ब्राह्मण आये हुए हैं, तो वह झट उठ कर उनके पास आया और अच्छी तरह सत्कार कर बोला, 'आपको

जिसने एक ब्राह्मणीने यहां मेरे पास भेजा है सो मुझे मालूम हो गया। अतः आप कृपया मेरे घर पर चले चलिये। कौशिकको यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और वह व्याधके साथ उसके घर पर आये। वहां कौशिकने व्याधसे कहा, "तुम इतने ज्ञानसम्पन्न हो कर भी यह निकृष्ट काम करते हो, यह मेरे ख्यालसे उपयुक्त नहीं है। तुम्हारे इस भयङ्कर कर्मोंसे मुझे बहुत दुःख होता है।" धर्मव्याधने कहा, 'महाराज! यह पितृ परम्परासे चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है, अतः मैं इसीमें स्थित हूं। इसलिये आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें। विधाताने पहले ही मेरा जो काम लिख दिया है, उसीको मैं करता आ रहा हूं। मैं अपने माता पिता और अतिथियोंकी सेवा करता हूं, सत्य बोलता हूं, किसीसे डाह नहीं रखता, यथा शक्ति दान और देवपूजा करता हूं। इसीमें मेरा समय व्यतीत होता है। संसारमें कृषि पशुपालन और वाणिज्य ये ही तीन मनुष्योंकी उपजीविकायें हैं। दण्डनीति, त्रयी और विद्या परलोकका साधन है। शूद्रमें शुश्रूषादि कर्म, वैश्यमें कृषि, क्षत्रियमें संग्राम और ब्राह्मणमें नियत ब्रह्मचर्य, तपस्या मन्त्र और सत्य वचन आदिका विधान है। मैं दूसरेके साथ सर्वदा सरल, अहिंसादि व्रतपरायण हूं लेकिन मैं उन्हें वध नहीं करता और न कि उनका मांस ही खाता हूं। अहिंसा और सत्यवाक्य ये दो ही जीवोंके लिये परम हितजनक हैं। अहिंसा परमधर्म है जो सत्यसे प्रतिष्ठित है। सत्य ही के ऊपर निर्भर रहनेसे साधुओंकी समस्त प्रवृत्तियां प्रवर्त्तित होती हैं। आचार ही साधुओंका धर्म है। विद्या उसका प्रमाण है। त्याग, क्षमा, सत्य आर्जव और शौच ये ही साधुओंके आचार कहे जाते हैं। साधु लोग सब दा सब जीवों पर दया रखते, हिंसा नहीं करते, ब्राह्मणोंके प्रिय होते और कठोर वचन कभी व्यवहार नहीं करते हैं। मैं जो काम करता हूं वह अत्यन्त भयङ्कर है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। किन्तु हे ब्रह्मन्! दैव अत्यन्त बलवान् है। पूर्व जन्ममें जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल इस जन्ममें मिलता है। मेरा यह दोष पुरातन पापके कर्मका फल है। मैं इसे छोड़ना चाहता हूं।

पहले विधाता ही प्राणियोंका वध करते हैं। लेकिन नाम घातकका ही होता है। पूर्व समयमें रन्तिदेव राजाके रन्धनागारमें प्रतिदिन दो हजार बकरे आदि और दो हजार गायें मारी जाती थीं। तिस पर भी उनके समान उस समय और कोई धार्मिक न थे। यह मेरा स्वधर्म है ये ही समझ कर मैं इसे छोड़ना नहीं चाहता। अपना धर्म छोड़ कर दूसरेका धर्म ग्रहण करनेमें बहुत दोष है। अतः यह मेरा कुलोचित कर्म है ऐसा जान कर इसीसे मैं अपनी जीविका निर्वाह करता हूं।" धर्मव्याधने इसी तरह ब्राह्मणको अनेक धर्मोपदेश दिये थे जिनका मर्म यह है—कुलोचितकर्म त्याग करना अन्याय है किन्तु कदाचार त्याग कर सदाचार अवलम्बन करनेमें दोष नहीं है। दूसरेकी प्रशंसा या निन्दा दोनोंको समान समझना चाहिये। दानपूजादि कर्म करना आवश्यक है। अनर्थ कभी नहीं बोलना चाहिये। क्रोधके वशीभूत होना अनुचित है, अज्ञानकृत पाप अनुतापसे क्षय होता है, लोभ सर्वदा परित्याज्य है, शुभ या अशुभ कर्मका अवश्य भोग करना पड़ता है। इत्यादि। अन्तमें धर्मव्याधने कहा, 'आप कृपया मेरे पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनिये। मैं पूर्व जन्ममें सुनिपुण वेदाध्यायी और वेदाङ्गपारग ब्राह्मण था। आत्मकृत दोषसे ही मेरी यह दशा हुई है। धनुर्वेदपरायण कोई राजा मेरे मित्र थे। उनके साथ एक दिन मैं शिकारमें चला गया। वहां जा कर मैंने अपने बाणसे एक तीर छोड़ा जिससे एक ऋषि मारे गये। वह ऋषि अतीव उग्र थे। तब मैं ऋषिके पास पहुंचा तो उन्होंने करुणा विलाप करते हुए मुझे शाप दिया कि, तूने मुझे बिना अपराध मारा, इससे तू शूद्रयोनिमें जा कर एक व्याधके घर उत्पन्न होगा। ऋषिके इस तरह शाप दिये जाने पर मैंने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये बहुत विनीत भावसे कहा, "हे मुने! मुझे क्षमा कीजिये। मैंने बिना जाने यह अपराध किया है। इस तरह अनुनय विनय करने पर वे प्रसन्न हो कर बोले शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता लेकिन मैं अब तुमसे प्रसन्न हूं, इसलिये तू शूद्रयोनिमें जन्म ले कर भी धर्मज्ञ होगा, पिता माताकी शुश्रूषा करेगा और महती सिद्धि

लाभ कर क्षतिश्वर होगा। पीछे शाप विमोचन होने पर पुनः ब्राह्मण हो जायगा।"

धर्मव्रता (सं० स्त्री०) धर्मकी विश्वरूपा पत्नीसे उत्पन्न एक कन्या। इसकी कथा वायुपुराणमें इस प्रकार लिखी है—विज्ञानविशारद महातेजस्वी धर्म नामक एक राजा थे, इनके विश्वरूपा नामकी एक स्त्री थी। कालक्रमसे उनके धर्मव्रता नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या पातिव्रत्यकी प्राप्तिके लिये घोर तप करने लगी। इसी बीचमें मरीचि ऋषिने उसके निकट पहुंच कर उससे कहा, 'तू इस नवीन अवस्थामें क्यों ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो? यह सुन कर धर्मव्रताने कहा, "प्रभो! मैं पतिव्रता होनेके लिये तपस्या करती हूं।" मरीचि उसकी बात सुन कर बोले, 'मैं भी पतिव्रता के अनुसन्धानमें हूं, तुम्हारे सरीखा पतिव्रता और मेरे सरीखा द्वितीय वर भी कोई नहीं है। अतएव तू मुझसे विवाह कर।' इस पर धर्मव्रताने कहा, आप यह विषय मेरे पिता धर्मसे जा कहिये। यह सुन कर मरीचि धर्मके पास गये। धर्मने उन्हें भलीभांति सत्कार कर आनेका कारण पूछा। इस पर ऋषिने जवाब दिया, 'हे राजन्! मैं कन्याकी खोजमें सारी पृथ्वी पर परिभ्रमण किया, पर आपकी कन्या सरीखा किसीको अच्छा न समझा। इसलिये आप अपनी कन्या मुझे दान देवें। धर्मने यह सुन कर विशेष आग्रहके साथ नियमपूर्वक मरीचिऋषिको अपनी कन्या व्याह दी।

धर्मवृक्ष (सं० पु०) अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

धर्मशरीर (सं० क्ली०) क्षुद्र क्षुद्र बौद्धस्तूप, धर्मका चिह्न।

धर्मशाला (सं० स्त्री०) धर्मार्थं शाला। १ धर्मगृह, वह स्थान जहां पुण्यके लिये नियमपूर्वक दान दिया जाता हो, सत्र। २ विचारालय, वह स्थान जहां धर्म अधर्मका निर्णय हो। ३ वह मकान जो पथिकों या यात्रियोंके टिकनेके लिये धर्मार्थ बना हो और जिसका कुछ भाड़ा आदि न लगता हो।

धर्मशाला—पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेका पार्वतीय स्टेशन या सदर। यह अक्षा० ३२° १३' उ० और देशा० ७६° ११' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६९७१ है। पहले यहां अंगरेजो छावनी थी और धौलाधार पर अवस्थित थी। इसके पास हो एक हिन्दकी धर्मशाला है और इसीके नामानुसार छावनीका नाम धर्मशाला पड़ा है। १८५५ ई०में छावनीके आसपास कई एक गांव बसाये गये और यह स्थान सदर बनाया गया। यहां गोरखा सेना रहती थी। ऊपर जानेके लिये अच्छी अच्छी सड़कें बनाई गई हैं जिनमें एक गाड़ी जाने आनेकी सड़क है। उक्त पहाड़ पर एक गिरजा है जिसके प्राङ्गणमें लार्ड एलगिनका समाधिस्थान है। एलगिन १८६३ ई०में मरे थे।

धर्मशालाका दृश्य बहुत मनोरम है। इसके चारों ओर घने जंगल हैं जहां बहुमूल्य लकड़ी पाई जाती है। छावनीके पास ही दल नामका मेला प्रतिवर्ष सितम्बर महीनेमें लगता है। यहांसे दो मीलकी दूरी पर भागसू नामका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। १८६७ ई०में यहां म्यूनिसिपैलिटी कायम हुई है। सदरकी आय प्रायः १३१०० रु०) है।

धर्मशाला—कटकसे १५ कोस उत्तर ब्राह्मणी नदीके किनारे अवस्थित एक छोटा राज्य। यहांसे आध कोस पश्चिम पर्वतके नीचे एक नदीके ऊपर त्रिकोणाकार भूमि पर गोकर्णेश्वर नामक एक शिवका मन्दिर है। मन्दिरका द्वार पूर्वकी ओर है और इसके सामने बारह खम्भोंसे घिरा हुआ एक नाटमन्दिर है। मन्दिर कोणाकार है और पत्थरका बना है, साथ ही साथ पलस्तर भी दिया हुआ है। इसके चारों ओर बहुतसी सुन्दर सुन्दर पत्थरकी प्रतिमा हैं जिनमेंसे सरस्वतीकी प्रधान प्रतिमा है। ये चतुर्भुजा और शङ्खपद्मधारिणी हैं। यह प्रतिमा नदीके गर्भसे बाहर निकाली गई हैं, किन्तु पुजारी लोग कहते हैं, कि यह पहाड़से निकली हैं, और इनके स्वप्नादेशसे लोगोंने यहां इनकी प्रतिष्ठा की है।

धर्मशासन (सं० क्ली०) शास भावे ल्युट्, धर्मस्य शासनं ६-तत् १। धर्मका अनुशासन। करणे ल्युट्। २ धर्मशास्त्र।

धर्मशास्त्र (सं० क्ली०) शिष्यतेऽनेन शास करणे ष्ट्रन्, धर्मस्य शास्त्रं। धर्मशासन, मन्वादि-प्रणीत धर्मप्रतिपादक ग्रन्थभेद, वह ग्रन्थ जिसमें समाजके शासनके निमित्त नीति और सदाचार-सम्बन्धी नियम हों।

पड़ो। हिन्दावत् गिरिपथ पर उलुघखांने सहसा भीमसिंह पर धावा किया। भीषण युद्ध हुआ, इस युद्धमें भीमसिंह मारे गये। उलुघखां दिल्लीको लौट गये।

हम्मीरने यज्ञ समाप्त कर चुकने पर जब भीमसिंहको मृत्यु और युद्धमें पराजयका वृत्तान्त सुना, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और धर्मसिंहको अन्धा कह कर तिरस्कार करने लगे। कहा—"उलुघखांने पीछा किया और आप जैसे विचक्षण सेनापतिको मालूम भी नहीं पड़ा।" हम्मीरने सिर्फ तिरस्कार हो नहीं किया, प्रत्युत उन्हें देशसे निकल जाने और मुष्कद्वय छेदनेका आदेश दिया और एक आंख निकलवा ली। इतने पर भी हम्मीरका क्रोध शान्त न हुआ, उन्होंने धर्मसिंहके एक दासगर्भजाता भ्राताको जिनका नाम भोजदेव था, प्रधान मन्त्रीका पद दे दिया। भोजदेवने अनुरोध करके निर्वासनदण्ड और मुष्कच्छेदसे धर्मसिंहका उद्धार किया।

धर्मसिंह इस तरह लाञ्छित और चक्षुहीन हो कर राजासे प्रतिहिंसा लेनेकी कोशिश करने लगे। राधादेवी नामकी एक नर्तकोसे जो राजा हम्मीरको बहुत प्यारी थी धर्मसिंहने मित्रता कर ली। राधादेवीने धर्मसिंहको अपने मकान पर छिपा रखा और प्रतिदिन उन्हें राजसभाका संवाद देने लगी। एक दिन राधा कुछ दुःखित हो कर घर लौटी, धर्मसिंहने उसका कारण पूछा। राधाने कहा—'आज भेदरोगसे बहुतसे श्रेष्ठ घोटकोंको मृत्यु हो गई है, इसलिए राजा आज खेदखिन्न थे, आज उन्होंने मेरे नृत्यगीत पर ध्यान नहीं दिया।" धर्मसिंहने कहा—तुम राजाको कह सकती हो, कि यदि वे मुझे पूर्वपद पर नियुक्त करें, तो मैं उन्हें मरे हुए घोड़ोंसे दूने घोड़े दे सकता हूं। राधाने ऐसा ही किया। हम्मीर राजी हो गए और धर्मसिंहको पुनः प्रधान सेनापतिका पद दिया। धर्मसिंहने राजाको सन्तुष्ट करनेके लिए हर तरहसे प्रजाको तङ्ग कर डाला और धन, शस्य, घोड़े आदिसे राजकोष भर दिया। हम्मीर आप पर बड़े खुश हुए और भोजदेवको अपने विभागका हिसाब दाखिल करनेके लिए आज्ञा दो। भोजदेव धर्मसिंहको कूटनीतिको समझ गये और एक दिन उन्होंने राजाको समझाया। पर राजाने उनकी बात पर ध्यान न दिया। आखिर निरुपाय हो भोजदेवको राजाज्ञाका पालन करना हो पड़ा। धर्मसिंहके आदेशसे उनकी सम्पत्ति राजकोषमें मिला लो गई। भोजदेवने सब कुछ सहन कर भी राजाका साथ न छोड़ा। राजाने एक दिन इस बातका लक्ष्य दे कर उनका उपहास किया। भोजदेव उसी दिन राज्य त्याग कर काशी चल दिये। इसके बाद धर्मसिंहने क्या किया, यह बात नारायण चन्द्रसूरिके हम्मीरकाव्यमें नहीं लिखी है। सम्भवतः जिस समय हम्मीरके समस्त योद्धाएं अलाउद्दीन्‌के साथ शेषयुद्धमें मारे गये थे, उसी समय धर्मसिंह भी मारे गये होंगे।

धर्मसुत (सं० पु०) धर्मस्य सुतः। युधिष्ठिर।

धर्मसू (सं० स्त्री०) धर्मं सुनोति सु-क्विप्। १ धूम्याट पक्षी, भृङ्गराज नामकी एक चिड़िया। (त्रि०) २ धर्मप्रेरक।

धर्मसूत्र (सं० क्लो०) धर्मः सूत्र्यतेऽनेन करणे अच्, धर्मस्य सूत्रं ६ तत्। धर्मनिर्णयके लिए जैमिनिप्रणीत धर्ममोमांसारूप ग्रन्थभेद। जैमिनिका बनाया हुआ एक प्रकारका ग्रन्थ जिसमें धर्मको मीमांसा की गई है।

धर्मसूरि—एक अलङ्कारशास्त्रकार। इनके ग्रन्थका नाम साहित्यरत्नाकर है। वे रामायणको घटनाके आधार पर स्वरचित श्लोकमें अपने ग्रन्थकी उदाहरणमाला रचगये हैं।

धर्मसेतु (सं० पु०) धर्मस्य सेतुरिव धारकत्वात्। १ धर्मरक्षक, सेतुको तरह धर्मको धारण करनेवाला। २ एकादश मन्वन्तरमें आर्यकका पुत्र, हरिका अंशभेद।

धर्मसेन—१ एक महास्थविर या बौद्ध महात्मा। ये वाराणसीके निकट ऋषिपत्तन (सारनाथ) सङ्घके प्रधान व्यक्ति थे। अनुराधापुरके राजा दुःखगामिनीने जब महास्तूपकी स्थापना की थी (प्रायः १५७ ई० सन्‌के पहले) तब ये बारह हजार अनुचरोंके साथ वहां उपस्थित हुए थे। २ जैनोंके द्वादश अङ्गविदोंमेंसे एक। ३ जैन युगप्रधानोंमेंसे एक।

धर्मसेनगणि महत्तर—एक ग्रन्थकार। वासुदेव-हिण्डिका

करोति अधि-क णिनि। १ प्राड्‌विवाकादि विचारक प्रभृति, धर्म अधर्मको व्यवस्था देनेवाला, विचारक, न्यायाधीश। २ दानाध्यक्ष, पुण्यशालिका प्रबन्धकर्त्ता।

धर्माधिपति (सं॰ पु॰) प्रधान विचारपति, प्रधान-व्यवस्थापक।

धर्माधिष्ठान (सं॰ क्लो॰) धर्मस्य अधिष्ठानं। धर्माधिकरण, विचारालय।

धर्माध्यक्ष (सं॰ पु॰) धर्मे व्यवहारे धर्मनिर्णये अध्यक्षः। १ प्राड्‌विवाकादि, धर्माधिकारी। २ विष्णु। ३ शिव, महादेव।

धर्माध्वन् (सं॰ पु॰) धर्मपथ, न्यायका रास्ता।

धर्मानपुर – अयोध्याके अन्तर्गत बरैच जिलेको नाना तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें नेपाल, पूर्व और दक्षिणमें नानपाड़ा परगना तथा पश्चिममें कौरियाला नदी है। यह पहले चौरदर राज्यके अन्तर्गत था। अयोध्यामें अंगरेजोंके अधिकार होनेके बाद यह एक जिला हो गया है। इसका अधिकांश जङ्गलावृत है। लोकसंख्या प्राय २६ हजार है। जंगलमें शिकारके उपयुक्त अनेक जन्तु पाये जाते हैं और उत्तर अयोध्याके नाना स्थानोंसे मवेशी यहां चरनेके लिये लाये जाते हैं।

धर्मानुगत (सं॰ त्रि॰) धर्म अनुगतः। धर्मनियमका अनुगत, धर्मयुक्त, धार्मिक।

धर्मानुयायिन् (सं॰ त्रि॰) धर्मं अनुयाति या-णिनि। धर्मपथावलम्बी, जो धर्म पथके अनुसार चलते हों।

धर्माम्बु (सं॰ पु॰) धर्म हतो ऽम्बुः कूपः। तीर्थभेद। एक तीर्थका नाम।

धर्माभास (सं॰ पु॰) धर्म इव आभासति आ-भास-अच। श्रुति स्मृति भिन्न शास्त्रोक्त असत् धर्म, असमस्त धर्म। जो स्मृति और श्रुतिमें कहा गया है, उसे धर्म और जो दूसरे शास्त्रोंमें कहा गया है उसे धर्माभास कहते हैं।

धर्माभिषेक (सं॰ क्लो॰) शास्त्रगत अभिषेकादि।

धर्मायतन (सं॰ क्लो॰) धर्मका मानस-स्थान।

धर्मारण्य (सं॰ क्लो॰) धर्म इति ख्यातं यत् अरण्यं। तीर्थभेद। वराहपुराणमें इस तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—जब चन्द्रमाने गुरुपत्नी ताराका हरण किया, तब धर्मने अपीड़ित हो कर सघन वनमें प्रवेश किया था। उस समय ब्रह्माने धर्मसे कहा था, "हे धर्म! तुम्हारे इस वनमें रहनेसे यह धर्मारण्य नामसे प्रसिद्ध होगा।" २ गयास्थ तीर्थभेद, गयाके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान। इसका उल्लेख गयामाहात्म्यमें भी किया गया है। ३ धर्म साधन परस्थान, तपोवन। ४ कूर्मविभागोक्त मध्यभागस्थ देशभेद, कूर्मविभागके मध्य भागमें एक देश। (हरिवं १४ अ॰) रामायणमें धर्मारण्य नामक नगरका उल्लेख देखा जाता है। यह नगर कामरूपके मध्य किसी जगह अवस्थित था, ऐसा अनुमान किया जाता है।

धर्मार्थ (सं॰ अव्य॰) धर्मके निमित्त, परोपकारके लिये।

धर्मार्थीय (सं॰ त्रि॰) धर्म सम्पर्कीय।

धर्मालोक (सं॰ त्रि॰) हृदयरोगी कपटाचारी, पाखण्डी।

धर्मालोकमुख (सं॰ क्लो॰) बौद्धमत ज्ञानका उपक्रम।

धर्मावतार (सं॰ पु॰) धर्मस्य अवतारः। धर्मका अवतार, साक्षात् धर्म, धर्मात्मा। जो न्यायकार्य अच्छी तरह करते हैं, उन्हें धर्मावतार कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि राजा साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, जो विचारकार्य करते हैं, वे राजप्रतिनिधि हैं। जब वे धर्मासन पर बैठ कर न्यायान्यायका विचार करते हैं, तब उन्हें धर्मावतार कहते हैं। २ धर्माधर्मका निर्णय करनेवाला पुरुष, न्यायाधीश। ३ युधिष्ठिर।

धर्माशोक (सं॰ पु॰) राजा अशोक बौद्धधर्म ग्रहण करने बाद "धर्माशोक" नामसे विख्यात हुए। प्रियदर्शी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

धर्माश्रित (सं॰ क्लो॰) धर्म आश्रितः २या-तत्। धार्मिक, धर्मशील।

धर्मासन (सं॰ क्लो॰) धर्माय व्यवहारकार्यसाधनाय यदासनं। १ विचारनिर्णयार्थ आसनभेद, वह आसन या चौकी जिस पर बैठ कर न्यायाधीश न्याय करता है।

धर्मास्तिकाय (सं॰ पु॰) जैनमतानुसार पांच अस्तिकाय पदार्थोंमेंसे एक। इसे धर्म द्रव्य भी कहते हैं। यह धर्म द्रव्य लोकमें व्यापक अरूपी अखण्ड एक द्रव्य है और जीव तथा पुद्गल द्रव्योंको चलनेमें सहायता देता है। जैन देखो।

धर्मिक (सं॰ त्रि॰) धर्मोऽस्त्यस्य ठन्। १ धर्मयुक्त,

धार्मिक। तस्य धर्ममाचारो इति पुरोहितादित्वात् यक। (स्त्री०) २ धार्मिकत्व, धार्मिकका भाव या धर्म।

धर्मिणी (सं० स्त्री०) १ पत्नी स्त्री। २ रेणुका। (वि०) ३ धर्म करनेवाली।

धर्मिन् (सं० त्रि०) धर्मोऽस्यास्ति इनि। १ धर्मविशिष्ट, जिसमें धर्म हो। २ धार्मिक। (पु०) ३ विष्णु। ४ धर्मका आधार। ५ रेणुका। ६ आत्मा, जीव।

धर्मिष्ठ (सं० पु०) अतिशयेन धर्मवान् इति इष्ठन् मतुपो लोप। १ अत्यन्त धार्मिक, पुण्यात्मा। २ विष्णु।

धर्मीपुत्र (सं० पु०) नट, नाटकका कोई पात्र या अभिनयकर्त्ता।

धर्मीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन धर्मवान् इति ईयसुन्। अत्यन्त धर्मशील, जो आपदमें धर्मके पथपर चलता है, सदा समय भी अधर्मके पथ पर पैर नहीं रखता, उसे धर्मीयस कहते हैं।

धर्मेन्द्र (सं० पु०) धर्म इन्द्र इव ईश्वरत्वात्। धर्मराज यम।

धर्मेप्सु (सं० त्रि०) धर्म आप्तुमिच्छुः आप-सन्-धर्मेप्सु ततो समासमित्यादिना उ प्रत्यय। धर्मकाम करनेका अभिलाषी, जिसे धर्म करनेकी इच्छा हो।

धर्मेयु (सं० पु०) पौरवके वंशज रौद्राश्व पुत्रभेद, पुरु वंशी राजा रौद्राश्वका एक पुत्र।

धर्मेश (सं० पु०) धर्मस्य ईश ६-तत्। यम।

धर्मेश्वर (सं० पु०) धर्मस्य ईश्वर ६-तत्। १ यम, धर्मराज।

धर्मोत्तर (सं० त्रि०) धर्म उत्तरः प्रधान यस्य। धर्म प्रधान।

धर्मोत्तराचार्य—एक बौद्ध आचार्य और ग्रन्थकार। इस देशमें अब तक इनका नाम और ग्रन्थादि विलुप्त थे। तिब्बतके 'तांगूर' (Tandgur) नामक सर्वविद्यासंग्रह विषयक एक बड़ा ग्रन्थ है जिसमें बहुतसे ऐसे ग्रन्थोंका समावेश है जो भारतीय विद्वानों द्वारा रचे गये हैं। इसी ग्रन्थ ग्रन्थोंमें धर्मोत्तराचार्यके ७ ग्रन्थोंका उल्लेख है। परन्तु आज तक अनुसन्धान करने पर भी उल्लिखित ७ ग्रन्थोंकी मूल संस्कृत प्रति न तो भारतमें ही मिली और न तिब्बतमें ही, १८८९में बम्बई एसियाटिक सोसाइटीके प्रयत्नसे "न्यायबिन्दुटीका" नामक एक टीका ग्रन्थ इनका रचा हुआ आविष्कृत हुआ है। "तांगूर" नामक पूर्वोक्त ग्रन्थ ग्रन्थमें भी इसका नाम पाया जाता है, इसलिये दोनों ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंको एक समझनेमें कोई आपत्ति नहीं। यह ग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' नामक संस्कृत न्यायग्रन्थकी टीका है। बौद्धोंमें न्याय विषयक अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। मूल सूत्रग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' किसका रचा हुआ है, पता नहीं। परन्तु भास्कराचार्यके पुस्तकागारमें संग्रहीत लघुधर्मोत्तरसूत्र और बैंकलसे रचे संग्रहीत "धर्मोत्तरवृत्तिके" इसका कुछ कुछ व्याख्या लक्षण है। पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है कि लघुधर्मोत्तर सूत्र और न्यायबिन्दुटीकाके मूल सूत्रग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' में कुछ भेद नहीं है। न्यायबिन्दुटीकाके पढ़नेसे मालूम होता है, कि धर्मोत्तराचार्यने जिन सूत्रोंकी व्याख्या की है, उन सूत्रोंको उन्होंने स्वयं गुरुसे प्राप्त माने हैं। इससे अनुमान होता है कि आप बौद्धधर्मके वैभाषिक, सौत्रान्तिक, माध्यमिक और योगाचार इन चारों शाखाओंमें थे। "धर्मोत्तरवृत्तिके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि आपके पहले आचार्य विनीतदेव (सर्वदर्शीके प्रभु मूल राजा गोपीचन्द्रके समकालवर्ती और धीमानन्द्राको)ने पूर्व मीमांसाके आधार पर प्रमाण-विषयक एक एक व्याख्या टीका तथा प्रमाणमें प्रत्यक्षको लेकर १८ प्रकार बौद्धमतावलम्बियोंका विवरण किया था। उनके बाद शान्तभद्र या शान्तरक्ष या भद्रभद्र नामक आचार्यने अभिधर्मकोषका प्रतिवाद कर "न्यायानुसारशास्त्र" नामक ग्रन्थ रचा था। सूत्र ग्रन्थोंमें दोनों भाषामें इसका अनुवाद किया है, जो कि दोनों त्रिपिटकका एक अंग समझा जाता है। उनके बाद और कई और आचार्य धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिक प्रमाणविनिश्चय, प्रमाणपाद आदि न्यायविषयक ग्रन्थ रचे। धर्मकीर्ति द्वारा प्रणीत "बौद्ध धर्मप्रकृति" नामक ग्रन्थका उल्लेख गुणानन्द-प्रणीत कादम्बरीमें मिलता है। धर्मोत्तराचार्यने भी इसी प्रकार आचार्य मार्गोंके अनुसरण करते हुए "न्यायबिन्दुटीका" रची होगी।

धर्मोपदेश (सं० पु०) धर्मं उपदिश्यते अनेन उप-दिश

करणे घञ्। १ धर्मशास्त्र, मन्वादिशास्त्र। भावे घञ्, धर्मस्य उपदेशः। २ धर्मविषयक उपदेश, धर्मकी शिक्षा।

धर्मोपदेशक (सं० वि०) धर्मं उपदिशति उप दिश-ण्वुल्। १ धर्मका उपदेष्टा, धर्मका उपदेश देनेवाला। (पु०) २ गुरु।

धर्मोपदेशना (सं० स्त्री०) व्यवहारशास्त्रका उपदेश।

धर्मोपाध्याय (सं० पु०) पुरोहित।

धर्मोपेत (सं० वि०) धर्मो उपेतः ७ तत्। धर्मयुक्त, धार्मिक, न्यायी।

धर्म्य (सं० वि०) धर्मादनपेतः। (धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। पा ४।४।९२) इति यत्। १ धर्मयुक्त, जो धर्मके अनुकूल हो। धर्मेण प्राप्यः (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) इति यत्। २ धर्मलभ्य, धर्मकी प्राप्ति।

धर्मविवाह (सं० पु०) धर्म्यः धर्मार्थी विवाहः। धर्मयुक्त विवाह। यह विवाह पांच प्रकारका है—ब्राह्म, आर्ष, गन्धर्व और प्राजापत्य। जिस वर्णका जो विवाह धर्मयुक्त है और जिस विवाहमें जो गुणदोष समुत्पन्न होता है और जिस विवाहोत्पन्न सन्तानमें जो गुणागुण उत्पन्न होता है वह मनुसंहिता पढ़नेसे इस प्रकार जाना जाता है—छह विवाह अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर और गन्धर्व ये छः विवाह ब्राह्मणोंके धर्म्य अर्थात् धर्मजनक हैं; आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये पांच प्रकारके विवाह क्षत्रियोंके धर्मजनक हैं। वैश्य और शूद्रके लिए राक्षस छोड़ कर और कई एक विवाह अर्थात् आसुर, गान्धर्व और पैशाच धर्म जनक हैं;

धर्ष (सं० पु०) धर्षणमिति धृष भावे घञ्। १ प्रागल्भ्य, धीरता। २ अमर्ष, क्रोध, रिस। ३ शक्तिबन्धन, आसक्त होने या करनेका भाव, बेकाम करने या होनेका भाव। ४ अविनीत व्यवहार, अविनय, गुस्ताखी। ५ असहनशीलता, तुनकमिजाजी। ६ अधीरता, बेसब्री। ७ रोक, दबाव। ८ नामर्द करने या होनेका भाव। ८ नपुंसक, नामर्द, हिजड़ा। ९ हिंसा जो दुखानेका कार्य। १० अनादर, अपमान। ११ सतीत्वहरण।

धर्षक (सं० वि०) धृष्णोति प्रगल्भ्य भवतीति धृष-ण्वुल्। १ परिभवकारक, अपमान करनेवाला, तिरस्कार करनेवाला। २ प्रगल्भ, चतुर, होशियार। ३ असहन, जो सहन न करे। ४ अभिनय करनेवाला, नट। ५ दमनकारी, दबानेवाला। ६ सतीत्वहरण करनेवाला, व्यभिचारी।

धर्षकारिणी (सं० वि०) धर्षं कुलदूषणं करोति कृ-णिनि स्त्रियां ङीप्। दूषिताकन्या, असती, व्यभिचारिणी।

धर्षकारिन् (सं० वि०) धर्षं करोति कृ-णिनि १ परिभवकर्त्ता, अपमान या अवज्ञा करनेवाला। २ प्रागल्भ्य कारक, दबाने या दमन करनेवाला। डरानेवाला।

धर्षण (सं० क्ली०) धृष भावे ल्युट्। १ परिभव, अनादर, अपमान। २ असहनशीलता। (पु०) ३ शिव, महादेव। ४ रति, स्त्रीप्रसंग। ५ आक्रमण, देबोचना, डरानेका कार्य (त्रि०) ६ धर्षधारक, दबानेवाला।

धर्षणा (सं० स्त्री०) १ अवमानना, अवज्ञा, अपमान, हतक। २ दबाने या डरानेका कार्य, नीचा दिखानेका काम। ३ सतीत्वहरण। ४ संभोग, रति।

धर्षणात्मन् (सं० पु०) महादेव, शिव।

धर्षणि (सं० स्त्री०) धर्षतीति धृष-अणि धातोरन्तेय धः। (धृषेरन्त्य धः। उण् २।१०५) बन्धकी, असती स्त्री कुलटा।

धर्षणी (सं० स्त्री०) धर्षणि कृदिकारादिति वा ङीप्। धर्षिणी, असती नारी, कुलटा।

धर्षणीय (सं० वि०) धर्षणके योग्य, जो दबाने या डराने लायक हो।

धर्षा—मुसलमानोंके राजत्वकालमें सारा बङ्गाल कई एक विभागोंमें विभक्त थी। प्रत्येक विभागको सरकार कहते थे। वर्त्तमान बङ्गाल उस समय सरकार सुलेमानाबाद नामसे प्रसिद्ध था। इस सरकारमें ४१ परगने लगते थे। धर्षा इसीके अन्तर्गत एक परगना था जो गङ्गाके पूर्व किनारे पर अवस्थित रहा। वर्त्तमान हावड़ा और श्रीरामपुर शहरके मध्यवर्त्ती समस्त भूभाग इसी परगनेके अन्तर्गत था।

धर्षित (सं० क्ली०) धृष्यते ऽनेन धृष-क्त। १ रति, संभोग, मैथुन। (त्रि०) २ कृतधर्षण, जिसका धर्षण किया गया हो, दबाया या दमन किया हुआ। ३ अपमानित, जिसे

धवनि (सं० स्त्री०) धू-करणे अनि। अनल, आग।

धवनी (सं० स्त्री०) १ शालिपर्णी, सरिवन। २ पृश्निपर्णी, पिठवन।

धवनी (हिं० स्त्री०) लोहारोंकी धौंकनी, भाथी।

धवर (सं० क्ली०) संख्याविशेष।

धवर (हिं० पु०) एक पक्षी। इसका कण्ठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है।

धवरहर (हिं० पु०) मकानका एक भाग जो खंभेकी तरह ऊपर दूर तक चला जाता है। इस पर चढ़नेके लिए भीतर सीढ़ियां बनी रहती हैं।

धवराहर (हिं० पु०) धवरहर देखो।

धवरी (हिं० वि०) १ सफेद, उजली। यह शब्द स्त्री-लिङ्गमें व्यवहृत होता है। (स्त्री०) २ धवर पक्षीको माटा। ३ सफेद रंगकी गाय।

धवल (सं० पु०) धावतीति धाव कल् प्रत्यय। (धावतेर्बाहुलकात् कलच्। उण् १।१०८) १ धववृक्ष, धवका पेड़। २ चीनकपूर। ३ सिन्दूर। ४ श्वेतमिर्च, सफेद मिर्च। ५ रागभेद, एक प्रकारका राग। भरतके मतसे यह हिन्दोलरागका षष्ठम पुत्र है। ६ वृषश्रेष्ठ, महोक्ष, भारी बैल। ७ पक्षिविशेष, धवर पक्षी, सफेद परेवा। ८ छन्दोभेद, छप्पय छन्दका ४५वां भेद। ९ अर्जुन वृक्ष। १० कुष्ठरोग, सफेद कोढ़। ११ शंख। १२ धातकी। (त्रि०) १३ श्वेत, उजला, सफेद। १४ निर्मल, झकाझक। १५ मनोहर, सुन्दर।

धवलकोष्टी (हिं० स्त्री०) वैश्योंकी एक जाति।

धवलगिरि (सं० पु०) धवलः गिरिः कर्मधा। स्वनाम-ख्यात पर्वतविशेष, एक पर्वतका नाम।

धवलघाट—सुसङ्ग दुर्गापुरसे दो कोस दूर कंस नदीके किनारे अवस्थित एक ग्राम।

धवलता (हिं० स्त्री०) सफेदी, उजलापन।

धवलत्व (सं० क्ली०) धवलस्य भावः 'त्वतलौ भावे' इति त्व। धावल्य, सफेदी, उजलापन।

धवलना (हिं० क्रि०) उज्ज्वल करना, निखारना।

धवलपक्ष (सं० पु० स्त्री०) धवलो पक्षो यस्य। १ हंस। इसके पर सफेद होते हैं। (पु०) २ शुक्लपक्ष, उजला पाख।

धवलपट्टिनी (सं० स्त्री०) श्वेत पाटलिका, सफेद पपड़ी।

धवलपाटली (सं० स्त्री) श्वेतपाटलिका, सफेद पपड़ी।

धवलभूम—भविष्य ब्रह्मखण्डमें पुण्ड्र देशान्तर्गत वराह्देश-के वर्णनमें इस देशका उल्लेख देखा जाता है। इसका वर्त्तमान नाम धलभूम है। वराहभूम देखो।

धवलमृत्तिका (सं० स्त्री०) धवला मृत्तिका। दुद्धी, खरियामट्टी।

धवलयावनाल (सं० पु०) धवलः यावनालः। यावनाल-विशेष, जुनहरी, भुट्टा। इसका पर्याय—पाण्डुर, तार-तण्डुल, नृपवल्लभ, विस्तार, हस्त और मौक्तिक-तण्डुल। इसका गुण—सौम्य, बलकारक, हृद्य, रुचिकर, पथ्य, त्रिदोष, अर्श, गुल्म और व्रणनाशक है।

धवलश्री—रागिणीविशेष, एक रागिनी जिसमें पंचम और गांधार वर्जित हैं।

नि ध ० म ० रि सा : : (संगीतरत्ना०)

धवलहाटी—देशावलीवृत यशोहरान्तर्गत एक ग्राम।

धवला—१ भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त पुण्ड्र देशान्तर्गत वरा-देशके मध्यवर्त्ती प्रधान आठ नगरोंमेंसे एक नगर। (ब्र० ख० ५।२८) २ सुसङ्ग दुर्गापुरकी पूर्ववाहिनी एक नदी। ३ सारनाथमें प्राप्त एक शिलालेख पढ़नेसे जाना जाता है, कि काशीराज बालादित्यके पुत्र प्रकटादित्यकी माताका नाम रानी धवला था। मि० फिलट अनुमान करते हैं कि मिहिरकुलोद्भव महाराज बालादित्य यही बालादित्य हो सकते हैं। शिलालेख भी सातवीं शताब्दी-के अन्तका उत्कीर्ण है। ४ नदीभेद, एक नदी।

धवला (सं० स्त्री०) धावतीति धा कल् प्रत्यय अनुदात्तत्वा भावात् न ङीप्। १ शुक्लवर्ण गाभी, सफेद गाय। २ वृन्दावनस्थ पर्वतविशेष, वृन्दावनका एक पहाड़। (पु०) ३ श्वेत वृष, सफेद बैल। (त्रि०) ४ श्वेत, सफेद, उजली। (क्ली०) ५ श्वेतशारिवा, अनन्तमूल। ६ वचा। ७ श्वेतापराजिता। ८ पापरोगान्तक रस।

धवलागिरि—हिमालय पहाड़की एक प्रख्यात चोटी। यह नेपाल राज्यमें २८° ११' उ० और देशा० ८१° ५८' पू०में अवस्थित है और समुद्रपृष्ठसे २६८२६ फुट ऊंची है।

धवलाङ्क (सं० स्त्री०) अतिधृति छन्दोभेद।

धवलाङ्ग (सं० पु०) हंस।

धवलित (सं० त्रि०) धवलोऽस्य सञ्जातः तारकादित्वात् इतच्। शुभ्रीभूत, जो सफेद किया गया हो।

धवलिमन् (सं० पु०) धवलस्य भावः इमनिच्। १ धवलता, शुभ्रता, सफेदी। (स्त्री०) धवलत्वमर्शादित्वात् ङीप्। २ कृष्णवर्ण आधी सफेद गाय।

धवली (सं० स्त्री०) १ शुक्ल गाय, सफेद गाय। २ एक रोग जिसमें बाल सफेद हो जाते हैं। ३ सफेद मिर्च।

धवलीकृत (सं० त्रि०) अधवलं धवलं कृतः अभूततद्भावे च्वि० ततो दीर्घ। धवलित, जो सफेद किया गया हो।

धवलीभूत (सं० त्रि०) शुक्लीभूत, जो सफेद हुआ हो।

धवलेक्षु (सं० पु०) शुक्लेक्षु सफेद पौंढा।

धवलेश्वर—गोदावरी जिलेमें राजमहेन्द्री तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ५६' ३१" उ० और देशा० ८१° ४८' ११" पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय साढ़े दस हजार है जिसमेंसे दस हजार हिन्दू हैं। राजमहेन्द्रीसे २ कोस दक्षिण गोदावरी नदीमें १२ फुट ऊंचा और १६५० गज लम्बा एक बांध है। यह बांध पिचिका नामक गोदावरी नदीके मुहानेका द्वीप तक विस्तृत है। १८४० ई०में इस काममें हाथ लगाया गया था। यहां अभी डिस्ट्रिक्ट इञ्जिनियरका दफ्तर और पूर्त विभागका कारखाना है। १३वीं और १४वीं शताब्दीमें जब इधर के नवाबके साथ राजमहेन्द्रीके गोत पतिका युद्ध छिड़ा था, उस समय इसी नगरमें दोनों पक्षकी सेनायें रहती थीं। गोदावरी और कृष्णानदीकी नहर हो कर इस नगरके साथ व्यवसायकी अधिकता बढ़ गई है।

धवलेश्वर—१ भविष्य-ब्रह्मखण्डोक्त मरुदेशान्तर्गत वरद देशके अन्तर्गत एक नदी। इसके किनारे ब्रह्मनगर अवस्थित है। (भ०ब्र० १९।१२) २ धवलाख्यानकी एक सीमा। दमनभवन देखो।

धवलोत्पल (सं० क्ली०) धवल उत्पल कर्मधा०। कुमुद, एक फूल।

धवा (हिं० पु०) धव देखो।

धवापक (सं० पु०) धुनाति कम्पयति वृक्षादीनिति धू-आपक (आपको धूपृदिभ्याम्। उण ३।८२) वायु।

धवाना (हिं० क्रि०) दौड़ाना।

धवितव्य (सं० त्रि०) धु-तव्य। कम्पनोपयुक्त, हिला देने योग्य।

धवित्र (सं० क्ली०) धूयतेऽनेन धू-इत्र (अर्ति लू धू सू खन सहचर इत्र। पा ३।२।१८४) १ मृगचर्म-रचित व्यजन हरिणके चमड़ेका बना हुआ एक प्रकारका पंखा। (त्रि०) २ कम्पनकारक, हिलानेवाला, दूर करनेवाला।

धस (हिं० पु०) १ जल आदिमें प्रवेश, डुबकी, गोता। २ भुरभुरी ज़मीन।

धसक (हिं० स्त्री०) १ ठन ठन शब्द जो सूखी खांसीमें गलेसे निकलता है। २ सूखी खांसी ठसक। ३ ईर्ष्या डाह, जलन।

धसकना (हिं० क्रि०) १ नीचेको धंस जाना, दब जाना, बैठ जाना। २ ईर्ष्या करना, डाह करना।

धसका (हिं० पु०) चिपड़ोंमें होनेवाला चौपायोंका एक रोग। यह रोग धूलसे फैलता है।

धसनि (हिं० स्त्री०) धंसनि देखो।

धसमसाना (हिं० क्रि०) धरतीमें धसाना, धंस जाना।

धसान (हिं० स्त्री०) १ धंसान देखो। २ एक छोटी नदी। यह पूर्वी मालवा और बुंदेलखण्डसे हो कर बहती है। पूर्वी मालवा प्राचीन कालमें दशार्ण देश कहलाता था और यह नदी भी उसी नामसे प्रसिद्ध थी।

धसाना (हिं० क्रि०) धंसाना देखो।

धसाव (हिं० पु०) धंसाव देखो।

धांक (हिं० पु०) एक जंगली जाति। इसका आचार व्यवहार भीलोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

धांगड़ (हिं० पु० १ अनार्य जाति। ये विन्ध्य और कैमोर पहाड़ियों पर रहते हैं। २ कुएं और तालाब खोदनेका काम करनेवाली एक जाति।

धांगर (हिं० पु०) धांगड़ देखो।

धांधना (हिं० क्रि०) १ बन्द करना। २ बहुत अधिक खा लेना। ठूंसना।

धांधल (हिं० स्त्री०) १ ऊधम, उपद्रव, नटखटी। २ धोखा दगा, फरेब। ३ बहुत अधिक जल्दी।

धांधलपन (हिं० पु०) १ पाजीपन, शरारत। २ धोखेबाजी, दगाबाजी।

धांधा (हिं० स्त्री०) इलायची।

धांधली (हिं० स्त्री०) १ उपद्रवी, शरीर, पाजी नटखट। २ धोखेबाज, दगाबाज।

धांय (हिं स्त्री०) धायँ देखो।

धांस (हिं० स्त्री०) सूखे तम्बाकू या मिर्च आदिकी तेज गन्ध। इससे खाँसी आने लगती है।

धाँसना (हिं० क्रि) पशुओंका खाँसना।

धाँसी (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी खाँसी।

धा (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ बृहस्पति। (त्रि) ३ धारक, धारण करनेवाला।

धा (हिं० पु०) १ सङ्गीतमें धैवत शब्द या स्वरका संकेत। २ तबलेका एक बोल।

धाइ (हिं० पु०) धवका पेड़।

धाई (हिं० स्त्री०) धाय देखो।

धाउ (हिं पु) नाचका एक भेद।

धाक (सं० पु०) दधातीति धा-क। (कृदाधारार्चि कलिभ्यः क। उण् ३।४०) १ वृष, बैल। २ आहार, भोजन। ३ अन्न, अनाज। ४ स्तम्भ, खंभा। ५ आधार।

धाक (हिं० स्त्री०) १ आतङ्क, रोब, दबदबा। २ प्रसिद्ध, शोहरत, शोर। ३ ढाक, पलास।

धाकार (हिं० पु०) १ कान्यकुब्ज और सरयूपारी ब्राह्मणोंमें वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलोंके अन्तर्गत न हो और इससे नीचा समझा जाता हो। २ राजपूतोंकी एक जाति। ये लोग आगरेके आस पास पाये जाते हैं। ३ बिना पानीका पैदा होनेवाला पंजाबका एक धान।

धाड़ (हिं० स्त्री०) १ डाकुओंका आक्रमण। २ झुण्ड, जत्था, गरोह।

धाड़ना (हिं० क्रि०) दहाड़ना देखो।

धाड़स (हिं० स्त्री०) ढाड़स देखो।

धाड़ी (हिं० स्त्री०) भारी लुटेरा या डाकू।

धाणक (सं० पु०) दधातीति धा-आणक (आणको लघू शिन्धि धाड्भ्यः। उण् ३।८३) १ प्राचीनकालका एक प्रकारका परिमाण। २ एक अनार्य छोटी जाति।

धातक (सं० पु०) धातुं करोति णिच् टिलोपः ण्वुल्। पुष्करद्वीपाधिपति वीतिहोत्रके एक पुत्रका नाम।

धातकी (सं० स्त्री०) धातक पिप्पल्यादित्वात् ङीष्। पुष्प-विशेष, धवका फूल। संस्कृत पर्याय—वह्निपुष्पी, ताम्रपुष्पी, धानी, अग्निज्वाला, सुभिक्षा, पार्वती, बहुपुष्पिका, कुमुदा, सीधुपुष्पी, कुञ्जरा, मद्यवासिनी, गुच्छपुष्पी, संधपुष्पी, सीधुपुष्पिणी, तीव्रज्वाला, वह्निशिखा, मद्यपुष्पा, धातुपुष्पी धातुपुष्पिका, धावी, धातुपुष्पिका। (शब्दर०)

यह वृक्ष भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—हिन्दी—दोआई, धौफाई, गाम्बा, धोला, धोरा, धाय, धाय। बङ्गला—धाइ, धांइ, धाय, धादकी, धान, धाउरा। कोल—इचा, घोयि। सन्थाल-इचाक। नेपाल-दाहिरो, लालदाइरो, धाशिराकाय। लेपचा—सुङ्गकियेकन्दूम। उड़िया—धातिकी, शारयारी। भूमिज--दादकी। कुर्कु—खिभि, धि। मध्यप्रदेश—धुवि, सुरतारि, धाइति, धोवरा। अयोध्या-धेवसी। कमायुन-धारला, धाय, धवरा। काङ्गरा धाय, गुलदोर। गोंड़-पितिया, पेतिसुरानि। भील धाक्ति। काश्मीर—धाय, धौधाई। पञ्जाब-धास, धोर, धा, सुर्द, धाहाई, धाधाई, तो। (फूलका नाम) गुल धाधाई, गुलदहार। पुस्तु (अफगान)—दातकी। सिन्धु-धाय। बम्बई—धोरो, इयाति, धावरी, धावसी। मन्द्राज—फुलसत्ति, धाजातिधि। गुजरात—धवदोना। तैलगु-जारगी, सेरिञ्जि, गद्दाइसिका, गाजी, गोदारि, धासकी। अङ्गरेजी-Woodfordia floribunda, एतद्भिन्न Wood fordia Tomentosa, Woodfordia bruticosa, Grislea tomentosa, Grislea Punctata, Lythrum Fruticosam नामसे भी यह अङ्गरेजी उद्भिज्जशास्त्रमें अभिहित होता है।

इसका पेड़ छोटा होता तथा कंटीदार शाखाएं होती हैं। इसमें ग्रीष्मकालमें बैंगनी रंगके अनेक फूल लगते हैं। यह हिमालय पर्वत पर ५ हजार फुट ऊंचे स्थानसे लेकर ग्रीष्मके निर्जन वनके मध्य सारे भारतवर्षमें मिलता है।

गोंद—मि० बलफरका कहना है, कि राजपूतानेके मध्य मेवार और झारावतीमें धायके फूलसे गोंद निकाला जाता है जो उस देशमें "धौका गोंद" नामसे प्रसिद्ध है। यह जलसे हलका होता है। कपड़ा रंगानेके समय जिस अंशमें रंग नहीं देना होगा, उस अंशमें यही गोंद लगा देते हैं। यह १० रु० मन बिकता है।

रंग—इसके फूलसे एक प्रकारका सफेद रंग बनता है। लाल रंग तैयार करते समय यह फूल व्यवहृत

का गुण कहते हैं। रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र बनता है। अन्नपान द्वारा जो रस उत्पन्न होता है, वही इन सब धातुओंका पोषणकर्त्ता है। पुरुष अर्थात् देही इसी रस-से उत्पन्न होता है। रस धातुकी गति समझा जाता है। वह रसधातु तीन हजार पन्द्रह कला करके एक एक धातुमें रहती है।

इसी तरह वह रस एक महीनेमें शुक्र बन जाता है। स्वतन्त्र और परतन्त्रके रूपमें यह रसधातु अठारह हजार नव्वे (१८०८०) कलाओंमें बांटी जा सकती है। प्रत्येक धातुमें ३०१५ अंश करके ६ धातुओंमें १८०८० कलाएँ रहती हैं और रसधातु क्रमशः परिपाक हो कर तीस दिन बाद शुक्रधातु होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आहारजनित और शरीरमें प्रतिदिन जो रस बनता है, वही रस पांच दिनोंमें परिपाक हो कर छठे दिनमें रक्त धातुमें चला जाता है। और उन पांच दिनोंमें नया रस जमा हो कर परिपाक हुआ करता है। रक्त भी पांच दिनोंमें परिपाक हो कर मांस उत्पन्न करता है। इस तरह क्रमशः तीस दिन बाद अन्न-रससे शुक्रधातु बनती है और वह उसी धातुमें रहता है। धातुके जिस अंश-को अन्य धातुमें जाना होता है, वही इसका परतन्त्र अंश है और जो अंश अपनेमें रहता है वह इसका स्वतन्त्र अंश है। इस तरह स्वतन्त्र और परतन्त्रके रूपमें १८०८० अंश रससे ले कर मज्जा तक धातुमें रहते हैं। ये सब धातु रससे उत्पन्न हो कर शरीरको धारण करती हैं, इसी कारण उन्हें धातु कहते हैं। इन सब धातुओंका क्षय और वृद्धि शोणितको क्षयवृद्धिसे ही जानी जाती है।

पहली धातुकी वृद्धि होनेसे पीछली धातु भी वृद्धि होती है, अतएव जिन सब धातुओंकी अत्यन्त वृद्धि होती है, उन्हें क्षाम करनेके लिये प्रतीकार करना कर्त्तव्य है। रससे ले कर शुक्र तक सात धातुओंका जो परम तेजोभाग है उसे ओजः कहते हैं। आयुर्वेदमें इस ओजः धातुको ही बल माना है। शरीरमें ओजः धातुके रहनेसे मांस दृढ़ और पुष्ट होता है, सब कामोंमें उत्साह बना रहता है स्वर और शरीरकी कान्ति चमकती रहती है, बाह्य और अन्तरस्थ इन्द्रियां अच्छी तरह अपना काम करती जाती हैं। शरीरस्थित ओजः सोम-गुणविशिष्ट है। यह शरीरमें शुभ भावसे रहता है और इससे प्राणकी रक्षा होती है। प्राणियोंकी देहके सब अवयवोंमें यह व्याप्त रहता है। इसके नहीं रहनेसे शरीर शीर्ण हो जाता है। सब धातुओंमें जो सार निक-लता है वही ओजः है। मानसिक और शारीरिक क्लेश, क्रोध, शोक, एकाग्रचिन्ता और श्रम प्रभृति द्वारा ओजः धातुका क्षय होता है। ओजः क्षय हो जानेसे प्राणियोंके तेज भी क्षय हो जाते हैं तथा सन्धिस्थानकी शिथिलता, शरीरकी अवसन्नता, वात, पित्त और श्लेष्माका प्रकोप तथा क्रियाका निरोध, शरीरकी स्तब्धता, भार, वायुसे उत्पन्न शोथ, वर्णकी मूढ़ता, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा ये सब लक्षण देखे जाते हैं।

बलके तीन प्रकारके दोष हैं—व्यापत्, विस्रंसा और क्षय। बलको विस्रंसा होनेसे शरीरकी शिथिलता, अवसन्नता, श्रान्ति, वायु पित्त और कफकी विकृति एवं इन्द्रियका कार्य स्वभावतः जिस प्रमाणसे होना चाहिये उस प्रमाणसे नहीं होना आदि लक्षण पाये जाते हैं। बलका व्यापन्न होनेसे शरीरका भार, स्तब्धता और ग्लानि, शारीरिक वर्णकी विभिन्नता, तन्द्रा, निद्रा एवं वायु जन्य शोथ उत्पन्न होता है। बलके क्षय होनेसे मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और अज्ञानता आदि लक्षण तथा पूर्वोक्त सब लक्षण देखे जाते हैं, यहां तक कि इससे मृत्यु भी हो जा सकती है।

सब धातुओंके भीतर जो स्नेह घृत और तैलादिकी तरह पिच्छिल पदार्थ रहता है, धातुके परिपाकके समय उन सब स्नेह पदार्थोंसे शरीरके तेजःस्वरूप वसा नामक धातु बनती है। इससे शरीरको कोमलता, सौन्दर्य, उत्साह, दृष्टि, स्थिति, परिपाकशक्ति, कान्ति और दीप्ति उत्पन्न होती है तथा शरीर कोमल और रोम छोटे होते हैं। कषाय, तिक्त, शीतल, रुक्ष अथवा मलमूत्ररोधक पदार्थ सेवन करनेसे अथवा स्त्रीप्रसंग, व्यायाम वा व्याधिसे क्षय होने पर यह वसा धातु विकृत होती है। वसा धातुके विकृत वा सुप्त होनेसे त्वक्का पारुष्य, वर्णकी विभिन्नता, गात्रवेदना अथवा शरीर प्रभाशून्य हो जाता है। इसके व्यापन्न होनेसे शरीरकी कृशता, अग्नि-

मांस, शरीरके वा अपक्वसे धातुक्षरण होता है और उस हीनसे हृष्टि अग्नि वा बलकी हानि, वायुका प्रकोप अथवा मृत्यु होती है। अतः धातुके विकृति होने पर पूर्वोक्त तीन अवस्थाओंमें ही अवधान और उसे शरीरमें मर्दन, लेपन वा परिषेचन एवं स्निग्ध और लघु द्रव्य भोजन करना चाहिये। यदि धातु क्षय हो जाय तो जिस तरह हो सके भोजन करके ही उसे पूरा कर लेना चाहिये- क्योंकि शरीरमें अवस्था सञ्चारित हो कर सब धातु समान हो जाती है। शरीरकी सब धातु समान होनेसे शरीर स्थूल वा क्षय न हो कर मध्यभावमें रहता है, सब काम आसानीसे करता है, क्षुधा, पिपासा, शीत, ग्रीष्म वर्षा और रौद्र सह कर सकता है तथा बलवान् दीख पड़ता है। स्थूल और क्षय ये दो प्रकारके शरीर निन्दनीय हैं। मध्यम शरीर ही सबसे श्रेष्ठ है। सब धातुके बराबर रहनेसे ही शरीर मध्यम होता है। विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें देखो। ३ शब्दका मूल क्रिया वाचक। "अनुपाम क्रियावाचको धातुरिति शब्दविशेषः।" (मुग्धबोधटीका) क्रियावाचक गमादि अंकित शब्दविशेषका नाम धातु है क्रियाको वाचक प्रकृतिका धातु है। जितने शब्द देखे जाते हैं वे धातुसे ही बने हैं, इसीसे धातुको शब्दयोनि कहते हैं। धातुके बादमें दश विभक्तियां होती हैं।

विभक्तियोंके क्रम	पाणिनिके मतसे नाम	मुग्धबोधके मतसे नाम	रूप	किस कालका बोधक
१	लट्	बो	वर्त्तमान }	वर्त्तमान
२	लोट्	बी	अनुज्ञा }	
३	विधिलिङ्	बो	विधि	
४	आशीर्लिङ्	टी	आशीर्वाद	
५	लृट्	सी	अनद्यतन भविष्यत् }	भविष्यत् बोधक
६	लुट्	डो	अद्यतन भविष्यत् }	
७	लृङ्	बो	क्रियातिपत्ति }	
८	लिट्	ञो	}	
९	लुङ्	डी	परोक्ष अतीत } अद्यतन अतीत }	अतीत
१०	लङ्	दी	अनद्यतन अतीत }	बोधक

इन दशोंके सिवा वेदमें लेट् नामक एक और विभक्ति का व्यवहार है। ये सब विभक्तियां परस्मैपद और आत्मनेपद इन दो भागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक विभक्तिमें इन दो भागोंमें भी नौ करके अलग रूप होते हैं। ये नौ प्रथम, मध्यम और उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ले कर बने हैं। एक एक धातुके सब विभक्तियोंमें १८० रूप होते हैं। इनमेंसे अनेक वैदिक भाषामें आते हैं। कुछ परस्मैपदी और कुछ उभयपदी भी हैं। यद्यपि हिन्दी व्याकरणमें धातुओंकी कल्पना नहीं की गई है, पर की जा सकती है, जैसे करनाका 'कर' हँसनाका 'हँस' इत्यादि। ४ बुद्ध या किसी महात्माकी अस्थि आदि जिसे बौद्धलोग डिब्बेमें बन्द करके स्थापित करते थे। ५ शुक्र वीर्य। ६ तत्त्व, भूत। पञ्चभूतों और पञ्चतन्मात्रको भी धातु कहते हैं। बौद्धोंमें अठारह धातु हैं—घ्राणधातु, चक्षुधातु, श्रोत्रधातु जिह्वाधातु, कायधातु, रूपधातु, शब्दधातु, गन्ध धातु रस धातु, स्प्रष्टव्य धातु, चक्षुर्विज्ञानधातु श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञान-धातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधातु, धर्मधातु और मनोविज्ञानधातु।

धातु—प्राचीन कालमें प्राकृतिक पदार्थ मात्रको ही धातु कहते थे। अंगरेजीमें Mineral शब्दसे सचराचर जो समझा जाता है धातु शब्दसे भी अनुमान करते हैं कि इसी प्रकार 'प्रथम विकृति' समझा जाता था।

"सुवर्ण-रूप्य-माणिक्य-हरिताल-मनःशिला।
गैरिकाञ्जन-कासीस-सीस-लोहाः सहिङ्गुलाः।
गन्धकोऽभ्रकमित्याद्या धातवो गिरिसम्भवाः॥"

इत्यादि वचनोंसे ऐसा ही ज्ञात होता है। क्रमशः धातु शब्दका अर्थ संकीर्ण होता आया है और जितने विशेष धर्मविशिष्ट खनिज द्रव्य उसी नाममें पुकारा जाता है। धातुकी संख्या कभी तो ७ कभी ८ और कभी ९ निर्दिष्ट होती थी। स्वर्ण, रौप्य ताम्र, रङ्ग, यशद

(जस्ता), सीस, तथा लोह ये ही सात धातु हैं। पारद ले कर आठ होती है। कांसा और पीतलके उसमें मिलानेसे नौ होती हैं। कांसा और पीतल अन्यान्य धातुके मेलसे उत्पन्न होता है, यदि इसका निर्णय किया जाय, तो धातुकी तालिकासे उनके नाम हटा कर उपधातु नामक एक दूसरी श्रेणीके पदार्थमें उन्हें रख सकते हैं। उप-धातु कहनेसे कांसा, पीतलादिके जैसे मिश्रधातुका बोध होता है, अंगरेजीमें इसे Alloy कहते हैं।

धातुके व्यवहारके साथ, मानवजातिकी सभ्यताका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। अति प्राचीनकालमें मनुष्य धातुका व्यवहार नहीं जानते थे। इसका कारण यह था, कि अधिकांश धातु हो विशुद्ध व्यवहारोपयोगी अवस्थामें नहीं मिलती थी। उन्हें विशेष परिश्रम और विशेष प्रक्रिया द्वारा आकरिक पदार्थसे निकाल कर शोधन किये जाने बादवे काममें लाई जाती हैं। धातुका व्यवहार प्रचलित होनेके पहले शिलाखण्डका व्यवहार प्रचलित था। शिलाखंडको अच्छी तरह घिस कर उससे अस्त्रादि बनाये जाते थे। क्रमशः ब्रञ्जादि उप धातु आविष्कृत हुई। बाद लोहे और अन्यान्य धातुओं का आविष्कार हो गया।

लोहेके आविष्कारके बादसे मनुष्य-जातिकी सभ्यता-की यथेष्ट उन्नति हुई है। लोहा भिन्न भिन्न कार्योंमें व्यवहृत होता है तथा यह बहुतायतसे मिलता भी है, इस कारण अन्यान्य धातुको अपेक्षा इसका मूल्य भी कम है। फिलहाल जितनी धातु हैं, सभोमें लोहा ही प्रधान है। किन्तु यह प्रधानतः चिरकाल तक रहेगी, सो कह नहीं सकते। Aluminium नामकी धातु, ऐसा ज्ञात होता है, कि लोहेसे भी अधिक कामोंमें लग सकती है। पृथ्वीमें लोहेकी अपेक्षा भी प्रचुर परिमाणमें यह धातु वर्त्तमान है। किन्तु वर्त्तमान कालमें इस धातुका विशुद्ध आकारमें निकालना कष्टसाध्य हैं। यही कारण है कि आज भी इसका मूल्य लोहेसे कहीं ज्यादा हैं।

उल्लिखित आठ विशुद्ध धातुओंमें कौन कब आविष्कृत हुई थी, इसका निरूपण करना कठिन है।

सभी धातु सभी प्रदेशोंमें नहीं मिलती। सम्भवतः कोई धातु तो किसी प्रदेशमें और कोई अन्य प्रदेशमें आविष्कृत हुई होगी। इसके लिए एक उदाहरण काफी है। अष्टधातुओंमें तांबा बहुत दिनोंसे प्रचलित है और पीतलका भी आविष्कार प्राचीन कालमें ही हुआ था। तांबेके साथ पीतलका कुछ सम्बन्ध है, प्राचीन ग्रीक लोग भी इसे जानते थे। किन्तु पीतल एक उपधातु मात्र है, इसमें तांबा और एक स्वतन्त्र धातु जस्ता वर्त्तमान है जो अपेक्षाकृत आधुनिक कालका आविष्कार है। युरोपीय रासायनिकोंमें वेसिल वालेन्ताइनके ग्रन्थमें जस्तेका प्रथम उल्लेख देखा जाता है। पीछे पारा सेलसमने जस्ते-का नाम धातुकी तालिकामें रखा। कोई कोई कहते हैं कि प्राचीन कालकी भारतवर्षमें जस्तेका व्यवहार प्रचलित नहीं था। पोर्त्तुगीज लोग इस धातुको पहले पहल भारतवर्षमें लाये, पीछे यह वैद्यकशास्त्रमें लाई गई।

प्राचीन कालमें परिचित धातु पदार्थोंने अपने गुरुत्व, औज्ज्वल्य, घातसहत्व आदि विशिष्ट धर्म द्वारा पण्डितों-को आश्चर्यान्वित कर दिया था। इन सब विशिष्ट धर्म-के प्रभावसे वे सब पदार्थ मनुष्यजातिका विशेष विशेष प्रयोजन साधन करते थे। विभिन्न धातुओंसे उत्पन्न पदार्थ, जब मनुष्योंको अशेष फल देने लगे, तब वैद्यक शास्त्रमें भी उनका व्यवहार होने लगा था। पण्डित लोग विविध काल्पनिक धर्म और काल्पनिक सम्पर्क धातुओंके ऊपर आरोप करते थे। युरोपके विद्वान् लोग एक समय सात विशुद्ध धातु और सात ग्रहका हाल जानते थे। एक एक ग्रहके साथ एक एक धातुका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ग्रहपति सूर्यके साथ धातुपति सुवर्ण-का कोमल कान्ति चन्द्रके साथ रौप्यका, ताम्रवर्ण मङ्गलके साथ ताम्रका, चञ्चल प्रकृति देवदूत बुधके साथ पारदका सम्बन्ध था, इत्यादि।

> "हरितालं हरेर्वीर्य्यं लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला।
> पारदं शिववीर्य्यस्यात् गन्धकं पार्वतीरजः॥"

इत्यादि वाक्यमें भी इस प्रकार काल्पनिक सम्बन्धा-रोपकी चेष्टा देखी जाती है। विष्णुने किसी असुरका वध किया। उसके माससे ताम्र, शोणितसे स्वर्ण, अस्थिसे रौप्य उत्पन्न हुआ, इत्यादि नाना प्रकारके उपाख्यान पुराणादि ग्रन्थोंमें लिखे हैं। आज भी बहुतसे ऐसे

इत्तर्विक (Ytterbium)	१७३
थोरक (Thorium)	२३२
(ख) अलुमीनक (Aluminium)	२७
गलक (Gallium)	७०
इन्दुक (Indium)	११३
थल्लक (Thallium)	२०३·७
४। (क) तितानक (Titanium)	४८
जिर्कनक (Zirconium)	९·४
सीरक (Cerium)	१४१·२
(ख) जर्मनक (Germanium)	७२
वङ्ग (Stannum, tin)	११८
सीसक (Lead, plumbum)	२०७
५। (क) वनदक (Vanadium)	५१·१
नवक (Niobium)	९३·०
(ख) आर्सेनिक (Arsenicum)	५७
आन्तिमनि (Stibium, antimony)	१२०
विसमथ (Bismuth)	२·७५
६। क्रोमक (Chromium)	५२
मोलिदक (Molybdenum)	९६
तुङ्गस्तक (Tungsten)	१८४
वरुणक (Uranium)	२३९·८
७। मङ्गनक (Manganese)	५५
८। (क) लौह (Ferrum, Iron)	५६
कोबाल्ट (Cobalt)	५९
निकेल (Nickel)	५९
(ख) रुथेनक (Ruthenium)	१३·५
रुदक (Rhodium)	१०४
पल्लदक (Palladium)	१०६
अस्मक (Osmium)	१९१
इरिदक (Iridium)	१९२·५
प्लातिनक (Platium)	१९५
(ग) हेलिक (Helium)	४ (१)

क्षार, भस्म, लवण।—वैद्यक शास्त्रमें तथा और दूसरे ग्रन्थोंमें इन नामोंसे प्रसिद्ध अनेक पदार्थोंके नाम पाये जाते हैं। धातुके साथ उनका सम्बन्ध-विचार आवश्यक है। काठ, पत्ते आदिको सम्पूर्ण रूपसे जला डालनेसे जो अवशिष्ट बच जाता है, उसे बोलचालमें भस्म या राख कहते हैं। ये सब भस्म प्रायः क्षारगुण युक्त है। विशेष उद्भिज्ज भस्ममें क्षारगुण अधिक मात्रामें देखा जाता है। आयुर्वेदमें विविध धातुको भस्ममें परिणत करनेकी प्रणाली वर्णित है। इमलोगोंके खाद्य लवणके सिवा सोरा, मल्लीमट्टी आदिको भी लवण बतलाया है। फलतः आयुर्वेद शास्त्रोक्त क्षार, भस्म और लवण इन तीन शब्दोंका पारिभाषिक अर्थ निकालना दुरूह है। अनेक समय एक ही पदार्थ तीन नामोंसे ही पुकारा जाता है।

लौह, सीस, ताम्र आदि द्रव्य उत्तप्त और क्षुब्ध अवस्थामें वायुस्थित अम्लजन (oxygen) के साथ मिलनेसे विकृत हो जाते हैं। इस विकारके परिमाणसे जो पदार्थ उत्पन्न होता है, उसका साधारण वैज्ञानिक नाम oxide है। संस्कृतमें इसे भस्म और अङ्गरेजोमें Calx कहते थे।

धातु पदार्थका इसी प्रकार भस्मीकरण अक्सिजन वायुके योगसे कम हो जाता है। रसायणशास्त्रके प्रतिष्ठाता फरासी लावोयसिर (Lavoisier)ने सबसे पहले इस तथ्यका आविष्कार किया। वैद्यशास्त्र वा प्रचलित भाषामें जिन्हें भस्म कहते हैं, वे सभी Oxide नहीं हैं। आधुनिक रसायन-शास्त्रमें उनमेंसे बहुतोंकी गिनती लवणमें करनी चाहिये।

आधुनिक रसायनमें क्षार (base) और (salt) ये दो शब्दनिर्दिष्ट सङ्कीर्ण पारिभाषिक अर्थमें प्रयुक्त होता है। अम्ल नामक एक और श्रेणीके पदार्थका रसायन शास्त्रमें उल्लेख है। एक उदाहरण देनेसे समझमें आ जायगा। चूना एक क्षार पदार्थ है और नीबूका रस एक अम्ल पदार्थ है। वे बहुत कुछ विपरीत धर्माक्रान्त हैं। दोनोंका पृथक् पृथक् आस्वादन है। कागजको लवापुष्पके रससे भिगोनेसे वह नीला हो जाता है और उसमें यदि एक बुन्द नीबूका रस डाल दिया जाय, तो वह नीला रंग लाल रंगमें पलट जाता है। फिर उसमें चूनेका पानी देनेसे वह लाल रंग पुनः नीला हो जाता है। क्षार और अम्ल बहुत कुछ विपरीत और विरुद्ध धर्मयुक्त है। अम्ल पदार्थमें क्षार मिलानेसे अम्लका अम्लत्व और

क्षारका क्षारत्व जाता रहता है। दोनों द्रव्यके मिलनेसे जो न तो क्षार और न अम्ल नूतन द्रव्य उत्पन्न होता है, उसीका पारिभाषिक नाम 'लवण' है।

सोडा, पटास आदि पदार्थ चूनेसे भी अधिक तीव्र क्षारधर्मयुक्त है। गन्धक द्रावक (Sulphuric acid), महाद्रावक वा यवद्रावक (Nitric acid) आदि तीव्र अम्लधर्माक्रान्त हैं। किन्तु एक दूसरेका धर्म नष्ट करता है। यवक्षारद्रावक (Nitric acid) पटासमें मिलानेसे सोरा (Nitre) में क्षार होता है। सुतरां सोरा एक लवण मात्र है।

साधारण नियम यह है। धातु द्रव्य अम्लजनके योगसे दग्ध हो कर जो (Oxide) पदार्थ बनते हैं, उनका साधारण नाम क्षार है। गन्धक, फस्फुरस (Phosphorus) अङ्गार आदि अपधातु अम्लजनके योगसे जिस पदार्थमें परिणत हो जाते हैं, उनका साधारण नाम अम्ल है। क्षार और अम्ल दोनोंके योगसे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनका साधारण नाम लवण (Salt है)।

ताम्रचूर्णको वायुमें उत्तप्त करनेसे वह जिस भस्ममें परिणत हो जाता है, वह इसी परिभाषाके अनुसार क्षार है। उसका अंगरेजी नाम है Cupric oxide। इसमें थोड़ा गन्धकद्रावक डालनेसे द्रावकका तीव्र अम्लगुण नष्ट हो जायगा। परिणाममें जो पदार्थ होगा वह तूतिया वा नीलाञ्जन (Cupric sulphate वा Blue vitriol) नामसे प्रसिद्ध होगा। सुतरां पूर्वकथित परिभाषाके मतसे तूतियाकी गिनती लवणमें हो जायगी। कुछ तूतियाको जलमें गला कर यदि उसमें लौहखण्ड डाल दिया जाय, तो उस लोहेके ऊपर तांबा जम जाता है। लोहा धीरे धीरे गायब हो जाता है और पीछे तांबेका स्थान ग्रहण कर वह गन्धकद्रावकके साथ मिल जाता और एक दूसरे लवणको उत्पादन करता है। यह लवण हीराकस (कसीस Green vitriol, ferrous Sulphate) से अभिन्न है।

तूतिया हीराकस आदि जिस अर्थमें लवण हैं, उस अर्थमें और भी अगण्य पदार्थोंको लवण श्रेणीमें रख सकते हैं। अम्लजनके योगसे उत्पन्न oxide मात्रको यदि भस्म कहें, तो साधारणतः धातुज भस्मको क्षार और अपधातुज भस्मको अम्ल तथा लवण मात्रके एक अंशको क्षार और दूसरे अंशको अम्ल कह सकते हैं। इस अर्थमें भस्म मात्र देखनेमें राखके जैसा न लगेगी। यहां तक कि अनेक वायवीय पदार्थ भस्म कहलावेंगे और उनमें क्षार धर्म तथा अम्ल धर्मका निरूपण करनेके लिये जो आस्वादादि अन्य उपाय निर्दिष्ट किया है, वह भी नहीं चलेगा। कोयला जलानेसे जो अङ्गार वायु उत्पन्न होती है, गन्धक जलानेसे जो घुआंके जैसा तीव्र गन्धी पदार्थ उत्पन्न होता है यहां तक कि कठिन पदार्थ जो बालू है वह भी इस पारिभाषिक अर्थसे भस्ममें गिनी जायगा। वायुमें सीसा गलानेसे उसमें जो मल वा भस्म पड़ जाती है, लोहेमें जो मोरचा लग जाता है, उन सबकी भी गिनती क्षारमें होगी। फिर सोरा (Nitre) सर्जिक क्षार (सज्जीमट्टी, Comon washing soda), तूतिया (Blue vitriol), हीराकस (Green vitriol), फिटकरी (Alum), खड़ी, (Chalk) मार्बल, सफेदा (white-lead), चांदीका अवच्छेदक (lunar caustic) अस्थिभस्म (bone ash) यहां तक, कि मट्टी कांच, पत्थर, मात्रन आदि नाना प्रकारके द्रव्य लवणश्रेणीमें गिने जायेंगे।

फलतः अम्लजनके साथ प्रायः सभी धातुओं और अपधातुओंका रासायनिक मेल लगता है और उनके द्वारा प्राय: सभी पार्थिवधातु और अपधातु अम्लजनके साथ युक्त हो कर विविध क्षार और विविध अम्ल उत्पादन करती हैं। यह क्षार और अम्ल पदार्थ भी पुनः नाना प्रकारके लावणिक द्रव्योंको उत्पादन कर पृथ्वीके एकदेशका निर्माण और उसका वैचित्र्य सम्पादन करता है।

अम्लजन छोड़ कर गन्धक, क्लोरिन आदि अपधातुओंके साथ और विविध धातु पदार्थोंके मिलनेसे नाना प्रकारके यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। फलतः स्वर्ण, प्लाटिनम आदि कितनी धातुओंके सिवा अन्यान्य सभी धातु खानके मध्य दूसरे दूसरे यौगिक पदार्थोंके साथ मिलित अवस्थामें रहती हैं। विशुद्ध अवस्थामें वे नहीं पाई जातीं। पृथ्वी पर जिन सब खानों वा यौगिक पदार्थोंमें धातु रहती हैं, उन्हें विविध उपायसे विश्लेषण द्वारा निकालना पड़ता है।

धातु निकालनेकी विविध प्रणाली।—(१) क्षार, अम्ल या लावणिक धातव पदार्थको जलमें या उत्तापसे गला कर उसमें ताड़ितप्रवाहके चलानेसे वह पदार्थ विश्लिष्ट हो जाता है। ताड़ित-प्रवाहोत्पादक बैटरोके दोनों प्रान्तोंसे दो गुच्छा तार ला कर यदि उस द्रव पदार्थमें डुबो रखें, तो एक तारके निमग्न प्रान्तमें विशुद्ध धातु जम जाती है। आज कल गिल्टी करनेके लिये यह उपाय हमेशा व्यवहृत हुआ करता है। सर हम्फरोडेवोने यही उपाय अवलम्बन करके पटाशक, सर्जक आदि अनेक धातुओंका नूतन आविष्कार किया और उन सब धातुओंको अल्प-परिमाणमें निकालनेके लिये वह प्रणाली आज भी काममें लाई जाती है। सम्प्रति फरासी रसायनवित् म्वाइसाँ (Moissan) ने एक प्रकारकी ताड़ित चुल्लीका (Eletric furnace) निर्माण किया है। उस यन्त्र द्वारा प्रबल ताड़ित-प्रवाह और प्रबल उत्तापके योगसे अलुमीन आदि धातु भी थोड़े ही समयमें अधिक मात्रामें पाई जाती है।

(२) ऊपरमें कह चुका है, कि तूतियाको जलमें गला कर यदि उसमें लोहा डाल दिया जाय, तो लोहेके ऊपर ताँबा जम जाता है और लोहा धीरे धीरे गायब हो जाता है। इसी प्रकार ताम्रज-लवणसे ताम्र निकाला जाता है। लोहेके बदले जिस तरह ताँबा निकलता है, उसी तरह जस्तेके बदले सीसा, ताँबेके बदले रूपा इत्यादि क्रमसे धातुके बदले दूसरी धातु विशुद्ध अवस्थामें निकाली जा सकती है।

स्वर्ण, प्लातिनक आदि कितनी धातु ऐसी हैं जो दूसरे पदार्थके साथ मिली हुई नहीं रहती। वे प्रायः विशुद्ध अवस्थामें पाई जाती हैं। पर हां, विशेष सावधानीसे उनमेंसे मैली मट्टी हटा कर अलग कर दी जाती है। सोनेकी छोटी छोटी कणा बालू, मट्टी और अन्य द्रव्योंमें छिपी रहती हैं। जलमें धो लेनेसे उसकी मैल दूर हो जाती है और भारी कणिका नीचे बैठ जाती है।

पाराके साथ सुवर्णादिका विशेष सम्बन्ध है। मट्टीमें जो स्वर्णरेणु है उसमें पारा मिलानेसे ही सोना पारेमें सट जाता है। पीछे उत्ताप द्वारा पारेको अलग कर देनेसे विशुद्ध सोना निकल आता है।

(४) लोहा, ताँबा, राँगा, जस्ता आदि धातु सांसारिक कार्योंमें बहुतायतसे व्यवहृत होती हैं, उन्हें खान से निकालनेकी साधारण प्रणाली यहां पर कहते हैं। भिन्न भिन्न धातुओंके लिये आकरिकको अवस्थाभेदसे और प्रादेशिक सुविधाभेदसे इस साधारण प्रणालीका विविध रूपान्तर प्रचलित है। सभी प्रणालियोंमें तीन भिन्न प्रक्रियाओंका बारी बारीसे व्यवहार करना पड़ता है।

प्रथम।—आकरिकको चूर्ण करके पहले वायु द्वारा प्रथम प्रतापके प्रयोगसे जलाना वा झुलसाना पड़ता है। इस प्रक्रियासे गन्धक आदि पदार्थ दग्ध हो वाष्पीभूत हो कर उड़ जाते हैं। धातुके कार्बनेट, नाइट्रेट वा इसी प्रकारकी दूसरी अवस्थामें रहनेसे उसका वाष्पीय भाग उत्तापके योगसे बाहर निकल जाता है। अंगरेजीमें इस प्रक्रियाको Roasting or Calcination कहते हैं।

द्वितीय।—इस बार उस धातुभस्म वा oxide के साथ कोयला (अङ्गार वा पत्थरका कोयला) मिला कर फिरसे उत्तापका प्रयोग करना पड़ता है। कोयला उस भस्मसे अम्लजनको खींच कर आप वायवीय अवस्थामें उत्पन्न हो जाता है। विशुद्ध धातु अम्लजनसे विमुक्त हो कर अवशिष्ट रह जाती है। इस प्रक्रियाका नाम है Reduotion or Snelting,

तृतीय।—अम्लजनको दूर करने बाद भी एक धातुके साथ अन्यान्य धातु मिश्रित रह सकती हैं। विभिन्न रासायनिक उपायोंसे इन सब धातुओंको अलग करके फेंक देना पड़ता है। विभिन्न क्षेत्रमें विभिन्न रासायनिक उपाय निर्दिष्ट है। कोई साधारण नियम देनेसे काम नहीं चलता। इस प्रक्रियाका नाम Purification है।

इन तीन प्रक्रियायों द्वारा धातु विशुद्ध और व्यवहारोपयोगी अवस्थामें आ जाती है। विभिन्न धातुके लिये विशेष विशेष नियम तत्तद्विषयक रासायनिक ग्रन्थोंमें लिखा गया है।

धातु-पदार्थका लक्षण।—धातुका विशिष्ट क्या है? धातु और उपधातुका पार्थक्य कौनसा लक्षण देख कर निर्णय कर सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देना सहज नहीं है। प्राचीन कालमें जितनी धातुएँ प्रचलित

थी, उनमें अनेक विशिष्ट धर्म थे। अन्यान्य पदार्थोंमें उन सब विशिष्ट धर्मोंका अभाव था। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र लौह, रङ्ग, सीस, पारद ये सब धातु गुरुभार विशिष्ट हैं इनमें उज्ज्वलपन और चमक दमक है, सभी (पारद अवश्य ही तरल है और कठिन अवस्थामें) घात-सह है। उन पर चोट देनेसे प्रसार होता है। ठनकानेसे भी एक प्रकारका विशेष शब्द निकलता है, इत्यादि धर्म धातु मात्रके निर्णायक थे। किन्तु अभी परिमित धातुकी संख्या इतनी अधिक है और वे इतने विभिन्न तथा विरुद्ध धर्मा क्रान्त हैं, कि इस प्रकारके धातु पदार्थके विशेष धर्म का निर्देश करना दुःसाध्य है। पटासम, सोडियम आदि धातु जलसे अपेक्षा लघु है, आन्तिमनि, विसमथ आदि धातु उतनी घातसह नहीं है। टेलूरम (Tellurium, नामक अपधातु, ग्राफाइट नामक अङ्गार (जिससे पेन्सिल तैयार होती है) ये सब पदार्थ यद्यपि धातु नहीं हैं, तो भी धातुके जैसा उनमें चमक दमक है। यथार्थमें धातु और अपधातु इन दो नामोंको पारिभाषिक भाव देना ही कठिन है। कितने पदार्थ ऐसे हैं, यथा—आर्सेनिक, आन्तिमनि, टेलूरम इत्यादि, जिन्हें कोई गुणोंके कारण धातुकी श्रेणीमें और कोई गुणोंके कारण अपधातुकी श्रेणीमें रख सकते हैं। नीचे कुछ स्थूल धर्मोंका उल्लेख किया जाता है। अधिकांश धातुमें ही ये सब धर्म पाये जाते हैं।

(१) धातुका आपेक्षिक गुरुत्व साधारणतः अपधातुकी अपेक्षा अधिक है। जलकी तुलनामें प्लातिनमका गुरुत्व २१, स्वर्णका १९, पारदका १३.६, सीसकका ११ है, इत्यादि। पक्षान्तरमें पटासम, सोडियम, लिथम आदि जलकी अपेक्षा लघु है।

(२) अत्यन्त उष्ण नहीं होने पर धातु पदार्थ न तो द्रवीभूत होता है और न वाष्पीभूत। धातुमें एक पारद सहजमें तरल है और महाविद्युत् देनेसे वाष्पीय है। अक्सिजनादि अपधातु सहज अवस्थामें वायवीय और ब्रोमिन तरल अवस्थामें रहता है। गन्धक, आयोडीन, आर्सेनिक पदार्थ सहजमें वाष्पीभूत हो जाते हैं। पक्षान्तरमें अङ्गार, सिलिकन, बोरन आदि अपधातु सहजमें द्रवीभूत वा वाष्पीभूत नहीं होते।

(३) ताप और ताड़ित परिचालनकी क्षमता धातु पदार्थको अत्यन्त अधिक है। अपधातु साधारणतः अपरिचालक है।

अपधातुओंमें ग्राफाइट, अङ्गार, सिलिकन आदिकी परिचालन क्षमता कुछ अधिक है।

(४) घातसहता तान्यता आदि बहुतसे धर्म धातु पदार्थमें वर्तमान हैं। इसीसे उन्हें पीट कर और खींच कर तार बनाया जाता है।

अपधातु जो सहजमें कठिनावस्थामें रहती हैं। (जैसे अङ्गार, गन्धक इत्यादि) वे साधारणतः भङ्गप्रवण हैं।

(५) धातु पदार्थके पृष्ठदेश पर एक प्रकारका औज्ज्वल्य वा चाकचिक्य देखा जाता है, स्वर्ण, रौप्य, ताम्रादि धातु पदार्थोंमें ये गुण विशेष रूपसे वर्तमान हैं। इसीसे उन सब द्रव्योंमें अच्छी तरह पालिश कर सकते हैं। यही कारण है, कि धातु पदार्थसे दर्पण तथा अलङ्कारादि बनाये जाते हैं। टेलूरम, ग्राफाइट, कठिनावस्थ आयोडीन आदिमें उज्ज्वलपन कम देखा जाता है।

(६) धातुद्रव्य साधारणतः आलोकके लिये स्वच्छताहीन है। आलोक उसे भेद कर नहीं जा सकता। अक्सिजनादि वायवीय अपधातु सम्पूर्ण स्वच्छ हैं। गन्धकादिके भीतर हो कर आलोक कुछ कुछ जा सकता है। पक्षान्तरमें अङ्गार अपधातु होने पर भी वह किस कुछ स्वच्छताहीन है। जिनमें ताड़ित-परिचालनकी क्षमता अधिक है उनमें यही तत्त्व अभी निर्णीत हुआ है।

(७) धातु पदार्थ पर आघात करनेसे एक प्रकारका मीठा शब्द निकलता है। अपधातु निर्मित पदार्थमें इस गुणका अभाव है।

(८) धातु पदार्थमें अक्सिजन मिलानेसे क्षार उत्पन्न होता है। अक्सिजनके योगसे अपधातु अम्ल उत्पादन करती है। क्षार और अम्लके योगसे लवण उत्पन्न होता है। साधारण नियम यह है कि धातुका Oxide क्षारजनक (basic) है और अपधातुका Oxide अम्लोत्पादक (acid forming)। साधारण नियम ऐसा होने पर भी इसके व्यभिचार हैं। अनेक धातुओंमें एकाधिक oxide हैं; एक ही धातु विभिन्न परिमाणमें अक्सिजन ग्रहण करती है, जैसे

क्रोमक मङ्गको लौह, रङ्ग, सुवर्ण, प्लातिनम इत्यादि। इन सब धातुओंके विभिन्न oxide में जिसमें अक्सिजनकी मात्रा कम है, वे ही क्षार-जनक हैं, जिनमें अक्सिजनकी मात्रा अधिक है, वे अम्लोत्पादक हैं। वे अन्य तीव्र क्षार पदार्थोंके साथ मिल कर लवण उत्पादन करती हैं।

(९) द्रवीभूत लवणमें बेटरोके दो प्रान्तोंमें संलग्न दो तारोंके निमग्न करनेसे लवण विश्लिष्ट होने लगता है। ऊपरमें बतला चुके हैं, कि लवण मानका एक भाग धातुघटित और अन्य भाग अपधातु घटित है। बेटरोका जो तार जस्तेके साथ संलग्न रहता है, उस तारमें धातु घटित भाग और जो तार अङ्गार वा प्लातिनकके साथ संलग्न रहता है, उसमें अपधातु-घटित भाग जम जाता हैं। धनताड़ितका प्रवाह अङ्गार वा प्लातिनकसे निकल कर तार द्वारा तरलपदार्थके मध्य होता हुआ बेटरीके जस्तेकी ओर जाता है। प्रवाह द्वारा तरल द्रव्य विश्लिष्ट हुआ करता है। उसका धातुभाग ताड़ित-प्रवाहको ओर चल कर जस्ता-संलग्न तारमें और अपधातुभाग ताड़ितप्रवाहको ओर प्रतिकूल दिशामें चल कर अन्य तारमें जम जाता है।

(१०) एक सङ्कीर्ण दीर्घ सूत्रकार वा रेखाकार छिद्रके भीतर सूर्यका प्रकाश ले जा कर वहांसे उसे यदि एक तिकोने कांचको कलम (Prism) हो कर ले जांय, तो प्रकाशका रास्ता घूम जाता है और उस रास्ते पर यदि एक कागज रखें तो उस पर भिन्न भिन्न रङ्गोंसे चित्रित एक फीता नजर आयेगा। इस फीतेका एक छोर लाल और दूसरा छोर बैंगनी रङ्गका हो जायगा। बीचमें पीला, नीला तथा भिन्न भिन्नके रङ्ग देखनेमें आयेंगे। इस प्रक्रिया द्वारा सूर्यका शुभ्र प्रकाश विश्लेषित हो कर विविध वर्णोंका प्रकाश उत्पादन करता है। इस प्रक्रियाको आलोक-विश्लेषण और तत्साधनोपयोगी तन्त्रको आलोक विश्लेषण-यन्त्र (Spectroscope) कह सकते हैं। सूर्यके आलोक वा उस प्रकारके दीप्तिमान पदार्थके निःसृत आलोकमें जितने वर्णोंका विकाश देखा जाता है, अन्य आलोकमें उतने दिखाई देते। प्रदीपके पलीतेमें थोड़ा नमक देनेसे दीपशिखा उज्ज्वल पीतवर्णमें रंग जाती है। इस पीत आलोकका यन्त्र द्वारा विश्लेषण करनेसे केवल एक उज्ज्वल पीतवर्णकी रेखा देखनेमें आती है। नमकमें सर्जक धातु वर्त्तमान है। सर्जक धातुके दीप्तियुक्त होनेसे हो वह एक वर्णात्मक आलोक देती है। सर्जक धातुके बदले पटाशक, लिथक आदि धातुओंको प्रदीप्त अवस्थामें यदि परीक्षा की जाय, तो कितनी रेखाएं नजर आती हैं। सूर्यके आलोकमें जिस तरह असंख्य वर्ण पाये जाते हैं, उस तरह इसमें नहीं पाये जाते। साधारण नियम यह है कि धातु पदार्थ प्रदीप्त अवस्थामें केवल बहुत सी रेखाएं देता है। अपधातु प्रदत्त रेखाओंको संख्या बहुत ज्यादा है। सूर्यके आलोकमें रेखाको संख्या गणनातीत है। इसी प्रकार आलोक-विश्लेषण-यन्त्रके विविध वर्णोंको रेखाको संख्या देख कर वह पदार्थ धातु है, वा अपधातु, इसका ज्ञान आपसे आप हो जाता है।

ऊपरमें जो सब उदाहरण दिये गये हैं, उनसे यह साफ साफ मालूम हो जायेगा, कि सचमुच धातुके लक्षणका निर्द्देश करना कठिन है। पदार्थ अक्सर धातु और अपधातु इन दो श्रेणियोंमें जो विभक्त किये जाते हैं, उनको पद्धति ठोक न्यायशास्त्रसे अनुमोदित नहीं होगो, प्राकृत पदार्थ निचयका श्रेणीविभाग करनेमें हो सभी जगह इस प्रकार देखा जाता है। जन्तु और उद्भिद् इन दो प्रकारको श्रेणियोंमें जीवगण विभक्त हैं। कौन जीव है और कौन उद्भिद् इसका स्थिर करना बड़ा हो सहज है। किन्तु ऐसे निकृष्ट श्रेणीके प्राणी वा जीव अनेक हैं, जिन्हें जन्तु वा उद्भिद् ठीक ठीक बतला नहीं सकते। जान्तव और औद्भिद ये दो प्रकारके धर्म हो उनमें वर्त्तमान हैं। यहां भी बहुत कुछ वैसा हो है।

यवजन वा यवक्षारजन (Nilrogen), प्रस्फुरक, आर्सेनिक, आन्तिमनि, विसमथ इन पांच मूल पदार्थोंकी रसायनशास्त्रमें एक श्रेणीमें गिनती की गई है। इनमें परस्पर अनेक विषयोंमें सादृश्य है। अन्यान्य मूल पदार्थोंके साथ इनका सम्बन्ध भी अनेक विषयोंमें एकसा है। जिस यौगिक पदार्थमें ये वर्त्तमान हैं, उनमें भी नाना विषयोंमें परस्पर सादृश्य देखा जाता है।

यवजानसे लेकर विसमथ तक यदि सिलसिलेवार तुलना की जाय तो यह साफ देखनेमें आदेगा कि रसायम

गुण और धर्म धीरे धीरे परिवर्त्तित होता जाता है। नाइट्रोजन एक स्वच्छ आदहीन वर्णरहित वायवीय पदार्थ है, उससे तीव्र अम्लधर्मविशिष्ट मवाद्रावक उत्पन्न होता है। उसमें धातुका लक्षण कुछ भी नहीं है। बिसमथ कठिन श्वेतवर्ण आभविशिष्ट धातव और धातु पदार्थ है। इसे अक्सिजनमें दग्ध करनेसे जो भस्म उत्पन्न होती है, वह क्षारधर्मयुक्त है और अन्यान्य धातव पदार्थोंके साथ युक्त हो कर आवश्यक पदार्थ प्रस्तुत करता है। इन सब कारणों से बिसमथको धातु श्रेणीमें रख सकते हैं। अस्तु, एक नाइट्रोजनसे ले कर अपधातुमें और आण्टिमनि पदार्थ बिसमथके जैसा धातुमें गिना जाता है। किन्तु मध्यवर्त्ती आर्सेनिकको किसी धातुमें की श्रेणी या अपधातुमें लेकर निर्णय करना बहुत कठिन है। आर्सेनिक अनेक विषयोंमें फस्फरसके जैसा है, इस हिसाबसे इसे अपधातु और अनेक विषयोंमें आण्टिमनिके जैसा होनेके कारण इसे धातु कह सकते हैं।

धातुओंका श्रेणीविभाग—मूल पदार्थका श्रेणीविभाग करनेमें जो गड़बड़ी होती है, धातुओंमें श्रेणीविभाग कर लेनेमें ठीक वही गड़बड़ी सामने आती है। लिथम, सर्जक, पटासम, रुबीडम और सीजम इन धातुओंमें परस्पर इतना सादृश्य है तथा अन्यान्य धातुओंके साथ इनका साधारण वैसादृश्य भी इतना है कि इन्हें यदि एक स्वतन्त्र निर्दिष्ट लक्षणयुक्त श्रेणीमें रखें, तो कोई आपत्ति नहीं। किन्तु अन्यान्य धातुओंकी अलग ऐसा सुलक्षणयुक्त श्रेणी निर्देश नहीं हो सकता। किसी एक धातुको मान लेनेसे ऐसा देखा जाता है कि किसी गुणमें तो एक श्रेणीमें और किसी गुणमें अन्य श्रेणीमें स्थान पानेका उसका अधिकार है। अतः उसे किस श्रेणीमें स्थान दें सहजमें इसकी मीमांसा करना दुरूह है। अतएव भिन्न भिन्न रासायनिक पण्डित इस प्रकारके स्वाभाविक क्रमानुसार श्रेणीविभागमें प्रवृत्त हो कर विभिन्न रूपसे इसकी मीमांसा करते हैं।

अम्ल या उसी प्रकारके हाइड्रोजनविशिष्ट पदार्थमें सर्जक धातु डालनेसे देखा जाता है, कि उसमेंसे हाइड्रोजन बाहर निकलता है और सर्जक धातु हाइड्रोजनको अलग कर नूतन पदार्थको उत्पादन करती है। इस हिसाबसे देखा जाता है, कि हाइड्रोजनके एक परमाणुकी जगहमें सर्जकका ठीक एक परमाणु बैठ जाता है। सर्जकका एक परमाणु हाइड्रोजनके एकमात्र परमाणुको हटा कर उसका स्थान ले लेता है। अन्यान्य धातुओंको ले कर परीक्षा करनेसे देखा जाता है कि एक हाइड्रोजनके परमाणुको हटानेमें सभीको एकसी क्षमता नहीं है। पटास धातुका एक परिमाण सर्जकके जैसा हाइड्रोजनके एक परमाणुका स्थान लेता है। किन्तु जस्तेका एक परमाणु हाइड्रोजनके दोका, अलुमिनका एक परमाणु हाइड्रोजनके तीनका स्थान लेता है। इसी प्रकार अन्यान्य धातु विभिन्न संख्यामें हाइड्रोजनके परमाणुका स्थान ग्रहण कर सकती है। जिस धातुका परमाणु हाइड्रोजनके जितने परमाणुका समकक्ष है, यह व्यापार देख कर धातुओंका एक हिसाबसे श्रेणी विभाग हो सकता है। किन्तु इस प्रकारसे श्रेणी विभाग करनेमें भी नाना प्रकारके दोष होते हैं।

मन्देलजीफ (Mendeljeff) नामक विख्यात रूस पण्डितने सभी धर्म और सभी गुणकी उपेक्षा कर केवल पारमाणविक गुरुत्व (Atomic weight) के अनुसार मूल-पदार्थोंका श्रेणी विभाग करके दिखलाया है, कि इस प्रकारसे जो श्रेणीविभाग होता है, वही अन्यान्य प्रणालियोंके मतसे विभागकी अपेक्षा युक्तिसङ्गत और दोषवर्जित है। हमने ऊपरमें धातुकी जो तालिका दी है, वह मेन्देलजीफकी प्रणालीके अनुसार है। इस प्रणालीसे सभी मूल पदार्थ आठ श्रेणियोंमें विभक्त होता है। किसी एक श्रेणीमें जिन सब पदार्थोंके नाम हैं। उनमें कुछ सौसादृश्य वर्त्तमान है।

यह प्रणाली भी जो सर्वथा दोषशून्य है सो नहीं कह सकते। एक उदाहरण देनेसे ही समझमें आ जायेगा। प्रथम श्रेणीके मध्य लिथम, सर्जक, पटासम, रुबीडम, सीजमको स्थान मिला है। यह स्वाभाविक और युक्तिसङ्गत है। किन्तु इसी श्रेणीमें फिर ताम्र, रौप्य और स्वर्णको भी स्थान मिला है। अथच इन पिछले तीन धातुओंके साथ प्रथम पाँच धातुओंका प्रायः किसी विषयमें मेल नहीं खाता। ये सम्पूर्ण भावसे पृथक

धर्माक्रान्त हैं। स्वर्णके साथ प्लातिनमका मेल है, तांबेके साथ पारदका मेल है, किन्तु सर्जक या पटाशकके साथ स्वर्ण और तांबेका सादृश्य है, ऐसा जोरसे कह सकते हैं। यही कारण है, कि मेन्दिलजीफ साहबने अपनी प्रणालीमें सभीको एक श्रेणीमें रखा है। यह पार्थक्य दिखलानेके लिए हमने एक श्रेणीमें भी पुनः क ख इत्यादि चिह्न द्वारा उपविभागकी कल्पना की है। एक श्रेणीमें भी दो या दोसे अधिक उपभाग बतलाये गए हैं।

धातुओंका विशेष विवरण।—१। (क) लिथक, सर्जक, पटाशक, रुबिदक, शीशक। बहुतसे विशेष धर्मोंके कारण इन्हें एक विशिष्ट श्रेणीमें रख सकते हैं। इनके साथ अक्सिजन और क्लोरीणादि अपधातुओंका सम्बन्ध इतना घनिष्ट है, कि ये कहीं भी असंयुक्त विशुद्ध अवस्थामें पाये नहीं जाते। सभी जगह इन्हीं सब अपधातुओंके साथ मिले रहते हैं और उस यौगिक पदार्थमेंसे विशुद्ध धातुका निकालना भी सहज नहीं है। सर हमफ्री डेवीने पहले पहल ताड़ितप्रवाहकी सहायतासे इनके निष्काशन प्रणालीको उद्भावित किया, यह ऊपरमें कहा जा चुका है। सर्जक और पटाशक ये दो धातु विविध पदार्थोंमें पाये जाते हैं। उद्भिज्ज पदार्थको जलानेसे जो भस्म बच जाती है उसमें यथेष्ट पटाशक वर्त्तमान है। सोरेमें भी पटाशक है। हम लोगोंके आहार्य लवण, सज्जी मट्टी आदि पदार्थोंका उपादान सर्जक है। लिथक, रुबिदक और कोशक ये तीनों धातु पृथिवीमें बहुत कम पाये जाते हैं।

अक्सिजनके साथ इनका सम्बन्ध इतना प्रबल है कि इन्हें वायुकी श्रेणीमें रख नहीं सकते। यहां तक कि विशुद्ध धातु वायुसंस्पर्शमात्र अक्सिजनके साथ मिला रहता है। जलमें उसे डालनेसे जल उसी समय विक्षिप्त होने लगता है। धातु जलके अक्सिजनके साथ युक्त हो जाता है और जलका हाइड्रोजन भाग भी पृथक् हो कर निकल जाता है। इस समय इतना ताप उत्पन्न होता है कि हाइड्रोजन जल जाता है। अक्सिजनके प्रति इस प्रबल आकर्षणके लिए इन सब धातुओंको वायुशून्य स्थानमें रखना होता है अथवा मट्टीतेलके जैसा जिन सब पदार्थोंमें अक्सिजन नहीं है, उसीमें इन्हें डुबो कर रखना पड़ता है। अम्लजनके योगसे जो oxide तैयार होता है वह जलमें गल कर तीव्र क्षार धर्मयुक्त पदार्थको उत्पन्न करता है।

उक्त बहुत सी ऐसी धातु हैं जो जलसे लघु हैं। इस कारण वे जलमें बहती हैं, अल्प उत्तापसे गलती हैं और वाष्पीभूत होती हैं, तथा अत्यन्त कोमलताके कारण छुरी द्वारा बहुत आसानीसे काटी जाती हैं। जिन सब लावणिक पदार्थोंमें ये सब धातु वर्त्तमान हैं ये प्रायः सभी तापके योगसे द्रवीभूत होते हैं और जलमें फेंकनेसे गल जाते हैं।

ये सब धातु दीपशिखाको उज्ज्वलवर्णमें रञ्जित करती हैं। धातु अथवा जिस किसी लवणमें यह धातु वर्त्तमान है, उसे दीपशिखामें रखनेसे दीपशिखा सफेद उजाला देती है। लिथक लोहित वर्णमें, सर्जक पीतवर्णमें, पटाशक, रुबीदक और कोशक ये तीन पदार्थ नीलाभवर्णमें दीपशिखाको रञ्जित करती हैं।

आलोकविश्लेषणयन्त्र द्वारा इन सब पदार्थोंसे निःसृत आलोकको परीक्षा करनेसे देखा जाता है, कि उसमें बहुतसी क्षीण उज्ज्वल रेखाएं हैं। उन रेखाओंका वर्ण और विन्यासप्रणाली देख कर किस धातुसे यह रेखा आ रही है, यह सहजमें कह सकते हैं। वस्तुतः इस प्रकार आलोकविश्लेषण-यन्त्रसे आलोक परीक्षा द्वारा ही रुबीदक और कोशक धातुका अस्तित्व बुनसेन (Bunsen)-से आविष्कृत हुआ था।

लिथकसे ले कर कोशक तक जितनी धातु हैं, उनके नाम पारमाणविक गुरुत्वके अनुसार सिलसिलेवार दिये गये हैं। धातुओंके धर्मकी आलोचना करनेसे भी देखा जाता है कि लिथक सबसे निस्तेज और कोशक सबसे तेजस्वी है। पारमाणविक गुरुत्व जिस तरह बढ़ता है, रासायनिक धर्मोंका प्राबल्य और तीव्रता भी उसी तरह बढ़ती है।

जिन सब सुपरिचित प्राकृतिक पदार्थोंमें इस श्रेणीकी अन्तर्गत धातु वर्त्तमान हैं, उनके विषयमें दो एक बात कह देना आवश्यक है।

लवण जो खाद्य द्रव्यमें गिना जाता है, वह सर्जकके साथ क्लोरिनके योगसे उत्पन्न होता है और [illegible]

नोनमक Sodic chloride समुद्रके जलमें बहुत मिलता है। सिन्धुतटवर्ती प्रदेशमें तथा पञ्जाब खानोंमें खान रिय लवण (Rock salt) पाया जाता है।

सज्जी-मट्टी—अङ्गारकक्षार-कार्बनेट अफ सोडा (Carbonet of soda), साबुन, कांच सोडावाटर आदि पानीय प्रस्तुत करनेके लिये काम करते यह पदार्थ बहुत काममें लाया जाता है। इसके लिये बड़े बड़े कारखाने हैं।

सोहागा—Borax, Borate of soda का स्वर्णकार लोग व्यवहार करते हैं।

वह्निक्षार—(काठ, पत्ता जलानेसे जो भस्म बच जाती है) पटास कार्बनेट (Potassic carbonate) इसका प्रधान उपादान है।

सोरा—Nitre or potassic nitrate—प्राणिज पदार्थके सड़नेसे अमोनिया उत्पन्न होती है, अमोनिया कुछ जीवाणु विशेषकी सहायता (महाद्रावक) जलमें परिणत होती है। उद्भिज्ज क्षारपदार्थ इसी नाइट्रिक एसीडके योगसे सोरेमें रूपान्तरित होता है। उद्भिज्ज और प्राणिज पदार्थको बहुत दिनों तक गीली जमीनमें वायुके मध्य सड़ानेसे सोरा उत्पन्न होता है। यह बारूद तैयार करनेके लिए व्यवहृत होता है।

११। (ख) ताम्र, रौप्य स्वर्ण,—इन धातुओंके साथ (क) वर्गीयुक्त उल्लिखित लिथकादि पांच धातुओंका सादृश्य बहुत ही कम है। अम्लजनके साथ इनका उतना सम्बन्ध नहीं है। इसी कारणसे अनेक समय विशुद्ध वा प्राय विशुद्ध पाये जाते हैं।

ताम्र उज्ज्वल रक्तवर्णका और रौप्य उज्ज्वल शुभ्रवर्णका है—अम्लजनादिके साथ इनका सम्बन्ध बहुत कम रहनेके कारण यह उज्ज्वलपन जल्दी नष्ट नहीं होता। इन्हें पीट कर पतला पत्तर और खींच कर बारीक तार बनाते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे मुद्रा और अलङ्कारादि प्रस्तुत करनेमें ये तीन धातु व्यवहृत होते हैं।

ताम्र और रौप्य महाद्रावकमें बहुत जल्द गल जाता है। सोनेको महाद्रावक भी नहीं गला सकता। ये सब ताड़ितके उत्कृष्ट परिचालक हैं। इसीसे ताड़ित-प्रवाह चलानेमें तांबेके तारका व्यवहार होता है। इसमें पालिश देनेसे यह यथेष्ट शुभ्र आलोक देता है, इसीसे रौप्यसे उत्कृष्ट दर्पण प्रस्तुत होता है। रौप्य और स्वर्ण अपेक्षाकृत कोमल हैं। ताम्र मिलानेसे ये मजबूत हो जाते हैं।

आकरिक ताम्र अवश्य विशुद्ध अवस्थामें नहीं मिलता। अम्लजनके साथ रहनेसे इसे कोयलेसे उद्धार करना होता है। कोयला अम्लजनका भाग खींच लेता है। गन्धकके साथ युक्त रहनेसे आकरिकको जलानेसे गन्धक उड़ जाती है। अम्लजनके योगसे ताम्र भी भस्म (oxide)में परिणत हो जाता है, फिर कोयलेकी गर्मीसे इस भस्ममेंसे विशुद्ध ताम्र निकाला जाता है। गन्धकयुक्त आकरिक ताम्रके साथ अनेक समय लोहा मिला रहता है। इस लोहेको दूर करनेके लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

गन्धक-द्रावकके कारखानेमें जो आकरिक जलाया जाता है, उसमें ताम्र गन्धकके साथ युक्त अवस्थामें रहता है। इस तांबेको लवण द्वारा जलानेसे जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसे जलमें गला कर यदि उसमें लोहेका खण्ड डाल दिया जाय तो लोहखण्डके ऊपर ताम्र जम जाता है।

रौप्यको अविशुद्ध आकरिकसे निकालनेकी अनेक प्रकारकी प्रणालियां प्रचलित हैं। कभी कभी पारदके प्रयोगसे रौप्य खींच कर लाया जाता है। सीसेके साथ रौप्यके मिले रहनेसे उस मिश्र धातुको गला कर धीरे धीरे उसे ठंढा होनेके लिये यदि कुछ समय तक छोड़ दिया जाय, तो उसमें सीसेके दाने (Crystal) पड़ जाते हैं। द्रवीभूत मिश्र धातुमें वायुका प्रवाह चलानेसे सीसा अम्लजनके योगसे क्रमशः भस्मीभूत हो कर पृथक् हो जाता है।

कहीं रौप्य वा खनिज पदार्थोंको जलमें गला कर उस जलमें ताम्रखण्डके डाल देनेसे तांबेके ऊपर रौप्य जम जाता है।

स्वर्ण प्राय सभी समय विशुद्ध अवस्थामें वर्त्तमान रहता है। पर हां, उसमें बालू और मिट्टी कुछ कुछ अवश्य मिली रहती है, जिसे अलग करनेमें बहुत परिश्रम उठाने पड़ते हैं। स्वर्ण खूब भारी पदार्थ है, अतः यदि पानीमें धो देनेसे मैली मिट्टी जलमें दूर हो जाती है।

ताम्ररौप्य और स्वर्ण विशुद्ध और अविशुद्ध अवस्थामें विविध कार्यों में व्यवहृत होते हैं। पीतल काँसा आदि उपधातुओंका प्रधान उपादान ताम्र है।

तूतिया, तुत्थ, नीलाञ्जन—Cupric, Sulphate गन्धक द्रावकमें तांबा गला कर तैयार किया जा सकता है। गन्धकयुक्त आकरिक ताम्र वायुमें दग्ध हो कर भी प्रस्तुत होता है।

काष्टिक (Lunar caustic silver nitrate) डाक्टर लोग चमड़े के ऊपर प्रलेप देनेके लिये व्यवहार करते हैं। यह रौप्यके महाद्रावकमें गलनेसे उत्पन्न होता है। यह पदार्थ भी इससे प्रस्तुत अन्यान्य रौप्यज पदार्थके आलोकयोगसे विकृत होता है। इसीसे फोटाग्राफिमें या आलोकचित्र-विद्यामें इसका व्यवहार होता है।

२। (क) वेरिलक, मगनीशक, कालक, स्त्रंशक, वेरक—ये सब धातु अनेकांशमें सदृश धर्मयुक्त हैं। किन्तु शेष तीन धातुओंमें जितनी सादृश्य है, प्रथम दोमें उतनी नहीं है। स्थूलतः ये सब धातु १ (क) श्रेणीके अन्तर्गत लिथकादि धातुओंके साथ अनेक विषयों में समधर्मा हैं। अक्सिजनके साथ इनका भी यथेष्ट सम्बन्ध है, पर १ (क) श्रेणीके जैसा सम्बन्ध प्रबल नहीं है। ये भी विशुद्ध अवस्थामें कहीं पायी नहीं जातीं, बहुत परिश्रमसे ताड़ितप्रवाहादि की मध्यतादि द्वारा निकाली जाती हैं। शेष तीन धातुओंको वायुकी श्रेणीमें नहीं रख सकते, रखनेसे ये अक्सिजनके साथ युक्त हो जाती हैं। जलमें डालनेसे ये धीरे धीरे जलको विश्लेषण करती हैं और जलके अक्सिजनके साथ मिल कर हाइड्रोजनको अलग कर देती हैं। अक्सिजनके योगसे जो भस्म उत्पन्न होती है, उसे जलमें गलानेसे वह क्षार धर्मयुक्त देखी जाती है। लेकिन इनका क्षार धर्म पटाशादि क्षारके जैसा तीव्र नहीं है।

वेरक दीपशिखामें हरितवर्ण और स्त्रंसक गाढ़ा लोहित वर्ण देता है। बारूद वा उसी प्रकारके पदार्थके साथ वेरक और स्त्रंसकयुक्त पदार्थको मिला कर सबूज और लाल रंगके आलोकका मसाला तैयार किया जाता है। कालकको और दीपशिखाको लोहित वर्णमें रञ्जित करते हैं, लेकिन वह लोहितवर्ण उतना गाढ़ा नहीं होता। मग्नीशकके तारको जलानेसे उज्ज्वल, तीव्र और शुभ्र रोशनी होती है। रातको अन्धकारमें फोटोग्राफ उतारनेके लिए इसी रोशनीका व्यवहार होता है।

पांच धातुओंमें मग्नीशक विशेषतः कालक धातुमें ही विशेष पाया जाता है, शेष तीनोंमें अपेक्षाकृत दुष्प्राप्य है। मग्नीशकयुक्त लावणिक पदार्थमें एप्सम सल्ट (Magnesium sulphate) चिकित्सार्थमें व्यवहृत होता है।

कालक धातु चूर्ण और चूर्णज पदार्थकी उपादान है। चूर्ण—(Calcium hydaonide) खड़ी, मार्बल पत्थर (calcium carbonate) (कार्बोनेट आव लाइम)। इसके अलावा शङ्ख शम्बुक, कौड़ी, प्रवाल आदि द्रव्य एक एक पदार्थसे निर्मित हैं। बंगाल देशमें कई जगह मट्टीके भीतर कंकड़ मिलता है, यह भी उनका एक प्रधान उपादान है, इसको कार्बनेट उत्तापसे गरम करनेसे अङ्गारकाम्ल (Carbonic acid) निकल जाता है, (Calcic oxide) वा कालक धातुकी भस्म रह जाती है। जलमें फेंक देनेसे यह भस्म जलीयमके द्वारा चूनेमें परिणत हो जाता है। चूनेको अधिक दिनों तक वायुमें रखनेसे वह धीरे धीरे अङ्गारकाम्ल वायुको ग्रहण करता है।

प्राणियोंकी अस्थिमें फसफेट आव लाइम (Calcic phosphate) बहुत पाया जाता है। अस्थि-भस्मसे चूर्णज अंशको पृथक् करके निकाला जाता है।

चूना क्लोरिन वायुके संयोगसे Chloride of lime or bleaching powder तैयार होता है।

चूना गन्धकद्रावकमें मिल कर Epsom और plaster of paris (Calcic sulphate)को उत्पन्न करता है। तसवीर उतारनेके लिये यह पदार्थ व्यवहृत होता है।

२। (ख) यशद, कदमक, पारद। प्रथम श्रेणीके मध्य (क) विभागका जैसा सम्बन्ध इस द्वितीय श्रेणी-(क) के साथ है, (ख) का वैसा नहीं है। फिर २ (क) श्रेणीमें वेरिलक किसी किसी विषयमें (ख) विभागके यशद और कदमकके साथ सादृश्यविशिष्ट है। यशद और कदमकमें जितना सादृश्य है, पारदके साथ उन दोनोंका

उतना नहीं है। यशद और कैडमियम ये दोनों धातु, गन्धकद्रावक और क्लोरिनद्रावकमें द्रवीभूत हो कर हाइड्रोजनको निकाल देती हैं, लेकिन पारद धातु ऐसा नहीं करती। वस्तुतः पारद धातु सहजमें किसी द्रावकके ऊपर कोई काम नहीं करती। यह हमेशा तरल अवस्था में रहती है। ये तीन धातु तापके प्रयोगसे वाष्पीभूत की जाती है।

यशद और कैडमियमको उत्तप्त करनेसे ये बहुत कुछ मैग्नेशियमके जैसा उज्ज्वल आलोककी सहायतासे जलती है। पारदमें गर्मी पहुंचानेसे यह धीरे धीरे अक्सिजन ग्रहण करता है फिर अधिक गर्मी लगनेसे यह उस अक्सिजनको छोड़ कर विशुद्ध धातुमें परिणत होता है।

यशद और पारा यही दो धातु विशेष कामोंमें व्यवहृत होती हैं। यशदको तांबेसे मिलानेसे पीतल बनता है। यशदके पत्तर अनेक कामोंमें आते हैं। ताड़ित प्रवाहोत्पादक बैटरीको तैयार करनेके लिये यशदको आवश्यकता बहुत अधिक होती है। लोहेके पत्तर या तारको तरल यशदमें डुबोनेसे उसमें जल्दी मोरचा नहीं लगता। पारद दर्पण बनानेके काममें आता है तथा विविध वैज्ञानिक यन्त्रके निर्माणमें भी इसका व्यवहार होता है।

प्राकृतिक जिङ्कको जलानेसे Oxide या भस्म उत्पन्न होती है। उसमें कोयला मिलानेसे ताप प्रयोग द्वारा यह विशुद्ध यशद हो जाता है। प्राकृतिक यशदके साथ प्रायः कैडमियम भी कुछ कुछ पाया जाता है। पारद अनेक जगह विशुद्ध अवस्थामें मिलता है। पारद यदि गन्धकके साथ युक्त रहे तो उसे जलानेसे गन्धक जल जाता है और पारद वाष्प हो जाता है। इस वाष्पीभूत पारदको किसी बरतनमें जमा सकते हैं।

हिङ्गुल सिन्दूर गन्धकके साथ पारदके योगसे उत्पन्न होता है।

कालोमल (Calomel) और करोसिव सबलिमेट ये दोनों पदार्थ क्लोरिनके साथ पारदके योगसे उत्पन्न होते हैं। डाक्टरीमें इन दोनोंका व्यवहार होता है।

३। (क) स्कन्दम, इण्डियम, गलियम, थलियम।

(ख) अलुमीन, गलक इन्दुक, थलक।

अलुमीनके सिवा इस श्रेणीको अन्यान्य धातु बहुत सामान्य परिमाणमें रहती है। थलक किसी किसी विषयमें पटाश आदिके जैसा है। अनेक विषयोंमें सीसकके साथ इसका सादृश्य है। थलक निःसृत आलोकको आलोकविश्लेषक यन्त्र द्वारा देखनेसे उसमें एक उज्ज्वल हरिद्वर्ण रेखा नजर आती है। गलक और इन्दुक ये दोनों धातु आलोक परीक्षा द्वारा आविष्कृत हुई हैं।

अलुमीन धातु विशुद्ध अवस्थामें पाई नहीं जाती। यह अक्सिजनके योगसे जो भस्म उत्पन्न करती है उसे अलुमीना कहते हैं। अलुमीनाके बालूके साथ मिलनेसे जो सिलिकेट पदार्थ बनता है, वह मट्टी मात्रका प्रधान उपादान है। विशुद्ध चीनामट्टी (Porcelain) प्रायः विशुद्ध अलुमीन सिलिकेट है, बालू पदार्थ जिस तरह अलुमीनके साथ युक्त हो कर सिलिकेट प्रस्तुत करता है उसी तरह अन्यान्य धातु भस्मके साथ मिल कर दूसरा दूसरा सिलिकेट प्रस्तुत किया करती है। अलुमीना सिलिकेट अन्यान्य धातु पदार्थोंके उत्पन्न सिलिकेटके साथ युक्त होकर अनेक प्रकारके पत्थर उत्पन्न करता है। चूर्ण आदि कुछ मूल्यवान् रत्नोंका प्रधान उपादान अलुमीन है।

अलुमीन बहुत उपकारी धातु है। इसमें चमक दमक खूब है, बहुत कुछ चांदीसे मिलता जुलता है। यह खींचनेसे सूक्ष्म तार और पीटनेसे सूक्ष्म पत्तर हो जाता है। अनेक धातुओंकी अपेक्षा यह बोझ भी खूब सहता है। कभी भी इसका अक्सिजन इस पर आक्रमण नहीं कर सकता। इसी कारण लोहेके जैसा इसमें मोरचा नहीं लगता। इन सब गुणोंसे अलुमीन लोहेसे भी अधिक उत्कृष्ट है। फिर लोहेकी तुलनामें यह बहुत हलका है और उससे ढाई गुना भारी है। सस्तेसे विशुद्ध अलुमीन तैयार होनेसे यह अनेक जगह लोहेकी जगहमें काम करता है, इसमें सन्देह नहीं। विशेषतः सब पार्थिव पदार्थमें लोहेकी अपेक्षा अधिक पाया जाता है। किन्तु वर्त्तमान कालमें विशुद्ध अलुमीनका निकालना बहुत कठिन व्यापार है। फिलहाल ताड़ित-चुल्लीकी सहायतासे प्रबल ताड़ित-प्रवाह द्वारा अलुमीन निकाला जाता है।

Ruby, chrysoberyl, sapphire आदि बहुमूल्य

मणि प्रायः विशुद्ध अलुमीना मात्र हैं। अन्यान्य धातु अल्प मात्रमें रह कर भिन्न भिन्न वर्णोंको उत्पादन करती हैं। अलुमीन सिलिकेटके अन्यान्य सिलिकेटोंके साथ मिलनेसे पत्थर और मट्टी तथा अलुमीन सलफेटके साथ पटाश सलफेटके मिलनेसे फिटकरी बनती है।

४। (क) तितानक, थिकमक, सीरक, थोरक।

(ख) जर्मणक, रङ्ग, सीसक।

रङ्ग और सीसके सिवा अन्य थोड़ी धातु बहुत कम पाई जाती हैं। उनका नाम मात्र ही यथेष्ट है।

रङ्गका अंगरेजी नाम टीन है। उसकी oxide या भस्मसे अङ्गारके द्वारा खूब आँच दे कर विशुद्ध टीन निकाला जाता है।

टीन एक चमकीली धातु है। इससे पत्तर और तार बनाये जा सकते हैं। यह सहजमें अक्सिजन ग्रहण नहीं करता। इसीसे इसकी सफेदी जल्दी नष्ट नहीं होती। लोहेके पत्तर पर गलित टीनको ढाल कर जो पत्तर बनता है, उसे भी टीन कहते हैं। कनस्तर आदि इसी पत्तरसे बनाये जाते हैं।

सीसक आकरिक अवस्थामें प्रायः गन्धकके साथ रहता है। वायुके मध्य जलानेसे गन्धक बहुत कुछ जल जाती है और सीसा भस्ममें (oxide) परिणत हो जाता है। इस सीसा भस्मको आकरिक गन्धयुक्त सीसेके साथ उत्तप्त करनेसे सभी गन्ध जल जाती है, केवल विशुद्ध सीसक बच जाता है।

सीसक निहायत मुलायम धातु है। कागज पर घिसक देनेसे उस पर काला दाग पड़ जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व जलकी तुलनामें ग्यारहवां है। अक्सिजनके ग्रहण करनेसे सीसककी सफेदी नष्ट हो जाती है। वायुके संसर्गसे ताप दे कर जलानेसे सीसा बहुत जल्द भस्म हो जाता है। बन्दूककी गोली और यन्त्रालयके अक्षर तैयार करनेके लिये भी इसका यथेष्ट व्यवहार होता है।

सफेदा सीसेका कार्बनेट है। सीसयुक्त पदार्थ शरीरमें विषका काम करता है।

५। (क) वनदक, नवक, तन्तलक।

(ख) आर्सेनिक, आन्तिमनि, बिस्मथ।

(क) श्रेणीकी धातुओंमेंसे कुछोंके नाममात्र ही यथेष्ट हैं।

(ख) धातुओंके साथ नाइट्रोजन और प्रस्फुरकका सम्बन्ध-विचार पहले ही किया जा चुका है। धातुके मध्य इनके अनेक विषयोंमें अपधातुके लक्षण वर्त्तमान हैं। आर्सेनिक और आन्तिमनि भङ्गुर पीटनेसे पत्तर नहीं होते। उत्तापके योगसे ये बहुत जल्द वाष्प हो कर उड़ जाते हैं। आर्सेनिक संयुक्त पदार्थमात्र तीव्र विष है। आर्सेनिकको नाइट्रोजनसे जलानेसे संकोमका विष बनता है। गन्धकके योगसे आर्सेनिकमेंसे हरिताल और मनःशिला प्रस्तुत होती है। आन्तिमनि पदार्थ गन्धकके योगसे रसाञ्जन बनाता है। आन्तिमनि और आर्सेनिकमें इतना सादृश्य है, कि अनेक समय दोनोंमें भ्रम हो जानेकी सम्भावना रहती है। विशेष सावधान हो कर इसकी परीक्षा करनी होती है।

६। (क) क्रोमक, मोलिदक, तुङ्गस्तक और यरु णक इनमेंसे कोई भी बहुतायतसे नहीं मिलता। क्रोमकयुक्त पदार्थ मात्र ही सफेदीके लिये प्रसिद्ध है।

७। मङ्गनक—यह धातुयुक्त पदार्थ अनेक स्थानोंमें मिलता है। किन्तु यह भङ्गुर है, अक्सिजनके साथ बहुत जल्द मिल जाता है। इन्हीं सब कारणोंसे विशुद्ध धातु किसी काममें नहीं आती। मङ्गनकयुक्त पदार्थका वर्ण हमेशा उज्ज्वल रहता है।

८। (क) लौह, निकेल, कोबाल्ट।

ये तीन धातु अनेक विषयोंमें आपसमें मिलती जुलती हैं। किसी किसी विषयमें इनका पूर्वोक्त क्रोमक और मङ्गनकके साथ भी सादृश्य है। सभी धातुओंमेंसे लोहेमें चौम्बकधर्म ज्यादा पाया जाता है। निकेल और कोबाल्ट भी इस विषयमें कुछ कुछ लोहेके जैसा है।

सभी जगह लोहा जैसी कार्यकर धातु है, वैसी और कोई धातु नहीं है। इसीसे इसकी मांग भी अधिक है और खानसे अधिक परिमाणमें निकाला भी जाता है। किन्तु विशुद्ध लोहेका व्यवहार बिलकुल नहीं है, ऐसा कह सकते हैं। जो सब लोहा काममें लाया जाता है, उसमें अङ्गार और अन्यान्य अपधातु रहती हैं। पीटे हुए लोहेमें अङ्गारका भाग अपेक्षाकृत

कम रहता है। इसका जोड़ा मजबूत है। कभी पीट कर कोई चीज बना नहीं सकते। पर हाँ, यह अधिक ताप कम उत्तापसे गल जाता है, इसीसे गढ़नेके काममें इसका आदर है। इसमें दूसरेका भाग अधिक है, प्रायः एक आनामात्र अङ्गार रहता है। इस्पात खूब स्थितिस्थापक और अत्यन्त दृढ़ पदार्थ है।

लोहा आकरिक अवस्थामें अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिला रहता है। अम्लजनके योगसे लोहेकी भस्ममें, गन्धकके योगसे सलफाइडमें इसके सिवा कार्बनेट, सिलिकेट आदि नाना अवस्थामें लोहा पाया जाता है। गन्धकादि मल जला कर फेंक देना पड़ता है। अम्लजनयुक्त लोह भस्मको अङ्गारके साथ द्रवीभूत करनेसे उसमेंसे अम्लजन निकल जाता है। द्रवीभूत विशुद्ध लोहा धीरे धीरे अङ्गारको ग्रहण कर उसके साथ मिश्रित हो जाता है और उससे लोह, पिट्‌के लोहे, इस्पात आदिमें परिणत होता है।

गैरिक (गेरुमट्टी) नामक पदार्थका प्रधान उपादान लोहा है। जिस मट्टीमें गैरिक या लोहज पदार्थ कुछ भी रहता है, उसका वर्ण लाल हो जाता है। छोटा नागपुरके अञ्चलमें लोहज पत्थर देखनेमें आता है और वहांसे जितनी नदियां निकली हैं, उनके जलका रङ्ग वर्ष कोईके आधिक्यसे कम हो जाता है।

लोहेका प्रधान दोष अम्लजनसे आक्रान्त हो कर क्षय हो जाता है और उसका मोर्चा लगता रहता है। रंगा कर या अन्य धातुका आवरण दे कर इसकी रक्षा करनी होती है। [illegible] लोहेका उत्कृष्ट है।

कोमल और मजबूत जैसा लोहाका भी विविध गुणोंका पदार्थ उत्पन्न करता है। निकेल और लोहेमें भी यह गुण कुछ कुछ पाया जाता है। निकलके ऊपर अच्छी पालिश की जा सकती है और अन्य धातु इसको कलईको सहजमें नष्ट कर देती है। निकेलके साथ तांबा और जस्ता मिलानेसे जर्मन सिल्वर (German Silver) बनता है।

८। (ग) इरीदम, इरम पलदम अस्मम, रडियम, प्लातिनम ये सब धातु प्रायः समान गुणवाली हैं। प्लातिनम आपेक्षिक विशेष अधिक है और इसमें जो भी अर्थ वर्तमान है, प्रायः कोई कम अन्यमें भी देखे जाते हैं। अम्लजन और अन्यान्य द्रावक द्रव्य सोनेके जैसा इसे भी आक्रमण कर सकते हैं। यवक्षारद्रावक (Nitrica acid) के साथ क्लोरिन द्रावक (Hydrochlorica cid) मिलानेसे जब द्रावक प्रस्तुत हो जाता है जो सोने और प्लातिनमको आक्रमण कर सकता है, पर इस ग्रोधीको सभी धातुओंको नहीं। अम्लजनादिके साथ इसका सम्बन्ध अधिक न रहनेके कारण सोनेके जैसा ये भी विशुद्ध अवस्थामें पाये जाते हैं। आकरिक प्लातिनममें अन्यान्य धातु भी कुछ कुछ मिश्रित रहती है। उस मिश्रित पदार्थमेंसे प्लातिनमको निकालनेमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

प्लातिनम सफेद चमकीली धातु है। इसके सूक्ष्म पत्तर और बारीक तार बनते हैं। इनको सफेदी किसीसे भी नष्ट नहीं होती। जब तक यह खूब गरम नहीं की जाती, तब तक गलती नहीं है। इन्हीं सब कारणोंसे प्लातिनम बहुतसे कामोंमें व्यवहृत होता है। तड़ित प्रकाशोत्पादक यन्त्रोंमें प्लातिनमके पत्तरका व्यवहार होता है। इसके सिवा इसका पत्तर तार और पात्रादि वैज्ञानिक परीक्षामें व्यवहृत होते हैं। यह धातु सोनेसे कम दरमें बिकती है।

(घ) हेलियम—कई वर्ष हुए सर निर्मन लकियरने यन्त्र द्वारा सूर्यके आलोकका विश्लेषण करके उसमेंसे एक उज्ज्वल पीतवर्णके आलोकका अस्तित्व आविष्कार किया। आलोक अन्य किसी परिचित पदार्थसे नहीं मिलता था। उस समय लकियरने स्थिर किया था, कि सूर्य मण्डलमें ऐसा कोई धातु पदार्थ वर्तमान है जो पृथ्वी पर आजतक भी नहीं मिलता। सूर्यका ग्रीक नाम हेलि (Helios) है। तदनुसार पृथ्वी पर अज्ञात उस धोर धातुका Helium नाम पड़ा है। कुछ दिन हुए (१८९५ ई०में) आर्गन नामक वायुके आविष्कारके बाद अध्यापक रामजे (Ramsay) एक प्रकारके खनिज द्रव्यमें आर्गनका अन्वेषण कर रहे थे। उस आकरिकको उत्तप्त करनेसे उसमेंसे जो वाष्पीय पदार्थ निकला उसे दीप्तिमान् करके रामजेने जब उससे निःसृत आलोककी परीक्षा की तब देखा कि वह आलोक

सौर-धातु Helium प्रदत्त आलोकसे अभिन्न है। पीछे और भी अनेक आकरिकोंसे वायवीय धातु पदार्थ पाया जाता है। आलोक परीक्षा द्वारा यह पदार्थ धातु धर्माक्रान्तके जैसा स्थिर किया जाता है। आज तक भी यह तरल वा कठिन अवस्थामें परिणत किया जा सका है। ऊपर जितनी धातुओंका उल्लेख है, उनमेंसे एक पारद तरल पदार्थ है और सभी कठिन पदार्थ हैं। यह वायवीय धातु पदार्थ आज तक प्रचलित न था। यह वायु अत्यन्त लघु गुणयुक्त है। यह हाइड्रोजनकी अपेक्षा दुगना भारी है। यह वायु एक स्वतन्त्र मूल पदार्थ है या एकाधिक मौलिक वायुके मिश्रणसे उत्पन्न हुई है, इसमें आज तक भी संशय बना है।

हेलिकके रासायनिक धर्म विषयमें हम लोग आज तक भी अनभिज्ञ हैं। सम्भवतः वह धातुकी तालिकाकी अष्टम श्रेणीमें ही रखा जायगा।

हाइड्रोजनकी धातवता—हाइड्रोजन वायु जलकी अन्यतर उपादान है। इसके सिवा यह अन्यान्य विविध पार्थिव पदार्थोंमें वर्त्तमान है। हाइड्रोजन अकसर वायवीय अवस्थामें ही पाया जाता है। वायुमें भी फिर ऐसा लघु पदार्थ दूसरा नहीं है। हाइड्रोजनकी गिनती अपधातु ही की गई है। किन्तु कई एक कारणोंसे सन्देह होता है, कि हाइड्रोजनके वायवीय पदार्थ होने पर भी यथार्थमें यह धातु-पदार्थ है। रासायनिक धर्मको आलोचना करनेसे अपधातुकी अपेक्षा धातुके साथ ही इसका सादृश्य देखा जाता है।

एक धातु जितनी आसानीसे एक अपधातुके साथ रासायनिक-सम्बन्धमें मिलती है, अन्य धातुके वह उतनी आसानीसे नहीं मिलती। साधारण नियम यह है—हाइड्रोजन प्रायः सभी अपधातुओंके साथ मिल कर यौगिक पदार्थ उत्पन्न करता है। किन्तु धातु द्रव्यके साथ हाइड्रोजनका जो रासायनिक सम्बन्ध है, वह प्रायः नहींके बराबर है। किसी तरल यौगिक पदार्थमें ताड़ित-प्रवाहका दबाव डालनेसे उसका धातुभाग एक ओर जा कर एक तारमें जम जाता है और अपधातुभाग विपरीत ओर जा कर दूसरे तारमें जमता है।

यौगिक धातुमें हाइड्रोजनके रहनेसे देखा जाता है, कि वह भी उपधातुके अवलम्बित पथ पर न जा कर धातुके अवलम्बित पथ पर ही जाता है।

धातुक (सं० पु०) शैलज, शिलाजतु, शिलाजीत।

धातुकार (सं० पु०) १ धातुमय देह। २ पूर्व रचित एक बौद्धशास्त्रका नाम।

धातुकासीस (सं० क्लो०) धातुरूपं कासीसं। कसीस।

धातुकुशल (सं० त्रि०) धातुषु कुशलः। जो धातुक्रिया विषयमें दक्ष हो, जो धातु क्रियाका विषय अच्छी तरह जानता हो।

धातुक्षय (सं० पु०) धातूनां क्षयो यत्र। १ कासरोग, खाँसीका रोग। इसमें शरीर क्षीण हो जाता है, इसीसे इसको धातुक्षय कहते हैं। २ प्रमेह आदि रोग जिनमें शरीरसे बहुत वीर्य निकल जाता है।

धातुगर्भ (सं० पु०) देहगोप, वह कँगूरेदार डिब्बा या पात्र जिसमें बौद्ध लोग बुद्ध या अपने दूसरे भारी साधु-महात्माओंके दाँत या हड्डियाँ आदि रखते हैं।

धातुगोप (सं० पु०) धातुगर्भ देखो।

धातुग्राहिन् (सं० पु०) धातुग्रह-णिनि। १ वह मट्टी जो ताँबेके साथ मिल जानेसे पीतल हो जाती है। २ खपर, खपड़ा।

धातुघ्न (सं० क्लो०) धातुं स्वर्णादिकं हन्ति हन टक्। १ धातुनाशनशील, वह पदार्थ जिससे शरीरका धातु नष्ट हो। २ काञ्जिक, काँजी।

धातुचेतनकर (सं० क्लो०) १ दुग्ध, दूध। २ आमलक, आँवला, औंरा।

धातुचैतन्य (सं० त्रि०) धातु या वीर्यको उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला।

धातुद्रावक (सं० पु०) धातुं द्रावयति द्रु-णिच्-ण्वुल्। धातु द्रवकारक, सोहागा। इसके डालनेसे सोना आदि गल जाता है।

धातुनाशन (सं० क्लो०) धातुं स्वर्णादिकं नाशयतीति नश-णिच-ल्यु। काञ्जिक, काँजी।

धातुप (सं० पु०) धातुं अस्थिमज्जामांसोत्पादकपदार्थविशेषं पाति रक्षतीति पा-क। १ रसरूप प्रथम धातु, शरीरमें वह रस या पतला धातु जो भोजनके उपरान्त शीघ्र ही तैयार हो जाता है।

को भागे और वहां महावालुक नदीके दूसरे किनारे जा कर रहने लगे। तामिलगण नदीके दूसरे किनारे अर्थात् अनुराधपुर प्रदेशको भी जीत कर वहां राज्य करने लगे थे।

जो सब मौर्यवंशीय नदीके दूसरे पार भाग कर रहने लगे, उनमेंसे धातुसेन एक भूम्यधिकारी थे। उन्होंने नन्दीवापी नामक स्थानमें अपना वासस्थान कायम किया। धाता नामक उनके एक पुत्र था जो अम्बिलीयाग नामक स्थानमें रहता था। धाताके दो पुत्र हुए, बड़ेका नाम धातुसेन और छोटेका शीलतिष्य वोधि था। इनके मामा महानाम धर्मार्थमें जीवन उत्सर्ग करके अनुराधापुरमें ही रहते थे। उनका वासस्थान मल्लो दीर्घसन्धानसे प्रतिष्ठित मन्दिरमें था। धातुसेन भी मामाके अधीन एक याजक हो गये थे। एक दिन धातुसेन जब एक पेड़के तले बैठ कर निविष्टचित्तसे स्तव पाठ कर रहे थे, उस समय खूब जोरसे पानी वरसने लगा। किन्तु धातुसेनका ध्यान उस ओर तनिक भी आकर्षित न हुआ। वे स्तवपाठमें बिलकुल निमग्न थे। इसी समय एक सांप अपने फणको उनके मस्तक तथा पुस्तक पर फैलाए वहां खड़ा हो गया। उनके मामा तथा एक दूसरे याजकने यह घटना देख ली। याजकने बुरी नीयतसे उनके मस्तक पर बहुत धूल फेंकी, किन्तु इस पर भी धातुसेन विचलित न हुए। मामाने अपने भांजेको ऐसी अवस्थामें देख सोचा कि, "एक दिन यह बालक राजा होगा। इसलिये मुझे इसके प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिये।" अन्तमें उन्होंने धातुसेनको मन्दिरमें ले जा कर इस प्रकार उपदेश दिया, 'प्रियदर्शन! रातदिन अपनी उन्नतिके लिये अटूट परिश्रम करते रहो, कभी समयको वरवाद न करो।' इसी उपदेशसे वे सब विद्यामें पारंगत तथा पटु हो गये थे।

तामिलके सरदार राजा पाण्डुको जब यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने धातुसेनको पकड़ मंगानेके लिये रातमें एक गुप्तचर भेजा। स्थविर (धातुसेनके मामा) को यह बात झट मालूम हो गई, वे अपने भांजेको स्थानान्तरित करनेका आयोजन करने लगे। जिस समय वे जानेको तैयार थे, ठीक उसी समय गुप्तचरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु धातुसेन और उनके मामा बहुत होशियारीसे उनकी आंखों पर धूल डाल कर अदृश्य हो गये। इस तरह वे दोनों शत्रुके पंजेसे भाग कर दक्षिणकी ओर गण नामक बड़ी नदीके किनारे आ पहुँचे। उस समय नदीमें जोरोंसे बाढ़ आई हुई थी। स्रोतका प्रखर वेग देख कर वे नदी पार कर न सके। तब स्थविरने नदीको सम्बोधन करके कहा, 'हे नदी! जिस तरह तूने हम लोगोंकी गति रोक रखी, उस तरह तुम यहां हृहत् ह्रदके आकारमें विस्तृत हो कर शत्रुका भी पथ रोकी रहो।' बाद वे पैदल नदी पार कर गये। वह दिन तो उन्होंने एक निर्जन स्थानमें आश्रय ले कर बिताया। दूसरे दिन उन्हें खानेको थोड़ी खीर मिली। स्थविरने एक ही बरतनमें खीरको दो भाग कर एक भाग धातुसेनको खाने कहा, किन्तु उन्होंने मामा स्थविरके पात्रमेंसे अन्न ग्रहण करना अनुचित समझ, खीरको जमीन पर डाल कर भोजन किया। इससे भी स्थविर भांजेकी महानुभवता समझ गये।

उधर पांच वर्ष राज्य कर चुकने पर तामिलराज पाण्डु पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे उनका लड़का फरीन्द्र राजा हुए। इनका कनिष्ठ भाई छोटा फरीन्द्र राज्यका शासनकर्त्ता बनाया गया। इन दो राजाओंके राजत्वकालमें (४५५ ई०में) धातुसेनने उनसे लड़ाई छेड़ दी। लड़ाईमें शत्रु सम्पूर्ण रूपसे पराजित और विनाश हुए। सोलह वर्ष राज्य करने बाद फरीन्द्रकी मृत्यु हो गई। पीछे छोटा फरीन्द्र राजा हुआ। किन्तु दो ही मासके बीचमें वे धातुसेनके हाथसे युद्धमें मार डाले गये। इनके मरने पर तामिलजातीय दाठेयने तीन वर्ष राज्य किया। पीछे वे भी धातुसेनसे मारे गये। बाद तामिल वंशके पिठेय राजा बने। ये भी सात महीनेके बाद ही धातुसेनके युद्धमें विनष्ट हुए। इसी जगह तामिल वंशका शेष हुआ और धातुसेन सिंहलके सिंहासन पर बैठे।

धातुसेनने राजा हो कर अपने भाईकी सहायतासे तामिलको अच्छी तरह पराजित किया। पीछे उन्होंने अपने देशमें २४ दुर्ग निर्माण किये, सुशासनसे प्रजाकी सुख शान्ति खूब बढ़ाई और विदेशियोंके हाथसे लाञ्छित

राजकुमार कश्यपके साथ षड़यन्त्र करके राजाको कैद कर लिया। राजकुमार कश्यपने दुष्ट साथियोंके दहकावेमें पड़ कर राजपुरुषोंको विनाश कर छत्रदण्ड ग्रहण किया। राजकुमार मौद्गल्यायनने जब उन्हें दमन करना असमर्थ समझा, तब वे जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) को चल पड़े। राजजामाताने राजा कश्यपको राज्यके गुप्त धनका पता लगानेके लिये उत्तेजित किया और कहा, 'राजाने गुप्त धन अपने छोटे लड़केके लिये रख छोड़ा है।" राजा कश्यपने उसी समय वन्दी पिताको धनादि दिखा देनेके लिये कहला भेजा। राजा धातुसेन यह सुन कर अवाक् हो रहे। कश्यपने दूतसे इसका कुछ जवाब न पा कर पुनः दूत भेजा। अन्तमें वन्दी राजाने कहा, 'तुम मुझे कालवापी-सरोवरके पास ले चलो, मैं वहीं धनागार दिखलाये देूंगा।' राजा कश्यपने प्रलुब्ध हो कर पिताके लिये एक टूटी फूटी बैलको गाड़ी भेजी। वृद्ध राजा भी उसी पर चढ़ कर काल-वापीकी ओर चल दिये। गाड़ीवानने राजाको क्षुधातुर देख थोड़ा भूना चावल जो वह खा रहा था, दिया। राजाने भी बहुत प्रसन्न चित्तसे उसे खाया और पीछे मौद्गल्यायनके नामसे एक पत्र लिखा, तथा उसे द्वार-नायकके पद पर नियुक्त किया। कालवापी-विहारके स्थविरने राजाका आगमन सुन कर उनके लिये छिपके मांस इत्यादिके साथ अच्छी रसोई पकाई। जब राजा वहां पहुँचे तो दोनोंने आस पास बैठ कर घंटों कथा-वार्त्ता की। याजकने उन्हें प्रबोध देनेकी चेष्टा की। पीछे वृद्ध राजाने भोजनादि करके कालवापी सरोवरमें प्रवेश किया और थोड़ा जल पी कर राजानुचरोंसे कहा, 'बन्धुगण! यही मेरी धनसम्पत्ति है।' राजानुचर यह सुन कर उसी समय उन्हें राजधानीको ले गये और वहां जा कर उन्होंने राजासे कहा, 'हुजूर! यह बूढ़ा जब तक जीता रहेगा, तब तक केवल छोटे लड़केके लिये धन जमा करेगा और हम लोगोंके विरुद्ध लोगोंको उत्तेजित करेगा, इससे अच्छा है, कि इसे मार डालिये।' यह सुन कर राजा कश्यप राजपरिच्छेदसे भूषित हो कारागार-में पिताके सामने गये और बहुत घमंडसे उनके सामने टहलने लगे। वृद्ध राजाने जब समझा कि यह मुझे मारने को आया है, तब उन्होंने स्नेहपूर्वक पुत्रसे कहा, 'राजाधिराज! मौद्गल्यायन मेरा उतना ही स्नेहका पात्र है जितना कि तुम।' यह सुन कर कश्यप हँस पड़े और उन्होंने राजाको खुले बदनमें चाबुक मारनेकी आज्ञा दी। पीछे जीवितावस्थामें उन्हें लोहेकी जंजीरसे बांध जमीनमें गड़वा दिया, केवल सिर बाहर निकला रहा। कुछ दिन बाद दुरात्मा कश्यपने उसे भी कीचड़से ढकवा दिया। १८ वर्ष राज्य करनेके बाद राजा धातुसेन इस तरह ४७७ ई०में पुत्रके हाथसे मार डाले गये।

धातुसेन—सिंहलकी प्राचीन राजधानी अनुराधापुरके निकटवर्त्ती एक पर्वत। राजा धातुसेनने यहां अपने नाम पर विहार और दीर्घिकाकी प्रतिष्ठा की थी।

धातुस्तम्भक (सं० त्रि०) वीर्यको रोकनेवाला, जिससे वीर्यका स्तम्भन हो और वह देरसे गिर पड़े।

धातुस्तम्भनकर (सं० क्ली०) जातीफल।

धातुहन (सं० पु०) गन्धक।

धातू (सं० स्त्री०) धातु देखो।

धातूपल (सं० पु०) धातुः उपधातु रूपः उपलः। कठि-निका, खरिया मट्टी, खरी।

धातृ (सं० त्रि०) धा तृच्। १ धारक, धारण करनेवाला। २ पोषक, पालन करनेवाला। (पु०) ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५ आत्मा। ६ वायुभेद। ७ आदित्यभेद। ८ ब्रह्माके एक पुत्रका नाम। ९ भृगु-पुत्रभेद, भृगुमुनिके एक पुत्रका नाम। १० प्रजासर्गकारक सप्तर्षि।

धातृपुत्र (सं० पु०) धातुः पुत्रः ६-तत्। ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार।

धातृपुष्पिका (सं० स्त्री०) धातृपुष्पी, स्वार्थे कन्, पूर्व ह्रस्व, कप्., टापि अत इत्वं। धातकी, धवका फल।

धात्र (सं० क्ली०) धीयते अस्मायत्र धा-अधि करणे ष्ट्रन्। १ भाजन, पात्र, बरतन। धाता ब्रह्मा-आदित्यो वा देवता अस्य अण्। २ आदित्य देवताक वा ब्रह्म-देवताक द्वादश कपालसंस्कृत पुरोडाशादि।

धात्री (सं० स्त्री०) धीयते पीयते धा-ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। उण् ४।१५८) टित्वात् ङीप्। या दधाति धरति धा-तृच ङीप्। १ माता, मा।

आठ महीनेके गर्भका ओजः माता अर्थात् गर्भधारिणीके

पर्व गर्भके प्रति बारम्बार दौड़ता रहता है; इसीसे जो मानव भावमें सबोंमें प्रसिद्ध होता है, उसकी अकाल मृत्यु होती है। २ उपमाता, वह स्त्री जो किसी शिशुको दूध पिलाने और उसका लालन पालन करनेके लिये नियुक्त की जाय, धाय, दाई। इसके लक्षणादिका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

धात्रीलक्षण—बालकको दूध पिलानेके लिये यदि धात्री नियुक्त करनी हो, तो उसका दोषगुण अच्छी भांति विचार कर निम्नलिखित प्रकारकी धात्री रखनी चाहिये। जो धात्री सजाति हो, मध्यमवयस्का अर्थात् युवती हो, सुशीला हो, जो सर्वदा सम्भावसे सुख सुखसे रहती हो, अक्षदुग्धा अर्थात् जिसका दूध वातादि दोषसे दूषित न हो जिससे दूध अधिक हो, जो जीववत्सा अर्थात् जिसकी सन्तान हो, जो दयाशील हो, लज्जाशीला हो, जो थोड़ेही-में सन्तुष्ट हो जाती हो, जो चञ्चल न रहती हो, जिसका आचरण उत्तम हो और जो शिशुको अपनी सन्तान जान कर दूध पिलाती हो, वही स्त्री धात्रीके योग्य है।

निषिद्ध धात्रीका लक्षण—जो शोकाकुला, क्षुधिता, परिश्रान्ता, व्याधियुक्ता हो, जिसका स्तन लम्ब या अपूर्ण हो, जो अत्यन्त मोटी वा अत्यन्त पतली हो, गर्भिणी हो, ज्वरपीड़ित हो और जिसके दोनों स्तन लम्बे और बहुत ऊँचे हों, (ऊँचा स्तन चूसनेसे बालक का मुख बड़ा हो जाता है और लम्बा स्तन बालककी नाक और मुंहको ढक लेता जिससे उसकी मृत्यु होती है,) जो अजीर्ण अथवा अपथ्य खानेवाली हो, दूषित कार्यमें आसक्त हो तथा क्षुधान्विता और चञ्चलचित्त वाली हो, ऐसी दोषयुक्त स्त्रीका दूध पीनेसे शिशु रोगातुर हो जाता है। दूध पिलाते समय बालकको माता या धात्रीको सुन्दर वस्त्र पहन कर आसनके ऊपर पूर्व मुख किये बैठना चाहिये। पीछे दाहिने स्तनको अच्छी तरह धो कर कुछ दूध नीचे गिरा देना चाहिये और तब शिशुको उत्तरमुखी करके गोदमें ले कर दूध पिलाना चाहिये।

दधाति धारयति गर्भमिति धा तृच् ङीप्। ३ क्षिति, पृथ्वी, जमीन। ४ गायत्रीस्वरूपिणी भगवती। ५ गङ्गा। ६ आमलकी वृक्ष, आंवला। यह वृक्ष अतीव शुभदायक है। इसका गुण रक्तपित्त और प्रमेहनाशक तथा अत्यन्त पुष्टिकारक और रसायन है। आमलकी अम्लरस द्वारा वायु, मधुर रस और शीतलता द्वारा पित्त एवं कषाय रस और रुक्ष-गुण द्वारा कफ नाश करती है। सुतरां आमलकी त्रिदोषनाशक है। इसकी मज्जामें भी वैसा ही गुण है। (आमला) आमलकी और हरीतकी देखो।

धात्रीकी उत्पत्ति विवरण—पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है। अनन्तरको जब इन्द्रादि सभी पर जब विष्णु मोहसे क्षुब्ध हो गये, तब देवताओंने महादेवके वचनानुसार प्रकृतिकी आराधना की। इस पर देवीने सन्तुष्ट हो कर कहा था, मैं त्रिधा हो कर सत्त्व रज और तमोगुणमें वर्त्तमान हूं। अभी तीनों गुण मेरे अंशसे गौरी और रमारूप हैं। अतः उन्हींकी आराधना करनेसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।" देवताओंने वैसा ही किया। तीनों गुणोंने देवताओंको तीन बीज दे कर कहा, जहां विष्णु हैं, वहीं इन तीनों बीजोंको ले जा कर बोओ। तीन बीजसे तीन पौधे उत्पन्न हुए और वही धात्री (आंवला), मालती तथा तुलसी कहलाये। सरस्वतीसे धात्री, लक्ष्मीसे मालती और गौरीसे तुलसीकी उत्पत्ति हुई। इन तीन वृक्षोंके पानेसे विष्णुका मोह जाता रहा।

धात्री-माहात्म्य—माता जिस तरह अपनी सन्तानके प्रति दया रखती है, धात्रीकी भी उसी तरह मनुष्यों के ऊपर दया बनी रहती है।

जो धात्री स्नान करते हैं उनके सब विघ्न दूर हो जाते हैं और उन्हें समस्त तीर्थस्नानका फल मिलता है। जो धात्री फलमें स्नान करते हैं, वे कलिके सब दोषोंसे रहित हो जाते हैं और अन्तमें विष्णुपदको पाते हैं। फल खानेसे भी विशेष पुण्य होता है—

"न च गङ्गा न गया काशी न च पुष्कर।
एकैव च यथा पुण्या धात्री माधववासरे॥
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीस्नानं समाचरेत्।
यस्य तज्जन्मसहस्रीयात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥"

(पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

हरिवासरके दिन एक धात्रीफल सब तीर्थोंकी अपेक्षा पुण्यदायक है। इस दिन काशी, गया और पुष्कर भी इसके समान नहीं है। जो कार्त्तिक मासमें

धात्री-स्नान करते हैं, उन्हें अश्वमेधका फल मिलता है। जो केवल धात्रीफलका स्मरण करते हैं, उनके पूर्व जन्मके सभी पाप नाश हो जाते हैं और जो प्रतिदिन उसका नाम लेते हैं, उनके मानसिक, वाचिक और कायिक समस्त पाप जाते रहते हैं। अष्टमी, नवमी, अमावस्या, रविवार और संक्रान्ति इन सब दिनोंमें जो धात्रीका स्मरण करते, उनके घरमें धात्री सर्वदा वास करती हैं और प्रेत, कुष्माण्ड (शिवके अनुचर) तथा राक्षस भाग जाते हैं। (पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

जो धात्रीवृक्षकी छायामें पितरोंके उद्देशसे श्राद्धादि कार्य करते हैं, उनके पितर मुक्ति लाभ करते हैं। मस्तक, हस्त, मुख और कण्ठ आदि स्थानोंमें जो धात्री फल धारण करते हैं, वे महामहिमशाली और पुण्यात्मा होते हैं।

पद्मपुराणमें और भी लिखा है, कि जो धात्रीफल अपने सारे शरीरमें लगाते अथवा मजाते तथा खाते हैं, वे नारायण तुल्य समझे जाते हैं। जो अपनी अंजलीमें निश्चित धात्री फल धारण करते हैं, नारायण उन्हें एक स देते हैं। जो मनुष्य अन्तकालमें मुक्ति और विपुल भोगको इच्छा रखते हैं उन्हें करसम्पुटमें ले कर (अंजली) धात्रीफल नहीं खाना चाहिये। जो वैष्णव धात्री-फलको माला न पहनते, वे वैष्णवपदवाच्य नहीं हो सकते हैं तुलसीमालाकी नाईं धात्रीमाला भी कभी परित्याज्य नहीं है। धात्रीमाला जब तक मनुष्यके गलेमें लटकती रहेगी, तब तक विष्णुका वास उनके हृदयमें रहता है और उतने ही युग सहस्र वे वैकुण्ठमें वास करते हैं। धात्री सर्वाङ्गस्वरूपा हैं। इसीसे यत्नपूर्वक इस वृक्षको रोपना, सेवना और सींचना चाहिये। जो मनुष्य यह धात्रीमाहात्म्य ध्यान दे कर सुनते हैं, उन्हें चतुर्वर्गफल मिलता है। (पद्मपु० उत्तरख० १२७ अ०)

क्रियायोगसारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—तुलसीवृक्षका आश्रय कर जो जो देवता वास करते हैं, शुभ वा अशुभ जो-कोई कार्य धात्रीवृक्षके तले किया जाता है, वह अक्षय होता है। नये पत्तों द्वारा हरिकी पूजा करनेसे पाप नाश होता है। जहां धात्री और तुलसीका पेड़ नहीं है, वह स्थान अपवित्र समझा जाता है। धात्री और तुलसीशोभ स्थान पर अलक्ष्मी और कलि वास करता है। धात्रीमाला गलेमें पहने यदि संयोगवश श्मशानकी जगह पर मृत्यु हो जाय, तो गङ्गामें मृत्यु, होनेसे जो फल होता है वही फल उसे भी मिलता है। धात्री और तुलसीकी मूलकी मट्टी प्रतिदिन ग्रहण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। यदि कोई धात्री वृक्षमें आघात करे, तो वह आघात हरिके अङ्गमें पहुंचता है। धात्री सर्वदेवस्वरूपिणी और केशवप्रिया है। इसके गुण माहात्म्यादिका वर्णन करनेमें ब्रह्मा भी असमर्थ हैं।

एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि जहां तुलसीवन और सफला धात्री नहीं है, वह म्लेच्छ देश है, ऐसे स्थान पर वैष्णवगण नहीं जाते हैं। हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—

पिता और पितामहादि तथा जो सब सगोत्र अपुत्रक हैं, जो वृक्षयोनि और कीटत्व को प्राप्त हुए हैं, जो रौरवादि घोरतर नरकमें वास करते हैं तथा जिनका जन्म पिशाचादि प्रेतयोनिमें हुआ है, वे सबके सब धात्रीमूलमें दिये हुए जलसे तृप्ति लाभ करते हैं। अठहत्तर सौ बार वृक्षको अभिषेक कर प्रदक्षिणपूर्वक रातको जागे रहना चाहिये। ७ सेना, फौज। ८ गौ, गाय। ९ आर्याछन्दका एक भेद। इसमें १८ गुरु और १८ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीपत्र (सं० क्ली०) धात्रीपत्रमिव पत्रं यस्य। १ तालीशपत्र, तमाल या तेजपत्तेकी जातिका एक पेड़। २ आमलेकी पत्र, आंवलेकी पत्ती।

धात्रीपुत्र (सं० पु०) धात्र्याः उपमातुः पुत्रः। १ नट। २ उपमातृपुत्र, धायका लड़का।

धात्रीफल (सं० क्ली०) आमलक फल, आंवला, आमला।

धात्रीविद्या (सं० स्त्री०) धात्रीविषयक विद्या (Midwifery) जिससे प्रसवादिका ज्ञान और प्रसूतिके कर्त्तव्यादिका निरूपण हो, उसे धात्रीविद्या कहते हैं। जो इस विषयमें पारदर्शी हैं, उन्हें धात्री (Midwife) वा दाई कहते हैं। इनमें विशेष कर प्रसव-विषयक ज्ञानका रहना विशेष प्रयोजन है। इसीसे पहले प्रसवका विषय और उसको संज्ञाका निर्देश करना आवश्यक है।

कार्य में कुशला परिणतवयस्का चार स्त्रियां प्रसूतिकी परिचर्या करें। बाद वे सूतिका गृहमें प्रवेश कर गर्भिणीको अनुलोम भावसे अर्थात् ऊपरसे नीचे तमाम तेल लगावें। उस समय गर्भिणीको 'अला अला' कह कर कूंथना चाहिये। बाद गर्भनाड़ीका बन्धन जब शिथिल हो जाय और कटि, कुक्षि, वस्ति तथा शिरोदेशमें दर्द होने लगे, तब कुछ जोर दे कर कूंथना चाहिये। असमयमें कूंथनेसे शिशु वधिर और मूक होता है तथा उसके गाल और मस्तककी हड्डी टेढ़ी हो जाती है अथवा वह कास, श्वास, शोष आदि रोगोंसे ग्रस्त वा कुब्ज और विकटाकार हो जाता है। सन्तान यदि विपरीत भावमें गर्भमें रहे, तो उसे सरल भावमें ला कर प्रसव कराना चाहिये। गर्भसङ्ग होनेसे अर्थात् गर्भके निःसृत नहीं होनेसे कृष्णसर्पकी केंचुल अथवा मैनाफल द्वारा प्रसव-द्वार पर धूमप्रयोग करना चाहिये अथवा हिरण्यपुष्पका मूल, सुवर्चल लवण वा गुलञ्च गर्भिणीके हाथ और पैरमें पहना देना चाहिये। प्रसव हो जाने पर जातबालककी जरायु नाड़ीको मधु, घृत और सैन्धव द्वारा विशोधित करना चाहिये। मूर्द्धदेश पर घृताक्त वस्त्र-खण्ड रख देना चाहिये। पीछे सूत द्वारा उसे नाभि (नाड़ीका अष्टाङ्गुल) परिमाण बांध कर काट डाले और उस सूतके कुछ अंशको कुमारके गलेमें बांध देवे। बाद जातबालकको शीतल जलसे आश्वासित कर जात कर्म समाप्त करके मधु, घृत, अनन्तमूल और ब्राह्मीरसके साथ सुवर्ण चूर्णको मिला कर चटाना चाहिये। पीछे चरबीका तेल लगा कर क्षीरवृक्षके काढ़ेमें गन्धद्रव्यविशिष्ट जल डाल कर अथवा रौप्य और स्वर्णके साथ जलको गरम कर उस जलसे अथवा कुछ उष्ण कैथके पत्तोंके काढ़ेसे दोष काल अवस्थाका विचार कर स्नान करना चाहिये।

तीन वा चार रातके बाद हृदयस्थ धमनीका पथ साफ हो जाने पर प्रसूतिके स्तनोंमें दूध प्रवर्त्तित होता है। पीछे प्रथम दिन उसे अनन्तमूलमिश्रित घृत और मधु प्रति दो पहर भोर साझको, द्वितीय दिन लवणाका क्वाथ और तृतीय दिन घृत पिलावे। बाद अपने करतल भर घी और मधुको ले कर दिनमें दो बार पिलाना चाहिये। इसके अनन्तर प्रसूतिको वेहलैका तेल लगा कर वायुशान्तिकर औषध पिलानी चाहिये। किसी प्रकारका दोष लगनेसे उस दिन अर्थात् पांचवें दिन पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, चितक और शृङ्गवेर इन सबके चूर्णको उष्ण गुड़ोदकके साथ पिलाना उचित है। इस प्रकार दो या तीन दिन अथवा तब तक करते रहे, जब तक दूषित शोणित संशोधित न हो जाय। बादमें शोणितके संशोधित हो जानेपर विदारि गन्धादिका क्वाथ और घृत अथवा दुग्धके साथ यवका मण्ड तीन रात तक पिलाते रहे। अनन्तर बल और अग्निके अनुसार यवकोल और कुलत्थ आदिके क्वाथ और मांसके रसके साथ भोजन करावे। इस प्रकार अर्द्धमास बीत जाने पर शरीर संशोधित हो जाता है और सूतिकासे निकल कर आहारादिके नियमका परित्याग करना होता है। कोई कोई कहता है, कि जब तक फिरसे आर्त्तव न निकले, तब तक सूतिकावस्था मानी जाती है। (सुश्रुत)

पाश्चात्य पण्डितगण इसका विषय इस प्रकार कहते हैं। प्राकृतिक नियमानुसार गर्भस्थ जीव भूमिष्ठ होता है। महात्मा वफन इस कामकी तरहसे 'सुपक्क फल गिरनेके साथ तुलना करते हैं। हार्भि और वर्डेकका कहना है, कि पूर्णमास वीत जाने पर जरायु भ्रूणधारणमें असमर्थ हो कर उसे वहिष्कृत कर देती है। फलतः प्राकृतिक समय दशम ऋतु कालके साथ मिलता है, इस कारण डाक्टर टाइलर स्मिथने बहुत खोजके बाद यह स्थिर किया है, कि डिम्बकोषका साम्वेतनिक स्नायु कर्त्तृक प्रसव और ऋतु ये ही दो काम पूरे होते हैं अर्थात् जिस प्रकार उक्त द्विविध स्नायुकी क्रियासे धनुष्टङ्कार रोग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार पूर्णगर्भकालमें डिम्बकोषकी चैतनिक स्नायु कशेरुमज्जा हो कर जरायुको स्पन्दिक स्नायुको उत्तेजित करती है और उसको मांसपेशीकी सङ्कोचकक्रियाके उपस्थित होनेसे ही भ्रूण भूमिष्ठ होता है।

स्वाभाविक प्रसव—इस प्रसवकी संज्ञा यदि स्थिर कर सकें, तो इसे विकृत और सङ्कट प्रसवके साथ श्रेणीबद्ध करना सहज हो जायेगा। प्रसव कार्यके तीन अङ्ग हैं, यथा, १ भ्रूणवहिष्करण-शक्ति, २ भ्रूणका निर्गमपथ और ३ भ्रूण-शरीर। यदि इन अङ्गोंमें कमसे कम २४ घण्टोंके

भीतर असमान अथवा मस्तक भारी किये हुए वस्तिकोटर में प्रवेश कर भ्रूणके साथ सदजमें भूमिष्ठ हो जाय, तो उसे स्वाभाविक प्रसव कहते हैं। इस प्रकार यदि न हो, तो उसे विकृत वा अस्वाभाविक प्रसव समझना चाहिये। यह विकृत प्रसव उल्लिखित तीन चरणोंकी परम्परानुपयोगिताके भेदसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इसकी प्रत्येक उपश्रेणीके दो वा तीन विभाग हैं। फिर ऐसे भी कई प्रकारके प्रसव हैं जिनका किसी अन्यपेक्ष सहभावके साथ योग रहनेसे वे इन दो श्रेणियोंमें नहीं रखे जा सकते। इनको सङ्कर-प्रसव कहते हैं। उपरोक्त नियमानुसार सभी प्रसव निम्नलिखित श्रेणी, उपश्रेणी और वर्गमें विभक्त किये गये हैं।

१म श्रेणी—स्वाभाविक प्रसव।

२य श्रेणी—विकृत वा अस्वाभाविक प्रसव।

(१) उपश्रेणी—अविच्छारक शक्तिके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—दीर्घसूत्री प्रसव।

२ वर्ग—शक्तिहीन प्रसव।

(२) उपश्रेणी—निर्गम पथके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—रोधक-प्रसव।

२ वर्ग—विकृत वस्तिकोटरीय प्रसव।

(३) उपश्रेणी—भ्रूण शरीरके सम्बन्धमें—

१ वर्ग—वस्तिकोटरमें असङ्गत भावमें भ्रूणका मस्तक, अथवा हस्तपदादिका भारी प्रवेश।

२ वर्ग—यमज, बहुभ्रूण वा अद्भुत भ्रूण प्रसव।

३य श्रेणी—सङ्कर प्रसव।

१ वर्ग—भारी नाड़ीको बहिर्च्युति।

२ वर्ग—आक्षेप भूत।

३ वर्ग—अपरिमित शोणितपात।

४ वर्ग—मूर्च्छारोग।

५ वर्ग—विदारण।

६ वर्ग—जरायुको विलोमक्रिया।

७ वर्ग—अकस्मात् मृत्यु।

किसी किसी देशस्थविद् पण्डितने स्वप्रणीत (Manual) और यन्त्रमाध्यमसवके भेदसे उपरोक्त प्रसव श्रेणीको विभक्त किया है। किन्तु इस प्रकारका विभाग बिलकुल सङ्गत नहीं समझा जाता। इसीसे यहां साध्य प्रसवका विवरण कहां तक सम्भव था, लिखा गया।

प्रथम प्रवेशोद्यममें स्थिति (Presentation) है। निम्नलिखित कई प्रकारसे भ्रूणांग वस्तिकोटरमें प्रवेश करता है।

१म, मस्तकका पहले प्रवेश (Head presentation) २य नितम्ब, जानु वा पादिका प्रवेश। ३य चरण वा बाहुका प्रवेश। ४र्थ, स्कन्ध, हस्तका प्रवेश।

जरायु वा वस्तिकोटरमें भ्रूणका सबसे पहले कौनसा अवयव आता है, उसका निरूपण करना परम आवश्यक है। इसीसे प्रत्येक प्रकारके निर्गमका लक्षण नीचे लिखा जाता है।

मस्तकका काठिन्य, करोटि-अस्थिकी सीवनी सन्धि मस्तिष्कस्थ अवकाश और पश्चात् कपालका स्पर्श करनेसे मस्तकका प्रथम प्रवेश जाना जाता है। नितम्बकी कोमलता कोमलता, मलद्वार सहित गर्त गुह्य और मलद्वार, अण्डकोष इत्यादिका स्पर्श द्वारा अनुभव करके वस्तिकोटरमें नितम्बका प्रथम प्रवेश समझा जाता है। शिशु के सबसे पहले प्रविष्ट होनेसे उसकी सगोल आकृति और किसर अङ्गुलिके पर्यवेक्षण द्वारा उसका निरूपण होता है। यदि पावसे पहले पद निकले, तो उसमें उनकी दीर्घता एवं उसके और भागके साथका समकोण, पश्चात् उसकी असमदीर्घता एवं गुल्फकी अप्रमस्तता आदिका निरूपण हो जाता है।

केहुनीका कूर्पर प्रवर्तन और बाहुका कक्षादेश सम्बन्धी अपेक्षा असमास्त और असका होना, इन दोनोंका प्रभेद करना सहज है। हस्ताङ्गुलिको असमदीर्घता और अङ्गुष्ठ निकट मार्ग द्वारा हस्तका निरूपण होता है।

शिरकी स्थापना (Position)—प्रथम भागमें सुभ्रूणस्थ हो चार प्रकारसे वस्तिकोटरमें प्रवेश कर रह सकता है, उसे शिरका १म, २य ३य और ४र्थ अवस्थान (Position) का स्थापना कहते हैं। अर्थात् शिशु मस्तकका अग्रला और पिछला भाग अपने में वस्तिकोटरके अग्रभागस्थितिमें तथा सिकालि और वामदक्षिण पार्श्व सन्धिमें जिस जिस प्रकारसे संस्पष्ट हो कर वस्तिकोटरमें प्रविष्ट करता है उसीको शिरकी स्थापना कहते हैं।

प्रसवावस्था (Stage of labour)—सभी प्रसव कार्योंका सहजमें ज्ञान हो जानेके लिये वे चार अवस्थाओंमें विभक्त किए जाते हैं। यथा—प्राकृत प्रसवके १।२ सप्ताह पहलेसे जरायु वस्तिकोटरके प्रवेशद्वारमें दब जाती है, जिससे प्रसूतिका निःश्वास-प्रश्वास कार्य पहलेकी अपेक्षा सुचारुरूपसे चलता है। किन्तु शिरामें रक्तके जाने आनेका व्याघात हो जानेसे, यदि पहलेसे पर्शरोग रहे, तो उसकी वृद्धि हो जाती है, पदमें सूजनके लक्षण देखनेमें आते हैं। मूत्रकोषके ऊपर दबाव पड़नेसे बारम्बार पेशाब उतरता है और सरल आंतोंमें दबाव पड़नेसे वेदना होती है। एक प्रकारके तैलवत् पदार्थके निकलनेसे जब भ्रूणका निर्गमद्वार पिच्छिल और प्रसारित हो जाता है तब प्रसव-वेदना आरम्भके थोड़े ही समय बाद सन्तान भूमिष्ठ हो जाती है। इन सब लक्षणाक्रान्त अवस्थाको प्रसवकी प्रासङ्गिक अवस्था कहते हैं। वास्तविकमें प्रसवारम्भसे ले कर जब तक जरायुग्रीवा द्वार हो कर भ्रूणमस्तक न निकले। तब तक प्रथम प्रसवावस्था, वस्तिकोटरमें शिशुके प्रवेशकालसे ले कर भूमिष्ठ काल तक द्वितीय अवस्था और उसके बादसे ले कर जरायुकुसुमके निकलने तक तृतीय अवस्था कहलाती है।

वस्तिकोटरमें भ्रूण-मस्तकका प्रवेश और निर्गमक्रम इस विषयका वर्णन करनेके पहले प्रसवके जो तीन अङ्ग हैं उन्हें पृथक् पृथक् कर हर एक पर कुछ कुछ विचार करना आवश्यक है।

१म भ्रूण-बहिष्करण-शक्ति।—जरायुकी मांसपेशीकी क्रिया ही गर्भस्थ सन्तानके निकलनेका मुख्य उपाय है। क्योंकि जब प्रसूति अकस्मात् मूर्च्छित वा अचेतनावस्था में मृतप्राय हो जाती है, उस समय भी कभी कभी सन्तान भूमिष्ठ होते देखी गई है। वह पेशी जरायुको भलीभांति आच्छादन करती है और उसका अधिकांश-सूत्र (Fibre) जरायु-ग्रीवाके एक पार्श्वसे निकल कर उसे चारों ओरसे घिरे हुए पुनः उक्त ग्रीवाके विपरीत पार्श्वमें ही संलग्न रहता है। प्रसवके प्राक्कालमें उन सब सूत्रोंको निष्पीड़क सङ्कोचक क्रियासे जरायु ग्रीवाद्वय जो कुछ प्रकाश पाती है, वह भी प्रसूति अनुभव नहीं कर सकती। इस कारण प्रसववेदना मालूम होनेके साथ हो यदि हाथसे जरायुकी ग्रीवाकी परीक्षा की जाय तो वह कुछ प्रसारित देखनेमें आती है। पीछे जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाके प्रबल हो जानेसे जब प्रसूति स्वयं उसका अनुभव कर सकती है, तब उसे प्रसववेदना कहते हैं। यह क्रिया जितनी ही प्रबल होती जाती है, उतनी ही वेदना भी असह्य होने लगती है।

कटिदेशमें जो दर्द उत्पन्न होता है, वह समूचे पेटमें फैल कर दोनों जांघों पहुंच जाता है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है, कि पेट मानो किसी तेज हथियारसे कटा जा रहा है। इसी कारण इसे छेदकव्यथा (Coting pain) कहते हैं। इस प्रकारको वेदना प्रथम अवस्थामें होती है। द्वितीय अवस्थामें जो व्यथा होती है, वह पूर्वोक्त व्यथाकी नाईं सुतीक्ष्ण तो नहीं है, पर असह्य उससे अधिक मालूम पड़ती है। इस समय वस्तिदेशीय मांसपेशीकी क्रिया भी जरायुक्रियाके साथ साथ अपनेसे उपस्थित हो कर भ्रूणको नीचेकी ओर दबाती है। इस कारण द्वितीय अवस्थामें वेदनाके साथ साथ जब तक प्रसूति कुन्थन वेग नहीं देगी, तब तक उसे चैन नहीं मिलेगा। इसी कारण इस व्यथाका नाम सवेग-व्यथा रखा गया है। प्रथमोक्त व्यथामें प्रसूतिको बहुत कष्ट होता है, इसीसे वह रोती है। किन्तु शेषोक्त व्यथाके समय कुन्थनका जो वेग देना होता है, वह क्रन्दनको रोके रहता है। लेकिन व्यथा जब कुन्थन-वेगसे भी रुक नहीं सकती तब फिर प्रसूति रोने लगती है। फलतः व्यथाके साथ रोती है या वेग देती है, यह मालूम हो जानेसे प्रायः प्रसवकी अवस्था निरूपण की जाती है।

प्रसवके समय जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाके साथ साथ जो दर्द मालूम पड़ता है, उसके तीन कारण हैं, जैसे—(१) जरायु ग्रीवाके निम्न भागका प्रसारित होना, (२) योनि आदिका विस्तार होना और (३) जरायुकी मांसपेशी द्वारा उसकी स्नायुका दब जाना। असहीना स्त्रियोंको प्रसवके समय जैसा कष्ट भुगतना पड़ता है, वैसा असग्रोल स्त्रियोंको नहीं। जरायुकी सङ्कोचनक्रियाका आश्चर्य नियम यह है, कि प्रत्येक क्रियाके प्रारम्भमें वेदना थोड़ी मालूम पड़ती है, पीछे धीरे धीरे वह बढ़ कर असहनीय

रुद्ध करती है। प्रसवके कुछ दिन पहलेसे जरायुका निम्न भाग शिथिल और उसका रन्ध्र कुछ प्रसारित हो जाता है। प्रसववेदनाके आरम्भ होनेसे अम्नियोन (Amnion) झिल्ली उसमेंके कुछ जलके साथ उक्त रन्ध्र हो कर लटक जाती है। इसीको जलकोष कहते हैं। पीछे जरायु जितनी सङ्कुचित होती है, वह जलकोष उतना ही नीचेकी ओर ताड़ित हो कर बढ़ता जाता है और उससे जरायु-को दोनों ग्रीवा दब कर क्रमशः प्रसारित होने लगती है। अन्तमें जलकोषके फट जाने पर जिस तरह भ्रूण-मस्तक जरायुग्रीवाके वहिर्भाग पर दबाव डालता है, उसी तरह जरायु उक्त वहिर्भागको भी भ्रूण-मस्तकके सोह-स्तल हो कर आकर्षणपूर्वक प्रसारित करती है। जल-कोष द्वारा उस वहिर्भागमें प्रसारित होनेके समय प्रसूति उतना कष्ट नहीं पाती। किन्तु जब केवल भ्रूणमस्तक द्वारा वह इस प्रकारसे फैलने लगता है, तब प्रसूतिको असह्य यातना होती है। प्रत्येक व्यथाके समय भ्रूण-मस्तक थोड़ा घूम कर नीचेकी ओर कुछ अग्रसर होता है और उसके विरामके समय फिर ऊपरकी ओर उठता है। किन्तु जिस परिणामसे वह नीचे जाता है, उस परिणामसे ऊपर नहीं उठता। इस प्रकार वारम्बार घूर्णितभावसे ऊर्ध्व प्रकारसे कुर्दन क्रिया द्वारा भ्रूण मस्तक वस्तिकोटरके वहिर्गम द्वार पर पहुँच कर एक तीसरी बाधा प्राप्त होता है। यहां पर प्रथमतः मांस-पेशी और बन्धनी आदि द्वारा वह क्षणकाल अवरुद्ध हो कर पीछे गुह्यदेश द्वारा प्रतिबन्धकताको प्राप्त होता है। इस स्थानके प्रसारित होनेमें कुछ विलम्ब हो जाता है जिससे प्रसूतिको बहुत कष्ट भुगतने पड़ते हैं। किन्तु भ्रूण मस्तक पहलेके जैसा कुर्दन-क्रिया द्वारा क्रमसे उस कष्टको अतिक्रम कर योनि-द्वार पर पहुँच जाता है। यहां भी कुछ देरीसे जब योनि यथोचित फैल जाती है। यहां भी कुछ देरीसे जब योनि यथोचित फैल जाती है, तब भ्रूण मस्तक निकल पड़ता है।

प्रथम प्रसवमें योनिसे भ्रूणमस्तकके निकलते समय भगद्वारके पश्चात् प्रान्तवर्त्ति फोर्सेट (Fowrchette)का आच्छादक त्रिकोण-मेरुदण्ड उलट कर कुछ बाहर निकल आता है और कभी कभी उक्त झिल्लीका मध्यभाग छिन्न हो जाता है। किन्तु इससे गुह्यदेशका चमड़ा जरा भी फटता नहीं। इसीसे प्रथम बारके प्रसवमें जितना कष्ट होता है, उतना पीछे नहीं होता। इस प्रकार जो स्त्री अधिक उमरमें गर्भ धारण करती है, उसे भी दूसरी अवस्थामें अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है।

स्वाभाविक प्रसवमें भ्रूणमस्तकको जरायु-ग्रीवाके निम्न वहिर्भागसे निकलनेमें जितना समय लगता है, उस-के आधे या तृतीयांश समयमें वह वस्तिकोटरमें प्रवेश कर वहांसे निर्गत हो जाता है अर्थात् किसी स्त्रीके यदि १२ घण्टेमें सन्तान भूमिष्ठ हो, तो उसको प्रथम अवस्थाके अंतमें ८।८ घण्टा लगना आवश्यक है। किन्तु प्रसव दीर्घसूत्रीमें यह नियम लागू नहीं है, अर्थात् उस परिमाणसे उलट जानेसे प्रथम अवस्थासे द्वितीय अवस्था दूनी या तिगुनी सुदीर्घ हो जाती है।

प्रसवके पहले भ्रूण मस्तककी अवस्थाका निरूपण करना परम आवश्यक है। डाक्टर निजिलो कहते हैं, कि प्रसवारम्भमें यदि भ्रूणशरीरकी सञ्चालन-क्रिया गर्भवतीके तल पेटके दाहिने पार्श्वमें अधिक मालूम पड़े तो भ्रूण-मस्तक प्रथम या चतुर्थ स्थापना (Position)में और यदि बायें पार्श्वमें अधिक मालूम पड़े, तो द्वितीय या तृतीय स्थापना (Position)में रहता है, किन्तु इस लक्षणसे प्रथम पजीशनसे चतुर्थ पजीशनका और द्वितीय पजीशनसे तृतीय पजीशनका प्रभेद नहीं किया जाता।

भ्रूणमस्तकका पहले वस्तिकोटरमें प्रवेश करना यह अच्छी तरह मालूम हो जाने पर उक्त निजलो साहबके मतसे भ्रूणहृत्पिण्डके धुक धुक शब्द द्वारा भी भ्रूण मस्तकका पजीसन स्थिर किया जा सकता है। अर्थात् उक्त शब्द यदि वाम कटिदेशमें सुना जाय, तो प्रथम पजी-शनके और यदि दक्षिण कटिदेशमें सुना जाय, तो द्वितीय पजीशनके मस्तकमें रहनेकी खूब सम्भावना है। सन्तानके भूमिष्ठ होनेके बाद वह कोटरके मध्य किसी पजीशनमें प्रवेश करके निकली है, यह उसके मस्तकका रक्तगर्भ अर्बुद देख कर सहजमें निरूपण किया जाता है। भ्रूणके निकलते समय पहले जरायुके निम्न और योनि इन दोनों द्वारा उसके मस्तकके अग्रगामी भागके दब जानेसे जब अधिक रक्त जमा हो जाता है तब वह भाग स्फीत हो,

किसीमें तो कम और किसीमें ज्यादा पाया जाता है। यह वर्णहीन है, किन्तु प्रसव-वेदना आरम्भके बाद रक्त-के साथ मिल जाता है।

इन पांच लक्षणोंमेंसे तीन गर्भके शेष अवस्थामें देखे जाते हैं, चौथेमें आसन्नप्रसव अनुभूत होता है। पांचवां लक्षण दीख पड़नेसे शीघ्र ही प्रसव होगा यह मालूम हो जाता है। प्रसवकालके उपस्थित होनेके और भी बहुतसे सामान्य लक्षण हैं,—यथासमयमें दोनों पदोंमें स्फीतता, ऊरु और जङ्घामें खिंचावट, मनकी प्रफुल्लता, साहस, क्षुधावृद्धि, श्वास कृच्छ्रका ह्रास, गतिमें स्फूर्त्ति और सुगमता अनुभव आदि लक्षण देखनेमें आते है।

अतिश्रम, क्लान्ति, अजीर्णता, मन्दाग्नि, कोष्ठबद्ध और गर्भस्थ भ्रूणकी विषम सञ्चलन-क्रिया इत्यादि द्वारा कभी कभी गर्भिणियोंको कृत्रिम प्रसव-वेदना उपस्थित होती हैं। किन्तु यह वेदना स्वाभाविक प्रसव वेदनासे सहजमें प्रभेद की जाती है। यथा, कृत्रिम वेदना जरायु-के ऊपरी भागसे (Fundus) आरम्भ हो कर उसके अल्प-भाग मात्रमें व्याप्त रहती है और अनियमित विरामके बाद पुनः पहुंच जाती है। इस समय योनिसे क्लेद नहीं निक-लता और न जरायुका मुंह ही प्रसारित होता है। उस हो कर जलकोष भी लटकने नहीं पाता। प्रसूतिको ऐसा मालूम पड़ता है मानो वेदना पृष्ठदेशसे निकल कर क्रमशः सामनेकी ओर समूचे पेटमें फैली जाती हो। इससे नियमित विरामकालके बाद वेदना बहुत जल्द प्रबल-रूपसे पुनः पुनः उपस्थित हुआ करती है। इस समय जरायुका मुख फैल जाता है और उसके मध्य हो कर जलकोष लटक पड़ता है। कभी कभी कृत्रिम व्यथा भी प्रकृत व्यथामें परिणत होती है, इसीसे कृत्रिम व्यथाका निवारण करना आवश्यक है। १म अवस्था। इसमें जरायुकी सङ्कोचनक्रिया द्वारा जिस प्रकार व्यथा उप-स्थित होती है, वह पहले ही कहा जा चुका है, यथा पहले पहले व्यथा बहुत कम मालूम पड़ती है। पीछे वह क्रमशः प्रबल और सुदीर्घ हो कर बहुत जल्द शेष हो जाती है। उससे प्रत्येक व्यथाका विरामकाल भी क्रमशः खर्व हो जाता है। प्रत्येक छेदक व्यथाके आरम्भ होनेसे प्रसूति उसे सह नहीं सकती तथा बहुत आर्त्तनाद करती है। उस समय एक स्थानमें रहना उसे पसन्द नहीं पड़ता। कभी वह सोती है, कभी बैठती है, कभी इधर उधर घूमती है, विशेष कर एकान्त व्यस्त और म्लान रहती है। किन्तु प्रसवकार्य जितना ही शेष होने आता है, इन सब कष्ट-दायक लक्षणोंको प्रसूति उतना ही थोड़ा थोड़ा करके अतिक्रम करती जाती है। कोई कोई स्त्री गर्भके शेष मासमें म्लान और हताश हो कर प्रसवारम्भमें साहसिक और समुत्सुक होती है। फलतः गर्भके शेष मासमें और प्रसव-की प्रथमावस्थामें प्रसूतिका मन कैसो ही अवस्थामें क्यों न रहे, दूसरी अवस्थाके आरम्भ होनेके साथ ही पहले थोड़ी थोड़ी वेदना होती है, पीछे वे सब कष्ट विलुप्त हो जाते हैं और प्रसवकार्य बहुत जल्द सम्पन्न हो जाता है, प्रसूति व्यस्त और उत्कण्ठित हो कर उस विषयमें मनोनिवेशपूर्वक यथासाध्य चेष्टा करती है। जब भ्रूणमस्तक अच्‌इउटेराईके मध्य हो कर बाहर होता है, तब प्रसूतिको बहुत कष्ट मालूम पड़ता है। यह कम्प हिमप्रयुक्त नहीं होता, वरन् उस समय शरीर उष्ण रहता है। इसका प्रकृत कारण जरायुकी एक प्रचण्ड सङ्कोचनक्रिया है। इस समय किसी किसी स्त्रीको क्षणिकप्रलाप और खिन्नता उपस्थित होती है। प्रायः सभी स्त्रियां उस समय वमन कर देती हैं। इससे पेटकी अजीर्ण भुक्त द्रव्यके निकल जानेसे अच्‌इउटेराई (जरायुग्रीवाका निम्न बहिर्भाग) शिथिल हो जाती है। प्रथम प्रसवावस्था शेष होनेके समय प्रसूतिका कुन्थनवेग आरम्भ होता है। उस समय योनिके क्लेदके साथ साथ रक्तकी बुन्द भी बहुत देखी जाती हैं और जलकोषके फट जानेसे सभी लाइकर एमनियाई गिर पड़ती है। इसके बाद जो व्यथा होती है, उसीसे अच्‌इउटेराईमेंसे भ्रूण-मस्तक निकल कर वस्तिकोटरमें प्रवेशोन्मुख होता है।

द्वितीय प्रसवावस्था।—इस समय व्यथाके शीघ्र शीघ्र आक्रमण करनेसे उसके मध्यस्थित विरामकाल क्रमशः खर्व हो जाता है और व्यथा भी प्रबल और दीर्घकाल स्थायी हो जाती है। स्वभावतः कांखनेके कारण प्रसूति व्यथाके समय रोदन रोक कर श्वासको बंद किये रहती है, पीछे व्यथा जब बहुत घट जाती है, तब कुछ काल तक वह पूर्वके जैसा विलाप करती है। व्यथाके समय कांखना

और पीछे गीला इन दोनों लक्षणों द्वारा ही द्वितीय अवस्था-का निर्णय किया जाता है। व्यथाके उपस्थित होने-के साथ ही प्रसूति श्वासको रोक कर सन्निकटकी किसी अचल या स्थापित वस्तुको पकड़ कर खींचती है और जरायुकी सङ्कोचन-क्रियाकी सहायताके लिये शरीरकी प्रायः सभी मांसपेशियोंको नियुक्त करती है। श्वासके रुक जानेसे रक्तपरिचालनका व्याघात उत्पन्न होता है और उससे त्वचाकी सभी शिरायें रक्तसे पूर्ण हो कर कपोलको विशेषतः आंख और चक्षुको लाल बना देती हैं। कपाल, कनपटी और गलेकी शिराओंके रक्त-पूर्ण होनेसे स्फीत होती हैं, शरीर उष्ण हो कर पसीना हो जाता है। नाड़ीकी गति भी प्रत्येक व्यथाके साथ साथ तेज हो जाती और सन्तान भूमिष्ठ होनेके बाद वह प्रति मिनटमें ८०।१२० बार चलती है।

किसीको बार बार वमन होते भी देखा जाता है। प्रथम अवस्थामें कोई कोई स्त्री जो वमन करती है, वह सिर्फ महानुभावक स्नायुकी उत्तेजनासे हुआ करता है। वमन द्वारा मुखके निकलनेका पथ शिथिल और प्रशस्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु इस समय जरा-युकी सङ्कोचनक्रियाके हठात् बन्द हो जानेसे जो वमन होता है, उससे थोड़ी ही देर बाद शरीर उष्ण हो जाता है, नाड़ी तिरछे चलने लगती है, जीभ मैली हो जाती है और प्रलापका उद्रेक आ जाता है। इस समय सन्निदेश को हाथसे दबानेसे जरायुमें दर्द होने लगता है।

जब दूसरी अवस्था अधिक काल तक रहती है, तब प्रसूति क्लान्त हो जाती है और मस्तिष्कमें क्षोभ हो जाने-से उसे प्रलाप और मोह आ जाते हैं। कभी कभी व्यथा-के विरामके समय वह बिलकुल सो जाती है। इस प्रकारकी निद्रामें किसी प्रकारका डर नहीं रहता, वरन् उससे थकावट दूर हो जाती है। अलबत्ता यदि व्यथा ठहर ठहर कर नहीं होती, तो प्रसूतिका गुह्यदेश और योनि-पथ विकृत हो जाता, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

गुह्यदेश और भगद्वार यथायोग्य प्रसारित हो जाने-से जरायुकी सङ्कोचन क्रिया दूनी हो जाती है अर्थात् एक बार अच्छी तरह पूरा होने न होते दूसरी क्रिया पहुंच जाती है। इसके सभी वेग अत्यन्त प्रतिफलित हो कर असहनीय यातनाके समय मुख मस्तक हठात् योनिसे निकल पड़ता है। थोड़ी देर बाद एक दूसरी व्यथाके उपस्थित होनेसे ही शरीर ताड़ित हो जाता है और उसके साथ शिशु बाहर निकल आता है। इसमें सम्पूर्ण रूपसे यातनाकी शान्ति हो जानेसे प्रसूति अनिर्वचनीय आह्लाद और आराम अनुभव करती है। इस समय प्रसूतिके पेटके ऊपर हाथ रखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि जरायु पहलेसे अधिक सङ्कुचित हो गई है। इस समय पेटके ऊपरका चमड़ा भाग ढीला पड़ता है।

३य अवस्था।—इस समय जरायुकुसुम पृथक् हो कर निर्गत हो जाता है। किसी किसी प्रसूतिके व्यथाके समय ही सन्तान भूमिष्ठ होती है उसीके साथ कुसुम भी निकल आता है। किन्तु अक्सर जरायु या योनिमें ही जमा रहता है। अथवा निकलने पर भी उसका कुछ अंश आबद्ध रहता है। पीछे चाहे जरायुकी सङ्कोचनक्रियासे ही, चाहे उससे आप ही आप अथवा थोड़ा थोड़ा खींचनेसे हो, वह अंश एकबारगी बाहर निकल आता है।

सन्तानके भूमिष्ठ होनेमें जितना समय लगता है और उससे प्रसूति जितनी क्लान्त हो जाती है गर्भ-कुसुम-बहिष्कारके व्यथा भी उसी परिमाणकी देरी करके होती है। अक्सर देखा जाता है कि सन्तान भूमिष्ठ होनेके २०।३० मिनट बाद ही फूल बाहर निकल आता है। स्वाभाविक प्रसवमें १।२ घण्टेके भीतर फूलका निकलना उचित है। यदि इससे भी और अधिक विलम्ब हो जाय, तो उसे कष्टप्रसव समझना चाहिये।

स्वाभाविक प्रसवमें सहायताकी आवश्यकता होती है, इस कारण पहले धात्रीके न चाह थे, किन्तु अभी प्रसव-कार्यकी अनेक उन्नति तथा अनेक विषयोंके आविष्कार हो जानेसे इन धात्रियोंकी आवश्यकता समझी गई है। इस समय विषयमें धैर्य और सहिष्णुता ही उत्कृष्ट फल प्रदान करती है। दूसरी स्वाभाविक प्रसवके समय व्यस्त हो कर काम करनेसे कुफल होनेकी सम्भावना रहती है। किन्तु इस समय प्रसूति यदि अधिक काल तक रोवे, तो वह क्लान्त और अवसन्न हो जाती है। इस कारण प्रथम अवस्था-में असावधान अवस्थामें पड़ा रहना उचित नहीं। दूसरी

उसे कभी बैठना, कभी इधर उधर घूमना और कभी घरका काम काज भी करना चाहिये।

प्रथम अवस्थामें प्रसूतिको खाने देना हानिकारक नहीं है, वरं उससे आमाशय अपने कार्यमें लग कर विशेषफल देता है। इस अवस्थाके शेषमें धात्रीको उचित है कि वे प्रसवोपयोगी शय्या प्रस्तुत करें और तोशकके ऊपर नितम्ब रखनेकी जगह पर मुलायम चमड़ा अथवा एक प्रकारका तैलाद्र-आच्छादन बिछा दे। पीछे उसके ऊपर कम्बल और कम्बलके ऊपर एक दूसरा कपड़ा, बाद सबके ऊपरमें एक कपड़ेको चार पांच तह करके नितम्बके नीचे रखना उचित है। पीछे प्रसूतिको उसके ऊपर सुला देना चाहिये और उसके परिधेय वस्त्रको खोल कर अथवा ऊपरकी ओर कुछ खींच कर एक बड़ी चादरसे समस्त बदनको ढक देना चाहिये। प्रसूति शय्या पर बाईं करवट ले कर सोवे। इस देशमें प्रसूति अकसर बैठ कर ही प्रसव करती हैं। पूर्व समयमें युरोपमें भी यही प्रथा थी। चीनदेशमें और इङ्गलैंडके कार्नवाल नामक प्रदेशमें प्रसूति घुटना टेक कर बैठती हैं। फ्रान्स और जर्मनीमें कई जगह वे चित हो कर सो जाती हैं। किन्तु इन सबकी अपेक्षा बाईं करवट दे कर सोना ही अच्छा है। इस अवस्थामें दोनों जानुके बीच एक तकिया रखनेकी बहुतोंकी सम्मति है। व्यथाके साथ साथ कुन्थन उपस्थित होता है, इस कारण प्रसूतिके अवलम्बनके लिये एक चादरमें अच्छी तरह लपेट दे कर उसके एक छोरको किस एक खंभमें बांध देना चाहिये और दूसरे छोरको उसके हाथमें लगा देना चाहिये। यदि ऐसा भी न हो सके, तो किसी दूसरेका हाथ पकड़ कर कुन्थन क्रिया करे, इसमें बहुत सुविधा होती है। भ्रूणमस्तकके गुह्यदेशमें दब जानेसे पहले प्रसूति बीच बीचमें यदि उठ बैठे, तो कोई हानि नहीं होती।

अकसर द्वितीय अवस्थाके आरम्भमें जलकोष फट जाता है। किन्तु एमनियन यदि सुदृढ हो, तो भ्रूण-मस्तकके वस्तिकोटरमें आनेसे भी तथा कभी कभी उससे निर्गत होनेके समय तक भी वह फटता नहीं है। इस-से भ्रूण-मस्तकके कोटरके मध्य हो कर ताड़ित होनेमें बहुत देर लगती है। ऐसी अवस्थामें जरायुकी सङ्को-चनक्रियाके समय जब जलकोष स्फीत और बिलकुल गोल हो जाय तब एक अङ्गुलि द्वारा उसे विद्ध कर देने-से ही लाइकरएमनिया गिर पड़ता है। इस समय प्रसूतिको यदि कुछ गरमी मालूम पड़े तो शय्या परसे कम्बलादि उष्ण वस्त्रको अलग कर उसे शीतलवायु सेवन कराना चाहिये। भूख लगने पर दुग्धादि दे सकते हैं।

भ्रूणमस्तकके गुह्यदेशमें दब जानेसे जिससे उक्त स्थान हठात् विदीर्ण न हो जाय और वह सामनेकी ओर चालित हो, इसके लिये धात्री एक कम्बलको ४।५ तह कर उससे व्यथाके समय भ्रूण-मस्तकको सामनेकी ओर धीरे धीरे ठेले। मस्तक जब भगद्वार पर पहुंच जाय, तब योनिद्वार पर पयाद्वारके चमड़ेको ऊपरसे खींच कर न लावें, बल्कि उसे सामनेकी ओर और भी ठेल दें। नहीं तो गुह्यदेशके विदीर्ण हो जानेकी सम्भावना रहती है। इस समय धात्रीको चाहिये कि वह दाहिने हाथकी दो उंगलियोंको प्रसूतिके मलद्वारमें घुसेड़ कर भ्रूणके मस्तकको बाहर और सामनेकी ओर प्रत्येक वेदनाके साथ साथ ठेल देवें। ऐसा करनेसे गुह्यदेश (पेरिनियम)-की रक्षा होती है, और भ्रूण भी शीघ्र ही भूमिष्ठ हो जाता है।

मस्तक बाहर होनेके बाद यदि स्कन्ध निकलनेमें विलम्ब देखें, तो धात्री अपनी एक या दो उंगलीको शिशु-के दोनों कांखोंमें लगा कर खींचे और सहकारिणी धात्री तथा और दूसरी जो वहां हो, उस प्रसूतिके पेटके ऊपर हाथ रख कर जरायुको जोरसे पकड़े। इससे दो फल निकलते हैं, जैसे—भ्रूणका अवशिष्टांग निकलनेके बाद फूलको भी उसके साथ साथ निकलनेकी सम्भावना रहती है और जरायुसे अधिक शोणितस्राव भी नहीं हो सकता।

सन्तान ज्योंही भूमिष्ठ हो, त्योंही उसके मुंहमेंसे उंगली द्वारा क्लेद निकाल कर बाहर फेंक देवे, तब सन्तान नीरोग होने पर रो उठेगी। इस समय श्वास प्रश्वासकी यदि अच्छी तरह बहते देखें, तो पहले नाड़ीको काट देवें। पीछे फलालैन आदि गरम कपड़ोंसे उस शिशुको

दीर्घसूत्री प्रसव ।—इसमें मस्तकको आगे रख कर भ्रूण वस्तिकोटरमें प्रवेश करता है। किन्तु प्रथमावस्थामें अधिक विलम्ब होनेसे भी अन्तमें हाथ और यन्त्रकी सहायताके बिना ही प्रसव आपसे आप हो जाता है। जरायुकुसुम भी यथासमय निकल आता है। अर्थात् प्रसव यदि ६० घण्टोंमें शेष हो, तो उसीके भीतर अपर्चरडेटेराईको प्रसारित होनेमें ५८।५८ घण्टे लगते हैं और १।२ घण्टेके मध्य भ्रूण वस्तिकोटरसे निकल पड़ता है। फलतः प्रथम प्रसूतिके साथ ही इस प्रकारकी घटना हुआ करती है।

शक्तिहीन प्रसव ।—वस्तिकोटरके काफी प्रशस्त रहने पर भी यदि द्वितीय अवस्थामें जरायुकी सङ्कोचनक्रियाका ह्रास वा सम्पूर्ण अभाव हो जाय, तो प्रसवमें देर होती है। इसमें यदि भयानक और गुरुतर लक्षणका आविर्भाव हो जाय, तो प्रसवको उसी समय निकालना आवश्यक है।

रोधक प्रसव । - द्वितीय अवस्थामें जरायुको सङ्कोचन क्रियाका यथोचित परिमाण रहने पर भी वस्तिकोटरमें जब कोई प्रतिबन्धक आ पहुंचता है, तब भ्रूणमस्तक बिलकुल अग्रसर नहीं हो सकता। इसमें भी पूर्वोक्त शक्तिहीन प्रसवके जितने अनिष्टकर लक्षण हैं वे धीरे धीरे देखनेमें आते हैं।

शक्तिहीन प्रसवमें जरायुकी क्रियाका ह्रास वा अभाव हो जानेसे द्वितीय अवस्था सुदीर्घकालस्थायी हो जाती है। किन्तु रोधक प्रसवमें जरायुकी क्रियाका कोई व्यत्यय नहीं रहता। प्रसूतिका वस्तिकोटर और तत्समीपवर्त्ती स्थानका कोई विकृत भाव हो कर वह द्वितीय अवस्थामें भ्रूणमस्तकके अग्रसर होनेमें वाधा देता है। रोधक और शक्तिहीन प्रसवका कारण भिन्न भिन्न होने पर भी लक्षणका उतना प्रभेद नहीं रहता। केवल एक मात्र प्रभेद यह है कि शक्तिहीन प्रसवमें जरायुको सङ्कोचन-क्रियाका ह्रास अथवा अभाव देखा जाता है और रोधक-प्रसवमें उक्त क्रिया समान भावसे रह जाती है। किसी किसी रोधक-प्रसवमें अल्प प्रतिबन्धक रहनेके कारण जरायु अपनी प्रचण्ड सङ्कोचनक्रिया द्वारा उसे अतिक्रम कर जाती है। किन्तु प्रतिबन्धक यदि प्रबल रहे, तो धात्रीकी सहायता आवश्यक है। कितने प्रतिबन्धक तो ऐसे भयानक होते हैं, कि उसमें वस्तिकोटरके मध्य हो कर सजीव निर्जीव वा भग्नाङ्ग भ्रूण भी किसी तरह प्रसव नहीं कराया जाता।

विकृत वस्तिकोटरीय प्रसव ।—वस्तिकोटरकी वक्रतासे द्वितीय अवस्थामें कुछ देरसे प्रसव होता है, इस कारण कभी कभी यन्त्र द्वारा प्रसव करना होता है। कभी तो ऐसा हो जाता है कि यन्त्र द्वारा प्रसव कराना भी असाध्य हो जाता है और क्रमशः शक्तिहीन प्रसवके सभी लक्षण और भी भयानक देखनेमें आते हैं। अधिककाल तक प्रसववेदना रहने पर अन्तमें शक्तिहीन प्रसवके कुल खराब लक्षण देखे जाते हैं। यदि भ्रूणमस्तक अपर इनलेटराईमें प्रवेश नहीं भी कर सकता, तो भी द्वितीय अवस्थाके सवेग व्यथा आदि लक्षण प्रकाशित हो कर अनिष्ट करते हैं। स्वभावतः प्रसव होने पर अथवा यन्त्र द्वारा कराने पर पीछे योनि आदि स्थानोंमें प्रदाहरोग उत्पन्न होता है और उसका दैहिक पदार्थ गल जाता है। उस वक्त उपयुक्त चिकित्सा फौरन नहीं करानेसे मूत्राधार वा सरल आंत विद्ध हो कर योनिके साथ मिल जाती है। इधर भ्रूणमस्तकके स्थान स्थान पर आहत होनेसे अधिक संख्यक सन्तान भूमिष्ठ होनेके पहले ही नष्ट हो जाती है। किसीकी खोपड़ी टूट जाती, किसीके मस्तकके चमड़े पर भयानक प्रदाह होता और उससे अनिष्टकर फल उत्पन्न होता है।

अकाल प्रसव ।—माता और गर्भस्थ शिशुकी प्राण रक्षा करना ही इस प्रक्रियाका प्रधान उद्देश्य है। डाक्टर मेकलेने पहले एक स्त्रीका प्रसव, पीछे डाक्टर केलोने एक स्त्रीका तीन बार अकाल प्रसव कराया, जिसमेंसे दो बारकी सन्तान बच गई थी। गर्भस्थ सन्तान पूर्ण काल तक यदि जठरमें रहे और जीवित अवस्थामें उसका प्रसव कराना असाध्य मालूम पड़े तो अकालमें प्रसव कराना ही श्रेय है। अकाल प्रसवमें प्रसूतिको किसी प्रकार अनिष्ट नहीं होता है केवल सैकड़े ५० पीछे सन्तान नष्ट होती हैं।

किसी किसी स्त्रीको बार बार गर्भ रह कर पूर्ण कालके कुछ पहले बिना किसी विशेष स्पष्ट कारणके वह गर्भ बहुत कांपने लगता है जिससे गर्भस्थ भ्रूणके प्राण

धानमाली (हिं० पु०) अस्त्रचलानेकी एक क्रिया जिससे किसी दूसरेके चलाए हुए अस्त्रको रोकते हैं।

धानसरा—२४ परगनेके अन्तर्गत एक खाड़ी। यह झाङ्गरा-से ले कर यमुनानदी तक विस्तृत है। इसकी लम्बाई आध कोसकी है। इसका दूसरा नाम हुसेनाबाद खाल है। यमुनानदी हो कर सुन्दरवन जाते समय पहले इसी खालमें प्रवेश होना पड़ता है।

धाना (सं० स्त्री०) धीयन्ते इति धा न। (धापवस्यज्यति-भ्यो नः। उण् ३।६) ततः टाप्। १ धान्यक, धनिया। इसका संस्कृत पर्याय—धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, कुनटो, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बुरु और वितुन्नक है। २ अन्नका कण, खुद्दी। ३ सत्तू। ४ धान्य, धान। ५ अङ्कमात्र। ६ भृष्ट यव, भूना हुआ जौ, बहुरि।

धानाका (सं० स्त्री०) धान्यक, धनिया।

धानाचूर्ण (सं० क्ली०) धानानां चूर्णं ६-तत्। सत्तु, सत्तू।

धानान्तर्वत् (सं० पु०) एक गन्धर्व।

धानावत् (सं० त्रि०) धाना विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। जिसमें धनिया हो या जिसके पास धनिया हो।

धानासोम (सं० पु०) धान्य समेत सोम।

धानिका (सं० स्त्री०) धानी स्वार्थे क-टाप्। धानी, आधार।

धानिखोला—बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ३८´ १०´´ उत्तर और देशा० ८०° २४´ ११´´ पू०में अवस्थित है। यह नगर नसीराबाद शहरसे ६ कोस दूर सतुआ नामकी एक छोटी नदीके ऊपर बसा हुआ है।

धानी (सं० स्त्री०) धीयते धोयंतेऽत्र धा आधारे ल्युट्, टित्वात् ङीप्। १ आधार। २ वह जो धारण करे, वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। ३ स्थान, जगह। ४ पीलु-वृक्ष, एक प्रकारका पेड़। ५ धान्यक, धनिया।

धानी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका हलका हरा रंग। यह धानकी पत्तीके रंगका सा होता है। यह प्रायः पीले और नीले रंगको मिला कर बनाया जाता है। (वि०) २ धानकी पत्तीके रंगका, हलके हरे रंगका। (स्त्री०) ३ सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिणी।

धानुक (हिं० पु०) १ धनुर्द्धर, धनुर्धारी। २ एक नीच जाति। इस जातिके लोग प्रायः व्याह शादीमें तुरही आदि बजाते हैं।

धानुर्दण्डिक (सं० पु०) धनुर्दण्ड इव, तेन जीवति वेतनादित्वात् ठक्। धानुष्क, वह जो धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

धानुष्क (सं० पु०) धनुःप्रहरणमस्येति धनुः ठक् प्रहरणं। (पा ४।४।५७) वा धनुषा जीवति इति ठक्। (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) धनुर्द्धर, धनुष चला कर अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला, कमनैत।

धानुष्का (सं० स्त्री०) धनुरिव अवयवोऽस्याः इति ठक्, टाप् च। अपामार्ग वृक्ष, चिचड़ा। अपामार्ग देखो।

धानुष्कारि (सं० स्त्री०) लताभेद। एक प्रकारकी बेल।

धानुष्य (सं० पु०) धनुषि साधुरिति धनुष्-ष्यञ्। वंश, बाँस।

धानेय (सं० क्ली०) धाना एव स्वार्थे ढक्। धन्याक, धनिया।

धानेयक (सं० क्ली०) धानेय स्वार्थे कन्। धान्यक, धनिया।

धान्धा (सं० स्त्री०) एल्विका, इलायची।

धान्य (सं० क्ली०) धानि पोषणे साधु यत्। सतुष व्रीह्यादि, धान।

"शस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं सतुषं धान्यमुच्यते।" (स्मृति)

क्षेत्रस्थित पदार्थको शस्य और सतुष द्रव्यको धान्य कहते हैं। इस वचनानुसार क्षेत्रजात पदार्थमात्र ही धान्यपदवाच्य है, किन्तु धान्य शब्दका प्रयोग करनेसे जिससे तण्डुल हो, जनसाधारण उसीको धान्य कहते हैं। पर्याय—भोग्य, भोज्य, भोगार्ह, अन्न, अद्य, जीवसाधन, स्तम्बकरि, व्रीहि।

इतिहास।—धान्यका जनसमाजमें कबसे व्यवहार होता आ रहा है, यह ले कर बहुतोंमें मतभेद है। कोई भारतवर्षको, कोई ब्रह्मदेशको और कोई मध्य-एशियाको धान्यकी जन्मभूमि बतलाते हैं। किसीका कहना है, कि पूर्व समयमें धान्य भारतवर्षसे अरब, मिस्र, ग्रीस, आदि देशोंमें भेजा जाता था, पर कोई इसे गलत बतलाते हैं। उनका कहना है, कि जब पारसिक और भारतीय आर्योंके पूर्वपुरुषगण मध्य

डॉक्टर अपार्ट प्रमुख कितने पाश्चात्य भाषातत्त्व विदोंने स्थिर किया है, कि द्राविड़में धान्यका नाम अरोचि है। इसी अरोचिसे ग्रीक ओरीजा (Oryza) नाम पड़ा है (१)। उनका अनुमान है, कि दाक्षिणात्यसे ही धान्य ग्रीस आदि देशोंमें गया था। फिर इ.युल और डाक्टर बुर्नेल-प्रमुख विद्वानोंका कहना है, कि अरोचिसे ग्रीक् ओरीजा नाम नहीं पड़ा। पर यह भले ही सकता है कि दाक्षिणात्य धानकी खेतीका आदि स्थान हो। तैलिङ्गा लोग एक प्रकारके स्वभावजात धान्यको निवारि कहते हैं। उत्तर-सरकार प्रदेशमें यह निवार आपसे आप अपर्याप्त उत्पन्न होता है। डाक्टर रसवरा अनुमान करते हैं, कि यही दाक्षिणात्यका आदि शस्य है। अरबी भाषामें धान्यको अल्-रुज्ज (वा अर्-रुज्ज) कहते हैं। यह शब्द अधिक सम्भव है कि द्राविड़ शब्दसे लिया गया हो। स्पेनियार्डोंने अरबीसे अपना अर-रोज नाम ग्रहण किया है। किन्तु द्राविड़ भाषासे ग्रीक 'ओरीजा' नाम नहीं निकला। अलेकसन्दरके दिग्विजयके समयसे ही ग्रीसके लोग धानका हाल जानने लगे हैं। थिओफ्रेसतसने सबसे पहले ओरीजा शब्दका उल्लेख किया। वे भी अलेकसन्दरके समयमें ही प्रादुर्भूत हुए। उनका व्यवहृत ओरीला (२) शब्द अफगानस्ती वा पञ्जाब देशसे लिया गया है।

संस्कृत 'व्रीहि' और ग्रीक 'ओरीजा' इन दोनों शब्दोंमें जैसा निकट सम्बन्ध है, धान्यवाचक और किसी संस्कृत शब्दके साथ वैसा सादृश्य नहीं। अफगानिस्तानको पुस्तु भाषामें धान्यको व्रीज्जह कहते हैं। व्रीहिसे व्रीज्जह हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

पाश्चात्य शब्दशास्त्रविदोंमेंसे किसीका मत है, कि जिस समय प्राचीनतम आर्यजाति मध्य एशियामें रहती थी, उस समय जो भाषा प्रचलित थी, उसी भाषासे व्रीहि और ग्रीक्ष्_ए्या ये दोनों शब्द निकले हैं। इस हिसाबसे भारतवासियोंके निकटसे ग्रीकोंने ओरीजा लिया है वा नहीं, इसमें सन्देह है।

डाक्टर वाट साहबने लिखा है, कि स्वभावजात धान्यको आदि जन्मभूमि यदि खोजी जाय, तो दक्षिण भारतसे कोचीन चीन तकके स्थानको इसका आदि स्थान कह सकते हैं। ईसा जन्मके प्राय: १००० वर्ष पहले उक्त स्थानसे पहले चीन देशमें और उसके बाद क्रमशः उत्तर और पश्चिम भारतमें, पारस्य और अरबमें तथा सबसे पीछे इजिप्ट और यूरोपमें धानकी खेती आरम्भ हुई। अन्तमें उन्होंने यह भी कहा है कि चीन सरीखा सुसभ्य जाति ही सम्भवतः धानका कृषियोग्यता सबसे पहले उपलब्ध कर सकी थी। स्वभावजात जङ्गली धान पर सन्तुष्ट होने वाली निम्नभारतकी गिरिशृङ्गवासी असभ्य जातिके लिये यहसम्भव पर नहीं है। चीन लोगोंने ही क्या पहले पहल धानका मर्म समझा था? धान्यके आदि स्थानके लोग क्या चीनीके पहले धान्यकी ऐसी प्रयोजनीयता उपलब्ध कर न सके थे?

पहले ही कहा जा चुका है कि ऋग्वेदमें 'धान्य' शब्दका उल्लेख है। ऋग्वैदिक आर्योंने धान्यको विशेष आवश्यकता समझी थी, इसी कारण धान्य और धनका एकत्र व्यवहार किया है। अध्यापक बालगङ्गाधर तिलक और जर्मन पण्डित जैकोबि दोनोंने ही गणना द्वारा स्थिर किया है, कि ईसा जन्मके दश हजार वर्ष पहले वैदिक आर्यसभ्यता विस्तृत थी। अत: जगत्‌के आदि ग्रन्थ ऋक्संहितामें जब धान्यका व्यवहार पाया जाता है, तब क्या हमलोग यह नहीं कह सकते कि ईसाजन्मके १०००० वर्ष पहलेसे भारतीय आर्यगण धान्यका व्यवहार जानते थे? उस समय चीनदेशमें सभ्यताका नाम भी न था। इस हिसाबसे भारतवासी सुसभ्य वैदिक आर्यो द्वारा ही धानकी खेती प्रचलित हुई थी, यह अधिकतर सम्भवपर प्रतीत होता है। चीनवासियोंके बहुत पहले सुसभ्य मिस्रवासीगण धान्यकी कृषिप्रणालीसे अच्छी तरह अवगत थे। ५००० वर्षके प्राचीन मिस्रके एक समाधिस्थलमें धानकी दौरी और धानकी झड़ाईका जो चित्र है, वह नीचे दिया जाता है।

(१) Dr Oppert's Orginal Inhabitants of India, p, 12,

(२) ग्रीक् ओरीजासे इतालीय रिसो (riso), फरासी रिज (riz) और अंगरेजी रिस वा राइस (rice) शब्द यथाक्रम निकला है। सफोक्लिसके मन्थमें Orinzus नामसे धान्यका उल्लेख है। जर्मनवासी हेनसाहबके मतानुसार ओरिन्जस शब्दका पारसीक और आरमाथिक रूप है जो साधारणत: विरिंजी वा विरिंजी नामसे ख्यात है।

मिस्रके एक ५००० वर्षके पुरातन समाधि-स्तम्भमें खोदित चित्र।

अभी हम लोगोंके देशमें जिस तरह बैल द्वारा दौरी होती है, उसी तरह ५००० वर्ष पहले भी मिस्र देशमें होती थी। चित्र देखनेसे स्पष्ट मालूम हो जायगा। यदि प्राचीन मिस्रवासी धान्यकी महोपकारिता जान कर उसे भारतवर्षसे ले गये हों, तो यहांकी कृषिप्रथाकी मिस्रमें प्रवर्त्तित हुई थी, यह असम्भव नहीं है।

हम लोगोंमें उदूखल मूसल द्वारा धान कूट कर व्यवहार करनेका उल्लेख पाया है। ५००० वर्ष पहले मिस्रवासी भी उसी तरह उदूखल मूसल द्वारा धान कूटकर तैयार करते थे। निम्नके प्राचीनतम चित्रमें उसका परिचय है (१)।

अति प्राचीनकालसे धान्य भारतवासीका प्रधान अन्न गिना जा रहा है। मनुसंहितामें धान्यके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह नीचे देते हैं—

जिस खेतमें पहले धान बोया जाय वह पवित्र है वह दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है (२।११२)। भूमिकी उर्वरता और कर्षणकार्यके तारतम्यानुसार धान्यादि शस्यका छठा, आठवां वा बारहवां भाग राजाका होना चाहिए (७।१३०)। बांका करके देनेसे पीछे उसका पांचगुना ले सकते हैं, उससे अधिक नहीं (८।१८९)। निकृष्ट धान्य चुरानेसे पांच रुपये और उत्तम किया हुआ धान्य चुरानेसे द्रव्यस्वामीका सम्पर्कीय होनेसे ५० रुपये और असम्पर्कीय होनेसे उसे १०० रुपये जुर्माना करना चाहिये। (८।३२० ३)। ब्राह्मण लोग पालित शूद्रको धान्यका पुआल वा भाग खानेको देते थे (१०।१२५)। भारतवासीके निकट धान जैसा मधुर है और राजा जैसा भाग लेते हैं, ठीक उसी तरह २१५६ वर्ष पहले चीनमें भी वैसी ही प्रथा थी।

(१) See Wilkinson's Ancient Egyptians (New Ed.) Vol. II P 166

भारतवर्षमें जितने प्रकारके अनाज हैं उनमेंसे धान ही सबसे श्रेष्ठ है और प्राचीनकालसे व्यवहृत होता आ रहा है। इसीसे प्राय सभी देशोंमें विशेषतः बङ्गाल और बिहारमें धान्य ही प्रधान खाद्य है। मन्द्राज और ब्रह्मदेशमें भी धानके बिना काम नहीं चलता।

धान्यकी भूसी अलग करनेसे भीतरमें जो बीज बच रहता है उसे संस्कृतमें तण्डुल कहते हैं। यह तण्डुल और धान्य विभिन्न देशमें विभिन्न नामसे प्रसिद्ध है, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं।

धान्यका नाम।	तण्डुलका नाम।	भाषा वा देशका नाम।
धान्य, व्रीहि	तण्डुल	संस्कृत।
धान	चावल चाउर	हिन्दी।
धान	चाउल चाल	बङ्गाल।
धान	चाउल चाउला	उड़िया।
ऊकिया	किया	खसिया।
उरि, उड़ि		मन्द्राज।
मी		गारो।
ऊरन, तानि	--	काश्मीर, पेशावर।
धान, तै. माबियान		कूर्ग।
माती		हजारा।
मोल		पेशावर, पञ्जाब।
मारि, धान	--	राजपूताना।
मारि		सिन्धु।
	तण्डुल	मारवाड़।
"	तन्दाल	महाराष्ट्र।
अरीसि, मामी	नेलि, नेल्	तामिल।
वडलु वरह	बियम	तेलगु।
भाती		कर्णाटे।

अरि	....	मलयालम ।
माव	धान, तसान	ब्रह्म।
छाल, वरई		सिंहल।
मोज, को		जापान।
लुग्रा		कोचीन-चीन।
ताव	मो	चीन।
पाडी	ब्रस	मलय
ब्रसी	छाला	यवद्वीप।
पाडी (Paddy)		इङ्गलैण्ड।
अररुज (Arruzz)		स्पेन।
ब्रिञ्ज (Brinj)	...	आर्मेणिया।
अरुस, रुस, रुज		मिस्र।
विरञ्ज		पारस्य।
ब्रिजञ्जा		पस्तु (काबुली)

तण्डुल और जल दे कर अग्निमें पाक करनेसे खाने योग्य एक प्रकारकी वस्तु बन जाती है जिसे संस्कृतमें 'अन्न', तेलगुमें 'भात्ता', मलयमें 'नामसो' ब्रह्ममें 'तामनी' बङ्गाल और उत्तर भारतमें प्रायः सभी जगह 'भात' कहते हैं।

जिसकी विस्तृत खेती नहीं होती वा जो आपसे आप उत्पन्न होता है, उस धान्यजातीय तृणको जङ्गली धान कहते हैं। संस्कृतमें नीवार और श्यामा दो प्रकारके धानका नाम पाया जाता है। नीवार धान 'नेव-यार' 'नेवारी' आदि शब्दोंसे भाषामें प्रचलित है और श्यामा धान सम्भवतः काश्मीरमें 'दामा' कहलाता है। अयोध्या प्रदेशमें "मुञ्जो" नामक एक प्रकारका जङ्गली धान मिलता है। यह संस्कृत 'मुञ्ज' और चालू भाषाकी 'मूंज' नामक तृणका शस्य है वा नहीं, कह नहीं सकते। उत्तर भारतमें जङ्गली धानको उड़ि और दक्षिण भारतमें नेवारी कहते हैं।

कृषिजात धान्य ही साधारणतः 'धान्य' वा धान कहाता है। इसी धान्यको तामिल भाषामें 'शालि' कहते हैं। संस्कृतमें भी 'शालि' शब्दका प्रयोग है। संस्कृत 'शालि' शब्दसे—व्रीहिभेद, व्रीहिश्रेष्ठ ऐसा अर्थ पाया जाता है। मालूम पड़ता है कि संस्कृत भाषामें 'शालि' शब्दसे कृषिजात धान्य (Cultivated rice) और 'नीवार' शब्दसे वन्य धान्य (wild rice) कहनेसे काम चल सकता है। आसामसे ले कर पञ्जाब तक सब जगह शाली धान्यसे हैमन्तिक वा आमन धानका ही बोध होता है। कृषिजात धानमें हैमन्तिक धान यथेष्ट उपजता है, यही कारण है कि शालि शब्दसे केवल उसीका बोध होता है। इस कृषिजात धान्यका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम oryza sativa है।

वन्य धान्य—धानकी खेती भारतवर्षमें सब जगह होती है। ग्रीष्मसण्डलकी जलाभूमिमें धान स्वभावतः जंगली होता है। भारतके मन्द्राज, उड़िश्या, बङ्गाल, चट्टग्रामसे ले कर आराकान और कोचीन-चीन तक इस प्रकारका जंगली धान बहुत उपजता है। इसीसे बहुतोंका अनुमान है, कि ग्रीष्ममण्डल ही धान्यकी आदि जन्मभूमि है। इसी स्थानसे यह क्रमशः उत्तर और दक्षिणमें फैल गया है। जंगली धान उक्त स्थानके सिवा और कहीं नहीं होता, सो नहीं। नीलगिरि, युक्तप्रदेश, पञ्जाब मध्यभारत राजपूतानका आबूपर्वत, छोटा नागपुर, आसाम, बेलुचिस्तान, अफगानिस्तान, पारस्य आदि स्थानोंमें भी यह कम नहीं उपजता। कोई कोई उद्भिज्जतत्त्ववित् वन्य धान्य और कृषिजात धान्यको बिलकुल स्वतन्त्र श्रेणीके मानते हैं। डाक्टर वाटने अनेक प्रकारके वन्य धान्यकी परीक्षा कर उन्हें प्रधानतः चार भागोंमें विभक्त किया है उनका कहना है कि इन चार श्रेणियोंके साथ कृषिजात धान्यका थोड़ा बहुत फर्क पड़ता है।

(१) Oryza rufipogon—अलीगढ़, सहारनपुर आदिसे इस वन्य धानका नमूना संग्रहीत और परीक्षित हुआ है। डाः वाटने उद्भिज्ज-शास्त्रानुयायी लक्षणादि मिला कर स्थिर किया है, कि सम्भवतः यही प्रायः सब प्रकारके रक्तवर्ण चावलके उत्पादक धानकी आदिमावस्था है। वाह्याकृति देख कर मालूम पड़ता है कि इसकी खेतीमें कम पानीकी जरूरत पड़ती है। डाः वाटने और भी कहा है कि कृषिगुणसे इस शस्यकी परिपुष्टि और उन्नति हो कर ही, मालूम होता है, कि सफेद दाना "छोटो आमन" उत्पन्न हुई है। पूर्वबङ्गालके नविगञ्ज, हविगञ्ज आदि स्थानोंमें नदीके किनारे यह वन्य धान स्वभावतः ही उत्पन्न होता है।

जैसे—अगरो, दुद्दी, माठी, सरया, रामजवाइन, क्षेमा-मार, तुलसीमञ्जरी, नटजोग, किशोर, काजरचोर, कृष्णभोग इत्यादि।

धान्यका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। धान पांच प्रकारका है—शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बीधान्य और क्षुद्रधान्य। इनमेंसे रक्तशालि प्रभृतिको शालिधान्य, यव प्रभृतिको शूकधान्य, मूंग प्रभृतिको शिम्बीधान्य और काङ्गनिधान्य-प्रभृतिको क्षुद्रधान्य या तृण कहते हैं।

शालिधान्यका लक्षण और गुण—जो सब हैमन्तिक धान्य कण्डन और श्वेतवर्णका होता है, उसे शालिधान कहते हैं।

शालि-धानके नाम—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक आदि करके भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान हैं।

शालिधानका गुण—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, मलका गाठिना और अल्पताकारक, लघुपाकी, रुचिकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, ईषत् वायु और कफवर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

दग्धभूमिजात शालिधान—कषायरस, लघुपाकी, मलमूत्र निःसारक, रूक्ष और कफनाशक। खेत जोत कर धान बुननेसे जो धान उत्पन्न होता है, वह वायु और पित्तनाशक, गुरु, कफ और शुक्रवर्द्धक, कषायरस, मलका अल्पताकारक, मेधाजनक तथा बलवर्द्धक माना गया है।

जो धान अकृष्ट भूमिमें आपसे आप उत्पन्न होता है वह ईषत् तिक्तरसयुक्त, मधुर, कषायरस, पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटुविपाक है।

वापित धान अर्थात् एक जगहसे उखाड़ कर जो दूसरी जगह रोपा जाता है, वह मधुर, कषायरस, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, गुरु और शीतवीर्य होता है।

जो धान आपसे आप उपजता है उसे अवापित-धान कहते हैं। अवापित धान वापित धानकी अपेक्षा अल्प गुणविशिष्ट होता है।

रोपितधान अभिनव अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुराना होने पर लघु होता है। अतिरोप्य धान अर्थात् रोया धानको उखाड़ कर दूसरी जगह रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है वह रोया धानकी अपेक्षा गुणयुक्त और लघुपाकी होता है।

छिन्नरूढ़ा शालिधान्यका गुण शीतवीर्य, रूक्ष, बलकारक, पित्तघ्न, कफनाशक, मलरोधक, ईषत् तिक्तसंयुक्त, कषायरस और लघु माना गया है।

रक्तशालिका गुण—शालिधान्यमें रक्तशालिधान्य ही श्रेष्ठ होता है। यह बलकारक, वर्णप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, अग्निकारक, पुष्टिजनक, और पिपासा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, कास और दाहनाशक है। महाशालि प्रभृति रक्तशालिकी अपेक्षा अल्पगुणयुक्त होते हैं।

व्रीहिधान्यका लक्षण और गुण—वर्षाकालसम्भव धान्यमें जो छांटने पर सफेद वर्णका होता और देरीसे पकता है, उसे व्रीहिधान्य कहते हैं।

कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, जतुमुख आदि अनेक प्रकारके व्रीहिधान हैं। जिस धानकी भूसी और चावल काला होता है, उसे कृष्णव्रीहि; जिसका वर्ण पाटलपुष्पके समान होता है, उसे पाटलव्रीहि, जिस धानकी आकृति कुक्कुटडिम्ब सी होती है, उसे कुक्कुटाण्डक; जिस धानका चावल और भूसा काला होता है, उसे शालामुख और जिस धानके मुखका वर्ण लाक्षाके समान होता है, उसे जतुमुख व्रीहि कहते हैं।

व्रीहिधान—मधुर, विपाक, शीतवीर्य, ईषत् अभिष्यन्दी, मलरोधक और षष्टिक धानके समान होता है। व्रीहिधान्यके मध्य कृष्णव्रीहि ही सबसे श्रेष्ठ तथा गुणविशिष्ट है।

षष्टिक धान्यका नाम, लक्षण और गुण।—जिसका अन्न पेटमें जानेसे ही पच जाता है, उसे षष्टिधान कहते हैं। षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्द और महाषष्टिक आदि अनेक प्रकारके षष्टिकधान हैं। इन्हें कोई कोई व्रीहिधान भी कहते हैं। क्योंकि व्रीहिधानके जो सब लक्षण हैं, वे लक्षण इनमें भी पाये जाते हैं।

षष्टिकधान्यमें मधुररस, शीतवीर्य, लघु, मलरोधक, वातल, पित्तनाशक तथा शालिधान्यके जैसा गुण माना गया है।

षष्टिक धान्योंमें षष्टिशालि धान्य ही श्रेष्ठ गुणयुक्त है। यह लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुररस मृदुवीर्य, धारक, बलकारक, ज्वरनाशक, तथा रक्तशालिके जैसा गुणयुक्त होता है। अपरापर षष्टिक धान्योंमें इसकी अपेक्षा अल्प गुण है।

शूकधान्य।—यव, सितशूक, निःशूक, अतियव, तोक्म और अस्यमव ये सब शूक धान्यके भेद हैं। शूकधान्यों में यव श्रेष्ठ है।

यवका गुण—कषाय, मधुर रस, शीतवीर्य, लेखन गुणयुक्त मधु; 'प्रमेहमें तिक्तके समान हितकारक, रूक्ष मेधाजनक, अग्निवर्द्धक, कटुविपाक, अनभिष्यन्दी, स्वरप्रसादक, बलकारक, गुरु अत्यन्त वायु और मल वर्द्धक, वर्णप्रसादक, शरीरका स्थिरतासम्पादक, पिच्छिल, एवं कण्ठगत रोग चर्मगत रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास कास, उरुस्तम्भ, रक्तदोष और पिपासानाशक है। इन सबकी अपेक्षा अतियव अल्पगुणयुक्त माना गया है।

गोधूम शूकधान्यके अन्तर्गत है। इसका दूसरा नाम है सुमन। गोधूम तीन प्रकारका होता है—१ला महागोधूम, यह बड़ा गोधूम कहाता है और पश्चिम प्रदेशमें उत्पन्न होता है। २रा मधूलीनामक, यह कुछ छोटा होता है और मध्यप्रदेशमें उपजता है। ३रे प्रकारका नाम है नन्दीमुख, यह शूकादिहीन दीर्घाकृतिका होता है। यव देखो।

महागोधूमका गुण—मधुररस, शीतवीर्य, वातल, पित्तनाशक, गुरु कफजनक, शुक्रवर्द्धक बलकारक, स्निग्ध, भग्नसन्धानकारक, सारक, जीवीधातुवर्द्धक, वर्ण्य, प्रसादक, व्रणका हितकारक, रुचिजनक, और शरीरका स्थिरतासम्पादक है। गोधूमकी कफजनक शक्ति नूतन गोधूममें है पुरातनमें नहीं। मधूली गोधूम शीतवीर्य, स्निग्ध पित्तनाशक, मधुररस, लघु और शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक और सुपथ्य है। नन्दीमुख गोधूम इसीके समान गुणदायक है। विशेष विवरण गोधूममें देखो।

शिम्बी धान्य—शमीज शिम्बीज, सूप्य और वैदल ये सब शिम्बीधान्यके नाम हैं। इसका गुण—मधुर, कषाय रस, रूक्ष, कटु, विपाक, वायुवर्द्धक, कफघ्न, पित्तनाशक, मलमूत्ररोधक और शीतवीर्य है। इनमेंसे मूंग और मसूरके सिवा अन्य सभी वैदल आध्मान-कारक हैं। मूंग और मसूर बिलकुल आध्मानकारक नहीं है सो नहीं, पर हां, अन्यान्य वैदलकी अपेक्षा कम है।

मूंग, माष, निष्पाव मुकुन्द, मसूर, आढ़की (अरहर) कलाय, चिमाटे कुलथी, तिल, राई आदि शिम्बीधान्य के अन्तर्गत हैं। इनका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

क्षुद्रधान्य—क्षुद्रधान्य कुधान्य और तृणधान्य ये तीन एकार्थवाचक शब्द हैं। क्षुद्रधान्य ईषत् उष्ण, कषाय, मधुर रस, कटु विपाक, लघु, लेखनगुणयुक्त, रूक्ष, क्लेद-शोषक, वायुवर्द्धक, मलमूत्ररोधक और पित्त रक्त तथा कफनाशक है। क्षुद्रधान्यके जितने प्रकारके भेद हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

कङ्गुधान्य—कङ्गु और प्रियङ्गु एकपर्यायक शब्द हैं। यह कृष्ण, रक्त शुक्ल और पीतवर्णके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे पीतवर्ण कङ्गु सबसे श्रेष्ठ है। इसका गुण—भग्नसन्धानकारक वायुवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, गुरु, रूक्ष, कफनाशक, अत्यन्त शुक्रवर्द्धक और गुणकर है।

चीनाक धान्य—यह कङ्गुनि धान्यका प्रभेदमात्र है और कङ्गुनिके समान गुणदायक भी है।

श्यामाक धान्य—शोषक, रूक्ष, वायुवर्द्धक एवं कफ और पित्तनाशक है।

कोद्रव धान्य—कोद्रवक और कोरदूष ये दो कोदों धान्यके नाम हैं। वनकोद्रवको उद्दाल कहते हैं। इसका गुण वायुवर्द्धक, धारक, शीतवीर्य और पित्त तथा कफनाशक है। वनकोद्रव उष्णवीर्य धारक तथा अत्यन्त वायुवर्द्धक है।

नारकधान्य—इसका दूसरा नाम वरगोत्र है। इसमें मधुर, कषायरस, रूक्ष, रक्तपित्तनाशक, कफघ्न, शीत वीर्य, लघु मूत्रवर्द्धक, तथा वायुका प्रकोपकारक गुण माना गया है।

वंश-बीज—रूक्ष, कषायरस, कटु, विपाक, मूत्र

रोधक, कफनाशक, वायु और पित्तकारक तथा सारक है।

कुसुम्भबीज—वरटा और वरटिका ये दो कुसुम्भ बीजके पर्याय हैं। इसका गुण मधुर, कषायरस, स्निग्ध, रक्तपित्तघ्न, कफनाशक, शीतवीर्य, गुरु, अहृद्य और वायुनाशक है।

गवेधुका—इसमें कटु, मधुररस, कृशताकारक और कफनाशक गुण है।

नीवारका दूसरा नाम प्रसाधिका और वृणान्त है। इसका गुण—शीतवीर्य, धारक, पित्तनाशक तथा कफ और वायुजनक है। यवनाल शीतवीर्य, मधुर, कषाय-रस, लोहित, कफघ्न, पित्तनाशक, अहृद्य, रूक्ष, क्लेद-जनक और लघु है।

नूतन सभी धान्य मधुररस, गुरु और कफकारक होते हैं। एक वर्षका पुराना धान क्रमशः अपना गुरुत्व छोड़ता है, लेकिन वीर्य नहीं छोड़ता। जो धान जितना पुराना होता जाता है वह उतना ही अपना वीर्य छोड़ता जाता है लेकिन यव, गोधूम, तिल और माष ये सब नूतन अवस्थामें भी विशेष हितकर होते हैं। पुराना होने पर अर्थात् दो वर्ष बीत जाने पर से विरस और रूक्ष हो जाते हैं। जो मनुष्य सुस्थ हैं उन्होंके लिये नवीन यव गोधूम आदि हितकर हैं, पथ्यभोजीके लिये नहीं। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें धान्यका विषय इस प्रकार लिखा है—लोहित, शालि, कर्दम, पाण्डु, सुगन्ध, शकुनाहृत, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, काञ्चन, महिष-मस्तक, हायन, दूषक, महादूषक प्रभृति शालिधान्य हैं। शालिधान्य मधुर, शीतवीर्य, लघुपाक, बलकर, पित्तघ्न, अल्पवायु और कफ-कर, स्निग्ध, मलका अल्पताकारक तथा मलरोधक होता है। सब प्रकारके शालिधान्योंमें लोहित धान्य ही श्रेष्ठ है। यह दोषघ्न, शुक्र और मूत्रवृद्धिकर, चक्षु और स्वरके पक्षमें हितकर, वर्णकर, बलकर, हृद्य, श्रान्तिनाशक, व्रणके लिये हितकर तथा सब प्रकारके दोषनाशक है।

षष्टि, काङ्गक, मुकुन्द, पीत, प्रमोद, काकलका, असनपुष्प, महाषष्टिक, चूर्ण, कुरव और केदार आदि षाट्धान्य हैं। ये रस और पाकमें मधुर, वातपित्तके पक्षमें शान्तिकर, गुणमें प्रायः शालिधान्यके समान हैं। यह पुष्टिकर, कफ और शुक्रका वृद्धिकर है। इनमेंसे षाट्धान्य ही प्रधान है। षाट्धान्य पश्चात् कषायरस विशिष्ट, लघु, मृदु, स्निग्ध त्रिदोषघ्न, शरीरका स्थैर्य और बलवर्द्धनकर, विपाकमें मधुर, संग्राही और लोहित धान्यके समान है। दूसरे सभी षाट्धान्य उत्तरोत्तर क्रमशः अल्पगुणविशिष्ट हैं।

कृष्णव्रीहि, शालामुख, नन्दीमुख, गवाक्षक, त्वरितक, कुक्कुटाण्ड, पारावत, पाटल प्रभृति व्रीहिधान्य अर्थात् आशु-धान्य हैं। व्रीहिधान्य कषाय, मधुर, पाकमें मधुर, चक्षुः-रोगकारी और षाट्धान्यके समान गुणकारी तथा मलसंग्राहक है। व्रीहि धान्योंमें कृष्णव्रीहि ही श्रेष्ठ है। यह पश्चात् कषाय रसविशिष्ट और लघु होता है। जो सब शालिधान्य दग्धभूमिमें उत्पन्न होते हैं, वे लघु-पाक, कषाय, मलमूत्रके संग्राही, रूक्ष एवं श्लेष्मनाशक हैं। उखभूमिजात धान्य ईषत् तिक्त, मधुर, वायु और अग्निवर्द्धक, कफ और पित्तनाशक, कषाय और पश्चात् कटु होता है। केदार धान्यमें मधुर, वृष्य, बलकारक, पित्तनाशक, ईषत् कषाय, अल्प मलकारी, गुरुपाक, कफ और शुक्रवर्द्धक गुण माना गया है।

रोप्यातिरोप्यधान्य—लघुपाक, अतिशयगुणकारी, अदाही, दोषनाशक, बलकर एवं मूत्रवर्द्धक होता है। जिन सब शालिधान्योंके भीतरमें अङ्कुर रहता है वे रूक्ष, मलवर्द्धनकर और श्लेष्मजनक होता हैं।

कुधान्य—कोरदूषक, श्यामा, नीवार, शान्तनु, तुवर, आढ़की, कोद्दालक, प्रियङ्गु, मधुलिका, नान्दीमुख, कुरुविन्द, गवेधुका, वरुक, उपपर्णी, मुकुन्द, वेणुयव आदि कुधान्यवर्ग है। ये उष्ण, मधुर, रूक्ष, कटुपाक, श्लेष्मघ्न, स्रावरोधक और वायुपित्तके प्रकोपकर हैं। इन-मेंसे कोद्रव, नीवार, श्यामा और शान्तनुमें कषाय, मधुर और शीत पित्तका शान्तिकर गुण माना गया है। (सुश्रुत) विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

पद्मपुराणके उत्तर-खण्डमें धान्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

एकादशीके दिन अन्न वर्जनीय है। असमर्थ होने पर

कुछ कुछ पञ्चभूतादि का पकती है। यव धान्यसे निकला है। धान्य नाना प्रकारका है—श्यामा, माष, मसूर, कोद्रव, सर्षप, मकुष्ट, राजमाष, तुवर, कुलथ यव, गोधूम, तुषतिल, चणक; कुलथ मसूरक, नीवार आढ़क, कलाय, मालूक, मकुष्ठ एवं कोरदूष, वल्ल, तिलक, चणक आदि धान्य कहलाते हैं। इन सब द्रव्योंसे जो प्रसूत होता है उसे अन्न कहते हैं। अन्नप्राशन कहनेसे उक्त सभी द्रव्योंका खाना समझना चाहिये।

भविष्यपुराणमें धान्यका परिमाण इस प्रकार बतलाया है—पल, कुडव, प्रस्थ, आढ़क, द्रोण ये सब धान्यके परिमाण हैं। चार पलका एक कुडव, चार कुडवका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढ़क, चार आढ़कका एक द्रोण, १६ द्रोणका एक खारी और २० खारीका एक कुम्भ होता है।

धान्यका व्यवहार—भोजनके सिवा धान्य और भी अनेक कामोंमें व्यवहृत होता है।

१ क—पञ्जाबमें श्वेत वा पीताभ धान्यके तुषसे बहु पीताभ पाटल वर्णका रंग प्रस्तुत होता है। लाहोरके मि० हामस काइलूमें इसका नमूना पाया था।

२ ख—इसके खड़ (निर्मित संवत और मूलतन्तु) से कागज प्रस्तुतीकरणका उपादान प्राप्त हो सकता है। इसकी कई बार परीक्षा भी हो चुकी है, किन्तु इससे कोई अच्छा फल नहीं निकला। पर हाँ, किसी मसालेके साथ मिलानेसे इससे एक प्रकारका बढ़िया कागज बनता है। चीन एवं बेलजियम आदि देशोंमें इसका विस्तृत व्यवहार होता है।

औषध—आयुर्वेद शास्त्रमें धान्य अनेक प्रकारके औषध और पथ्यरूपमें व्यवहृत हुआ है। धानके चर्वको जलमें सिद्ध कर पीछे उसमें अदरख, मिर्च तथा अन्यान्य मसाले मिलानेसे एक प्रकारका पाचक तैयार होता है। यह पाचक दुर्बल रोगोंके लिये पुष्टि और रुचिकर आहार है। बङ्गालमें धानको भुननेसे भूसी अलग हो जाती और भीतरका चावल फूल उठता है जिसे लाई कहते हैं। यह लघु आहारके रूपमें तथा अजीर्ण रोगमें पथ्यरूपमें व्यवहृत होती है। उबाले हुए धानको धूपमें सुखा कर उखलीमें कूट कर चावल तैयार करते हैं। इसी धानको भुननेसे मुड़ी बनती है यह भी लघुपथ्य तथा अजीर्ण रोगोंमें व्यवहृत होती है। धानको कुछ काल तक भिगोए रखनेके बाद उसे भुनते हैं और ढेंकी अथवा उखलीमें कूट कर उससे चिउड़ा तैयार करते हैं। इसके सिवा चिउड़ा खानेसे आमाशयमें बहुत लाभ पहुंचता है। चावल भिगोया हुआ जल अनेक औषधके अनुपानरूपमें व्यवहृत होता है। अर्थमें भीगा हुआ एक डालनेसे यह सब प्रकारकी उदर पीड़ाके लिये उपकारी पथ्य है। चीनी प्रभृत भातमें स्वच्छपरिमाणकी ऐक्यता देखी जाती है। तीसीकी 'पुलटिस' बदलेमें डा० मार्टिनने चावलकी पुलटिसकी व्यवस्था कर विशेष उपकार लाभ किया है। भार्न मेयर डा० बयाकरका कहना है, कि आर्ष्टिल जवकी अपेक्षा चावलका मण्ड अधिक उपकारी है। डा० मधुसूदनदासने विसूचिका और आमाशयमें भातका मांड़ व्यवहार कर विशेष लाभ उठाया है।

इस लोगोंके देशमें धानसे चावल निम्नलिखित प्रणालीसे निकाला जाता है। धानको पहले अच्छी तरह धूपमें सुखा लेते हैं। पीछे उसे ढेंकी या ओखलीमें कूटते हैं। जब उनमेंसे भूसी अलग निकल जाती है, तब सूपसे साफ कर चावलको अलग रखते हैं। इस प्रकारके प्रस्तुत चावलको आतप चावल कहते हैं। इस प्रणालीमें आशानुरूप चावल तैयार नहीं होता इस कारण अधिकांश लोगोंमें धानको सिद्ध कर पीछे उसे धूपमें सुखने देते हैं। तदनन्तर पूर्ववत् ढेंकी या ओखलीमें कूट कर भूसीसे चावल अलग कर लेते हैं। इस प्रकारका प्रस्तुत चावल सिद्ध चावल कहलाता है। सब मनुष्योंके अपवित्र घरमें धान सिद्ध होता है इस कारण हिन्दूके निकट यह अशुद्ध चावल समझा जाता है। इससे कोई शास्त्रीय कार्य सम्पन्न नहीं होता। यही कारण है, कि इस देशकी उच्च हिन्दू श्रेणीकी स्त्रियाँ सिद्ध चावल नहीं खातीं।

मिस्रदेशके समाधि-स्तम्भमें अङ्कित पाँच हजार वर्षके पुरातन चित्रमें धानकी कटाई, धानकी माड़ाई और ढेंकिया जो चित्र देखनेमें आता है, आज भी भारत, ब्रह्म, चीन, जापान आदि देशोंमें उसी प्रकार धानका

उससे कुछ उन्नत भावमें सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। *

अभी यूरोपीय वैज्ञानिकोंकी विद्याबुद्धिके प्रभावसे उक्त सभी कार्य करनेके लिये नाना प्रकारके यन्त्र आविष्कृत हुए हैं। शारीरिक बलकी अपेक्षा इन सब यन्त्रोंसे अनायास और प्रकृष्ट रूपमें कार्य सुसम्पन्न हो सकते हैं। किन्तु इस देशके कृषकोंके निकट वे सब यन्त्र उतने आहृत नहीं हैं।

धान्य हिन्दुओंके देवता रूपमें पूजनीय है। इसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। नूतन धान्य होने पर लक्ष्मी-रूपमें उसकी कल्पना कर पूजा करनी होती है। धान्य वपन वा धान्यच्छेदन शुभ दिन देख कर किया जाता है। कुदिनमें करनेसे अच्छा फल प्राप्त नहीं होता। कृत्य-तत्त्वमें हलवाहन और बीजवपनादिकी विधि इस प्रकार लिखी है ;—

पहले भूमिको परिष्कृत कर हल चलाना होता है। अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्या, मघा, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, स्वाति, मूला, श्रवणा और रेवती नक्षत्र हल कार्यमें उत्तम; अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, और शतभिषा नक्षत्र मध्यम तथा एतद्भिन्न नक्षत्रोंमें हलकार्य निषिद्ध बतलाया है। रिक्ता, षष्ठी, अष्टमी, दशमी और द्वादशी तिथि तथा मङ्गल और शनिवार छोड़ कर सभी वार कृषिकर्ममें प्रशस्त हैं। चन्द्र और ताराके शुभ होने पर तथा वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नमें हल प्रवाह करे। इसमें यथाविधि सङ्कल्प आदि करके क्षेत्रके ईशान कोणमें एक हाथ लम्बा चौड़ा गड्ढा बना उसे जलसे भर दे। पीछे प्रजापति, सूर्यादि नवग्रह और पृथ्वीकी पूजा करके निम्न-लिखित मन्त्र द्वारा पृथ्वीको अर्घ्य देनेका विधान है ;—

"ओं हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि।
वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे॥"

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, प्रचेता, पर्जन्य, मेघ, चन्द्र, अर्क, वह्निः, बलदेव, सीता, हल, पृथु, वृष, वायु, राम, लक्ष्मण, सीता, स्वर्ग और गगन इन सबकी पूजा करके क्षेत्रपाल अग्निका प्रदक्षिण करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। बादमें आम्रपल्लव, ओदन, पायस और दधि उक्त गड्ढेमें डाल कर ऊपरसे मट्टी द्वारा उसे पूरा कर दे। पीछे दो मोटे ताजे बैलोंको उस स्थान पर ला कर नव-नीत वा घृत उनके मुखपार्श्वमें लगा दे। हलके फालमें भी उसे प्रदेप कर सुवर्ण द्वारा घर्षण करे। इस समय बलि, इन्द्र, पृथु, राम, इन्दु, पराशर और बलभद्रका स्मरण करना होता है। पीछे हल द्वारा एक वा तीन रेखा करे। बादमें हलवाहक प्रणत हो कर हल चलावे। इस समय वृषोंके बीच यदि द्वन्द्व उपस्थित हो जाय, तो शस्यकी हानि तथा नर्द्दन अथवा मूत्र पुरीषोत्सर्ग होनेसे चतुर्गुण शस्य होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस समय निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करनी होती है,—

"ओं त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पे फलप्रदे।
नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिमेषां शुभं कुरु॥
रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देवः प्रवर्षतु।
कर्षकश्च भवन्त्वग्रा धान्येन च धनेन च॥"

इस प्रकार हल प्रवाह करके भूमिके परिष्कृत हो जाने पर बीज वपन करना चाहिये। इसमें भी शास्त्रीय नियम यह है कि, बीजवपनमें हलप्रवाहोक्त कार्य ही प्रशस्त है, केवल धान्यरोपणमें पार्थक्य देखा जाता है। इसमें रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, मूला और पूर्व भाद्रपद नक्षत्र तथा वृष, वृश्चिक, सिंह, कुम्भ, स्वीय जन्म लग्न, मिथुन, कन्या, तुला और धनुका पूर्वार्द्ध लग्न प्रशस्त है। हलप्रवाहोक्त वार और तिथि तथा इसका विषय जानना आवश्यक है। उक्त शुभदिनमें प्रातःकालको यथाविधि सङ्कल्प करके पूर्वोक्त रूपसे पूजा करनी होती है।

यह सब हो चुकनेके बाद पूर्वमुखो हो इन्द्रका ध्यान करे और सुवर्ण जल संयुक्त करके तीन मुट्ठी धान्यका बीज वपन करे।

प्रति बीघेमें १५से ले कर २० सेर तक बीज बोया जाता है और पकने पर उसमें १५।२० मनसे कम नहीं उपजता।

कार्त्तिक और पौष मास छोड़ कर अन्य सभी मासोंमें धान काट सकते हैं। किन्तु मतान्तरमें पौष मासके

* भारतवर्षके विभिन्न जिलोंमें किस प्रकार धानकी खेती होती है, इस विषयमें D. Watt's Dictionary of the Economic Product of India, Vol. VI. art. Oryza Sativa देखो।

धान्यधेनु (सं० स्त्री०) धान्य निर्मिता धेनुः। दानार्थ धान्यनिर्मित धेनु, दानके लिये एक कल्पित गाय जिसकी कल्पना धानकी ढेरीमें की जाती है। इसका विषय वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

विषुवसंक्रान्ति, वा कार्त्तिक मासमें यह धान्यधेनु दान करनी होती है। दानका विधान इस प्रकार लिखा है, यह धान्यधेनु दान करनेसे सब पाप नाश हो जाते हैं। उस धेनु दान करनेमें जो फल लिखा है, वही फल धान्यधेनुमें भी है।

पीछे कृष्णाजिन प्रस्तुत कर उसे वत्सकी कल्पना और जमीनको गोबरसे लीप कर वहां सुन्दर वस्त्राच्छादन पूर्वक धेनुकी कल्पना करते हैं। यह धेनु वेदिमें वैदिक मन्त्रसे पूजी जाती है। चार द्रोण धानसे जो धेनु कल्पित होती है, उसे उत्तम धेनु और जो दो द्रोणसे कल्पित होती है उसे मध्यम धेनु कहते हैं। धेनुके चतुर्थांशसे बछड़ेकी कल्पनाकी जाती है। इस कल्पित धान्यधेनुके सींग सोने और खुर चाँदीके होने चाहिये।

पलान सोनेका, नाक अगरकी, दाँत मुक्ताफलके, मुँह घी या मधुका, कान सुन्दर पत्तोंके, पैर ईखके टुकड़ोंके, पूंछ रेशमी वस्त्रकी और उसके साथ साथ तरह तरहके फल और रत्नका गर्भ बना कर उसे खड़ाऊँ, जूते, छाते आदिके साथ पुण्य कालमें तीन बार प्रदक्षिणपूर्वक दान देनेका विधान है। जो धान्यधेनु दान करते हैं, उन्हें सब प्रकारके फल मिलते हैं, तथा वे इस लोकमें सौभाग्य आयु और आरोग्यता लाभ करते हैं। अन्तकालमें वे अर्कवर्णके विमान पर चढ़ कर अप्सराओंसे प्रशंसित होते हुए स्वर्गलोकको जाते हैं।

धान्यपञ्चक (सं० क्ली०) धान्यानां पञ्चकं ६-तत्। १ भावप्रकाशोक्त शालि, व्रीहि, शूक, शिम्बी और क्षुद्र ये पांचों प्रकारके धान। २ अतिसार रोगका पाचनभेद। यह पांचों प्रकारके धान, बेल और आम आदिको मिला कर बनाया जाता है। इसके सेवन करनेसे आम, शूल और अतिसार रोग दूर हो जाते हैं। ३ पाचन औषधभेद, एक पाचक औषध। यह धनिया, सौंफ, नागरमोथा बेलगिरी और त्रायमाणा प्रत्येकके दो तोलेको आध सेर जलमें औटते हैं। आध पाव पानी रह जाने पर उसे नीचे उतार लेते हैं। पीछे ठंढा होने पर इसमें आध तोला मधु मिला देते हैं। इसके सेवन करनेसे आमातिसार और उदरशूल आदि रोग आरोग्य हो जाते हैं। इसीका नाम धान्यपञ्चक है। पैत्तिक अतिसारमें धान्यपञ्चकके अंग सोंठ छोड़ कर अवशिष्ट ४ द्रव्योंका पूर्ववत् पाचन तैयार कर सेवन करना चाहिये। इसका नाम धान्यचतुष्क है।

धान्यपटोल (सं० क्ली०) वैद्यकोक्त औषधभेद। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—१ तोला धनियेके और परवलके पत्तोंको कूट कर ३२ तोला जलमें सिद्ध करते हैं। ८ तोला जल बच जाने पर उसे उतार कर छान लेते हैं। इसके सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति, कफनाश, वायु और पित्तका अधोनिःसरण, आमदोषका परिपाक और ज्वरनाश होता है।

धान्यपति (सं० पु०) धान्यानां पतिः ६-तत्। १ व्रीहि, चावल। २ यव, जौ।

धान्यपानक (सं० क्ली०) पानकविशेष, एक प्रकारका पना। इसके बनानेके लिये पहले धनियेको सिल पर अच्छी तरह पीस कर पानीके साथ छान लेते हैं। पीछे उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगन्धित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं। इसके सेवन करनेसे पित्त नाश होता है।

धान्यपिप्पली (सं० स्त्री०) १ आमज्वर। २ ज्वरका एक पाचक।

धान्यबीज (सं० पु०) धनिया।

धान्यभक्षक (सं० पु०) ग्टहकर्त्ता पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया।

धान्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) धान्यानां मञ्जरी ६-तत्। धान्यकाशीष, धानका अंकुर।

धान्यमण्ड (सं० पु० क्ली०) धान्यकृत मण्ड, धानको बनाई हुई शराब।

धान्यमाढ (सं० त्रि०) धान्यं माति मा ढच्। धान्यमापक, धान नापनेवाला।

धान्यमाय (सं० पु०) धान्यं माति मा-अच्। (हवमामच। पा ३।२।२२) ततो युक्। १ धान्यपरिमापक, वह जो धान तौलता हो। २ धान्यविक्रेता, वह जो धान बेचता हो।

धान्यमालिनी (सं० स्त्री०) रावणके यहां रहनेवाली एक

चन्दन और पश्चिममें सन्तान वृक्षकी कल्पना की जाती है। चांदीके बने हुए शृङ्गमें हीरके, गारुत्मत मणि, मरकत, पद्मराग और मुक्ताफलादि यथास्थान पर रख देते हैं।

इक्षु द्वारा वंश, घृत द्वारा उदक, चित्र द्वारा कपूर और विचित्र वस्त्र द्वारा मेघ समूह बनाना होता है। धान्यपर्वत यथाविधि प्रस्तुत हो जाने पर निम्नलिखित मन्त्रसे अवस्थान करना चाहिये। मन्त्र—

"त्वं सर्वदेवगणधामनिधे! विरुद्ध-
मस्मद् गृहेऽप्यमरपर्वत! नाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्ति मनुत्तमां नः।
सम्पूजितः परम भक्तिमता मया हि॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मविष्णुर्दिवाकरः।
मूर्त्तामूर्त्तपरं बीजमतः पाहि सनातनः॥
यस्मात्वं लोकपालानां विश्वमूर्त्तेश्च मन्दिरं।
रुद्रादित्यवसूनाञ्च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च सर्वं तथा।
तस्मान्मामुद्धराशेष दुःखसंसारसागरात्॥"

यही आवाहन करनेका मन्त्र है। पीछे मन्दरकी पूजा और यथाविधि होमादि कर दान देना चाहिये।

दानमन्त्र—

"अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते॥
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्द्दनः।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमो नमः॥"

बादमें यजमान यथाविधि आचार्यौकी पूजा करते और उनकी अनुज्ञा ले कर दान करते हैं। इस दिन दाताको क्षारलवण नहीं खाना चाहिये। जो विधिके अनुसार धान्यशैल दान करते हैं, उन्हें स्वर्गमें सेवाके लिये अप्सराएँ और गन्धर्व मिलते हैं और यदि वे किसी प्रकार इस लोकमें आ जांय तो राजाधिराज-चक्रवर्ती होते हैं। (मत्स्यपु०)

धान्यश्रेष्ठ (सं० क्ली०) हैमन्तिक शालिधान्य।

धान्यसार (सं० पु०) धान्यस्य सारः। तण्डुल, चावल।

धान्या (सं० स्त्री०) धन्याक पृषो० साधु। धनिया।

धान्याक (सं० क्ली०) धन्याक स्वार्थे अण्, धान्यं अकति अक-अण्। धनिया।

धान्याकृत् (सं० पु०) कृषक, खेतिहर।

धान्याग्र (सं० क्ली०) धनियेका अगला भाग।

धान्यादि (सं० त्रि०) धान्यभोजी, धान खानेवाला।

धान्यादिपानक (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त औषधविशेष। धनियेका चूर्ण, चीनी और चावलका पानी छोटे बच्चेको पिलानेसे उसका काश और श्वास नष्ट हो जाता है।

धान्यादिहिम (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली-धनिया, आमलकी, अडूस, किसमिस और पित्तपापड़ इन सबसे शीत कषाय तैयार कर सेवन करनेसे रक्त पित्त, ज्वर, दाह, पिपासा और शोष रोग जाते रहते हैं।

धान्याभ्र (सं० क्ली०) १ भावप्रकाशोक्त अभ्रमारणोपयोगी वस्तुभेद, भस्म बनानेके लिये धानकी सहायतासे शोधा और साफ किया हुआ अभ्रक। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले अभ्रककी सुखा कर खरलमें खूब महीन पीस लेते हैं। पीछे उस चूर्णको चौथाई धानके साथ मिला कर एक कम्बलमें बांध देते और तीन दिन तक पानीमें रख छोड़ते हैं। तीन दिन बाद उस पोटलीको हाथसे इतना मलते हैं कि वह छन कर नीचे पानीमें गिर जाता है। यही अभ्रक निथार कर सुखाया जाता है। भस्म बनानेके लिये ऐसा अभ्रक बहुत अच्छा समझा जाता है। २ अभ्रककी इसी प्रकार शोधनेकी क्रिया।

धान्याम्ल (सं० क्ली०) धान्यविकारात् जातं अम्लं। काञ्जिक, कांजी। शालिचूर्ण और कोद्रवादि द्वारा सन्धान करने पर जो अम्लरसयुक्त तरल पदार्थ प्रस्तुत होता है, उसीको धान्याम्ल कहते हैं। धान्याम्ल धानसे बनाया जाता है इसलिये यह अत्यन्त प्रीतिजनक, लघु और अग्नि दीप्तिकारक है तथा अरुचि रोगमें, सब प्रकारके वात रोगमें तथा आस्थापनमें हितजनक है।

दूने जलके साथ धानको एक बन्द बरतनमें रख कर गाड़ दो। सात दिन पीछे उसे निकाल कर उसका पानी छान ले, यही खट्टा पानी कांजी है।

धान्याम्लक (सं० क्ली०) धानसे बनाई हुई खटाई या कांजी। भावप्रकाशमें लिखा है, कि कई तरहके धानोंकी भूसीमें जल मिला कर उसे किसी मट्टीके बरतनमें रखें। पीछे भृङ्गराजके साथ मुण्डी, विष्णुक्रान्ता, पुन-

जातिके और जो पीछे गला कर उसे पक्का करते, वे हिन्दू होते हैं। एक कारखानेसे प्रति सप्ताह २० से २५ मन पक्का लोहा तैयार होता है।

धामतारि—१ मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेकी एक तहसील यह अक्षा० २०° १' से २१° २' उ० और देशा० ८१° २५' से ८२° १०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २५४२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३१०८८६ है। इस तहसीलमें एक शहर और ५४१ ग्राम लगते हैं। यहांकी आय एक लाख रुपयेसे अधिककी है।

२ उक्त तहसीलका एक वृहत् और प्रधान शहर। यह अक्षा० २०° ४२' उ० और देशा० ८१° ३५' पू० रायपुर शहरसे ४६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोक-संख्या लगभग ८१५१ है। गेहूं, चावल, रुई और तेल-हन अनाज ही यहांकी प्रधान उपज है। यहां ऊख अच्छी लगती है। इस शहर तक रेलके आ जानेसे यहां-की दिनोंदिन उन्नति होती जा रही है। १८८१ ई०में यहां एक म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। यहांसे लाह, खड़ और चमड़ेकी रफ़्तनी दूसरे दूसरे देशोंमें होती है। शहरमें एक अस्पताल, एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी बालिका स्कूल है।

धामधा (सं० पु०) पालक, रक्षक।

धामन् (सं० क्ली०) दधाति गृहस्थादिकं धीयते द्रव्यजात-मस्मिन्निति वा, धा-मनिन्। (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४४) १ गृह, घर। २ देह, शरीर। ३ त्विष, शोभा। ४ प्रभाव। ५ रश्मि, किरण। ६ स्थान, जगह। ७ जन्म। ८ विष्णु। ९ तेज। १० दामोपलक्षित। ११ बागडोर, लगाम। १२ देवस्थान, पुण्यस्थान। १३ ज्योति। १४ परलोक १५ स्वर्ग। १६ अवस्था, गति।

धामन (हिं० पु०) देहरादूनसे आसाम तक साल आदिके जङ्गलोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़ जो फालसे-की जातिका होता है। इसकी लकड़ी प्रायः बहंगीके डंडे या कुल्हाड़ी आदिके दस्ते बनानेके काममें आती है। २ एक प्रकारका बांस।

धामनगर—१ उड़ीष्याके बालेश्वर जिलेका एक परगना और ग्राम। चूड़ाकुटी और श्यामपुर इस नगरके प्रधान ग्राम हैं। भद्रक उपविभागके मध्य धामनगरमें एक थाना है।

२ चौवीस परगनेके अन्तर्गत बारुईपुर उपविभागका एक ग्राम। यहां दस्तिदार उपाधिविशिष्ट एक जमींदार रहते हैं। इनके एक पूर्वपुरुष मुसलमानोंसे अपमानित हो कर एक पुष्करिणीमें डूब मरे थे। उस पुष्करिणीके बीचमें पीपलका एक पेड़ है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है कि यह पेड़ उनके नीचे एक मन्दिरके ऊपर उगा हुआ है।

धामनेर—राजपूतानेके अन्तर्गत एक पर्वतमाला। यह निमच शहरसे २० कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। इस पर्वतमालामें बहुतसी खोदित गिरिगुहाएं हैं जो हिन्दू-कीर्त्ति और बौद्ध-कीर्त्ति दोनों प्रतीत होती है। पर्वतका ऊपरी भाग समतल है। केवल दक्षिणकी ओर २०।३० फुट ऊंचा एक शिखर है। इसी शिखर पर बौद्धकीर्त्ति विद्यमान है। पर्वतमें कहीं-कहीं बहुतसी गुहाएं काट कर उनमें तरह तरहकी अट्टालिकादि खोदी गई है। दक्षिणपश्चिम कोणसे यदि गिनी जाय तो उस ऊंचे शिखर पर १४ प्रधान गुहाएं दीख पड़ती हैं।

१ली गुहामें एक बरामदा और उसके बगलमें ८×७ फुट करके दो घर हैं। इस घर जानेके लिये पर्वत पर सीढ़ी लगी हुई है।

२री गुहामें भी एक बरामदा है जो २७½ फुट लम्बा और १० फुट चोड़ा है। इसके भी बगलमें ८७½ फुट करके दो घर हैं। इसके पश्चिममें ८×६ फुट करके दो और घर हैं।

३री गुहामें भी एक १२ फुटका घर है। उसमें केवल एक समतल छत है। घरके भीतर ५½ फुट घेरेका एक टोप है।

४थी गुहामें एक छोटा टोपविशिष्ट चैत्यगृह है। इसकी लम्बाई २० फुट और चौड़ाई १०½ फुट होगी। घरके सभी कोने गोल हैं और छत गुम्बज सरीखा है। इसके दक्षिणमें ६० फुट लम्बी एक दूसरी गुहा थी जिसकी छत गिर पड़नेसे भीतर जानेका रास्ता बन्द हो गया है। ५वीं गुहामें ६० फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा एक बरामदा है जिसके पीछेमें १६×८ फुटका एक घर है। इसके भी बगलमें एक छोटासा घर

दीख पड़ता है। पश्चिमकी ओर पर्वत पर एक अर्धांश स्तूप खुदा हुआ है।

६ठी गुहाको लोग 'बड़ी कचहरी' कहते हैं। यह गुहा सबसे बड़ी है। इसके बिचले भागमें छत टूट गई है। लम्बाई करीब ९० फुट होगी। बड़ो दरबार घर है। छत चार खम्भोंके ऊपर टिकी हुई है। इसके दोनों ओर ७ फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा तीन घर हैं। सामनेमें एक नाटमन्दिर और पीछेमें एक चैत्यगुहा है। बड़ा दरबारघर स्तम्भ पर है और यह दो झरोखेसे अच्छी तरह प्रकाशित होता है, किन्तु और दूसरे दूसरे घर अन्धकार रहते हैं। नाटमन्दिरके सामने दो चौखूंटे खम्भे हैं और दोनों बगल कठघरेकी नाईं पत्थरके कंगूरोंसे घिरे हुए हैं।

७वीं गुहामें ८×७ फुटका एक घर है। इसके सामने बरांडा और भी अधिक है। ८वीं गुहाका नाम 'छोटी कचहरी' है। इसमें ४३½×१४ फुटकी एक चैत्यगुहा है। इसके बीचमें ११½ फुट ऊंचा एक स्तूप है। स्तूपके निम्न भागकी चौड़ाई और लम्बाई ८½ फुट होगी। इसके सामने भी बड़ी कचहरीकी नाईं एक नाटमन्दिर है जिसमें दो घर बने हुए हैं।

९वीं गुहामें ३ छोटे छोटे घर हैं। पर्वत पर एक अर्धांश स्तूप है। इन चार घरोंमेंसे तीन घर ८×६ फुटके हैं और चौथा घर ११ फुट लम्बा है। इस घरसे पश्चिमकी ओर पत्थरकी एक बड़ी खाट है, जिस पर दो तकिये भी देख पड़ते हैं।

१०वीं गुहाका नाम 'राजलोक' "कचीके मकान" या "कचनीय महल" है। यह ठीक बड़ी कचहरी जैसा है, केवल दरबारका घर २१ फुट लम्बा और २१ फुट चौड़ा है।

११वीं गुहाका नाम "भीमका बाजार" है। यह सभी गुहाओंसे बड़ी है। इसमें एक लम्बी चैत्यगुहा और नाटमन्दिर है जिसके चारों ओर एक प्रदक्षिणा है। इस प्रदक्षिणाके तीन ओर बहुतसे खम्भोंके ऊपर बरामदा और उसके बगलमें छोटे छोटे घर हैं जिनमेंसे कोई दो छोटे चैत्य हैं। चैत्यगुहाके पश्चिम दक्षिण किनार देखने योग्य है। इस गुहाकी चौड़ाई ८० फुट है। सामनेका चैत्यस्तूपका गुम्बज गिर पड़नेसे इसकी ऊंचाई घट कर ८० फुट हो गई है। गुहाद्वार पर ५ फुट घेरेका टोप है। प्रदक्षिण पथ ११० फुट लम्बा होगा। इसके पश्चिममें ८ अर्ध प्रस्तुत स्तम्भ खड़े हुए हैं। बरामदेकी चौड़ाई सब जगह ८ फुट है। घरोंकी लम्बाई और चौड़ाई ७ फुट होगी। जो घर उत्तरकी ओर पड़ता है वह १०+१३ फुटका है। पूर्व और पश्चिममें दो चैत्यगुहा हैं। पूर्वगुहाके चैत्यके सामने एक उपविष्ट बुद्धमूर्ति है। १२वीं गुहा एक चैत्यमन्दिर है। स्तम्भ ठीक लम्बा है और नहीं कलशका आधार है। इसकी परख गठनसे इसका नाम "हाथीकी मेंढ (हाथीका खूंटा) और गुहाका नाम "हाथी बन्दी" (हस्तिशाला) पड़ा है। इसके दरवाजेकी लम्बाई (१६½ फुट) देख कर यह बहुत कुछ यथार्थसा प्रतीत होता है। यह घर २×२१ फुटका है। छत समतल है और उसमें पत्थरका एक बीम है। जो घरकी लम्बाई तक विस्तृत है। इसी बीम पर छत निर्भर है। इस गुहाके सामने ९९ फुट विस्तृत एक समतल परिष्कार पत्थरका खात है जिसमें नीचे तक सीढ़ियां लगी हुई हैं।

धामनिका (सं० स्त्री०) धामन्येव स्वार्थे कन् टाप्। अत इत्वं। धमनी, नाड़ी।

धामनिधि (सं० पु०) धामानि किरणानि निधीयन्तेऽत्र नि-धा-कि। सूर्य।

धामनी (सं० स्त्री०) धमन्येव धमनी-स्वार्थे अण्, ततो ङीप्। धमनी, नाड़ी।

धामपुर—१ युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८ २ से २८ ३३ उ० और देशा० ७८ ३१ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४५८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २६५१८५ है। यह तहसील अफजलपुर, सेवहारा, निहतौर और बुढ़पुर परगनोंसे बनी है। इसमें ६०७ ग्राम और ६ शहर लगते हैं। इसके उत्तर और दक्षिणमें बहुतसी नदियां प्रवाहित हैं जिनमेंसे गाङ्गन, खोह और रामगङ्गा प्रसिद्ध है।

२ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २८ १८ उ० और देशा० ७८ ३१ पू० बिजनौरसे ११

कोस पूर्व हरिद्वारके रास्ते पर अवस्थित है। लोक संख्या प्रायः ७०२७ है। अधिवासियोंमें बढ़ई और कसेरेको संख्या अधिक है। सारे शहरमें लोहे और पीतलकी चीजोंकी दूकान ज्यादा हैं। यहां लोहेका ताला, कुंजी, बकसकी कल, पीतलका चिरागदान, कासेका बरतन, घंटा और घड़ी इत्यादि बनती हैं। यहां बन्दूक भी तैयार होती है। किसीने १८६७ ई०में पेरिसको प्रदर्शनीमें बन्दूकका एक नमूना यहांसे भेजा था। कहते हैं, कि उसे ७५० फ्राङ्क (फरासो मुद्रा) पारितोषिक मिला था। यहां प्रति सप्ताहमें दो बार हाट लगती है और प्रतिमासमें एक मेला लगता है। शहरके दक्षिणमें एक बड़ी सराय है।

१७५० ई०में रोहिलोंने यहां पर मुगलोंको परास्त किया था। १८०५ ई०में पिण्डारो नायक अमीर खांने इस शहरको लूटा और सिपाही विद्रोहके समय भी इसे लूटनेकी चेष्टा की गई थी। १८६६ ई०में यहां म्युनिसपेलिटो स्थापित हुई है। शहरको आय १०००० रुपयेकी है। आज कल यहां तीन स्कूल हैं।

धामभाज (सं० पु०) यज्ञस्थानभागी देवता, यज्ञस्थानमें भाग लेनेवाला देवता।

धामरा—१ उड़ीसाकी एक नदी। मातांई, खरसुआ, ब्राह्मणी और वैतरणी यही चारों नदियां मिल कर धामरा नामसे प्रसिद्ध हुई है। यह बङ्गोपसागरमें जा गिरी है। इस नदीमें सब समय नावें जाती आती हैं, किन्तु मुहानेके निकट बालूका चर पड़ जानेसे नावका ले जाना खतरनाक है।

२ कटक जिलेमें इसी नदीके ऊपर अवस्थित एक बन्दर। यह अक्षा० २०° ४७' उ० और देशा० ८६° ५८' पू० में अवस्थित है। वैतरणी नदीके ऊपर चांदवाली और ब्राह्मणीके ऊपर हंसुआ, पटामुण्डी और खरसुआ नदीके ऊपर आउल नामक स्थान तक इस बन्दरकी सीमा है। यहां समुद्रमें चलनेवाला जहाज भी आ ठहरता है।

धामशस. (सं० अव्य०) धाम्नि धाम्नि इत्यर्थे शस्.। स्थान स्थान, जगह जगह।

धामा (हिं० पु०) भोजनका निमन्त्रण, खानेको दावत।

धामार्गव (सं० पु०) धाम्नो मार्गं पन्थानं वातीति वा गतौ क। १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ रक्तापामार्ग, लाल चिचड़ा। ३ घोषकलता, घोयातोरी। ४ पीतघोषा, एक प्रकारको तुरई। ५ राजकोषातकी। ६ महाकोषातकी, एक प्रकारकी तुरई।

धामि—पञ्जाब गवर्नमेण्टके अधीनस्थ एक पार्वत्य राज्य यह अक्षा० ३१° ७' से ३१° १३' उ० और देशा० ७७° ३' से ७७° ११' पू० में सिमलासे १६ मील पश्चिममें अवस्थित है। भूपरिमाण २६ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ४५०५ है। बारहवीं शताब्दीमें जब शाहबुद्दीन घोर भारतवर्षको जीतने आये थे, उसी समय अम्बाला जिलेके रायपुरसे एक राजपूतने भाग कर इसे फतह किया और यह एक छोटा स्वाधीन राज्य बसाया। धामिके अधिपति 'राणा' उपाधिधारी और राज्यपति प्रातःके वंशोद्भव हैं। कुछ दिन तक यह राज्य बिलास पुर राज्यका करद हुआ था। अंगरेजोंने गोरखा-युद्धके समय (१८०३ १८१५) इसे बिलासपुरको अधीनतासे मुक्त कर दिया। यहांके वर्त्तमान राणाका नाम हीरासिंह है। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टको वार्षिक ७२० रु० राजस्व देने पड़ते हैं। राज्यको आय १५८००० रु० को है। राणाको पहले अधिक कर देना पड़ता था, पर सिपाही विद्रोहके समय फतेसिंहके पिताने अंगरेजोंको खूब सहायता की थी, इस कारण वृटिशगवर्नमेंटने खुश हो कर आधा कर घटा दिया। तभीसे यहांके राणा केवल आधा कर देते आ रहे हैं। अफीम यहांकी प्रधान उपज है।

धामिन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका सांप। यह कुछ हरापन या पीलापन लिये सफेद रंगका होता है। यह बहुत लम्बा होता है और इसकी पूंछमें बहुत विष होता है। दूसरे दूसरे सांपोंकी नाईं यह काटता नहीं, बल्कि पूंछसे ही कोड़ेको तरह मारता है। शरीरके जिस स्थान पर इसको पूंछ लग जाती है, उस स्थानका मांस गल गल कर गिरने लगता है। इसकी चाल बहुत तेज है। २ दक्षिण भारत, राजपूताने तथा आसामकी पहाड़ियोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी जो भूरे रंगको होती है। मेज, कुरसी और अलमारी आदि बनानेके काममें आती है।

धामिया (हि॰ पु॰) १ एक पन्थका नाम। २ इसी पन्थका आदमी।

धामिन—कामरूपके निकटवर्ती एक ग्रामस्थान। इसका प्राचीन नाम धगराव है। सबसे पहले बुद्धने इसी स्थान पर अपना मत प्रचार किया था। अशोकने उनके स्मरणार्थ यहां एक स्तूप निर्माण कर दिये हैं। यह स्तूप माया रूपतः सारनाथस्तूप नामसे प्रसिद्ध है। सारनाथ देखो।

धामोनी—मध्य-प्रदेशके सागर जिलेका एक नगर। यह अक्षा॰ २४ १२´ उ॰ और देशा॰ ७८ ४८ पू॰ सागर शहरसे १८ कोस उत्तरमें अवस्थित है। मण्डलाके सरदार न मके सुरज सा नामक किसी सर्दारने धामोनी राज्य स्थापन किया। प्रायः १५०० ई॰में गोण्डों राज्यके बुन्देला सरदार राजा वीरसिंह देवने इसे अधिकृत कर दुर्ग और नगरका संस्कार किया था। इनके समयमें वर्त्तमान सागर और दामो जिलेका अधिकांश स्थान इसी राज्यके अन्तर्गत था और यहीं पर उनकी राजधानी थी। उस समय इस राज्यमें २२५८ ग्राम लगते थे। अन्तमें इसे अकबरके राजा कमराव सिंहने जीता, किन्तु थोड़े समय बाद ही नागपुरके राजाने उन्हें मार भगाया और शहरको अपने कब्जेमें कर लिया। १८१८ ई॰में अप्पासाहबके भगानेके बाद बृटिश गवर्मेण्टने अंगरेजोंकी ओरसे इस पर अधिकार जमाया। धामोनी अब अङ्गरेजोंके अधीन आ रहा है। इसकी सीमा को अब केवल ११ गांव ही कर धामोनी तहसील संगठित हुई है। मुसलमान राजत्वकी कीर्त्तिके निदर्शन स्वरूप प्राकारमें मस्जिदोंका भग्नावशेष और एक दीर्घ सरोवर है। धसान नदीको उपत्यकामें बुन्देलखण्डके प्रायः ९०० फुट पर्वतके ऊपर एक दुर्ग अवस्थित है। सरोवर शहरके दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है, इसका जल बहुत अच्छा है।

धार्य (हि॰ स्त्री॰) तोप बन्दूक आदि छूटने तथा किसी पदार्थके ओरसे गिरनेका शब्द।

धाय (सं॰ त्रि॰) दधाति धारयतीति धा-ण। (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।१४१) धारणकर्त्ता, धारण करनेवाला।

धाय (हि॰ स्त्री॰) १ वह औरत जो पराये बालकको दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करनेके लिये नियुक्त हो, दाई। (पु॰) २ धवईका पेड़।

धायक (सं॰ त्रि॰) दधातीति धा-ण्वुल् बाहुलकात् युक्। (वरिरामस्यात्स्मरथि। ३। ४।२१०) १ धारणकर्त्ता, धारण करनेवाला। २ पोषणकर्त्ता, पालनेवाला।

धायु (सं॰ त्रि॰) धा उण्, बाहु युक्। धारक, धारण करनेवाला।

धाय्य (सं॰ पु॰) धीयते आचिवते मङ्गलार्थमिति वा कर्मणि ण्यत् ततो युक्। पुरोहित।

धाय्या (सं॰ स्त्री॰) धीयते समिदनया धा-करणे ण्यत्। अग्निसमिन्धनार्थं ऋक्, वह वेदमन्त्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जाता है।

धार (सं॰ स्त्री॰) धाराया इदं धारा-अण् (तस्येदं। पा ४।३।१२०) वर्षोद्भव जल, इकट्ठा किया हुआ वर्षाका जल।

वर्षाका जल धाराकारसे जो वर्षा जब सफेद कपड़ा या साफ पत्थर अथवा परिष्कृत भूमि पर गिरे, तो उसे सोने, चांदी, तांबे, स्फटिक और कांचके बरतनमें रख छोड़े, इसीको धार अर्थात् धाराजल कहते हैं। इसका गुण—त्रिदोषनाशक अव्यक्त रस, लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तर्पक आह्लादजनक, पाचकारक, पाचक, बुद्धिजनक, एवं मूर्च्छा, तन्द्रा, दाह, श्रान्ति, क्लान्ति और पिपासानाशक है। वर्षाऋतुके समय यह जल बहुत हितकर है। वैद्यकके अनुसार यह जल दो प्रकार-का होता है, गाङ्ग और सामुद्र। आयुर्वेदका कहना है कि आकाशगङ्गासे जल ले कर मेघ जो जल बरसाते हैं उसे गाङ्गजल कहते हैं। मेघगण प्रायः आश्विनमासमें गाङ्गजल बरसाया करते हैं। यह जल बहुत हितजनक है। चरक मुनिका मत है, कि सोने, चांदी अथवा मट्टी के बरतनोंमें रखे हुए चावल पर यदि वर्षा हो और उस अन्नका रंग आदि न बदले, तो उसे गाङ्गजल कहते हैं। समुद्रसे जो जल ले कर मेघ वर्षा करते हैं, उसे सामुद्रजल कहते हैं। साधारणतः सामुद्रजल खारा नमकीन, शुक्रनाशक, दृष्टिके लिए हानिकारक बल नाशक और दोषप्रदायक माना जाता है। सामुद्रजल आश्विन मासमें गाङ्गजलकी तरह उपकारी होता है। क्योंकि अगस्त्य तारेके उदय होनेके उपरान्त यह जल निर्विष सब रसद, शुक्रजनक और दोषप्रदायक नहीं होता। २ जोरसे पानी बरसना। ३ जोरकी वर्षा। ४

ऋण, उधार, कर्ज । ५ प्रान्त प्रदेश । (वि०) ६ गम्भीर, गहरा ।

धार (हिं० स्त्री०) १ अखण्ड प्रवाह, पानी आदिके गिरने या बहनेका तार । २ पानीका सोता, चश्मा । ३ जल, जलकण । ४ किसी काटनेवाले हथियारका वह तेज सिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं । ५ किनारा, सिरा, छोर । ६ सेना, फौज । ७ आक्रमण, हमला, धावा । ८ दिशा, ओर, तरफ । ९ जहाजोंके तख्तोंका जोड़ । (पु०) १० द्वारपाल, चोवदार । ११ कच्चे कूएंके मुंह पर लगाये जानेका पेड़का तना या काठका कुंडा । यह इसलिए लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग अन्दर न गिरे ।

धार—मध्यभारतमें भोपावर एजेन्सीका एक प्रसिद्ध राज्य । यह अक्षा० २१° ५५' से २५° ३३' उ० और देशा० ७४° ४१' से ७६° ३२' पू०में अवस्थित है । भूपरिमाण १७७५ वर्गमील है । इसके उत्तरमें रतलाम राज्य, पूर्वमें सिन्धियाके अधीन बड़नगर, उज्जयनी, दिकमान् और इन्दोर; दक्षिणमें नर्मदा नदी और पश्चिममें झबुआ राज्य तथा सिन्धियाके अधिकृत अमझोरा जिला है । इसमें सात परगने हैं—धार, वुदनावर, नलचा, धरमपुरी, कुचि, टिकरी और निमानपुर ।

इस राज्यमें बहुतसे राजपूत-अधिकृत सामन्त राज्य हैं जो अंगरेज राजके रक्षित और रक्षणावेक्षणके अधीन है, जैसे—मूलतान, कच्छि, बरोदा, धोत्रिया, बड़वाल, मलागढ़, कोड, कटोदिया मल्होलिया, धरमिखेरा, बादरसिया, सुरखाहिया और पामा । इसके अलावा अनेक भूमियां, भील और भीलाला सर्दार हैं जो अधिकांश धरमपुरी और नलचा परगनेमें रहते हैं । प्राचीन सर्दारगण ठाकुर उपाधिधारी है । ये भी छोटे छोटे राजाके तुल्य हैं । किन्तु इन लोगोंकी अपेक्षा भूमियां और भील सर्दारोंकी जमींदारी विषयमें कम क्षमता है । ठाकुर लोग अपने अपने राज्यमें प्राणदण्डके सिवा और दूसरे दूसरे दण्डके अधिकारी हैं । सब स्थानोंकी प्रजा धार राज्यमें अपना विचार करा सकती है ।

धारराज्यमें चमला नामकी जो नदी है वह चम्बलकी उपनदी माना जाती है । यह नदी धार परगनेके पूर्वकोण हो कर प्रवाहित है । खाल नामक स्थानमें नर्मदा नदीके ऊपर एक पुल है । छोटी छोटी नदियोंमें मोन, करम और बाङ्गनी प्रधान है । ग्रीष्म ऋतुमें ये सब नदियां सूख जाती हैं और वर्षामें भर जाती हैं । नर्मदा उपत्यकामें विन्ध्यपर्वतकी ऊंचाई प्राय: १६ से १७ सौ फुट है । इसमें गिरिपथ भी हैं जिनमेंसे गोलपुर और बाकदपुर गिरिपथके सिवा और सभी सब दुर्गम तथा बैल गाड़ीके आने जानेके अनुपयुक्त है । पार्वत्य प्रदेशमें सब जगह लोहेकी खान है, किन्तु कहीं भी उससे काममें नहीं लिया जाता । विन्ध्यके ऊपरका प्रदेश नातिशीतोष्ण है । यहां दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अधिक ठंढ पड़ती है और ग्रीष्म ऋतु भी कम दिन तक रहती है । घाट पर्वतके नीचे कभी कभी अधिक दिन ठहरती है । वर्षाके बादही प्रकोप देखा जाता है यहां सब प्रकारके अनाज उत्पन्न होते हैं । चना और गेहूं जो कुछ उत्पन्न होता है उसके तृतीयांशकी रफ्तनी होती है । रुई, ईख, तमाखू, हल्दी, तिल और अफीम भी कम नहीं उपजती ।

इतिहास—धारका वर्त्तमान राजवंश परमार राजपूत हैं । ये लोग अपनेको विक्रमादित्यके वंशज बतलाते हैं । प्राचीन प्रवादके अनुसार उज्जयनी और धारा एक ही राज्य था । वर्त्तमान राजाओंमें भोज विशेष विख्यात थे । ये ही उज्जयनीसे राजधानी धारानगरमें उठा लाये । पांचवीं शताब्दीमें राजपूतोंके अभ्युदयके समय परमारोंकी क्षमता ह्रास हो गई और यहांके राजवंश पूना जा कर बसे । १३८७ ई०में दिल्लीके प्रतिनिधि दिलावर खां इस देशमें आये । इन्होंने धारा नगरीके हिन्दुमन्दिरादिको तहस नहस कर उनके उपकरणोंसे मुसलमान मसजिदें तैयार कीं । दिलावर खांके पुत्र शासनकर्त्ता हो कर धारसे माण्डूमें राजधानी उठा लाये । उस समय धारका प्राचीन गर्व जाता रहा और महाराष्ट्रोंके अभ्युदयके पहले तक यह मुगल राज्योंमें एक नगण्य राज्य गिना जाने लगा ।

शिवाजीके अभ्युदयमें पूनाके धारा-राजवंशीय लोगोंने उनके सेनापति हो कर विशेष ख्याति और प्रतिपत्ति लाभ की । १७४९ ई०में बाजीराव पेशवाने प्राचीन

धारराज्यके मोय आनन्द राव नामक एक व्यक्तिको धार राज्य प्रदान किया। वर्त्तमान राजवंशकी प्रतिष्ठा उन्हींसे हुई है। मालवप्रदेश अंगरेजोंके अधीन आनेके पहले होलकर और सिन्धियाके अत्याचारसे धार राज्य प्रायः नष्ट भ्रष्ट हो गया। प्रथम राजा आनन्द रावके अपस्थान पश्चात् युवक कुमार रामचन्द्र नाबालिग थे। उनकी माता मीनाबाई (२य आनन्दरावकी महिषी) बुद्धिकौशलसे केवल राज्य रक्षा करती रही। अन्तमें रामचन्द्रके दत्तकपुत्र यशोवन्तराव राजा हुए। १८५७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके वैमात्रेय भ्राता आनन्दराव नाबालिग थे। वे ही राजा बनाये गये। किन्तु सिपाही विद्रोहकी गड़बड़ीके समय अंगरेजोंने राज्यकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। पीछे बाररसिया जिलेको छोड़ कर समस्त राज्य आनन्दरावको लौटा दिया गया और उक्त जिला भूपालकी बेगमके अधीन रहा। पश्चात् धार शब्दमें धारके प्राचीन राजाओंका इतिहास देखो।

इसमें दो शहर और ११४ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः १४२११५ है। यहां भील, भिलाय, राजपूत, कुनबी और ब्राह्मण रहते हैं। १८१८ ई०की सन्धिके अनुसार धारराज्य अंगरेजोंके अधीन आया। यहांके राजाकी २७० अश्वारोही, ८०० सौ पदातिक, २ कमान और २१ गोलन्दाज हैं। इन्हें १५ सलामीसूचक तोपें मिलती हैं। राज्यकी आय ८ लाख रुपयेकी है। यहां १ कारागार, ११ स्कूल, ११ चिकित्सालय और २ यन्त्रालय हैं।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२ ३६ उ० देशा० ७५ १८ पू०में बरोदासे माव जानेके रास्ते पर अवस्थित है। माव यहांसे १५ कोस दूर पड़ता है। शहरकी लम्बाई ११ मील और चौड़ाई ३ मील है। यह चारों ओर मट्टीकी दीवारसे घिरा हुआ है। यह एक प्राचीन शहर है। पहले यहां मालवाके परमार राजाओंकी राजधानी थी। उस राजवंशकी पहली राजधानी उज्जैनमें रही, पीछे २य वैरिसिंह ८वीं शताब्दीमें इसे धारा नगरमें उठा लाये। मुसलमान राजाओंके समय इसका नाम पीराननगर था। क्योंकि यहां अनेक मुसलमान पीर रहते थे जिनमेंसे बहुतोंकी समाधि आज भी विद्यमान हैं। अलाउद्दीनने १३०० ई०में सबसे पहले इस नगरको जीता था। १३४४ ई०में यहां घोर दुर्भिक्षके समय मुहम्मद बिन-तुगलक आये हुए थे। १३९८ ई०में दिलावर खां धारके शासक नियुक्त हुए। कुछ दिन बाद वे स्वतन्त्र हो गये और उनके लड़के हुसेनशाह मालवके तख्त पर बैठे। ये ही मुसलमान राजाओंमें मालवाके प्रथम राजा थे। लाट-मस्जिदके लौहस्तम्भमें लिखा है, कि १५९८ ई०में जब अकबर दक्षिण प्रदेशको जीतने जा रहे थे, तब सात दिन तक वे इसी नगरमें ठहरे थे। पीछे पोर्तुगीजोंने इसे दखल किया। १७३० ई०में यह नगर मुसलमानोंके हाथसे महाराष्ट्रके हाथ आया। यहां बहुतसी मनोहर अट्टालिकायें हैं। लाल पत्थरकी बनी हुई दो मसजिदें उल्लेखयोग्य हैं। यहांका दुर्ग शहरके बाहरमें अवस्थित है, जिसे लोग (१३२५-५१ ई०) मुहम्मद बिन तुगलकके समयका बना हुआ बतलाते हैं। इसी दुर्गमें १७७४ ई०को अन्तिम पेशवा २य बाजीरावका जन्म हुआ था। १८५७ ई०में अंगरेज सेनापति जेनरल ष्टुयार्ट ससैन्य इस दुर्गमें रह कर सिपाहियोंका दमन किया था।

यहां कमाल मौला नामक आचार्यके चार समाधियां आज भी विद्यमान हैं। उनमेंसे एक १म महमूद खिलजीकी और दूसरी पीर कमाल मौलवीकी है। यहां चार तथा और दूसरे दूसरे स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल और डाक-घर हैं।

धारक (सं० पु०) धरति जलादिकमिति धृ-ण्वुल्। कलश, घड़ा। इसका उत्पत्ति विवरण देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माने मुनियोंसे कहा था, 'हे महामुने! धारक अर्थात् कलसकी उत्पत्ति, लक्षण और परिमाणके विषयमें कहता हूं सो सुनिये। जब देवता और असुर मन्दर पर्वतको मथनदण्ड और वासुकीको रज्जु बना कर समुद्र मथने लगे, तब अमृत रखनेके लिये ही कलसकी उत्पत्ति हुई थी। विश्वकर्माने देवताओंकी कला ले कर इसे बनाया था, इसीसे देवगणने इसका नाम 'कलश' रखा। कलसके मुखमें ब्रह्मा, गलेमें महेश्वर, मूलमें विष्णु

और मध्यमें मातृगण रहते हैं। अवशिष्ट समस्त देवता कलसके चारों ओर घेरे हुए हैं। कलसके गर्भमें क्षत्रसागर और सप्तद्वीप अवस्थित है। ग्रह, नक्षत्र, हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, रोहित, माल्यवान और सूर्यकान्त ये सब कुल पर्वत हैं। गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, ऐरावती, शतद्रुदा, वैतरणी आदि नदियां तथा समस्त तीर्थ कलसमें अवस्थित हैं। जितने देवगण हैं, वे इसी कलसमें रहते हैं। गौम्य, अपरगौम्य, मरुत, सुमहान्, भद्र, विरज, तनुदूय, इन्द्रियोपेत और विजय ये नौ कलसके नाम हैं।

विजय नामक कलसका अधिदेवता शिव, प्रथम कलसका पृथ्वी, द्वितीयका जल, तृतीयका पवन, चतुर्थका अग्नि, पञ्चमका यजमान, षष्ठका आकाश, सप्तमका चन्द्र और अष्टमका सूर्य हैं। इन्द्रको ये आठ मूर्त्तियां देवी उत्पादन करतीं और शिवसे अधिष्ठित होती हैं, इसीसे शिवको आठ मूर्त्तियां हुई हैं। प्रथम कलस पूर्वकी ओर, द्वितीय पश्चिमकी ओर, तृतीय वायुकोणमें, चतुर्थ अग्निकोणमें, पञ्चम नैऋत कोणमें, षष्ठ ईशान कोणमें, सप्तम उत्तरकी ओर और अष्टम कलस दक्षिणकी ओर स्थापनीय है। कलसके मुखमें ब्रह्मा, ग्रीवामें विष्णु, मध्यमें मातृगण, इन्द्रादि देवगण और नागगण गर्भमें समुद्र, सप्तद्वीपा मेदिनी, लक्ष्मी, उमा, गन्धर्वगण, ऋषिगण और आधार स्वरूप पञ्चभूत अवस्थित हैं। नदी, सरोवर, तड़ाग, वापी, कूप या समुद्रका तोयपूर्ण सुखावह प्रसिद्ध कलसमण्डलके पार्श्वमें उज्ज्वलरूपसे अवस्थित है।

ये नौ कलस मङ्गलयुक्त है और अभिषेक कार्यमें ग्राह्य है। यात्राकालमें, विवाहकालमें, प्रतिष्ठामें और यज्ञमें ये अभीष्ट साधक नव कलस स्थापनीय हैं। मृतापत्या, वन्ध्या, मूढ़गर्भा, अगर्भा, दुर्भागा और रोगार्त्ता स्त्रियोंको पुष्पमण्डलमें स्नान करना चाहिये।

यह ग्रह और मातृगणको धारण तथा कष्ट दूर करता है, इसीसे साधुओंने इसका नाम धारक रखा है। पृथिव्यादिकी एक एक कला ग्रहण किये हुए है, इसीसे इसका नाम कलस पड़ा है। यह सोने, चांदी, तांबे या मिट्टीका होना चाहिये। इसकी मोटाई पांच अंगुल, ऊंचाई सोलह अंगुल और मुंह आठ अंगुलका होना आवश्यक है।

अष्टमूर्त्ति शिव पद्ममें और अष्टमूर्त्ति शिवप्रमथगण कर्णिकामें अवस्थित हैं। प्रमथगण ही पद्म दल है, पद्मदल नागके समीप है और नागगण ही कलस है। कलसगण ग्रह, लोकपाल और दिक्समूह हैं। इन सब असीम शक्तिशाली सर्वपापनाशक अलङ्घनीय ग्रहादिसे यह चराचर जगत् व्याप्त है।' (त्रि०) २ धारणकर्त्ता, धारनेवाला। ३ रोकनेवाला। ४ ऋण लेनेवाला, कर्जदार।

धारका (सं० स्त्री०) धारक-टाप्, वेदे पती न इत्वं। योनि, स्त्रीको मूत्रेन्द्रिय।

धारण (सं० क्ली०) धृ-णिच्-भावे-ल्युट्। विधारण, ग्रहण, थांभना, लेना या अपने ऊपर ठहराना। २ परिधान, पहनना। ३ सेवन, रक्षण, जैसे विष धारण करना, औषध धारण करना। ४ निवारण, सम्वरण। ५ वहन, ले जाना। ६ स्थापन। ७ कर्ज लेना, ऋण लेना। (पु०) ८ कश्यपके एक पुत्रका नाम। ९ शिवजीका एक नाम।

धारणक (सं० पु०) १ ऋणी, कर्जदार।

धारणगांव—वम्बईके खान्देश जिलान्तर्गत एरनदोल विभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° १' उ० और देशा० ७५° १६' पू० जलगांव रेलवे स्टेशनसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४१७२ है। पहले यह भील-कोर्पका सदर था।

इस शहरमें कपास और तेलहनका व्यवसाय खूब चलता है। पहले यहांका कागज और कपड़ा बहुत प्रसिद्ध था। आज कल कागज तो तैयार नहीं होता, पर कपड़ेका काम पूर्ववत् जारी है। १८५५ ई०में गवर्नमेण्टके यत्नसे एक रुईको कल चलाई गई जिसकी देख रेख यूरोपियनके हाथमें रही। किन्तु इस काममें घाटा हो जानेके कारण कल उठा दी गई।

महाराष्ट्रोंके आधिपत्यके समय यहां भीलोंने खूब उत्पात मचाया था। कई बार इस नगरमें लेहूकी नदी बह चली थी। १६७४ ई०में अंगरेजोंने यहां एक कोठी बनाई। दूसरे वर्ष शिवाजी इस नगरको लूटने आये। दूसरी बार १६७० ई०में वे अच्छी तरह इसे लूट

गये । उस समय इस नगरमें यही स्थान मालिकके लिये प्रसिद्ध था ।

इस घटनाके बाद अंग्रेजोंने इसे लूटा और नष्ट कर तहस नहस कर डाला । १८१८ ई०में यह नगर वृटिश राज्यमें लाया गया । १८२१ से ले कर १८६० ई० तक यहां रह कर प्रसिद्ध-सेनापति आउटरमने भील सैन्य संगठन की । उन्हींके नामसे प्रसिद्ध यहांका कमरा देखने योग्य है । यहां सदर कचहरी, भील सेनाओंका पड़ाव, डाकघर, चिकित्सालय और ४ स्कूल हैं । इस नगरमें कपड़ेका बहुत व्यापार है । यहांकी आय (१९८००) रुपयेकी है ।

धारणयन्त्र (सं० क्लो०) तन्त्रोक्त पूगाहयन्त्रभेद ।

धारणा (सं० स्त्री०) धार्यते या सा धृ णिच् युच् टाप् । १ बुद्धि । २ मर्य्यादावस्थिति । पर्याय—मर्य्यादा, स्थिति । ३ योगाङ्गविशेष, योगके एक अङ्गका नाम । अभिप्रेत वस्तुके विषयमें चक्षुरिन्द्रिय धारणका नाम धारणा है । (वेदान्तसार)

'तस्मात् समस्तशक्तीनां आधारे तत्र चेतस ।
कुर्वीत संस्थितिं सा तु विज्ञेया धारणा ॥'
(विष्णुपु० ६।७।७४)

परब्रह्ममें मनकी संस्थिति है, मनका दैर्घ्य सका पन है ।

"ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद् धारणा मनसो धृतिः ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ॥"
(गरुड़पु० ४८ अ०)

ब्रह्मविषयमें आत्मचिन्ताका नाम ध्यान है और मनकी धृति धैर्य संस्थापन है अर्थात् किसी ओर विचलित न हो कर केवल ब्रह्म विषयमें मनको समाधान करनेका नाम धारणा है । इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

ध्येय वस्तुमें मनकी जो संस्थिति है, उसका नाम धारणा है । मन किसी ओर विचलित न हो, केवल ध्येय वस्तुमें निविष्ट रहे उसीको धारणा कहते हैं । बाहरकी ओर किसी प्रकारका लक्ष न रहे, चित्तका लक्ष केवल एक ही ओर रहे, निर्वात प्रदेशमें दीप जिस प्रकार विचलित नहीं होता, स्थिर रहता है, उसी प्रकार चित्त जब किसी ओर विचलित न हो कर एक मात्र ध्येय वस्तुमें अवस्थित रहता है, तब उसे धारणा कहते हैं । जो धारणाभ्यासयुक्तात्मा है अर्थात् जिसका चित्त इस प्रकार स्थिर हुआ है, उसे अन्तकालमें स्वर्गलाभ होता है । इसीसे मर्त्यके व्यक्तिको धारणाका अभ्यास करना आवश्यक है । (अग्निपु० १०५)

इसका विषय पातञ्जल-दर्शनमें इस प्रकार लिखा है—योगाङ्गका प्रथम अङ्ग धारणा है । चित्तको देश विशेषमें बांध रखनेका नाम धारणा है । राग-द्वेषादि शून्य हो कर पूर्वोक्त प्रकारकी मैत्र्यादि भावना द्वारा निर्मल चित्त हो कर यमनियमादिसे सिद्ध हो कर किसी एक योगासन पर ऋजुभावसे अर्थात् असुव्यभावसे बैठे । अनन्तर इन्द्रियोंको अपने अपने विषय रूपादिसे या अपने अपने गन्तव्य स्थानसे प्रत्याहरण करके चित्तके साथ मिला दो । बाद उस प्रकारसे चित्तको नाभिचक्रमें, भ्रूमध्यमें, हृत्पद्ममें, अथवा नाड़ी चक्र आदि आध्यात्मिक प्रदेशमें धारणा न कर भूत भौतिक अथवा किसी उत्तम मूर्त्ति आदि बाह्य वस्तुओंमें धारण करे । ऐसे प्रयत्नसे धारण करना चाहिये कि चित्त उससे विच्युत न हो सके । इस प्रकारसे चित्तको बांध सकनेसे ही धारणा योग आरम्भ होगा ।

धारण करनेका नाम धारणा है । उस धारणाके स्थायी हो जानेसे वह ध्यानमें परिणत हो जाती है । ईश्वर अथवा जो कुछ अभिमत वस्तु है, उसीमें मनो निवेश करनेकी चेष्टा करे, पीछे चित्तके चारों ओरकी वृत्तियोंको उन सब वस्तुओंसे खींच कर उस अभिमत वस्तु या ईश्वरमें अभिनिविष्ट करे । जब इन्द्रियां किसी ओर विचलित न हो कर एकमात्र ध्येय वस्तुमें स्थिर रहेंगी, तभी प्रकृत धारणा-योग सिद्ध होगा । इस प्रकार-से धारणा-योगमें सिद्ध हो जानेसे ध्यान होता है । उस धारणीय पदार्थमें यदि प्रत्ययकी अर्थात् चित्तवृत्तिकी एकतानता उत्पन्न हो, तो उसका नाम ध्यान पड़ता है अर्थात् जिस वस्तुमें तुमने बाह्येन्द्रिय निरोध करके अन्तरिन्द्रिय धारण की है उस वस्तुका ज्ञान यदि तुम्हारे अनन्तरित भावमें या अविच्छेदसे अर्थात् प्रवाहाकारसे प्रवाहित हो, तो उस प्रकारका चित्तप्रवाह ध्यान कहलाता

है। क्रमशः यह ध्यान जब केवल ध्येय वस्तुको ही उद्भासित वा प्रकाशित करता है, अपना स्वरूप अर्थात् मैं ध्यान करता हूं इत्यादि प्रकारका भेदज्ञान जाता रहता है, तब वह समाधि कहलाता है। ध्यानके प्रगाढ़ होनेसे ही उसकी परिपाक दशामें दूसरे ज्ञानका रहना तो दूर रहे, ध्यानज्ञान भी रहने नहीं पाता। इसका कारण यह है, कि चित्त उस समय सम्पूर्ण रूपसे ध्येय वस्तुमें लीन रहता है। ध्येय स्वरूप वा ध्येयाकार प्राप्त होता है। सुतरां चित्त उस समय स्वरूप शून्य की नाईं अर्थात् नहीं रहनेके समान हो जाता है। यही कारण है, कि उस समय और दूसरा ज्ञान नहीं रहता, इस प्रकार चित्तावस्थाके उपस्थित होनेसे ही उसे समाधि जानना चाहिये। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों योगके प्रथम, द्वितीय और चरमावस्थाके सिवा और कुछ नहीं हैं, समाधि ही योगका चरम फल है। इस समाधिके लाभ करनेमें पहले धारणा, पीछे ध्यानका अभ्यास करना होता है। इसी ध्यानसे पीछे समाधि प्राप्ति होती है।

किसी एक आलम्बन पर उक्त तीन प्रकारका मानस व्यापार अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि इन तीन प्रकारकी मानसप्रक्रिया करनेका नाम संयम है। संयम शब्दका उल्लेख देखनेसे ही समझना होगा कि धारणा, ध्यान और समाधि यही तीन प्रकारकी बातें हो रही हैं। उक्त प्रकारके संयमकी जय अर्थात् श्वासप्रश्वासादिकी नाईं स्वाभाविक वा सम्पूर्णायत्त कर सकनेसे उससे प्रज्ञा नामक उत्कृष्ट बुद्धिका आलोक अर्थात् समाधिक नैर्मल्यजनित प्रकाश वा शक्तिविशेष प्रादुर्भूत होती है। संयम उसकी जय है और उससे प्रज्ञानामक ज्ञानका आलोक प्रकाशित होता है, ऐसा अनुमान किया जाता है। प्राकृतिक विषयसे योगीके सिवा और दूसरा जानकार नहीं है, जानकार होना भी सम्भव नहीं है। पर हां, अनुमान शक्तिकी सहायतासे इतना तो अवश्य कह सकते हैं, कि प्राचीन भाषाका संयम और आधुनिक अंगरेजी भाषाका Concentration of will-force प्रायः तुल्यानुरूप अर्थका द्योतक है।

पतञ्जलिका कहना है, कि थोड़ा सोचनेसे देखा जायगा, कि पहले धारणा पीछे ध्यान और क्रमशः उनके परिपाकमें समाधि है। इस तीन प्रक्रियाओंके मूलमें उत्तेजक और बुद्धिपरिष्कारकारक इच्छाशक्ति विद्यमान है। योगी लोग शिक्षा और अभ्यास द्वारा इन प्रक्रियाओंको जय अर्थात् स्वायत्तीकृत कर लिया करते हैं। स्वायत्तीकरण शब्दसे उन्हें स्वाभाविक कार्यकी नाईं आयत्त करना है। मनुष्यका श्वास प्रश्वास जिस तरह स्वाभाविक वा स्वायत्तीकृत है अर्थात् श्वास प्रश्वास निर्वाह करनेमें जिस तरह किसी प्रकारका प्रयत्न वा क्लेश नहीं करना होता, उल्लिखित संयम कार्य यदि उसी तरह स्वायत्तीकृत हो अर्थात् उसे यदि श्वासप्रश्वासकी नाईं सहजमें और बिना क्लेशके निर्वाह कर सके, तो समझना चाहिए कि संयम जय हो गया है। इस प्रकारके संयमजयी योगियोंका सङ्कल्प वा इच्छाप्रयोग अमोघ है। वे जब जो कुछ सङ्कल्प करते हैं, संयम प्रयोग द्वारा उसे उसी समय कर डालते हैं। संयमके बलसे केवल ज्ञानका विकाश होता है। दूसरा कुछ भी नहीं होता, सो नहीं, उसके द्वारा सभी सङ्कल्प सुसिद्ध होते हैं। ज्ञानका विकाश होनेसे अर्थात् प्रकाशशक्तिके बढ़नेसे क्रियाशक्ति बढ़ती है, यह अव्यभिचारी नियम है। सुतरां भूतजय प्रकृतिवशित्व अणिमादि सभी ऐश्वर्य एकमात्र संयमके प्रभावसे अज्ञातशक्ति द्वारा ही साधित होते हैं। सिद्धिलाभके प्रति एकमात्र संयम ही मूल है। यही संयम धारणा, ध्यान और समाधिसापेक्ष है। संयमके द्वारा सभी इच्छाधिकार पूर्ण होते हैं। (पातंजलदर्शन।)

बारह बार प्राणायाम करनेसे उसे प्रत्याहार कहते हैं। इस प्रकार बारह प्रत्याहार करनेसे धारणा होती है अर्थात् प्राणायामका अनुष्ठान करनेसे चित्त स्थिर होता है, विक्षिप्तादि अवस्था तिरोहित होती है, तब धारणा उत्पन्न होती है। इसी कारण प्रत्याहारका भलीभांति अभ्यास हो जानेसे पीछे ध्यानका अभ्यास करना होता है। प्राणायामका जब तक अच्छी तरह अभ्यास नहीं होता तब तक धारणा नहीं होती। इसीसे धारणाका अभ्यास करनेमें सबसे पहले प्राणायामका अभ्यास करना विशेष प्रयोजन है। हृदयमें पञ्चभूतका पृथक् पृथक् रूपसे जो धारणा है और मनका निश्चलत्व हेतु है वह धारणा कहलाता है।

"हरितालनिभां भूमिं लाङ्कारां सुमेधसः।
चतुष्कोणं हृदि ध्यायेदेषा स्यात् क्षिति धारणा॥" (काशीख॰)

धारयिष्णु (सं० त्रि०) धृ-णिच् वेदे निपातनात् इष्णुच.। धारणशील, धारण करनेवाला।

धारयु (सं० त्रि०) धारमभिपवमिच्छति क्यच् वेदे निपातनात् न दीर्घः तत उ। १ अभिषवणकाम। (ऋक् ६।६७।१) २ धारावान्।

धारवाक (सं० त्रि०) धारि कर्मणि अच, धारो धार्यो वाकः स्तोत्रं येन। स्तोत्रधारक ऋत्विकादि।

धारवार—बम्बई प्रदेशके दक्षिण महाराष्ट्रके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १४° १७' से १५° ५३' उ० और देशा० ७४° ४३' से ७६° २' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण प्रायः ४६०२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बेलगाम और बिजापुर जिला, पूर्वमें हैदराबाद और तुङ्गभद्रा नदी, दक्षिणमें महिसुर राज्य और पश्चिममें उत्तरी कनाड़ा है।

जमीनकी गठन, मट्टीकी अवस्था और उत्पन्न द्रव्यादिके अनुसार यह जिला दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। बेलगाम और हरिहरके रास्तेको दोनों भागोंको मध्य रेखा मान सकते हैं। उक्त रास्तेके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें नवलगुन्द, रोन और गड़ग उपविभागकी विस्तीर्ण काली जमीन है, जहां कपास बहुत उपजती है। इस जमीनके दक्षिण-पूर्वांशमें कपड़ गिरिमाला है, इसके बाद करजगी उपविभाग तक काली जमीन और लाल जमीन महिसुर राज्यकी सीमा तक फैल गई है। मालभूमिके पश्चिमांशमें मालप्रभा नदीके किनारेसे ले कर महिसुरके सीमान्त तक बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं। इन सब गिरिमालाओं पर कहीं कहीं शाक सब्जी और छोटी छोटी झाड़ियां देखी जाती हैं और कहीं कहीं चौरस उपत्यका है जहां खेती होती है। पश्चिमांशकी शेष सीमा अधिक गिरि-दरि वेष्टित और बड़े बड़े वृक्षोंसे समाच्छादित है। इस अंशका वन विभाग गवर्मेण्टके तत्त्वावधानमें है। धारवारके दक्षिणांश हाङ्गल और कोड़ उपविभागमें भी गवर्मेण्टका अधिकार है। यहां छोटे छोटे पहाड़ोंके बीच-बीचमें उर्वरा उपत्यका देखी जाती है। इस अंशमें कई एक छोटे छोटे जलाशय हैं जिनमें वर्षाके बाद ४।५ महीनेसे अधिक समय तक पानी नहीं रहता। इस जिलेमें एक भी बड़ी नदी नहीं है, लेकिन जो कुछ है भी, उनमें मालप्रभा, बेन्निहल, तुंगभद्रा, वरदा, धर्मा, कुमुदती, और गंगावाली या हत्तिनाला प्रधान हैं। पहली कई नदियां बङ्गोपसागर ओर, शेष नदी पश्चिमकी ओर अरब उपसागर तक चली गई हैं। इन सात नदियोंमेंसे किसीमें भी वाणिज्य नौकादि जाने आनेकी सुविधा नहीं है। हाङ्गल तालुकके मध्य प्रवाहित धर्मा नदीमें कई एक नहरें काटी गई हैं जिनमें शस्यक्षेत्र सींचनेकी अच्छी व्यवस्था कर दी गई है। ये सब नहरें हिन्दू राजाओंके समयमें प्रस्तुत की गई हैं। इन नहरोंसे कई एक जलाशय भी जलपूर्ण रहते हैं। मालप्रभा और वरदाका जल सुस्वादु है। तुङ्गभद्राका जल उससे अधिक सुस्वादु होने पर भी भारी मालूम पड़ता है।

जिलेके पश्चिमांशमें पहाड़के निकट अधिक वर्षा होती है, जिससे अनेक जलाशय भी बारहों मास भरे रहते हैं। किन्तु जिलेके मध्य और पश्चिम अंशमें पानीकी उतनी सुविधा नहीं है। प्रत्येक ग्राममें जलाशय होने पर भी ग्रीष्मकालमें जलका बहुत अभाव हो जाता है। जब अधिक वर्षा होती है। तब भी यहांकी मट्टीके गुणसे चैत मासमें जल सूख जाया करता है। १८६८ ई०में यहां जलका अधिक कष्ट हुआ था। स्थानीय लोगोंको ७।८ कोस दूरसे जल लाना पड़ता था। यहां तक कि अनेक लोग अपने मवेशी आदिको ले कर तुङ्गभद्रा और मालप्रभाके किनारे आ कर रहने लगे थे। यहांके कूपोंसे भी सहजमें जल नहीं मिलता, बिना ६०।६५ हाथ जमीन खोदे जल नहीं पाया जाता है। पीछे जल मिलता भी है; तो लवणाक्त। जिलेके उत्तर पूर्वांशमें बहुतसे पहाड़ देखे जाते हैं जिनकी ऊंचाई ३०० फुटसे ज्यादा कहीं न होगी। इन सब पहाड़ोंके पत्थर भिन्न भिन्न वर्णके हैं, कहीं तो अनेक रङ्गके कोआर्ज, कहीं हर्नब्लेंड, दानादार, स्लेट और कहीं अभ्रमय है। यहां मङ्गनक (Manganose) अधिक पाया जाता है। कहीं केवल रेतीले पत्थर दीख पड़ते हैं। कपड़ गिरिमालासे दोनी नामकी एक छोटी नदी निकली है जिसके कंकड़ोंमें स्वर्णरेणु पाया जाता है। प्रवाद है, कि पहले इसमें बहुत सोना मिलता था। अब भी डम्बल नामक स्थानके निकटवर्ती नदियोंमें सोना देखनेमें आता है। यहांकी जलगार नामक जाति बाढ़के बाद

धर्मकर्म निर्वाहके लिये काजी और मुल्ला हैं। छोटे ग्रामोंमें अर्थात् जहां कम मनुष्योंका वास है, प्रायः ज्योतिषी, सोनार, वैद्य और हज्जाम नहीं रहते। हाङ्गल, करजगी और कोड उपविभागमें नीर-मनोगर नामक एक निम्न श्रेणीके लोग रहते हैं। इन लोगोंका मुख्य काम कूआं तथा तालाव आदिका खोदना है।

धारवारकी अनेक जमीन खास गवर्नमेण्टके अधीन है जिसे खानसा जमीन कहते हैं। प्रजा गवर्नमेण्टसे यह जमीन बन्दोवस्त लेती है।

यहांकी 'रेगार' या रूईकी जमीन ही विशेष मूल्यवान् है। वर्ष भरमें यहां दो फसल लगती है, पहली खरीफ और दूसरी रब्बी। खरीफ अनाज आषाढ़में बोया जाता और कातिकमें पकता है। कपासके सिवा अन्य रब्बी फसल आश्विनमें बोई जाती और माघ, फाल्गुनमें काटती है। श्रावणमासमें कपास बोई जाती और फाल्गुन या चैत्रमें तोड़ी जाती है।

इस जिलेमें १४ प्रधान नगर हैं—१ धारवार, २ हुबली, ३ रानीबेन्नूर, ४ गदग, ५ नरगुन्द, ६ नवलगुन्द, ७ मूलगुन्द, ८ शाहवजार वा बङ्कापुर, ९ हवेरी, १० नरेगल, ११ हाङ्गल, १२ तुमीनकट्टी, १३ ब्याड्गी और १४ सुन्दरगी।

इतिहास।—पूर्व समयमें यहांके बदामी नामक स्थानमें चालुक्य राजगण रहते थे। इस स्थानके सिवा उनके अधीन कई जगहोंमें गङ्ग, रट्ट, सेन्द्रक आदि राजगण राज्य करते थे। कभी कभी यह स्थान राष्ट्रकूट राजाओंके अधिकारभुक्त हो गया था। इस जिलेके नाना स्थानोंसे जो सब प्राचीन शिलालिपि, ताम्रफलकादि आविष्कृत हुए हैं उनसे यहांके प्राचीन हिन्दू राज्यका संक्षिप्त विवरण पाया जाता है।

१४वीं शताब्दीमें विजयनगरके हिन्दू राजाओंके अभ्युदयकालमें यह स्थान विजयनगरमें मिला दिया गया था। १५६४ ई०में तालिकोटकी लड़ाईमें जब विजयनगरके राजाओंका गौरव चूर कर दिया गया, तब यह जिला बिजापुरके मुसलमान राजाके शासनाधीन हुआ। १६७५ ई०में शिवाजीके अधीन महाराष्ट्रोंने इस जिलेमें लूट पाट मचाया था। इस समयसे प्रायः एक शताब्दी तक यह जिला पहले सातवार मराठा-राजाके और पीछे पूनाके पेशवाके अधिकारमें था। १७७६ ई०में हैदर अलीने इस पर अपना अधिकार जमाया। किन्तु पांच वर्ष होने न पाया था कि वृटिश सैन्यके सहायोगसे महाराष्ट्रोंने पुनः धारवार दुर्ग और नगरको अपनाया। पीछे १८१८ ई० तक महाराष्ट्रोंके सुशासनसे इस जिलेमें शान्ति विराजती रही। उसी साल पेशवाके अधःपतन होने पर यह जिला वृटिश-राजके अधीन बम्बई प्रसिडेन्सीमें मिला दिया गया।
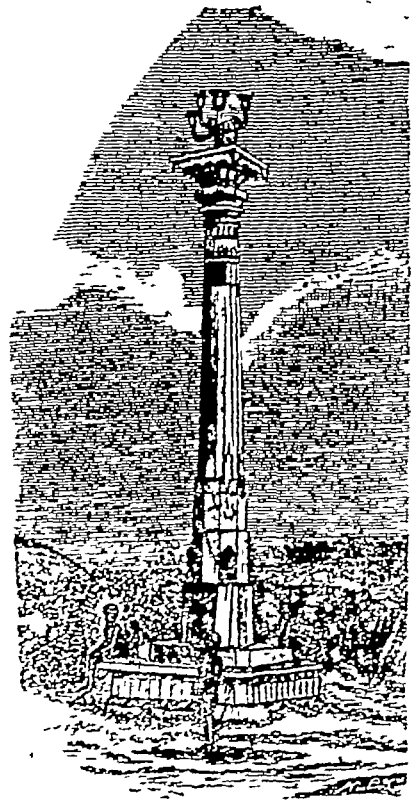
धारवारका दीपदान।

धारवारमें प्राचीन कीर्तिके अनेक चिह्न पाये जाते हैं। पत्तड़कलके पापनाथका मन्दिर प्राचीन हिन्दू शिल्पका विशेष परिचय देता है। इस जिलेके बदामी नामक स्थानमें प्रतीच्य चालुक्य राजाओंकी आदि राजधानी थी। चालुक्य देखो। बदामीमें भी अनेक प्रत्न कीर्त्तियां देखी जाती हैं। यहां पहाड़ काट कर जो सब हिन्दू देवालय बनाये गये हैं उन्हें देख कर आश्चर्य

पुरके एक राजप्रतिनिधि द्वारा मसजिदमें परिणत हुआ है।

यहां ब्राह्मण और लिङ्गायत ही प्रधान हैं। वहिंमु ब्राह्मणोंमें अनेक वकील, जमींदार अथवा महाजन हैं। लिङ्गायत लोग सभी कारबारी हैं। ये कपास, बड़े बड़े काठ और अनाजका व्यवसाय करते हैं। दो एक मुसलमान धनी भी हैं। कुछ दिनोंसे पारसी और मारवाड़ी भी यहां बस गये हैं। शहरमें प्रधानतः लिङ्गायती चीजोंका व्यवसाय होता है।

आजकल धारवारमें कोई देशीय शिल्पजात नहीं है, मगर यहांके जेलमें जो गलीचे तथा कपड़े आदि तैयार होते हैं उन्हें खराब नहीं कह सकते।

पहले यहां जलका बहुत अभाव था। पर आज कल म्युनिसीपलिटीके यत्नसे वह अभाव बहुत कुछ दूर हो गया है। यहांके सभी कूओंका जल लवणाक्त है। वहां हाई तथा और दूसरे दूसरे स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल तथा डाकबंगला हैं।

धारा (सं॰ स्त्री॰) धार्य्यन्ते अश्वा यया धृ-णिच्‌ अङ्, स्त्रियां टाप्। अश्वकी गति, घोड़ेकी चाल। प्राचीन भारतवासियोंने घोड़ोंकी पांच प्रकारकी चालें मानी थीं—आस्कन्दित, धोरितिक, रेचित, वल्गित और प्लुत। अश्व देखो। २ द्रवका प्रपात, किसी द्रव पदार्थकी गति-परम्परा, पानी आदिका बहाव। ३ खड्गादिका निशित मुख, काटनेवाले हथियारका तेज सिरा, बाढ़, धार। ४ उत्कर्ष, उन्नति, तरक्की। ५ रथचक्र, रथका पहिया। ६ यश, कीर्त्ति। ७ अतिवृष्टि, बहुत अधिक वर्षा। ८ समूह, झुण्ड। ९ घनासारवर्षण, लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। १० सादृश्य, समानता। ११ प्रवाह, पानीका झरना, सोता, चश्मा। १२ दक्षिणदेशस्थ पुरी विशेष, प्राचीनकालकी एक नगरी जो दक्षिण देशमें थी। १३ तीर्थविशेष, महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। १४ वाक्यावलि, पंक्ति। १५ रेखा, लकीर। १६ शिखर, पहाड़की चोटी। १७ मालवकी एक राजधानी जो राजा भोजके समयमें प्रसिद्ध थी। प्रवाद है, कि भोज ही उज्जयिनीसे राजधानी धारा उठा लाये थे। १८ सेना अथवा उसका अगला भाग। १९ घड़े आदिमें बनाया छेद या सूराख। २० गुडूची, गुरुच, गिलोय। २१ हरिद्रा, हल्दी। २२ आमलकी, आंवला। २३ क्षीरकाकोली।

धाराकदम्ब (सं॰ पु॰) धारा कालोपलक्षितः कदम्बः वर्षाकाले जातत्वादस्य तथात्वं। कदम्बवृक्ष विशेष, एक प्रकारका कदमका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—केलिसद, प्रावृष्य, पुलकी, भृङ्ग वल्लभ, मेघाभ, प्रियङ्गु, नीप, प्रावृष्येण्य, कालम्बक और धाराकदम्ब है।

धाराकोट—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह आस्का नामक स्थानसे ४ कोस उत्तर-पश्चिममें ऋषिकुल्या नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें १८८ ग्राम लगते हैं। यह राज्य जुहदामुटा, कुनामोगो गोडोमुटा और सहस्राङ्गमुटा नामक तीन भागोंमें विभक्त है। सुराद, बडगोडा और खगदा नामक पार्श्ववर्त्ती स्थान ले कर धाराकोट प्राचीन खिदसिंही राज्यके अन्तर्गत था। १२ वीं शताब्दीमें उड़ीसाके गजपतिवंशीय राजाओंके अधीन इस राज्यका अभ्युदय हुआ था। १४७६ ई॰में खिदसिंही राजाओंने इस राज्यको आपसमें ४ भागोंमें बांट लिया था। इसी विभागके बादसे धाराकोट स्वतन्त्र राज्यमें गिना जाने लगा।

धारागृह (सं॰ क्ली॰) जलधारायुक्तं गृहं। जलयन्त्र-युक्त गृह, वह स्थान या घर जिसमें फुहारा लगा हो।

धाराङ्कुर (सं॰ पु॰) धाराया अङ्कुर इव। १ शीकर, वर्षा की बूंद। २ घनोपल, ओला, करका। ३ नाशीर। ४ लघु वृष्टि। ५ सरलका गोंद।

धाराङ्ग (सं॰ पु॰) धारा उत्कर्ष एव अङ्गं यस्य। १ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। धारान्वितमङ्गमस्य। २ खड्ग, तलवार।

धाराट (सं॰ पु॰) धारायैः, हृष्यर्थं अटति इति अट अच्। १ चातक। धारां अटति वर्षणीयत्वेन प्राप्नोतीति २ मेघ, बादल। धारा गतिं अटति। ३ तुरङ्ग, घोड़ा। ४ मत्तहस्ती, मतवाला हाथी। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्।

धाराधर (सं॰ पु॰) धरतीति धृ-अच्, धारायाः धरः। १ मेघ, बादल। २ खड्ग, तलवार।

धारान्तरचर (सं॰ त्रि॰) आकाशमें उड़नेवाला।

धारापात (स० पु०) धारायाः पातः ६-तत्। जलधारा पतन, पानीका गिरना।

धारापुरम्—१ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १०° ३०´ से ११° ८´ उ० और देशा० ७७° १८´ से ७७° ४४´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८११ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: २०११२० है। इसमें एक शहर और ८१ ग्राम लगते हैं। तालुकमें सैकड़े पीछे ७० भाग भूमि सिञ्चित नहीं पाई जाती है। यहां अमरावती उप्पार और नोयेल नामकी नदियां प्रवाहित हैं। तालुककी आय ३३०००० रुपयेकी है।

यहां वन जङ्गल वा पहाड़ नहीं है। अधिवासी खेती करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। उरद, मटर, तमाकू, मरची और कपास यहांकी प्रधान उपज है। इस तालुकके अन्तर्गत सिवनमलय और नोरोएं नामक स्थानमें देवमूर्त्ति देखनेके लिये सैकड़ों आते जाते हैं। यहांकी आबहवा अच्छी है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १०° ४४´ उ० और देशा० ७७° ३२´ पू० तिरुप्पुर रेलवे स्टेशनसे १० मील दक्षिण अमरावती नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १०१०८ है। कहते हैं, कि यहां एक समय कोङ्गराजाओंकी राजधानी थी। १६६७ और १७३४ ई०में महिसुरके राजाने मदुराके राजासे इसे दो बार छीन लिया था। जब हैदरअली और टीपू सुलतानके साथ अंगरेजोंकी लड़ाई छिड़ी थी, तब यहां पर कई बार युद्ध हुआ था। उस समय यह स्थान कभी मुसलमानों और कभी अंगरेजोंके हाथ लगा था। १७८२ ई०में यहांके दुर्गकी दीवार आदि तोड़ फोड़ दी गई। कुछ दिन यहां जिलेकी सदर कचहरी थी पर अब नहीं है। यहां तालुकका सदर, थाना, डाकघर औषधालय प्रभृति हैं। प्रति सप्ताह हाट लगता है जिसमें घी, लाल मिर्च, तमाकू उरद और चमड़ेका व्यवसाय होता है। अधिवासियोंमें हिन्दूकी संख्या ज्यादा है।

धारापूप (स० स्त्री०) धाराढ्य अपूप। अपूपभेद, एक प्रकारका पूआ। इसके बनानेके लिये मैदेको घी मिले हुए दूधमें सानते और तब घीमें छान कर बनाते हैं। बाद इसमें खांड़ या चीनी मिला दी जाती है। भाव-प्रकाशके अनुसार इसका गुण—सुमधुर, बलकारक, पित्तनाशक वृष्य, रुचिकर, हृद्य और वात नाशक है।

धाराफल (स० पु०) धारायुक्त फलं यस्य। मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़।

धारायन्त्र (स० पु०) धारायाः जलधारायाः प्रकाशार्थं यन्त्र। जलयन्त्रभेद, वह यन्त्र जिससे पानीकी धार छूटे, फुहारा।

धाराल (स० त्रि०) धारा अस्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। धारायुक्त खड्गादि जिसकी धार तेज हो धारदार।

धारावत् (स० त्रि०) १ धारविशिष्ट, धारदार। २ जल-मत्, पानीके समान।

धारावनि (स० पु०) धाराया अटते अवनि पृषोद० अभिधानात् पुंस्त्व। वायु हवा। (कोई कोई कहते हैं "परवल्लिङ्गं" परवत् लिङ्ग होता है, इस नियमके अनुसार यह शब्द स्त्रीलिङ्ग होना उचित है। क्योंकि 'अवनि' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, इसलिये यह शब्द स्त्रीलिङ्ग होना चाहिये। किन्तु यहां जो पुंलिङ्गका व्यवहार किया गया है, वह प्रामादिक है।)

धारावर (स० पु०) धारया जलधारया आवृणोत्याकाशम् वृ अच्। मेघ बादल।

धारावर्ष (सं० पु०) धारया सन्तत्या अविच्छेदेन वर्षः। अविच्छेदरूपसे मेघका लगातार बरसना।

धारावर्ष—१ इस नामके कई एक राष्ट्रकूट राजा हो गये हैं। राष्ट्रकूट शब्द देखो। २ मालवाके एक राजा। ये ११वीं शताब्दीमें राज्य करते थे। परमार-राजवंश और मालव शब्द देखो।

धारावाही (स० त्रि०) धारया सन्ततं वहति वह-णिनि। अविच्छेद रूपसे आगमान, जो धाराके रूपमें आगे बढ़ता हो।

धाराविष (स० पु०) धारा एव विषमिव प्राण नाशकत्वात्। खड्ग, तलवार।

धाराश्रु (स० स्त्री०) अश्रु-प्रवाह आंसूका गिरना।

धारासस (स० स्त्री०) गुड़ोत्करस, गुड़का रस।

धारासम्पात (स० पु०) धाराणां सम् सम्यक् पातो यत्र। महावृष्टि, बहुत तेज और अधिक वृष्टि, जोरों की बारिश

इसका पर्याय—धारा, सम्पात और आसार है।

धारासार (सं० त्रि०) लगातार वृष्टि, बराबर पानी बरसना।

धारास्नुही (सं० स्त्री०) धारायुता स्नुही मध्यलो०। त्रिधारा स्नुही, तिधारा थूहर।

धारि (सं० स्त्री०) आयु, उमर।

धारिन् (सं० पु०) धृ-णिनि। १ पीलूवृक्ष, पीलूका पेड़। २ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें पहले तीन जगण और तब एक यगण होता है। (त्रि०) ३ धारण करनेवाला। ४ ग्रन्थार्थ धारणायुक्त, किसी ग्रन्थके तात्पर्य को भली भांति जाननेवाला। ५ ऋण लेनेवाला, कर्जदार।

धारिणी (सं० स्त्री०) धारिन्-ङीप्। १ धरणी, पृथ्वी, भूमि। २ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। ३ चतुर्दश देवयोषिद्गण, चौदह देवताओंकी स्त्रियां जिनके नाम ये हैं—शची, वनस्पति, गार्गी, धूम्रोर्णा, रुचिराकृति, सिनिवाली, कुहू, राका, अनुमति, आयति, प्रज्ञा, सेला और वेला। ४ आधार स्वरूप। (त्रि०) ५ धारणकर्त्री, धारण करनेवाली।

धारी (हिं० स्त्री०) १ सेना, फौज। २ समूह, झुण्ड। ३ रेखा, लकीर। ४ पुश्ता।

धारीदार (हिं० वि०) जिसमें लम्बी लम्बी धारियां हों।

धारु (सं० त्रि०) धयति पिबतीति धे रु (दाधेट सिशदसदोरुः। पा ३।२।१५८।) पानकर्त्ता, पीनेवाला।

धारुजल (हिं० पु०) खड्ग, तलवार।

धारुपुर—अयोध्याके प्रतापगढ़ जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह माणिकपुरसे ८ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। धारुसाहने यह ग्राम बसाया था।

सिपाही विद्रोहके समय यहांके तालुकदारोंने अंगरेजोंको आश्रय दे कर उनकी रक्षा की थी। यहां लाखसे अधिक रुपयेका व्यवसाय होता है। लोकसंख्या प्रायः तीन हजार है। यहां एक गवर्नमेण्ट स्कूल और प्राचीन शिवमन्दिर है।

धारोष्ण (सं० क्लो०) धारायां दोहनप्रपाते उष्णं। थनसे निकला हुआ ताजा दूध। धारोष्ण दूध बहुत उपकारी होता है। यह कुछ गरम होता है और स्तनसे निकलनेके कुछ समय बाद तक गरम रहता है। वैद्यकके अनुसार ऐसा दूध अमृतके समान, भ्रम हरनेवाला, निद्रा लानेवाला, वीर्य और पुरुषार्थ बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, अग्निको बढ़ानेवाला, अति स्वादिष्ट और त्रिदोषनाशक है। गायका धारोष्ण ही सबसे श्रेष्ठ है, भैंसका उतना उपकारी नहीं होता।

धार्त्तराज्ञ (सं० पु० स्त्री०) धृतराज्ञो अपत्यं अण्, उपधालोपः। धृतराज्ञका अपत्य।

धार्त्तराष्ट्र (सं० पु० स्त्री०) १ धृतराष्ट्रके अपत्य दुर्योधनादि। स्त्रियां ङीप्। २ दुःशला। (पु०) ३ धृतराष्ट्र वंशोद्भव नागभेद, धृतराष्ट्रके वंशका उत्पन्न एक नागका नाम। धृतराष्ट्रे सुराष्ट्रदेशे भव अण्। ४ कृष्णवर्णचञ्चु चरणयुक्त हंस, काले रंगकी चोंच और पैरोंवाला हंस।

धार्त्तराष्ट्रपदी (सं० स्त्री०) धार्त्तराष्ट्रस्य पाद इव पादो मूलं यस्याः ङीष् ततोपद्भावः। १ हंसपदी लता। २ रक्तलज्जालुका, लाल रंगका लज्जालु।

धार्त्तराष्ट्रि (सं० पु०) धृतराष्ट्रका अपत्य।

धार्त्तेय (सं० पु० स्त्री०) धृतायाः अपत्यं ढक्। धृताका अपत्य।

धार्म (सं० त्रि०) धर्मस्येदं अण्। १ धर्मसम्बन्धी। स्त्रियां ङीप्। प्राचुर्यं अण्। २ धर्ममय।

धार्मपत (सं० त्रि०) धर्मपतेरपत्यादि अश्वपत्यादित्वात् अण्। धर्मपति संबन्धीय। स्त्रियां ङीप्।

धार्मपत्तन (सं० त्रि० तत्र भवः अण्। १ धर्मपत्तनभव, जो धर्मपत्तन स्थानमें उत्पन्न हुआ हो। (पु०) २ कीलक, कील, खूंटी।

धर्मायण (सं० पु० स्त्री०) धर्मस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। धर्मका गोत्रापत्य।

धार्मिक (सं० त्रि०) धर्मं चरतीति ठक्। (धर्मं चरति। पा ४।४।४१) यद्वा धर्ममधीते वेद वा ठक्। १ धर्मशील, धर्मात्मा, धर्माचरण करनेवाला, पुण्यात्मा।

जो विभागशील, सर्वदा क्षमायुक्त, दयाप्रवण, देवता और अतिथिभक्त हैं वे ही धार्मिक पदवाच्य हैं। जो सब मनुष्य धर्मके पथ पर विचरण करते, उन्हें धार्मिक कहते हैं। धर्मशब्दमें धर्मका जो लक्षण लिखा है, उसी धर्मलक्षणोक्त धर्माचरणकारीको धार्मिक कहते हैं। २ धर्म सम्बन्धी।

बहुत जल्दी या दौड़ कर जाना। २ प्रक्षालन, धोने या साफ करनेका काम। ३ शुद्धि, वह चीज जिससे कोई पदार्थ धोई या साफ की जाय। ४ दूत, हरकारा।

धावनि (सं० स्त्री०) धाव बाहुलकात् अनि। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। इसका संस्कृत पर्याय—पृश्निपर्णी, पृथक् पर्णी, चित्रपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलसी और गुहा है। २ कण्टकारी, भटकटैया।

धावनिका (सं० स्त्री०) १ कण्टकारिका, कटेरी। २ पृश्निपर्णी, पिठवन। ३ कंटीली मकोय।

धावनी (सं० स्त्री०) धावनि कृदिकारादिति ङीष्। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। २ कण्टकारी, भटकटैया। ३ धातकी, धवका फूल। ४ कपिकच्छु, केवांच, कौंछ। ५ शणवृक्ष, सनका पेड़।

धावरा (हिं० पु०) धव देखो।

धावा (हिं० पु०) १ आक्रमण, हमला, चढ़ाई। २ किसी कामके लिये जल्दी जल्दी जाना।

धासस् (सं० पु०) धा-असुन्। पर्वत पहाड़।

धासि (सं० पु०) धारयति प्राणान् धा-असि। १ अन्न अनाज। २ गृह, घर। (त्रि०) ३ धारणकारी, धारण करनेवाला।

धाह (हिं० स्त्री०) जोरसे चिल्ला कर रोना. धाड़।

धिंग (हिं० स्त्री०) ऊधम, धींगा धींगी, शरारत।

धिंगरा (हिं० पु०) धींगरा देखो।

धिंगा (हिं० पु०) १ उपद्रवी, शरारती, बदमाश। २ निर्लज्ज, बेशर्म।

धिंगाई (हिं० स्त्री०) १ उपद्रव, ऊधम, शरारत। २ निर्लज्जता, बेशर्मी।

धिंगाधिंगी (हिं० स्त्री०) धींगाधींगी देखो।

धिश्रा (हिं० स्त्री०) १ कन्या, बेटी। २ कोई छोटी लड़की।

धिक् (सं० अव्य) धक्क नाशने धा धारणे वा बाहुलकात् डिकन्। घृणासूचक एक शब्द, लानत। २ भर्त्सना, तिरस्कार। ३ निन्दा, शिकायत।

धिक (हिं० अव्य०) धिक्, लानत।

धिक्कार (सं० पु०) धिक् इत्यस्य कारः करणं धिक्, तिरस्कार लानत, फटकार। इसका संस्कृत पर्याय—नीकार, अवहेला, अपमानन, क्षेप, निकार और प्रनादर है।

धिक्कारना (हिं० क्रि०) लानत मलामत करना, फटकारना।

धिक्कृत (सं० त्रि०) धिक् कृ कर्मणि क्त। भर्त्सित, जो धिक्कारा जाय। इसका पर्याय अपध्वस्त है।

तुम्हें 'धिक्' ऐसा शब्द जिसे कहा जाय, उसे धिक्कृत कहते हैं।

धिक्क्रिया (सं० स्त्री०) धिगित्युच्चारणमेव क्रिया। निन्दा, शिकायत।

धिग्दण्ड (सं० पु०) धिगिति दण्डः। निर्भर्त्सनरूप दण्ड, तिरस्काररूप दण्ड।

धिग्वण (सं० पु०) मनूक्त सङ्कीर्ण जातिभेद, एक संकर जाति। शूद्रके औरस और वैश्याके गर्भसे जो उत्पन्न होता है, उसे आयोगव कहते हैं। ब्राह्मण पिता और आयोगवी मातासे जो जाति उत्पन्न होती है, उसे धिग्वण कहते हैं। यह जाति चर्मकार्य द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करती है। जहां तक अनुमान किया जाता है, कि चर्मकार या चमार इसी धिग्वण जातिके अन्तर्गत है।

मनुने लिखा है, कि धिग्वणोंका चर्मकार्य और वेणु जातिका भाण्डवादन ही उन उपजीविका है।

धिमचा (हिं० पु०) एक प्रकारकी दमली।

धित (सं० त्रि०) धा-क्त कान्दसो म हिः। निहित, स्थापित, रखा हुआ।

धिति (सं० स्त्री०) धि हूतो क्तिन्। धारण।

धिप्सु (सं० त्रि०) दन्भ-सन् तत उ। दम्भ करनेमें इच्छुक, जो ठगना चाहता हो।

धियंजिन्व (सं० त्रि०) कर्म वा बुद्धिके प्रीणयिता। (ऋक् १।१८२।१)

धिय (हिं० स्त्री०) १ कन्या, बेटी। २ बालिका, लड़की।

धियसान (सं० त्रि०) धि धारणे वेदे बाहुलकात् असानच् किच्च। धारक, धारण करनेवाला।

धिया (हिं० स्त्री०) धिय देखो।

धियासम्पत्ति (सं० पु०) धियां बुद्धीनां पतिः अलुक् समासान्तः। १ पूर्व जिनविशेष। ये मञ्जुघोष नामसे विख्यात है। २ आत्मा। ३ बृहस्पति।

जैसे,—मन, आँख, कान, त्वक्, जीभ, नाक।

धीमत् (सं० पु०) धीः विद्यतेऽस्य, अस्त्यर्थे धी मतुप्। १ बृहस्पति। (त्रि०) २ मरुपुत्र विराजके एक लड़केका नाम। ३ उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न पुरूरवाके एक पुत्रका नाम। ४ बुद्धियुक्त, जिसे बुद्धि हो।

धीमति (सं० स्त्री०) धीमत् स्त्रियां ङीप्। बुद्धिमती।

धीमा (हिं० वि०) १ जिसका वेग मन्द हो, जो आहिस्ता चले। २ जो अधिक प्रचण्ड, तीव्र या उग्र न हो, हलका। ३ जिसकी तेजी कम हो गई हो। ४ कुछ नीचा और साधारणसे कम।

धीमातिताला (हिं० पु०) सङ्गीतमें सोलह मात्राओंका एक ताल। इसमें तीन आघात और एक खाली होता है।

धीमान् (सं० पु०) १ धीमत्, बुद्धिमान्, समझदार। २ बृहस्पति। ३ वारेन्द्रवासी। एक विख्यात भास्कर शिल्पी।

धीमाल—दार्जिलिङ्ग और नेपालकी तराईमें रहनेवाली एक जाति। कोई इन्हें लौहित्य श्रेणीके और कोई कोच जातिकी एक शाखाके बतलाते हैं। इनकी आकृति प्रकृति सभी प्रायः कोच जाति-सी है। किसी किसीका कहना है कि इनमेंसे जो धनी होते, वे अपनेको राजवंशीय बतलाते हैं। इस प्रकार यह पद लाभ करते समय उन्हें बहुत खर्च करने पड़ते हैं। किन्तु इस प्रकारकी घटना अति विरल है।

इस जातिकी संख्या क्रमशः विलुप्त होती जा रही है। १८४७ ई०में हजसन साहब इस जातिकी संख्या १५००० निर्णय कर गए हैं। पीछे १८७२ ई०की लोकगणनामें इनकी संख्या ८७२ और १८८१ ई०की गणनामें ६६२ देखी जाती है। इस प्रकार संख्या ह्रास होनेका कारण और कुछ भी नहीं है सिवा इसके कि धीमाल इस नामका परिचय गोपन और आत्यन्तरपरिग्रह है। आज कल इस जातिके लोग अपनेको 'धीमाल' न कह कर 'मौलिक' बतलाते हैं। केवल चतुःपार्श्ववर्ती विदेशी लोग ही अपनेको धीमाल कहा करते हैं।

लिम्बु जातिके मध्य एक आख्यायिका इस प्रकार प्रचलित है—

कोच, धीमाल और मेच जातिके आदि पुरुष तीनों भाई स्वर्गसे काशीधाममें उतरे। यहांसे वे तीनों जाते जाते 'खचर' (खग ?) देशमें पहुंचे। (कोई कोई ब्रह्मपुत्र और कौशिकी नदी-तीरवर्त्ती भूभागको खचर देश कहते हैं।) कनिष्ठ सहोदर वहीं रहने लगे और उन्हींसे धीरे धीरे कोच, धीमाल और मेच इन तीन जातियोंकी उत्पत्ति हुई। शेष दो भाई समुच्चगिरि प्रदेशमें गए और उन दोनोंसे नेपालके खुम्बु और लिम्बु जातिकी उत्पत्ति हुई। फिर कोई कोई कहते हैं, कि कोई नेपाली सामाजिक नियमका उल्लङ्घन करनेके कारण देशसे निकाल दिया गया और खचर देशमें जा कर रहने लगा। यहां उसने एक स्त्रीसे विवाह किया और उसीसे मेच और धीमाल जातिकी उत्पत्ति हुई। किन्तु वर्त्तमान कालमें धीमाल लोग कोच और मेचके साथ कोई संभव नहीं रखते।

यह जाति प्रधानतः ३ श्रेणियोंमें विभक्त है—अग्निया, लातेर और डुंगिया। तीनों श्रेणियोंमें आदानप्रदान चलता है। लेकिन अग्निया लोग अपनेको श्रेष्ठ बतलाते हैं, इस कारण स्वश्रेणीमें ही विवाह करते हैं। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है। इसके सिवा स्त्री स्वामी रहते भी दूसरेसे शादी कर सकती है, इसमें समाजकी ओरसे कोई छानबीन नहीं है। यदि कोई पुरुष किसीकी स्त्रीको बहका कर ले जाय, तो उसे स्त्रीको पतिको क्षतिपूरण स्वरूप विवाहमें दत्तपणके सभी रुपये तथा पञ्चायत्से निर्दिष्ट अर्थदण्ड देने होते हैं।

पूर्व समयमें ये लोग शवको गाड़ देते थे, लेकिन अभी शवदाह प्रथा ही जारी हो गई है। अशौच केवल दश दिन तक माना जाता है। कार्त्तिक मासमें ये लोग पितरोंके उद्देशसे तर्पण करते हैं। ये लोग गोमांस अथवा सर्पादि नहीं खाते, लेकिन मुर्गी, वराह, छिपकली तथा सभी तरहकी मछलियां खाते हैं। कृषि, मत्स्यधारण और गोचारण इनकी प्रधान उपजीविका है। इस जातिके लोग सब दिन एक स्थानमें वास नहीं करते।

धीमोदिनी (सं० स्त्री०) मद्य, शराब।

धीया (हिं० स्त्री०) लड़की, बेटी।

धीर (सं० क्ली०) धियं राति राक। १ कुङ्कुम, केसर। इसका पर्याय—घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक,

धर, महावीर जिनेन्द्र, कोई, शाक्तोक्त और गोपितामिश्र है। (पु०) विशेषं राति ददाति प्रकाशतीति वा रा-क। २ वनमोषधि, वत्सनाभ नामको ओषध। ३ अग्निराज, राजा बलि। ४ मद्य। ५ विदग्धाव द्वारा युद्धक्रियामें दक्ष सिपाही। (त्रि०) विशेषेण ईरयतीति ईर-अच् वा रा-क। ६ धैर्यान्वित, जिसमें धैर्य हो जो जल्दी घबरा न जाय। ७ बलयुक्त बलवान्, ताकतवर। ८ विनीत, नम्र। ९ गम्भीर। १० मनोहर, सुन्दर। ११ मन्द, धीमा।

वीरगोविन्दशर्मा—माघवंशचम्पू नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ये वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

वीरज (हिं० पु०) बैर देखो।

वीरज (हिं० पु०) वैरंगम् देखो।

वीरट (हिं० पु०) एक पक्षी।

वीरता (सं० स्त्री०) वीर भावे तल्। १ पराक्रम चित्तकी स्थिरता मनकी दृढ़ता। २ स्थैर्य सन्तोष भाव। ३ पाण्डित्य। ४ नायकगुणभेद।

वीरत्व (सं० क्ली०) वीरका भाव। वीरता और होनेका भाव।

वीरदेव—गुजरातप्रदेशके वणिक जैनके एक विख्यात धनि-पति। इन्होंने प्रायः १६०१ ई० में इडरी ग्राममें एक दुर्ग निर्माण किया था जो अभी भग्नावस्था धर्मशायी हो गया है।

वीरपत्नी (सं० स्त्री०) वीर मनोहर पत्र यस्याः त्रियां ङीप्। १ पर्णोकन्द, कमीकन्द। (त्रि०) २ मनोहर पत्रयुक्त जिसके अच्छे अच्छे पत्ते हों।

वीरप्रशान्त (सं० पु०) नायकभेद। जहां नायक बहु-गुणयुक्त ब्राह्मणादि हो, वहां वीरप्रशान्त होता है। जिस तरह मालतीमाधव ग्रन्थमें माधव वीरप्रशान्त नायक है।

वीरललित (सं० पु०) १ नायकभेद। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि जो चिन्तारहित, मृदु और सर्वदा कला-परायण रहता हो, उसे वीरललित नायक कहते हैं। रत्नावली प्रभृति ग्रन्थोंमें वत्सराजादि वीरललित नायक हैं। २ छन्दोविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं। ५।७।८।१०।१२।१३।१६ वां अक्षर गुरु और अन्य सर्व लघु होते हैं।

वीरशान्त (सं० पु०) साहित्यमें वह नायक जो सुशील दयावान् गुणवान् और पुण्यवान् हो।

वीरसिंह—१ भविष्य-ब्रह्मखण्ड नामक संस्कृत ग्रन्थवर्णित एक राजा। ये चन्द्रसेनके पुत्र थे और गोमतीनदीके तीर वर्त्ती धरहार नामक ग्राममें राज्य करते थे।

२ वर्द्धमानके राजा कीर्त्तिचन्द्रके पुत्र। जब मानसिंहने ससैन्य वर्द्धमान आये थे तभी वीरसिंह राज्य करते थे।

वीरस्कन्ध (सं० पु०) वीर: अतिशयेन भारवह इति यावत् स्कन्धो यस्य। १ महिष, भैंस। २ वनशूकर, जंगली सूअर।

वीरहाम्बीर—विष्णुपुरके राजा मल्लिक वीरहाम्बीरके पुत्र। ये नरोत्तम ठाकुर प्रभृतिके पदाश्रित परवर्त्ती थे। इनकी बनाई हुई बहुत सी पदावली पाई जाती है। इन्होंने 'साधनली' नामक एक अति उपादेय (रीति शास्त्र और भक्तिविषयक) वैष्णव ग्रन्थकी रचना बङ्गला भाषामें की है। इस ग्रन्थमें अनेक भक्तोंके परिचय पाये जाते हैं।

कहते हैं, कि वीरहाम्बीरके राज्यमें एकादशीके दिन प्राणपणसे पवित्र उमरमाने लोगोंको उपवास रहना पड़ता था। उस दिन सभी हरिनाम कीर्त्तन करनेमें बाध्य होते थे, इसके विपरीत चलनेवालोंको सजा दी जाती थी।

हरिनाम प्रचारके लिये राजाने अपने राज्यमें एक और नियम चलाया था जिसमें प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें तोता मैना अथवा कोई दूसरा पक्षी पालना पड़ता था। वे उस पक्षीको 'राधाकृष्ण वा गौरनिताइ' सिखाते थे। अतः इसके साथ साथ हरिनाम उच्चारण का मौका पल पलमें मिलता था। इस उपायसे थोड़े ही दिनोंमें विष्णुपुरमें स्वर्ग की शोभा दीखने लगी। कहते हैं, कि उनके समयमें राज्य भरमें चोर डकैतोंका निशान बिलकुल नहीं थी।

वीरा (सं० स्त्री०) वीर-टाप्। १ काकोली। २ महा ज्योतिष्मती मालकांगनी। ३ गुडुची गुरिच गिलोय। ४ साहित्यमें वह नायिका जो अपने नायकके शरीर पर पर स्त्री-रमणके चिह्न देख कर व्यंग्यसे कोप प्रकाशित करे, तानेसे अपना कोप प्रकट करनेवाली नायिका।

धुंध (हि० स्त्री०) १ हवामें उड़ती हुई धूल। २ वह अंधेरा जो हवामें मिली धूलके कारण हो। ३ आंखका एक रोग। इसके कारण ज्योतिमन्द हो जाती है और कोई वस्तु साफ नहीं दिखाई देती।

धुंधक (हि० पु०) धुंध देखो।

धुंधका (हि० पु०) धुआं निकलनेके लिए दीवार या छत आदिमें बना हुआ छेद, धौंकना धुंआरा।

धुंधकार (हि० पु०) १ धुंकार, गरज, गड़गड़ाहट। २ अन्धकार, अन्धेरा।

धुंधमार (हि० पु०) धुन्धुमार देखो।

धुंधर (हि० स्त्री०) वह धूल जो हवामें उड़ती है, गर्द गुबार। २ वह अन्धेरा जो धूल उड़नेके कारण हो।

धुंधराना (हि० क्रि०) धुंधलाना देखो।

धुंधला (हि० वि०) १ धुएंके रङ्गका, कुछ कुछ काला। २ अस्पष्ट जो साफ दिखाई न दे। ३ कुछ कुछ अन्धेरा।

धुंधलाई (हि० स्त्री०) धुंधलापन देखो।

धुंधलाना (हि० क्रि०) धुंधला पड़ना।

धुंधलापन (हि० पु०) अस्पष्ट होनेका भाव कम दिखाई देनेका भाव।

धुंधली (हि० स्त्री०) धुंध देखो।

धुंधुकार (हि० पु०) १ अन्धकार, अन्धेरा। २ धुंधलापन। ३ नगाड़ेका शब्द, धुंकार।

धुंधुरित (हि० वि०) १ धूमिल, धुंधला किया हुआ। २ हतदृष्टि, धुंधली आंखवाला।

धुंधरी (हि० स्त्री०) १ वह अन्धेरा जो धूल आदि उड़नेके कारण हुआ हो। २ धुंधलापन। ३ आंखका धुंध नामका रोग।

धुंधेरी (हि० स्त्री०) धुंध, वह अंधेरा जो हवामें मिली धूलके कारण हो।

धुंधेला (हि० पु०) १ बदमाश, पाजी। २ धोखेबाज, दगाबाज।

धुंआं (हि० पु०) धुआं देखो।

धुंआंकश (हि० पु०) धुआंकश देखो।

धुंआंदान (हि० पु०) धुआंदान देखो।

धुआं (हि० पु०) १ भाप जो जलती या जलती हुई चीजोंसे निकल कर हवामें मिल जाती है और जोरसे भी सूक्ष्म अणुओंके कदी रहनेके कारण कुछ नीलापन या कालापन लिये होती है। धूम देखो। २ भारी समूह उमड़ती हुई वस्तु घटाटोप। ३ धुर्रा, धज्जी।

धुआंकश (हि० पु०) वह जहाज या नाव जो भापके जोरसे चलती है, अग्निबोट, स्टीमर।

धुआंदान हि० पु०) वह छेद जो धुआं निकलनेके लिये छत आदिमें बना होता है।

धुआंधार (हि० वि०) १ धूममय, धुएंसे भरा। २ प्रचण्ड, घोर, बड़े जोरका। ३ काला, स्याह धुएं का सा। ४ भड़कीला, तड़क भड़कका, गहरे रंगका। (क्रि वि०) १ बड़े वेगसे और बहुत अधिक बहुत जोरसे।

धुआंना (हि० क्रि०) अधिक धुएंमें रहनेके कारण स्वाद और गन्धमें बिगड़ जाना।

धुआंयध (हि० वि०) १ जो धुएंकी तरह महकता हो। (स्त्री०) २ वह डकार जो अन्न अच्छी तरह परिपाक न होनेके कारण आती हो।

धुआंरा (हि० वि०) वह छेद जो धुआं निकलनेके लिये छत आदिमें बनाया जाता है, चिमनी।

धुआंस (हि० स्त्री०) धुआंध देखो।

धुआंसा (हि० पु०) १ वह कालिख जो आग जलनेके कारण ऊपरको छतमें जम जाती है। (वि०) २ धुएंसे बना हुआ। आंच ठीक न लगनेके कारण स्वाद और गन्धमें बिगड़ा हुआ।

धुक (स० पु०) भूमिवदराख्य, बेरका पेड़।

धुक (हि० स्त्री०) कलावत्तू कटनेकी सलाई।

धुकधुकड़ (हि० पु०) १ चित्तकी वह अस्थिरता जो भय आदिके कारण होती है, घबराहट। २ धोखा, पशोपेश।

धुकड़ी (हि० स्त्री) छोटी थैली, बटुआ।

धुकधुकी (हि० स्त्री) १ पेट और छातीके बीचका भाग, जहां कुछ गड्ढा सा होता है। २ हृदय, कलेजा। ३ कलेजेकी धड़कन, कम्प। ४ भय डर, खौफ। ५ गलेमें पहननेका एक गहना जो छाती पर लटका रहता है पदक, जुगनू।

धुकधुक (स० स्त्री०) बदरीफल, बेर।

धुकार (हिं० स्त्री०) नगाड़ेका शब्द।

धुकी (सं० स्त्री०) १ भूवदर, वेरका पेड़। २ हस्तिकोली, एक पेड़का नाम।

धुगधुगी (हिं० स्त्री०) धुकधुकी देखो।

धुड्ड (सं० पु०) धुच अच, पृषोदरादित्वात् साधुः। पक्षी-भेद, एक प्रकारकी चिड़िया।

धुत (सं० त्रि०) धु-क्त। १ त्यक्त, छोड़ा हुआ। २ विधुत, भगाया हुआ।

धुत (हिं० अव्य०) दुत देखो।

धुतकार (हिं० स्त्री०) दुतकार देखो।

धुतकारना (हिं० क्रि०) दुतकारना।

धुतू (हिं० पु०) धूत देखो।

धुतूरा (हिं० पु०) धतूरा देखो।

धुत्ता (हिं स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

धुधुकार (हिं० स्त्री०) १ धू धू शब्दका शोर। २ घोर शब्द, कड़ा आवाज।

धुधुकारी (हिं० स्त्री०) धुधूकारी देखो।

धुधुकी (हिं० स्त्री०) धुधुकार देखो।

धुन (सं० त्रि०) धूनयति धू नि अच, पृषोदरादित्वात् साधुः। कम्पन, काँपनेकी क्रिया या भाव।

धुन (हिं० स्त्री०) १ किसी कामको निरन्तर करते रहनेकी अनिवार्य प्रवृत्ति, बिना भविष्य सोचे और रुके कोई काम करते रहनेकी इच्छा। २ मनको तरंग, मौज। ३ चिन्ता, सोच, विचार, फिक्र। ४ गानेका तर्ज। ५ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। ६ ध्वनि देखो।

धुमकना (हिं० क्रि०) धुनना देखो।

धुनकी (हिं० स्त्री०) धनुषके आकारका धुनियोंका एक औजार। इससे वे रुई धुनते हैं। यह एक मजबूत डंडेकी बनी होती है। इसके सिरे पर काठका एक टुकड़ा रहता है जिससे लकड़ीके दूसरे सिरे तक एक तांत खूब कस कर बँधी होती है। धुननेवाला डंडेको बाएं हाथमें पकड़ कर एंड़ीके सहारे बैठ जाता है और तांतको रुईके ढेर पर रख कर उस पर बार बार हत्थेसे आघात करता है। यह हत्था हाथ भर लम्बी लकड़ीका बना होता और इसके दोनों सिरे अधिक मोटे और लट्टूदार होते हैं। इस प्रकार बार बार आघात करनेमें रुईके रेशे अलग अलग हो जाते हैं और बिनौले निकल जाते हैं। २ एक प्रकारका छोटा धनुष जो प्रायः लड़कोंके खेलने अथवा कभी कभी थोड़ी रुई धुननेके भी काममें आता है।

धुनना (हिं० क्रि०) १ धुनकीसे रुई साफ करना, जिसमें उसके बिनौले अलग हो जांय, गर्द निकल जांय और रेशे अलग अलग हो जाय। २ खूब मारना पीटना। ३ किसी काम को बिना ठहरे बराबर करते जाना। ४ बार बार कहना, कहते हो जाना।

धुनवाना (हिं० क्रि०) धुननेका काम किसी दूसरेसे कराना।

धुनि (सं० स्त्री०) धुनोति वेतसादि नदीजात वृक्षानिति, धु-कम्पने बहुवचनात् नि सच कित्। १ नदी। २ असुर-भेद, एक दैत्यका नाम। (पु०) ३ जलप्रतिरोधक असुर भेद। (त्रि०) ४ कम्पक, कँपानेवाला।

धुनियाँ (हिं० पु०) वह जो रुई धुननेका काम करता हो, बेहना। हिन्दुस्तानमें प्रायः मुसलमान ही रुई धुनने-का काम करते हैं।

धुनी (सं० स्त्री०) धुनि कृदिकारादिति वा ङीष्। नदी।

धुनीनाथ (सं० पु०) धुन्याः नाथः ६-तत्। समुद्र।

धुनेचा (हिं० पु०) एक प्रकारके सनका पौधा। इसे लोग बंगालमें कालो मिर्चको बेलों पर छाया रखनेके लिये लगाते हैं।

धुनेहा (हिं० पु०) धुनियाँ देखो।

धुन्धु (सं० पु०) मधु राक्षसका पुत्र। हरिवंशमें इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

महाराज वृहदश्वने अपने पुत्रोंके ऊपर राज्यभार सौंप कर जब वानप्रस्थ अवलम्बन किया, तब वहां उतङ्क नामक एक विप्रर्षिने जा कर उनसे कहा, 'महाराज! आपके वानप्रस्थ अवलम्बन करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं हो सकती। प्रजाकी रक्षा ही राजाओंका परम धर्म है, अतः आप राजधर्मका प्रतिपालन कर अक्षय कीर्त्ति स्थापन कीजिये। हमारे आश्रमसे थोड़े ही दूर पर एक सुविस्तीर्ण बालुकापूर्ण समतल मरुभूमि है जिसे देखनेसे समुद्रका बोध होता है। वहां धुन्धु नामका एक

धुरगीफल (सं० पु०) सुपारीवृक्ष, एक प्रकारका पेड़।

धुरन्धर (सं० पु०) धुरं धरतीति धृ खच् मुम् वा धुरां धारयति खच्, खचि ह्रस्वः। भारवाहक वृषादि, बोझ ढोनेवाला। जानवर, जैसे बैल, खच्चर, गधा आदि। इसका संस्कृत पर्याय—धुर्वह, धुर्य, धौरेय और धुरीण है। २ आदित्य राजाके मन्त्री। ये प्रखर बुद्धिसम्पन्न और अत्यन्त वीर थे। ये बहुत होशियारीसे आदित्य राजाको मार कर राजगद्दी पर बैठे थे। इन्होंने राजा की उपाधि धारण कर प्रजापालन किया था। ३ राक्षस-विशेष, रामायणके अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्तका मन्त्री था। ४ धववृक्ष, धौका पेड़। (त्रि०) ५ भार-वाही मात्र, भार ढोनेवाला। ६ श्रेष्ठ, प्रधान। ७ जो सबमें बहुत बड़ा, भारी या बली हो।

धुपद (हिं० पु०) ध्रुपद देखो।

धुरा (सं० स्त्री०) धुर पचे टाप्। भार, बोझ

धुरा (हिं० पु०) पहियेके बीचों बीच पिरोया हुआ वह डंडा जिस पर पहिया घूमता है।

धुरियाधुरंग (हिं० वि०) १ वह गाना जो बाजे या साज-के साथ न गाया जाय। २ अकेला, जिसके साथ और कोई न हो।

धुरियाना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजका धूलसे ढका जाना। २ ऊखके खेतका पहले पहल गोड़ा जाना। ३ किसी ऐब या बदनामीका किसी प्रकार दबना या दबाया जाना।

धुरियामल्लार (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक मल्लार। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुरी (हिं० स्त्री०) छोटा धुरा।

धुरीण (सं० त्रि०) धुरं वहति इति ख (खः सर्वधुरात्। पा ४।४।७८) १ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। २ श्रेष्ठ, प्रधान, मुख्य। ३ धुरन्धर।

धुराय (सं० पु०) धूर मर्हति इति छ। १ बोझ ढोने-वाला पशु। २ कारबारी मनुष्य। (त्रि०) ३ भारयोग्य, बोझ ढोने लायक।

धुरेंडी (हिं० स्त्री०) धुलेंडी देखो।

धुर्य (सं० त्रि०) धुरं वहतीति धुर्-यत्। १ धुरन्धर। २ श्रेष्ठ। ३ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। (पु०) ४ धुर्वह वृषादि, बोझ ढोनेवाला पशु। ५ वृषभ, बैल। ६ ऋषभौषधि, ऋषभ नामकी ओषधि, जो लहसुनकी तरह होती और हिमालय पर्वत पर पाई जाती है। ७ विष्णु।

धुर् (हिं० पु०) कण, रजःकण, जर्रा, भुआ।

धुर्वह (सं० वि०) वहतीति वह अच्। धुरो वहः। १ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला। २ कर्मिष्ठ।

धुलना (हिं० क्रि०) पानीकी सहायतासे साफ किया जाना, धोया जाना।

धुलवाना (हिं० क्रि०) धोनेका काम दूसरेसे कराना।

धुलाई (हिं० स्त्री०) १ धोनेका काम। २ धोनेका भाव। ३ धोनेकी मजदूरी।

धुलाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेको धोनेमें प्रवृत्त करना, धुलवाना।

धुलियापीर (हिं० पु०) एक कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल आदिमें लिया करते हैं।

धुलियामिटिया (हिं० वि०) १ जिस पर धूल या मट्टी पड़ी हो। २ दबाया या शान्त किया हुआ।

धुलेंडी (हिं० स्त्री०) १ हिन्दुओंका एक त्योहार। यह होली जलनेके दूसरे दिन चैत बदी १ को होता है। इस दिन सवेरे लोग होलीको राख मस्तक पर लगाते और दूसरों पर अबीर गुलाल आदि सूखे चूर्ण डालते हैं। २ उक्त त्योहारका दिन।

धुव (हिं० पु०) कोप, गुस्सा।

धुवक (सं० त्रि०) धु-क्वुन्। गर्भमोचक, गर्भ नाश करने-वाला।

धुवका (सं० स्त्री०) गीतका पहला, पद, टेक।

धुवकिन् (सं० त्रि०) धुवक प्रेक्षादित्वात् इन्। धुवक सन्निहित देशादि।

धुवकीय (सं० त्रि०) धु-कक् पिच्छादित्वात् अस्त्यर्थे इलच्। धुवकयुक्त।

धुवड़ी—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २६° १' उ० और देशा० ८९° ५९' पू० ब्रह्मपुत्रके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३७२७ है।

१८७९ ई०से यहां जिलेका सदर हुआ है। यहां टेलि-ग्राफ-तत्त्वावधायकका कार्यालय, उत्तरबङ्ग ष्टेट-रेलवेका

कहा, "तुम कोई अभिलषित वर मांगो।" यह सुन कर धूतपापा बोली, "हे ब्राह्मण। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये जिससे हम संसारमें सबसे पवित्र होवें।"

इस पर ब्रह्माने कहा, 'धूतपापे! इस पृथ्वी पर जितने पदार्थ हैं, सभीमें तुम प्रधान होगी। स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। वे तुम्हारे तनु और रोममें वास करेंगे।" इस तरह वर दे कर ब्रह्मा अपने स्थानको चले गये। धूतपापा भी तपः सिद्ध फल प्राप्त कर पिताके समीप आई और आनन्दसे रहने लगी। एक दिन धर्म नामक एक मुनिने, धूतपापाको अकेली देख कहा, "हम तुम्हारे असामान्य रूप-लावण्यको देख कामशरसे नितान्त पीड़ित हो गये हैं। अतः तू हमसे विवाह कर।" इसके उत्तरमें धूतपापाने कहा, "पिता ही कन्यादानके एकमात्र अधिकारी हैं, यदि आप हमसे विवाह करनेकी इच्छा करते हैं, तो पितासे आज्ञा ले आवें।" किन्तु धर्म उसी समय गन्धर्व विवाह करनेका हठ करने लगे। इस समय भी धूतपापाने उनसे प्रार्थना की कि 'विना पिताके दान दिये हम अन्यायरूपसे कभी भी विवाह नहीं कर सकती।' इस पर भी धर्म शान्त न हुए और बार बार उससे संयोग करनेकी प्रार्थना करने लगे। अन्तमें धूतपापाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि "तुम अत्यन्त जड़ और जलाधार नद हो कर बहो।" धर्मने भी क्रोधान्वित हो कर शाप दिया कि "तूने जिस तरह हमें शाप दिया है, उसी तरह तू भी पत्थर हो जा।" इस पर धूतपापा भयभीत हो पिताके पास गई और सब वृत्तान्त कह सुनाया। वेदशिराने तपके प्रभावसे अभिशापकारीको धर्म जान कर अपनी कन्यासे कहा, "हे पुत्रि! शाप अन्यथा नहीं हो सकता, तो भी तू मत डर, मैं अपने तपके प्रभावसे जहां तक हो सकेगा तुम्हारी भलाई कर दूंगा। तू काशीमें चन्द्रकान्त नामकी शिला होगी। पीछे चन्द्रोदय होने पर तुम्हारा शरीर द्रवीभूत हो कर नदीके रूपमें बहेगा, तुम्हारा नाम धूतपापा हो रहेगा और धर्म भी उसी स्थान पर धर्मनद हो कर बहेगा और तुम्हारा पति होगा।" यह धूतपापा नामकी नदी बहुत पुनीत मानी जाती है।

(काशीखण्ड ५९ अ०)

महाभारतमें भीष्मपर्वके ९वें अध्यायमें भी धूतपापा नामकी एक नदीका उल्लेख है, पर कुछ विवरण नहीं है। इससे कहा नहीं जा सकता कि इसी नदीसे अभिप्राय है या किसी दूसरीसे।

धूतपापेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

धूता (सं० स्त्री०) भार्या, स्त्री।

धूति (सं० स्त्री०) धू-क्तिन्। १ विधूनन। २ हठयोगाङ्ग-भेद।

धूती (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

धूधू (हिं० पु०) आगके दहकनेका शब्द, आगकी लपट उठनेकी आवाज।

धून (सं० त्रि०) धू-क्त। (ल्वादिभ्यः। पा ८।४।२१४) इति सूत्रेण निष्ठा तस्य नकारः। कम्पित, कांपता हुआ।

धून (हिं० पु०) दून देखो।

धूनक (सं० पु०) अग्निं धनयति संधुक्षयति इति धू-णिच्-ण्वुल्। १ अग्निवल्लभ, सालका गोंद, राल, धूप। (त्रि०) २ चालक, हिलाने डुलानेवाला।

धूनन (सं० क्ली०) धू-णिच्-ल्युट्। कम्पन, थरथराहट।

धूनना (हिं० क्रि०) धूनी देना, सुलगाना, जलाना।

धूनराज (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

धूना (हिं० पु०) आसाम तथा खसियाकी पहाड़ियों पर मिलनेवाला गुग्गुलकी जातिका एक बड़ा पेड़। इसका गोंद भी धूपकी तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनानेके काममें आता है।

धूनि (सं० स्त्री०) धू-क्तिन् अत्र ल्वादित्वात् नि। कम्पन, कांपनेकी क्रिया या भाव, थरथराहट।

धूनी (हिं० स्त्री०) १ देवपूजनमें या सुगन्धके लिये कपूर, अगर, गुग्गुल आदि गन्धद्रव्योंको जला कर उठाया हुआ धुआं। २ साधुओंके तापनेकी आग जो या तो ठंढसे बचनेके लिये अथवा शरीरको तपाने या कष्ट पहुंचाने के लिये जलाई जाती है।

धूप (सं० पु०) धूपयति स्वीय गन्धेन सन्तोष्य राजति इति धूप-अच्। गन्धद्रव्य विशेषोत्थ धूम और तद्वर्त्ति, किसी मिश्रित गन्धद्रव्यका धुआं और उसकी बत्ती। इसका पर्याय—गन्धपिशाचिका है। कालिकापुराणमें इसका उल्लेख इस प्रकार देखा जाता है—

उनसे धूआँ निकलता है। यह धूप ऐकाहिक आदि ज्वरको विनष्ट करता है। जिस घरमें यह धूप दिया जाता है, वहाँ सर्प पिशाच राक्षस आदिका भय कुछ भी नहीं रहता। (भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

निम्बपत्र, वच, हिङ्गु, सांपकी केंचुल और सर्षप इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला कर धूप देनेसे डाकिनी आदि दूर हो जाती है और भूतोन्माद रोग शान्त हो जाता है।

अन्यविध—कपास बीज, मयूरपुच्छ, हरतोफल, शिवनिर्माल्य, मदनफल, गुग्गुलक, बिडालकी विष्ठा, तुष, वच, मनुष्यका केश, सांपकी केंचुल, गो शृङ्ग, हस्तीदन्त, हिङ्गु और मिर्च इनका धूप देनेसे नाना प्रकारके भूतोन्माद और ज्वररोग नाश होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० उन्मादाधिकार)

गरुड़पुराणमें रोगनाशक धूपका विधान इस प्रकार लिखा है—

"कूर्ममत्स्याखुमहिषगोश्रृगालाश्ववानराः।
विडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः॥
हंस एषाञ्च विण्मूत्रं मांसं वा रोम शोणितं।
धूपं दद्यात् ज्वरार्त्तस्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये॥
एतान्यौषधजातानि धूपितानि महेश्वर।
निघ्नन्ति रोगजातानि वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥"

(गरुड़पुराण)

कूर्म, मत्स्य, चूहा, महिष, गो, शृगाल, अश्व, वानर, बिडाल, वर्ही, काक, वराह, उलूक, कुक्कुट और हंस इनकी विष्ठा, मूत्र मांस, रोम अथवा शोणित द्वारा प्रधूपित करनेसे ज्वर नाश होता है और उन्मत्तता आदि प्रशमित होती हैं।

"कार्पासास्थिभुजङ्गस्य यथा निर्मोचनं भवेत्।
सर्पनिर्मोचनो धूपः प्रशस्तः सततं गृहे॥"

(मत्स्यपु० १९२ अ०)

कपास और भुजङ्गकी अस्थिका धूप देनेसे साँपका भय नहीं रहता।

धूपक (सं० क्ली०) तूलकाष्ठ, शहतूतकी लकड़ी।

धूपघड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका यन्त्र जिसमें धूपमें समयका ज्ञान होता है। इसके बनानेकी रीति इस प्रकार है—पहले काठ या धातुका एक गोल चक्कर बनाया जाता है, पीछे उनके चार भाग किये जाते हैं। एक एक भागमें छः छः समान भाग करते और उस चक्करकी कोर थोड़ा छोड़ देते हैं। बाद उस कोरमें साठ भाग करते और बीचमें एक एक अंगुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगाते हैं कि उनसे उस चक्करके चार विभाग पूरे हो जांय। जहां दोनों पट्टियां मिलती हैं वहां बीचो बीच एक छेद करके एक कील लगा दे और कुम्बककी सूईसे या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले। उस स्थानके जितने अक्षांश हों उतनी वह कील उत्तरकी ओर उठी रहनी चाहिये। उस कीलकी छाया मध्याह्नसे पहले पश्चिमकी ओर और पीछे पूर्वकी ओर पड़ेगी। मध्याह्नके चिह्नसे पश्चिमकी ओर जिस चिह्न पर छाया पड़े उतनी ही घड़ी मध्याह्नमें घटती जानी जाती है, इसी प्रकार पूर्वका भी मालूम किया जा सकता है।

धूपछांह (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रंगीन कपड़ा। इसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग और कभी दूसरा रंग दिखाई पड़ता है। इस कपड़ेके तानेका सूत एक रंगका होता है और बानेका दूसरे रंगका। इसी कारण देखनेवालेकी स्थिति और कपड़ेकी स्थितिके अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा।

धूपदान (हिं० पु०) १ वह बरतन या डिब्बा जिसमें धूप रखा जाता है। २ वह बरतन जिसमें गन्धद्रव्य या धूपबत्ती रख कर सुगन्धके लिये जलाई जाती है, अगियारी।

धूपदानी (हिं० स्त्री०) धूप रखनेका छोटा बरतन।

धूपद्रुम (सं० पु०) रक्तखदिर, लाल खैर।

धूपन (सं० पु०) धूपयति संधुक्षयति अग्निमिति धूप-ल्यु। १ शालवृक्ष, सालका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—शालवेष्ट, सर्जरस और वह्निवल्लभ है। (क्ली०) धूप-ल्युट्। २ धूपादि द्वारा सन्तुक्षण, धूप देनेकी क्रिया। ३ धूप, धूना।

धूपपात्र (सं० क्ली०) धूपस्य पात्रं ६-तत्। धूपाधार पात्रभेद, वह बरतन जिसमें गन्ध द्रव्य जला कर धूप देते हैं।

धूपबत्ती (हिं० स्त्री०) मसाला लगी हुई सींक या बत्ती।

लगाइ बत्ती प्रविष्ट करनेके लिये नलके छिद्रको दीर्घता प्रायोगिकमें ४८, स्नेहनमें ३२, वैरेचनमें २४ और कासघ्न तथा वामनीयमें १६ अङ्गुलि होनी चाहिये। शेषोक्त दो प्रकारके नलका छिद्र बेरकी गुठलीके जैसा रहे।

अग्रधूपनार्थ—नलका परिणाह उरदके जैसा और छिद्रपथ कुलथीके जैसा होना आवश्यक है। धूम प्रयोग करनेसे धूमपान समझना चाहिये। जब धूम सेवन करना हो तब स्वच्छन्द भावसे प्रफुल्ल चित्त हो कर बैठना चाहिये। दृष्टिको नीचेकी ओर और चित्तको स्थिर करना एकान्त आवश्यक है। स्नेहाक्त बत्तीके अग्र भागको प्रदीप्त कर उसे नलके छिद्रमें डाल कर धूमपान करना चाहिये। पहले धूमको मुख द्वारा, पीछे नासिका द्वारा पान करना चाहिये। मुख वा नासिकाके जिस द्वारा धूमपान किया जाता है, उसी द्वारा धूम निकालना भी आवश्यक है। मुख द्वारा ग्रहण करके नासिका द्वारा धुआँ निकालना उचित नहीं है। इस प्रकार प्रतिलोम-क्रिया करनेसे दर्शनशक्तिमें व्याघात पहुंचता है। विशेषतः प्रायोगिकमें नासिका द्वारा, स्नेहनमें मुख और नासिका दोनों द्वारा, वैरेचनमें केवल नासिका द्वारा और दूसरे दो प्रकारसे मुख द्वारा पान करना चाहिये। प्रायोगिकमें बत्तीको छायामें सुखा कर अङ्गारसे दीप्त करके धूम पान करनेका विधान है। स्नेहन और वैरेचनमें भी यही नियम है। अङ्गार यदि निर्धूम हो, तो उसमें धूमका द्रव्य डाल कर ऊपरसे ढक्कन ढक देना चाहिये। उस आच्छादनके ढक्कनमें छिद्रका रहना आवश्यक है। उस छिद्रमें नलका मुख संयोजित कर कासघ्न और वामनीय धूमपान करना चाहिये। जब तक देह निर्दोष न हो जाय, तब तक धूमपान करते रहना उचित है।

शोक, परिश्रम, क्रोध, भीति, उष्णता, रक्त, पित्त, मद, मूर्च्छा, दाह, पिपासा, पाण्डुरोग, तालुशोष, वमन, मस्तकमें अभिघात, उद्गार, उपवास, तिमिररोग, प्रमेह, उदराध्मान, ऊर्द्ध्ववात, बालक, वृद्ध, दुर्बल, विरक्त, आस्थापित, जागरित, गर्भिणी, रुक्ष, क्षीण, उरक्षत आदि रोगीमें, मधु, घृत, दधि, दुग्ध, मत्स्य, मद्य वा जौका मांड पान करने पर अथवा शरीरमें थोड़ी व्यथा रहने पर धूम सेवन करना उचित नहीं है। धूम यदि अकालमें पीया जाय, तो भ्रम, मूर्च्छा, शिरोरोग, चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वाका उपघात होता है। प्रयमोक्त तीन प्रकारका धूम निम्नलिखित बारह कालमें पीना उचित है।

धूमपानके बारह काल।—क्षुत, दन्तप्रक्षालन, नस्य, स्नान, दिवानिद्रा, मैथुन, वमन, मूत्रपुरीषत्याग, क्रोध और शस्त्रकर्म; इनमेंसे मूत्रपुरीषत्याग, क्षवथु, क्रोध और मैथुन इनके बाद स्नैहिक धूम प्रयोज्य है। स्नान, वमन और दिवानिद्राके बाद वैरेचन धूम हितकर है। दन्तप्रक्षालन, नस्यप्रयोग, स्नान, भोजन और शास्त्रकर्मके अन्तमें प्रायोगिक धूम विधेय है। स्नेह धूममें स्नेह और उपलेप प्रयुक्त वायुका शान्तिकर होता है। वैरेचनसे रुक्षता, तीक्ष्णता, उष्णताप्रयुक्त श्लेष्मा निर्गत होती है। प्रायोगिक धूम पहले दो प्रकारके कारणों द्वारा श्लेष्मा को उत्क्लिष्ट कर निर्गत करता है।

किसी कविका कहना है कि, 'हुक्का चार वक्त अच्छा सोके, मुंह धोके, खाके, नहाके और चार वक्त बुरा आँधीमें, अँधेरेमें, भूकमें और धूपमें।'

धूमपानका फल - धूमपान करनेसे इन्द्रिय, वाक्य और मन प्रसन्न होता है, केश और श्मश्रु दृढ़ रहता है, मुख सुगन्धित और परिष्कार होता है। कास, श्वास, अरुचि, मुखका उपलेप, स्वरभङ्ग, मुखका आस्राव, वमनेच्छा, तन्द्रा, निद्रा, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, चक्षुःशूल और वातश्लेष्मासे उत्पन्न मुखरोग धूमपान करनेसे प्रशमित होता है।

धूमपानमें योग और अतियोगका फल जानना आवश्यक है। उपयुक्त परिमाणमें धूमका प्रयोग करनेसे रोग शान्त होता है। अधिक परिमाणमें सेवन करनेसे रोगकी अशान्ति तालुशोष, गलशोष, दाह, पिपासा, मूर्च्छा, भ्रम, मद, कर्णरोग, दृष्टिहानि, नासिकारोग और दौर्बल्य आदि उपद्रव होते हैं। प्रायोगिक धूमपानमें मुख और नासिका द्वारा पर्याय क्रमसे तीन तीन बार करके धूमपान करना चाहिये।

स्नैहिकमें जब तक अश्रुप्रवृत्ति न हो, तब तक धूम पान विधेय है। वैरेचनिकमें जब तक कोई दोष दीख न पड़े, तब तक धूमपान कर सकते हैं। अतिरिक्त होनेसे

दोष देखनेमें आता है। तिल, तण्डुल और जौका मांड़ पी कर पीछे कामनीय धूमपान करना विधेय है। कासरोग धूमपानके साथ पीना हितकर है। व्रणमें यदि धूमका प्रयोग करना हो, तो शरीरमें छिद्र करके उसमें नल लगा कर प्रयोग करना चाहिये। धूमसे व्रणकी वेदना शान्त होती है निर्मलता आ जाती है तथा पीपका निकलना बन्द हो जाता है। धूमकी यही संक्षिप्त विधि है। (सुश्रुत चिकित्सितस्थान)

४ धूमकेतु। ५ उल्कापात। ६ ऋषिविशेष एक ऋषिका नाम। ७ द्वीपभेद, एक द्वीपका नाम।

धूमक (सं० पु०) १ धूम, धूआं। २ एक शाकका नाम।

धूमकरीया (हिं० स्त्री०) उपद्रव, उत्पात और्ऊधम।

धूमकेतन (सं० पु०) धूम केतन ध्वजचिह्नं यस्य। १ अग्नि। इसकी पताका धूआं है। २ केतु ग्रह।

धूमकेतु (सं० पु०) धूमः केतुः चिह्नं यस्य। सन्ध्याके कुछ बाद अथवा सुबहके कुछ पहले कभी कभी आकाशमें जो लम्बे पुच्छदार नक्षत्र तारे दीख पड़ते हैं, वही धूमकेतु है। इनके प्रकृत तत्त्वका पता आज भी अच्छी तरह किसीको नहीं लगा है। अत्यन्त प्राचीन कालसे धूमकेतुके विषयमें जनसाधारणमें यह कुसंस्कार चला आ रहा था कि इनके उदय होनेसे राष्ट्रविप्लव, जनक्षय, दुर्भिक्ष, महामारी आदि अमङ्गल होते हैं। 'अपशकुन' जान कर धूमकेतुका जो नामान्तर प्रचलित है वही इस विश्वासका परिचायक है। यह संस्कार केवल इसी देशमें प्रचलित था सो नहीं, वरं समस्त सभ्य देशोंके ही प्राचीन अधिवासियोंमें इसके अस्तित्वका दृष्टान्त मिलता है। आज-कलके विज्ञान आलोचनाके फल द्वारा ये सब भ्रान्त जनसाधारणके मनसे दूर हो गये हैं सही किन्तु धूमकेतुका यथार्थ तत्त्व बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है। नीचे इसके विषयमें वर्तमान कालके प्रधान ज्योतिर्विदोंके मतावलम्बित मतका तात्पर्य दिया जाता है।

इन असाधारण तारोंमेंसे अनेक कम ज्योतिवाले सौरजगत्के साथ मिले हुए हैं और अनेकके साथ इस सौर जगत्का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ये सब प्रकाश नभोमण्डलके जिस अंशमें सौरजगत् अवस्थित है, उसी अंशको हो कर जाते हैं और इसीसे हम लोगोंकी दृष्टि उन पर पड़ती है। धूमकेतुओंमेंसे अनेक बिना दूरबीनके देखे नहीं जा सकते। जो सब बिना किसी यन्त्रके दिखाई पड़ते, वे शीर्ष और पुच्छ दो अंशोंमें विभक्त हैं। शीर्षका मध्यस्थल एक उज्ज्वल तारा सा है, इस अंशको "गर्भ" (nucleus) कहते हैं। इस अंशके चारों ओर कम प्रकाशकी एक नीहारिका रहती है। गर्भसमन्वित इस नीहारिकामण्डलका नाम शीर्ष है। पुच्छांश भी इसी तरह नीहारिकासे संगठित है और ऐसा जान पड़ता बहुत दूर तक विस्तृत है किन्तु शीर्षदेशसे इस अंशकी उज्ज्वलता बहुत कुछ कम है। धूमकेतुकी आकृति सब समय एक सी नहीं देखी जाती। बहुतोंमें एक पुच्छ किसीके दो, किसीके उससे भी अधिक और किसीके बिलकुल नहीं रहती है। इस प्रकार पुच्छविहीन केतुओंमेंसे अनेकके 'गर्भ' अर्थात् नीहारिका मण्डलके भी अभ्यन्तर सुक्षीण रूपसे अवस्थित नहीं हैं। बहुतोंके बिलकुल गर्भ नहीं रहता है केवल एक नीहारिका मण्डल देखनेमें आता है, कहना व्यर्थ है। कि और ग्रह-उपग्रहोंकी सुशृङ्खल और सुप्रणाली-परिचालित गतियोंके साथ धूमकेतुका विशेष पार्थक्य है। इसके पहले ही कहा जा चुका है कि विज्ञानचर्चाके फलसे धूमकेतु सम्बन्धीय सभी कुसंस्कार दूर हो गये हैं सही किन्तु इसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषय अब तक भी अच्छी तरह किसीको मालूम नहीं है। पर धूमकेतु जो किस मध्याकर्षणके अन्तर्गत कई एक सुनिश्चित नियमावलियोंका अनुसरण करते हैं, अब एक प्रकारसे बहु मतसिद्ध है एवं भविष्यत्में जो वे अनेक ज्योतिषिक रहस्य उद्घाटनके कारण होंगे, इसमें भी तनिक सन्देह नहीं है।

धूमकेतुओंकी संख्या कितनी है? इसका उत्तर यही है, कि धूमकेतुको असंख्य कहने पर भी अत्युक्ति नहीं होगी, सुविख्यात पाश्चात्य ज्योतिर्विद् केपलर कह गये हैं कि, समुद्रमें मछलियोंकी संख्या जिस तरह अनिश्चित है व्योममार्गमें धूमकेतुकी संख्या भी उसी तरह है। इनमेंसे अनेक कभी कभी सौरजगत्के समीप रहनेके कारण हम लोगोंकी निगाहमें आते हैं। ईसामसीहके जन्मके बादसे ले कर वर्तमान समय तक ८१२ केतु ज्योतिर्विदोंसे देखे गये हैं। इनमेंसे ११८ फिर सौरजगत्में

धूमधर (सं० पु०) अग्नि, आग।

धूमध्वज (सं० पु०) धूम ध्वजः केतुरिव यस्य। अग्नि आग।

धूमनाड़ी (सं० स्त्री०) प्रयोगिकादि धूम प्रयोगार्थ नला कार यन्त्र, नलके आकारका एक यन्त्र जिससे रोगीको धुआं सेवन कराया जाता है।

धूमप (सं० त्रि०) धूमं धूमपानं पिबति पा क। तपस्याके निमित्त धूममात्रपानकारी, तपस्याके लिए जो केवल धुआं पी कर रहता हो। २ धूमपायिमात्र, धुम पीनेवाला।

धूमपथ (सं० पु०) धूमोपलक्षितः पन्थाः अच्समासान्तः। पितृयान। २ धूमप्रचारमार्ग, धुआं निकलनेका रास्ता।

धूमपान (सं० क्ली०) धूमस्य पानं ६ तत्। सुश्रुतोक्त नेत्र और व्रणरोगनाशक धूमविशेष पान। इसका विवरण धूम शब्दमें देखो।

इस देशमें हम लोग इसे तमाकू पीना कहते हैं। तमाकू पीनेमें धूमपान करना होता है, इसीसे इसका धूमपान नाम पड़ा।

इसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—धूमपान ६ प्रकारका है शमन, वृंहण, रेचन, कासघ्न, वामन और व्रणधूपन। मध्य और प्रायोगिक ये दो शब्द शमन शब्दके, स्नेहन और मृदु वृंहण धूमके, शोधन और तीक्ष्ण ये दो शब्द रेचन धूमके पर्याय हैं।

बारह वर्षके लड़केको और अस्सी वर्षके बुड्ढेको धूम पान करना मना है। यदि धूमपान सम्यक् प्रकारसे प्रयोजित हो, तो काश, श्वास, प्रतिश्याय, मन्याग्रह, हनुग्रह, शिरोरोग और वातश्लेष्मिक रोग प्रशमित होते हैं, इन्द्रिय, वाक्य और मनकी प्रसन्नता होती है। केश, श्मश्रु दन्त मजबूत होते हैं तथा मुखकी दुर्गन्धि जाती रहती है।

जब धूम प्रयोग करना हो तब नलको त्रिखण्ड तथा तीन पर्व समन्वित करना कर्त्तव्य है। उसको स्थूलता कनिष्ठ अङ्गुलि सी और अभ्यन्तरका छिद्र राजमाषाके सदृश रहे।

नलकी दीर्घता।—शमनधूपके प्रयोगमें नलकी लम्बाई रोगीकी उंगलीसे ४० उंगली, कासघ्न धूमप्रयोगमें १६ उंगली और वामन धूमप्रयोगमें १६ उंगलीकी होनी चाहिये। व्रणधूपनार्थ जो नल दश उंगलीका होता है, उसकी स्थूलता मटर या उरदके सदृश और छिद्रका परिमाण उतना ही रहना आवश्यक है जितनेमें कुलथी या कलाय सहजमें आ जा सके।

धूमग्रहणका नियम।—१२ उंगली लम्बे साथ साथ पतले एक सरकण्डेको ले कर उसे दो तोला परिमित धूमोपयोगी औषधके कल्क द्वारा ८ उंगली तक चारों ओर लेप दे, बाद उसे छायामें सुखा ले। भलीभांति सूख जाने पर सरकण्डेको धीरे धीरे अपनीत करके उस कल्ककी बत्तीको स्नेहोक्त करे। बाद उसके अग्रभागको अङ्गारकी अग्निमें जला कर उसके दूसरे भागको मुखमें लगा धूमपान करे। धूमको पहले मुख ही कर पान करना चाहिये और मुख ही कर ही निकालना चाहिये। पीछे नासिका द्वारा पान कर मुख द्वारा उसे निकाल सकते हैं।

जहां व्रणधूपन करना होता है, वहां प्रज्वलित अङ्गारके ऊपर एक सरकण्डेको स्थापन कर उसके ऊपर कल्क औषध रख देते हैं। पीछे एक दूसरे सछिद्र सरकण्डेसे उसे ढक देते हैं। जब उस छिद्रमेंसे धुआं निकलने लगता है तब नलके एक मुखको छिद्रमें और दूसरे मुखको क्षत स्थानमें लगा कर धूमप्रयोग करते हैं।

शमनधूमके प्रयोगमें एलादियोंका कल्क, वृंहण धूममें स्निग्ध,मधुरस, रेचन धूममें तीक्ष्ण द्रव्योंका कल्क, कासघ्न धूममें कण्टकारी और मिर्च, वामन धूपमें स्नायु चर्मादि तथा व्रणमें धूमप्रयोग करना चाहिये। धूमपान करके मनस्ताप और क्रोध बिलकुल नहीं करना चाहिये। सुवर्णादि धातु, नल अथवा बांस द्वारा धूमपानका नल बनाना चाहिये। श्रान्त, भययुक्त, दुःखित, गर्भिणी, रुक्ष, क्षीण आदिके धूमपान करनेसे अथवा असमयमें अधिक मात्रामें इसका सेवन करनेसे नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। उपद्रवके उपस्थित होने पर उसकी शान्तिके लिए घृतपान, नस्य, अञ्जन और सन्तर्पण करे तथा घृत, इक्षुरस, द्राक्षा दुग्ध और मधुराम्लके सहयोगसे वमन कराना हितकर है। (भावप्र० पूर्वख०) विशेष विवरणके लिये धूम शब्दमें देखो।

राक्षस बहुत आसानीसे पहाड़ लांघ कर आ रहा है, तब रूपशिखाके कथनानुसार पुनः उसको ओर जल फेंका। इस समय जलसे एक बड़ी नदीकी उत्पत्ति हुई। बहुत कष्टसे राक्षस उसे भी पार कर आया। तब उन्होंने फिर कांटेको फेंका जिससे उस जगह एक प्रकाण्ड कण्टका-कीर्ण जङ्गलका आविर्भाव हुआ। जब राक्षस उससे भी निकल आया, तब अन्तमें शृङ्गभुजने रूपशिखाकी दी हुई अग्नि पृथ्वी पर फेंकी जिससे प्रचण्ड अग्निराशिने निकल कर राक्षसकी गति रोक दी। राक्षस बहुत डर गया और रूपशिखाके ऐन्द्रजालिक मोहसे हतबुद्धि हो बहुत थके मारे अपने मन्दिरको वापिस हो गया।

धूमस (सं० पु०) शाक, साग।

धूमसार (सं० पु०) गृहधूम, घरका धुआँ।

धूमसी (सं० स्त्री०) रोटिकाविशेष, धुआँस उरदका आटा।

उरदको दालको पानीमें भिगो कर उसको भूसीको फेंक देते, बाद उसे धूपमें सुखाते हैं। अन्तमें उसको चक्कीमें पीसते हैं, इसीको धूमसी कहते हैं। इसको अच्छी रोटी बनती है। यह कफ, पित्तनाशक और वायुवर्द्धक है।

धूमसंहति (सं० स्त्री०) धूमस्य संहतिः ६-तत्। धूम-समूह, धुएँका जमाव।

धूमा—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सिउनी जिलेका एक ग्राम। यह लखनाभनसे १२ मील और जब्बलपुरसे ३२ मीलको दूरी पर अवस्थित है। यहां स्कूल, थाना और कावनी है। लोकसंख्या प्रायः १००० है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १८०७० फुट ऊंचे पर बसा हुआ है।

धूमाक्ष (सं० पु०) धूम इव अक्षि चक्षुर्यस्य, षच समासान्तः। धूमतुल्य नेत्रयुक्त, वह जिसकी आंखें धुएँसी हों।

धूमाङ्ग (सं० पु०) धूम इव अङ्गं यस्य। १ शिंशपा वृक्ष, शीशमका पेड़। (त्रि०) २ धूमतुल्य अङ्गयुक्त, जिसका अंग धुएँके समान हो।

धूमाग्नि (सं० पु०) धूमप्रधानोऽग्निः मध्यलो० कर्मधा। अग्निभेद, विना ज्वाला या लपटको आग।

धूमादि (सं० पु०) धूम आदिर्यस्य। पाणिनिगणसूत्रोक्त देशवाचक शब्दगण। यथा—धूम, षण्डक, शशादान, अर्जुनाव, माहकस्थली, आनकस्थली, माहिषस्थली, मानस्थली, अट्टस्थली, मद्रकस्थली, समुद्रस्थली, दाण्डायनस्थली, राजस्थली, विदेह, राजगृह, सात्रासाह, शष्पमित्रवर्ह, भक्षाली, मद्रकूल, आञ्जीकूल, द्व्याहाव, त्र्याहाव, संस्फीय, बर्बर, वर्च्य, गर्त्त, आनर्त्त, माठर, पाथेय, घोष, पल्ली, आराज्ञी, धार्त्तराज्ञी, आवय, तीर्थ, कुचि, अन्तरीप, द्वीप, अरुण, उज्जयिनी, पट्टार, दक्षिणापथ और साकेत। (पाणिनि)

धूमाभ (सं० पु०) धूमस्य आभा इव आभा यस्य। १ धूम्रवर्ण, धुएँका रंग (त्रि०) २ धूम्रवर्णयुक्त, धुएँके रंगका।

धूमावती (सं० स्त्री०) दशमहाविद्यान्तर्गत विद्याविशेष। दशमहाविद्याओंमेंसे एक देवी। धूमावतीका उत्पत्ति-विवरण तन्त्रशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

एकबार पार्वतीको जब बहुत भूख लगी, तब उन्होंने महादेवसे कुछ खानेको मांगा। महादेवने कहा, घर जा कर भोजन करेंगे, इसलिये थोड़ी देर ठहरो। पर पार्वती क्षुधासे अत्यन्त आतुर हो कर महादेवको निगल गई। इस समय पार्वतीके शरीरसे धुआं निकलने लगा। अन्तमें महादेवने माया द्वारा शरीर कल्पित कर कहा, "हे देवि! तुमने जब हमें खाया, तब तुम विधवा हो चुकी, अतः विधवाका वेश धारण करो। हमारे वरसे तुम इस वेशमें पूजी जाओगी और तुम्हारा नाम धूमावती होगा। दशमहाविद्या देखो।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि कृष्णचतुर्दशी तिथिमें पुरश्चरणकी सिद्धिके लिये धूमावतीका जप करना चाहिये। तन्त्रसारमें इनका पूजन, कवच, मन्त्र आदिका विशेष विवरण लिखा है।

धूमिका (सं० स्त्री०) धूम इवास्त्यस्याः इति धूम-ठन्, स्त्रियां टाप्। १ कुज्झटिका, कुहासा। २ पक्षीविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

धूमित (सं० त्रि०) धूमोऽस्य सञ्जातः इति तारकादित्वादितच्। १ सञ्जातधूम, जिसमें धुआं लगा हो। (पु०) २ दोषणीय मन्त्रभेद, तन्त्रोंके अनुसार वह दूषित मन्त्र जो साढ़े बारह अक्षरोंका हो।

धूमिता (सं० स्त्री०) वह दिशा जिसमें सूर्य जानेवाला हो।

धूमिन् (स० त्रि०) धूमोऽस्त्यस्य बाहुल्येन इनि। १ बाहुल्य द्वारा धूम युक्त, जहां बहुत धुआं हो, धुएं से भरा हुआ। जहां बाहुल्य या प्रशंसताका भाव नहीं होता, वहां मतुप प्रत्यय हो कर धूमवत् होता है। स्त्रियां ङीप। २ अजमीढ़की पत्नीभेद अजमीढ़की एक पत्नीका नाम। ३ धूम्रिकी जिह्वाभेद, धूम्रिकी एक जिह्वाका नाम।

धूमोत्थ (स० क्ली०) धूमादुत्तिष्ठति परस्पर घर्षणेनेति धूम उद् स्था-क। १ सम्भार, नौसादर। (त्रि०) २ धूमजातमात्र धुएंसे निकला हुआ।

धूमोद्गार (स० पु०) धूमस्य उद्गारः ६-तत्। १ धूम निर्गम, धुएंका निकलना। २ जठराग्निके मन्दतानुसार पदार्थका उद्गार, अजीर्ण या अपचके कारण आनेवाली धुएं जैसी कड़वी डकार। इस तरहकी डकार आने पर समझना चाहिये कि अग्नि मन्द है।

धूमोपहत (स० पु०) धूमेन उपहतः ३ तत्। सुश्रुतोक्त धूमजात उपद्रवरूप रोगभेद। इसके लक्षणादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

"अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणं" (सुश्रुत)

इसके बाद धूमजात उपहत होनेसे अर्थात् शरीरमें धुएंका प्रवेश होनेसे जैसा लक्षण होता है, उसका विषय कहते हैं। श्वास, छिंकी, खांसी, कासरशब्द, दोनों आंखमें ज्वाला और रक्तवर्णता, निश्वासके साथ धूमका निकलना, धूमके सिवा दूसरे द्रव्यको गन्ध या स्वाद कुछ भी मालूम न पड़ना, अवसन्नशक्तियुक्त होना और तृष्णा, दाह तथा ज्वरयुक्त एवं बधिर और ज्ञानशून्य होना ये सब धूमोपहतके लक्षण हैं। इसका चिकित्साविधान इस प्रकार है— घृत, इक्षुरस, द्राक्षा, दुग्ध अथवा या मिस्रीका जल और मधुराम्लरस इनके द्वारा रोगीको अच्छी तरह वमन कराना चाहिये। वमन हो जानेसे कोष्ठ शुद्ध हो जाता है और धुएंकी गन्ध नहीं रहती। शरीरकी अवसन्नता, छिंकी, ज्वर दाह, मूर्च्छा तृष्णा उदरा ध्मान, श्वास और कास ये सब उपद्रव भी जाते रहते हैं। बाद मधुर, लवण अम्ल और चरपरा द्रव्य मुखमें रखनेसे जिह्वा द्वारा रस ग्रहण होता है और मन भी प्रसन्न रहता है। चिकित्सक इस रोगमें जिससे छिंकी आवे ऐसी औषधका प्रयोग करे। ऐसा करनेसे दृष्टि विशोधित होती है और मस्तक तथा ग्रीवा भी परिष्कार रहती है। जोकि जिससे अवरसकी उत्पत्ति न हो, ऐसे अवरोधी, लघु, स्निग्ध, आहार रोगीको देना उचित है। (सुश्रुत)

धूमोर्णा (स० स्त्री०) १ यमपत्नी, यमकी स्त्री। २ मार्कण्डेय पत्नी, मार्कण्डेयकी स्त्री।

धूमोर्णापति (स० पु०) धूमोर्णायाः पतिः ६-तत्। यम।

धूम्या (स० स्त्री०) धूमानां समूहः धूम पाशादित्वात् य टाप। धूम समूह।

धूम्याट (स० पु०) धूम्या इव अटति अति अट अच्। पक्षिविशेष भिङ्गराज नामकी एक चिड़िया। इसका संस्कृत पर्याय कलिङ्ग और धाङ्क्ष है।

धूम्र (स० पु०) धूम धूम्रवर्ण राति रा-क। पृषो-दरादित्वात् साधुः। १ कृष्णरक्तमिश्रितवर्ण, ललाई लिये काला रंग। इसका पर्याय—धूमल कृष्णलोहित, कृष्ण वर्ण और लोहितवर्ण है। २ सिह्लक, शिलारस नाम का गन्ध द्रव्य। ३ तुरुष्क गन्धद्रव्य, लोबान। ४ असुर विशेष, एक असुरका नाम। ५ शिव, महादेव। ६ मेष, भेड़। ७ कुमारानुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम। ८ रामको सेनाका एक भालू। ९ मानिक या लालका धूमलापन जो एक दोष समझा जाता है। (त्रि०) १० धूम्रवर्णयुक्त, धुएंके रंगका धूमला या भूरे रंगका।

धूम्रक (स० पु०) धूम्र वर्णेन कायति इति कै-क। उष्ट्र, ऊंट।

धूम्रकेतु (स० पु०) १ भरत राजाके एक पुत्रका नाम। जिस समय भगवान् संसारकी रक्षाके लिये कुछ विचार कर रहे थे, उसी समय भरतने विश्वरूपकी लड़की पञ्चजनीको व्याहा था, जिसके गर्भसे सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। २ तृणबिन्दुके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ३ धूम्रवर्ण ध्वजयुक्त, जिसकी पताका धुएंके रंगका हो।

धूम्रकेश (स० पु०) १ पृथु राजाके एक पुत्रका नाम। २ कृशाश्वका पुत्र जो अर्चि नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ

था। (त्रि०) ३ धूम्रवर्ण केशयुक्त, जिसके बाल ललाई लिये काले रंगके हों।

धूम्रपत्रा (सं० स्त्री०) धूम्रं धूम्रवर्णं पत्रं यस्याः अजादेराकृतिगणत्वात् टाप्। क्षुपविशेष, एक पौधेका नाम। इसका संस्कृत पर्याय—धूम्राह्वा, सुलभा, खरमुवा, गृध्रपत्रा, गृध्राणी, क्रमिघ्नी और श्रोमलापहा है। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, रुचिकारक, शोथ, क्रमि और काशनाशक तथा अग्निप्रदीपक है।

धूम्रपत्रिका (सं० स्त्री०) धूम्रपत्रा देखो।

धूम्रमूलिका (सं० स्त्री०) धूम्रं मूलः यस्याः, कप् टापि अत इत्वं। शूलीतृण, एक प्रकारकी घास।

धूम्ररोहित (सं० पु०) धूम्रश्च, रोहितश्च 'वर्णोवर्णेन' इति सूत्रेण कर्मधारयः। धूम्रवर्णमिश्रित रक्तवर्ण, ललाई लिये काला रंग।

धूम्रलोचन (सं० पु०) धूम्रे लोचने यस्य। १ कपोत, कबूतर। २ दानवराज शुम्भका एक सेनापति। जब देवीने शुम्भ निशुम्भके वधके लिये एक परम सुन्दरीका रूप धारण कर कहा था, 'जो मुझे युद्धमें जीतेगा उसे मैं वरमाला पहनाऊंगी,' तब शुम्भने सुग्रीव नामक एक दूतके मुखसे यह बात सुन कर उन्हें पकड़ लानेके लिये इसी धूम्रलोचनको भेजा था। धूम्रलोचन ६० हजार सेनाको साथ ले देवीके पास गया। जब धूम्रलोचन उनसे युद्ध करनेको प्रस्तुत हुआ, तब भगवतीने एक प्रचण्ड हुङ्कार किया जिससे ६० हजार सेनाके साथ धूम्रलोचन उसी जगह भस्म हो गया था।

(मार्कण्डेय चण्डी)

धूम्रलोहित (सं० पु०) धूम्रश्च लोहितश्च "वर्णोवर्णेन" इति सूत्रेण समासः। १ कृष्णवर्ण मिश्रित रक्तवर्ण, ललाई लिये काला रंग। २ शिव, महादेव। ३ तद्युक्त, धूएंके रंगका।

धूम्रवर्ण (सं० पु०) धूम्रः वर्णः। १ कृष्णलोहित-वर्ण, ललाई लिये काला रंग। २ तुरुष्क, एक सुगन्धित द्रव्य। ३ धूमिनीसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ धुएंके रंगका।

धूम्रवर्णा (सं० स्त्री०) धूम्रवर्ण-टाप्। अग्निको सात जिह्वाओंमेंसे एक।

धूम्रशूक (सं० पु० स्त्री) धूम्रः शूकः-इव रोम यस्य। उष्ट्र, ऊंट।

धूम्रशूल (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

धूम्रा (सं० स्त्री०) कर्कटीविशेष, एक प्रकारकी ककड़ी।

धूम्राक्ष (सं० त्रि०) धूमं धूमवर्णं अक्षि चक्षुर्यस्य, समासान्तविधौ अच् समास। १ धूम्रवर्ण-नेत्रयुक्त, जिसकी आंखें धूमले रंगकी हों। (पु०) २ तृणविन्दु-वंशीय राजा हेमचन्द्रके पुत्र। ३ रावणका एक सेनापति। यह राम-रावण युद्धमें हनुमानके हाथसे मारा गया था।

धूम्राट (सं० पु०) पक्षिविशेष, भिंगराज नामकी चिड़िया।

धूम्रानीक (सं० पु०) १ शाक-द्वीपाधिपति मेधातिथिके एक पुत्रका नाम। २ तन्नामक तत्रत्य वर्ष।

धूम्राभ (सं० पु०) धूम्रस्य आभा इव आभा-यस्य। धूम्रवर्ण आभा-युक्त, वह जिसकी कान्ति धूमले रंगसी हो।

धूम्रायण (सं० पु०) गोत्र-प्रवर ऋषिभेद, गोत्र-प्रवर्तक एक ऋषिका नाम।

धूम्रार्चिस् (सं० स्त्री०) शारदातिलकोक्त अग्निके दश विध कलान्तर्गत कलाभेद, शारदातिलकके अनुसार अग्निकी दश कलाओंमेंसे एक।

धूम्राश्व (सं० पु०) विशालराज सुचन्द्रका पुत्र, सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुका प्रपौत्र।

धूम्राह्वा (सं० स्त्री० धूम्रं वर्णं आह्वयते स्पर्द्धते आ-ह्वे क। धूम्रपत्रा, एक पौधेका नाम।

धूम्रिका (सं० स्त्री०) शिंशिपावृक्ष, शीशमका पेड़।

धूर (हिं० स्त्री०) एक घास।

धूरकट (हिं० पु०) लगानकी वह पेशगी जो जमींदारको असामीकी ओरसे जेठ आषाढ़में दी जाती है।

धूरडांगर (हिं० पु०) सींगवाला चौपाया ढोर।

धूरधान (सं० पु०) धूलकी राशि, गर्दका ढेर।

धूरधानी (हिं० स्त्री०) १ गर्दकी ढेरी, धूलकी राशि। २ ध्वंस, विनाश।

धूरा (हिं० पु०) १ धूल, गर्द। २ चूर्ण, बुकनी।

धूरियाबेला (हिं० पु०) एक प्रकारका बेला।

धूरियामल्लार (हिं० पु०) मल्लार रागका एक भेद।

धूर्जटि (सं० पु०) धूः भारभूता जटिर्यस्य, वाहुलसा

भ्रष्ट हो जाती हैं। केवल इतना ही नहीं, वरिक प्राणि-मात्रको हो धूलिविशेष अमङ्गलजनक है। २ व्याकुलोभाव। ३ पराग। ४ गर्दभ, गधा।

धूलिकदम्ब (सं० पु०) धूलीनां कदम्बं यत्र। १ नीपकदम्बवृक्ष, एक प्रकारका कदम्ब। २ वरुणवृक्ष। ३ तिनिशवृक्ष। (क्लो०) ४ धूलि समूह, धूलकी ढेरो।

धूलिकदम्बक (सं० पु०) धूलिकदम्ब स्वार्थे कन्। नीपकदम्बवृक्ष।

धूलिका (सं० स्त्री०) धूलिरिव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति सूत्रेण कन् टाप्। १ कुज्झटिका, कुहासा, कुहारा। २ नीहार, महीन जलकणोंकी झड़ी।

धूलिकुट्टिम (सं० क्लो०) धूलीनां कुट्टिममिव। कृष्ट चेत्र, जोता हुआ खेत।

धूलिकेदार (सं० पु०) धूलिप्रधानः केदारः मध्यपदलो० कर्मधा। १ कृष्टचेत्र, जोता हुआ खेत। २ वप्र, मट्टोका टीला।

धूलिगुच्छक (सं० पु०) धूलीनां गुच्छक इव, इवार्थे कन्। पटवासक, अबीर जो होलीमें डाला जाता है।

धूलिजङ्घ (सं० पु०) काक, कौवा।

धूलिध्वज (सं० पु०) धूलिरेव ध्वजो यस्य। पवन, वायु, हवा।

धूलिपुष्पिका (सं० स्त्री०) धूलिः परागस्तत् प्रचुरं पुष्पं यस्याः, कापि अत इत्वं। केतकी पुष्प। इसमें बहुत पराग रहता है, इसीसे इसका नाम धूलिपुष्पिका हुआ है।

धूलिया—१ बम्बईके खानदेश जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २०° ३८' से २१° ८' उ० और देशा० ७४° २६' से ७५° पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७६० वर्गमील और लोकसंख्या लगभग १०४८५२ है। इसके उत्तरमें सोरदेल, पूर्वमें पवोरा और अमलनेर, दक्षिणमें नासिक जिला तथा पश्चिममें पिम्पलनेर है। यहां बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं जहां पांजड़ा और बोरी नदो प्रवाहित हैं।

यह स्थान उर्वरा और स्वास्थ्यकर है। दक्षिणमें जलका कुछ अभाव है। यहांकी आय दो लाख रुपयेसे अधिककी है। वार्षिक वृष्टिपात २२ इञ्च है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २०° ५४' उ० और देशा० ७४° ४७' पू० चालीसगांव रेलवे ष्टेशनसे ३५ मील उत्तर पांजड़ा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २४७२६ है जिसमेंसे १८७६६ हिन्दू, ५३२३ मुसलमान और ४३५ जैन हैं।

यह नगर पुरातन और नूतन इन दो भागोंमें विभक्त है। पुरातन अंशमें अधिकांश दरिद्र मनुष्योंका वास है और नूतन अंशमें अच्छी अच्छी सड़कें और अट्टालिकायें हैं। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें यह नगर बहुत नगण्य समझा जाता था और लेलिंग वा फतेहाबाद उपविभागके अधीन था। बाद निजामके आधिपत्यके समय लालिं दौलताबादमें मिला दिया गया।

प्रवाद है, कि गोली राजाने यहां एक दुर्ग बनाया जिसका संस्कार मुगल-शासन कर्त्ताओंके समयमें हुआ था। हिन्दूराजाओंके हाथसे यह नगर पहले बरारके अधिपति, पीछे मुगल, निजाम और सबसे अन्तमें १७९५ ई०को महाराष्ट्रोंके हाथ आया। १८०३ ई०के भीषण दुर्भिक्षमें तथा होलकरके उत्पातसे यहांके अधिवासिगण नगर छोड़ दूसरो जगह चले गये थे। दूसरे वर्ष बालाजी बलवन्तने बहुत कोशिश करके यहां घर बसाये। उन्होंने धूलिया नगरमें कचहरी स्थापित कर कुछ काल यहां राज्य किया। पीछे १८१८ ई०में यह स्थान वृटिश गवर्नमेण्टके अधीन हुआ। उसी समयसे यहांकी लोकसंख्या धीरे धीरे बढ़ती जा रही है। शहरमें एक हाई स्कूल, एक शिल्प स्कूल, छः वर्नाक्यूलर स्कूल, २ अस्पताल, टेलिग्राफ और डाकघर हैं। इसके अलावा यहां राजस्वविभागके कार्यालय और दो सबोर्डिनेट जजकी अदालत है। १८६२ ई०में यहां म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय ७४४०० रु० है। प्रति मङ्गलवारको एक हाट लगती है जिसमें बहुतसे मनुष्य शस्यादि खरीदने और बेचनेको आते हैं।

धूलियान—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत जङ्गीपुर उपविभागका एक पल्ली ग्राम। यह अक्षा० २४° ४२' उ० और देशा० ८७° ५८' पू० भागीरथीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४९९० है। यहां धान,

करके अपने पिताका विवाह सत्यवतीसे होने दिया सत्यवतीका दूसरा नाम मत्स्यगन्धा था। यह जब क्वांरी थी, तभी उसे पराशरसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम द्वैपायन था। यही द्वैपायन महाभारतके प्रणेता महर्षि-श्रेष्ठ वेदव्यास हुए। सत्यवतीके गर्भसे शान्तनुको दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद थे। चित्राङ्गद युवावस्थाके पूर्वही एक गन्धर्व द्वारा मारे गये। विचित्रवीर्य राजा हुए। इन्होंने कौशल्या-गर्भसे उत्पन्न काशिराजकी दो कन्याओं अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। कुछ दिन पीछे निःसन्तान अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। तब सत्यवतीने देखा कि सन्ताना भावसे यह वंश लुप्त हो जायगा।

इस कारण सत्यवती बहुत चिन्तित हुई और उन्होंने अपने पुत्र द्वैपायन वेदव्यासका स्मरण किया। स्मरण करनेके साथ ही व्यासदेव उस जगह पहुंच गये और बोले-माता मुझे किसलिये स्मरण किया है? तब सत्यवतीने कहा—पुत्र! तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य बिना कोई संतान छोड़े चल बसा है। तुम उसके क्षेत्रमें पुत्र उत्पन्न करो। इस पर द्वैपायन सहमत हो गये और उन्होंने मातासे कहा, 'मैं आपके आज्ञानुसार धर्मका उद्देश करके आपका अभिप्राय पूर्ण करूंगा। किन्तु आपकी पुत्रवधू न्यायके अनुसार संवत्सर व्रतका अनुष्ठान करें जिससे वे विशुद्ध हो जांय। क्योंकि व्रतानुष्ठान किये बिना कोई कामिनी मेरे समीप नहीं आ सकती है।

तब सत्यवतीने कहा, 'राजमहिषीगण जिससे अभी तुरंत गर्भवती हो जांय, वैसा उपाय करो। राज्यमें राजाके नहीं रहनेसे प्रजा अनाथ हो कर विनष्ट हो जायगी; देवगण राज्यसे भाग जायंगे और राज्यमें अराजकता फैल जायगी, इसलिए तुम फौरन ही गर्भधारण करो। उस गर्भजात बालककी भीष्म संवर्द्धित करेंगे।' व्यासने कहा, यदि शीघ्र ही पुत्र लेना चाहती हो, तो महिषीगण मेरी विरूपताको सहन कर ले यही उनका परम व्रत होगा। इतना कह कर व्यासदेव अन्तर्हित हो गये। तब सत्यवती अपनी पुत्रवधूके पास जा कर बोली, 'हे सुश्रोणि! देवराज सरीखा पुत्र प्रसव करो जो हमारे इस गुरुतर राज्यभारके वहन कर सके।'

यथासमय जब कौशल्या ऋतुस्नाता हुई, तब सत्यवतीने उन्हें सुसज्जीकृत शय्या पर बैठा कर कहा, 'हे पुत्री! तुम्हारे एक देवर हैं, आज रातको वे तुम्हारे पास आयेंगे, तुम अप्रमत्त हो कर उनकी प्रतीक्षा करना।' अम्बिका सासकी यह बात सुन कुरुवंशीय प्रधान पुरुषोंके नाम ले कर शय्या पर पड़ रहीं। जब सब दीप घरमें जल ही रहे थे कि वेदव्यास अम्बिकाके घर आ पहुंचे। अम्बिकाने उनका कृष्णवर्ण, पिङ्गल जटाजूट, बड़ी बड़ी दाढ़ी और चमकीली आंखें देख अपनी आंखें मूंद लीं। द्वैपायनने माताके प्रियानुष्ठानके लिये अम्बिकाके साथ समागम किया, किन्तु अम्बिका डरके मारे उन्हें देख न सकीं। पीछे जब व्यास घरसे बाहर निकले, तब माताने उनसे पूछा, 'हे पुत्र! क्या इस वधूसे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा?' इस पर व्यासने कहा, 'इसके गर्भसे अयुत नाग सदृश बलवान्, विद्वान्, राजर्षिश्रेष्ठ और अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होगा और उस महात्माके एक सौ पुत्र होंगे, किन्तु वह अपनी माताके दोषसे अन्धा होगा।' यथा समय अम्बिकाने वैसा ही अन्ध पुत्र प्रसव किया। इन्हींका नाम धृतराष्ट्र था। धृतराष्ट्र जन्म हीके अन्धे निकले, इस कारण वेदव्यासने अम्बालिकाके साथ नियोग किया जिससे पाण्डुकी उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासीके साथ नियोग होने पर विदुरका जन्म हुआ। अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्र राजा न हो सके। पाण्डु, जो छोटे थे राज्यसिंहासन पर बैठे। धृतराष्ट्रके साथ गान्धार-राजकी कन्या गान्धारीका विवाह हुआ। गान्धारीके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन ये ही चार प्रधान थे। एक दिन व्यासदेव क्षुधार्त्त हो गान्धारीके समीप पहुंचे। जब गान्धारी उन्हें अच्छी तरह सन्तुष्ट कर दिया, तब उन्होंने गान्धारीको वर दिया—तुम्हारे पतिके सदृश सौ पुत्र होंगे। पीछे यथासमय गान्धारीको धृतराष्ट्रसे गर्भ रहा। गर्भधारणके बाद दो वर्ष बीत चुकने पर भी कोई सन्तान उत्पन्न न हुई। इससे गान्धारीका समय बहुत कष्टसे बीतने लगा। इसी समय जब गान्धारीने सुना कि कुन्तीने तेजस्वी पुत्र प्रसव किया है, तब उन्होंने बिना किसीको कुछ कहे अपने गर्भमें आघात पहुंचाया जिससे लोहपिण्ड

अपरीक्षा कठिन मांसपेशी बाहर निकली। ज्यों ही गान्धारीने उसे परित्याग करना चाहा, त्यों ही वेदव्यास वहाँ आ पहुंचे और बोले 'क्यों तुम ऐसा अन्याय काम कर रही हो। मैंने जो वर तुम्हें दिया है, वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। अभी तुम घीसे भरे हुए एक सौ घड़े लाओ और उन्हें किसी गुप्त स्थानमें अच्छी तरह रख छोड़ो और ठंढे जलसे इस मांसपेशीको सिक्त कर डालो।' पीछे जलाभिषेक करते करते वह मांसपेशी विदीर्ण हो गई। उसका प्रत्येक खण्ड अङ्गुष्ठ पर्वप्रमाण का हो कर क्रमशः एक सौ एक खण्डोंमें विभक्त हुआ। बाद वे सब मांसपेशी-खण्ड घृतपूर्ण घड़ोंमें डाल कर गुप्त स्थानमें रख दिये गये। 'इन्हें दो वर्ष बाद खोलना' यह कह कर व्यासदेव अन्तर्हित हो गये। यथासमय उन सब मांसपेशीके खण्डोंमेंसे पहले दुर्योधनका जन्म हुआ। दुर्योधन जन्म लेनेके साथ ही गधेको नाईं रेंकने लगा और उस समय बहुत अमङ्गल दिखाई देने लगे। इस पर विदुर आदिने उस पुत्रको छोड़ देनेके लिये धृतराष्ट्रसे बार बार अनुरोध किया, किन्तु पुत्रस्नेहके वशीभूत हो कर धृतराष्ट्र उसे परित्याग कर न सके। बाद एक मासके अभ्यन्तर एक सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। गान्धारी जब गर्भके भारसे दुःखित थीं, उस समय एक वैश्या धृतराष्ट्रकी परिचर्यामें नियुक्त थी। उस वैश्यासे धृतराष्ट्रके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम युयुत्सु रखा गया। इन्होंने वैश्या और क्षत्रियके समागमसे जन्म ग्रहण किया था, इस कारण ये करण हुए थे। ज्येष्ठादि क्रमसे धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके नाम ये हैं—१ दुर्योधन, २ युयुत्सु, ३ दुःशासन, ४ दुःसह, ५ दुःशल, ६ दुर्मुख, ७ विविंशति, ८ विकर्ण, ९ जलसन्ध, १० सुलोचन, ११ विन्द, १२ अनुविन्द, १३ दुर्द्धर्ष, १४ सुबाहु, १५ दुष्प्रधर्षण, १६ दुर्मर्षण, १७ दुर्मुख, १८ दुष्कर्ण, १९ कर्ण, २० चित्र, २१ उपचित्र, २२ चित्राक्ष, २३ चारु, २४ चित्राङ्गद, २५ दुर्मद, २६ दुष्प्रधर्ष, २७ विवित्सु, २८ विकट, २९ सम, ३० ऊर्णनाभ, ३१ पद्मनाभ, ३२ नन्द, ३३ उपनन्द, ३४ सेनापति, ३५ सुषेण, ३६ कुण्डोदर, ३७ महोदर, ३८ चित्रबाहु, ३९ चित्रवर्मा, ४० सुवर्मा, ४१ दुर्विरोचन, ४२ अयोबाहु, ४३ महाबाहु, ४४ चित्रचाप, ४५ सुकुण्डल, ४६ भीमवेग, ४७ भीमबल, ४८ बलाकी, ४९ भीमविक्रम, ५० उग्रायुध, ५१ भीमशर, ५२ कनकायु, ५३ दृढायुध, ५४ दृढवर्मा, ५५ दृढक्षत्र, ५६ सोमकीर्त्ति, ५७ अनूदर, ५८ जरासन्ध, ५९ दृढसन्ध, ६० सत्यसन्ध, ६१ सहस्रवाक्, ६२ उग्रश्रवा, ६३ उग्रसेन, ६४ सेनानी, ६५ दुष्पराजय, ६६ अपराजित, ६७ पण्डितक, ६८ विशालाक्ष, ६९ दुराधन, ७० दृढहस्त, ७१ सुहस्त, ७२ वातवेग, ७३ सुवर्चा, ७४ आदित्यकेतु, ७५ बह्वाशी, ७६ नागदत्त, ७७ अनुयायी, ७८ निषङ्गी, ७९ कवची, ८० दण्डी, ८१ दण्डधार, ८२ धनुर्ग्रह, ८३ उग्र, ८४ भीमरथ, ८५ वीर, ८६ वीरबाहु, ८७ अलोलुप, ८८ अभय, ८९ रौद्रकर्मा, ९० दृढरथ, ९१ अनाधृष्य, ९२ कुण्डभेदी, ९३ विरावी, ९४ दीर्घलोचन, ९५ दीर्घबाहु, ९६ महाबाहु, ९७ व्यूढोरु, ९८ कनकाङ्गद, ९९ कुण्डज और १०० चित्रक। कन्याका नाम दुःशला था। धृतराष्ट्रने वैश्यागर्भजात युयुत्सुको छोड़ और सब पुत्र कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें महावीर भीमके हाथसे मारे गये। धृतराष्ट्रके अधिक नामक एक मन्त्रकुशल मन्त्री थे। इन्हींकी मन्त्रणा भारत-युद्धकी जड़ समझी जा सकती है। धृतराष्ट्र बहुत बलवान् थे। दस हजार हाथियोंका बल था।

महायुद्धके बाद जब इन्होंने सुना कि भीमके हाथसे ही पुत्र मारे गये, तब इन्होंने भीमको आलिङ्गन करना चाहा। श्रीकृष्णने अपामर्ष से लौहभीम इनको भेंट में दिया गया जिसे इन्होंने आलिङ्गनसे चूर चूर कर डाला था। जब लड़ाई सम्पूर्ण रूपसे समाप्त हो गई, तब पाण्डवोंने अश्वमेधयज्ञ करके राज्यभार ग्रहण किया और धृतराष्ट्र तपस्याके लिये वन चले गये। वहां का मास रहनेके बाद इन्होंने दावानलमें पत्नीके साथ प्राणत्याग किया। (महाभारत)

जैमिनी भारतमें धृतराष्ट्र नामक एक नागका उल्लेख देखनेमें आता है। यह धृतराष्ट्र नाग कद्रुका पुत्र था। इसके साथ पाण्डवोंकी दुश्मनी थी। जब अर्जुन अश्वमेधयज्ञका अश्वरक्षक हो कर मणिपुर गये थे उसी समय अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनने अश्वमेधका घोड़ा पकड़ा। इससे दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। इस युद्धमें अर्जुन आदि

प्रायः मरने मरने पर हो गये। पातालमें वासुकीनागके पास सञ्जीवन मणि थी। उलूपीके परामर्श और माताकी आज्ञासे बभ्रुवाहन उस मणिको लानेके लिये पाताल गये। उस सञ्जीवक मणिके स्पर्शसे ही अर्जुनादि होशमें आ जायेंगे, ऐसा उलूपीने कह दिया था। इधर धृतराष्ट्र नागने वासुकीको मणि देनेसे मना किया। सुतरां सर्पोंके साथ बभ्रुवाहनको भयङ्कर युद्ध करना पड़ा जिसमें सर्पगण परास्त हो कर भाग गये। वासुकीने हार मान कर बभ्रुवाहनको सञ्जीवकमणि दे दी। बाद धृतराष्ट्रने दुर्बुद्धि और दुःस्वभाव नामक अपने दो लड़कोंको इसका बदला लेनेके लिये अर्जुनसे लड़ने कहा। इस पर दोनों नागोंने रणक्षेत्रमें जा कर अर्जुनका मस्तक काट डाला और उसे ले कर महर्षि वकदाल्भ्यके वनमें फेंक दिया। इधर अर्जुनके शरीरमें मस्तक नहीं देख कर चारों ओर हाहाकार मच गया। तब श्रीकृष्णकी सहायतासे धृतराष्ट्रके दोनों पुत्र मारे गये और अर्जुनका छिन्न मस्तक भी जोड़ दिया गया। पीछे उस सञ्जीवकमणिके स्पर्शसे अर्जुन पुनर्जीवित हो गये। (जैमिनीभारत)

४ जनमेजयके ज्येष्ठ पुत्र। ५ बलि राजाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३।७४) ६ पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम। ७ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्व।

(विष्णुपु० २।१०।१५)

धृतराष्ट्री (सं० स्त्री०) धृतराष्ट्र-ङीष्। १ धृतराष्ट्रकी स्त्री। २ ७ सपत्नी, कश्यपऋषिकी पत्नी ताम्रासे उत्पन्न। ५ कन्याओंमेंसे एक।

धृतवत् (सं० त्रि०) धृत-मतुप् मस्य व। धारणकारी, ग्रहण करनेवाला।

धृतवर्मन् (सं० पु०) धृतं वर्म येन। १ गृहीत कवच, वह जो कवच धारण किये हो। २ भारतप्रसिद्ध त्रिगर्त्तके राजा केतुवर्माके पुत्र। इनके भाईका नाम सूर्यवर्मा था। जब अर्जुन अश्वमेध-घोड़ेके पीछे पीछे गये थे, तब उनसे साथ इनका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें इनके भाई केतुवर्मा और सूर्यवर्मा मारे गये थे। इनके मरनेके बाद धृतवर्मा अर्जुनके साथ कुछ समय तक लड़े, पीछे पराजित हो कर उन्होंने अर्जुनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

(भारत आश्व० ७४ अ०)

धृतव्रत (सं० त्रि०) धृतं व्रतं येन। १ गृहीत व्रत, जिसने व्रत धारण किया हो। (पु०) २ पुरुवंशीय जयद्रथके पुत्र राजा विजयका पौत्र।

धृतात्मन् (सं० त्रि०) धृत आत्मा येन। १ धैर्यान्वितचित्त, आत्माको स्थिर रखनेवाला, धीर। (पु० २ विष्णु।

धृति (सं० स्त्री०) धृ क्तिन्। १ धारण, धरने या पकड़नेकी क्रिया। २ तुष्टि, सन्तोष, तृप्ति। ३ धैर्य, मनको दृढ़ता, चित्तकी अविचलता। ४ विष्कम्भादिका अष्टम योगभेद, फलित ज्योतिषमें एक योग। इस योगमें जिसका जन्म होता है, वह बुद्धिमान्, सर्वदा सन्तुष्टचित्त, वाग्मिप्रवर, सुशील और विनयान्वित होता है। ५ सुख, सुख। ६ गौर्यादि षोडश मातृकाके मध्य मातृकाभेद, सोलह मातृकाओंमेंसे एक। मातृका देखो। ७ अष्टादशाक्षरा वृत्ति छन्दोमात्र, अठारह अक्षरोंके वृत्तोंको संज्ञा। इस छन्दके प्रतिपदमें १८ अक्षर होते हैं। इसके पाँचवें छठे और सातवें अक्षरमें यति होती है तथा इसके १, २, ३, ४ पाँचवां, ग्यारहवां, बारहवां, चौदहवां, पन्द्रहवां, सत्तरहवां, और अठारहवां अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं। ८ मानस-धारणाभेद।

धृतिको भी धारणा कहते हैं। जिस धारणा-शक्ति द्वारा मन प्राण और इन्द्रियां सर्वदा समाधानके बलसे उन्मार्गसे प्रतिनिवृत्त की जाती हैं उसीको सात्त्विकी धृति कहते हैं। जिस धारणा द्वारा फलाकाङ्क्षियोंका मन धर्म कामादिके ऊपर आसक्त वा अनुरक्त होता है उसका नाम राजसिक धृति है और जिस धारण विशेष द्वारा सर्वदा मनके शोक, भय, स्वप्न, विषाद, मत्तता, आदि उद्रिक्त हुआ करती हैं, वैसी धारणाको तामसिक धृति कहते हैं। ९ दक्षसुतारूप धर्मपत्नीभेद, दक्षका एक कन्या और धर्मकी पत्नी। (पु०) १० राजा जयद्रथके पौत्र।

(हरिवंश ३१ अ०)

११ मैथिल राजभेद, भागवतके अनुसार एक मैथिल राजा। १२ विश्वदेवभेद, एक विश्वदेवका नाम। १३ साहित्यदर्पणोक्त व्यभिचारी भावभेद, साहित्यदर्पणके अनुसार व्यभिचारी भावोंमेंसे एक। १४ गुरुत्वविशिष्ट वस्तुका पतनाभाव १५ विपुलाख्य विष्कुम्भ पर्वतस्थ वनभेद, एक जंगल जो विपुलाख्य विष्कुम्भ पर्वत पर माना जाता है।

नित्य द्रुपदको ले कर ऋषिके आश्रम पर जाया करते थे। यहां क्रमशः भरद्वाज पुत्र द्रोण और द्रुपदमें गाढ़ी मित्रता हो गई। राज श्रेष्ठ पृषतके मरनेपर द्रुपद राजा हुए। एक दिन जब द्रोण उनके पास गये, तब उन्होंने उनकी अवज्ञा की। इस पर द्रोणने बहुत दुःखित होकर कौरवों और पाण्डवोंकी अस्त्रशिक्षाका भार लिया। पीछे अस्त्र-विद्यामें उन्हें निपुण कर द्रोणने अर्जुनको इसका बदला चुकानेके लिये कहा। अर्जुन भी द्रुपदको बन्दी कर द्रोणाचार्यके पास लाये। तब द्रुपदने द्रोणाचार्यको आधा राज्य दे कर छुटकारा पाया। इस अपमानका बदला लेनेके लिये द्रुपदने याज और अनुयाज इन दो ऋषिकुमारोंकी सहायतासे एक यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें धृष्टद्युम्न अग्निशिखाकी नाईं उज्ज्वल, सुन्दर किरीट, धनुर्बाण, वर्म, खड्ग और चर्म द्वारा अलङ्कृत हो दिव्यरथ पर चढ़े हुए अग्निसे निकले। इनकी उत्पत्तिके समय देववाणी हुई कि पाञ्चालोंका यशस्कर, भयानक यह राजपुत्र आप लोगोंके शोकका नाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। यही बालक द्रोणका वध करेगा।

कौरव और पाण्डवमें जब लड़ाई छिड़ी, तब ये पाण्डवकी ओरसे एक प्रधान सेनानायक हो कर लड़े थे। द्रोणाचार्य जिस समय अपने पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्युकी बात सुन कर अपना शरीर त्याग करनेके लिये योगमें मग्न थे उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य पर चढ़ाई कर उनका सिर काटा था। किन्तु महाभारतमें साफ साफ लिखा है, कि धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका सिर काटा था, इसीसे अश्वत्थामाने इसका बदला चुकानेके लिये खूब चेष्टा की थी। अन्तमें भारत-युद्धके बाद जब ये पाण्डवके घरमें सोये हुए थे, तब अश्वत्थामाने भी अपने पिताका बदला लेनेके लिये इनका सिर काट लिया था।

धृष्टधी (सं० स्त्री०) धृष्टबुद्धि, कठोर स्वभाव।

धृष्टमानिन् (सं० त्रि०) उच्चाभिमानी, घमंडी।

धृष्टरथ (सं० पु०) नृपभेद, एक राजा।

धृष्टशर्मन् (सं० पु०) श्वफल्कके पुत्र, अक्रूरका एक भाई।

धृष्टा (सं० स्त्री०) धृष्यते स्मेति धृष अभिभवे क्त, ततः टाप्। असती स्त्री, कुलटा नारी।

धृष्टि (सं० त्रि०) धृष-क्तिच्। १ प्रगल्भ, चतुर, होशियार। (पु०) २ हिरण्यकशिपुके बड़े भाई हिरण्याक्षका एक पुत्र। ३ दशरथके एक मन्त्रीका नाम। ४ यज्ञिय उपदेशरूप पात्रभेद, यज्ञका एक पात्र।

धृष्टीक (सं० पु०) कार्त्तवीर्य अर्जुनके पुत्र।

धृष्णज् (सं० त्रि०) धृष्णोतीति धृषन-जिङ्। (स्वपितृ-षोर्नजिङ्। पा ३।२।१७२) इति सूत्रे 'धृषेश्च' इति वार्त्तिकोक्तेर्नजिङ्। १ निर्लज्ज, लज्जाहीन, बेहया।

धृष्णता (सं० स्त्री०) धृष्टता।

धृष्णत्व (सं० पु०) १ सात्वतवंशीय भजमानके एक पुत्रका नाम। २ धृष्टता।

धृष्णि (सं० पु०) धर्षति अन्धकारं अभि-भवति इति धृष-बाहुलकात् नि, स च कित्। किरण।

धृष्णु (सं० त्रि०) धृष्णोतीति धृष-क्नु। (त्रसिगृधि धृषिक्षिपेः क्नुः। पा ३।२।१४०) १ धृष्ट। २ प्रगल्भ, उद्धत। ढीठ (पु०) ३ कम्बिका, बाँसकी टहनी। ४ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम। ५ सावर्णि मनुके एक पुत्र। ६ वैवस्वत मनुके एक पुत्र। (हरिवंश १० अ०) सात्वतवंशीय कुकुरसुत नृपभेद, सात्वत वंशके राजा कुकुरके एक पुत्र। ८ पितामहके पुत्र कविके एक लड़केका नाम। (भा० अनु ८५ अ०)

वैदिक प्रयोगकी जगह इस शब्दके बाद सुप् होनेसे 'याच् हो जाता है, तब धृष्णुया ऐसा रूप हो जायगा।

धृष्णुक (सं० पु०) वैवस्वत मनुवंशके एक राजाका नाम।

धृष्णुषेण (सं० त्रि०) पराभिभवनशील सेनोपेत।

(ऋक् ३।५४।१५)

धृष्णोजस् (सं० पु०) राजा कार्त्तवीर्यके एक पुत्र।

धृष्य (सं० त्रि०) धृष्यते इति कर्मणि क्यप्। धर्षणीय, धर्षण योग्य, दमन करने काबिल।

धेंकानल—उड़ीसाके अन्तर्गत एक छोटा करद मित्र राज्य। यह अक्षा० २०° ३१' से २१° ११' उ० और देशा० ८५° १०' से ८६° २' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १४६३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २७३६६२ है। इसके उत्तरमें पाल-लहरा और केउञ्झर राज्य, पूर्वमें कटक विभाग और आठगढ़ राज्य, दक्षिणमें तिगड़िया और हिन्दोल

धेनुमत् (सं॰ क्लो॰) धेनु विद्यतेऽस्य मतुप्। १ धेनुस्वामी, गायका मालिक। २ भरतवंशीय देवद्युम्नकी पत्नी।

धेनुमती (सं॰ स्त्री॰) १ गोमती नदी। २ भरत वंशीय देवद्युम्नकी भार्या।

धेनुमुख (सं॰ पु॰) गोमुख नामक बाजा।

धेनुमूल्य (सं॰ क्लो॰) धेनूनां मूल्यं ६-तत्। प्रायश्चित्त विषयमें धेनुदानका निष्क्रयरूप मूल्यभेद। प्रायश्चित्त करनेमें धेनुदान करना होता है। जो धेनुदान करनेमें असमर्थ हो, उसे धेनुका मूल्य देना पड़ता है। मूल्यके विषयमें प्रायश्चित्त-तत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

"प्राजापत्यमशक्तो धेनुं दद्यात् पयस्विनीं।
धेनोरभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः॥"
(प्रायश्चित्ततत्त्व)

जो प्राजापत्य-व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें धेनु-दान करना चाहिये। यदि धेनुका अभाव हो, तो इसका उपयुक्त मूल्य देना होता है।

धनवानोंके लिये पञ्चकार्षापण अर्थात् अस्सी पण या ६४०० कौड़ी, मध्यमोंके लिये तीन कार्षापण और गरीबोंके लिये एक कार्षापण धेनुका मूल्य बतलाया है। केवल यही नहीं, वरं उनका जो कुछ मूल्य हो, उसे भी दान करना होता है। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

धेनुभव्या (सं॰ स्त्री॰) भव्या धेनुः। 'धेनोर्भव्यायां' इति सूत्रेण परनिपातः, ततो सुमुच्। भविष्यत् धेनु, वह गाय जो पीछे होगी।

धेनुष्टरी (सं॰ स्त्री॰) अतिशयेन धेनुः-तरप्, ततो ङीप्, सुट् षत्वञ्च। प्रशस्ता धेनु, अच्छी गाय।

धेनुष्या (सं॰ स्त्री॰) धेनु-युक्, यत् ततो निपातनात् साधुः। (संज्ञायां धेनुष्या। पा ४।४।८९) बन्धकस्थिता गाभी, वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेनुहित (सं॰ त्रि॰) जिसने अपनी गायका दूध दूसरेको देनेका वचन दिया है और इस कारण वह उसे अपने काममें नहीं लाता।

धेमात—निर्दिष्ट उच्च संख्या।

धेय (सं॰ त्रि॰) धीयते इति धा कर्मणि यत्। १ धार्य, धारण करने योग्य। २ पोष्य, पोषण करने योग्य। धे यत्। ३ पेय, पीनेयोग्य, पीनेका। भावे यत्। (क्लो॰) ४ धारण। ५ पोषण। ६ पान।

धेर—एक अनार्य जाति। इस जातिके लोग पञ्जाब, युक्त-प्रदेश, जयपुर आदि भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोंमें रहते और कृषि कार्य करते हैं। ये लोग मरे चौपायों आदि-का मांस खाते हैं और उनका चमड़ा साफ कर चमारोंके हाथ बेचते हैं। राजपूतानेके धेर मंगनी अथवा अरेन् किसी प्रकारके सूअरका मांस नहीं खाते। नगरके बाहर जहां ये लोग वास करते हैं उसे धेरवारा कहते हैं।

धेरा (हिं॰ वि॰) भेंगा।

धेलचा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका सिक्का जो आधे पैसे-के बराबरका होता है।

धेला (हिं॰ पु॰) अधेला देखो।

धेली (हिं॰ स्त्री॰) आधा रुपया, अठन्नी।

धेष्ठ (सं॰ त्रि॰) अतिशयेन धाता, इष्ठन् तृणो लोपे गुणः। धारकतम, बहुत धारण करनेवाला।

धैंताल (हिं॰ वि॰) १ चपल, चंचल। २ उजड्ड।

धैनव (सं॰ पु॰ स्त्री॰) धेनोरपत्यं इति उत्सादित्वात् अञ्। १ धेनुका अपत्य, गायका बच्चा। २ गायसे उत्पन्न।

धैना (हिं॰ स्त्री॰) १ स्वभाव, आदत। २ काम, धंधा।

धैनुक (सं॰ क्लो॰) धेनूनां समूहः ठक्। (अचित्तहस्ति धेनोष्ठक्। पा ४।२।४७) १ धेनु समूह, गायका झुण्ड। २ स्त्रियोंका करणभेद।

धैर्य (सं॰ क्लो॰) धीरस्य भावः कर्म वा धीर ष्यञ्। धीरता, चित्तकी स्थिरता, धीरज।

सङ्कट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर चित्तकी स्थिरताका नाम धैर्य है। २ अप्रमाद, अनवधानताका अभाव। ३ अव्याकुलत्व, आतुर न होने-का भाव, हड़बड़ी न मचानेका भाव, मन्न। ४ निर्वि-कार-चित्तत्व, चित्तमें उद्वेग उत्पन्न होनेका भाव।

विकारका कारण उपस्थित होने पर भी चित्तका विकृत न होनेका नाम धीर है। इसी धीरके भावको धैर्य कहते हैं। ५ नायक नायिकाका गुणभेद। ६ पुरुषका गुणभेद। साहित्य दर्पणमें लिखा है, कि अत्यन्त भयानक विघ्न उपस्थित होने पर भी व्यवसायसे कुछ भी विचलित नहीं होनेका नाम ही धैर्य है। अर्थात् कितनी ही विघ्न बाधाएं क्यों न आ पड़े, अवलम्बित विषयसे तनिक भी आतुर न होना चाहिये, इसीका नाम धैर्य है।

फलदार पेड़ों पर रस्सी लगी हुई लकड़ी। यह इसलिये लगाते हैं कि नीचेसे रस्सी खींचनेसे खटखट शब्द हो और चिड़ियां दूर रहें, खटखटा। ६ प्रमाद, भूल, चूक। ७ अज्ञान, जानकारीका अभाव। ८ भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या आयोजन, असत्‌वस्तु, माया। ९ असत्‌धारणा, भ्रम, भ्रान्ति, भूल। १० लकड़ीमें पयाल कपड़ा आदि लपेट कर बनाया हुआ पुतला। किसान लोग इसे चिड़ियोंको डरानेके लिये खेतमें खड़ा करते हैं, बिजूखा, भुकभाक। ११ बेसनका एक पकवान। इसके अन्दर नरम कटहल, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखनेसे कबाबका भ्रम होता है।

धोखेबाज (हिं॰ वि॰) धूर्त्त, कपटी, छली, धोखा देनेवाला।

धोखेबाजी (हिं॰ स्त्री॰) धूर्त्तता, कपट, छल।

धोटा (हिं॰ पु॰) ढोटा देखो।

धोड़ (सं॰ पु॰) धोरति चातुर्य्येण गच्छतीति, धोर गति-चातुर्य्ये अच् रस्य डत्वं। सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप।

धोड़प—बम्बईके नासिक जिलान्तर्गत चांदोर तालुकका एक दुर्ग। यह अक्षा॰ २०°२३´ उ॰ और देशा॰ ७४° २´ पू॰, चांदोर पहाड़ पर अवस्थित है। इस दुर्गमें अनेक कन्दरायें और अट्टालिकाओंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। इसके सिरे पर वैलपुर नामक मुसलमानकी एक समाधि है। १६३५ ई॰में मुगल-सरदार अलीवर्दी-खाँने यहां घेरा डाला था। पीछे यह पेशवाके हाथ लगा। १७६८ ई॰में रघुनाथराव अपने भतीजे मधोरावसे इसी दुर्गमें परास्त हुए थे। जब यह पेशवाके अधिकारमें था, उस समय होलकरके दो कर्मचारियोंने इसे अच्छी तरह लूटा था। १८१८ ई॰में यह दुर्ग बिना किसी खून खराबीके अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

धोतर (हिं॰ पु॰) गाढ़े की तरहका एक मोटा कपड़ा, अधोतर।

धोती (हिं॰ स्त्री) १ नौ दश हाथ लम्बा और दो ढाई हाथ चौड़ा कपड़ा। यह पुरुषका कटिसे ले कर घुटनोंके नीचे तकका शरीर और स्त्रियोंका प्रायः सर्वाङ्ग ढाकनेके लिये कमरसे लपेट कर खोंसा या ओढ़ा जाता है। २ योगकी एक क्रिया। ३ एक अंगुल चौड़ी और चौवन अंगुल लम्बी कपड़ेकी धज्जी। इसे हठयोगकी धोतिक्रियामें मुंहसे निगलते हैं। (पु॰) ४ एक प्रकारका बाज। इसकी मादाको बेसरा कहते हैं।

धोतियर्थाना—मध्य प्रदेशके धार राज्यका अधीनस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदारकी उपाधि ठाकुर है। ये धारके राजाको वार्षिक २५०) रु॰ कर देते हैं। यहां विशेष कर भील जातिके लोग रहते हैं। सरदारके अधीन नौ ग्राम हैं।

धोदरअली—आसाम राज्यके अन्तर्गत एक सदर रास्ता। यह ११७½ मील विस्तृत ब्रह्मपुत्रके किनारे होता हुआ गोलाघाट जिलेकी धानेश्वरी नदीके निकट आसाम-ट्रंक-रोडमें मिल गया है। अहोम वंशके राजत्वकालमें यह रास्ता तैयार किया गया है।

धोन—मन्द्राजके कर्नूल-जिलान्तर्गत रामलकोट तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा॰ १५° २४´ उ॰ और देशा॰ ७७° ५३´ पू॰के मध्य अवस्थित है। रेलवे स्टेशन होनेके कारण यह ग्राम नगराकार हो गया है।

धोन (हिं॰ क्रि॰) १ जलसे स्वच्छ करना, पखारना। २ दूर करना, हटाना, मिटाना।

धोपापपुर (धौतपापपुरका अपभ्रंश)—एक नगर। यह सुलतानपुरसे ८ कोस दक्षिण गोमतीके किनारे अवस्थित है। यह स्थान पहले बहुत समृद्धशाली था। अभी यहां कुछ भी नहीं है, केवल टूटी फूटी ईंटें आध कोस तक फैली हुई हैं। यह स्थान हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थ माना जाता है।

धोब (हिं॰ पु॰) धुलावट, धोए जानेकी क्रिया।

धोबल—गढ़वाल-निवासी एक श्रेणीके ब्राह्मण।

धोबा—प्रतापगिरि नामक पर्वतका एक शृङ्ग। यह मन्द्राजके अन्तर्गत गञ्जाम जिलेमें अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ४१६६ फुट है। यह भारतवर्षके त्रिकोणमितिक परिमाणका एक अड्डा है।

धोबा—पटना विभागके अन्तर्गत सबेरम जिलेकी एक छोटी नदी।

धोबाखाल—आसामके गारो जिलेका एक ग्राम। यह सोमेश्वरी नदीके किनारे अवस्थित है। इसके निकट पथरिया कोयलेकी खान है।

रन नामक दलदलमें मिल जाती है। इसके पूर्व भागमें साबरमती नदीके किनारेका भूभाग वृक्षोंसे घिरा है, कि दक्षिण-पश्चिम भागमें एक भी वृक्ष देखनेमें नहीं आता। यहां साबरमती नामकी केवल एक नदी बहती है। वार्षिक वृष्टिपात ३४ इञ्च है।

२ उक्त धोलका उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४४' उ० और देशा० ७२° २७' पू० अहमदाबाद शहरसे २२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १४८७१ है।

यह गुजरातका एक प्राचीन नगर है। आज भी बड़ी बड़ी दीवार, मसजिदें और मन्दिरादिके भग्नावशेष नगरको अतीत कीर्त्तिका परिचय दे रहे हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि सूर्यवंशीय कनकसेन, अणहिलवाड़पति सिद्धराजकी माता मैनालदेवी, बघेल वंशके स्थापयिता वीरधवल और पाण्ड्य-नरपतिगण यहां रहते थे। मुसलमानोंके अधिकारके समय दिल्लीसे कई एक शासनकर्त्ता इस नगरमें आ कर रहने लगे थे। १७४६ ई०में महाराष्ट्रोंने इस स्थान पर अधिकार जमाया। १७५७ ई०में यह नगर गायकवाड़के हाथ लगा। पीछे १८०४ ई०में महाराष्ट्रोंने पुनः इसे जीता और १८५७ ई०में अंगरेजोंको सौंप दिया। यहांके अधिवासी अपनेको कसबाती अर्थात् नागरिक बतलाते हैं। १२९८ ई०में जब अलाउद्दीन् खिलजीने बघेलोंको अणहिलवाड़से मार भगाया था, तब उनके साथ जो सब सैनिक पुरुष आये थे, वर्त्तमान अधिवासिगण उन्हींके वंशधर हैं। यहांके शिल्पजातमें साड़ी बहुत मशहूर है और अहमदाबाद जिलेके मध्य यही सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। १८५६ ई०में यहां म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। नगरकी आय लगभग १५००० रु०) की है। यहां एक सब-जजकी अदालत, अस्पताल, सात अंगरेजीके और पांच हिन्दीके स्कूल हैं।

धोवन (हिं० पु०) १ धोवनका भाव, पखारनेकी क्रिया। २ वह पानी जिसमें कोई वस्तु धोई गई हो।

धोहा (हिं० पु०) गुड़ आदिका सूखा हुआ लोंदा, भिल्ला, भेली।

धौंक (हिं० स्त्री०) अग्नि पर पहुंचाया हुआ वायुका आघात। २ गरमीकी लपट, ताप, लू।

धौंकना (हिं० क्रि०) १ अग्निको प्रज्वलित करनेके लिए उस पर वायुका आघात पहुंचाना। २ दण्ड आदि लगाना। ३ ऊपर डालना, सहन कराना।

धौंकनी (हिं० स्त्री०) १ लोहार सोनार आदिकी आग फूंकनेकी नली जो बांस या धातुकी बनी होती है। २ भाथी।

धौंकलसिंह—१ हिन्दीके एक कवि। ये जातिके बैस क्षत्रिय और न्यावां जिला रायबरेलीके रहनेवाले थे। इनका जन्म १८६० सम्वत्में हुआ था। रमलप्रश्न आदि छोटे छोटे ग्रन्थ इनके बनाये पाये जाते हैं।

२ जोधपुरके राजा भीमसिंहके पुत्र। इनका जन्म भीमसिंहके मरनेके बाद हुआ था। भीमसिंहकी मृत्युके बाद मानसिंह वहांके अधीश्वर बन गए। पोकरणके जागीरदार सवाईसिंहके हृदयमें पितृहिंसाका वैर जागरूक था। उन्होंने यह घोषणा कर दी, कि मृत महाराज भीमसिंहकी रानी गर्भवती है, उनके गर्भसे यदि पुत्र होगा, तो न्यायतः इस राज्य पर उनका अधिकार है। अतएव वह राजा बनाया जायगा। इस प्रकार घोषणा करके सवाईसिंहने कतिपय सामन्तोंको अपने पक्षमें कर लिया। एक दिन यह प्रस्ताव महाराज मानसिंहके सामने भी किया गया। महाराजने उसे कुछ मतलबका न समझ कर स्वीकृत कर लिया। कुछ दिनोंके बाद महारानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महारानीने समझा कि यह यह पुत्र यहां रहेगा तो मानसिंह उसे मार डालेगा। यही सोच कर उन्होंने सवाईसिंहके यहां पोकरणमें उस लड़केको भेज दिया। दो वर्षके बाद मानसिंह जब इसका पता लगा, तब उन्होंने कहा कि यदि वह सचमुच महाराजका पुत्र होगा तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेमें कुछ सन्देह नहीं। रानीसे पूछने पर उन्होंने यही कह दिया कि यह पुत्र मेरा नहीं है। यह सुन कर मानसिंहका बोझ बहुत कुछ हलका हुआ, परन्तु सवाईसिंह जिस प्रतिहिंसाका बदला लेना चाहते थे उनका वह मनोरथ सिद्ध न हुआ। उन्होंने धौंकलसिंहको खेतड़ीके सामन्त अभयसिंह भाटीके यहां भेज दिया और जयपुरके महाराज जगत्सिंहको मानसिंहके विरुद्ध उभाड़ा। महाराज भीमसिंहके जीते जी कृष्णकुमारीका विवाह उन्हींसे निश्चित हुआ था। अब

धौतवली (सं० स्त्री०) धौताञ्जनी।

धौतमूलक (सं० पु०) चीन राजभेद, चीन देशके एक राजाका नाम। (भारत उद्योग ७२ अ०)

धौतय (सं० क्ली०) धौतमिव रौप्यमिव वर्णं याति या-क। सैन्धव, सेंधा नमक। इसका रंग चाँदी सा सफेद होता है, इसीसे इसका नाम धौतय हुआ है।

धौतरि (सं० त्रि०) धूतमेव धौतं कम्पनमृच्छति ऋ-कि। कम्पनकारक, कँपानेवाला।

धौतशिल (सं० क्ली०) धौता शिला यस्य। स्फटिक, बिल्लौर।

धौताञ्जनी (सं० स्त्री०) त्वष्टुट शिल्पभेद, एक प्रकारकी अञ्जनी।

धौति (सं० स्त्री०) धाव-क्ति। १ शुद्ध। २ विशुद्ध। ३ हठ-योगकी एक क्रिया जो शरीरको भीतर और बाहरसे शुद्ध करनेके लिये की जाती है। इसका विषय योगशास्त्र-की घेरण्ड संहितामें इस प्रकार लिखा है—धौति चार प्रकारकी है—अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूल-शोधन। इनमेंसे अन्तर्धौतिके भी चार भेद हैं—वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत।

वातसार—अपना मुखकाकचञ्चु सरीखा करके पुनः पुनः वायुपान करना होता है और उस वायुको उदरके मध्य सञ्चालन कर मुख द्वारा उसे निकालना होता है। यह वातसार गोपनीय है और देह निर्मलका प्रधान उपाय है।

वारिसार—इसमें मुख द्वारा आकण्ठ परिपूर्ण कर जल पीना होता है। पीछे उस जलको उदरसे नीचेको ओर हो कर विरेचन करना होता है। यह वारिसार प्रधान धौति है। जो यत्नपूर्वक इसका साधन करते, उनको मलदेह शोधित हो कर देवदेह होती है।

अग्निसार—इसमें श्वासको रोक कर नाभिको एक-सौ बार मेरुदण्डमें संलग्न करना होता है। इस धौति द्वारा उदरका आमादि दोष विनष्ट हो कर आयुकी वृद्धि होती है। यह धौति अत्यन्त गोपनीय, देवताओंका दुर्लभ और योगियोंकी योगसिद्धिका कारण है। इस धौतिके सफलतासे भी मलदेह निर्मल हो कर देवताके सदृश देह हो जाती है।

बहिष्कृत—काकमुद्रा अर्थात् कौवेकी चोंच सा अपना मुख करके वायु द्वारा उदरपूर्ण करना होता है और चार दण्ड तक उस वायुको उदरमें रख कर नीचे-को ओर चालित करना पड़ता है। पीछे नाभिदेश तक जलमें मग्न हो कर नाड़ी बहिष्कृत पूर्वक जब तक सभी मल सम्पूर्ण रूपसे साफ न हो जाय, तब तक हस्त द्वारा उसे प्रक्षालित करते हैं। इस प्रकार प्रक्षालन करके फिर से उसे उदरमें रख देते हैं। यह धौति अत्यन्त गोपनीय है और देवताओंका दुर्लभ है। केवल इस धौति द्वारा ही देवदेह प्राप्त होती है। चार दण्ड पर्यन्त जब तक श्वास-रोध करनेमें समर्थ न हो, तब तक इस धौतिको परि-चालना न करनी चाहिये।

दन्तधौति पांच प्रकारकी है, यथा—दन्तमूल, जिह्वा-मूल, रन्ध्र, कर्णद्वार और कपालरन्ध्र।

दन्तधौति—खैरके रससे अथवा मट्टी द्वारा दन्तमूल-को इस प्रकार मलना चाहिये कि उसमें तनिक भी छेद रहने न पावे। इस प्रकार दाँत साफ करनेसे कभी दाँत नहीं गिरते।

जिह्वाधौति—तर्जनी, मध्यमा, और अनामिका इन तीन उँगलियोंको गलेमें डाल कर जिह्वामूल तक साफ करना चाहिये। इस प्रकार बारम्बार मार्जन करने-से कफदोषका निवारण होता है।

जिह्वामूलको बार बार मक्खन द्वारा दोहन करना चाहिये और लौहयन्त्र द्वारा जिह्वाका अग्र भाग खींच कर बाहर करना चाहिये। जो यत्नपूर्वक हमेशा सूर्योदय वा सूर्यास्तके समय इस प्रकारकी प्रक्रिया करते हैं, उनकी जिह्वा लम्बी होती है और जरामरण रोगादि नष्ट होते हैं।

रन्ध्रधौति—नाक द्वारा रन्ध्रके भीतर जल ले जा कर उसे मुख द्वारा बाहर निकाल देना चाहिये और शीत्कार द्वारा मुखमें जल ले कर उसे नासापुट-द्वारा नीचे फेंक देना चाहिए। यह धौति अत्यन्त गोपनीय है।

कर्णधौति—तर्जनी और अनामिका उँगली द्वारा कर्णकुहरको मलना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन मार्जन करनेसे शब्दान्तर श्रुत होता है।

कपालरन्ध्रधौति—दाहिने हाथके अङ्गुष्ठ द्वारा

अपाकरणको मलना होता है। ऐसा अभ्यास करनेसे कफदोषकी शान्ति, जठराग्निवृद्धि और नाड़ी निर्मल होती है। यह धौति प्रतिदिन निद्राभङ्गान्तमें, दिनान्तमें अथवा भोजनान्तमें करनी होती है।

धूम्रौति—धूम्रौति तीन प्रकारकी है। प्रथम—रक्ताक्त, हरिद्रारक्त अथवा वैतरण्यको मुख द्वारा उदरमें प्रविष्ट करते हैं। बाद कुछ काल तक उसे वहां परिचालन कर निकाल देते हैं। ऐसा करनेसे कफ, पित्त और क्लेद शुद्ध हो कर बाहर निकल जाता है। इस धौति द्वारा उदरमें कोई रोग रहनेसे वह निश्चय ही आरोग्य हो जाता है।

द्वितीय—आहारके बाद आकण्ठ पर्यन्त जलपान कर कुछ काल तक दृष्टिको ऊपरकी ओर किये वक्रभ्रमण करते हैं। प्रतिदिन यह धौति करनेसे कफ और पित्त नष्ट हो जाता है।

तृतीय—चार उंगलीके सूक्ष्म वस्त्रको धीरे धीरे मुखके भीतर डाल कर फिरसे उसे बाहर निकाल लेते हैं। इस धौति द्वारा गुल्म, ज्वर, प्लीहा और कुष्ठ आदि रोग आरोग्य हो जाते हैं, पित्तका नाश होता है और दिनों दिन तेजकी वृद्धि होती है।

मूलशोधन—जब तक मूलशोधन नहीं होता, तब तक वायुकी कुटिलता नहीं जाती। इसीसे सबके साथ मूलशोधन करना आवश्यक है। हरिद्राके मूल अथवा मध्यमाङ्गुलि द्वारा यत्नसे बार बार गुह्यदेशको साफ करना चाहिये। ऐसा करनेसे कोष्ठका काठिन्य, आम, अजीर्ण आदि विनष्ट होते हैं तथा कान्ति, पुष्टि और अग्नि प्रदीप्त होती है। (घेरण्डसंहिता)

धौती (सं॰ स्त्री॰) धूयते इति धाव-क्तिन्, स्वार्थे अण् ततो ङीप्। अवधान, करपात्र, कर्परी।

धौम्रकुमार (सं॰ क्ली॰) धूम्रकुमारमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। महाभारतके वनपर्वके अन्तर्गत उपाख्यानभेद।

धौमक (सं॰ पु॰) धूमे तत्प्रधानदेशे भवः धूमादित्वात् वुञ्। धूमप्रधान देशभेद।

धौमत (सं॰ स्त्री॰) रक्तशोथ, धूम्रवर्णता।

धौमायन (सं॰ पु॰) नामभेद, एक राजाका नाम।

धौमायनक (सं॰ त्रि॰) धौमायनेन निर्वृत्तः ततो वुञ्। धौमायन निर्वृत्तादि।

धौमीय (सं॰ त्रि॰) धूमेन निर्वृत्तादि, कृशाश्वादित्वात् छण्। धूमनिर्वृत्तादि।

धौम्य (सं॰ पु॰) धूमस्य अपत्यं गर्गादित्वात् यञ्। धूम ऋषिके पुत्र। ये युधिष्ठिरके पुरोहित थे। महाभारतमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

धौम्य देवलके भाई थे। उत्कोचक नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है, वहीं इनका आश्रम था। वहां ये रह कर कठोर तपस्या करते थे। चित्ररथने इन्हें पुरोहित बनानेके लिये पाण्डवोंको उपदेश दिया। उन्होंके उपदेशानुसार पाण्डवगण इनके पास गए थे और इन्हें उपयुक्त पात्र समझ कर उन्होंने ऋषिको अपना पुरोहित बनाया। इन्होंने नारदसे सूर्यका एक स्तोत्र पाया था, जिसे इन्होंने युधिष्ठिरको सिखाया था। इसी स्तवके प्रभावसे युधिष्ठिरने सूर्यसे थाली पाई थी।

२ सत्ययुगके एक ऋषि। सत्ययुगमें व्याघ्रपाद नामक एक ऋषि थे। इनके छोटे पुत्रका नाम धौम्य था। एक दिन ये और इनके बड़े भाई उपमन्यु खेलते खेलते किसी एक आश्रमको जा पहुंचे जहां इन्होंने एक गायको दूध काढ़ते देखा। दूध देख कर ये दोनों भाई अपनी माताके पास गये और दूध पीनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर माताने इन्हें प्रबोध दिया, "हे वत्स! महादेवकी उपासनाके बिना अभीष्ट वस्तु पानेकी कोई सम्भावना नहीं है।" धौम्य माताके महादेवके माहात्म्यादि सुन कर उनकी तपस्यामें लग गए। माताका उपदेश इनके लिए इष्ट मन्त्र था।

महादेवने इनकी तपस्यासे खुश हो कर वर दिया, "वत्स! तुम मेरे वरके प्रभावसे अजर, अमर, तेजस्वी और दिव्यज्ञानसम्पन्न होगे। तुमने सामान्य दुग्धाकाङ्क्षाके लिए माताके उपदेशसे मुझे पाया। अतएव तुम्हारी इच्छासे क्षीरसमुद्र तुम्हारे सामने आविर्भूत होगा और एक कल्पके बाद तुम मेरा सालोक्य पाओगे। आजसे मैं तुम्हारे इस आश्रममें स्थायी हुआ। जब कभी तुम इच्छा करोगे, तभी तुम मुझे इस आश्रममें देख सकते हो।" इस वरको पा कर ये सुखसे रहने लगे।

(महाभारत अनु॰)

३ एक ऋषिका नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे।

इनके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामके तीन शिष्य थे।

४ एक ऋषि जो तारारूपमें पश्चिम दिशामें स्थित है। इनका नाम महाभारतमें उपङ्गु, कवि और परिव्याधके साथ आया है।

धौम्र (सं० पु०) १ धूम्र एव स्वार्थे अण्। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। स्वार्थे अण्। २ धूम्रवर्ण, धुएंका रंग। (त्रि०) ३ धूम्र वर्णयुक्त, जो धुएं-रंगका हो। स्वार्थे अण्, (पु०) ४ धूम्रवर्णत्व, धूम्रवर्णका भाव। धूम्रो देवता ऽस्य अण्। ५ वास्तुस्थानभेद।

धौम्रायण (सं० पु० स्त्री०) धूम्रस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। धूम्र ऋषिका गोत्रापत्य।

धौर (सं० पु०) धववृक्ष, धौका पेड़।

धौर (हिं० पु०) एक चिड़िया, सफेद परेवा।

धौरा (हिं० वि०) १ श्वेत, सफेद, उजला। (पु०)२ धौका पेड़। ३ एक पक्षी। यह कुछ बड़ा और खुलते रंगका होता है। ४ सफेद रंगका बैल।

धौराकुञ्जर—मध्यभारतके इन्दोर एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके ठाकुर अर्थात् सरदार सिमरोला घाटसे सिगवर तक राजपथकी रक्षा करनेके लिये यहांका उपस्वत्व भोग करते हैं।

धौरादित्य (सं० पु०) शिवपुराणके अनुसार एक तीर्थका नाम।

धौराहर (हिं० पु०) ऊंची अटारी, धरहरा, बुर्ज।

धौराहरा—१ अयोध्याके अन्तर्गत फैजाबाद जिलेका एक शहर। यह फैजाबादसे लखनऊ जानेके रास्तेसे ९० मील और घाघरा नदीसे ४ मील दूर पर अवस्थित है। यहां मस्जिद वा मन्दिरादि कुछ भी नहीं हैं, केवल शहरके बाहरमें एक सुन्दर तोरण-द्वार विद्यमान है। यहांके लोगोंका कहना है, कि अयोध्यापति आसफ उद्दौला इसे निर्माण कर गये हैं। धौराहरसे घाघराके दूसरे किनारे एक प्रकाण्ड इमलीका वन है जिसमें महादेवका एक मन्दिर प्रतिष्ठित है। प्रवाद है, कि पहले वहां महादेव पृथ्वीके भीतर रहते थे। एक समय एक दल अयोध्या-यात्री संन्यासी अर्थोपार्जनकी कामनासे महादेवको बाहर निकालनेके लिये जमीन खोदने लगे। किन्तु जितना ही वे जमीन कोड़ते जाते उतना ही शिवलिङ्ग जमीनके भीतर प्रविष्ट होते गये, यह देख कर वे सबके सब डरके मारे वहांसे भाग गये। इस अलौकिक घटनाके स्मरणार्थ दो भक्त सौदागरोंने वहां पर पत्थरकी वेदी और प्राकारयुक्त एक शिवमन्दिर बनवा दिया। मन्दिर अभी भग्न दशामें पड़ा है।

२ अयोध्याके अन्तर्गत खेरी जिलेकी निवासन तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें कौरियाला, पूर्वमें दहावर, दक्षिणमें चौकानदी और पश्चिममें निघासन परगना है। भूपरिमाण २६१ वर्गमील है। मुसलमानोंसे कन्नौज फतह किये जानेके पहले यह परगना विख्यात महोवा सरदार आल्हा और ऊदलके राज्य भुक्त था। पीछे फिरोज शाहके समयमें यह गढ़ किलानवाके अन्तर्भुक्त हुआ। इस समय सम्भवतः धौरा-निवासी पाशि-वंशीय राजगण यहां राज्य करते थे। मुगल-साम्राज्यके अधःपतनके समय विसेनोंने इस पर अपना अधिकार जमाया। कुछ समयके बाद चौहान जाङ्गरेजने उन्हें मार भगाया और धौराहरको अपने अधिकारमें कर लिया। आज भी यह उन्हींके दखलमें है। यहांकी भूमि पल्वलमय है। प्रतिवर्ष सारा परगना चौका और कौरियाला नदीके जलसे डूबा करता है। कृषिकार्यकी अवस्था उत्कृष्ट नहीं है। चौका, कौरियाला और दहावर नदी हो कर वर्ष भरमें दश मास वाणिज्य व्यवसाय चलता है।

३ उक्त परगनेका एक शहर। यह अक्षा० २८° उ० और देशा० ८१° ५' पू० लखनऊसे ८० मील उत्तर और शाहजहानपुरसे ७३ मील पूर्व चौका नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। १८५७ ई०के सिपाही विद्रोहके समय शाहजहानपुर और महमदीसे भगाये-जानेके बाद अंगरेजोंने लखनऊ जानेके रास्ते पर धौराहरके राजाका आश्रय चाहा था। किन्तु राजाने विद्रोहियोंके भयसे उन्हें आश्रय देनेसे अस्वीकार किया था। पीछे इसी अपराधमें उन्हें प्राण दण्ड हुआ और उनका राज्य जब्त कर लिया गया। इस शहरमें एक चिकित्सालय और दो स्कूल हैं।

धौरित (सं० क्लो०) धोरितमेव अण्। अश्वगतिभेद, घोड़ेकी एक चाल, घोड़ेको पांच चालोंमेंसे एक।

तथा इधर उधर अनेक मन्दिरादिके चिह्न देखे जाते हैं।

इसी धौलगिरि पर्वतसे पत्थर निकाल कर ये सब मन्दिर बनाये गये हैं। कौशल्यागाङ्ग नामक सुवृहत् जलाशयके निकट अश्वत्थामा नामक धौलिका दक्षिण पूर्व भाग बहुत कुछ विख्यात है। इस अंशमें बौद्धधर्मके प्रचारक ख्यातनामा सम्राट् अशोकके अनुशासन लेख दक्षिणस्थ गिरिशृङ्गके उत्तरी पार्श्वमें उत्कीर्ण हैं। शृङ्गका पत्थर काट कर प्रायः १५ फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा स्थान परिष्कार और चिकना कर दिया गया है। उस चिकने स्थानके चार स्तवकोंमें अशोककी अनुशासनलिपि गहरे अक्षरोंमें खोदी हुई है। पहले स्तवकके अक्षर बड़े हैं सही, किन्तु अच्छी तरह खोदे हुए नहीं हैं। इसीसे बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि यह स्तवक दूसरे दूसरे स्तवकोंसे विभिन्न समयमें खोदा गया होगा। चौथे स्तवकके चारों ओर एक गहरी रेखा खींची हुई है। इनकी अक्षर सिलसिलेवारसे खोदे हुए हैं।

अनुसासनलिपिके ऊपरमें जो १६ फुट लम्बा और १४ फुट चौड़ा एक चत्वर है। इसके पश्चिम पार्श्वमें सुनिपुण भास्कर-निर्मित हस्तीके सम्मुखार्द्धकी प्रस्तरमय एक सुन्दर मूर्त्ति है। पर्वतके एक अखण्ड पत्थरको खोद कर यह हस्तिमूर्त्ति बनाई गई है। चत्वरके तीन ओर ४ इञ्च चौड़ा और १२ इञ्च लम्बा गहरा नाला है। प्रत्येक दोनों बगलमें भी उसी तरहका एक नाला है। केवल हाथी मूर्त्तिके सामने ३ फुट स्थानमें नाला नहीं है। इससे अनुमान किया जाता है कि काष्ठनिर्मित चन्द्रातप आदि बैठानेके लिये ये सब नाले प्रस्तुत किये गये होंगे।

यह हस्तिमूर्त्ति किसीके उपास्य देवता नहीं हैं। किन्तु प्रतिवर्ष ब्राह्मण लोग एक बार वहां जा कर गजानन देवको खुश करनेके लिये उस गजमुण्डमें सिन्दूर पोते और उसे स्नान कराते हैं।

अश्वत्थामा गिरिके चारों ओर असंख्य गुहाएं भग्नावस्थामें पड़ी हैं। कहीं कहीं मन्दिरादिकी दीवारोंके चिह्न मात्र देखनेमें आते हैं। अनुशासन-लिपिके ऊपरमें भी एक प्रकाण्ड भवनका भग्नावशेष दृष्टिगत होता है। यही सम्भवतः अनुशासन-वर्णित चैत्य होगा।

हस्तिमूर्त्तिके दक्षिणमें पांच गुहा हैं जिन्हें कोई पञ्च पाण्डव और कोई पञ्चगोस्वामी कहते हैं। इन पांच गुहाओंके अलावा और कितने गुहाओंके चिह्न देखनेमें आते, वे सब काल क्रमसे लुप्त हो गई हैं।

इन सब गुहाओंके सामने पत्थरके ऊपर अनेक छोटे छोटे गड्ढे देखनेमें आते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि इन सब गड्ढोंमें गुहावासिगण उखलीका काम करते और अनुशासनोक्त आयुर्वेदवित् संन्यासीगण उनमें औषध गुल्मादि पीसते थे। खण्डगिरिमें भी इस तरहके गड्ढे, देखे जाते हैं।

धौलिके अनुशासन लाट देशस्थ गिर्णरके और युसफजाइ देशस्थ अशोक-अनुशासनके समान हैं, केवल धौलिअनुशासनके आदि और अन्तमें दो अधिक अनुशासन खोदे हुए हैं, दूसरे किसी अनुशासनमें वैसा नहीं है।

इस अनुशासनमें अनेक चैत्य प्रभृतिके नामोल्लेख हैं। वे सब चैत्य शायद धौलि पहाड़के पास ही अवस्थित थे, उनमेंसे अधिकांश लुप्त हो गये हैं। धौलिके निकट ही कौशल्यागाङ्ग-दीर्घिकाके चतुःपार्श्व और मध्यवर्त्ती द्वीपमें अनेक भग्नस्तूप विद्यमान हैं। वे सब मन्दिरादि सम्भवतः अशोकके बहुत पीछे बनाये गये थे।

कौशल्या-गाङ्ग पुष्करिणी भी १२वीं शताब्दीमें गङ्गेश्वर अनङ्गभीमके समयमें तैयार की गई है, ऐसा प्रवाद है। जो कुछ हो, जिस समय धौलिका अनुशासन खोदा गया था उसी समयके लगभग यहां एक जनपूर्ण वृहत् नगर था इसमें तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। बौद्ध, सम्राट् अशोकने जो जनसाधारणकी भलाईके लिये लिखित अनुशासनमालाको निर्जन प्रदेशमें वा विरुद्धवादी हिन्दुओंके मध्य स्थापित किया होगा यह भी प्रतीत नहीं होता।

धौलि और उदयगिरिमें अनेक बौद्ध संन्यासी रहते थे। ये लोग बहुत श्रद्धापूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। सुतरां अनुमान किया जाता है कि इसके पास ही अनेक बौद्धगण-परिवृत एक सुवृहत् नगर था। किन्तु धौलिके चारों ओर कहीं भी नगरका ध्वंसावशेष देखनेमें नहीं आता। बहुतोंका अनुमान है कि वर्त्तमान भुवनेश्वर जिस स्थान पर अवस्थित है उसी जगह पहले प्राचीन

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानं।" (योगसूत्र ३।२)

जिससे मनुष्य तीनों प्रकारके दुःखसे निवृत्ति लाभ कर सके, उसका अनुष्ठान करना अवश्य विधेय है। योगशास्त्रमें एकमात्र योग ही उसका प्रधान उपाय है। योगानुष्ठान द्वारा पहले धारणा, पीछे ध्यान और उसके बाद समाधि लाभ हुआ करती है। योगफलका प्रथम अङ्ग धारणा है, उसके बाद ध्यान है। जब धारणा स्थायी होती है, तब उसके बाद ही वही धारणा ध्यानमें परिणत हो जाती है। धारणीय वस्तुमें यदि चित्तकी एकतानता उत्पन्न हो तो वही ध्यान कहलाती है अर्थात् जिस वस्तुमें तुमने वाह्येन्द्रियको निरोध करके अन्तरिन्द्रियको धारण किया है, उस वस्तुका ज्ञान यदि अन्तरित भावसे वा अविच्छेदसे प्रवाहित हो, तो उस प्रकारका वृत्तिप्रवाह ध्यान कहलाता है। वही ध्यान जब चरमावस्थाको पहुंच जाता है, तब समाधि कहलाता है। यही ध्यान जब सिर्फ ध्येय वस्तुको ही उद्भासित वा प्रकाशित करता है और अपना स्वरूप अर्थात् मैं ध्यान करता हूं इत्यादि प्रकारका भेद ज्ञान लुप्त कर देता है, तब उसीको समाधि कहते हैं। ध्यान जब पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है, तब सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं।

सब प्रकारकी क्लेशवृत्ति अर्थात् सुख और दुःखादिके आकारका परिणाम यह स्थूल शरीर भोग करता है। ये सब क्लेश वृत्ति या केवल ध्यान द्वारा ही दूर हो सकती है। ध्यान द्वारा सुखदुःखादि निराकृत हो जाते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि जिससे किसीको यह न मालूम पड़े कि मानवजन्म ग्रहण कर हम लोग जो सुख भोग करते हैं, वही सुख है, वह हम लोगोंके निकट सुख समझा जा सकता है, किन्तु दर्शनकारियोंके मतसे वह दुःखमें गिना जाता है। इसीसे हमने सुखदुःखादि कह कर इसका उल्लेख किया है। परिपुष्ट क्लेशराशिके विनाशके लिये ही नाना प्रकारके उपाय शास्त्रोंमें निर्द्धारित हुए हैं। क्लेश नामक अविद्यादि जब वर्त्तमान वा प्रबल अवस्थामें रह कर सुख दुःख और मोहादिरूप विविध कार्य वा भोग उत्पन्न करती हैं, तब वे स्थूल कहलाती हैं। उस स्थूल अवस्थाको नष्ट करनेका प्रधान उपाय ध्यान है। अधिक दिन तक और अनेक बार ध्यान करनेसे धीरे धीरे सुख दुःख और मोहादि नामक सभी चित्तवृत्तियां निरुत्थान वा विलुप्त प्राय हो जाती हैं। सुतरां अविद्या, अस्मिता आदि क्लेशपञ्चककी वृत्ति अर्थात् सुखदुःखादि रूप विशेष अवस्था वा विशेष परिणाम ये सब ध्याननाशक माने गये हैं। जिस प्रकार पहले प्रक्षालन, पीछे क्षारसंयोग और उत्तापप्रदानपूर्वक निर्णेजन द्वारा वस्त्रको मैल दूर होती है, उसी प्रकार पहले क्रियायोग, पीछे ध्यानयोगका अवलम्बन कर चित्तकी मैल दूर करनी चाहिये। प्रक्षालन द्वारा वस्त्रमलको निविड़ता नष्ट हो जानेसे पीछे जिस तरह क्षार संयोगादि द्वारा उसका उन्मूलन सहज है, उसी प्रकार पहले क्रियायोग द्वारा चित्तक्लेशको निविड़ता दूर हो जानेसे पीछे ध्यान द्वारा उसका उन्मूलन सहज हो जाता है। क्रियायोग और ध्यानयोग द्वारा सभी चित्तक्लेश दूर हो जाते हैं सही, लेकिन इसका संस्कार लय नहीं होता। यह संस्कार केवल समाधि भावना द्वारा विनष्ट होता है, अर्थात् चित्तके लय होनेसे ही उसके साथ साथ क्लेश और क्लेशके सभी संस्कार सहजमें विनष्ट हो जाते हैं।

क्रियायोग और ध्यानयोगादि द्वारा क्लेश समूहको दग्ध नहीं करनेसे अर्थात् दग्धबीजके जैसा निस्तेज वा निःशक्ति नहीं करनेसे चिरकाल तक शुभाशुभ कर्मोंमें जड़ित रहना पड़ेगा, कभी मुक्ति नहीं होगी।

(पातञ्जलदर्शन)

महानिर्वाणतन्त्रमें ध्यानका विषय इस प्रकार लिखा है—

"ध्यानन्तु द्विविधं प्रोक्तं स्वरूपारूपभेदतः।
अरूपं तत्र यद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरं॥
अव्यक्तं सर्वतो व्याप्तमिदमित्थं विवर्जितं।
अगम्यं योगिभिर्गम्यं कृच्छ्रैर्बहुसमाधिभिः॥
मनसो धारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये।
सूक्ष्मध्यानप्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते॥
अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः।
गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना॥"

(महानिर्वाणतन्त्र)

सरूप एवं अरूपके भेदसे ध्यान दो प्रकारका है। इनमेंसे

अरूप ध्यान वाक्य और मनका अगोचर है। यह ध्यान अत्यन्त कठिन और योगियोंका अगम्य है तथा बहुत कष्टसे साधित होता है। मनके कारणार्थ और शीघ्र शीघ्र अभिलषित सिद्धि तथा सूक्ष्म ध्यान करनेके लिए स्वरूप ध्यान अर्थात् स्थूलध्यान करते हैं। ईश्वर रूपरहित होनेसे भी गुण और क्रियानुसारसे उनके रूपकी कल्पना करनी होगी। किसी मूर्त्तिका उपलक्ष करके जो चित्तकी एकाग्रता साधित होती है उसीको स्वरूप ध्यान कहते हैं, ब्रह्मविषयक जो चिन्ता की जाती है, उसे ध्यान कहते हैं।

"ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्यात् धारणा मनसो धृतिः।
परोमेऽस्म्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः॥"

(गरुडपुराण ४८ अ०)

मनकी स्थिरताका नाम धारणा और ब्रह्मात्मविषयक चिन्ताका नाम ध्यान है।

ध्यानगोचर (सं० पु०) ध्यानस्य गोचरं, ६ तत्। १ ध्यान प्रत्यक्ष, जो ध्यान करके मालूम किया जाय।

ध्यानजप (सं० पु०) विश्वामित्र वंशके एक ऋषिका नाम। (हरिवंश २७ अ०)

ध्यानमय (सं० त्रि०) ध्यान स्वरूपे मयट्। ध्यानस्वरूप।

ध्यानयोग (सं० पु०) १ वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान अङ्ग हो। २ इन्द्रजालकी एक क्रिया। इसके द्वारा मनमें किसी आकृतिकी कल्पना करके मन्त्र पाठ किया जाता है। ३ ध्यान और योग।

ध्यानवरो—हिमालयके गढ़वाल राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन शिवमन्दिर। उरगामके मध्य यह मन्दिर अब स्थित है और बदरीनाथका ही एक अंश समझा जाता है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इसका माहात्म्य लिखा हुआ है।

ध्यानबिन्दूपनिषद् (सं० स्त्री०) अथर्ववेदीय एक उपनिषद्। नारायणने इसकी वृत्ति की है।

ध्यानसिंह—पञ्जाब-केसरी महाराज रणजित्सिंहके एक विश्वस्त मन्त्री और काश्मीराधिपति गुलाबसिंहके भ्राता।

ध्यानसिंहका जन्म राजपूत-कुलमें काश्मीरके उत्तर वर्त्ती जम्बूराज्यमें हुआ था। आपके पिताका नाम था किशोरसिंह। किशोरसिंह स्वयं जम्बूके राजा न थे, अकिञ्चित् राजदत्त उपस्वत्व भोग कर जीवन-यात्रा निर्वाह करते थे। किशोरसिंह (वा कयरसिंह) के तीन पुत्र थे—गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह। ये तीनों भाई वीरप्रकृतिके अध्यवसायी, कूटनीतिज्ञ चतुर और बुद्धिमान् थे। बड़े भाई गुलाबसिंहने अपनी प्रतिभाके बल पर सामान्य अवस्थासे काश्मीरका सिंहासन लाभ किया था। गुलाबसिंह देखो।

महाराज रणजित्सिंहके जम्बू अधिकार करने पर, यहांके राजवंशीयगण उजड़ गये थे। उसी समय गुलाबसिंह अपने सहोदर ध्यानसिंहको ले कर लाहोरके दरबारमें पहुंचे। इन दोनों भाइयोंकी वीरमूर्त्ति और कमनीय कान्तिको देख कर रणजित्सिंहने आदरके साथ उन्हें अपनी सभामें स्थान दिया। थोड़े ही दिनोंमें ये महाराजके प्रिय पात्र हो गए और महाराजके आदेशानुसार छोटे भाई सुचेतसिंहको भी दरबारमें बुला लिया। दिनों दिन इनकी प्रतिभा फैलने लगी। महाराज रणजित्सिंह गुलाबसिंहकी अपेक्षा ध्यानसिंह और सुचेतसिंह पर अधिक स्नेह रखते थे। रणजित्सिंहके अन्यतम सभासद रामलालने जब महाराजके आदेशानुसार उपवीत त्याग कर सिक्ख-धर्म ग्रहण नहीं किया, तब महाराज उन पर बहुत क्रुद्ध हो गए। रामलालके भाग जाने पर महाराजने उनके भाई खुशालसिंहको, जो सिक्ख बन चुके थे, राजपुरोहितके पदसे च्युत कर दिया और ध्यानसिंहको उनके पद पर नियुक्त कर अपना क्रोध कुछ शान्त किया। कुछ दिन बाद रामलालने अपने भाईकी दुर्गति देख कर सिख धर्म ग्रहण कर लिया जिससे खुशालसिंह पर महाराजका कोप दूर हो गया। कुछ भी हो, लाहोर-दरबारमें इन तीनों भाइयोंका प्रभाव और विश्वास दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। १८२० ई०में इन तीनों भाइयोंने दरबारमें श्रेष्ठ स्थान अधिकार कर लिया। गुलाबसिंह जम्बू और काश्मीर प्रदेशके विद्रोही मुसलमानोंको पराजित कर राज्यमें शान्ति स्थापन करनेके कारण खूब प्रसिद्ध हो गए। महाराज रणजित्‌ने प्रसन्न हो कर गुलाबसिंहको जम्बू राज्य और ध्यानसिंहको खुशालके स्थान पर प्रधान द्वार-रक्षकका पद दे दिया। इसी वर्ष तीनों भ्राता राजाको

उपाधिसे विभूषित किए गए और ध्यानसिंह 'राजा-इ-राजगाँ राजा हिन्दपथ राजा बहादुर' की उपाधिके साथ वजीरके पद पर नियुक्त हुए। कनिष्ठ सुचेतसिंह राजकार्यकी कूटनीतिके विषयमें उदासीन रह कर केवलमात्र रणस्थलमें साहसी वीरपुरुष और राजसभामें प्रियंवद, सुरसिक और शिष्टाचारी सभासद रहे।

ध्यानसिंहके पुत्र हीरासिंह पर महाराजका बड़ा स्नेह था। यहां तक कि, उन्हें आँखोंसे ओझल होने नहीं देते थे। हीरासिंहको भी पिता और पितृव्योंके साथ 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई थी और अन्य सभासदोंकी तरह वे भी राज-दरबारमें शामिल होते थे तथा महाराज रणजितसिंहके सामने एक आसन पर बैठते थे।

एक दिन कतोच-राजकुमार अनिरुद्धचन्द्र अपनी दो बहनोंके साथ लाहोर उपस्थित हुए। दोनों राजकुमारियां अनुपम सुन्दरी थीं। ध्यानसिंहने उन्हें कब्जेमें पा कर हीरासिंहके साथ उनके विवाहका प्रस्ताव किया। कतोच-राजवंश उस प्रदेशमें अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था, इसलिए महाराजकी सहायतासे ध्यानसिंहको फिलहाल अनिरुद्धचन्द्रका लिखित अङ्गीकार-पत्र मिल जाने पर भी, राजकुमारियोंकी माता इस प्रस्तावसे सहमत न हुई। वे दोनों कन्याओंको ले कर भाग गईं। ध्यानसिंहने बहुत कोशिश की; परन्तु वे किसी तरह भी उक्त राजकुमारियोंको हस्तगत न कर सके। राजमहिषी और अनिरुद्धचन्द्र ध्यानसिंहकी विड़म्बनामें पड़ कर राज्यभ्रष्ट हुए और अन्तमें दोनोंकी मृत्यु हो गई। फिर महाराजने स्वयं कतोच-राजकुमारियोंकी याचना की। किन्तु इस विषयमें उन्हें भी हताश होना पड़ा और आखिरको कतोच-राजकी रक्षिता स्त्रीकी अन्य दो कन्याओंको हस्तगत किया। इनमेंसे एकका विवाह हीरासिंहके साथ होनेवाला था; पर रणजितसिंह दोनों कुमारियोंको देख कर इतने मोहित हो गये कि उन्होंने दोनोंका पाणिग्रहण कर डाला। हीरासिंहका विवाह एक दूसरी कुमारीके साथ हो गया।

कुछ दिन बाद रणजितसिंहने आदेश दिया कि अब से राजकीय चिट्ठी पत्रियोंमें राजा ध्यानसिंहको 'राजा कलान बहादुर' के नामसे सम्मानित किया जायगा। राजा ध्यानसिंह इस समय महाराजके दाहिने हाथ थे। ध्यानसिंहकी अनुमतिके बिना कोई भी महाराजसे साक्षात् कर नहीं सकता था। महाराज प्रत्येक कार्यमें ध्यानसिंहकी सुयुक्ति ग्रहण करते थे और राजकीय दुरूह विषयोंमें उनके साथ परामर्श करते थे। ध्यानसिंह बड़ी दिलचस्पीके साथ जी-जानसे कोशिश करके मालिकका काम बजाते थे और पास रह कर उन्हें प्रसन्न रखनेकी कोशिश करते थे।

१८३४ ई०में पञ्जाब-केशरी महाराजने मृत्यु-शय्यामें पड़े पड़े समस्त सभासद् और प्रधान सरदारोंको बुला कर, उनके सामने खड्गसिंहको राजटीका दे कर अपने विशाल साम्राज्यका अधीश्वर बनाया और ध्यानसिंहको नवीन राजाका प्रधान मन्त्री बना कर उन पर खड्गसिंहकी रक्षाका भार अर्पण किया। महाराज रणजितसिंहने ध्यानसिंहसे कहा कि "आज तक आपने अनुनयके साथ जैसा सम्मान और भक्ति रणजीतके प्रति दिखलाई थी, आजसे खड्गसिंहके प्रति भी वैसा ही भाव रक्खें।" आप ही खड्गसिंहके शिक्षक और अभिभावक नियुक्त हुए हैं।' सम्मान-स्वरूप इन्हें एक बहुमूल्य परिच्छद और उसके साथ 'नाइब उल्-सुलतानत्-इ-उजमा, खैरख्वाही सामिमी दौलत इ-सरकार, वजीर-इ-मुअज्जिम, दस्तूर इ-मकर राम, मुख्तार महमकुल' इत्यादि सम्मानसूचक उपाधियां मिली थीं। परन्तु हाय! महाराजकी मृत्युके बाद ध्यानसिंह खड्गसिंहके प्रति वैसा व्यवहार न कर सके, जैसा कि उन्होंने महाराजकी मृत्यु-शय्याके सामने खड़े हो कर अङ्गीकार किया था। उत्कट दुराकांक्षा और स्वार्थ-परताके वशीभूत हो अन्तमें आपने अत्यन्त कृतघ्नताका कार्य किया था। हां, इतनी बात जरूर है कि इसमें उनका अकेला ही दोष नहीं था, अपरिणामदर्शी खड्गसिंहकी बुद्धिके दोषसे आपको कुमार्ग पर चलना पड़ा था।

महाराज रणजितसिंहकी मृत्युके बाद ध्यानसिंहने समस्त रानियोंके सामने, महाराजकी मृतदेह और श्रीगीताको स्पर्श करके पुनः प्रतिज्ञा की कि वे खड्गसिंहके अनुगत और विश्वस्त रहेंगे तथा खड्गसिंह और उनके पुत्र नवनिहालसिंहमें परस्पर सद्भाव

की इस तरह जीवन-लीला समाप्त हुई, ध्यानसिंहका कोप इतने पर भी शान्त न हुआ, उन्होंने चेतसिंहके घरवालोंकी भी यही हालत की। १८३७ ई०में ८ अक्टूबरको यह भीषण हत्याकाण्ड संघटित हुआ और यहींसे भविष्यमें भीषणतर हत्याकाण्ड होनेका सूत्रपात हुआ।

खड्गसिंहको कैदमें रक्खा गया और नवनिहालसिंह सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। नवनिहालसिंह तेजस्वी, तीक्ष्णबुद्धि और अहङ्कारी थे। ध्यानसिंह सम्भवत; इन पर विश्वास न कर सके थे। कुछ भी हो, ईश्वरकी विडम्बनासे जिस दिन बन्दी खड्गसिंहने भग्न एवं हताश-हृदयसे कारागारमें प्राणत्याग किया, उसी दिन तोरणद्वारका एक पत्थर खिसक कर नवनिहालसिंहके मस्तक पर पड़ा, जिससे उन्हें बड़ी भारी चोट पहुंची। साथ ही गुलाबसिंहके प्रिय पुत्रको भी उसी दिन मृत्यु हो गई। मन्त्री ध्यानसिंह उसी समय नवनिहालसिंहको पालकीमें लिटा कर दुर्गमें ले गये। दुर्गका द्वार-बन्द हो गया। केवल मन्त्री ध्यानसिंहके सिवा और किसीको भी वहां जानेका अधिकार नहीं था। नवनिहालसिंहकी माता चांदकुमारीने बहुत अनुनय-विनय किया, पर उन्हें किसी तरह भी पुत्रके पास जानेकी अनुमति न मिली। परिवारके और सरदारोंको यह कह कर कि 'राजकुमार अच्छे हैं, विश्राम कर रहे हैं' विदा कर दिया गया। कुछ समय बाद ध्यानसिंहने रानी चांदकुमारीसे कहा—"आपके पुत्रके प्राण निकल चुके। यदि आप चाहें तो रानी हो सकती हैं, मैं आपको यथासाध्य सहायता पहुंचा सकता हूं।" बहुतोंने अनुमान किया है कि ध्यानसिंह राजकुमारके इस हत्याकाण्डमें लिप्त थे। बहुतोंका यह कहना है, कि तोरणद्वारसे पत्थरका गिरना, इसमें भी जम्बू-भ्राताओंका हाथ था। कुछ भी हो, ध्यानसिंहका व्यवहार सन्देह-परिवर्जित न होने पर भी, उनके विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। कारण उस विपत्तिमें ध्यानसिंहका प्रिय भ्रातुष्पुत्र मारा गया था और स्वयं ध्यानसिंहके हाथमें भी खूब चोट पहुंची।

नवनिहालसिंहके बाद रानी चांदकुमारी सिंहासन पर बैठीं। अब ध्यानसिंहने देखा कि रानी भी उनके घोर विरुद्धमें हैं, अतः क्षमता प्राप्त करने पर उनका और उनके वंशियोंका उच्छेद करनेकी चेष्टा अवश्य करेंगी, इसलिए वे भी चांदकुमारीके समचर्में की हुई प्रतिज्ञाका पालन न कर सके। रणजितसिंहको रक्षिता स्त्रीके गर्भसे शेरसिंह नामक एक पुत्र हुआ था, ध्यानसिंह उन्हींको सिंहासन पर बिठानेके लिये सरदारोंको उत्तेजित करने लगे। आपने सिख-सेनाको यह बात भली भांति समझा दी कि स्त्रीके शासनमें उनका कल्याण नहीं है और न किसीकी मनस्कामना ही सिद्ध हो सकती है।

रानी चांदकुमारीको मालूम पड़ते ही उन्होंने अतरसिंह सिन्धनवाला और अन्यान्य सरदारोंको बुलवा भेजा। रानीका पक्ष ही प्रबल रहा।

रानीने सबोंसे कहा कि नवनिहालसिंहकी पत्नी गर्भवती हैं, मैं गर्भस्थ शिशुके प्रतिनिधिस्वरूप राजत्व कर रही हूं। हां, यदि वह कन्या प्रसव करें, तो फिर मैं हीरासिंहको दत्तक ग्रहण कर लूंगी, महाराज रणजितसिंह भी हीरासिंहको पुत्रवत् मानते थे। इस बात पर सारा झगड़ा निबट गया। ध्यानसिंह रानीके इस प्रत्यक्ष सरल व्यवहारसे सन्तुष्ट हुए। परन्तु दुर्दान्त शेरसिंह बलपूर्वक साम्राज्य लेनेकी चेष्टा करने लगे। ध्यानसिंह इस मौके पर बीमारीका बहाना बना कर लाहोरसे जम्बू चले गये। रानीने अतरसिंह सिन्धनवाला को प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त किया।

गुलाबसिंह मौका देख कर रानीके साथ मिल गये। कूटनीतिवित् जम्बूभ्रातृगण सभी कार्योंमें ऐसी ही चतुरता दिखलाया करते थे। जो पक्ष जयी होगा, उसी पक्षमें जा कर मिल जाते थे।

राजा ध्यानसिंह जम्बूमें रह कर छिपे तौरसे लाहोरकी सब खबर मंगाने लगे। ध्यानसिंहने खालसा-सेना और सरदारोंसे ऐसी आशा और स्वीकारता प्राप्त कर ली कि ज्यों ही वे और रणजितसिंहके पुत्र शेरसिंह लाहोरके द्वार पर उपस्थित होंगे, त्यों ही वे उनके साथ आ मिलेंगे।

इधर शेरसिंह ध्यानसिंहके परामर्शानुसार १०० सेना ले कर मुकारासे लाहोरकी ओर चल दिये। परन्तु

इस समय ध्यानसिंहने प्रकटमें महाराजका कुछ भी नहीं हो। जवाहिरसिंह नामक एक सरदार इस मौके पर शेरसिंहको कुछ पानेकी आशासे सेना सहित जाकर उनसे मिल गये।

शेरसिंहके लाहौर दरवाजे पर उपस्थित होते ही बहुतसे खालसा सरदार और कई सरदार आ कर उनके साथ हो लिये। शेरसिंहने नगरमें प्रवेश किया। अर्थात् उन्मत्त सेनाने लाहौर लूट लिया। गुलाबसिंह आदि रानीके पक्षके लोग डोगरा सेनाकी सहायतासे दुर्गकी रक्षा करने लगे। दुर्गमें अल्प संख्यक सेना थी, तथापि केवल ६ दिन तक सारी सिख सेनाको परास्त और सदा व्यतिव्यस्त कर रक्खा था। इस घटनाके समय सिख-सेनाने बड़ा ही घृणित और नृशंस व्यवहार किया था।

ध्यानसिंह इस समय लाहौरकी सीमामें आ पहुंचे थे। उनके आगमनका संवाद मिलते ही शेरसिंहने युद्ध स्थगित कर दिया और गुलाबसिंहको सन्धिके लिए कहला भेजा। गुलाबसिंहने कहा कि ध्यानसिंहके बिना आये सन्धिकी कोई बात नहीं हो सकती। शेरसिंहने मध्यके द्वार पर जा कर ध्यानसिंहकी अभ्यर्थना की। समस्त सेना उच्चस्वरसे ध्यानसिंहका अभिवादन किया। ध्यानसिंहके आदेशानुसार युद्ध बन्द रहा।

राजा हीरासिंह व महारानीकी ओरसे सन्धिके लिए शेरसिंहके पास भेजे गये। इन शर्तों पर सन्धि हुई,— 'चांदकुमारी शेरसिंहको सिंहासन प्रदान करेंगी, बदलेमें प्रतिपालन-स्वरूप शेरसिंह महारानीको ८ लाख रुपये आयकी एक जागीर देंगे, गुलाबसिंह रानीकी तरफसे उस जागीरका शासन करेंगे। शेरसिंह व चांदकुमारीके साथ विवाह करनेकी आशा त्याग देंगे और डोगरा सेना दुर्गसे निर्विघ्न चली जा सकेगी।"

राजा गुलाबसिंह रक्षा करनेके बहानेसे चांदकुमारीके समस्त मणि-रत्नादि ग्रहण कर चलते बने। रानी लाहौरमें अपने पुत्रके बनाये हुए महलमें रहने लगीं।

१८४१ ई०में १८ जनवरीको शेरसिंहने राजसिंहासन पर अधिरोहण किया। ध्यानसिंह फिर वजीर हो गए और उन्हें एक बहुमूल्य खिलात मिली। सैनिकोंका १) मासिक वेतन बढ़ाया गया। सिन्धनवालिये सरदारोंकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली गई और अतरसिंह सिन्धनवाला और उनके भाई लहनासिंहको बन्दी कर लेनेका परवाना निकला। अतरसिंह और उनके भतीजे अजीतसिंह कहीं भाग गये। लहनासिंह पकड़े गये और लाहौरमें कैद रहे।

शेरसिंह अत्यन्त इन्द्रियासक्त और आमोदप्रिय थे, इसलिए वे राजकार्यका समस्त भार निश्चिन्त मनसे ध्यानसिंह पर छोड़ कर सदा आमोद प्रमोदमें मत्त रहने लगे। वास्तवमें ध्यानसिंह ही राज्य-शासन करते रहे। अब चतुर ध्यानसिंहने देखा कि उनका एक अप्रतिहत क्षमताका एक प्रतिद्वन्द्वी है। लहनासिंह शेरसिंहके विश्वासपात्र थे, उन्होंने युद्धमें शेरसिंहको विशेष सहायता पहुंचाई थी तथा लाहौर अवरोधके समय शेरसिंहके मना करने पर भी अपनी सेनाको युद्धमें नियोजित किया था। बादमें ध्यानसिंह और शेरसिंहने स्वयं जा कर अर्थ प्रदान पूर्वक युद्ध बन्द कराया था। लहनासिंहके मनमें मन्त्रित्व पानेकी उच्चाशा अब भी रह सकती है, इस प्रकार अनुमान कर ध्यानसिंहने कुटिल-मन्त्रणा द्वारा शेरसिंहको बहकाया और मत्त बना दिया। शेरसिंह भी ध्यानसिंहकी बातोंमें आ गये और सामान्य अपराध पर मदमत्त लहनासिंहको कैदमें डाल दिया। बेचारा कैदमें पड़ा ही मर गया। इस तरह ध्यानसिंहने अपनी उन्नतिका मार्ग निष्कण्टक किया।

अब ध्यानसिंह चांदकुमारीके पीछे पड़े। चांदकुमारीके साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें यद्यपि यह शर्त थी कि शेरसिंह चांदकुमारीके साथ विवाह करनेकी आशा त्याग देंगे, किन्तु तथापि वे एक बार भी उस आशाको त्याग न सके थे। 'बादर-पन्द्राजा' प्रवादके अनुसार उनकी अभिलाषा एक दिन पूर्ण भी हो सकती थी, किन्तु गुलाबसिंह प्रतिदिन रानीको समझाया करते थे कि मिलन-मात्रका केवल शेरसिंहका कौशल है किसी तरह वशमें करके प्राण नष्ट करना ही उनका उद्देश्य है, इसलिए रानी चांदकुमारी अपने बचावके लिए दुर्गके महलमें आ कर रहने लगीं। इस

व्यवहारसे महाराज शेरसिंह सख्त नाराज हो गये और तिस पर ध्यानसिंहने आगमें घी डाल दिया कि रानी चांदकुमारी महाराजको रणजितकी सुजात सन्तान नहीं समझतीं, वे और अपनेको कन्हैयावंशके सरदार ज-मलकी कन्या मान अपने आभिजात्यकी स्पर्द्धा करती हैं। फिर क्या था, महाराज शेरसिंह चांदकुमारीके खूनके प्यासे बन गये और षड़यन्त्र रचने लगे। रानीके क्रीतदासियोंको रुपये दे कर वशमें कर लिया और उनसे रानीको मार डालनेके लिये कह कर आप दरबारके साथ वजीराबाद चल दिये। पिशाचियोंने एक दिन (१८४२ ई०में) पोशाक बदलते समय मस्तक पर ईंटे मार कर उन्हें मार डाला। ध्यानसिंहने उन पिशाचियों-का पकड़वा बुलाया और कोतवालीमें जन साधारणके समक्ष उनके हाथ और नाक कान कटवा दिये। दासियों-की जिह्वा नहीं छेदी गई थी; इसलिए उन लोगोंने सबके सामने सत्य बात कह दी। परन्तु साधारण जनताने उस कथनको उन्मादका प्रलाप समझ लिया। शेरसिंह और गुलाबसिंहको बड़ी खुशी हुई। शेर-सिंहका कण्टक दूर हो गया और गुलाबसिंहको सन्दूकमें रक्खे हुए मणिरत्नादि वापिस न देने पड़े।

इसी समय काबुलके युद्धमें सिख-सेनाकी सहायतासे जय प्राप्त कर अङ्गरेजोंने फिरोजपुरमें एक सेना-परि दर्शनका मेला किया। उस मेलेमें युवराज प्रतापसिंह और मन्त्री ध्यानसिंह उपस्थित थे।

सिन्धनवाले सरदारगण रणजितसिंहके सजातीय थे। वे शेरसिंह जैसे रक्षिताके गर्भजात पुत्रके शासनमें रहना किसी तरह भी पसन्द नहीं करते थे। ध्यानसिंह उनके पृष्ठपोषक थे, इसलिए उनसे भी महा असन्तुष्ट थे।

सिन्धनवाले सरदारोंने लहनासिंहको कारामुक्त [illegible] और भागे हुए अतरसिंह एवं अजितसिंहको दर [illegible] बुलाया। उनकी जब्तकी हुई सम्पत्ति और उपाधियां उन्हें पुनः प्रदान की गईं। इस पर ध्यानसिंह राजासे द्वेष करने लगे। सिन्धनवाले सरदारगण भी प्रत्यक्षतया उनकी उपेक्षा कर कार्य करने लगे। महाराज [illegible] अब किसी विषयमें उनसे सम्मति नहीं मांगते थे। ध्यानसिंहका हृदय विचलित हो उठा। उन्होंने अग्र-

के ज्येष्ठभ्राता गुलाबसिंहको बुला भेजा। उनके आने पर दोनोंने परामर्श करके अपना गन्तव्य मार्ग चुन लिया। इसी समयसे ध्यानसिंह रणजितसिंहके दूसरे पुत्र बालक दिलीपसिंह पर स्नेह करने लगे। दिलीपकी उम्र इस समय कुल ६।७ वर्षकी थी। दलीपसिंह देखो। महाराज शेरसिंह भी ध्यानसिंहके उद्देश्यको समझ गये और उन्हें दमनमें रखनेके लिए नाना उपायोंसे काम लेने लगे। परन्तु सुकौशली बुद्धिजीवी ध्यानसिंह शेरसिंह जैसे मनुष्यके कौशलमें आनेवाले व्यक्ति न थे, वे सतर्कता के साथ चलने लगे।

सिन्धनवाले सरदारोंके राज्यमें अतुल प्रतिभाशाली हो जाने पर भी अब तक वे शेरसिंहको सुजन्मा न होने-के कारण घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। ध्यानसिंहने, क्षमता होने पर भी उनके पुनः प्रतिष्ठालाभके विषयमें हस्तक्षेप नहीं किया, वरन् राजाके अभिप्राय साधनमें ही प्रयत्न किया था, इस बातको सरदारगण समझते थे; किन्तु तथापि वे उनके प्रति विद्वेषभावको न त्याग सके थे। मन्त्री और महाराजमें मनोमालिन्य चल रहा है, यह देख कर वे भी इस समय 'कण्टकेनैव कण्टक-वत्' दोनोंके उच्छेदके लिए षड़यन्त्र कर रहे थे। महाराज पर इस समय सरदारोंका यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था, इसलिए महाराजके प्रति किसी तरहका सम्भ्रम न दिखाते थे। अजितसिंह प्रायः महाराजके मुंह पर उनकी जान लेनेका भय दिखाया करते थे। महाराज बन्धुवर्ग द्वारा सतर्क रहने पर भी इन बातोंकी परवाह न करते थे। सिन्धनवाले सरदारोंने षड़यन्त्र ठीक करके महाराजको, अपनी पूर्व विश्वस्तताका उल्लेख करते हुए समझा दिया कि वे आज्ञावह भृत्य हैं, उनके लिए राज्यके विरुद्ध खड़ा होना बिलकुल असम्भव है। ध्यानसिंहके विषयमें कान भर दिये कि "वे भीतर भीतर महाराजको मार कर कुमार दिलीप-सिंहको सिंहासन पर बिठानेकी कोशिश कर रहे हैं; यहां तक कि, हम लोगोंको पुरस्कारका लोभ दे कर महाराजके मारणार्थके लिये नियुक्त किया था।" शेर-सिंह वीर और साहसी होने पर भी, इस संवादसे विचलित हो गये, उन्होंने अपनी तलवार सरदारोंके

हाथमें दे दी और कहा कि "यह पत्र है और यह मेरी मुहर है, यदि आप लोग ध्यानसिंहके द्वारा बाहिर हुए हों, तो जो मरजी किए जाओ। किन्तु एक बात याद रखियेगा, जो व्यक्ति आज आप लोगोंको पशुकी तरह नचा रहा है, वही व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कभी आपको भी नाच दे सकता है।" महाराजके इस व्यवहारसे सरदारगण चौंक गये, पर विचलित न हुए; कहने लगे—"ऐसे अवस्थामें मन्त्रीको इसी क्षण मार डालना चाहिए।" महाराजने भी उन लोगोंकी ऐकान्तिकता पर क्षुब्ध हो कर उसी वक्त मन्त्रीको मार डालनेका चौवार-पत्र लिख कर दस्तखत कर दिये। लहनासिंह और उनके भाईने, इस आदेशपत्रको ले कर महाराजसे कहा—"किन्तु आज हम लोग अपनी जागीर राजा सांसीको लौट जायेंगे और वहांसे एक दल साथमें सेना ले कर हजारी पहुंचेंगे। महाराज उस स्थान पर उपस्थित हो कर हम लोगोंको क्रीड़ारम्भका आदेश देंगे। सेना बन्दूक आदि ले कर तैयार रहेगी, आदेश पाते ही वह उस मासमें ध्यानसिंह और उनके पुत्र हीरासिंहको घेर लेगी।"

ध्यानसिंह।

लहनासिंह और अजितसिंहने इस चालाकीसे काम ले कर आदेश-पत्र हस्तगत किया और महाराजसे विदा हो कर ध्यानसिंहके पास पहुंचे। पहले नाना प्रकारकी भूमिका बांधी, फिर उन्हें महाराजका आदेश-पत्र दिखलाया। ध्यानसिंह बड़े चतुर थे। उन्होंने इस पर विश्वास नहीं किया; कहा कि कितना भी मनोमालिन्य क्यों न हो, मेरे प्रभु महाराज शेरसिंह इस प्रकारका आदेश कदापि नहीं दे सकते। विशेषतः इसमें महाराजकी मुहर नहीं है।

लहनासिंहने यह सुन कर किसी तरहसे महाराजकी मुहर करा ली और फिर आ कर ध्यानसिंहको दिखाया। ध्यानसिंह मुहरसहित आदेश-पत्रको देख कर अवश्य ही विचलित हो गये। सिन्धनवाले सरदारोंने अवसर पा कर ठीक पूर्वोक्त कूटनीतिमय कौशलसे प्रीति और विश्वास दिला कर ध्यानसिंहसे महाराजके वधादेश पत्र पर दस्तखत करा लिये। फिर सरदारोंने मन्त्रीके साथ परामर्श कर स्थिर किया कि ध्यानसिंह-वधके लिए निर्धारित दिनको शाहबलावलमें उपयुक्त सेना रखनेका बन्दोबस्त कर रखेंगे। परवर्ती आश्विन(?) मासका प्रथम दिन ही इस भयानक कार्यके लिए उपयुक्त दिन निर्धारित हुआ।

सरदारगण फिर राजा सांसीको लौट गये। ध्यानसिंहने रोगका बहाना कर दरबारमें आना बन्द कर दिया।

एक दिन ध्यानसिंह, दीवान दीननाथ और राजकुमार प्रतापसिंहको ले कर महाराज शेरसिंह क्रीड़ाकौतुक देखनेके लिए हजारी नामक स्थानमें पहुंचे। परामर्शानुसार अजितसिंहने वहां अपने दल बलके साथ उपस्थित हो कर एक बार बन्दूकका शब्द कर अपनी उपस्थिति सूचित की।

यहां शेरसिंह शाहबलावलकी बारहदरीकी बैठकमें बैठे हुए कुछ पहलवानोंकी मल्लक्रीड़ा देखने लगे। उसी समय अजितसिंहने आ कर दल बलित उपस्थिति सूचित की। राजादेशसे दीवान दीननाथने तत्काल उन लोगोंको राजकीय सेनामें शामिल कर लिया। उसी समय अजितसिंहने एक नई बन्दूक निकाल कर महाराजसे कहा— "यह मैंने १००० रु०में खरीदी है। पर तीन हजारसे कममें किसीको दूंगा नहीं।" यह कहते हुए अजितने महाराजको दिखानेके बहाने बन्दूक चढ़ाई और महाराजकी छाती पर मार दी। दुनाली बन्दूकके चलते ही शेरसिंह "ऐसी दगा!" कहते हुए

जमीन पर गिर पड़े और उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। अजितसिंहने उसी समय तलवारसे महाराजका सिर धड़से अलग कर दिया। बुधसिंह बन्दूकका शब्द सुन कर उद्विग्न हो कर ज्यों ही कमरेमें घुसे, त्यों ही उन्होंने अजितकी हाथमें खूनसे तर तलवार देख उनके दो अनुचरोंको काट डाला और फिर अजित पर आक्रमण किया, किन्तु तलवार टूट जानेसे वे शीघ्र ही अजितके आदमियों द्वारा मारे गये। अजितकी सेना राज-भृत्यों पर आक्रमण करती हुई प्रासादके भीतर घुस पड़ी। लहनासिंह शेरसिंहके रोते हुए बारह वर्षके पुत्र प्रतापसिंहको मारनेके लिए आगे बढ़े। बेचारा प्रतापसिंह उस दिन ग्रहणके उपलक्षमें उद्यानमें तुलापुरुष हो कर ब्राह्मणोंको स्वर्णादि दान कर रहा था! लहनासिंहने जा कर उसे पकड़ लिया; बालकने पिता कह कर उनसे प्राणभिक्षा मांगी, किन्तु निर्दय लहनासिंहने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए उसी समय उसका सिर काट डाला।

अजितकी सेनामें ३०० अश्वारोही और २५०० पदाति थे। अजित सेना-सहित नगरकी तरफ चल दिये। मार्गमें ध्यानसिंहसे साक्षात् हो गया। अजितने सब हाल कह सुनाया। ध्यानसिंहने बालक प्रतापकी हत्या पर बड़ा खेद प्रकट किया और सरदारोंकी निन्दा की। अजितने ध्यानसिंहको अपने साथ दुर्गको लौट चलनेके लिए कहते। सन्देह होने पर भी ध्यानसिंहको अन्य उपाय न देख उनके साथ जाना पड़ा। प्रथम द्वार पार हो जाने पर द्वितीय द्वारमें ध्यानसिंहके अनुचरको रोका गया, किन्तु अजित सानुचर विना किसी बाधाके भीतर चले गये। ध्यानसिंह भीतर ही भीतर अवस्था समझ गये, पर ऊपरसे कुछ कह न सके। आगे जब दुर्ग प्राकारमें सेना देखी, तब उन्होंने पूछा—"ये लोग कौन हैं?"

अजितसिंहने घोड़ा पासमें ला कर ध्यानसिंहका हाथ पकड़ लिया और कहा—"अब राजा कौन होगा?' ध्यानसिंहने भी अविचलित भावसे कहा--"दिलीपके समान उपयुक्त और कौन है?"

इस पर अजितने कहा—"दिलीप राजा और तुम मन्त्री; फिर हम लोगोंने इतना कष्ट क्यों उठाया?" ध्यानसिंह इस व्यवहारसे व्यथित हो कर हट रहे थे, कि इतनेमें उनके भाई गुरुमुखसिंहने कहा—"बातोंसे तो यही अच्छा है कि काम करके दिखला दो, कि जिस रास्तेसे शेरसिंहको भेजा गया है, मन्त्री महाशयको भी उसी रास्तेसे जाने दो। फिर तुम्हारा रास्ता साफ है।"

यह सुन कर अजितने इशारा किया। इशारेके साथ ही पीछेसे एक आदमीने गोली मार कर ध्यानसिंहका काम तमाम कर डाला। अन्तमें उपस्थित सेनाने ध्यानसिंहकी देहको टुकड़े टुकड़े कर अपनी रक्तपात-तृष्णाको कुछ कुछ शान्त किया। ध्यानसिंहके कुछ पंजाबी और एक मुसलमान अनुचरने कौशलसे दुर्गमें प्रवेश कर शत्रुओं पर आक्रमण किया; पर वे सभी मारे गये। ध्यानसिंह और इन लोगोंकी लाशें एक तोपके गड्ढेमें डाल दी गईं। अन्य विवरण हरिदाससाधु शब्दमें देखो।

ध्यानावचार्—बौद्धशास्त्रोक्त देवभेद, बौद्ध शास्त्रके अनुसार एक देवताका नाम।

ध्यानिक (सं॰ त्रि॰) ध्यानेन निर्वृत्तः ठक्। ध्यानसाध्य, जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो।

ध्यानिन् (सं॰ त्रि॰) ध्यान-इनि। ध्यानयुक्त समाधिस्थ।

ध्यानिबुद्ध—ध्यानयोगकारी बुद्ध। इनकी संख्या कोई ५ या और कोई १०से भी अधिक बतलाते हैं। ये अशरीरी हैं।

ध्यानिबोधिसत्व—ध्यानि-बुद्धके पुत्र, ये भी अशरीरी हैं।

ध्यानी (हिं॰ वि॰) ध्यानिन् देखो।

ध्याम (सं॰ क्ली॰) ध्यायते पशुभिरिति ध्यै-चिन्तने बाहुलकात् मक्। १ दमनकवृक्ष, दौना। २ गन्धतृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास (त्रि॰) ३ श्यामल, साँवला।

ध्यामक (सं॰ क्ली॰) १ रोहिषतृण, रोहिस घास। २ कत्तृण, एक खुशबूदार घास, सौंधिया।

ध्यामन् (सं॰ पु॰) ध्यै-मनिन् (नामन् सीमन् व्योमन् इत्यादि। उण् ४।१५०) १ परिमाण, अन्दाज। २ तेज। ३ चिन्ता, विचार, ख्याल।

ध्युषिताश्व—राजभेद, एक राजाका नाम। (रघु १८।२२)

ध्येय (सं॰ त्रि॰) ध्यै-यत्। १ ध्यातव्य, ध्यान करने योग्य। २ जिसका ध्यान किया जाय, जो ध्यानका विषय हो।

ध्रजीमत् (सं॰ त्रि॰) ध्रज गतौ इन् सर्वधातुभ्य इति भाव-

ध्रुपदमें अस्थायी और अन्तरा ये ही दो पद देखे जाते हैं। ध्रुपद कान्हड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। ये सबके सब चौताल पर गाये जाते हैं। संगीत दामोदरके मतसे ध्रुपद सोलह प्रकारका होता है—जयन्त, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुन्तल, कमल, सानन्द, चन्द्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कन्दर्प, जयमङ्गल, तिलक और ललित। इनमेंसे जयन्तके प्रतिपादमें ग्यारह अक्षर होते हैं। फिर आगे प्रत्येकमें पहलेसे एक एक अक्षर अधिक होता जाता है; इस तरह ललितमें कुल २६ होते हैं। छः पदोंका ध्रुपद उत्तम, पांचका मध्यम और चारका अधम माना गया है।

ध्रुव (सं० त्रि०) ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रु-क (स्रुवः कः। उण् । २।६१) १ निश्चित, दृढ़, ठीक, पक्का। २ स्थिर, अचल, सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला। (पु०) ३ सन्तति। ४ शाश्वत। ५ तर्क। ६ आकाश। ७ शङ्कु, कील। ८ विष्णु। ९ हर। १० वट, बरगद। ११ अष्टवसुका एकतम, आठ वसुओंमेंसे एक। १२ योगभेद, फलित ज्योतिषमें एक शुभयोग। यदि कोई बालक इस योगमें जन्म ग्रहण करे तो सरस्वती उसके मुखपद्म पर सर्वदा स्थित रहती है और वह न्यायकाव्यकर्त्ता, बन्धुवर्गके भर्त्ता, बुद्धिमान् और प्रसिद्ध होता है। १३ स्थाणु, खम्भा, थून। १४ शरारि नामक पक्षी। १५ ध्रुवक पद। १६ आकाशस्थित ताराद्वय, ध्रुवतारा। यह ध्रुव तारा सब नक्षत्रोंका आधार स्वरूप है। ध्रुवतारा देखो। १७ रोहिणी और वसुदेवसे उत्पन्न एक पुत्र। (भागवत ८।२४।४६) १८ पाण्डव-पक्षीय एक क्षत्रिय वीर। (भारत ७।१५६।३७) १९ नहुषके एक पुत्र। (भारत १।७५।३०) २० पुरुवंशीय रन्तिनारके एक पुत्र। (भागवत ८।२०।६) २१ यज्ञीय ग्रहपात्रविशेष, एक यज्ञ-पात्र। २२ नासाग्र, नाकका अगला भाग। २३ उत्तानपाद राजाके पुत्र। इनकी कथा विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखी है—

पुराकालमें स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र थे। उत्तानपादकी दो स्त्रियां थीं, सुरुचि और सुनीति। राजा सुरुचिको बहुत चाहते थे। सुरुचिकी प्ररोचनासे राजाने सुनीतिको वनवास दिया। एक दिन राजा आखेटको बाहर निकले और पथश्रान्त हो वनस्थित सुनीतिकी निर्जन कुटीरमें आ पहुंचे। उस रात राजाके सहवाससे सुनीतिको गर्भ रह गया और यथासमय ध्रुव उत्पन्न हुए। एक दिन राजा सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लिये बैठे थे, इसी बीचमें ध्रुव खेलते हुए राजसभामें पहुंचे और राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा करने लगे। राजा सुरुचिके भयसे ध्रुवकी गोदमें ले न सके। सुरुचिने जब देखा कि सपत्नीका लड़का ध्रुव राजाकी गोदमें बैठना चाहता है, तब उसने अवज्ञाके साथ लड़केसे कहा, 'हे वत्स! यह उच्चाभिलाष छोड़ दो तुम हीना सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुए हो। यह स्थान सर्वश्रेष्ठ है। अतः तुम्हारे उपयुक्त नहीं। मेरा पुत्र उत्तम ही इस पर बैठ सकता है। इसलिये तुम अपनी ऊंची अभिलाषा परित्याग करो।" ध्रुव विमाताके ऐसे कठोर वचनोंको सुन कर क्रुद्ध हो उठे और अपनी माताके पास चले गये। सुनीतिने इन्हें क्रोधित देख पूछा, किसने तुम्हारी अवज्ञा की है? इस पर ध्रुवने सब बातें मातासे कह सुनाईं। यह सुन कर सुनीतिने फिर पुत्रसे कहा, "वत्स! सुरुचिने जो कुछ कहा है वह सत्य है, तुम भाग्यहीना मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए हो, अतः तुम भी भाग्यहीन हो। इसलिए तुम्हें दुःख नहीं करना चाहिए। सुरुचिने पुण्य किया है, इसीसे राजा सुरुचिको चाहते हैं। विशेष पुण्यानुष्ठान करनेसे वह पद मिलता है। अभी हम लोग जिस अवस्थामें है उसीमें सन्तोष रखना उचित है। यदि तुम्हें सुरुचिके वचनोंसे अत्यन्त दुःख हो गया हो, तो पुण्य-कार्य करनेके लिए तैयार हो जावो जिससे तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो जावे" ध्रुवने माताकी बात सुन कर कहा, 'हे माता! सुरुचिका वचन मेरे हृदयको तीरसा छेद रहा है। इस समय और कोई दूसरा स्थान प्रार्थना नहीं करता, मैं वैसा ही स्थान चाहता हूं जो मेरे पिताको भी न मिला हो।'

इतना कह कर ध्रुव घरसे बाहर निकल पड़े। पूर्वकी ओर जाते जाते उन्होंने सात मुनियोंको कुशासन पर बैठे देख उनसे निवेदन किया, हे प्रभो! मैं उत्तानपादका पुत्र हूं और अत्यन्त निर्वेद पा कर आप लोगोंका शरणापन्न हुआ हूं। यह सुन कर मुनियोंने कहा,

तुम्हारी उमर चार पाँच वर्षकी होगी और तुम्हारे शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं है, अतएव निर्वेद का कारण क्या है सो हम लोग समझ नहीं सकते। इस पर ध्रुवने आदिसे अन्त तक सब बातें मुनियोंसे कह सुनाई। यह सुन कर मुनिगण विस्मित हो कर बोले, क्षत्रियोंकी शक्ति और पराक्रम बहुत है क्योंकि छोटे से छोटा बालक भी किसी प्रकारका अपमान सहन नहीं कर सकता है। जो कुछ हो, अभी तुम्हारा क्या अभिप्राय है, सो हमसे कहो, यह सुन कर ध्रुवने कहा मैं अर्थ या राज्य नहीं चाहता, मैं एक ऐसा स्थान चाहता हूं जिसे किसी दूसरेने उपभोग न किया हो। आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं बहुत जल्द वैसा स्थान पा सकूं।' ये सातों मुनि सप्तर्षि थे। उनमेंसे मरीचिने कहा 'जो गोविन्दकी आराधना नहीं करता उसे उत्तम स्थान नहीं मिल सकता है। अतएव तुम भगवान् विष्णुकी आराधना करो।' इसके बाद अङ्गिरा आदि मुनियोंने भी एक स्वरसे विष्णुकी आराधना करनेका उपदेश दिया। इस पर ध्रुवने ऋषियोंसे कहा 'विष्णुकी आराधना करनेमें मुझे किस कार्यका अनुष्ठान करना होगा और किस मन्त्रसे जप करना पड़ेगा?' ऋषियोंने यह सुन कर भगवान् विष्णुका यह मन्त्र निर्देश कर दिया—

"हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधानाव्यक्तरूपिणे।
ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे॥"

(विष्णुपु० १।११।५)

ध्रुव इस मन्त्रको या ऋषियोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके यमुनाके किनारे मधु नामक एक पुण्य वनमें चले गये। मधुवनमें रहने वाले मधु राक्षसके पुत्र लवण राक्षसको मार कर मथुरा नामकी पुरी निर्माण की थी। यह तीर्थ पापनाशक है। यहां ध्रुव अनन्यकर्मा हो कर भगवदाराधनामें लग गये। ध्रुवकी इस कठोर तपस्याके मद, नदी समुद्र और पृथ्वी व्याकुल होने लगी। इन्द्रादि देवगण उनकी तपस्यासे भयभीत हो अन्यथा पूर्वक माया द्वारा सुनीतिका रूप धारण कर ध्रुवके निकट आ पहुंचे और तपोभङ्गके लिये तरह तरहके उपाय करने लगे। किन्तु ध्रुवका ध्यान विष्णुकी ओर ऐसा लगा हुआ था कि उनका चित्त किसी अन्य विषयमें जरा भी आकर्षित न होने पाया। इतने पर भी ध्रुवका तपोभङ्ग न होता देख देवगण तरह तरहके उपाय रचने लगे; किन्तु उनका सभी परिश्रम व्यर्थ जाता रहा। तब सबने मिल कर भगवान् विष्णुकी शरण ली। भगवान्ने उन्हें आश्वस्त कर ध्रुवसे आ कहा 'हे वत्स! हम तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हो गये, अभिलषित वर मांगो।' ध्रुवने अपने सामने इष्टदेवको खड़ा देख उनसे प्रार्थना की, 'प्रभो! यदि आप हम पर खुश हैं, तो यही वर दीजिए जिससे मैं आपका स्तव कर सकूं मैं बालक हूं, मुझे आपका स्तव करनेका सामर्थ्य नहीं है। भगवान् विष्णुको देख कर ध्रुवका ज्ञान खुल गया। तब भगवान्ने ध्रुवसे कहा 'तुमने जिस स्थानके लिये प्रार्थना की है, वह तुम्हें मिल जायगा। पूर्व जन्ममें तुम ब्राह्मणका लड़का था, एकाग्र चित्त हो कर तूने मेरी उपासना की थी। धीरे धीरे तुम्हारे साथ एक राजपुत्रकी मित्रता हुई, उसके ऐश्वर्यादि देख कर तुम्हारी राजा होनेकी इच्छा हुई थी, इसीसे तुमने उत्तानपादके घरमें जन्म लिया है। मेरी आराधना करनेसे मनुष्यको बहुत अधिक मुक्ति प्राप्त होती है, तुच्छ स्वर्गादिका विषय कहना फजूल है। तुम सब लोकों और ग्रहों नक्षत्रोंके ऊपर उनके आधार स्वरूप हो कर एक कल्प मात्रके लिए रहोगे। तुम जिस स्थान पर रहोगे, वह ध्रुवलोक नामसे प्रसिद्ध होगा और तुम्हारी माता सुनीति भी तारकारूपमें तुम्हारे समीप रहेगी। भगवान् विष्णु इस प्रकार वर दे कर अन्तर्धान हो चले गये। ध्रुवने भी घर आ कर पितासे राज्य प्राप्त किया और शिशुमारकी कन्या भ्रमिसे विवाह किया। इला नामकी इनकी एक और पत्नी थी। भ्रमिके गर्भसे कल्प और वत्सर तथा इलाके गर्भसे उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार इनके सौतेले भाई उत्तम शिकार करनेको जङ्गल गये और वहां यक्षोंसे मारे गये। इसलिये इन्हें यक्षोंसे युद्ध करना पड़ा। पीछे पितामह मनुने इन्हें शान्त किया। कुबेरने इनसे सन्तुष्ट हो कर वर मांगने कहा। इस पर ध्रुवने कहा था, 'विष्णुके पदमें जिससे मेरी भक्ति हो, यही वर मुझे दीजिए।' 'तथास्तु' कह कर कुबेर अपने स्थानको चल

दिये। अन्तमें छत्तीस हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णुदत्त ध्रुवलोकमें चले गये। (विष्णुपु० १।११-१२ अ० और भाग०)

ध्रुवको केन्द्र बना कर सूर्य प्रभृति ग्रहगण उनके चारों तरफ अवस्थित हैं। ध्रुव कितने ऊंचे पर रहते हैं इसकी कथा भागवतमें इस प्रकार लिखी है—

सूर्यमण्डलसे दो लक्ष योजन ऊपरमें चन्द्रग्रह और चन्द्रग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपरमें समस्त नक्षत्र सुमेरुके दक्षिणको ओर ईश्वरसे योजित हो कर भ्रमण करते हैं। इस तरह उनके ऊपर शुक्र, तब मङ्गल और उसके ऊपर वृहस्पति हैं। बाद शनि रहते हैं, इस शनिग्रहसे ग्यारह लक्ष योजनकी दूरी पर देवर्षिगण वास करते हैं। ये सभी लोकोंमें शान्तिविधान करके भगवान् विष्णुके परमपदका सर्वदा प्रदक्षिण करते हैं। इस स्थानसे तेरह लक्ष योजनकी दूरी पर ध्रुवका स्थान है जिसे भगवान् विष्णुका भी स्थान समझना चाहिये। समस्त ज्योतिष्कमण्डल ही इस ध्रुवको स्तम्भ करके निरन्तर परिभ्रमण करते हैं। (भागवत ५।२४ अ०) २३ रोमावर्त्तभेद, शरीरकी भौंरी। इस रोमावर्त्तके दश भेद हैं वक्षस्थलमें दो, मस्तकमें दो, रन्ध्र और उपरन्ध्र इन दोनोंमें दो दो अर्थात् चार, भालदेश और अपानमें एक एक करके अर्थात् दो, इन्हीं दश रोमावर्त्तोंका नाम ध्रुव है। २४ नक्षत्रगणविशेष, फलित ज्योतिषमें एक नक्षत्रगण। इसमें उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और रोहिणी हैं। २५ उत्प्रेक्षा, ध्रुवशब्द उत्प्रेक्षाद्योतक है, अर्थात् ध्रुव इस शब्दका प्रयोग रहनेसे कहीं कहीं उत्प्रेक्षार्थ हुआ करता है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि क्रोध और भयमें, ध्रुव आदि शब्द उत्प्रेक्षावाचक है। २६ ग्रहनक्षत्रादिका आनयनोपयोगी अङ्कभेद। २७ सोमभेद। २८ शकुनि प्रभृति करचतुष्क, शकुनी आदि नामके चार करण 'यथा—शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न। २९ धार्मिक स्त्री। ३० वह गाय जो दूहते समय शान्तरूपसे खड़ी रहे। ३१ नियत समय। ३२ सोमरसका वह भाग जो प्रातःकालसे सायंकाल तक बिना किसी देवताको अर्पित हुए रक्खा रहे। ३३ रगणका अठारहवां भेद जिसमें पहले एक लघु, फिर एक गुरु और फिर तीन लघु होते हैं। ३४ ताल्का एक रोग। इसमें ललाई और सूजन आ जाती है। ३५ ग्रन्थि, गांठ। ३६ पर्वत, पहाड़। ३७ अवहल, धोखा पेट। ३८ भूगोल विद्यामें पृथ्वीका अक्षदेश। इसका विवरण भौगोलिकोंने इस प्रकार किया है—

पृथ्वी लट्टूकी तरह घूमती हुई सूर्यको परिक्रमा करती है। एक दिन रातमें उसका इस प्रकारका घूमना एक बार हो जाता है। जिस तरह लट्टूके ठीक बीचमें एक कील लगी रहती है जिस पर वह घूमता है, उसी तरह पृथ्वीके गर्भकेन्द्रसे गई हुई एक अक्षरेखा मानी गई है। यह अक्षरेखा जिन दो सिरों पर निकली हुई मानी गई है उन्हें ध्रुव कहते हैं। ध्रुवके दो भेद हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या कुमेरु। इन स्थानोंसे २३½ अंश पर पृथ्वीके तल पर एक एक वृत्त माने गये हैं जिन्हें उत्तरी और दक्षिणी शीतकटिबन्ध कहते हैं। जो प्रदेश ध्रुवों और इन वृत्तोंके बीचमें पड़ते हैं, वे अत्यन्त ठंढे हैं, उनमें समुद्र आदिका जल सदा जमा रहता है। इस लोगोंको २४ घण्टोंका दिन रात होता है, पर ध्रुवप्रदेशमें वर्ष भरका होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं, तब तक उत्तरी ध्रुव पर दिन और दक्षिणी ध्रुव पर रात और जब तक दक्षिणायन रहते हैं, तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और उत्तरी ध्रुव पर रात रहती है। इससे स्पष्ट है कि वहां छः महीनेकी रात और छः महीनेका दिन होता है। इसी तरह वहां सवेरे और शामका समय भी लम्बा होता है। जिस तरह यहां सूर्य और चन्द्रमा पश्चिमसे पूर्व और पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाते मालूम पड़ते उस तरह वहां नहीं मालूम पड़ते, बल्कि चारों ओर कोल्हूके बैलकी तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं। वहां सवेरे और शामकी ललाई क्षितिजके ऊपर बीसों दिन तक घूमती दीख पड़ती है। शब्दकी गति ध्रुवप्रदेशमें बहुत तेज होती है। इस भूभागमें सबसे मनोहर मेरु ज्योति है जो भांति भांति वर्णोंके आलोकके रूपमें कुछ काल तक दिखाई देती है।

ध्रुवक (सं० पु-) ध्रुव-स्वार्थे कन्। १ स्थाणु, थून, खंभा। २ गीतादिविशेष, ध्रुपद नामक गीत। इसके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम, छः दण्डा

उत्तम, बीच पंद्रहको मध्यम और और पन्द्रहका अधम माना गया है। विशेष विवरण ध्रुवक शब्दमें देखो। ६ नक्षत्रका दूरत्व, नक्षत्रकी दूरी। मीनराशिके शेषसे जिस नक्षत्रका योग-तारा जितनी दूरी पर रहता है उतनीको उस नक्षत्रका ध्रुवक (Celestial longitude) कहते हैं।

ध्रुवका (सं॰ स्त्री॰) ध्रुवक टाप्। ध्रुवा ध्रुपद।

ध्रुवकेतु (सं॰ पु॰) केतुभेद, एक प्रकारका केतु तारा। ध्रुव नामक एक प्रकारका केतु है। इसके आकार, वर्ण, प्रभाव वा गतिकी कोई स्थिरता नहीं है। इसके तीन भेद माने गये हैं, दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम। यह स्निग्ध और अनियतका कहलाता है। यही ध्रुवकेतु विनाशप्राप्ती राजाओंके सेनाङ्गमें वा विनाशशील देशके घरों पर प्रायः ही देखा जाता है। (वृहत्सं॰)

ध्रुवक्षित् (सं॰ त्रि॰) ध्रुवे स्थिरे यज्ञे क्षियति निवसति। यज्ञमें वासकारी, यज्ञमें रहनेवाला।

ध्रुवक्षिति (सं॰ स्त्री॰) 'ध्रुवा स्थिरा क्षितिर्निवासो यस्य'। स्थिरनिवास, जिसका वासस्थान दृढ़ हो।

ध्रुवक्षेम (सं॰ त्रि॰) ध्रुवक्षेम' भावो यस्य। स्थिर निवास।

ध्रुवगति (सं॰ स्त्री॰) ध्रुवा गतिः। ध्रुवपद।

ध्रुवघाट—तीर्थविशेष। मथुराके जिस स्थानमें महात्मा ध्रुवने तपस्या की थी, उस स्थानको ध्रुवघाट कहते हैं।

ध्रुवचरण (सं॰ पु॰) बहुतालक तालके भेदोंमेंसे एक।

ध्रुवच्युत (सं॰ त्रि॰) निश्चल पर्वतादिका च्युतकारक, अचल पर्वत आदिको हिलानेमें चलानेवाला।

ध्रुवतारा (Pole-star or Polaris) मेरुके अग्रभागमें विद्यमान तारका, यह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरुके ऊपर रहता है। आर्य ज्योतिषियोंका मत है, कि मेरुके ऊपर अर्थात् मेरुके दक्षिणाग्र और उत्तराग्रके ऊपर आकाशमें दो तारे हैं जिन्हें ध्रुवतारा कहते हैं। जिस तरह गाड़ीके पहियेके बीचोबीच धुरेको जिसके सहारे पहिया घूमता है धुरा या अक्षदण्ड कहते हैं उसी तरह उत्तर और दक्षिणाकाशस्थित इन तारों को अक्ष बना कर राशिचक्र चक्राकार घूमा करता है। इसी कारण ये दोनों तारे ध्रुव कहलाते हैं।

यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके मतानुसार जो उज्ज्वल नक्षत्र किसी समय सुमेरुके बहुत समीप आ जाता है, उसे सुमेरु-नक्षत्र (North star) और सुमेरुसे जिस तारेका व्यवधान सबसे कम होता है, उसे ध्रुवतारा (Pole-star) कहते हैं। अतएव पृथ्वीके अक्षबिन्दुको खींचनेसे जब जो तारा सबसे कम हट कर होता है, तब वही ध्रुवतारा कहलाता है। आज कल Ursa major नक्षत्रके प्रथम तारेको ध्रुवतारा कहते हैं। जिस प्रकार सप्तर्षिमें (Ursa major) सात तारे हैं, उसी प्रकार शिशुमार नामक तारकपुञ्ज अन्तर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातोंमें ध्रुव पहला और सबसे उज्ज्वल है। यह सुमेरुसे १॥ अंश मात्रकी दूरी पर है और इसकी गति बहुत सामान्य है। अयनवृत्तके चारों ओर नाड़ीमण्डलके मेरुकी गतिके अनुसार (प्रायः २१०० ई॰में) यह तारा मेरुको पीछे छोड़ता हुआ उस की सीधसे बहुत हट जायगा और तब अभिजित् नामक नक्षत्र ध्रुवतारा होगा। हिपार्कसके समयमें (१५६ पूर्वाब्दमें) यह तारा सुमेरुसे १२ अंशकी दूरी पर था और १८०१ ई॰में २ अंश २ कला दूरवर्ती हुआ। अभी केवल डेढ़ अंशकी दूरी पर है। दो हजार वर्ष पहले भगवान नक्षत्रका दूसरा तारा और पाँच हजार वर्ष पहले थूबन तारा (Thuban or alpha Draconis) ध्रुवतारा था। अभी ये सब आकाशमें ध्रुवसे बहुत दूरमें अवस्थित हैं।

आर्य हिन्दुओंके विवाह मन्त्रमें ध्रुवताराका उल्लेख है। इससे अनुमान किया जाता है, कि आर्य ऋषिगण अत्यन्त प्राचीन कालसे ही ध्रुवताराके विषयमें अवगत थे।

विख्यात यूरोपीय ज्योतिर्विद् बेलिने आयनिक गतिकी गणना द्वारा स्थिर किया है कि हिन्दुओंने प्रायः ३००० वर्ष पहले ध्रुवताराका आविष्कार किया था।
ज्योतिष शब्द देखो।

यूरोपीय ज्योतिर्विदोंने गणना करके स्थिर किया है कि आजसे १२००० वर्ष बाद अभिजित् नामक नक्षत्र ध्रुवतारा कहलावेगा। किसी किसी यूरोपीय ज्योतिर्विद्ने यह भी कहा है, कि अभी इसलोग

इसे देख नहीं सकते हैं सही, किन्तु हमलोगोंकी दृष्टि-परिच्छेदक रेखाके बाहर भूगोलार्द्धमें एक और ध्रुवतारा दिखाई पड़ेगा।

देवी-भागवतमें लिखा है—सप्तर्षि-मण्डलके ऊपर १३ लाख योजनकी दूरी पर विष्णुका परमपद है। वहीं ध्रुव इन्द्र, अग्नि, काश्यप और धर्मके साथ मिल कर उक्त पद पर विराजमान हैं। स्वयं परमेश्वरने इसध्रुवको स्पष्ट वेगशाली कालचक्रमें निरन्तर भ्रमणशील समस्त ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्मण्डलीका अवलम्बन-स्तम्भस्वरूप बनाया है। यह ध्रुव अपनी प्रतिभासे प्रतिभात हो कर सब जगह प्रकाश देते हैं। जिस तरह जूएमें लगा कर पशुगण जोते जाते हैं, उसी तरह ग्रहादि और नक्षत्रादि अन्तर्वहिर्विभागके क्रमसे कालचक्रमें नियोजित हो कर ध्रुवका अवलम्बन करते हैं और कालत्रय-मण्डल-गतिसे घूमते हैं तथा वायुसे प्रणोदित हो कर तेजोसे विचरण करते हैं। (देवीभा० ८म स्कन्ध १७वां अ०)

ध्रुवदर्शक (सं० पु०) १ सप्तर्षि-मण्डल। २ कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन (सं० पु०) विवाहके संस्कारके अन्तर्गत एक कृत्य। इसमें वर वधूको मन्त्र पढ़ कर ध्रुव तारा दिखाया जाता है।

ध्रुवदेव—नेपालके लिच्छवि-वंशीय एक राजा। शिला-लिपिमें इनकी उपाधि 'भट्टारक' और 'महाराज' देखी जाती है। इनकी राजधानी मानगृहमें थी। इनकी बहन ध्रुवदेवीके साथ गुप्तसम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्तका विवाह हुआ था। ये ३६७ ई०में वर्त्तमान थे। इनके राजत्व-कालकी उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है जिसमें सम्वत् ४८ लिखा हुआ है। गुप्तराजवंश देखो।

ध्रुवधेनु (सं० स्त्री०) वह गाय जो दुहते समय चुपचाप खड़ी रहे।

ध्रुवनन्द (सं० पु०) नन्दके एक भाईका नाम।

ध्रुवपद (सं० पु०) ध्रुवक, ध्रुपद।

ध्रुवपाल—नागार्जुनतन्त्र और नागार्जुनीय-योगशतकके रचयिता।

ध्रुवभट—१ प्राचीन परमार-वंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम धन्धुक था। देलवाड़ासे आविष्कृत सोमे-श्वरकी प्रशस्तिमें इनका उल्लेख है।

२ बड़वानके चापवंशीय एक राजा, पुलिकेशिके पुत्र। चाप देखो।

३ गुजरातके वलभीराजवंशीय एक राजा। वलभी राजवंश शब्द देखो।

ध्रुवमत्स्य (सं० पु०) दिशाओंका ज्ञान जाननेका एक यन्त्र, कुतुबनुमा।

ध्रुवरत्ना (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, एक मातृका जो कुमार या कार्त्तिकेयकी अनुचरी है।

ध्रुवराज—गुजरातके राष्ट्रकूट वंशीय एक राजा, कृष्ण-राजके पुत्र। राष्ट्रकूटवंश देखो।

ध्रुवरेखा (सं० स्त्री०) विषुवरेखा।

ध्रुवलोक (सं० पु०) ध्रुवाधिष्ठितो लोकः। सत्यलोकके अन्तर्गत एक लोक जहां ध्रुव स्थित हैं।

ध्रुवस् (सं० त्रि०) ध्रुव-असुन्। ध्रुवनिवास, जो दृढ़ता-से स्थित है।

ध्रुवसन्धि (सं० पु०) १ कुशवंशीय हिरण्यनाभके पुत्र। (भाग० ९।१२।५) २ सूर्यवंशीय सुसन्धिके पुत्र। (रामायण १।७१ अ०)

ध्रुवसिद्धि (सं० पु०) अग्निमित्रकी सभाका एक भिषक्।

ध्रुवसेन—वलभी-वंशीय एक राजा। वलभीराजवंश देखो।

ध्रुवा (सं० स्त्री०) ध्रुवत्यनया, ध्रु स्थैर्ये, बाहुलकात् क ततष्टाप्। १ यज्ञपात्रभेद, एक प्रकारका यज्ञपात्र जो वैकण्डकी लकड़ीका बनता है।

कोई कोई जुहू नामक यज्ञपात्रको ध्रुवा बतलाते हैं। वटके पत्तोंके सदृश आकृति-विशिष्ट यज्ञपात्रको भी जुहू कहते हैं, किन्तु जुहू और ध्रुवा दोनों ही विभिन्न पात्र हैं। जो इन दोनोंका एक अर्थ लगाते, वे भूल करते हैं। २ मूर्वा, मरोड़फली। ३ आदी, एक प्रकारको मछली। ४ शालपर्णी, सरिवन। ५ साध्वी स्त्री, सती स्त्री। ६ गीतभेद, ध्रुवक या ध्रुपद गीत। अनेक प्राचीन पुस्तकों-में 'ध्रु' 'ध्रुव' यह सङ्केतयुक्त जो गीत या गीतवत् अंश प्रति अध्यायके प्रारम्भमें देखा जाता है, उसे ध्रुवक कहते हैं। पूर्वकालमें सभी काव्य गाये जाते थे। जो दोहेका होता था, वह प्रति कविताके बाद इसी ध्रुवक द्वारा सुरकी रक्षा करता था।

ध्रुवानन्दमिश्र—भट्टनारायण-वंशके एक विख्यात कुलाचार्य।

ध्वंसित (सं० त्रि०) ध्वन्स-णिच्-क्त। विनाशित, नष्ट किया हुआ।

ध्वंसिन् (सं० त्रि०) ध्वंस णिनि। १ नाश प्रतियोगी, जिसका नाश हो, कोई कोई ध्वंसिन् शब्दका अर्थ त्रस-रेणु अर्थात् सूक्ष्मकण लगाते हैं।

"जालान्तरगते सूर्यकरे ध्वंसी विलोक्यते।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयस्त्रिंशता परमाणुभिः॥"
(वैद्यकपरिभाषा)

झरोखे हो कर सूर्यकी किरण जानेसे 'ध्वंसी' देखा जाता है, यहां ध्वंसी शब्दका अर्थ त्रसरेणु अर्थात् सूक्ष्मकण है। इस तरहकी कल्पना भूल समझी जाती है, क्योंकि यहां ध्वंसी यह त्रसरेणुका विशेषण है। उस जगह इस प्रकार अर्थ होना चाहिये,—नाशके प्रतियोगी अर्थात् ध्वंसविशिष्ट समस्त त्रसरेणु देखे जाते हैं। ध्वंस-णिच्-णिनि। २ नाशकारक, नाश करनेवाला। (पु०) ३ पर्वतसम्भव पीलूवृक्ष, पहाड़ी पीलूका एक पेड़।

ध्वज (सं० पु०) ध्वजोऽस्यास्ति ध्वज अर्श आदित्वात् अच्। १ शौण्डिक। ध्वजा ले कर चलनेवाला आदमी।

"दशसूनासमः चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः।
दशध्वजसमो वेशो दशवेश्यसमो नृपः॥" (मनु ४।८५)

शौण्डिक अर्थात् सूंडी ध्वजा उठा कर जीविका निर्वाह करते हैं, इसीसे शौण्डिकको ध्वज वा ध्वजवान् कहते हैं। ये लोग अत्यन्त नीच समझे जाते हैं। दश सूनावान्में अर्थात् मांस बेचनेवालोंमें जो दोष है वह एक चक्रवान् तैलिकमें दोष है और दश तैलिकमें जो दोष है वह एक ध्वज अर्थात् ध्वजवान् शौण्डिकमें दोष पाया जाता है। कसाईके पशुवध स्थानको सूना कहते हैं। कोल्हूकी घानीको चक्र और ध्वजा उड़ानेवाले सूंड़ीको ध्वजवान् कहते हैं। ध्वजति उच्छ्रितो भवति ध्वज 'पचाद्यच्' इति अच्। २ खट्वाङ्ग, खाटको पट्टी। ३ मेढ्र, लिङ्ग। ४ चिह्न। ५ गर्व, दर्प, अभिमान। ६ पूर्वदिक्स्थित गृह। ७ पताकादण्ड। इसका पर्याय केतन है। ८ चतुष्कोणाकार वंशदण्डोपरिस्थित वस्त्रखण्डभेद, झण्डा, निशान। इसका विधान युक्ति-कल्पतरुमें इस प्रकार लिखा है—

"सेना चिह्नं क्षितीशानां दण्डो ध्वज इति स्मृतः।
सपताको निष्पताकः सज्ञेयो द्विविधो बुधैः।" (युक्तिकल्पतरु)

राजाओंके सेनाचिह्नस्वरूप जो दण्ड होता है उसी-का नाम ध्वज है। यह ध्वज दो प्रकारका है सपताक और निष्पताक। ध्वजका दण्ड बकुल, शाल, पलाश, चम्पक, कदम्ब और निम्ब आदिका होता है। किन्तु इन सबकी अपेक्षा वंशदण्ड ही श्रेष्ठ है। जया, विजया, भीमा, चपला, वैजयन्तिका, दीर्घा, विशाला और लोला ये ८ प्रकारके ध्वज हैं। इनमेंसे जया नामक जो ध्वज है उसका दण्ड पांच हाथ और विजयादि ध्वजका दण्ड उत्त-रोत्तर एक एक हाथ बढ़ता जायगा। सभी पताकाओं-का वर्ण रक्त, श्वेत, अरुण, पीत, चित्र, नील, कर्बूर और कृष्ण हो सकता है। जिस पताकामें गजादि अङ्कित रहता है उसका नाम जयन्ती है। इस प्रकारका पताका सर्वमङ्गलदायिनी समझी जाती है। गजादि शब्दसे गज, सिंह, हय और द्वीपीका बोध होता है। राजाओं-के हंसादि चिह्नयुक्त जो सब पताका रहती है उसे अष्ट-मङ्गला कहते हैं, हंसादि शब्दसे हंस, केकी और शुक समझा जाता है। चामरादि चिह्नयुक्त जो पताका है उसे सर्व बुद्धिदा कहते हैं। पताकाके अग्र भाग पर सुवर्ण, रजत और ताम्र अथवा नाना धातुका कुम्भ बनाना होता है और उन्हें रत्नादिसे खचित करना उचित है। ऐसी पताकाको सपताक ध्वज कहते हैं। निष्पताक ध्वजके भी सभी दण्ड पहलेके समान होते हैं।

दण्ड, पद्म, कुम्भ, विहग और मणि ये छः पदार्थ जिन सब दण्डोंमें जड़े रहते हैं उन्हें निष्पताक ध्वज कहते हैं। यह भी राजाओंके मङ्गलजनक है। जहां वंश निर्मित ध्वज होगा, वहां व्रणादि युक्त न हो, ताम्रका दण्ड हो सकता है। (युक्तिकल्पतरु)

ध्वजदानकी विधि देवीपुराणमें इस प्रकार लिखी है—वस्त्र निर्मित हो अथवा अन्य वस्तुका हो लेकिन हो सभी ध्वज नूतन, समान, अचल और चिक्कण। ध्वजमें जिससे केशादि कोई अपवित्र वस्तु रहने न पावे, इस पर विशेष ध्यान रहे। यह दण्डलम्बित करके प्रासादके ऊपर रख देना चाहिये। यदि यह शैल वा धातुनिर्मित हो तो भी उसका समान, चिक्कण और मसृण होना उचित है। इसमें

कर्पूर और रोचना मिश्रित करके पटके मध्य एक सर्व लक्षणसम्पन्न सिंहकी मूर्त्ति अङ्कित कर उस पटको प्रासादके शृङ्ग पर चढ़ा देना चाहिये। ध्वजपार्श्वमें अपने अपने वाहनके साथ दशदिक्पालको मूर्त्ति अङ्कित रहे। किङ्किणी, चामर, घण्टा दर्पण आदि द्वारा उसे शोभित कर यथाविधि होमादि और देवी भगवतीका पूजन करे। पीछे ध्वजोत्तोलन करना होता है। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे विपक्षदल नाश होता है और सभी कामनायें सिद्ध होती हैं। पश्चात् स्वर्ण रौप्य ताम्र, वर्त्तिका वा प्रस्तरादि द्वारा एक सिंह इस प्रकार बनाना चाहिये। जिसे देखनेसे मालूम पड़े कि वह सिंह मानो किसी मदमत्त हाथीको विदारण कर रहा है और नख प्रहार द्वारा करिकुम्भसे मुक्तावलि निकाल रहा है। इस प्रकार सिंहका निर्माण कर पुनः देवीकी पूजा करनी होती है। ध्वजारोहणके समय ब्राह्मण और कुमारी भोजन कराना होता है। पीछे अष्टादश अक्षर वज्रमन्त्र जप करके मङ्गल शब्द पूर्वक सिंहको स्तम्भ पर आरोहण करे और वेदध्वनि द्वारा सिंहका ध्यान करे। तदनन्तर वस्त्राभरण-भूषित देवीका महाध्वज स्थापन कर अन्यान्य देवताओंके भी ध्वज स्थापन करे। ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र, रुद्र, चन्द्र, सूर्य आदि देवताओंका ध्वजदान सर्वश्रेष्ठ दान समझा जाता है। जब तक ध्वजदान न किया जाय तब तक प्रासादमें कोई देवचिह्न न रहे। भूत, नाग गन्धर्व और राक्षस आदि शून्यध्वजके प्रासादमें नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। इसीसे गृहद्वार, प्रासाद, पर्वत और नगरमें ध्वजदान करना शक्तिशाली मनुष्योंके लिये उचित और हितकर है। जो मनुष्य विधिपूर्वक इस प्रकार ध्वजदान करते हैं उनके सभी अभिलाष सिद्ध होते हैं और अन्तकालमें उन्हें शिवलोक की प्राप्ति होती है। ऐसे मनुष्योंके साथ सम्भाषणादि करनेसे भी पापक्षय होता है। अतिथि राजगण आचार पूत हो कर भक्तिपूर्वक गरुड़, चक्र धनु ताक्ष्य, हंस, मयूर, पक्षी आदि चित्रित ध्वजपट उत्तोलन करे। ऐसा करनेसे उन्हें दुःख, व्याधि और भय, आक्रमण भय, ग्रह पीड़ा आदि किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं होता।

(देवीपुराण)

ध्वजवृक्ष (सं० पुं०) ध्वजाय युक्तः वृक्षः शाकपार्थिववत्। १ ध्वजयुक्त वृक्ष वह घर जिसमें पताका फहराया जाता है। २ वह घर जिसमें पताका रखा जाता है।

ध्वजपोत (सं० पुं०) ध्वज इव पोता यस्य। रावणके दल, एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१२१ अ०)

ध्वजद्रुम (सं० पुं०) ध्वज इव उन्नतो द्रुमः। १ ताल वृक्ष, ताड़का पेड़। यह ध्वजाकी नाईं बहुत ऊँचा रहता है इसीसे इसका नाम ध्वजद्रुम पड़ा है।

ध्वजप्रहरण (सं० पुं०) ध्वजं प्रहरति नाशयति भन-क्तीति प्र-हृ-ल्यु। वायु हवा।

ध्वजभङ्ग (सं० पुं०) ध्वजस्य मेढ्रस्य भङ्गः। क्लीवताजनक रोगविशेष, क्लीवता, नपुंसकता, नामर्दीकी बीमारी। चरक संहितामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

'अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धासात्म्यभोजनात्।
अत्यम्बुपानाद्विषमात् पिष्टान्नगुरुभोजनात्॥
दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात्।
कन्यानाञ्चैव गमनादयोनिगमनादपि॥
दीर्घरोगां चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम्।
दुर्गन्धां दुष्टयोनिञ्च तथैव च परिस्नुताम्॥
ईदृशीं प्रमदां मोहाद् यदि गच्छति मानवः।
चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः॥
अधावनाच्च मेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात्।
काष्ठप्रहारनिष्पेषाच्छूकानाञ्चातिसेवनात्॥
रेतसश्च प्रतीघाताद्ध्वजभङ्गः प्रजायते।' (चरक)

यदि कोई पुरुष अत्यधिक अम्ल, लवण वा क्षार भोजन, विरुद्ध भक्षण विषमाम्बुपान, पिष्टकादि गुरु भोजन, अतिरिक्त दधि क्षीर वा आनूप मांसभोजन व्याधिकर्षक कन्याकी (नारी)-गमन, विद्यानिगमन, दीर्घरोगा और चिरपरित्यक्ता स्त्रीके साथ सहवास करे तथा रजस्वला, दुष्टयोनि और दुर्गन्धि योनिस्रावयुक्त चतुष्पदादिमें मोहयुक्त उपगत हो तथा मैथुनके बाद यदि न धोवे और यदि शस्त्र, दन्त वा नखसे क्षत हो जाय अथवा काष्ठप्रहार द्वारा निष्पीड़ित हो जाय तथा शूक सेवन और वीर्यका प्रतिरोध करे तो उसके ध्वजभङ्ग रोग हो जाता है। इस रोगको क्लैब्य (अर्थात् नामर्दी) कहते हैं। यही कारण है कि सुश्रुत आदिमें इसको गिनती

क्लैव्यरोगमें की गई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि ध्वजभङ्ग होने पर शिश्नकी उत्तेजनाके अभाव हेतु, वह फिर उत्थित नहीं होता—मैथुन करनेमें असमर्थ हो जाता है। इसका कारण यह है, कि यदि कोई रमणीच्छु व्यक्ति भय, शोक वा क्रोधादि द्वारा किंवा अहृद्य सेवन हेतु अथवा अनभिप्रेता द्वेष्टा स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उसके द्वारा मन अप्रसन्न होता और ध्वजभङ्ग अर्थात् शिश्नकी उत्तेजना नष्ट होनेसे क्लीवता (नामर्दी) उत्पन्न होती है, इसको मानसक्लैव्य कहा जा सकता है

अतिरिक्त कटु, अम्ल, लवण और उष्ण द्रव्य खानेसे अत्यन्त पित्तवृद्धि होती है और उससे शुक्रक्षय होता है, इसीलिए ध्वजभङ्ग अर्थात् शिश्नकी उत्तेजना मन्द हो जाती है। इसे पित्तक्लैव्य कहते हैं।

जो लोग वाजीकरण औषध सेवन न कर हदसे ज्याद मैथुन सेवन करते हैं, उनके ध्वजभङ्ग या क्लीवता हो जाती है। अत्यधिक मेढ्र रोग होनेसे भी ध्वजभङ्ग हो जाता है और उससे ४र्थ प्रकारका क्लैव्य उत्पन्न होता है।

वीर्यवाही शिराका छेदन करनेसे ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता उत्पन्न होती है।

बलवान् व्यक्तिके अत्यन्त कामासक्त होने पर यदि वह मैथुन न कर शुक्रके वेगको धारण करे, तो उसमें भी ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता आ जाती है।

जन्मकालसे ही क्लीव होने पर उसे सहज क्लैव्य रोग कहते हैं। यह जन्म क्लैव्य असाध्य है, तथा वीर्यवाहिनी शिराछेदजन्य ध्वजभङ्ग भी असाध्य है। साध्य-क्लैव्यरोगमें हेतुके विपरीत कार्य करना चाहिए। कारण, निदान परिवर्जन ही सब प्रकार चिकित्साओंसे श्रेष्ठ उपाय है। ध्वजभङ्ग वा क्लीवतामें वाजीकरण औषध ही प्रशस्त है। व्याधिहीन मनुष्य १६ वर्षके बाद ७० वर्ष पर्यन्त कायशोधन कर वाजीकरण औषध सेवन कर सकता है, इससे आयु, काम और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है। १६ वर्षसे कम तथा ७० वर्षसे ज्यादा उम्रवालोंको वाजीकरण औषधियां खानी चाहिये। अतिरिक्त स्त्री-संसर्गसे ध्वजभङ्ग उपदंश आदि नाना प्रकारके रोग उपस्थित होते हैं और उनसे अकालमृत्यु होती है।

विलासी, अर्थशाली और रूपयौवनसम्पन्न मनुष्योंको तथा जिनके कई स्त्रियां हैं, उनको वाजीकरण औषध सेवन करनी चाहिए। वृद्ध, रमणेच्छु, मैथुन हेतु क्षीण, क्लीव और अल्प शुक्रविशिष्ट शक्तियोंको तथा जो व्यक्ति स्त्रियोंके प्रिय होना चाहते हैं, उनके लिए यह हितकर प्रीतिकर और बलप्रद है। (भावप्र०)

सुश्रुतमें लिखा है—ध्वजभङ्ग होने पर पुरुष क्लीवताको प्राप्त होता है। यदि कोई रमणेच्छु व्यक्तिके अन्तःकरणमें अप्रिय भावका उदय हो, अथवा अप्रिय स्त्रीके साथ सङ्गति होनेसे मनः क्षुण्ण हो, तो ध्वजभङ्ग हो कर क्लीवता आ जाती है। इसको मानसिक क्लीवता कहते हैं। कटु, अम्ल, उष्ण और लवण ये रस यदि अधिकतासे खाये जावें, तो भी सौम्य धातुका क्षय होने लगता है और उससे ध्वजभङ्ग रोग हो जाता है। वाजीक्रिया बिना किये अतिशय स्त्री-सङ्गम करनेसे शुक्रधातुका क्षय होनेके कारण इस रोगकी उत्पत्ति होती है। अत्यन्त मेढ्ररोगके कारण या मर्मच्छेद-वशतः पुरुष-शक्तिमें व्याघात होने पर भी यह रोग उत्पन्न होता है। सहज क्लैव्य और मर्मच्छेदजन्य क्लैव्य असाध्य है। जिन जिन कारणोंसे जैसे जैसे क्लीवता उत्पन्न होती है, उन उन कारणोंके विपरीत क्रिया द्वारा उनका प्रतीकार किया जा सकता है। सुरतसन्दीपनी-शक्तिके तारतम्यानुसार वाजीकरणके योगोंको निम्नलिखित तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है।

१म श्रेणीस्थ योग—तिल, उरद, जमीकन्द और शालीतण्डुलके चूर्णको वराहके मेद और सैन्धवके साथ पौण्ड्रक इक्षुके रसमें घोंट कर गोली बना लें; उन गोलियोंको घीमें पाक कर यथासाध्य परिमाणमें सेवन करनेसे यह रोग अच्छा हो जाता है। छागका कोष दुग्धके साथ पकावें. उस दुग्धमें काले तिलको पुनः पुनः भावित करें और फिर उस तिलसे पिष्टक बना कर शिशुमारकी चर्बीमें पाक करें। इसको यथासाध्य सेवन करना चाहिए। छागके कोष, पिप्पली और लवणसे दूध और घीको पका कर सेवन करना चाहिए। उरद, जमींकन्द, और लहसुनको दूधमें पका कर घी और चीनीके साथ खाना चाहिए। ये योग वाजीकरणके लिए बहुत उमदा हैं।

२य श्रेणीस्थ योग—पिप्पली, उरद, शालि तण्डुल,

साधर रोगोंमें, ऐसा भी देखनेमें आता है कि बहुतसे रोगियोंका स्वास्थ्य तो बुरा नहीं, पर सामान्य मानसिक दुर्बलता वा शारीरिक स्थानविशेषकी दुर्बलताके कारण इस अप्रीतिकर रोगसे उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसी जगहमें दूंढ़ वार चिकित्सा कराना बहुत ही लाभदायक है। ऐसे रोगोंमें परिपाकक्रिया और वीर्य-क्रियाका वर्द्धन, उद्भिज्ज वा धातपुष्टिकर औषधादिका सेवन करना फायदेमन्द है। इस रोगमें निर्झर स्नान (फुहारेके पानीसे स्नान) समुद्र-स्नान (नुनखरे पानीसे नहाना), अनावृत स्थानमें शारीरिक चालना, अपने विषयमें मन लगाना आदि लाभदायक है। यदि शौचवेगके साथ वा रमणेच्छासे उद्रेकके साथ साथ रोगीका वीर्य-स्खलन हो अथवा स्वप्नदोष होता हो, तो शीतवीर्य पुष्टि-कर औषधादिकी व्यवस्था करनी चाहिए। धातवाल्म-घटित औषधियों भी इस अवस्थामें उपयोगी हैं।

अपरिमित रमणसे जो रोग उत्पन्न होता है, उसके प्रभावसे रोगी प्रवृत्ति दमन करनेमें किसी तरह भी समर्थ नहीं होता। समुद्र-स्नान ही इसकी महौषधि है। इस रोगका कारण अधिकांश स्थलोंमें अनैसर्गिक उपाय से वीर्य मोचण करना ही अनुमित होता है। इस रोगमें स्त्री-सङ्गम बिलकुल बन्द कर देना उचित है।

इन रोगोंमें सामान्यत: (पूर्वकालमें और अब भी) क्या सभ्य और क्या असभ्य, सभी समाजमें उत्तेजक और उष्णवीर्य औषधादि व्यवहृत होती हैं। परन्तु इससे बहुत हानि होती हैं। इन रोगोंमें साधारणत: कस्तूरी, अम्बारग्रिस, कन्थाराइडिस, फस्फरस, अफीम, लवङ्गादि उष्णवीर्य मसाले, काफी, सुहागा, केशर, हींग आदिका व्यवहार होता है तथा कबूतरका मांस, अण्डे, सीप आदि पथ्यरूपमें व्यवहृत होता है, परन्तु यह व्यवस्था अच्छी नहीं—हानिकर है।

ध्वजयन्त्र (सं० क्ली०) वह यन्त्र जिसमें ध्वजाका डंडा रखा रहता है।

ध्वजयष्टि (सं० स्त्री०) ध्वजदण्ड, पताकाका डंडा।

ध्वजवत् (सं० त्रि०) ध्वजचिह्नं विद्यतेऽस्य, ध्वज मतुप् मस्य वः। १ चिह्नयुक्त, चिह्नवाला। २ केतनयुक्त, पताका-धारी, जो ध्वजा या पताका लिये हो। ३ जो ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणको हत्या करके प्रायश्चित्तके लिये उसकी खोपड़ी ले कर भिक्षा मांगता हुआ तीर्थोंमें घूमे। (पु०) ४ शौण्डिक कलवार। स्त्रियां ङीप्। ५ रुचिमे धाकी एक कन्याका नाम। (भारत उ० २०९ अ०)

ध्वजांशुक (सं० क्ली०) ध्वजस्य अंशुकं ६-तत्। ध्वज या निशानका कपड़ा।

ध्वजा (हिं० स्त्री०) १ पताका, झण्डा, निशान। २ छन्दःशास्त्रानुसार ठगणका पहला भेद। इसमें पहले लघु फिर गुरु होता है। ३ एक प्रकारकी कसरत। इसके दो भेद हैं, मलखंभ और चोरंगी। यह कसरत मलखंभ पर तोलके ही समान की जाती है। सिर्फ इतना फर्क है कि इसमें मलखंभको हाथमें लपेट कर उसके एक बगलमें सारा शरीर सीधा करके तौलना पड़ता है। संस्कृतमें इसका नाम ध्वज है। चोरंगीमें हाथ पाँव फैला कर चारकोने ठीक दिखाए जाते हैं और दोनों पांव खूंटोंसे बांध कर खड़े रखे जाते हैं।

ध्वजाग्रकेयूर (सं० क्ली०) बोधिसत्त्वोंका योगाङ्गभेद।

ध्वजाग्रनिशामनि (सं० पु०) बुद्धशास्त्रोक्त गणनाका उपायभेद।

ध्वजाग्रवती (सं० स्त्री०) गणनाका उपायभेद।

ध्वजादिगणना (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त गणनाभेद, फलित ज्योतिषके अनुसार एक प्रकारकी गणना। इसमें ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है। यदि कोई व्यक्ति शुभाशुभ आदिका प्रश्न करे, तो इस चक्रके अनुसार बहुत ही आसानीसे उस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है। इस चक्रमें नौ घर वा कोष्ठ होते हैं। इनमेंसे पहले घरमें जिस विषयका प्रश्न होता है वही सन्निवेशित होता है। फिर आगे दूसरे घरमें ध्वजसंज्ञा, वर्ग, ग्रह, राशि और फलाफल, तीसरे घरमें धूम्रसंज्ञा; चौथे घरमें सिंह; पांचवें घरमें श्वान, छठवें घरमें वृष, सातवें घरमें गज और नवें घरमें ध्वाङ्क्ष रहते हैं। हरएक घरमें जो संज्ञा है, उसका वर्ण, ग्रह, राशि और फलाफल भी लिख देना चाहिये। गणना करनेकी प्रणाली इस प्रकार है—प्रश्नकर्त्ताकी मानसिक विषय गणकके निकट स्पष्ट रूपसे कह देना चाहिये। बाद प्रश्नकर्त्ताको किसी फलका नाम लेना पड़ता है। जिस फलका नाम कह

और मृदङ्ग आदिसे जो शब्द निकलता है, उसे वाद्यादि, माधवादि, रागव्यञ्जक निषधादि द्वारा जो शब्द होता है उसे गीतिरूप और कण्ठताल्वादिके अभिघातसे ककारादि वर्णरूप जो शब्द होता है, उसे वर्णात्मक कहते हैं। (शब्दार्थरत्न०)

वेदान्तदर्शनके शारीरकभाष्यमें ध्वनि शब्दका जो अर्थ लिखा है, वह इस प्रकार है—

दूरसे शब्द तो सुना जाता, लेकिन साफ तौरसे उसका कुछ भी बोध नहीं होता। केवल मात्र तारत्वादि जाना जाता है, इस प्रकारके शब्दका नाम ध्वनि है।

"ध्वनिः स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते।
अल्पो महांश्च केषाञ्चित् स्वयं नैव स्वभावतः॥"
(महाभाष्य)

शब्दका स्फोट ही ध्वनि है। वैयाकरण पण्डितोंने ध्वनिको स्फोट बतलाया है। इसका कारण यह है, कि जब कोई शब्द उच्चारण किया जाता है, तब उसके सभी वर्णोंके मिल जानेसे एक शब्दका बोध होता है। जैसे 'कलस' यह शब्द उच्चारित हुआ, बोलनेके साथ ही शब्दका नाम हो गया। पहले क वर्ण पीछे ल और स इन तीन वर्णोंको ले कर कलस शब्द हुआ है, किन्तु ज्योंही यह शब्द उच्चारित हुआ त्योंही क वर्ण विनष्ट हुआ। पीछे शेष वर्णोंका जब अर्थ लगाया जाता है, तब कुछ भी अर्थ नहीं होता। इसी कारण वैयाकरण पण्डितगण शब्दका स्फोट स्वीकार कर परस्पर वर्णोंको एकत्र करके अर्थका बोध कराते हैं अर्थात् कलस इन तीन वर्णोंके एकत्र करनेसे फिर अर्थबोधका कोई गोलमाल नहीं रहता। यही स्फोटध्वनि है।

पाणिनिदर्शनमें भी यह स्वीकृत हुआ है कि शब्द दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य। नित्य शब्द एक मात्र स्फोट है, इसके सिवा वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य है। वर्णातिरिक्त स्फोटात्मक जो एक नित्य शब्द है उसके विषयमें कई जगह अनेक युक्तियां प्रदर्शित हुई हैं। इनमेंसे प्रधान युक्ति यह है कि स्फोटके नहीं रहनेसे केवल वर्णात्मक शब्द द्वारा अर्थबोध नहीं होता। यह सभी स्वीकार करते हैं कि घ और ट इन दो वर्णोंको ले कर जो घट शब्द बना उससे घटका बोध होता है। किन्तु यह केवल दो वर्ण सम्पादित नहीं हो सकते, कारण यदि इन दो वर्णोंके प्रत्येक वर्ण द्वारा घटका बोध होता, तो केवल घ वा ट उच्चारण करनेसे घटका बोध नहीं होता है, सो क्यों? इस दोषको नाश करनेके लिए इन दोनों वर्णके मिलनेसे घटका बोध होता है, ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि सभी वर्ण आशुविनाशी हैं, पीछेके वर्णोंके उत्पत्तिकालमें पूर्व सभी वर्ण विनष्ट हो जाते हैं। सुतरां अर्थबोध होनेकी बात तो दूर रहे, उनका एक साथ रहना भी सम्भव नहीं है। इसीसे यह स्वीकार करना होगा कि पहले दो वर्णों द्वारा अभिव्यक्त अर्थात् स्फुटता होती है, पीछे स्फोट द्वारा घटका बोध हुआ करता है। यही स्फोट ध्वनि है। स्फोट देखो।

२ उत्तम काव्यभेद। साहित्यदर्पणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

व्यंग्यके वशीभूत होनेसे जो काव्य होता है उसका नाम ध्वनि है। अर्थात् जहां व्यञ्जनाशक्ति द्वारा बोधित अर्थ जो गुणीभूत और अत्यन्त प्रशस्त होता है उसका नाम ध्वनि है। कोई एक वाक्य कहा गया, जिस अर्थमें यह वाक्य प्रयुक्त हुआ है पहले उसीका बोध कराया गया, पीछे व्यञ्जना द्वारा एक ऐसे अर्थका बोध हुआ जो गुणीभूत अर्थात् अत्यन्त उत्तम है। इस प्रकार जिस व्यञ्जनाशक्ति द्वारा जो अन्यार्थका प्रत्यय होता है उसी काव्यका नाम ध्वनि है।

व्यञ्जना बोधित अर्थ जब वाच्यसे अतिशय अर्थात् व्यञ्जनार्थसे अधिक चमत्कारित्व होता है, तब वह ध्वनि कहलाता है। ध्वनित अर्थात् व्यंजित होनेके कारण इसे ध्वनि कहते हैं। यह अत्यन्त उत्तम काव्य है।

"भेदौध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च॥"
(साहित्यद० ४।२५२)

यह ध्वनि दो प्रकारकी है, लक्षणा और अभिधामूलक। इनमेंसे लक्षणामूलक ध्वनि अविवक्षितवाच्य और दूसरा विवक्षितवाच्य है। अर्थ लक्षमूलक एक ध्वनिका नाम अविवक्षितवाच्य और दूसरे विवक्षितवाच्य है। लक्षणा मूलक ध्वनि वाच्य अर्थका स्वरूप प्रकाशित करके पीछे व्यङ्ग अर्थात् व्यञ्जना शक्ति द्वारा वाच्य अर्थका प्रकाशक होता है।

रहनेकी इच्छा हो तो रह सकते हो। इस ग्राममें एक भी शय्यातल नहीं है, इसका तात्पर्य यह कि हमलोग पत्थर पर सोते हैं, शय्याविधानका भी कोई नियम नहीं है और उन्नत पयोधर शब्दसे उन्नत स्तनका भी बोध हुआ तथा यहां पर संस्तरादि इस शब्द द्वारा यह बोध होता है कि यहां शय्या नहीं है, इसका तात्पर्य यह कि यदि तुम उपभोगक्षम हो, तो मेरे समीप रह सकते हो। क्योंकि मेरे समीप कोई विशेष शयनयोग्य स्थान नहीं है, यही यहां पर इसका अर्थ होता है। अतएव यहां पर यह शब्द शक्त्युत्थवस्तुध्वनि हुआ। अलङ्कारादिको जगह भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

वस्तुध्वनि और अलङ्कारध्वनि बारह प्रकारको हैं—(१) स्वतःसम्भावी वस्तु द्वारा जहां व्यङ्ग्य अर्थात् व्यञ्जना बोधित होगी, वहां वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि होती है। (२) स्वतःसम्भावी वस्तु द्वारा अलङ्कार जहां व्यङ्ग्य होगा, वहां अलङ्कार रूप व्यङ्ग्य ध्वनि होगी। (३) जहां स्वतःसम्भावी अलङ्कार द्वारा वस्तु व्यङ्ग्य होगी, वहां वस्तुरूप व्यङ्ग्य ध्वनि होती है। (४) जहां स्वतःसम्भावी अलङ्कार द्वारा व्यङ्ग्यमान होगा, वहां अलङ्कार व्यङ्ग्यध्वनि होगी। (५) कवियोंको प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तुसे व्यङ्ग्य होनेसे वस्तुरूप व्यङ्ग्य ध्वनि होगी। (६) कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध वस्तु द्वारा अलङ्कार रूप व्यङ्ग्यध्वनि। (७) कवि-प्रौढोक्तिसिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (८) कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध अलङ्कार द्वारा अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। (८) कवि-निबद्ध प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु द्वारा व्यज्यमान अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। (१०) कविनिबद्ध वस्तुद्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (११) कविनिबद्ध व्यक्ति प्रौढोक्ति-सिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान वस्तुरूप व्यङ्ग्यध्वनि। (१२) कविनिबद्ध व्यक्ति प्रौढोक्तिसिद्ध अलङ्कार द्वारा व्यज्यमान अलङ्काररूप व्यङ्ग्यध्वनि। यही बारह प्रकारके भेद हैं। यहा पर प्रत्येक लक्षणका उदाहरण विस्तारके भयसे नहीं दिया गया, केवल एक ही उदाहरण दिया जाता है।

"दिशि मन्दायते तेजः दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥"
(रघु ४ स०)

दक्षिण दिशामें सूर्यका तेज मन्द हो गया था। पाण्ड्य नामक राजा उसी ओर रघुका तेज सह्य कर न सके। सूर्यके दक्षिणायन होनेसे ही स्वाभाविक तेज मन्द हो गया, इस सूर्य तेजको अपेक्षा रघुका तेज अधिक है। इस प्रकार व्यतिरेक अलङ्कार ध्वनित हुआ। अतएव यह अलङ्काररूप व्यङ्ग्य ध्वनि हुआ। ध्वनि कुल ५१ प्रकारको है।

फिर इसके भी कई भेद हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया। आलङ्कारिक पण्डितोंके मतसे ध्वनि काव्यकी आत्मा है।

इसका विषय शारदातिलकतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

"सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नाद स्तस्मान्निरोधिका:॥"
(शारदातिलक)

शब्द ब्रह्ममयी, ब्रह्मस्वरूपा है जो पहले कुण्डलिनी शक्तिको प्रसव करती हैं। उनकी शक्तिसे ध्वनि और उस ध्वनिसे नाद उत्पन्न होता है। सत्वबहुल चित्शक्तिशब्द-वाच्य है, यह आकाशस्वरूप है। इस चित्के रजोबहुला होनेसे यह ध्वनि कहलाती है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे—किसी कारणवश जड़ पदार्थके परमाणुका उत्कम्पन हो कर, वह उत्कम्पन वायु वा किसी प्रकारके परिचालक द्वारा जब कर्णकुहर-में पहुंचता है, तब श्रवणेन्द्रियमें जो एक प्रकारकी अनु-भूति उत्पन्न होती है, उसीका नाम ध्वनि है। व्यक्त और अव्यक्तके भेदसे ध्वनि दो प्रकारको है। मनुष्योंके कण्ठ तालु आदिके अभिघातसे जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे व्यक्त और तद्भिन्न वस्तुके आघातसे जो ध्वनि होती है, उसे अव्यक्त कहते हैं। सङ्गीतशास्त्रवेत्ताओंने इस प्रकारकी ध्वनियोंको मधुर और कठोर इन दो भागोंमें विभक्त किया है। जब निर्दिष्ट संख्यक उत्कम्पन उत्पा दित हो कर नियमित और अविच्छिन्न ध्वनिको उत्पन्न करता है, तब उसे मधुरध्वनि कहते हैं। अनियमित उत्कम्पन द्वारा जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वही कर्कश-ध्वनि है। शब्दायमान द्रव्योंके अणु जो आन्दोलित होते हैं, वे सहजमें प्रतिपन्न किये जा सकते। किसी धातु निर्मित थालीके ऊपर कुछ बालू रख कर जब उसे बजाते

ध्वाङ्क्षनखी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षस्य नखमिव आकृतिरस्त्यस्याः अच ङीप्। काकतुण्डी, कौआठोंठी।

ध्वाङ्क्षनाम्नी (सं० स्त्री०) काकोदुम्बरिका, कठगूलर।

ध्वाङ्क्षनाशिनी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षं नाशयन्तीति नश-णिनि ङीप। हवुषा, एक प्रकारका फल।

ध्वाङ्क्षनासिका (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षस्य नासिका इव फलं यस्याः काकनामा लता, कौवाटोंटी नामकी लता।

ध्वाङ्क्षपुष्ट (सं० पु०) ध्वाङ्क्षेण काकेन पुष्टः प्रतिपालितः ३-तत्। कोकिल, कोयल।

ध्वाङ्क्षमाची (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षान् मचति फलदानेन, मच-अण्, ततो गौरादित्वात् ङीप्। काकमाची, मकोय।

ध्वाङ्क्षवल्ली (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षवत् मलीनलता। काकनामा लता।

ध्वाङ्क्षादनी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्षाणां काकानां अदनी ६-तत्। काकतुण्डी, कौवाटोंटो।

ध्वाङ्क्षाराति (सं० पु०) ध्वाङ्क्षाणां अरातिः। पेचक।

ध्वाङ्क्षी (सं० स्त्री०) ध्वाङ्क्ष-अच्, ङीप्। काकोलिका, शीतलचीनी।

ध्वाङ्क्षोली (सं० स्त्री०) काकोली, सतावरकी तरहका एक प्रकारका कन्द।

ध्वान (सं० पु०) ध्वन भावे घञ्। शब्द, आवाज।

ध्वानायन (सं० पु० स्त्री०) ध्वनस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं अश्वादि० फञ्। ध्वन ऋषिका गोत्रापत्य।

ध्वान्त (सं० क्ली०) ध्वन क्त प्रत्ययेन निपातनात् साधु (क्षुब्धस्वान्तध्वान्तेति। पा ७।२।१८) १ तम, अन्धकार, अन्धेरा। २ तमः प्रधान नरकभेद, एक नरक जहां हमेशा अन्धकार रहता है।

ध्वान्तचर (सं० पु०) राक्षस, निशाचर।

ध्वान्तवित्त (सं० पु०) ध्वान्ते अन्धकारे वित्तः प्रथितः। खद्योत, जुगनू।

ध्वान्तशत्रव (सं० पु०) ध्वान्तशात्रव देखो।

ध्वान्तशात्रव (सं० पु०) ध्वान्तस्य शात्रवः। ६-तत्। १ सूर्य। २ अग्नि। ३ चन्द्रमा। ४ श्योनाक वृक्ष, सोंटा। ५ श्वेतवर्ण।

ध्वान्ताराति (सं० पु०) ध्वान्तस्य अरातिः। १ चन्द्र, सूर्य, अग्नि।

ध्वान्तोन्मेष (सं० पु०) ध्वान्ते उन्मेषः प्रकाशो यस्य। खद्योत, जुगनू।

नंगा (हिं० वि०) १ वस्त्रहीन, दिगम्बर, विवस्त्र। २ लुच्चा, पाजी। ३ निर्लज्ज, वेश्या, वेशर्म। ४ जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण न हो, जो किसी तरह ढंका न हो, खुला हुआ। (पु०) ५ शिव, महादेव। ६ एक बड़ा पर्वत जो काश्मीरकी सीमा पर अवस्थित है।

नंगाझोरी (हिं० स्त्री०) नंगाझोली देखो।

नंगाझोली (हिं० स्त्री०) किसीके पहने हुए वस्त्रोंको उतरवा कर या यों ही अच्छी तरह देखना जिसमें छिपाई हुई चीजका पता लग जाय, जामातलाशी।

नंगाबुंगा (हिं० वि०) १ जिसके ऊपर कोई आवरण न हो, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो।

नंगाबुचा, नंगाबूचा (हिं० वि०) अत्यन्त दीन बहुत दरिद्र, कंगाल।

नंगा मादरजाद (हिं० वि०) ऐसा नग्न जैसा माताके उदरसे निकलनेके समय होता है, बिलकुल नंगा, अलिफ नंगा।

नंगामुनंगा हिं० पु०) जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो, बिलकुल नंगा।

नंगालुच्चा (हिं० वि०) नीच और दुष्ट, बदमाश।

नंगियाना (हिं० क्रि०) १ शरीर पर वस्त्र न रहने देना, नंगा करना। २ सब कुछ छीन लेना, कुछ भी पास न रहने देना।

नंदना (हिं० स्त्री०) पुत्री, बेटी, लड़की।

नंदरुख (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जो अश्वत्थ जातिका होता है। इसके पत्ते रेशमके कीड़ोंको खानेके लिये दिये जाते हैं।

नंदिन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। यह बङ्गाल और आसाममें पाई जाती है और तीन फुट तक लम्बी होती है और तौलमें आध मनकी होती है।

नंदी (हिं० पु०) नन्दिन् देखो।

नंदीघंटा (हिं० पु०) बैलोंके गलेमें बांधनेका बिना डांड़ीका घंटा।

नंदोई (हिं० पु०) पतिका बहनोई, ननदका पति।

नंदोला (हिं० पु०) मट्टीकी बड़ी नांद।

नंदोसी (हिं० पु०) नंदोई देखो।

नंबर (अं० पु०) १ गणना, गिनती। २ संख्या, अङ्क, अदद। ३ एक प्रकारका गज जिससे कपड़ा मापा जाता है। यह गज ३ फुट या ३६ इञ्च लम्बा होता है। ४ प्रो-प्रसङ्ग, भोग। ५ किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदिकी कोई एक संख्या या अङ्क।

नंबरदार (हिं० पु०) ग्रामका वह जमींदार जो अपनी पट्टीके और हिस्सेदारोंसे मालगुजारी आदि वसूल करने-में सहायता दे।

नंबरवार (हिं० क्रि० वि०) क्रमशः, यथाक्रम, सिलसिले-वार, एक एक करके।

नंबरिंग् मशीन (अं० स्त्री०) वह यन्त्र जिससे रसीदों, टिकटों आदि पर क्रम-संख्या छापते हैं।

नंबरी (हिं० वि०) १ जिस पर नंबर लगा हो, नंबर-वाला। २ प्रसिद्ध, मशहूर।

नंबरीगज (हिं० पु०) नंबर देखो।

नंबरीसेर (हिं० पु०) अंगरेजी रुपयोंसे ८० भरका तौलनेका एक सेर, अंगरेजी सेर, बीस गंडे सेर।

नंबूरी (हिं० पु०) मलबार प्रान्तके ब्राह्मणोंकी एक जाति। नम्बूरी देखो।

नंश (सं० पु०) नाशन, ध्वंस, बरबादी।

नंशन (सं० क्ली०) नंश-ल्युट्। नाशन, ध्वंस।

नंशुक (सं० वि०) नश्यतीति नश-ध्वकन्-नुमागमश्च। (वचिनश्योर्नुकन् कनुमो च। उण् २।३०।) १ नाशक, नाश या बरबाद करनेवाला। (पु०) २ अणु, छोटा टुकड़ा, कण।

नंष्ट्र (सं० वि०) नश-तृच्, नुमच्, (मस्जिनशोर्झलि। पा ७।१।६०) नाशाश्रय, नाश-प्रनियोगी।

नंष्टव्य (सं० क्ली०) नश-तव्य। नाशका योग्य, बरबाद होने लायक।

नाःक्षुद्र (सं० वि०) नसा नासिकया क्षुद्रः। क्षुद्रनासिक, छोटी नाकवाला।

नक् (सं० अव्य) नश-क्विप्, बाहुलकात् कुत्वं। रात्रि, रात। (ऋक् ७।७१।१)

नकंद (हिं० पु०) कांगड़ेमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया चावल।

नककटा (हिं० वि०) १ जिसकी नाक कटी हो। २ निर्लज्ज, बेशर्म, बेहया। ३ जिसकी बहुत दुर्दशा हुई

हो। ३ जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या बदनामी हुई हो। ४ जिसके कारण अप्रतिष्ठा हो।

नकटापंथ (हिं० पु०) एक कल्पित पंथका नाम। इसकी कथा है कि एक समय किसी कारण एक मनुष्यकी नाक कट गई। तब वह दूसरे लोगोंको भी अपने ही सरीखा बनानेके उद्देश्यसे लोगोंसे यह कहने लगा, कि नाक कट जानेके कारण ही मुझे ईश्वर देखनेमें आ रहे हैं। उसकी बात पर विश्वास करके बहुतसे लोगोंने अपनी नाक कटा डाली। ईश्वरके दर्शन तो किसीको न होते थे लेकिन नकटे लोगोंके अपमानसे बचने और दूसरोंको भी अपने समान बनानेके लिये वे उस पंथके नकटोंकी बातका खूब समर्थन करते थे। इसी कहानीके आधार पर लोगोंने इस 'नकटे पंथ' की कल्पना कर ली।

नकटी (हिं० स्त्री०) दुर्दशा, अप्रतिष्ठा या बदनामी। २ नाक कटनेकी क्रिया।

नकघिसनी (हिं० स्त्री०) १ जमीन पर नाक रगड़नेकी क्रिया। २ बहुत अधिक दीनता, आजिजी।

नकचढ़ा (हिं० पु०) चिड़चिड़ा, बद मिज़ाज।

नकछिकनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास। इसके पत्ते बहुत महीन महीन और कटावदार होते हैं। इसके फूल छोटे आकारके और गुलाबी होते हैं जिन्हें सूंघनेसे छींके आने लगती हैं। यह चरपरी, रूखी, गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कुष्ठकृमि, चर्मविकार तथा दृष्टिदोषनाशक है। इसका संस्कृत पर्याय—क्षवकृत, तीक्ष्ण, छिक्किका, घ्राणदुःखदा, उग्रा, [illegible], उग्रगन्धा, क्षवक और छिक्कनी है।

नकटा (हिं० पु०) १ वह जिसकी नाक कट गई हो। २ एक प्रकारका गीत। यह गीतको स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाहके समय गाती हैं। ३ उस गीत गानेका अवसर या उत्सव। ४ एक प्रकारका पक्षी। (वि०) ५ जिसकी नाक कटी हो। ६ निर्लज्ज, बेहया, बेशर्म। ७ अप्रतिष्ठित, जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो।

नकटेसर (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह सिर्फ शौकके वास्ते लगाया जाता है।

नकड़ा (हिं० पु०) बैलोंका एक रोग। इसमें उनकी नाक सूज जाती है और जिसके कारण उन्हें श्वास लेनेमें बहुत कष्ट होता है।

नकतोड़ (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच।

नकतोड़ा (हिं० पु०) बहुत कम [illegible] नाक भौं चढ़ा कर नखरा करना अथवा कोई बात कहना।

नकद (अ० पु०) १ धन जो सिक्कोंके रूपमें हो, तैयार रुपया, रुपया पैसा। (वि०) २ जो तैयार हो, जो तुरंत काममें लाया जा सके। ३ खास। (क्रि० वि०) ४ उधारका उलटा तुरंत दिए हुए रुपयोंके बदलेमें।

नकदामा (हिं० पु०) वह चोरी या कुकर्म जो अपने या [illegible] नाक बचाई गई है।

नकदी (अ० स्त्री०) १ धन, रोकड़, रुपया पैसा। २ वह जमीन जिसकी मालगुजारी नकद रुपयोंमें दी जाती है, जमई।

नकना (हिं० क्रि०) नाकमें दम होना, हैरान होना या हैरान करना।

नकफूल (हिं० पु०) एक प्रकारका गहना जो नाकमें पहना जाता है।

नकब (अ० स्त्री०) वह बड़ा छेद जो चोरी करनेके लिये दीवारमें किया जाता है। इसमेंसे हो कर चोर किसी कोठरी आदिमें घुसता है, सेंध।

नकबजन (अ० पु०) सेंध लगानेवाला, चोरी करनेके लिये दीवारमें छेद करनेवाला।

नकबजनी (अ० स्त्री०) सेंध लगानेकी क्रिया।

नकबेसर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नथ जो नाकमें पहनी जाती है, बेसर।

नकमोती (हिं० पु०) नाकमें पहननेका मोती। इसे कोई कोई लटकन भी कहता है।

नकल (अ० स्त्री०) १ वह जो किसी दूसरेके ढंग पर उसकी तरह तैयार किया गया हो, अनुकृति कापी। २ लेख आदिकी अक्षरशः प्रतिलिपि, कापी। ३ अनुकरण, एककी अनुरूप दूसरी वस्तु बनानेका कार्य। ४ स्वांग, किसीके वेष, हावभाव या बातचीत आदिका पूरा पूरा अनुकरण। ५ अद्भुत और हास्यजनक आकृति। ६ हास्य-रसकी कोई छोटी मोटी कहानी या बातचीत, चुटकुला।

नकल-उस-शैतान—अफ्रीका देशका एक प्रकारका खजूर-का पेड़। इसमें अनेक शाखाएँ निकलती हैं। प्रत्येक शाखाका मध्यकाष्ठ मनुष्यके जांघ जैसा स्थूल होता है प्रतिशाखा २०।४० फुट लम्बी होती है। इसकी पत्तियां खूब चौड़ी होती हैं। अरबीभाषामें इसे 'शैतानका खजूर' कहते हैं।

नकलनवीस (फा॰ पु॰) वह मनुष्य, विशेषतः अदालत या दफ्तर आदिका मुहरिर जिसका काम केवल दूसरे-के लेखोंकी नकल करना होता है।

नकलनवीसी (फा॰ स्त्री॰) १ नकलनवीसका काम। २ नकलनवीसका पद।

नकलनौर (हि॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षी। कोई कोई इसे मुनिया भी कहता है। मुनिया देखो।

नकलपरवाना (फा॰ पु॰) पत्नीका भाई, साला।

नकलबही (हि॰ स्त्री॰) दफतरों या दूकानों आदिका खाता। इसमें भेजी जानेवाली चिट्ठीयोंकी नकल रहती है।

नकली (अ॰ वि॰) १ कृत्रिम, बनावटी, जो असली न हो। नकली वस्तु अकसर निकम्मी और निकृष्ट समझी जाती है, इस कारण लोगोंमें इसका आदर नहीं होता। २ खोटा, जाली, झूठा, जो असली न हो।

नकसेल (हि॰ स्त्री॰) वह रस्सी जो नाव खींचनेके लिये गोनरखेमें बंधी रहती है और सब रस्सियोंसे आगे रहती है।

नकलोल (हि॰ पु॰) नकनोल देखो।

नकश (अ॰ पु॰) १ नक्श देखो। २ एक प्रकारका जुआ। यह दो या अधिक मनुष्योंसे ताशके पत्तोंसे खेला जाता है। इसमें सब खिलाड़ियोंको पहले एक एक पत्ता बांट दिया जाता है और बाद एक एक खिलाड़ी-को अलग अलग उसके मांगने पर और पत्ते दिये जाते हैं। इसमें पत्तोंकी बूटियोंको गिन कर हार जीत मानी जाती है।

नकशमार (हि॰ पु॰) ताशके पत्तोंसे खेले जानेका नकश नामका जुआ।

नकशा (हि॰ पु॰) नक्शा देखो।

नकशानवीस (हि॰ पु॰) नकशानवीस देखो।

नकशी (हि॰ वि॰) नक्शी देखो।

नकशीमैना (हि॰ स्त्री॰) तेलिया नामकी एक प्रकारकी मैना।

नकसमार (हि॰ पु॰) नकश देखो।

नकसा (हि॰ पु॰) नक्शा देखो।

नकसीर (हि॰ स्त्री॰) आपसे आप नाकसे रक्त बहना। यह बीमारी विशेष कर गरमीके दिनोंमें हुआ करती है। वैद्यकमें इसे रक्तपित्त रोगके अन्तर्गत माना है। जब रक्तपित्तकी बीमारी होती है, तब मुंह, नाक, आंख, कान, गुदा और योनि या लिङ्गसे लेह गिरता है। यदि यह लेह अधिक मात्रामें बहे, तो समझना चाहिये कि रोगीकी आयु निकट आ गई। अधिक आंच या धूप लगने, रास्ता चलने और शोक व्यायाम या मैथुन करनेसे भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा रक्त बहने लगता है। स्त्रियोंका रज जब रुक जाता है, उस समय भी यह रोग हो जाता है। विशेष विवरण रक्तपित्तमें देखो।

नकातिया (सिंहली) संस्कृत नाचविक। सिंहलका दैवज्ञ। ये लोग वर्षका फलाफल, जलवायुका शुभाशुभ और जातक गणना करके जीविकानिर्वाह करते हैं। दो हजार वर्ष पहले इन लोगोंकी जैसी हालत थी, आज भी प्रायः उसी तरहकी है। सिंहलमें फलित ज्योतिषका बड़ा आदर है। अत्यन्त उच्चश्रेणीसे ले कर अत्यन्त निम्न श्रेणीके कृषक तक सभी यह विद्या सीखते हैं।

नकाब (अ॰ पु॰ स्त्री॰) १ मुंह छिपानेका महीन रंगीन कपड़े या जालीका टुकड़ा। यह सिर परसे ले कर गले तक डाला दिया जाता है। विशेष कर अरब देशकी स्त्रियां इसका व्यवहार करती हैं। उन्हींके संसर्गसे यूरोपमें भी इसका व्यवहार होने लगा है। मुसलमानी स्त्रियां अपना बदन छिपानेके लिये इसे काममें लाती हैं, लेकिन युरोपियन स्त्रियां धूल और कीड़ों पतंगों आदिसे बचने तथा शोभा बढ़ानेके लिये इसका व्यवहार करती हैं। प्राचीन कालमें जब जरूरत पड़ती थी, तब पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे। २ साड़ी या चादरका वह भाग जिससे स्त्रियां अपना मुख ढंक लेती हैं, घूंघट।

नकार (सं॰ पु॰) १ न स्वरूप वर्ण, नहीं। २ अस्वी-कृति, इनकार।

नकारची (हिं० पु०) नक्कारची देखो।

नकारना (हिं० क्रि०) अस्वीकार करना, इनकार करना।

नकारा (फा० पु०) नक्कारा देखो।

नकाश (हिं० पु०) नक्काश देखो।

नकाशना (हिं० क्रि०) धातु, पत्थर आदि पर बेल बूटे आदि बनाना।

नकाशी (हिं० स्त्री०) नक्काशी देखो।

नकाशीदार (फा० वि०) बेल बूटेदार, जिसपर नकाशी हो।

नकास (हिं० पु०) नक्काश देखो।

नकासना (हिं० क्रि०) नकाशना देखो।

नकासी (हिं० स्त्री० नक्काशी देखो।

नकासीदार (हिं० वि०) नक्काशीदार देखो।

नकि—मुसलमानोंके बारह इमामोंमेंसे एक मनुष्य। इनका पूरा नाम अली नकि है। इमामको गणनामें ये दसवें हैं और अलीके वंशोद्भव माने जाते हैं। इनके पिताका नाम नवम इमाम महम्मद तकि था। ८२८ ई०में (२१४ हिजरीमें) इनका जन्म हुआ। बगदादके अन्तर्गत सर-मनराय (सामिरा) नामक स्थानमें इनका समाधि मन्दिर है।

नकि—पाणिनिके गणपाठान्तर्गत भारतके उत्तरवर्ती इस नामके एक देशका विवरण पाया जाता है। बहुतों का अनुमान है कि यही बौद्धग्रन्थोक्त नकुल नामक जनपद है।

नकिञ्चन (सं० त्रि०) नास्ति किञ्चन यस्य, नञ् नञर्थस्य न शब्दस्य 'सह सुपेति' समासः। अकिञ्चन, दरिद्र, कंगाल। "नकिञ्चन इवैतेनां त्वमनाथा नकिञ्चना।"

(भारत ८० १११ अ०)

नकिम् (सं० अव्य०) नाकिम् न चादिपाठात् नञ् नञर्थेन समासः। नञर्थ, पीटनेके लिये।

नकियाना (हिं० क्रि०) १ शब्दोंका अनुनासिकवत् उच्चारण करना, नाकसे बोलना। २ बहुत दुःखी या हैरान होना या करना, नाकमें दम आना या करना।

नकिस् (सं० अव्य०) न किम् पृषोदरादित्वात् साधु। निवारण, वर्जन, रोकनेकी क्रिया।

नकीब (अ० पु०) चारण, बन्दीजन, भाट। ये लोग राजाओंके आदिके आगे उनके तथा उनके पूर्वजोंके यशका गान करते हुए चलते हैं। बादशाहों या नवाबोंके यहां जो नकीब रहते, केवल सवारोंके आगे ही विरदावलीका बखान करते हों नहीं वरन् किसीको उपाधि या पद आदि मिलनेके समय अथवा किसी बड़े पदाधिकारीके दरबारमें आनेके पहले उनकी घोषणा भी करते थे। २ कड़खा गानेवाला पुरुष, कड़खैत।

नकीब खाँ—मुगल-सम्राट् अकबरके समयके एक मनसबदार। इनका असल नाम मीर गियास उद्दीन् अली था। इनके पिताका नाम था मीर अबदुल लतीफ। ईरानके अन्तर्गत कोजवीन नामक स्थानमें इनके च मया इमेशाका वास है। ये सैफी सैयद हैं। देशमें वे लोग सुन्नी-मतावलम्बी हैं। इनके पितामह मीर यहिया धर्मशास्त्रकर्त्ता प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित थे। मीर यहियाका ऐतिहासिक ज्ञान भी बढ़ा चढ़ा था। वे मुसलमान-धर्मके संस्थापकसे ले कर अपने समय तककी धर्म घटनाओं सम्पूर्ण घटनाओंकी तारीख तक बतला सकते थे। यहियाने पारस्यके राजा शाह तमास्प-इ-अवलको द्वारा अनुगृहीत हो कर यथेष्ट ख्याति लाभ की थी। अन्तमें शाह, अवली मरोचमाने बिना अपराधके ही पारस्यराज द्वारा बन्दी हुए और कारागारमें ही उनकी मृत्यु हो गई। मीर अबदुल लतीफ पिताके बन्दी होनेका ख्याल पाते ही गिलान नामक स्थानको भाग गये और पीछे वे दिल्लीके सम्राट् हुमायूं के आज्ञानुसार हिन्दुस्तानमें आये। अकबरके सिंहासनारोहणके साथ साथ वे अपने परिवारवर्गको भी यहां ले आये। राज्यारोहणके दूसरे ही वर्ष अकबरने मीर अबदुल लतीफको अपने शिक्षकके पद पर नियुक्त किया। इस समय तक अकबर शिक्षा-पढ़नेमें कोरे थे। नकीबकी शिक्षकतामें बहुत थोड़े ही दिनोंमें बादशाह यथेष्ट पढ़ने लगे और पाठ करना सीख गये। मीर साहब अपने धर्मके विषयमें बड़े सरल और उदारचित्त थे। उन्होंने ही अकबरको सुल्हकुल, अर्थात् 'सबोंके साथ शान्त व्यवहार' की शिक्षा दी थी। जिस समय बैरामखाँ राजानुग्रहसे वंचित हो कर भागता छोड़ कर चले गये थे और अम्बरपाराको तरफ

विद्रोहानल जलानेकी कोशिश कर रहे थे, उस समय अकबरने इन्हीं मोर साहबको उनके पास भेजा था। मीर साहबने उन्हें समझा कर शान्त कर दिया था। ९८१ हिजरीमें सिकरीमें आपकी मृत्यु हुई थी।

मीर साहबके ३ पुत्र थे—१ले नकीबखाँ, २रे कमारखाँ, और ३रे मीर महम्मद शरीफ। फतेपुरमें सम्राट् अकबरके साथ अश्वक्रीड़ा करते करते एक दिन मीर शरीफकी मृत्यु हो गई। मीर कामारखाँ पञ्चशतो मनसबदार हो कर मुनीमखाँके अधीन बङ्गालमें, शिहाबके अधीन गुजरातमें और टोडरमलके अधीन बिहारमें सेनापति रहे थे। सुलतान बिलहरीके युद्धमें इनकी मृत्यु हुई थी।

नकीबखाँको, इस देशमें आनेके बाद हो अकबरके साथ विशेष मित्रता हो गई थी। मुनीमखाँने जब खाँ-जमानके नाम अभियोग लगाया, तब अकबर उन पर बड़े बिगड़े, पर नकीबखाँके अनुरोध करने पर उन्होंने खाँ-जमानको क्षमा कर दिया। जिस समय सम्राट् पाटन अहमदाबाद और पटना गये थे (राज्यारोहणके १८।१९ वर्ष बाद), उस समय नकीबखाँ उनके साथ थे। अकबरके राजत्वके इक्कीसवें वर्ष इन्होंने ईदरके युद्धमें ख्याति प्राप्त की और इसके दूसरे ही वर्ष आप गुजरातके सेनापति हो कर रवाना हुए। बङ्गालके विद्रोहके समय टोडरमल्लके अधीन आप और आपके भाई कामारखाँने युद्ध किया था। बिहारमें मसूमी काबुलीके साथ युद्धमें इन्होंने विशेष वीरत्वका परिचय दिया था। अकबरके राज्यके २३वें वर्षमें आपको 'नकीबखाँ' यह नाम प्राप्त हुआ था।

तजकीरात-उल्-उमरा नामक इतिहासके लेखक केवलरामके मतसे, गयाके युद्धमें मसूमी काबुलीने जिस दिन रातको टोडरमलकी सेना पर गुप्त भावसे आक्रमण किया था, उस दिन नकीबखाँने वीरोचित साहस और कौशलके साथ उन्हें विध्वस्त किया था; इसीलिए बादशाहने उन्हें उपाधि प्रदान की थी। अबुल-फजलने भी इस नैश-युद्धका उल्लेख किया है, पर नकीबखाँका कोई जिक्र नहीं किया। अकबरके राजत्वकालमें यद्यपि नकीबखाँने हजारी पद पाया नहीं, तथापि दरबारमें उनका विशेष प्रभुत्व था, इसमें सन्देह नहीं। ये ही अकबरके थे।

अकबरने जिस समय महाभारतका फारसी अनुवाद कराया था, उस समय इन्हीं नकीबखाँ पर उसको अध्यक्षताका भार था। इनके साथ बदौनी मौलाना, अबदुल कादिर और थानेश्वरी शेख सुलतान भी नियुक्त हुए थे। महाभारतके बाद इन्हीं लोगोंने रामायणका अनुवाद किया था। तवारीख इ-अलफी नामक इतिहासका अधिकांश भाग नकीबखाँने लिखा है।

नकीबखाँके एक चचा थे, जिनका नाम था काजी ईसा। ये भी ईरानसे आये थे; इनके एक पुत्र थे; नाम था शाहगाजीखाँ। अकबरने अपने वैपित्रेय भ्राता मिर्जा महम्मद हकीमकी सहोदरा साकिन बानुबेगमके साथ शाहगाजीखाँका विवाह कर दिया। अकबरके राजत्वकालके ३८वें वर्ष नकीबखाँने उनसे कहा—"गाजीखाँका आसन्नकाल उपस्थित है, पर वे अपनी कन्याका आपके साथ व्याह करना चाहते हैं।" भागिनेयीका सम्पर्क होने पर भी अकबरने आसन्नमृत्यु गाजीखाँके अनुरोधका स्वीकार कर विवाह कर लिया।

जहाँगीरके समयमें नकीबखाँ १५शतो मनसबदार हुए थे। जहाँगीरके राजत्वकालमें (१६१३ ई०में) अजमेरमें नकीबकी मृत्यु हुई। इन्होंने मुन्शी-उल्-मालिक मीर महमूदको कन्याका पाणिग्रहण किया था। इनके पहले ही इनकी स्त्रीकी मृत्यु हो गई थी। अजमेरमें मुइनी चिश्तीके दरगाहमें दोनोंकी कब्र है। नकीबखाँके अबदुल लतीफ नामके एक पुत्र थे। विद्यावत्तामें उनको बहुत ख्याति थी, युसफखाँकी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ था। अन्तको वे उन्माद हो गये थे।

नकीम (सं० अव्य०) नकिम् पृषोदरा० साधुः। निवारण, वर्जन, रोकनेकी क्रिया।

नकु—स्वेज नहरके तीरवर्ती एक पहाड़का दुरारोह अत्युच्चशिखर। सिनाईके अन्तर्गत टोरसे यह पाँच कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह मोटे बालूसे परिव्याप्त है। वायु द्वारा यह बालुकाराशि जब चालित होती है, तब उस देशसे एक प्रकारका गम्भीर शब्द उत्पन्न होता है। यह शब्द पहले इउलियन वीणाके शब्दके जैसा सुननेमें लगता है। अरबी भाषामें नकुससे घण्टाका बोध होता है। इसीसे इस शब्दको उत्पत्ति हुई है।

collis (जिनके गले पर धारियां हों, ऐसे नेवले । इनके अलावा दक्षिण-यूरोपमें H widdringtonii, अफ्रिकामें H. caffer, आबिसिनियामें H. Mutgigella, उत्तमाशा अन्तरोपमें H. apiculatus, यवद्वीपमें H. javanicus, मलक्कामें H. brachyures, दक्षिण अफ्रिकामें H. punctulatus, मिस्रमें H. ichneumon (Egyptian ichneuneon) आदि भिन्न प्रकारके नेवले हैं। इसके सिवा आसामकी तरफ और एक प्रकारका जन्तु देखनेमें आता है, जिसको अंग्रेजोंमें Urva cancrivora कहते हैं। प्राणितत्वविदोंने इसका नाम the crab-mungoos (अर्थात् कंकड़ा नेवला) रक्खा है। इस जन्तुका स्वभाव नेवलेके समान है, देखनेमें काला और पिङ्गलवर्ण है, एक एककी लम्बाई १॥ १ हाथ है।

खुले मैदानमें, झाड़ोंमें, जंगलोंमें, तालावोंके किनारे नदियोंके करारोंमें तथा गड्ढोंमें नेवलोंका वास है। जो चिड़िया मैदान वा तालावोंके किनारे चरा करती हैं, वे इनकी घोर शत्रु हैं। अकसर यह पालतू कबूतर, हंस या तोतोंको पकड़ कर उनका खून पीता है और फिर छोड़ देता है। मौका पाते ही यह घरमें घुस कर पालतू चिड़ियोंको पींजड़ेके भीतरसे निकालनेकी चेष्टा करता है। जहां ज्यादा नेवले होते हैं, वहां हंस, मुरगी आदिके अण्डोंकी रक्षा करना मुश्किल हो जाता है। यह अण्डा खाना बहुत पसन्द करता है।

सर्प और नकुलकी चिरशत्रुता जगत्प्रसिद्ध है। इस देशमें बहुतोंका विश्वास है, कि नकुल और सर्पमें मिलाप होते ही विवाद होना अनिवार्य है। सर्प जब नकुलको काट लेता है, तब वह शीघ्र ही निकटवर्त्ती झाड़ीमें जा कर दवा खा आता है, जिससे सर्पके विषसे उसका कुछ अनिष्ट नहीं होता।

महाराष्ट्रियोंका विश्वास है, कि नकुलो वा मङ्गसवेल नामक एक प्रकारकी लता है, उसीकी जड़ सर्पविष हरणमें समर्थ है। परन्तु जेर्डन आदि आधुनिक प्राणितत्त्वविद्गण इस प्रवाद पर विश्वास नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि नेवलेकी चमड़ी कड़ी होती है और इसीलिए उसमें सर्प-विष प्रविष्ट नहीं होता। यही कारण है कि सर्पके काटने पर भी सहजमें उनका कुछ अनिष्ट नहीं होता। सर्प और नकुलकी लड़ाईमें प्रायः नकुलकी ही जय होती है सर्प मर जाता है। परन्तु नेवला खाहमखाह सर्पसे विरोध नहीं ठानता। गोखुरा (करैता) आदि विषधरोंके सामने आ जाने पर यह एक बगलसे निकलनेकी कोशिश करता है, परन्तु यदि कदाचित् छूट न सके और दोनोंका मुकाबिला हो जाय, तो यह महाविक्रमके साथ सर्प पर आक्रमण करता है और फिर उसे मार या परास्त करके ही दम लेता है। इस देशके लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि नकुल यदि सर्पको फांद जाय तो सर्पके उसी समय दो टुकड़े हो जाते हैं। अथर्ववेदमें भी इसका उल्लेख है—

"यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।"

(अथर्ववेद० ६।१३९।५)

परन्तु यदि किसी प्रकारसे सर्पका विष नकुलके चर्मको भेद कर शरीरमें प्रविष्ट हो जाय तो फिर उस की मौत हो है।

ओरिष्टटल लिखते हैं,—महा विषधर सर्पके साथ नकुलका मुकाबिला होने पर जब तक दूसरा नकुल वहां हाजिर नहीं होता, तब तक वह शत्रु पर आक्रमण नहीं करता। विष शरीरमें प्रविष्ट न हो सके, इसके लिए नेवला आक्रमण करनेसे पहले ही पोखरमें डुबकी लगा कर शरीर पर अच्छी तरह कीचड़ लपेट आता है।

इस देशमें जैसे सर्प और नकुलके विरोधकी कहावत प्रचलित है, उसी तरह प्लिनीके ग्रन्थमें भी मगर और नेवलेके विरोधकी एक बड़ी आश्चर्यजनक कथा लिखी है। प्लिनीने लिखा है,—'मगर जब मुंह खोल कर सो जाता है, तब नेवला शाणित अस्त्रकी तरह तीव्रवेगसे उसके मुंहमें घुस जाता है और पेटमें जा कर भीतरकी नसोंको काटता है।' परन्तु आधुनिक प्राणितत्त्वविद् इस बात पर विश्वास नहीं करते। हां, इतना तो अवश्य मालूम हुआ है, कि जहां बहुतसे मगर रहते हैं, वहां नेवलोंकी संख्या भी अधिक होती है। ये बड़ी सावधानीके साथ मगरके अण्डोंको निकालते और खाते हैं। इनकी इस शत्रुताके कारण वहां मगरोंकी संख्या ज्यादा बढ़ने नहीं पाती।

नेवला चूहोंका भी पूरा दुश्मन है। एक एक नेवला

भी बड़े बड़े चूहोंको मार कर उनका खून पीते हैं। जेरडन साहबने लिखा है,—एक कोठेमें करीब एक नेवलेने १० मिनटके भीतर १२ बड़े बड़े चूहोंको मार डाला था। महाभारतमें भी नकुलको चूहे का शत्रु लिखा है।

"इमे बलानि तौ तिष्ठ दुर्वं हेतुरुत्तमाः ।
नकुलो मूषिकानत्ति बिडाले नकुलस्तथा ॥"

(भारत १२।१।२०)

पूर्व कालमें मिस्रके लोग नकुलको पूजा करते थे। नकुलके मरने पर उसे एक पवित्र पेटिकामें रख देते थे। आजकल जिस तरह लोग इसे बड़े शौकसे पालते हैं और दूध-भात आदि खिलाते हैं। यदि कोई किसीको मार डालता था तो राजदरबारसे उसे दण्ड मिलता थो। मिस्रको तरह भारतमें भी नकुल हत्या निषिद्ध थी। मनुसंहितामें लिखा है, कि नकुल-हत्या करनेवालेको शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। (मनु ११।१३१) मनुसंहितामें यह भी लिखा है, कि घी चुरानेवाला मर कर नेवला होता है। (मनु १२।६२)

वैद्यकके अनुसार नकुलका मांस स्निग्ध, वात नाशक, उष्ण और बल-वर्द्धक होता है। (राजनि०)

यह सहज ही पालतू होता है। नेवलेको पालनेसे घरमें सांप नहीं रहते।

२ महादेव, शिव। (शिवसहस्रनाम०)

३ पाण्डुराजके चतुर्थ पुत्र। ये माद्रीके गर्भसे अश्विनीकुमारद्वयसे उत्पन्न हुए थे। इनका विवरण महाभारतमें इस प्रकार लिखा है,—"पाण्डु शापग्रस्त हो कर जिस समय पत्नीद्वयके साथ वनमें वास करते थे, उस समय कुन्तीने अपने मन्त्रके प्रभावसे तीन पुत्र जने। इस पर माद्रीने पाण्डुसे प्रार्थना की कि मुझे भी पुत्रकी प्राप्ति हो।' पाण्डुने कुन्तीसे अनुरोध किया। तब कुन्तीने माद्रीसे कहा, 'तुम किसी एक अभिलषित देवताका स्मरण करो।' माद्रीने अश्विनीकुमारों का स्मरण किया। इन्हीं अश्विनीकुमारोंसे माद्रीके यमज पुत्र हुए, ज्येष्ठ नकुल और कनिष्ठ सहदेव। नकुल अत्यन्त रूपवान् थे। जिस समय पाण्डवगण विराटभवनमें अज्ञातवासके साथ करते थे उस समय इनका नाम तन्त्रिपाल रक्खा गया था, ये गोरक्षा कार्यमें निपुण थे। युधिष्ठिरने जिस समय राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस समय इन्होंने पश्चिमदिशामें जा कर महेन्द्रेश अधिकार किया था। पीछे राजर्षि आक्रोशको जीत कर आपने दशार्ण, शिबि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक, वाटधान और द्विजोंको पराजय किया था। इसके बाद इन्होंने पुष्करारण्यवासी उत्सवसङ्केतोंको, समुद्रतीरस्थित आभीरोंको और सरस्वतीतीरवासियोंको जीत कर अनन्तर अमरपर्वत, उत्तर-ज्योतिष, दिव्य कटपुर और द्वारपाल जय किया था। फिर रामठ हारहूण और प्रतीच्य भूपालोंको अपने वशमें ला कर वासुदेवके पास अपना दूत भेजा था। यादवोंने जब युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार कर ली तब ये शाकल पहुंचे, वहां शल्यने भी युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार की। अन्तमें म्लेच्छ पह्लव बर्बर, किरात, यवन और शकोंको तथा पाश्चात्य अन्यान्य राजाओं को पराजय किया। चेदिराजकी कन्या करेणुमतीके साथ नकुलका विवाह हुआ था। करेणुमतीके गर्भसे नकुलके निरमित्र नामक एक पुत्र हुआ था। युधिष्ठिरने जब महाप्रस्थान किया था तब ये भी उनके साथ गये थे। (भारत) इन्होंने 'अश्वचिकित्सा' रची थी।

जैनमतानुसार—नकुलका जन्म पाण्डुराजके औरस और माद्रीके गर्भसे हुआ था। पाण्डुराज शापग्रस्त थे ऐसा जैनपुराणोंमें कहीं भी उल्लेख नहीं है। जैन हरिवंशमें लिखा है, कि 'जिस समय पाण्डुने अप्रकट विवाह कर कुन्तीसे सम्भोग किया था, उस समय उनके कर्ण नामक पुत्र हुआ और विवाह करनेके बाद युधिष्ठिर अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुए तथा उन्हीं राजा पाण्डुके रानी माद्रीसे नकुल और सहदेव पुत्र हुए। (जैनहरिवंश ४५।३८) अन्तमें ये अन्य चार भाइयोंके २२वें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथके समवसरणमें उपस्थित हुए थे और वहां भाइयोंके साथ जिन-दीक्षा ग्रहण की थी। तपश्चरण कर ये सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए हैं, वहांसे च्यवन कर मनुष्य होंगे और इसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त होंगे। किन्तु युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम इसी भवसे सिद्ध (मुक्त) हुए हैं। (जैनहरिवंश) ४ पुत्र, बेटा, लड़का। (त्रि०) ५ कुलरहित, जिसके कुल न हो।

नकुल (भा० पु०) वह रस जो मध्याह्नमालमें पुर आदि चलानेवालोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

नकुलक (सं० पु०) १ नकुलके आकारका एक प्रकारका प्राचीन गहना। २ रुपया आदि रखनेकी एक प्रकारकी थैली।

नकुलकन्द (सं० पु०) गन्धनाकुलीया रास्ना नामक कन्द।

नकुलतैल (सं० क्ली०) वात-व्याधि रोगाधिकारोक्त तैलौषधभेद, एक प्रकारका तेल जो नेवलेके मांसमें बहुतसे दूसरी औषधियां मिला कर बनाया जाता है। इसको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—नेवलेका मांस ३२ सेर, जल १६सेर शेष ४ सेर, दशमूल ३२ सेर जल ६ सेर, शेष ४ सेर, एरण्डका तेल ४, दहीका पानी ४ सेर, यष्टिमधु, जीरा, रास्ना, सैन्धव लवण, वनयवानी, सोयाँ, यमानी, मिर्च, कुट, विड़ङ्ग, गजपिप्पली, मचल-लवण, वच, शैलज और जटामांसी प्रत्येक द्रव्य चार तोला ले कर उसे चूर्ण करते और उस तेलमें मिला देते। बाद यथाविधान तेलको पाक कर उसे नीचे उतार लेते हैं। इसका व्यवहार पान, अभ्यङ्ग और वस्तिक्रिया-में होता है। इस तेलसे कम्पवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, वाहुकम्प, और आमवात आदि रोग जाते रहते हैं। कमर, पीठ, जांघ, घुटने आदिका वातका दरद तथा अस्सी प्रकारका वातज रोग भी दूर हो जाता है।

(भैषज्यरत्ना० वातव्याध्यधिकार)

नकुला (सं० स्त्री०) पार्वती।

नकुलाढ्या (सं० स्त्री०) नकुलेन, नकुलगन्धेन, आढ्या प्रचुरा। गन्धनाकुली या रास्ना नामक कंद।

नकुलाद्यघृत (सं० क्ली०) वातव्याधि रोगाधिकारोक्त घृतौषधभेद, प्रस्तुतप्रणाली—क्वाथके लिये नेवलेका मांस ३२ सेर और पाकके लिये जल ६४ सेर, शेष ४ सेर, धरट ३२ सेर, जल ६ सेर, शेष ४ सेर। भेंड़ेला ३२ सेर, जल ६ सेर, शेष ४ सेर। शतमूली ४ सेर, दूध ४ सेर। जीरा, ऋषभ, कंकोल, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जोवन्ती, यष्टिमधु, अश्वायची, गुड़त्वक, तेज-पत्र, त्रिफला, सोया और अनन्तमूल प्रत्येक द्रव्य दो तोला ले कर उसका चूर्ण उस घीमें डाल देते हैं। इस घीका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठनिग्रह, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बधिरता, मूकत्व, मिम्मिणभाषण और अन्यान्य नाना प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

(भैषज्यरत्ना० वातव्याध्यधिकार)

नकुलान्धता (सं० स्त्री०) नकुलस्येव अन्धता, ६-तत्। सुश्रुतोक्त एक प्रकारका नेत्ररोग। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जिस रोगमें आंखें दोषाभिभूत हो कर नेवलेकी आंखोंकी तरह चमकने लगती हैं और दिनके समय चीजें रंग विरंगी दिखाई देने लगती हैं, उसीको नकुलान्ध कहते हैं। इस रोगमें पित्तवर्द्धक पदार्थोंका सेवन बिलकुल मना है।

विशेष विवरण नेत्ररोगमें देखो।

नकुलारि (सं० पु०) बिड़ाल, बिलाव।

नकुली (सं० स्त्री०) नकुल-ङीप्। १ कुक्कुटी, मुर्गी। २ मांसी, जटामांसी। ३ कुङ्कुम, केसर। ४ नकुलस्त्री, नेवलेकी मादा। ५ शङ्खिनी। ६ शाल्मली वृक्ष।

नकुलीश (सं० पु०) १ कालीपीठस्थित भैरव विशेष, तान्त्रिकोंके एक भैरवका नाम। २ हकार।

नकुलीश पाशुपत दर्शन—भारतीय एक दर्शनग्रन्थ। माधवाचार्य-प्रणीत सर्वदर्शन-संग्रहमें इस दर्शनका सारांश लिखा है। इसका मूलग्रन्थ आज कल नहीं मिलता और न इस बातका ही निर्णय होता है कि किस समय इस दर्शनकी सृष्टि हुई थी।

इस दर्शनमें एकमात्र महादेवको ही परमेश्वर और जीवोंको पशु माना गया है। महादेव जीवोंके अधिपति हैं, इसलिए पशुपति हैं। नकुलीश महादेवका नाम है और वे ही पशुपति हैं, इसलिए इस दर्शनका नाम नकु-लीश-पाशुपत-दर्शन हुआ है। इस दर्शनमें सभी विषय प्रतिपादित हुए हैं।

हम कोई भी कार्य क्यों न करें, उसमें दूसरेकी सहायता न भी लें, पर अपने हाथ पैरोंकी सहायता अवश्य लेते हैं। परन्तु जगदीश्वरने अन्य किसी भी प्रकार की सहायताके बिना ही समस्त जगत्‌का निर्माण किया है। इसलिए उन्हें स्वतन्त्रकर्त्ता कहा जा सकता है और हम जो कार्य कर रहे हैं, उनके कर्त्ता भी परमेश्वर हैं,

विगर्हित कर्मानुष्ठानको अवितत्करण और निरर्थक वा वाधिनार्थक शब्दोच्चारणको अवितद्गायण कहते हैं। इस मतमें तत्त्वज्ञानको हो मुक्तिका साधन माना है। शास्त्रान्तरोंमें भी तत्त्वज्ञानको मुक्तिका साधन बतलाया है, परन्तु शास्त्रान्तर द्वारा तत्त्वज्ञान होनेको सम्भावना नहीं है, इसलिए मुमुक्षुओंको यह अवलम्बनीय है। विशेष रूपसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान हुए विना तत्त्वज्ञान नहीं होता। परन्तु समस्त वस्तुओंका विशेषरूप ज्ञान शास्त्रान्तर द्वारा होनेकी सम्भावना नहीं। शास्त्रान्तरमें केवल दुःखनिवृत्तिको हो मुक्ति बतलाया है। योगका फल दुःखनिवृत्ति है, कार्य अनित्य है और कारणस्वरूप परमेश्वर कर्मादि सम्पेक्ष है, ऐसा बतलाया गया है। परन्तु इस शास्त्रमें पारमेश्वर्य-प्राप्ति और दुःखनिवृत्ति इस तरह दो प्रकारकी मुक्ति मानी गई है, तथा उन दोनोंको योगका फल बतलाया गया है। कार्य नित्य हैं और परमेश्वर स्वतन्त्र कर्त्ता है, यही प्रमाणादि द्वारा प्रतिपादित हुआ है। (सर्वदर्शनसग्रह) पाशुपत तथा लकुलीश देखो।

नकुलेश (सं० पु०) कालोपार्ठस्थित भैरवभेद, नकुलेश्वर।

नकुलेष्टा (सं० स्त्री०) नकुलस्य इष्टा ६-तत्। रास्ना, रायसन।

नकुलोष्ठो (सं० स्त्री०) तारोंसे बजाये जानेका प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा।

नकुवा (हिं० पु०) १ नासिका, नाक। २ तराजूको डांडीका सूराख।

नकेल (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जो ऊंटकी नाकमें बंधी रहती है। यह लगामका काम करता है और इसके सहारे ऊंट चलाया जाता है, मुहार।

नकोदर—१ पञ्जावके जलन्धर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ५६' और ३१° १५' उ० तथा देशा० ७५° ५' और ७५° ३०' पू० सतलज नदीके उत्तरीय किनारे अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ३७१ वर्गमोल और लोकसंख्या २२२४१२के लगभग है। अधिकांश अधिवासी मुसलमान हैं। इसमें एक शहर और ३११ ग्राम लगते हैं। आय चार लाख रुपयेसे अधिककी है, गेहूं, चना, जुन्हरी, जौ, रुई और धान यहांके प्रधान उत्पन्न शस्य हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ८' उ० और देशा० ७५° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय ८८५८ है। प्रवाद हैं, कि पहले यह नगर कंबोनाकम् हिन्दुओंके अधिकारमें था। पीछे ऐतिहासिक समयमें मुसलमानधर्मावलम्बी एक राजपूत बादशाह जहांगीरके निकट जागोरमें इसे पाया था। जब सिख लोगोंका अभ्युदय हुआ, तब सरदार तारासिंहने राजपूतोंको भगा कर यहां एक दुर्ग निर्माण किया था। १८१६ ई०में यह नगर रणजितसिंहके अधिकारमें आया। शहरमें १६१२ और १६३७ ई०के दो समाधि-मन्दिर देखनेमें आते हैं। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां डाकघर, सरकारी अस्पताल और स्थानीय बोर्डका एक ऐङ्गलो-भर्नाक्युलर स्कूल है।

नक्क (सं० पु०) नगान, वरनादी।

नक्का (हिं० पु० १ सूईमें डोरा पिरोनेका छेद, नाका। २ ताशके पत्तोंमेंका एक्का। ३ नक्की और नक्कीमूठ देखो। ४ कौड़ो।

नकार (हिं० पु०) अवज्ञा, तिरस्कार, अपमान, अवहेलना।

नकारखाना (फा० पु०) नक्कार या नौवत बजनेका स्थान, नौबतखाना।

नकारची (फा० पु०) १ बंबईके विजापुर जिलावासी एक दल नगाड़ा बजानेवाला मुसलमान। वहां इस व्यवसायके एक हिन्दू भी हैं, किन्तु वे इस नामसे पुकारे जाने पर भी उतने प्रतिष्ठित नहीं हैं। इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। इस नामके मुसलमान लोग दीर्घच्छद, मुण्डितमस्तक, श्मश्रुधारी और कुछ पीतवर्णके होते हैं। ये लोग हिन्दूको नाईं पगड़ी बांधते और धोती पहनते हैं। इनकी स्त्रियाका पहनावा भी हिन्दू सरीखा है। इन लोगोंमें अवरोध प्रथा नहीं है, पर हां, स्त्रियां कोई काम नहीं करतीं। जो केवल जाति व्यवसायसे जीविका निर्वाह करते हैं, उनकी अवस्था अच्छी नहीं है। ये लोग परिश्रमी और मिताचारी होते हैं। विवाह केवल अपने ही सम्प्रदायमें होता है। ये लोग अन्य मुसलमानकी नाईं गोमांस नहीं खाते। वल्कि हिन्दू देवताकी पूजा करते हैं। २ वह जो नक्कारा बजाता हो, नगारा बजानेवाला।

नक्कारा (फा॰ पु॰ 'एक प्रकारका बहुत बड़ा बाजा' यह कुगडुगी या बायेंकी तरहका होता है। इसमें एक बहुत बड़े कूँड़ेके ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। इसके साथमें इसी प्रकारका पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनोंको सामने सामने रख कर लकड़ीके दो डंडोंसे जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं, नगाड़ा डंका नौबत।

नक्काल (अ॰ पु॰) १ अनुकरण करनेवाला, नकल करने वाला। २ भाँड़। ३ बहुरूपिया।

नक्काली (अ॰ स्त्री॰) १ नकल करनेकी क्रिया या विद्या। २ भाँड़का काम या विद्या। ३ बहुरूपियेका काम या विद्या।

नक्काश (अ॰ पु॰) नक्काशीका कारीगर, वह जो खोद कर बेल बूटे आदि बनाता हो।

नक्काशी (अ॰ स्त्री॰) १ धातु या पत्थर आदि पर खोद खोद कर बेल-बूटे आदि बनानेका काम या विद्या। २ वे बेल बूटे आदि जो इस प्रकार खोद कर बनाये गये हों।

नक्काशीदार (फा॰ पु॰) जिस पर खोद कर बेल बूटे बनाये गये हों।

नक्की (हि॰ स्त्री॰) १ नक्की-मूठ खेलमें एक की दाव। नक्कीमूठ देखो। २ तासके पत्तोंमें का एक्का। ३ जुएके किसी खेलमें वह दाव जिसके लिये एक का चिह्न नियत हो अथवा जिसकी जीत किसी प्रकारसे एक चिह्नके आनेसे हो।

नक्कीपूर (हि॰ पु॰) नक्कीमूठ देखो।

नक्कीमूठ (हि॰ स्त्री॰) जुएका एक खेल। यह खेल प्रायः स्त्रियाँ और बालक कौड़ियोंसे खेलते हैं। इसमें एक दूसरेको काटती हुई दो सीधी लकीरें खींची जाती हैं और उनके चारों सिरोंमेंसे एक सिरे पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियाँ बना दी जाती हैं। ये बिंदियाँ क्रमशः नक्की, दूआ, तीया और पूर कहलाती हैं। यह खेल दो से चार तक खिलाड़ियोंसे खेला जाता है जो एक एक दाँव ले लेते हैं। एक खिलाड़ी अपनी मुट्ठीमें कुछ कौड़ियाँ ले कर अपनी दाँव पर मुट्ठी रख देता है। बाद सब खिलाड़ी अपने अपने दाव पर कुछ कौड़ियाँ लगाते हैं। अनन्तर वह पहला खिलाड़ी अपनी मुट्ठीकी कौड़ियाँ गिन कर उसमें चारका भाग देता है। भाग देने पर १ कौड़ी बच जानेसे नक्कीवालेकी, २ बच जानेसे दूआवाले की, ३ बच जानेसे तीयावालेकी और कुछ भी न बचने से पूरवालेकी जीत होती है जिसकी जीत होती है, दूसरी बार वही मूठ चलाता है। यदि मूठ चलानेवालेका दाँव आता है तो वह दाँव पर रखी हुई सबकी कौड़ियाँ जीत लेता है, नहीं तो जिसकी जीत होती है, उसको उसे उतनी ही कौड़ियाँ देनी पड़ती हैं जितनी उसने दाँव पर लगाई हों नक्कीपूर।

नक्कू (हि॰ वि॰) १ जिसकी नाक बड़ी हो, बड़ी नाक वाला। २ जिसके आचरण आदि सब लोगोंके आचरणके विपरीत हों, सबसे अलग और उलटा काम करनेवाला।

नक्त (स॰ पु॰) नजन्‌। १ रात्रि रात। तद् अहन्‌ मा- त्यस्य अच्‌। ३ व्रतभेद, एक प्रकारका व्रत।

'मास पौषे सिते पक्षे प्रतिपद्‌ या शिशिरे वै।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ विष्णुं प्रपूजयेत्‌॥" (वराहपु॰)

अगहन महीनेके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको यह व्रत किया जाता है और रातको विष्णुपूजा की जाती है। यहाँ पर 'नक्त' शब्दसे भोजनके बाद ऐसा समझना चाहिये। इसमें दिनके समय बिलकुल भोजन नहीं किया जाता, केवल रातको किया जाता है। नक्तका अर्थ रातके समय भोजन करना है। रात कहनेसे जिस प्रकार अर्थबोध होता है, नक्त शब्दसे ठीक वैसा नहीं होता। इसका व्यवस्था पुराण इसमें निर्दिष्ट है—

"मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं नाहं मन्ये गणाधिपः॥" (भविष्यपु॰)

समूचा दिन प्रायः शेष हो गया हो केवल एक मुहूर्त्त रह गया हो, ऐसे दिनको पण्डितगण नक्त कहते हैं। किन्तु मैं (महादेव), जिस समय नक्षत्रका दर्शन होता है उसी समयको नक्त कहते हैं। देवलने भी नक्त का विषय इस प्रकार निर्णय किया है—

'नक्षत्रदर्शनान्नक्तं परामत द्वयं रहस्यम्‌।
अहोरात्रके भागे तस्य रात्रौ निशिदते॥" (देवल)

यतियोंके लिये नक्त वह समय कहलाता है, जब

नक्तंप्रभव (स० त्रि०) नक्तं प्रभवति प्र-भू-अच्। रात्रि प्रभव, जो रातको उत्पन्न हो।

नक्ता (स० स्त्री०) नक्त-अच्-टाप्। १ कलिकारी, कलि यारी नामक विषैला पौधा। २ हरिद्रा, हलदी। ३ रात्रि, रात। ४ तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

नक्तान्ध (स० त्रि०) नक्ते रात्री अन्धः। रातान्ध, जिसे रातको दिखाई न दे, जिसे रतौंधी होती हो।

नक्तान्ध्या (स० स्त्री०) नक्ते अन्ध्य। नेत्ररोगभेद। इस रोगमें रातको दिखाई नहीं देता। दूषित कफ जब चक्षुके तृतीय पटलमें जम जाता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें केवल दिनको दिखाई पड़ता है, रातको कोई चीज नजर नहीं आती। इसका कारण यह है, कि दिनमें दृष्टि सूर्यांशुप्रद्योत होती और दूषित कफ घट जाता है, इसीसे रोगी दिनमें हर एक वस्तु देख सकता है। (माधव० इवं नेत्ररोगाधिकार)

सुश्रुतमें भी इस प्रकार लिखा है—दृष्टि श्लेष्मा द्वारा जब विदग्ध होती है, तब सभी वस्तु सफेद नजर आती हैं और जब तीनों पटलमें यह दोष उत्पन्न हो जाता है, तब नक्तान्ध्यता होती है। इस रोगमें दिनके समय सूर्यकी किरणोंसे कफ कुछ कम हो जाता है जिससे दृष्टिशक्ति प्रकाश पाती है। (सुश्रुत उत्तर० ७ अ०)

नक्ताह (स० पु०) करञ्जक्ष वृक्ष।

नक्ति (स० स्त्री०) रात्रि, रात।

नक्द (फा० पु०) नकद देखो।

नक्र (स० पु०) न क्रामति दूरस्थं क्रम-ड 'नभ्राडिति' न लोपो न। १ कुम्भीर, नाक नामक जलजन्तु। (स्त्री०) २ द्वारशाखाका ऊर्ध्व भ। ३ मकरादि जलजन्तुभेद मगर नामक जलजन्तु। ४ घड़ियाल। ५ नासिका नाक।

नक्रराज (स० पु०) नक्राणां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच। पा० ५।४।९१) इति टच् समासान्तः। १ जलजन्तु प्रधान, घड़ियाल। २ मगर। ३ नाक नामक जलजन्तु।

नक्रहारक (स० पु०) नक्रमपि हरति ह-ण्वुल्। हाङ्गर।

नक्षा (स० स्त्री० नक्ष अच् टाप्) १ नासिका नाक। २ मक्षिका दंशकादि मधुमक्खी आदिका डंक जिसे वे क्रोध से मनुष्यके शरीरमें फंसाती हैं।

नक्षा (स० स्त्री०) नक्श देखो।

नक्शनवीस (फा० पु०) नक्शनवीस देखो।

नक्शनवीसी (फा० स्त्री०) नक्शनवीसी देखो।

नक्शपरवाना (फा० पु०) नक्शपरवाना देखो।

नक्शबन्दी (फा० स्त्री०) नक्शबन्दी देखो।

नक्श (अ० वि०) १ जो अङ्कित या चित्रित किया गया हो, खींचा, बनाया या लिखा हुआ। (अ० पु०) २ चित्र, तसवीर। ३ खोद कर या कलमसे बना हुआ बेल बूटे या फूल पत्ते आदिका काम। ४ मोहर, छाप। ५ एक प्रकारका ताशका जुआ। ६ एक प्रकारका यन्त्र जो सादगी या कागजके रूपमें बना रहता है और अनेक प्रकारके रोगों व दिक्कतों दूर करनेके लिये भोजपत्र आदि पर लिख कर बांह या गले आदिमें पहनाया जाता है, तावीज। ७ जादू, टोना। ८ एक प्रकारका गाना।

नक्शनिगार (फा० पु०) बनाए हुए बेलबूटे आदि, नकाशी।

नक्शबन्दी—एक सम्प्रदायके मुसलमान फकीर। ये लोग एक हाथमें प्रज्वलित दीप ले कर परमेश्वर और महम्मद की महिमाका गान करते हुए रातको भीख मांगते हैं। बङ्गाल देशमें ये लोग "मुश्किल आसान" नामक पीरके फकीर कहलाते हैं। ये लोग हिन्दू मुसलमान दोनोंके घर भीख मांगने जाते हैं और वहां दीपकी कालोंच ले कर छोटे छोटे बच्चोंके कपाल पर लगा देते हैं। आशी-र्वादके समय ये लोग इस प्रकार कहते हैं, 'मुश्किल आसान आपके तुम्हारे कष्टको दूर करे आपदसे बचावें, तथा छोटे छोटे बच्चोंको सुखी बनाये रक्खें' इत्यादि। ख्वाजा बहाउद्दीन् नामक एक व्यक्ति इस सम्प्रदायके प्रथम प्रवर्त्तक थे। नक्शबन्दी फकीर अपनी नामके पहले 'ख्वाजा' पद लगाते हैं। तातार तुरस्क और भारतमें इस पंथके फकीर पाये जाते हैं।

नक्शबि—तुर्किस्तानके ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने सुख नामसे अपना परिचय दिया है।

नक्श-इ-रुस्तम—पारस्यके अन्तर्गत [illegible] पोर्सिपोलिसके निकट-वर्ती कोह-इ रहम नामक पर्वतके ऊपर अनेक खोदित शिलाफलक विशिष्ट अपना [illegible] समाधि मन्दिर वर्त्तमान हैं। इन सब मन्दिरोंका एकत्र नाम 'नक्श-इ-रुस्तम' है और यहां का एक पर्वत है, वह भी इसी नाम-

से पुकारा जाता है। यहां एकिमनियोंके कारुकार्य-विशिष्ट समाधिमन्दिर तथा ससेनियोंके स्तम्भादि भी हैं। सबसे प्राचीन खोदित शिलामन्दिरकी संख्या सात है। इनमेंसे चार तो नक्श रुस्तम् पर और तीन तख्-इ-जम-शेदके अहमत पर्वत पर अवस्थित हैं। नक्श-इ-रुस्तम पर्वत पर काम्बिसिस, प्रथम दरायुस, जरकसेस और प्रथम आर्त्तजरकसेस नामक चार पारस्य-सम्राटोंके समाधिस्तम्भ हैं। सेकर्डो पर्वत पर ऐकिमिनीय राजाओंकी समाधियां देखनेमें आती हैं। नकश इ रुस्तममें दरायुसके समयकी खोदी हुई एक शिलालिपि है जिसमें तात्कालिक पारस्यदेशके अधीन राजाओंके नाम लिखे हैं। वेहिस्तुन नामक स्थानमें भी दरायुसकी एक दीर्घ-शिलालिपि है।

नक्शमार (हिं० पु०) नकशमार देखो।

नक्शा (अ० पु०) १ प्रतिमूर्त्ति, चित्र, तसवीर। २ आकृति, बनावट, शक्ल, ढाँचा। ३ ढंग, तरज, चालढाल। ४ किसी पदार्थका स्वरूप, आकृति। ५ ढाँचा, ठप्पा। ६ अवस्था, दशा। ७ किसी धरातल पर बना हुआ एक विशेष चित्र। इसमें पृथ्वी या खगोलका कोई भाग अपनी स्थितिके अनुसार अथवा और किसी विचारसे चित्रित रहता है।

साधारणतः भूमण्डल या उसके किसी खण्डका जो नक्शा होता है, उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदियां, झीलें और नगर आदि प्रदर्शित होते हैं। कभी कभी इस विषयका बोध करानेके लिये कि अमुक देशमें कितनी वृष्टि होती है, या कौन कौनसे अन्नादि अथवा इसी प्रकारकी किसी और बातके लिये नक्शेमें भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिये जाते हैं। कभी कभी ऐसे नक्शे भी प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें सिर्फ रेललाइनें, नहरें अथवा इसी तरहकी और और चीजें दिखलाई जाती हैं। महाद्वीपों आदिके सिवा छोटे छोटे प्रदेशों और यहां तक कि जिलों, तहसीलों और ग्रामों तकके नक्शे भी बनते हैं। शहरों या ग्रामोंके नक्शे भी बनते हैं। शहरों या ग्रामोंके नक्शेमें यह भी दिखलाया जाता है, कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौनसे मकान खण्डहर, अस्तबल या कुंए आदि हैं। इसी प्रकार खेतों और जमीनों आदिके भी नक्शे होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहां है और उसकी आकृति कैसी है। खगोलके चित्रोंमें इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जाता है, कि कौन सा तारा किस स्थान पर है।

नक्शानवीस (फा० पु०) किसी प्रकारका नक्शा लिखने या बनानेवाला।

नक्शानवीसी (फा० स्त्री०) नक्शा बनानेका काम।

नक्शी (फा० वि०) जिस पर बेल बूटे बने हों।

नक्षत्र (सं० क्लो०) नक्षति शोभां गच्छति वा नक्ष-अत्रन् (अमिनक्षियजिवधिपतिभ्यो ऽत्रन्। उण ३।१०५।) १ अश्विनी आदि सप्तविंशति तारा। पर्याय—ऋक्ष, भ, तारा, तारका, उडु, तारक, तार, दाक्षायणी। (व्याडि)

पुराणानुसार ये सभी दक्षकी कन्याएं हैं; चन्द्रके साथ इनका विवाह हुआ है।

रात्रिको जितने छोटे छोटे तारे ज्योतिष्क-मण्डल दिखलाई देते हैं, उनमेंसे कुछ ग्रहोंको छोड़ कर शेष सभी तारे कहलाते हैं। ग्रहोंसे तारोंको पार्थक्य इतना ही है कि तारागण परस्पर तुलनामें दृष्टतः निश्चल मालूम होते हैं और उनमें वेपन है। आपाततः देखनेसे मालूम होता है कि गगनमण्डलस्थ तारावलीमें कोई शृङ्खलता या एकतानता नहीं है; मानो वे इतस्ततः विच्छिन्न पड़े हुए हैं और हम उनमेंसे किसी एककी आपेक्षिक अवस्थितिको निर्द्धारित नहीं रख सकते। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। रात्रिको आकाशके किसी एक प्रदेशमें एक तारेको चिह्नित कर उसका अनुसरण किया जा सकता है। दिनमें वह अदृश्य हो जाता है। दूसरी रात्रिको वही चिह्नित तारा विशाल गगनप्राङ्गनमें कहां उदित हुआ, इसका निरूपण किस तरह होगा? यदि उस चिह्नितके निकटवर्त्ती और भी कई तारोंको चिह्नित कर लिया जाय, तो उसको ढूंढ़ निकालना तादृश कठिन नहीं है। इसलिए अति पुराकालसे ही लोग तारोंको अपने सुभीताके अनुसार दलबद्ध कर चिह्नित रखते थे और उन दलबद्ध ताराओंमें एक एक प्रकार आकृतिकी कल्पना की जाती थी। यह काल्पनिक आकृतिविशिष्ट तारा-दल ही नक्षत्र है। नक्षत्रोंके कई मानचित्र भी बन गये हैं।

अति प्राचीनकालमें तारविन्यास देख कर प्राचीनो-ने आकाशका विभाग किया था। प्रति रात्रिमें चन्द्रको उनमेंसे जाते हुए देखा जाता है। इस प्रकारसे २७।२८ दिनमें चन्द्र एक बार अपने पथका तारोंके साथ वास करते हैं। प्राचीनोंने इन तारामालाओं का नाम नक्षत्र रखा था। इस प्रकारसे २७।२८ नक्षत्र कल्पित हुए। कालान्तरमें जब उन्होंने देखा कि एक अमावस्या वा पूर्णिमासे ले कर दूसरी अमावस्या वा पूर्णिमा तक कुल ३० बार सूर्योदय होता है, तब ३० दिनका एक मास बना दिया। परन्तु सूर्यास्तके पश्चात्‌में नक्षत्रों पर दृष्टि डालनेसे उन्हें मालूम पड़ा कि सूर्य भी नक्षत्रोंमें हो कर गमन करते हैं। बारह बार अमावस्या होनेसे सूर्य एक बार नक्षत्रचक्रमें घूम लेता है। इस प्रकार ३० दिनमें एक मास और १२ मास वा ३६० दिनमें एक वर्ष गिना जाने लगा।

चन्द्रकी गति देख कर चन्द्रपथ २७।२८ नक्षत्रोंमें विभक्त हुआ था। सूर्य इसी पथसे १२ मास तक भ्रमण करता है। इसलिए इस पथको १२ मासोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता हुई।

आकाशमें तारागणको स्थान-निर्देश कठिन है। इस कारण जैसे कुछ तारोंको ले कर एक एक नक्षत्र कल्पित हुए थे, उसी प्रकार एक वा ततोधिक नक्षत्रोंको ले कर १२ राशियां कल्पित हुई। जैसे कुछ तारोंके पारस्परिक विन्यासको देख कर उनका त्रिकोणाकार वा शकटाकार प्रतीत होने लगता है उसी प्रकार कुछ नक्षत्रोंके पारस्परिक विन्यासको देख कर मेष-इत्यादिके आकारकी कल्पना होती है। इस नाम और आकारकी कल्पनासे दो प्रकारकी सुविधाएं हुईं। आज आकाशके किस स्थानमें सूर्य वा चन्द्र है यह नाम द्वारा व्यक्त किया जाने लगा और यह जब स्थान आकाशका कौनसा अंश है, यह भी सहजमें बिना निर्देश किये होने लगा है।

कोई कोई ऐसा समझते हैं कि यह राशिविभाग पहले पहल मिस्रवासियों द्वारा प्रवर्तित हुआ था। दूसरे पक्ष भी कह जाता है, कि मिस्रवासियोंका राशि-कल्पना को देख कर ईसाके ३०० वर्ष पहले श्रीकोने पोथ मात्रा में krios, tauros आदि राशियोंका नामकरण किया था। इन लोगोंने देखा कि मेष इत्यादि द्वादश राशियों द्वारा सम्पूर्ण आकाशका निर्देश नहीं किया जा सकता। इसलिए उन लोगोंने कुछ तारोंके auriga, cassiopeia आदि नाम रख कर कुछ नवीन आकारविशिष्ट राशियों की कल्पना कर ली। इस तरह कालान्तरमें ३६ अति-रिक्त आकारोंकी कल्पना हुई और पहलेकी १२ राशियों को मिला कर अब सम्पूर्ण आकाश ४८ राशियोंमें विभक्त हुआ।

परन्तु किन किन तारोंको ले कर कौनसी राशि हुई, इसकी पहचान चित्रदर्शनके बिना नहीं हो सकती। क्योंकि हर एक तारापुञ्जका यथेच्छ आकार कल्पित हो सकता है। ईसाके ३०० वर्ष पहले ग्रीक इडक्सस (Eudoxos)-ने पहले गोलक पर राशियों का आकार दिखलाया था। तदनन्तर ईसाके १२८ वर्ष पहले हिप्पार्कसने प्रथम प्रथम ताराका मानचित्र बनाया। १११ ई०में प्रसिद्ध टलेमिने उस मानचित्रका संस्कार किया। प्रायः तीन सौ वर्ष पहले तायकोब्राहि नामक ज्योतिर्विदने कुछ नूतन राशियोंकी कल्पना की। इस तरह प्रायः ६० नूतन राशियोंकी सृष्टि हुई और प्रत्येक राशिके आकार और नाम दिया गया। पुराने ४८ और नये ६०, इस तरह सब मिला कर १०८ राशियोंके विचित्र आकार ग्लोबके और समोल मानचित्रमें चित्रित होने लगे।

एक ही नक्षत्रके अन्तर्गत तारे ग्रीक अक्षरों द्वारा परस्पर विभिन्नीकृत हुए थे। सर्वसाधारणसे प्रथम अक्षरसे उज्ज्वलतम ताराका बोध होता है। ग्रीक अक्षर निबट जाने पर रोमन अक्षरोंका सहायता ली गई। बहुतसे उज्ज्वल तारोंके विशेष विशेष नाम हैं। औज्ज्वल्यके तारतम्यानुसार तारागण प्रथम द्वितीय तृतीय आदि परि-माणोंमें विभक्त हुआ करते हैं। साधारणतः चर्मचक्षुसे जितने भी उज्ज्वल तारे दीख पड़ते हैं, वे षष्ठ परिमाणके हैं। परन्तु अति तीक्ष्ण चक्षु द्वारा सप्तम और अष्टम परि-माणके तारे भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं। ज्योतिर्विद मि० हर्षेलने निर्णय किया है, कि सबसे उज्ज्वलतम लुब्धक तारे (Sirius)-की ज्योति षष्ठ परिमाणके तारोंकी अपेक्षा ३२४ गुण अधिक है। उत्तर गोलार्द्धके

नक्षत्रोंमें निम्नलिखित तारे प्रथम परिमाणके हैं। यथा—रोहिणी, स्वाति, Atair, आर्द्रा, Capella (ब्रह्महृदय), Procyon (प्रश्वा), Regulus vega (अभिजित्)। दक्षिण गोलकार्द्धके नक्षत्रमें Achernos, Autares (ज्येष्ठा), Canopus (अगस्त्य), Reigel (बहुधि), Sirius (लुब्धक) और Spica (चित्रा) ये सब प्रथम परिमाणके तारे हैं।

ये नक्षत्र क्या पदार्थ हैं, इसका निश्चितरूपसे निर्णय करना असम्भव है, परन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सूर्यको यदि नक्षत्रोंके समान दूरमें स्थापन किया जाय, तो वह भी आकार और लक्षणमें एक नक्षत्ररूपमें प्रतीयमान होगा।

नक्षत्रोंके अवस्थानके विषयमें किञ्चित् अनुसन्धान करना आवश्यक है। कोई कोई नक्षत्र रविमार्गके निकट और कोई, कोई दूरमें अवस्थित है। यथा—रोहिणी, पुष्या, चित्रा आदि रविमार्गके निकटमें हैं और स्वाति, धनिष्ठा एवं श्रवणा आदि दूरमें अवस्थित है। कोई कोई नक्षत्र परस्पर निकटवर्त्ती तथा चित्रा और स्वाती, आर्द्रा और पुनर्वसु परस्पर दूरवर्त्ती एक एक ताराको ले कर कोई नक्षत्र तथा बहुतसे तारोंको ले कर कोई कोई नक्षत्र कल्पित हुआ है। शत-(बहु) संख्यक तारोंको ले कर शतभिषा, ३२ तारोंको ले कर रेवती, ११ तारोंको ले कर मूला और १ तारेको आर्द्रा एवं स्वाति नक्षत्र कल्पित हुआ है।

नक्षत्रोंकी एक प्रकारकी दृष्टतः आह्निक गति है। उसके विषयकी पर्यालोचना करनेसे विस्मित होना पड़ता है। देखा जाता है,कि अधिकांश नक्षत्र उदित हो कर, क्षुद्र या वृहत् वृत्तखण्डाकार पथमें परिभ्रमण करते हुए पश्चिम दिशाको अस्तमित होते हैं, और कुछ अन्य नक्षत्र ख-मध्य (Zenith)के उत्तरवर्त्ती किसी एक विन्दुके चारों तरफ (वृत्ताकार) परिभ्रमण करते हैं। मेरुप्रदेशीय तारा जिस वृत्तको अङ्कित करता है, वही सर्वापेक्षा क्षुद्र है। मेरुदण्डके ऊपर पृथिवीका आवर्त्तन ही इस प्रकार दृश्यमान् गतियोंका कारण है। पृथिवीकी यदि उक्त आवर्त्तन-गति हो रहती, तो वर्षमें सभी समय एक ही नक्षत्र आकाशके एक ही स्थानमें दीख पड़ता। परन्तु ऐसा नहीं है। सूर्यके चारों तरफ पृथिवीकी जो वार्षिक गति है, उसके कारण आकाशका दृश्य बड़ी बड़ी परिवर्त्तित होता रहता है। आज एक नक्षत्र किसी समय आकाशके जिस स्थानमें दीखेगा, कल वही नक्षत्र चार मिनट पहले उसी स्थानमें नजर आयेगा और ठीक एक वर्ष बाद एक ही नक्षत्रको उसके पहले स्थानमें देखेंगे।

कुछको छोड़ कर अधिकांश नक्षत्रोंका दूरत्व अभी तक निर्णीत नहीं हुआ है। परन्तु वह दूरत्व अत्यधिक है, इसमें संदेह नहीं। ब्रैडलिके समयसे तारोंके वार्षिक लम्बन (Yearly parallax) निरूपणके द्वारा उनके दूरत्व-निर्द्धारणके लिये बहुत चेष्टा की गई है। उक्त लम्बन सुसम्पन्न यन्त्रों द्वारा अवधारित होता है। किसी नक्षत्र एक रेखा सूर्य पर्यन्त और दूसरी रेखा पृथिवी पर्यन्त खींचनेसे जो कोण उत्पन्न होता है, उसे नक्षत्रका लम्बन कहते हैं। यदि उस कोणका परिमाण एक सेकेण्ड हो, तो समझना चाहिये कि प्रस्तावित नक्षत्रका दूरत्व सूर्यके दूरत्वसे २०६००० गुण अधिक है। १८३२से १८३८ ई०के भीतर हेण्डर्सन, बेसेल और पिटर्स महोदयने नक्षत्रोंका लम्बन यथार्थ रूपसे निर्द्धारित किया था।

बेसेलने सबसे पहले स्थिर किया कि स्वान (Swan) नक्षत्रके अन्तर्गत ६१ संख्याओंका जो एक युक्त तारा (Double star) है, उसका लम्बन ०″ ३७ है। इससे निर्णीत हुआ कि उन ताराओंकी दूरी सूर्यकी दूरीसे ५५०००० गुण अधिक है। इस कारण उक्त ताराओंका आलोक भूपृष्ठ पर पहुंचनेमें ८ ½ वर्ष लगते हैं। आज तक जिन सब नक्षत्रोंकी दूरी मालूम हुई है, उनमेंसे Alpha Centauri (किन्नर नामक तारा सबसे कम दूरी पर है।) यह एक अत्यन्त उज्ज्वल तारा है और दक्षिण आकाशमें अवस्थित है। उत्तमाशा अन्तरीपमें हेण्डर्सन और मेकलियर द्वारा इसका लम्बन ०″.९१२८ स्थिर हुआ था। पीछे संशोधित हो कर ०″.९७६ कायम किया गया। उक्त ताराओंका आलोक पृथ्वी पर पहुंचनेमें ३,़ वर्ष लगता है। उज्ज्वलतम तारा लुब्धकका लम्बन ०″ ·१५ निर्णीत हुआ है।

गहरी खोज करनेके बाद अभी यह सम्भव सा प्रतीत होता है, कि एक प्रथम परिमाणके तारोंकी दूरी भूकक्षावृत्तके व्यासार्द्धसे न्यूनाधिक ९८६००० गुण है। इस दूरत्वको अतिक्रम कर प्रकाश पहुंचनेमें १५½ वर्ष लगता

हुआ है। जिन सब स्थानोंमें लम्बन मालूम है, वहां कक्षावृत्तका आयतन निरूपित किया जाता है। इस उपायसे ज्योतिर्विद् पण्डितोंने यह अवधारण किया है कि राजहंस (*Cygnus*) नक्षत्रके अन्तर्गत ६१ युक्त ताराओंके परस्पर चारों ओर जो कक्षावृत्त है, वह आयतनमें सूर्यके चारों ओर नेपचुनका जो कक्षावृत्त है उससे कहीं बड़ा है। इस प्रकार परिभ्रमणवशतः पहले जो सब तारे पृथक् पृथक् देखे जाते थे, अभी उनमेंसे अनेक एक साथ मिले हुए देखे जाते हैं। हेलिसाहबने निर्धारण किया है कि ताराओंकी प्रकृत गति एक दूसरी तरहकी है। एक तारा भिन्न भिन्न दिशामें जा कर गायब हो जाता है। इस कारण संयुक्त नक्षत्रोंकी आकृति धीरे धीरे परिवर्त्तित होती है। हाम्बोल्टका कहना है, कि दक्षिण दिक्स्थ क्रूश नक्षत्र चिरकाल तक ठीक वर्त्तमान आकृतिविशिष्ट नहीं रहेगा। क्योंकि जिन चार ताराओंको ले कर उक्त नक्षत्र गठित हुआ है, वे भिन्न भिन्न मार्ग हो कर असमान वेगसे भ्रमण करते हैं। इस सम्पूर्ण रूपसे भग्न हो जानेमें कितने हजार वर्ष लगेंगे, उसकी गणना नहीं।

ज्योतिःशास्त्रमें जिस प्रकार लिखा है, उसका विषय गौर कर देखना आवश्यक है, सूर्य उत्तरायण और दक्षिणायन गतिसे आकाशमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, इन दो सीमाओं वा रेखाओंके मध्य पृथ्वीका जो अंश पतित होता है, उसका नाम मध्यखण्ड है। इस खण्डमें बारह राशि और उसके अन्तर्गत १०१६ नक्षत्र देखनेमें आते हैं। गगनमण्डलके उत्तर जो अंश हैं, उसे उत्तरखण्ड कहते हैं। उसके मध्य ३५ राशि अर्थात् पुञ्ज हैं और तदन्तर्गत १४५६ नक्षत्र हैं। दक्षिणकी ओर जो खण्ड है उसके मध्य ४६ राशि और तदन्तर्गत ८८५ नक्षत्र अवस्थित हैं, यह पाश्चात्य ज्योतिर्विदोंने स्थिर किया है।

उस मध्यखण्डमें जो सब नक्षत्र हैं, उनमेंसे बहुतोंको ले कर एक एक आकृतिकी कल्पना करके पुराकालमें ज्योतिर्विद् पण्डितोंने बारह वर्ग राशि स्थिर की है।

विषुवरेखाके उत्तरकी ओर मेषादि ६ राशि हैं और दक्षिण ओर तुला आदि ६ राशि तिर्यक् भावसे अवस्थित है। गगनमण्डलके इन तीन खण्डोंमें जिन सब नक्षत्रोंका विषय कहा गया है उनके सिवा दूरवीक्षण-यन्त्रकी सहायतासे अनेक नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतवर्षीय ज्योतिर्विदोंने उत्तर और दक्षिण खण्डमें जो सब राशि और नक्षत्र हैं, उनका कोई उल्लेख नहीं किया। इसी कारण किसी ज्योतिर्ग्रन्थमें उन सब राशियों और नक्षत्रोंके नाम नहीं मिलते।

किन्तु उन्होंने मध्यखण्डस्थ मेषादिक्रमसे बारह राशिभुक्त २७ नक्षत्रोंके नाम रखे हैं। साधारण लोगोंका विश्वास है, कि अश्विनीसे ले कर रेवती तक जो २७ नक्षत्र गिने जाते हैं, वे सिर्फ २७ हैं, सो नहीं। सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थोंमें अश्विनी प्रभृति एक एक नक्षत्र नहीं हैं उनमेंसे कोई तो एक और कोई उससे भी अधिक नक्षत्रोंमें विरचित हैं।

अश्विनी, इसमें तीन नक्षत्र हैं। इन तीन नक्षत्रोंका अवस्थान अश्वके जैसा है, इसीसे इसका नाम अश्विनी पड़ा है, इत्यादि। इन नक्षत्रोंकी आकृति और अवस्थानादिके विषयमें खगोल देखो। २७ नक्षत्रोंके नाम ये हैं—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती। अभिजित् नामक एक नक्षत्र और है, किन्तु यह नक्षत्र भिन्न नक्षत्र नहीं हैं, इन्हीं २७ नक्षत्रोंके अन्तर्गत है।

इन २७ नक्षत्रोंके प्रति नक्षत्रको चार भाग करके उसके नौ नौ पाद अर्थात् भागमें एक एक राशि ठीक करके बारह राशियोंमें नक्षत्रचक्र विभक्त किया गया है। इसीसे उन नक्षत्रोंको राशिचक्र भी कहते हैं।

कोई कोई नक्षत्र ऊर्द्धमुख और कोई अधोमुख वा तिर्यङ्मुख है, इनमेंसे आर्द्रा, पुष्या, धनिष्ठा शतभिषा, श्रवणा, रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र ऊर्द्धमुख हैं; मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, और पूर्वभाद्रपद ये सब नक्षत्र अधोमुख हैं। अश्विनी, रेवती, हस्ता, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, मृगशिरा और अनुराधा

इन सब नक्षत्रोंका एक एक अधिपति निर्दिष्ट है। यथा—अश्विनीका अश्वि, भरणीका यम, कृत्तिकाका दहन, रोहिणीका कमलज, मृगशिराका शशी, आर्द्राका शूलभृत्, पुनर्वसुका अदिति, पुष्याका जीव, अश्लेषाका फणी, मघाका पितृगण, पूर्वफल्गुनीका योनि, उत्तरफल्गुनीका अर्यमा, हस्ताका दिनकृत्, चित्राका त्वष्टा, स्वातिका पवन, विशाखाका शक्राग्नि, अनुराधाका मित्र, ज्येष्ठाका शक्र, मूलाका निऋति, पूर्वाषाढ़ाका तोय, उत्तराषाढ़ाका विश्वविरिञ्चि, श्रवणाका हरि, धनिष्ठाका वसु, शतभिषाका वरुण, पूर्वभाद्रपदका अजैकपाद, उत्तरभाद्रपदका अहिर्बुध्न और रेवतीका पूषा अधिपति है। नक्षत्रके नामसे मासका नामकरण हुआ है, यथा—कृत्तिका और रोहिणी इन दो नक्षत्रोंसे कार्त्तिक, मृगशिरा और आर्द्रासे अग्रहायण, पुनर्वसु और पुष्यासे पौष, अश्लेषा और मघासे माघ, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी और हस्तासे फाल्गुन, चित्रा और स्वातीसे चैत्र, विशाखा और अनुराधासे वैशाख, ज्येष्ठा और मूलासे ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ासे आषाढ़, श्रवणा और धनिष्ठासे श्रावण, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपदसे भाद्र, रेवती अश्विनी और भरणीसे आश्विन।

इन सब मासोंकी पूर्णिमा तिथिमें ये ही सब नक्षत्र होंगे, अर्थात् कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिमें कृत्तिका अथवा रोहिणी नक्षत्र होगा। इसी प्रकार सभी महीनोंमें जानना चाहिये। इस तरह नामकरणका कारण मालूम करनेमें यह साफ साफ जाना जाता है कि चन्द्र जब जिस राशिमें रहते हैं तब उसी राशिके स्थिति कालमें उसी नक्षत्रके नामसे मासका उल्लेख हुआ है। किन्तु जिस राशिमें चन्द्र जब स्थित रहते हैं, उस समय उसी राशिसे उसकी सातवीं राशिमें सूर्य देखे जाते हैं और उसी उसी राशिको सातवीं राशिमें ये अस्त होते हैं। अर्थात् जब चन्द्र विशाखा नक्षत्रमें अर्थात् तुला राशिमें स्थित रहते हैं उस समय सूर्य मेषराशिमें देखे जाते हैं। इसी प्रकार सभीका विषय जानना चाहिये।

गगनमण्डलको तीन भागोंमें विभाग कर उनमेंसे जिन सब नक्षत्रोंका उल्लेख किया गया है, उनके मध्य भागमें बारह राशि और तदन्तर्गत २७ नक्षत्र हैं। इन २७ नक्षत्रोंको बारह भाग करके उसको एक एक राशि भी पद नक्षत्रमें पूरा करती है। इस गगनमण्डलको मध्यस्थापित राशियोंका परिभ्रमण करनेमें किस ग्रहको कितना समय लगेगा, वह नीचे दिये जाता है। इसके द्वारा उनकी गति और दूरी जानी जा सकती है। ग्रहगण नक्षत्रपुञ्जरूप राशिचक्रका परिभ्रमण करते हैं। उनमेंसे रविको बारह राशिभ्रमण करनेमें एक वर्ष लगता है, अर्थात् मेषराशिके अन्तर्गत अश्विनी नक्षत्रके प्रथमपादसे भ्रमणका आरम्भ कर फिरसे उस स्थान पर आनेमें एक एक वर्ष लगता है। इसी प्रकार चन्द्रको २७ दिन, मङ्गलको ६८० दिन, बुधको २१६ दिन, बृहस्पतिको १२ साल, शुक्रको २२६ दिन, शनिको ३० वर्ष, राहु और केतुको १८ वर्ष लगता है।

ग्रहों को बारह राशि भ्रमण करनेमें जो समय लगता है, उसे बारह भाग करनेसे जो भाग होता है, वह भाग एक एक राशि भ्रमण करनेका निर्दिष्ट समय है। नौ पादनक्षत्रमें एक राशि होती है। उस राशिके भोगकालका ९वें भाग देनेसे जो फल आता है, उसका चौथाई भाग एक एक नक्षत्र-भ्रमण करनेका काल है।

रविको एक राशिके भ्रमणका काल १ मास है, अर्थात् अश्विनी नक्षत्रके प्रथम पादसे एक बार कृत्तिका पूर्व एक पाद परिभ्रमण करनेमें १ मास लगता है। इस प्रकार चन्द्रको २।११ दण्ड मङ्गलको ४५ दिन, बुधको १८ दिन, बृहस्पतिको १ वर्ष, शुक्रको २८ दिन, शनिको २ वर्ष ६ मास, राहु और केतुको १ वर्ष ६ मास समय लगता है। इसके द्वारा गगनमण्डलके द्वादश भागमें अर्थात् द्वादश राशिमें किस राशिमें कौन ग्रह किस समय अवस्थित रहेगा तथा उस राशिके अन्तर्गत नक्षत्रोंमें कब तक भ्रमण करेगा, वह मालूम हो जायेगा।

पञ्चमास नक्षत्रानुसार ही राशिकी दशा आदिका निरूपण किया जाता है, उसका फलाफल नाना प्रकारके लिखे गये हैं।

नक्षत्रपात—जिस किसी नक्षत्रके उदयसे ले कर फिर-

से उदय होनेमें जो समय लगता है, उसे एक नाक्षत्र अहोरात्र कहते हैं। नक्षत्रमान इस प्रकार है—६० अनुपलका एक विपल, ६० विपलका एक पल, ६० पलका एक दण्ड, ६० दण्डका एक नाक्षत्रअहोरात्र, ३० नाक्षत्र अहोरात्रका एक नक्षत्रमास और बारह नक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वर्ष होता है। ३६६ अहोरात्र १५।३१।२४ अनुपलका एक सौर वर्ष होता है। अतएव सावन ३६५ दिन १५।३१।२४ अनुपलका एक नाक्षत्र अहोरात्रसे अधिक होता है। नक्षत्रोंका उदय देख कर इस नक्षत्रकालका निश्चय होता है। किसी विशेष नक्षत्रके उदय स्थानसे पुनर्वार उसी स्थान पर आनेमें जो समय लगता है, वह किसी प्रकार किसी यन्त्र द्वारा स्थिर करनेसे उस काल द्वारा एक नाक्षत्र अहोरात्रका परिमाण स्थिर होता है। इस नाक्षत्र अहोरात्रका प्रतिदिन बराबर रहता है। नाक्षत्र अहोरात्रमें भी बारह लग्न होते हैं। इस नाक्षत्र दिनके द्वारा परमायु और दशा आदिकी गणना होती है।

नक्षत्रका जाति निरूपण-अश्विनी और शतभिषा, अश्वजाति; रेवती और भरणी हस्ती, कृत्तिका अजा; रोहिणी और मृगशिरा सर्प, आर्द्रा, हस्ता और स्वाति व्याघ्र, पुनर्वसु मेष पुष्या, अश्लेषा और मघा इन्दुर; पूर्वफल्गुनी और चित्रा महिष, विशाखा और अनुराधा हरिण; ज्येष्ठा कुक्कुर, मूला और श्रवणा वानर, पूर्वाषाढ़ा नकुल; धनिष्ठा पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद सिंह जातिका है। नक्षत्र द्वारा नाम और राशि निर्द्धारित होती है। वह नक्षत्रानुयी नामकरण शतपदचक्रानुसार हुआ करता है। नक्षत्रके चार पादमें चार अक्षर रहेंगे। उस नक्षत्रके मध्य जन्म समय स्थिर कर नक्षत्रके किस पादमें जन्म हुआ है, वह स्थिर करना होता है। पीछे जिस पादमें जन्म होगा नक्षत्रके उस पादमें लिखित नामोंका आदि अक्षर होगा। किस अक्षरके किस पादमें जन्म होनेसे क्या नाम होगा उसका विषय नीचे दिया जाता है।

"अ इ उ ए कृत्तिका, ओ व वी वु रोहिणी, वे वो क कि मृगशिरा, कु घ ङ छ आर्द्रा, के को ह हि पुनर्वसु, हु हे हो ड पुष्या, ति सु ते तो अश्लेषा, म मि मु मे मघा, मो ट टि टु पूर्वफल्गुनी, टे टो प पि उत्तरफल्गुनी, पु ष ण ठ हस्त, पे पो र रि चित्रा, रु रे रो त स्वाति, ति तु ते तो विशाखा, न नि नु ने अनुराधा, नो य यि यु ज्येष्ठा, ये यो भ भि मूल, भू ध फ ढ़ पूर्वाषाढ़ा, भे भो ज जि उत्तराषाढ़ा, जु जे जो ख अभिजित्, खि खु खे खो श्रवणा, ग गि गु गे धनिष्ठा, गो स सि सु शतभिषा, से सो द दि पूर्वभाद्रपद, दु थ झ ञ उत्तरभाद्रपद, दे दो च चि रेवती, चु चे चो ल अश्विनी, लि लु ले लो भरणी।"

इनमेंसे जिस किसी नक्षत्रमें जन्म होगा, उस जन्म नक्षत्रका कितना दण्ड है, पहले उसका निर्णय करना चाहिये। नक्षत्रको चार भाग करके उनमेंसे जिस भागमें जन्म होगा, वही पाद जानना होगा। प्रति नक्षत्रमें चार चार करके अक्षर सन्निविष्ट हैं। नक्षत्रके जिस पादमें जन्म होगा, उस पादमें जो अक्षर रहेगा, वही अक्षर आदि अक्षर होगा। जैसे कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम पादमें जन्म होनेसे अकार, द्वितीय पादमें इकार, तृतीय पादमें उकार और चतुर्थ पादमें एकार आदि पर नाम होगा। इसी प्रकार और सभी नक्षत्रोंका विषय जानना चाहिये। नाक्षत्रिक दशा और राशि आदिका विवरण दशा और राशि शब्दमें देखो। किस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जातबालक किस प्रकारका गुणसम्पन्न होगा, वह प्रत्येक नक्षत्रके नाम और अपरापर विवरण खगोल शब्दमें लिखा है।

२ हारविशेष, २७ नरहारका नाम नक्षत्रमाला है। नक्षत्रमाला देखो।

नक्षत्रकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदका परिशिष्टविशेष। इसमें चन्द्रको अवस्थितिका विषय वर्णित है।

नक्षत्रकान्तिविस्तार (सं० पु०) नक्षत्रकान्तीनां विस्तारो यत्र। धवल यावनाल, सफेद ज्वार।

नक्षत्रकूर्मविभाग (सं० पु०) नक्षत्रकूर्मका विभाग अर्थात् राशिको प्रधानताके अनुसार देशका अवस्थानभेद।

नक्षत्रगण (सं० पु०) नक्षत्रघटितो गणः समुदायभेदः। नक्षत्रविशेषका समूहात्मक गणभेद। इस नक्षत्र गणका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफल्गुनी नक्षत्र ध्रुवगण है अर्थात् ध्रुवगण कहनेसे यही सब नक्षत्र पाये जायेंगे। इस ध्रुवगणमें अभि-

ध्रुवतारक, ध्रुवतारा। २ चन्द्र, चन्द्रमा। ३ रेवती। ४ विष्णु।

भगवान् विष्णुने तारामय शिशुमारके हृदयमें ठहर कर ज्योतिश्चक्रमण्डलको नेमिकी नाईं चक्राकारमें घुमाया था, इसीसे भगवान् विष्णुका नेमि नाम पड़ा है।

नक्षत्रप (सं॰ पु॰) नक्षत्रं पाति रक्षति इति पा-क। चन्द्र, चन्द्रमा।

नक्षत्रपति (सं॰ पु॰) नक्षत्रं पाति पा डति, वा नक्षत्राणां पतिः ६-तत्। चन्द्र, चन्द्रमा।

नक्षत्रपथ (सं॰ पु॰) नक्षत्रोपलक्षितः पन्थाः, अच् समासान्तः। नक्षत्रचक्रका भ्रमणमार्ग, नक्षत्रोंके चलनेका रास्ता। "अतीतनक्षत्रपथानि यत्र।" (माघ) खगोल देखो।

नक्षत्रपुरुष (सं॰ पु॰) नक्षत्रैः पुरुष इव। व्रतविशेष। नक्षत्रसमूहको पुरुष मान कर यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसका नाम नक्षत्र-पुरुष-व्रत पड़ा है।

इस व्रतका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—मूलानक्षत्र नक्षत्रपुरुषके दोनों पांव, रोहिणी और अश्विनी दो जङ्घा, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा दो ऊरु, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी गुह्यदेश, कृत्तिका उ -का कटिदेश, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद दो पार्श्व, रेवती कुक्षिदेश, अनुराधा वक्षस्थल, धनिष्ठा पृष्ठदेश, विशाखा दोनों भुज, हस्तानक्षत्र दोनों हाथ, पुनर्वसु, हस्ताङ्गुलि, अश्लेषा हस्तनख, ज्येष्ठा ग्रीवा, श्रवणा दो कर्ण, पुष्या मुख, स्वाति दन्त, शतभिषा हास्य, मघा नासिका, मृगशिरा दोनों चक्षु, चित्रा ललाटदेश, भरणी मस्तक और आर्द्रानक्षत्र मस्तकस्थित केश होगा।

पूर्वोक्त नक्षत्रों द्वारा उक्त सभी अवयवोंकी कल्पना कर एक नक्षत्रपुरुष कल्पित करना होता है। जो इस व्रतको करेंगे, उन्हें इसी नियमसे नक्षत्रपुरुषकी कल्पना करनी होगी। यह व्रत चैत्रमासकी कृष्णाष्टमीमें मूलानक्षत्रयुक्त चन्द्रमें किया जाता है। इस दिन विष्णु और सभी नक्षत्रोंकी पूजा कर उपवास करना चाहिये। व्रत समाप्त हो जाने पर अपनी शक्तिके अनुसार कालविद्याविशारद पण्डितोंको सुवर्णके साथ घृतपूर्ण पात्र और सरल वस्त्र दान देना चाहिये। जो लावण्यकी इच्छा करते हैं, वे क्षीर, इताम और गुड़ दे कर ब्राह्मणोंकी अर्चनापूर्वक रौप्यसमन्वित वस्त्र उन्हें दान करें, फिर नक्षत्रपुरुषके पादस्थित नक्षत्रसे ले कर क्रमशः मास मासमें उपवास कर उनके अङ्गस्थ सभी नक्षत्रोंमें अपनी विधिके अनुसार विष्णु और उसी नक्षत्रकी पूजा करें। जो पुरुष इस प्रकार व्रताचरण करते हैं, वे कन्दर्प सदृश रूपवान् होते हैं। यदि स्त्रियां यह व्रत करें, तो वे अप्सराओंके सदृश सौन्दर्य लाभ करती हैं, जब तक नक्षत्रमाला आकाशमें विचरण करेगी, तब तक इस व्रतके करनेवाले उन नक्षत्रोंके साथ अवस्थान करेंगे और जब तक इस लोकमें रहेंगे, तब तक राजाओंसे पूजित हो कर काल यापन करेंगे। (वृहत्संहिता ११५ अ॰)

इस व्रतका विषय वामनपुराणके ७७ अध्यायमें विस्तारित रूपसे लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

नक्षत्रफल (सं॰ क्ली॰) नक्षत्राणां फलं ६-तत्। नक्षत्र समूहका फल।

नक्षत्रभोग (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां राशिचक्रस्थितनक्षत्राणां एकैकस्मिन् भोगः। नक्षत्रोंका भोग, २१६०० कलात्मक कालमें बराबर बराबर २७ भागोंका एक भाग ८०० सौ कलारूप भोग होता है।

नक्षत्रमान (सं॰ क्ली॰) सूर्यसिद्धान्तोक्त दिनादि मानभेद। नक्षत्र देखो।

नक्षत्रमार्ग (सं॰ पु॰) नक्षत्राणां मार्गः। नक्षत्रोंका विचरण पथ, नक्षत्रोंके चलनेका रास्ता।

नक्षत्रमाला (सं॰ स्त्री॰) नक्षत्रसंख्यका माला। १ वह हार जिसमें सत्ताईस मोती हों। २ नक्षत्रश्रेणी। ३ हाथियोंकी माला।

नक्षत्रमालिनी (सं॰ स्त्री॰) जातीपुष्पवृक्ष।

नक्षत्रयाजक (सं॰ पु॰) नक्षत्रनिमित्तं हव्यर्थं याजयति यज-णिच्, ण्वुल्। नक्षत्रदोष शान्तिकारक ब्राह्मणभेद, वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदिके दोषोंकी शान्ति करता हो। महाभारतके अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और प्रायः चाण्डालके समान होता है।

"आह्वायका देवलका नक्षत्रग्रामयाजकाः।
एते ब्राह्मणचाण्डाला महापथिकपंचमाः॥"
(भारत शान्ति॰ ७६ अ॰)

नक्षत्रयोग (स० पु०) नक्षत्रमें दे योगः ६ तत्। नक्षत्रों के साथ दुष्ट ग्रहोंका योग।

नक्षत्रयोगिनी (स० स्त्री०) नक्षत्रैरभिमानितया युज्यते युज विनुण्। दाक्षायणी, अश्विनी आदि नक्षत्र।

नक्षत्रयोनि (स० स्त्री०) नक्षत्राणां योनिः। विवाह आदि में योनिकूट, वह नक्षत्र जो विवाहके लिये निषिद्ध हो।

नक्षत्रराज (स० पु०) नक्षत्राणां राजा ६ तत्, ततो टच् समासान्तः। चन्द्र, नक्षत्रोंके अधिपति।

नक्षत्रलोक (स० पु०) नक्षत्राणां लोकः ६ तत्। नक्षत्र विहित लोकभेद, वह लोक जहां नक्षत्र रहते हैं। काशीखण्डमें लिखा है—

दक्ष-कन्या नक्षत्रोंने जब महादेवके लिये कठिन तपस्या की थी, तब महादेवने खुश हो कर उन्हें वर दिया था, 'तुम लोग ज्योतिषचक्रमें प्रधान हो कर तथा मेषादि राशियोंका उत्पत्तिस्थान हो कर चन्द्रलोकके ऊपर एक स्वतन्त्र लोकमें रहोगी। इस लोकमें तुम लोगोंका सूत्र आदर होगा। जो तुम्हारी पूजा और व्रतादि करेंगे वे तुम्हारे इस लोकमें अवस्थान करेंगे।

(काशीख० १५ अ०)

नक्षत्रवर्त्मन् (स० क्ली०) नक्षत्राणां वर्त्म। नक्षत्रमार्ग, नक्षत्रोंके चलनेका पथ। वीथि देखो।

नक्षत्रविद्या (स० स्त्री०) नक्षत्राणां तत्र स्थितपदार्थाना व्याख्यानाय विद्या। ज्योतिर्विद्या। जिस विद्या द्वारा नक्षत्र आदिके विषयका ज्ञान हो उसे नक्षत्र विद्या कहते हैं।

नक्षत्रवीथि (स० स्त्री०) नक्षत्रैर्व्याप्ता वीथि। आकाशमण्डलमें नक्षत्र वस्तुक कृता वीथि नक्षत्रोंकी गति के अनुसार पथविशेषका नाम वीथि है। इसका विवरण बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—अश्विनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथि होती है। यह वीथि नौ भागोंमें विभक्त है, जिनके नाम ये हैं - नाग, गज ऐरावत, वृषभ, गो, जरद्गव, मृग, अज और दहन। स्वाती भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें नागवीथि होती है किन्तु यह सर्ववादिसम्मत नहीं है। नाग ऐरावत और वृषभ नामक जो तीन वीथि हैं। ये रोहिणीसे लेकर उत्तर फल्गुनी तक तीन तीन नक्षत्रोंमें हुआ करती हैं। अश्विनी रेवती, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें गोवीथि। श्रवणा धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जार द्गवीवीथि। अनुराधा, ज्येष्ठा और मूलानक्षत्रमें मृगवीथि। हस्ता, विशाखा और चित्रा नक्षत्रमें अजवीथि तथा पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें दहनवीथि होता है। इस प्रकार २७ नक्षत्रोंमें ८ वीथि होनेसे प्रत्येक वीथि तीन बार होती है। अतएव उक्त सभी वीथियोंमें तीन तीन वीथि हैं जो रविमार्गके उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्गमें अवस्थित हैं। फिर उनको भी एक एक वीथि है जो यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षिण पथमें विद्यमान है। तीन नागवीथि हैं—जिनमेंसे उत्तर मार्गमें पहिली, मध्यपथमें दूसरी और दक्षिणपथमें तीसरी वीथि अवस्थित है। किसी किसी ज्योतिर्विद्का कहना है, कि नक्षत्रसमूहके नक्षत्रमार्गवर्त्ती योगतारागण उत्तर मध्य और दक्षिण भागमें जिस प्रकार अवस्थित हैं, वीथिमार्ग भी उसी भागमें अवस्थित है। इस मार्गका निरूपण करनेमें कोई कोई पण्डित भरणीके उत्तरमार्ग, पूर्वफल्गुनीके मध्यम मार्ग और पूर्वाषाढ़ाके दक्षिण मार्ग ऐसी कल्पना करते हैं।

शुक्र जिस समय उत्तर वीथिमें रह कर उदय वा अस्त होते हैं, उस समय देशमें सुभिक्ष और मङ्गल होता है। मध्य वीथिमें रहनेसे मध्यफल और दक्षिण वीथिमें रहने से मन्दफल होता है। आर्द्रा नक्षत्रसे ले कर मृगशिरा तक जो नो वीथि होंगी, उनमें शुक्रके उदय वा अस्त होनेसे यथाक्रम अत्युत्तम, उत्तमतर और उत्तम, सम मध्य और न्यून अथवा मन्द, मन्दतर और मन्दतम फल होता है। (बृहत्संहिता ९ अ०) अन्यान्य फल शुक्रवाणीमें देखो।

नक्षत्रवृष्टि (स० पु०) तारापतन, उल्कापात होना, तारा टूटना।

नक्षत्रव्यूह (स० पु०) नक्षत्राणां व्यूह समूह। शुभ और अशुभ विशेषका शुभाशुभसूचक नक्षत्रसमूह। बृहत्संहितामें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—सित कुसुम अग्निहोत्री सम्बन्ध सूत्रभाष्यज्ञ आकरिक, चोर बार, ब्राह्मण, कुम्भकार पुरोहित और दैवज्ञ ये सभी कृत्तिका नक्षत्रके अधीन हैं अर्थात् इन सब द्रव्यों का शुभा शुभ कृत्तिका नक्षत्रसे जाना जाता है। सुव्रत, पण्यजीत

वसु, राजा, धनवान्, योगी, शाकटिक, गो, वृष, जलचर, कृषक, पर्वत और ऐश्वर्य-सम्पन्नगण रोहिणीके अधीन हैं। सुरभि, वस्त्र, पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहङ्ग, मृग, याज्ञिक, गन्धर्व, कामुक और पत्रवाहकगण मृगशिरा नक्षत्रके आयत्त हैं। उत्तम धान्य, सत्य, औदार्य, शौच, कुल, रूप, बुद्धि, यश, सेवा और वणिक-समूह पुनर्वसु नक्षत्रके अधीन हैं। यव, गोधूम, सब प्रकारको शाली इक्षुवर्ग, मन्त्रिगण, समस्त नृपति, जलजीवी और याज्ञिकगण पुष्या नक्षत्रके अधीन हैं। कृत्रिम, कन्दमूल फल, कीट, पन्नग, विष, तृप. धान्य परस्वापहारी और भिषक् अश्लेषा नक्षत्रके आयत्त है। धन्यागार और समस्त गृह, अर्थशाली वणिक., शूरगण, कूटाट और स्त्रीद्वेषी व्यक्तिगण मघा नक्षत्रके वशीभूत है। नट युवती, सुभग, गायक, शिल्पी, शुभादृष्ट, कपास, लवण, मधु, तैल और कुमारगण पूर्वफल्गुनी नक्षत्रके अधीन माने गये हैं। इसका विस्तृत विवरण बृहत्संहिताके १५ अध्यायमें देखो।

नक्षत्रव्रत (सं० क्ली०) नक्षत्रनिमित्तं व्रतं। नक्षत्र निमित्तक व्रतभेद। एक एक नक्षत्रके उद्देश्यसे जो व्रत किया जाता है, उसे नक्षत्रव्रत कहते हैं, तिथितत्त्वमें सामान्य रूपसे नक्षत्रव्रतके कालका निर्णय हुआ है। यथा—जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होंगे, उसे नक्षत्र रात्र और जिस नक्षत्र में उदय होंगे, उसे नक्षत्र दिन कहते हैं। इस नक्षत्र दिवारात्रके मध्य जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होंगे, उसी दिन उपवास करना चाहिये, अर्थात् उसी दिन व्रताचरण विधेय है।

'तन्नक्षत्रमहोरात्रं यस्मिन्नस्तं गतो रविः।
यस्मिन्नुदेति सविता तन्नक्षत्रं दिनं स्मृत ॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः।
यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह ॥" (तिथितत्त्व)

इस व्रतका विषय हेमाद्रिके व्रतखण्डमें भविष्यपुराणसे इस प्रकार लिखा गया है—

"इत्येते कथिताः कृष्ण तिथियोगा मया तव।
नक्षत्रदेवताः सर्वाः नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः ॥"

(हेमाद्रि व्रतख०)

नक्षत्रव्रतमें नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवताओंकी पूजा करनी होती है। अश्विनी नक्षत्रमें दोनों अश्विनीकुमारका पूजन कर इस व्रतका आचरण करना चाहिये। इस अश्विनीनक्षत्रमें यह व्रत करनेसे दीर्घायु लाभ होता है तथा सभी व्याधियां नाश होती हैं। भरणीमें यमका और कृत्तिकामें अनलका पूजन कर उपवासादिका व्रतानुष्ठान करना चाहिये, इसी प्रकार सभी नक्षत्रोंके उद्देशसे व्रताचरण करनेका विधान है। किसी नक्षत्रका व्रत क्यों न हो, उस नक्षत्रके अधिपति पूजनीय समझे जाते हैं। इस व्रतका विशेष विधान हेमाद्रिके व्रतखण्डमें देखो।

नक्षत्रशवस. (सं० त्रि०) देवताओंके प्रतिगमनशील स्तोतृसमूह।

नक्षत्रशूल (सं० पु०) नक्षत्राः शूला-इव। पूर्वादि दिशाओंमें यात्राकालीन निषिद्ध नक्षत्रविशेष, फलित ज्योतिषमें कालका वह वास जो किसी विशिष्ट दिशामें कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंके होनेके कारण माना जाता है। शूलविद्ध होनेसे जैसा अनिष्ट होता है, इन सब नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वैसा ही अनिष्ट हुआ करता है, इसी कारण इसे नक्षत्रशूल कहते हैं। यदि पूर्व दिशामें श्रवणा या ज्येष्ठा, दक्षिणमें अश्विनी या उत्तरभाद्रपद, पश्चिममें रोहिणी या पुष्या और उत्तरमें उत्तरफल्गुनी या हस्ता नक्षत्र हो, तो उस दिशामें यात्रा आदिके लिये नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसत्र (सं० क्ली०) नक्षत्रनिमित्तं सत्रः। नक्षत्र निमित्तक यज्ञभेद। पुराणके अनुसार एक प्रकारका यज्ञ जो नक्षत्रके निमित्त किया जाता है। यह यज्ञ नक्षत्र मासके अनुसार होता है।

नक्षत्रसन्धि (सं० पु०) नक्षत्रयोः सन्धिः। पूर्वनक्षत्रसे उत्तरनक्षत्रमें चन्द्रादि ग्रहोंकी गतिरूप संक्रान्ति।

नक्षत्रसाधक (सं० पु०) महादेव, शिव।

नक्षत्रसाधन (सं० क्ली०) नक्षत्रं साध्यते ज्ञायते ऽनेन साधिकरणे ल्युट्। ग्रहोंकी नक्षत्रमानसाधन गणनाभेद, वह गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौनसा ग्रह कितने समय तक रहता है। यह गणना सिद्धान्त-शिरोमणि आदि ग्रन्थों में विशेष रूपसे लिखी गई है।

नक्षत्रसूचक (सं० पु०) नक्षत्राणि शुभाशुभतया सूचयति ण्वुल्। सिद्धान्ताभिज्ञ ज्योतिर्विद्, वह ज्योतिषी

अगले भागकी हड्डी, नाखून। पर्याय—पुनर्भव कररुह, नखर, कामाङ्कुश, करज, पाणिज, अङ्गुलिसम्भूत, कराग्रज, करकण्टक, स्मराङ्कुश, रतिपद, करचन्द्र, कराङ्कुश। (शब्दरत्नावली)

गर्भस्थित बालकको ६ महीनेमें नख निकलता है। नख और लोम स्वयं न काटना चाहिये और न कि नखको दाँतसे ही काटना चाहिये।

"न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान्।"

(मनु ४।६९)

जमीन पर नखसे दाग देना मना है। अङ्गमें नखवाद्य भी नहीं करना चाहिये।

"न नखैर्विलिखेद्भूमिं गाञ्च संवेशयेन्नहि।
न स्वाङ्गे नखवाद्यं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिवेत्॥"

(कूर्मपु॰ उपवि॰ १५ अ॰)

मनुष्य, वानर तथा बहुतसे ऐसे जन्तु हैं जिनके हाथ और पैरकी उंगलियोंके अग्र भागमें नख होते हैं। इतर जन्तुओंके खुर और नखर नखके समजातीय पदार्थ हैं। उपत्वक् रूपान्तरित हो कर नख उत्पन्न करता है। प्रकृत त्वक् (Dermis) अपने छोटे छोटे शिखरोंको फैलाए हुए नखके मूलमें रहता है। उन सब शिखरोंके चारों ओर उपत्वकके सभी कोष देखनेमें आते हैं। ऊपरी भागका कोष चिपटा और नीचेका गोल होता है। उपत्वक्के कोष परस्पर एक हो कर क्रमशः घनीभूत होने लगते हैं और अन्तमें अत्यन्त कठिन हो कर नखके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार नख जब उंगलीके अग्र भाग पर आ जाता है, तब वह काट डाला जाता है। हाथका नख सप्ताहमें एक इञ्चके तीसवां भागके बराबर और पैरका सप्ताहमें एक इञ्चके एक-सौ बीसवा भागके बराबर बढ़ता है। पीड़ाके समय नखकी वृद्धि नहीं होती और पोषणके अभावसे वह पतला हो जाता है। इसी कारण नखकी अवस्था देख कर कभी कभी रोगका निरूपण किया जाता है। यदि नख नष्ट हो जाय, पर नाखका त्वक् अक्षत रहे, तो बहुत जल्द फिरसे नख निकल आता है।

(क्ली॰) नखमिव आकृतिरस्त्यस्य, इति अर्शादित्वात् अच्। २ नखी नामक गन्धद्रव्य-विशेष (A vegetable perfume)। स्त्रीलिङ्गमें यह नखी शब्दसे प्रसिद्ध है। यह समुद्रजात शङ्खशम्बूक जातीय कोषस्थ प्राणीका (नखाकृति) मुखावरण है। यह देखनेमें इन दोनों शम्बूकादिके मुखावरणके जैसा लगता है, जब यह इधर उधर जाता आता है, तब उनका वह मुख विकसित हो कर ऊपरकी ओर हो जाता है। उस समय यह प्राणियोंके पदके नखके जैसा देखनेमें लगता है, इसीसे इसका नाम नखी पड़ा है। जब यह शैलादि ऊँची भूमि पर गमनागमन करता है, तब इसके सन्धिस्थानसे अधिक परिमाणमें लाल टपकती है। जो सब मनुष्य इसका व्यवसाय करते हैं, वे उन्हें संग्रह कर मार डालते हैं, पीछे उन्हें सुखा कर नखाकृति मुख निकाल लेते हैं। यह छोटे बड़ेके भेदसे कई प्रकारका है। जो सब शम्बूकके मुखके सदृश होते हैं, उन्हें छोटी नखी और जो व्याघ्रादिके मुखके जैसे होते हैं उन्हें बड़नखी, व्याघ्रनखी या बटीनखी कहते हैं। इनके सिवा और भी कई जातियोंकी नखी है, जिनमेंसे किसीकी आकृति तो उत्पलके सदृश, किसीकी गजकर्णके सदृश और किसीकी अश्वखुरके सदृश होती है। इनका नाम कखुर है। पर्याय—शुक्ति, शङ्ख, खुर, कोलदल, करजाख्य, अश्वखुर, नख, व्याघ्रनख, नखी, कररुह, सिम्बी, शफ, चल, कोशी, करज, हनु, नागहनु, पाणिज, वदरीपत्र, रूप्य, पण्यविलासिनी, सन्धिनाल, पाणिरुह, व्याघ्रायुध, चक्रकारक, शङ्खनख, नखरी। (शब्दरत्नावली)

स्वल्प नखका पर्याय—नखी, हनु, हट्टविलासिनी। इसका गुण श्लेष्मा, वात, अस्र, ज्वर, कुष्ठनाशक, लघु, उष्ण, शुक्रवर्द्धक, वर्णकर, स्वादु, व्रण, विष और मुखदौर्गन्ध्यनाशक है। (भावप्र॰) (पु॰) ३ खण्ड, टुकड़ा।

नख (फा॰ स्त्री॰) १ गुड्डी उड़ाने और कपड़ा सीनेका एक प्रकारका बटा हुआ बहुत महीन रेशमी तागा। २ गुड्डी उड़ानेके लिये वह पतला तागा जिस पर माँझा दिया जाता है डोर।

नखकर्त्तनि (सं॰ स्त्री॰) वह हथियार जिससे नाखून काटा जाता है, नहरनी।

नखकुट्ट (सं॰ पु॰) नखं कुट्टति कुट्ट छेदे अण्। नापित, नाई, हज्जाम।

नखक्षत (सं॰ पु॰) १ नाखूनके गड़नेके कारण बना

नखरी (सं० स्त्री०) नखरः आकृतिसादृश्येन अस्त्यस्या इति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ नखी, नखीनामक गन्ध द्रव्य। २ क्षुद्र नखा।

नखरीला (फा० वि०) चोचलेबाज, नखरा करनेवाला।

नखरेखा (सं० स्त्री०) १ नखक्षत, नाखूनका दाग। २ कश्यपऋषिकी एक पत्नी। यह बादलोंकी माता थीं।

नखरेबाज (फा० वि०) जो बहुत नखरा करता हो, नखरा करनेवाला।

नखरेबाजी (फा० स्त्री०) नखरा करनेकी क्रिया या भाव।

नखरौट (हिं० स्त्री०) शरीर परका वह दाग जो नाखून चुभानेसे होता है, नाखूनकी खरौट।

नखलेखक (सं० त्रि०) नखं लिखति लिख-ण्वुल्। जीविकाके लिये नखलेखन शिल्पकारक।

नखविन्दु (सं० पु०) वह गोल या चन्द्राकार चिह्न जो स्त्रियां अपने नाखूनके ऊपर मेंहदी या महावरसे बनाती है।

नखविष (सं०पु० स्त्री०) नखे विषं यस्य, वह जिसके नाखूनमें विष हो। नर आदिके नाखूनमें विष रहता है। सुश्रुतके मतानुसार बिल्ली, कुत्ते, बन्दर, मगर, मेंढ़क, गोह, छिपकली, पाकमत्स्य, शम्बूक, प्रचलाक तथा अन्यान्य चतुष्पदी कीड़ोंके दांत और नाखूनमें विष है।

(सुश्रुत कल्पस्थान ३ अ०)

नखविष्किर (सं० पु० स्त्री०) नखैर्विकिरति वि-कृ-क, ततो सुट्,च। श्येनादि, यह जानवर अपने शिकारको नाखूनसे फाड़ कर खाता है, इसीसे इसका नाम नखविष्किर पड़ा है। इस प्रकारके जानवरका मांस अभक्ष्य है।

नखवृक्ष (सं० पु०) नखोवृक्ष अच्, नखो वृक्ष। नीलवृक्ष, नीलका पेड़।

नखशङ्ख (सं० पु०) नखइव शङ्खः। क्षुद्रशङ्ख, छोटा शंख।

नखशस्त्र (सं० पु० क्ली) नखच्छेदकं शस्त्रं। नखच्छेदनयोग्य अस्त्रविशेष, नाखून कटानेका औजार नहरनी।

नखशिख (हिं० पु०) १ नखसे लगायत शिख तकके सभी अङ्ग। २ सब अङ्गोंका वर्णन।

नखशूल (सं० पु०) नाखूनका एक रोग। इसमें उसके आस पास या जड़में पीड़ा होती है।

नखहरणी (हिं० पु०) नहरनी।

नखाघात (सं० पु०) नखैराघातः ३-तत्। नखद्वारा आघात। सुरतकार्यमें नायक द्वारा नायिकाके अङ्गमें उसे नरम बनानेके लिये नखसे जो आघात किया जाता है उसे भी नखाघात कहते हैं। किस किस जगह पर नखाघात करना चाहिये, कामशास्त्रमें उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

दोनों पार्श्व, दोनों स्तन, दोनो ऊरु, नितम्ब, कक्षस्थल, कक्षान्त, कपाल, बाहुमूल, ग्रीवा और कण्ठदेश, इन सब स्थानोंमें कामक्रीड़ाके समय नखाघात करना चाहिये। २ युद्धार्थ नखद्वारा आघात, वह चोट या आक्रमण जो युद्धके लिये नाखूनसे किया जाता है।

नखाङ्क (सं० पु०) नखं अङ्क इव यस्य। १ नखाघात चिह्न, नाखून गड़नेका निशान। (क्ली०) २ व्याघ्रनख।

नखाङ्कुर (सं० पु०) नख, नाखून।

नखाङ्ग (सं० क्ली०) नखस्य अङ्गमिव अङ्गं यस्य। १ नखी, नख नामक गन्धद्रव्य। २ नलिका या नली नामक गन्धद्रव्य।

नखानखि (सं० अव्य०) नखैश्च नखैश्च प्रहृत्य युद्धमिदं प्रवृत्तं। परस्पर नखाघात द्वारा प्रवृत्त युद्ध, वह लड़ाई जो केवल नख गड़ा कर की जाती है।

नखायुध (सं० पु०) नखमेव आयुधं यस्य। १ व्याघ्र, बाघ। २ सिंह। ३ कुक्कुर, कुत्ता।

नखारि (सं० पु०) शिवानुचर विशेष, शिवके एक अनुचरका नाम।

नखालि (सं० पु०) १ क्षुद्रशङ्ख, छोटा शङ्ख २ नखश्रेणी, नाखूनकी पंक्ति।

नखालु (सं० पु०) नखतीति नख सर्पणे नख-आलुच्। नीलवृक्ष, नीलका पेड़।

नखाशिन् (सं० पु०) नख अश्नातीति भक्षयतीति अश-णिनि। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ नखभक्षक मात्र, जो नाखूनकी सहायतासे खाता हो।

नखास (अ० पु०) १ वह बाजार जिसमें पशु विशेषतः घोड़े बिकते हैं। २ साधारणतः कोई बाजार।

नखि (सं० पु०) नखेनातिक्रामति इति नख+इन् च। (उण् ४।११८) १ नख द्वारा अतिक्रामक। नखति सर्पति नख-इन्। २ सर्प।

नखिन् (सं० पु०) नखाः सन्त्यस्य इति नख इनि। १ सिंह। २ व्याघ्र, बाघ। (त्रि०) ३ विदारणक्षम नखयुक्त पशुमात्र, नाखूनसे किसी पदार्थको चीरने या फाड़नेवाला जानवर।

नखी (सं० स्त्री०) नख गौरादित्वात् ङीष्। नख नामक गन्धद्रव्यविशेष। नख देखो।

नखोंमट—काम्बोडिया देशमें बौद्ध लोगोंका एक प्रसिद्ध मठ। पहले काम्बोडियामें बौद्ध लोग सर्पोंकी उपासना बहुत धूमधामसे करते थे। प्रसिद्ध नखों मठ मन्दिरमें यह उत्सव किया जाता था। उस मठका भग्नावशेष आज भी विद्यमान है। यह मन्दिर एक समय पृथ्वीको एक अत्युत्तम अट्टालिकामें गिना जाता था। १८५८ और १८६० ईमें एम. मौहटने सबसे पहले इसको खोज की थी। मिस्टर जे टोमसेन उसका एक फोटो ले गये हैं। इसकी गठनप्रणाली अत्यन्त शोभासम्पन्न तथा शिल्प लोगोंकी कारिगरी प्रशंसनीय थी। मन्दिरके मूलदेशकी लम्बाई और चौड़ाई ६०० फुट और ऊंचाई १८० फुटके लगभग थी। उसका सर्वांश नाना प्रकारके कारुकार्यसम्पन्न पत्थरोंसे मण्डित था। उसके प्रत्येक कोनेमें सात सिरवाले सांपोंकी मूर्त्तियां रखी हुई थीं। जीवित सांपोंके लिये मन्दिरके प्राङ्गणमें एक पुष्करिणी थी। उसीमें सब सांपोंकी पूजा होती थी। दशवीं शताब्दीके लगभग यह मन्दिर बनाया गया था। प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है कि १०वीं शताब्दीके पहले इसका निर्माण हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। काम्बोज देखो।

नख्खास (हिं० पु०) नखास देखो।

नग (सं० पु०) न गच्छतीति न गम-ड वा अगवि इति अच्, ततो नञोऽपि इति न (नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्। पा ६।३।७७) १ पर्वत, पहाड़। २ वृक्ष पेड़। ३ सात संख्या। ४ सर्प, सांप। ५ सूर्य। (त्रि०) ६ न गमन करनेवाला, न चलने फिरनेवाला, अचल, स्थिर।

नग (फा० पु०) १ अंगूठियों आदिमें जड़नेका शीशे या पत्थर आदिका रंगीन टुकड़ा, नगीना। २ संख्या, अदद।

नगकर्णी (सं० स्त्री०) श्वेत अपराजिता।

नगगम्या (सं० स्त्री०) राखा।

नगज (सं० पु०) नगे पर्वते जायते जन-ड। १ हस्ती, हाथी। (त्रि०) २ पर्वतजात जो पर्वतसे उत्पन्न हो।

नगजा (सं० स्त्री०) १ पार्वती। २ पाषाणभेदी लता, पखानभेद।

नगजित (सं० पु०) पाषाणभेद वृक्ष।

नगण (सं० पु०) पिङ्गल छन्दोशास्त्रमें तीन लघु अक्षरोंका एक गण।

नगणा (सं० स्त्री०) नास्ति गणो यस्याः। लताविशेष, मालकङ्गनी। पर्याय—पारावतपदी, पिण्या, स्फुटबन्धनी, ज्योतिष्मती, पूतिनी का ककुदी।

नगण्य (सं० त्रि०) १ अगणनीय, जो गणना करने योग्य न हो, बहुत ही साधारण या गया बीता, तुच्छ। २ घृणार्ह, घृणा करने योग्य, नफरत करने लायक।

नगद (हिं० पु०) नकद देखो।

नगदन्ती (सं० स्त्री०) विभीषणकी स्त्रीका नाम।

नगदी (हिं० स्त्री०) नकदी देखो।

नगधर (सं० पु०) पर्वतको धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचन्द्र गिरिधर।

नगनदी (सं० स्त्री०) नगजाता नदी, वह नदी जो किसी पर्वतसे निकली हो।

नगनन्दिनी (सं० स्त्री०) नगस्य नन्दिनी ६-तत्। हिमालयकन्या पार्वती।

नगना (हिं० स्त्री०) नंगा देखो।

नगनिका (हिं० स्त्री०) १ सङ्गीतमें रागका एक भेद। २ क्रीड़ा नामक छन्दका एक नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक यगण और गुरु होता है।

नगनी (हिं० स्त्री०) १ वह कन्या जो रजोधर्मको प्राप्त न हुई हो, वह लड़की जिसके स्तन न उठे हों। २ कन्या, पुत्री, बेटी। ३ नङ्गी स्त्री, नङ्गी औरत।

नगनिवासानन्द (हिं० पु०) बनबैला देखो।

नगपति (सं० पु०) नगस्य पतिः ६-तत्। १ हिमालय, पर्वत। २ चन्द्रमा। ३ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ४ कैलासके स्वामी, शिव। ५ सुमेरु।

नगपर्णायवकर्णी (सं० स्त्री०) अपराजिता।

नगभित् (सं० पु०) नगं भिनत्ति भिद्-क्विप्। १ पाषाणभेदनास्त्रविशेष, प्राचीनकालका पत्थर तोड़नेका एक प्रकारका अस्त्र। २ इन्द्र। पुराणके अनुसार इन्द्रोंने पहाड़ोंके पर काटे थे, इसीसे इनका यह नाम पड़ा। ३ पाषाणभेदी लता।

नगभू (सं० पु०) नगे भूरुत्पत्तिर्यस्य। १ क्षुद्र पाषाणभेदो लता, छोटो पत्थानभेद लता। (स्त्री०) २ पर्वतभूमि, पहाड़ी जमीन। (त्रि०) ३ पर्वतजात मात्र, जो पहाड़से उत्पन्न हुआ हो।

नगमाल (सं० पु०) शालिधान्यभेद, एक प्रकारका सुगन्धित धान।

नगमूर्द्धन् (सं० पु०) पर्वतकी चूड़ा, पहाड़की चोटी।

नगर (सं० क्ली०) नगा इव प्रासादादयः सन्ति यत्र। (नगपांशुपाण्डुभ्यश्च। पा ५।२।१०७) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या र। अनेक लोगोंका वासस्थान, मनुष्योंकी वह बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदिसे बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशोंके लोग रहते हों, शहर।

पर्याय—पुर, पुरी, पुरि, नगरी, पत्तन, पट्टन, पट्टनी, पुटभेदन, पटभेदन, स्थानीय, निगम, कटक, पट्ट।

हम लोगोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है, कि जहां बहुत सी जातियोंके अनेक व्यापारी और कारीगर रहते हों, तथा देवदेवियोंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हों, उसे नगर कहते हैं।

कोई कोई नगरका ऐसा लक्षण बतलाते हैं—जहां आठ सौ ग्रामोंके विचारादि कार्य किये जाते हों, अर्थात् जहां प्रधान विचारालय हो, वही नगर कहलाता है। नगरमें राजाको परिवारकोंके साथ रहना चाहिये, यह प्राकार और दुर्गादि द्वारा परिवेष्टित रहे तथा इसका आयतन एक योजन विस्तृत हो। कोई कोई पण्डित पुर और नगरमें ऐसा भेद बतलाते है—जहां अनेक ग्रामोंका व्यवहार स्थान अर्थात् विचारालय हो, उसका नाम पुर और पुरसमूहके प्रधानका नाम नगर है।

नगर निर्माणकाल—

"स्थिरराशिगते भानौ चन्द्रे च स्थिरगोदये।
शुद्धे काले दिने चैव नगरं कारयेन्नृपः॥"

(युक्तिकल्पतरु)

जब सूर्य स्थिर राशिमें न रहें, केवल चन्द्रमा स्थिर लग्नमें रहें, और काल तथा दिन विशुद्ध हो, उस समय राजाको लम्बा, चौकोना, तिकोना या गोल नगर बसाना चाहिये। इनमेंसे तिकोना और गोल नगर निन्दनीय माना जाता है। नगरको चौड़ाई जितनी होगी, उससे एक पाद भी अधिक होनेसे वह दीर्घ कहलाता है। चौकोन होनेसे उसकी चारों दिशा समान रहे। जो नगर तीन ओर समान अर्थात् त्रिकोण हो, उसे तिकोण और जो वलयाकृतिका हो, उसे वर्त्तुल वा गोल कहते हैं। इन चार प्रकारके नगरोंमें दीर्घ नामक नगर स्थापन करनेसे सुखसम्पत्ति मिलती है तथा यह दीर्घकालस्थायी रहता है। चतुरस्र अर्थात् चौकोना नगर चारों प्रकारका फल देनेवाला है, तिकोना नगरसे तीन शक्तिका नाश होता है तथा वर्त्तुल नगर नाना प्रकारका रोगदायक माना जाता है।

नगर—बम्बईके थर और पार्कर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २४° १४' और २५° १' उ० तथा देशा० ७०° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६१८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २५३५५ हैं। इसमें कुल ३१ ग्राम लगते हैं। आय २८०००) रुपयेकी है। यहां बाजरेकी उपज अच्छी होती है। खेती विशेषतः वृष्टि तथा कूएं पर निर्भर है, इस कारण यहां अकसर दुर्भिक्ष हुआ करता है।

नगर—पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेके अन्तर्गत कुलू उपविभाग तथा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° ७' उ० और देशा० ७७° १४' पू० विपासा नदीके बायें किनारे सुलतानपुर शहरसे १४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या ५८१ है। यहां पहले कुलूराजाओंकी राजधानी थी। १८०५ ई०के भूकम्पसे यह नगर बहुत तहस नहस हो गया है। शहरमें डाकघर और टेलिग्राफ आफिस है।

नगर (वा राजनगर) बङ्गालके बीरभूम जिलेका एक नगर और प्राचीन राजधानी। यह अक्षा० २३° ५६' ५०" उ० तथा देशा० ८७° २१' ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। मुसलमानोंने जब बङ्गाल जीता था, उसके पहले यहां हिन्दू राजाओंकी राजधानी थी, राजप्रासाद

भाग ३,२ फुट गया है। सिवाय इसके यहां अनेक मन्दिर, मसजिद और अद्भुत पुष्करिणी देखनेमें आती हैं।

नगर—महिसुरके सिमोग जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३ ३६´ और १४ ६´ उ० तथा देशा० ७४ ४२´ और ७५ २१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ७०३११ है। इसमें कब्लूरबाई और नगर नामके दो शहर तथा २०५ ग्राम लगते हैं। राजस्व प्राय ११६०००) रुपया है। तालुकका उत्तरी भाग छोड़ कर शेष सभी भाग बड़े बड़े पहाड़ोंसे भरे हैं। इनमेंसे प्रधान पहाड़ कोड़चादरी है जो समुद्रपृष्ठसे ४४११ फुट ऊंचा है। यों तो यहां अनेक नदियां बहती हैं पर शरावती नदी ही सबसे बड़ी है। सुपारी, चौपर, इलायची और चावल यहांके उत्पन्न द्रव्य हैं। पश्चिमांश जङ्गलोंमें सुपारीके पेड़ देखनेमें आते हैं।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १३ ४८´ और देशा० ७५ २´ पू०के मध्य सिमोग शहरसे ४४ मील दूरमें पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः ७१५ है। पहले इस नगरका नाम बिदरूरुही था। १६४० ई०में जब यहां इक्केरी राजाओंकी राजधानी थी, तब यह बिदनूर नामसे प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं, कि उस समय इसमें १०० ०० घर लगते थे, इसी कारण इसका नाम बदल कर नगर हो गया। १७६३ ई०में यह हैदरअलीके हाथ लगा और उन्होंने इसका नाम हैदरनगर रखा। टीपू सुलतान और अङ्गरेजोंमें जब लड़ाई छिड़ी तब इस शहरकी विशेष क्षति हुई थी। पीछे १७८३ ई०में अङ्गरेजोंने इस पर अपना पूरा दखल जमाया। १८८१ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

नगर—मन्द्राजके तञ्जोर जिलान्तर्गत, नागपत्तनका एक बन्दर। यह अक्षा० १० ४१´ और १० ४०´ उ० तथा देशा० ७८ ४६´ और ७८ ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सुपारी, बहादुरी काठ तथा घोड़ेका वाणिज्य व्यापार होता है। यहां एक विख्यात मसजिद भी है।

नगरआनन्दपुर—इसका आधुनिक नाम बड़ा नगर है। बड़ानगर और वैसनगर देखो।

नगरकाक (स० पु०) शहरका कौआ, कुत्सितार्थक शब्द।

नगरकीर्त्तन (स० क्ली०) नगरे कीर्त्तनं नगरपरिभ्रम-

णेन हरिनामसङ्कीर्त्तन। नगरके रास्ते रास्ते हरिनाम सङ्कीर्त्तन, वह नाना-बाजा या कीर्त्तन जिसमें ईश्वरके नामका भजन किये नगरकी गलियों और सड़कोंमें घूम घूम कर लोग करते हैं।

नगरकोटि (स० पु०) हिमालयके पाददेशस्थित एक नगर।

नगरघात (स० पु०) नगरं हन्ति हन-अण्। १ हस्ती, हाथी। हन भावे अप्, नगरस्य घातः। २ नगरस्थ लोकका हनन, शहरके लोगोंकी हत्या।

नगरचुतर—मन्द्राज प्रदेशके सूत्रधारोंकी एक श्रेणी।

नगरजन (स० पु०) नगरस्य जनः। पुरवासी, शहरके लोग।

नगरतीर्थ—गुजरात प्रदेशका नगर नामक एक प्राचीन तीर्थ। गुजरातके राजा विमलदेवके समाधि नामक को मन्दिरमें नगरतीर्थका वर्णन देखनेमें आता है। यह स्थान वेदध्वनिसे सर्वदा गुञ्जित रहता था। यज्ञीय धूमसे इसका आकाश हमेशा परिपूरित रहता था। यहां किसी समय शिवका निवास माना जाता था। बड़नगर देखो।

नगरद्वार (स० क्ली०) नगरस्य द्वारं ६-तत्। नगरका द्वार, पुरद्वार, शहरपनाहका फाटक।

नगरधनविहार (स० पु०) बौद्ध योगियोंका एक मठ।

नगरनायिका (स्त्रि० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

नगरनारी (स्त्रि० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

नगरपति (स० पु०) नगरस्य पतिः ६ तत्। नगराध्यक्ष, शहरका मालिक।

नगर-पार्कर—१ बम्बईके सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत थर और पार्कर जिलेका एक तालुक।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४ २१´ उ० और देशा० ७० ४० पू० अमरकोटसे १२० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २०५६ है। यह स्थान अच्छी अच्छी सड़कों द्वारा इस-लामकोट मिठि और वीरावाहसे संयोजित है। १८५८ ई०में यहां विद्रोह हुआ था। हैदराबादसे अङ्गरेजी सेनाने आ कर उस विद्रोहको दमन किया था। शहरमें एक अस्पताल, दो वर्नाक्युलर स्कूल और एक बालिका-स्कूल है।

नगरपाल (सं० पु०) नगरं पालयति पालि-अण्। नगर-रक्षक, वह जिसका काम सब प्रकारके उपद्रवों आदिसे नगरकी रक्षा करना हो, चौकीदार।

नगरपुर (सं० क्ली०) नगरस्य पूः ६-तत्, अच् समासान्तः। एक नगरका नाम।

नगरप्रान्त (सं० पु०) नगरस्य प्रान्तः। पुरप्रान्त, नगरके समीपका स्थान।

नगरमर्दिन् (सं० त्रि०) नगरं मृद्नाति मृद-णिनि। १ नगरावमर्दक, शहरको तहस नहस करनेवाला। (पु०) २ मत्तगज, मस्त हाथी।

नगरमार्ग (सं० पु०) नगरस्य मार्गः ६-तत्। राजमार्ग, शहरका बड़ा और चौड़ा रास्ता। शुक्रनीतिमें लिखा है,—राजाको भवनसे ले कर उसके चारों तरफ प्रशस्त पथ बनवाना चाहिये। ३० हाथका पथ उत्तम, २० हाथका मध्यम, १० और ५ हाथका अधम माना जाता है। राजमार्ग देखो।

नगरमुस्ता (सं० स्त्री०) नागरमोथा।

नगररन्ध्रकर (सं० पु०) नगस्य क्रौञ्चस्य रन्ध्रं करोति कृ-ट। कार्त्तिकेय।

नगररक्षा (सं० स्त्री०) शहरका शासन, उपद्रव आदिसे नगरकी रक्षा।

नगररक्षाधिकृत (सं० त्रि०) जो नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया हो।

नगरवा (हिं० पु०) ईखकी एक प्रकारकी बीमारी। इस प्रकारकी बीमारी मध्य-प्रदेशके उन प्रान्तोंमें होती है, जहांकी मट्टी काली या करैली पाई जाती है। इसमें खेतोंमें जल सिञ्चनकी आवश्यकता नहीं होती, बल्कि बरसातके बाद जब ईखके अङ्कुर फूटते हैं, तब जमीन पर इसलिये पत्तियां बिछा देते हैं जिसमें उसका पानी भाप बन कर उड़ न जाय, पलवार।

नगरवायस (सं० पु०) नगरकाक, घृणासूचक शब्द।

नगरवासिन् (सं० त्रि०) नगरे वसति वस-णिनि। नागरिक, शहरमें रहनेवाला, पुरवासी।

नगरविवाद (हिं० पु०) दुनियाके झगड़े बखेड़े।

नगरस्थ (सं० त्रि०) नगरे तिष्ठति स्था क। नगरस्थित, नागरिक, शहरमें रहनेवाला।

नगरहा (हिं० पु०) नागरिक, शहरमें रहनेवाला।

नगरहार (सं० क्ली०) १ नगराक्रमण। २ राज्यविशेष, प्राचीन भारतका एक नगर। यह किसी समय वर्त्तमान जलालाबादके निकट बसा था। चीनयात्री युएन-चुवङ्गने अपने भ्रमण वृत्तान्तमें इसका वर्णन किया है। उस समय यह नगर कपिश-राज्यके अधीन था। पहले इस नामका एक राज्य भी था जो उत्तरमें काबुल नदी और दक्षिणमें सफेदकोह तक विस्तृत था।

नगरादिसन्निवेश (सं० पु०) नगरादीनां सन्निवेशः ६-तत्। नगरादि स्थापन। इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—राजाको चाहिये कि वे अच्छी तरह देख सुन कर नगर बसानेके लिये एक ऐसा स्थान चुन लें, जो एक या आधा योजन विस्तृत हो। हाथी अनायाससे आ जा सके, ऐसा छः हाथ परिमाणका शहर-पनाहका फाटक रहे। शहरके अग्निकोणमें स्वर्णकारादि सन्निवेश, दक्षिण दिशामें नृत्यगीत-व्यवसायी; नैऋतमें नट, वाह्निकादि और कैवर्त्त आदिका वासस्थान; पश्चिममें रथ, आयुध और कृपाणादि व्यवसायियोंका वास; वायुकोणमें शौण्डिक और कर्मादिकृत् भृत्यादिका वास; उत्तरमें ब्राह्मण, यति, सिद्ध आदि पुण्यवान् व्यक्तियोंकी वासभूमि; ईशानकोणमें फल आदि बेचनेवालोंका वास और पूर्व दिशामें बलाध्यक्षोंको वासभूमि होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अग्निकोणमें विविध सैनिक पुरुष, दक्षिणमें स्त्रियोंके निर्देशकर्त्ता; नैऋतमें अधमजन, पश्चिममें अमात्यवर्ग, कोषाध्यक्ष और शिल्पिगण, पूर्वमें क्षत्रिय, दक्षिणमें वैश्य, पश्चिममें शूद्र और वैद्य तथा चारों ओर अश्व सैन्यका वासस्थान रहना चाहिये। पूर्व दिशामें चरलिङ्गी अर्थात् छद्मवेशी राजपुरुष आदि, दक्षिण दिशामें श्मशानभूमि, पश्चिममें गोधनादि और उत्तरमें कृषिकार्य आदिके स्थान निर्दिष्ट हों। सभी कोणोंमें म्लेच्छगण रह सकते हैं। नगरमें स्थान स्थान पर देवदेवियोंके मन्दिरका होना आवश्यक है। (अग्निपुराण २०० अ०)

नगराधिकृत (सं० पु०) नगराध्यक्ष, नगरके शासनकर्त्ता।

नगराधिप (सं० पु०) नगरस्य अधिपः। नगराध्यक्ष, नगरपालक।

मध्य हो कर बह गई है। यहांकी भूमि उर्वरा है। अतः समय समय पर अच्छी फसल लगती है। आबहवा स्वास्थ्यकर नहीं है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° २७´ उ० और देशा० ७८° २६´ पू०के मध्य अवध और रोहिलखण्ड रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या २१४१२ के लगभग है जिनमेंसे मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। इसके प्राचीन इतिहासका कुछ भी पता नहीं चलता। लेकिन आईन-इ-अकबरीमें लिखा है कि यह शहर किसी समय महाल या परगनेका सदर था। १८वीं शताब्दीमें रोहिलाके अभ्युदयके समय यहां एक किला बनाया गया था। १८०५ ई०में अमीरखांके अधीन पिण्डारियोंने इसे तहस नहस कर डाला था। १८१७से ले कर १८२४ ई० तक यह शहर उत्तरीय मुरादाबाद जिलेका सदर रहा। सिपाही विद्रोहके समय यहां एक छोटी लड़ाई छिड़ी थी। शहरमें बड़ी बड़ी अट्टालिकायें तथा अनेक पक्की सड़कें हैं। प्राचीन किलेमें अभी तहसीली लगती है। तहसीलीके सिवा यहां एक अस्पताल, तहसीली स्कूल और American Methodist mission है। १८८६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व लगभग १२००, रु०का है। प्रति सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। यहां नावें, टहलनेकी छड़ी तथा सुन्दर बकस तैयार होते हैं।

नगीनासाज़ (फा० पु०) नगीना बनाने या जड़नेवाला मनुष्य।

नगुरिया—सन्यासीकी एक शाखा।

नगेन्द्र (सं० पु०) नग इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात्। १ हिमालय। २ पर्वतश्रेष्ठ।

नगेश (सं० पु०) नगेन्द्र देखो।

नगौकस् (सं० पु०) नगो वृक्षो पर्वतो वा ओको निवासस्थानं यस्य। १ पक्षी, चिड़िया। २ शरभ। ३ सिंह, शेर। ४ काक, कौवा। (त्रि०) ५ वृक्ष और पर्वतवासी मात्र, पेड़ और पहाड़ पर रहनेवाला।

नग्न (सं० त्रि०) नजतेस्मेति, अकर्मकात् कर्त्तरि क्त, ततो निष्ठा तस्य न। १ विवस्त्र, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, नंगा। २ जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण न हो। (पु०) ३ दिगम्बर जैनभेद। ये लोग कौपीन और कषाय वस्त्र पहनते हैं। ये पांच प्रकारके होते हैं—द्विकच्छ, कच्छशेष, मुक्तकच्छ, एकवासा और अवासा।

जो स्त्री या पुरुष नग्नावस्थामें हो उसे देखना नहीं चाहिये। नग्न हो कर स्नान, शयन या पाठ आदि कार्य करना मना है।

"न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन।
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संस्पृष्टमैथुनम्॥
नोच्छिष्टं प्रविशेग्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न गच्छेन्न पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्॥"

(कूर्मपु० १५ अ०)

२ पारिभाषिक नग्न, पुराणानुसार वह मनुष्य जिसे शास्त्रों आदिका ज्ञान न हो और जिसके कुलमें किसीने वेद न पढ़ा हो। ऐसे आदमियोंका अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

"येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम्।
ते नग्नाः कीर्त्तिताःसद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम्॥"

(मार्कण्डेयपु०)

विष्णुपुराणमें भी लिखा है, कि जो वेद नहीं जानते उनका नाम नग्न है। ऐसे मनुष्य पातकी समझे जाते हैं। जो मनुष्य मोहवश गार्हस्थाश्रमके बाद विना वानप्रस्थ ग्रहण किये ही संन्यासी हो जाते हैं, वे भी नग्न कहलाते और पातकी समझे जाते हैं। ४ वन्दी, कैदी। ५ एक संस्कृत कविका नाम।

नग्नक (सं० पु०) नग्न एव स्वार्थे कन्। नग्न, नंगा।

नग्नङ्करण (सं० क्ली०) अनग्नः नग्नः क्रियतेऽनेन ख्युन् मुम् च। अनग्नका नग्नताकरण, किसीको नंगा करनेकी क्रिया।

नग्नक्षपणक (सं० पु०) एक प्रकारका बौद्ध संन्यासी या भिक्षु।

नग्नजित् (सं० पु०) गान्धारके राजा। २ कोशल देशके राजा। इनकी कन्याका नाम सत्या था, लेकिन पिताके नामानुसार लोग उसे नाग्नजिती भी कहते थे। नग्नजित्ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उनके रक्षित सात महावृषका बध करेगा, उसीसे सत्या व्याही जायगी। कृष्णने उनकी इच्छा पूरी की, अतः उन्हींके साथ नाग्न

नचनिया (हिं० पु०) नृत्य करनेवाला, नाचनेवाला।

नचनी (हिं० स्त्री०) १ करघेकी वे दोनों लकड़ियां जो बेसरके कुलवांसेकी नाईं लटकती होती हैं। इन्हींके नीचे चकडोरसे दोनों राछें बन्धी रहती हैं। इन्हींकी सहायतासे राछें ऊपर नीचे जाती और आती हैं। इन्हें चक या कलहारा भी कहते हैं। (वि०) २ नाचनेवाली, जो नाचती हो। ३ बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री।

नचवैया (हिं० पु०) नाचनेवाला, जो नाचता हो।

नचाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको नाचनेमें प्रवृत्त करना, नचानेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ भ्रमण करना, किसी चीजको बराबर इधर उधर घुमाना या हिलाना। ३ हैरान या परेशान करना, इधर उधर दौड़ाना। ४ अनेक व्यापार कराना, किसीको बार बार उठने बैठने या और कोई काम करनेके लिये विवश करके तंग करना, हैरान करना।

नचिकेतस् (सं० पु०) १ वाजश्रवा ऋषिके पुत्र। २ अग्नि, आग। नाचिकेत देखो।

नचिर (सं० क्ली०) न चिरं न शब्देन सहसुपेति समासः। थोड़ाकाल, थोड़ा समय।

नञ्के साथ यदि चिर शब्दका समास हो, तो अचिर होता है।

नचिरात् (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्द, फौरन।

नचेत् (सं० अव्य०) नहीं तो, वैसा नहीं होनेसे।

नच्युत (सं० त्रि०) न च्युतः नञ् वा, न शब्देन सह सुपेति समासः। च्युत भिन्न स्थिर, नित्य, अविनाशी।

नछत्र (हिं० पु०) नक्षत्र देखो।

नजदीक (फा० वि०) निकट, पास, करीब, समीप।

नजदीकी (फा० स्त्री०) १ सान्निध्य, पास या नजदीक होनेका भाव। (पु०) २ निकटका सम्बन्ध। (वि०) ३ निकटका, जो समीपमें हो।

नजफ खाँ—इनकी उपाधि अमीर-उल उमरा, जुल फिकर उद्दौला था। पारस्यके सफवी राजवंशमें इनका जन्म हुआ था। नादिर शाहने पारस्यके सिंहासन पर बैठ कर पुराने राजवंशके सभी मनुष्योंको जब कैद कर रखा था, उस समय ये भी कैद कर लिये गये थे। दिल्लीके सम्राट् महम्मद शाहने जिस समय नादिरशाहके निकट नवाब सफदरजङ्गके भाई मिर्जा महशीनको दूत बना कर भेजा था, उस समय मिर्जा महशीनके अनुरोधसे नजफ खाँ तथा उनकी बहिन कारागारसे छोड़ दी गई थी। इनकी बहनके साथ मिर्जा महशीनका विवाह हुआ था। पीछे तीन मनुष्य दिल्लीको आये। महशीनके मरने पर नजफ खाँ अपने भांजे महम्मद कुली खाँके निकट रहते थे जो उस समय इलाहाबादके शासनकर्त्ता थे। सफदर-जङ्गके पुत्र नवाब सुजाउद्दौलासे जब कुली खाँ मारे गये, तब नजफ खाँने बहुतसे अनुचरोंको साथ ले बङ्गालदेशमें प्रस्थान किया। वहां जा कर ये नवाब मीरकासिमके अधीन काम करने लगे। उस समय मीरकासिम अंगरेजोंके साथ लड़ाईमें लगे हुए थे। नजफखाँने इसमें और भी उत्साह दिया। मीरकासिमने जब नवाब सुजाउद्दौलाको आश्रय लो, तब नजफ खाँ उन्हें छोड़ बुन्देलखण्डके एक सरदार गुमानसिंहके अधीन काम करने लगे। बक्सरकी लड़ाईमें हार कर सुजाउद्दौला जब भाग गया, तब नजफखाँने अंगरेजोंसे प्रार्थना की, कि अभी वे ही इलाहाबाद प्रदेशके प्रकृत उत्तराधिकारी हैं। अंगरेजोंने उन्हें आदरपूर्वक ग्रहण कर इलाहाबाद प्रदेशके एक अंशका शासनकर्त्ता बनाया। नवाब वजीरके साथ अंगरेजोंकी सन्धिके समय इनका मिथ्या-उत्तराधिकारत्व प्रमाणित हुआ। इस पर अंगरेजोंने इन्हें पदच्युत करके मासिक दो लाख रुपये देनेका बन्दोबस्त कर दिया और शाह आलमके निकट अच्छी तरह सुफारिश कर दी। अंगरेजोंने नजफके प्रति जैसी व्यवस्था कर दी, सच पूछिये तो वे वैसे विश्वासके पात्र न थे। सुजाउद्दौलाके साथ वे गुप्तरीतिसे अंगरेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे थे, कोराकी लड़ाईमें नवाबकी यदि जीत होती, तो नजफ उन्हें अवश्य सहायता देते। १७७१ ई०में वे सम्राट्के साथ इलाहाबादको छोड़ कर दिल्ली चले गये। जाठोंके हाथसे इन्होंने आगरा शहरका उद्धार किया, इस कारण सम्राट्ने इन्हें अमीर-उल-उमरा-जुल-फिकर उद्दौलाकी उपाधिसे भूषित किया था। १७८२ ई०को ४८ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त

नजराना (अ० पु०) १ भेंट, उपहार । २ जो वस्तु भेंटमें दी जाय ।

नजला (अ० पु०) १ यूनानी हिकमतके अनुसार एक प्रकारका रोग, इसमें गरमोके कारण सिरका विकारयुक्त पानो ढल कर भिन्न भिन्न अङ्गोंकी ओर प्रवृत्त होता और जिस अङ्गको ओर ढलता है उसका अनिष्ट कर देता है। कहते हैं, कि यदि नजलेका पानो सिरमें ही रह जाय, तो बाल सफेद हो जाते हैं, आँखों पर उतर आवे, तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उतरे, तो आदमी बहरा हो जाता है, नाक पर उतरे, तो जुकाम होता है, गलेमें उतरे तो खाँसी होती है और अण्डकोश-में उतरे तो उसकी वृद्धि हो जाती है। २ जुकाम, सरदी ।

नजलाबंद (फा० पु०) अफीम और चूने आदिका वह फाहा जो नजलेको गिरनेसे रोकनेके लिये दोनों कन पटियों पर लगाया जाता है।

नजाकत (फा० स्त्री०) सुकुमारता, कोमलता, नाजुक होनेका भाव ।

नजात (फा० स्त्री०) १ मुक्ति, मोक्ष। २ छुटकारा, रिहाई।

नजामत (अ० स्त्री०) १ नाजिमका विभाग या महकमा। २ नाजिमका पद ।

नजारत (अ० स्त्री०) १ नाजिरका पद। २ नाजिरका विभाग। ३ नाजिरका वह आफिस जहां वे बैठ कर काम करते हैं।

नजारा (अ० पु०) १ दृश्य। २ दृष्टि, नजर। ३ स्त्री या पुरुषका दूसरे पुरुष या स्त्रीको प्रेमकी दृष्टिसे देखना।

नजारेबाजी (फा० स्त्री०) स्त्री या पुरुषका दूसरे पुरुष या स्त्रीको प्रेमकी दृष्टिसे देखनेकी क्रिया या भाव।

नजाबत् खाँ खानखाना—सम्राट् आलमगीरके समसामयिक एक प्राप्त व्यक्ति और हजारो मनसबदार। ये नवाब थे। सम्राट् इनकी खूब खातिर करते थे। ये अकबरके समसामयिक मिर्जा सुलेमान बदकशानीके प्रपौत्र रहे। इनका असल नाम मिर्जा सुजा था। १६६४ ई०को उज्जयनी नगरमें इनकी मृत्यु हुई। इनके पिताका नाम था मिर्जा शाहरुख। मिर्जा शाहरुखने अकबरकी कन्या शकुरुन्निसा बेगमसे शादी की थी। शाहरुख देखो।

नजीब उल्ला खाँ—कर्णाट प्रदेशके नवाब महम्मद अलीके भाई। इन्होंने अपने भरण पोषणके लिये बड़े भाईसे १७५३ ई०में नेल्लूर नामक स्थान पाया था। १७५७ ई०में नजीबउल्लाने भाईके विरुद्ध षड़यन्त्र रचा, लेकिन उसमें कृतकार्य न हो कर पुनः उनकी शरण ली।

नजीब उन्निसा बेगम—अकबर बादशाहकी बहन और खोजा हुसेन नक्शबन्दीकी स्त्री।

नजीब खाँ—एक रोहिला सरदार। ये अली महम्मदखाँके शासनकालमें रोहिलखण्ड आये थे और अपने साहस तथा कार्यदक्षता द्वारा थोड़े ही समयके भीतर संभ्रान्त उच्च पद पर नियुक्त हुए थे। बाद इन्होंने दिल्लीमें प्रवेश किया। सफदरजङ्गके विद्रोही होने पर ये उनके विरुद्ध भेजे गये और इन्होंने उसे अच्छी तरह परास्त किया। १७५२ ई०में बादशाह अहमद शाहने इन्हें नजीब उद्दौलाकी उपाधि दी थी। अहमद शाह अबदलीके साथ महाराष्ट्रोंकी जो लड़ाई छिड़ी थी, उसमें ये भी पहुंचे हुए थे। १७७० ई०में इनका देहान्त हुआ।

नजीर (अ० स्त्री०) १ उदाहरण, दृष्टान्त, मिसाल। २ किसी मुकदमेंका वह फैसला जो उसी प्रकारके किसी दूसरे मुकदमेमें वैसा ही फैसलेके लिये उपस्थित किया जाय।

नजीरी—एक कवि। इनका जन्मस्थान निशापुरमें था। ये भारतवर्षमें आ कर गुजरातके अन्तर्गत अहमदाबादमें रहने लगे थे। यहां हि० १०२२ सालमें इनका प्राणान्त हुआ।

नजूम (अ० पु०) ज्योतिषविद्या।

नजूमी (अ० पु०) ज्योतिषी।

नजूल (अ० पु०) १ सरकारी जमीन। २ नजला देखो।

नञ् (सं० अव्य०) अभाव-संज्ञक। नञ् शब्दकी समास होनेसे यदि उसके बाद स्वरवर्ण रहे, तो नञ्‌को जगह अन् और यदि व्यञ्जन वर्ण रहे, तो विकल्पसे अ होता है। यथा—न-अन्त अनन्त, नान्त, न-च्युत अच्युत नच्युत। नञ्‌के छः अर्थ हैं, यथा—१ सादृश्य, २ अभाव, ३ अन्यत्व, ४ अल्पत्व, ५ अप्राशस्त्य और ६ विरोध। उदाहरण—अब्राह्मण, यहां पर नञ्‌का अर्थ सदृश है, अब्राह्मण शब्दसे ब्राह्मणके सदृश नहीं ऐसा समझना चाहिये।

दुःखकी विरोधिता। जहां प्रतियोगी (घट)-की अधिकरणता रहती है, वहां उसका अभाव नहीं रहता, जहां घटका अभाव रहता है, वहां घटकी अधिकरणता नहीं रहती, यही विरोध है।

पहले कहा जा चुका है, कि संसर्गाभाव नित्य है वह नित्य इस अत्यन्ताभाव सम्बन्धमें जानना चाहिये, अर्थात् अत्यन्ताभावकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। सभी समय सब वस्तुओंका अत्यन्ताभाव सब जगह रहता है।

अभी आपत्ति इस बातकी हो सकती है, कि यदि सभी जगह सब वस्तुओंका अत्यन्ताभाव है, तो जहां घटको वर्त्तमान देखते हैं, वहां घटका अभाव प्रत्यक्ष नहीं होता, लेकिन देखा जाता है, कि वहां घट नहीं है अर्थात् घटका अभाव है। फिर ज्यों ही वहां दूसरा घड़ा ला कर रखा, त्योंही उस घड़ेका अभाव दूर हुआ, फिर घड़ेका अभाव नहीं रहा। लेकिन पुनः घड़ेको उस जगहसे अलग रखने पर ही वहां घड़ेका अभाव हो जाता है। अतएव जिसकी उत्पत्ति और नाश है, उसे किस प्रकार नित्य कह सकते, इसके उत्तरमें नैयायिक लोग कहते हैं, कि जहां घट है, वहां तब भी घटका अभाव है सही, किन्तु उसकी उपलब्धि नहीं होती, घटका अभाव उस समय भी देखा जाता, यदि वह घट वहां प्रतिबन्धक रूपसे बैठा न रहता। इस प्रकार प्रतिबन्धकवशतः ही घटके अभावकी उपलब्धि नहीं होती है। घटको हटा लेनेसे ही प्रतिबन्धक नहीं रहता और तब घटाभाव प्रत्यक्ष हो जाता है।

अन्योन्याभाव—तादात्म्यसम्बन्धमें सम्बन्ध जो अभाव रहता है उसे अन्योन्याभाव कहते हैं, जिस तरह संयोग सम्बन्धमें घट पृथ्वी पर रहता है, उसी तरह तादात्म्यसम्बन्धमें आप आपमें रहता है अर्थात् तादात्म्य सम्बन्धमें घट घटमें रहता और पट पटमें रहता है। अन्योन्याभावका आकार इस प्रकार है "अयं घटो न" यह वस्तु घट नहीं है, तो क्या पट है? "घट नहीं है" इसी नञ्का अर्थ अन्योन्याभाव है। अन्योन्याभावका दूसरा नाम "भेद" है। अतः जिस अभावके बलसे परस्परका भेद प्रतीत होता है, उसका नाम अन्योन्याभाव है। यह वस्तु घट नहीं है अर्थात् घट भिन्न है, तो क्या पट है? यहां पर घट और पटकी भिन्नता प्रतीत होती है। अभी सब मिल कर "यह वस्तु तादात्म्यसम्बन्धमें घट नहीं है" इसका अर्थ ऐसा हुआ, तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न और घटत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताका निरूपक भेदविशिष्ट यही पट है।

उक्त अन्योन्याभावके साथ विरोध प्रतियोगितावच्छेदकके साथ प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व जहां रहता है वहां घटका भेद नहीं रहता, घटत्व है घटमें, इस घटमें घटका भेद नहीं रहता। घटका भेद रहेगा सिर्फ घटके सिवा पटादि सभी वस्तुओंमें। इसी प्रकार नञ् अर्थका विचार नञ्वादमें अति विस्तृतरूपसे लिखा है। विस्तारके भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया। यही नञ्वाद नैयायिकका प्रधान ग्रन्थ है।

जहां विधिकी प्रधानता और निषेधकी अप्रधानता जानी जाती है तथा समास पदमें नञ्का प्रयोग नहीं होता, वहां उसे पर्युदास नञ् कहते हैं। यथा—"रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत" रातमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, यहां पर यह समझा जाता है, कि रात छोड़ कर और सभी समयमें श्राद्ध कर्त्तव्य है। क्योंकि शास्त्रान्तरमें सभी जगह श्राद्धकार्यका विधान है, इसीसे इस श्राद्धकरणके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है, विध्यर्थवाचक लिङ् प्रत्ययमें अर्थात् 'कुर्वीत' इसी लिङ् प्रत्यय द्वारा यहां पर विधिकी प्रधानता समझी जाती है। श्राद्ध करना ही होगा, रात्रि छोड़ कर दूसरे समयमें श्राद्ध कर्त्तव्य है और यहां प्रतिषेधकी अप्रधानता हुई है। साक्षात् विध्यर्थवाचक लिङर्थमें नञ् अर्थका अन्वय नहीं होनेसे ही निषेधका अप्राधान्य हुआ। जैसे 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' रातमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, यहां पर नञ्का अर्थ अन्योन्याभावभेद है अर्थात् नहीं करना चाहिये, यह न जान कर रात्रि भिन्न कालमें करना चाहिये, यही भेद नञ्का अर्थ हुआ। भेद रूप निषेधका साक्षात् अन्वय हुआ है, विध्यर्थवाचक लिङर्थमें अन्वय नहीं होता, इसीसे निषेधकी अप्रधानता हुई और यहां पर पर्युदास नञ् हुआ।

जहां विधिकी अप्रधानता और निषेधकी प्रधानता

तथा नञ् अर्थका अन्वय क्रियामें होता है, वहां वही प्रसज्य प्रतिषेध कहते हैं। यथा—"नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति" अतिरात्र शब्दका अर्थ अतिरात्र नामक यज्ञ और षोडशी शब्दका अर्थ सोमलतारसपूर्ण पात्र है। अतिरात्र नामक यज्ञमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण नहीं करना चाहिये। यहां पर विधेय अर्थ षोडशि ग्रहण है, इसके साक्षात् सम्बन्धमें विध्यर्थवाचक 'लट्'के साथ अन्वय नहीं होता, इसीसे विधिकी अप्रधानता हुई और नञर्थ न निषेधका विध्यर्थवाचक लट् प्रत्ययके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है इसीसे निषेधकी प्रधानता हुई है। अर्थात् अतिरात्र यज्ञमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण करना निषिद्ध बतलाया है, 'न गृह्णाति' ग्रहण नहीं करना चाहिये, दूसरे शास्त्रोंमें सोमलतारसपूर्ण पात्र ग्रहण करनेका विधान है, किन्तु अतिरात्र यज्ञमें इसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। दूसरे शास्त्रोंमें इसका जो विधान बतलाया है, वही विधि यहां पर अप्राधान्य और प्रतिषेधका प्राधान्य हुआ। ग्रहण मत करो, यही निषेधका प्राधान्य है इसीसे यहां पर प्रसज्य-प्रतिषेध हुआ।

फिर ऐसा भी स्थान है, जहां एक ही समय पर्युदास और प्रसज्य-प्रतिषेध दोनों होते हैं। यथा मोक्षधर्म—

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः।
यदीजन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठते॥"

यहां पर "न आचरेत्" इस नञ्का अर्थ प्रसज्य और पर्युदास दोनों होता है। क्योंकि पौष और चैत्र मासमें तथा कृष्णपक्षमें नवान्न श्राद्ध नहीं करना चाहिए। जो करता है, वह जन्मान्तरमें रोगी होता है और श्राद्ध उसके लिए पितृलोकमें नहीं पहुंचता।

नवान्न श्राद्ध पौषादिमें नहीं करना चाहिए क्योंकि जन्मान्तरमें रोगी होता है, इससे यही समझा गया कि यह निन्दाश्रुति है। किन्तु यह प्रसज्य-प्रतिषेध है और वह श्राद्ध पितृलोकमें उपस्थित नहीं होगा, इससे जाना जाता है, कि श्राद्ध सिद्ध नहीं होगा। सुतरां पर्युदास अर्थात् जहां कार्यकी सिद्धि है, और कुछ प्रत्यय भी है, वहां प्रसज्य प्रतिषेध है और जहां कार्यकी सिद्धि नहीं है तथा कोई प्रत्यवाय भी नहीं है, वहां पर्युदास होता है। तात्पर्य यह है, कि प्रसज्यकी जगह कार्यकी सिद्धि होती है सही, लेकिन दोषयुक्त होना पड़ता है। पर्युदासकी जगह न कार्यकी सिद्धि होती और न कार्यके लिए कोई प्रत्यवाय ही होता है। 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' यहां पर रात्रिकालमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकी सिद्धि नहीं होगी और रात्रिकालमें श्राद्धके लिए प्रत्यवायभागी नहीं होना पड़ेगा। 'नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' यहां पर कार्यकी सिद्धि होगी। किन्तु प्रत्यवायग्रस्त होना पड़ेगा। इसीको साधारणतः पर्युदास और प्रसज्यप्रतिषेध जानना चाहिये। रघुनाथ, जगन्नाथ पण्डित, [illegible], [illegible], गदाधर, विश्वनाथ आदि रचित नञ्वाद सम्बन्धीय ग्रन्थोंमें विस्तृत विवरण देखो।

नञ्जनगढ़—१ महिसुर राज्य महिसुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११ ११´ और १२ १४´ उ० तथा देशा० ७६ २० और ७६ ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८३ वर्गमील और लोकसंख्या १०८९० के लगभग है। इसमें दो शहर और २०६ ग्राम लगते हैं। राजस्व १६१००० रु० है। कब्बनी नामकी नदी तालुककी पश्चिमसे पूर्वको बह गई है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२ ७´ उ० और देशा० ७६ ४१´ पू० कब्बनी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५८८१ है। यहां नञ्जुण्डेश्वर नामक शिवका विख्यात मन्दिर है। उस मन्दिरकी लम्बाई ३८५ फुट और चौड़ाई १६० फुट है तथा यह १३० खम्भोंसे वेष्टित है। मार्च मासके चैत्र मासमें यहां रथयात्रा होती है जिसमें हजारों मनुष्य समागम होते हैं। १८७३ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

नञ्जरायपत्तन—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत कुर्ग राज्यका एक तालुक। यह अक्षा० १२ २१´ और १२ ५१´ उ० तथा देशा० ७५ ३१ और ७६ १´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २११ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३२०७० है। इसमें तीन शहर और १८० ग्राम लगते हैं। तालुकका पश्चिमांश अरण्यमय है। हिमावती और कुमारी नामकी दो प्रसिद्ध नदियां इस तालुकके पश्चिम और दक्षिणमें बहती हैं।

नट (पु० पु०) नमतीति नम-अच्। (उणिनाम्नुक्षिदि।

उण. ४।१०४) १ शोणाकवृक्ष। या नटति नृत्यति इति-नट-अच्। २ नर्त्तक, वह जो नाट्य करता हो। पर्याय—शैलाली, शैलूष, जायाजीव, कृशाश्वी, भरत, सर्ववेशी, भरतपुत्रक, धात्रीपुत्र, रङ्गाजीव, रङ्गावतारक। ३ अशोक वृक्ष। ४ किष्कुपर्वा, नल नामकी घास। ५ वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसकी उत्पत्ति शौचिककी स्त्री और शौण्डिक पुरुषसे मानी गई है और जिसका काम गाना बजाना बतलाया गया है। ६ व्रात्य क्षत्रियसे उत्पन्न क्षत्रिय जाति विशेष, मनुके अनुसार क्षत्रियोंकी एक जाति जिसकी उत्पत्ति व्रात्य क्षत्रियोंसे मानी जाती है। ७ रागविशेष, सम्पूर्ण जातिका एक राग। नारदपुराणके अनुसार ये रागके पुत्र माने जाते हैं। रागमालामें इसे रागिणी बतलाया है।

स्वरग्राम—"स ऋ ग म प ध नि ::"

नटनारायण ही नट समझे जाते हैं। अभी नट जातिका राग नौ प्रकारका प्रचलित है जिसे सङ्गीतशास्त्र व्यवसायिगण नवनट कहते हैं। यथा—शुद्धनट, केदारनट, छायानट, कदम्बनट, हाम्बीरनट, और आड़ीगनट। (संगीतसारस०) इसके गानेका समय तीसरा पहर और सन्ध्या है।

८ नृत्यगीत व्यवसायी जातिविशेष, नीच जाति जो गा बजा कर और तरह तरहके खेल तमाशे आदि करके अपना निर्वाह करती है। पूर्व बङ्गालमें इस जातिके लोग अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। प्रवाद है, कि पश्चिमोत्तर प्रदेशको कथकजातीय ब्राह्मण श्रेणी ही नवाबी अमलमें ढाका आ कर जातिभ्रष्ट हुई और नट जातिमें परिणत हो गई। फिर किसीका कहना है, कि गलेकी चूड़ी बनानेवाली चुनी जातिकी एक शाखा ही अपनी वृत्ति छोड़ कर नाच गान करने लगी और नट जाति कहलाने लगी। मि० वाईज कहते हैं, कि उनके समयमें बङ्गाल देशमें नट नामकी कोई स्वतन्त्र जाति नहीं थी।

पुराणमें मालाकारके औरस और शूद्राके गर्भसे नट जातिकी उत्पत्ति बतलाई है। नट जातिके लोग कहते हैं, कि वे भरद्वाज मुनिके औरस और किसी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। विक्रमपुरके नटोंका कहना है, कि इन्द्रसभामें किसी देवनर्त्तकने शापभ्रष्ट हो कर पृथ्वी पर जन्म लिया था। उन्हींके वंशधर यह नट जाति है। नट लोग स्थानभेदसे नड़, नट, नर्त्तक और नाटक नामसे पुकारे जाते हैं। इनकी थोड़ी संख्या होनेके कारण ये लोग निम्न श्रेणीकी हिन्दू कन्यासे शादी करके और भी नीच हो गये हैं। इन लोगोंके गोत्र होता है। सबोंका एक गोत्र भरद्वाज है। इनकी उपाधि नन्दी और भक्त है। जो नाच गानमें प्रवीण होते, वे 'उस्ताद' कहलाते हैं। ये लोग शूद्रको नाईं तीन दिन तक अशौच मानते हैं और साधारणतः वैष्णव हैं। चाण्डाल तथा इसी प्रकारकी दूसरी नीच-जातिके यहां जा कर ये नाच गान नहीं करते। फिलहाल इनका आदर घट जानेसे इन्होंने मुसलमानके यहां भी जाना बंद कर दिया है। मुसलमानोंमें भी बाजुनिया नामक नट सरीखा एक सम्प्रदाय है।

बचपनमें नट बालक नाच गान सीखते हैं। इस समय इन्हें 'बागाती' कहते हैं। किन्तु जवान होने पर भी ये लोग गीत सीखते और जीविकाके लिये मुसलमान नर्त्तकोंको गीत सिखाते हैं तथा उनके साथ जा कर जहां तहां सफरदाईका काम करते हैं। एक नर्त्तकी और कई एक नटोंसे एक सम्प्रदाय बनता है। जो नाच गान सीख नहीं सकते, वे खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं। पहले कोई हिन्दू रमणी नर्त्तकी नहीं होती थी, किन्तु अभी वैष्णवी और वेश्या हिन्दू कन्यायें भी यह व्यवसाय करने लग गई हैं। ये लोग भी सारङ्गी, बेहला, मंजीरा, डुग्गी, तबला आदि वाद्ययन्त्रका व्यवहार करते हैं। नट लोग प्रति दिन सुबहमें बिछावनसे उठ कर अपने वाद्ययन्त्रोंको प्रणाम करते हैं। श्रीपञ्चमीके दिन जब तक सरस्वती पूजाका शेष नहीं होता तब तक ये लोग गीतवाद्यका जिक्र तक भी नहीं करते। नट जातिकी स्त्रियां नाच गान सीखती हैं सही, किन्तु जीविकाके लिये वे कभी इधर उधर नाचने गाने नहीं जातीं। वे केवल विवाह आदि अवसरोंमें अपने घरमें ही नाचती गाती हैं। अनेक नट-युवक मुसलमानी नर्त्तकोंको सिखाते समय उनके प्रेममें फंस कर मुसलमान बन जाते हैं।

नटमल्ल (सं० पु०) एक प्रकारका राग।

नटमल्लार (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक मङ्कर राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मलारके योगसे बनता है।

नटमल्लारि—रागिणीविशेष। नट और मल्लारके योगसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

नटरङ्ग—नटके जैसा रङ्ग वा अभिनय कार्य।

नटवटु (सं० पु०) १ अभिनेताका पुत्र। २ युवक अभिनेता।

नटवर (सं० पु०) नटेषु वरः। १ प्रधान अभिनेता, नाट्य कलामें बहुत प्रवीण मनुष्य। २ नटके जैसा अङ्ग भङ्गी और बोलनेमें चतुर। ३ श्रीकृष्ण जो नाट्यकला और नाटकशास्त्रके आचार्य थे। (त्रि०) ४ बहुत चतुर, चालाक।

नटवामरसी (हिं० पु०) साधारण मरसी।

नटसंज्ञक (सं० पु०) नटस्य संज्ञा यस्य कप्। १ गोदन्ताख्य हरिताल, गोदन्ती हरताल। २ नट।

नटसाल (हिं० स्त्री०) १ कांटेका वह भाग जो निकाल लिये जाने पर भी टूट कर उसी जगह रह जाता है। २ मानसिकव्यथा, कसक, पीड़ा। ३ बाणकी गाँसी जो शरीरके भीतर रह जाय। ४ वह फांस जो बहुत छोटी होनेके कारण नहीं निकाली जा सकती।

नटसूत्र (सं० क्ली०) नटस्य तत्कृत्यस्य ज्ञापकं सूत्रं। शिलालि रचित नटकृत्यज्ञापक ग्रन्थभेद।

नटाई (हिं० स्त्री०) किनारेका ताना ताननेका जुलाहोंका एक औजार।

नटान्तिका (सं० स्त्री०) अन्तयति नाशयति इति अन्त-ण्वुल्, टापि अत इत्वं; नटस्य नटकृत्यस्य अन्तिका ६ तत्। लज्जा, शरम। लज्जा होनेसे नाट्य नहीं हो सकता। नटकार्य एकमात्र लज्जासे ही विनष्ट होता है, इसीसे नटान्तिका शब्दका अर्थ लज्जा रखा गया है।

नटिन् (हिं० स्त्री०) १ नटकी स्त्री। २ नट जातिकी स्त्री।

नटी (सं० स्त्री०) नट-अच् ङीष्। १ नली नामक गन्ध द्रव्य। २ वेश्या। ३ नटपत्नी, नट जातिकी स्त्री। ४ रागिणीभेद, एक रागिणीका नाम। हनुमत्‌के मतसे यह दीपक रागकी रागिणी मानी गई है। यह सम्पूर्ण जातिकी है। ग्रीष्मऋतुमें सन्ध्या समय यह गाई जाती है। रागमालामें इसका रूप रक्तवर्णा, युवती, विविधालङ्कारसे सुशोभिता, अश्वारूढ़ा, पुरुषके समान वेश धारिणी बतलाया है। ५ नर्तकी, नाचनेवाली स्त्री। ६ अभिनेत्री, अभिनय करनेवाली स्त्री। ७ अशोक वृक्ष।

नटुआ (हिं० पु०) नट देखो। २ नचैया देखो।

नटेश्वर (सं० पु०) नटानां ईश्वरः। शिव, महादेव। शिवजी नाच गानके बड़े प्रिय थे, इसीसे इनका नाम नटेश्वर पड़ा है।

नट्ट (हिं० पु०) नट देखो।

नट्या (सं० स्त्री०) नटानां समूहः पाशादित्वात् य टाप्। रागिणीविशेष, सङ्गीतमें एक प्रकारकी रागिणी जो प्रायः नटके सामने होती है।

नड (सं० पु०) नलतीति नल-अच् लस्य डत्वं। १ नल-तृण, नरसल, नरकट। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद, एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। ३ एक जाति जिसका पेशा शीशेकी चूड़ियाँ बनाना है।

नड़क (सं० क्ली०) नल अस्थि अप् संज्ञायां कन्। दो अंशोंके बीच वर्त्तमान नलाकार अस्थिभेद।

नड़कीय (सं० त्रि०) नड़ाः सन्त्यत्र नड़-कुक् छ। (नड़ादीनां कुक् च। पा ४।२।९१।) नलसमूह देश, जहां नल या नरकट बहुत होता है।

नड़प्राय (सं० त्रि०) नड़ः प्रायेण यत्र। नलबहुल देश, जहां नरकट बहुत उपजता है। पर्याय—नड़कीय, नड़ग्राम, नड़्वल।

नड़भक्त (सं० क्ली०) नड़स्य विषयो देशः ऐषुकारित्वात् भक्तल। नड़विषय।

नड़मय (सं० त्रि०) नड़-स्वरूपे मयट्। नल समूहयुक्त, जहाँ नरकट बहुत पाया जाता हो।

नड़मीन (सं० पु०) नड़स्थितो मीनः। मत्स्यविशेष, झींगा मछली।

नड़श (सं० त्रि०) नड़ अस्त्यर्थे लशादित्वात् श। नड़युक्त। नरकटसे आच्छादित।

नड़संहति (सं० स्त्री०) नड़ानां संहतिः समूहः। नड़समूह, नरकटका ढेर।

नड़ह (सं० त्रि०) नड़ं अपरिष्कृतस्थानं हन्ति हन-ड। ललित, कान्त, तेजो, चमक दमक

नत नाड़ी होगा। रातको अन्मादि होनेसे रातके प्रथमार्द्ध मानका जितना दण्ड बीत गया है उसके साथ दिनार्द्धका योग करनेसे जो दण्डादि होगा, वह पश्चान्नत नाड़ी और रातके द्वितीयार्द्धमानके दण्डादिके साथ दिनार्द्ध योग करनेसे जो दण्डादि होगा, वह प्राङ्नत नाड़ो कहलाता है।

३०मेंसे नतदण्डादि घटानेसे जो अवशिष्ट रहेगा, उसका नाम उन्नतनाड़ी है। इसका विषय कुछ बढ़ा चढ़ा कर कहना आवश्यक है।

सूर्यके उदयसे ले कर जब वे ठीक मस्तकके ऊपर आ जाते हैं, तब तकके दिनार्द्धमानको प्रथम दिनार्द्ध और मस्तकके ऊपरसे अस्त हो जाने तकके दिनार्द्धको शेष दिनार्द्ध कहते हैं। इसी प्रकार अस्तसे ले कर जब वे पातालमें हम लोगोंके पैरतले आ जाते हैं, तब तकके निशार्द्धमानको निशार्द्ध और फिर वहांसे उदय तकके निशार्द्धको शेष निशार्द्ध कहते हैं।

प्रथम दिनार्द्धमान प्राङ्नत नाड़ो और शेष दिनार्द्ध पश्चान्नतनाड़ी कहलाता है। इस प्रकार शेष दिनार्द्धमानके साथ प्रथम निशार्द्धमानको संयुक्त करनेसे उसे पश्चान्नतनाड़ी अर्थात् हम लोगोंके मस्तकोपरिसे जब सूर्य हम लोगोंके पैरतले आ जाते हैं, तब तकके समयको पश्चान्नतनाड़ी और शेष निशार्द्धमानको प्रथम दिनार्द्धमानके साथ संयोग करनेसे अर्थात् उस पादतलसे हम लोगोंके मस्तकके ऊपर आने तकके समयको प्राङ्नत नाड़ो कहते हैं। (कोष्ठीप्रदीप)

नतनासिक (सं० त्रि०) नता नासिका यस्य। अल्प नासिकायुक्त, छोटी नाकवाला। पर्याय—अवटीट, अवनाट, अवभ्रट।

नतपत्र—नारियादका प्राचीन संस्कृत नाम।

नतपाल (हिं० पु०) प्रणतपाल, प्रणाम करनेवालेका पालन करनेवाला।

नतपुर—नारियादका आधुनिक संस्कृत नाम।

नतभाग (सं० पु०) नत। (Zenith distance)

नतम (हिं० वि०) बांका।

नतमी (हिं० स्त्री०) आसाम प्रदेशमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और लाल रंगकी होती है और उससे मेज, कुरसियां तथा नावें अच्छी बनाई जाती हैं।

नतराम (सं० अव्य०) न आस्तराप्। १ अतिशय नअर्थ, प्रतियोग समानाधिकरण-अभाव। २ निमरां, अधंदा, सदा, हमेशा।

नतांश (सं० पु०) वह वृत्त जिसका केन्द्र भूकेन्द्र पर होता है और जो विषुवत् रेखा पर लंब होता है। यह वृत्त ग्रहों आदिकी स्थिति जाननेके काममें आता है।

नताउल (हिं० पु०) पश्चिमीघाट पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे मेज कुरसी आदि बनती हैं। इसके रेशे मजबूत होते हैं और बड़े बड़े रस्से बनानेके काममें आते हैं। इसके पेड़से एक प्रकारको जहरोला रस निकलता है जिसे तीरोंमें लगा कर उन्हें जहरोला बनाते हैं। इसका दूसरा नाम जसुद है।

नताङ्गी (सं० स्त्री०) नतं-अङ्गं यस्याः ङीष्। १ नारी, औरत। २ कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

नति (सं० स्त्री०) नम-भावे क्तिन्। १ नमन, नमस्कार, प्रणाम। त्रिकोण, षटकोण, अर्द्धचन्द्राकार, प्रदक्षिण, दण्ड, अष्टाङ्ग और उग्र ये सात प्रकारको नति अर्थात् प्रणाम हैं।

त्रिकोण—यदि पूर्व मुख पूजा हो, तो पश्चिमसे ईशानकोणमें जा कर रहो और यदि उत्तर मुखमें पूजा हो, तो दक्षिणसे वायुकोणमें जा कर रहो। पीछे वायुकोणसे ईशानकोणमें और तब दक्षिणसे अग्निकोणमें जाओ। बाद अग्निकोणसे नैऋतकोणमें और नैऋतकोण से उत्तर तथा उत्तरसे अग्निकोणमें जाओ। ऐसा करनेसे त्रिकोणगति अर्थात् नमस्कार होता है। इसी प्रकार दो बार करनेसे षट्कोणीय नमस्कार होता है। यह नति पार्वती और महादेवको अतिशय प्रीतिप्रद है। दक्षिणसे वायुकोणमें और फिर वहांसे दक्षिणकी ओर वापिस आ कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे अर्द्धचन्द्र और मण्डलाकारमें प्रदक्षिण करके जो नमस्कार किया जाता है, उसे प्रदक्षिण कहते हैं। अपना आसन त्याग कर बिना प्रदक्षिणके पृथ्वी पर दण्डवत् पतित हो कर जो नमस्कार किया जाता है, उसका नाम दण्ड है। पूर्वोक्त

नतु (सं० अव्य) अन्यथा, नहीं तो।

नतैत (हिं० पु०) सम्बन्धी, रिश्तेदार, नातेदार।

नत्थ (हिं० स्त्री०) नथ देखो।

नत्थी (हिं० स्त्री०) १ कागज या कपड़े आदिके कई टुकड़ोंको एक साथ मिला कर और आर पार छेद करके सबको डोरे या आलपीन आदिसे एक होमें बांधना या फँसाना। २ इस प्रकार एक होमें नाथे हुए कई कागज आदि जो प्राय एक ही विषयमें सम्बन्ध रखते हैं, मिसल।

नत्यूह (सं० पु०) कठफोड़वा नामकी पक्षी।

नथ (हिं० स्त्री०) आभूषण विशेष, एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां नाकमें पहनती है। यह बहुत कुछ गोल बालीसे मिलता जुलता है और सोने आदिका तार खींच कर बनाया जाता है। इसमें प्राय: गूंजके साथ चन्द्र ह, बुलाक या मोतियोंकी जोड़ी पहनाई रहती है। छोटी नथका नाम बेसर है। हिन्दुओंमें नथ सौभाग्यका चिह्न समझी जाती है।

नथना (हिं० पु०) १ नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग। २ नासिकाछिद्र, नाकका छेद।

नथना (हिं० क्रि०) १ किसीके साथ नत्थी होना, नाथा जाना। २ छिदना, छेदा जाना।

नथनी (हिं० स्त्री०) १ वह छोटी नथ जो नाकमें पहनी जाती है। २ बुलाक। ३ वह छल्ला जो तलवारकी मूठ पर लगा रहता है। नथकी आकारकी कोई चीज। ४ वह रस्सी जो बैलकी नाकमें पिरोई जाती है।

नद (सं० क्रि०) १ पूजा करना। २ स्तुति करना, सन्तोष करना।

नद (सं० पु०) नदति शब्दायते 'पचाद्यच्' इति अच्। १ पुंवाचक प्रकृतिस स्रोतावच्छिन्न जलप्रवाह, बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका नाम पुंलिङ्गवाची हो। जो जलप्रवाह पर्वत, ह्रद आदिसे निकल कर स्रोतके रूपमें बहुत दूर बह जाता है तथा किसी दूसरे स्रोत वा समुद्रमें मिलता है, उसको नद कहते हैं। पर्याय—पुनर्भव, भिद्य, उद्य, आरस्वान्, सिन्धु, भैरव, शोण, दामोदर और ब्रह्मपुत्र आदि नद हैं।

पद्मपुराणमें नदकी संख्या दशकोटि बतलाया है। नद स्तुतौ अच्। २ एक ऋषिका नाम।

नदथु (सं० पु०) नद अथुच् शब्दे बाहुलकात् अथुच्। वृषभकूजित।

नदन (सं० पु०) शब्द करण, शब्द करना, आवाज करना।

नदनदीपति (सं० पु०) नदनदीनां पतिः ६ तत्। समुद्र सागर।

नदनिमान (सं० वि०) शब्दायमान, शब्द करनेवाला।

नदनु (सं० पु०) नदतीति नद अनुङ् (अनुङ् नदेश्च। उण् ३।५२) १ मेघ, बादल। २ सिंह, शेर। ३ शब्द, आवाज।

नदनुमत् (सं० त्रि०) नदनुः विद्यते ऽस्य मतुप्। शब्द-युक्त, शब्द करनेवाला।

नदम (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कपास जो दक्षिण देशमें उत्पन्न होती है।

नदर (सं० त्रि०) नदस्य अदूर देशादि अश्मादित्वात् र। १ नद-सन्निहित देशादि, नद या नदीके पास पासका प्रदेश। नास्ति दरो भयं यस्य। २ भयशून्य, निडर, जिसे किसी प्रकारका भय न हो।

नदराज (सं० पु०) नदानां राजा टच्, समासान्तः। समुद्र, सागर।

नदारत (हिं० वि०) नदारद देखो।

नदारद (फा० वि०) अप्रस्तुत, गायब, लुप्त, जो मौजूद न हो।

नदाल (सं० त्रि०) नद-बाहुलकात् आल। भाग्ययुक्त, सौभाग्यवान्, तकदीरवाला।

नदि (सं० पु०) नद स्तुतौ इ। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

नदिया—बङ्गदेशका एक जिला। यह अक्षा० २२° ५३´ और २२° ११´ उ० तथा देशा० ८८° ८´ और ८८° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७९३ वर्गमील है। इसके पश्चिममें भागीरथी या हुगली नदी, दक्षिणमें २४ परगना, उत्तरमें राजसाही जिला, पूर्वमें पावना और यशोर तथा उत्तर-पश्चिममें मुर्शिदाबाद जिला है। पद्मा नदी इस जिलेको पावना और राजसाहीसे अलग करती है। जलङ्गी नदी नदिया और मुर्शिदाबादके सीमान्त देशमें बहती है। नदिया वा नवद्वीप नामक नगरके नामानुसार इस जिलेका नामकरण हुआ है। जङ्गलो

है। इस सोधको जल-बाँध कहते हैं। अववाहिकाका आयतन और जलवाधको उन्नति देख कर नदीका परिणाम अवधारित होता है। वर्षके भीतर भिन्न भिन्न समयमें नदीका जल घटता बढ़ता है। जिन सब नाति शीतोष्ण देशोंके पर्वतशिखर पर सब दिन तुषार नहीं रहता, वहां नदीकी वृद्धि केवल वृष्टिके ऊपर निर्भर करती है। वृष्टिका जल एक ही बार नदीमें आ नहीं गिरता, क्रमशः जम कर वा चरित हो कर धीरे धीरे उसमें गिरता है। इसी कारण उन सब देशोंकी नदियोंका परिमाण सब दिन एक सा रहता है और वर्षा जाने पर भी दूर स्थानोंसे जल आ कर नदीको पुष्ट रखता है। किन्तु यह प्रक्रिया देशको उष्णता, वाष्पोद्गमको अल्पता, वायुकी आर्द्रता और भूमिकी सच्छिद्रताके ऊपर निर्भर है। ग्रीष्मप्रधान देशोंमें वर्षाके समय नदीकी वृद्धि और ग्रीष्मके समय उसका ह्रास होता है। वह वृद्धि उत्पत्ति-स्थानके निकट सबसे पहले मालूम पड़ती है। लेकिन नदीसे दूरवर्त्ती स्थानोंमें तथा वाष्पोद्गमप्रयुक्त निम्नस्थ देशोंमें यह वृद्धि देरीसे मालूम पड़ती है। इसी प्रकार वैशाख मासमें आविसिनियाके निकट नील नदीकी वृद्धि होती है। किन्तु ज्येष्ठ मासके शेष हुए विना यह वृद्धि कायरो नगरके निकट अनुभूत नहीं होती। प्राचीन लोग इस अद्भुत व्यापारको देख कर विस्मित होते थे, और इसे दैवकार्य समझते थे। आधुनिक देश-पर्याटकों ने अन्यान्य अनेक नदियोंमें इस प्रकारका व्यापार देखा है। नीलकी वृद्धिकी चरम सीमा ४० फुट है और इसमें बाढ़ आ जाने पर २१०० वर्गमील तकको भूमि जलमग्न हो जाती है। अमेरिकाकी अरिनको नामक नदीका जल-परिमाण ३०से ३६ फुट तक है, लेकिन जब इसमें बाढ़ आती है, तब यह ४५००० वर्गमील भूमि जल प्लावित कर देती है। ब्रह्मपुत्रकी बाढ़से उत्तर आसामका सभी स्थान दश फुट नीचे जलमें चला जाता है। किन्तु अष्ट्रेलियाकी नदियोंकी बाढ़ इन सबसे कहीं बढ़ी चढ़ी है। वहांकी हकसबरी नामक नदीका जल परिमाण १०० फुट तक बढ़ता है। ग्रीष्म कालमें बर्फके गलनेसे जलकी और भी वृद्धि होती है, किन्तु इस समय वर्षा भी होने लगती है। इसीसे द्रवतुषार और वृष्टि द्वारा कितना जल बढ़ा, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। किन्तु गङ्गा, ब्रह्मपुत्र आदि कितनी नदियोंमें इस कारण जितना जल बढ़ता है वह सहजमें मालूम हो जाता है, क्योंकि वर्षा आरम्भके बादसे उन सब स्थानोंमें तुषारका गलना शुरु होता है। जिन सब स्थानोंमें वर्षाके समय तुषारके गलनेसे जलकी वृद्धि नहीं होता, वहां वर्ष भरमें दो चार बाढ़ देखनेमें आती है। टाइग्रिस, इउफ्रेटिस और मिसिसिपिमें इस प्रकारकी घटना होती है। इन सब नदियोंमें बर्फके गलनेसे जो बाढ़ आती है, वही उनकी बड़ी बाढ़ समझी जाती है।

नदी द्वारा अनेक प्रकारकी नैसर्गिक क्रिया सम्पन्न होती हैं। नदीके जलमें पंकके जम जानेसे बड़ी जमीनमें बहुत फायदा पहुंचाती है। नदी-दूरवर्त्ती पार्वतीय प्रदेशोंकी मट्टीको अपने साथ बहा कर समतलके ऊपर छोड़ देती है जिससे जमीन बहुत उर्वरा हो जाती है। नदीकी गति अनवरत परिवर्त्तित होनेसे पृथ्वीका ऊपरी भाग भी निरन्तर परिवर्त्तित होता है। सभी नदियां देशोंकी मैल अपने साथ बहा कर समुद्रमें डाल देती हैं। नदीके रहनेसे वाणिज्यकार्यको अशेष सुविधा हो गई है। अधिकांश नदियां समुद्रमें गिरती हैं, बहुत थोड़ी नदियां ऐसी हैं जो देशाभ्यन्तरस्थ झीलोंमें मिल गई हैं।

देशके नीचेकी ओर ही नदीकी गति होती है और अधिकांश नदी पर्वत आदि उच्चस्थानसे निकलती हैं, इस कारण थोड़ी दूर तक तो उनकी गति बहुत प्रखर रहती है, लेकिन पीछे समतल भूमिमें आ कर मन्द हो जाती है। देशकी मट्टीकी प्रकृतिके ऊपर नदीकी गति बहुत कुछ निर्भर करती है। अनेक समय भूमिकम्प द्वारा नदीकी गति परिवर्त्तित हुआ करती है, और बहुतसी नदियोंका प्राचीन गड्ढे बालू, मट्टी आदि द्वारा भर जानेसे वे नये गड्ढे हो कर बहती हैं।

जिस नदीमें नावें नहीं चलतीं, ऐसी नदी जब दो जमींदारोंके मध्य पड़ती है, तब उस नदीमें आईनके अनुसार दोनों जमींदारोंका बराबर बराबर स्वत्व रहता है। किन्तु उस नदीके दोनों पार्श्व यदि एक ही जमींदारकी सम्पत्ति हो, तो समूची नदी उसी जमींदारकी सम्पत्ति मानी जायगी। इसी नियमके अनुसार नदीगर्भका विभाग हुआ करता है। जिन सब नदियांमें नावें

जाती जाती है, वे सब राजाकी सम्पत्ति है। जन साधा-रण केवल उन नदियों का जल काममें ला सकती और मछली पकड़ सकती है। नाव चलाना और मछली पकड़ना इन दो स्वत्वोंमें नाव चलानेका स्वत्व ही प्रधान है। लोकर नाविकको रास्ता देनेमें बाध्य है।

नदीका जल दूषित वा अपरिष्कार करना किसीका अधिकार नहीं है। यदि कोई ऐसा करे, तो तीरस्थित ग्रामके मनुष्य क्षतिपूरणके लिये उस पर अभियोग ला सकता है। किन्तु यदि वे सब मनुष्य २० वर्ष तक बिना किसी आपत्तिके उस अपकारको सहन कर ले, तो उन्हें अभियोग करनेकी क्षमता नहीं रहती।

भूमण्डलके प्रधान नदियोंके नाम और दैर्घ्य इस प्रकार हैं—

एशिया।

नाम	दैर्घ्य।
इनिसि	३३२२ मील
यं सि किय	३३१४ "
लेना	२०५२ "
आमुर	३०१८ "
ओबी	२६० "
ह्वं हो	२५३४ "
सिन्धु	२२२६ "
ब्रह्मपुत्र	१८०० "
गङ्गा	१८३३ "

यूरोप।

भल्गा	२०४२ "
दानियुब	१७२२ "
नीपर	१२५४ "
डान	११०४ "
ड्विना	१०८२ "

अफ्रिका।

नील	२०८१ "
काङ्गो	२२०८ "

अमेरिका।

मिसिसिपि	१०१६ "
आमेजन	३३३९ "
मेकेञ्जी	२५०० मील
लाप्लेटा	२११० "
रायग्रेण्डडेलनर्ट	२११३ "
सेण्ट लारेन्स	२००२ "

वैद्यकके मतसे नदीका जल स्वच्छ लघु दीपन, पावन, रुचिकर, पथ्याशामक, पथ्य, मधुर और कुछ उष्ण होता है। (राजनिर्घण्ट)

पुराणादिमें नदीके बहुत नाम देखनेमें आते हैं। किन्तु उन सब नदियोंमेंसे अधिकांशके आधुनिक नाम का पता लगाने का कोई उपाय नहीं है। इनमेंसे कितनी ऐसी हैं जो पूर्व नामसे ही अभी भी रही हैं और कुछके नाम बदल गये हैं। कितनी नदियोंकी गतिमें अधिक परिवर्त्तन नहीं हुआ और कितनीके मार्गमें बिलकुल परिवर्त्तन हो गया है। पुराणके सिवा वैदिक आदि ग्रन्थोंमें भी अनेक नदियोंके नाम पाये जाते हैं।

नदी शब्दके वैदिक पर्याय ३७ हैं, यथा—अवनि, यह्व, खनोत, सीरा, एनी, धुनि, रुजाना, वक्षण, खादोअर्णा, रोधचक्र, हरित्, सरित्, अगव, नभन्, धेनु हिरण्यवर्णा, रोहित्, सस्रुत, अर्णा, सिन्धु, कुल्या, वर्य्या, इरावती, पार्वती, स्रवन्ती, ऊर्ज्जस्वती, पयस्वती, सरस्वती, तरस्वती, हरस्वती, रोधस्वती, भास्वती, अजिर, मातृ और नदी। (वेदनिघण्टु)

पुराणादि वर्णित सर्व्वत्र नदीका नाम विस्तार हो जानेके भयसे नहीं दिया गया। केवल प्रधान प्रधान नदियोंके नाम दिये जाते हैं—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षुष्मती, लौहित्या कोशिल, ये सब नदियां हिमालय पर्व्वतके पाददेशसे निकली हैं; वेदस्मृति, वेत्रवती, सिन्धु, अपर्णा चन्दना, धूतपापा, चर्म्मण्वती, विदिशा वेत्रवती, अवन्ती ये सब नदियां पारियात्र पर्व्वतसे उत्पन्न हुई हैं। शोण, ज्योतिरथा, नर्म्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला करतोया, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विशाखा, वञ्जुला बालुका, वाहिनी शुक्तिमती, विरजा पङ्किनी इन सब नदियोंका उत्पत्ति-स्थान ऋक्षपर्व्वत है। अभि-

नटेश (नटेश)—एक ताम्रमयी शिवमूर्त्ति । तञ्जोरके किसी मनुष्यने जमीन खोदते समय इस मूर्त्तिको पाया था। शिवके सिर पर जटा है और हाथ चार हैं। एक हाथमें डमरू, दूसरेमें सांप और तीसरेमें अग्नि है। वे एक पतित राक्षसके ऊपर नाच कर रहे हैं। मूर्त्तिकी ऊंचाई २ फुट ७½ इञ्च और चौड़ाई १ फुट ३ इञ्च है। किसी समय तञ्जोरमें एक शिव-मन्दिर था। मालूम पड़ता है, कि यह प्रतिमा उसी मन्दिरकी होगी। कब और क्यों यह मूर्त्ति जमीनमें गाड़ी गई थी, इसका कुछ पता नहीं है। यह तीन फुट बालूके नीचे पाई गई थी। उक्त स्थानके कलक्टर साहबने इसे खरीद कर मन्द्राजकी चित्रशालिकामें रख दिया है।

नदोला (हिं० पु०) मिट्टीकी छोटी नांद।

नद्ध (सं० त्रि०) नह्यते इति नह क्त। १ बद्ध, बँधा हुआ, नटा हुआ, नथा हुआ।

नद्धि (सं० स्त्री०) नह-क्ति। बन्धन, रस्सी, नाथ।

नद्धी (सं० स्त्री०) नह्यतेऽनया नह-ष्ट्रन्, ततो ङीप्। चर्म निर्मित रज्जु, चमड़ेकी डोरी, तांत।

नद्यम् (सं० क्ली०) कृष्णाञ्जन, काला सुरमा।

नद्यादि (सं० पु०) नदी आदिर्यस्य। पाणिनि उक्त ढक् प्रत्यय-निमित्त शब्दगण। यथा—नदी, मही, वाराणसी, श्रावस्ती, कौशाम्बी, काशफरी, खादिरी, पूर्वनगरी, पाठा, माया, शाल्वा, दार्भा, सेतकी। (पाणिनि ४।२।९३)

नद्याम्र (सं० पु०) नद्या आम्र इव। समष्ठिला वृक्ष, कोकुआका पौधा। वैद्यकमें यह दाही, दीपन और कफ-वातघ्न माना गया है।

नद्यावर्त्त (सं० पु०) मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।

नद्यावर्त्तक (सं० पु०) यात्राकालीन ज्योतिषोक्त योगभेद फलित ज्योतिषमें यात्राके लिये एक शुभ योग। यह योग उस समय होता है, जब बुध अपनी राशि पर हो वृहस्पति या शुक्र लग्नमें हो अथवा मङ्गल उच्चस्थित हो और शनि कुम्भ-राशिमें हो। इस योगमें यात्रा करने से उसकी सब कामनाएं पूरी होती हैं। आग जिस प्रकार घासको जला देती है उसी प्रकार इसका शत्रु विनष्ट होता है। इसे नन्द्यावर्त्तक भी कहते हैं।

नद्युत्सृष्ट (सं० त्रि०) नद्या उत्सृष्टः। नदी द्वारा त्यक्त स्थान, वह स्थान जो नदीके हट जानेसे निकल आया हो, चर, गंगबरार। यह चर जिसकी जमीनमें जा मिलता है, उसीका वह चर होता है।

नधना (हिं० क्रि०) १ रस्सी या तस्मेके द्वारा बैल घोड़े आदिका उस वस्तुके साथ जुड़ना या बँधना जिसे उन्हें खींच कर ले जाना हो, जुतना। २ सम्बन्ध होना, जुड़ना। ३ किसी कार्यका अनुष्ठित होना, कामका ठनना।

नधाव (हिं० पु०) किसी जलाशयसे जब ऊंची भूमि पर जल चढ़ाना होता है, तब दो वा तीन गड्ढे बनाने होते हैं। पहले एक गड्ढेके जलसे आस पासकी जमीन सींच कर फिर उसे दूसरे गड्ढेमें ले जाते हैं और तब वहांसे तीसरे गड्ढेमें ला कर जमीन सींचते हैं। इनमें सबसे नीचेके गड्ढेको नधाव कहते हैं।

नधिया—उत्तर पश्चिम प्रदेशके तथा बिहारके ग्वालोंकी एक श्रेणी।

नध्री (सं० स्त्री०) चर्मबन्धनी, चमड़ेकी डोरी, तांत।

ननन्द्र (सं० स्त्री०) न-नन्दति सेवयापि न तुष्यति इति नन्द-ऋन्। (नञि च नन्देः। उण् २।९८) भर्त्तृभगिनी, पतिकी बहन, ननद। न-नन्द्ट अर्थात् ये किसीसे परितुष्ट नहीं होती, इसीसे इसका नाम ननन्द्र पड़ा है; पर्याय—ननान्द्र, नन्दिनी, नन्दा, पतिस्वसृ। (शब्दर०)

ननद (हिं० स्त्री०) पतिकी बहन।

ननदोई (हिं० पु०) पतिका बहनोई, ननदका पति।

ननसार (हिं० स्त्री०) ननिहाल, नानाका घर।

नना (सं० स्त्री०) न नमति नम-ड, सहसुपेति समासः, ततो टाप्। १ वाक्य। २ माता। ३ दुहिता, कन्या, लड़की। माता और दुहिता ये दोनों नम्रीभूत होती हैं, इस कारण इनका नाम नना रखा गया है। माता सन्तानको स्तन पिलानेके लिये और दुहिता शुश्रूषाके लिये नत या नम्रीभूत होती है।

ननान्द्र (सं० स्त्री०) न-नन्द ऋन्, पृषोदरादित्वात् दीर्घ च। ननन्द्र, ननद।

ननिगेरि—टलेमीके भारत-वृत्तान्तमें इस नामका उल्लेख है। उससे जाना जाता है, कि कुमारिका अन्तरीप और सिंहलके मध्यवर्ती एक द्वीपको ले कर इसका स्थान निर्दिष्ट हुआ है।

ननिगैन—टलेमीके भारत-भूगोलमें वर्णित गङ्गासागरके तीरवर्ती एक बहुत प्राचीन नगर।

ननियाससुर (हिं॰ पु॰) स्त्री या पतिका नाना।

ननियासास (हिं॰ स्त्री॰) स्त्री या पतिकी नानी।

ननिहारी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी ईंट।

ननिहाल (हिं॰ पु॰) नानाका घर, ननसार।

ननु (सं॰ अव्य) १ प्रश्न। २ अवधारण। ३ अनुज्ञा। ४ विनय। ५ आमन्त्रण। ६ अनुनय। ७ विनिश्चय। ८ परकृति। ९ अधिकार। १० सम्भ्रम। ११ मार्दव। १२ प्रत्युक्ति। १३ वाक्यारम्भ।

ननुच (सं॰ अव्य) विरोध उक्ति, उलटी बात।

ननोई (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका जंगली धान। यह बिना जोते बोए वर्षाकालमें जलाशयोंमें आपसे आप होता है, पसही, तिन्नी।

नन्तव्य (सं॰ त्रि॰) नम तव्यत् कर्मणि तव्य। १ नमनीय, आदरणीय पूजनीय। २ झुकाने योग्य, जो झुक झुकाया जा सके।

नन्द (सं॰ पु॰) नन्दतीति नन्द पचाद्यच्। १ हर्ष, आनन्द, खुशी। २ सच्चिदानन्द परमेश्वर। परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हैं इसीसे उनका नाम नन्द पड़ा है। नन्दति मोदयत्यच्। ३ भेक मेंढक। पानी पड़ने पर यह बहुत खुश होता है इसीसे इसका नन्द नाम रखा गया है। ४ कुमारानुचर कार्त्तिकके एक अनुचरका नाम। ५ वेणुविशेष। महानन्द नन्द विजय और जय ये चार प्रकारकी वीणा उत्तम हैं। इनमेंसे जो वीणा ग्यारह अंगुली की होती है, उसीका नाम नन्द है। ६ मृदङ्गविशेष एक प्रकारका मृदङ्ग। ७ वैकुण्ठका अनुचरविशेष भागवतके अनुसार परमात्माके एक अनुचरका नाम। ८ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ९ मदिरागर्भजात वसुदेव का पुत्रविशेष, वसुके एक पुत्रका नाम जिसकी उत्पत्ति मदिराके गर्भसे मानी जाती है। १० क्रौञ्च द्वीपका वर्ष पर्वतविशेष, क्रौञ्चद्वीपके एक वर्षपर्वतका नाम। ११ स्वनामख्यात दत्तक मीमांसा-ग्रन्थके प्रणेता। १२ गोपभेद गोकुलके गोपोंके मुखिया। १३ पुराणानुसार नौ निधियोंमेंसे एक। १४ एक नागका नाम। १५ विष्णु। १६ एक राजाका नाम। इन्हें कोई कोई मागधीय राजाका पुत्र मानते हैं। १७ पिङ्गलमें टगणके दूसरे भेदका नाम। इसमें एक गुरु और एक लघु होता है। कोई कोई इसे ताल और ध्वज भी कहते हैं।

नन्द—अति प्राचीनकालमें वर्त्तमान मथुरा जिलेके अन्तर्गत यमुनाके उस पार 'गोकुल' नामका एक नगर था। नन्द उसी गोकुलनगरके गोपोंके अधिपति थे। इनकी पत्नीका नाम था यशोदा। उस समय मथुरामें देवकीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया। पिता वसुदेव कंसके डरसे शिशु कृष्णकी रक्षा करनेके लिए उसी रातको सद्यजात शिशुको नन्दके घर ले गये। गोपाधिपति नन्दके गृहमें आये हुए शिशु कृष्ण उन्हीं शिशुओंका रक्षणावेक्षण करते थे। इधर कंसने श्रीकृष्णके वध और मृत्यु वृत्तान्तको जान कर उनके वधके लिए गोकुलनगरमें अपने अनुचरोंको भेजना शुरू किया। दैविक प्रभावसम्पन्न श्रीकृष्ण मायावी अरीको चमत्कृत करने लगे। परन्तु गोपराज नन्द कंसके उपद्रवोंसे डर गये। उन्होंने बालकको उपद्रुत स्थानमें रखना उचित न समझ वृन्दावन भेज दिया और आप भी वहीं जा कर रहने लगे। इसी स्थानमें श्रीकृष्णने अपना बाल्यकाल अतिवाहित किया था। कृष्णकी उम्र जिस समय बारह वर्षकी थी, उस समय नन्द उनको ले कर देवीमन्दिरमें पूजा करने गये थे। वहाँ पर रातको एक सर्पने उनके पैरमें चोट की थी। श्रीकृष्णने आ कर ज्यों सर्पके पैर पर लात मारी, त्यों उसने मनुष्याकार धारण कर लिया। यह देख कर सबको आश्चर्य हुआ। एक दिन नन्द कंसके साथ यज्ञमें निमन्त्रित हो, कृष्णको साथ ले मथुरा गये थे। वहाँ श्रीकृष्णने अपने मातुल कंसका वध कर सिंहासन अधिकार कर लिया। इसके बाद श्रीकृष्ण फिर कभी वृन्दावन नहीं लौटे। दुःखसन्तप्त नन्द उन्हें वहीं छोड़ कर अपने घर गये। किन्तु श्रीकृष्णके वृन्दावन-त्यागके बाद नन्दकी जीवनी भी अन्धकारमें डूब गई। इसके बहुत समय पीछे श्रीकृष्ण एक दिन बल और किशन नामक दो व्यक्तियोंके समभाव गोवर्द्धन पर्वत पर उपस्थित हुए। इस बातके पाते ही नन्द और यशोदा दोनों उन्हें देखनेके लिए दौड़े आये और उनके दर्शन कर प्रसन्न हुए। महानुभाव श्रीकृष्ण नन्द और

में सर्व व्यापक थे। आपने कई बार पत्नीके प्रेम साक्षात् करनेके लिए लौटनेकी चेष्टा की थी परन्तु बुद्धने इनको भटकनेसे हटा कर भिक्षु बना दिया और सांसारिक प्रेमका अनित्यत्व प्रतिपादन करनेके लिए आपको स्वर्ग और नरकके चित्र दिखलाये थे।

नन्द—मगधके सुप्रसिद्ध राजा। इस नामके ८ राजाओंने पाटलीपुत्रके सिंहासनको सुशोभित किया था। इनकी उत्पत्ति और इतिहासके विषयमें नाना मुनियोंके नाना मत हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है—महानन्दिके पुत्र शूद्रा-गर्भोत्पन्न नन्द वा महापद्म परशुरामकी तरह समस्त क्षत्रियोंका विनाश कर एकच्छत्र पृथिवीका भोग करेंगे। महापद्मके सुमाली आदि आठ पुत्र, उनकी आयुके बाद पृथिवीका भोग करेंगे। महापद्म और उनके पुत्रगण कुल १०० वर्ष राज्य करेंगे। कौटिल्य इन ८ नन्दोंका विनाश करेंगे। इनके बाद मौर्यगण राजा होंगे।

(विष्णुपुराण ४।२४।२६)

भागवतमें भी ठीक इसी प्रकारका विवरण है। ब्रह्माण्डपुराणमें ऐसा विवरण मिलता है,—राजा बिम्बिसार २८ वर्ष, उनके बाद उनके पुत्र अजातशत्रु २५ वर्ष, उनके बाद दर्शक २५ वर्ष उदायी * ३३ वर्ष उनके बाद नन्दिवर्द्धन ४२ वर्ष और उनके बाद महानन्दि ४३ वर्ष राज्य करेंगे। शिशुनागगण कुल मिला कर ३६२ वर्ष राज्य करेंगे। उनके बाद महानन्दिके औरस और शूद्राके गर्भसे निखिल क्षत्रियान्तकारी नन्द जन्म ग्रहण करेंगे। वे नन्द तथा उनके ८ पुत्र कुल मिला कर १०० वर्ष राज्य करेंगे। इन सबका कौटिल्यके हाथसे उद्धार होगा। (ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घातपाद)

मत्स्यपुराणमें (२७२ अ०) यह विवरण पाया जाता है, परन्तु राजाओंके राजत्वकालकी संख्याओंमें कुछ हेर फेर है।

इन सभीका तात्पर्य यह है कि सभी हिन्दू पुराणोंमें लिखा है कि महापद्म नन्द शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होने पर भी महानन्दिके पुत्र थे। परन्तु जैन और बौद्ध ग्रन्थकार यह स्वीकार नहीं करते। पण्डित हेमचन्द्राचार्य अपने स्थविरावलीचरितमें नन्दके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं, जिसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

उदायी पिताकी मृत्युके बाद शोकसे अधीर हो उठे। जहां उनके पिता शासनदण्ड परिचालन करते थे, वहां रहना उनके लिए बड़ा ही कष्टकर हो गया। वे सोते, खाते, उठते रात दिन पिताको ही देखते थे। इसके बाद वे पिताकी राजधानीको त्याग कर गङ्गाके किनारे पाटलीपुत्र † नगर स्थापन कर, वहीं राजत्व करते रहे। क्रमशः बहुतसे राजा इनके पराक्रमसे हृत-राज्य हो गये। इस पर वे उदायीको मारनेकी तरकीब सोचने लगे। एक राज्यभ्रष्ट राजकुमारने उदायीके पास आ कर उनसे सेवक होनेकी प्रार्थना की। राजाने उसकी मीठी बातों पर मुग्ध हो कर उसे अपने गुरुकी सेवाके लिए नियुक्त किया। दुष्ट राजकुमार जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। उसकी मीठी बातों पर राजा मोहित हो गये। अन्तमें उसी दुष्ट राजकुमारने उदायीको मार डाला। इसी पाटलीपुत्र नगरमें देवकीर्त्तिके औरससे एक नापितानीके नन्द नामक एक पुत्र हुआ था। उस नापित कुमारने सबेरे उठ कर देखा, कोलाहलमें नगरके चारों ओर दौड़धूप मचा रहा है। नन्दने विस्मित हो कर उपाध्यायसे इसका कारण पूछा। उपाध्यायने उसे अपने घर ले जा कर अपनी दुहिता ब्याह दी और नवीन जामाताको एक हाथी पर बिठा कर नगर परिभ्रमण कराने लगे। राजा उदायीके कोई पुत्र न था। मन्त्री लोग राज हस्ती, प्रधान अश्व, छत्र, कुम्भ और चामर ये पांच अभिषेक-द्रव्य ले कर जिसको राजा बनाया जाय उसे खोज रहे थे। इतनेमें सामायिकोंको नन्द दिखलाई दिये। पाठकोंने

* मुद्रित मत्स्यवायुपुराणोंमें उदायी वा उदयिन ऐसा पाठ देखा जाता है, परन्तु वह लिपिकरका प्रमाद है। क्योंकि जैन और बौद्धोंके प्राचीन ग्रन्थों तथा हस्तलिखित प्राचीन ब्रह्माण्ड पुराणादिमें 'उदायी' ऐसा ही पाठ है।

† "अवस्थितेऽभूषिते तत् पुरं सुरलवाहस्य—
तदयुपाध्यायवतो नाम्ना पाटलीपुत्र नामकम्।"
(स्थविरावलीचरित वा परिशिष्टपर्व ६।१८०)

"उदायी भविता तस्मात् त्रयोविंशत्समा नृपः।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति।"
(ब्रह्माण्डपु० उपोद्घातपाद)

शीघ्र ही कुम्भ उठा कर नन्दको अभिषिक्त कर उन्हें अपने कन्धे पर बिठा लिया। इसी समय राजाके अश्वने आनन्दसे हेषाध्वनि किया और चारों ओर मङ्गल ध्वनि होने लगी। पौरजनोंने यह सब देख भाल कर नन्दको अभिषेक-पूर्वक सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार महावीर स्वामीके निर्वाणके ६० वर्ष बाद (अर्थात् ई० ४६६ वर्षके पहले) नन्द राजा हुए। ‡

ब्रह्माण्डपुराणमें भी उदायी द्वारा पाटलीपुत्र निर्माणका उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है—

उस समय कल्पक नामक एक अशेष शास्त्रवित् पण्डित रहते थे। एक दिन नन्दने उन्हें बुला कर मन्त्रिपद ग्रहण करनेके लिये उनसे, अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने अवज्ञापूर्वक मन्त्रिपद ग्रहण करना अस्वीकार किया। इस पर राजाने उन्हें तंग करनेके लिए एक उपाय निकाला। जो धोबी कल्पकके वस्त्र धोता था, उन्होंने उससे कह दिया, हमारे आदेशके बिना तुम कल्पकके कपड़े न देना। धोबीने राजाका आदेश पालन किया। दो वर्ष बीत गये, धोबीने किसी तरह भी कल्पकको कपड़े न दिये। कल्पक बड़ी आफतमें पड़े, ऊपरसे स्त्रीकी उत्तेजनासे और भी नाकों दम आ गया। आखिर एक दिन गुस्सेमें आ कर कल्पकने धोबीका पीछा किया और कटारसे उसका सिर उड़ा दिया। धोबिन रोती हुई बोली, "माफ कीजिये महाशय! इसमें हमलोगोंका कुछ कसूर नहीं, राजाकी आज्ञासे आपके कपड़े रोके गये हैं।"

सत्यवादी कल्पकने शीघ्र ही राजाके समीप जा कर अपना अपराध स्वीकार किया। इस बार राजाके आदेशसे कल्पकने मन्त्रिपद ग्रहण कर लिया। इससे पहलेके मन्त्रीको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कल्पकको धोखा देनेके लिये उनकी चेष्टाको वशमें कर लिया। कल्पकके पुत्रका शुभ विवाह-दिन उपस्थित हुआ। कल्पककी इच्छा थी, कि राजाको निमन्त्रण दे कर अपने अन्तःपुरमें बुलावें। राजाकी अभ्यर्थनाके लिए उन्होंने छत्र, चमर और मुकुट बनवा लिया था। भूतपूर्व मन्त्रीने चेटीके मुँहसे यह सम्वाद पा कर राजासे कहा, "कल्पक राजा बननेकी तैयारियां कर रहे हैं।" नन्दने गुप्तचर भेजे। निदान राजाके आदेशसे कल्पक पुत्र सहित अन्धकूप (कारागार)-में डाल दिये गए। खानेके लिए उन्हें कोदोंके सिवा और कुछ न मिलता था, वह भी पेट भर नहीं। इससे दोनोंमेंसे किसीके भी जीनेकी उम्मेद न थी। राजासे इसका बदला लेनेके लिए कल्पकने अकेले ही सब अन्नको खा कर किसी तरह अपनी जान बचा ली। इधर कल्पककी अनुपस्थितिमें मौका समझ सामन्तोंने पाटलीपुत्र पर धावा मार दिया। इस विपत्तिमें नन्द बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने विचारा, कि कल्पकके सिवा इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करे ऐसा और कोई भी नहीं है। राजाने काराध्यक्षसे कहा, "अन्धकूपमें अब कोई अन्न ग्रहण करता है या नहीं? उसे निकाल कर मेरे सामने हाजिर करो।"

राजादेशसे कल्पक अन्धकूपसे निकाले गये। राजानुचरगण उन्हें शिविकामें बिठा कर तमाम नगर-प्राकारकी प्रदक्षिणा करने लगे, विपक्षके लोग कल्पकको देख कर डर गये। पश्चात् राजाने उन्हें बड़े आदरके साथ मन्त्रिपद प्रदान किया। कल्पक विपक्षी राजाओं पर शासन करनेके लिए अग्रसर हुए। कल्पकका नाम सुनते ही सामन्तगण भाग गये।

कल्पकके पीछे और भी कई पुत्र हुए थे। नन्दराजने उन सबको धनरत्नसे सन्तुष्ट किया था। नन्दके वंशमें ७ नन्द राजा हुए थे, कल्पकके पुत्रोंने उनका मन्त्रित्व किया था। अन्तमें नवम नन्द राजा हुए। उनके मन्त्री हुए शकटाल जो कल्पकके पुत्र थे। शकटालके दो पुत्र थे, स्थूलभद्र और श्रीयक।

नवम नन्दकी सभामें सुविख्यात कवि वररुचि रहते थे। वे प्रतिदिन १०८ नवीन श्लोक बना कर राजाको सुनाते थे। राजाको कविता अच्छी लगने पर भी, मन्त्री कभी उनकी कविताकी प्रशंसा न करते थे और इसीलिये वररुचिको कुछ प्राप्ति न होती थी। अन्तमें राजकविने शकटालकी स्त्रीकी शरण ली। शकटाल स्त्रीकी बातको टाल न सके। इसके बाद जब वररुचिने राजसभामें अपनी कविता पढ़ी, तब मन्त्रीने उसकी खूब प्रशंसा की। नन्दराजने भी प्रसन्न हो कर पुरस्कारमें १०८ दीनार दिए।

‡ "अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात्।
गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष 'नन्दोऽभवन्नृपः॥"
(स्थविरावलीच० ६।२४२)

इस तरह वररुचिको प्रतिदिन १०८ दीनार मिलने लगी। एक दिन मन्त्रीने राजासे पूछा, 'अब आप प्रतिदिन वररुचिको दीनार देते हैं, किन्तु पहले क्यों नहीं देते थे?' राजाने उत्तर दिया, 'तुम उसकी कविता अच्छी बताते हो, इसीलिए देते हैं।' मन्त्रीने फिर कहा, 'दूसरेकी रचना है इसलिए मैं प्रशंसा करता हूं।' राजाने पूछा, 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह दूसरेकी रचना है?' चतुर शकटालने उत्तर दिया 'मेरी लड़कियां भी इन कविताओंको सुनाया करती हैं।'

शकटालकी यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, एणिका, वेणा और रेणा ये ७ कन्याएं थीं। उनमेंसे कोई एक बार, कोई दो बार और कोई तीन बार सुन कर किसी भी श्लोकको कण्ठस्थ कर सकती थी। वररुचिके पूर्ववत् नवीन श्लोक रचनाके सुनाने पर, राजाका सन्देह दूर करनेके लिए शकटालकी कन्याओंने यथाक्रमसे उन श्लोकोंको सुना दिया। राजाको मन्त्रीकी बात पर विश्वास हो गया उन्होंने दीनार देना बन्द कर दिया। वररुचि अत्यन्त रुष्ट हुए। इसके बादसे एक यन्त्रमें १०८ दीनार रख कर उसे सुरंगिया गङ्गामें रख आते थे, दूसरे दिन सबके सामने गङ्गाका स्तव करते समय उसकी सहायतासे उसे पानीके ऊपर ला देते थे और फिर उन दीनारोंको ग्रहण करते थे। वररुचिने घोषणा कर दी थी कि राजा नहीं देते तो क्या, गङ्गा उनके स्तवसे खुश हो कर दीनार प्रदान करती हैं। राजाको यह बात मालूम पड़ी। एक दिन मन्त्रीसे बात जिक्र किया और कहा कि, 'तुम स्वयं जा कर इसकी परीक्षा करो।' तदनुसार मन्त्रीने गुप्तचर भेज कर सब हाल जान लिया।

एक दिन गङ्गामें वररुचिके दीनार रख कर चले जाने पर, गुप्तचर उन्हें उठा लाये और मन्त्रीको सौंप दिया। दूसरे दिन राजा मन्त्रीके साथ गङ्गाकिनारे पहुंचे। वररुचिने आ कर पूर्ववत् गङ्गाका स्तव किया, किन्तु अबकी बार गङ्गाने दीनार प्रदान नहीं किया। राजाके सामने वररुचिको बहुत लज्जित होना पड़ा। इतनेमें शकटालने उन दीनारोंको दिखा कर कहा, "ये लो, तुम्हारे दीनार तुम्हें ही सौंपता हूं।" इस प्रकार वररुचिका छल पकड़ा गया। वररुचि मन ही मन शकटाल पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और किस तरह शकटालका सर्वनाश हो, यह सोचने लगे। अन्तमें कुछ मूर्ख लड़कोंको उन्होंने यह रटा दिया कि, "राजाको मालूम नहीं शकटाल क्या करेगा, नन्दका उच्छेद कर श्रीयकको गद्दी पर बिठावेगा।" लड़के जहां तहां यही गीत गाने लगे। बाद राजाके कानमें पड़ी। राजाने सोचा की बात लड़कोंमें भी फैल गई है यह कभी झूठी नहीं हो सकती। राजाने गुप्तचर भेजे। शकटालने पुत्रके विवाहमें राजाको उपहार देनेके लिए उत्तमोत्तम अस्त्र शस्त्र तैयार किए थे। गुप्तचरोंने यह बात राजासे कह दी। राजाको विश्वास हो गया। परन्तु शकटाल भी कम न थे, वे ताड़ गये। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्रीयकको बुला कर कहा—"वत्स! हमलोगोंको प्राण संकट है, इसलिए मैं चाहता हूं कि यदि मेरे मरनेसे सब कुटुम्ब बच जाय, तो मैं मर जाऊं। राजाके पास जा कर जब मैं उन्हें अभिवादन करूं तब तुम मेरे मस्तक पर तलवार मार देना।" श्रीयकने रोते हुए कहा—'तात! यह काम तो चाण्डालसे भी नहीं हो सकता; इसलिए मुझ पर ऐसा कठोर आदेश मत कीजिए।' शकटाल बोले—दूसरा कोई उपाय नहीं है। आखिर मरना तो है ही, तुम्हें मेरा आदेश पालन करना ही चाहिए। यथासमय श्रीयकने पिताकी आज्ञा पालन की। राजा आश्चर्यमें पड़ गये उन्होंने इसका कारण पूछा। श्रीयकने उत्तर दिया—"सेवक हो कर जो प्रभुके अनिष्टकी चेष्टा करता है, वह पिता होने पर भी मार देने योग्य है। नन्दराज श्रीयकके उत्तरसे सन्तुष्ट हुए और उन्हें मन्त्रिपद प्रदान किया। किन्तु श्रीयकने पितृतुल्य ज्येष्ठ भ्राताके रहते हुए स्वयं मन्त्रिपद लेना अस्वीकार किया। राजाने उनके बड़े भाई स्थूलभद्रको बुलाया। परन्तु धर्मात्मा स्थूलभद्रने मन्त्री होना स्वीकार न किया। आखिरको श्रीयकने राजदत्त मुद्राधिकारपद ग्रहण किया।

अब श्रीयक वररुचिसे बदला लेनेकी तरकीब ढूंढने लगे। श्रीयकके बड़े भाई स्थूलभद्र पहले एक कोशा नामकी वेश्याके आसक्त थे, बादमें पिताकी मृत्युसे उन्हें वैराग्य आ गया और वे दीक्षित हो गये। श्रीयक एक

दिन उसी वेश्याके पास गए और रोते हुए उससे बोले— बड़े भाई पिताके शोकसे ही सब छोड़ छाड़ कर वनको चले गए। दुष्ट वररुचि ही पिताकी मृत्युका कारण है इसलिए उससे बदला लेना हम लोगोंका फर्ज है।

वररुचिकी कोशाकी छोटी बहन उपकोशा बड़ी प्यारी थी। कोशाने उसको सिखा दिया कि आज किसी तरह वररुचिको शराब पिलाना चाहिए। उपकोशाने कौशलसे वररुचिको शराब पिलाना सिखा दिया।

शकटालकी मृत्युके बाद नन्दकी सभामें वररुचिका विशेष सम्मान होने लगा था। सभास्थ सभी लोग उनकी खूब प्रशंसा करते थे। यथासमय कोशाने श्रीयकके पास वररुचिके मद्यपानका सम्वाद पहुँचा दिया। श्रीयकने राजासे कह दिया। वररुचिके सभामें उपस्थित होने पर नन्दने उन्हें एक फूल सूंघनेके लिए आदेश दिया। फूलके सूंघते ही उन्होंने कै कर दी। वररुचिके मुंहसे शराबकी बू निकलने लगी। राजाने उन्हें गरम गरम सीसा पिलानेके लिए आदेश किया। वररुचि मर गए, और साथ ही श्रीयक भी सर्वाधिकार-सम्पन्न हो गए।

अब बारह वर्षका अकाल पड़ा। हजारों आदमी भोजनके अभावसे मरने लगे। इसी समय गोल्लविषयमें चणक नामक ब्राह्मणकी पत्नी चणिश्वरीके गर्भसे चाणक्यने जन्म लिया।

चाणक्य श्रावक और सब विद्याओंमें पारदर्शी हो गये। यथासमय उन्होंने एक कुलीन कन्याका पाणिग्रहण किया। एक दिन चाणक्यकी स्त्री अपने भाईके विवाहमें पीहर चली गई। चाणक्यकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; इसलिए वे स्त्रीको पीहर जाते समय कुछ गहना वा वस्त्रादि न दे सके थे। उनकी स्त्री मैला लहँगा, मैली चादर, छिन्न पत्रके अलङ्कार और जस्तेके कुण्डल पहन कर गई थीं। परन्तु उनकी अन्य बहनें उत्तमोत्तम वस्त्र और अलङ्कारोंसे विभूषित थीं। उनकी पोशाकको देख कर सब हँसी उड़ाने लगीं, जिससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ। ससुराल पहुंच कर ब्राह्मणीने सब बात अपने पति (चाणक्य)से कही। चाणक्यको बड़ा खेद हुआ। वे अर्थोपार्जनके लिए बाहर चल दिये। उन्होंने सुना था, नन्दराज ब्राह्मणोंको बहुत दान दिया करते हैं। चाणक्य पाटलीपुत्र जा कर नन्दकी सभामें उपस्थित हुए और वहां उत्तम आसन पर बैठ गये। नन्दकी छाया स्पर्श करके उत्तम आसन पर बैठनेके कारण नन्दपुत्रको चाणक्य पर बड़ा क्रोध आया। इतनेमें एक दासीने आ कर व्यङ्ग-पूर्वक चाणक्यसे कहा—"पण्डितजी, उस आसनसे उठ कर यहाँ आकर बैठिये, वह आसन आपके लिए नहीं है।" चाणक्य नहीं उठे। दासीने उनका कमण्डलु, दण्ड, जपमाला और अन्तमें उपवीत पकड़ कर उठाया, पर तो भी वे टससे मस न हुए। आखिरको दासीने उन्हें पागल समझा और पैर पकड़ कर खींचना शुरू किया। फिर क्या था, चाणक्य आग-बबूला हो कर उठ खड़े हुए और बोले—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि नन्दको बन्धु बान्धव, पुत्र-मित्र और वंश सहित निर्मूल करूंगा।' यह कह कर चाणक्य वहांसे चल दिये और मयूरपोषक नामक ग्राममें पहुंचे। इस ग्राममें महत्तरके घर चन्द्रगुप्तने जन्म लिया था। इसके बादका विवरण 'चन्द्रगुप्त' और 'चाणक्य' शब्दमें देखना चाहिए। यहां पुनरुल्लेख करना व्यर्थ है।

चन्द्रगुप्त और पर्वतकी सहायतासे चाणक्यने नन्दका समूल उच्छेद कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह हेमचन्द्रके अनुसार है। धर्मघोष गणि और विमल गणिने भी अपने अपने ग्रन्थमें ऐसा ही विवरण लिखा है। सोमदेव-कृत कथासरित्सागरमें नन्दका विवरण इस प्रकार लिखा है—

इन्द्रदत्त, व्याडि और वररुचि अर्थ-लाभकी आशासे जिस समय नन्दकी सभामें उपस्थित थे, उसके कुछ समय पहले ही नन्दकी मृत्यु हो चुकी थी। सबको सन्ताप और हताश देख कर इन्द्रदत्तने कहा—"हम लोगोंको हताश न होना चाहिए। मैं मायाबलसे नन्दके शरीरमें प्रविष्ट होता हूं, फिर वररुचि, तुम अर्थके लिए प्रार्थना करना, मैं तुम्हें अभीष्ट अर्थ प्रदान कर पुनः अपने शरीरमें आ जाऊंगा। इतना कह कर इन्द्रदत्त नन्दके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और व्याडि उनकी प्राणहीन देहकी रक्षा करने लगे।

नन्दके पुनः जीवित हो जानेसे राज्य भरमें महोत्सव होने लगा। किन्तु विचक्षण मन्त्री शकटालको इसमें कुछ

थे। आखिर दीवान चैनरायने उन्हें पदच्युत कर मुर्शिदाबाद बुलाया। मुर्शिदाबाद उपस्थित होने पर दीवानने रुपये दाखिल करनेके लिए इन पर बड़ा दबाव डाला। सहसा पदच्युत होनेके कारण ये रुपये तत्काल दे न सके। जब दीवानने किसी तरह भी न माना, तब इनके पिताने रुपये दे कर इन्हें ऋणमुक्त किया।* नन्दकुमारने ऋणमुक्त हो कर नवाब शाह अहमदजङ्गके नायब हुसेनकुली खाँके पास कोई कार्य पानेके लिए अरजी भेजी। परन्तु दीवान चैनरायको मालूम पड़ते ही, उन्होंने हुसेनकुलीको पत्र लिख दिया कि नन्दकुमारको कोई भी काम न दिया जाय। हुसेनकुलीने दीवानकी इच्छाके विरुद्ध इन्हें काम देना पसन्द न किया और इसलिए नन्दकुमारको भी नौकरी न मिली। फिर आपने प्रधान सेनापति मुस्ताफा खाँके पास आना जाना शुरू कर दिया।

मुस्ताफा खाँके साथ इस समय फिर अलीवर्दी खांके विरोधकी सूचना हुई, मुस्ताफा खाँकी अधीनस्थ सेनाको वेतन न मिला था। मुस्ताफाने इसके लिए नवाबकी उत्पन्ना कर डाला, इस पर नवाबने उन्हें जमींदारोंसे वसूल करनेके लिए आदेश दे दिया। सैनिक विभागके कर्मचारी पर रुपये वसूल करनेका भार देनेसे अत्याचार होना अनिवार्य है, इस कारण जमींदार लोग आसन्न विपद्‌की आशङ्कासे घबराने लगे। परन्तु इस विपत्तिसे उन्हें बचावे कौन? स्वयं नवाबका आदेश था। दीवान चैनराय कुछ भी न कर सकते थे; इसलिए वे मुस्ताफा खाँको शान्त करनेके लिए उपाय ढूँढ़ने लगे। इस समय नन्दकुमार मुस्ताफा खाँके अनुगत थे; इसलिए जमींदारोंने उन्हें ही मध्यस्थ कर उन्होंको शरण ली। इसी कार्यसे नन्दकुमारने अपनी विपत्तियोंकी उपेक्षा कर परहितव्रतमें व्रती होना प्रारम्भ किया। नन्दकुमारकी अपनी अवस्था उस समय अच्छी न थी, तथापि जमींदारोंकी भयावह अवस्था देख मुस्ताफा खाँके पास पहुँचे और जमींदारोंकी तरफसे जामिन होनेका प्रस्ताव किया। मुस्ताफा खाँका उद्देश्य उस समय दूसरा ही था। वे जल्दी जल्दी सैनिकोंका वेतन चुका कर उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहते थे और फिर उनकी सहायतासे बिहार पर स्वतन्त्र शासनकर्त्ता बननेके लिए भीतर ही भीतर तैयारियां कर रहे थे। इसलिए उस समय जामिन ले कर जमींदारोंको छोड़ देना उनके लिए एक अन्तराय था, किन्तु तो भी उन्होंने नन्दकुमारके सम्मान और अनुरोधकी रक्षा की। नन्दकुमार जामिन तो हो गये, पर मुस्ताफा खाँको जल्दी जल्दी रुपये वसूल कर दे न सके। जमींदारगण भी जामिन हो जानेसे कुछ निश्चिन्तसे हो गए, उन लोगोंने यथासमय रुपये दे कर उपकारीके वचनकी रक्षा करनेमें भी शिथिलता कर दी। इसका फल यह हुआ कि मुस्ताफा खाँ नाराज हो गए और नन्दकुमारको बन्दी कर दीवान चैनरायके पास भेजनेके लिए उद्यत हुए। नन्दकुमार इस संवादको पा कर कलकत्ते भाग आए। किसीको इनके भाग आनेकी खबर न लगी। सम्भवतः इसी समय इन्होंने कलकत्तेमें वासभवन बनवाया होगा। कुछ दिन इसी तरह बीतनेके बाद मुस्ताफा खाँके साथ अलीवर्दी खाँका युद्ध हुआ। इस लड़ाईमें मुस्ताफा खाँ मारे गये। दीवान चैनरायकी भी इसी समय मृत्यु हो गई। अतएव मौका देख नन्दकुमार फिर मुर्शिदाबाद पहुँचे और मुत्सद्दियोंकी खुशामद कर किसी तरह नवाब-सरकारकी तरफसे सातसइका परगनाके अमीन हो गये। यह पद पहले इनके पिताके हाथमें था, ये जिस समय उस पद पर नियुक्त हुए

---

* १म गवर्नर-जनरल वारेन हेष्टिंगसकी मन्त्रि-सभाके अन्यतम सभ्य मि० बारवेलने उस समय अपनी बहनको जितने भी पत्र लिखे थे, उनमेंसे कुछ मुद्रित हुए हैं। उनमेंसे एकमें बारवेलने इस घटनाका उल्लेख कर लिखा है कि, "उस समय अमीन पद्मनाभ अपने पुत्र पर इतने नाराज हो गये थे कि उन्होंने फिर पुत्रका मुंह न देखा था।" बारवेल हेष्टिंगसके अनुगत थे और नन्दकुमारके विरोधी। इसलिये उनकी बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस प्रकार रुपये बकाया पड़ना उस समयके राजस्व-विभागके कर्मचारियोंके लिये मामूली बात थी—प्रायः सभी दर पावने रहते थे। पद्मनाभ स्वयं अमीन हो कर इस बातको न समझते थे, यह बात असम्भव है सुतरां पुत्र पर सरकारी रुपये बकाया होनेके कारण उन्होंने पुत्रका मुंह देखना बन्द कर दिया था, यह बात विश्वासयोग्य नहीं है।

थी और उन्हें पदच्युत कर दिया।* नन्दकुमार पदच्युत होनेके बादसे कहां किस प्रकार रहे थे, यह बात मालूम नहीं हो सकी है। सम्भवतः उन्हें अपने समयके लिए आत्मग्लानि हुई होगी और इसीलिए ऐसे विप्लवके समय उन्होंने किसी राजकार्यमें हस्तक्षेप करना उचित न समझा होगा।

पलासीके युद्धके बाद अंगरेजोंने विजयी हो कर मीरजाफरको बङ्गालके सिंहासन पर बिठाया। इसी समय क्लाइवने नन्दकुमारको अपना दीवान बनाया। नन्दकुमार आसमें पड़ कर, जिस लोभसे काम किया जाता था, उसमें आप मनोरथ हुए थे, पर उससे अंगरेजोंकी भलाई हुई। सम्भवतः इसी उपकारका स्मरण कर क्लाइवने इन्हें अपना दीवान बनाया था। जिस क्लाइवने अपने उपकारी अमीनचन्दको जाल दलील बना कर ठगा था, उस क्लाइवके लिए नन्दकुमारके प्रति ऐसी कृतज्ञताका दिखाना अवश्य ही आश्चर्यजनक है। परन्तु ऐसा करनेका एक कारण था। मीरजाफर नवाब हो कर जब पटनेके शासनकर्त्ता राजा रामनारायणका उच्छेद करनेके लिए कटिबद्ध हो गये तब अंगरेजोंके लिए रामनारायणकी रक्षा करना आवश्यक था। ऐसी दशामें क्लाइवको एक चतुर और सुयोग्य व्यक्तिकी जरूरत थी। इसलिए इन्होंने नन्दकुमारको ही इस पदके लिये चुना, क्योंकि इनमें यह एक विशेष गुण था कि ये जब जिस प्रभुके अधीन कार्य करते थे, तब उन्हींका कार्य ऐकान्तिक मानसे करते थे। नन्दकुमार क्लाइवके दीवान होनेके उपरान्त, उनकी तरफसे वकील बन कर कई बार नवाबके दरबारमें गये थे। किन्तु जब नवाब किसी तरह भी विचलित न हुए तब क्लाइव सेना सहित पटना पहुंचे। नन्दकुमार भी उनके साथ गये थे। क्लाइव इनकी कार्यदक्षता और बुद्धिमत्तासे बड़े खुश थे और सब विषयोंमें आपसे परामर्श लेते थे। मीरजाफरके दीवान राजा दुर्लभरामने नन्दकुमारको पटना जाते देख नवाबके पास उन्हें अपना वकील बना कर भेजा था। उस समय नन्दकुमारकी क्षमता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि लोग इन्हें "काला कर्नल" कहते थे। बादमें पटनेका कार्य समाप्त कर क्लाइव दल सहित मुर्शिदाबाद आये और अपनी प्रीतिके निदर्शनस्वरूप नवाबसे अनुरोध कर नन्दकुमारको हुगली, विजली आदि स्थानोंकी तहसीलदारी दिलवा दी। इस तरह नन्दकुमार पुनः अपने चिरन्तन प्रभु नवाबके अधीन कार्य करने लगे। अमीरबेग खां उस समय हुगली विजली आदिके फौजदार थे। नवाब-सरकारमें कार्य पा कर नन्दकुमार अपने नवीन प्रभु (कम्पनी) के स्नेहसे वञ्चित हुए हों ऐसा नहीं। कम्पनीके अधीन भी इन्हें एक प्रधान पदकी प्राप्ति हुई। मीरजाफरने सन्धिमें लिखे हुए कुल रुपये राजकोषसे चुका न सकनेके कारण, उसके बदले नदिया और वर्द्धमानका राजस्व अंगरेजोंको छोड़ दिया। नन्दकुमार १७५८ ई०को १८वीं अगस्तको अंगरेजोंके अधीन इन दो स्थानोंके तहसीलदार हो गये। इन्हें किस्तोंके समय पर राजाओंसे रुपया चुका कर राजस्व वसूल करनेका अधिकार दिया गया। इस प्रकार दोनों प्रभुओंके अधीन उच्च पद पर कार्य करने लगे।

पलासी युद्धके बाद नवाब दरबारमें अंगरेजोंकी तरफसे एक रेसिडेण्टका रहना अवधारित हुआ। १७५८ ई०में वारेन हेष्टिंग्स उस पद पर नियुक्त हुए। वर्द्धमान और नदियाके राजस्व वसूल करनेके सम्बन्धमें नन्दकुमारके साथ हेष्टिंग्सके मनोमालिन्यका सूत्रपात हुआ। किस कारणसे ऐसा हुआ, यह बात पीछे कही जायगी।

मीरजाफरकी आर्थिक स्थिति इस समय बड़ी शोचनीय थी। वे सर्वदा रुपयेके लिए राजा दुर्लभराम और जगत्सेठको तंग किया करते थे। क्रमशः नवाबके साथ दुर्लभरामका विवाद हो गया और उत्तरोत्तर वह बढ़ने ही लगा। उस समय मीरन ढाकाके शासनकर्त्ता थे और

* इर्वाइन साहबके लिखे हुए एक पत्रसे प्रकट हुआ है कि "नन्दकुमारने ही अंगरेजोंसे मित्रता करनेके लिए [illegible] नन्दकुमार [illegible] के पास भेजा था।" यह बात बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि उस सामयिक अथवा ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें नन्दकुमारके विरुद्ध कितनी बातें तक लिखी गयी हैं, किन्तु वे भी इस बातको नहीं कहते और न गैर-सरकारी कागजपत्रोंमें ही इसका कुछ उल्लेख है।

हुए और उनसे इसका कारण पूछा। नन्दकुमारने उसके उत्तरमें अपनी नियुक्ति और खिलअत आदिका हाल लिख भेजा। परन्तु इस पर भी हेष्टिंग्स सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने क्लावरको लिखा कि, 'पहलेके बन्दोबस्तकी परवाह न कर नन्दकुमारने मालगुजारी वसूल करनेके लिए वर्द्धमान रानीके पास पियादा भेजा है और सुना है कि इस कार्यके लिए आप ही ने उन्हें नियुक्त किया है।' उत्तरमें क्लावरने लिख दिया कि, 'कौन्सिलके सभ्योंने ही नन्दकुमारकी नियुक्ति की है और उन्हींके द्वारा उन्हें खिलअत मिली है। इसलिए वर्द्धमान और नदियाकी मालगुजारी वसूल हो, यह व्यवस्था कौन्सिल द्वारा हुई है। इस व्यवस्थाका उद्देश्य इतना ही है कि उन स्थानोंसे ठीक जितने रुपये मिलते हैं, वह बात नवाब साहबको मालूम न होने पावे। आप वर्द्धमान-नदियाको नन्दकुमारका आदेश पालन करनेके लिए लिख दें।' इसके उत्तरमें हेष्टिंग्सने फिर एक पत्र लिखा कि 'नन्दकुमारने मुर्शिदाबादके गुमाश्तोंसे हिसाब तलब किया है। अतः यह आपकी बिना अनुमतिसे हुआ है। जब तक नन्दकुमार अपने अवसरके अनुसार मेरे हाथमें समस्त कार्यभार अर्पण न कर देंगे, तब तक मुझे मुर्शिदाबादमें रहना पड़ेगा। शायद इस बात पर आपने ऐसा विचार न किया होगा।' इस पत्रका क्लावरने क्या उत्तर दिया, यह बात प्रकाशमें नहीं आई। अन्तमें हेष्टिंग्सने नन्दकुमार पर नवाबकी विरक्तिकी बात लिखी, जिसके उत्तरमें क्लावरने यह लिख दिया कि, 'नन्दकुमार पर नवाबकी नाराजीका कारण उनका दुर्व्यवहार और अंगरेजों पर अनुरक्त होना है; इसके सिवा अन्य कोई भी कारण नहीं है।'

नन्दकुमारके प्रभुत्वको खर्व करनेके लिए हेष्टिंग्स इतनी कोशिश क्यों करते थे? उसका एक गूढ़ कारण था। वह यह कि वर्द्धमान और नदियाकी मालगुजारीके रुपये अगर मुर्शिदाबाद हो कर जाते, तो वह मोटी रकम हेष्टिंग्सकी मारफत हो कलकत्ता भेजी जाती और उससे अवश्य ही हेष्टिंग्सको कितना लाभ पहुंचता इसकी व्याख्या करना व्यर्थ है। इस व्यक्तिगत स्वार्थमें विघ्न पड़नेके कारण ही हेष्टिंग्स नन्दकुमार पर अत्यन्त नाराज रहते थे और इसी नाराजी या विद्वेषके बोझसे अन्तमें नन्दकुमारके शोचनीय हत्याका उद्गम हुआ था।

क्लावरके बाद मि० वन्सिटार्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए। ये पहले तो नन्दकुमारको देखनेसे सन्तुष्ट हुए, किन्तु हेष्टिंग्सके मित्र होनेसे उनमें भी वही भ्रान्ति आ गई जो हेष्टिंग्समें थी। अतएव वन्सिटार्ट भी हेष्टिंग्सके कुपरामर्शसे नन्दकुमारके विद्वेषी हो गये। वन्सिटार्टने ही मीरजाफरको हटा कर मीरकासिमको गद्दी पर बिठाया था। मीरजाफर पदच्युत हो कर कलकत्ते आये और चितपुर नामक स्थानमें रहने लगे तथा नन्दकुमारके प्रति बड़ा विश्वास कर उन्हींके शरणापन्न हुए। भूतपूर्व प्रभु पर अत्याचारकी बातें सुनने तथा अंगरेजोंके अत्याचारसे दिनों दिन उनके उद्देश्योंसे परिचित होनेसे नन्दकुमारकी आंखें खुल गईं। वे समझ गये कि दिन-पर दिन अंगरेज ही देशके सर्वेसर्वा होते जाते हैं, जिसको चाहते हैं उसीको नवाब बना देते हैं। इसी समय नन्दकुमारके हृदयमें अंगरेजोंकी क्षमता घटानेकी कामना उत्पन्न हुई। उन्होंने मीरजाफरको पुनः सिंहासन दिलानेके लिये यत्न किया। मीरजाफर डर गए, किन्तु नन्दकुमारने उन्हें साहस दिया। इसके बाद आपने फरासीसी और दिल्ली-सम्राट शाहआलमके साथ पत्रव्यवहार जारी कर दिया। दैव-दुर्विपाकसे एक पत्र अंगरेजोंके हाथ पड़ गया। वन्सिटार्टको आपके मकान पर और कई एक पत्र मिले। हेष्टिंग्सने इन पत्रों पर जाली दोष लगाया, किन्तु भगवान्‌की कृपासे उनके षड़यन्त्रसे आप साफ साफ बच गए। किसी किसीका कहना है कि नन्दकुमारने इस सम्बन्धमें महाराष्ट्रनायकोंके साथ भी पत्रव्यवहार किया था।

इस समय अंगरेज कर्मचारियोंके गुप्त व्यवसायके कारण ईस्ट-इण्डिया कम्पनीको यथेष्ट क्षति और देशमें बहुत अत्याचार हो रहे थे। इस विषयकी चिट्ठी-पत्री नन्दकुमारके हाथ लग गई। कुछ मति-विभ्रमवश हो नन्दकुमारने अपराधियोंकी मोहरयुक्त एक चिट्ठी क्लावरके पास भेज दी और उसी विषयकी एक चिट्ठी कम्पनीके

था, परन्तु उन्होंने, छतज्ञ होना तो दूर रहा, १७७४ ई०के मार्च मासमें जो इस मुकदमेका विवरण विलायत भेजा, उसमें उन्हें शठ, प्रवञ्चक, अकृतज्ञ आदि लिख कर उनकी निन्दा की। किन्तु हेष्टिंग्सने किस व्यवहार वा कार्यके आधार पर यह लिख मारा, उसका कुछ उल्लेख ही नहीं किया। हेष्टिंग्सने रेजा खां और सिताब रायके मुकदमेकी तदबीरके लिए जब नन्दकुमारको नियुक्त किया था, उस समय जो वचन दिये थे, उसका भी पालन नहीं किया।

इसी समय विलायतके प्रधान मन्त्री लार्ड नर्थने भारतकी कार्य शृङ्खलाकी सुव्यवस्थाके लिए "नियामक विधि" (Regulating Act) विधिबद्ध किया। उस विधिके अनुसार हेष्टिंग्स् भारतके गवर्नर जनरलके पद पर नियुक्त हुए और उनका मन्त्रित्व करनेके लिए जनरल क्लेभरिङ्, कर्नल, मनसन और फिलिप फ्रान्सिस ये तीन व्यक्ति अतिरिक्त सभ्य कौन्सिलमें चुने गये। इसी समय सुप्रीमकोर्टको विचार-प्रणालीको भी सुसंस्कृत करनेके लिए सर इलाइजा इम्पेको प्रधान विचारपति और हाइड, लिमेष्टयर और चेम्बर्सको विचार-पति के पद पर नियुक्त किया गया। प्रधान विचारपति सर इलाइजा इम्पे गवर्नर-जनरल हेष्टिंग्सके सहपाठी और घनिष्ट मित्र थे।

१७७४ ई०में अक्टूबर मासके प्रारम्भमें उपर्युक्त नवनियुक्त कर्मचारिगण कलकत्तेके चांदपालघाटसें आ कर उतरे। उनके सम्मानार्थ फोर्टविलियमसे २७ बार तोप दागी गई, पर हेष्टिंग्स्ने उनके सम्मानार्थ कुछ सामान्य कर्मचारियोंको घाट पर भेज दिया था। इस कारण गवर्नर जनरलके समान क्षमताविशिष्ट नवागत मन्त्रिसभाके सदस्यगण हेष्टिंग्स्से कुछ क्षुब्ध हुए। उन लोगोंने समझा, कि हेष्टिंग्स्ने अपनी श्रेष्ठता और प्रभुता दिखानेके लिए ही ऐसा किया है। एक तरफकी कुछ भूल और दूसरी तरफकी कुछ विवेचनाकी त्रुटिसे उस प्रारम्भिक दिनसे ही मन्त्रिसभामें मतभेदका बीज पड़ गया। कौन्सिलमें उस समय मि० बारवेल नामक एक व्यक्ति हेष्टिंग्स्के पक्षमें थे।

कुछ भी हो, अब तक कौन्सिलमें गवर्नरके आपसके आदमी ही सर्व्व होते थे। सुतरां गवर्नरके द्वारा किये गये अन्यायका कोई प्रतिवाद करनेवाले न रहता था। नूतन मन्त्रिसभामें नवागत मन्त्रियोंने उस कार्यमें हस्तक्षेप किया। रोहिला-युद्धमें गवर्नर-जनरलने जिन मार्गोंका अवलम्बन किया था, नवागत मन्त्रिगण उसके न्याय-अन्याय पर तर्क-वितर्क करने लगे। लोगोंको भरोसा हो गया कि अबसे अंगरेज-शासकवर्गके अत्याचारसे सहसा लोगोंको मरना पड़ेगा।

इस समय हेष्टिंग्स्के दलबलके अत्याचारसे जमींदार और प्रजा बड़ी तंग आ गई थी। दीवान गङ्गागोविन्द सिंह, राजा देवी सिंह, कृष्णकान्त नन्दी, मि० गुड्लैड आदि हेष्टिंग्स्के सहायक थे और उसके ऊपर मुक्तिप्राप्त रेजा खां और नव-अभ्युदित राजा नवकृष्ण भी कार्यक्षेत्रमें आ गये थे। अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर जन साधारणको महाराज नन्दकुमारकी शरण लेनी पड़ी। नन्दकुमार यद्यपि क्षमताहीन और शासकोंकी दृष्टिमें गिरे हुए थे, तथापि देशके लोग इन्हीं पर विश्वास रखते थे, विपत्ति पड़ने पर इन्हीं की शरण लेते थे, क्योंकि इससे पहले भी कई बार इन्हींसे उनका काम निकला था। इसके सिवा उस समय देशमें ऐसा कोई बड़ा आदमी नहीं था जो गरीबों वा अत्याचारसे पीड़ितोंकी सुनवाई करता हो, इसलिए भी लोग आपकी शरण लेते थे। नवकृष्ण, गङ्गागोविन्द आदिने भी उस समय अत्याचारका बीड़ा हाथमें उठा लिया था। नाटोर, बर्द्धमान आदि बङ्गालके शीर्षस्थानीय जमींदारोंने भी नन्दकुमारकी शरण ली थी। नन्दकुमार, क्या करें क्या न करें, इसी समस्यामें पड़ गये। हेष्टिंग्स् इन समाचारोंको सुन कर उत्तरोत्तर इन पर चिढ़ते ही जाते थे। हेष्टिंग्स उस समयसे नन्दकुमारको अपने विरुद्ध चक्रान्तकारी समझने लगे।

उधर कौन्सिलके मन्त्रियोंके साथ नन्दकुमारका भी परिचय हो गया, किसी किसीके साथ बन्धुत्व भी हो गया। मन्त्रियोंको क्रमशः हेष्टिंग्सके अविश्रान्त उत्कोच-ग्रहणका संवाद मिलने लगा और उसके अनुसन्धानार्थ वे नाना प्रकारसे प्रयत्न करने लगे। अन्तमें नन्दकुमारसे परिचित हो जाने पर उन्हें ही इस कामके लिए उपयुक्त समझ

हेष्टिंग्स्‌के अत्याचारका विवरण लिखनेका भार दिया गया। कारण नन्दकुमार बङ्गाल अन्यान्य अधिवासियोंकी अपेक्षा उस समय तबकी देशकी शासनविधि और राजस्वविधिसे खूब परिचित थे। उन्हें तत्कालीन राजस्व-सम्बन्धी सभी बातें मालूम थीं। उनके समान उपयुक्त, राज्यकी अवस्थाको जाननेवाला राजकर्मचारी उस समय कोई भी नहीं। इसीलिए मन्त्रियोंने उन्हें ही इस कार्यके लिए योग्य समझा। हेष्टिंग्सकी अक्षमतासे नन्दकुमार भी उनसे सन्तुष्ट न थे, इस लिए उन्होंने भी अभागा देशमें फैले हुए अत्याचारके दमनके लिए हेष्टिंग्सके विरुद्ध कार्य करना स्वीकार कर लिया। हेष्टिंग्स उन्हें षड्यन्त्रकारी समझते थे, पर वास्तवमें इनमें यह दोष नहीं था। वे किस कामको करनेमें उसे खूब सोचकर करते थे उनका यही—विचारशीलता उन्हें बिलकुल पसन्द न थी। इसी बीचमें और भी एक मौका मिल गया। वर्द्धमान-राज महाराज तिलकचन्द बहादुरकी विधवा पत्नीने हेष्टिंग्सके अत्याचारके कारण कौन्सिलमें एक अभियोग उपस्थित किया। बहुतोंका कहना है कि यह काम महाराज नन्दकुमारका ही था; परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। नन्दकुमार यदि ऐसा करना चाहते, तो वे एक वर्द्धमान ही क्यों, बङ्गालके समस्त जमींदारोंके द्वारा अभियोग करा सकते थे। परन्तु उनका ऐसा उद्देश न था। वे अत्याचारीके अत्याचारको दमन करनेके लिए सत्य अभियोगों को ले कर खड़े होनेके लिए प्रस्तुत रहते थे। युक्तिपोषित उत्साह उनमें मौजूद था।

१७७५ ई०में ८ मार्चको एक अभियोगका आवेदन पत्र तैयार कर नन्दकुमार स्वयं ही कौन्सिलके एक सदस्य मि० फ्रान्सिसके हाथ दे आये। इस आवेदनमें आपने हेष्टिंग्स्‌के उत्कोच ग्रहण, अत्याचारियोंको अर्थ ले कर उनके निष्कृति दान और दिग्व्यापी अत्याचारकी बहुतसी शिकायतें की थीं। हेष्टिंग्सने उनका जो जो अनिष्ट किया था, उसका भी विशेष रूपसे उल्लेख किया था। यह अर्जी फारसीमें लिखी गई थी। मि० फ्रान्सिसने ११ मार्चको इसे कौन्सिलमें पढ़ा था।

इस आवेदनमें नन्दकुमारने मीरकासिमके युद्धके समय व गदरोंके उपद्रवोंके समय जो कार्य किया था, क्रमशः उसका उल्लेख किया। उसके बाद महम्मद रेजा खाँने देशमें जिस तरह भीषण अत्याचार किया था, उसको भी व्यक्त किया। बाद उसके हेष्टिंग्सने उनके प्रति जैसा अत्याचार किया था, एक एक करके सब लिख दिया। कौन्सिलके सभ्योंके विचारपतिके आसन पर हेष्टिंग्सने आप उन लोगोंके साथ बङ्गालके अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तियोंसे परिचय करा दिया, पर नन्दकुमारसे नहीं कराया। नन्दकुमारके इस बातमें आपत्ति करने पर गवर्नरने उत्तर दिया कि मेरा एक शत्रु है, उसके साथ आपकी घनिष्टता है, आप लोगोंने उसे मन्त्रि-सभाके सदस्योंके पास अपवाद ले आनेके लिए नियुक्त किया है। आप उसकी सहायतासे उनके साथ परिचित क्यों नहीं होते? उसके बाद गवर्नरने डर दिखा कर कहा था कि, 'मैं अपने मानकी रक्षाके लिए और अपनी सुविधाके लिए सब तरहकी चेष्टाएं करूंगा किन्तु उससे आपको ही क्षतिग्रस्त होना पड़ेगा।' इसके बाद हेष्टिंग्सने इलियट साहबकी मारफत कौन्सिलके सभ्योंसे महाराजका परिचय करा दिया।

इसके बादसे, विशेषतः हेष्टिंग्सके प्रतिद्वन्द्वी मि० फ्रान्सिसके साथ नन्दकुमारका विशेष सौहार्द हो जानेके कारण, हेष्टिंग्स नन्दकुमारको दमन करनेके लिए नाना उपाय अवलम्बन करने लगे। इतिमध्यमें इनके साथ वर्द्धमानका मालगुजारी बकायेके विषयमें नन्दकुमारका विवाद था। सेठ बुलाकीदास नामक एक धनवान जौहरीकी मृत्युके बाद हिसाब आदिके बारेमें मोहनप्रसाद नामक उक्त जौहरीके आममुख्तारके साथ भी नन्दकुमारका झगड़ा था। वर्तमान कुण्डवारा-राजके आदिपुरुष जयचन्द्र बन्द्योपाध्याय नन्दकुमारके दामाद थे। इनको महाराज नन्दकुमारने ही बाल्यकालसे पुत्रकी तरह पाला-पोसा, लिखाया पढ़ाया और कन्या ब्याही थी, अन्तमें बहुतोंसे अनुरोध कर उनको नौकरी भी लगवा दी थी। जिस समय महाराजने यह अभियोग उपस्थित किया था, उस समय भी जयचन्द्र नवाबके दीवान राजा गुरुदासके अधीन नवाब सरकारमें नौकरी कर रहे थे, किन्तु वे ऐसे अकृतज्ञ प्रकृतिके आदमी थे

कि श्यालकके अधीन काम करना पड़ता था, इसलिए बड़े क्षुब्ध रहते थे। अन्तमें दूसरा कोई उपाय न देख के आत्म-द्रोही हो गये। हेष्टिंग्स, ग्रेहम, मोहनप्रसाद और जगचन्द्रको हस्तगत कर नन्दकुमारके सर्वनाशके लिए सर्वदा परामर्श करने लगे। मोहनप्रसाद प्रवञ्चक और चक्रान्तकारी थे, इसलिए उस समय क्या अंगरेज और क्या बंगाली, सब उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे; और तो क्या हेष्टिंग्सने स्वयं भी एक दफा उन्हें अपने मकानसे निकाल दिया था और आइन्दा फिर कभी न आनेके लिए कह दिया था। किन्तु अब उन्हीं हेष्टिंग्सने अपना अभीष्ट सिद्धिके लिए—नन्दकुमारको नष्ट करनेके उद्देश्यसे फिर उन्हें अतर और पान दे कर बुला लिया। जगचन्द्रने क्रमशः श्वशुरके साथ साक्षात् करना बन्द कर दिया और उनके विरुद्ध मोहन और हेष्टिंगसके साथ परामर्श पूर्वक षड़यन्त्र रचने लगे।

नन्दकुमारने अपने आवेदनमें इन सब बातोंका वर्णन कर गवर्नरके कूट उद्देश्यकी बात प्रकट की थी, जिस समय दिल्लीके बादशाहने नन्दकुमारको "महाराजा"की उपाधि और खिलअत दी थी, उस समय प्रथानुसार बादशाहने एक झालरदार पालकी और अन्यान्य राजसम्मान चिह्न प्रदान किये थे। यह सामान जब पटना आया, तब मीरजाफरकी मृत्यु हो चुकी थी, नन्दकुमारकी नायब सूबेदारी जाती रही थी। उस समय नये नायब सूबेदार महम्मद रैजा खांकी उत्तेजना और भयसे पटनेके शासनकर्त्ता राजा सिताब रायने नन्दकुमारके उस बादशाही उपटौकनको रोक लिया। नन्दकुमारको मालूम पड़ने पर उन्होंने हेष्टिंग्ससे कहा। हेष्टिंग्सने उन्हें मंगा तो लिया, पर नन्दकुमारको न दे कर अपने काममें लगा लिया। महाराज नन्दकुमारने अपने अभियोगमें इस बातका भी उल्लेख कर दिया था। ये बातें उनकी व्यक्तिगत थीं। इसके अलावा उन्होंने रैजा खां और सिताब रायको छोड़ कर हेष्टिंग्सने कम्पनीके स्वार्थका तथा साधारणका कितना अनिष्ट किया था, यह बात भी लिख दी थी। काशीके राजा बलवन्त सिंहके उत्तराधिकारीकी तरफ अंगरेजोंके अधीन खेड़ा-मागुड़ा और विजयगढ़ नामके दो परगनोंके निमित्त, कम्पनीको दीवानी मिलनेको तारीखसे फसली सन् ११७८ तक २४ लाख रुपये बकाया निकलते थे, परन्तु चेतसिंह द्वारा गुप्तरीत्या उपहार पा कर हेष्टिंग्सने कम्पनीके इस बकाया रुपयेके लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया और तबसे उक्त दोनों परगने काशी-राजके ही अधिकारमें हैं। रंगपुरका बहारबन्द परगना रानी भवानीसे कौशलसे छीन कर हेष्टिंग्सने उसे अपने दीवान कृष्णकान्त नन्दीको दे दिया। इससे रानी भवानीको बहुत क्षति हुई है। अभियोग पत्रमें ये सब बातें भी लिखी गई थीं। अन्तमें नन्दकुमारने यह निवेदन किया था कि, "गवर्नर हेष्टिंग्स साहबके विरुद्ध यह अभियोग खड़ा करके मैं जो भीषण विपद्-सागरमें इच्छा पूर्वक कूदनेके लिए अग्रसर हो रहा हूं इस बातको मैं जानता हूं, पर क्या करूं दूसरा कोई उपाय नहीं है। गवर्नरके अनुचित कार्योंसे परिचित हो कर भी यदि चुप चाप बैठा रहूं, तो सम्भव है भविष्य में उनके द्वारा और भी अनिष्ट हो। इसलिए आत्म रक्षार्थ और न्याय धर्मानुरोध वश मैं आप लोगोंके समक्ष यह अभियोग उपस्थित करता हूं। अब मैं आप लोगोंसे इस विषयमें विशेष ध्यान देनेके लिए प्रार्थना करता हूं।"*

इस अभियोगपत्रके पढ़े जानेके बाद हेष्टिंग्सने मौन भङ्ग करके पूछा—"मैं कौतूहलवश पूछता हूं कि आप पहलेसे इस अभियोगके बारेमें कुछ जानते थे या नहीं?" फ्रान्सिसने उत्तर दिया—"कौतूहलका उत्तर देनेके लिए मैं बाध्य नहीं। हां, गवर्नर पूछ रहे हैं, इस खातिरसे मैं इतना कह सकता हूं कि नन्दकुमारने जब इसे भेजा था, उस समय उनकी पूर्व सूचना और व्यवस्थादि देख कर मैं समझ गया था कि यह गवर्नरके विरुद्ध निश्चय ही अभियोग पूर्ण है। हां, वे अभियोग कौन कौन से हैं और किस ढंगसे लिखे गए हैं, यह बात मुझे नहीं मालूम थी।" इसके बाद उस दिन सभा भङ्ग हुई।

ता० १२ मार्चको मन्त्रिसभाके अधिवेशनमें नन्दकुमार

* Parliamentary History of England from earliest period to the year 1803, Vol XXVII, p. 884.

उनकी गवाही ली गई। आवश्यकतानुसार नन्दकुमारने प्रमाणस्वरूप मूल दलीलें दाखिल कीं। किसी दलीलके प्रमाणार्थ कृष्णकान्त नन्दीको उपस्थिति और गवाहीकी जरूरत पड़ी। मन्त्रिसभाने उन्हें बुलवा भेजा, किन्तु उन्होंने जवाबमें लिखा कि, 'मैं इस समय गवर्नरके पास हूं, उनके निषेध करनेसे मैं नहीं आ सका।' मन्त्रियोंने विस्मित और क्रुद्ध हो कर कान्त बाबू और गवर्नरके विरुद्ध इस प्रकारके कार्यके विषयमें अपना मन्तव्य लिख कर सभा भङ्ग कर दी।

इधर हेष्टिंग्स, कौन्सिलमें अपमानित हो कर नन्दकुमारके सर्वनाशके लिए कटिबद्ध हो गए। ग्रेहम, उनके मुन्शी सदरउद्दीन, गङ्गागोविन्द, कृष्णकान्त, नवकृष्ण आदि उनकी सहायताके लिए प्रवृत्त हुए। कमालउद्दीन् खां नामक एक व्यक्ति उस समय हिजलीके नमक-गोलाके इजारादार थे। दीवान कृष्णकान्त ही इस व्यक्तिके बेनामी पर उस इजाराका भोग करते थे। इस व्यक्तिके पितासे नन्दकुमारकी मित्रता थी। जिस समय कर्जके रुपयोंके लिए हुगलीके शेख इयत उल्लाने नन्दकुमारको पियादा मसील द्वारा ५ दिन आबद्ध रक्खा था, उस समय इस कमाल उद्दीन्के पिता शेख इस्तमने नन्दकुमारको जमानत दे कर छुड़ाया था। कमाल असत् प्रकृतिका आदमी था, इस कारण नन्दकुमारके साथ उसकी मित्रता अधिक दिन न रही। अन्तमें उसके कृष्णकान्तका बे-नामीदार हो कर हिजलीके नमकके गोलेका इजारादार होने पर कान्त बाबू, बारवेल, हेष्टिंग्स आदिने उससे बहुत घूस लेनी शुरू कर दी। आखिरको वह महा उत्पीड़ित हो कर गङ्गागोविन्द और अर्चडिकन साहबके नाम कौन्सिलमें अभियोग उपस्थित करनेके लिए उद्यत हो गया। नन्दकुमारके साथ उस समय हेष्टिंग्सका विवाद शुरू हो चुका था। उसने मौका देख नन्दकुमारके साथ परामर्श करना चाहा। नन्दकुमारके जामाता राय राधाचरणके साथ बातचीत कर कमालउद्दीन्ने महाराजके पास जा कर कहा, "वह फाउक साहबकी मारफत कौन्सिलमें अपनी अर्जी पेश करना चाहता है, अतएव यदि आप उसके लिए फाउकसे जरा अनुरोध करें, तो अच्छा हो।" नन्दकुमार आर्तोंके आश्रय थे, उन्होंने सुननेके साथ ही राय राधाचरणके साथ उसे फाउकके पास भेज दिया। फाउकने भी नन्दकुमारके अनुरोधसे उसके अभियोगको कौन्सिलमें उपस्थित करना स्वीकार कर लिया। तीन वर्षके भीतर उससे बारवेलने ४५ हजार, गवर्नरने बतौर नजरके १५ हजार, वन्सीटार्टने १२ हजार, राजा राजवल्लभने ७ हजार और कृष्णकान्तने ५ हजार रुपये लिये थे। हेष्टिंग्सको यह बात मालूम पड़ते ही, उन्होंने ग्रेहमके मुन्शी सदरउद्दीन्की मारफत कमालको हस्तगत कर लिया। हेष्टिंग्सने इसके द्वारा नन्दकुमारके विरुद्ध एक बड़े भारी और भयङ्कर अभियोगका सूत्रपात किया। उन्होंने (१७७५ ई०में १८ अप्रैलको) सुप्रीम कोर्टके जजोंको इस आशयका एक पत्र लिखा, कि कमालउद्दीन्ने आ कर कहा है कि नन्दकुमार और फाउकने उससे बलपूर्वक हेष्टिंग्स, बारवेल आदि नाम पर रिशवत लेनेका एक भूठा अभियोगपत्र लिखवा लिया है और वे गङ्गागोविन्द आदिके नामका अभियोगपत्र वापिस नहीं दे रहे हैं। जजोंने इसको गवर्नर आदिके विरुद्ध षड़यन्त्रकी चेष्टा समझी और इसकी जांच करनेके लिए प्रवृत्त हुये। पहले कमालउद्दीन्को आवेदन करनेके लिए कहा गया। आवेदनपत्रमें अभियोगको खूब सजा दिया गया। गङ्गागोविन्द और अर्चडिकनके नाम कमालने जो अभियोग पत्र नन्दकुमार और फाउकको दिया था, वह सिर्फ उन्हें डरानेके लिये लिखा गया था, वस्तुतः वह कौन्सिलमें उपस्थित करनेके लिए नहीं दिया गया था। अन्तमें यह जब नन्दकुमारके पास उसे वापस मांगनेके लिये गया, तब नन्दकुमारने उससे कहा कि, "यदि वह गवर्नरके विरुद्ध कोई अभियोगपत्र लिख दे, तो पहलेका अभियोगपत्र वापिस कर सकते हैं।' कमालको बाध्य हो कर अपने मुन्सी द्वारा नन्दकुमारके अभिप्रायानुसार गवर्नरके विरुद्ध अभियोग-पत्र लिख देना पड़ा। उसके बाद राधाचरणके साथ वह फाउकके घर गया, फाउकने उससे पूछा, कि गवर्नरको कितने रुपये दिए हैं? उसने जब यह कहा कि, 'मैंने कुछ नहीं दिया', तब गुस्से में आ कर फाउकने एक किताब उठा कर उसके हाथ पर मारी और फिर उससे गवर्नर आदिके नाम रिशवत

मैनेजका एक खत लिखा लिया। इसके बाद भी कमालने उस अभियोग पत्र वापस पानेके लिए बहुत कोशिश की थी; किन्तु कुछ फल न हुआ।

यथासमय मुकदमा कोर्टमें उपस्थित हुआ। नन्दकुमारने कहा कि कमाल उद्दोन्ने महागोविन्द आदिके विरुद्ध लिखा हुआ अभियोग-पत्र किसी दिन वापस नहीं मांगा है, बल्कि कौन्सिलमें पेश करनेके लिए ही बार बार अनुरोध किया है। गवर्नरके विरुद्ध अभियोग-पत्र लिखानेके लिए किसीने भी उसे बाध्य नहीं किया, उसने खत' को लिख कर मुझे दिखाया था। मैंने उसको वर्णना अच्छी न होनेके कारण उसमें दो एक जगह परिवर्तन करा कर कमाल उद्दीनके हाथसे उसकी फिरसे नकल करा दी थी। आलम आदमने भी गवाही दी। अन्तमें प्रमाणादिके बलसे मुकदमेकी अवस्था ऐसी हो गई कि नन्दकुमारके विरुद्ध उसका टिकना दुर्घट होने लगा। नन्दकुमार बिना किसी विघ्नके छूट जायेंगे, यह समझ हेष्टिंग्स दूसरे तदबीर सोचने लगे।

मीरकासिमके समयमें कासिमबाजारमें पूर्वोक्त बुलाकीदास सेठको जवाहरातकी दूकान थी। नन्दकुमारके मित्र मोहनप्रसाद ही उस बुलाकीदासके आमखुखार थे। नन्दकुमारके साथ बुलाकीदासका लेनदेन था। मीरकासिमके समयमें नन्दकुमारने बुलाकीदासके पास एक मोतीकी कण्ठी, एक कलगा, एक सिरपेच और चार हीरेकी अङ्गूठी ये सात चीजें बेचनेके लिए रख दी थीं। अङ्गरेजोंके साथ मीरकासिमका युद्ध छिड़ जानेसे कासिमबाजार लुट गया और उसीके साथ नन्दकुमारका माल भी लुट गया। पीछे बुलाकीदासने नन्दकुमारको उसके बदले ४८०२१) रुपये देना मञ्जूर कर एक अङ्गीकार पत्र लिख दिया और चार आने सैकड़ा ब्याज देना भी कबूल किया। उस समय कम्पनीके पास बुलाकीदासके २ लाख रु० जमा थे। बुलाकीदासने, कम्पनीसे रुपये मिलने पर ब्याज सहित उक्त रु० चुकानेके लिए वादा कर लिया। इस दलील पर मरताबराय, महम्मद कमाल और बुलाकीदासके वकील शिलाबतने (अ-तौर गवाहोंके) दस्तखत किये थे। इसके बाद बुलाकीदास

ने नीचे अपना दस्तखत और मुहर लगा कर नन्दकुमारको दिया था।

बुलाकीदासकी मौतके बाद पद्मोहनदास उनकी सम्पत्तिके तत्त्वावधारक हुए और उनकी मृत्युके पश्चात् बुलाकीदासकी पत्नी और गङ्गाविष्णु नामक एक निकट सम्बन्धी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इनके समयमें भी मोहनप्रसाद आमखुखार थे। पद्मोहन जिस समय तत्त्वावधारक थे, उसी समय कम्पनीसे १ लाख रु० वसूल हो गये थे। पद्मोहनने उसमेंसे नन्दकुमारका कर्ज चुका दिया, परन्तु गङ्गाविष्णुने अधिकारी हो कर मोहनप्रसादके परामर्शानुसार नन्दकुमारके नाम एक दीवानी मुकदमा दायर कर दिया। जिस समय यह घटना हुई थी, उस समय तक सुप्रीमकोर्ट नहीं हुआ था, मेयर्स कोर्ट था। गवर्नर स्वयं ही मेयर्स कोर्टके अध्यक्ष थे। इस मुकदमेमें बुलाकीदासके अङ्गीकार पत्रके बल पर नन्दकुमारकी जीत हुई थी। हेष्टिंग्सको यह बात मालूम थी, क्योंकि वे उस समय मेयर्स-कोर्टके प्रेसीडेण्ट थे। अब उन्हें उस अङ्गीकारपत्रकी बात याद आ गई। उन्होंने मोहनप्रसादको बुलवा भेजा। मोहनप्रसादके उपस्थित होने पर उनसे कुछ सलाह हुई। इसके बाद मोहनप्रसादने सुप्रीमकोर्टमें नन्दकुमारने जाल, बुलाकीदासके दस्तखत और मुहर जाल बना कर दलील बनाया और उसके जरिये बुलाकीदासके उत्तराधिकारीसे रुपये वसूलनेका एक अभियोग उपस्थित किया। हेष्टिंग्सको मालूम था कि पहलेके मुकदमेसे मुकदमे पार न पा सकेंगे, इसीलिए उन्होंने यह चाल चली। मेयर्स कोर्टके उस पुराने मुकदमेसे यह सूट निकाला गया।

उस समय इङ्गलेण्डके आईनके अनुसार जालके अपराधमें प्राणदण्ड दिया जाता था, इसलिए ऐसे अपराधोंको उस समय खूनी अपराधोंकी तरह कानूनके साथ रक्खा जाता था।

मोहनप्रसादका अभियोग १७७५ ई०को ६ठी मईको कोर्टमें उपस्थित हुआ। नन्दकुमार कहीं भाग न जाय, इस ख्यालसे जजोंने उसी समय कलकत्तेके शेरीफके पास एक परवाना लिख कर भेजा,

जिसमें आदेश था कि, "आप इस पत्रको पाते ही महा-राज नन्दकुमारको साधारण कारागारमें आवद्ध रखने में क्षण भर भी विलम्ब न करें।" मोहनप्रसाद और कमालउद्दीन खाँ नामक दो व्यक्तियोंके इजहारसे कुछ कुछ प्रमाणित होता है, कि उन्होंने जाल किया है, इसके विचारार्थ उन्हें आवद्ध रखनेके लिए आपको आदेश दिया गया है।" प्रधान जज इम्पे इस परवाने पर दस्तखत करके ही चल दिये। जब परवाना निकाले जानेकी तैयारियां होने लगी, तब मि० फ्रेरेट नामक एक प्रसिद्ध अटर्नीने स्वतः प्रवृत्त हो जजोंसे यह कहा कि, "नन्दकुमार मान्य-गण्य सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं, ब्राह्मण है। यदि सामान्य अपराधियोंकी तरह उन्हें साधारण कारागारमें रक्खा जायगा, तो वे जातिभ्रष्ट हो जायगे। विचारके बाद मुक्ति प्राप्त होने पर भी उन्हें सम्भवतः समाजमें हेय हो कर रहना पड़ेगा। अतएव आप लोग कृपा कर उन्हें अन्यत्र आवद्ध रखनेके लिए आदेश दीजिए।" जजोंने उत्तर दिया, "तो शामको इम्पेके मकान पर जा परामर्श कर जैसा होगा, वैसा किया जायगा।" रातको ८बजे संवाद आया कि जजोंके पूर्व आदेशानुसार ही कार्य होगा। यह खबर शीघ्र ही कलकत्तेके चारों ओर जाहिर हो गई। तमाम शहरमें सनसनी फैल गई। नन्दकुमारके घर क्रन्दनध्वनि होने लगी। रातको दश बजे शरीफ मक्रेबी नन्दकुमारके मकान पहुंचे और उन्हें वहांसे साधारण कारागारमें ले गये। उस दिन राजा गुरुदास, राय राधाचरण, सपुत्र फाउक साहब तथा और भी कुछ आत्मीय-स्वजन अधिक रात्रि तक कारागारमें महाराजके पास थे। लौटते समय गुरुदाससे महाराजने कहा था, "हेष्टिंग्स ही इस षड़यन्त्रके विधाता हैं, यह मैं अच्छी तरह समझता हूं; परन्तु यह मेरी अदृष्टलिपि है—दोष उसका नहीं है। तुम लोग घबराना नहीं, भगवान् मेरी रक्षा करेंगे।"

दूसरे दिन शहरके आपामर साधारण बहुतसे नन्दकुमारसे मिलने आये। बहुतोंको प्रवेश करनेसे रोका भी गया। नन्दकुमारने सुन लिया, पर वे धैर्यच्युत न हुए। पूर्व रात्रिको उन्होंने जल स्पर्श न किया था। म्लेच्छस्पृष्ट साधारण कारागृहमें पूजा आह्निक नहीं कर सकते, सुतरां आहारादि भी नहीं करेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय कर लिया। ज्यों ज्यों दिन बढ़ने लगा, त्यों त्यों उनकी प्यास भी बढ़ने लगी। परिचारकोंसे जोरसे हवा करते रहनेके लिए कह कर आप चुप-चाप बैठे रहे। राजा गुरुदास आदिने फिर कोशिश की कि महाराज कुछ खा पी लें; कौन्सिलके सभ्यगण भी जजोंसे अनुरोध कर दौड़-धूप करने लगे, परन्तु कुछ फल न हुआ, प्रत्युत जजोंने पण्डितोंसे एक व्यवस्थापत्र लिखवा कर दिखा दिया कि कारागारमें रहनेसे नन्दकुमारकी जाति नष्ट नहीं हो सकती। कौन्सिलके सदस्योंने जिस समय जजोंसे नन्दकुमारके तीन दिन निर्जल उपवासकी बात कह कर अनुरोध किया, उस समय हेष्टिंग्स भी वहां उपस्थित थे; किन्तु जजोंने किसी तरह भी अपना मत न बदला और फिरसे पण्डितोंका व्यवस्थापत्र दिखा दिया।

इम्पे यदि चाहते, तो नन्दकुमारको इस काराक्लेशसे मुक्त कर सकते थे। अन्य किसी स्थानमें वा उनके मकान पर ही प्रहरी-वेष्टित कर रख सकते थे। ऐसा करनेसे उनके कर्त्तव्यमें कुछ त्रुटि न होती बल्कि यश ही बढ़ता। परन्तु वे ऐसा कर न सके, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं उससे हेष्टिंग्सकी वैरनिर्यातन-स्पृहाकी सम्यक् तृप्तिमें कुछ व्याघात न पहुंचे।

जजोंके अनुरोध करने पर कृष्णजीवन शर्मा, वाणेश्वर शर्मा, कृष्णगोपाल शर्मा, गौरीकान्त शर्मा आदि कुछ पण्डितोंने व्यवस्था दी कि, 'कारागारादि जैसे स्थानोंमें, जिसकी छत जुदी हो ऐसे घरमें, म्लेच्छादि संसर्ग-रहित हो कर गङ्गाजलसे स्नान-पूजा पाकादि करनेसे पतित नहीं होता और कारामुक्तिके बाद बिना प्रायश्चित्तके समाजमें गृहीत हो सकता है।' नन्दकुमार इस व्यवस्थाको पढ़ कर हंस दिये। पण्डितोंने नन्दकुमारका कारागृह देख कर कहा कि, 'महाराजका यहां आहारादि नहीं हो सकता, पर करनेसे जातिच्युत नहीं हो सकते, सिर्फ चान्द्रायणादि करने मात्रसे ही शुद्ध हो सकते हैं।' कुछ भी हो, नन्दकुमारने यह व्यवस्था ग्राह्य नहीं की; वे पूर्ववत् उपवास ही करते रहे। तीसरे दिन

गया। उसके बाद महाराजका इशारा पाते ही उनके अनुचरोंने उनका मुँह ढक दिया। दर्शकने उस समय आपके मुख पर प्रशान्त भाव देखा था। उसके बाद आपको फाँसी हो गई। निर्दिष्ट ब्राह्मण अनुचरगण आपके शवको ले गये।

इस कांडसे बहुतोंने गङ्गास्नान कर ब्रह्महत्या-दर्शन-जनित पापकी शान्ति की। बहुतोंने ब्रह्महत्यासे कलङ्कित कलकत्तेमें रहना ही छोड़ दिया और वे गङ्गाके उस पार चले गये। इसी घटनाके बाद बाली और उत्तरपाड़ामें ब्राह्मणावासका प्रादुर्भाव हुआ।

उस समय कलकत्तेमें एक रङ्गालय (थियेटर) था, अंगरेज लोग ही उसके अभिनेता थे। उन लोगोंने इम्पे और हेष्टिंग्सके अत्याचारोंके आधार पर रङ्गनाट्य बना कर उसका अभिनय भी किया था। *

महाराज नन्दकुमारके चिह्न अब भी विद्यमान हैं, कीर्त्ति भी मौजूद है। आपने भद्रपुरवाले मकानमें लक्ष ब्राह्मणोंको एकत्र कर उनकी पदधूलि संग्रह की थी। इस पदधूलिका कुछ अंश कुञ्जघाटाके राजभवनमें अब भी विद्यमान है। एक लाख ब्राह्मणोंके बैठनेके लिए काष्ठासन बनवाये थे, जिनमेंसे दो-चार अब भी मौजूद हैं। जिस द्वारसे एक लाख ब्राह्मणोंने प्रवेश किया था, वह तोरणद्वार भी मौजूद है। महाराज वैष्णव थे। भद्रपुरमें आपके द्वारा प्रतिष्ठित नवरत्न-मन्दिरमें लक्ष्मीनारायण और वृन्दावनचन्द्र नामक दो विग्रह विराजमान थे। गौरीशङ्कर नामक शिव और अकालीपुरकी भद्रकाली भी आप हीके द्वारा स्थापित हुई थीं। भद्रकालीका मन्दिर अब भी ज्योंका त्यों मौजूद है। नवरत्न-मन्दिरका ध्वंसावशेष रह गया है। लक्ष्मीनारायण, वृन्दावनचन्द्र और गौरीशङ्करकी प्रतिमाको राजा महानन्द (नन्दकुमारके दौहित्र) भद्रपुरसे कुञ्जघाटामें ले आये थे, जो अब तक वहीं हैं। इनके सिवा और भी आपके कई स्मृतिचिह्न हैं, जिन्हें देख कर आप पर हेष्टिंग्स और इम्पे द्वारा किये गये अन्यायका स्मरण हो आता है।

हेष्टिंग्स की विचार-प्रणालीको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए जिस समय विलायतमें हेष्टिंग्सका विचार हुआ था, उस समय राजा महानन्द तथा अन्यान्य हेष्टिंग्स-प्रिय लोगोंने भारतसे एक आवेदनपत्र भेजा था।

नन्दकुमार विद्याभूषण—राधामानतरङ्गिणी नामक संस्कृत काव्यके रचयिता।

नन्दकूप—एक कूप। कालियसर्पदमनके रोज नन्दादि गोपोंने इसे खनन कर जल पीया था। (भक्तमाल)

नन्दगढ़—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलेके अन्तर्गत खानापुर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५° ३४´ उ० और देशा० ७४° ४५´ पू० बेलगाम शहरसे २३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या ६२५७ है। यह वाणिज्यका प्रधान केन्द्र है। सुपारी, नारियल, नारियलका तेल, खजूर और नमक ये सब वस्तु दूसरे दूसरे देशोंसे यहां आती हैं और यहांसे गेहूं तथा और दूसरे अनाजकी रफ्तनी होती है। यहां बहुतसे धनी ब्राह्मणोंका वास है। शहरके पास ही प्रतापगढ़ नामक भग्न दुर्ग देखनेमें आता है। कहते हैं, कि १८०८ ई०में कित्तूरके मजसरय देसाईने इस दुर्गको बनवाया था।

नन्दगाँव—भरतपुर गिरिमालाके शिखरदेश पर अवस्थित एक ग्राम। यहां श्रीकृष्णके पालक पिता नन्दघोष रहते थे, इस कारण यहांके लोग इसका यथेष्ट आदर करते हैं। यहां नन्दरायजीका एक मन्दिर है। रूपसिंह नामक किसी एक जाटने इस मन्दिरको बनवाया था। एक चबूतरेके ऊपर मन्दिर अवस्थित है और बड़ी बड़ी ऊँची दीवारोंसे घिरा हुआ है। इसके ऊपर चढ़नेसे गोवर्द्धनसे ले कर मथुरा जिलेके सभी भू-भाग देखनेमें आते हैं। यह ग्राम उतना शोभा सम्पन्न तो नहीं है, लेकिन सुन्दर सुन्दर मकानके रहनेसे कुछ न कुछ शोभा आ ही जाती है। मनसादेवीके मन्दिरके सिवा और जितने मन्दिर हैं वे एक ही कृष्णके भिन्न भिन्न नामों पर प्रतिष्ठित हैं, यथा—नरसिंहका मन्दिर, गोपीनाथका मन्दिर, यशोदानन्दका मन्दिर, नन्दनन्दनका मन्दिर, राधामोहन मन्दिर, इत्यादि। यशोदानन्द-मन्दिरको गठन नन्दरायजीके मन्दिर-सी है। यह भरतपुरके पत्थरोंसे बना हुआ है। ११४ सीढ़ियों पर चढ़ कर मन्दिरके ऊपर जाना पड़ता है। ये सब सीढ़ियां १८१८ ई०में कलकत्तेके

* Dr. Busteed's Echoes from old Calcutta.

प्रकारका अस्त्र। १६ मधुनिष्पाव। १७ सरल देवदारु। १८ रसाञ्जन, लालसुरमा। (त्रि०) १९ हर्षक, आनन्द देनेवाला, प्रसन्न करनेवाला।

नन्दन—इस नामके अनेकों ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं। इनमेंसे एक व्यक्ति श्रीकण्ठचरितके रचयिता कवि मङ्खके समसामयिक थे। दूसरेने संस्कृत 'वर्णाभिधान' नामक ग्रन्थकी रचना की और तीसरेकी बनाई हुई श्राद्धचन्द्रिका मिलती है।

इस नामके एक और व्यक्ति थे जिन्होंने महाभारत-की टीका और मनुसंहिताकी नन्दिनी नामक ग्रन्थकी रचना की है। ये वीरमल्ल नामक एक सामन्तराजके बन्धु थे। इनके पिताका नाम लक्ष्मण था। कोई कोई कहते हैं, कि लक्ष्मण इनके भाईका नाम था।

नन्दनचक्रवर्त्ती—दाक्षिणात्यके विजयनगर अञ्चलके एक राजा। इन्होंने १२०६ ई०में कानुगुण्डामें हरिहरके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की।

नन्दनज (सं० क्ली०) नन्दने जायते इति जन ड। १ हरिचन्दन। २ श्रीकृष्ण। (त्रि० ३ आनन्दजातमात्र।

नन्दनन्दन (सं० पु०) नन्दस्य नन्दनः आनन्दजनकः। १ श्रीकृष्ण। कृष्ण देखो।

भागवतके १०३ अध्यायमें श्रीकृष्णका जन्म विवरण लिखा है। (स्त्री०) २ योगमाया।

नन्दनन्दिनी (हिं० स्त्री०) नन्दस्य नन्दिनी ६-तत्। योगमाया। योगमायाने नन्दकी कन्या हो कर उनके घरमें जन्म लिया था। वसुदेव कंसके भयसे श्रीकृष्ण-को नन्दके घर रख कर इसी कन्याको साथ ले गये थे। योगमायाके प्रभावसे यह वृत्तान्त कोई नहीं जान सका था। जब कंसने इसे पटका था, तब यह उड़ कर आकाशमें चली गई थी। कृष्ण देखो। हरिवंशके ५८ अध्यायमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है--

"नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।" (मार्कण्डेयपु०)

नन्दनप्रधान (सं० पु०) नन्दन वनके स्वामी, इन्द्र।

नन्दनमाला (सं० स्त्री०) नन्दना आनन्दजनिका माला। मालाभेद, एक प्रकारकी माला जो श्रीकृष्ण-को बहुत प्रिय थी।

नन्दनमिश्र—वागीश्वर मिश्रके पुत्र। इन्होंने मैथिलेयरचित क्षत तत्त्वप्रदीपकी तत्त्वप्रदीपोद्दीपन नामक टीकाकी रचना की है।

नन्दनवन (सं० पु०) १ इन्द्रकी वाटिका। २ कर्पास, कपास।

नन्दनसर—काश्मीरका एक छोटा ह्रद। हरिपुर नदी इसी ह्रदसे निकली है। यह हिन्दुओंका एक तीर्थ है।

नन्दनाथ—भास्कररचित नवरत्नमालाके एक टीकाकार।

नन्दनावासी—वङ्गके शाण्डिल्यगोत्रीय वारेन्द्र ब्राह्मणोंका एक ग्रामी।

नन्दन्त (सं० पु०) नन्दयतीति नन्द-झच्, झच् षित्। (रुहिनन्दि जीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि। उण् ३।१२३) १ पुत्र, बेटा, लड़का। २ राजा। ३ मित्र।

नन्दपण्डित—इस नामके दो पण्डित हो गये हैं। प्रथम नन्दराम पण्डित धर्माधिकारीके पुत्र थे। ये १५६८से १५६९ ई०के मध्य विद्यमान थे। इनका दूसरा नाम था विनायक पण्डित। काशीप्रकाशतत्त्वमुक्तावली दत्तकचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा, नवरात्रप्रदीप, पराशरस्मृतिटीका, माध्वा-नन्दकाव्य, प्रमिताक्षरा नामक मिताक्षराकी टीका, विष्णु-स्मृतिटीका, श्राद्धकल्पलता, श्राद्धमीमांसा, स्मृतिसिन्धु और हरिवंशविलास ये सब ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं। इनमेंसे काशीराज केशवनायकके आदेशसे १६७८ सम्वत्में वैजयन्ती नामक विष्णुस्मृतिटीका और भङ्गराज-पुत्र तथा हरिवंश वर्माके आदेशसे स्मृतिसिन्धु एवं संस्कार-निर्णयकी रचना की है।

द्वितीय नन्दपण्डित श्रीराम शर्माके पुत्र थे। इन्होंने ज्योतिः सारसमुच्चय, स्मार्त्त समुच्चय आदि ग्रन्थ बनाये हैं।

नन्दपाल (सं० पु०) नन्दं आनन्दं निधिविशेषं पालयति पालि-अच्। वरुण।

नन्दपुत्री (सं० स्त्री०) नन्दस्य पुत्री ६ तत्। दुर्गा, योग-माया, नन्दनन्दनी।

नन्दप्रयाग—बदरिकाश्रमके निकटका एक तीर्थ जो सात प्रयागोंमेंसे है। यह अलकनन्दा और नन्दाके योगसे उत्पन्न माना जाता है। प्रयाग देखो।

नन्दप्रभञ्जन वर्मा—कलिङ्गके एक राजा।

नन्दयन्त (सं० पु०) नन्दयतीति नन्दि झच् झच षित्। (तृभूवहीति। उण् ३।१२८) आनन्दजनक, प्रसन्न करने-वाला।

और राज्यके लिये दो लाख रुपये ले कर देना लौटे। महाराजको जब यह बात मालूम हो गया, तब उन्होंने नन्दरामकी सम्पत्ति जप्त कर ली और उसे कैद करनेकी आज्ञा दी। परन्तु धूर्त्त नन्द पहले ही भाग गया था।

नन्दलाल (हिं० पु०) नन्दके पुत्र। श्रीकृष्ण।

नन्दलाल—१ एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"अब घर जिन जाओ मोरे प्यारे तुम देखनको जि- तरसई।
तुम बिन मोको कल न परत है छतियां पर धरसई॥
ऊधो मेरे दुःख हरवेको पाती पठवत दो।
हों तो भिखारी नन्दलाल दरशके सुखी सलांवोसे यहां ऐसे अपात दो॥"

२ हिन्दीके एक कवि। इनका सं० १६११में जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती थी, हजारामें इनके कवित्त पाये जाते हैं।

३ एक हिन्दी कवि। इसका जन्म-सम्वत् १७७४में हुआ था। इनकी कविता सरस होती थी।

नन्दवंश—१ युक्तप्रदेश तथा बिहारके ग्वालोंका एक विभाग। २ मगधका एक विख्यात राजवंश। इस वंश का अन्तिम राजा उस समय सिंहासन पर बैठे थे जिस समय सिकन्दरने ईसासे ३२७ वर्ष पूर्व पञ्जाब पर चढ़ाई की थी। विशेष विवरण नन्द शब्दमें देखो।

नन्दवक—वैश्य राजपूतोंकी एक शाखा।

नन्दवन—नन्दन-कानन, इन्द्रकी वाटिका। मनुष्योंका भोगकाल जब शेष हो जाता है, तब वे इसी स्वर्गीय काननमें आ कर अपना पूर्वरूप छोड़ देते हैं और नया रूप धारण कर लेते हैं। (पुराण)

नन्दवना—अजमीर और उसके निकटवर्त्ती स्थानवासी बनियोंकी एक श्रेणी।

नन्दवनिवर—राजपूतानेका एक श्रेणीका ब्राह्मण। इस श्रेणीके ब्राह्मण विशेषतः मारवाड़में देखे जाते हैं।

नन्दवरिक—तैलङ्ग नियोगी ब्राह्मणोंकी एक शाखा।

नन्दवर्द्धन—मगधके एक राजा। कहते हैं, कि इन्होंने अयोध्यामें मणिपर्वत नामक एक कृत्रिम पर्वतको निर्माण किया था और मगधसे ब्राह्मण-धर्मको उठा कर जातिभेद नहीं रखा था।

नन्दसुन्दर—एक जैन पण्डित। ये हेमचन्द्रको शब्दानुशासन लघुवृत्तिकी अवचूरि बना गये हैं।

नन्दा—नन्दा और उसकी बहन नन्दबाला। ये दोनों सेनानी नामक ग्रामके किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिकी कन्यायें थीं। उन्होंने सुना था, कि बोधिसत्व भविष्यमें एक राजचक्रवर्त्ती होंगे। इसीसे उन्होंने एक दिन खीर बना कर उन्हें खानेको दी थी। बोधिसत्वने एक मणिमुक्ताखचित स्फटिक पात्रमें उसी खीरको ले कर भोजन करने बाद नदीमें फेंक दिया था। पीछे उन्होंने दोनों बहनोंसे पूछा, 'तुम लोग कौनसा वर चाहती हो' इस पर वे बोलीं, "आप जब राजचक्रवर्त्ती होंगे, तब हम दोनों आपकी पत्नी होऊँगी, यही वर हम चाहती हैं।" बोधिसत्वने उन्हें समझा कर कहा कि वे केवल धर्ममें सबोंसे श्रेष्ठ होंगे, न कि विषयविभवमें। "आपको यह दिव्यज्ञान बहुत शीघ्र प्राप्त हो" इस प्रकार आशीर्वाद दे कर वे दोनों चली गईं। (ललदान)।

नन्दा (सं० स्त्री०) नन्दयतीति नन्दि-अच्-टाप्। १ दुर्गा। ब्रह्माने देवी भगवतीसे कहा था, 'हे देवि! तुमने देवताओंका सत्कार किया है, अब मेरा एक कार्य करनेको बाकी रह गया है। वह यह है कि तुम भविष्यमें महिषासुरका वध करना।' ब्रह्माकी यह बात सुन देवगण देवीको हिमालय पर्वत पर संस्थापित कर यथास्थानको चल दिये। देवीको हिमालय पर स्थापित कर वे बहुत प्रसन्न हुए थे, इस कारण देवीका नाम नन्दा पड़ा।

दूसरी जगह ऐसा भी लिखा है—देवी सुरलोक, नन्दन कानन और अति पवित्र हिमालय पर रह कर बहुत आनन्दित हुई थीं, इसी कारण इनका नाम नन्दा रखा गया है। २ अलिञ्जर, मट्टीका घड़ा या झांझर आदि जिसमें पानी रखते हैं। ३ तिथिभेद, एक तिथिका नाम प्रतिपद, एकादशी और षष्ठी तिथिका नाम नन्दा है। शुक्रवारको यदि यह नन्दा तिथि पड़े, तो सिद्धियोग होता है, यह यात्रा कर्मोंमें शुभजनक है। ४ सम्पद, सम्पत्ति, दौलत। ५ संक्रान्तिभेद, एक प्रकारकी संक्रान्ति। ६ कामधेनुविशेष, एक प्रकारकी कामधेनु। ७ धर्मराज हर्षकी पत्नी। ८ एक मातृका या बालग्रह। इसके

विषयमें ऐसा कहा जाता है, कि इसके कारण बालक अपने जीवनके पहले दिन, अपने साथ और पहले वर्षमें इसके पोड़ित हो कर बहुत रोता और अचेत हो जाता है। ८ अर्थकी स्त्री, प्रसन्नता। १० सङ्गीतमें एक मूर्च्छनाका नाम। ११ एक अप्सराका नाम। १२ विभीषणकी कन्याका नाम। १३ वर्त्तमान अवसर्पिणीके दसवें अर्हत्‌की माताका नाम। १४ नदीविशेष, एक नदी जो कुबेरकी पुरीके निकट बहती है। १५ पुराणानुसार शाकद्वीपकी एक नदीका नाम। १६ बकरे इन्द्रका एक नाम। १७ पतिकी बहन, ननद। १८ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। १९ सुरसा, कान तुलसी। २० योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग।

नन्दातीर्थ (स० क्ली०) तीर्थरूप नदीविशेष। महाभारतके वनपर्वमें इस तीर्थका उल्लेख है। हिमकूट पर्वतके पास जो नन्दा और अपरनन्दा नामकी दो नदियां बहती हैं। यहां सदा बहुत तेजसे हवा बहती रहती है और इसे पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुंच नहीं सकते और सर्वदा वेदध्वनि सुनाई पड़ती है, पर कोई वेद पढ़नेवाला दिखाई नहीं देता। यहां बैठ कर यदि कोई तपस्या करना चाहे तो मक्खियां उसे बाधा डालती हैं और काटने लगती हैं। सबेरे और सन्ध्या यहां अग्निदेवके दर्शन होते हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ एक बार इस तीर्थमें गए थे। यहांका आश्चर्य कार्य देख कर उन्होंने लोमश मुनिसे इसका कारण पूछा था। इस पर मुनिने कहा था, "राजन्! इस ऋषभकूटमें ऋषभ नामक बहुत क्रोधी एक मुनि सदा तपस्या किया करते थे। उन्हें वायु भी तरह तरहकी बातें पूछ कर तंग करते रहते थे। इसी कारण उन्होंने, जिससे साधारण मनुष्य यहां न आ सके वैसा हो करनेके लिए पर्वतको आदेश दिया। तभीसे इस पर्वतने ऐसा रूप धारण किया है। इसके सिवा यह भी सुना जाता है, कि पुराकालमें देवगण नन्दाको ओर आ रहे थे। बहुतसे लोग उनके दर्शनके लिए साथ हो लिए। किन्तु इन्द्रादिने उन्हें अपना दर्शन देना न चाहा, इस कारण इस स्थानको पर्वत-परिधि द्वारा दुर्गाकारमें बना दिया। इस तीर्थमें जो स्नान करते, उसी समय उनके पाप जाते रहते हैं।" युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ इस तीर्थमें स्नान किया था। (भारत वनपर्व ११ अ०)

नन्दात्मज (स० पु०) नन्दस्य आत्मजः ६ तत्। १ श्रीकृष्ण। (स्त्री०) २ योगमाया।

नन्दादेवी (स० स्त्री०) दक्षिण हिमालयकी एक चोटी। यह २५००० फुटसे अधिक ऊंची है और जो मल्लीनाथसे पूर्व है।

नन्दापुराण (स० क्ली०) एक उपपुराण। मत्स्य और शिवपुराणके मतसे यह तीसरा उपपुराण है। इसके वक्ता कार्त्तिक हैं और इसमें नन्दामाहात्म्य दिया गया है।

नन्दायनीय (स० पु०) सामवेदका एक शिष्य।

नन्दार्क—बिहारमें शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका एक सम्प्रदाय।

नन्दावर्त्त (स० पु०) १ तगरपुष्पवृक्ष। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

नन्दाश्रम (स० पु०) नन्दस्य आश्रमः ६ तत्। तीर्थभेद, महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

नन्दाह्रदतीर्थ (स० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नन्दि (स० पु०) नन्दयतीति नन्द-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) १ विष्णु, परमेश्वर। २ नन्दिकेश्वर, शिवके द्वारपाल बैलका नाम। ३ धूतार्थ, एक प्रकारका जुआ। ४ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम। ५ महादेव, शिव। ६ आनन्द, प्रसन्नता। ७ वह जो आनन्दमय हो।

नन्दिक (स० पु०) नन्द आनन्दकारकत्वमस्त्यस्य इति नन्द ठन्। १ नन्दीवृक्ष, तुनका पेड़। २ आनन्द। ३ धवहल, धवका पेड़।

नन्दिकर (स० पु०) शिव महादेव।

नन्दिका (स० स्त्री०) नन्दिक-टाप्। १ इन्द्रक्रीडास्थान, वह स्थान जहां इन्द्र क्रीड़ा करते हैं नन्दनवन। २ अलिञ्जर, मटीका मोट जिसमें पानी रखते हैं। ३ किसी पक्षकी प्रतिपद, षष्ठी और एकादशी तिथि। ४ छोटा मटका।

नन्दिकाचार्यतन्त्र—एक संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ। टोडरानन्दमें इसका मत उद्धृत हुआ है।

नन्दिकावर्त्त (स० पु०) एक प्रकारका मणि।

नन्दिकुण्ड (स० क्ली०) नन्दिकृत कुण्ड। तीर्थभेद,

एक तीर्थका नाम। इस कुण्डमें स्नानादि करनेसे भ्रूण-हत्याका पाप नाश होता है।

नन्दिकेश (सं० पु०) नन्दिकेश्वर, शिवके द्वारपाल।

नन्दिकेश्वर (सं० पु०) नन्दिक ईश्वरश्च। १ शिवद्वार-पाल, शिवके द्वारपाल बैलका नाम। पर्याय - नन्दी, शालङ्कायन, ताण्डवतालिक, नन्दीश्वर, तण्डु। २ शिव-धर्माख्य उपपुराणभेद, एक उपपुराण जो नन्दीका कहा हुआ है और चौथा उपपुराण माना जाता है। इसे नन्दीश्वर और नन्दिपुराण भी कहते हैं।

नन्दिकेश्वर—एक संस्कृत ज्योतिषी, येदाङ्गरायके पुत्र। इन्होंने १६४२ ई०के बाद गणकमण्डन और ज्योतिःसंग्रहसार नामक ग्रन्थ बनाये हैं।

नन्दिकेश्वर—बम्बईके बीजापुर जिलान्तर्गत बादामी तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १५° ५७' और देशा० ७५° ४८' पू० बादामी शहरसे तीन मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ११२० है। यहांके महाकूट नामक स्थानमें अनेक मन्दिर और शिवलिङ्ग हैं। इसी कारण उस स्थानका महाकूट नाम पड़ा है। कोई कोई इस महाकुण्डको दक्षिणकाशी भी कहते हैं। महाकूटके बीच विष्णुतीर्थ नामक एक तालाब है। कहते हैं, कि अगस्त्य मुनिने यह तालाब खुदवाया था। उसकी गहराई सदा एकसी रहती है। पुष्करिणीमें जहां बँधा हुआ घाट है, वहां एक शिवमन्दिर प्रतिष्ठित है। मन्दिरका प्रवेशद्वारा जलके भीतर है। प्रवाद है, कि देवदास नामक वाराणसीके किसी राजाकी कन्याका मुंह वानरसा हो गया था। राजाको स्वप्न हुआ था कि वह कन्या यदि महाकूटमें स्नान करे, तो उसका मुंह मनुष्यसा हो जायगा। तदनुसार राजा कन्याको वहां ले गये और उन्होंने महाकूटेश्वरका मन्दिर बनवा दिया। पीछे कन्याका मुंह एक सुन्दर स्त्री-सा हो गया था। प्रवेशद्वारके उत्तर-पूर्वमें लज्जा-गौरीका मन्दिर है। लज्जागौरीकी मूर्त्ति काले पत्थर पर खोदी हुई है, वह नंगी है, और उसके मस्तक नहीं है। कथित है, कि किसी समय देवी और शिव-पुष्करिणीमें क्रीड़ा कर रहे थे। इसी बीच कोई भक्त वहां पूजा करने आया। शिवमन्दिरको भाग गये और पार्वती उसी जगह औंधे मुंह पड़ रहीं। बन्ध्या स्त्रियां इस मूर्त्तिकी पूजा करती हैं।

नन्दिकेश्वरकारिका—पाणिनिके अष्टाध्यायीमें वर्णित शिव-सूत्रकी गूढ़ व्याख्या। यह कुल २० श्लोकोंमें रची हुई है। नागेशभट्टके शब्देन्दुशेखरमें यह कारिका उद्धृत है। उपमन्युने इसकी टीका की है।

नन्दिकेश्वरपुराण—एक प्राचीन उपपुराण, यह नन्दीश्वर और नन्दिपुराण नामसे प्रसिद्ध है। देवीभागवत, शक्तिरत्नाकर, निर्णयसिन्धु, आचारादर्श आदि ग्रन्थोंमें तथा हेमाद्रि, माधवाचार्य, रघुनन्दन आदि स्मार्त्तोंमें उद्धृत हुआ है।

कालाग्निरुद्रोपनिषत्, दत्तात्रेयोपनिषत्, दशश्लोकी (वेदान्त), रुद्राक्षमाहात्म्य, शिवस्तोत्र आदि विभिन्न ग्रन्थ नन्दिकेश्वरपुराणके अन्तर्गत माने गए हैं। फिर शिवधर्म और शिवधर्मोत्तर ये दोनों नन्दिकेश्वरसंहिताके अन्तर्गत हैं। आगमतत्त्वविलास और तन्त्रसारमें नन्दि-केश्वरसंहिताके वचन उद्धृत हैं।

नन्दिक्षेत्र—काश्मीरके एक प्राचीन स्थान। यहां विजयेश्वरका मन्दिर है।

नन्दिगढ़—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खानापुर उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० १५° २४' उ० और देशा० ७४° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरके पास ही भग्नावशिष्ट प्रतापगढ़ दुर्ग विद्यमान है।

नन्दिग्राम—मन्द्राजके कृष्णा जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १६° ३६' और १७° २' उ० तथा देशा० ८०° १' और ८०° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६०७ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः १२८८५८ है। इसमें एक शहर और १६८ ग्राम लगते हैं। यहां बौद्धोंके अनेक भग्नावशेष देखनेमें आते हैं।

नन्दिगिरि—इसका दूसरा नाम नन्दिदुर्ग है। नन्दिदुर्ग देखो।

नन्दिगुप्त—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम अभिमन्यु गुप्त था। पिताके मरने पर ये काश्मीर-सिंहासन पर बैठाये गये। अनन्तर इनकी पितामही दिद्दाने स्वयं राज्यभोग करनेकी इच्छासे अभिचार द्वारा इन्हें मारनेका प्रयत्न किया। खेदकी बात है, कि

कर पुरवासियोंको अपनी दुःशीलताका अपवश करनेमें समर्थ भी हुई। १ वर्ष ६ महिना ११ दिन राज्यासन पर बैठ कर नन्दिग्राम परलोकवासी हुए।

नन्दिग्राम (स० पु०) ग्रामभेद, अयोध्यासे चार कोस पर अवस्थित एक गांव। इसी स्थान पर भरतने रामके वियोगमें चौदह वर्ष तक तप किया था।

नन्दिग्रामी—यजुर्वेद भरद्वाज गोत्रीय वारेन्द्र ब्राह्मणोंकी एक गांई।

नन्दिघोष (स० पु०) नन्दि हर्षजनको घोषः यस्य। १ अर्जुनका रथ। यह रथ उन्हें अग्निदेवने प्रसन्न हो कर दिया था। २ बन्दिजनकी घोषणा। ३ मङ्गलघोषणा। (त्रि०) ४ हर्षघोषयुक्त।

नन्दित (स० त्रि०) आनन्दित, सुखी, प्रसन्न।

नन्दितरु (स० पु०) नन्दिरानन्दजनकस्तरुः। धवहक्ष, धवका पेड़।

नन्दितूर्य (स० पु०) नन्दिप्रिय तूर्य। वाद्यभेद, प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। (हरिवं ८० अ०)

नन्दिदुर्ग—महिसुरके अन्तर्गत कोलार जिलेका एक गिरि दुर्ग। यह अक्षा० १३ २२´ उ० और देशा० ७७ ४१´ पू०में बङ्गलूरसे ३१ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके शिखर देश पर एक विस्तृत मालभूमि और पुष्करिणी है। १७९१ ई०में लार्ड कर्नवालिसने इस दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। पर्वतके नीचे नन्दी नामक एक ग्राम है जहां शिवरात्रिके दिन एक बड़ा मेला लगता है। हैदरअली और उनके पुत्र टीपूने यह दुर्ग बनवाया था। दुर्गके भीतर एक विख्यात शिवमन्दिर और पांच महानदियोंके उत्पत्ति-स्थान हैं। इन पांच महानदियोंके नाम ये हैं—उत्तर पिनाकिनी, दक्षिण पिनाकिनी, चित्रवती, क्षीरानन्दी और अर्कवती पहाड़ पर नन्दिका एक मुख खोदा हुआ है जिससे क्षीरानन्दी निकलता है। इन पर्वतोंका माहात्म्य 'नन्दिगिरिमाहात्म्य'में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

नन्दिध्वज—कनाड़ी भाषामें लिखित अनुभव शिखा मणि नामक एक ग्रन्थमें नन्दिध्वजके विषयमें निम्नलिखित उपाख्यान पाया जाता है। लोकमाया नामक एक दुरन्त राक्षस था। वह अत्यन्त गर्वित और पराक्रान्त हो कर देवताओंको तंग किया करता था। इस पर देवता लोग इन्द्रके पास गये और अपना दुखड़ा रोने लगे, 'हे देवेन्द्र! हम लोगोंका जो दुःख है उसे ध्यान दे कर सुनिये। दुरन्त लोकमाया, हम लोगोंको निराश्रय कर दे रहा है। उसीके दौरात्म्यसे हम लोग अपना अपना वासस्थान छोड़ कर जिधर तिधर मारे फिरते हैं।' यह सुन कर इन्द्रने ऐरावतको भलीभांति सज्जित करनेके लिये हुक्म दिया और कहा, 'आज ही मैं उसके बलवीर्यकी परीक्षा करूंगा।' इतना कह देवराज इन्द्र गजराज पर सवार हुए और अमरसेनाके साथ तुरन्त ही उस दुष्ट राक्षसके पास पहुंचे। राक्षसने उन्हें बहुत कटुवचन कहे। पीछे जब देवसैन्यने उस भीषण काय राक्षसको आगे होते देखा, तब वे डरके मारे भागने पर पड़ रहे और उसी समय ब्रह्माके पास भाग गये। ब्रह्मा उन्हें साथ ले क्षीरोदसमुद्रके किनारे भगवान् विष्णुके समीप पहुंचे और कृताञ्जलि हो निवेदन करने लगे। इस पर भगवान् विष्णु गरुड़ पर सवार हुये और लोकमायाके समीप जा कर उससे युद्ध करने लगे। लड़ते लड़ते जब शरीरमें क्लान्ति आ गई, तब वे बोले, 'इसे वध करनेमें हम बिलकुल असमर्थ हैं, शिवाचार्य (शिव) इसे अवश्य वध कर सकते हैं।' यह सुन कर देवगण नील कण्ठके पास पहुंचे और आद्योपान्त सब बातें कह सुनाईं। शिवजी उसी समय वृषभ पर सवार हुए और एक ही बाणसे राक्षसका सिर धड़से अलग कर दिया। बाद वह शिव भक्त उनकी स्तुति करने लगा। महादेवने प्रसन्न हो कर जब उसे वर मांगने कहा, तब वह बोला, 'हे शिव! मेरी इस देहके चर्मको पवित्र कीजिए।' इस पर महादेवने उसकी प्रार्थना सुन कर, मस्तकके बाल और चर्मके पताका प्रस्तुत कर उसका नाम नन्दिध्वज रखा। नन्दि और ध्वज शिवजीके आगे चलने लगे।

नन्दिन् (स० त्रि०) नन्द णिनि। १ हर्षयुक्त, जो प्रसन्न हो। (पु०) २ शालङ्कायन, शिवका द्वारपाल। ३ मुनिभेद, एक मुनिका नाम। नन्दिकेश्वर देखो। ४ शिवगणविशेष, शिवके एक प्रकारके गण। ये तीन प्रकारके होते हैं—कनकनन्दी, गिरिनन्दी और शिव नन्दी। ५ गर्दभाण्डवृक्ष, पाकरका पेड़। ६ वटवृक्ष,

धवका पेड़। ७ वटवृक्ष, बरगदका पेड़। ८ नन्दिवृक्ष, तुनका पेड़। ९ विष्णु। १० एक प्राचीन संस्कृत वैयाकरण। इन्होंने क्षीरस्वामी, सायण, रायमुकुट आदि उद्धृत किये हैं। ११ अभिनयदर्पण नामक नाट्यशास्त्रकार। १२ जैनियोंका एक श्रुतपारग। १३ शिवके नाम पर दाग कर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल। १४ वह बैल जिसके शरीर पर गाँठें हों, ऐसा बैल खेतोंके कामका नहीं होता। इसे फकीर लोग ले कर घुमाते और लोगोंको उसके दर्शन कराके पैसे मांगते हैं। १५ उड़द। १६ गुच्छकरञ्ज, एक प्रकारका करंज। १७ शुक्ल अपामार्ग, सफेद लटजीरा।

नन्दिनी (सं० स्त्री०) नन्द-णिनि ङीप्। १ गङ्गा। २ ननन्दृ, ननद। ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य। ४ कन्या, पुत्री, बेटी। ५ जटामांसी। ६ वशिष्ठकी कामधेनु जो सुरभिकी कन्या थी। रघुवंश पढ़नेसे जाना जाता है कि राजा दिलीपने इसी गौको वनमें चराते समय सिंहसे उसकी रक्षा की थी और इसीकी आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र पाया था।

महाभारतमें लिखा है कि द्यौ नामक वसु अपनी स्त्रीके कहनेसे इसे चुरा लाये थे। वशिष्ठके शापसे उन्हें भीष्म बन कर इस पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा था। भारत १।९९ अध्यायमें विशेष विवरण देखो।

विश्वामित्र और वशिष्ठके झगड़ेकी जड़ यही नन्दिनी थी। रामायणमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन विश्वामित्र बहुतसी सेनाओंको साथ ले वशिष्ठके यहां गये। वशिष्ठने इसी गौके प्रभावसे उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया। यह विशेषता देख कर विश्वामित्रने वशिष्ठसे यह गौ मांगी; पर उन्होंने जब नहीं दिया, तब विश्वामित्र इसे जबरदस्ती ले चले। रास्तेमें नन्दिनीके चिल्लाने से भिन्न भिन्न अङ्गोंमेंसे म्लेच्छों और यवनोंकी बहुतसी सेनाएं निकल पड़ीं। उन सब सेनाओंके पराक्रमसे विश्वामित्र हार गये। रामायण आदिकाण्ड और भारत १।१६७ अध्यायमें विस्तृत विवरण देखो। ७ पत्नी, स्त्री, जोरू। ८ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। ९ स्कन्दानुचर मातृगणविशेष, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। १० व्याडि मुनिकी माताका नाम। ११ त्रयोदशाक्षरा वृत्ति विशेष, तेरह अक्षरोंके एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक पदमें १३ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ३।५।८।११।१२वां अक्षर गुरु और शेष सभी अक्षर लघु होते हैं। १२ दुर्गा। १३ हरीतकी। १४ गुच्छकरञ्ज, एक प्रकारका करंज। १५ शुक्ल अपामार्ग, सफेद लटजीरा।

नन्दिनीतनय (सं० पु०) नन्दिन्यास्तनयः। व्याडि मुनिके पुत्र। इनकी कथा बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है,—नन्दके राजत्वकालमें उपवर्ष पण्डितके तीन छात्र थे, एकका नाम था पाणिनि, दूसरेका वररुचि और तीसरेका व्याडि। उपवर्षका दूसरा नाम कात्यायन था। इन तीन छात्रोंमें पाणिनि अल्पबुद्धिके थे। तर्क वितर्कमें पराजित हो कर महादेवकी तपस्या करके ये बड़े विद्वान् हो गये। पीछे इन्होंने सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ और अनुशासन इन चार भागोंमें व्याकरणशास्त्र समाप्त किया। यह देख कर वररुचिने इनका अवशिष्टांश परिपूर्ण करनेके लिये संक्षेपमें वार्त्तिक प्रस्तुत किया। पीछे व्याड़िने इन दोनोंकी उक्तियोंके न्यायपरिदर्शनके लिये लक्ष श्लोकात्मक संग्रह ग्रन्थकी रचना की।

नन्दिनीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

नन्दिपादप (सं० पु०) नन्दवृक्ष, तुनका पेड़।

नन्दिपुराण (सं० क्ली०) नन्दिना प्रोक्तं पुराणं। एक उपपुराणका नाम। नन्दिकेश्वर देखो।

नन्दिपोतवर्मा—पल्लववंशीय एक राजा। चालुक्य-वंशीय राजा द्वितीय विक्रमादित्यने इन्हें युद्धमें परास्त कर मार डाला था।

नन्दिमित्र—जैन श्रुत-पारगोंमेंसे एक। ब्रह्मसुन्दरके बनाये हुए रायमल्लाभ्युदयकाव्यमें इनका उल्लेख है।

नन्दिमुख (सं० पु० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, एक प्रकारका पक्षी। २ व्रीहिधान्यभेद, एक प्रकारका चावल। ३ महादेव, शिव।

नन्दिमुखा (सं० स्त्री०) शूकरहित दीर्घ गोधूम, बिना टूंड़का गेहूं।

नन्दिमुखी (सं० स्त्री०) १ तन्द्रा, ऊंघ, उंघाइ। २ प्लवचर पक्षिविशेष, भावप्रकाशके अनुसार वह पक्षी जिसकी

चोंचका ऊपरी भाग बहुत बड़ा और गोल हो। इस पक्षीका मांस पित्तनाशक, चिकना, भारी, मीठा और लघु पाक, बल तथा शुक्रवर्द्धक माना जाता है। (सुश्रुत)

नन्दियाल—मन्द्राजके कर्नूल जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १५ ३०´ उ० और देशा० ७८ २८´ पू० कुन्देरु नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ११११० है। यहां १८८८ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व २३१००) रुपया है। दक्षिणी महाराष्ट्र रेलवेके खुल जानेसे यह शहर दिनों दिन वाणिज्यका प्रधान केन्द्र होता जा रहा है। यहां एक हाई-स्कूल तथा म्युनिसिपलिटीकी ओरसे एक दातव्य चिकित्सालय है।

नन्दिवह (सं० पु०) शिवका एक नाम।

नन्दिसुख—जैनोंका एक कवि। कविराजबलीचरितमें इनका विस्तृत विवरण पाया जाता है।

नन्दिवर्द्धन (सं० पु०) नन्दि वर्द्धयति हर्षयति वृध-णिच्-ल्यु। १ शिव, महादेव। २ पक्षान्त। ३ पुत्र, बेटा, लड़का। ४ मित्र, दोस्त। ५ विमानविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका विमान। ६ निमिवंशीय राजविशेष, निमि वंशके एक राजाका नाम। ७ मगध देशके मौर्यवंशीय एक राजाका नाम। ८ प्राचीन वास्तुशास्त्रके अनुसार वह मन्दिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियोंसे युक्त हो और जिसमें २० चूड़ हों। (त्रि०) ९ आनन्दवर्द्धक, आनन्द बढ़ानेवाला, जो आनन्द बढ़ावे।

नन्दिवर्म्मन्—पल्लववंशीय एक राजा।

नन्दिवर्म्मा पल्लवमल्ल—पल्लववंशीय एक राजाका नाम।

नन्दिवारलक (सं० पु० स्त्री०) मत्स्यभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारकी मछली जो समुद्रमें होती है। तिमि, तिमिङ्गिल, निवारक और नन्दिवारलक ये सब मछलियां समुद्रमें होती हैं।

नन्दिवृक्ष (सं० पु०) नन्दीवृक्ष देखो।

नन्दिद्रुम (सं० पु०) कसाव, लहद।

नन्दिषेण (सं० पु०) कार्त्तिकेयका अनुचर गणविशेष।

नन्दिषेण—१ अजित-शान्तिस्तवनके प्रणेता। २ कुमारके एक अनुचरका नाम।

नन्दिस्वामिन्—एक वैयाकरण। वोपदेवटीकाओंमें इनका नामोल्लेख है।

नन्दी (सं० पु०) नन्दिन् देखो।

नन्दी—१ बङ्गालके लावर्णगोत्रीय राढ़ी-ब्राह्मणोंका एक ग्राम। २ बङ्गालके बङ्गज वैद्य, कायस्थ, मोदक, नापित, कांसारी, तांती, तिलि और बारुइयोंकी एक उपाधि। ३ बङ्गालके साहाजाति वणिकोंकी एक श्रेणी।

नन्दीकोटकूर—मन्द्राजके कर्नूल जिलेका उपविभाग और तालुक। यह अक्षा० १५ ३८´ और १६ १२´ उ० तथा देशा० ७८ ४´ और ७८ ३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११५८ वर्गमील और लोकसंख्या १०४१६० है। इसमें १०२ ग्राम लगते हैं। राजस्व प्रायः २८०००० रु०का है। जिला भरमें यह सबसे बड़ा तालुक है किन्तु इसका अधिकांश जङ्गलमय है। तुङ्गभद्रा और कृष्णा नदी इसके मध्य हो कर बह गई हैं। यहांका वार्षिक वृष्टिपात २८ इञ्च है। आबहवा अस्वास्थ्यकर है। मनुष्य हमेशा ज्वरसे पीड़ित रहते हैं।

नन्दोद (सं० पु०) सम्प्रयुक्त अथवा गंगा किनारेका।

नन्दीपति (सं० पु०) शिव, महादेव।

नन्दीमुखी (सं० पु०) नन्दिमुख देखो।

नन्दीवृक्ष (सं० पु०) १ बोद्वयदेशप्रसिद्ध सुगन्धि वृक्षविशेष, बोद्वय देशमें होनेवाला सुगन्धित तुन नामक पेड़। (Cedrela toona) पर्याय—तूणीक, तुणी, पीतन, कच्छप, नन्दी, कुठेरक और आपीन। गुण—पाक कटु, तिक्त, शीतल, पित्त, रक्त, दाह, शिरःपीड़ा, खेद और कुष्ठ नाशक, सुगन्ध, पुष्टि तथा वीर्यदायक माना गया है।

विशेष विवरण तुन शब्दमें देखो।

२ अश्वत्थाकार क्षीरवान् अनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष, पीपलके आकारका दूध देनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसका पर्याय—तुण, कुबेरक, कुणि कच्छ कान्तलक, तुणि, नन्दिवृक्ष, तूणि, तुन्द, नन्दिक और नन्दि वृक्ष है।

मिथिलादि प्रदेशोंमें यह तुणी या तुन नामसे प्रसिद्ध है। इस वृक्षके विषय मतभेद पाया जाता है।

अमरसिंहने इसके कई एक पर्याय लिख दिये हैं जिन्हें भावमिश्रप्रोक्त अर्थके साथ मिलानेसे कुछ भी अर्थ नहीं पड़ता है। कोई कोई कहते हैं, कि तुन और तून ये दोनों पृथक् पृथक् जातिके वृक्ष हैं जिनमेंसे तून

नामक वृक्ष अमरटीका तुन्द वा तुम शब्दका और राज निर्घण्टोक्त तुनी शब्दके अपभ्रंशसे तुन शब्द हुआ है। अमरटीकामें भरतमल्लिकने इसे पीपलके आकारका चोरवान् वृक्ष बतलाया है। यह अश्वत्थाकारवृक्ष भावप्रकाशोक्त स्थानीवृक्ष है और स्थानभेदमें लोग इसे नन्दीवृक्ष भी कहने लगे हैं। अमर और राजनिर्घण्टोक्त नन्दीको तूनी कहते हैं। २ मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

नन्दीश (सं॰ पु॰) नन्दी ईशयः। १ नन्दी। २ भरतोक्त तालभेद, तालोंके सात भेदोंमेंसे एक। ३ शिव, महादेव।

नन्दीश्वर (सं॰ पु॰) नन्दिनः गणविशेषस्य ईश्वरः। १ शिव। २ नन्दीशताल। ३ शिव द्वारपाल। इनका विषय वराहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

त्रेतायुगमें नन्दी नामक एक मुनि शिवकी तपस्या कर रहे थे। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर शिवने उन्हें अभिलषित वर मांगनेको कहा। इस पर नन्दीने कहा था, 'यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट हैं, तो मुझे यही वर दीजिये जिससे आपके प्रति मेरी अचला भक्ति हो।' यह सुन कर शिवजी बोले, 'तुम मेरे समान रूपविशिष्ट और त्रिलोचन होगे, तथा सब गुणोंसे विभूषित और जरामरणरहित हो कर सुखपूर्वक रहोगे। देवदानव सभी तुम्हारे सम्मान करेंगे और तुम पार्श्वचरोंमें प्रधान समझे जाओगे। आजसे तुम्हारा नाम नन्दीश्वर रखा गया और तुम देवताओंमें प्रधान हुए। यदि कोई तुमसे द्वेष करेगा, तो वह मानो मुझसे ही द्वेष करता है। आजसे तुम मेरी दाहिनी ओर रहो। (वराहपु॰) कूर्मपुराणमें भी इनका विवरण लिखा हुआ है।

४ एक कामशास्त्ररचयिता। वात्स्यायनके कामसूत्रमें और पञ्चशायक नामक ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत है। ५ शिवका एक गण। पुराणानुसार यह तोटकका अवतार माना जाता है। कहते हैं, कि यह वामन है, इसका रंग काला है और सिर मुंड़ा हुआ तथा मुंह बन्दर-सा है।

नन्दीश्वरआचार्य गोपालाश्रमरूप—श्रद्दे तब्रह्मविद्यापद्धति नामक दार्शनिक ग्रन्थके रचयिता।

नन्दीसरस्. (सं॰ क्ली॰) इन्द्रसरोवर।

नन्देर—नांदेर देखो।

नन्दोड़—नांदोड़ देखो।

नन्दोड़—गुजराती ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। सूरतसे १६ मील उत्तर-पूर्व राजपिप्पलाई राज्यको राजधानी नांदोड़ स्थानके नामानुसार इस श्रेणीका नाम पड़ा है। इनमेंसे अनेक कृषिजीवी और कुछ भिक्षुक भी हैं।

नन्द्यादि (सं॰ पु॰) पाणिनि उक्त शब्दगणविशेष। इस नन्द्यादिगणके बाद ल्यु प्रत्यय लगता है। यथा—नन्दन, वाशन, मदन, दूषण, साधन, वर्द्धन, शोभन, रोचन (संज्ञा अर्थमें सह तप और दम धातु) सहन, तपन, दमन, जल्पन, रमण, दर्पण, संक्रमण, सङ्कर्षण, संहर्षण, जनार्दन, यवन, मधुसूदन, विभीषण, लवण, चित्तविनाशन, कुलदमन, शत्रुदमन। (पाणिनि)

नद्यावर्त्त (सं॰ पु॰) नद्यौ नन्दिजनको आवर्त्तो यत्र। गृहविशेष, एक प्रकारको इमारत। ऐसी इमारतके पश्चिम और द्वार नहीं रहना चाहिए। यह मनुष्योंके लिए शुभजनक है। २ ईश्वर-मन्त्रविशेष। ३ तगरवृक्ष, तगरका पेड़। ४ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। इसका गुण—मंग्राही, कफ और पित्तनाशक है। ५ यात्रायोगभेद। इसे नद्यावर्त्तक योग भी कहते हैं।

नद्यावर्तक देखो।

नन्नय (नन्नभट्ट)—एक वैयाकरण। ये जातिके ब्राह्मण थे। इन्होंने सबसे पहले तैलङ्ग भाषामें व्याकरण तथा महाभारतका अधिकांश अनुवाद किया था। ये राजमहेन्द्रीके चालुक्य-वंशीय राजा विष्णुवर्द्धनके समयमें आविर्भूत हुए थे।

नन्नसूरि—सर्वदेवके गुरु और चन्द्रगच्छके आचार्य। ये बप्पभट्टसूरिके शिष्य थे। ८८५ सम्वत्‌में इनकी मृत्यु हुई।

नन्निलम्—१ मन्द्राजके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा॰ १०° ४४' से ११° १' उ॰ और देशा॰ ७९° २७' से ७९° ५१' के पूर्वमें अवस्थित है। भूपरिमाण २८२ वर्गमील और लोकसंख्या २१६११८ है। इसमें दो शहर और २४२ ग्राम लगते हैं। राजस्व ११२३००० रु॰ है। यहां वर्षाको शिकायत नहीं है।

२ उक्त तालुकका एक शहर, यह अक्षा॰ १०° ५२'

नपुंसक गर्भवतीका लक्षण—जिस गर्भवती स्त्रीके गर्भकोषमें अर्बुदाकार अर्थात् गोलाकृति आधे भागके फलके सदृश मालूम पड़ता है और दोनों पार्श्व उन्नत दीख पड़ते तथा पेटका अगला भाग कुछ ऊंचा हो जाता है, उसीके गर्भसे नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है।

महाभाष्यमें इस शब्दको पुंलिंग बतलाया है। २ कायर, डरपोक।

नपुंसकता (सं॰ स्त्री॰) १ नपुंसक होनेका भाव, हिजड़ापन। २ एक प्रकारका रोग। इसमें मनुष्यका वीर्य बिलकुल नष्ट हो जाता है और वह स्त्री-सम्भोगके योग्य नहीं रह जाता। ३ नामर्दी।

नपुंसकत्व (सं॰ पु॰) नपुंसकता, नामर्दी।

नपुंसकमन्त्र (सं॰ पु॰) जैनियोंके अनुसार वह मन्त्र जिसके अन्तमें 'नमः' हो।

नपुंसकवेद (सं॰ पु॰) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारका नोकषाय कर्म। इसके उदयसे स्त्रीके साथ भी संभोग करनेकी इच्छा होती है और बालक या पुरुषके साथ भी।

नपुमस् (सं॰ पु॰ क्ली॰) न पुमान् आर्षत्वात् न नपुंसकभाव। क्लीब, हिजड़ा।

नप्ता (हिं॰ स्त्री॰) लड़की या लड़केकी सन्तान, नाती या पोता।

नप्तृ (सं॰ पु॰) न पतन्ति पितरो येन नप-तृच् प्रत्ययेन साधु (नप्तृ नेष्टृत्वष्ट्रिति। उण्. २।८६) पुत्र वा कन्याका पुत्र, नाती या पोता।

पौत्रके जैसा नाती भी उद्धार करता है, इसीसे दुहिताके पुत्रको भी नप्तृ कहा है। शास्त्रमें भी लिखा है—
"दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्।" (मनु)

नप्त्रिका (सं॰ स्त्री॰) १ चटकविशेष, गौरैया नामकी चिड़िया। इसका मांस हलका, ठंढा, मीठा, कसैला और दोषनाशक माना जाता है। २ गुडूचिका, गुरुच, गिलोय।

नप्त्री (सं॰ स्त्री॰) नप्तृ-ङीप् (ऋन्नेभ्यो ङीप्। पा ४।१।५) पोती या नातिन। पर्याय—पौत्री, सुतात्मजा, पौत्रिका।

नफर (फा॰ पु॰) १ दास, सेवक, नौकर। २ व्यक्ति, जैसे दस नफर मजदूर। इस अर्थमें इस शब्दका व्यवहार केवल बहुत छोटा काम करनेवालोंकी संख्या आदि प्रकट करनेके लिये होता है।

नफरत (फा॰ स्त्री॰) घृणा, घिन।

नफरी (फा॰ स्त्री॰) १ एक मजदूरकी एक दिनकी मजदूरी। २ मजदूरके एक दिनका काम। ३ मजदूरोंका दिन।

नफसानफसी (अ॰ स्त्री॰) १ वह विवाद जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थका ध्यान रख कर किया जाय, खींचतान। २ वैमनस्य, लड़ाई, धक्का धक्की।

नफा (अ॰ पु॰) लाभ, फायदा।

नफासत (अ॰ स्त्री॰) नफीस होनेका भाव, उमदापन।

नफीरी (फा॰ स्त्री॰) तुरही, शहनाई।

नफीस (अ॰ वि॰) १ उत्तम, उमदा, बढ़िया। २ स्वच्छ, साफ। ३ सुन्दर, बढ़िया।

नबी (अ॰ पु॰) ईश्वरका दूत, पैगम्बर, रसूल।

नबेड़ना (हिं॰ क्रि॰) १ निपटना, तै करना। २ अपने मतलबकी चीज ले लेना और शेषको छोड़ देना, चुनना।

नबेड़ा (हिं॰ पु॰) न्याय, फैसला, निपटारा।

नबेरना (हिं॰ क्रि॰) नबेड़ना देखो।

नबेरा (हिं॰ पु॰) नबेड़ा देखो।

नब्दीगर (फा॰ पु॰) वह मनुष्य जो चारजामा बनाता हो।

नब्ज (अ॰ स्त्री॰) हाथकी रक्तवहा नाली जिसकी चालसे रोगकी पहचान की जाती है, नाड़ी।

नब्बे (हिं॰ वि॰) १ जो गिनतीमें पचास और चालीस हो, सौसे दस न्यून। (पु॰) २ वह संख्या जो चालीस और पचासके मेलसे बनती हो।

नभ (सं॰ वि॰) नभ-अच्। १ हिंसक, मारनेवाला। (पु॰) २ श्रावण मास, सावनका महीना। ३ भाद्र मास, भादोंका महीना। ४ आकाश, शून्य स्थान। ५ चाक्षुष मन्वन्तरमें सप्तर्षिभेद, चाक्षुष मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम। ६ चाक्षुष मुनिके एक पुत्रका नाम। ७ महादेव, शिव। ८ रामवंशीय राजभेद, हरिवंशके अनुसार रामचन्द्रके वंशके एक राजाका नाम। ९ शून्य, सुन्ना, सिफर। १० आश्रय, आधार। ११ पास, निकट, नजदीक। १२ राजा नलके एक पुत्रका नाम। १३ अभ्रक, अबरक।

नभा—एक वंशका नाम। चौधरीकुलके ज्येष्ठ पुत्र तिलकसे नभावंशकी उत्पत्ति है। तिलकके पौत्र हमीर सिंहने १७५५ ई०में नभा नामक नगर बसाया। हमीर एक साहसी और उद्यमशील सरदार थे। ये कई गाँव जीत कर पतियालाके आलासिंहके साथ मिल गये और सरहिन्दके अफगान शासनकर्त्ता जैनखाँके साथ लड़ाई छेड़ दी। उस युद्धमें जैनखाँ मारे गये और हमीरने आमदी नामक प्रदेशको अपने दखलमें कर लिया।

१७७४ ई०में भिन्दके राजा गजपतसिंहने हमीरको पराजित और कैद कर उनका सङ्गर नामक नगर लिया था। हमीरके पुत्र यशोवन्त सिंहने अंगरेजोंसे मित्रता कर ली। गवर्नर-जेनरलकी ओरसे उन्हें एक सनद मिली जिसमें लिखा था, कि उन्हें किसी प्रकारका कर नहीं देना होगा और वे अपने सभी पूर्व स्वत्वोंका उपभोग कर सकते हैं। १८०४ ई०में होलकरने जब नभामें पहुंच कर अंगरेजोंके विरुद्ध यशोवन्तसे सहायता मांगी थी, तब उन्होंने असङ्कुचित भावसे उनकी प्रार्थना नामंजूर कर दी थी। गोरखा-संग्राममें यशोवन्तने अंग्रेजोंको खासी मदद दी थी और काबुल युद्धमें उन्हें छः लाख रुपये कर्ज दिये थे। १८४० ई०में यशोवन्तका देहान्त हुआ। उनके पुत्र देवेन्द्रसिंहमें शासनकर्त्ताके उपयुक्त गुण न थे, बचपनसे वे खुशामदी टट्टुओंसे घिरे रहते थे, इस कारण उनको क्षमता और प्रभुत्वके विषयमें कुछ भ्रमात्मक विश्वास जम गया था। उन चापलूसोंने देवेन्द्रसिंहको विश्वास दिलाया था, कि अंग्रेजोंको शक्ति दिनों दिन ह्रास होती जा रही है। थोड़े ही दिनके भीतर नभाराज्य सारा पञ्जाबका प्रधान हो जायेगा। इस भ्रममें पड़ कर १८४५ ई०के सिख-युद्धमें अंग्रेजी सेनाको न तो खाद्यका प्रबन्ध कर दिया और न किसी प्रकारकी सहायता ही दी। इस अपराधमें अंग्रेजोंने देवेन्द्रसिंहको सिंहासनसे अलग कर दिया और उनके लड़के भरपुरसिंहको जिसकी उमर केवल सात वर्षकी थी, उनकी जगह पर बिठाया। भरपुरसिंहको नाबालिगी दूर होनेके कुछ समय बाद ही सिपाहीविद्रोह शुरु हुआ। युवा राजाने इस समय जहां तक हो सका, अकपट चित्तसे अर्थ और रसद दे कर अंग्रेजोंको विशेष सहायता की। उस उपकारके प्रत्युपकार स्वरूप अंग्रेजोंने उन्हें लुधियाना प्रदेशका प्रधान बना कर बहुत प्रकारके राजसम्मानोंसे विभूषित किया था। अम्बाला दरबारमें लार्ड कैनिङ्गने उनकी कार्यावलीका उल्लेख करते हुए उन्हें यथेष्ट धन्यवाद दिया। १८६३ ई०में राज-प्रतिनिधि लार्ड एलगिनने उन्हें व्यवस्थापक सभाका आसन प्रदान किया। किन्तु उसी वर्ष उनका देहान्त हुआ। वे अपुत्रक थे इस कारण उनके मरने पर उनके छोटे भाई भगवान्सिंह राजगद्दी पर बैठे। नाभा देखो।

नभाक (सं० क्ली०) नभ्नाति व्याप्नोतीति नभ-आक (पिनाकादयश्च। उण् ४।१५) १ तमस, अन्धकार, अँधेरा। २ राहु। ३ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम।

नभि (सं० स्त्री०) चक्र, पहिया।

नभीत (सं० त्रि०) न भीतः, साकुलकात् नञो न अ। जिसे डर न हो, निडर।

नभोग (सं० त्रि०) नभोगच्छति गम-ड। १ नभश्चर, पक्षी, देवता और ग्रह आदि। (पु०) २ जन्मकुण्डलीमें लग्नस्थानसे दशवां स्थान। ३ दशम मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, दशवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम।

नभोगज (सं० पु०) नभसि गज इव। मेघ, बादल।

नभोगति (सं० स्त्री०) नभसि आकाशे गतिः। १ आकाशगमन। (त्रि०) नभसि गतिर्यस्य। २ जो आकाशमें विचरण करता हो।

नभज (सं० त्रि०) नभसि आकाशे जायते जन-ड। आकाशजात, जो आकाशमें उत्पन्न हो।

नभोल (सं० त्रि०) नभस्-ज्ञ-क्विप्। आकाशमें व्याप्त, जो आकाशमें हो।

नभोद (सं० पु०) विश्वदेवभेद, हरिवंशके अनुसार एक विश्वदेवका नाम।

नभोदुह (सं० पु०) नभसः दोग्धि प्रपूरयति जलादिकमिति नभस्-दुह-क। मेघ, बादल।

नभोदीप (सं० पु०) नभसि दीप इव। मेघ, बादल।

नभोधूम (सं० पु०) नभसि धूम-इव। मेघ, बादल। मेघ आकाशमें धूएंकी तरह फैला रहता है, इसीसे इसको नभोधूम कहते हैं।

इन्होंने 'शाहनामा' नामक ग्रन्थ लिखना शुरू कर दिया था। किन्तु कुछ दिन बाद ही इनकी मृत्यु हो गई। इनकी बनाई हुई अनेक कविता-पुस्तक मिलती हैं जिनमेंसे एकका नाम हरान-वश्रा-इस्क है। आलमगीरसे गोलकुण्डा जीते जाने पर इन्होंने जो एक विद्रूपात्मक काव्य लिखा था, उसीका सबसे अधिक आदर होता है। उस काव्यमें ग्रन्थकारने क्षुद्र सेनापतिसे ले कर सम्राट् तकको भी बनानेसे न छोड़ा था। उन्होंने प्राच्य पाकप्रणालीके सम्बन्धमें एक उत्कृष्ट पुस्तक भी लिखी है। कोई कोई इन्हें नमत्अली खाँ भी कहते थे।

नमत (सं० पु०) नम्यते इति नम-अतच्, (भृ-मृ-दृशि यजीति। उण् ३।११०) १ प्रभु, स्वामी। २ धूम, धूआँ। ३ नट। (त्रि०) ४ नम्र, जो झुके।

नमदा (फा० पु०) जमाया हुआ ऊनी कम्बलका कपड़ा।

नमदेव—महिसूरके दर्जियोंका एक विभाग। ये सबके सब कृष्णोपासक हैं।

नमन (सं० क्ली०) नम-ल्युट्। १ प्रणाम, नमस्कार। २ झुकाव।

नमनकुल—सिंहलद्वीपका एक पर्वत। यह प्रायः ७००० फुट ऊँचा है।

नमनीय (सं० क्ली०) नम-अनीयर्। १ नमनयोग्य, जो झुक सके या झुकाया जा सके। २ नमस्कार करने योग्य, आदरणीय, पूजनीय, माननीय।

नमयिष्णु (सं० त्रि०) नम-णिच् बाहुलकात् इष्णुच्। नमनशील, आदर करने योग्य।

नमस् (सं० अव्य०) नाम बाहुलकात् असुन्। १ नमन, नमस्कार। अपनी हीनता दिखलाये बिना प्रणाम नहीं हो सकता, इस कारण स्वापकर्ष-बोधक व्यापारका नाम नमः है। २ त्याग, छोड़ देना। 'पुष्पमिदं विष्णवे नमः' विष्णुके उद्देश्यसे पुष्पका त्याग, यहाँ पर नमस् शब्दके प्रयोगसे त्यागका बोध होता है, अर्थात् पुष्पमें अपना स्वत्व नहीं रहा, वह विष्णुका हो गया। नम्यते इति कर्मणि असुन्। ३ अन्न, अनाज। ४ वज्र। ५ यज्ञ। ६ दान। ७ स्तोत्र।

नमस (सं० पु०) नमतीति नम-असच्, 'अत्यविचमित-मीति। उण् ३।११७) अनुकूल।

नमसान (सं० त्रि०) नमस्य इति नाम धातोः शानच्, ततो अल्लोपयलोपौ। नमस्कारशील, नमस्कार करने योग्य।

नमसित (सं० त्रि०) नमस्य कर्मणि क्त, ततो य लोपः। कृत-नमस्कार, जिसे नमस्कार किया गया हो, पूजित। पर्याय—पूजित, नमस्यित, अर्हित, अपचायित, अर्चित और अपचित।

नमस्कर्त्ता (सं० पु०) महादेव, शिव।

नमस्कार (सं० पु०) नमः शब्दस्य कारः करणं यत्र। १ विषभेद, एक प्रकारका विष। नमः करणं, नमस्-कृ घञ्। २ नति, प्रणाम, स्वापकर्षबोधक व्यापार, झुक कर अभिवादन करनेकी क्रिया। इसका विषय कालिका-पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—नमस्कार तीन प्रकारका है, कायिक, वाचिक और मानसिक। फिर हर एकके तीन तीन भेद हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। दोनों जानु और मस्तकसे पृथ्वी स्पर्श कर जो प्रणाम किया जाता है, उसे उत्तम कायिक नमस्कार, केवल जानु द्वारा पृथ्वी स्पर्श कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे मध्यम और जानु वा मस्तक इन दोमेंसे किसी द्वारा भूमि स्पर्श न करके केवल दोनों हाथोंसे मस्तकमें लगा कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे अधम नमस्कार कहते हैं। स्वयं गद्य वा पद्यमय उत्तम श्लोकादि की रचना कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे उत्तम वाचिक, पौराणिक वा वैदिक नमस्कार मन्त्र पढ़ कर जो नमस्कार किया जाता है, उसे मध्यम वाचिक और भाषा वाक्य उच्चारण करके जो नमस्कार किया जाता है, उसे अधम वाचिक नमस्कार कहते हैं। इष्ट, मध्य और अनिष्टगत मनोविदज्ञापनरूप त्रिविध मानस नमस्कार भी तीन प्रकारके हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। त्रिविध नमस्कारोंमेंसे कायिक नमस्कार सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकारका नमस्कार करनेसे देवगण सन्तुष्ट होते हैं। (कालिकापु० ७१ अ०)

रातको नमस्कार वा आशीर्वाद करना निषेध है। करनेसे 'प्रातः' इस शब्दका व्यवहार करना होता है।

"रात्रौ नैव नमस्कुर्यात्तेनाशीरभिचारिका।
अतः प्रातःपदं दत्त्वा प्रयोक्तव्ये च ते उभे॥" (भारत)

देवता, ब्राह्मण और गुरु इन पर जब नजर पड़े तभी उन्हें नमस्कार करना चाहिये। जो मनुष्य इन्हें देख कर प्रणाम नहीं करता, वह जब तक चन्द्र और सूर्यकी स्थिति है, तब तक कालसूत्रमें जाता और व्याधि तथा भवन भो कर रहता है।

"देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यस्तु सम्भ्रमात्।
स कालसूत्रं प्रयाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
ब्राह्मणश्च दृष्ट्वा ... न नमेद्यो नराधमः।
यावज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्यवनो भवेत् ॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्म)

देवायतन और इन्होंको भी प्रणाम करना चाहिए, नहीं करनेसे वह प्रायश्चित्तके योग्य होता है। किसीके मतानुसार देवायतन-नमस्कार निषिद्ध है। यथा, यज्ञ धारा और देवतायतनको देख कर प्रणाम नहीं करना चाहिए। शूद्र यदि बैठ कर प्रणाम करे और ब्राह्मण 'दीर्घायु' नाम करो, इस प्रकार आशीर्वाद दे, तो दोनों नरकगामी होते हैं। दूरस्थित, जलमध्यस्थ, धावित मद गर्वित, क्रुद्ध और शोचित व्यक्तिको प्रणाम करना मना है। हाथमें पुष्प या जल लिए और शरीरमें तेल लगाए प्रणाम करना भी निषिद्ध है। जो ऐसी अवस्थामें प्रणाम करता है अथवा आशीर्वाद देता है, दोनों ही नरक गामी होते हैं।

प्रणाम करनेके पहले ही अभिवादन करना चाहिये नहीं करनेसे उसके दुष्कृतका भागी होना पड़ता है। ब्राह्मणके नमस्कार करने पर उसे स्वस्ति, क्षत्रियको आयुष्मन्, वैश्यको 'वर्द्धताम्' अर्थात् वृद्धि हो और शूद्रको आरोग्य लाभ करो, इस प्रकार आशीर्वाद देना चाहिये।

(मलमासतत्त्व)

पिता या माताका छोटा भाई यदि उससे उमरमें कम हो, तो उसे प्रणाम नहीं करना। किन्तु गुरुपत्नी, ज्येष्ठ भ्रातृवधू और विमाताको उमर कम होने पर भी उसे नमस्कार करना होता है।

"मातुः पितुः कनीयांसं न नमेद्वयसाधिकः।
नमस्कुर्याद्गुरोः पत्नीं भ्रातृभार्यां विमातरम् ॥" (धम)

नमस्कार करने योग्य ये सब व्यक्ति हैं—उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता महीपति ममेरा भाई, मातामह पितामह, बन्धु, ज्येष्ठ चाचा और माता, मातामही, पितामही, बड़ी बहन, सास, ददिया सास, धात्री और गुरुपत्नी इन सब गुरुजनो को देखनेसे सोच या खड़ा हो कर कृताञ्जलि हो प्रणाम करना चाहिये।

(कूर्मपुराण ११ अ०)

गुरुपत्नी यदि युवती हो, तो उसे पैर छू कर प्रणाम नहीं करना चाहिये।

"गुरुपत्नीस्तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः।
कुर्वीत वन्दनं भूमौ असावहमिति ब्रुवन् ॥"

(कूर्मपु० ११ अ०)

नमस्कारी (सं० स्त्री०) नमस्कारस्तदाचारविशिष्ट पत्र सङ्कोचोऽस्त्यस्या इति, अच् गौरादित्वात् ङीष्। १ खदिरिकाख्या, लज्जालू। २ वराहक्रान्ता। अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि इसकी पत्तियां सङ्कुचित होती हैं, और अञ्जलि शब्द नमस्कारव्यञ्जक है इसीसे इसका नाम नमस्कारी हुआ है। ३ नील दूर्वा, नीली घास।

नमस्कार्य (सं० त्रि०) नमस्-कृ ण्यत्। पूज्य, नमस्कार करने योग्य, वन्दनीय।

नमस्क्रिया (सं० स्त्री०) नमस् करोति, नमस् कृ श, टाप्। नमस्कार, पूजा।

नमस्ते—एक वाक्य जिसका अर्थ है–आपको नमस्कार।

नमस्य (सं० त्रि०) नाम धातु, कर्मणि यत्, यद्वोप-कोपी। पूज्य नमस्कारयोग्य, आदरणीय।

नमस्या (सं० स्त्री०) नमस्य भावे-अ, स्त्रियां टाप्। पूजा।

नमस्यु (सं० त्रि०) नमस्य छन्दसि उ। १ नमस्करणीय, नमस्कार करनेके योग्य, आदरणीय। (पु०) २ पुरुवंशीय प्रवीरके पुत्र, पुरुवंशके एक राजाका नाम।

नमस्वत् (सं० त्रि०) नमस् मतुप्, मस्य व। अन्नवत्, अन्नविशिष्ट, जिसमें अनाज हो।

नमस्विन् (सं० त्रि०) नमस्-अस्त्यर्थे विनि। नमस्कार स्तोत्रयुक्त।

नमाज (फा० स्त्री०) उपासना, मुसलमानोंकी ईश्वर प्रार्थना। कुरानमें दिनभर चार बार नमाज पढ़नेकी व्यवस्था है यथा—सायङ्कालमें (सफा) और प्रातःकालमें (फजा) ईश्वरका महिमा-कीर्त्तन, अपराह्नमें (आसर)

और मध्याह्नमें (जहर) ईश्वरका स्तोत्रपाठ ; इसके अति-रिक्त रातके प्रथम भागमें एक बार और भी नमाज पढ़ी जाती है। नमाजके पहले हाथ पैर धो कर आचमन करना होता है। इस प्रकारके आचमनको 'वजु' कहते हैं। पहले सीधा खड़ा हो कर पश्चिम अर्थात् मक्काकी ओर मुंह किये नमाज पढ़ते हैं। कान छूना, घुटने टेक कर बैठना, शरीरको आधा झुका कर खड़ा होना, जमीन पर लेट रहना और सीधा खड़ा होना, ये सब नमाजके प्रधान अङ्ग हैं।

नमाजके समय एक मुल्ला मस्जिद पर चढ़ कर बहुत जोरसे ईश्वरका आह्वान करता है। इस आह्वानको 'आजान' और आह्वानकारीको मुवेज्जिन कहते हैं। निम्न-लिखित वाक्य उच्चारण करके आह्वान किया जाता है ; जैसे—ईश्वर सभीसे बड़े हैं (चार बार), मैं प्रमाण देता हूं, कि एक ईश्वरके सिवा दूसरा देवता नहीं है (दो बार), मैं प्रमाण देता हूं, कि महम्मद ईश्वरके प्रेरित हैं (दो बार), उपासनाके लिये यहां आवो, (दो बार)। मुक्तिके लिये यहां आवो (दो बार), ईश्वर सभीसे बड़े हैं। प्रात:कालमें जो उपासना की जाती है, उसमें कहा जाता है, कि निद्राकी अपेक्षा उपासना श्रेष्ठ है। भारत-वर्षके युक्त-प्रदेशीय मुसलमान कई प्रकारकी नमाज पढ़ते हैं; यथा—फजरकी नमाज अर्थात् प्रातरुपासना, जहरकी नमाज मध्याह्नोपासना, आसरकी नमाज अर्थात् अपराह्नोपासना, मग्रिबकी नमाज—अस्तोपासना, आयसाकी नमाज—सन्ध्योपासना, नमाज इसराक—सवेरे ७॥ बजेके समय, नमाज चास्त—सवेरे ८ बजेके समय, नमाज ताहाज्जुर—रात १२ बजेके बाद और नमाज-ईयमाजा अर्थात् सत्कारकालीन उपासना।

नमाज समाप्त हो जाने पर उपासक ईश्वरका अनुग्रह मानों हस्तगत करनेकी आशासे अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है और पीछे उस अनुग्रहको अपने सर्वाङ्गमें सञ्चा-रित कर देता है। मुसलमानोंका स्तोत्र अरबी भाषामें लिखा है।

नमाजगाह (फा० स्त्री०) मसजिदमें नमाज पढ़नेकी जगह।

नमाजबंद (फा० पु०) कुश्तीका एक प्रकारका पेच।

नमाजी (फा० पु०) १ नमाज पढ़नेवाला। २ वह कपड़ा जिस पर खड़े हो कर नमाज पढ़ी जाती है।

नमि—एक साधु, रुद्रटके काव्यालङ्कारके एक टीकाकार। ये शालिसूरिके छात्र थे। दर्शनसप्ततिका नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। इन्होंने उक्त अलङ्कारटीका ११२५ ई० में बनाई है। वह टीका बड़े कामकी चीज है।

नमि—एक कवि। इनका पूरा नाम अमीर मुहम्मद आजम नमी था। ये अकबरकी राजसभाके एक सभा-सद थे। इनके बनाए हुए पांच काव्य मिलते हैं। जिनमें दश हजार श्लोक हैं। १५३३ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

नमिउल्‌नाम—एक विख्यात अरब देशीय कवि। १००८ ई०में इनका देहान्त हुआ।

नमित (सं० त्रि०) नमोऽस्य सञ्जातः इति तारकादि-त्वादितच्, वा नम णिच्-क्त, वाहुलकात् ह्रस्वः। नामित, झुका हुआ।

नमिस (फा० स्त्री०) जाड़ेमें खाये जानेका दूधका फेन जो विशेष प्रकारसे तैयार किया जाता है। पहले दूधको उतार कर उसमें चीनी या मिसरी, इलायची, केसर आदि मिला देते हैं। बाद उसे रात भर ओसमें छोड़ देते हैं और बहुत सवेरे उसे मथानीसे मथते हैं। ऐसा करनेसे उससे फेन निकलता है।

नमी (सं० पु०) नम वाहुलकात् ई। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। ये इन्द्रके उपासक थे। इन्द्रने इन्हींके लिये नमुचिको मारा था।

नमी (फा० स्त्री०) आर्द्रता, तरी, गीलापन।

नमीनाथ—जैनोंके वर्त्तमान अवसर्पिणीके इक्कीसवां तीर्थङ्कर। इनका जन्म इक्ष्वाकु-वंशमें हुआ था। इनके पिताका नाम विजय और माताका नाम विप्रा था। इनकी च्यवनतिथि आश्विनी पूर्णिमा है और विमानका नाम है प्राणतदेव। श्रावणी कृष्णाष्टमीके आश्विनी नक्षत्र-की मेषराशिमें मथुरा नगरमें इनका जन्म हुआ। ८ मास ८ दिन ये गर्भमें रहे थे। इन्हें कमलका चिह्न था, शरीर-मान १५ धनु, गात्रवर्ण पीला और आयुष्काल १०००० वर्ष था। इन्हें राजाकी उपाधि थी और इन्होंने विवाह भी किया था। मथुरा नगरमें इनकी दीक्षा हुई। इनका दीक्षासङ्ग १००० हैं। २० दिन उपास रह कर इन्होंने

नम्बिआरुणार—एक साधु पुरुष। इनका दूसरा नाम सुन्दरमूर्त्ति है। इनके बनाये हुए कुछ स्तोत्र मिलते हैं। ये चोलवंशीय राजा राजदेवके वक्त विद्यमान थे।

नम्बुरी—मलबार उपकूल (प्राचीन केरलदेश)का उच्च श्रेणीका ब्राह्मण। महात्मा शङ्कराचार्य नम्बुरी ब्राह्मण थे।

नम्बुका अर्थ वेद और तिरीका अर्थ अवगत होना है, अर्थात् ये लोग वेदसे जानकार हैं। इसीसे इस श्रेणीके ब्राह्मणोंका नाम 'नम्बुत्तिरी' पड़ा है और इसीका विकृत रूप नम्बुरी है।

केरलदेश ही इस श्रेणीके ब्राह्मणोंकी आवासभूमि है। जहां पर ये लोग घर देते हैं, वह स्थान 'मन' वा 'इल्लोम' कहलाता है। इनके घरका प्राङ्गणदेश बहुत बड़ा होता है जिसके एक ओर नागोंके लिए स्थान और दूसरी ओर शवदाहके लिए घर श्मशानरूपमें निर्दिष्ट रहता है। इनकी स्त्रियोंकी 'अन्तर्जना' अथवा 'अगत-मार' कहते हैं। स्त्रियां मोटा कपड़ा पहनती, हाथोंमें पीतलका कंकण, गलेमें सुवर्ण-कण्ठभूषण और कानोंमें कनेठियोंका व्यवहार करती हैं। ये लोग कभी नाक नहीं छिदाती और न कपाल पर कुङ्कुम ही पहनती हैं। केवल ललाट पर चन्दनका तिलक और आंखोंमें काजल लगाती हैं।

हर एक अन्तर्जनाके पास एक एक दासी रहती है, जिसे वृषली वा पिन्नती कहते हैं। जब ये बाहर निकलती, तब वृषली इनके आगे आगे चला करती हैं। राहमें वे अपना समूचा वदन ढके रहती हैं और तालपत्रकी छतरी व्यवहार करती हैं। यह छतरी इस प्रकार बनी होती है, कि बाहरसे इनका मुख दिखाई नहीं देता।

नम्बुत्तिरीब्राह्मण ६४ प्रकारके नियमोंका पालन करते हैं, यथा—

१। मार्जनीकाष्ठ द्वारा दतुवन न करना।

२। स्नानके समय परिधेय वहिर्वस्त्र अर्थात् लुंगीको उतार न रखना।

३। वहिर्वास अर्थात् लुंगी द्वारा गात्रमार्जन न करना।

४। सूर्योदयके पहले स्नान न करना।

५। स्नानके पहले रसोई न करना।

६। पूर्व रात्रिके उद्धृत जलको काममें न लाना।

७। स्नानके समय किसी प्रकारकी चिन्ता न करना।

८। किसी विशेष उद्देशसे लाये हुए जलको दूसरे कामोंमें न लाना।

९। ब्राह्मण भिन्न अन्य जातिको स्पर्श करनेसे स्नान अवश्य करना।

१०। अस्पृश्य जातिके निकट आनेसे स्नान कर लेना।

११। पतितजातिसे स्पृष्ट कूप वा सरोवरका जल स्पर्श करनेसे स्नान करना।

१२। जिस स्थान पर झाड़ू दिया गया हो, उस स्थान पर विना जल छिड़कके पैर न रखना।

१३। अपने सम्प्रदायका चिह्न कपाल पर धारण करना।

१४। जादू टोना न करना।

१५। पर्युषितान्न ग्रहण न करना।

१६। सन्तानका जूठा न खाना।

१७। शिवोपासक कभी शिवप्रसादका परित्याग नहीं कर सकता।

१८। हाथसे अन्न न परोसना।

१९। भैंसके घीसे होम न करना।

२०। वात्सरिक श्राद्धमें भैंसके घीका व्यवहार न करना।

२१। सम्प्रदाय-नियमानुसार भोजन करना।

२२। पतित जातिको स्पर्श करके विना स्नान किये न खाना।

२३। पाठावस्थामें ब्रह्मचर्यका पालन करना।

२४। यथाशक्ति गुरुदक्षिणा देना।

२५। राहमें खड़ा हो कर वेदमन्त्र न पढ़ना।

२६। कन्याविक्रय निषेध।

२७। व्रतानुष्ठान करके प्रतिष्ठा करना।

२८। रजःस्वला अवस्थामें अलग न रहना।

२९। सूत न कातना।

३०। ब्राह्मणको अपना वस्त्र धोना निषेध।

३१। शूद्रके वात्सरिक श्राद्धमें दान ग्रहण न करना।

३२। पिता, पितामह, मातामह, माता, पितामही आदिका वात्सरिक श्राद्ध अवश्य करना और पितृव्योंके उद्देशसे शास्त्रानुसार पिण्ड देना।

३३। अमावस्याको सांवत्सरिक कार्यका शेष न करना।

३४। एक वत्सर बीत जाने पर सपिण्डदान अर्थात् सपिण्डीकरण करना।

३५। नक्षत्रानुसार सांवत्सरिक श्राद्ध करना, न कि तिथिके अनुसार।

३६। जाताशौच बीत जाने पर आभ्युदयिक श्राद्ध करना।

३७। दत्तक-पिता और स्वकीय-पिता दोनों का श्राद्ध कर सकता है।

३८। सूतको अपने [illegible] माहकर्ममें दान करना।

३९। सन्यास ग्रहण कर स्त्रियोंके प्रति दृष्टिनिःक्षेप न करना।

४०। परजन्मके लिए कामना न करना।

४१। पिताके सन्यास ग्रहण करने पर पुत्र उसका श्राद्ध नहीं कर सकता।

४२। अन्तर्जनाका परपुरुषका मुख न देखें।

४३। अन्तर्जना अपनी दासी और नायरजातिकी [illegible]-को साथ लिए बिना बाहर नहीं निकल सकती।

४४। स्त्रियां नाक न छिदावें और पीतलके कड़े, चांदीकी बाली तथा कण्ठहारके सिवा दूसरा आभरण पहन नहीं सकतीं। किन्तु अन्य स्त्रियां कण्ठादिमें नाना प्रकारके अलङ्कार पहन सकती हैं।

४५। मादक द्रव्य सेवन करनेसे समाजच्युत होना।

४६। ब्राह्मण परस्त्रीका संसर्ग न करें, करनेसे समाजच्युत होना पड़ेगा।

४७। शूद्रदेवता अर्चन न करना।

४८। जो द्रव्य एक बार देवताको चढ़ाया गया हो, उसे दूसरे बार न चढ़ाना।

४९। विवाहादि कार्योंमें होम करना।

५०। आढ्य ब्राह्मणके साथ एक-बार अन्य वर्णवालोंके ब्राह्मणको तथा किसी अन्य ब्राह्मणको आशीर्वाद या अभिवादन न करना।

५१। पुरुष और स्त्री ब्राह्मणके पहने [illegible] के लिए अम्बर और उत्तरीय रहे, अन्तरीयका परिमाण ५ हाथ हो। इसी कारणसे हिन्दुस्तानी पुरुषके जैसा काछ बांधे साधारण ब्रह्मचारीकी तरह कमरमें उत्तरीय बांधे रहे। पुरुष भी लंगोटी पहने और उत्तरीयसे साधारण ब्रह्मचारीकी तरह कमर बांधे रहे।

५२। ब्राह्मणके लिये सोमेच निषेध।

५३। एक ही मनुष्य शिव और विष्णुकी पूजा नहीं कर सकता।

५४। विवाहित ब्राह्मण केवल एक यज्ञोपवीत और आढ्य ब्राह्मण कमसे कम दो अथवा अधिक यज्ञोपवीत पहने।

५५। ब्राह्मणका बड़ा लड़का यथाविधान प्रायश्चित्त करे।

५६। ब्राह्मणके बड़े लड़केको छोड़ कर, शेष लड़के वेदाध्ययन और समावर्त्तनक्रियाके बाद नायर स्त्रीसे सम्बन्ध विवाह करें।

५७। मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे पक्वान्न पिण्ड दें।

५८। अन्तर्जनाका मस्तक न मुंड़ावें, उसे ब्रह्मचारिणी अवस्थामें रहने दें।

५९। सतीदाह निषेध।

६०। सभी पुरुष शुद्ध हों।

६१। जो 'स्त्रीधन' 'मन' या 'तारवाड़' सम्पत्तिका भोग करना चाहे, उसे समाजच्युत न कर दें।

६२। कन्याका विवाह ऋतूदयके बाद करे। नायर और क्षत्रिय जातिकी तालिकम्पक्रिया पुष्पोद्गमके पहले हो। पीछे जवानी आने पर सम्बन्धविवाहके ब्राह्मणके साथ कर दें।

६३। नायर इनको अन्तर्जनाको अमावास्यामें भिक्षा करे और [illegible] पदार्थ अन्न दें। इसका अन्न ग्रहण करनेसे भी पतित नहीं हो सकता।

६४। मल्लयाली ब्राह्मण मध्याह्न भोजनके बाद और-कर्म कर सकते।

इनमें एन ६४ प्रकारके नियमानुसार चलते हैं।

ये लोग ब्राह्म मुहूर्तमें उठ कर यथाविधि प्रातःशौचादि समाप्त करके सूर्योदयके बाद स्नान करते, पीछे नंगे पैर देवालय जाते और वहां सन्ध्यावन्दनादि समाप्त कर ग्यारह बजे तक वेदपाठ पढ़ते हैं। तदनन्तर घर आ कर भोजन करते हैं। अपराह्नमें फिर स्नान कर स्नान करते हैं और सन्ध्यावन्दनादि समाप्त करके रातको ८ बजेके बाद खा कर सो जाते हैं। ये लोग संस्कृत भाषामें पारदर्शी हैं। ब्राह्मण केवल हिन्दुस्तानीके यहां नौकरी करते। आज तक नम्बूरी ब्राह्मणने अंगरेजोंके अधीन नौकरी नहीं की है।

नम्बुतिरी ब्राह्मणगण उपनयनके बादसे ही ब्रह्मचर्याश्रम ग्रहण करते हैं। वेदाचार्य शिष्यके मस्तक पर हाथ रख कर धीरे धीरे ताल द्वारा वेद सिखाते हैं। शिष्य भी उसी तालसे वेदाभ्यास कर लेते हैं।

इन लोगोंका ज्येष्ठ पुत्र ही विवाह करता है। इस कारण इनमें अनेक लड़कियां कुमारी रहती हैं। बहु विवाह भी इनमें प्रचलित है।

रजोदर्शनके बाद जिस कन्याकी अविवाहितावस्था में मृत्यु होती है, उसके गलेमें कोई ब्राह्मण ताली नामक मङ्गलसूत्र बांध देते हैं, पीछे उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया होती है।

कन्याके विवाहमें पिताको बहुत खर्च करना पड़ता है। पहले वर और कन्याकी कोष्ठी मिलाई जाती है। पीछे यौतुकका मूल्य कमसे कम २०००) रु० स्थिर होता है। यह विवाह कन्याके 'इल्लोम'में बहुत धूमधामसे होता है। वरकर्त्ता पुत्रके लिये कन्याकर्त्ताके निकट प्रार्थी होते हैं, उनकी स्वीकारता ही वाक्दान समझी जाती है। बाद विवाहका दिन स्थिर होता है। उसी शुभदिनमें वर कलाईमें मङ्गलसूत्र बांध हाथमें वंशदण्ड ले कर नायर जातिकी स्त्रियोंके साथ कन्याके इल्लोममें आता है। इधरसे भी नायर जातिकी स्त्रियां नम्बुतिरी ब्राह्मणोंकी पोशाक पहन कर वरको लाने जाती हैं। दीप द्वारा आरति उतारती हैं और 'अष्ट-माहात्म्यम्' नामक गीत गाती हैं। बाद वर और कन्याको अलग अलग गोद पर चढ़ा कर लाती हैं। वहां वे दोनों भर पेट खा लेते हैं। इस प्रकारके भोजनका नाम "अयो निउन्" है। अनन्तर वर अपने हाथमें वंशदण्ड ले कर तथा कन्या दर्पण और तीर ले कर विवाहसभामें आती हैं। कन्याका पिता वरके पैर धो देता है। कोई नायर युवती कन्याकी माता बन कर वहां आती है और दीपालोक घुमाती है। इसी समय दूसरी ओर पर्देकी आड़से अन्य नायर युवती एक स्वरसे गीत गाती हैं। इधर कन्या वरके सामने आ कर उसके पैरों पर पुष्पाञ्जलि देती और गलेमें माला डालती है। इस समय वेदमन्त्रका पाठ भी होता है। बाद कन्याका पिता यथाविधान वेदमन्त्र पढ़ कर यौतुकके साथ कन्यादान करता है। उसी समय सप्तपदीगमन आदि सभी कार्य समाप्त हो जाते हैं। पिता कन्याको स्वामीकी सहधर्मिणी हो कर गृहाश्रममें सहायता पहुंचानेके लिये तरह तरहका उपदेश देता है। अनन्तर वर कन्याको ले कर अपने इल्लोममें आता है। यहां अन्तर्जना कन्याको घरका काम काज सिखाती है। वह कन्या एक जूही फूलका पेड़ रोपती है और प्रतिदिन उसमें जल देती है। तीसरे दिनमें होम और चौथे दिनमें गर्भाधानक्रिया समाप्त होती है। नव दम्पती जब शय्या पर जाता है, तब दरवाजा बन्द कर दिया जाता है और पुरोहित तत्कालोचित मन्त्रका पाठ करता है। पांचवें दिनमें वर मङ्गलसूत्र और वंशदण्डका परित्याग करता है। गर्भावस्थाके तीसरे, पांचवें और नवें महीनेमें विशेष संस्कारकार्य होता है। प्रसवके बाद अन्तर्जना नार्याम खा सकती है, इसमें कोई दोष नहीं लगता।

पुत्रादि होने पर पिता ग्यारहवें दिनमें नामकरण, छठे महीनेमें अन्नप्राशन, तीसरे वर्षमें चूड़ाकरण और पांचवें वर्षमें विजयादशमीके रोज विद्यारम्भ कराता है। सातवें वर्षमें कर्णवेध और उपनयन होता है। अनन्तर वह बालक घरमें रह कर वेदादि पढ़ता है। वेदपाठ हो जाने पर गुरुदक्षिणा दे कर समावर्त्तनकार्य शेष किया जाता है। बड़ा लड़का ही विवाह करता है। छोटे लड़के अविवाहित अथवा नायर-युवतीके साथ गन्धर्व विवाह करते हैं।

किसीके मरने पर घरके एक अंशमें दाहकर्म किया जाता है। चिताके ऊपर शव रखनेसे पहले पिण्ड देना होता है। उस समय सभी वेदपाठ करते हैं और नव-खण्ड सुवर्ण द्वारा मुखमें अग्नि देते हैं। ये लोग दश दिन अशौच मानते हैं और एकाहारी रहते हैं। अशौचावस्था तक कोई नमक नहीं खाता।

ये लोग अपने बालोंको उतना सजाते नहीं। शुभ्र-वर्णका वस्त्र व्यवहार करते हैं। पुरुष लंगोटी लगाता है, ऊपरसे ब्रह्मचारीकी तरह चार हाथकी लुंगी पहनता है और कन्धे पर एक छोटी तौलिया डाले रहता है। कोई कोई कमरमें रस्सीकी करधनी पहनता है।

ब्राह्मणी साधारणतः सती, साध्वी और पतिसेवामें रत

रहती है, कभी भी परपुरुषका मुँह नहीं देखती। जब वे घरोंमेंसे बाहर जाती हैं तब सतीत्वके चिह्नस्वरूप ताड़पत्रकी छतरी लगाये रहती हैं। अन्तर्जनगण यदि किसी कारण भ्रष्टा हो जाय, तो उनका विचार होता है। विचारमें दोषी साबित होने पर उनके सतीत्वको चिह्नरूपी छतरी छीनी जाती है। उनका विचारकार्य इस प्रकारसे किया जाता है—किसीको उनके सतीत्वके प्रति सन्देह होने पर पहले 'कच'मेन' (स्टेट मैनेजर) उनका अनुसन्धान करता है। अन्तर्जनाको दूसरी तथा दूसरेको मनाही है कर जब वह भ्रष्टा समझी जाती है, तब 'सावनम्' नामक बहिर्भाग्यस्थ घरमें बन्द रखते हैं और पहरा बैठाते हैं; पीछे राजाको उसकी खबर देते हैं। राजा अन्तर्जनाकी कलङ्क निष्पत्तिके लिये विचार-समिति निर्देश करके अनुशासन देते हैं, उस विचार समितिको स्मार्त'-विचार समिति कहते हैं। उस समितिमें राजाके प्रतिनिधि दो मीमांसक विचारक और दो स्मार्त विचारक रहते हैं। विचारके समय राजाकी ओरसे भी दो मनुष्य जाते हैं, जिनमेंसे एकको मान्तिरायक और दूसरेको अकाडोयम् कहते हैं। अन्तर्जना जब तक आप अपने मुखसे दोषको कबूल नहीं करती, तब तक विचारका अनुसन्धान चलता रहता है और कलङ्किनीको अपने मुखसे कलङ्क स्वीकार करानेकी चेष्टा की जाती है। इस दोषको स्वीकार करानेमें अनेक दिन लगते हैं। दोषके साबित नहीं होने पर क्षमा साध्य सावना करके उनसे क्षमा माँगते हैं। कलङ्किनीके सब दोष कबूलने तथा अपने जारोंके नाम कहनेसे ही वह यथार्थमें दोषी प्रमाणित होती है। उसी समय उसका विचार शेष हो जाता है। पीछे कलङ्किनीको सबके सामने तलाक दे कर घरसे निकाल देते हैं। उसके विचारका सार पत्र उसके सामने पढ़ा जाता है। पीछे नायरजातीय कोई जो आ कर उसका सतीत्वक्षम छीन लेती है। उस समय सभी ताली बजाते हैं, बाद वह अपनी इच्छानुसार कहीं तहीं जा सकती है। फिर उसे किसी नियम-का पालन नहीं करना पड़ता है। जिसके साथ वह भ्रष्टा होती है, वह पुरुष भी समाजच्युत होता है। दोनों ही घरसे निकाल कर 'नम्बियर', और 'चक्रियर' नामसे पुकारे जाते हैं। वे दोनों अन्तःग्राम मिले जाते हैं। उस अन्तर्जनाके आत्मीय उसके मरने पर पतितके अनुसार अन्त्येष्टिक्रिया, प्रायश्चित्त, ब्राह्मण-भोजनादि कर के विशुद्ध होते हैं।

ऐसा कठोर दण्ड रहनेके कारण इनमें प्रायः असती देखी नहीं जाती।

यहाँ नम्बुतिरी ब्राह्मण छोटी बहुत छूतव्यक्ति हैं और उन्हींसे अपना गुजारा करते हैं। वे लोग शहरमें जाना पसन्द नहीं करते। रास्तेमें जब कोई शूद्र मिल जाता है, तब 'आया आया' ऐसा शब्द सुनते ही वह दूसरा रास्ता पकड़ लेता है।

नम्बुरी ब्राह्मण साधारणतः दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं 'तिरुमनोयपोगम्' और 'तिरुपुरयोगम्'। प्रत्येक सम्प्रदायका प्रधान आचार्य 'वढन' कहलाता है। जो उत्कृष्ट नम्बुतिरी हैं, वे नम्बुतिपाद वा अध्यन नामसे प्रसिद्ध हैं। फिर इनमें भी 'अष्टगृहत्तिल्' श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इस प्रकार और भी आठ घरोंके नम्बुरी ब्राह्मण हैं जो 'अष्ट अष्टध्यन' कहलाते हैं।

अग्निहोत्रियों को 'अक्कित्तिरी अध्यन' कहते हैं। इनमें से जो सोमयोग कर सकते, वे सोमनिरी अथवा सोम याजी तथा जो अग्निहोम याग करनेमें समर्थ हैं, वे 'अदि-गोरी' वा 'अदित्तिरिपद' कहलाते हैं।

जो इस न्यायका पढ़ते हैं और यागानुष्ठान नहीं करते, उन्हें भाट्टतिमार वा भट्टतिरी कहते हैं। यह सम्प्रदाय ४ श्रेणियोंमें विभक्त है, यथा—वढन, वैदिकन् स्मार्तन्, ताम्बी और मान्त्रिक।

१। वढनोंका नाम उविक्कन है। ये लोग वेदाचार्य हैं अर्थात् आप पूजा करते हैं और बालकों को वेद सिखाते हैं।

२। वैदिकन्—ये लोग वैदिक कार्यका मतामत देते हैं और पूजादिके समय यज्ञोंका कार्य चलाय देते हैं।

३। स्मार्तन्—इस श्रेणीके लोग स्मृतियोंकी व्यवस्था तथा आचारादिक मीमांसा करते हैं।

४। मान्त्रिक—ये लोग यज्ञ या पूजादि मान्त्रिक कामोंमें लगे रहते हैं।

नम्बुतिरीमें कई एक श्रेणीके पण्डित ब्राह्मण देखनेमें आते हैं।

१। 'मुस.सद'—ये अष्टवर वैद्य अष्टमस.सद नामसे प्रसिद्ध हैं परशुरामके आदेशसे इन्होंने आयुर्वेद पढ़ा था और उसीके अनुसार ये चिकित्सा करते हैं। इन्हें वेदाध्ययन और संन्यास ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है।

२। अष्टघर-ब्राह्मण—ये लोग परशुरामकी आज्ञासे मन्त्रशास्त्रमें पारदर्शी हुए थे, इसीसे इनका नाम मन्त्रोक पड़ा है।

३। जिन ब्राह्मणोंने हथियार धारण किया था, वे 'आयुधपाणि' 'शस्त्राङ्कार' वा 'रक्षापुरुष' कहलाते हैं। लोगोंके नायकको 'नम्बुत्तिरी' और अधिनायक वा सेनापतिको 'इदपल्ली नम्बुत्तिरी' कहते हैं। अभी ये लोग यात्रा व्यवसाय करते हैं। उत्तर मलवारमें इन्हें 'नम्बिदि' कहते हैं।

४। जिन सब ब्राह्मणोंने परशुरामसे ग्राम पाये थे, वे ग्रामी कहलाते हैं। अभी मलवारमें इनके दश वंश और कोचीनमें ८ वंश पाये जाते हैं।

५। 'उरिल परिश्र मुस.सद' अथवा 'परदर'।—परशुरामने जब पृथिवीको निःक्षत्रिय कर डाला था, तब उस पापके प्रायश्चित्तके लिए इन्होंको दान दिया था। यह दान ग्रहण करनेके कारण ये लोग पतित हो गये हैं।

६। 'नम्बिदी'—इनके पूर्वपुरुष किसी समय एक राजाकी हत्या करके पतित हुए थे। उत्तर मलवारमें ये लोग नायरोंको अन्त्येष्टिक्रिया और पौरोहित्य कराते हैं तथा 'राजहा नम्बुत्तिरी' नामसे प्रसिद्ध हैं।

७। 'इलायद'—ये लोग दक्षिण मलवारमें नायरोंको अन्त्येष्टिक्रिया कराते हैं।

८। 'पशियुरग्राम-नम्बुत्तिरी'—ये लोग उत्तर मलवारमें और दक्षिण कणाड़ामें 'अम्बुवन' अथवा 'तिरुसम्बु' नामसे मशहूर हैं। यद्यपि इन लोगोंका विवाह नम्बुत्तिरियोंको तरह होता है, तो भी सन्तान पितृसम्पत्ति नहीं पाती, केवल मातृसम्पत्ति पाती है। इनकी कन्या जब विवाहके योग्य होती, तब वे उसे वैदिक नम्बुत्तिरीको कन्यादान कर देते हैं। विवाहके सभी कार्य शेष हो जाने पर लड़का समाजसे अलग कर दिया जाता है और लड़कीके घर आ कर रहने लगता है तथा लड़कीकी ही 'तारवद' सम्पत्तिसे प्रतिपालन होता है।

९। पिदारगमर—ये लोग भद्रकालीके उपासक हैं और शराब खूब पीते हैं। इनका दूसरा नाम 'भूतरोभा' वा 'सर्परोभा' भी है। इनकी स्त्रियां परदानशीन नहीं हैं। ये सब ब्राह्मण किस समय पतित हो कर उक्त नामोंसे पुकारे जाते हैं, उसका निर्णय करना कठिन है।

नम्य (सं॰ त्रि॰) नम पवर्गान्तत्वात् कर्मणि यत् न ण्यत्। नमनीय, झुकने योग्य।

नम्र (सं॰ त्रि॰) नमनीति नम-र (नमिकम्पीति। पा ३।२।१६७) १ नत, झुका हुआ। २ विनीत, जिसमें नम्रता हो। (पु॰) ३ वेतसवृक्ष, वेंत।

नम्रक (सं॰ पु॰) नम्र इव कायति कै-क। १ वेतसवृक्ष, वेंत। नम्र एव स्वार्थे कन्। (त्रि॰) २ नत, झुका हुआ।

नम्रता (सं॰ स्त्री॰) नम्रस्य भावः नम्र-तल् स्त्रियां टाप्। १ नम्रत्व, नम्र होनेका भाव।

नम्रत्व (सं॰ क्ली॰) नम्रभावे त्व। नम्रता, नम्र होनेका भाव।

नम्रप्रकृति (सं॰ पु॰) नम्रा प्रकृतिर्यस्य। नम्रस्वभाव, वह जिसका स्वभाव नम्र हो।

नम्रमुख (सं॰ पु॰) नम्रं मुखं। १ अवनत मस्तक, झुका हुआ सिर। (त्रि॰) २ जिसका मस्तक झुका हो।

नम्रमूर्त्ति (सं॰ त्रि॰) नम्रा मूर्त्तिर्यस्य। नत, विनीत, जिसमें नम्रता हो।

नम्रस्वभाव (सं॰ त्रि॰) नम्रः स्वभावो यस्य। नम्र प्रकृति।

नय (सं॰ पु॰) नी भावे अप्। १ नीति। २ द्यूतभेद, एक प्रकार जुआ। ३ विष्णु। ४ न्याय। ५ नम्रता। ६ जैनदर्शनमें प्रमाणों द्वारा निश्चित अर्थको ग्रहण करनेकी वृत्ति। यह वृत्ति सात प्रकारको होती है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत।

नयकृति (हिं॰ पु॰) नैकृत देखो।

नयक (सं॰ त्रि॰) नय आर्षकादित्वात् वुन्। नीति कुशल।

नयक (नायक)—एक निकृष्ट जाति। इस जातिके मनुष्य जयपुर, मारवाड़, मेवाड़ और मालव आदि स्थानोंमें वास करते हैं। ये लोग वैरागी वा संन्यासी-सा भेष बना कर इधर उधर भ्रमण करते हैं और अवसर पाकर हत्या, चोरी आदि असत् कार्य भी कर डालते हैं।

नयकड़ा—बम्बई प्रदेश और मेवाड़ देशकी एक आदिम असभ्य जाति।

नयग्राम—सिन्धु नदीके किनारे अवस्थित वर्त्तमान नौशराका प्राचीन नाम। ग्रीकोंके ग्रन्थोंमें यह नाम पाया जाता है। दोनों नामका अर्थ नया नगर है।

नयचन्द्रसूरि—हम्मीर महाकाव्यके रचयिता और जयचन्द्र सूरिके प्रपौत्र। ये जैन धर्मावलम्बी थे और तोमर वंशीय वीरम नामक किसी राजाके सभासद थे। वीरम अलाउद्दीनके ७० वर्ष पहले राज्य करते थे। कहते हैं, कि राजा हम्मीरने स्वप्नमें नयचन्द्रको अपना दर्शन दे कर हम्मीर महाकाव्य लिखनेकी उपयुक्त शक्ति दी थी। यह भी सुना जाता है, कि वीरम राजाकी सभामें किसी मनुष्यने एक दिन कहा था कि प्राचीन कवियोंकी तरह अच्छा काव्य कोई लिख सके ऐसा एक भी देखनेमें नहीं आता। यह सुन कर नयचन्द्रने हम्मीरकाव्य लिखनेकी इच्छा की थी। रणस्तम्भपुरके चौहान वंशीय हम्मीर इस काव्यके नायक थे। उस काव्यमें अलाउद्दीन द्वारा रणस्तम्भपुरका अवरोध, युद्धमें हम्मीरका पतन और राजपूत महिलाओंका अग्नि-प्रवेश, ये सब विषय काव्याकारमें वर्णित हैं।

नयन (सं० क्ली०) नीयते दृश्यविषयोऽनेनेति नी करणे ल्युट्। १ चक्षु, नेत्र, आंख। नी भावे ल्युट्। २ प्रापण, ले जाना। ३ यापन, बिताना।

नयन (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

नयनगोचर (सं० त्रि०) प्रत्यक्ष, दिखाई पड़नेवाला, जो आंखोंके सामने हो।

नयनचित्र (सं० पुं०) दृष्टिविभ्रम-कुहक।

नयनपट (सं० पुं०) आंखकी पलक।

नयनपथ (सं० पुं०) नयनस्य पन्था ६-तत्। जितनी दूर तक दृष्टि जा सके, आंखसे देखनेका स्थान।

नयनपाल—कान्यकुब्जके प्रथम राठोरराज। कहते हैं, कि ये ११२६ सम्वत्‌में राजा थे। (Tod's Rajasthan.)

नयनपुट (सं० पु०) नयनस्य पुटः। आंखकी पलक।

नयनप्रसाद (सं० पुं०) कतकवृक्ष, निर्मलीका पेड़।

नयनहव (सं० पुं०) आंखसे उत्पन्न रोग।

नयनबुद्बुद (सं० पुं०) नेत्रबुद्बुद, आंखका ढेला।

नयनवारि (सं० क्ली०) नयनस्य वारि। नेत्रजल, आंखका पानी, आंसू।

नयनविषय (सं० पुं०) नयनस्य विषयः। १ नयनपथ। २ आकाश।

नयनशोभाञ्जन (सं० क्ली०) रसाञ्जन, एक प्रकारका सुरमा जो आंखकी बीमारीमें लगाया जाता है।

नयनसलिल (सं० क्ली०) नेत्रजल, आंखका पानी।

नयनसिंह—पण्डित नयनसिंह नामके प्रसिद्ध एक अनुसन्धानी और भूतत्त्वविद्। लगभग १८३१ ई०में इनका जन्म हुआ था। वर्त्तमान शताब्दीके मध्य भागमें आप रबर्ट स्लागिण्टवाइटके साथ हिमालय पर जरीब डालनेके लिये नियुक्त हुए थे। बहुत दिन तक आपने उक्त साहबके सहायकके रूपमें रह कर हिमालयके अनेक प्राकृतिक तत्त्वोंका आविष्कार किया था। इसके सिवा आपने अपने स्वामीके साथ मध्य-एशियाके प्राकृतिक भूतत्त्वको स्थिर करनेके लिये अनन्त साहससे बहुत-से दुर्गम स्थानोंमें पर्यटन किया था। रबर्टके चले जानेके बाद आपने अपने ग्राममें आ कर कुछ दिन शिक्षकका कार्य-सम्पादन किया था।

इण्डिया गवर्मेण्टके त्रिकोणमितिके परिदर्शक तथा और भी अनेक बड़े बड़े अफसर आपकी कार्यदक्षतासे परिचित थे। १८६० ई०में त्रिकोणमितिके जरीब विभागके कप्तान मण्टगोमरीने आपको चुन कर कार्यमें नियुक्त किया। अब तक कोई भी विदेशी तिब्बतकी राजधानी लासा नगरके प्रकृत अवस्थानका निर्णय न कर सके थे, किन्तु आप असीम अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता और सतर्कता आदि गुणोंसे १८६६ ई०में लासा नगरका प्रकृत भूगोलतत्त्व प्रकट कर इण्डिया गवर्मेण्टके विशेष कृतज्ञताभाजन हो गये। इसके बाद दूसरे ही वर्ष आपने थोक जंगलकी प्रसिद्ध स्वर्ण खनिका परिदर्शन किया। बादमें सात वर्ष तक तुषारमण्डलमें रह कर आपने तिब्बतके पश्चिमसे पूर्व सीमा तक समस्त स्थानोंका परिदर्शन करते हुए अनेक नवीन तत्त्वोंका आविष्कार किया। इस सुदीर्घ प्रवासकालमें आपने ३३२ ग्रामोंकी राजधानीका परिदर्शन, नाना निर्झरोंका संग्रह और सानपू नदीकी गतिके विषयमें अनेक अभिनवतत्त्व प्रका

-प्रित किये थे। १८७४ ई०के जुलाई मासमें लामाकी पोशाक पहन कर आप लेहसे निकल निकल कर तिब्ब तकी सीमा अतिक्रम कर गये। पीछे आपको रदखसे १५ मील चल कर ठीक पूर्वकी ओर ८०० मील अज्ञात प्रदेशसे जाना पड़ा था। नवप्रदेशमें सानपू नामक तिब्ब तकी महानदी प्रवाहित है, जिसके दोनों ओर समुच गिरिमाला भूषित है। आप जिस मार्गसे गये थे, वह स्थान समुद्रपृष्ठसे लगभग १५०० फुट ऊँचा होगा। इस मार्गमें बहुत सी सोनेकी खानें, असंख्य ह्रद और स्रोत-स्वती एवं उर्वरा शस्यक्षेत्र हैं।

नयनसिंह तेंगरोनर ह्रदके ईशानकोणसे दक्षिणकी तरफ लासा नगरीको गये और वहां छद्मवेशमें तीन महीने रहे। वहां किसीने भी उन्हें अंग्रेजोंका चर न समझा था। इसके बाद एक परिचित मुसलमानके साथ आपकी मुलाकात हुई। उसने इनकी बात प्रकट कर दी। पर ये पहलेसे ही समझ गये और शीघ्र ही तिब्बत से चले आये। आपके प्रयत्नसे सानपू नदीके कूलवर्ती लग भग १०० मील स्थानका आविष्कार हुआ। लौटते समय आप भूटान गिरिमालाके ऊपरसे चेतंग और तवंग होते हुए आसाम प्रदेशमें पहुंचे। उदलगिरि पर बैठ कर आपने अपना कार्य समाप्त किया। १८७५ ई०को ११वीं मार्च-को आप कलकत्ते उपस्थित हुए। वृटिश गवर्नमेण्टने आपके महत्कार्यसे सन्तुष्ट हो कर आपको एक जागीर दी थी। इसके सिवा विलायतकी रायल जिओग्राफिकल सोसाइटीने भी आपको प्रशंसासूचक एक स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ था। १८८० ई०में (माघमासमें) आपकी मृत्यु हुई थी।

नयनागर (सं० त्रि०) नीतिज्ञ, नीतिपुराण।

नयनाञ्जन (सं० क्ली०) १ कज्जलविशेष, काजल। २ सूर्मा, सुरमा।

नयनानन्द—१ इनका दूसरा नाम ध्रुवानन्द था। ये वाणीनाथके पुत्र और गदाधर पण्डितके भतीजे थे। इनकी कृष्ण और गौरलीलाविषयक पदावली बहुत मधुर हैं। पदकल्पतरुमें इसकी पदावली उद्धृत हुई हैं। २ अमरकोषकी कौमुदी नामक टीकाके रचयिता।

नयनापाङ्ग (सं० क्ली०) नेत्रप्रान्त, आंखकी कोर।

नयनाभिघात (सं० पु०) नयनस्य अभिघातः। सुश्रुतोक्त नयनादिका अनिष्टकर रोगभेद। इस रोगका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

आंखोंमें हर तरहसे चोट लगनेकी सम्भावना है। आहत होनेसे नेत्रमें संरम्भ, रक्तवर्णता और अत्यन्त वेदना होती है। इसमें नस्य, प्रलेप, परिषेचन, तर्पण, रक्तपित्तका प्रतिकार और दृष्टिप्रसादक्रिया कर्त्तव्य है। यह क्रिया स्निग्ध, शीतल और मधुर द्रव्योंसे की जाती है। स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक या पीड़ा द्वारा अभिहत होने पर भी प्रतिकार करना उचित है, किन्तु इससे यदि अभिष्यन्द रोग उत्पन्न हो, तो दोषानुसार प्रतिविधान करना चाहिये। नेत्र यदि कुछ अव्याहत हो जाय, तो बाष्प और स्वेदका प्रयोग करनेसे वह तुरन्त आरोग्य हो जाता है। नेत्रपटलमें एक फोड़ा होनेसे वह अनायाससाध्य, दो फोड़ा होनेसे कष्टसाध्य और तीन फोड़ा होनेसे असाध्य हो जाता है।

नेत्रोंके पिच्चट, अवसन्न, शिथिल, स्थानच्युत या दृष्टि हत होनेसे वह चिकित्सा द्वारा आराम हो जाता है। विस्तीर्णदृष्टि, अल्परोगविशिष्ट अथवा भ्रमदृष्टि होनेसे वह आपसे आप चंगा हो जाता है। प्राणके उपरोध, वमन, वायु और कण्ठरोध द्वारा अवसन्न अर्थात् अन्त-प्रविष्ट नेत्र ऊपर चढ़ जाते हैं। नेत्रके बाहरकी ओर निकल आनेसे श्वास खींचना और मस्तक पर जल देना कर्त्तव्य है। प्रसूतिके स्तनदुग्ध कुपित होनेसे बच्चोंके नेत्रवर्त्ममें सन्निपातज कुकुनक नामक रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वे आंख, नाक और ललाट हमेशा मलते रहते हैं और सूर्यकी किरण सह नहीं सकते। आंखोंसे कीचड़ भी खूब निकलता है। ऐसी अवस्थामें लेखन कार्य द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिये और कटुकीको मधुके साथ मिला कर उससे प्रतिसारित करना विधेय है। प्रसूतिका भी प्रतिकार करना आवश्यक है। इसमें आपामार्गके फल, मधु और सैन्धवको मिला कर उसे जल-पान कराने अथवा पिप्पली, लवण और मधुके संयोगसे जलपान करा कर उल्टी करानेसे शान्ति होती है। यदि

नमन आपसे आप होता हो, तो फिर नमन करानेकी जरूरत नहीं। विशेष विवरण कुसुम नक्त-उनके ११ अध्यायमें देखो। चक्षुरोग देखो।

नयनाभिराम (सं॰ पु॰) नयने अभिरमयति अभि-रम-णिच्-अच्, वा नयनयोरभिरामो यस्मात्। १ चन्द्रमा। (त्रि॰) २ नेत्रानुरागकारक, जो आँखों को प्रिय लगे।

नयनी (सं॰ स्त्री॰) नीयतेऽनयेति नी करणे ल्युट्, ङीप्। नेत्रकनीनिका, आँखकी पुतली, इस शब्दका प्रयोग यौगिक शब्दके अन्तमें होता है।

नयनी (हिं॰ वि॰) आँखवाली, जिसके आँख हो।

नयनू (हिं॰ पु॰) १ नवनीत, मक्खन। २ एक प्रकारकी मलमल। इस पर सफेद सूतकी बूटियाँ बनी होती हैं।

नयनोत्सव (सं॰ पु॰) नयनयोरुत्सवो यस्मात्। १ प्रदीप दीया। दोषेकी रोशनीसे नेत्रोंको हर्षनयन होती है, इसीसे नयनोत्सव शब्दसे दीप समझा गया है। आलोक जो एक मात्र दृष्टिका प्रतिकारक है। (त्रि॰) २ नेत्रोत्सवकारिमात्र।

नयनोपान्त (सं॰ पु॰) नयनयोरुपान्तः ६ तत्। अपाङ्ग प्रदेश, आँखका कोना, आँखकी कोर।

नयनोर्ध्वरोमराजि (सं॰ स्त्री॰) भ्रू, भौंह।

नयनौषध (सं॰ क्ली॰) नयनयोरौषध। पुष्पकासीस, पीला कसीस।

नयपाल (सं॰ पु॰) गौड़के पालवंशीय एक प्रसिद्ध राजा।
पालराजवंशमें विस्तृत विवरण देखो।

नयपीठी (सं॰ स्त्री॰) नयस्य पीठीव। चूताङ्ग, जुएका एक खेल।

नयलोचन (सं॰ क्ली॰) नय एव लोचन। १ नीतिरूप चक्षु। (त्रि॰) २ नीतिचक्षु, जिसकी आँखें नीति या न्यायकी ओर लगी हो।

नयवर्त्म (सं॰ क्ली॰) नयस्य वर्त्म ६ तत्। नीतिमार्ग, नीतिपथ, न्यायका रास्ता।

नयविजयगणि—यशोविजयके गुरु और ज्ञानविजयगणिके शिष्य, ज्ञानबिन्दुप्रकरणके प्रणेता।

नयविशारद (सं॰ पु॰) नये नीतिशास्त्रे विशारदः कुशलः ७-तत्। नीतिशास्त्रज्ञ नीतिकुशल।

नयशास्त्र (सं॰ क्ली॰) नय एव शास्त्र ६ तत्। नीतिशास्त्र।

नयशील (सं॰ त्रि॰) १ नीतिज्ञ। २ विनीत।

नयसार (सं॰ पु॰) नीतिसूत्र।

नया (हिं॰ वि॰) १ नवीन, नूतन ताजा, हालका। २ पहलेवालेसे भिन्न, पहले या उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा। ३ जिसका अस्तित्व तो पहलेसे हो, परन्तु परिचय हालमें मिला हो, जो थोड़े समयसे मालूम हुआ हो। ४ जिसका आरम्भ पहले पहल अथवा फिरसे, परन्तु बहुत हालमें हुआ हो। ५ जो पहले किसीके व्यवहारमें न आया हो, जिससे पहले किसीने काम न लिया हो।

नयाअमरहद्रि—मन्द्राजके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिलेका एक नगर। यह अक्षा॰ १४ ९८´ उ॰ और देशा॰ ७६ ११´ पू॰के मध्य चलकेरी नगरसे १४ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २९५८ है। यह नगर नायकसे बसाया गया है। नायक कुरुम्ब जितिके चरित्रनायक रहनेवाला था और बहुतसे मछि... साथ ले चरोंकी खोजमें यहाँ आया था। पीछे यह नगर चित्तलदुर्गके नरदारोंके हाथ आया। उन्होंने हैदरअलीके अभ्युदय काल तक इसका भोग किया। यहाँ लिङ्गायतोंके विख्यात महापुरुष तिप्पेरुद्रको समाधि है। उनकी रथ-यात्राके उपलक्षमें यहाँ हजारों मनुष्य एकत्र होते हैं।

नयागढ़—उड़ीसाका एक छोटा राज्य। यह अक्षा॰ १९ ५४´ से २॰ २॰ उ॰ और देशा॰ ८४ ४८´ से ८५ १५ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १४०७०८ है, इसके उत्तरमें खण्डपाड़ा राज्य, पूर्वमें रणपुर, दक्षिणमें पुरी जिला और पश्चिममें दसपल्लाराज्य है। यहाँ अनेक जातियोंको भरी बस्ती है दक्षिणकी ओर पर्वतमय है। यहाँका दृश्य बहुत मनोरम है, मध्य हो कर गिरिमाला दौड़ गई है जिसकी ऊँचाई कहीं २००० और कहीं १००० फुट भी है। धान कई देख और कई प्रकारके तेलहन अनाज यहाँके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। १२वीं शताब्दीमें रेवाके राजपूत राज-वंशीय किसी व्यक्तिने आ कर यह नगर बसाया था। राजस्व (१२००००) रु॰का है जिनमेंसे ५५२१) रु॰ वृटिश गवर्नमेण्टको करमें देने पड़ते हैं। इसमें एक नगर

और ७६५ ग्राम लगते हैं। समूचे राज्यमें १ मिडिल स्कूल, ३ अपर प्राइमरी स्कूल और ४१ लोअर प्राइमरी स्कूल हैं तथा एक चिकित्सालय है।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २०° ८' उ० और देशा० ८५°६ पू० के मध्य अवस्थित है। लोक-संख्या लगभग ३३४० है। यहां राजाका वासस्थान है।

नयागायन—१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बाँदा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५° २ ३०'' उ० और देशा० ७८° २७' ३० पू० अजयगढ़से कालिञ्जरके रास्ते पर अवस्थित है। ग्रीष्मकालमें यहां असह्य गरमी पड़ती है।

२ मध्यभारतके अन्तर्गत बुन्देलखण्डका एक सनद राज्य। इसके उत्तरमें छत्रपुर राज्य है। भूपरिमाण १६ वर्गमील है। लक्ष्मणसिंह नामक बुन्देलखण्डके दस्यु अधिपतिने आत्मसमर्पण करके १८०७ ई०में पांच गावों की सनद पाई थी। १८०८ ई०में उसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र जगत्सिंह उत्तराधिकारी हुआ था। जगत् सिंहके मरने पर ब्रटिश गवर्मेण्टने इसे जब्त करना चाहा, किन्तु जगत्की स्त्री लरे दुलहैयाके अनुरोधसे उसे लौटा दिया। उसने कुँवर विश्वनाथसिंहको गोद लिया था और यही आज कल यहांके राजा हैं। रेवेमें इसकी राजधानी है। इसमें सिर्फ ४ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या ७५७ और राजस्व ११०००) रु०का है।

नयादुमका—सन्थाल परगने और नयादुमका उपविभागका राजकीय प्रधान स्थान। यह अक्षा० २४° १६' उ० और देशा० ८७° १७' ३०'' पू०में अवस्थित है। यह अंग-रेजोंका एक प्राचीन स्थान है। १८५५ ई०में सन्थाल विद्रोहके समय एक सैनिक कर्मचारीने दुमकाका नाम नयादुमका रखा था। दुमका देखो।

नयानपुर—त्रिपुरा जिलेका एक नगर और प्रधान वाणिज्य स्थान। यह विजयागाङ्के किनारे अवस्थित है। यहां विजया पार करनेके दो घाट हैं।

नयापन (हिं० पु०) नवीनता, नूतनत्व, नया होनेका भाव।

नयाम (फा० पु०) तलवारको म्यान, तलवारकी खोल।

न्यग्रोध (सं० पु०) न्यग्रोध, वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

नर (सं० पु०) नृणातीति नृ-अच्। १ नारी, स्त्री।

'पुत्रे यशसि तोये च नराणां पुण्यलक्षणम्।' (भूरिप्र०)

२ परमात्मा, विष्णु। ३ महादेव, शिव। ४ पुरुष, मर्द, आदमी। ५ देवभेद, एक प्रकारका देवता। ६ खारोद्धिहारक अश्व। ७ नरदेवके अवतार अर्जुन।

"नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ।
ताविमावनुजानीहि हृषीकेशधनञ्जयौ॥"

(भारत १३।४७ अ०)

श्रीमद्भागवतके मतसे ये चौथे अवतार माने जाते हैं। धर्मकी पत्नी मूर्त्तिके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। नर और नारायण दो मूर्त्ति होने पर भी वे देखनेमें एक ही लगती थीं। दूसरे कल्पमें नरसिंहने यह मूर्त्ति धारण की। महाभारतमें लिखा है, कि स्वायम्भुव मनुके आधिपत्यके समय नारायण धर्मके पुत्र बन कर नर, नारायण, हरि और कृष्ण इन चार अंशोंमें अवतीर्ण हुए थे। इनमेंसे नर और नारायण ये दो बदरिकाश्रम जा कर कठोर तपस्या करने लगे। तपस्याके समय इनका तेज इतना बढ़ गया, कि देवगण भी इन्हें देख नहीं सकते थे। जिन देवताओं पर ये प्रसन्न होते थे, वे ही इन्हें देख सकते थे। एक समय देवर्षि नारदने इन दोनोंके इच्छानुसार सुमेरु शृङ्गसे गन्धमादन पर्वत पर भ्रमण करते करते इन्हें आह्निक क्रियामें प्रवृत्त देखा था। इस पर इन्होंने पूछा था, "भगवन्! वेदादिमें आपकी महिमा गाई गई है। चतुराश्रमवासी मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं। किन्तु आज आप किस देवताकी उपासना कर रहे थे।" इसके उत्तरमें नारायणने कहा, 'यह अत्यन्त गोपनीय विषय है, किन्तु हम तुम्हारी भक्तिसे नितान्त प्रसन्न हैं, इस कारण जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान दे कर सुनो। जो सूक्ष्म हैं, अविज्ञेय हैं, कार्य विहीन हैं, अचल हैं, नित्य हैं और त्रिगुणातीत हैं, जिनसे सत्त्वादि गुणसमूह उत्पन्न हुआ है, जो अव्यक्त हो कर भी व्यक्त भावसे रहते और प्रकृति नामसे पुकारे जाते हैं, वही परमात्मा हमारी उत्पत्तिके कारण हैं। हम उन्हींको माता, पिता वा देवता जान कर उनकी पूजा करते थे।" भागवतमें एक जगह लिखा है, कि इनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्रादि देवताओंने कन्दर्पके साथ अप्सराओंको भेजा था। बाद इन्होंने उन्हें देख कर

समय पृथ्वीने यहां पहुंच कर राजर्षि जनकसे कहा था, 'राजन्! भुवनमोहिनी यह कन्या मैंने तुम्हें अर्पण की। इस कन्यासे मेरा भार हरण होगा और अनेक प्रकारके मङ्गल कार्य साधित होंगे; किन्तु मेरे सामने तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी, वह यह है—रावण वीरके मारे जाने पर मैं भाररहित हो कर सुखसे पुत्र प्रसव करूंगी, तुम उस पुत्रका जब तक उसका शैशव काल दूर न हो, तब तक प्रतिपालन करना।' यह सुन कर जनकने प्रणत हो इस वाक्यको स्वीकार कर लिया। पीछे रावणवध होने पर पृथ्वीने जहां सीताको प्रसव किया था, वहीं एक पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रने जन्म लेनेके साथ ही विष्णुभगवान्‌की आराधना की। वहां पहुंच कर विष्णुने पृथ्वीसे कहा, "देवि! तुम्हारा यह पुत्र महा पराक्रमशाली होगा और जब तक मनुष्य भाव से अवस्थान करोगी, तब तक बहुत सुखसे तुम्हारा दिन व्यतीत होगा। जब मनुष्य-भावका त्याग कर कोई काय करने लगोगी, तभीसे तुम इस पुत्रके जीवनकी आशा त्याग करोगी। सोलह वर्षकी उमरमें तुम धनरत्नादि द्वारा समस्त राज्य भार पावोगी। प्राग्‌ज्योतिष नामक उस राज्यकी राजधानी होगी और यह पुत्र नरक नामसे प्रसिद्ध होगा।' इतना कह कर विष्णु अन्तर्हित हो गये। इधर धरित्रीने आधी रातको जनकके पास जा कर बहुत छिपके पुत्रका वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। राजर्षि जनक उसी समय यज्ञभूमिको गये और धरित्री-तनयको ले कर पुत्रकी भांति उसका पालन पोषण करने लगे। जिस समय नरक उत्पन्न हुआ था, उसी समयसे पृथ्वी मायावल द्वारा मनुष्यका रूप धारण कर राजान्तःपुरमें प्रविष्ट हुई। राजर्षि जनकने ब्राह्मण द्वारा उसका यथोचित संस्कार कार्य कराया और जन्मकालीन इस बालकने नरमस्तकमें अपना मस्तक न्यस्त किया था, इस कारण इसका नाम नरक रखा। क्षत्रियोंकी विधिके अनुसार सभी कार्य किये गये। गौतमपुत्र शतानन्द उस बालकको शिक्षा देने लगे। उनकी शिक्षासे नरक बहुत विनीत हो गये। इधर देवी धरित्री मायारूपसे अन्तःपुरमें रह कर नरकको पालन और विशेष रूपसे सुनीति शिक्षा देने लगीं। धीरे धीरे नरक रूप, लावण्य, बलवीर्य, धनुर्वेद वा गदायुद्धमें अन्यान्य सभी राजपुत्रोंको लांघ गये। नरक दिनों दिन ऐसे पराक्रमशाली होने लगे, कि जनक भी मनही मन डरने लगे। सोलह वर्षकी उमरमें ही नरक अजेय हो गये और सोलह वर्ष पूरनेमें तीन मास बाकी ही था, उसी समय धरित्रीने जनकसे जा कर कहा, "राजन्! आपने प्रतिज्ञा पालन की है, नरक आपसे प्रतिपालित हो कर सुनीतिपरायण हुआ है। अभी उसे जानेकी अनुमति देवें।' इतना कह कर धरित्री अन्तर्हित हो गई। जनकने भी उसे स्वीकार कर लिया। धरित्रीने मायारूप धारण कर नरकसे कहा, 'पुत्र! तुम मुझे अपने साथ ले कर गङ्गाकिनारे चलो, वहां मैं तुम्हारे पिताको दिखला दूंगी। जनक तुम्हारे पिता नहीं, पालकपिता मात्र हैं।' नरक धरित्रीकी बात पर विश्वास कर गङ्गाके किनारे पैदल गये। धरित्रीने उस समय मायारूप परित्याग कर अपनी मूर्त्ति धारण कर ली और नरकसे उसका जन्म वृत्तान्त कह सुनाया तथा उसी समय विष्णुभगवान्‌का स्मरण किया। विष्णु उसी समय वहां पहुंच कर बोले, 'नरकके लिए राज्य आदि सभी प्रस्तुत हैं।" इतना कह कर दोनोंने गङ्गाजलमें गोता मारा। नरक बातकी बातमें प्राग्‌ज्योतिष नामक नगरको पहुंच गये। यह स्थान कामरूपके मध्य पड़ता है। यहां उस समय किरात जाति वास करती थी। घटक नामक इनके एक राजा थे। विष्णु और नरकने सभीको लड़ाईमें मार डाला। बाद विष्णुने अपने पुत्र 'नरक'को इस राज्यमें अभिषिक्त किया। प्राग्‌ज्योतिषपुरमें राजधानी स्थापित हुई। विदर्भराजकन्या मायाके साथ नरकका विवाह हुआ। विष्णुने पृथ्वीके सामने पुत्रको सम्बोधन कर कहा, 'पुत्र! मैं तुम्हें यह शक्ति देता हूं, प्राणके जोखिम पर आनेसे ही इसका व्यवहार करना, दूसरे समय कदापि नहीं। यदि चिरकाल तक जीनेकी इच्छा है, तो ब्राह्मण मुनि और देवताओंके साथ कदापि विरुद्धाचरण न करना। इस नियमका उल्लङ्घन करनेसे तुम्हारा प्राण-नाश होगा।' नरकको इस प्रकार उपदेश दे कर विष्णु अन्तर्हित हो गये। नरकने विष्णुसे अभूतपूर्व और शत्रुओंसे दुर्भेद्य एक रथ पाया था। इसी समय राजर्षि जनक इस स्थान पर पहुंचे और इनकी

देवी वसुमतीसे शिक्षा प्राप्त हो कर कुछ काल तक वहीं रहे। नरकने मनुष्य-प्रथानुसार बहुत दिनों तक राज्य किया। पीछे में तादृशके अवसान होने पर बाण राजाके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। बाण असुर भावमें इधर उधर विचरण करता था। नरक भी उसकी संगतिसे बहुत दुर्दान्त हो गये और देवता-ब्राह्मणोंके प्रति अत्याचार करने लगे। इसी बीचमें एक समय वशिष्ठदेव कामाख्यादेवीके दर्शन करने आये, किन्तु नरकने उन्हें पुरमें प्रवेश न होने दिया। इस पर वशिष्ठदेवने कुपित हो कर नरकको शाप दिया, 'तुम अत्यन्त गर्वित हो कर इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रति अत्याचार करने लग गये हो, इस कारण तुम जिनके औरससे उत्पन्न हुए हो, उन्हीं के हाथसे बहुत जल्द मारे जाओगे। तुम्हारी मृत्युके बादमें कामाख्या देवीकी पूजा बन्द था और जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक कामाख्या देवी परिजनोंके साथ इस स्थानको छोड़ अन्यत्र जा रहेंगी।' इस पर नरक अपने प्राण समान बन्धु बाणको शरणमें पहुंचे और बाणके उपदेशानुसार ब्रह्माके तपश्चरणमें प्रवृत्त हुए। ब्रह्माने नरककी तपस्यासे संतुष्ट हो उसे वर मांगने कहा। इस पर नरकने कहा, 'प्रभो! जिससे मैं देव, असुर, राक्षस तथा अन्य देवयोनियोंसे अवध्य होऊं और जगत्में जब तक चन्द्र सूर्य रहें, तब तक मेरे सन्तान-सन्तति अविच्छिन्न भावसे अवस्थान करें तथा तिलोत्तमाकी जैसी रूपगुणसम्पन्न १६ हजार स्त्रियां और राजलक्ष्मी मेरे घरमें वास करें, यही वर मैं चाहता हूं।' ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर चल दिये। इस प्रकार अभिलषित वर पा कर नरक हर्षित हो अपने स्थानको चले गये। कालक्रमसे नरकके भगदत्त, महाशीर्ष, मदवान् और सुमाली नामक चार पुत्र हुए। ये सभी पुत्र प्रबल पराक्रमशाली और अजेय निकले। अब नरकने हयग्रीव, मुर, सुन्द, उपसुन्द आदि प्रबल पराक्रमशाली असुरोंको द्वाररक्षक और सेनापति आदि कार्योंमें नियुक्त किया। धीरे धीरे इन्होंने हयग्रीव आदिकी सहायतासे देवराज इन्द्रको पराजय किया और उन्होंको नाना प्रकारके कष्ट देने लगे। भगवान् विष्णुने उन्होंका कष्ट दूर करनेके लिये कृष्णका रूप धारण किया। देवताओंने इन्हीं और तिलोत्तमा जैसी रूपगुणसम्पन्न १६ हजार स्त्रियोंकी सृष्टि की। एक दिन वे हिमालय पर्वत पर इधर उधर भ्रमण कर रहीं थीं, नरक उन्हें देख कर अपने पुरको लाये। वहां वे उन्हें बहुत सताने लगे। तब देवताओंके आदेशसे श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर गये और नरकके साथ घमसान युद्ध करने लगे। अन्तमें भगवान् विष्णुने सुदर्शन चक्र द्वारा नरकका मस्तक दो खण्डोंमें कर डाला। तब पृथ्वी आनन्दित हो कर तुष्ट हुई और पुत्रकी मृत्यु पर कुछ भी शोकातुर न हुई।

(कालिकापु० ३६।४० अ०)

(नरकासुरका वृत्तान्त हरिवंशके १२०, १२१, १२२ अध्यायमें वर्णित है।)

नरककी मृत्युके बाद श्रीकृष्णने इनके भण्डारमें जो धनरत्नादि देखे थे, वे कुबेरके भी भण्डारमें न थे। कृष्ण सबके सब द्वारका पुरीको ले गये।

२ पापभोगस्थान। मृत्युके बाद जहां जा कर भोग करना होता है, उसे नरक कहते हैं। नरकके भय-से कितने लोग ऐसे हैं जो दुष्कर्मसे हाथ नहीं खींचते। क्या पुराण क्या मन्वादिसंहिता सभी शास्त्रोंमें थोड़ा बहुत नरकका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। लेकिन नरकके विषयमें बहुतोंका मतभेद है। दर्शनशास्त्रविदोंका कहना है, कि जिस प्रकारके शुभाशुभ कार्य किये जायंगे, भविष्यमें उसी प्रकारके फल भुगतने होंगे। अर्थात् पुण्यकार्य करनेसे स्वर्ग और पाप कार्य करनेसे नरक होगा। जब इस जीवोंकी यह षट्कोषिक देह भस्म हो जाती है, तब इस जीवोंका सूक्ष्म शरीर आतिवाहिक और वायुभूत हो कर अवस्थान करता है। यही सूक्ष्म शरीर स्वर्ग और नरक भोगता है। यह सूक्ष्म शरीर इस प्रकारके उपादानोंसे गठित है, कि अत्यन्त अग्निमें दग्ध हो जाने पर भी [illegible] किया और कुछ भी अनुभव नहीं करता, इसी कारण इस अवस्थामें इसे यातनामय शरीर कहते हैं। इसी सूक्ष्म शरीरसे स्वर्ग वा नरकका भोग होता है। अधर्म ही एक मात्र नरकका कारण प्रमाणित हुआ है।

"अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः।
प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीवन्मृतौ त्विमौ गुणौ ॥"
(भाषापरि॰ १६१)

चार्वाक आदि नास्तिकगण स्वर्ग-नरकादिका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।"
(चार्वाक)

वे लोग कहते हैं, कि इस देहके भस्म हो जाने पर स्वर्ग नरकादिका भोग असम्भव है। क्योंकि मृत्युके बाद और कुछ बच नहीं रहता। ये सब विचार अनावश्यक हैं, इस कारण नरकके विषयमें शास्त्रोंमें जो कुछ लिखा है, वही यहां पर लिखा गया—

भागवतमें नरकका विषय इस प्रकार लिखा है—राजा परीक्षितने शुकदेवसे पूछा था, 'भगवन्! नरक क्या पृथ्वीका कोई देशविशेष है या ब्रह्माण्डके बहिर्भाग और अन्तरालमें अवस्थित कोई प्रदेश है?' इस पर शुकदेवने कहा था, 'इस भूमण्डलके दक्षिण और भूमिके नीचे और जलके ऊपर जहां अग्निष्वात्तादि पितृगण हैं, वहीं यम भी स्वगणोंके साथ रहते और मृत व्यक्तियोंको ला कर उनके कर्मानुसार दोषगुणका विचार करते हैं। इसी स्थान पर सभी नरक अवस्थित हैं। इस नरकको संख्या इक्कीस है जिनके नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तशूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची और अयःपान। इनके सिवा और भी ७ नरक हैं, यथा—क्षारमर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्त्तन और सूचीमुख। सब मिला कर २८ नरक हैं।

जो परधन, परस्त्री और पुत्रका अपहरण करते, यमदूत उन्हें घोरतर कालपाशसे बांध कर बलपूर्वक तामिस्र नरकमें डाल देते हैं। यह नरक प्रगाढ़ तमसाच्छन्न है। पापी इसमें पतित हो कर खाने पीनेके अभावसे तथा दण्डताड़न आदि द्वारा भांति भांतिकी यन्त्रणासे बहुत बेचैन रहते हैं।

जो पतिको ठग कर उसकी स्त्रीके साथ सम्भोग करता है, उसे अन्धतामिस्र नरकमें वास करना होता है। यमदूत यहां उसे अनेक प्रकारके कष्ट दे कर पीछे इस नरकमें फेंक देते हैं। इस नरकमें पतित व्यक्तियोंको अशेष वेदना होती है, इसीसे उनकी स्मृति और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। यही कारण है, कि ऋषियोंने इस नरकका अन्धतामिस्र नाम रखा है। जो इस संसारमें रह कर 'यही शरीर मैं हूं' और 'यह सभी धन मेरा है' ऐसा जान कर मुग्ध हो जाते हैं और प्राणियोंके प्रति विरुद्धाचरण कर अपना शरीर तथा स्त्री पुत्रादिका पालन पोषण करते हैं, उन्हें रौरवनरक मिलता है। इस नरकका रौरव नाम पड़नेका कारण यह है, कि इस संसारमें मनुष्य जिस प्रकार जिन सब प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे स्वकृत कर्मदोषसे जब यम यातनाका भोग कर चुकते हैं, तब उनके आत्मकृत हिंसा-कर्म रुरु रूपमें परिणत हो कर उसी प्रकार उनकी हिंसा करते हैं। इसी कारण ऋषियोंने इस नरकका रौरव नाम रखा है। (सर्पसे भी अत्यन्त दुष्ट भाग्यहीन एक प्रकारका प्राणी है, उसीका नाम रुरु है)

महारौरव नरक भी इसी प्रकारका है। जो इस संसारमें अपनेके सिवा और किसीको नहीं जानते, उन्हें भी महारौरव नरक होता है। यहां क्रव्याद नामक रुरुगण मांस खानेके लिए उन्हें अनेक प्रकारकी यातना दे कर मार डालते हैं।

जो इस संसारमें अत्यन्त उग्र मूर्त्तिके हैं और शरीरका पालन करनेके लिए पशु अथवा पक्षी मार कर उसका मांस खाते हैं तथा जो अत्यन्त निर्दय हैं, यमकिङ्कर उन्हें कुम्भीपाक नरकमें डाल देते हैं और तप्त तेलमें पाक करते हैं।

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके प्रति विरुद्धाचरण करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरकमें डाले जाते हैं। यह नरक अत्यन्त भयावह है। इसकी परिधि दश हजार योजन है। यह ताम्रमय अत्युष्ण समानभूमि है। ब्रह्मद्रोही इसमें नरकमें गिर कर ऊपर सूर्य किरणसे और नीचे अग्निके उत्तापसे सन्तापित होते हैं। भूख और प्याससे उनकी देहका भीतरी और बाहरी भाग दग्ध हो जाता है। नारकी इस प्रकारकी यन्त्रणासे बेचैन रहता है।

अदृष्टिकी लोगोंके मर्यादानुसार उसे नरकमें रहना होता है।

जो अनापद्‌के समय भी इच्छापूर्वक स्वधर्म और वेद-मार्गका परित्याग तथा पाषण्डधर्मका अवलम्बन करते हैं, यमदूतगण उन्हें असिपत्रवन नामक नरकमें डूम देते और अजस्र प्रहार करते हैं। पापी वहाँ प्रहारकी यातनासे अस्थिर रहता है।

जो सब राजपुरुष दण्डार्ह व्यक्तिको दण्ड न दे कर अदण्डनीय व्यक्तिको दण्ड देते हैं, वे सब राजा या राजपुरुष अत्यन्त पापी हैं। इस पापसे उन्हें परकालमें शूकरमुख नामक नरक होता है। मनुष्य जिस प्रकार इक्षुदण्डको पेरते हैं उसी प्रकार वे लोग भी यमकिङ्करोंसे पेरे जाते हैं। इसमें पापीकी यन्त्रणाकी कोई नियत अवधि नहीं रहती।

परमेश्वरने जिसको जो वृत्ति स्थिर कर दी है, यदि कोई उसकी वृत्तिमें बाधा डाले, तो उसे अन्धकूप नामक नरक होता है। यह स्थान बहुत अन्धकार है। पापी यहाँ कुछ भी देख नहीं सकते और जिनकी वृत्तिमें बाधा डाली गई थी, वे आ कर अपना बदला चुका जाते हैं।

जो मनुष्य द्रव्यको उसके सामने औरोंको न बाँट कर अकेला खा लेता है और पञ्च यज्ञानुष्ठान नहीं करता, वह परकालमें कृमिभोजन नरकमें जाता है। इस नरकमें सहस्र-योजन लम्बा एक कृमिकुण्ड है। पापी उस कुण्डमें स्वयं कृमि हो कर कृमिभोजन करता है और अन्य कृमि भी उसे भोजन करते हैं। इसमें पापीको बहुत कष्ट भुगतना पड़ता है।

जो चोरी करके अथवा बलपूर्वक ब्राह्मणोंके हिरण्य रत्नादि अपहरण करते हैं और अनापद्‌कालमें किसी मनुष्यको भी बड़ा दुःख देते हैं, यमदूतगण लौहमय अग्निपिण्ड और सन्दंश द्वारा उनकी देह छिन्न भिन्न कर डालते हैं।

जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ और जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ सहवास करती है, यमदूत उन दोनोंको परकालमें अपने बहुत जोरसे पीटते हैं। पीछे पुरुषको तप्त लौहमय स्त्रीकी प्रतिमासे और स्त्रीको पुरुषाकृति लौहकी प्रतिमासे आलिङ्गन कराते हैं। जो पश्वादि अयोनिमें गमन करते हैं, यमकिङ्करगण उन्हें नरकमें डाल कर वज्रकण्टकमय शाल्मलीके ऊपर चढ़ा कर छिन्न भिन्न कर डालते हैं। इस पृथ्वी पर जो सब राजन्य अथवा राजपुरुष धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करते, वे अन्तमें वैतरणी नदीमें पतित होते हैं। यह नदी सभी नरकोंकी खाईस्वरूप है। इस नदीमें सभी जीवजन्तु उन्हें भक्षण करते हैं और वे अधर्मका विषय स्मरण करते हुए विष्ठा, मूत्र, पूय, शोणित, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और वसादियुक्त नदीमें गिर कर अच्छी तरह संतप्त होते हैं। जो इस लोकमें झूठी गवाही देते हैं अथवा व्यापारमें लेनेके समय वा दानके समय झूठ बोलते हैं, परलोकमें यमकिङ्करगण उन्हें सौ योजन ऊँचे पर्वत शिखरसे अत्यन्त कठोर अवीचिमत् नरकमें गिरा देते हैं (जहाँ जल और पत्थर स्थलकी तरह प्रकाशमान होता है उसे अवीचिमत् नरक कहते हैं।) यमदूतगण पापीको उस नरकमें डाल कर तिल तिल करके उसका शरीर काट डालते हैं, इससे उसको मृत्यु नहीं होती। फिर उसे पर्वतके ऊपर ले जाते हैं और वहाँसे पुनः उसी नरकमें फेंक देते हैं। इस प्रकार पापी अनेक प्रकारके कष्ट पाते हैं।

जो इस लोकमें दम्भान्वित हो कर दूसरोंको ठगनेके लिये यज्ञानुष्ठान करते हैं और उस यज्ञमें पशुवध करते हैं, उन्हें विशसन नामक नरक होता है। इस नरकमें यमदूत नाना प्रकारका क्लेश दे पापीका अङ्ग काट डालते हैं।

द्विजकुलोद्भव जो मनुष्य इस लोकमें काममोहित हो कर असवर्णा रमणीके साथ सम्भोग करते हैं, यमपुरुष रेतसे भरी हुई नदीमें उन्हें डाल कर रेत पान कराते हैं।

जो ब्राह्मण वा ब्राह्मणी सुरापान करती है वा कोई दूसरा मनुष्य प्रमत्त हो कर और क्षत्रिय वा वैश्य व्रतके लिये सोमपान कर अज्ञानप्रयुक्त मद्यपान करता है, यमदूतगण उसे नरकमें ले जाते समय वक्षःस्थल पर चढ़ बैठते हैं और अग्निमें गलाये द्रवीभूत कृष्णवर्ण लौह द्वारा उसके मुख गलेको अभिषिक्त करते हैं।

जो हीनजाति हो कर अपनेको बड़ा बतलाता है

और उच्चवर्णका अनादर करता है वह चारकर्दममय नरकमें औंधे मुंह गिरता है और वहां बहुत कष्ट पाता है।

जो सब मनुष्य राक्षसके समान उग्रस्वभावके हैं और जनताको कष्ट पहुंचाते हैं, वे मरने पर दन्दशूक नामक नरकमें जाते हैं। इस नरकमें पांच या सात मुंह-वाले राक्षस रहते हैं जो उनको चूहों की तरह पकड़ पकड़ कर निगल जाते हैं।

जो इस लोकमें अन्धकारमय गर्त्त और कुसूल एवं गह्वरादिमें प्राणियोंको बंद कर कष्ट देते हैं वे परलोकमें विष, अग्नि और धूम द्वारा विषम यातना पाते हैं।

घरमें अतिथिके आने पर जो उस पर गुस्सा करते हैं और गुस्सेसे लाल लाल आंखें कर उन्हें देखते हैं, वे अन्तकालमें जब नरक जाते हैं तब वहां वज्रतुल्य तुण्डधारी कङ्कादि पक्षिगण उनकी आंखें निकाल लेते हैं और तरह तरहकी यन्त्रणा देते हैं।

जो मनुष्य इस लोकमें धनके घमण्डसे मैं श्रेष्ठ हूं" ऐसा ख्याल कर टेढ़ी चालें चलता है और धन अपहरण करेगा ऐसा कह कर लोगोंको डरता है तथा दिन-रात धनकी चिन्तामें व्यतिव्यस्त रहता है, वह महापातकी है। इस पापसे वह सूची नामक नरकका भोग करता है। यमदूतगण तांतियोंकी नाईं उसका समूचा शरीर सूईसे भिद कर सूते गांथ देते हैं।

यमालयमें उक्त प्रकारके असंख्य नरक हैं। सभी पापी पापके तारतम्यानुसार इन सब नरकोंमें पतित हो कर कष्ट भोगते हैं। पीछे पापके क्षय होनेसे हो वे यन्त्रणासे छुटकारा पाते हैं। जब तक पाप-भोग शेष नहीं होता, तब तक वे उसी नरकमें पड़े रहते हैं।

(भागवत ५।२६ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें नरकका विषय इस प्रकार लिखा है—पापिगण जहां यातनाका भोग करते हैं, उसीका नाम नरक है।

"नरकाणाञ्च कुण्डानि सन्ति नाना विधानि च।
नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च॥
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्।
भयङ्कराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च॥
षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्याञ्च सन्ति च।
निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृतिखं० २७ अ०)

नरककुण्ड नाना प्रकारके हैं, पुराणके भेदसे उनके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। यह स्थान जीवोंका अत्यन्त क्लेशकर है। इसमें ८६ कुण्ड हैं जिनके नाम नीचे दिये गये हैं। यमालयमें जो सब पापी पाप भेदके अनुसार जिन सब कुण्डोंमें रहते हैं, उन्हें नरककुण्ड कहते हैं। किस प्रकारका पापानुष्ठान करनेसे मनुष्य किस नरककुण्डमें जाता है, उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

नरककुण्ड	पापी।
१। वह्निकुण्ड	कटु वचनोंसे बन्धुओंका हृदय दग्धकारक।
२। तप्तकुण्ड	ब्राह्मण और अतिथियोंको जो भोजन नहीं देता।
३। क्षारकुण्ड	निषिद्ध दिनमें वस्त्रमें क्षार-संयोजन-कारक।
४। विट्कुण्ड	ब्राह्मणोंका वित्तापहारक।
५। मूत्रकुण्ड	दूसरेका तड़ाग खनन कर जो स्वयं उत्सर्ग करता।
६। श्लेष्मकुण्ड	सबके समक्षमें जो अकेला मिष्टान्न भोजन करता।
७। गरकुण्ड	पिता माता आदिका जो पालन नहीं करता।
८। दूषिकाकुण्ड	अतिथि देख कर जो विरक्त होता।
९। वसाकुण्ड	कोई वस्तु ब्राह्मणको दान दे कर उसे फिर दूसरेको दान देनेवाला।
१०। शुक्रकुण्ड	परस्त्री-गामी पुरुष और पर-पुरुषगामिनी स्त्री।
११। असृक्कुण्ड	गुरुजनको ताड़नाकारी वा रक्तपानकारी।
१२। अश्रुकुण्ड	हरिभक्तको देख कर जो उप-हास करता।

५४। ज्वालाकुण्ड
५५। भस्म कुण्ड
५६। दग्धकुण्ड — देवता और ब्राह्मणके घृत-तैलादि अपहारक। देवता और ब्राह्मणका गन्धतैल और धात्री चुरानेवाला।

५७। तप्त-शूर्मीकुण्ड — बलपूर्वक वा छलतापूर्वक दूसरेकी भूमि हरनेवाला।

५८। असिपत्रकुण्ड — अर्थलोभसे जो मनुष्य दूसरेको खड्ग द्वारा मारता है।

५९। क्षुरधारकुण्ड — जो ग्राम और नगरादि दाह करता है।

६०। सूचीमुखकुण्ड — जो मनुष्य एकके सामने दूसरेकी निन्दा वा वेद और ब्राह्मणकी निन्दा करता है।

६१। गोधामुखकुण्ड — जो दूसरेके घरमें सेंध मारकर द्रव्य चुराता वा गो, छागादि अपहरण करता है।

६२। नक्रमुखकुण्ड — सामान्य द्रव्यापहारक।

६३। गजदंशकुण्ड — गज, तुरग और नरचोर।

६४। गोमुखकुण्ड — जो गवादि पशुको जल पीते समय बाधा देता है।

६५। कुम्भीपाककुण्ड — गो, स्त्री, भिक्षु, भ्रूण और ब्राह्मण-हत्याकारक। अगम्यागामी, दीक्षा और सन्ध्याहीन, तीर्थप्रतिग्राही, ग्रामयाजी, देवल, शूद्र-सूपकार और वृषलीपति।

६६। कालसूत्रकुण्ड — ब्राह्मणका अनिष्ट वा उसी प्रकारका गुरुतर पाप करनेवाला।

६७। अवटोदकुण्ड — कुलटादि षड्वेश्यागामी द्विज।

६८। अरुन्तुदकुण्ड — चन्द्रसूर्यग्रहण वा उसी प्रकारके निषिद्ध कालमें भोजन करनेवाला।

६९। पांशुभोजकुण्ड — जो मनुष्य वाग्दत्ता कन्याको दूसरेके हाथ सौंपता है।

७०। पाशवेष्टकुण्ड — दत्त वस्तुका अपहारक।

७१। शूलप्रोतकुण्ड — शिवलिङ्ग पूजनमें अभक्तिकारी।

७२। प्रकम्पनकुण्ड — जो ब्राह्मणको भय दिखलाता है वा दन्ताघात करता है।

७३। उल्कामुखकुण्ड — स्वामीके प्रति कटुभाषिणी।

७४। अन्धकूपकुण्ड — शूद्रभोग्या ब्राह्मणी।

७५। वेधनकुण्ड — वेश्या अर्थात् पञ्च वा षट्-पुरुषगामिनी।

७६। दन्तताड़नकुण्ड — युङ्गी अर्थात् सप्ताष्ट-पुंगामिनी।

७७। जालबद्धकुण्ड — महावेश्या अर्थात् अष्टाधिक पुरुषगामिनी।

७८। देहचूर्णकुण्ड — कुलटा अर्थात् स्वामीके सिवा कोई अन्य पुरुषगामिनी।

७९। दलनकुण्ड — स्वैरिणी अर्थात् स्वामीके सिवा अन्य तीन पुरुषगामिनी।

८०। शोषणकुण्ड — पुंश्चली अर्थात् स्वामीके सिवा अन्य दो पुरुषसंसर्गकारिणी।

८१। कषकुण्ड — सवर्णा परपत्नीगामी।

८२। सूर्पकुण्ड — ब्राह्मणी-गमनकारी क्षत्रिय और वैश्य।

८३। ज्वालामुखकुण्ड — जो हाथमें गङ्गाजल, तुलसी और शालग्रामादि ले कर प्रतिज्ञा करने पर भी उसे पूरा नहीं करता, वा मिथ्या शपथ करता है। अथवा जो मित्रद्रोही, विश्वासघाती है वा झूठी गवाही देता है।

८४। जिह्मकुण्ड — नित्यक्रियाहीन, देवतामें अनास्थाकारी और मन्दिरके प्रति उपहासकारी।

८५। धूमान्धकुण्ड — देव और विप्रका धनापहारी।

८६। नागवेष्टनकुण्ड — जो ब्राह्मण मोहवश वैद्य वा दैवज्ञ वृत्तिका अवलम्बन करता है वा लाह, लोहा और रसादि बेच कर जीविका निर्वाह करता है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड २७-२८ अ०)

अन्यान्य पुराणोंमें भी नरकके अनेक नाम लिखे हैं, विस्तारके भयसे सभी नहीं दिये गये, केवल प्रधान प्रधान ही नाम दिये जाते हैं।

नरक	पापी
अधोमुख	असत् प्रतिग्राही, अयाज्य याजक और नक्षत्रसूचक।
अन्धतामिस्र	जो अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये दूसरोंका अनिष्ट करता है।
असिपत्रवन	वृथा वनच्छेदनकारी।
कालसूत्र	जो अपने पिता और ब्राह्मणके प्रति द्वेष करता है।
कुम्भीपाक	रत्नापहारी।
तप्तकुम्भ	अगम्यागामी।
तामिस्र	परवित्त और अपत्य-कलत्राप-हारी।
पूयवह	जो पुत्रोंको न दे कर मिष्टान्न भोजन करता है और जीवन अपकर कार्य करनेमें साहस करता है। जो ब्राह्मण हो कर लाक्षा, मांस, रस, तिल, तिल और लवण विक्रय करता है, जिसका जो जातीय व्यवसाय है उसे न कर जो मार्जार, कुक्कुट, छाग, कुक्कुर, वराह और पक्षीपालन आदि व्यवसाय करता है। जो अभिनय कार्य करके आहार द्वारा उपार्जित धनसे जीविकानिर्वाह करता है।
महाज्वाला	कन्या या पुत्रवधूगामी।
महारौरव	जीविकाके लिये जन्तुघाती।
वह्निराम	जो केवल मत्स्यादि बेच कर अपनी जीविका निर्वाह करता। कुण्डाशी अर्थात् जीवितमत्स्य आदि बन्धे कारकाल जातिका नाम कुछ है, उसीका अन्न खानेवाला। माहिषिक अर्थात् जो पत्नीके व्यभिचार द्वारा उपार्जित धनसे अपना गुजारा करता है। पर्वकारी, मद्यदाता, मित्रघातक, शाकुनिक, ग्राम याजक और सोमविक्रयकर्त्ता।
रौरव	कूटसाक्षी, पक्षपाती, मिथ्यावादी और प्रमाजन्तुवध कारी।
शूकरमुख	सुरापायी, ब्रह्मघाती, सुवर्णचोर और इन सब व्यक्तियोंके साथ मित्रताकारी। राजा हो कर अपराधीको दण्डप्रदान और ब्राह्मणको दैहिक दण्ड-दाता।

(विष्णुपुराण और पद्मपु॰)

शास्त्रके अनुसार पाप कर्म करनेसे ही किसी न किसी नरकका भोग अवश्य होता है।

अङ्गरेजीमें नरकको 'हेल' (Hell) कहते हैं। इस शब्दका मौलिक अर्थ अर्थ तमसा है, गभीर अन्धकारमय इत्यादि है। इससे समाधि-गह्वरका भी बोध होता है। क्रमशः इस शब्दसे मरनेके बाद जीवात्माकी अवस्थाका ज्ञान होता है। जो ऐश्वरिक वा प्राकृतिक नियमोंका उल्लङ्घन कर मृत्युके बाद शास्ति पानेको उपयुक्त होते थे उनको उस अवस्थाको 'हेल' कहते थे। लेकिन पीछे यह शब्द शास्तिभोगके समय अर्थात् नरकका अर्थ समझा जाने लगा है। मरनेके बाद जिस स्थानमें आत्माका पापमोचन करनेकी व्यवस्था की (जिस तरह Roman Catholic purgatory) उस स्थानको प्राचीन ईसाई लोग हेल कहते थे। उनके पीछे मृतको आत्मा मरनेके बाद जिस स्थानमें रह कर यीशुख्रीष्टके पुनरागमन और महाविचारको प्रतीक्षा करती है (Limbus Patrum) उस स्थानको भी प्राचीन 'हेल' कहते थे। जिन सब शिशुओंको बपतिस्मा अभिषेक (Baptism)

नहीं होता, मृत्यु के बाद उनकी आत्मा जहां रहती है कभी कभी उसे भी प्राचीन ईसाई लोग हेल कहते थे। अन्तमें स्वकृत पापके दण्ड भोगार्थ एक प्रकारका कारागार कल्पित होता है, वह भी ईसाइयोंके मतसे 'हेल' नामसे प्रसिद्ध था। इस हेल वा नरकभोगके समयका परिमाण ले कर अनेक मतभेद हैं। खृष्टानी शास्त्रमें नरककी अवस्थितिके सम्बन्धमें आज तक यही समझा जाता है, कि पृथ्वीके नीचे चिरान्धकार गर्त्तराशि अथवा अन्तरीक्ष तथा पृथ्वी पर जितने अन्धकारपूर्ण गर्त्त हैं, वे सभी नरक हैं, वहीं पापियोंको यथोचित दण्ड मिला करता है। रोमन कैथलिकमें नरक-यन्त्रणाके अनेक प्रकारके विवरण रहने पर भी उनसे यही बोध होता है, कि वहां आत्मा दो प्रकारकी यन्त्रणाओंमें सदा निमज्जित रहती है। इन दो प्रकारकी यन्त्रणाओंके नाम चिरशोक-यन्त्रणा (Pain of loss) और चिरग्लानि-यन्त्रणा (Pain of sense) है। पहली यन्त्रणामें ईश्वरानुग्रह और स्वर्गसुखकी चिरहानि हो जानेसे तज्जनित चिरशोक और दूसरीमें स्वकृत पापके लिये चिरग्लानि होती है।

ईसाइयोंमें पाश्चात्य और प्राच्य (Western and Eastern Churches)के भेदसे इसमें दो मत देखे जाते हैं। प्राच्यके मतमें शेषोक्त यन्त्रणाका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता, किन्तु थोड़ा गौर कर देखनेसे ऐसा बोध होता है, कि दोनों ही यन्त्रणाको दोनों दल स्वीकार करते हैं, केवल यन्त्रणाभोगकी प्रकृति ले कर कुछ विरोध देखा जाता है। प्राचीन ईसाइयोंका मत है, कि महाविचारके दिन एक बार नरकदण्ड हो जानेसे फिर उससे परित्राण होनेकी सम्भावना नहीं रहती, किन्तु ओरिगेन (Origen)के समयसे अर्थात् उनके तथा उनके शिष्योंके व्याख्यावलसे इस प्रकारका विश्वास दूर हो गया है। बहुतोंका मत है, कि नरकभोगसे आत्माका पाप क्रमशः क्षय हो कर वह विशुद्धता लाभ करती है। पापविशेषसे विशुद्धता लाभके समयको भी ह्रास-वृद्धि होती है। इस मतको अंगरेजीमें Origenistic theory of the Apocatastasis कहते हैं।

ईसाई शास्त्रका मत कनस्तान्तिनोपलके द्वितीय अधिवेशनमें दूषित ठहराया गया है। प्राच्य और पाश्चात्यके मतमें नारकीय शास्तिकी प्रकृति ले कर जो मतभेद चला आ रहा है, वह उनके चिरभोगके विषयमें कोई गड़बड़ी नहीं है। न्यू टेष्टामेण्ट नामक बाइबलके खण्डविशेषमें पापीका शास्तिस्थान कई जगह जेहेना (Gehenna) नामसे उल्लेख किया गया है। प्राचीन ईसाइयोंके मतसे नरकमें चिरप्रज्वलित भीषण अग्निका दाह और सर्पवत्, कुम्भीराकृति, शरजिह्व, ड्रागण नामक भीषण प्राणियोंका दंशन और तीक्ष्ण शृङ्गविशिष्ट विकटदन्तयुक्त दैत्योंका पीड़न ही प्रधान माना गया है।

मुसलमान भी चिरनरकमें विश्वास रखते हैं। इन लोगोंके नरकको 'जहन्नम' कहते हैं।

३ कलिके एक पौत्रका नाम। इन्होंने कलिके पुत्र भयके औरस और कलिकी पुत्री मृत्युके गर्भसे जन्म ले कर अपनी बहन यातनासे विवाह किया था। (कल्किपु०) ४ विप्रचित्ति दानवका एक पुत्र। ५ निकृतिके गर्भजात अनृतका पुत्र।

नरककुण्ड (सं० क्ली०) नरकस्य कुण्डं ६-तत्। पापियोंकी यातनाका स्थानभेद, वह जगह जहां पापी कष्ट भोगता है।

नरकगति (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रके अनुसार वह कर्म जिसके करनेसे मनुष्यको नरकमें जाना पड़े।

नरकगामी (सं० त्रि०) नरकमें जानेवाला।

नरकचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णा-चतुर्दशी। इस दिन घरका सारा कूड़ा करकट निकाल कर फेंका जाता है।

नरकचूर (हिं० पु०) कचूर देखो।

नरकजित् (सं० पु०) नरकं तन्नाम्ना विख्यातं असुरं जयति जि-क्विप् तुक् च। नरकासुरजेता, श्रीकृष्ण। वसुदेवके लड़के श्रीकृष्णने नरकासुरको मारा था, इसी कारण उनका नाम नरजित् पड़ा है। नरक देखो।

नरकट (हिं० पु०) बेंतकी तरहका एक प्रसिद्ध पौधा। इसकी पत्तियां बासकी पत्तियोंकी तरह पतली और लम्बी होती है। इसके डंठल लम्बे, मजबूत और बीचसे पोले होते हैं। ये डंठल कलमें तथा चटाइयां आदि बनानेके काममें आते हैं। इसके सिवा इनका उपयोग

कृमिकी निमाकियां, दौरियां और बैठनेके लिए मोढ़े आदि बनाने और कहीं पाटनेमें भी होता है। कहीं कहीं इसके रेशोंसे रस्से भी बनाये जाते हैं।

नरकदेवता (स॰ स्त्री॰) नरकस्य अधिष्ठात्री देवता। निरयदेवी। पर्याय—अलक्ष्मी, निर्ऋति, काकपर्णी। (शब्दरत्ना॰)

नरकपाल (स॰ क्ली॰) नराणां कपालं ६ तत्। मृत व्यक्तिको मौत खित अस्थिभेद, मुर्देके सिर परकी एक हड्डी। कोई कोई इसे पवित्र मानते हैं लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं है। यह अशुचि है, छू जाने पर स्नान अवश्य कर लेना चाहिये।

नरकभूमि (स॰ स्त्री॰) नरकस्य दुःखभेदस्य भोगयोग्या भूमिः। भोगभूमि, वह स्थान जहां पापी जा कर दुःख भोगते हैं।

नरकभूमिका (स॰ स्त्री॰) नरकलोक।

नरकमुक्त (स॰ पु॰) नरकात् मुक्त। नरकसे मुक्त। नरकसे मुक्त होने पर पुनः जन्म लेना पड़ता है। पुण्य कार्य करनेसे स्वर्ग और पाप कार्य करनेसे नरक मिलता है। जब स्वर्ग और नरकका भोग शेष हो जाता है, तब जीव पुनः जन्म ग्रहण करता है। इसका विषय गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है—

नरकसे मुक्त होने पर पापयोनिमें जन्म होता है। जो पतित व्यक्तिसे दान लेता है, वह नरकसे मुक्त हो कर खरयोनिमें जन्म लेता है। उपाध्यायके प्रति अभिचारण करनेसे अथवा मन ही मन उनको अहीसे साथ सम्भोगकी इच्छा रखनेसे तथा उनका कोई द्रव्य चुरानेसे नरकमुक्ति के बाद कुक्कुरयोनिमें जन्म होता है।

मित्रको अपमान करनेसे गर्दभ योनिमें, पिताको लड़कोप देनेसे कच्छपयोनिमें, प्रभुके भक्तसे प्रतिपालित हो कर उन्हें छोड़ किसी दूसरेकी सेवा करनेसे वानर, गच्छितके अपहरण करनेसे कृमि दूसरेकी निन्दा करनेसे राक्षस, विश्वासघाती होनेसे मीन, धान चुरानेसे मूषिक, परदाराके साथ सम्भोग करनेसे वृक, भाभीके साथ गमन करनेसे कोकिल, गुरु आदि भाभीके साथ सम्भोग करनेसे शूकर, यज्ञदान और विवाह में विघ्न डालनेसे कृमि, देवता, पिता और ब्राह्मणको न दे कर खाय जा लेनेसे काक, बड़े भाईका अपमान करनेसे क्रौञ्चयोनिमें, शूद्रके ब्राह्मणी-गमन करनेसे कृमि और उससे उत्पन्न सन्तान बनाकर तक कीट-योनिमें जन्म लेता है। मत्सरीन पुत्रको मारनेसे गर्दभ बालक और स्त्री वध करनेसे कृमि, मद्य चुरानेसे मक्षिका, अन्न चुरानेसे मार्जार, तिल चुरानेसे मूषिक, घी चुरानेसे नकुल, मद्गुर मत्स्य चुरानेसे काक, मधु चुरानेसे दंश, पूप चुरानेसे पिपीलक, कांसा चुरानेसे वायस, कापड़ चुरानेसे कृमि, रुई कपड़ा चुरानेसे क्रौञ्च, गन्ध चुरानेसे मकर, शाक, पत्र और रक्तवस्त्र चुरानेसे जीवजीव, गन्धद्रव्य चुरानेसे छछूंदर, बांस चुरानेसे शश, काठ चुरानेसे काठकीट, पुष्प चुरानेसे दरिद्रमें, जो चुरानेसे पङ्गु, शाक चुरानेसे हारीत और जल चुरानेसे चातक योनिमें जन्म होता है। नरकभोग अर्थात् नरकमुक्तिके बाद इन सब योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है।

(गरुड़पु॰ कर्मविपाक २२८.)

नरकल—कोचीन देशका एक बन्दर। यह अक्षा॰ १०° २१´ उ॰ और देशा॰ ७६ १२´ पू॰के मध्य अवस्थित है।

नरकस (हि॰ पु॰) नरकट देखो।

नरकट (हि॰ पु॰) नरकट देखो।

नरकस्थ (स॰ त्रि॰) नरके तद्भूमौ तिष्ठति स्था-क। १ नरकभूमिमें स्थित, जो नरकमें हो। (स्त्री॰) २ वैतरणी नदी।

नरकान्तक (स॰ पु॰) अन्तयति इति अन्तकः, नरकस्य अन्तकः। नरकजित् विष्णु, श्रीकृष्ण।

नरकामय (स॰ पु॰) नरक आमय इव यस्य। १ प्रेत। नरकरूप आमय। २ निरयरोग, नरककी तरह दुःख दायक एक प्रकारका रोग।

नरकासुर (स॰ पु॰) नरक देखो।

नरकी (हि॰ वि॰) नारकी देखो।

नरकीलक (स॰ पु॰) नरेषु कीलक इव निम्नत्वात्। गुरुघ्न वह जो गुरुका वध करता हो। इसका दूसरा नाम गुरुघ्न है।

नरकुंज (हि॰ पु॰) नरकट देखो।

नरकेशरी (सं० पु०) नर एव केशरी । १ नरसिंह । नरःकेशरीव वीरत्वात् । २ मानवश्रेष्ठ, वह जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ हो ।

नरकेहरि (हिं० पु०) नरकेशरी देखो ।

नरकौकस् (सं० पु०) नरके ओकः वासस्थानं यस्य । नरकवासी, निरयगामी ।

नरकौतुक (सं० पु०) मदारीका खेल ।

नरखेर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत नागपुर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २१° २८´ उ० और देशा० ७८° ३२´ पू० नागपुर शहरसे ४५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ७७२६के लगभग है । यहां एक उत्तम बाजार, स्कूल और थाना है। नगरके चारों तरफ सुन्दर सुन्दर उद्यान रहने पर भी आवहवाकी शिकायत नहीं है। प्रति सप्ताह मवेशोंका बाजार लगता है।

नरगण (सं० पु०) नरस्य गणो यस्मात् । १ नक्षत्रभेद, फलित ज्योतिषमें नक्षत्रोंका एक गण जिसमें उत्तर-फल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रानक्षत्र सम्मिलित है। इस गणमें जो जन्म लेता है, वह सुशील और बुद्धिमान् होता है। राक्षसगणके साथ इस गणका विरोध माना जाता है। इसे मनुष्य गण भी कहते हैं। नराणां गणः ६-तत् । २ नरसमूह ।

नरगिस (फा० पु०) १ प्याजके पेड़की तरहका एक पौधा । इसकी जड़ भी प्याजकी गांठ सी होती है। इसमें कटोरीके आकारका सफेद रंगका फूल लगता है। इसकी सुगन्ध भी बहुत मनोहर होती है। फारसी और उर्दूके कवि इस फूलके साथ आंखकी उपमा देते हैं। इसके फूलका एक प्रकारका बढ़िया इत्र भी बनाया जाता है। २ इस पौधेका फूल ।

नरगिसी (फा० पु०) १ एक प्रकारका कपड़ा। इस पर नरगिसकी तरहके फूल बने होते हैं। २ एक प्रकारका तला हुआ अण्डा ।

नरगुन्द—इसका वर्त्तमान नाम नर्गन्द है। यहां १०१७ शकमें पश्चिम चालुक्य राजाओंका एक अग्रहार था ।

नरङ्ग (सं० पु०) नॄणाति प्रापयतीति नॄ-अङ्गच् । पतादेरंगच्, इति उणादिकोषटीकाधृत सूत्रादङ्गच्) नागरङ्ग, नारङ्गीका पेड़ ।

नरचन्द्रसूरि—जैन हर्षपुरीय-गच्छके अन्तर्गत एक पण्डित । ये देवप्रभसूरिके शिष्य नरेन्द्रप्रभके गुरु थे। इन्होंने अनर्घराघव नाटकको टीका, न्यायकन्दलीकी टीका, ज्योतिःसारटीका और प्राकृत-दीपिकाकी टीका बनाई है तथा अपने गुरुदेव प्रभसूरि-विरचित पाण्डवचरित काव्य और उदयप्रभप्रणीत धर्माभ्युदय महाकाव्यका संशोधन किया है ।

नरघा (हिं० पु०) एक प्रकारका पाट या पटुआ ।

नरता (सं० स्त्री०) नरस्य भावः नर-तल्, टाप् । नरत्व, मनुष्यत्व, मनुष्यका धर्म वा भाव ।

नरतात (सं० पु०) राजा, नृपति ।

नरत्व (सं० क्ली०) नर-भावे त्व । मनुष्यत्व, मनुष्य होनेका भाव ।

नरद (सं० क्ली०) नलद लस्य र । नलद देखो ।

नरद (फा० स्त्री०) १ चौसर खेलनेकी गोटी । २ एक पौधा जिसके फूलोंका अरक खींचा जाता है और जिसकी पत्तियां मसालेके काममें आती हैं । ३ शब्द, ध्वनि, नाद ।

नरदन (हिं० स्त्री०) गरजना, नाद करना ।

नरदवां (फा० पु०) पनाला, नल ।

नरदा (फा० पु०) मैला पानी बहनेकी नाली ।

नरदारा (हिं० पु०) १ नपुंसक, हिजड़ा, जनखा । २ जो पुरुष हो कर भी स्त्रियोंका काम करे, डरपोक, कायर ।

नरदिक (सं० त्रि०) नरद किशरादित्वात् ष्ठन् । नलदविक्रेता, नलद बेचनेवाला ।

नरदेव (सं० पु०) नरदेव इव पूज्यत्वात् । १ राजा, नृपति । २ ब्राह्मण ।

नरदेवकुमार (सं० पु०) एक ऋषि जिनकी कथा श्रीमद्भागवतमें है ।

नरदेवदेव (सं० पु०) नरः देवदेव इवः । राजा ।

नरद्विष (सं० पु०) नरान् द्वेष्टि द्विष-क्विप् । मनुष्यद्वेषकारी, राक्षस, असुर ।

नरनगर (सं० क्ली०) नरप्रधानं नगरं । नगरभेद, एक

नेमरको भोग। नरनगर यहां पर नगरका नकार 'पूर्व-पदात् संज्ञायाम्' इस सूत्रके अनुसार णत्व हो सकता था, लेकिन क्षुभ्नादित्वके कारण णत्व नहीं हुआ।

नरनाथ (स॰ पु॰) नरः नाथ इव। नरोंके प्रभु, राजा, नृपति, भूपाल।

नरनायक (स॰ पु॰) राजा, नृप।

नरनारायण (स॰ पु॰) नरश्च नारायणश्च। ऋषिविशेष। कालिकापुराणमें इन दो ऋषियोंका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है,—

किसी एक समय महायज्ञ शरभरूपी भर्ग महादेव-ने दन्ताघातसे नरसिंहको दो खण्ड कर डाला। नरसिंह-के परम दन्ताघातसे दो खण्ड होने पर उसकी नराख्य अर्द्ध देहसे महातपा हिमाकृति मुनिरूपी नर और सिंहा-कृति अर्द्ध देहसे महातपस्वी नारायण नामक जनार्दन उत्पन्न हुए। महात्मा नर और नारायणकी सृष्टिके प्रधान कारण सत्त्व हरिने नर-नारायणकी शान्तिमें मत्स्यरूप-के साथ मत्स्यदेवरचित नौका पर रख कर परम गराहके निकट गये थे। (कालिकापुराण ३० अ॰)

देवी भागवतमें नरनारायणका विवरण जो लिखा है, वह इस प्रकार है,—

ब्रह्माके हृदयसे धर्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र अत्यन्त ब्रह्मनिष्ठ निकला। धर्मने सांख्ययोगका अवलम्बन कर दक्ष प्रजापतिकी दश कन्याओंसे विवाह किया। उनके गर्भसे हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे हरि और कृष्ण प्रतिदिन योगाभ्यासमें निरत रहते थे। इधर नर और नारायण हिमालय पर्वत पर जा कर बदरिकाश्रम-तीर्थ-में अद्भुत तपस्या करने लगे।

यहां नर और नारायणने सौ वर्ष तक कठोर तपस्या की। इनके तपस्तेजसे चराचर अखिल जगत् परितप्त हो उठा। तब देवराज इन्द्र इनका तपोभङ्ग करनेके लिये काम, क्रोध और अत्यन्त निदारुण लोभको उत्पादन कर नर-नारायणके सामने उपस्थित हुए। यहां आ कर उन्होंने तपोभङ्गके लिए अनेक चेष्टाएं कीं, किन्तु कुछ भी फल न निकला।

तब इन्द्र मन्मथकी शरणमें पहुंचे। कामदेव वसन्त और अप्सराओंको साथ ले वहां नरनारायण तपस्या करते थे वहां चल दिये। वसन्तके आनेसे भी वहां वसन्तऋतु की शोभा होने लगी। साथोत्सनिपुणा रम्भा और तिलोत्तमादि प्रधान प्रधान अप्सराएं उस मनोरम आश्रममें सुमधुर गीत गाने लगीं। उस सुमधुर सङ्गीतको तथा कोकिलोंके मनोहर कूजन और भ्रमरोंकी सुमधुर वचध्वनिको सुन कर उन दोनों ऋषियोंका ध्यान टूट गया। नरनारायण दोनों ऋषि अकालमें ऋतुराज वसन्त का उदय और वनपादपसमूहका पुष्पोदय देख कर विस्मित हो पड़े। तब नारायणने अत्यन्त विस्मित हो नरऋषिसे कहा, 'भाई! देखो, ये सभी वृक्ष पुष्पित हो रहे हैं और अकालमें वसन्तऋतुका आगमन दिखनेमें आ रहा है।' इसी बीच कन्दर्प तथा सभी अप्सराएं उन्हें दीख पड़ीं।

इन्हें देख कर दोनों मुनि बड़े विस्मित हुए। मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि आठ हजार पचास अप्स-राओंने मुनिको घेर लिया और नाच गान करने लगीं। उनके नाच गानसे खुश हो कर मुनियोंने उन्हें आतिथ्य कार्यके लिये अनुरोध किया।

नर नारायणको जब मालूम हुआ कि देवराज इन्द्रने उनको तपस्या भङ्ग करनेके लिए इन सबोंको भेजा है, तब उन्होंने इन्द्रको लज्जित करनेके लिये तुरन्त अपनी जांघसे एक बहुत सुन्दर अप्सरा उत्पन्न की। यह वाराङ्गना महर्षिके ऊरुसे उत्पन्न होनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुई।

पीछे नारायणने इन्द्रकी भेजी हुई अप्सराओंकी सेवा करनेके लिए उनसे भी अधिक सुन्दर आठ हजार पचास दासियोंकी सृष्टि की। इस पर अप्सराओंने अपने अपने हाथमें उपहार द्रव्य ले कर दोनों मुनिको प्रणाम किया और इस आश्चर्य घटनाको देख कर उनकी स्तुति करने लगीं। मुनियोंने प्रसन्न हो कर कहा, 'तुम लोग अभिवाञ्छित वर मांगो और उर्वशीको अपने साथ ले जाओ। इसे हमने देवराजको उपहारमें दिया।'

अप्सराओंने यह सुन कर कहा, 'प्रभो! हम लोगों-को अत्यन्त हर्ष और तपस्याके फलसे आपके चरणोंका दर्शन हुआ है, आप यदि सन्तुष्ट हो कर हमें वाञ्छित वर

हैं, तो जो कुछ हम लोगोंका अभिलाष है, उसे कहें। हे देवेश! आप जगत्के पति हैं, अतएव हमलोगोंके भी पति हुए। हमलोग सर्वदा आपकी सेवामें नियुक्त रहेंगी। ये सब उत्पन्न अप्सराएँ आपकी आज्ञासे स्वर्गको चली जांय और हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहीं रह कर आपकी सेवामें लगी रहें। आप देवताओंके प्रभु हैं, अतः हमें वाञ्छित वर दे कर सत्य धर्मकी रक्षा कीजिये। धार्मिक मुनियोंने कहा है, कि जो स्त्रियां कामातुरा हैं, उनकी आशा भङ्ग करनेसे हिंसा जनित पाप लगता है। अतः आप हमलोगोंको परित्याग न करें।' इस पर नर-नारायणने कहा था, 'हे अप्सरोगण! हम दोनोंने यहां पूरा एक हजार वर्ष जितेन्द्रिय हो कर तपस्या की है, अभी किस प्रकार विषयासङ्गमें लिप्त हो कर उस तपस्याको भङ्ग कर सकते?' फिर अप्सराओंने प्रार्थना की, 'यदि आप स्वर्गकी कामनासे तपस्या करते हैं, तो यह निश्चय समझ लें, कि गन्धमादनकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वर्ग दूसरा नहीं है। आप इस परम मनोहर सुशोभन स्थानमें सुराङ्गनाओंके साथ परम सुखसे विहार कर परमानन्द रसका अनुभव कीजिये।' तब नारायण मन ही मन सोचने लगे—किस उपायसे ये यहांसे विमुख लौटाई जांय। अहङ्कार ही संसारवृक्षका मूल है। मैं वाराङ्गनाओंको देख कर चुप चाप रह न सका, उनके साथ सम्भाषण किया है, इसीसे दुःखभाजन हुआ। मैंने धर्मव्यय करके नारियोंकी सृष्टि की। इन्द्रप्रेरित ये उत्तम और मनोरम प्रमदागण कामातुर हो कर तपोभङ्गमें प्रवृत्त हुई हैं। यदि अहङ्कारवश इन्हें उत्पादित न करता, तो मेरा यह दुःख प्रसङ्ग उपस्थित न होता। अभी मैं ऊर्णनाभकी नाईं निजकृत सुदृढ़ जालमें आपसे आप फँस गया। इस प्रकार बहुत देर तक तर्क-वितर्कके बाद उन्होंने क्रोध पूर्वक उन काम-कामिनियोंको लौटा देना ही अच्छा समझा।

नर नामक कनिष्ठ धर्मतनयने भाईको चिन्तातुर देख कर कहा, 'महाभाग! आप क्रोधभावका परित्याग कर शान्तभावका अवलम्बन कीजिये, जिससे इस दुर्द्धर्ष अहङ्कारका विनाश हो। आपको क्या यह मालूम नहीं कि पहले अहङ्कार हीसे ही हम लोगोंकी तपस्या विनष्ट हुई थी और दिव्य सहस्र वर्ष तक असुरेन्द्र प्रह्लादके साथ अत्यन्त अद्भुत संग्राम हुआ था। उस संग्राममें हमलोगोंको यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे। प्रह्लादके साथ इनका जो युद्ध हुआ था, उसमें दानवेन्द्र प्रह्लादकी ही हार हुई थी। भगवान् नारायणने स्वयं रणक्षेत्रमें आ कर इन्हें युद्धसे निवृत्त किया था।'

स्वर्गीय वाराङ्गनाओंने कामातुर हो कर पुनः पुनः नारायणसे हठ किया था। इस पर नारायण मुनि उन्हें शाप देनेको उद्यत हुए। लेकिन उनके छोटे भाई नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोका। पीछे नारायण अपने रोषभावका परित्याग करके हँस हँस कर मधुर वचनोंमें उनसे कहने लगे, 'हे सुन्दरीगण! इस जन्ममें हम दोनोंने तपस्या करनेका सङ्कल्प किया है, सुतरां ऐसी अवस्थामें हमें संसारी होना किसी प्रकार कर्त्तव्य नहीं है। अतः अभी कृपा करके तुम लोग अपने स्थान स्वर्गको चली जा। यह निश्चय जानना कि जो धर्मज्ञ हैं, वे कदापि दूसरेका व्रतभङ्ग करना नहीं चाहते। तुम लोग सौभाग्यवती हो, अतः कृपा कर हमारे व्रतकी रक्षा करो। हमारी यही प्रार्थना है, कि जन्मान्तरमें हम तुम लोगोंके पति हो सकते हैं। हे विशालाक्षि सुन्दरीगण! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये मैं धरातल पर अवश्य ही अवतीर्ण होऊंगा। उस समय तुम लोग भी पृथ्वीतल पर राजकन्याके रूपमें पृथक् पृथक् जन्म ग्रहण करोगी। तभी तुम लोग मेरी पत्नी होगी, इसमें सन्देह नहीं।' यह सुन कर अप्सरायें उद्वेगरहित हो स्वर्गको चली गईं। देवराज इन्द्र यह तपःप्रभाव सुन कर और उर्वशी आदिको देख कर नरनारायणकी भूयसी प्रशंसा करने लगे। ये दोनों मुनि भृगुके शापके कारण और पृथ्वीका भारहरण करनेके लिए अर्जुन और कृष्ण हो कर अवतीर्ण हुए थे।

(देवीभाग० ४।४।१७ अ०)

नरनारि (सं० स्त्री०) नर (अर्जुन)की स्त्री, द्रौपदी, पाञ्चाली।

नरनाह (हिं० पु०) नृप, राजा।

नरनाहर (हिं० पु०) नृसिंह भगवान्।

नरगी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा।

नरङ्ग (स० पु०) नरो जीवस्तं आरोप्यत्वेन पश्चिमन् वा आचारे कि पृषोदरादित्वात् मुम्। स भार।

नरङ्गिक (स० पु०) बगद्धापक विष्णु।

नरपति (सं० पु०) नरस्य पतिः ६-तत्। राजा। राजा सबोंकी देख रेख करते हैं इस कारण राजाका नरपति नाम पड़ा है।

नरपति—कर्णाटका एक राजवंश। इस वंशके केवल १० राजा हुए जिन्होंने १६६६से ८०० ई० तक अर्थात् १३४ वर्ष तक राज्य किया था।

नरपति—इनका दूसरा नाम नरपति सर्वाङ्ग कवि था। ये भास्कर देवके पुत्र और ज्योतिष-नरपतिजयचर्या प्रणेता थे।

नरपतिजयचर्या (स० स्त्री०) स्वरोदयमूलक ग्रन्थभेद

नरपद (स० पु०) १ नगर। २ देश।

नरपशु (स० पु०) नरः पशुरिव। १ मानवाधम, निकृष्ट मनुष्य, जिस मनुष्यका आचरण पशुके जैसा हो, उसे नरपशु कहते हैं। २ नृसिंह।

नरपाल (स० पु०) नरान् पालयति पालि-अणु। मानव रक्षक, नृप, राजा।

नरपालि (स० पु०) पुरुषके बोझ ढोने वाला।

नरपिशाच (स० पु०) जो मनुष्य हो कर भी पिशाचों का सा काम करे, बड़ा भारी दुष्ट और नीच मनुष्य।

नरपुङ्गव (स० पु०) नरः पुङ्गवः इव श्रेष्ठत्वात्। नर श्रेष्ठ मनुष्योंमें प्रधान।

नरपुर—१ वितस्ता नदीके तीरवर्त्ती एक नगर। काश्मीर के राजा नरने यह नगर बसाया था। २ भूलोक, मनुष्य लोक।

नरप्रिय (स० पु०) नराणां प्रियं ६-तत्। १ नीलवृक्ष, नीलका पेड़। २ पारावत, कबूतर। (त्रि०) ३ जो मनुष्योंको अच्छा लगे।

नरबदा (हि० स्त्री०) नर्मदा देखो।

नरबलि (स० पु०) देवताको वह पूजा जिसमें नरहत्या की जाती है। नरमेध देखो।

नरभक्षी (स० पु०) मनुष्योंको खानेवाला, राक्षस, दैत्य।

नरभू (स० स्त्री०) नराणां मनुष्याणां भूर्भूमिः। १ भारत वर्ष, हिन्दुस्तान। २ मनुष्यों की उत्पत्ति।

नरभूपाल शाह—एक गोरखाराजा। नेपालराज (गोरखा वंशीय १८वां या अन्तिम राजा) पृथ्वीनारायणके शासन कालमें इन्होंने नेपाल पर चढ़ाई की थी।

नरभूमि (स० पु०) नराणां भूमि। भारतवर्ष।

नरम (हि० वि०) मुलायम, मुलायम।

नरमट (हि० स्त्री०) वह जमीन जहांकी मट्टी मुलायम हो।

नरमदा (हि० स्त्री०) नर्मदा देखो।

नरमरोधां (हि० पु०) एक प्रकारका सफेद या काला मुलायम रोआं जो दुशालेके काममें आता है।

नरमबोला (हि० पु०) वह बोला जो अग्निमें डाल कर ठण्डा किया जाता है।

नरमा (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारकी कपास। इसे कोई कोई मनवा, देवकपास या रामकपास भी कहते हैं। २ सेमरकी रूई। ३ कानके नीचेका भाग, लोल।

नरमाना (हि० स्त्री०) १ नरम करना, मुलायम करना। २ शान्त करना, धीमा करना।

नरमानिका (स० स्त्री०) नर इव मान्यते या मन-ण्वुल्, टापि अत इत्व। नरमानिनी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो।

नरमानिनी (सं० स्त्री०) नर पुरुषमिव मन्यते मन-णिनि-ङीप्। मश्रुयुक्त नारी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो।

नरमाला (स० स्त्री०) नराणां तस्य नराणां माला। नर-मुण्डकी माला।

नरमालिनी (स० स्त्री०) नरस्येव माला चिह्नमुखे मुखेऽस्त्यस्य इति इनि-ङीप्। १ श्मश्रुयुक्ता नारी, वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो।

नरमाचड़ी (हि० स्त्री०) बनकपास।

नरमी (फा० स्त्री०) मृदुता, कोमलता मुलायमियत।

नरमेध (स० पु०) मेध्यते इति मेध हि सायां भावे घञ्, नराणां मेधो हिंसा यत्र। नरबलात्मक यज्ञविशेष, एक प्रकारका यज्ञ जिसमें प्राचीन कालमें मनुष्यकी आहुति दी जाती थी। इस यज्ञमें पुरुष वध किया जाता था, इस कारण इसका नाम नरमेध पड़ा है। शुक्ल यजुर्वेदके ३० और ३१ अध्यायमें लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण प्रतिज्ञापूर्वक करके यह यज्ञ

कर सकते थे। यह यज्ञ चैत्र शुक्ला दशमीसे आरम्भ होता था और चालीस दिनमें समाप्त होता था। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र और ययातिने नरमेधयज्ञ किया था। कलिमें यह यज्ञ निषेध है।

नरमान्य (सं० पु०) आत्मानं नरं मन्यते नृ-मन् खश मुमुच। नृपाभिमानी, वह जो अपनेको राजा कह कर अभिमान करता हो।

नरयन्त्र (सं० क्ली०) यन्त्रविशेष, सूर्यसिद्धान्तके अनुसार एक प्रकारका शङ्कु यन्त्र। इसका व्यवहार धूपमें समय जाननेके लिए होता है। जिस दिन आकाश साफ रहे, उस दिन १२ उँगलीके शङ्कु यन्त्रकी तरह इस यन्त्रसे छाया द्वारा समयका निरूपण किया जाता है।

नरयान (सं० पु०) नरवाह्यं यानं। यानभेद, मनुष्य ढोनेकी एक प्रकारकी सवारी।

नरराज (सं० पु०) नराणां राजा, टच, समासान्तः नरश्रेष्ठ।

नरराज्य (सं० क्ली०) नरस्य राज्यं ६-तत्। मनुष्यराज्य।

नररूप (सं० त्रि०) नरस्य रूपमिव रूपं यस्य। नराकार, मनुष्यके जैसा आकृतिवाला।

नररूपिन् (सं० त्रि०) नररूप अस्त्यर्थे इनि। मनुष्यके जैसा आकृतिवाला।

नरर्षभ (सं० पु०) नरयासो ऋषभश्चेति। १ नरश्रेष्ठ। २ महादेव, शिव।

नरलोक (सं० पु०) नराधिष्ठितो लोकः भुवनं। पृथ्वीलोक, संसार।

नरवर—देशविशेष, एक देशका नाम। भक्तमालमें इस देशका उल्लेख है। किसी समय यहां अत्यन्त विष्णुभक्तिपरायण एक राजा रहते थे। जब वे पूजा करने बैठते थे, तब कोई भी इनसे मुलाकात नहीं कर सकते थे। यहां तक कि प्राणहानि होनेकी सम्भावना रहते भी वे पूजा समय ध्यानभङ्ग नहीं कर सकते थे। एक दिन वे पूजा करनेके लिये बैठे ही थे, कि इसी बीच बादशाहने इन्हें बुलवा भेजा। लेकिन नरवर न गये। इस पर बादशाह कुपित हो कर स्वयं पूजास्थान पर आए और इनके पैर काट डाले। इस पर भी वे पूजा परसे न उठे, पूर्ववत् ध्यान लगाए बैठे रहे। पीछे पूजा समाप्त हो जाने पर जब ये उठे, तब पैरकी वेदनासे मूर्च्छित हो उसी जगह गिर पड़े। बादशाहने इनकी भक्तिसे प्रसन्न हो कई एक ग्राम उन्हें दान दिये।

नरवर—१ मध्य भारतके ग्वालियर राज्यका एक जिला। यह अक्षा० २४°३२´ से २५°५४´ उ० तथा देशा० ७७°२२´ से ७८°३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०४१ वर्गमील और लोकसंख्या ३८८३६१ है। जिलेका अधिकांश जङ्गलमय है। जमीन बहुत उर्वरा है, अतः समय समय पर अच्छी फसल लगती है। यहांकी प्रधान नदियां सिन्ध, पार्वती और बेतवा हैं। इसमें चन्देरी और नरवर नामके दो शहर तथा १२८४ ग्राम लगते हैं। यह जिला चार परगनोंमें विभक्त है, सीपरी, पिचोर, कोलारस और करेरा। राजस्व प्रायः ६५०००) रु०का है।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २५° ३९´ उ० और देशा० ७७° ५४´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४९२९ है। कहते है, कि पुराकालमें यहां निषादके राजा नल रहते थे। इसका प्राचीन इतिहास बहुत कुछ ग्वालियरसे मिलता जुलता है। १०वीं शताब्दीके मध्यभागमें नरवर और ग्वालियर ये दोनों स्थान कछवाह राजपूतके हाथ लगे। पीछे ११२९ ई०में परिहारीने इस पर अपना आधिपत्य जमाया और १२३२ ई० तक राज्य किया। अनन्तर अल्तमसकी तूती बोली। उन्होंने परिहारको निकाल भगाया और आप खुद राजा बन बैठे। तैमूरके आक्रमण कालमें नरवर तोनवरोंके हाथ लगा और १५०७ ई० तक उन्हींके दखलमें रहा। बाद सिकन्दर लोदीने बारह महीने तक यहां घेरा डाले रहने के बाद इसे अपने कब्जेमें कर लिया। अकबरके समयमें यहां मालवा सूबेके नरवर सरकारकी राजधानी थी। पीछे यह स्थान पुनः कछवाहा राजपूतोंके अधीन आ गया और १८ वीं शताब्दी तक उन्होंके दखलमें रहा। बाद इलाहाबाद-सन्धिके अनुसार यह सदाके लिये सिन्धियाके हाथ आ गया।

इस शहरमें जो एक प्राचीन दुर्ग है वह समुद्रपृष्ठसे १६०० फुट तथा सरजमीनसे ४०० फुट ऊँचा है। यह दुर्ग ५ मील तक दीवारसे घिरा हुआ है। सिकन्दर लोदी यहां छः मास तक रहे थे। इतने समयमें उन्होंने

नरसख (सं॰ पु॰) नरस्य सखा, 'राजाह:सखिभ्यष्टच्' इति टच्, समासान्तः। मनुष्यका सखा, मानवबन्धु, नारायण।

नरसंसर्ग (सं॰ पु॰) नरस्य संसर्गः ६-तत्। मनुष्यों-का संसर्ग।

नरसरोपेट--मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कृष्णा जिलेका एक उपविभाग। इसका क्षेत्रफल ७१२ वर्गमील है।

नरसल (हिं॰ पु॰) नरकट देखो।

नरसादर (सं॰ पु॰) १ नरसार, नौसादर। २ महाशङ्ख द्रावक।

नरसार (सं॰ पु॰) नरवत् शुद्धो सारो यत्र। वणिक् द्रव्यविशेष, नौसादर। पर्याय—हिदन्न, गोपक, पिण्ड, चोल, गन्धरस, रस।

औषधादिमें इसका व्यवहार होता है। प्रयोग करते समय यह शोध लिया जाता। चूनेके जलमें इसे पाक कर पीछे यत्नपूर्वक दोलायन्त्रकी विधिके अनुसार शोधनेसे यह विशुद्ध होता है। निशादल देखो।

नरसिंग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका विलायती फूल।

नरसिंगा (हिं॰ पु॰) नरसिंघा देखो।

नरसिंघ (हिं॰ पु॰) नृसिंह देखो।

नरसिंघा (हिं॰ पु॰) तुरहीकी तरहका एक प्रकारका बाजा जो नलके आकारका तांबेका बना होता है और फूंक कर बजाया जाता है। यह जिस स्थानसे फूंक कर बजाया जाता है, उस स्थान पर बहुत पतला होता है और उसके आगेका भाग बराबर चौड़ा होता जाता है। बीचमेंसे इसके दो भाग भी कर लिये जाते हैं और बजानेके बाद पतला भाग अलग करके मोटे भागके अन्दर रख लिया जाता है। पूर्व समयमें यह बाजा रण-क्षेत्रमें व्यवहृत होता था। आजकल यह देहातमें विवाह आदिके अवसर पर बजाया जाता है।

नरसिंह (सं॰ पु॰) नरः सिंह इव, उपमित-कर्मधा॰। १ नरश्रेष्ठ, सिंह आदि कुछ शब्द पुरुषके श्रेष्ठार्थ-वाचक हैं।

नर इव सिंह इव च आकृतिर्यस्य। २ विष्णु। इनका आधा शरीर मनुष्य-सा और आधा सिंह-सा था। यह अवतार भगवान्‌का चौथा अवतार माना जाता है। हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिए भगवान्‌ विष्णुने यह रूप धारण किया था।

इसका विषय हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—सत्ययुगमें दैत्योंके आदिपुरुष हिरण्यकशिपुने कठोर तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर मांगा था, 'हे प्रभो! मैं देव, असुर, गन्धर्व, उरग, राक्षस वा मानव किसीसे वध्य न होऊं। मुनिगण मुझे शाप दे न सकें। अस्त्र, शस्त्र, गिरिपादप, शुष्क और आर्द्र पदार्थ द्वारा भी मेरा विनाश न हो और स्वर्गादि किसी लोकमें, दिन वा रात किसी समय मेरी मृत्यु न हो।' ब्रह्माने भी उसे यह मुँहमांगा वर दे दिया। हिरण्यकशिपु इस वरके प्रभावसे अत्यन्त प्रबल हो उठा और स्वर्गलोकका अधीश्वर हो कर देवताओंको नाना प्रकारसे विड़म्बित और लाञ्छित करने लगा। देवगण इस अत्याचारको सह न सके और विष्णुकी शरणमें पहुंचे। विष्णुने उन्हें अभयवर दे कर कहा, 'हम बहुत जल्द उस वर-दर्पित दानवेन्द्रको गण-के साथ विनाश करेंगे।' इतना कह कर उन्होंने देव-ताओंको विदा किया और हिरण्यकशिपु किस प्रकार मारा जायगा यह सोचते हुए आप हिमालय पर्वत पर चल दिए। वहां उन्होंने दैत्य, दानव और राक्षसोंको भयावह एक अपूर्व नरसिंहमूर्त्ति धारण करनेको विचारा। उसी समय उनका आधा शरीर मनुष्य-सा और आधा सिंह सा हो गया। एकमात्र ओंकार ही उनका सहायक हुआ। इनके तेजसे सूर्य भी थर्रा उठे। क्रमशः यह नरसिंह-मूर्त्ति हिरण्यकशिपुके समीप पहुँची। विष्णुने देखा, कि दानवपति अपूर्व सभामें बैठा हुआ है। देवता, गन्धर्व और अप्सरायें नाच गान कर रही हैं।

भगवान् उस सभामें पहुंच कर हिरण्यकशिपुको एक टकसे देखने लगे। इसी समय हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने दिव्यचक्षुसे उस समागत देवमूर्त्तिको देख कर अपने पितासे कहा, 'महाराज! आप दैत्योंके प्रधान हैं। यह मूर्त्ति देख कर मालूम पड़ता है, कि यह कोई अव्यक्त दिव्य-प्रभावशाली हैं और इन्हींसे हम लोगोंका दैत्यकुल विनष्ट होगा। इस महात्माके शरीरमें मानो स्थावरजङ्गमात्मक सभी जगत् विद्यमान है, ये कोई असाधारण पुरुष होंगे।

दैत्यराज दाँत पीस कर आँखें लाल लाल कर बोला, 'यदि तेरा ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, तो क्या इस खम्भमें भी है?' प्रह्लादने कृताञ्जलि हो उत्तर दिया, 'अवश्य'। इस पर हिरण्यकशिपु हाथमें खड्ग ले कर बार बार उस खम्भको ओर लक्ष्य करने लगा और बहुत जोरसे उसमें मुष्टि प्रहार किया। इसी समय उस खम्भसे एक भयानक शब्द निकला। यह शब्द सुनते ही दैत्यराजका हृदय मानो काँपने लगा। स्तम्भसे नरसिंह-मूर्त्तिको निकलते देख हिरण्यकशिपु आश्चर्यान्वित हो बोला, 'अहो, कैसा आश्चर्य रूप! यह सिंह भी नहीं है और न मनुष्य ही है, हो न हो यह अवश्य सिंहमूर्त्ति है।' हिरण्यकशिपु ऐसा सोच ही रहा था, कि इसी बीच नृसिंहरूपी हरि उस स्तम्भसे निकल पड़े। उनकी आँखें तप्तकाञ्चनकी तरह पिङ्गलवर्ण की थीं, वदन देदीप्यमान था और जटा खूब लम्बी थी। इनका शरीर स्वर्गस्पर्शी था, ग्रीवा छोटी पर मोटी थी, वक्षःस्थल विशाल था और सभी नाखून शस्त्रके समान तेज थे। देश अवतार देखो।

ऐसा रूप देख कर हिरण्यकशिपु तान मार कर बोलने लगा। भगवान् नरसिंह देवने दैत्यराज हिरण्यकशिपुको पकड़ कर भरी सभामें अपनी जंघा पर ले लिया और तेज नाखूनोंसे उसका पेट फाड़ डाला।

इस प्रकार नरसिंहदेवसे अनुचरोंके साथ हिरण्यकशिपुके मारे जाने पर त्रिभुवन शान्त हुआ तथा सभी ओर प्रसन्नता छा गई। तब नरसिंहदेव श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे। ब्रह्मा आदि सभी देवगण उनकी स्तुति करने लगे, 'भगवन्! हम लोगोंके सभी अधिकार दैत्योंने विनष्ट कर डाले हैं, अभी हम लोगोंको क्या करना चाहिये। कृपया बतला दें।' इतनी बातें जो देवताओंने कही थीं, वह दूरमें ही रह कर, नजदीक आनेका किसीका साहस नहीं होता था। बाद उन्होंने श्रीको नरसिंह देवके पास भेजा, किन्तु श्री भी वहां जा न सकीं। अनन्तर ब्रह्माके कहनेसे प्रह्लाद उनके पास गया और स्तुति करने लगा। इस पर भगवान्‌का क्रोध शान्त हुआ और वे प्रह्लादको वर दे कर अन्तर्हित हो गये।

भागवत ७।१-१० अ० देखो।

विष्णुपुराणके १।१७-२१ अध्यायमें भी प्रह्लादका, नारायणकी नृसिंहमूर्त्ति धारण करनेका तथा उनसे हिरण्यकशिपुके मारे जानेका पूरा विवरण लिखा है। प्रायः सभी पुराणोंमें नरसिंहावतारका प्रसङ्ग थोड़ा बहुत वर्णित है।

नरसिंह—यूएनचुवङ्गके भारत-वृत्तान्तमें जिन सब देशोंका उल्लेख है, उनमेंसे पञ्जाबके नरसिंह देशका भी उल्लेख देखनेमें आता है। यूएनचुवङ्ग पञ्जाबकी राजधानी तकि होते हुए इस नगरमें आये थे। सेखापुरसे ८ मील दक्षिण, अमृतसरसे २५ मील पूर्व-दक्षिण और लाहोरसे भी २५ मील पश्चिममें रनसी नामक स्थानको ही कनिंहम इसी नरसिंह नगरका ध्वंसावशिष्ट स्थान मानते हैं। यहां दक्षिण-पूर्वमें ६०० फुट दीर्घ, पूर्व पश्चिममें ५०० फुट विस्तृत और २५ फुट वृहदाकार ईंटोंका स्तूप पड़ा है। सोरा निकालनेवाले इस स्तूपके निकट प्राचीन मुद्रादि पाया करते हैं। यहां नौगज अर्थात् नौ गज लम्बे देहधारीको एक समाधि है।

नरसिंह—कनाड़ी भाषामें महाभारतके रचयिता। जैन कवि पम्पके प्रतिपालक चालुक्यराज अरिकेशरीके ऊर्द्धतन ६ठें पुरुषमें नरसिंहका जन्म हुआ था। यही नरसिंह चालुक्यराज युद्धमल्लके पौत्र थे। चालुक्य देखो।

नरसिंह—१ आनन्दलहरीके एक टीकाकार। २ अद्वैतवैदिकसिद्धान्त-प्रणेता। ३ गुणरत्नाकरके प्रणेता। ४ नैषधप्रकाशकके प्रणेता। ५ पारिजातके रचयिता। ६ भारतचम्पूके टीकाकार। ७ वासन्तिका-परिणयके प्रणेता। ८ श्रीनिवास-रचित शिवभक्तिविलासके टीकाकार। ९ काव्यादर्शमुक्तावलीके प्रणेता। इनके पिताका नाम गदाधर, पितामहका कृष्णशर्मा, प्रपितामहका हरिहर और वृद्धप्रपितामहका नाम कीर्त्तिधर था। १० गोविन्दार्णवके प्रणेता। इनके पिताका नाम रामचन्द्र था। ११ कालप्रकाशिकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम वरदार्य था।

नरसिंह—विजयनगरके नरसिंहवंशीय एक राजा। ये कर्णूलराज ईश्वरके पुत्र थे। ये ही प्रथम नरसिंह वा नृसिंह और नरस अवनीपाल नामसे प्रसिद्ध थे। शायद १५०९ ई०में ये वर्त्तमान थे। इनकी दो स्त्रियां थीं, तिप्पाजीदेवी और नागलादेवी। नागलादेवी नागाम्बिका मर्त्तकी नामसे मशहूर थीं।

मानवदेव था। इन्होंने २२ वर्ष राज्य किया। पीछे इनके लड़के रुद्रदेव राजा हुए। नेपाल देखो।

नरसिंहदेव—१ नेपालके अंशुवर्म-वंशीय एक राजा। २ विजयनगरके एक राजा। इन्हींसे विजयनगरके नरसिंहवंशकी उत्पत्ति हुई थी। १४९० ई०में ये राज्य करते थे।

नरसिंहदेव—उत्कलमें इस नामके अनेक राजाओंने राज्य किया। शिलालिपि और ताम्रशासन पढ़नेसे जाना जाता है कि गङ्गवंशीय १म नरसिंहने तुघानखांको जीत कर गौड़नगरके तोरण-द्वार तक धावा मारा था। कणारकका जगद्विख्यात सूर्यमन्दिर इन्हींकी कीर्त्ति है। गांगेय और कोणार्क देखो।

नरसिंहदेव—मैक्षाधिकारन्यक्षारनिरूपण नामक न्याय ग्रन्थके प्रणेता।

नरसिंहनायक—पाण्ड्यवंशके एक राजा। इन्होंने विजयनगरके राजा प्रथम नरसिंहके हाथसे पाण्ड्यराज्यका उद्धार कर १४९९से ले कर १५०८ ई०तक राज्य किया। इनके बाद तेमनायक (१५००-१५१५) और तेम्मनायकके बाद नरस पिल्लई (१५१५-१५१८ ई०) राजा हुए। इनके समयकी उत्कीर्ण लिपिसे जान पड़ता है कि नरसपिल्लई विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायके भृत्य थे।

नरसिंहपण्डित—"दीपिकाप्रकाश" नामक दार्शनिक ग्रन्थके प्रणेता। वैशेषिक दर्शनका तर्कसंग्रह नामका एक ग्रन्थ है, जिसकी दीपिका नामकी एक टीकाकी आलोचना और व्याख्या करके नरसिंह पण्डितने दीपिकाप्रकाशकी रचना की है। ये रायनरसिंह पण्डित नामसे भी प्रसिद्ध थे।

नरसिंहपद्माश्रमिन्—अद्वैतरीतिके प्रणेता।

नरसिंहपुर—मध्यप्रदेशके नर्बुद विभागका एक जिला। यह अक्षा० २२° ३७´ और २३° १५´ उ० तथा देशा० ७८° ३७´ और ७९° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १९७६ वर्गमील है। इसके उत्तर भूपाल राज्य, सागर, दमोह और जब्बलपुर जिला, पूर्वमें सिवनी और जब्बलपुर, दक्षिणमें छिन्दवाड़ा और पश्चिममें होसेङ्गाबाद तथा दूधी नदी हैं। यह नदी नरसिंहपुरको होसेङ्गाबाद जिलेसे पृथक् करती है। समूचा जिला नर्मदा नदीके दक्षिणमें पड़ता है। यहां अनेक नदियां बहती हैं, यथा, नर्मदा, शेर, शक्कर, माचारेवा, सितारेवा, दुधी और सोनर। ये सभी नदियां सतपुरा पहाड़से निकली हैं। इनके अलावा हिरन और सिन्धोर नदियां उत्तरसे आ कर नर्मदामें मिल गई हैं।

यहांका जङ्गल उतना घना और विस्तीर्ण नहीं है, पर तो भी बाघ, चीता, साम्बर और नीलगाय यथेष्ट मिलती हैं। आबहवा शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात ५१ इञ्च है।

गढ़मण्डल वंशीय ४८वें राजा संग्रामसिंहने यह स्थान अपने राज्यमें मिला लिया था। चौरागढ़ दुर्ग उन्हींका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में रानी दुर्गावतीकी पराजय और मृत्युके बाद आसफ खां चौरागढ़ पर आक्रमण कर वहांसे प्रचुर स्वर्ण मुद्रा और हाथी लूट ले गये थे। १५९३ ई०में जब युझारसिंहने इस दुर्ग पर आक्रमण किया, तब प्रेम नारायणने कई मास तक दुर्गको बचाये रखा था। १७८१ ई०में मोराजी नामक सागरके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता इसे जीत कर अपने दखलमें लाये। पीछे १७ वर्ष तक यह उन्हींके हाथमें रहा। उसी समय उत्तरसे अनेक हिन्दू आ कर यहां रहने लगे। भोंसला राजाओंने पुनः महाराष्ट्रोंको यहांसे निकाल बाहर किया। १८१८ ई०में यह अंगरेजोंके शासनाधीन हुआ। किसी समय पिण्डारियोंका यहां खूब प्रादुर्भाव था।

इस जिलेमें ३ शहर और ९६२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या लगभग ३१५५१८ है। जिनमेंसे ब्राह्मण, राजपूत और बनियेकी संख्या सबसे अधिक है। गेहूं, धान, ईख, कोदो और रूई यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। घी, तेलहन, चमड़ा और हड्डीकी दूर दूर देशोंमें रफतनी होती तथा रूई, नमक, चीनी, मट्टीका तेल, तमाकू, गुड़ और चावलकी आमदनी होती है। ग्रेट इण्डियन-पेनिनसुला रेलवे जिलेके मध्य हो कर दौड़ गई है। यहां पक्की सड़ककी लम्बाई ७९ मील और कच्चीकी १३५ मील है।

राजकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलोंमें विभक्त है। प्रत्येक तहसील तहसीलदार और

में कूर्मावतारवर्णन, २८वें अध्यायमें वराह-अवतार कथन। २९वें अध्यायमें नरसिंह अवतार और प्रह्लाद चरित, ३०वें अध्यायमें वामनावतार, ३१वें अध्यायमें जामदग्न्यवतार; ३२वें अध्यायमें बलराम और कृष्णका अवतार; ३३वें अध्यायमें कल्कि-अवतार; ३४वें अध्यायमें शुक्लका अभिलाभ; ३५वें अध्यायमें विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठा, ३६वें अध्यायमें नारसिंह भक्तोंका लक्षण और पुण्यफल अध्याय; ३७वें अध्यायमें ब्राह्मण-धर्म, ३८वें अध्यायमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-धर्म। ३९वें अध्यायमें ब्रह्मचर्याश्रम-कथन; ४०वें अध्यायमें वानप्रस्थ धर्मकथन; ४१वें अध्यायमें यति धर्म; ४२वें अध्यायमें आत्मलाभ, ४३वें अध्यायमें विष्णुकी अर्चना-विधि; ४४वें अध्यायमें विष्णु पूजाकी साधारण विधि, ४५वें अध्यायमें गुह्यचित और उनके स्थानकी नामावली। ४६वें अध्यायमें पुण्यमय भौमिक तीर्थकथन; ४७वें अध्यायमें मानसिक तीर्थ-विवरण वर्णित है। इन सब वर्णन-प्रसङ्गमें और भी अनेक विषयोंका वर्णन किया है।

नरसिंह पोतवर्मन्—काञ्चिपुरके एक पल्लव वंशीय राजा।

नरसिंहभट्ट—१ यजुर्वेदचिन्तामणिके प्रणेता। २ अद्वैत-चन्द्रिकाभेदाधिकारटीकाके प्रणेता। ये रघुनाथभट्टके पुत्र, रामचन्द्राश्रम और नागेश्वरके शिष्य थे। इन्होंने किम्भु-गे-वंशीय राजा जगन्नाथके कहनेसे उक्त पुस्तककी रचना की।

नरसिंह भूपति—पलनाद प्रदेशके एक राजा। लोग इन्हें कार्त्तवीर्यार्जुनके वंशधर बतलाते हैं। पालमाचपुरम् नामक स्थानमें इस वंशके राजाओंकी राजधानी थी।

नरसिंहमिश्र—चतुर्वेदतात्पर्यसंग्रहके प्रणेता।

नरसिंहमूर्त्तिदान (सं० क्ली०) कालिकापुराणोक्त दान-भेद। इसमें स्वर्णादि द्वारा नरसिंहकी मूर्त्ति बना कर दान करते हैं। हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

सोने या चाँदीकी चतुर्भुज मूर्त्ति बनावे। इसके दाँत चाँदीके, आँखें पद्मराज मणिकी, नख विद्रुमके, भ्रूदेश पुष्पराग मणिके और दोनों कान हीरेके हों। बाद उसे ताम्रपात्रमें रख कर प्रतिष्ठापूर्वक दान करें।

विष्णुधर्मोत्तरमें इसका विधान इस प्रकार लिखा है—भगवान् विष्णुको नरसिंहमूर्त्ति सोने या चाँदीकी हो। मूर्त्तिका स्कन्धदेश पीन; कटि, ग्रीवा और उदर कृश है, यह नील वस्त्र पहन कर तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासन पर बैठी हुई है। अपने नखोंसे हिरण्यकशिपुका वक्षःस्थल विदारण कर रही है. ऊपरके दोनों हाथोंमें शङ्ख और चक्र हैं। देवगण हिरण्यकशिपुके अनुगत हो कर खड़े हैं। इसी प्रकार नरसिंहमूर्त्ति स्वर्णादि द्वारा बना कर उस पात्रको मधु और खण्डमिश्रसे भर देते हैं। तदन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और विविध नैवेद्यादि द्वारा यथाविधि उस मूर्त्तिकी वैष्णव मन्त्रसे पूजा करते हैं। मूर्त्तिदानके समय अठहत्तर सौ तिलाज्य होम करना होता है। कार्त्तिक अथवा वैशाख मासकी पूर्णिमा वा द्वादशी तिथिको इसका अनुष्ठान करना उचित है। जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें अरण्य आदि किसी स्थानमें भय नहीं रहता है तथा वे अनेक प्रकारके सुख लाभ करते और अन्तको विष्णुपद पाते हैं।

(विष्णुधर्मोत्तर)

नरसिंहमुनि—अद्वैतपञ्चरत्न और भेदाधिकारतत्त्वविवेचना नामक ग्रन्थके प्रणेता।

नरसिंहयति—विद्याधीशनाथके शिष्य। इन्होंने आथर्वणोपनिषद्खण्डार्थप्रकाश, ऐतरेयोपनिषद्खण्डार्थप्रकाश और जयतीर्थकृत तत्त्वोद्योतविवरणकी मन्दप्रबोध नामक टीका बनाई है।

नरसिंहयतीन्द्र—न्यायतत्त्व-विवरणके प्रणेता।

नरसिंहराज—सर्वार्थसिद्धिके टीकाकार।

नरसिंहराव—बेलगाँव जिलेके अन्तर्गत बदामीनगरके पहाड़ पर वामनवस्तेकोटो (वाहाब पर्वत दुर्ग) और रणमण्डलकोटो (युद्धविद्दुर्ग) नामक दो स्थान हैं। नरसिंहराव नामक एक अन्य ब्राह्मणने बहुतसी अरबी सेनाओंको साथ ले १८४१ ई०में ये दोनों दुर्ग (बदामी) अपने अधिकारमें कर लिये थे। बाद बेलगाँवसे अंग्रेजी सेनाने जा कर उन्हें फिर वापिस कर लिया।

नरसिंहराय—महिसुरके अधिकारमें ग्यारहवीं शताब्दीको हयशालवंशाल नामका एक विख्यात राजवंश राज्य

हुण्डी चाहता है। यह सोच कर इन्होंने हरिके नाम पर एक हुण्डी इस प्रकार लिख दी, "श्रीश्री श्यामसुन्दर सहाय! इस मनुष्यने आपके उद्देश्यसे मेरे पास एक सौ रुपये जमा कर दिये हैं। अतः आप ऐसा कोई बन्दोबस्त कर देंगे जिससे इसे इतने रुपये वहां मिल जांय।" विश्वासी वैष्णव, जो कुछ हुण्डीमें लिखा था उसे न देख सीधे द्वारकाको चला गया। इधर नरसि बहुत चिन्ताकुल हो कर सोचने लगे, कि जिनके उद्देश्यसे ये रुपये रखे गये हैं वे किस तरह इन्हें पावेंगे। ब्राह्मण वा दरिद्रोंको देनेसे ही ये रुपये उन्हें अवश्य मिल जायगे। ऐसा सोच कर इन्होंने उस रुपयेको उसी समय ब्राह्मण वैष्णवोंमें बांट दिया। उधर वह वैष्णव जब द्वारका पहुंचा, तब कहते हैं, कि श्रीकृष्णने उतने रुपये उसे दे दिए थे। नरसिके दौहित्रके विवाहमें श्रीकृष्ण स्वयं उद्योगी थे। अन्तमें इनकी दो कन्याएं कृष्ण प्रेममें दीक्षित हो पिताके साथ हरिनामकीर्त्तन करते करते स्वर्गधामको सिधार गई। देशके राजाने इनकी अद्भुत शक्ति और कार्य देख कर कहा था कि जो कोई इनका अपमान करेगा, उसे उचित राजदण्ड दिया जायगा। (भक्तमाल हरिलीला)

नरसिया कवि—१ हिन्दीके एक कवि। ये भक्त कवि जूनागढ़ काठियावाड़के रहनेवाले थे। इनके पद राग-सागरोद्भवमें पाये जाते हैं।

२ एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"कान्हा तेरे औलंमे हारी।
दूध दही घृत माखन मेरे और मिठाई सारी॥
मामारग जिन आवो कुंवर जी हौं तुले राय कुमारी।
हूं भी हारी और विहारी झूंठी विरजकी नारी॥
तू तो व्रजको ठाकुर कृष्णाजीकी धारी बलिहारी।
नरसैयाको स्वामी सामलियो मान छे विनति हमारी॥"

नरसेज (हिं० पु०) तिधारा नामक थूहर जिसमें पत्ते नहीं होते। अतिधारा देखो।

नरसों (हिं० क्रि० वि०) अतरसों देखो।

नरसोब—बीजापुरके बड़े किलेका एक मन्दिर। यह मन्दिर उक्त किलेके भीतर खाईके ऊपर एक पीपल इसके तले प्रतिष्ठित है। त्रिमुख देवता दत्तात्रेय इस मन्दिरके अधिष्ठाता हैं। बीजापुर देखो।

गुरुचरित्र नामक एक ग्रन्थमें लिखा है, कि कृष्णा नदीके किनारे वाडी नामक एक ग्राम है जहां प्राचीन कालमें एक धोबी रहता था। वह धोबी दत्तात्रेयका परम भक्त था और हमेशा उनके साथ साथ घूमने जाया करता था। पहले दत्तात्रेय धोबीके इस व्यवहार पर बहुत नाखुश रहते थे; पीछे जब इन्हें मालूम पड़ा कि धोबी केवल धर्म कामनासे उनका अनुसरण करता है, तब उसके प्रति वे बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन दत्तात्रेय नदीमें स्नान कर रहे थे और वह धोबी पास ही खड़ा था। इसी बीच राजाकी नाव वहां पहुंच गई। यह देख कर रजक बोल उठा, 'अहा! इस राजाका जीवन कैसा सुखमय है, और मेरा कैसा दुःसह क्लेशकर।' रजककी यह बात सुन कर दत्तात्रेयने उससे पूछा, 'क्या तुम अभी राजा होना चाहते अथवा मरनेके बाद?' रजकने मन ही मन सोच कर देखा, कि उसके अधिक दिन जीनेकी सम्भावना नहीं है, तब फिर इस जन्ममें थोड़े दिनोंके लिये राजा होनेसे क्या फल, दूसरे जन्ममें ही राजा होना अच्छा है। यह सोच कर उसने दूसरे जन्ममें ही राजा होनेके लिये दत्तात्रेयसे प्रार्थना की थी। उसीके यत्नसे उक्त मन्दिर बनाया गया।

नरस्कन्ध (सं० पु०) नर-समूहार्थे स्कन्ध। नरसमूह, सभी मनुष्य।

नरहन—भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त मगधदेशका एक ग्राम। इसके पास रामपुर ग्राम अवस्थित है।

नरहय (सं० पु०) अश्वरूपी मनुष्य, वह मनुष्य जिसका मुंह घोड़ेके जैसा हो।

नरहर—ब्राह्मणकुलसम्भूत पाञ्चालवासी। अयोध्याक्षेत्रके अन्तर्गत पापमोचनतीर्थ इन्हींसे मशहूर हो गया है। कुसङ्गमें पड़ कर पहले ये देवद्विजहिंसक, वेद निन्दुक, उत्पीड़क और अत्याचारी हो गये थे। पीछे अयोध्यामें आ कर इस पापमोचन तीर्थमें स्नान करनेके साथ ही उनका सब पाप दूर हो गया और उसी समय स्वर्गसे उनके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी। तभीसे पापमोचन तीर्थने भी प्रसिद्धि लाभ की है।

(अयोध्यामाहात्म्य १६१)

प्रणेता । ४ श्रवणभूषणविदग्धमुखमण्डनके एक टीकाकार।

नरहरिशास्त्री—नृसिंह चम्पूके प्रणेता।

नरहरि सरकार—श्रीचैतन्यके आविर्भावप्रसङ्गमें वङ्ग-साहित्य अनेक रत्नोंका अधिकारी हुआ था। वङ्गला साहित्यमें वैष्णव कवियोंका अधिकार बहुत फैला हुआ है और आसन भी बहुत ऊंचा है। इन सभीके पथ-प्रदर्शक नरहरि ठाकुर थे। इनके पिताका नाम नारायण था। नरहरिके दो पुत्र थे, बड़ेका नाम मुकुन्द था और छोटेका नरहरि। नरहरि सरकार बड़े विद्वान् और सु-पुरुष थे।

श्रीमहाप्रभुके साथ बचपनसे ही इनकी गाढ़ी मित्रता थी। इन्होंने ही सबसे पहले गौरलीलाका पद लिखना प्रारम्भ किया था। इनके पद बड़े ही मधुर होते थे। ये महाप्रभुसे ८।९ वर्षके बड़े थे, यह वैष्णव ग्रन्थावली पढनेसे मालूम होता है। अतएव लोग इनका जन्मकाल १४०० शकमें बतलाते हैं।

श्रीचैतन्यके आविर्भावमें वङ्गसाहित्यमें जो नवस्रोत प्रवाहित होता है, नरहरि ही उसके आदिप्रवर्त्तक या आदि गुरु माने जाते हैं।

नरहरिमहाय बन्दीजन—हिन्दीके कवि। ये असनीके निवासी थे। इनका जन्म सं० १५८५में हुआ था। ये जलालउद्दीन अकबर बादशाहके दरबारमें थे। असनी गाँव इनको माफीमें मिला था। इनके पुत्र हरिनाथ महाकवि और उदार थे। इस समय भी इनके वंशज बनारस आदि स्थानोंमें पाये जाते हैं। असनीवाला इनका घर खड़हर पड़ा हुआ है। इनके किसी ग्रन्थका पता नहीं लगता, परन्तु इनके अनेक छप्पय सुने जाते हैं।

नरहरी (सं० पु०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक पदमें १४ और ५के विरामसे १९ मात्राएं तथा अन्तमें १ नगण और १ गुरु होता है।

नरहाट—पटना जिलेका एक परगना। इस जिलेका अधिकांश स्थान अभी गया जिलेके इलाकेमें आ गया है।

नरहान—सारण जिलेका एक परगना। धान, जुन्हरी, कपास, गेहूं, जौ, अफीम और ईख ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

नरहीरा (हिं० पु०) आठ या छः पहलका बड़ा हीरा। इसके किनारे खूब तेज होते हैं। कहते हैं, कि ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत अधिक बढ़ जाता है।

नरा (हिं० पु०) नरकटकी एक छोटी नली। इसके ऊपर सूत लपेटा रहता है।

नराङ्ग (सं० पु०) नरमङ्गयति अङ्ग-अण्। १ मेढ़्र, नाभि, ढोंढ़ी। २ नरगण्ड, एक प्रकारका फोड़ा।

नराच (हिं० पु०) १ तीर, बाण, शर। २ पञ्चचामर या नागराज नामक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें जगण, रगण, जगण, रगण जगण और अन्तमें एक गुरु होता है।

नराचिका (सं० स्त्री०) वितानवृत्तका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, रगण, लघु और गुरु होता है।

नराची (सं० स्त्री०) नरमिवाचिनोति रोमभिरिव कण्टकैः आ-चि-ड गौरादित्वात् ङीष्। १ अमूला कण्टकिनीवृक्ष, एक प्रकारकी कटेरी जिसे जड़ नहीं होती। २ गौरिकी एक स्त्रीका नाम। (हरिवंश १६२ अ०)

नराज (सं० पु०) षोड़शाचरपादक वृत्तभेद, सोलह चरणोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं।

नराज (फा० वि०) नाराज देखो।

नराधम (सं० पु०) नरेषु अधमः ७ तत्। निकृष्ट मानव, नीच मनुष्य।

नराधिप (सं० पु०) नरेषु अधिप ७-तत्। १ नराधिपति, राजा। २ वृक्षविशेष, सोनापाठा। ३ महाराजवृक्ष, बड़ा अमिलतास।

नरान्त (सं० पु०) रुद्रोकके एक पुत्रका नाम।

नरान्तक (सं० पु०) अन्तयति इति अन्ति एवु ल्, नराणां अन्तकः ६-तत्। १ रावणके एक पुत्रका नाम। यह राम-रावण-युद्धमें अङ्गदके हाथसे मारा गया था। (त्रि०) २ नरनाशक-पात्र, मनुष्यको संहार करनेवाला

नरायण (सं० पु०) नराणां अयनं आश्रयस्थानं वा नरा अयनं यस्य। नारायण, विष्णु।

नराश (सं० पु०) नरं अश्नाति अश भोजने अण्। नर-भोजी, राक्षस।

नरवा (हिं॰ पु॰) अनाजके पौधोंकी डण्ठी जो भीतरसे पोली होती है।

नरगल—बम्बईके धारवार जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ १५° ३४ उ॰ और देशा॰ ७५° ४८ पू॰के मध्य धार वार शहरसे ५५ मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या ८३२७के लगभग है। यह एक प्राचीन शहर है। यहां १२वीं और १३वीं शताब्दोकी अनेक शिलालिपियां और मन्दिर मिलते हैं। शहर भरमें केवल एक स्कूल है।

नरेन्द्र (सं॰ पु॰) नर इन्द्र-इव; नराणामिन्द्रो वा। १ नर-श्रेष्ठ, राजा। २ विषवैद्य, वह जो सांप बिच्छू आदिके काटनेका इलाज करे। ३ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। ४ आरग्वध, अमिलतास। ५ काष्ठागुरुवृक्ष, अगरका पेड़। ६ छन्दोभेद, एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें २१ मात्राएँ होती हैं जिनमेंसे १।४।६।१४। १७।२० और २१वीं अक्षर गुरु और शेष सभी अक्षर लघु होते हैं।

नरेन्द्र एक कवि। सुभाषितरत्नाकर ग्रन्थमें इनकी कवितावली उद्धृत हुई है।

नरेन्द्र आचार्य—एक वैयाकरण। विट्ठलके ग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

नरेन्द्रदेव - नेपालके एक राजा। इनके पिताका नाम उभयदेव था। नेपाल देखो।

नरेन्द्रभवन—एक विहार-स्थानका नाम। काश्मीरके राजा नरेन्द्रने वह विहारभवन बनवाया था।

नरेन्द्रप्रभ—हर्षपुरीय नरचन्द्रसूरिके शिष्य। इन्होंने "अलङ्कारमहोदधि" नामक अलङ्कारशास्त्रीय और "काकुत्स्थकेलि" नामक काव्यकी रचना की।

नरेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजाका नाम। नेपाल देखो।

नरेन्द्रमृगराज—प्राच्य चालुक्यराज विजयादित्यकी उपाधि। चालुक्य देखो।

नरेन्द्रसिंह—पटियालाके एक राजा। १८४५ ई॰में अपने पिता कर्मसिंहके मरने पर ये पटियालाके राजसिंहासन पर बैठे। उस समय इनकी उमर २१ वर्षकी थी। लाहोरके राजाके साथ जिस समय अंगरेजोंकी लड़ाई छिड़ी थी, उस समय इन्होंने अंगरेजोंकी, जहां तक हो सका था, मदद दी थी। इस उपकारमें उस समयके गवर्नर जेनरलने १८४७ ई॰में इन्हें एक सनद दी। अंगरेज गवर्नमेण्टने राजाको रक्षा तथा इनका अधिकार स्थिर करनेके लिये वचन दिये थे। राजाने भी अपने राज्यमें ठगी, सतीदाह, शिशुहत्या और दास-विक्रयको रोकनेकी प्रतिज्ञा की थी। १८५७-५८ ई॰के सिपाहीविद्रोहके समय इन्होंने अंगरेजोंको काफी सहायता पहुंचाई थी।

ये वंशोचित साहस और वीरत्वका काम करके सभी अंगरेजोंके प्रियपात्र हुए थे। विद्रोहके समय जब अंगरेजोंके अनेक कपटी मित्रोंने पीठ दिखाई थी, तब इन्होंने अग्रसर हो कर अपने धनागार और अन्यान्य युद्ध सामग्रीको अंग्रेजोंके कार्यमें उत्सर्ग कर दिया था। दिल्लीके राजाने इन्हें अंगरेजोंको मदद पहुंचानेमें पत्र द्वारा निषेध किया था और इसके लिये वे पुरस्कार देनेको भी राजी हो गये थे। महाराजने उस ओर तनिक भी ध्यान न दिया और उस पत्रको अंगरेजोंके पास भेज दिया था। इन्होंने सरदार प्रतापसिंहके अधीन दिल्लीकी ओर एक दल सेना भेजी। उस सेनाने दिल्ली पर चढ़ाई करके पूरी सफलता प्राप्त की। उस समय इन्होंने अंगरेजोंको पांच लाख रुपये कर्ज दिये थे। इस उपकारके लिये उक्त गवर्नमेण्टने इनकी खूब खातिर की थी तथा पुरस्कार भी खूब दिये थे। १८६२ ई॰में इनका देहान्त हुआ।

नरेन्द्रसिंह—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। इन्होंने संवत् १८०२में बाल-चिकित्सा नामक एक ग्रन्थ बनाया।

नरेन्द्रादित्य—१ काश्मीरके एक राजा। ये गोकर्णके पुत्र थे। इन्होंने ३ मास १० दिन तक राज्यशासन किया था। शासनकालमें इन्होंने भूतेश्वर और अक्षयिनी नामक देव और देवी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। इनके दीक्षागुरु उग्रदेवने उग्रेश नामक एक देवमूर्त्ति और मातृचक्र नामक दश देवीमूर्त्तियां स्थापित की थीं। ये अपने पुत्र युधिष्ठिर को राज्यशासनका भार सौंप कर इस लोकसे चल बसे।

२ काश्मीरराज द्वितीय युधिष्ठिरके पुत्र लक्ष्मण भी इसी नामसे प्रसिद्ध थे। पिताके मरनेके बाद इन्होंने ११

प्रतिभासे थोड़े ही समयके अन्दर आप एक अद्वितीय पण्डित हो गये। श्रीजीव गोस्वामीने उपयुक्त देख कर इसी समय इन्हें 'ठाकुर महाशय'की उपाधि प्रदान की और सारे बङ्गालमें भक्ति ग्रन्थका प्रचार करनेके लिये भेजा। १५०४ शकमें आप दो और सहपाठियोंके साथ वृन्दावनसे रवाने हुए। कुछ समय बाद आपके अनेक शिष्य हो गये। आप कविताकी बहुतसी किताबें बना गये हैं जिनमें प्रधान ये हैं,—प्रार्थनाग्रन्थ, भक्तिग्रन्थका सार अद्भुत प्रेमभक्तिचन्द्रिका, हाटपत्तन, और चौतीसा पदावली। कार्त्तिक मासकी कृष्णा पञ्चमी तिथिको गङ्गाके किनारे आपने देहत्याग किया। इस तिथिको आज भी ठाकुर महाशयका महोत्सव हुआ करता है।

नरोत्तमदास—एक हिन्दी-कवि। ये ब्राह्मणवाड़ी जिला सीतापुरमें रहते थे। इनका बनाया हुआ एक ग्रन्थ है जिसका नाम है सुदामाचरित्र। इसकी कविता मधुर और सरस है।

नरोत्तमपुरी—वेदान्तविषयक 'विचारमाला' नामक ग्रन्थके प्रणेता।

नरोत्तमशुक्ल—तन्त्ररत्न नामक तान्त्रिक ग्रन्थ-प्रणेता।

नरोर—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बुलन्दशहर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° १२´ उ० और देशा० ७४° २५´ ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नरोह (सं० स्त्री०) १ पिंडलीकी हड्डी, नली। २ रस निकलनेकी कोल्हूकी नली।

नरौली—युक्त प्रदेशके अन्तर्गत मुरादाबाद जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २८° २९´ उ० और देशा० ७८° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नर्कट (हिं० पु०) नरकट देखो।

नर्कुटक (सं० क्ली०) घ्राणेन्द्रिय, नाक, नासिका।

नर्गिस (हिं० पु०) नरगिस देखो।

नर्गिसी (हिं० वि०) नरगिसी देखो।

नर्गुन्द—बम्बईके धारवार जिलेके अन्तर्गत नवलगुन्द तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५°४३´ उ० और देशा० ७५°२४´ पू० धारवार शहरसे ३२ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०४१६ है। बीजापुरके मुसलमान राजाओंसे शिवाजीने यह नगर छीन लिया था। शिवाजीने इसे रामराव भावेके हाथ सुपुर्द कर दिया। बाद ब्रटिश गवर्नमेण्टने इसे अपने दखलमें ला कर इस शर्त पर दादाजी रावके हाथ लगा दिया कि वे प्रयोजन पड़ने पर ब्रटिश गवर्नमेण्टको सहायता पहुंचाते रहें तथा चिरकाल तक उनके विश्वस्त बने रहें। लेकिन १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोहमें दादाजीने उक्त शर्त तोड़ दी और वे अपने स्वार्थ साधनमें लग गये। इस पर ब्रटिश गवर्नमेण्टने एक दल सेना नर्गुन्दको भेजी और इसे जीत कर अपने मातहतमें कर लिया। यहां शङ्करलिङ्ग और दण्डेश्वरके दो प्राचीन मन्दिर हैं। इनके सिवा १७५० ई०का बना हुआ वङ्कटेशका एक मन्दिर पहाड़के ऊपर एक दुर्गमें प्रतिष्ठित है। वहां आश्विनकी पूर्णिमामें प्रति वर्ष एक भारी मेला लगता है जिसमें हजारों मनुष्य-समागम होते हैं। शहरमें छः स्कूल हैं इनमेंसे एक बालिका स्कूल भी है।

नर्णाल—बेरारके अकोला जिलेके अन्तर्गत अकोट तालुकका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २१° १५´ उ० और देशा० ७७° ४´ पू०के मध्य सतपुरा पहाड़के ऊपर अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ३१६१ फुट है। जिले भरमें यही स्थान सबसे ऊंचा है। फिरिस्ताके विवरणसे पता लगता है कि यह एक प्राचीन दुर्ग है। वाह्मनीके राजा अहमद शाह वलीने इसका संस्कार किया था। नर्णालके सिवा पहाड़ पर दो और छोटे दुर्ग हैं जो इसे दोनों बगलसे घेरे हुए हैं। इसमें छः बड़े और बाईस छोटे प्रवेशद्वार हैं। इसके भीतर १९ पुष्करिणी है, जिनमेंसे केवल चारमें बारहों मास जल रहता है। दुर्गके अन्दर चार अत्यन्त सुन्दर प्रस्तरनिर्मित जलाधार हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि जैनियोंके अधिकारके समय वे सब जलाधार बनाये गये थे। पुरातन राजप्रासाद, मस्जिद, अस्त्रागार, बारहदुआरी, रङ्गालय, सङ्गीतगृह और अन्यान्य गृह भग्नावस्थामें पड़े हैं। दक्षिण दिशाका शाहनूर द्वार ही सबसे सुन्दर है। यह सफेद पत्थरका बना हुआ है। इसकी दीवारें नष्ट होती जा रही हैं। अभी दुर्गमें कोई नहीं रहता।

नर्त्त (सं० त्रि०) नृत्यति नृत अच। १ नृत्यकर्त्ता, नाच करनेवाला।

राज्यके अन्तर्गत अमरकण्टक नामका ३४८३ फुट ऊंचा एक पहाड़ है। यही पहाड़ इस नदीका उत्पत्तिस्थान है। यह पश्चिमकी ओर ८०० मील बह कर भरोचके निकट समुद्रमें गिरती है। इसके उत्पत्ति स्थानके चारों ओर जङ्गल तथा जनशून्य है। किन्तु इस पवित्र नदीके उत्पत्तिस्थानको रक्षा करनेके लिए कितने धर्मयाजक उस निर्जन स्थानमें कुटी बना कर वास करते हैं। उप रोक्त पर्वतके शिखरदेश पर एक तालाब है, उसी तालाबसे नर्मदा नदी निकल कर प्रायः ३ मील तक तृणपूर्ण प्रान्तके ऊपर वक्रगतिसे बहती हुई अमरकण्टक मालभूमिके प्रान्तदेशमें गिरती है। इसी तीन मीलके भीतर बहुतसे स्रोतोंका जल आ कर इसमें मिल गया है। मालभूमिके प्रान्तदेशमें ७० फुट नीचे गिर कर यह एक जलप्रपात उत्पन्न करती है। इस जलप्रपातका नाम है कपिलधार। यहांसे थोड़ी दूर और आगे जा कर एक दूसरा जलप्रपात बन गया है जिसका नाम है दुग्धधार। कहते हैं, कि किसी समय यहां नदीमें दुग्धस्रोत बहता था।

जब यह अमरकण्टकसे निकली है, तब कहीं तो इसका वेग तेज हो गया है, कहीं यह बहुत नीचे बह चली है, अन्तमें मध्यप्रदेशको पार कर मण्डला पर्वत होती हुई रामनगरके भग्नावशेष-राजप्रासादके निकट पहुंच गई है। उत्पत्तिस्थानसे ले कर यहां तक नदीकी लम्बाई प्रायः एक सौ मील है। एक विस्तृत पार्वतीय प्रदेशमें जितना जल जमा होता है, वह यहां पर, इस नदीमें मिल जाया करता है। तेज धाराके अनेक शाखाओंमें विभक्त होनेसे बीच बीचमें अरण्यमय द्वीप बन गया है। इसके किनारे निविड़ वन है, जिसके बड़े बड़े वृक्षादि इसे बादलकी तरह ऊपरसे ढके हुए हैं। इसके दोनों किनारे जहां तक नजर दौड़ाई जाती है, वहां तक पहाड़ ही पहाड़ देखनेमें आता है। रामनगरसे मण्डला पर्वत तक नदीमें न तो तेजधार है और न जलप्रपात ही है। इस अंशका जल नीला है और इसके दोनों किनारे सुन्दर सुन्दर वृक्षादिसे सुशोभित हैं। मध्यप्रदेशमें जितनी नदियां बहती हैं उनमें यही सबसे बड़ी तथा मनोरम है। जब्बलपुरके निकट ग्वारीघाट पर इसमें वाणिज्यकार्य आरम्भ हुआ है। देखा जाता है, कि नदीमें बहादुरी काठको बहा कर लोग जब्बलपुरके बाजारमें बेचा करते हैं। जब्बलपुरसे ९ मील दक्षिणपश्चिममें धुरन्धर नामका एक दूसरा जलप्रपात है जिसकी गहराई लगभग ३० फुट होगी। यहांसे यह नदी प्रायः दो मील तक पहाड़के मध्य होती हुई सङ्कीर्ण खातके ऊपर प्रवाहित होती है। इस स्थान पर इसकी लम्बाई ४० हाथसे अधिक नहीं होगी। बाद यह दो सौ मील तक उर्वरा उपत्यकाके ऊपर बह गई है। इस उपत्यकाके एक ओर विन्ध्य और दूसरी ओर सतपुरा पहाड़ है। वर्षाकालमें इसमें सामान्यरूपसे वाणिज्यकार्य चल सकता है। अगहन महीनेमें ब्राह्मणघाटके निकट एक भारी मेला लगता है। मोहपानी और तेन्दूखराके कोयले तथा लोहेकी खानके निकट होती हुई यह होसङ्गाबाद, हन्दिया, निमावर और योगीगढ़को पहुंच गई है और फिर वहांसे एक बार जङ्गलमें प्रवेश करती है। जङ्गलसे निकल कर यह एक गभीर और वेगवती धाराके रूपमें मान्धाता द्वीप पार कर बह चली है।

जब यह मध्यप्रदेश हो कर आई है, तब राहमें इसके कई एक जलप्रपात हो गये हैं। नरसिंहपुर जिलेके उमरिया नामक स्थानमें जो जलप्रपात है उसकी गहराई १० फुट है और सम्धार तथा दादरीके जलप्रपात ४० फुट गहरे हैं। मक्रार, चक्रार, खर्मोग, कुड़नोर, बञ्जर, तिमार, सोनार, सेर, सकार, दूधि, कोरामी, सचना, तवा, गञ्जाल और अजनाल ये सब नर्मदाकी शाखा नदी हैं।

मकाईके निकट नर्मदा मालवकी मालभूमिको छोड़ कर गुजरातके विस्तृत प्रान्तमें प्रवेश करती है। पहले यह ३० मील तक राजपिपलाइ राज्यको गायकवाड़ राज्यसे पृथक् करती है, पीछे ७० मील तक भरोच जिला होती हुई वक्रगतिमें प्रवाहित हो कर काम्बे समुद्रमें गिरती है। भरोचसे प्रायः २५ मील दूरस्थित रायणपुर तक ज्वार भाटाका प्रकोप देखनेमें आता है। भरोच जिलेमें इसकी तीन उपनदियां हो गई हैं, बाईं ओर कावेरी और अमरावती तथा दाहिनी ओर बूखी। इन सब नदियोंकी लम्बाई ८०१ मील है।

जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, उनका मन विशुद्ध रहता है। ब्राह्मण वेद लाभ करते हैं, क्षत्रिय विजयी होते हैं, वैश्य अर्थ लाभ करते और शूद्र शुभगति पाते हैं। जो अन्नप्रार्थी हो कर नर्मदाका स्मरण करते हैं, उन्हें प्रतिदिन अन्न मिलता है। स्वयं महादेव प्रति दिन नर्मदाकी सेवा किया करते हैं, इसीसे नर्मदा अत्यन्त पवित्र और ब्रह्महत्यादि पापनाशिनी है। नर्मदाका जलपान करनेसे तथा जलसे महादेवकी पूजा करनेसे सभी प्रकारको दुर्गतिया नाश होती है। इस तीर्थमें जो प्राण त्याग करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो कर शिवलोकको जाते हैं।

नर्मदाजलमें प्रविष्ट हो कर जो प्राण त्याग करते हैं, वे हंसयुक्त यान पर चढ़ कर रुद्रलोकको जाते हैं और वहां तब तक ठहरते हैं जब तक चन्द्र सूर्य मौजूद हैं। नर्मदाके उत्तरी किनारे सौ योजन विस्तृत जो एक तीर्थ है, वह महेश्वरतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। यह तीर्थ भी पापनाशक माना गया है।

(रेवाखण्डमें और मत्स्यपुराणके १८६ अध्यायसे १८६ अध्याय तक नर्मदा-माहात्म्य वर्णित है।)

नर्मदा—मध्यप्रदेशका एक विभाग। इस विभागमें ५ जिले लगते हैं; यथा, होशङ्गाबाद, नरसिंहपुर, बेतुल, छिन्दवाड़ा और निमार। इसका परिमाणफल १७५१३ वर्गमील है। इसमें ११ नगर और ६१४४ ग्राम लगते हैं। इस नगरके कई एक नाम हैं यथा—वर्द्धनपुर, होशङ्गाबाद, खण्डवा, हर्द्दा, नरसिंहपुर, छिन्दवाड़ा, गढ़वारा, सोहागपुर, सेवनी और मोहर्गांव। यहां गेहूं, धान्य, अन्यान्य आहार्य शस्य, कपास और ईख उपजती है। नर्मदा विभागका राजस्व कुल १७७०१८० रु०का है।

नर्मदासम्भव (सं० क्ली०) नर्मदायां सम्भवति सम्-भू-अच्। नर्मदानदीस्थित बाणलिङ्गभेद। यह लिङ्ग अत्यन्त प्रशस्त है। इसकी आकृति पक्व जम्बूफलकी तरह है। वर्ण मधु-सा अथवा सफेद, नील वा मरकतके जैसा है। जो नार्मदबाणलिङ्ग स्थापित किया जाता है, उसकी आकृति हंसडिम्बकी तरह होनी चाहिये। यह लिङ्ग पर्वतसे नर्मदा नदीके जलमें आपसे आप निकलता है। पुराकालमें बाणासुरने तपस्या करके महादेवसे प्रार्थना की थी। उसी प्रार्थनाके अनुसार महादेव लिङ्गरूपमें उस पर्वत पर अवस्थान करते हैं, इसी कारण इस लिङ्गकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है एक बाणलिङ्गकी पूजा करनेसे भी वही फल प्राप्त होता है। इस बाणलिङ्गकी वेदी सोने, चांदी, तांबे वा पत्थरकी होनी चाहिये। उसी वेदीमें इस लिङ्गकी स्थापना करके पूजा करनी होती है। जो प्रतिदिन नार्मदबाणलिङ्गकी पूजा करते हैं, उनकी मुक्ति उनके हाथ है, ऐसा जानना चाहिये। (हेमाद्रि) विशेष विवरण बाणलिङ्गमें देखो।

नर्मदेश (सं० क्ली०) नर्मदया स्थापितो ईशो यत्र। काशीस्थित शिवलिङ्गभेद। इस लिङ्गको नर्मदाने प्रतिष्ठित किया है, इसीसे इसका नाम नर्मदेश वा नर्मदेश्वर पड़ा है। इसकी उत्पत्तिका विवरण काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

एक समय मुनियोंने मार्कण्डेयके पास पहुंच कर उनसे पूछा था, 'प्रभो! इस पृथ्वी पर कौन नदी श्रेष्ठा और पापनाशिनी है?' उत्तरमें मार्कण्डेयने कहा था, 'पृथ्वी पर अनेक नदियां हैं उनमेंसे जो समुद्रगामिनी हैं, वही श्रेष्ठा हैं। फिर इनमेंसे भी गङ्गा, यमुना, सरस्वती और नर्मदा प्रधान हैं। गङ्गा ऋग्वेदकी, यमुना यजुर्वेदकी, नर्मदा सामवेदकी और सरस्वती अथर्ववेदकी मूर्त्ति है। इनमेंसे गङ्गा ही सर्वप्रधाना हैं। पुराकालमें नर्मदाने बहुत काल तक ब्रह्माके उद्देश्यसे तपस्या की थी। ब्रह्मा जब वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब नर्मदाने प्रार्थना की, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जिससे मैं गङ्गाकी बराबरी कर सकूं, वही वर देनेकी कृपा करें।' यह सुन कर ब्रह्माने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'जगत्‌में यदि कोई महादेवकी बराबरी कर सके, तो अन्य नदी भी गङ्गाकी बराबर कर सकती है।' ब्रह्माके वचन सुन कर नर्मदा काशी गई और वहां पिलिपिला तीर्थमें त्रिविष्टपके निकट विधिपूर्वक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। इस पर महादेव नितान्त प्रसन्न हो नर्मदाके पास जा कर बोले, 'नर्मदे! मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, अतः अभिलषित वर मांगो।' नर्मदाने विनीतभावसे कहा, 'मैं दूसरा कोई वर नहीं चाहती, सिवा इसके, कि आपके चरणमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' शिवजी बोले,

'नर्मदे! जो कुछ तुमने कहा, वही होगा, किन्तु मैं इसके सिवा एक दूसरा वर भी देता हूं। तुम्हारे जलमें जितने पत्थर हैं वे हमारे वरसे लिङ्गरूपी होंगे। गङ्गा सद्यःपाप हरण करती है, यमुना एक सप्ताहमें और सरस्वती तीन दिनमें। किन्तु इस समयसे ही तुम मनुष्योंके पाप हरण करोगी। तुमसे स्थापित नर्मदेश्वर नामक यह पवित्र लिङ्ग भक्तोंके सिद्धिदायक होगा। इस नर्मदेश्वर लिङ्गका माहात्म्य बहुत अद्भुत है।' इतना कह कर शिवजी उस लिङ्गमें अन्तर्हित हो गये।

जो नर्मदेश्वरका यह माहात्म्य सुनते हैं, वे सब प्रकारके पापोंसे रहित हो कर [illegible] लाभ करते हैं। (काशीख० १२ अ०)

नर्मदेश्वर (सं० पु०) एक प्रकारके शिवलिङ्ग जो नर्मदा नदीसे निकलते हैं। नर्मदेश देखो।

नर्मन् (सं० क्ली०) नृ मये मनिन् (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४५) परिहास, हंसी।

नर्मरा (सं० स्त्री०) नर्मन् अस्त्यर्थे र, टाप्। १ दरी, गुफा, खोह। २ भाण्ड, बरतन। ३ निष्फला, बूढ़ी स्त्री, बुढ़िया। ४ सरला, एक प्रकारका पेड़। ५ भस्त्री, भाथी, धौंकनी।

नर्मवत् (सं० त्रि०) नर्म विद्यतेऽस्य नर्म मतुप्, मस्य व। १ नर्मयुक्त, जिसमें आनन्द मिले। (स्त्री०) २ नर्मवती, आनन्द, हंसी, दिल्लगी। ३ नायिकाभेद एक नायिका का नाम। ४ तदाख्यायिकायुक्त रासक नाटकभेद, कालिदासग्रन्थमें इस नाटकका उल्लेख है।

नर्मसचिव (सं० पु०) नर्मसु सचिवः ६-तत्। परिहास सहाय, वह मनुष्य जो राजाके साथ हंसी हंसानेके लिये रहता है, विदूषक।

नर्मसाचिव्य (सं० क्ली०) नर्मसु साचिव्य। विदूषकका कार्य, हंसी मजाक कार्यका काम।

नर्मसुहृद् (सं० पु०) नर्मसु सुहृद्। नर्म सचिव वह जो हंसी मजाक करता हो, विदूषक।

नर्मस्फूर्ज (सं० पु०) प्रथम सुख या आमोद।

नर्मस्फोट (सं० स्त्री०) सामान्य आमोद, साधारण हंसी दिल्लगी।

नर्मान्—फरासीस जातिविशेष। फ्रान्स देशके उत्तरमें नर्मान्दि नामक एक प्रदेश है। यहांके अधिवासी इतिहासमें नर्मान् जाति नामसे मशहूर हैं। फ्रान्समें जिस समय शार्लमान्-दि सिम्पल राज्य करते थे, उस समय अर्थात् ८८० ई०में रोलो नामक कोई नौरवेके सरदार हैरल्डके राजासे भगाये जाने पर फ्रान्सके किनारे उपस्थित हुए और इङ्गलिश चैनेलके पार्श्ववर्ती स्थानोंमें उत्पात मचाने लगे। उनके समान उस समय पराक्रान्त जलदस्यु दूसरा कोई नहीं था। उनके अत्याचारसे उत्तर और दक्षिण फ्रान्स इङ्गलैण्ड और बेलजियम आदि भिन्न देश तंग आ गये थे। ये लोग नोर्थमेन अर्थात् उत्तर देशके मनुष्य कहलाते थे। अन्तमें रोलोने ८११ ई०में बहुतसे लोगोंको साथ ले फ्रान्सकी राजधानी पेरिस नगरीको घेर लिया। राजा चार्ल्स दि सिम्पलने उन्हें ड्यूक आफ नर्मान्दिकी उपाधि दे कर नर्मान्दि प्रदेशमें बसाया। यह राज्य पा कर रोलो दस्युवृत्तिको परित्याग और खृष्टधर्मको ग्रहण करनेमें राजी हुआ। पीछे चार्ल्सने अपनी लड़की जिसिलाके साथ उसका विवाह कर दिया। ९१२ ई०में रोलो रबर्ट नाम धारण कर ईसाई हुए। बाद उन्होंने राजाके दिये हुए सोन नदीसे ले कर एपते नदी तक विस्तृत नर्मान्दि राज्यका शासन भार ग्रहण किया। उन्हींके समयमें नर्मान्दिमें विदेशी लोग आने जाने लगे और बहुतसे लोग यहां बस भी गये। उन्होंने अपने सेनापतियोंको सारा राज्य बांट दिया। अनन्तर वे सब सेनापति उस समयके यूरोपीय सामन्तराज्योंके नियमानुसार रोलोके अधीन सामन्तरूपसे देशाधिकार कर रहने लगे। रोलोके पोते एमार्डके साथ इङ्गलैण्डाधिप द्वितीय एथेलरेडका विवाह हुआ। १००२ ई०में नर्मान्दिके ड्यूक २य रिचार्डके साथ उनके भगिनीपति इङ्गलैण्डके राजाका विवाद छिड़ा। इसी अवसरमें इङ्गलैण्डराजने नर्मान्दि पर चढ़ाई कर दी। किन्तु आप ही परास्त हुए। १०११ १३ ई०में जब डेनमार्कके राजा स्वायेन इङ्गलैण्ड पर आक्रमण किया था, तब एथेलरेड पराजित हो कर अपने पुत्रको साथ ले नर्मान्दिमें रहने लगे थे। अन्तमें नर्मान्दिके ड्यूक रबर्टने राजा हो कर अपना मित्र भावसे पुत्रोंके लिये इङ्गलैण्ड एक सेना भेजी किन्तु राह

में ऐसा भारी तूफान उठा, कि सभी जहाज जहाज विपरीत दिशाको जाने लगे। इनके बाद इनके पुत्र विलियम-दि वाष्टर्ड राजा हुए। इन्होंने ही १०६५ ई०में इङ्गलैण्डके साथ प्रथम युद्ध आरम्भ किया था। दूसरे वर्ष अर्थात् १०६६ ई०में इन्होंने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सेण्ट माइकलमस नामक पर्व दिनमें इङ्गलैण्डकी यात्रा की और उसी साल इङ्गलैण्ड जीत लिया। बादसे विलियम "दि कङ्करर" (विजेता) नामसे इङ्गलैण्डके राजा हुए। नर्मान्डिकी ड्यूक-कुमारी एथाके विवाहसे ले कर विलियम कर्तृक इङ्गलैण्ड जीते जाने तक इङ्गलैण्डके साथ नर्मानोंकी विशेष घनिष्टता हो गई। इस सूत्रसे इङ्गलैण्डमें दिनों दिन नर्मानोंका अभ्युदय होने लगा। अन्तमें १०६६ ई०में इङ्गलैण्ड नर्मान्-राजके हाथ आ गया। विलियम वंशने इङ्गलैण्डमें राज्य आरम्भ कर दिया।

नर्य (सं० त्रि०) नृभ्यो हितं यत्। १ मनुष्यहित, जो आदमीके लायक हो। २ साहसी, वीर। ३ बलवान्, ताकतवर।

नर्री (हिं० स्त्री०) १ ऊसर जमीनमें होनेवाली एक प्रकारकी बारहमासी घास। २ हिमालय पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका पहाड़ी बाँस।

नर्सापुर—१ हैदराबाद राज्यके निजामाबाद जिलेका पूर्ववर्त्ती तालुक। भूपरिमाण ५२७ वर्गमील और लोकसंख्या ५२०५६ थी। इसमें १३८ ग्राम लगते थे और राजस्व एक लाख रुपयेसे अधिकका था।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° २६' उ० और देशा० ८१° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। १२६४ ई०में ओलन्दाजोंने यहां लोहेकी ढलाईका कारखाना खोला था। १६७७ ई०में इसका उत्तरीय भाग अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ गया था। आजकल यहां अच्छी अच्छी नावें बनाई जाती हैं।

नर्सिंपुर—१ महिसुर राज्यके हसन जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ४७' उ० और देशा० ७६° १६' पू०के मध्य हेमवती नदीके किनारे अवस्थित है। यह नर्सिंपुर तालुकका प्रधान स्थान माना जाता है। ११६४ ई०में नरसिंह नामक किसी मनुष्यने यहां एक किला बनवाया था। शहरमें सूती कपड़े और तसरका व्यवसाय अच्छा चलता है।

२ महिसुरके हसन जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ४७६ वर्गमील है।

नल (सं० क्ली०) नलतीति नल-अच्। १ पद्म, कमल। (पु०) २ तृणविशेष। संस्कृत पर्याय—धमन, पोटगल, नाल, नड, शुषिरन्ध्र, कीचक, दीर्घवंश, शून्यमध्य, विभीषण, छिद्रान्त, मृदुपत्र, वंशपत्र, मृदुच्छद, लालवंश। गुण—शीत, कषाय, मधुर, रुचिकर, रक्तपित्त प्रशमन, दीपन और वीर्यवृद्धिकारक। (भावप्र०)

नल—१ चन्द्रवंशीय निषधाधिपति वीरसेनके पुत्र। भारत-वनपर्व (३।५३।१)में लिखा है—

"आसीद् राजा नलो नाम वीरसेनसुतो बली।
उपपन्नो गुणैरिष्टै रूपवानश्वकोविदः॥"

चन्द्रवंशीय निषधाधिपति वीरसेनके पुत्रका नाम नल था, जो कन्दर्पके समान रूपवान् तथा सकल गुणग्रामविभूषित, अश्वकी परीक्षा और परिचालनविषयके असाधारण पण्डित थे। ये ब्रह्मनिष्ठ, वेदज्ञ और द्यूतविद्यानुरक्त थे। इनके गुणानुरागसे देवगण भी इन पर अनुरक्त थे।

उस समय विदर्भ देशमें भीमपराक्रम राजा भीम राज्य करते थे। राजा भीमने तपस्या द्वारा तीन पुत्र और एक अलोकसामान्या कन्या प्राप्त की थी। इस कन्याका नाम था दमयन्ती। महामति नल, दमयन्तीके रूप और गुणकी कथा सुन, उन पर आसक्त हो गये। यह आसक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। नल मनका भाव गोपन रखनेके अभिप्रायसे रमणीय उद्यानमें रहने लगे। एक दिन वहां कुछ सुन-ले रंगके हंस दिखलाई दिये। नलने उनमेंसे एकको उठा लिया। उस हंसने मनुष्यके स्वरमें नलसे कहा, "आप मुझे छोड़ दें, मैं आपका उपकार करूंगा। विदर्भदेशमें जा कर मैं दमयन्तीके समक्ष आपके रूपगुणादिकी ऐसी प्रशंसा करूंगा कि फिर वे सिवा आपके अन्य किसीको भी अपना पति न बनावेंगी।' नलने तत्क्षणात् हंसको छोड दिया। हंस भी विलम्ब न कर शीघ्र ही विदर्भदेशकी ओर चल दिया। वहां

जा कर उसने दमयन्तीसे कहा, "दमयन्ति! लोकपालादि पति नल रूपमें कन्दर्प सदृश हैं। तुम भी रमणियोंमें श्रेष्ठ हो। तुम यदि नलको अपना स्वामी बनाओ, तो विशिष्टके साथ विशिष्टका ही योग हो जाय।" दमयन्तीने हंसके मुंहसे यह बात सुन कर कहा, "मैं पहलेसे ही नल पर अनुरक्त हूं, अब तुम्हारे मुंहसे उनको प्रशंसा सुन प्रतिज्ञा करती हूं, कि नल ही मेरे पति हैं, उनके सिवा अन्य किसीके भी साथ मैं विवाह न करूंगी। तुम कृपा कर मेरी यह प्रतिज्ञा नलको सुना देना।" हंसने आ कर सब हाल नलसे कह दिया। नल बड़े आनन्दित हुए।

उधर महामति भीमने दमयन्तीको सामर्थ्यवती देख स्वयम्वरकी तैयारियां कीं। स्वयम्वरके लिए सब राजाओंको निमन्त्रण दिया गया। नल राजा भी चले। रास्तेमें देवोंसे उनको भेंट हो गई। देवोंने नलसे कहा, 'तुम हमारी ओरसे दूत बन कर दमयन्तीके पास जाओ और कहो कि इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण ये चारों लोकपाल स्वयम्वरमण्डपमें उपस्थित हुए हैं, इनमेंसे जिसको चाहो, उन्हें वरण करो। नल 'तथास्तु' कह कर चल दिये। देवताओंके प्रभावसे उन्हें कोई देख न सका।

नल दमयन्तीके पास पहुंच कर उनसे कहने लगे— "अयि कल्याणि! मेरा नाम नल है मैं देवताओंका दूत बन कर यहां आया हूं इन्द्र, अग्नि वरुण और यम ये चारों लोकपाल तुम्हें पानेकी इच्छासे स्वयम्वरमण्डपमें पधारे हैं उनमें किसी एकको अपना पति बनाओ। मैं देवताओंके प्रभावसे लोगोंसे अलक्षित हो कर यहां तक आया हूं। जो कुछ कहना हो सब निवेदन कह ना।" इसके उत्तरमें, दमयन्तीने देवोंके लिए कोटि नमस्कार कहा, "मैं हंसके मुंहसे आपकी प्रशंसा सुन कर प्रतिज्ञा कर चुकी हूं कि नल ही मेरे पति हैं। अब किस तरह मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर दिखावेवाली होऊं?" इस पर नलने देवोंकी तरफसे दमयन्तीको अनेक उपदेश दिये परन्तु दमयन्ती पर कुछ भी असर न पड़ा। वे बोलीं— "मैं नलको वरण कर चुकी हूं, अब किस तरह देवोंको वरण कर सकती हूं? देवगण धर्मरक्षक हैं, उनकी कृपासे मैं अपने धर्मको रक्षा करनेमें समर्थ होऊं, यही मेरी कामना है।" दमयन्तीको फिर सहमत देख नल लौट आये और देवोंसे सब वृत्तान्त कह सुनाया।

शुभमुहूर्तमें राजा नल विविध भूषणोंसे विभूषित हो स्वयम्वरमण्डपमें उपस्थित हुए। देवगण भी नलका रूप धारण कर वहां मण्डपमें बैठे थे। इधर दमयन्ती भी सखियोंके सहित स्वयम्वर-सभामें आ पहुंचीं। एक सखी राजाओंके नाम और गुण वर्णन करती हुई चलने लगी। नलके प्रति अत्यन्त अनुराग होनेके कारण दमयन्तीने अन्य राजाओंकी तरफ मुंह उठा कर भी नहीं देखा। चलते चलते जब नलके पास पहुंचीं, तब वहां उन्हें एक साथ पांच नल बैठे दिखाई दिये। दमयन्ती देवोंकी माया समझ गई और परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति करने लगी। देवगण सन्तुष्ट हुए। तब उन्होंने देवोंके स्वेद रहित और स्तब्धनेत्र इन लक्षणोंको देख यथार्थ नलको पहचान लिया और उन्हींके गलेमें वरमाला डाल दी। इस घटनासे देवगण दमयन्ती पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और नलको उनके गुणोंके लिए पुरस्कारस्वरूप ८ वर प्रदान किये। शचीपति इन्द्रने खुश हो कर यज्ञमें प्रत्यक्ष दर्शन देने और उत्तम गति होनेका वर दिया। अग्निने, नल जहां चाहेंगे वहां अग्निका आविर्भाव होगा और लोग अग्नि सदृश दीप्यमान होगा, ऐसा वर दिया। यमने अन्नमें विशिष्ट रस आने और धर्ममें दृढ़ मति होनेका वर दिया तथा वरुणने नल जहां चाहेंगे वहां जलका आविर्भाव होने तथा उत्तम सुवासित माल्य पानेका वर प्रदान किया। इस प्रकार नलको आठ वर प्राप्त हुए।

शास्त्रानुसार नलका दमयन्तीके साथ विवाह हो गया। राजमय दमयन्तीका विवाह देख विस्मित एवं विषण्णहृदयसे अपने अपने स्थानको चले गये। इन्द्रादि देवगण जिस समय स्वर्गको जा रहे थे, उसी समय कलि और द्वापरका स्वयम्वर-स्थलमें आना हुआ। मार्गमें देवताओंके साथ उन दोनोंका साक्षात् हो गया। देवताओंसे स्वयम्वरका वृत्तान्त सुन कर दोनों नल पर अत्यन्त कुपित हुए। देवोंने उन्हें समझाया कि दमयन्तीने हम लोगोंको

अनुमतिके अनुसार ही ऐसा किया है, पर तो भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। सर्वदा वे नलके छिद्र ढूँढ़ने लगे, क्योंकि बिना पापके प्रविष्ट हुए उनके शरीरमें प्रवेश करनेको उनमें क्षमता हो न थी। कालान्तरमें राजा नलके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रका नाम रक्खा गया इन्द्रसेन और कन्याका इन्द्रसेना। इस प्रकार द्वादश वर्ष व्यतीत हो गये, तथापि नलके शरीरमें पाप प्रविष्ट न हो सका। बारह वर्ष बीत जाने पर एक दिन नल मूत्रशौच त्याग कर पाद प्रचालन करके ही सन्ध्या करने बैठ गये। कलिने इसी सूत्रसे उनके शरीरमें प्रवेश किया। इसके बाद कलि अन्य रूप धारण कर नलके भ्राता पुष्करके पास गये और बोले, "तुम मेरी सहायतासे अक्षक्रीड़ामें नलको परास्त कर निषधका राज्य लाभ करो।" पुष्कर इस बात पर राजी हो गये और नलके साथ अक्षक्रीड़ामें प्रवृत्त हुए। नलके शरीरमें कलिके प्रविष्ट हो जानेसे, वे दमयन्तीके सिवा राज्यादि सम्पूर्ण सम्पत्ति द्यूतक्रीड़ामें हार गये। इधर दमयन्तीने राजाके पास बार बार आदमी भेजा और निषेध किया। किन्तु नलको किसी तरह भी चैतन्य न हुआ। दमयन्तीको जब मालूम हुआ कि पति द्यूतमें सब हार गये हैं, तब उन्होंने पुत्र-कन्याको वार्ष्णेयके साथ अपने पीहर भेज दिया। नलने हृतसर्वस्व हो दमयन्तीके साथ गृह त्याग दिया और नगरके प्रान्तभागमें तीन दिन रहे। उधर पुष्करने नगर-वासियोंके लिए आदेश निकाला कि, 'यदि कोई नलको सहायता वा आहारादि देगा, तो वह जानसे मार दिया जायेगा।' राजाके भयसे कोई भी नलको सहायता न कर सका।

नल तीन दिन तक क्षुधासे पीड़ित हो फल मूलकी खोजमें वहांसे चल दिये। दमयन्ती भी उनके साथ चलीं। क्षुधापीड़ित नलको बहुत दिन बाद सुनहले रंगके कुछ पक्षी दीख पड़े, ज्यों ही नलने वस्त्र द्वारा उन पक्षियोंको आच्छादित किया, त्यों ही पक्षीगण उस वस्त्रको ले कर आकाशमें उड़ गये। उड़ते समय पक्षियोंने सम्बोधन-पूर्वक नलसे कहा, "तुम जो अक्षक्रीड़ामें सर्वस्वान्त हुए हो, वह भी हमारे द्वारा ही हुआ है—हम लोगोंने अक्ष हो कर तुम्हारी ऐसी अवस्था कर दी है। अब तुम वस्त्र पहन कर निकले, यह हम लोगोंको सह्य नहीं हुआ और इसलिए इस वस्त्रको भी हम लोगोंने हरण कर लिया।" इस घटनासे नल किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये और दमयन्तीको विदर्भ नगर जानेके लिए उपदेश देने लगे। परन्तु दमयन्तीने नितान्त कातर हो कर कहा, "यदि आप भी चलें तो मैं चल सकती हूं। आपको छोड़ कर स्वर्ग-राज्यकी भी मुझे अभिलाषा नहीं है।"

अनन्तर नल और दमयन्ती एक ही वस्त्र पहन कर चलने लगे। कुछ दूर जा कर दमयन्तीसे चला न गया, वे नितान्त परिश्रान्ता हो कर बैठ गईं। फिर दमयन्ती नलके ऊरुदेश पर मस्तक रख कर सो गईं। दमयन्तीके सो जाने पर नल विचारने लगे—दमयन्तीको परित्याग करनेका यही अवसर है। परन्तु वस्त्र एक ही है छोड़ूं तो कैसे छोड़ूं ? इस प्रकार चिन्ता करते करते नल अस्थिर हो उठे। शरीरमें कलिके रहनेसे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी और इसीलिए उन्होंने दमयन्तीको त्यागनेका निश्चय कर लिया। यथासमय सामने एक कोषमुक्त खड्ग दीख पड़ा, नलने झटसे उठा कर उससे वस्त्रके दो खण्ड कर डाले। फिर अत्यन्त सावधानीसे दमयन्तीका मस्तक जमीन पर रक्खा। दमयन्तीकी इस दुर्दशाको देख नल नितान्त अवसन्न हो रोने लगे। एक बार दमयन्तीको छोड़ कर कुछ दूर चले जाते और फिर लौट कर व्याकुल हो रोने लगते थे। इसी प्रकार बार बार जाने आने लगे। अन्तमें हृदयको कुछ दृढ़ कर के यह कह कर, 'दमयन्ति! तुम नितान्त पतिपरायणा हो, इसलिए आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुत्‌गण और अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी रक्षा करेंगे,' वहांसे चल दिये। नलकी बुद्धि कलि द्वारा अपहृत होनेके कारण वे अतुलनीय प्रियतमा भार्याको छोड़ कर आगे बढ़ने लगे। कलि उस समय नलके हृदयमें विशेष-रूपसे आविष्ट थे, इसलिए नलकी बुद्धि बिलकुल लुप्त हो गई। वे जनशून्य वनमें अर्द्धनग्ना प्रणयिनी भार्याको निद्रितावस्थामें छोड़ करुण-विलाप करते हुए वहांसे चल ही दिये, फिर न लौटे।

नलके चले जाने पर दमयन्तीकी जब निद्रा भङ्ग

हुई। उठकर देखा तो नल नहीं। इतो दमयन्ती करुण स्वरसे रोने लगीं, उनके रोदनसे वनके पशु पक्षी भी मानो रोदयमान हो उठे। इसके बहुत दिन बाद दमयन्ती सुबाहुनगरमें उपस्थित हुई और वहाँ राजमहलमें कुछ दिन रानीके दासीके वेशमें रहीं। विदर्भाधिपति भीमने कुछ कुशल ब्राह्मणोंको इन दोनोंको ढूंढ़नेके लिए देशा देशान्तरको भेजा। सुदेवने सुबाहुनगर पहुंच कर दमयन्तीका पता लगाया। इसके बाद दमयन्ती भीमके यहाँ लाई गई और वहीं रहने लगीं।

राजा नलने दमयन्तीको त्याग कर गहन वनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा, भयानक दावानल जल रहा है और उस प्रज्वलित अग्निमेंसे कोई चिल्ला रहा है कि 'हे नल! हे पुण्यश्लोक! शीघ्र आओ।' यह सुन कर नलने, 'कुछ भय नहीं है' ऐसा अभय दे उस अग्निमें प्रवेश किया। उसमें एक महानाग जल रहा था। नलको देख उसने कहा, 'राजन्! नारदके शापसे मुझमें एक कदम भी चलनेकी शक्ति नहीं रही, शीघ्र ही तुम मेरी रक्षा करो। मेरा नाम कर्कोटक है, मैं तुम्हारा मङ्गल विधान करूँगा।' इतना कह कर कर्कोटकने अपना शरीर अङ्गुष्ठ प्रमाण कर लिया। नल उसे उठा कर निकल आए। तब कर्कोटकने फिर कहा, 'महाराज! आप कुछ कदम आगे बढ़िये।' ज्यों ही नलने १०वाँ कदम बढ़ाई, त्यों ही कर्कोटकने उन्हें डँस लिया। कर्कोटकके डँसते ही नलका रूप बदल गया। नलको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। तब कर्कोटकने कहा—"राजन्! लोग आपको पहचान न सकें, इसीलिए मैंने आपको डँस कर आपका रूप बदल दिया है। आप जिसके कारण कष्ट पा रहे हैं, वह मेरे विषसे पीड़ित हो कर आपके शरीरमें अवस्थान करेगा। मेरे प्रसादसे आप किसी भी शत्रु, दंष्ट्री और वेदविदोंसे भीत न होंगे। आप आज ही यहाँसे अयोध्या चले जाइये और वहाँके राजा ऋतुपर्णके बाहुक नामक सारथि बन जाइये। राजा ऋतुपर्ण द्यूतविद्याविशारद हैं, उनके पास रह कर द्यूतविद्या सीखनेसे आपका मङ्गल होगा। फिर पत्नी और पुत्रादिके साथ भी आपका मिलन हो जायगा। जब आपको अपना प्रकृत रूप बनाना हो, तब मेरे दिए हुए वस्त्रयुगलको आप अपने ऊपर डाल दीजिएगा। बस फिर आपका रूप पहले जैसा हो जायगा।" अनन्तर कर्कोटक उन्हें दो वस्त्र प्रदान कर वहाँसे चल दिया।

राजा नल दश दिनमें अयोध्या पहुँचे और राजा ऋतुपर्णके यहाँ सारथिका कार्य करने लगे। धीरे धीरे राजासे उनका सौहृद्य हो गया। परन्तु दमयन्तीके अभावसे वे सर्वदा विमर्ष रहते थे और प्रतिदिन सोनेसे पहले इस श्लोकको पढ़ा करते थे,—

"क्व नु सा क्षुत्पिपासार्त्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी।
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वा साद्योपतिष्ठते॥"

(भारत वनप० ७६ अ०)

अर्थात् वह तपस्विनी श्रान्त और क्षुत्पिपासासे कातर हो कर इस मूढ़को स्मरण करती हुई कहाँ सो रही है, और न मालूम किसकी उपासना कर रही है।

दमयन्तीके पितृभवनमें आ कर नलको ढूंढ़नेके लिए माताके प्रार्थना करने पर, भीम-महिषीने राजासे कह कर चारों ओर कार्यकुशल ब्राह्मणोंको भेजा। दमयन्ती कथित कुछ गाथाएँ उन लोगोंने याद कर लीं और उन्हें पढ़ते हुए वे नाना स्थानोंमें पर्यटन करने लगे। परन्तु कोई भी नलका पता न लगा सका।

पर्णाद नामक एक ब्राह्मण नलकी खोजमें अयोध्या पहुँचे। वहाँ राजा ऋतुपर्णके बाहुक नामक एक सारथिने उनको गाथा सुन कर दीर्घनिश्वास त्याग किया और कहा, "पतिपरायणा कुलीन स्त्रियाँ विषमावस्थाको प्राप्त होने पर भी अपने आप ही अपनी रक्षा करती हैं, इस कारण उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। पति यदि किसी विपत्तिमें आ पड़ने पर उसे त्याग दे, तो उस पर क्रोध करना उचित नहीं। जो व्यक्ति प्राणरक्षाके लिये चेष्टा करने पर भी पक्षियों द्वारा हृतवस्त्र हो कर नाना प्रकारकी मानसिक पीड़ाओंसे दग्ध होता है, उस पर क्रोध करना श्यामाओंके लिए उचित नहीं है। श्यामाओंको, चाहे वह पति द्वारा सत्कृत हो या असत्कृत, राज्यभ्रष्ट व्यसनातुर पति पर क्रोध न करना चाहिये।"

पर्णादने जब इस वृत्तान्तको दमयन्तीसे आ कर कहा, तो दमयन्ती समझ गईं कि ये नलके सिवा और कोई नहीं हैं। नलको बुलानेके लिए उन्होंने एक

अद्भुत उपाय निकाला। उन्होंने सुदेवको बुला कर कहा, "तुम शीघ्र अयोध्या जा कर ऋतुपर्ण राजाको संवाद दो कि दमयन्तीने पुन: स्वयम्वरकी अभिलाषा की है, कल ही स्वयम्वर होगा।" राजा ऋतुपर्ण इस संवादको पा कर विदर्भदेशको जानेकी तैयारियां करने लगे। बाहुकके सिवा ऐसा कोई था नहीं जो एक दिनमें विदर्भनगर पहुंचा सके। बाहुकने भी यह संवाद सुना, उनका हृदय विदीर्ण हो गया। राजा ऋतुपर्ण बाहुक और वार्ष्णेयके साथ विदर्भनगरको चल दिये। रथ बड़ी तेजीसे चलाने लगा। मार्गमें राजा ऋतुपर्णने नलको अक्षविज्ञान सिखाया। तब कलि नलके हृदयमें निकल कर विष वमन करने लगा। नल कलिको शाप देना चाहते थे, किन्तु कलि उनके शरणापन्न हो गया और कहने लगा, "राजन्! जो तुम्हारा नाम स्मरण करेगा, उसे कलिका भय न रहेगा।" इस पर नलने उसको क्षमा प्रदान की। अब नल कलिसे मुक्त हो गए। सायङ्कालको सब विदर्भनगर पहुंच गये।

नलने नगरोंमें जा कर देखा, कहीं भी कोई उत्सवका चिह्न नहीं है। इतनेमें दमयन्तीने केशिनी नामकी एक सखीको बाहुकके पास भेज दिया। केशिनी आ कर बाहुक नामधारी नलसे नाना प्रकारके प्रश्न करने लगी, उससे उनका सन्देह क्रमश: बढ़ने ही लगा, उसने जा कर सब वृत्तान्त दमयन्तीसे कहा। सब वृत्तान्त सुन कर दमयन्तीने केशिनीकी मारफत मातासे कहला भेजा, "मात:! मैंने बाहुकको नल समझ कर अनेक प्रकारसे परीक्षा की, परन्तु केवल उनके रूप पर मुझे सन्देह है, इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं स्वयं उनकी परीक्षा करूं। पितासे कह कर अथवा यों ही, उन्हें अन्त:पुरमें बुलाने अथवा मुझे उनके निकट जानेकी अनुमति दीजिए।" रानीने विदर्भराजसे दमयन्तीकी बात कह दी। राजा भीमने कन्याकी प्रार्थना स्वीकार कर अनुमति दे दी।

दमयन्तीने माताका आदेश ले कर नलको अपने आलयमें बुलाया। नल दमयन्तीको देख कर सहसा शोक और दु:खसे आकुल हो गए, उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। दमयन्तीने भी ततोधिक शोकसे मुह्यमान हो कर कहा, "बाहुक! क्या तुमने कभी किसी ऐसे धर्मज्ञ पुरुषको देखा है कि जो वनमें निद्रिता स्त्रीको छोड़ कर चला गया हो? पुण्यश्लोक नलके सिवा कौन व्यक्ति ऐसा है जो असमोहिता प्रियतमा भार्याको बिना अपराधके निर्जन वनमें छोड़ कर जा सकता है? मैंने बाल्यकालसे उस महीपालका ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे वे मुझे काननमें निद्रार्त्ता देख परित्याग पूर्वक चले गए हैं? मैंने पहले साक्षात् देवोंको छोड़ कर जिनको वरण किया है—" कहते कहते दमयन्तीका गला भर आया। नलने बड़े दु:खके साथ कहा, "भीरु! मेरा जो राज्य नष्ट हुआ था और मैंने जो तुम्हें त्याग दिया था, यह सब मेरा काम नहीं था, सब कुछ कलिने किया है। पापी कलिने अब मुझे छोड़ दिया है, इसीसे मैं तुम्हारे पास आ सका हूं। परन्तु तुम जिस प्रकार अनुव्रत और अनुरक्त पतिको त्याग कर अन्यको वरण करनेके लिए उद्यत हुई हो, क्या नारी कभी इस प्रकार कर सकती है?" दमयन्तीने नलके इस प्रकार परिदेवित वाक्यको सुन हाथ जोड़ कर कांपते हुए कहा, "निषधनाथ मैंने देवोंकी उपेक्षा कर आपको वरण किया है, ऐसी अवस्थामें मुझे दोष देना उचित नहीं है। आपको पानेके लिये ब्राह्मणगण मेरी कही हुई गाथाओंको पढ़ते हुए चारों तरफ घूमे थे। अनन्तर पर्णादने कोशलनगरीमें आपको देखा, आपने मेरी गाथाके उत्तर दिये हैं। मैंने आपको बुलानेके लिए यह उपाय निकाला है, क्योंकि इस पृथिवी पर आपके सिवा अन्य कोई भी अश्वचला कर एक दिनमें सौ योजन नहीं चल सकता। मैंने मनमें भी कभी अमत्कार्य की चिन्ता नहीं की है। वायु, अग्नि और सूर्य ये सभी साक्षी हैं। ये तीन देवता तीन लोकको धारण किये हुए हैं। या तो वे यथार्थ कहें, या मुझे परित्याग कर दें।" इतनेमें वायुने अन्तरीक्षसे कहा, "नल! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, दमयन्तीने मनमें भी कभी असत्कार्य नहीं किया। इन तीन वर्षोंमें हम लोगोंने उनकी रक्षा की है। तुम्हें पानेके लिए ही दमयन्तीने ऐसा उपाय अवलम्बन किया है।" इसी समय स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवदुन्दुभि बजने लगी। नलने भी कर्कोटकका स्मरण कर वस्त्र

द्वारा शरीर आच्छादन किया और उसी समय उन्हें अपना रूप प्राप्त हुआ। दमयन्ती प्रकृत नलको सामने देख उनके चरणोंमें गिर कर जब भरके रोने लगीं।

यह संवाद भीम को चारों ओर फैल गया। निषधाधिपति नल तीन वर्ष तक नाना प्रकारके कष्ट भोगनेके बाद भार्यासे मिल कर परम आनन्दित हुए।

इधर राजा ऋतुपर्णने जब सुना कि राजा नल बाहुकके रूपमें उन्हींके राज्यमें अवस्थान करते थे तब वे दमयन्तीसे मिले और अत्यन्त आनन्दित हो नलसे क्षमा मांगने लगे। नलने भी उनसे क्षमा मांगी और अश्व विद्याके बदले उन्हें अक्षविद्या प्रदान की। राजा ऋतुपर्ण प्रसन्नचित्त हो अपने राज्यको लौट गए।

नल एक मास विदर्भ नगरमें रहे, फिर कुछ बल और सैनादि ले कर अपने देशको चल दिये। स्वदेश पहुंचने पर उन्होंने अपने भाई पुष्करको द्यूतक्रीड़ाके लिए आह्वान किया। दोनोंमें द्यूत प्रारम्भ हुआ। अबकी बार पुष्कर पराजित हुए। पुण्यश्लोक नल पुनः अपने राज्यमें अभिषिक्त हुए। देवगण आनन्दसे आ कर पुष्पवृष्टि करने लगे। राजा नलने पुष्कर पर किसी प्रकारका अत्याचार नहीं किया, वरन् भ्रातृभावसे आलिङ्गन पूर्वक उन्हें अपने पुरमें ही रक्खा। पहलेकी तरह फिर नल दमयन्ती सुखसे राज्य करने लगे।

जो लोग नल-दमयन्तीका उपाख्यान सुनते हैं, उनका कलिभय नष्ट हो जाता है। (भारत वनपर्व ५२ ६०अ०)

अकबरकी सभा कवि प्रसिद्ध शेख फैजीने इस नल-दमयन्तीके उपाख्यानके आधार पर फारसीमें 'नलदमन' नामक एक मनोहर काव्य रचा है।

२ सूर्यवंशीय निषधराजके पुत्र। (मत्स्यपु० १२ अ०)

३ सूर्यवंशीय निषधराज वीरसेनके पुत्र। (हरिवंश १५।२८)

उपर्युक्त दोनों नल सूर्यवंशीय थे। दमयन्तीके पति पुण्यश्लोक नल चन्द्रवंशीय थे।

४ रामका एक वानर सेनिक। विश्वकर्माका पुत्र। इसी नलने श्रीरामचन्द्रके लिये लङ्का जानेका सेतु बनाया था। (रामायण)

वामनपुराणमें इसका विवरण इस प्रकार मिलता है—नलने ऋतुध्वज मुनिके शापसे विश्वकर्माके औरस और घृताची अप्सराके गर्भसे गोदावरीके किनारे वानर रूपमें जन्मग्रहण किया था। (वामनपु० ६२ अ०)

५ दानवविशेष विप्रचित्तिका चतुर्थ पुत्र। सिंहिकाके गर्भसे इसका जन्म हुआ था।

६ यदुके पुत्र।

७ भारतवर्षीय आनक यन्त्रविशेष। यह यन्त्र युद्धके समय घोड़े पर रख कर बजाया जाता है। (शब्दकोष)

नल—दाक्षिणात्यका एक पराक्रान्त राजवंश। इस वंशके राजा कोङ्कण-प्रदेशमें राज्य करते थे। बादमें चालुक्योंने आ कर इनको राज्यच्युत किया था (६६० ५६० ई०)।

नल—बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेका एक ह्रद। अहमदाबादसे यह करीब १८ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसका परिमाण प्रायः ४८ वर्गमील होगा। इसका पानी थोड़ा सलोना लुनखरा रहता है। गरमियोंमें और भी लुनखरा हो जाता है। ह्रदके किनारे नाना प्रकारके वृक्ष हैं, जो कि अकसर छिन्न सतेज हैं। ह्रदमें बहुतसे छोटे छोटे द्वीप हैं, जिनमें गरमियोंमें पशु आदि चराये जाते हैं।

नलक (सं० क्ली०) नल इव कायति कै-क। अस्थि, नलीके आकारकी हड्डी।

नलक—कात्यायनके एक भतीजेका नाम। ये बुद्धदेवके समसामयिक थे। कात्यायन अपनी दैवशक्ति-प्रभावसे जानते थे, कि कुछ दिनोंके बाद शुद्धोदनके एक पुत्र होगा जो एक असाधारण मनुष्य हो कर ज्ञानालोक प्रकाश करेगा। किन्तु उस पुत्रके जन्म लेनेके पहले उनकी मृत्यु होगी, इस कारण वे उस आलोकको प्राप्त कर न सकेंगे। इस लिये एक दिन उन्होंने अपने भतीजे नलकको बुला कर कहा, 'नलक! कालक्रमसे शुद्धोदनके [illegible] उत्पन्न एक पुत्र जन्म लेगा। वही पुत्र ज्ञानालोक सम्पन्न बुद्ध होंगे।' नलक एक बड़े दिलके आदमी थे। वे अपने चाचाके कहनेका तात्पर्य अच्छी तरह समझ गये थे। एक दिन वे यतिके उपयुक्त गेरुआ वस्त्र पहन और हाथमें मृण्मय पात्र ले कर हिमालयके जङ्गलमें चल दिये और वहां कठोर ब्रह्मचर्य द्वारा दिनों दिन पवित्रता लाभ करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर जब उन्हें खबर लगी कि बुद्धदेव आविर्भूत हुए हैं,

तब वे उनके समीप आये और बहुत दिनोंके दूषित उपदेश उनसे सुनने लगे। उस उपदेशावलीका नाम नलक-पतिपद है। उपदेशके समाप्त हो जाने पर उन्होंने बुद्धदेवसे विदा माग कर निर्विघ्नतासे तत्त्वचिन्ता करनेके लिये पुनः हिमालयके जङ्गलमें प्रवेश किया था। बुद्धदेवके उपदेशके प्रभावसे इन्होंने ही सबसे पहले परम विशुद्धि प्राप्त की थी। इसके सात मास बाद हिमालयके शिखर पर चढ़ कर ये स्वर्गधामको पधारे।

नलका (हिं० स्त्री०) नली, नाल।

नलकानन (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। (क्लो०) २ नलवन, नरकटका जङ्गल।

नलकिनो (सं० स्त्री०) नलकानि सन्त्यस्याः, नलक इनि ङीप्। १ जङ्घा, जांघ। २ जानुदेश, घुटना।

नलकील (सं० पु०) नलवत् कीलो यत्र। जानु, घुटना।

नलकूबर (सं० पु०) १ कुबेरके एक पुत्रका नाम। मणिग्रीव नामक इसके एक भाई था। एक बार यह अपने भाईके साथ खूब शराब पी कर कैलास पर्वत पर गङ्गाके किनारे एक उपवनमें स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा था। उन दोनोंको ऐसी अवस्थामें देख नारदने शाप दिया था, कि तुम अर्जुनवृक्ष हो जाओ। कहते हैं, कि इसी शापसे ये दोनों वृन्दावनमें यमलार्जुन हुए। यहां श्रीकृष्णने इन्हें स्पर्श करके शापमुक्त किया।

(भागवत १० स्क०)

रामायणमें लिखा है, कि एक बार जब रावण दिग्विजय करके लौट रहा था, तब रास्तेमें उसे रम्भा नामक अप्सरा मिली जो नलकूबरके यहां जा रही थी। रावण उसे जबरदस्ती पकड़ कर अपने साथ ले गया। उसी समय रम्भाने उसे शाप दिया था, कि यदि तुम किसी स्त्रीके साथ बलात्कार करोगे, तो तुरंत तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। कहते हैं, कि इसी भयसे रावणने सीताके साथ बलात्कार नहीं किया था। (रामायण उत्तर०)

भारतचन्द्रके अन्नदामङ्गलमें लिखा है, कि नलकूबर नारदके शापसे भवानन्द मजुमदार हो कर उत्पन्न हुए थे। उनकी दो स्त्रियोंने चन्द्रमुखी और पद्ममुखी नामसे जन्मग्रहण किया था। भवानन्द मजुमदार देखो।

नलकेरि—कुर्ग राज्यका एक अरण्य। यहां तरह तरहकी लकड़ी मिलती है। इसका परिमाण लगभग ४० वर्गमील होगा।

नलकोल (हिं० पु०) एक प्रकारका शैल।

नलगङ्गा—बरारके बुलढाना जिलेकी एक नदी। यह बुलढाना नगरके पासमें हो निकल कर वगार नदीमें मिलती है। ग्रोष्मकालमें यह नदी सूख जाया करती है।

नलगोंद—१ हैदराबाद राज्यके मेदक गुलशनाबाद विभागका एक जिला। यह अक्षा० १६° २०´ से १७° ४७´ उ० और देशा० ७८° ४५´ से ८०° ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१५३ वर्गमील है। यह जिला चारों ओर पर्वतसे घिरा है। यहांकी प्रधान नदी कृष्णा जिलेके दक्षिण हो कर बह गई है। अगस्तसे अक्तूबर तक यहां मलेरियाका प्रकोप अधिक देखा जाता है। केवल नवम्बरसे ले कर मई तक आबहवा अच्छी रहती है। ग्रोष्मऋतुमें असह्य गर्मी पड़ती है, उस समय तापपरिमाण ११० रहता है।

यह जिला पूर्व समयमें वरङ्गल राजाके अधिकारसे बाहर था। पीछे वरङ्गलके एक शासनकर्त्ताने नलगोंद शहरसे २ मील उत्तर-पूर्व पाङ्गल नामका एक शहर बसाया और वहीं अपनी राजधानी कायम की। पीछे वे राजधानी उठा कर नलगोंदको ले गये। वाह्मनीराज अहमदशाह वलीके शासनकालमें शत्रुओंने इसे एक बार जीता था। वाह्मनीराजके अधःपतनके बाद यह जिला गोलकुण्डाके कुतुबशाही राज्यका एक अंग हो गया। यद्यपि वरङ्गलके राजाने इस पर पुनः अपना अधिकार जमाया, पर अधिक काल वे इसका भोग कर न सके। यह पुनः सुलतान कुली कुतुबशाहके हाथ लगा। गोलकुण्डाके अधःपतनके बाद औरङ्गजेबने इस जिलेको दक्षिण-सूबामें मिला लिया। लेकिन १८वीं शताब्दीमें हैदराबाद राज्यके संस्थापित होने पर यह दिल्ली-साम्राज्यसे पृथक् कर दिया गया।

जिलेमें नलगोंद, देवरगोंद और चलगोंद नामके जो तीन दुर्ग हैं उनकी स्थिति और कारुकार्य देख कर आश्चर्य होना पड़ता है। देवरगोंद दुर्ग सात पहाड़से घिरा है। एक समय यह भयावह तथा अजेय दुर्ग समझा जाता था, लेकिन अभी यह भग्नावस्थामें पड़ा है।

कवि लोग राजाके भयसे निस्तब्ध दो पहर रातको जान ले कर भागे। भागनेके पहले प्रत्येक कविने एक एक टुकड़े कागज पर एक श्लोक लिख कर अपने तकियेके नीचे रख छोड़ा था। जब राजाको इसकी खबर लगी, तब उन्होंने अपने कवियोंके परामर्शानुसार उन सब कागजोंको नदीमें फेंकवा दिया। कागजके फेंकनेके साथ ही नदीमें उजानकी ओरसे एक भारी बाढ़ आ गई। इस अस्वाभाविक घटनाको देख कर राजा विस्मित हो पड़े और उसी समय उन्होंने उन कागजके टुकड़ोंको बटोर लानेको कहा। उन रचित श्लोकोंको ले कर यह ग्रन्थ रचा गया है, इसीसे इसका नाम नलदियर पड़ा है।

नलदुर्ग—१ हैदराबाद राज्यका एक जिला। इसका प्राचीन नाम श्रोसमानाबाद जिला है।

२ उक्त जिलेका एक प्राचीन तालुक। लोकसंख्या ५६२३५ और भूपरिमाण ३७० वर्गमील है।

३ उक्त तालुकका दुर्ग द्वारा संरचित एक नगर। यह अक्षा० १७° ४८´ उ० और देशा० ७६° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ४१११के लगभग है। स्थानीय इतिहासमें यह नगर बहुत प्रसिद्ध है। १८वीं शताब्दीमें मुसलमानोंके आक्रमणके पहले यह यहांके हिन्दूराजाओंके अधिकारभुक्त था। बाद यह बाह्मनी वंशके हाथ लगा और १४८० ई० तक उन्हींके अधिकारमें रहा। बाद १४८० ई०में जब बाह्मनीराज्य विभक्त हो गया, तब नलदुर्ग बीजापुरके आदिलशाही राजाओंके भागमें पड़ा। १८५३ ई०में निजामने नलदुर्ग जिला अंगरेजोंको समर्पण कर दिया। लेकिन १८६० ई०में अंग्रेजोंने पुनः इसे लौटा दिया।

नलनी (सं० स्त्री०) नलिनी देखो।

नलनीरुह (सं० पु०) मृणाल, कमलको नाल।

नलपट्टिका (सं० स्त्री०) नलनिर्मिता पट्टिका। नलनिर्मित पट्टिका, नरकटकी बनी हुई चटाई।

नलपुर (सं० क्ली०) बोद्धशास्त्रोक्त एक प्राचीन नगर।

नलमीन (सं० पु०) नलाश्रयो मीनः। मत्स्यभेद, भींगा मछली।

नलवन—चिल्का झीलका एक द्वीप। इसकी परिधि पांच मीलकी है। यहां मनुष्योंका वास नहीं है। दूर दूर स्थानोंसे लोग यहां आ कर नरकट काट ले जाते हैं।

नलवा (हिं० पु०) बैलोंको घी पिलानेकी बांसकी टोंटी।

नलसेतु (सं० पु०) नलवानरकृतः सेतुः, मध्यपदलोपि-कर्मधा०। समुद्रोपरि नलवानर कृत सेतु, रामेश्वरके निकटका समुद्र पर बांधा हुआ यह पुल जो रामचन्द्रने नल नील आदिसे बनवाया था। जब रामचन्द्रजीने समुद्र बांधनेके लिए उनसे प्रार्थना की थी, तब समुद्रने कहा था, 'शिल्पिकुशल विश्वकर्माके पुत्र नल नामका जो वानर है वह काष्ठ तृण, या प्रस्तरादि जो फेंकेगा, उसीसे मैं बंध जाऊंगा और इस प्रकार जो पुल तैयार हो जायगा, वह नलसेतु नामसे प्रसिद्ध होगा।' रामचन्द्रने भी उसी उपायसे सेतु बंधवाया था। यह सेतु सौ योजन लम्बा और दश योजन चौड़ा है। (भारत वनप० २८२ अ०)

नला (हिं० पु०) १ पेड़के अन्दरकी वह नाली जिसमेंसे हो कर पेशाब नीचे उतरता है। २ हाथ या पैरकी नलीके आकारकी लम्बी हड्डी।

नलाई (हिं० स्त्री०) १ नलाने या निरानेका भाव। २ नलानेकी क्रिया। ३ नलानेकी मजदूरी।

नलाना (हिं० क्रि०) फसल बोई हुई जमीनकी निरर्थक घास आदि दूर करना, निराना।

नलापाणि—उत्तर-पश्चिम प्रदेशके अन्तर्गत देहरादून जिलेका एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० ३०° २०´ उ० और देशा० ७८° ८´ पू०के मध्य अवस्थित है। गोरखा लोगोंने नेपाल युद्धके प्रारम्भमें यह दुर्ग बनवाया था, लेकिन उसकी रक्षा कर न सके।

नलिक (सं० पु०) नल, नरकट।

नलिका (सं० स्त्री०) नल इव आकारोऽस्त्यस्या इति नल-ठन्-टाप्। १ नाड़ी नामक सुगन्ध-द्रव्यविशेष। उत्तरापथमें यह नली नामसे प्रसिद्ध है। इसकी आकृति प्रवाल (मूंगे)सी होती है, इसीसे कहीं कहीं इसे प्रवाली भी कहते हैं। पर्याय—विद्रुमलतिका, कपोतचरणा, नलिनी, निर्मध्या, शुषिरा, प्राध्माना, सुल्या, रक्तदला, नर्त्तकी और नटी। गुण—तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, मधुर, कृमि, वात, उदर, अर्श और शूलरोगनाशक तथा मलशोधक। भावप्रकाशमें इसे शीतल, लघु, चक्षुका हितकर, कफ और

अर्थात् चार हाथ है। महाभारतमें इस अस्त्रको 'अय कणप' नामसे उल्लेख किया है। यथा—

"अयःकणपचक्राश्मभूषण्ड्यद्यतबाहवः।
कृष्णपार्षौ जिघांसन्तः क्रोधसम्मूर्च्छितौजसः॥"
(भारत १।२२५।२५)

टीकाकार नीलकण्ठने भी 'अयःकणप' इस शब्द-को नालिक शब्दके पर्यायरूपमें निर्देश किया है और इसकी व्युत्पत्ति भी इस प्रकारकी है, 'अयःकणप अयः-कणान् लौहगुलिकान् पिबतीति तत् तथाविधं लौहमयं यन्त्रं येन आग्नेयौषधबलेन गर्भसम्भूता लौहगुलिका क्षिप्यन्ते।' (नीलकण्ठ)

प्राचीनकालमें कूटयुद्ध नहीं होनेके कारण इस अस्त्र-का विशेष प्रचार नहीं था। किन्तु बड़े बड़े दुर्गोंके सिरे पर इहन्नालीक रखे जाते थे, ऐसी वर्णना कई जगह मिलती है। किन्तु काल-प्रभावसे आर्य जातिकी अवनतिके साथ साथ यह अस्त्र भी एकबारगी विलुप्त हो गया है। नालीक देखो।

३ जलनिर्गमपथ, जलप्रणाली, नाला, ड्रेन। ४ नलके आकारकी कोई वस्तु, चोगा, नली। ५ तरकश जिसमें तीर रखे जाते हैं। ६ करेमूका साग। ७ पुदीना। ८ वैद्यकमें एक प्रकारका प्राचीन यन्त्र जिसकी सहायता-से जलोदरके रोगीके पेटसे पानी निकाला जाता था।

नलिकायन्त्र (सं० क्लो०) दकोदररोगमें प्रशस्त यन्त्र-विशेष, एक प्रकारका औजार जो दकोदर रोगमें काम आता है।

नलित (सं० पु०) नल्यते इति नल बन्धे क्त। शाक विशेष, एक प्रकारका साग जो नाड़िका साग भी कह लाता है। वैद्यकमें यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्र-वर्धक माना गया है।

नलिन (सं० क्लो०) नल बन्धे इनच् (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।४८) १ पद्म, कमल। २ जल, पानी। ३ नीलिका, नील। (पु० स्त्री०) ४ सारसपक्षी। (पु०) ५ क्षणपाकफल, करौंदा। ६ किञ्जल्क, पद्मकेशर। ७ निम्ब, नीम।

नलिनी (सं० स्त्री०) नलानि पद्मानि सन्त्यत्र नल-इनि, ततो ङीप्। (पुष्करादिभ्योदेशे। पा ५।२।१३५) १ पद्म-युक्त देश, वह देश जहां कमल अधिकतासे होते हों। २ पद्मसमूह, कमलका ढेर। ३ पद्मलता। ४ पद्म, कमल। ५ नदी। ६ नलिका, नलिनी नामक गन्धद्रव्य। ७ व्योम-निम्नगा, गङ्गाकी एक धाराका नाम। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकी ओर गङ्गाकी जो तीन धाराएं गई हैं उनमेंसे एकका नाम नलिनी, दूसरीका ह्रादिनी और तीसरीका पावनी है। रामायणमें भी नलिनीको गङ्गा-की एक धारा बतलाया है। यह धारा हिमाद्रिमें अवस्थित है। बिन्दुसरोवरसे गङ्गाकी जो सात धाराएं निकली हैं उनमेंसे एक नलिनी भी है। (रामायण आदि०) ८ नारि-केल-सुरा, नारियलकी एक शराब। ९ वामनासिका, नाकका बांया नथना। १० छन्दोभेद, एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें पांच सगण होते हैं। इसे मन-हरण और भ्रमरावली भी कहते हैं।

नलिनीखण्ड (सं० क्लो०) नलिनीनां समूहः, समूहार्थे कमलादित्वात् खण्डच्। पद्मिनीसमूह।

नलिनीनन्दन (सं० क्लो०) नलिन्या नन्दयति नन्दि-ल्यु। देवोद्यानभेद, कुबेरके उपवनका नाम।

नलिनीपद्मकोष (सं० पु०) नृत्यकालीन हस्तमुष्टिकी पद्मसी आकृति, नाचनेके समय हाथकी एक विशेष आकृति।

नलिनीरुह (सं० क्लो०) नलिन्यां रोहतीति रुह-क। १ मृणाल, कमलकी नाल। (पु०) २ ब्रह्मा। ३ मनःशिला।

नलिनेशय (सं० पु०) नलिने ब्रह्मनाभिपद्मे शेते शी-अच्। विष्णु।

नलिया—१ बम्बई प्रदेशका एक क्षुद्र राज्य। भूपरिमाण १ वर्गमील है। यहांके स्वत्वाधिकार ठाकुर कहलाते हैं। राजस्व ७४० रु० है।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अब्दसा उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २३° १८´ उ० और देशा० ६८° ५४´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह कच्छका एक वाणिज्य स्थान है। यहां अनेक व्यवसायी रहते हैं।

नली (सं० स्त्री०) नल-अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ मनःशिला, मैनसिल। २ नलिका, एक प्रकारका गन्ध द्रव्य। पर्याय—शुषिरा, विद्रुमलता, कपोताङ्घ्रि, नटी।

नली (हिं० स्त्री०) १ छोटा या पतला नल, छोटा चोंगा। २ नलके आकारकी एक प्रकारकी हड्डी जो भीतरसे

पोली होती है और जिसमें संख्या भी होती है। ३ कुम्हारोंकी नाम। ४ बन्दूककी नली जिसमें हो कर गोली पहले गुजरती है। ५ हुक्केके नैचेका नाम, पैंचो पिचको।

नलीमोज (फा० पु०) एक प्रकारका कबूतर जिसके पैरों तक पर होते हैं।

नलुआ (हि० पु०) १ पशुओंका एक रोग जिसमें सूजन पड़ जाती है। २ बांसकी पोर, बांसको दो गांठोंका टुकड़ा। ३ छोटा नल या चोंगा।

नलुवा (हि० स्त्री०) १ नलिका, एक प्रकारका गन्ध द्रव्य। २ नालोदय, वायपत्ता पेड़।

नलेश्वर (सं० पु०) नलकर्त्तृक स्थापित शिवलिङ्गभेद, एक शिवलिङ्गका नाम जिसे राजा नलने स्थापित किया था। (शिवपु०)

नलोत्तम (सं० पु०) नलेषु उत्तमः ७-तत्। देवनल। बड़ा नरसल।

नलोदय—एक यमकाव्य। इसमें राजा नलका अभ्युदय विवरण किया है। यह रघुवंशके कवि कालिदासके रचा गया है। किन्तु बम्बईके अहमदाबाद नगरमें देव भागो उपाश्रय नामक एक जैन भण्डार है जिसमें अभी हालमें दो हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं। उन ग्रन्थोंमें नारायणके पुत्र रविदेव नामक कविको इसके रचयिता बतलाया है। डाक्टर भाण्डारकर इसे देख आये हैं।

नलोपत्तनम्—पहले मलबार उपकूलमें इस नामका एक बन्दर था। इस बन्दरमें फिनिशीय और अन्यान्य प्राचीन पाश्चात्य जातिके लोग वाणिज्य करने आते थे।

नल्व (सं० लि०) नलत्याद्दूरदेशादि नल-बाहु० व। नलके प्रदूर देशादि।

नल्लमलय ('नल्लमले')—मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलेकी एक गिरिमाला। यह अक्षा० १४ ३१ से १६ १८´ उ० और देशा० ७८ ३१´ से ७९ २६´ पू०के मध्य कर्नूल जिलेके दक्षिण प्रान्तमें कृष्णा नदीके किनारे तक विस्तृत है। कड़ापा जिलेमें इस गिरिमालाका लङ्कामल्ल नाम रखा गया है। यह समुद्रपृष्ठसे १६०० से २००० फुट तक ऊंची है। इसकी सबसे ऊंची चोटीका नाम भैरवी-कुण्ड है जो ३१४९ फुट ऊंची है। गिरिमालाके मध्य गुण्डला ब्रह्मेश्वर प्रधान है जिसकी ऊंचाई तीन हजार फुटसे ज्यादाकी होगी। इस पर्वतके ऊपर प्राचीन ब्रह्मेश्वर मन्दिरके समीपसे गुण्डलकामय, भवनाशिनी और पालेरु ये तीन नदियां निकली हैं। हिन्दुओंके लिए यह स्थान महातीर्थ माना गया है। यहांके स्कन्दपुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

इस पर्वत पर दानेदार तथा चमकीले पत्थर और सीसेके साथ रूपे पाये जाते हैं। बाघ आदि हिंस्र जन्तु, बनसुरी तथा तरह तरहकी पक्षी नजर आते हैं।

पहाड़ पर केवल 'चेंचु' और 'यनादि' नामक असभ्य जाति वास करती है। शिकारमें ये बड़े सिद्धहस्त होते हैं। ये लोग कपड़े पहनते हैं सही, लेकिन वह नहीं पहननेके बराबर है। केवल कमरमें कपड़ेका एक टुकड़ा बांध लेते हैं, ये लोग छोटे छोटे झोंपड़ोंमें रहते हैं। दूध और फलमूलादि इनका प्रधान खाद्य है।

पहाड़ पर श्रीशैल, महानन्दी अहोबलम् नामक तीन प्रधान देवमन्दिर भी हैं।

नल्लादुर्बोधिक—एक नाटककार। ये रामचन्द्रके पौत्र और नल्लादुधीके पुत्र थे। शृङ्गारसर्वस्व नामक भाण जातीय नाटक इन्हींका बनाया हुआ है।

नल्लादीक्षित—एक नाटककार। इनके बनाये हुए "चित्त हस्तिकल्याण नाटक" और "जीवन्मुक्तिकल्याणनाटक" नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं।

नल्लापण्डित—एक दार्शनिक पण्डित। इन्होंने "अद्वैत रसमञ्जरी" नामक वैदान्तिक ग्रन्थ रचा है।

नली (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जिसे पतवार भी कहते हैं।

नल्व (सं० पु०) नल बाहुलकात् व। चतुःशत हस्त परिमाण, प्राचीन कालकी एक प्रकारको माप जो चार सौ हाथकी होती है।

नल्वकी (सं० स्त्री०) नल, नरकट।

नल्वन (सं० पु०) क्षेत्रपरिमाण प्राचीन कालका एक प्रकारका माप जो किसीके मतसे सोलह बिस्वा और किसीके मतसे बत्तीस बिस्वा होता है।

नल्वचर्मगा (सं० स्त्री०) नल्वपरिमित चर्म गच्छतीति गम्-ड। काकाली, काकमाता।

नवंबर (अ० पु०) अंगरेजी ग्यारहवां महीना। जो ३० दिनोंका तथा अक्तूबरके बाद और दिसम्बरसे पहले होता है।

नव (सं० पु०) नु स्तुतौ भावे अप्। १ स्तव, स्तोत्र। २ रक्तपुनर्णवा, लाल रंगकी गदहपूरना। ३ हरिवंशके अनुसार उशीनर राजाके पुत्रका नाम। (त्रि०) नूयते स्तूयते इति नु-अप्। ४ नूतन, नया, नवीन। नव, नूत, नूतन, नव्य, इदा, इदानीं ये छः नव शब्दके वैदिक पर्याय हैं।

क्रियाविधिमें नवीन द्रव्य प्रशस्त है, केवल घी, गुड, मधु, धान और कृष्ण विडङ्ग ये सब द्रव्य नयेमें अच्छे नहीं होते।

नव (हिं० वि०) नौ, आठ और एक, दशसे एक कम। 'नव' शब्दसे कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि पदार्थोंका भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनतीमें नौ होते हैं।

नवक (सं० क्लो०) नवाना अवयवः संख्यायाः कन्। १ नवसंख्या, एक ही तरहकी नौ चीजोंका समूह। (त्रि०) नव परिमाणमस्य कन्। २ नव संख्यान्वित, जिसमें नौ संख्या हो।

इस नवकका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—नवक अर्थात् नौ पदार्थ गृहस्थोंके मङ्गलके कारण बतलाये गये हैं। यथा, अभ्यागत व्यक्तिकी शक्तिके अनुसार आसनदान, पाद शौच, भोजन, स्नान, शय्या, तृण, जल, अभ्यङ्ग और दीप। इन नौ पदार्थं द्वारा अभ्यागतकी अभ्यर्थना करनेसे गृहस्थ लोग सिद्धिलाभ करते हैं। पैशुन्य, परदारसेवा, द्रोह, क्रोध, मिथ्याकथन, अप्रियवाक्य, द्वेष, दम्भ और माया ये नौ गर्हित कार्य हैं। ये उन्नतिकामी व्यक्तिके लिये परित्यज्य हैं। प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वेदाध्ययन, देवतापूजा, वैश्व देव, पितृतर्पण और अतिथिसेवा ये नौ कार्य प्रत्येक गृहस्थके मुख्य कर्त्तव्य हैं। जन्मनक्षत्र, मैथुन, मन्त्र, गृहच्छिद्र, वञ्चना, आयु, धन, अपमान और स्त्री इन नौ विषयोंको हमेशा छिपाये रखना चाहिये। निर्ज्ञातपाप, अकुत्सितवृत्ति, प्रायोग्य, ऋणपरिशोध, वंशमर्यादा, क्रय, विक्रय, कन्यादान और गुणोत्कर्ष ये नौ विषय प्रकाश करने योग्य हैं। सत्पात्र, मित्र, विनीत, दीन, अनाथ, उपकारी, माता, पिता और गुरु इन नवोंको दान देना चाहिये। वाचाल, सुनिपाठक, तस्कर, कुवैद्य, वञ्चक, धूर्त्त, शठ, मल्ल और तोषामोदकार। इन नवोंको दान देना निष्फल है। आपद्कालमें अर्थात् भारी विपद् पडने पर भी वंशको जीगाए रखना, दारा, शरणागतव्यक्ति, न्यास अर्थात् गच्छित द्रव्य, बन्धक द्रव्य, कुलवृत्ति, निक्षेप अर्थात् बहुत समयके लिए निहित पर द्रव्य, स्त्रीधन और पुत्र इन नवोंका त्याग नहीं कर सकते। त्याग करने पर प्रायश्चित्त करना होता है। उक्त नौ विषयका नाम नवक है। इस नवकका अनुष्ठान करनेसे शुभ होता है। इसके सिवा एक और प्रकारका नवक बतलाया गया है, जो सभी लोगोंका मङ्गलप्रद है। सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम, अस्तेय और इन्द्रिय ये नौ स्वर्गके सोपानस्वरूप हैं। यह नवक गृहस्थोंके स्वर्गमार्गका प्रदीप, साधुओंका अभिमत और पुण्यजनक है। इसका अनुष्ठान करनेसे अनेक प्रकारके मङ्गल होते हैं।

(काशीख० ४० अ०

शक्तितत्त्वका नवक, पीठशक्तिका नवक, शृङ्गारादि नवरस आदि सभोंका नाम नवक है। इनमेंसे शक्तितत्त्वका नवक इस प्रकार है—सच्चिदानन्द परमेश्वरसे शक्ति उत्पन्न हुई थी। फिर शक्तिसे नाद और नादसे विन्दुकी उत्पत्ति हुई। इन तीनोंको गुणा करनेसे जो नौ संख्या बनती है, उसीका नाम नवक है।

अ, क, च, ट, त, प, य, श और ह इन नौ अक्षरोंको वर्ग-नवक कहते हैं। नवक इस शब्दका तात्पर्य यह है कि जिन नौ पदार्थोंको एकत्रित करनेसे एक शब्दके जैसा व्यवहृत होता है उन्हें नवक कहते हैं। यथा— नवग्रह, नवदुर्गा, नवधातु, नवरत्न, नवरस, नवरात्र, नवलक्षण आदि इन सब शब्दोंको नवक कहते हैं। इन सब शब्दोंका विवरण तत्तद् शब्दमें देखो।

नवकार (सं० पु०) जैनियोंका एक मन्त्र।

नवकारिका (सं० स्त्री०) नवं करोति कृ-ण्वुल्-टाप्, टापि अत इत्वं। १ नवोढ़ा स्त्री, नव विवाहिता स्त्री।

नवकार्षिगूगल (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका चूर्ण इसमें गूगल, त्रिफला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं। इसका व्यवहार शोथ, गुल्म, भगन्दर और वद्धाधिर आदिको दूर करनेमें होता है।

पास चले गये। ११७८ हिजरीमें इन लोगोंको दिल्लीके बादशाहकी कृपासे रायकी उपाधि और हजारी मनसबदारीका पद मिल गया। इनके कनिष्ठ भ्राताका नाम ही नवकृष्णदेव बहादुर था।

नवकृष्णदेवका जन्म १७३२ ई०के लगभग हुआ था। आपने अपनी माताके यत्नसे उर्दू और फारसी भाषामें व्युत्पन्न होते समय अरबी और अङ्गरेजी भाषा भी सीख ली थी। रामसुन्दरके दीवान होनेसे पहले तंगीके कारण प्रत्येक भाईको रोजगारकी कुछ न कुछ तजवीज करनी पड़ी थी। नवकृष्ण उस समय कलकत्ते-के धनकुवेर नकू धरसे परिचित हुए। उन्होंने प्रधान प्रधान अंगरेजोंसे इनका परिचय करा दिया। इसी परिचयके फलसे आप वारेन् हेष्टिंग्स्के फारसीके शिक्षक बन गये थे। हेष्टिंग्स् उस समय कलकत्ते इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके अधीन एक क्लर्क थे। तीन वर्ष बाद जब हेष्टिंग्स काशिमबाजारकी कोठीमें भेजे गये थे, उस समय नवकृष्ण उनके साथ थे। नवकृष्णने काशिमबाजारमें रह कर फारसी भाषामें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की थी।

काशिमबाजारमें रहते समय हेष्टिंग्स् विशेष कथनोपकथनादिके लिए नवकृष्णको बीच बीचमें कलकत्ते भेजा करते थे। नवाब सिराज उद्दौलाको पदच्युत करनेके लिए पहले पहल जो षड़यन्त्र हुआ, उसकी बहुत-सी बातें नवकृष्णको मालूम थीं।

इस षड़यन्त्रमें पूर्णियाके शासनकर्त्ता सैयद महम्मदके पुत्र शौकतजङ्गको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका सूबेदार बनानेकी कल्पना हुई थी। नवाब सिराजउद्दौलाको इस षड़यन्त्रका हाल मालूम होते ही उन्होंने शौकतजंगके विरुद्ध सेना भेज दी। इसी समय कलकत्तेके अंगरेज गवर्नर ड्रेकसाहबने राजवल्लभके पुत्र कृष्णदासको मुर्शिदाबाद भेजने और दुर्गसंस्कार बन्द करनेके लिए पत्र लिखा। नवाब मारे क्रोधके आगबबूला हो उठे और पूर्णियामें स्वयं जा कर कलकत्ते पर धावा मारनेके लिये दौड़े। उन्होंने मार्गमें काशिमबाजारकी अंगरेजी कोठी लूट ली और वारेन हेष्टिंग्स् आदि कोठीवालों और रेसिडेण्टोंको कैद कर लिया। नवकृष्ण पहले ही से इस विपत्पातका आभास पा चुके थे। वे हेष्टिंग्सको होशियार रहनेके लिए तथा कान्तमोदीसे उनका परिचय करा कर संवाद देनेके लिए कलकत्ते चले आये, जिससे कलकत्तेके अंगरेज लोग पहलेसे ही सतर्क हो गये।

नवकृष्णके कलकत्ते आनेके बाद नवाबने कलकत्ते पर आक्रमण करनेके लिये शहरके उत्तरमें (चीतपुरमें) पड़ाव डाला। इसके कुछ दिन पहले मुर्शिदाबादमें और एक षड़यन्त्र हुआ था। राजा राजवल्लभने अंगरेजोंके पास गुप्तरूपसे एक पत्र भेजा था। नवाबके हालसीशागानमें पहुंचनेसे पहले ही राजवल्लभका दूत पत्र ले कर गवर्नर ड्रेकके पास पहुंचा और बोला, "किसी विश्वस्त हिन्दूसे यह पत्र पढ़वाया जाना चाहिये और उत्तर भी उन्हींको मारफत लिखा जाना चाहिये।" उस समय मुन्शी ताजउद्दीन खाँ नामक एक व्यक्ति इष्ट-इण्डिया कम्पनीका (कलकत्तेमें) मुन्शी था। पहले तो वह मुसलमान था और दूसरे राजा राजवल्लभका निषेध; इसलिए गवर्नर साहब किसी हिन्दूकी तलाशमें रहे। उन्हें नवकृष्णकी बात याद आ गई, क्योंकि वारेन-हेष्टिंग्सके शिक्षक होनेसे तथा नकूधरके परिचय करा देनेसे वे आपको जानते थे। ड्रेक साहबका आदमी नवकृष्णको खोजमें निकला। संयोगवश ये उस दिन किसी कामसे बड़ेबाजार गये थे, वहीं रास्तेमें उनसे ड्रेकके आदमीसे मुलाकात हो गई। उसी समय नवकृष्ण लाट साहबके साथ मुलाकात करने चल दिये। ड्रेकने गुप्तरीतिसे उनके द्वारा पत्र पढ़वाया और उन्हींसे उसका उत्तर लिखवाया। यही सिराजउद्दौलाके सर्वनाशका व्यवस्थापत्र था। उसके बाद ड्रेकने देखा कि इस षड़यन्त्रके सम्बन्धमें अभी लिखा-पढ़ीका काम बहुत कराना है और मुनशी ताजउद्दीन और नवकृष्ण दोनोंके रहने पर गड़बड़ी होनेकी सम्भावना है; इसलिये ताजउद्दीनको बरखास्त करके उनकी जगह नवकृष्णको रक्खा गया। इनका वेतन ६० रु० मासिक रक्खा गया। इस पदके पानेके बाद आप "नबू मुनशी" कहलाने लगे।

मुनशीका काम करते रहनेसे नवकृष्ण ड्रेक और हलवेलके विशेष प्रीति और विश्वासभाजन हो गये। यहां-

मानमें जिसे परराष्ट्रसचिव (Foreign Secretary) कहते हैं, क्रमशः आपके कामसे उसी पदके योग्य कार्य सौंपे जाने लगे। सिराजउद्दौला जबकी बार कलकत्ता लूट कर और कलकत्तेका अलीनगर नाम रख कर लौट गए। मन्द्राजसे कर्नल क्लाइव और एडमिरल वाटसन कलकत्तेके उद्धारके लिए भेजे गए। उन लोगोंने आ कर कलकत्ता पर पुनरधिकार किया और ड्रेक, हलवेल और सुनयी नवकृष्णसे सब हाल सुन कर वे भी मुर्शिदाबादके षड़यन्त्रमें शामिल हो गए। क्लाइव नवकृष्णको कार्यदक्षताके उन पर विशेषरूपसे विश्वास करते थे। १७५७ ई०में क्लाइवने नवाबके आदमियोंकी परवाह न कर चन्दननगर पर आक्रमण किया। इस पर नवाबने फिर कलकत्ते पर आक्रमण करनेके अभिप्रायसे फरवरी महीनेमें पूर्वोक्त 'हालसी बागान'में आ कर छावनी डाली। क्लाइवने नवाब सरकारके बलाबलकी जांच करनेके लिए नवकृष्णको नाना उपढौकनके साथ नवाबके पास दूत बना कर भेजा। नवकृष्णने सदाशयभावसे दूतरूपमें जा कर नवाबका क्रोध शान्त कर दिया और सन्धिके लिए प्रार्थना की, किन्तु भीतर ही भीतर नवाबके सैन्यबलका विस्तृत विवरण मालूम कर लिया और आ कर सब क्लाइवसे कह दिया। दूसरे दिन सबेरे बहुत कुहरा हुआ। क्लाइवने मौका देख उसी समय आगे बढ़ कर असतर्क अवस्थामें नवाब पर आक्रमण किया।

इसके पहले नवकृष्णने नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रकी सहायसे १०० नौका जुटा कर, उन लोगोंको हालसीबागान, चन्दनबागान और बजबजकी तरफ जंगलोंमें छिपा रक्खा। नवाबके आदमियोंको इसकी खबर भी मालूम न थी। अंगरेजोंकी फौज कलकत्ता आक्रमण कर ज्यों ही आगे बढ़ने लगी, त्यों ही वे लोग उनके अनुसरणमें नाना कामोंमें नियुक्त पड़े। इससे नवाबकी सेना अंगरेजोंको बलयुक्त समझ साहसहीन हो गई, जिससे क्लाइवने अनायास ही कलकत्ता उद्धार कर लिया। उस समय नवकृष्ण यदि उनके सहायक न होते, तो ब्रिटिश जातिकी भाग्यलक्ष्मी चमिपाके लिए बङ्गभूमि छोड़ देती, इसमें सन्देह नहीं। इस बात पर क्लाइव नवकृष्णसे इतने खुश हुए थे कि वे उनसे प्रायः कहा करते थे, 'कोई मौका हाथ लगते ही मैं आपको बड़ा आदमी बना दूंगा।'

रेवरेण्ड लङ्ग साहबने लिखा है, कि १७५६ ई०में जब सिराजने कलकत्ता आक्रमण किया था, उस समय नवकृष्ण अपनी जिन्दगीकी परवाह न कर फलताके जहाजवासी अंगरेजोंको लुकाईसे दिसम्बर तक छः महीने बराबर रसद पहुंचाते रहे थे *। इस समय नवकृष्ण यदि दुर्दान्त नवाबके आदेशके विरुद्ध अंगरेजोंकी इस तरह रक्षा न करते, तो वे अपने प्राणको किस तरह बचा पाते, यह सहज ही समझा जा सकता है।

पलाशीके युद्धमें पहले सिराजउद्दौलाके विरुद्ध जो षड़यन्त्र हुआ था, उसमें नवकृष्ण अंगरेजोंके प्रधान सहायक थे। जगत्सेठ आदिके साथ सब बन्दोबस्त करनेके लिए क्लाइवने इन्हें छद्मवेशमें मुर्शिदाबाद भेजा था। इस षड़यन्त्रकी सम्पूर्ण लिखा-पढ़ी नवकृष्णसे ही करायी गई थी। मीरजाफरके साथ बन्दोबस्त, अमीचन्दके नाम का सफेद और लाल 'जाली पत्र' सब नवकृष्णसे लिखाये गए थे।

नवकृष्णके मुर्शिदाबादसे लौटने पर, उनके मुँहसे भावी शुभ संवाद सुननेके बाद क्लाइव युद्धयात्राके लिए साहसी हुए थे। जब पलाशीके रणक्षेत्रमें क्लाइव उपस्थित हुए थे, तब नवकृष्ण भी उनके साथ थे। उनके परामर्शसे अनेक जमींदारोंने अंगरेजोंकी मदद की थी। कहा जाता है, कि उस समय वर्द्धमानके राजाने कुछ अश्वारोही और नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रने कई तोपें भेजी थीं। अंगरेजोंने पहले निश्चय कर रक्खा था, कि जैसा बन्दोबस्त कर दिया है, उसमें अब युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी; किन्तु समरक्षेत्रमें जब भीषण गोलाओंकी वर्षा होने लगी तब दंग रह जाना पड़ा। अंगरेजोंका पद पद पर पदस्खलन और पतन होने लगा। विषम परिस्थितिके सामने अग्रसर हो ऐसा किसीमें साहस न था। क्लाइव आदिने ऐसे विषम सङ्कटके समय नवकृष्णको ही मीरजाफरके पास भेजनेका निश्चय किया। सुचतुर नवकृष्ण मालिकके कामके लिए जिन्दगीकी परवाह न कर मीरजाफरके शिविरमें उप-

* Rev Long's Selections from the Unpublished Records, No. 235 p. 93 foot-note.

स्थित हुए। भविष्यमें सिंहासन पानेकी आशाने मीर-जाफरको मुग्ध कर दिया, वे तो सेना-सहित युद्धक्षेत्र-से चले गये। नवकृष्णने यह संवाद क्लाइवको सुनाया; क्लाइव बड़े खुश हुए। इस तरह पलाशोके युद्धमें अङ्गरेजोंको जय घोषित हुई।

पलाशीके युद्धके बाद क्लाइवने प्रकाश्य दरबारमें मीरजाफरको मुर्शिदाबादके मसनद पर बिठाया। मुन्शी नवकृष्ण भी इस दरबारमें उपस्थित थे। दरबार उठ जाने पर जब वाल्स, वाट्स, लुसिंटन, क्लाइव और अङ्गरेजोंके दीवान रामचन्द्र राय (आंदुलको राज-गोष्ठीके पूर्व-पुरुष) नवावका धनागार देखने गए थे, उस समय भी नवकृष्ण उनके साथ थे। इस धनगारमें-से करीब २ करोड़ रुपये क्लाइव आदिने आपसमें बांट लिए थे। तत्कालीन इतिहास वेत्ताओंका कहना है, कि इस प्रकाश्य धनागारके सिवा सिराज-उद्दौलाके अन्तःपुरमें भी एक गुप्त-धनागार था। उसका हाल अङ्गरेजोंको मालूम नहीं था। मीरजाफर, अमीरवेग खां, अङ्गरेजोंके दीवान रामचन्द्र राय और मुनशी नवकृष्णको उस धनागारमें करीब ८ करोड़ रुपयेका सोना, चांदी और रत्न आदि प्राप्त हुआ था।

जून मासमें पलाशीका युद्ध हुआ, सुतरां शारदीय पूजाके दिन करीब आ जाने पर भी नवकृष्णने विराट् व्यवस्था करके बृहत् चण्डीमण्डपकी नींव डाल दी और बहुतसे आदमी लगा शीघ्रतासे बनवा कर उसी वर्ष नये मण्डपमें महासमारोहके साथ महामायाकी अर्चना की। शोभाबाजारके राजवंशको पुरातन अट्टालिकामें अब भी उक्त मण्डप विद्यमान है। लखनऊ, मुर्शिदाबाद आदि स्थानोंसे इस उत्सवमें नर्तकी और नौबत वगैरह बुलाई गई थी। कृष्णानवमीसे पक्षकाल तक यह उत्सव कायम रहा था। अब भी इस राजवंशमें उक्त नियम जारी है। नवकृष्णको प्रथम पूजामें कर्नल क्लाइव आदि सभी अंग्रेज उपस्थित थे। *

पलाशीके युद्धके बाद मीरजाफर नवाब तो हो गये, पर अंगरेजोंको उन्होंने जितने रुपये देनेका वचन दिया था उतने वे दे न सके, इसलिए प्रादेशिक शासनकर्त्ताओं-के साथ उनका विवाद हो गया। इस समय महाराज नन्दकुमार हुगली, हिजली आदि स्थानोंके दीवान थे। इसके बाद १७६० ई०में क्लाइव विलायत चले गये। वन्सीटार्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए। मीरजाफरने सन्धिकी शर्तोंमें अंगरेजोंको जो रुपये देने कबूल किये थे, वे न दे सकनेके कारण, उन्हें नदिया और वर्द्धमानका राजस्व वसूल कर लेनेका हक दे दिया। महाराज नन्दकुमार तहसीलदार (क्लाइवके समयमें) हुए। परन्तु वन्सीटार्टके समयमें इससे भी हिसाब चुकता न होने पर, मीरजाफरके दमाद मीरकासिम ससुरके दूत बन कर अंगरेजोंका हिसाब चुकानेके लिए कलकत्ते आये। अंगरेजोंने देखा कि मीरकासिमको योग्यता मीरजाफरसे कहीं अधिक है। बस फिर क्या था, झट उनके साथ नवकृष्णकी मध्यस्थतामें बातचीत और सन्धि स्थिर कर अंगरेजोंने मीरजाफरको पदच्युत कर दिया। मीरकासिमने १७६० ई०में ही नवाब हो कर अंगरेजों-को २० लाख रुपये और वर्द्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम ये तीन स्थान दिये। परन्तु इसके बाद १७६८ ई०में मीरकासिमसे अंगरेजोंका युद्ध छिड़ गया और उसमें अंगरेजोंकी जीत हुई। महाराज नन्दकुमार दीवान हुए। उन्होंने मीरजाफरके कर्जके २० लाख रुपयोंमेंसे एक मुश्त २ लाख रुपये भेज दिये। जिस चिट्ठीके साथ ये भेजे गये थे, उस चिट्ठीमें नन्दकुमारने लिखा था, 'नवकृष्णके पास इसकी एक फिहरिस्त भेजी जाती है।'

१७६४ ई०में क्लाइव पुनः भारतके गवर्नर हुए। इस समय नवाब-सरकारमें भी नवकृष्णको विशेष प्रतिष्ठा थी। आप जैसे अंगरेजोंके पक्षको खींच करते थे; उसी प्रकार नवाब सरकारको भी। स्वयं क्लाइव इस बातको स्वीकार कर गये हैं। इस समय गोपनीय पत्रादि

* Persian Dept—Letters received 1764, L. No 811, dated 26 Dec. 1764. (Nand Coomar to Vansitart.)

* इस राजभवनमें उक्त अवसर होनेवाले नाचको अंगरेज लोग अपने लिए माङ्गलिक समझते हैं, इसलिए अब भी बहुतसे अंगरेज देखनेके लिए उत्सुकता दिखलाते हैं।

भी नवकृष्ण ही मुर्शिदाबाद से आया करते थे। §

जिस समय मीरकासिमके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ था उस समय मेजर एडम्स् सेनापति बन कर गये थे। नवकृष्ण उनके मैनियन (राजनैतिक मुनशी) हो कर साथ गये थे। युद्धमें आहत और पीड़ित होने पर मेजर एडाम्स्‌को ले कर आप जिस समय कलकत्ते आ रहे थे, उस समय नबाबके एकदल लुटेरों ने आप पर धावा किया। आपने जिन्दगीकी परवाह न कर कौशलसे मेजर साहबको बचा लिया। इस समय नन्दकुमार विहार-प्रवासी दिल्लीके बादशाहके साथ षड़यन्त्र कर अंगरेज-दमनकी चेष्टा कर रहे थे। जनरल कार्नक को मालूम पड़ते ही, उन्हों ने नन्दकुमारको बन्दी कर कलकत्ता भेजना चाहा। इस अवसर पर मुन्शी नवकृष्ण तथा अन्यान्य सम्भ्रान्त पुरुषोंने मध्यस्थ बन कर कार्नक को शान्त किया था। इसके बाद कन्सोरटर्ट-लिखित विश्वास पत्र पर क्लाइवने जब नन्दकुमारको सूबेदारीके पदसे हटा कर चट्टग्राममें निर्वासित करनेका संकल्प किया था, उस समय भी राजा नवकृष्ण आदिने मध्यस्थ हो कर अनुरोध किया था जिससे क्लाइव ऐसा करनेसे बाज आये। नन्दकुमार देखो।

इस समय दिल्लीके बादशाह अंगरेजोंकी सहायतासे दिल्लीकी बादशाहतको सुदृढ़ बनानेकी कोशिशमें थे। १७६५ ई०के मई महीनेमें क्लाइवने मुर्शिदाबाद जा कर नये नवाब नजमउद्दौलाके साथ मुलाकात की। वहांकी व्यवस्था कर फिर वे इलाहाबाद गये। नवकृष्ण उनके साथ थे। अयोध्याके नवाब और मुगल-बादशाहके प्रधान मन्त्री सुजाउद्दौलाके साथ बादशाह शाहआलमका विवाद चल रहा था। सुजाउद्दौलाने बादशाहका इलाहाबाद और कड़ा प्रदेश अधिकार कर लिया था। अंगरेजोंने मध्यस्थ बन कर यह विवाद मिटा दिया। इसी सूत्रसे नवाब सुजाउद्दौलाने उक्त दोनों प्रदेश अंगरेजोंको दे दिया। अंगरेजोंने उक्त दोनों प्रदेश बादशाहको दे दिये और बदलेमें उनसे बिहार, उड़ीसा और बङ्गालकी दीवानी ले ली। इन कामोंमें जितनी भी लिखा-पढ़ी हुई थी तथा मसविदा किया था, उन सबमें नवकृष्णका हाथ था और तो क्या, क्लाइवको कड़ा और इलाहाबाद दे कर इसके बदलेमें बिहार, उड़ीसा और बङ्गालकी दीवानी लेनेका परामर्श भी इन्होंने दिया था।

§ Persian Dept.—Letters sent in 1764-65 No. 218 dated 22 Dec. 1764 & No. 7 of 65 (O. R. C. Hs-Nawab.)

ये सब महत्कार्य मुन्शी नवकृष्णके द्वारा सुचारुरूपसे सम्पादित होते देख लार्ड क्लाइव उनसे विशेष सन्तुष्ट हुए और बादशाहसे उन्हें "राजाबहादुर"की उपाधि दिला दी। बादशाह भी आपसे खुश थे, इसलिए उन्हों ने आपको पांच हजारी मनसबदारीका पद दे कर अपने दरबारका उमराव बना लिया। इस उपलक्षमें नवकृष्णको ४ हजार घुड़सवार, झालरदार पालकी, नगाड़ा, तोग नामक ध्वजा, आसा-सोटा आदि प्राप्त हुए थे। सुजाउद्दौलाने भी इन्हें अनेक खिलअत दी थी।

इसके बाद लार्ड क्लाइव राजा नवकृष्ण बहादुरके साथ काशी लौट आये और वहां उन्होंने राजा बलवन्तसिंहके साथ उनकी जमींदारी और कम्पनीके अधीनस्थ सूबा बिहारके सीमान्त-विषयक बन्दोबस्त करनेकी व्यवस्था की। यहां भी सब कार्य राजा नवकृष्णने ही किये थे। इस समय विश्वेश्वरके नाट-मन्दिरमें राजा नवकृष्णने अपने नामसे "नवकृष्णेश्वर" नामक एक शिवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। इसके बाद पटना आ कर वहांके शासनकर्त्ता राजा सिताबरायके साथ बन्दोबस्त हुआ। यहां भी राजा नवकृष्णने ही सब काम किया था।

तदनन्तर कलकत्ते आ कर क्लाइवने महम्मद रेजा खां को मुसलमान समाजका नेतृत्व करते देख उन्हें ही नायब दीवान बना दिया। ये उस समय नायब सूबेदार मात्र थे। परन्तु कम्पनीको दीवानी मिल जानेसे वास्तवमें नायब सूबेदारीका पद (नाममात्रकी दीवानी) कम्पनीका ही रहा, सुतरां क्लाइवने नायब सूबेदारीका पद उठा कर नायब दीवानीके पदकी सृष्टि कर उस पद पर महम्मद रेजा खांको नियुक्त किया।

महाराज नन्दकुमार उस समय हिन्दू समाजके नेता थे। क्लाइवने कलकत्ते आ कर राजा नवकृष्णको कम्पनीकी ओरसे उनके कामके लिए पुरस्कार देनेका विचार किया। इसी सूत्रसे उन्होंने फिर सम्राट् शाहआलमको

लिख कर १७६६ ई०में राजा नवकृष्णके लिए "महाराजा बहादुर" उपाधिका फरमान मंगाया । इस समय सम्राट्ने भी उन्हें छः हजारी मनसबदारीका पद दिया और चार हजार सवार रखनेकी आज्ञा दी । जिस दिन यह खिलअत आई थी उस दिन क्लाइवने स्वयं सब चीजें देखीं थी, नवकृष्ण भी उनके साथ मौजूद थे । इसी समय आर्काटके नवाबके यहांसे एक पत्र आया । क्लाइवने उसे उसी समय नवकृष्णसे पढ़वाया । नवकृष्णने चिट्ठी खोल कर देखी, तो उसमें ऐसी भी कुछ बातोंका उल्लेख था, जिनसे नवकृष्णके स्वार्थमें क्षति होनेकी सम्भावना थी। यह देख कर उन्होंने पत्रको दूसरे रूपमें व्याख्या करके सुना दी।*

आर्काटके नवाबके पत्रमें राजा नवकृष्णका पूर्व-परिचय पा कर लार्ड क्लाइवको महा आश्चर्य हुआ, उन्होंने उसी समय उनके कृतकर्मको प्रशंसा कर एक स्वर्णपदक बनवाया । इसके बाद एक दिन दरबार लगा कर क्लाइवने उन्हें बादशाहकी दी हुई "महाराज बहादुर"की उपाधि, छ हजारी मनसबदारीका फरमान और दश तरहकी खिलअत (घोड़ा, जोड़ा, चामर, गिरपेच, छतरी, पंखा, हाथी, झालरदार पालकी, घड़ी, और कुण्डल, मोतीमाला आदि रत्नालङ्कार) प्रदान की । उनकी हारक्षाके लिए सिपाही नियुक्त कर दिए और स्वयं हाथ पकड़ कर उन्हें हाथीके हौदे पर बिठा दिया । महाराज नवकृष्ण बड़े ठाटबाटसे बादशाहकी खिलअत और कम्पनीका प्रशंसासूचक स्वर्णपदक ग्रहण कर नगरमें घूमते हुए घर चले । रास्तेमें भीड़ लग गई । महाराजने दरिद्रोंमें रुपये बरसाते हुए घर पहुंचे । उसके बाद क्लाइवने उन पर कम्पनीके कई एक प्रधान प्रधान कार्य भार सौंपे । मुन्शीदफ्तर (फारसीदफ़्र) शुरूसे ही नवकृष्णके हाथमें था, उसके बाद क्रमशः आरजबेगी दफ्तर (आवेदन-पत्रादि ग्रहण विभाग), मालखाना (धनागार), चौबीस परगनेकी माल-अदालत (राजस्व-सम्बन्धी अदालत), चौबीस परगनेका तहसीलदफ़्र (कलेकरी कचहरी) आदि विभाग भी उन्हींके हाथमें आ गए । इन सबका कार्य आप अपनी पावनाके बगीचेवाले मकानमें बैठ कर ही करते थे ।

इसी समय महाराज नवकृष्णको माताका देहान्त हो गया । कहा जाता है, कि मातृ-श्राद्धमें आपने नो लाख रुपये खर्च किए थे । इस श्राद्धमें आहूत और अनाहूतके आहारकी इतनी चीजोंका आयोजन हुआ था कि सुना जाता है, जिस जगह भण्डार हुआ था (फिलहाल उसे फूलबागान कहते हैं), वहां घी, तेल, दही और दूधके लिए हौज़ बनवाने पड़े थे । नवद्वीपाधिपति कृष्णचन्द्रने, किसी कारण वश स्वयं उपस्थित न हो सकनेके कारण, अपने ज्येष्ठ पुत्र शिवचन्द्रको भेजा था । इस श्राद्धके उपलक्षमें जो सभा हुई थी, उसकी शोभा बहुत मनोहर थी, उस जमानेमें ऐसी सभा दूसरी जगह न हुई थी । शिवचन्द्रने इस सभाकी खूब प्रशंसा की थी । इस शोभासम्पन्न सभासे ही नवकृष्णका वासपल्लीका नाम सभाबाजार या शोभाबाजार पड़ा है ।

क्लाइवके चले जाने पर वेरलेष्ट कलकत्तेके गवर्नर हुए । उनके समयमें भी नवकृष्णको उक्त पदमर्यादायें कायम रहीं । वेरलेष्ट आपको बड़ी अच्छी निगाहसे देखते थे; उन्होंने अपने ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख किया है । क्लाइवने अन्तिम बार आ कर इन्हें राजनीतिक बेनियन (मुत्सद्दो) बनाया था । वेरलेष्टके समय नवाब मनोरउद्दौलाने जब अंगरेजोंसे अनुग्रहकी प्रार्थना की थी, उस समय उन्होंने महाराज नवकृष्णका आश्रय लिया था ।*

वेरलेष्ट भी क्लाइवकी तरह नवकृष्ण पर अत्यन्त विश्वास करते थे और उनसे प्रेम रखते थे । इस समय नवकृष्ण यद्यपि अंगरेजोंके प्रसादसे प्रभूत क्षमताशाली और विपुल अर्थशाली हो गए थे, किन्तु हिन्दूसमाजमें उनकी उतनी प्रतिपत्ति न थी। उस समय मुसलमान समाजमें महम्मद रेजा खां और हिन्दूसमाजमें महाराज नन्दकुमार शीर्षस्वरूप थे । हिन्दुओंकी जातिमाला-कचहरी नन्दकुमारके हाथमें थी । आपामर साधारण लोग

* बंगला "नबप्रबन्ध" ३य भाग (बं० सन् १२७६) ८७-८८ पृ०

* Persian Dept.—Letters Received in 1767 68. Letter No. 32 (From Nalob Monier-uddowla to Gov. Verelest.)

सामाजिक विषयोंके लिए नन्दकुमारको जो गौरव होते थे, इसलिए देशकी आभ्यन्तरीण प्रभुता उस समय नन्दकुमारको ही प्राप्त थी। इतने पर भी नवकृष्णको उस समय भूसम्पत्ति विशेष न थी, नपापाड़ा नामकी छोटो सी एक जमींदारी मात्र थी, सुतरां अतुल अर्थ होने पर भी देशीय लोगोंमें उनका विशेष सम्मान न था। राजकीय क्षमता यथेष्ट थी प्रभुत्वलोलुप अंगरेज-कम्पनीको आप इच्छानुसार उंगली पर नचा सकते थे, नवाब दरबारमें भी आप इच्छानुसार कुछ घटना घटा सकते थे। परन्तु स्वदेशीय समाजकी आंखोंमें उस समय आपकी कुछ भी प्रतिपत्ति न थी। मातृ श्राद्धके आयोजनमें उन्होंने इस क्षमताका अभाव खूब ही अनुभव किया था। यद्यपि उनको राज्यके समस्त राजा, महाराज और जमींदारोंको अपने मकानपर बुलानेमें सफलता प्राप्त हुई थी तथापि उन्हों ने अपनेको आशानुरूप सम्मानसे वञ्चित समझा और मन ही मन, उससे वे दुःखित भी हुए। वह समय कौलीन्य मर्यादाके पूर्ण आदरका समय था। उस समय नवकृष्ण जैसे एक नूतन अभ्युत्थित मौलिक कायस्थके मातृ श्राद्ध जैसे सामाजिक व्यापारमें इस तरहके विपुल आयोजनके लिए उन्हें कितना विनय और कितना खोशामद करनी पड़ी थी इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं जो उस समयकी बातोंसे वाकिफ हैं। कुछ भी हो, मातृ श्राद्धके बादसे आप सामाजिक प्रभुता प्राप्त करनेमें सचेष्ट हुए। इस चेष्टाके सूत्रपातमें ही आपकी दृष्टि महाराज नन्दकुमार पर पड़ी। आपने देखा कि ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल तक सब उन्हींके हाथमें हैं। इसके सिवा नन्दकुमारकी राजनैतिक क्षमता भी उनसे कम न थी। नवकृष्णने निश्चय किया कि नन्दकुमारको किसी तरह नीचा न दिखाए उनका उद्देश्य सिद्ध होना कठिन है सुतरां वे उस चेष्टामें परोक्षरूपसे नियुक्त हुए। उदीयमान अंगरेज प्रभुत्व उनकी मुट्ठीमें था, फिर उन्हें चिन्ता किस बातकी?

नन्दकुमारका उस समय भाग्यचक्र भी फिर रहा था। अंगरेज लोग कभी उन पर खुश और कभी नाखुश रहते थे। हेस्टिंग्सने भी क्लाइवकी तरह पहले उन पर कृपा

दृष्टि रखी थी, परन्तु पीछे मनुष्योंके कान भरने पर वे उनसे नाराज हो गये। सुयोगसे नवकृष्णने इस शुभ अवसरको हाथसे जाने न दिया। हेस्टिंग्स जिससे फिर नन्दकुमार पर अनुग्रह न कर सकें, इस बातका वे ख्याल रखने लगे। यहींसे नन्दकुमार और नवकृष्णमें परस्पर विवादका सूत्रपात हुआ।

इस समय और भी एक घटना हो गई, जिससे उक्त विवाद दृढ़ीभूत हो गया और नन्दकुमारकी समधिक हानि हुई। नवकृष्ण इस समय विशेष क्षमताशाली हो गये थे। क्षमता प्राप्त होने पर मनुष्यमें कुछ न कुछ अत्याचारप्रवृत्ति जाग उठती है, महाराज नवकृष्णके चरित्रमें भी यही कलङ्क घुस पड़ा। बहुतसे लोग उनके अत्याचारसे दुःखित हो कचहरी अदालतमें उनके नाम नालिश करने लगे। यद्यपि इन अभियोगोंके सम्बन्धमें दोनों पक्षोंके अनेक प्रवाद और प्रमाण हैं। केवल प्रवाद होने पर उनका बिना उल्लेख किये ही काम चल जाता। परन्तु जब देखते हैं कि उस समयकी अदालती कागजातोंमें उनके विरुद्ध उक्त अभियोगोंका उल्लेख है, तब यह बात केवल प्रवाद कह कर उड़ाई नहीं जा सकती। उन अपराधोंके लिये वे अंगरेजी अदालतमें बदस्तूर अभियुक्त हुए थे। उस जमानेके मेयर-कोर्टके एक जजने उन अभियोगोंके कुछ कागजात छपा भी दिये हैं। उन्हींके आधार पर नवकृष्णके दो गुरुतर अपराधोंका विवरण दिया जाता है। इसका उद्देश्य केवल उनके दोषादोषका अनुसन्धान करना नहीं है, प्रत्युत इतिहासकी पवित्रता-रक्षा और समाजचित्र मात्र है।

उस समय कलकत्तेमें एक प्रकारकी मिश्र अदालत थी, जो वर्षमें चार बार बैठती थी। उसका नाम था Court of quarter Sessions (कोर्ट आफ-क्वार्टर सेशन)। इसमें कलकत्तेके गवर्नर प्रधान विचारपति और तीन कौन्सिलके सदस्य विचारक नियुक्त होते थे। विचारमें सहायताके लिए यथेष्ट दारा जूरी नियुक्त होते थे। १७७० ई०में इसी मार्चको गोकुल कुमार नामक एक व्यक्तिने नवकृष्णके नाम उक्त अदालतमें पंच जूरीके आगे नालिश की। गोकुल कुमारने अभियोगपत्र नियमानुसार किसी जस्टिस-आफ-दी-पीसके

समच शपथ करके नहीं दिया था, इसलिए गवर्नरने उसे विचारार्थ जमींदारी अदालतमें भेज दिया। उस समय फौजदारी विचारके लिए जमींदारी कचहरी नामसे एक अदालत थी, जिसमें बोर्डके एक सदस्य विचारक होते थे। इस अदालतकी तरफसे फौजदारी नालिशका तदारुक होता था। गोकुल सुनारने आखिर इसी अदालतमें नालिश की। जिस जष्टिस-आफ-दी-पोसके यहां गोकुलने नालिश की थी, वही व्यक्ति उस समय जमींदारी अदालतके विचारक थे। २० तारीख-को जष्टिस-फ्लयरके पास दरख्वास्त पहुंची। उसका अर्थ इस प्रकार था—व॰ ता॰ १ फाल्गुनको नवकृष्णके एक हरकारेने राम सुनार और राम बनियाके साथ गोकुल सुनारके घर जा कर उसे बुलाया और जबरन् उसके घरमें घुस कर कहा, उसकी बहनको मुनशी नवकृष्णने उपभोगके लिए बुलाया है। गोकुल सुनारने उन लोगों-को यथासाध्य रोका और कम्पनीकी दुहाई देने लगा। इस पर नवकृष्णके आदमी उसको और उसकी माताको पकड़ कर गाली देते हुए नवकृष्णके पास ले गए। दूसरे दिन गोकुल सुनार और उसका छोटा भाई कृष्णसुनार दोनों ही नवकृष्णके सामने उपस्थित किए गए। नव-कृष्णने दोनोंको कलक्टरकी कचहरीमें बन्द रखनेका हुकुम दिया। गोकुल और कृष्णसुनारने जामिन देना चाहा, लेकिन नवकृष्णने मंजूर नहीं किया। दो दिन और तीन रात तक वे कचहरीमें बन्द रहे। नवकृष्णने उन्हें भोजन देने और स्वजनोंसे मिलनेका निषेध कर दिया था। १७वीं मार्चको (सं॰ ११६४ वैशाख मासमें) रातके दश बजे नवकृष्णके ५ पाइक और एक बरकन्दाज आ कर गोकुलके छोटे भाईको पकड़ कर ले गये।

मि॰ बोल्टस कहते हैं, कि गोकुलने नवकृष्ण पर नालिश की। किन्तु अंगरेजोंके उस समयके आईन अनुसार कोई विचार नहीं हुआ। गोकुल सुनारने जब देखा, कि नवकृष्णके नाम पर न तो वारेण्ट निकाली गई, न उनका जामिन लिया गया और न परवर्त्ती सेशनमें इसका कुछ विचार ही किया गया, तब उसने जष्टिस फ्लयरसे मुलाकात की। लेकिन फ्लयरने उसे आगे बढ़ने-से मना किया और साथ साथ डर भी दिखलाया। पीछे गोकुलने इस विषयमें बार बार दरख्वास्त दी, लेकिन कोई सुनवाई न हुई। इस प्रकार नवकृष्ण पर और भी कितने अभियोग लाये गये थे।

१७७२ ई॰में महाराज नवकृष्णके बान्धवबन्धु और छात्र वारेन हेष्टिंग्स् गवर्नर हुए। इनके १३ वर्ष शासनकाल-में महाराज नवकृष्णके प्रादुर्भावको परिसीमा न थी। १७७५ ई॰में अयोध्याके नवाब आसफउद्दौलाकी माता पर जो मि॰ ब्रिष्टोने अत्याचार किया था। उसका फैसला करनेके लिए हेष्टिंग्सने नवकृष्णको ही भेजा था। १७७८ ई॰के प्रारम्भमें हेष्टिंग्सने नवकृष्णके क्षुद्र महाल नपाड़ा आदि ग्रामोंके बदलेमें कलकत्तेके उत्त-रांशस्थित सूतानटीकी तालुकदारी प्रदान की।

१७८० ई॰में महाराज नवकृष्ण वर्द्धमानके 'माला-सत्ती' पद पर नियुक्त हुए। वर्द्धमानाधिपति तिलकचांद-की मृत्यु होने पर उनके नाबालिग पुत्र तेजचन्द्रके यहां ८७४७२७) रु॰ राजस्व बाकी पड़ गया। हेष्टिंग्सके अनुरोधसे महाराज नवकृष्णने उतने रुपये वर्द्धमानाधि-पतिको कर्ज दिये और वर्द्धमानकी जमींदारीका तत्त्वा-वधान अपने हाथ लिया। नाबालिग राजकुमार तेज-चन्द्र तीन वर्ष तक शोभाबाजारके राजभवनमें रहे। उस समयका राजकीय कागजात पढ़नेसे मालूम होता है, कि महाराज नवकृष्ण उक्त कार्यके लिये वर्द्धमानराजसे वार्षिक ५००००) रु॰ पाते थे। वर्द्धमानकी महारानीके साथ मनोमालिन्य हो जानेसे पदत्याग करनेको बाध्य हुए।

महाराज नवकृष्णके साथ महम्मद रेजाखांकी गाढ़ी मित्रता थी। इन्हींके यत्नसे जब महम्मद रेजा खां और सिताबरायका मुकदमा खारिज किया गया और जब नन्द-कुमारके हाथसे हेष्टिंग्सने एक एक करके सब क्षमता ग्रहण की, उस समय या उसके कुछ दिन पीछे जाति माला-कचहरीका भार भी ग्रहण कर महाराज नवकृष्ण-को दिया गया। महाराज नन्दकुमार इस पर कुछ कातर हुए थे। प्रवाद है कि उन्होंने आक्षेप करके कहा था कि हेष्टिङ्गस्‌ने अन्तमें एक कायस्थके हाथ इस कचहरीका भार दे कर अच्छा नहीं किया। जो कुछ हो इस कचहरीका भार पा कर नवकृष्णका एक प्रधान

रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नौ ग्रहोंका नाम नवग्रह है। जो कोई काम्य-कर्म करना होता है उसके पहले नवग्रहयज्ञ अवश्य करना चाहिये, नहीं तो वह काम्यकर्म फलद नहीं होता है।

सभी ग्रह रथ पर चढ़ कर आकाशमण्डलमें विचरण करते हैं। इन्हीं नौ ग्रहोंकी दशा मनुष्य भुगते है। ग्रहकी दशाका विवरण 'दशा' शब्दमें देखो। कुशण्डिका आदि होम करनेमें भी नवग्रह होम करना होता है।

प्रतिदिन नवग्रह स्तवका पाठ करना हरएकका अवश्य कर्त्तव्य है। स्तव—

"जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥
दिव्यशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं भक्त्या शम्भोर्मुकुटभूषणम्॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तञ्च लोहिताङ्गं नमाम्यहम्॥
प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सर्वगुणोपेतं नमामि शशिनः सुतम्॥
देवतानामृषीणाञ्च गुरुं कनकसन्निभम्।
वन्द्यभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसुनुं महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥
अर्द्धकायं महाघोरं चन्द्रादित्यविमर्द्दकम्।
सिंहिकायाः सुतं रौद्रं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥
पलालधूमसङ्काशं ताराग्रहविमर्द्दकम्।
रौद्रं रुद्रात्मजं क्रूरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥
व्यासेनोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ शान्तिस्तस्य न संशयः॥
ऐश्वर्यमतुलञ्चापि आरोग्यं पुष्टिवर्द्धनम्।
नरनारीप्रियत्वञ्च नित्यं तस्योपजायते॥
तक्षकोऽग्निर्यमो वायुर्ये चान्ये ग्रहपीडकाः।
ते सर्वे प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूयान्न संशयः॥"
(इति श्रीव्यासभाषितं नवग्रहस्तोत्रं समाप्तम्।)

जो रात वा दिन किसी समय इस नवग्रह-स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे अतुल ऐश्वर्य, आरोग्य और पुष्टिलाभ करते हैं तथा उन्हें किसी दूसरे ग्रहका भय नहीं रहता।

ग्रहगण यदि जन्मकालीन राशिचक्रके गोचरमें शुभ वा अशुभ हों, तो मनुष्योंका जन्मफल भी शुभ वा अशुभ होता है। इन सब ग्रहोंकी शान्ति करनेसे अशुभ दूर होता है।

ग्रहों के उद्देशसे यज्ञ करनेमें प्रत्येक ग्रहका विभिन्न मन्त्रसे होम करना होता है। यह मन्त्र प्रत्येक वेदानुसारसे विभिन्न है।

ग्रहोंकी गति ८ प्रकारकी है, यथा—वक्र, अतिवक्र, कुटिल, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्र, शीघ्रतर। ग्रहगण इन्हीं ८ प्रकारकी गतियोंसे ख-मण्डलमें विचरण करते हैं।

गतिका विशेष विवरण खगोल शब्दमें देखो।

"विप्रौ शुक्र-गुरू क्षत्री कुजार्कौ शूद्रइन्दुजाः।
इन्दुर्वैश्यः स्मृतौ म्लेच्छौ सैंहिकेयशनैश्चरौ॥"
(ग्रहभावप्र०)

शुक्र और बृहस्पति ब्राह्मण, मङ्गल और रवि क्षत्रिय, केतु शूद्र, चन्द्र वैश्य तथा राहु और शनि म्लेच्छ जाति है। ग्रहोंका विशेष विवरणादि तत्तद् शब्दमें देखो।

२ बालकोंके अनिष्टकारक ग्रहविशेष। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—बालग्रह नौ हैं। ये दिव्य देहविशिष्ट हैं। इनमेंसे कुछ तो नारी और कुछ पुरुष हैं। शरवनस्थित सद्योजात कार्त्तिकेयकी रक्षाके लिये कृत्तिका, अग्नि और महादेवके तेजसे उनकी सृष्टि हुई है। जो सब ग्रह स्त्रीदेहविशिष्ट हैं, वे गङ्गा, उमा और कृत्तिकाके रजोभागसे उत्पन्न हुई हैं। नैगमेय ग्रह पार्वतीसे उत्पन्न हुआ है और उसका मुख मेषके सदृश है। स्कन्दापस्मार ग्रह अग्निके समान द्युतिविशिष्ट है। यह स्कन्दका सखा है और इसका नामान्तर है विशाख। भगवान् त्रिपुरारिने स्वयं स्कन्दग्रहकी सृष्टि की है। इसका दूसरा नाम कुमार है। कोई कोई अज्ञ व्यक्ति इस स्कन्दको कार्त्तिकेय बतलाते हैं। लेकिन यथार्थमें यह नहीं है। स्कन्ददेव जब देवताओंके सेनापतित्व बने थे। तब दीप्त शक्तिधारी ग्रहोंने उनके पास

बों बार प्रार्थना की थी, 'प्रभो! हमें लोगों का काम अलग अलग बांट दीजिए।' स्कन्ददेवने उन्हें शिवजीके पास भेज दिया। शिवजीने उनसे कहा था, 'तिर्यक योनि, मनुष्य और देवता यह त्रिविध सृष्टि एक दूसरेके उप-कार द्वारा अवस्थित है। देवगण शीत, ग्रीष्म, वर्षा और वायु द्वारा मनुष्य तथा तिर्यक जातिको प्रसन्न रखते हैं एवं मनुष्य यज्ञादि द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हैं। सबोंकी वृत्ति इसी प्रकार विभक्त हो गई है, अभी किंचित कुछ भी न रहा। अतः तुम्हारी वृत्ति बालकोंके ऊपर निर्धारित हुई। जो कुलदेवता, पितृगण, ब्राह्मण, साधु और अतिथिकी पूजा नहीं करते, शौचाचाररहित होते तथा भग्न कांस्य-पात्रमें भोजन करते, उनके अरक्षित बालकोंके ऊपर तुम निरवच्छिन्नचित्तसे आक्रमण कर दो। इसी वृत्तिसे तुम्हारी पूजा होगी।' इस प्रकार ग्रहगण उत्पन्न हो कर बालको पर आक्रमण करते हैं। जो बालक ग्रहसे आक्रान्त हो जाता है, उसकी चिकित्सा भी नहीं हो सकती। ग्रहो-मेंसे स्कन्द ग्रहको सबसे श्रेष्ठ है। उन नौ ग्रहोंके नाम ये हैं—स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनीग्रह, पूतनाग्रह, अन्धपूतनाग्रह, शीतपूतना, रेवतीग्रह, मुखमण्डिकाग्रह और नैगमेय। यही नौ ग्रह क्रमशः बालको पर आक्र-मण करते देखे जाते हैं।

ग्रहदृष्ट बालकोंके लक्षण।—अहिताचरण करनेसे अथवा बालक भीत, हृष्ट वा तर्जित होनेसे ये सब ग्रह उनके शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। शरीरमें जब ग्रहोंके लक्षण मालूम पड़ने लगें, तब पहले सान्त्वना वाक्यका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। उस समय ग्रहग्रसित बालकके दोनों नेत्र स्फीत होने लगते हैं, देहमें शोणितगन्ध आती है, स्तनमें विद्वेष होता है, मुख वक्र मालूम पड़ता है, भौंहका एक पक्ष स्थिर हो जाता है, वक्रिमता आ जाती है, दोनों चक्षु भारी हो जाते हैं, मल गाढ़ा हो जाता है तथा बालक थोड़ा थोड़ा रोने भी लगता है। ये सब लक्षण स्कन्दग्रहके हैं। कभी सचेतन, कभी अचेतन, हाथ पैर कम्पन, मलमूत्र निःसरण, दन्तसे दांत कूटना, मुखमें फेनोद्गम ये सब लक्षण स्कन्दापस्मार ग्रहके समझे जाते हैं। (सुश्रुत २७से ३७ अध्याय)

नवं नूतनं ग्रहो ग्रहणं यस्य। (त्रि०) १ नूतन ग्रह-ना हुआ, जो हालमें ही बांधा या पकड़ा गया हो।

नवग (सं० त्रि०) नवभिर्मासैर्गच्छति गम-ड। नव मास पर्यन्तता द्वारा लक्षित, जो मासमें फल प्राप्त नहीं होनेसे भी लक्षित होता है, उसे नवग कहते हैं। २ नवीन गतिमान, नयी चालवाला।

नवचक्षुः (सं० पु०) शिव महादेव।

नवचत्वारिंश (सं० त्रि०) नवचत्वारिंशत् संख्यायाः पूरणः डट्। ऊनपञ्चाशत् संख्याका पूरण, उनचासवां।

नवचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) नवाधिका चत्वारिंशत्। ऊनपञ्चाशत् संख्या, चालीस और नौकी संख्या।

नवछात्र (सं० पु०) नवीन विद्यार्थी।

नवछिद्र (सं० क्ली०) नव छिद्राणि यत्र। नवद्वार। देहमें नौ छिद्र अर्थात् द्वार हैं।

नवज (सं० त्रि०) नव जन-ड। नवजात, जो हालमें पैदा हुआ हो।

नवज्वर—ज्वरभेद। इसका सामान्य लक्षण मनःक्षोभ, देह, इन्द्रिय और मनका सन्ताप है तथा उस समय शरीरमें वेदना भी मालूम पड़ती है। देह-सन्तापसे देहकी उष्णता, इन्द्रिय सन्तापसे इन्द्रियकी विकृति और मनके सन्तापसे मनोविकृति होती है। मनकी अस्थिरता और ग्लानि ही मनकी विकृति है। जो ज्वर सात दिन तक रहता है उसे तरुणज्वर कहते हैं।

चिकित्सा विधान।—ज्वर आने पर चिकित्सकको पहले यह अवश्य जान लेना चाहिये, कि यह ज्वर वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुआ है वा उनमेंसे किसी दोषसे अथवा यह त्रिदोष ज्वर है। यदि चिकित्सक किस दोषसे ज्वर उत्पन्न हुआ है, इसका स्थिर कर न सके, तो उन्हें साधारण चिकित्सा अर्थात् परम्पराकी अवरोधी चिकित्सा करनी चाहिये। रोगीको ऐसे स्थानमें रखना चाहिये जहां हवा न आती हो।

ज्वररोगीके लिये वातशून्य स्थान आयुर्वेदानुसार और आरोग्यजनक है।

ज्वररोगीके लिये पंखेकी वायु उपकारी है। उनमेंसे ताड़के पत्तेके पंखेकी वायुसे वायुनाश और त्रिदोष प्रशमित होता है। बांसके पंखेसे जो हवा की जाती है वह बहुत गरम होती है तथा रक्तपित्तके प्रकोपको

बढ़ाती है। कपड़ेकी हवासे त्रिदोष नाश, शरीर स्निग्ध और मन दृप्त होता है। नवज्वरोंको गुरु और उष्ण वस्त्र द्वारा ढंके रहना चाहिये और ऋतुके अनुसार उसे गरम पानी पीनेको देना चाहिये।

तरुण ज्वरमें कषायका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे सोए हुए कालसर्पको हाथसे स्पर्श करनेके समान हो जायेगा। पीछे भारीसे भारी चिकित्सा करने पर भी वह आरोग्य नहीं होता। सोलहगुण जलमें पाचन सिद्ध करके चतुर्थांश वा अष्टमांश रहते जो उतार लिया जाता है, उसे भी कषाय कहते हैं। अतः तरुण ज्वरमें उसका भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। कषाय रसयुक्त द्रव्यका भी प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।

नव ज्वरमें दिवानिद्रा, स्नान, तैलादि मर्दन, मैथुन, क्रोध, प्रबल वायु और श्रमजनक कार्य नहीं करना चाहिये। द्विभोजन अर्थात् प्रातः और रात्रिमें भोजन, गुरुपाक भोजन और श्लेष्मवर्द्धक द्रव्यादि-भक्षण भी निषिद्ध है। तरुणज्वरमें वमन, विरेचन, बस्ति और शिरोविरेचन ये चार प्रकारके शोधन नहीं कराने चाहिये, करानेसे मुखशोष, वमि, मत्तता, मूर्च्छा और अरुचि आदि होती है। हारीतके मतमें—तरुणज्वरमें व्यायाम करनेसे ज्वरकी वृद्धि, मैथुन करनेसे स्तब्धता, मूर्च्छा और मृत्यु तक भी हो जाती है। शीतलपानादि करनेसे भी मृत्यु की सम्भावना है। गुरु द्रव्य खानेसे मूर्च्छा, वमि, मत्तता और अरुचि तथा दिवानिद्रासे विष्टम्भ, दोषका प्रकोप, अग्निमान्द्य, ज्वराधिक्य और घर्मविण्मूत्रका अवरोध होता है। अवस्थाविशेषसे विज्ञ चिकित्सक वमन कराते हैं। वाग्भट कहते हैं कि यदि भोजन करनेके बाद ही ज्वर आ जाय अथवा सन्तर्पण क्रियासे (रसादि धातुसमूहको वृद्धिजनक क्रियासे) किसी व्यक्तिको ज्वर आ जाय, तो वमनयोग्य (गर्भिणी, कृश, वृद्ध आदि भिन्न) व्यक्तिको वमन कराना आवश्यक है।

तरुण ज्वरमें पाचनादि निषिद्ध है, किन्तु तोयपेयादि निषिद्ध नहीं। षड़ङ्ग पानीय तरुणज्वरमें देना उपकारी है। (मोथा, पित्तपापड़ा, चन्दन, वाला, सोंठ प्रत्येक द्रव्य दो दो तोला ले कर कूटते हैं। बाद उसे ऽ४ सेर जलमें सिद्ध करके ऽ२सेर अवशिष्ट रहने पर उसे उतार लेते हैं। ठण्ढा हो जाने पर उसे पिलाते हैं, इसीका नाम षडङ्ग-पानीय है।) नवज्वरमें शीतल जलका प्रयोग बिलकुल निषिद्ध है। सुतरां यह षड़ङ्ग-पानीय एकान्त प्रयोजनीय है। शरीरमें यदि अधिक वेदना मालूम पड़े, तो गोक्षुर, कण्टकारी और रक्तशाली इन्हें पीस कर पिलाना चाहिये।

औषधादि।—तरुण ज्वरमें औषधका प्रयोग प्रायः नहीं करना चाहिये। लङ्घन, पथ्य, पानीय आदि द्वारा ही ज्वरकी तरुणावस्थामें (अर्थात् प्रथम सात दिन) चिकित्सा करनी चाहिये।

नवज्वरमें रसघटित औषधका प्रयोग कर सकते हैं। रसका प्रयोग करनेमें दोष, रोग, व्यक्ति, देश और कालका विचार कुछ भी नहीं किया जाता।

नवज्वरमें रसघटित तरुणज्वरारि, नवज्वरेभसिंह, त्रिपुरभैरव, मृत्युञ्जयरस, नवज्वराङ्कुश, वैद्यनाथवटी, रत्नगिरिरस, ज्वरसिंहरस, ज्वरधूमकेतु, ज्वरघ्नोवटिका, नवज्वरहरवटि और नवज्वररस प्रयोज्य है।

ज्वरके पांचवें, छठे वा सातवें दिनमें तरुण ज्वरारि औषधका प्रयोग करना चाहिये। औषध-सेवन करनेके बाद विरेचन होनेसे ज्वर दूर हो गया, ऐसा समझना चाहिए। नवज्वरेभसिंहका अनुपान अदरखका रस है। त्रिपुरभैरवका अनुपान अदरखका रस अथवा शैलविशेषसे चीनीके साथ सोंठ, पीपल और मिर्च है। यह औषध खिलानेके बाद रोगीको तक्र देना आवश्यक है। मृत्युञ्जयरसका साधारण अनुपान मधु है। यदि रोगी शोष न हो अथवा उसे कफका अंश अधिक न रहे, तो चीनी और नारियलका पानी देना उचित है। उससे वातपैत्तिक दाह जाता रहता है। चीनीके जलके साथ नवज्वराङ्कुश भी रोगीको दे सकते हैं। वैद्यनाथवटिका अनुपान पानका रस वा गरम जल है। दोषका बलाबल जान कर १से ४ घंटे तक गोलीका प्रयोग कर सकते हैं। यह औषध सुखविरेचक है। रत्नगिरिके रसका पीपल वा धनियाके आढ़के साथ सेवन करना होता है। ज्वरसिंहरस ज्वरोत्पत्तिके चौथे दिनमें वा उसके बाद देना कर्त्तव्य है। ज्वरधूमकेतुका अनुपान अदरखका रस है। तीन दिन तक सेवन करनेसे नवज्वर नष्ट हो

जाता है। ज्वरांकुशवटिका पचुपान सुवर्णका रस है। इसके सेवनसे ज्वर उसी समय जाता रहता है। नवज्वरहरवटि और नवज्वररस पथ्यारसके साथ सेवनीय है।

नवज्वररस—नवज्वरमें प्रयोज्य रसघटित औषधविशेष। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार लिखी है,—

शोधित पारद १ तोला, शोधित गन्धक २ तोला, गरल (सर्पविष) ३ तोला, स्वर्णक्षीरी ४ तोला, जयपाल ४ तोला इन्हें भार भी नीबूके रसमें घोल कर चिड़ामें-परिमाणकी बड़ी गोली बनाते हैं। प्रतिदिन एक एक गोली चहरखके साथ सेवन करनेसे नवज्वरके सिवा जीर्ण ज्वर, वातकफज ज्वर, सम और विषम ज्वर तथा सभी प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। सामान्यतः ऐसा यह ज्वरनाशक है।

नवज्वरवटि—नवज्वरमें प्रयोज्य रसघटित औषधविशेष। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—

शोधित पारा, शोधित गन्धक, शोधित विष सौंठ, पीपल, मिर्च, बहेड़ा, बहेड़ा आंवला और शोधित दन्ती बीज बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करते हैं। बाद उस चूर्णको द्रोणपुष्पीके रसमें घोंट कर मुद्गप्रमाण करते हैं। पीछे एक रत्तकके बराबर गोली बनाते हैं। यह औषध नवज्वरमें व्यवहार्य है।

नवज्वरेभसिंह—नवज्वरमें प्रयोज्य औषधविशेष। भैषज्यरत्नावलीमें इसको प्रस्तुत-विधि इस प्रकार है,—

शोधित पारा, शोधित गन्धक, शोधित लौह शोधित ताम्र, शोधित सीसा, मरिच, पीपल और सौंठ बराबर बराबर भाग, विष अर्धभाग (किसीके मतसे समष्टिके अर्धभाग)को ले कर जलसे पीसते हैं। बाद २ रत्ती प्रमाणको गोली बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे कठिनसे कठिन नवज्वर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

नवड़ा (हि॰ पु॰) मरसा।

नवत (स॰ पु॰) नु-अतच्। १ कुथ, हाथीकी झूल। २ कोपीनवस्त्र, रेशमी कपड़ा। ३ कम्बल।

नवतन्तु (स॰ पु॰) नवा तन्तु कर्मधा॰। १ नूतन, तन्तु, नया सूता। नवा तन्तु यत्र। २ नूतन तन्तुयुक्त पट, नये सूतेका कपड़ा। ३ विश्वामित्र पुत्रभेद, विश्वामित्रके एक लड़केका नाम।

नवता (हि॰ पु॰) १ आनुपूर्वी जमीन, उतार। (स्त्री॰) २ नवीनता, नयापन।

नवति (स॰ स्त्री॰) नव दशतः परिमाणं यस्य, (पङ्क्तिविंशति त्रिंशदिति। पा। ५।१।५९) इति निपातनात् साधुः। १ संख्याविशेष, नब्बेकी संख्या। (त्रि॰) २ नब्बे और दश, सौसे दश कम।

नवतिका (स॰ स्त्री॰) नव नूतन तिकते करोतीति, तिक-क-टाप। १ तूलिका, रंग भरनेकी चित्रकारोंकी कूँची। २ नवति संख्या, नब्बेकी संख्या।

नवतिमस् (स॰ अव्य॰) नवति नवतीति मोषायां वयस्। बहुनवति।

नवती (स॰ स्त्री॰) नवति शार्ङ्गरवादित्वात् ङीष्। नवति, नब्बेकी संख्या।

नवदण्ड (स॰ क्ली॰) राजाओंका छत्रविशेष, राजाओंके के तीन प्रकारके छत्रोंमेंसे एक प्रकारके छत्रका नाम।

नवदल (स॰ क्ली॰) नव दलमिति कर्मधा॰। १ पद्मके बीजर चसोपरस्थ दल, कमलका वह पत्ता जो उसके बीजके पास होता है। २ पद्मादिके कलिका चार नवपत्र। पर्याय—स वर्तिका, स वर्ति, स वर्तो। ३ सामान्य नूतन पत्र। ४ दन्ताज, पत्ता।

नवदशन् (स॰ पु॰) नवाधिका दश। १ ऊनविंश संख्या, उन्नीसकी संख्या। (त्रि॰) २ दश और नौ, उन्नीस।

नवदीधिति (स॰ पु॰) नवदीधितियोऽस्य। मङ्गल ग्रह।

नवदुर्गा (स॰ स्त्री॰) नव संख्यान्विता दुर्गा। पुराणानुसार नौ दुर्गाएं जिनकी नवरात्रमें नौ दिनो तक क्रमशः पूजा होती है। यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा। नवपत्रिका देखो।

नवदेवकुल—प्राचीनकालमें गङ्गाके किनारे इस नामका एक नगर था। युएनचुयङ्गने यह नगर देखा था। उस समय यह सम्पन्न धनविभाशी स्थान था। वर्तमान नवल उसी नवदेवकुलका नामान्तर है।

नवदोला (स॰ स्त्री॰) नवा नूतना दोला। नवीनदोला नया हिंडोला।

नवद्वार (स॰ क्ली॰) नव द्वाराणीव छिद्रद्वारादीनि मन-

साधनत्वात् यत्र। देहस्थ ८ छिद्र, शरीरके नो द्वार। दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुदा और एक लिङ्ग या भग यही नवछिद्र है। इसीका नाम नवद्वार है। प्राचीनोंका विश्वास था और अब भी कुछ लोगोंका विश्वास है, कि जब मनुष्य मरने लगता है, तब उसका प्राण इन्हीं नो द्वारोंमेंसे किसी एक द्वारसे निकलता है। अन्त्येष्टि-क्रियाके समय इन नो छिद्रोंमें नो खण्ड सुवर्ण देने चाहिए।

"नवद्वारेपुरे देही हंसो लेलायते बहिः ॥" (श्वेताश्वतर०)

नवद्वीप—बङ्गालकी एक विख्यात नगरी और सेनराज लक्ष्मणसेनको शेष राजधानी। यह साधारणत: नदिया नामसे प्रसिद्ध है। यह अक्षा० २३° २४´ और देशा० ८८° २३´ पू० भागीरथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ज्यादा है।

नामकरण।—कोई इसे नदिया वा नवद्वीप, कोई नूतनद्वीप वा नो द्वीपसे नवद्वीप नामको उत्पत्तिकी कल्पना करते हैं। जो नोद्वीपसे नवद्वीपका नाम पड़ना स्वीकारते हैं, उनका कहना है कि गङ्गाके मध्यस्थ चरके ऊपर नदिया अवस्थित है। इस चरके पश्चिम और गङ्गा प्रवलवेगसे बहती थी, सुतरां पूर्वांश क्रमश: स्रोतोहीन हो कर चर पड़ गया है। धीरे धीरे उस चरमें खेतीबारी करनेके लिये अनेक लोग बस गये। उस समय एक संन्यासी चरके किसी निर्जन स्थानमें नोदीप जला कर रातको योगसाधन करते थे। नाविक लोग उन दीपोंको देख कर चलती भाषामें इस स्थानको नदिया कहने लगे। कोई कोई नोद्वीपसे नवद्वीप नामका पड़ना मानते हैं। उन नौ द्वीपों वा ग्रामोंके नाम ये हैं,—१ अन्तर्द्वीप, २ सीमन्तद्वीप, ३ गोद्रुमद्वीप, ४ मध्यद्वीप, ५ कोलद्वीप, ६ ऋतुद्वीप, ७ मोदद्रुमद्वीप, ८ जह्नुद्वीप और ९ रुद्रद्वीप।

नरहरिने भक्तिरत्नाकरमें नवद्वीपके विषयमें जिस उपाख्यानका वर्णन किया है, इतिहासमें उसका कहीं भी जिक्र नहीं है। नरहरिकी वर्णनासे मालूम होता है कि नवद्वीप नामका कोई स्वतन्त्र नगर वा ग्राम नहीं था, उपरोक्त स्थान ले कर नवद्वीप नाम पड़ा है। लेकिन चैतन्यदेवके बहुत पहलेसे नवद्वीप एक स्वतन्त्र नगरमें गिना जा रहा है। इसी नगरमें लक्ष्मणसेनको राजधानी थी। मालूम पड़ता है कि राजधानीके नाम पर ही राज्यका नाम पड़ा है। हिन्दूराजत्वकालमें नवद्वीप नगर और उसके चतुष्पार्श्ववर्त्ती उपकण्ठस्थ ग्राम भी नवद्वीप कहलाते थे।

सेनराजाओंके पहले नवद्वीप नगरीका अस्तित्व था वा नहीं, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस अञ्चलकी भूतत्त्वकी पर्यालोचना करनेसे यह सहजमें अनुमान किया जाता है कि पहले यह अञ्चल समुद्रमग्न था। ७वीं और ८वीं शताब्दीमें समुद्रके हट जानेसे वह चरमें परिणत हो गया। इस समय समुद्रमुहानाश्रित बहुतसी नदियां इस अञ्चल हो कर बहती थीं। वर्त्तमान शहरके दक्षिण-पश्चिमको ओर समुद्रगढ़ नामक ग्रामके निकट एक चर है जिसे त्रिमुहानी कहते हैं। यहां पहले तीन नदियोंका मुहाना था।

वर्त्तमान नगरसे प्राय: दो कोस पूर्व 'सुवर्णविहार' नामक एक छोटा ग्राम है। बहुतोंका विश्वास है कि पालवंशीय राजाओंके समय यहां बौद्धोंका 'विहार' था। आज भी उस स्थान पर प्राचीन अट्टालिकाओंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। वे सब भग्न प्रस्तर, इष्टक और स्तम्भादि बौद्धोंके उपकरण से देखनेमें लगते हैं। क्षितीशवंशावली-चरितमें लिखा है कि राजा कृष्णचन्द्रके पूर्वपुरुषोंने इस स्थानसे अनेक माल मसाला ले कर अपने अपने मकानोंमें लगाया है। पहले भागीरथीकी एक शाखा मायापुरके उत्तर हो कर सुवर्णविहार तक बहती थी। उसी शाखामें खड़िया नदी गिरती थी और यह मन्दाकिनी नामसे ग्वालपाड़ाके उत्तर भागीरथीके साथ मिल गई थी। अभी भागीरथीकी गति परिवर्त्तित हो जानेसे प्राचीन गर्भमात्र देखनेमें आता है।

भागीरथीके तटस्थ पुण्यस्थान होने तथा तीन नदियोंके मुहाने पर वाणिज्यादिकी सुविधा रहनेके कारण राजा लक्ष्मणसेनने यहां राजधानी बसाई थी। यहां नवद्वीपके उत्तर-पूर्व आध कोसकी दूरी पर बल्लालदीघी नामक एक दीघी है और दीघीके उत्तर 'बल्लालसेनकी टीपी' नामक उच्च भूमि है। प्रवाद है, कि यहां बल्लालसेनका मकान था और उन्होंने ही यहां अपने नाम पर 'दीघी'

खबर पाते ही काशीनाथ सपरिवार दक्षिण देशको भाग गये। कुछ दिन बाद ये जलङ्गी नदीके निकटवर्त्ती बाग-वान परगनेके अन्तर्गत आन्दुलिया ग्राममें नवाबके लोगों-से बन्दी हुए। रास्तेमें वे राजपुरुषोंके हाथसे मार डाले गये। काशीनाथकी गर्भवती स्त्रीने आन्दुलियावासी हरेकृष्ण समाद्दारका आश्रय लिया। कुछ समय बाद रानीने एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम रखा गया रामचन्द्र। रामचन्द्रको हरेकृष्ण अच्छी तरह पालन-पोषण करने लगे और उनके कोई पुत्र नहीं रहनेके कारण रामचन्द्रको ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसी कारण रामचन्द्र रामसमाद्दार नामसे प्रसिद्ध हुए।

रामचन्द्रके चार पुत्र थे, बड़ेका नाम भवानन्द था। भवानन्द बाल्यकालसे ही असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न थे। बड़े होने पर उन्होंने नवाबको खुश कर १६०४ ई०में कानूनगोका पद और मजुमदारकी उपाधि प्राप्त की। इस समय प्रतापादित्यने अपनी स्वाधीनता घोषणा कर दी। उन्हें दमन करनेके लिये दिल्लीश्वरने मानसिंहको भेजा। भवानन्द उस समय कानूनगो थे। मानसिंहका सम्मान करनेके लिये वे वर्द्धमान गये और उनके साथ साक्षात् किया। मानसिंहने भवानन्दकी अनेक विषयोंमें अभि-ज्ञता और विचक्षणता देख उन्हें अपने साथ रख लिया। प्रतापादित्यको दमन करनेमें उन्होंने मानसिंहको काफी सहायता पहुँचाई थी। इस कारण मानसिंहने यशोरसे लौटते समय भवानन्दको १४ परगनोंकी जमींदारी अर्पण की और दिल्लीयात्राके समय उन्हें अपने साथ ले गये। दिल्लीश्वरने उनके कुल और गुणका परिचय पा कर मानसिंह प्रदत्त १४ परगनोंका फरमान देनेका आदेश किया।

सच पूछिये, तो भवानन्द ही वर्त्तमान नवद्वीप-राजवंशके स्थापयिता थे। उन्होंके समयमें इस वंशकी ख्याति, प्रतिपत्ति और समृद्धिका सूत्रपात हुआ। उनके तीन पुत्र थे जिनमें मँझले गोपाल कार्यकुशल और बुद्धिमान् निकले। इस कारण भवानन्दने उन्होंको अपना उत्तराधिकारी बनाया। बादशाहके दरबारमें इनको पितासे बढ़ कर खातिरदारी थी। इनके मरने पर छोटे लड़के राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने बुद्धि और कौशलक्रमसे सम्राट् शाहजहानसे कुछ परगने पाये। उन्होंने अपने आम्र-ग्राममें ब्राह्मणोंको बसाया और उसके चारों ओर खाई खुदवाई जो 'गड़रपनार' नामसे प्रसिद्ध है। जनताका जलकष्ट दूर करनेके लिये इन्होंने हजारों रुपये खर्च करके शान्तिपुर और कृष्णनगरके मध्य दिग्नगर ग्राममें एक बड़ी दीघी खुदवाई और अनेक अध्यापकोंको विस्तर 'ब्रह्मोत्तर' दिये। इस वंशमें इन्होंने ही पहले पहल बादशाहसे सम्मानसूचक 'हस्ती' उपहारमें पाया था। इनकी मृत्युके बाद बड़े लड़के रुद्र पित्र-सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इन्होंने कृष्णनगर-से शान्तिपुर तक एक पक्की सड़क बनवा कर जनताका कष्ट दूर किया था।

रुद्रके दो रानी थी—बड़ी रानीके गर्भसे रामचन्द्र और रामजीवन तथा छोटीके गर्भसे रामकृष्ण उत्पन्न हुए। रामचन्द्र अत्यन्त साहसी और मृगयानुरक्त थे। रुद्रकी यह इच्छा न थी कि उनकी मृत्युके बाद राम-चन्द्र उत्तराधिकारी हों। वे रामजीवनको जमींदारी देनेके लिये बादशाहसे अनुमति ले चुके थे। मृत्युके बाद सुचतुर रामचन्द्रने हुगलीके फौजदार और ढाकाके नवाबकी सहायतासे पैतृक जमींदारी हस्तगत की। कुछ दिनके बाद रामजीवनने दलबल संग्रह कर राम-चन्द्रसे जमींदारी छीन ली। रामचन्द्र भी कब चुप बैठनेवाले थे। उन्होंने भी दूसरे वर्ष रामजीवनको परास्त कर पुनः जमींदारी अपने हाथमें ले ली। कुछ दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। अब रामजीवन निष्कण्टक राज्य करने लगे। लेकिन वे भी अधिक दिन तक राज्य भोग कर न सके। उनके वैमात्रेय भाई रामकृष्णने नवाबके साथ कौशल करके उन्हें ढाकेमें कैद कर लिया और जमींदारी पर अधिकार जमाया। ये नवाबको यथा-नियम राजस्व नहीं देते थे, इस कारण नवाबने उन्हें ढाकामें कैद रखा और वहीं वे पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

रामकृष्णके बाद रामजीवन कारामुक्त हो कर जमीं-दारीका उपभोग करने लगे। लेकिन कुछ दिनके बाद ही वे इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधारे।

रामजीवनके तीन पत्नी थीं और उन तीनोंमेंसे चार लड़के थे। उनमेंसे दूसरी पत्नीके गर्भजात रघुराम

सेवोंपिता कार्यदक्ष और प्रजारञ्जक थे, इस कारण राम-जीवन मरते समय उन्हींको अपना उत्तराधिकारी बना गये।

अत्यन्त साहसी और बलवान् होनेके कारण लोग उन्हें रघुवीर कहा करते थे। एक समय नवाब मुर्शिद कुली खाँके साथ राजगाहीके राजाका युद्ध हुआ था। युद्धमें रघुराम नवाबके सेनापतिके साथ गये थे। उनके असाधारण साहस और वीरत्वको देख कर नवाबने उनकी भूरि प्रशंसा की और युद्धके पुरस्कारस्वरूप उन्हें कारामुक्त करनेका हुक्म दिया। वे बड़े दानवीर थे। पूर्वपुरुषका ऋण-परिशोध नहीं करनेके कारण वे अकसर मुर्शिदाबादमें कैद किए जाते थे। किन्तु इस बन्दी अवस्थामें भी दानशीलताका ह्रास नहीं हुआ था। १७२८ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

रघुराम अपने वैमात्रेय भाई रामगोपालको बहुत चाहते थे, इस कारण पुत्र कृष्णचन्द्रको उत्तराधिकारी न बना कर रामगोपालको ही अपना उत्तराधिकारी बना गये। किन्तु उस समय कृष्णराम नामक एक व्यक्तिके कौशलसे राज्यच्युत हो रामगोपाल अधिकारी न हो कर नवाबके यहाँसे कृष्णचन्द्र ही सारी सम्पत्ति लाभ की। राजराजेन्द्र कृष्णचन्द्र बहादुरके समय नदिया राज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँच गया। अपने प्रतापसे हिन्दू-समाजके ऊपर उन्होंने जैसा आधिपत्य जमा लिया था वैसा और किसीने भारतमें कहा नहीं। वे अपने अनुग्रहीत व्यक्तियों और पण्डितोंको बहुतसी जमीन दान कर गए हैं, जिनके उत्तराधिकारी आज भी सब निष्कर जमीन भोग कर रहे हैं। नदिया जिलेमें ऐसा एक भी गण्डग्राम नहीं है, जहाँ नदिया-राजप्रदत्त निष्कर जमीन न हो। बहुतोंका कहना है कि यह अपरिमित दानशीलता ही नदियाराजके अधःपतनका मूल है। कृष्णचन्द्र देखो।

राजराजेन्द्र कृष्णचन्द्र बहादुर १७८२ ई०में ७१ वर्षकी अवस्थामें इस लोकसे चल बसे। पीछे शिवचन्द्र राज्यके अधिकारी हुए। इनके समयमें नवद्वीपकी अवस्था समझमें आ कर राजा कृष्णचन्द्रके समय तक पुरुषानुक्रमसे उन्नत होता आ रहा था, अब होना आरम्भ हुआ। यहाँ तक कि राजस्व बाकी पड़ जानेके कारण उनकी सारी जोतदारी नीलाम पर चढ़ गई। इसी चिन्ताके मारे ४० वर्षकी उमरमें (१७८८ ई०को) इनका देहान्त हुआ। उनके एकमात्र पुत्र ईश्वरचन्द्र पैतृक-सम्पत्तिके अधिकारी हुए। ये सुरापानमें मत्त रहा करते थे, कभी रैयतोंकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। १८१२ ई०में गिरिशचन्द्र नामक पुत्र छोड़ आप परलोकको सिधारे।

गिरिशचन्द्रने जब देखा, कि उनके प्रधान कर्मचारी और आत्मीय स्वजनोंके दोषसे ही महामूल्य सम्पत्ति नष्ट होती जा रही है, तब उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो आया। वे अपना समय देवार्चनामें बिताने लगे। अत्यन्त धार्मिक होने पर भी बड़े ही निर्बोध थे, उनको बुद्धिके दोषसे पैतृक जमींदारी जो ८४ परगनोंकी थी, अब केवल ५।० परगनेकी हो गई। अब कष्ट होने पर भी वे धर्म-कर्मसे हाथ नहीं खींचते थे। नवद्वीपमें वे दो बड़े बड़े मन्दिर बनवा गए हैं। ६ वर्षकी उमरमें उनका परलोकवास हुआ।

पीछे उनके दत्तकपुत्र श्रीशचन्द्र राजा हुए। इन्होंने अपनी जमींदारीका पुनरुद्धार करनेकी विशेष चेष्टा की और आखिरको सफलता मिल भी गई। आप ब्राह्मधर्मके विशेष पक्षपाती थे। जनसाधारणके लिए ये अनेक हितकर कार्य कर गए हैं। श्रीशचन्द्रकी मृत्युके बाद बड़े लड़के सतीशचन्द्र राजा हुए। ये भी अपने पिता तथा गिरिशचन्द्रके समान बड़े धर्मोत्साही थे। अतिशय सुरापानजनित रोगसे आक्रान्त हो कर १८७० ई०को इनका देहान्त हुआ। इनके कोई सन्तान न थी। मृत्युके बाद कनिष्ठा पत्नी महारानी भुवनेश्वरी सारी सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुई। इन्होंने क्षितीशचन्द्रको गोद लिया। राजा क्षितीशचन्द्र बुद्धिमान् और सहृदय थे। इनके यत्नसे कृष्णनगर राज्यकी विशेष श्रीवृद्धि हुई। नदिया देखो।

नवधा (सं० अव्य०) नव प्रकारसे आप्। नव प्रकार, नौ ढंग, नौ बार।

नवधा पङ्क (सं० पु०) शरीरके नौ पङ्क, यथा—दो आँख, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक।

नवपाद (सं० पु०) नवच्छिन्ना पाद। नौ प्रकारकी

धातु। स्वर्ण, रौप्य, लौह, सीसक, ताम्र, रङ्ग, तीक्ष्ण (इस्पात), कांस्य और कान्तिलौह इन नवोंको नव-धातु कहते हैं।

नवधाभक्ति (सं० स्त्री०) नौ प्रकारकी भक्ति, यथा—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन। भक्ति देखो।

नवन् (सं० त्रि०) नु-कनिन्। १ संख्याभेद, नौ। २ नवसंख्यायुक्त, जिसमें नौ संख्या हो।

नवनवक (सं० क्ली०) नवगुणितं नवकम्। दक्षसंहितोक्त ज्ञातव्य एकाशीति पदार्थ, दक्षसंहिताके अनुसार जानने योग्य इक्यासी पदार्थ।

गृहस्थोंके उन्नतिकारक ८१ पदार्थ बतलाये गए हैं, यथा—नौ अमृत, अन्यविध नौ प्रकारके अल्पदान, नौ कर्म, नौ विकर्म, नौ प्रकाश्य कार्य, नौ सफल कार्य, नौ निष्फल कार्य, नौ अदेय वस्तु और नौ गुप्त कार्य। विशिष्ट व्यक्तिके घर आने पर मन, चक्षु, मुख और वाक्य ये चार पदार्थ उसे सुन्दर रूपसे दें, अर्थात् प्रसन्न मनसे, प्रसन्न दृष्टिसे, सानन्द मुखसे और सुमिष्ट वाक्यों द्वारा उसका स्वागत करे। तदनन्तर प्रत्युत्थान हो कर, 'आइये, बैठिये,' ऐसा कहे। पीछे स्वागत प्रश्न, मिष्टालाप और भोजनादि द्वारा सेवा करे। बाद जाते समय उसे थोड़ी दूर तक पहुँचा आवे। ये नौ कार्य गृहस्थोंके लिए सुधा-स्वरूप हैं। अतः इन्हें यत्नपूर्वक करना हरएक गृहस्थका अवश्य कर्त्तव्य है।

अन्यविध नौ प्रकारके अल्पदान—बैठनेका स्थान, पैर धोनेका जल, बैठनेके लिये कुशासन, पादप्रक्षालन, शरीरमें लगानेके लिए तैलदान, घरमें स्थानदान, सोनेके लिए शय्याका प्रबन्ध कर देना, यथाशक्ति खाद्यवस्तु प्रदान, अतिथिको बिना खिलाये आप खा न लेना, अतिथिके खाने पर उसे आचमनके लिए मट्टी और जल देना ये नौ कार्य भी गृहस्थोंके लिए अवश्य कर्त्तव्य हैं। ये कार्य भी सुधास्वरूप माने गए हैं।

९ कर्म—प्रतिदिन यथासमय सन्ध्यानुष्ठान, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवपूजा, बलिवैश्व, अतिथिसेवा, पितृलोक, देवगण, मनुष्यगण, दरिद्र व्यक्ति, तपस्विगण और अन्यान्य गुरुजनोंको यथायोग्य विभाग कर देना ये नौ गृहस्थोंके नित्यकर्त्तव्य कर्म हैं। इसका नाम नौकर्म है। जो ये नौ कर्मानुष्ठान करते हैं, उन्हें इस लोकमें कीर्त्ति और धर्म प्राप्त होता है।

नौ विकर्म—मिथ्या-वाक्यप्रयोग, परस्त्रीगमन, अभक्ष्य वस्तुभक्षण (गोमांस आदि), अगम्यागमन, अपेय पान, चौर्य, जीवहत्या, अकार्यानुष्ठान और बन्धुजनोंके साथ अकर्त्तव्य कार्य इन नौ कर्मोंका नाम विकर्म है जो गृहस्थोंके लिए निषिद्ध बतलाया गया है।

नौ गुप्तकार्य—मनुष्यको परमायु, धन, गृहच्छिद्र, मन्त्रणा, मैथुन, औषध, तपस्या और सम्मानप्राप्ति ये नौ गृहस्थोंके गुप्त कार्य हैं अर्थात् ये नौ कार्य छिपके करने चाहिए।

नौ प्रकाश्य कर्म—आरोग्य, ऋणदान, अध्ययन, निज वस्तुविक्रय, कन्यादान, वृषोत्सर्ग, अनेक लोगोंका अज्ञात पापप्रकाश और जनताके सामने निन्दनीय न होना, ये नौ गृहस्थोंके प्रकाश्यकर्म हैं।

नौ सफलकर्म—माता, पिता, अन्यान्य गुरुजन, बन्धुगण, विनीत व्यक्ति, उपकारी व्यक्ति, दरिद्र मनुष्य, अनाथ लोक और विशिष्ट व्यक्तिको जो दान दिया जाता है वह सफल कर्म समझा जाता है।

नौ विफलकर्म—धूर्त्त, स्तुतिवादक, मूर्ख, अनभिज्ञ, चिकित्सक, कितव, वञ्चक, चाटुकार, चारण और चोरगण इन्हें दान देनेसे कोई फल नहीं होता है, इसीसे इसे विफलकर्म कहते हैं।

नौ अदेयवस्तु—याचकालब्ध, गच्छित, बन्धको, स्त्री, स्त्रीधन, निक्षेप, उत्तराधिकारसूत्रसे घरमें आगत धन-सर्वस्व और साधारण सम्पत्ति इन्हें आपद्‌कालमें भी दान नहीं कर सकते। जो कोई मोहवश करता है, उसे प्रायश्चित्त लेना उचित है।

इन नौ नवां इक्यासी कर्मोंको नवनवक कहते हैं। नवनवकवेत्ता मनुष्यके साथ लक्ष्मी इस लोकमें और परलोकमें हमेशा साथ रहती हैं। जो इस नियमका पालन करते हैं, उन्हें सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है और मरने पर वे स्वर्गलोकको जाते हैं। (दक्षसंहिता ३ अ०)

नवनवति (सं० स्त्री०) नवाधिका नवतिः। १ एकोनशत संख्या, निनानबेकी संख्या, ९९। २ तद्युक्त, वह जिसमें निनानबे संख्या हो।

माहिष नवनीत—वायुवर्द्धक, कफकारक, गुरु, मेदोवर्द्धक, शुक्रजनक और दाह, पित्त तथा श्रमनाशक है।

दुग्धोद्भूत नवनीत—चक्षुका हितकारक, रक्तपित्तनाशक, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, अतिशय स्निग्ध, मधुररस, धारक और शीतवीर्य है।

मथ उद्धृत नवनीत—मधुररस, धारक, शीतवीर्य, लघु और मेधाजनक होता है। मट्ठेका कुछ अंश रह जानेके कारण उसका स्वाद कसैला लिए कुछ खट्टा होता है।

बहुत दिनका नवनीत—गुरु, क्षारसंयुक्त और कटु, होता है। अम्लरस रहनेसे यह वमि, कुष्ठरोग, कफ और मेदकी वृद्धि करता है। (भावप्र० द्वितीय भाग)

सुश्रुतमें नवनीतका गुण इस प्रकार लिखा है—सद्योजात नवनीत लघु, कोमल, मधुर, कषाय, कुछ अम्ल, शीतल, पवित्र, अग्निवृद्धिकर, सुखप्रिय, मलमूत्रसंग्राहक, वायुपित्त-दमनकारी, तेजस्कर, अविदाही और चय, काश, श्वास, व्रण तथा अर्शरोगका शान्तिकर, कफ और मेदवर्द्धक, बल और पुष्टिकर तथा शोषरोगनाशक है। यह बालकोंके लिए विशेष उपकारी है। कच्चे दूधसे जो मक्खन बनता है, वह अत्यन्त स्निग्धकर, मधुर, शीतल, कोमलता सम्पादक, चक्षुका दीप्तिकर, मलसंग्राहक, रक्तपित्त और चक्षुरोगका शान्तिकर तथा चक्षुप्रसादक है। (सुश्रुत) २ श्रीकृष्ण।

नवनीतक (सं० क्लो०) नवनीतात् कायति प्रकाशते कै-क। १ घृत, घी। नवनीत स्वार्थे कन्। २ नवनीत, मक्खन। ३ गन्धक।

नवनीतगणप (सं० पु०) पुराणानुसार एक गणेश या गणपतिका नाम।

नवनीतज (सं० क्लो०) घृत, घी।

नवनीतधेनु (सं० स्त्री०) नवनीतेन कृता धेनुः मध्यपदलोपी कर्मधा०। दानार्थ कृत नवनीतमय धेनुविशेष, दानके लिए एक प्रकारकी कल्पित गौ जिसकी कल्पना मक्खनके ढेरमें की जाती है। वराहपुराणमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

पहले जिस स्थान पर यह धेनु दान करनी होती है, उस स्थानको गोबरसे परिष्कार कर लेते हैं। पीछे उस परिष्कृत भूमि पर मृग-चर्मके ऊपर नवनीतका बड़ा रखते हैं। नवनीत दो सेरसे कम नहीं होना चाहिये। नवनीतके चतुर्थांशसे एक बछड़ेकी कल्पना करते हैं जिसे उत्तर दिशामें खड़ा कर देते हैं। बाद एक धेनुकी कल्पना करते हैं। इसके सींग सोनेके, चक्षु मणि और मुक्ताके, जिह्वा गुड़की, दोनों ओठ पुष्पके, दांत फलके, स्तन नवनीतके, दोनों पैर ईखके, पीठ तांबेकी, पलान कांसेका और खुर चांदीके बने होते हैं। धेनुके साथ चार तिलके पात्र रख देते हैं। बाद चारों ओर दीप जला कर और दो वस्त्रोंसे उस धेनुको ढंक कर निम्नलिखित मन्त्रसे वेदविद् ब्राह्मणको दान देते हैं। मन्त्र—

"पुरा देवासुरैः सर्वैः सागरस्य तु मन्थने।
उत्पन्नं दिव्यममृतं नवनीतमिदं शुभम्॥
आप्यायनश्च भूतानां नवनीत नमोऽस्तुते॥"

इस प्रकार नवनीत धेनु दान करके तीन दिन तक होम करना होता है। जो यथाविधि यह धेनु दान करते हैं, वे समस्त पापोंसे रहित हो कर शिवसायुज्यताको प्राप्त होते हैं और कल्पान्त तक विष्णुलोकमें वास करते हैं। जो यह धेनु दान करते देखते हैं या इसका वृत्तान्त सुनते हैं अथवा दूसरे मनुष्यको सुनाते हैं, वे सब पापोंसे विमुक्त होते हैं। (वराहपु०)

नवनीतोद्भव (सं० क्लो०) १ दधि, दही। २ घृत, घी।

नवनेन्दिकुल—एक पार्वत्य देश। राजेन्द्रचोलदेवने अपने राज्यकालके ७वें और १०वें वर्षके भीतर इसे फतह किया था। इस स्थानको जीत कर से चालुक्यराज द्वतीय जयसिंहको जीतने गये थे।

नवन्दगढ़—एक भग्न दुर्ग जिसकी ऊंचाई ८२ हाथकी है। यह लावरिया नामक ग्रामके निकट अवस्थित है। यहांसे गण्डकी नदी केवल पांच मीलकी दूरी पर है। प्राचीन भग्नावशेषोंमेंसे एक सुन्दर प्रस्तरस्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर एक सिंहकी मूर्त्ति है और गात्रमें अशोकको आदेशावली खोदी हुई है। यहां मट्टीके अनेक स्तूप देखनेमें आते हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि ये सब स्तूप बौद्धधर्मके अभ्युदयके पूर्वतन राजाओंके समाधिस्थान निर्देशक हैं। यहां बौद्धलोगोंके पत्थर और ईंटोंके बने अनेक स्तूप हैं।

नवप—युक्तप्रदेशके ममकाहतास्तमें इस राज्यका अवशेष है। किसी समयमें पर्यटन कर के प्रायः एक हजार चीन उत्तर-पूर्वका रास्ता ले कर इस राज्यमें आए थे। यह नवपुर शब्दका अपभ्रंश है। इस राज्यको सिमस्थान या मेंगचेन भी कहते हैं। यहांके लोग बंगलोके समान हैं, आचार-व्यवहार भी बहुतसे सा है।

नवपञ्चम (स॰ पु॰) नव च पञ्चम च पञ्चमच नव योगे। विवाहादिराशि कूटभेद। नवपञ्चम देख कर विवाह स्थिर करना उचित है। यदि वरराशिको अपेक्षा कर कन्याके नवम और पञ्चम स्थानकी राशि हो तथा कन्याकी राशिकी अपेक्षा कर यदि वरको राशि नवम वा पञ्चम स्थानमें हो अर्थात् वरकी राशिसे कन्याको राशि नवम और कन्याकी राशिसे वरको राशि इस स्थानीय हो तो वह नवपञ्चमयोग होता है। इस योगमें यदि विवाह हो, तो मङ्गलदायक नहीं होता, सन्तान हानि होती है।

नवपञ्चाशत (स॰ स्त्री॰) नवाधिका पञ्चाशत्। संख्या विशेष, उनसठकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है, ५९।

नवपत्रिका (स॰ स्त्री॰) नवमिता पत्रिका। कदली आदि नौ पदार्थ।

कोला, अनार, धान, हल्दी, मानकचु, कचु, बेल, अशोक और जयन्ती इन नवोंका नाम नवपत्रिका है। इस नवपत्रिकाका दूसरा नाम नवदुर्गा वा नवपत्रिकावासिनी दुर्गा है। दुर्गापूजामें नवपत्रिका स्थापन करके इसकी पूजा करनी होती है।

आश्विनकी महासप्तमीको पूर्वाह्नमें नवपत्रिका प्रवेश अर्थात् स्थापित करना होता है। यदि इस सप्तमी तिथिको मूलानक्षत्र पड़े, तो वह दिन बहुत प्रशस्त माना जाता है। नक्षत्रका योग नहीं होने पर भी सप्तमी तिथिको नवपत्रिका प्रवेश कर सकती हैं। दोनों दिन यदि सप्तमी तिथि पड़े, तो दूसरे दिन पत्री प्रवेश होगा। क्योंकि पूर्वाह्न समय ही पत्री-प्रवेशके लिये प्रशस्त है।

पूर्वाह्न छोड़ कर जिस किसी समयमें पत्रीप्रवेश वा विसर्जन किया जाय, वह अनिष्टप्रद होता है।

"पत्रीप्रवेशनं रात्रौ विसर्गो वा करोति यः।
तस्य राज्यविनाशः स्यात् राजा च निहतो भवेत्॥"
(तिथितत्त्व)

यदि कोई रातको पत्रीप्रवेश वा विसर्जन करे, तो उसका राज्य नष्ट होता है। मूलानक्षत्रके अनुरोधमें यदि कोई सप्तमीमें न कर केवल मूलानक्षत्रमें पत्रीप्रवेश करे, तो उसे चारों ओरसे आपत्तियां घेर लेती हैं। सप्तमी तिथिमें ही पत्रीप्रवेश करना चाहिये, मूलानक्षत्र भी इसीके लिये प्रशस्त माना गया है।

यह नवपत्रिका जिसका जैसा कुलाचार है, तदनुसार देवीकी दाईं या दाहिनी ओर स्थापित करते हैं।

इस नवपत्रिकावासिनी दुर्गाको 'कलाबहू' और कोई गणेशकी स्त्री बतलाते हैं, लेकिन यह बिलकुल भूल है।

नवपत्रिकाकी स्थापना करके विहित मन्त्र द्वारा यथाविधि स्नान करा कर पूजा करनी चाहिये।

नवपत्रिकाको उत्पत्तिके विषयमें ऐसा लिखा है—

देवीने रम्भाके रूपमें सर्वत्र शान्ति स्थापना की थी, इसीसे रम्भा नवपत्रिकामें एक है। इसकी अधिष्ठात्री देवी ब्राह्मणी है।

"दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय।
रम्भारूपेण सर्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते॥"

महिषासुरके साथ युद्धकालमें देवीने कचीका रूप धारण किया था, इसीसे कचो नवपत्रिकाको द्वितीय है।

'ओं महिषासुरयुद्धेषु कच्चीभूतासि सुव्रते।
मम चानुग्रहार्थाय आगतासि हरिप्रिये॥'

इसको अधिष्ठात्रीदेवी कालिका है। उमाने हल्दी का रूप धारण किया था, इसलिये हल्दो तृतीय है। इसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है।

"ओं हरिद्रे वरदे देवि उमारूपासि सुव्रते।
मम विघ्नविनाशाय प्रसीद त्वं हरप्रिये॥"

निशुम्भशुम्भके युद्धमें जयन्तीको पूजा को गई थी, इसीसे जयन्ती चतुर्थ है। इसकी अधिष्ठात्री देवी कार्त्तिकी है।

"ओं निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः सह।
जयन्ति! पूजितासि त्वमस्माकं वरदा भव॥"

बिल्ववृक्ष महादेव है और वासुदेव तथा पार्वतीका

प्रिय है, इसीसे विल्वपत्र पञ्चम है। इसकी अधिष्ठात्री देवी शिवानी हैं।

"ओं महादेवप्रियकरो वासुदेवप्रियः सदा।
उमाप्रीतिकरो वृक्षो विल्ववृक्ष नमोऽस्तु ते॥

रक्तबीजके युद्धमें दाडिमोने उमाको सहायता की थी, इसीसे दाड़िमी षष्ठ है। इसको अधिष्ठात्रीदेवी रक्तदन्तिका है।

"ओं दाड़िमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य सम्मुखे।
उमाकार्यं कृतं यस्मादस्माकं वरदा भव॥"

अशोक महादेवका अत्यन्त प्रिय और शोकनाशक है, इसीसे यह वृक्ष सप्तम है।

"ओं हरप्रीतिकरो वृक्षोऽशोकः शोकनाशनः।
दुर्गाप्रीतिकरो यस्मादस्माकं वरदा भव॥"

मानपत्रमें देवी वास करती हैं, इसीसे मान अष्टम है।

"ओं यस्य पत्रे वसेद्देवी मानवृक्षः शचीप्रिय।
मम चानुग्रहार्थाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे॥"

जगत्की प्राणरक्षाके लिये ब्रह्माने धान्यवृक्ष निर्माण किया था, इसीसे यह नवम है। इसको अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं।

"ओं जगतः प्राणरक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात्त्वं रक्ष मां सदा॥"

जिन सब वृक्षोंके नाम कहे गये हैं, उन सभी वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी नवपत्रिकावासिनी दुर्गा हैं।

नौ द्रव्य द्वारा तथा नौ मन्त्रोंसे नवपत्रिकाको स्नान करना चाहिये। मन्त्र यथा—

"ओं कदलीतरुस्थासि विष्णोर्वक्षःस्थलाश्रये।
नमस्ते नवपत्रि त्वं नमस्ते चण्डनायिके॥१॥
ओं कच्चि त्वं स्थावरस्थासि सदा सिद्धिप्रदायिनी।
दुर्गारूपेण सर्वत्र स्नानेन विजयं कुरु॥२॥
ओं हरिद्रे हररूपासि शङ्करस्य सदा प्रिये।
हररूपेण देवि त्वं सर्वशान्तिं प्रयच्छ मे॥३॥
जयन्ती जयरूपाणि जगतां जयकारिणी।
स्नापयामीह देवि त्वं जयं देहि गृहे मम॥४॥
ओं श्रीफलश्रीनिकेतोऽसि सदा विजयवर्द्धनः।
देहि मे हितकार्यंच प्रसन्नो भव सर्वदा॥५॥
दाड़िम्यस्य विनाशाय क्षुन्नाशाय च वेधस।
निर्मिताफल कामाय प्रसीद त्वं हरिप्रिये॥६॥
स्थिरा भव सदा दुर्गे अशोके शोकहारिणी।
मायात्वं स्थापिता दुर्गे मोऽशोकं सदा कुरु॥७॥
ओं मानोमानेषु वृक्षेषु माननीयः सुरासुरैः।
स्नापयामि महादेवि मानं देहि नमोऽस्तु ते॥८॥
ओं लक्ष्मीस्त्वं धान्यरूपाणि प्राणिनां प्राणदायिनी।
स्थिराऽत्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव॥९॥"
(दुर्गोत्सवपद्धति)

इन नौ मन्त्रोंसे नवपत्रिकाका स्नान कराना होता है। दुर्गा-पूजाके समय नवपत्रिकापूजा होती है। कहीं कहीं कोजागरी लक्ष्मीपूजाके साथ भी नवपत्रिकापूजा होती है।

नवपद (सं॰ पु॰) जैनियोंके उपास्य नवमूर्तिभेद, एक प्रकारकी मूर्त्ति, जिसकी उपासना जैन लोग करते हैं।

नवपद (सं॰ क्ली॰) मात्रावृत्त वृत्तभेद, मात्रावृत्त नामका एक छन्द।

नवपदी (सं॰ स्त्री॰) चौपाई या जनकरी छन्दका एक नाम। चौपाई देखो।

नवपाठक (सं॰ पु॰) नूतनाध्यापक, नया शिक्षक।

नवपाल—भविष्यब्रह्मखण्डोक्त वङ्गदेशान्तर्गत वरद देशका एक ग्राम। यह सेवना नदीके किनारे अवस्थित है।

ब्रह्मखण्डमें लिखा है कि इस नवपालके निकटवर्त्ती कपिलेश्वर मन्दिरमें एक शिवरात्रिको नरनारी उपवास जागरण करेगी। उसे देख कर यदि मन्दिरके ब्राह्मण कामातुर हो जायंगे, तो शिवके क्रोधसे सभी ब्राह्मण मारे जायंगे। (भ॰ ब्रह्मखण्ड॰ १८।४५-५६)

नवप्राशन (सं॰ क्ली॰) नवस्य नवान्नस्य प्राशनम्। नवान्न-भोजन, नया अन्न या फल आदि खाना।

नवफलिका (सं॰ स्त्री॰) नवं फलं यस्याः कापि अत इत्वं। १ नव्या, युवा स्त्री, नवयौवना। २ नवजातवयस्का स्त्री, वह स्त्री जो हालमें पहले पहल रजस्वला हुई हो।

नवभक्ति (सं॰ स्त्री॰) नवधाभक्ति देखो।

नवभाग (सं॰ पु॰) १ राशिका नवम भाग, त्रिंशांशकात्मक राशिका नवम भाग। नवांश देखो। २ नवम भाग मात्र, नवां भाग।

नवम (स॰ वि॰) नवानां पूरणः डट् । १ नव स ख्याका पूरण जो गिनतीमें नौके स्थानमें हो, नवां । (पु॰) २ जन्मसे अधिक नवम राशि । इस नवमस्थानको धर्मस्थान कहते हैं ।

नवमल्लिका (स॰ स्त्री॰) नवा नूतना शुभ्रा वा मल्लिका । १ नवमालिका पुष्प, चमेली । २ सेवती ।

नवमालिका (स॰ स्त्री॰) नवा नूतना मालिका मल्लिका पुष्पम् । १ नवमल्लिकापुष्प चमेली । इस फूलमें अच्छी गन्ध है । लोग इसे बनमल्लो, सेवारी वा सेवार भी कहते हैं ।

इसका अंग्रेजी नाम Jasminum Sambac है । पर्याय—अतिमोदा, बैठो, गोपोभद्रा सप्तला, सुकुमारो, सुरभि, शुचिमल्लिका सुगन्धा, शिशिरिको, नवाली, मधुवर्णा दिवालता, गन्धलिप्ता, मालिका, नवमल्लिका । यह अति शीतल सुरभि और रोगनाशक माना गया है । २ छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें नगण, जगण, भगण और यगण होता है । कोई कोई इसे नवमालिनो भी कहते हैं ।

नवमालिनो(स॰ स्त्री॰) नवमालिका देखो ।

नवमी (स॰ स्त्री॰) नवम ङित्वात् ङोप् । तिथिविशेष चान्द्र मासके किसी पक्षको नवीं तिथि । नवमकला-क्रिया-कृष्ण तिथिका नाम कृष्णानवमी और नवमकलावृद्धि नामक तिथिका नाम शुक्लानवमी है ।

नवमी-व्यवस्था—धार्मिक कर्मोंके लिये अष्टमी विद्धा नवमी ग्राह्य होती है अर्थात् जिस दिन नवमीका अष्टमीके साथ योग रहेगा उसी दिन धार्मिक कार्य होंगे । क्योंकि नवमीके साथ अष्टमीका युग्मादर है । पद्मपुराणके निम्नलिखित वचनानुसार भी अष्टमीविद्धा नवमी ग्राह्य है ।

"कर्त्तव्या नवमी विद्धा कदाचन नाष्टमीयुता ।
अर्द्धनारीश्वरस्यापि समारोहदर्शी तिथिः ॥"

(कालमाधवीयधृत पद्मपुराणवचनम्)

माघमासको शुक्ला नवमीका नाम महानन्दा है । यह नवमी मनुष्योंको अत्यन्त आनन्ददायिनी है । इस दिन स्नान दान, जप होम, देवार्चन उपवास जो कोई धर्मकार्यानुष्ठान किया जाय वह अक्षय होता है ।

"माघमासे तु या शुक्ला नवमी लोकपूजिता ।
महानन्देति सा प्रोक्ता महानन्दकरी नृणाम् ॥
स्नानं दानं जपो होमो देवार्चनमुपोषणम् ।
सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं यस्यां क्रियते नरैः ॥" (तिथितत्त्व)

नवमी तिथिके दिन भी नये तथा पिष्टकादि भोजन निवृत्ति है अर्थात् पिष्ट द्रव्यके सिवा अन्य कोई द्रव्य खाना निषिद्ध है । यह नवमी व्रत करनेसे पार्वती बहुत प्रसन्न होती हैं और उसकी सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

इस व्रतका संकल्प इस प्रकार किया जाता है, "अद्य साचि वत्सरस्य तिथावारभ्य नवस्यामपि यावत् अविच्छिन्न नवस्यां पिष्टकमोजनमिदमित्थमिति च अस्ये विशेष ।"

(तिथितत्त्व)

कार्त्तिकमासकी शुक्लानवमीमें जगद्धात्रीपूजा करनी चाहिये । उस दिन प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालमें पूजा करनेका विधान है ।

तन्त्रके मतानुसार कार्त्तिककी शुक्लानवमीके दिन प्रथम त्रेतायुगोत्पत्ति हुई थी और उसी दिन पहले पहल जगद्धात्रीका पूजन हुआ था । (उत्तरकामाख्यत॰ ११ पटल)

नवयज्ञ (स॰ पु॰) नवधान्यनिमित्तः यज्ञः । नवान्न निमित्तक यज्ञ, यह यज्ञ जो नये अन्नके निमित्त किया जाय ।

नवयुवक (स॰ पु॰) तरुण, नौजवान ।

नवयुवा (सं॰ पु॰) तरुण, जवान ।

नवयोनिन्यास (स॰ पु॰) तन्त्रसारोक्त न्यासभेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका न्यास । यह न्यास बीजमन्त्र द्वारा तीन बार करके करना होता है । पहले दोनों कानोंमें, पीछे चिबुकमें और उसके बाद गण्ड, नेत्र, नासिका अधर, कुहनी, कुक्षि, जानुद्वय, मुख, पादद्वय, गुह्यदेश पार्श्वद्वय हृदय, स्तनद्वय और कण्ठदेश इन सब स्थानोंमें मूल मन्त्रका तीन बार न्यास करनेसे नवयोनिन्यास होता है ।

नवयौवन (स॰ क्ली॰) नव यौवन । अभिनव यौवन, तरुण, जवान ।

नवयौवना (स॰ स्त्री॰) नव यौवन यस्याः । युवती, अभिनव यौवनवती स्त्री, वह स्त्री जिसके यौवनका आरम्भ हो, नौजवान औरत ।

नवरंग (हि॰ वि॰) १ सुन्दर, रूपवान्, नई तरहका । २ नई शोभायुक्त, नये ढंगका, नवेला ।

नवरंगी (हिं० वि०) १ नित्य नए आनन्द करनेवाला। २ हँसमुख, रंगीलो, खुशमिजाज।

नवरंगी (हिं० स्त्री०) नारंगी देखो।

नवरङ्ग (सं० क्लो०) नवं यस्मात्। कायस्थ मुख्य कुलीनों का पञ्चदान और चतुर्थ हणात्मक कुलविशेष।

नवरत्न (सं० क्लो०) नवगुणितं रत्नं। १ नवविध माणिक्यादि रत्न, नौ प्रकारके मणिमाणिक्यादि रत्न मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूँगा, पद्मराग, लहसुनिया और नीलम ये नौ प्रकारके मणियोंका नाम नवरत्न है।

भावप्रकाशमें हीरा, पन्ना, माणिक, पद्मराग, इन्द्रनील, गोमेद, वैदुर्य, मोती और मूँगा इन नौ रत्नोंको नवरत्न माना है। इनमें पांच महारत्न और चार उपरत्न हैं। वज्र, मोती, माणिक्य, नील और मरकत ये पांच महारत्न तथा गोमेद, पद्मराग, वैदुर्य और प्रवाल ये चार उपरत्न हैं। महारत्न और उपरत्नको मिलानेसे नवरत्न होता है। विष्णुधर्मोत्तरमें नवरत्नके नाम ये हैं—मुक्ताफल, हीरक, वैदुर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेद, नीलकान्त, पन्ना और मूँगा।

पुराणके अनुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रहके दोषोंकी शान्तिके लिये उपकारी हैं। जैसे, सूर्यके लिये लहसुनिया, चन्द्रमाके लिये नीलम, मङ्गलके लिये माणिक, बुधके लिये पुखराज, वृहस्पतिके लिये मोती, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलम, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये पन्ना। २ राजा विक्रमादित्यकी एक कल्पित सभाके नौ पण्डित जिनके नाम ये हैं—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

ये सब पण्डित एक ही समयमें आविर्भूत नहीं हुए हैं, बल्कि भिन्न भिन्न समयोंमें हुए हैं। लोगोंने इन सबको एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्यकी सभाके नौरत्न थे। ३ एक प्रकारका हार जिसे गलेमें पहनते हैं और जिसमें नौ प्रकारके रत्न या जवाहिरात होते हैं।

नवरत्नदेवता (सं० पु०) नौ रत्नोंके अधिष्ठातृदेवता।

नवरस (सं० पु०) नवगुणितो रसः। अलङ्कारशास्त्रोक्त शृङ्गारादि नौ प्रकारके रस।

शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त यही नौ रस हैं। काव्यप्रकाशके मतानुसार नाटकमें आठ रस होते हैं।

"अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।" (काव्यप्र०)

किन्तु काव्यमें नौ रस होंगे, नाटकमें शान्तिरस शिष्टोंका अभिलषणीय नहीं है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक शान्ति-रसात्मक है, यह नाटक समप्रधान है, इसीसे यह भरतादिके नाट्यशास्त्रोंके विरुद्ध है।

नवरसमें नौ स्थायी भाव हैं, यथा—शृङ्गाररसमें रति, हास्यरसमें हास, करुणरसमें शोक, रौद्ररसमें क्रोध, वीररसमें उत्साह, भयानकरसमें भय, वीभत्स रसमें जुगुप्सा, अद्भुतरसमें विस्मय और शान्तिरसमें शम स्थायिभाव है। इस नवरससे स्थायिभाव, आलम्बन, विभाव, अनुभाव आदि वर्णित हैं। विशेष विवरण रस शब्दमें देखो।

नवरात्र (सं० क्लो०) नवानां रात्रीणां समाहारः, तत्साधनत्वे नास्त्यस्येति अच्, वा नवभि रात्रिभिर्निर्वृत्तं। १ नव रात्र दिनसाध्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त होता है।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी इस यज्ञका विषय लिखा है।

२ नवरात्रसाध्य व्रतभेद, एक प्रकारका व्रत जो नौ दिनोंमें समाप्त होता है। आश्विनकी शुक्लाप्रतिपद्‌से लेकर नवमी तक यह दुर्गाव्रत किया जाता है।

यह प्रतिपद् यदि अमायुक्त हो, तो उस दिन इस व्रतका अनुष्ठान नहीं करते। द्वितीयायुक्त प्रतिपद् हो इसके लिए प्रशस्त है। दूसरे दिन यह तिथि यदि एक मुहूर्त्त भी रहे, तो उसी दिन नवरात्रव्रत आरम्भ होगा। निम्नलिखित वचनोंसे अमायुक्ता प्रतिपद निषिद्ध मानी गई है।

"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपद् पूजने मम।
मुहूर्त्तमात्रा कर्त्तव्या द्वितीयादि गुणान्विता॥"

(देवीपु०, डामरतन्त्र)

"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत् प्रतिपदाश्विनी।
नवरात्रव्रतं तस्यां नकार्यं शुभमिच्छता॥"

(मार्कण्डेयपु०)

अमावस्या विद्धा प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करनेसे

अनेक प्रकारके अमङ्गल होते हैं। इस व्रतमें प्रतिपद्को घटस्थापन करके उसमें देवीका आवाहन और पूजन करना होता है।

जो इस व्रतको करते हैं, उन्हें नौ दिन तक केवल एक शाम खाना पड़ता है। रातको भूमिशयन, कुमारी, भोजन, प्रतिदिन वस्त्रादि दान, बलि और त्रिकालमें देवीका पूजन करना होता है।

" कन्यागते रवौ शुक्लप्रतिपदारभ्य नन्दिकां।
अयाची एक भक्तो नक्ताशी वाथ वाग्यतः॥
भूमौ शयीत आर्द्रेण कुमारीर्भोजयेन्मुदा।
वस्त्रालङ्कारदानैश्च अन्योन्या प्रतिवासरम्॥
बलिञ्च प्रत्यहं दद्यात् सोपमावत्।
विधान पूजयेद्देवी नवरात्रोपवासतः॥" (देवीपु०)

जयन्तीत्यादि मन्त्र अथवा नवाक्षरमन्त्र द्वारा देवीकी पूजा करनेका विधान है। इसमें सङ्कल्प करके घटस्थापन, यथाविधि देवीका आवाहन और षोड़शोपचारसे पूजन करते हैं। बाद माषभक्तबलि अथवा कुष्माण्डबलि दे कर कुमारीकी पूजा करते हैं।

देवीभागवतमें नवरात्रव्रतके विषयमें एक उपाख्यान दिया गया है तथा इसके कुछ नियम भी बतलाए गए हैं जो इस प्रकार हैं,—

पुराकालमें एक अत्यन्त दुःखी वणिक् कोशल राज्यमें रहता था। उसके अनेक परिवार थे। वह अत्यन्त धर्मशील था। वह जो कुछ धन प्रतिदिन उपार्जन करता था, उसमेंसे कुछ तो देवता द्विज और अतिथियोंको समर्पण करता, बाद परिवारवर्गको खिलाता, पीछे जो कुछ बच जाता उसे आप खा लेता था। इस वणिक्का नाम था सुशील। चिन्ताग्रस्त हो कर एक दिन उसने किसी ब्राह्मणसे पूछा, 'भूदेव! ऐसा कौनसा उपाय है जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो। मैं धनी होना नहीं चाहता, जिससे मेरे मानकी रक्षा हो, वही उपाय आप कृपया बतला दीजिए। मेरी सन्तान क्षुधातुर हो कर हमेशा रोती रहती है। घरमें उतना अनाज नहीं कि उन्हें भर पेट खिला सकूं।' इस पर ब्राह्मणने बहुत प्रसन्न हो कहा, 'यदि तुम अपनी दरिद्रता दूर करना चाहते हो, तो नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करो। यह नवरात्र व्रत ज्ञान और मोक्षप्रद है, मङ्गलदायक है तथा सुख और सन्तान वृद्धिजनक है। पुराकालमें रामने सीताके विरहसे कातर हो इस व्रतका अनुष्ठान किया था। जिससे उनके सब प्रकारके दुःख दूर हो गए थे।'

वणिक्ने उस ब्राह्मणकी बात सुन कर उन्हें अपना गुरु बनाया और उनसे मायाबीज मन्त्र ग्रहण किया। पीछे उसने नवरात्रव्रतका अनुष्ठान किया। तदनन्तर नौ वर्ष बीत जाने पर देवी महेश्वरी ने पहर रातको उसके सामने प्रकट हुई और उसे अनेक प्रकारके वर दिए। उस वरके प्रभावसे उस वणिक्ने नाना प्रकारके सुख-सम्पत्तिका भोग कर अन्तमें स्वर्गलाभ किया था।

जनमेजयने व्यासदेवसे जब नवरात्रका विषय पूछा था, तब व्यासदेवने यों कहा था, 'यह व्रत प्रीतिपूर्वक वसन्तकालमें अथवा शरत्कालमें हो कर्त्तव्य है। वसन्त और शरत् ये दो ऋतु यमदंष्ट्रा नामसे प्रसिद्ध हैं। ये दो ऋतुएं विविधरूपसे अशुभ फल देती हैं। इसी कारण जो मनुष्य मङ्गलकी कामना करता हो, उसे यत्नपूर्वक इन दो ऋतुओंमें नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करना चाहिए। शरत् और वसन्त ऋतुओंमें मनुष्य घोरतर रोगोंसे आक्रान्त रहते हैं, यहां तक कि उनके प्राण भी नष्ट हो जाते हैं। अतः इन सब रोगोंकी शान्तिके लिए भक्तिपूर्वक नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करना मनुष्योंका एकान्त कर्त्तव्य है। प्रतिपद् तिथिमें समदेशमें विस्तृत स्थान पर तोरणद्वारका एक स्तम्भ और ध्वजसमन्वित एक मण्डप प्रस्तुत करे। देवीका पूजाकुशल ब्राह्मण द्वारा पूजन करावे और उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए नौ पांच, तीन वा एक ब्राह्मणसे चण्डीपाठ वा देवीपाठ भी करावे। इस प्रकार कार्यारम्भ हो जाने पर वेदीके ऊपर सिंहासन स्थापन करके उस पर आयुधविभूषिता भुजचतुष्टय सम्पन्ना वा अष्टादशभुजा मुक्ताहार आदि सर्वाभरण विभूषिता, सर्वलक्षणान्विता सिंहोपरिस्थिता, शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी देवीकी प्रतिष्ठा करे। यदि प्रतिमाका अभाव हो, तो उस सिंहासन पर पीठपूजार्थ नवार्ण मन्त्र और उसको बगलमें पञ्चपल्लवसमन्वित कुम्भकी स्थापना करे। नाना प्रकारके उपचारोंसे देवी पूजा विधेय है। जो मांसभोजी हैं, वे देवीकी पूजामें

पशुहिंसा कर सकते हैं। पशु बलिदानमें छाग और वन्य-वराहका बलिदान हो उत्तमकल्प है। देवीके आगे जिन पशुओंका बलिदान दिया जाता है, वे स्वर्गलाभ करते हैं। यही कारण है, पशुघातीको इसका पाप नहीं लगता। याज्ञिकी हिंसा अहिंसा समझी जाती है। नवरात्र-व्रतमें होमके लिए परिमाणानुसार एक हाथसे ले कर दश हाथ तक त्रिकोणकुण्ड और त्रिकोण स्थण्डिल बनाना उचित है। इस व्रतमें कुमारीपूजा, वैभवानुसार प्रतिदिन एक एक अथवा एक एक वृद्धि करके वा नौ नौ करके कुमारीपूजा करनी चाहिए। कुमारीपूजाका नियम इस प्रकार है—एक वर्षकी कुमारीपूजा कर्त्तव्य नहीं है। दो वर्षसे ले कर दश वर्षकी कुमारीका पूजन उत्तम माना गया है। इनमेंसे दो वर्षकी कन्या ही कुमारी है, तीन वर्षकी त्रिमूर्त्ति, चार वर्षकी कल्याणी, पांच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दश वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। उमरके अनुसार उक्त नाम ले ले कर कुमारीपूजा की जाती है। हीनाङ्गी, कुष्ठरोगिणी, व्रणान्विता, दुर्गन्धदूषिताङ्गी और दुष्टकुलसम्भवा कुमारीका पूजन नवरात्रव्रतमें निषिद्ध माना गया है। जो कन्या जन्मान्धा, केकराक्षी, काणी, कुरूपा, बहुरोमान्विता, रोगिणी या किसी प्रकारके यौवन चिह्नयुक्ता या अविवाहिता अथवा विधवाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, वे कुमारी नहीं हो सकती। नवरात्रव्रतमें जो उपवास नहीं कर सकते, वे यदि सप्तमी अष्टमी और नवमी ये तीन उपवास करें, तो कामना सिद्ध होती है।

पृथ्वी पर जो तुच्छ व्रत और दान कर्म किये जाते हैं उन सबसे यह नवरात्रव्रत विशेष फलदायक है। इस व्रतके करनेसे धन, धान्य, सन्तानवृद्धि, सुखसमृद्धि, आयु, आरोग्य और मोक्ष मिलता है। (देवीभाग० ३।२४-२७ अ०)

जिस प्रकार बङ्गालदेशमें दुर्गोत्सव होता है, उसी प्रकार युक्तप्रदेश, राजपूताने, दक्षिणप्रदेश और उड़ीसामें नवरात्र उत्सव होता है। बङ्गालका दुर्गोत्सव आश्विनके शुक्लपक्षमें होता है, लेकिन नवरात्र सभी जगह आश्विनमासमें नहीं होता, कहीं तो आश्विनमें, कहीं चैत्रमें वासन्ती पूजाके समय होता है।

राजपूतानेमें चैत्र सुदी प्रतिपद् तिथिको नवरात्र उत्सव शुरू होता है और दशहरा अर्थात् विजयादशमीके उत्सवमें समाप्त होता है। अमोज नामक स्थानमें हो यह व्रत बहुत समारोहसे किया जाता है। उदयपुरमें महारानाके घरमें इस समय तलवारकी पूजा होती है।

प्रथम दिन नगरके सुपुरुष नर तथा नारियां उद्यान-विहार तथा भगवती गौरीके उद्देश्यसे स्तोत्रपाठ करती हैं और अपनेको अनेक प्रकारकी पुष्पमालाओं तथा पुष्पगुच्छोंसे सजा कर उद्यानमें आनन्द लूटती हैं। झूले पर झूलती और गान करती हैं। यह उत्सव समूचा दिन रहता है, पीछे शामको वे सबके सब अपने घर लौटती हैं। इसे कोई कोई "गौर्युत्सव" भी कहते हैं। लेकिन राजपूत लोग बोल चालमें इसे "गाङ्गोड़" कहते हैं।

सूर्यके मेषराशिमें संक्रमित होनेसे नगरके बहिर्देशसे गौरी और ईश्वरकी प्रतिमा बनानेके लिए मट्टी लाते हैं। प्रतिमाके तैयार हो जाने पर उसे सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हैं। मूर्त्तिके सामने एक जगह थोड़ा कोड़ कर उसमें जो बुन देते हैं। जब जौका पौधा कुछ बड़ा हो जाता है, तब स्त्रियां एक दूसरेका हाथ पकड़ती हुई, देवीके सामने जाती हैं और वहां नाच गान करती हैं। बाद वे लोग उन छोटे छोटे पौधोंको उखाड़ कर घर लाती और अपने अपने स्वामी पुत्रको देती हैं। सम्भ्रान्त घरमें पारिवारिक प्रतिमा रहती है और कहीं नगरके बाहर जनसाधारणके लिए प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती है। पीछे एक दिन लोकयात्राका आयोजन होता है। देवदेवीको भलीभांति सजा कर किसी तालाबके किनारे ले जाते हैं। उदयपुर महारानीकी प्रतिमाकी लोकयात्रा हो बहुत धूमधामसे सम्पन्न होती है। सुरूपा, मृगनयनी और नागिनी वेणीविशिष्टा युवतियां देवीकी सखीके रूपमें हाथोंमें चमर लिए आगे आगे चलती हैं। यात्राके पहले नगाड़ा बजता है और एक लिङ्गगढ़से तोपोंकी आवाज होती है। उस समय सब प्रतिमाको ले कर किसी निर्दिष्ट तालाबकी ओर यात्रा करते हैं। महाराना स्वयं सामन्तोंके साथ नाव पर चढ़ कर वहां पहुंच जाते हैं। राहमें, घाट पर और अट्टालिकाओंकी छत पर दर्शकोंकी अपार भीड़ रहती है।

किया फूलकी माला पहनी हुई रहती है। सुसज्जित किये आसन पर प्रतिमा स्थापित होती है और उसके दोनों बगल रमणियां चामर डुलाती जाती हैं तथा सामने आसासोटा लिये स्त्रियां दो आगे आगे चलती हैं। घाट पर जब प्रतिमा पहुंच जाती है, तब महाराणा पारिषदके साथ नाव पर चढ़ जाते हैं। घाटके अगले किनारे प्रतिमा रखनेके लिए एक सुन्दर मञ्च बना होता है। प्रतिमा जब मञ्च पर बैठाई जाती है, तब महाराणा अपना आसन ग्रहण करते हैं। स्त्रियां एक दूसरेका हाथ पकड़े मूर्त्तिका प्रदक्षिण और साथ साथ तालो बजा बजा कर स्तोत्रपाठ करती हैं। सामन्तगण माथ झुका कर अपने अपने स्थानसे गौरवसे उन्नत होते और फिर नीचे कर उन रमणियोंको सम्मान दिया करते हैं। स्त्रियां भी सिर नीचे किये हुए वीरों का अभिवादन करती हैं। उत्सवके सभी कार्य स्त्रियों द्वारा ही किये जाते हैं। गौरी और ईश्वर अपूर्णोंके आकारमें बने होते हैं। प्रतिमा जब तक घाट पर रहती है, तब तक गौरीदेवी स्नान करती हैं, ऐसा उन लोगों का विश्वास है। इसी कारण कोई पुरुष उस समय देवकार्यमें हाथ नहीं डालते, डालनेसे पाप होता है, ऐसी लोगोंकी धारणा है। कुछ समय बाद महाराणाकी प्रतिमा राजभवनको लौटाई जाती है। उस समय महाराणा दलबलके साथ नाव पर चढ़ घाटके नाना स्थानो-के अधिवासियोंका उत्सव देखने निकलते हैं। सप्तमी, अष्टमी और नवमी केवल तीन दिन ही इस प्रकारकी धूमधाम होती है। कर्नल टाड अनुमान करते हैं कि "अष्टा" और "नौरो" इन्हीं दो शब्दोंके योगनिष्कारसे "आहेड़" शब्द निकला है। अष्टमीके दिन अश्ववाहनोंका विशेष उत्सव होता है और नवमीके दिनको नव पत्रिकाका विशिष्ट दिन समझ कर उस दिन होम किया जाता है। इस दिन सब कोई भगवतीको पूजा चढ़ाते हैं। इस दिन रामनवमीके लिए रामका जन्मोत्सव होता है। उदयपुरके राजप्रासादमें उसी दिन हाथी घोड़े आदि-को भलीभांति सजा कर तथा अस्त्र शस्त्रको परिष्कार कर उनकी पूजा करते हैं। विजयादशमीके दिन "दशहरा" होता है। इस दिन उदयपुरमें सैन्यपरिचालन और कृत्रिम युद्धाभिनय होता है।

पूनामें नवरात्र आश्विनमासमें होता है। प्रतिपद्से नवमी तक "नवरात्र" और दशमीको 'दशहरा' उत्सव होता है। प्रभु नामक कायस्थोंमें बहुतसे ऐसे हैं, जो फलमूल खा कर नौ दिन बिताते हैं। नवमीके दिन होम होता है। इन दिनों विवाहिता कोङ्कणी-ब्राह्मण रमणियां घर घर घूमती हैं और भगवतीके नाम पर करण्डमें भीख मांग लाती हैं। अनेकके घरोंमें इन दिनों अथवा उस करण्डकी पूजा करते हैं। इस पूजामें एक ब्राह्मण-दम्पतीको बुला कर उनके सामने खड़ा करते हैं और उनका करण्ड एक चौकीके ऊपर रखा जाता है। जो स्त्रियां पूजा करती हैं, वे करण्डके ऊपर तेल, हल्दी और सिन्दूर लेप देती हैं, एक टिकुली भी साट दी जाती है। बाद वे अरवा चावलसे करण्डको भर कर उसकी आरती उतारती हैं। बाद ब्राह्मण रमणी पूजाकारिणीके कपाल पर तेल, हल्दी, सिन्दूर और टिकुली लगाती है। पुरुष लोग भी इस समय अञ्जलिसे चावल और तेल आदि पा कर उन्हें आशीर्वाद देते हैं और यह बता कर इस-की सूचना करते हैं। इस दिनके सिवा किसीके घरमें किसी उत्सवमें शङ्खध्वनि नहीं होती। उनका विश्वास है, कि दूसरे समय शङ्खध्वनि करनेसे लक्ष्मी भाग जाती हैं। कुमारी और सधवा इन दिनों एक दूसरेके घर न्योता जाती आती हैं। जिसके घर वे जाती हैं उस घरकी रमणियां उन्हें बैठनेके लिए चटाई देती हैं और तेल, हल्दी, सिन्दूर, फूलकी माला और टिकुली आदिसे उनका स्वागत करती हैं। जाते समय उनके अञ्चलमें मुट्ठी सुपारी और पैसा बांध देती हैं।

दशहराके दिन कायस्थ लोग प्रातःस्नान कर अस्त्रदेवता की पूजा करती हैं। स्त्रियां प्राङ्गनमें अल्पना करके उसमें पञ्च पाण्डवोंके नाम पर पांच ढेर गोबर एक पत्ते पर रखती हैं और उस पर फूल सिन्दूर या अबीर छिड़क देती हैं। जिनके घोड़े होते, वे उन्हें अस्त्रशस्त्रसे सजा कर घरके सामने खड़ा करते हैं। बाद में उनके गले तथा चारों पैरमें फूलकी माला पहना देते और पीठ पर शाल आदि बिछा देते हैं। तदनन्तर अपना अस्त्रशस्त्रों दीप, नारियल बताशा, सिन्दूर, अरवा चावल, पान, सुपारी और रजत-मुद्रा दे कर उनका वरण करते हैं। जिस रजतमुद्रा

द्वारा घोड़ोंको वरण किया जाता है वह अश्वपालकका होता है। अश्वपालकको रुपयेके अलावा पगड़ी और धोती भी मिलती है। इस दिन ये लोग मांस मिष्टान्नादि खूब खाते हैं। ग्रामकी रमणियां अपने पुत्रोंको साथ ले मन्दिर जाती हैं और पूजा चढ़ाती हैं। वहांसे लौट करके दरवाजे पर बैठती और स्वामीकी अपेक्षा करती है। स्वामीके आने पर वे उन्हें एक चौकी पर बिठा कर कपाल पर सिन्दूर लगाती, मस्तक पर अरवा चावल छिड़कती, बताशा और नारियल खानेको देती हैं। तदनन्तर वे उनकी आरती उतारती हैं। स्वामी स्त्रीके हस्तस्थित पात्रमें २से १० रुपये तक देते हैं। बाद वे गृहदेवताके निकट जाकर रक्षित तलवार, बन्दूक, कलम, दवात, छूरी, शास्त्र ग्रन्थ आदिकी पूजा करती हैं। इसी प्रकार नवरात्रिको नौ दिन तक भगवतीकी पूजा, होम, चण्डीपाठादि होते हैं और स्त्रियां हरिद्रादि गान और मङ्गलानुष्ठान करती हैं।

दाक्षिणात्य प्रदेशमें नवरात्रव्रतको ७ वैदिक ब्राह्मण व्रती होते हैं। इनमेंसे एक पौरोहित्य करते, दूसरे तन्त्रधारक होते, तीसरे ललितपारायणके अर्थात् अगस्त्य कृत हयग्रीव मूर्त्तिका स्तोत्र प्रतिदिन तीन बार पढ़ते, चौथे ऋग्वेदोक्त मन्यसूक्त १०८ बार, पांचवें श्रीसूक्त १०८ बार, छठें महिम्नस्तोत्रपाठ और सातवें वैदिक ब्राह्मण पञ्चाक्षर शिवमन्त्र अर्थात् 'ओं नमः शिवाय' यह मन्त्र चार दिन तक बारह हजार बार पाठ करते हैं। देवीकी षोड़शोपचारसे पूजा होती है। रातको पूजा समाप्त हो जाने पर १२ वेदगायक स्वस्तिपाठ करते हैं। स्वस्तिपाठका नियम—छठीके दिन ग्रामको पहले चित्ति, शिक्षा, ब्रह्मविद्या, भृगुवल्ली और नारायण उपनिषद्का प्रथमांश सप्तमीके दिन ग्रामको नक्षत्रेष्टि और 'अग्निहोत्रपदम्' तथा अष्टमीके दिन ग्रामको पुरोडाशका प्रथमार्द्ध और नारायण उपनिषदका अवशिष्टांश, 'विश्वरूपवन' एवं नवमीके दिन सन्ध्या समय 'अरुणम्', 'अपवदन्ति क्रमन्', यजुर्वेदीय ब्राह्मणके तृतीय अष्टकका प्रथम और द्वितीय 'पदम्', आरुणेयका प्रथम 'पदम्', सन्तमित मन्त्रका प्रथम अष्टकका द्वितीय 'पदम्', यथाक्रम गान करते हैं। इस प्रकारके वेद गानका नाम है स्वस्तिवाचन। स्वस्तिगान शेष हो जाने पर आरती उतारी जाती है। पीछे मन्त्रपूर्वक साम ऋग्वेद और भूसूक्तका पाठ करके पुष्पाञ्जलि देते हैं। इसके बाद पूजा शेष हो जाती है और अन्नका महानैवेद्य भोग लगता है। भोगके बाद व्रतीगण आहार करते हैं। दशमीके दिन ५० वैदिक ब्राह्मण आ कर निरञ्जन करते हैं। ये सब ब्राह्मण पृथक् घरमें अन्नादि पाक करके देवीको भोग देते हैं। बाद सभी अपने अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ, समस्वरमें वेदगान कर भोजनादि करते हैं। प्रायः सभी जगह इस नवरात्रव्रतमें पशुबलि नहीं होती। विजयनगरके महाराजके घर तीन दिनमें तीन पशुबलि दी जाती है। इसमें तैलङ्गी ब्राह्मण शामिल नहीं होते, केवल उत्कल ब्राह्मण बलिकार्य कराते हैं।

महाराष्ट्रदेशसे ले कर दक्षिण भारतके ब्राह्मणोंमें बलिदानकी प्रथा नहीं है। यह प्रथा केवल उत्कल देशसे ले कर पूर्व और उत्तर भारतमें प्रचलित है।

नवराष्ट्र (सं० क्ली०) उशीनर राजाका एक देश जिसे सहदेवने दक्षिणकी ओर दिग्विजय करते समय जीता था।

नवल (सं० पु०) १ नवीन, नूतन, नव्य, नया। २ सुन्दर। ३ नवयुवक, युवा, जवान, । ४ उज्ज्वल, शुद्ध, साफ।

नवल (अ० पु०) मालका किराया जो जहाजवालोंको दिया जाता है।

नवर्च (सं० क्ली०) नव ऋचो यत्र, अच् समासान्तः। नव ऋक्युक्त सूक्तभेद, एक प्रकारका सूक्त जिसमें नौ ऋक् होते हों।

नवल—लखनऊके उनाव जिलान्तर्गत एक प्राचीन जनपदका विध्वस्त भग्नावशेष। यह कल्याणी नदीके किनारे बाङ्गरमौसे एक कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। है। यहांके लोगोंका कहना है, कि बाङ्गरमौके अभ्युदयके पहले यह देश बहुत समृद्धशाली था। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्गने इस देशको नवदेवकुल बतलाया है।

नवलअजब-एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुत-सी कविताएं रचीं; उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

देशाई आज तक भी इसका कुछ अंश जागीररूपमें भोग कर रहे हैं। १८७० ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व ६७००) रु०का है। शहरमें एक चिकित्सालय और तीन स्कूल हैं।

२ बम्बईके धारवार जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° २१' से १५° ५२' उ० और देशा० ७५° ५' से ७५° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६५ वर्गमील और जनसंख्या लगभग १०५८७६ है। इसमें ३ शहर और ८३ ग्राम लगते हैं। यहां छोटा नरगुन्द, बड़ा नरगुन्द और नवलगुन्द नामके तीन पहाड़ हैं जो उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिममें विस्तृत हैं। नदीके जलसे ही कृषिकार्य चलता है।

नवलदास—एक हिन्दी कवि। ये गुरगांव बाराबङ्कीके निवासी थे। इन्होंने ज्ञानसरोवर, भागवत दशमस्कंध-भाषा और भागवतपुराण भाषा जन्मकाण्ड नामक ग्रन्थ प्रणयन किये।

नवलपुर—बम्बई प्रदेशके खान्देशके अन्तर्गत मेहवास विभागका एक छोटा भील राज्य। जनसंख्या दो तीन सौसे अधिक नहीं है। यहांके भील सरदारोंको पोष्य पुत्र लेनेका अधिकार नहीं है।

नवलवधू (सं० स्त्री०) केशवके अनुसार मुग्धानायिका चार भेदोंमेंसे एक।

नवलराम—हिन्दीके एक कवि। ये रामचरणके शिष्य थे। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी तथा इन्होंने सर्वाङ्गसार और नवलसार नामक दो ग्रन्थ बनाए।

नवललाल—हिन्दीके एक कवि। इनकी बनाई हुई अनेक कविता पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

> "पिय मनहरनी पे मृगनयनी
> मान छांड़ो हो चम्पकवरणी तू विचित्र तरुणी।
> वे तो नवललाल हेतसो बुलाय लेत सू चन्द्रमुखी
> मेरे जान तरफ तरफ जियं होत तेरीमरणी ॥"

नवलसिंह—भरतपुरके एक जाट राजा। इनके बड़े भाई रतनसिंह एक छोटा लड़का छोड़ कर परलोकको सिधारे थे। बाद नवलसिंह उक्त शिशुके अभिभावक हो कर राज्य चलाने लगे। १७६९ ई०में भतीजेकी मृत्यु हो गई। बाद आप ही राजा बन बैठे। इस समय महाराष्ट्रगण खूब चढ़े बढ़े थे। उन्होंने भरतपुर राज्य पर आक्रमण कर राजासे कर वसूल किया था। नवलसिंह और उनके भाई रणजितसिंहने बल्लभगढ़ जाता था। उस दुर्गके पूर्वाधिकारीने जब दिल्लीसे सहायता मांगी, तब उनकी सहायताके लिए एक दल सेना भेजी गई थी। लेकिन वह सेना इन दो भाइयोंको परास्त कर न सकी। बाद १७७५ ई०में इन्होंने दिल्ली पर चढ़ाई करनेके लिए यात्रा की। राहमें ही नजफ खांने इन्हें परास्त किया और ये किसी तरह जान बचा कर डिगके दुर्गमें जा कर रहे। १७७६ ई०में उसी दुर्गमें इनकी मृत्यु हुई।

नवलसिंह—हिन्दीके एक कवि। ये झांसीके निवासी थे और राजा सांथरके दरबारमें नौकर थे। इनका जन्म सं० १८०८में हुआ था। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। इन्होंने नामरामायण और हरिनामावली नामक दो ग्रन्थ भी बनाए हैं।

नवला (सं० स्त्री०) तरुणी, नवीन स्त्री।

नवलिङ्ग—स्वयम्भु पुराणोक्त वाघमती नदीतीर्थमालाके अन्तर्गत बौद्धतीर्थ विशेष। उक्त पुराणमें लिखा है, कि ब्रह्मा, दश दिक्पाल और कृष्णराधिका ये सब इस तीर्थमें स्नान करने गये थे।

नववधू (सं० स्त्री०) नवा नूतन परिणीता वधूः। नूतन-परिणीता स्त्री, वह स्त्री जो हालमें ही ब्याही गई है।

नववध्वागमन (सं० क्ली०) नूतन परिणीता स्त्रीका स्वामिगृहमें प्रथमागमन। विवाहके बाद स्त्री पिताके घरसे पहली बार जो स्वामीके घर आती है, उसीका नाम नववध्वागमन है।

स्त्रीके रविशुद्धि होनेसे अगहन, फागुन और वैशाख इन तीन महीनोंके किसी एक महीनेमें विविध प्रतिलोमग शुक्र और संक्रान्तिदिन छोड़ कर यात्रा प्रकरणोक्त और गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें नववधूका आगमन प्रशस्त है। एक ग्रामसे अथवा एक घरसे दूसरे घर जानेमें प्रति शुक्रका दोष नहीं लगता। यात्रा प्रकरणोक्त शुभदिनमें पितृगृहसे यात्रा और गृहप्रवेशोक्त शुभदिनमें स्वामिगृह-प्रवेश कर्त्तव्य है।

"चैत्रमासे कुलगृहगमनो जन्मतो वा वरिष्ठाद्
मासः पूर्णो न भवति यदा सम्मुखे वापि शुक्रः।
मैत्रे कुर्म्मे ध्रुविवि च न भवेत् ससरवस्येतदपि
स्वाती भद्रे प्रथमे नववधू वेशप्रवेशाभिसरं स्यात्॥
मधुमैत्रपरशुभेषु विमलौ भास्करे गते मासके
पुष्ये पौष्णधनिष्ठादिशुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे।
रिक्ता च प्रतिपच्चिके शुभतिथौ जीवस्य शुक्रौ तथा
वारोदयाशुभावलिके नववधूः नित्यायशसा मोदते॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

विवाहके बाद पीछे यदि निजगृहमें ज्ञानोदय और रजोदर्शन सम्भव हो, उस समयमें तथा यदि विवाह काल न पाया जाय अर्थात् फागुन, वैशाख और अगहन मास न हो, तो स्वामी यात्रोक्त शुभदिन देख कर नववधू-को अपने घर ला सकते हैं। यदि ऐसा भी न हो, तो गोचर शुद्धिमें शुभदिनमें शुक्लपक्षमें नववधू अपने घर आ सकती है।

"काश्यपेषु वशिष्ठेषु भरद्वाजेष्वङ्गिरःसु च।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु पुरः शुक्रो न दुष्यति॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

काश्यप, वशिष्ठ भृगु, आदित्य अङ्गिरा, भारद्वाज और वात्स्य इन सब गोत्रोंका पुरःशुक्र दोषावह नहीं होता।

इसका विषय मुहूर्त्तचिन्तामणि और उसकी टीकामें इस प्रकार लिखा है। नवविवाहिता कन्याके स्वामिगृहमें आनेका नाम नववधू-प्रवेश वा नववध्वा-गमन है। विवाह दिनसे लेकर १६वें दिनके अन्दर नव वधूका प्रवेश कराना होता है। इसमें यदि चन्द्र तारा शुद्धिमें और शुभलग्नमें समदिनके मध्य हो, तो दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें बारहवें, चौदहवें और सोलहवें दिन और यदि विषम दिनमें हो, तो पांचवें सातवें और नवें दिनमें नववध्वागमन कराना चाहिये।

यदि किसी प्रतिबन्धकवश १६वें दिनके अन्दर नववध्वागमन न हो, तो विषम मास, विषम दिन और विषम वर्षमें नववध्वागमन कर सकते हैं, लेकिन यह कार्य विवाहवर्षसे ५वें वर्षके भीतर होना चाहिये यदि यह विवाह वर्षमें करना चाहें, तो विवाह माससे प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम, नवम और एकादश मासमें तथा इन मासोंके विषम दिनमें नववधू-प्रवेश शुभ है। इसमें यदि किसी कारणवश न हो, तो प्रथम, तृतीय या पञ्चम वर्षके शुभ दिनमें नववधूप्रवेश करा सकते हैं। पांच वर्षके अन्दर भी यदि किसी प्रतिबन्धकवश नव-वध्वागमन न किया जाय, तो उसके और कोई विशेष नियम नहीं है, केवल इच्छानुसार शुभदिनमें करा सकते हैं। (पीयूषधारा)

नववध्वागमनके विहित नक्षत्र प्रभृति—उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, पुष्या, हस्ता, चित्रा, अनुराधा, रेवती, श्रवणा, धनिष्ठा, मृगा और स्वाति इन सब नक्षत्रोंका नववधूप्रवेश शुभप्रद है। रिक्ता भिन्न तिथि, रवि मङ्गल और शनि भिन्न वार इनके लिये प्रशस्त है। कोई कोई बुधवारको नववधू-प्रवेशके लिये निषेध बतलाते हैं। बुध नपुंसक है, इस कारण उस दिन नववधूप्रवेश शुभप्रद नहीं होता और शनिवार भी इसी कारण वर्जनीय है। (पीयूषधारा)

विवाहके बाद किस किस मासमें नववधूका पति गृहमें रहना अच्छा नहीं है, इसका विषय मुहूर्त्त-चिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है—

"ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः॥"

(मुहूर्त्तचि०)

विवाहके बाद नववधू यदि प्रथम ज्येष्ठमासमें स्वामि गृहमें रहे, तो पतिके बड़े भाईकी हानि, आषाढ़मास में रहे, तो सासकी हानि पौषमासमें रहे, तो श्वशुरकी हानि होती है। प्रथम अधिक मासमें रहनेसे पतिका और क्षयमासमें रहनेसे स्वयं अपने शरीरका नाश होता है। इसी प्रकार चैत्रमासमें नववधूको पितृगृहमें नहीं रहना चाहिये, रहनेसे पिताकी हानि होती है।

विशेष विवरण द्विरागमन शब्दमें देखो।

नवपरिका (स० स्त्री०) नवो वरोऽस्याः नव वर ठन्। नवोढ़ा, नवविवाहिता वधू।

नववर्ष (स० पु० क्ली०) नवमित वर्षम्। १ भार तादि नौ वर्ष। २ नई वर्षा। ३ नूतन वर्ष, नया वर्ष।

नववल्लभ (स० पु०) एक प्रकारका अगर जिसे दाह

मगर कहते हैं और जिसकी गिनती गन्धद्रव्योंमें होती है।

नववस्त्र (सं० क्लो०) नवं वस्त्रं कर्मधा०। नवीन वसन, नया कपड़ा। पर्याय—अनाहत, आहत, अहत, तन्त्रक, निष्प्रवाणि और नवाम्बर।

नववस्त्रपरिधान (सं० क्लो०) नववस्त्रस्य परिधानं ६-तत्। नूतन वस्त्र परिधान, नयावस्त्र पहनना। नया वस्त्र शुभ दिन देख कर पहनना चाहिए। इसका विषय शुद्धिदीपिकामें इस प्रकार लिखा है—

रोहिणी, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्या, विशाखा, हस्ता, चित्रा, उत्तरात्रय, अश्विनी, स्वाति, पुनर्वसु और रेवती-नक्षत्रमें, जन्म दिनमें, वृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें, तथा विवाह आदि उत्सवमें नया वस्त्र पहनना चाहिये। किसी किसीके मतानुसार सोमवार भी नवीन वस्त्र पहननेका प्रशस्त दिन है।

नव वासुदेव (सं० पु०) रत्नसारानुसार जैन लोगोंके नव-वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ट, स्वयम्भु, पुरुषोत्तम, सिंहपुरुष, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण। कहते हैं, कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थङ्करोंके समयमें नरक गये थे।

नववास्तु (सं० पु०) नवं वास्तु यस्य। राजर्षिभेद, एक वैदिक राजर्षिका नाम।

नवविंश (सं० त्रि०) नवविंशति संख्याका पूरण, उन्तीसवां, जो क्रमसे अट्ठाईसके बाद हो।

नवविंशति (सं० स्त्री०) नवाधिका विंशतिः। १ नवाधिक विंशति संख्या, बीस और नौकी संख्या, २९। (त्रि०) २ बीस और नौ, तीससे एक कम।

नवविध (सं० त्रि०) नव विधा यस्य। नव प्रकार, नौ तरह। विष्णुने नौ प्रकारके पातकका उल्लेख किया है, यथा—अतिपातक, महापातक, अनुपातक, अपपातक, जातिभ्रंशकर, सङ्करीकरण, अपात्रीकरण, मलावह और प्रकीर्णक।

विष्णुके अष्टदल पद्ममें प्रद्युम्नादि ८ हैं और पद्ममें वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह, वराह और वामन ये नौ नवव्यूह विष्णु हैं।

नवविधान—ब्राह्मधर्मके निर्गुण ईश्वर भक्तोंको ध्यानधारणामें विषयीभूत नहीं हैं, यह जान कर ब्राह्मधर्मावलम्बी स्वर्गीय केशवचन्द्रसेनने अपने शेष जीवनमें बौद्ध, ईसाई, महम्मदीय, चैतन्य और ब्राह्म धर्मका समन्वय करके जो एक उदार मत प्रचलित किया उसीका नाम नवविधान है। नवविधान क्या है, यह निम्नलिखित विषयोंसे जाना जा सकता है।

विधान कहनेसे ही विधाताका बोध होता है। ईश्वरको बिना विधाता समझे विधानका बोध नहीं होता। नवविधानमें ईश्वर हैं यह विश्वास करना होगा। केवल ईश्वर पर ही विश्वास करनेसे काम नहीं चलेगा, ईश्वर जीवन्त हैं, सदा जाग्रत हैं और सगुण हैं ऐसा जानना होगा।

निर्गुण ईश्वरवाद भारतवर्षमें विशेषरूपसे प्रचलित है। विशिष्ट पण्डितोंने अपना दिमाग लड़ा कर देखा है, यदि ईश्वर हैं, तो वे निर्गुण छोड़ कर सगुण नहीं हो सकते। निर्गुण शब्दसे कोई गुण नहीं है, अपदार्थ नहीं है ऐसा समझा जाता है। विद्वानोंका कहना है कि अन्त विशिष्ट पदार्थोंके गुण हैं। गुणसे पदार्थ समूहका ज्ञान होता है। सभी सृष्टपदार्थ गुणसे ही पहचाने जाते हैं। पदार्थसे यदि गुण अलग कर लिया जाय, तो पदार्थका अस्तित्व नहीं रहता। सृष्टपदार्थ अनेक गुणोंसे परिपूर्ण हैं। उन गुणोंको अलग कर जब केवल सत्ता रह जाती है, तब पण्डित लोग उसीको निर्गुण या ब्रह्म बतलाते हैं। यही सत्ता अनादि, अनन्त, महान् और एकमेवाद्वितीयम् है। इस परम पदार्थको कोई इच्छा नहीं है, अतः ये कुछ भी नहीं कर सकते। इच्छा एक गुण है। इच्छा रहनेसे ही गुणविशिष्ट हो कर ब्रह्म निकृष्टत्वको प्राप्त होते हैं। उस समय फिर केवल सत्तामात्र उनकी संज्ञा नहीं रहती। सुतरां इस निर्गुण ईश्वरने संसारकी सृष्टि की, यह असम्भव है। तब प्रश्न उठ सकता है कि सृष्टि किसने की? इस पर विद्वान् लोग कहते हैं कि उन्होंने स्वयं संसारकी सृष्टि तो नहीं की, पर माया नामक एक शक्ति थी उसीसे इन्होंने सृष्टि कराई। उसी माया द्वारा वे एक थे और उसीसे वे अनेक हो गये अर्थात् यह विश्व ही वे हैं। वही सत्ता केवल रूपान्तर है।

मनुष्य जीव निर्गुण जीवको नहीं समझ सकता। इसीसे भारतवर्षमें देव-देवियोंकी सृष्टि हुई है। जीव साकार है सान्त है और मनुष्य है, जैसा ही समझ है, वैसा उसका आकार है। अतः यह जीव ब्रह्म नहीं हो सकता। जो ध्यानमें नहीं आ सकते, वैसे निर्गुणको, जीवका कोई प्रयोजन नहीं, अर्थात् वे जीवके किसी काममें नहीं आ सकते। अतः नवविधानके मनुष्य ब्रह्म ही उपास्य और ध्येय हैं, ऐसा समझा जाता है।

अनन्तकी धारणा कैसी है उसकी भी नवविधानाचार्यने ऐसी व्याख्या की है। हम लोग आकाशका अन्त नहीं कर सकते, आकाशका अन्त कहां है यह भी नहीं जानते और न दया पुण्य आदि गुणोंका शेष ही जानते हैं। सर्वाङ्ग सुन्दरका अन्त नहीं है। अतः हम लोगोंके मनुष्य मनमें ही इसका जन्म है। हम सान्त रह कर भी अनन्तका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। नवविधान पर विश्वास करनेसे मनुष्य परमेश्वर पर विश्वास करता होता है। ऐसा विश्वास करनेसे ही हम लोगोंके क्षुद्र मनमें अनन्त ज्ञान आ जाता है, परमेश्वर भी अनन्त है यह भी माना जाता है।

यूरोपका ब्रह्मवाद भारतवर्षके जैसा नहीं है। यहां भी निर्गुण ब्रह्मकी कल्पना की जाती है। यूरोपके ब्रह्म निर्गुण होने पर भी सृष्टि करनेके समय इच्छा अवलम्बन करके सगुण हो जाते हैं, मायाका अवलम्बन नहीं करते, किन्तु सृष्टिके बाद उनमें और सृष्टिमें एकत्व नहीं रहता और न रूपान्तर ही रहता है। वे सृष्टिसे अतीत, भिन्न और श्रेष्ठ हैं। उन्होंने जगत्की सृष्टि करके उस पर अनेक नियम बनाये थे। उन्हीं नियमोंके अधीन संसार चल रहा है और चिरकाल तक चलेगा। अब ईश्वर भी इन नियमोंको परिवर्तन नहीं कर सकते। सुतरां इस प्रकारके ईश्वरसे भी जीवका प्रयोजन नहीं है। जीव चाहे उनकी पूजा करे, चाहे उनसे प्रार्थना करे, वे कुछ भी कर नहीं सकते। क्योंकि वे नियमाधीन हैं, नियमका उल्लङ्घन किसी हालतसे कर नहीं सकते। भक्तोंकी प्रार्थना सुनना उनके लिये असम्भव है। नियम पालन करना ही उनका एक मात्र धर्म है। धर्म पालित होनेसे जीवका कर्त्तव्य किया गया, ईश्वरके निकट प्रार्थनाकी आवश्यकता नहीं रही। यूरोपके वैज्ञानिक पण्डितोंका कहना है कि सृष्टिके पहले परमाणुराशि विश्लिष्ट भावसे थी, क्रमशः उसे एक बार धक्का द्वारा ठेला था। उसीसे परमाणु राशि संयुक्त हो गति और गतिविशिष्ट हो कर घूमने लगी। उसके घूमनेसे तापकी उत्पत्ति हुई। वह उत्ताप घनीभूत हो कर एक अग्निमय मण्डलके रूपमें दिखाई दिया। यही आदि सूर्य है। क्रमशः सूर्यका मध्य भाग स्फीत और विच्छिन्न हो कर दूरमें गिरा और सूर्यके आकर्षणसे वह वहीं पर घूमने लगा। इसी प्रकार ग्रह उपग्रहकी सृष्टि हुई। पीछे ग्रहविशेषमें ताप—ह्रासके वाष्पकी, वाष्पसे जलकी, जलसे उद्भिद्की, उद्भिद्से जन्तु आदि जीवोंकी और पीछे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई। तदनन्तर मनुष्य भी प्रकृतिके प्राकृतिक नियमोंके अधीन हुए। उन नियमोंका पालन करना उनका धर्म है। अतः ईश्वरकी स्थिति हो सकती है, और है भी लेकिन उनके साथ जीवोंका सम्बन्ध नहीं हो सकता। यही कारण है, कि यूरोपके ब्रह्मवादमें जन्म, मृत्यु, विवाह, नीति और अनीति ये सब ईश्वरके हाथके बाहर हैं, केवल अवस्थाका फल है।

नवविधानाचार्य कहते हैं—ईश्वर चाहे भारतीय दर्शनानुसार निर्गुण ब्रह्म हो, चाहे यूरोपीय दर्शनानुसार नियमाधीन हो, पर जीव ग्राह्य नहीं हो सकता। वे भावस्वरूप हैं, सारे संसारमें वर्त्तमान हैं। यूरोपीय वैज्ञानिक पण्डित लोग उत्ताप, ताड़ित, माध्याकर्षण चुम्बक और रासायनिक आकर्षण आदिको जो पदार्थोंका शक्ति या अवस्थागत गुण मानते हैं, वे नवविधानाचार्यके मतानुसार उन उन पदार्थोंकी शक्तिस्वरूप हैं—परब्रह्मशक्तिके ही रूपान्तर हैं। वे भाव और शक्ति रहते निराकार हैं। वे ही ज्ञान और चिन्ता हैं। अतः वे अनन्त हैं। सारी शक्तियां उनसे निकली हैं, इस कारण वे सान्त हैं।

वे अनन्तशक्तिका अवलम्बन करते हुए विश्वसंसार चला रहे हैं। बड़ेसे बड़े तारामण्डलसे ले कर छोटेसे छोटे परमाणुपुञ्ज तकको वे अपने हाथसे चला रहे हैं।

नवविधानाचार्यका यह भी कहना है, कि ईश्वर इनके भक्त हैं अर्थात् भक्तादिके निकट तीन भावोंसे

प्रकाशित होते हैं—पितृभावमें, पुत्रभावमें और पवित्र भावमें। उनके सभी भक्तोंका उनका अस्तित्व प्रतिपादन करना विशेष कर्तव्यकार्य है और इसका प्रतिपादन करना भी विशेष कष्टसाध्य व्यापार नहीं है। प्रति मुहूर्त्तमें प्रति निश्वास प्रश्वासमें वे अपने अस्तित्वका प्रचार करते हैं। पितृभावमें वे इसी प्रकार प्रकाशित होते हैं। वे ही एकमात्र संसारके रक्षक और भक्षक हैं, इसीसे वे पिता के स्वरूप हैं। इसका प्रमाण करना सहज नहीं है। एक बार यदि आकाशकी ओर नजर दौड़ाई जाय, तो देखने में आता है कि वे प्रकाण्ड जगत्की सृष्टि करके चला रहे हैं। एक एक नक्षत्र और सूर्य तेजोमय तथा गोलाकार हैं। उनके चारों ओर कितने ग्रह उपग्रह घूम रहे हैं। उन नक्षत्रों और सूर्यादिकी गतिके विषयमें यदि एक बार विचार किया जाय, तो विचारशक्ति स्तम्भित हो रहती है। इन सब गतियोंका विषय थोड़ा गौर कर देखिए। पृथ्वी सूर्यसे ९३०००००० मील दूर है। सूर्यको यदि एक गोलाकारका मध्यबिन्दु मान लें, तो उसका व्यास (Diameter) १८६०००००० मील होगा। व्यास मालूम होने पर गोलाकारकी परिधि सहजमें स्थिर की जा सकती है। उस व्यासको ३१से गुना करने पर परिधि निकल आवेगी, अर्थात् ५८५०००००० मील होगी। इसी गोलाकारकी परिधि हो कर पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है। ५८५०००००० मील घूमनेमें पृथ्वीको एक वर्ष लगता है। उतने मील घूमनेमें यदि ३६५ दिन लगते हों, तो २४ घण्टोंमें वह ६७००० मील घूमेगी। इस हिसाबसे पृथ्वी एक मिनटमें ११६ कोस और प्रति मुहूर्त्तमें १८ मील जाती है। मान लो, जितने समयमें 'एक' बोला, उतने समयमें पृथ्वी १८ मील चली गई। यह क्या कल्पनाशक्तिका विषय है? ईश्वरने अपने कार्यमें दिन, घण्टा, मिनट, मुहूर्त्त और मुहूर्त्तका भग्नांश ठीक कर रखा है। ठीक किस समय पृथ्वी किस स्थान पर रहेगी, सूर्य किस नक्षत्रमें रहेंगे, कौन ग्रह कहां उदित हो कर कहां अस्त होगा, इन सबकी गणना करके हम लोग आकाशकी ओर दृष्टिपात करनेसे देखते हैं, कि ठीक उसी समय ये सब अद्भुत और अभावनीय व्यापार होते हैं। भगवान्‌के राज्यमें एक मुहूर्त्तका भग्नांश भी व्यर्थ जानेकी सम्भावना नहीं; यदि सम्भावना रहती, तो उनके अस्तित्वके प्रति हमेशा सन्देह बना रहता। मुहूर्त्त भरमें विश्वब्रह्माण्डमें प्रलय होता रहता। निःशब्दसे सभी कार्य करते हैं, कोई भी विशृङ्खला नहीं है। इसीसे वे प्रति मुहूर्त्तमें विद्यमान हैं. उसका प्रमाण पाते हैं।

भगवान् पिता हो कर जो सब कार्य करते हैं, वे स्वयं अपने हाथमें रखते, दूसरे किसीके भी हाथमें नहीं देते। एक उदाहरण देनेसे मालूम हो जायेगा। किसी एक वृक्षकी ओर नजर दौड़ावो; यह जड़ और वायुके सञ्चालनसे उद्वेलित होता है, वाह्यतः यही देखा जायगा किन्तु सो नहीं। यह वृक्ष प्रति मुहूर्त्तमें बढ़ता है। इसका जीवन प्रति पत्तेमें, प्रति शाखामें और प्रत्येक शिरामें है। यह वृक्ष पृथ्वीसे मूल द्वारा रस खींच कर जीता है और वायु द्वारा निश्वास प्रश्वास रात दिन लेता है। ये सब व्यापार किसकी शक्तिसे सम्पादन होते हैं? एक बार मनुष्यके शरीरकी ओर दृष्टिपात करो। हम लोग कार्य करते हैं यह सत्य है और कार्य करनेसे हम लोगोंका शरीर भी बढ़ता है। किन्तु जीवनका भार भगवान् हम लोगोंके हाथमें नहीं रखते। रातको निद्रावस्थामें जब अचेतन हो जाते हैं, तब क्या हम लोग अपनेको चला सकते हैं? उस समय हम लोग स्पन्दरहित रहते हैं, किन्तु निश्वास प्रश्वासके लिए एक मुहूर्त्त भी आराम नहीं, यह भार भगवान्‌के स्वयं अपने हाथमें है। वे हम लोगोंके शरीरकी कल दिन रात चला रहे हैं। उसका हाल हम लोग कुछ भी नहीं जानते और न समझ ही सकते हैं। ये सब कार्य सुनियमसे चलते देखते हैं और इसके कर्त्ता कौन हैं सो नहीं जानते।

एकमात्र ईश्वर पिताके स्वरूप हैं और सभी कार्य चला रहे हैं। यह हम लोग विज्ञानसे जान सकते हैं। किस प्रकार जीवोत्पत्ति होती है, किस नियमसे विश्व व्यापार चल रहा है, विज्ञानशास्त्र ही हम लोगोंको बतला देता है। सारा जड़-जगत्‌के भीतर एक मनका कार्य चल रहा है। यही मन ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध हैं। ये चिन्मय हैं और जगत्के पिता हैं; हम लोग जितना ही उन्हें जान सकते हैं, उतना ही उनके प्रति हम लोगोंका

निर्भीक रहता है। विज्ञान द्वारा पता लगता है कि वे इन्हीं अवस्थाओंमें हम लोगोंके भीतर कार्य करते हैं। वे भीतर बाहर सभी जगह वर्तमान हैं, बिना उनके कोई भी जी नहीं सकता।

ईश्वरका द्वितीय प्रकाश—पुण्यभावमें। उन्हों ने ही हम लोगोंको कहा है, कि उनका नियम पालन करना पुण्यका पथ है। नियम पालन करनेसे पुरस्कार और नहीं करनेसे दण्ड मिलता है। परलोकमें पापका दण्ड और पुण्यका पुरस्कार प्राप्त होता है यह भी हम लोग उन्हीं से जानते हैं। परलोक नहीं है, इसका प्रतिपाद प्रसिद्ध हामंमिक पार्दतिम नहीं कर सके थे।

भगवान् हम लोगोंको विशुद्ध ज्ञानमें आलोकित करनेके लिए पिताके राज्यपथको पूर्णरूपसे निष्कण्टक प्रकाशित करनेके लिए, बीच बीचमें पुण्यभावके रूपमें पृथ्वी पर दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे मनुष्य हो कर जन्मग्रहण करते हैं। नवविधानाचार्य एक प्रकारके अवतारवादको स्वीकार नहीं करते, बल्कि इस प्रकारके अवतारवादको समूल नष्ट करना ही नवविधान हुआ है, ऐसा बतलाते हैं। अनन्त निराकार ईश्वर किस प्रकार सान्त हो कर साकाररूपमें जन्म ग्रहण कर सकते? मनुष्य उन्हीं धर्मोंके पथ ग्रहण करनेके लिए ईश्वरको मनुष्यत्व आरोप कर उनके अनन्तत्वको नाश कर डालते हैं। मनुष्य ईश्वर हो सकता है या ईश्वर मनुष्य हो सकते हैं, यह नवविधानाचार्य स्वीकार नहीं करते। ईश्वर जब देखते हैं, तब सभी मनुष्य नितान्त हीनबल हो जाते हैं। सभी पाप आ कर उन्हें अनन्तकी ओर जाने नहीं देते। जड़पदार्थ आत्माके ऊपर नितान्त आक्रमण हो कर खड़े रहते हैं। उस समय वे पुण्यभाव भेज कर जगत्को पापभारसे मुक्त करते हैं। इस प्रकार भगवान् सैकड़ों बार पुण्यभावमें प्रकाशित हो कर जगत्का उद्धार करते हैं। किन्तु वे स्वयं शरीररूप धारण नहीं करते। वे अपना एक भाव महापुरुषकी प्रकृतिमें प्रविष्ट करा देते हैं। वह भाव उन्हींका है और वह आ कर इन्द्रियोंको, व कारको, जड़पदार्थोंको अर्थात् कामनाओंको विनाश कर डालता है। वे सब पुरुष हो कर अवतीर्ण होते हैं।

महापुरुषको ले कर नाना प्रकारके रूप धार देखने में आते हैं। ईश्वर अवतीर्ण हुए हैं, यह कहनेसे ही लोग कहेगा कि उन्हें कोई अलौकिक कार्य करना उचित है। कोई कोई अलौकिक घटना अथवा अनैसर्गिक दिखाते हैं, किन्तु नवविधानाचार्य इसे स्वीकार नहीं करते।

ईश्वर जन-समाजके उपकारार्थ मनुष्यकी मुक्तिके लिए उनका अकाट्य लक्ष्य पूरा करनेके लिए कर्मका विधान करते हैं। बहुतसे विद्वान् ऐसे हैं, जो धर्मसम्बन्धमें विधान स्वीकार नहीं करते। किन्तु नवविधानाचार्य साधारण विधान और विशेष विधान मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। जो धर्मविधान स्वीकार नहीं करते, वे भी सामाजिक विधान, वैज्ञानिक विधान आदिको स्वीकार करते हैं। गेलीलियो, न्यूटन, शङ्कराचार्य आदि महापुरुषोंकी ओर यदि ध्यान दिया जाय, तो क्या कभी ईश्वर शक्तिके ऊपर अविश्वास कर सकते? कभी नहीं। उनकी असाधारण बुद्धि ज्ञानकी दीप्ति आदि देखनेसे मालूम पड़ता है कि ये सब गुण ईश्वरशक्तिके सिवा और कुछ नहीं है। न्यूटनने जमीन पर फलका गिरना देख कर अनुमान किया था, कि पृथ्वी और चन्द्रमामें आकर्षण शक्ति है। उसी आकर्षण-शक्तिसे आकाशमें सूर्य ग्रह आदि अपने निर्दिष्ट स्थान पर स्थित हैं। ये सब विधाताकी लीला है। यदि ये सब विधान हम लोग मान लें, तो धर्मविधान माननेमें क्या दोष है?

जब हम देखते हैं कि कोई देश भयानक दुराचारसे आक्रान्त है, अहङ्कार आदिमें लोग डूबे हुए हैं, तब ही उन पापोंके मोचन करनेके लिए एक एक महापुरुष एक एक विधान ले आते हैं। जब रोम और ग्रीस देशोंमें भयानक पापका राज्य था, तब ईसा परित्राता हो कर आविर्भूत हुए थे। इसी प्रकार अरब देशमें पौत्तलिकता नष्ट करनेके लिए महम्मद, भारतको ब्राह्मण्य प्रथाओंसे रक्षा करनेके लिए बुद्ध और बङ्गदेशको ज्ञानाभिमानसे बचानेके लिए चैतन्य आविर्भूत हुए।

वर्तमानमें धर्म ले कर बहुत विवाद हुआ करता है। सब कोई अपने अपने धर्मको श्रेष्ठ बतलाते हैं। इस प्रकार धर्मके साथ तुलना करना बड़ा भ्रम है सभी धर्मोंमें एक एक विशेष स्वभाव है और बहुतसे कुसंस्कार

भी हैं, जैसे, ईसाधर्ममें शैतानमें विश्वास, बौद्ध-धर्म में पुनर्जन्ममें विश्वास और भारतीय धर्ममें साकार ईश्वरका विश्वास है। मानवके विधानमें धर्म नहीं होता, किस विधानमें कौन देवभाव है, उसे गौर कर देखना ही नवविधानका उद्देश्य है और उन्हीं सब देवभावको ले कर ही नवविधान है। शैतानमें जो विश्वास है उसे ईसाने नहीं बनाया। उनके बहुत पहलेसे यह प्रचलित था। किन्तु ईसाकी सन्तानत्वविषयक कथा अभ्रान्त और निश्चय है। पुनर्जन्मवादको बुद्धने सृष्टि नहीं की। उनके बहुत पहलेसे यह चला आ रहा है। किन्तु बुद्धके भीतर ईश्वरने जो भाव निविष्ट किया था, वही देवभाव है उसीका नाम निर्वाण है। पुनर्जन्म हो चाहे न हो, निर्वाण सब अवस्थामें सब समाजमें मनुष्यके परित्राण-पथका सहायक है। ईश्वर चाहे साकार हों चाहे निराकार हों, भक्ति मनुष्यका एक परम उपाय है। इसी प्रकार प्रति धर्मका एक एक भाव ले कर नवविधान हुआ है।

विधाताका तृतीय प्रकाश पवित्र भावरूपमें है। खृष्टीय धर्मशास्त्रमें इस पवित्र भावको पवित्रात्मा बतलाया है। नवविधानाचार्य कहते हैं, कि ईश्वरने पिता हो कर विश्वकी सृष्टि की है और पुत्रभावमें मनुष्यको पिताके प्रति कर्त्तव्यकी शिक्षा दी है। जब कोई महापुरुष पृथ्वी पर लीला करते हैं, तब उनका समुदय भाव ईश्वरमें नियुक्त रहता है। उस समय वे जो कार्य करते हैं वा उपदेश देते हैं, वह विधाताका कार्य वा उपदेश समझा जाता है। वे दयापूर्वक जब तक उसका भाव समझा न देंगे, तब तक मनुष्य अपने बलसे कुछ भी जान नहीं सकेगा। पुत्रभावमें प्रकाशित हो कर उन्होंने मनुष्य आत्माको सहसा जाग्रत कर दिया है। पीछे उन्होंने पवित्रात्माभावमें प्रकाशित हो कर एक ऐसा नूतन वेग सञ्चालित किया है, एक ऐसे भावकी तरङ्ग उठाई है जिससे जन समाज व्यथित हो कर एकबारगी स्वर्गकी ओर ऊपर उठ जाता है। उन्हींके आदेशसे उन्हींके कार्य सुफल होते हैं। प्रत्यादेशका नियम केवल एक है, वह है विधिपूर्वक अहङ्कारवर्जित हो कर विधाताको आत्मसमर्पण करना। कामादि रिपुओंके प्रबल होनेसे, अहङ्कारमें चित्तमलिन रहनेसे स्वर्गप्राप्ति भी नहीं होती। इसीसे जो अपवित्र है उसके सैकड़ों प्रार्थना करने पर ईश्वर आविर्भूत नहीं होते। जब वे देखते हैं, कि हृदय अहंज्ञानवर्जित हुआ है और अहं पदार्थका किसी प्रकारका भाव नहीं है, तब वे पवित्रात्मा हो कर उस मनको ऊपरकी ओर पितृभवनमें ले जाते हैं। सम्पूर्ण रूपसे स्वार्थ त्याग नहीं करनेसे पूर्ण प्रत्यादेश पानेकी कोई सम्भावना नहीं। भगवान्‌के पुत्रस्वरूप ईसाने भी कहा था, कि जो दीनात्मा हैं वे ही स्वर्गके अधिकारी हैं। इसका अर्थ यह है, कि मनुष्योंको यथार्थमें दीन होना चाहिए, उन्हें धनका गर्व लेशमात्र भी न रहे, विद्या, बुद्धि आदि किसी विषयमें अहङ्कार न करे। उन्हें समझना चाहिए कि हमें कोई नहीं है और न कुछ सम्पत्ति ही है, हम सम्पूर्णरूपसे असहाय, निराश्रय, बन्धुहीन और अनाथ हैं। जब ऐसा दीन भाव आ जायेगा, तब ही भगवान् उस हृदयमें प्रत्यादेश दान करेंगे।

विधाता पापियोंके उद्धारके लिए विधान भेजते हैं। पुण्यात्मा लोग उनके प्राय समीप ही वास करते हैं, उनके लिए विधानकी कोई भी आवश्यकता नहीं। वे पापीको तारनेके लिये पुत्र भेजते हैं। पुत्र अपना जीवन दिखला कर पापियोंको धर्मके पथ पर लाते हैं और धर्मका उपदेश देते हैं। जहां सारथ्य नहीं है, वहां भगवान्‌की पवित्रात्माका प्रकाश वा प्रत्यादेश कुछ भी नहीं होता। धर्मजीवनका सारथ्य ही एकमात्र सहाय है। नवविधानने पवित्रात्माका अनुभव करने और प्रत्यादेश पानेका अधिकार दिया है।

नवविधान समन्वयका धर्म है। अब देखना चाहिए, कि समन्वय शब्दका अर्थ क्या है। वर्त्तमान जगत्‌की अवस्थाकी ओर जब नजर दौड़ाई जाती है, तब तमाम मतभेद, दलादली और विवाद देखनेमें आता है। एक एक धर्म सत्यधर्म जैसा है और उसके सामने दूसरा धर्म मिथ्या समझा जाता है। सब कोई अपने अपने धर्मका समर्थन करते हैं। दूसरे धर्मके प्रति जानक्रोध जो देखनेमें आता है उसका यही कारण है। एक ऐसा धर्म है जो न तो ईसाई धर्म है, न मुसलमान-धर्म ही है

और न बौद्धधर्म है, बल्कि उसमें ये सभी धर्म हैं। इसी नूतन धर्मका नाम है नवविधान।

१। कोई धर्म क्यों न हो, वह मिथ्या नहीं है। सभी धर्मोंमें सार है।

२। सभी धर्मोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट चीजोंका मेल है।

३। सभी धर्मोंमें पापको शान्ति है।

ये तीनों वचन मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इसी पर जितने धर्म हैं वे एक एक मत ले करके हैं। कोई धर्म तो ज्ञानका, कोई भावका और कोई इच्छाका है। किन्तु नवविधानमें सभी गुण हैं। इन तीनोंको यदि एक साथ किया जाय, तो एक महान् धर्म होता है। जिस धर्ममें ज्ञानकी प्रधानता है, लेकिन भक्ति नहीं है, वह धर्म असम्पूर्ण है और जिसमें भक्ति है, लेकिन ज्ञान नहीं है, वह धर्म अधिकमात्र है। जो धर्म कोई कार्य से पर है, लेकिन उसमें भक्तिको नहीं प्रकाशित नहीं होती, वह अन्धा है। वही धर्म सर्वाङ्गसुन्दर है जिसमें उक्त दोनों गुण सम्पूर्ण रूपसे पाये जाते हैं। उस धर्ममें एकका आदर और दूसरेका अनादर नहीं है, बल्कि ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग ये तीनों गुण प्रकाशित होते हैं। वही मनुष्य श्रेष्ठ है, जिसके मनमें उक्त तीनों भाव समानरूपसे प्रस्फुटित हैं। वही धर्म सब धर्मोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। नवविधान ही एक ऐसा धर्म है जिसमें सब धर्मोंके सार पाये जाते हैं। एक एक विभाग ले कर एक एक धर्म बना है। किन्तु सभी धर्मोंके विभाग ले कर नवविधान हुआ है। यह सर्वाङ्गसुन्दर धर्म किस प्रकार प्राप्त हो सकता है,—अपने मनका एक भाव स्थिर करना होता है और धर्म ऐसा नहीं है जो अनादरकी दृष्टिसे देखा जाय। विधानमें एक धूलिकणको भी अग्राह्य नहीं कर सकते। जीवमात्रमें एक कीड़का भी मूल्य है। मनुष्यसमाजकी स्थिति नीति है, उस नीतिकी मूल ईश्वरका आदेश है। जीवसमाज प्रतिष्ठित करनेके पहले नीतिका प्रचार होना आवश्यक है और नीतिप्रचार करनेमें ही ईश्वरको मानना होगा। यदि कोई प्रमाणाभाव समझ कर उनके अस्तित्वमें अविश्वास करे, तो उसके लिए भगवान्‌ने स्वयं कहा है, "मैं हूं।" मुहम्मदने सबसे पहले आदेशमात्रका प्रचार किया। ये ही पीछे परवादके प्रधान शिक्षक माने जाते हैं। बुद्धने निर्वाण तत्त्वका प्रचार किया। पीछे भगवान्‌ने उस निर्वाणतत्त्वसे उनसे आध्यात्मिक प्रकृतिके नियम बताये। मनुष्यकी प्रकृतिमें एक एक भाव ऐसा है जो देवभाव भी हो सकता है और पशुभाव भी। पशुभावका अर्थ कामना है। यदि धर्मजीवन लाभ करना हो, तो सभी कामनाओंको दूर कर दो। कामनाको दूर करनेसे ही मन शून्य हो जायेगा। मन शून्य होनेसे प्रकृतिका यह नियम है, कि एक दूसरा पदार्थ बाहरसे आ कर उस मनको पूर्ण करेगा। सुतरां भगवान्‌ने उन लोगोंको कह दिया है कि यदि तुम लोग अपनेको सुधारना चाहते हो, तो कामनाको दूर भगाओ, मनको शून्य करो। शून्य करनेसे ही देखोगे कि देवभावने मनमें अधिकार जमा लिया। यही आध्यात्मिक जगत्‌का प्रधान नियम है। मन कामनाशून्य होनेसे ही क्या उन्नति परम सीमा तक पहुंच गई? कभी नहीं। कामनाशून्यता ही धर्मपथ का आरम्भ है। इसी समयसे धर्मजीवन शुरू होता है।

भिन्न भिन्न धर्मोंके भावोंको एकत्र करके यदि उनके भीतर हो कर ब्रह्माग्निसे ताड़ित चालित कर दे, तो वह एक ऐसा अनन्य धर्म हो जायगा जो न तो ईसाई धर्म है न मुसलमान धर्म है और न बौद्ध तथा हिन्दूधर्म ही है, बल्कि उसमें ये सभी धर्म विद्यमान हैं। यह जो नूतन धर्म है इसका नाम नवविधान है।

विश्वासियोंके मध्य एकतासाधन करना ही जीवन का एकमात्र कार्य है। एकतासाधन शब्दका अर्थ है ईश्वरमें विश्वास करना। उन लोगोंको विश्वास नहीं होता इस कारण उन लोग धर्मकी उपकारिता समझ नहीं सकते। क्योंकि जीवनमें केवल ईश्वरका आविर्भाव अनुभूत होता है। इसी पर जितने महापुरुषोंने जन्म लिया है, मानवजातिका दुःखभार दूर करनेके लिये जो जो महापुरुष जीवन विसर्जन कर गये हैं, उनका जीवनवृत्तान्त सुचारुरूपसे जानना उन लोगोंको उचित है। इसी कारण नवविधानाचार्य तीर्थयात्राका विशेष आदर करते हैं। भारतवर्षमें नाना प्रकारके धर्ममत प्रचलित हैं। यदि कोई धर्म निर्दोष न हो, तो उस

नवविधानकी आवश्यकता ही क्या ? इस पर नवविधानाचार्य कहते हैं,—जब तक अनैक्य, विरोध, जातिभेद, परस्परकी हिंसा, द्वेष और घृणा रहेगी, तब तक हमें अन्य जातिके अधीन रहना होगा। स्वाधीनताके मूलमें ऐक्य, भ्रातृभाव, आत्ममर्यादा, धर्म, साहस और बलका रहना आवश्यक है, किन्तु धर्म और जातिभेदके कारण इनका रहना बिलकुल असम्भव है। यदि ईश्वर एक होगा, तो धर्म भी एक होगा, धर्मके एक होनेसे जाति एक होगी, जातिके एक होनेसे भ्रातृभाव होगा, भ्रातृभाव होनेसे विरोध, विसंवाद, द्वेष आदि जाता रहेगा। उस समय हृदय आपसे आप उच्च हो जायेगा, नये नये बल और उद्यमका सञ्चार होगा। ऐसा होनेसे प्रकृत उन्नति होगी, ईश्वरके जितने खण्ड हैं, उन्हें एक साथ मिला कर एक ईश्वरमें परिणत करना होगा। यह केवल नवविधानसे हो सकता है, इसीसे भारतवर्षमें विभिन्न धर्म रहने पर भी नवविधानका प्रयोजन है। खण्ड खण्ड ईश्वरको एकत्र कर उस पुराकालके एक ईश्वरमें लाना, एक ईश्वरके राज्यमें एक मिलित भ्रातृमण्डली स्थापन करना, जातिभेद दूर करके विश्वास, प्रेम और देशहितैषिताको हृदयका अलङ्कार करना यही नवविधानके कार्य हैं।

विधाता धर्मसमन्वय द्वारा अपना अधिकार प्राप्त करते हैं ईश्वर सर्वविधानकर्त्ता हैं। पृथ्वी उनका लीलाक्षेत्र है। सभी जातियोंमें वे समय समय पर प्रकाशित होते हैं। ये सब धर्मसमन्वय प्रत्यादेश द्वारा हुआ करते हैं। आत्मविसर्जन करनेसे प्रत्यादेश होता है। भगवान् भक्तोंका अन्तर अधिकार कर उन्हें सब विषयोंसे पूर्ण करते हैं।

यह नवविधान जगत्को पूर्णब्रह्म देते आ रहे हैं। सभी धर्मोंका जो सार अर्थात् देवभाव है, वही इस नवविधानका अङ्ग है। सभी देवभावोंको ले कर यह नवविधान बना है, यही केशवचन्द्रका मत है।

केशवचन्द्र सेन और ब्राह्मधर्म देखो।

नवविप (सं० पु०) नौ प्रकारके विष जिनके नाम ये हैं—वत्सनाभ, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृङ्गक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र।

नवशक्ति (सं० स्त्री०) नवगुणिता शक्तिः। शक्तिनवक, नौ शक्ति जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा।

नवशस्य (सं० क्ली०) नवं शस्यं। नूतनशस्य, नया अनाज।

नवशस्येष्टि (सं० स्त्री०) नवशस्यनिमित्ता इष्टिः। साग्निक कर्त्तव्य नवशस्य-निमित्तक इष्टिभेद।

नवशायक (सं० पु०) नवविधः शायक इव। पराशरसंहितोक्त नवविध सङ्कीर्ण जातिभेद। पराशरसंहिताके अनुसार ग्वाला, माली, तेली, जोलाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, लोहार और हज्जाम ये नौ जातियां।

ये लोग एक प्रकारके शुद्ध शूद्र हैं। यद्यपि वैश्य शब्दसे कृषिव्यवसायी और शिल्पव्यवसायी दोनोंका बोध हो सकता है, तो भी नवशायकोंके उपवीत नहीं पहनने तथा वेदाध्ययन नहीं करनेसे इनकी गिनती शूद्रोंमें की गई है। पर हां विशेषता यह है, कि ये लोग शुद्ध होते है, अर्थात् इनका स्पृष्ट गङ्गाजल, कूपजल तथा और किसी प्रकारका जल ब्राह्मण लोग काममें लाते हैं। किन्तु इन नौ जातियोंमें सभी शुद्ध हैं सो नहीं; जैसे तैलिक यद्यपि यह नवशायकके अन्तर्भुक्त है, तो भी ये लोग मोदक वा नापितकी तरह शुद्ध नहीं हैं। नवशायककी छोड़ कर अन्य शूद्रका स्पृष्ट केवल गङ्गाजल ब्राह्मण काममें ला सकते हैं। किन्तु चाहे नवशायक शूद्र हो, चाहे इतरशूद्र हो, किसीका भी स्पृष्ट पक्वद्रव्य ब्राह्मण नहीं खा सकते। नवशायक शूद्र और इतरशूद्रमें पृथकता यह है, कि नवशायकोंकी याजकता करनेसे ब्राह्मण पतित नहीं होते, किन्तु अन्यान्य इतर शूद्रोंकी याजकता करनेसे उन्हें पतित होना पड़ता है। यद्यपि शास्त्रमें किसी शूद्रका दान ग्रहण ब्राह्मणोंके लिये निषिद्ध बतलाया है, तो भी कार्यतः अनेक ब्राह्मण नवशायकोंका दानग्रहण किया करते हैं।

नवशिक्षित (सं० पु०) १ वह जिसने अभी हालमें कुछ पढ़ा या सीखा हो, नौसिखुआ। २ वह जिसे आधुनिक ढंगकी शिक्षा मिली हो।

नवशिव—बम्बईके द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत एक क्षुद्र द्वीप।

नवग्रोम (स॰ पु॰) युवक, तरुण, नई शोभावाला।

नवश्राद्ध (स॰ स्त्री॰) मरने के बाद विषम दिवसमें प्रेतो-द्देशक श्राद्धविशेष। मरनेके बाद विषम दिनमें प्रेतकी उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नव श्राद्ध है।

निर्णयसिन्धुमें लिखा है कि मरनेके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें नवें और ग्यारहवें दिनमें प्रेतके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसे नवश्राद्ध कहते हैं। मरने के बाद विषम दिनमें नवें दिनके अन्दर एक श्राद्ध किया जाता है। कार्यवश यदि उस दिन श्राद्ध कर न सके, तो ग्यारहवें दिन अवश्य करना चाहिये। इस श्राद्धको विषमश्राद्ध भी कहते हैं। पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें दसवें वा ग्यारहवें दिनमें जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवश्राद्ध है।

कात्यायनके मतसे—चौथे, पाँचवें नवें, तथा ग्यारहवें दिनमें प्रेतके उद्देशसे किये जानेवाले श्राद्धका नाम नवश्राद्ध है। इस नवश्राद्धमें पहले दो दो करके पिण्ड देना चाहिये, केवल पीछे दिनमें एक पिण्ड देनेका विधान है। यह नवश्राद्ध मलमासमें भी हो सकता है। नवश्राद्धोच्छिष्ट कोई वस्तु कभी न हो, उसे न खाना चाहिये।

प्रायश्चित्त-विवेकमें लिखा है कि यह नवश्राद्ध आहि-ताग्निकोंका भी होगा। चौथे, पाँचवें, नवें और ग्यारहवें दिनमें जो श्राद्ध होता है, उसे नवश्राद्ध कहते हैं। यह नवश्राद्ध आहिताग्नि ब्राह्मणोंको अपिण्डकरणके पहले करना चाहिये और अयुग्म ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। यह नवश्राद्ध साग्निक ब्राह्मणों के लिये भी बतलाया है।

नवषट्क (स॰ स्त्री॰) छः गुणित नवम कला, वह कला जो छः और नौके गुणा करनेसे बनती हो।

नवषष्टि (स॰ स्त्री॰) नवाधिका षष्टिः। उनसत्तर की संख्या ६८ संख्या। २ तत्संख्यायुक्त। (त्रि॰) ३ ६८का पूरक, उनहत्तरवाँ।

नवसङ्गम (स॰ पु॰) प्रथम समागम, नवाभिलाप, पति से पत्नीकी पहली भेंट।

नवसङ्घाराम (स॰ पु॰) बौद्धविहारभेद, बौद्धों के एक विहारका नाम।

नवसप्त (स॰ पु॰) नौ और सात, सोलह शृंगार।

नवसप्तति (स॰ स्त्री॰) नवाधिका सप्तति। उनासीति संख्या, उनासी संख्या, ७६।

नवसमुदय (स॰ पु॰) नव च समुदय च, समाहारन्द्व। अतिरात्रयागभेद। पुत्राभिलाषी यह यज्ञ करता है।

नवसर (हि॰ पु॰) नौ लड़का हार।

नवसारि—१ बड़ोदा राज्यका एक प्रान्त या जिला। इसके उत्तरमें भड़ोच और रेवाकान्था-एजेन्सी; दक्षिणमें सूरत जिला, बाँसदा और धरमपुर पूर्वमें खानदेश और पश्चिममें सूरत तथा अरबसागर है। इसका भूपरिमाण १८५२ वर्गमील है। यहाँ किम, तापती, मिन्धोल, पूर्णा और अम्बिका नदी बहती हैं। इसमें छः शहर और ७७२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३००४४१ है। सैकड़े पीछे ७५ मनुष्य गुजराती भाषा बोलते हैं। ज्वार, धान गेहूँ, बाजरा, कोदो, नागली, मटर, चना रुई, तमाकू ईख और तेलहन ये सब यहाँके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

यह प्रान्त काष्ठके लिए प्रसिद्ध है। जङ्गलका रकबा १४० वर्गमील है और काष्ठोंकी आमदनी होती है। यहाँ अच्छे अच्छे सूती कपड़े बुने जाते हैं। यही यहाँ का प्रधान व्यवसाय है। राजस्व १८ लाख रुपयेसे अधिक का है। विद्याशिक्षाको जिलेमें विशेष उन्नति है। यहाँ दो हाई स्कूल, तीन एङ्गलो-वर्नाक्यूलर स्कूल और २११ वर्नाक्यूलर स्कूल हैं।

२ उक्त प्रान्तका एक तालुक। भूपरिमाण १२१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ६८८७५ है। इसमें नव सारी नामका एक शहर और ६ ग्राम लगते हैं। यहाँ दो नदियाँ बहती हैं, उत्तरमें मिन्धोल और दक्षिणमें पूर्णा। ज्वार, धान, रुई और ईख ये सब यहाँके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। राजस्व २१०८००) रु॰ है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ २० ५७´ उ॰ और देशा॰ ७२ ५५´ पू॰, बम्बईसे १४० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यह एक बहुत प्राचीन शहर है। टोलेमी भौगोलिक टलेमीने इसका नाम नवसारिपा रखा है। यहाँकी जनसंख्या लगभग २१५६१ है जिनमेंसे हिन्दू, मुसलमान और पारसीकी संख्या सबसे अधिक है। पारसके कुछ जोरोष्ट्रियन (Zoroastrian) जब

मुसलमानी धर्मको ग्रहण न किया, तब वे ११४२ ई०में मुसलमान राजाओंके भयसे गुजरातको भाग आए और कुछ नवसारीमें बस गए। यहां अपने बचावके लिये उन्होंने शहरका अच्छी तरह संस्कार किया और एक दुर्ग भी बनवाया। आज भी शहरमें पारसीकी संख्या सबसे अधिक है। इनमेंसे कुछ तो सूती कपड़े बुनते हैं और कुछ तांबे, पीतल, लोहे और काठ आदिका व्यव-साय करते हैं। यहां उनका एक मनोहर मन्दिर भी है। छः मास तक शहरकी आबहवा अच्छी रहती है। मल्हारराव गायकवाड़ इस शहरमें रहना बहुत पसन्द करते थे। यहां हाई स्कूल, एङ्गलो वर्नाक्यूलर स्कूल, पुस्तकालय, पाठागार और चिकित्सालय हैं।

नवसारिका—नवसारि वा नौसारि-नगरका पूरा नाम। यह गुजरातके अन्तर्गत बड़ोदाको पूर्णा नदीके किनारे अवस्थित है। नवसारि देखो।

नवसाहसाङ्क—परमार वंशीय एक मालवराज। पद्मगुप्त नामक एक कवि "नवसाहसाङ्कचरित" नामक एक काव्य बना गये हैं। परमार-वंशकी खोदित लिपि भी पाई गई है। इस वंशको उत्पत्ति पौराणिक उपा-ख्यानकी तरह है। वशिष्ठ जब आबू-पर्वत पर रहते थे, तब विश्वामित्र एक दिन उनकी होमधेनु चुरा लाये। वशिष्ठने विश्वामित्रको मारनेके लिए यज्ञकुण्डसे एक खड्गधारी पुरुषकी सृष्टि की। यह पुरुष शत्रुको परास्त कर धेनुको वापिस लाए। इनके कार्यसे प्रसन्न हो कर वशिष्ठने इनका परमार अर्थात् शत्रु विजयी नाम रखा। आबू-पर्वत पर परमारकी उत्पत्ति हुई है, इससे अनु-मान किया जाता है, कि यहांका अचलगढ़ परमारोंके अधीन था। चन्द्रावती-नगरमें उनकी राजधानी थी। परमार-वंशीय सोमेश्वरप्रदत्त देलवाड़के तेजपाल-मन्दिरमें जो एक प्रशस्ति है उससे परमारके पूर्ववर्त्ती आबूवासी परमार-वंशीय राजाओंके नाम पाये जाते हैं। धूमराज, धुन्धुक, ध्रुवभट्ट आदि परमारके पूर्ववर्त्ती तथा रामदेव, यशोधवल, धारावर्ष, प्रह्लादन, सेखसिंह, कृष्णराज आदि परमारके उत्तरवर्त्ती आबूवासी परमार राजाओंका विशेष विवरण कुछ भी जाना नहीं जाता। १२वीं और १३वीं शताब्दीमें आबूवासी परमारगण अणहिलवाड़के चालुक्य राजाओंके सामन्त थे।

उदयपुर और नागपुरसे परमारवंशीय मालव राजाओंकी दो प्रशस्ति और इस वंशके २य वाक्पति-की खोदित लिपि पाई गई है। इन सबसे पता लगता है, कि इस वंशके उपेन्द्र वा कृष्ण नामक एक व्यक्ति मालवदेशमें पहले पहल अधिष्ठित हुए। उदयपुर प्रशस्तिके मतानुसार इन्होंने मालव जीता था। डा० वार्गेसका मत है कि ये ८वीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। उदयपुरमें जो प्रशस्ति है, उसमें वंशतालिका इस प्रकार लिखी है—
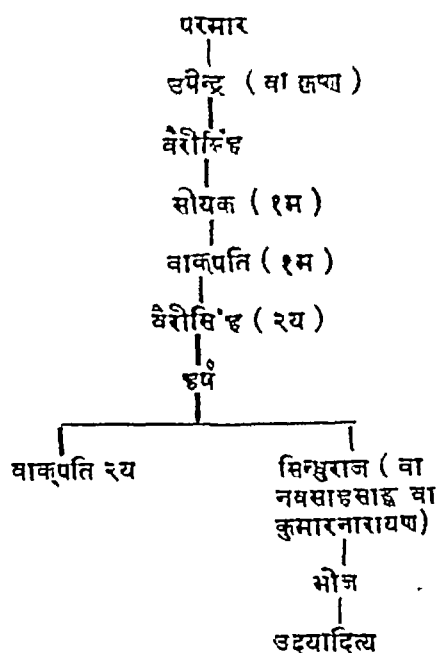
नवसाहसाङ्कचरितमें हर्षका सीयक (२य) वा हर्ष-ध्वज और २य वाक्पतिका उत्पलराज नाम रखा गया है। नागपुर-प्रशस्तिमें २य वाक्पतिका नाम मुञ्ज है और उनको भूमिदानलिपिमें अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ वा श्रीवल्लभ आदि उनकी उपाधियां देखी जाती हैं। भूमिदानपत्रसे पता लगता है, कि २य वाक्पति ९७४ ई०में वर्त्तमान थे। मेरुतुङ्गके प्रबन्धचिन्तामणिमें हर्षराज सिंह नामसे प्रसिद्ध हैं। नवसाहसाङ्कचरितके मतानु-सार इन्होंने हूणराज-रत्नपति और खोट्टिग राजाको जीता था; ये हूणराज कौन थे, मालूम नहीं। डाक्टर वार्गेस अनुमान करते हैं, कि ये हूणलोग किसी क्षत्रियवंशके

अमल खूब मौजूद है। कर्णाटकके नवाब भी इस श्रेणीका यथेष्ट सम्मान करते थे। इनमेंसे कोई भी समर विभागमें कार्य नहीं करते। सभी अन्यान्य कार्य कर जीवन निर्वाह करते हैं।

नवां (हिं॰ वि॰) जो गिनतीमें नौके स्थान पर हो, आठवें-के बाद और दसवेंके पहलेका, नौवां।

नवांश (सं॰ पु॰) नवमोऽंशः। मेषादि द्वादश लग्नका नवां भाग।

राशिको नौ अंशोंमें विभक्त करनेसे, उसके एक एक अंशका नाम नवांश है। मेष, सिंह और धनु इन तीन राशियोंका मेषसे आरम्भ कर नवांशकी गणना की जाती है, अर्थात् इन तीन राशियोंका प्रथमांश मेष है और मेषका अधिपति मङ्गल है एवं प्रथमांशका अधिपति भी मङ्गल होगा। द्वितीयांश वृष है, वृष राशिके अधिपति शुक्र हैं, यही शुक्र द्वितीयांशका भी अधिपति है। तृतीयांश मिथुन है, मिथुनका अधिपति बुध है, यही बुध तृतीयांशका अधिपति है।

नवांश-चक्र।

	प्रथमांशके अधिपति	द्वितीयांशके अधिपति	तृतीयांशके अधिपति	चतुर्थांशके अधिपति	पञ्चमांशके अधिपति	षष्ठांशके अधिपति	सप्तमांशके अधिपति	अष्टमांशके अधिपति	नवांशके अधिपति
मेष, सिंह, धनु इन तीन राशियोंके अधिपतिके नाम	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि।	६ बुध।	७ शुक्र।	८ मङ्गल।	९ वृहस्पति।
मकर, वृष, कन्या इन तीन राशियोंके अधिपतिके नाम	१ शनि।	२ शनि।	३ वृहस्पति।	४ मङ्गल।	५ शुक्र।	६ बुध।	७ चन्द्र।	८ रवि।	९ बुध।
तुला, कुम्भ, मिथुन इन तीन राशियोंके नवमांशके अधिपति	१ शुक्र।	२ मङ्गल।	३ वृहस्पति।	४ शनि।	५ शनि।	६ वृहस्पति।	७ मङ्गल।	८ शुक्र।	९ बुध।
कर्कट, वृश्चिक, मीन इन इन तीन राशियोंके नवांशके अधिपति	१ चन्द्र।	२ रवि।	३ बुध।	४ शुक्र।	५ मङ्गल।	६ वृहस्पति।	७ शनि।	८ शनि।	९ वृहस्पति।

अधीन अंगरेजी सेना कई बार यहां बागियोंसे लड़ी थी। १८६८ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक हाई स्कूल, चार दूसरे दूसरे स्कूल और तीन सराय हैं। इनके सिवा मर्द और औरतके लिये अलग अलग चिकित्सालय है। अनाज और कपड़ेका वाणिज्य भी जोरोंसे चलता है।

३ अयोध्याके बाराबंकी जिलेका एक परगना। इसके उत्तरमें रामनगर और फतेहपुर; पूर्वमें दरियाबाद, दक्षिणमें प्रतापगञ्ज और पश्चिममें देवा परगना है। भूपरिमाण ७९ वर्गमील है। कल्याणी नदी इस परगनेके उत्तर हो कर बह गई है। यहां चीनी और सूती कपड़ेका व्यवसाय ही प्रधान है।

नवाबगञ्ज शहर बाराबंकी शहरके समीप ही लखनऊसे साढ़े आठ कोस पूर्वमें अवस्थित है। इसके निम्न हो कर जमुरिहा नामकी नदी बह चली है। इसके निकटवर्त्ती स्थान अनुर्वर हैं। शहरमें १४ हजार लोगोंका वास है। जिनमें हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। चीनी और कपड़ेका व्यवसाय अच्छा चलता है।

४ अयोध्याके गोण्डा जिलेकी तराबगञ्ज तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें महादेव और माणिकपुर, पूर्वमें युक्त-प्रदेशका बस्ती जिला, दक्षिणमें घर्घरा नदी तथा पश्चिममें दिगसर और महादेव परगना है। भूपरिमाण १४२ वर्गमील है। मृत महाराज मानसिंह के. सी. एस. आई. यहांके प्रधान ताल्लुकदार थे।

५ उक्त परगनेका एक शहर। यह अक्षा० २६°५२´ उ० और देशा० ८२° ९´ पू० गोण्डासे फैजाबादके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ७०४७ है। १८वीं शताब्दीमें नवाब शुजा-उद्दौलाने यह नगर बसाया था। यहां एक बहुत बड़ा बाजार है। जिले भरमें यही बाजार सबसे बड़ा है। चावल, तेलकर बीज, गेहूँ, गोचर्म आदिका व्यवसाय जोरोंसे चलता है। मिर्जापुर और भाग्यवन्त-नगरसे यहां नमक, विलायती कपड़े और मृण्मय द्रव्यादिकी आमदनी आती है। यहां सिर्फ दो स्कूल हैं।

६ अयोध्याके उनाव जिलेका एक शहर। यह उनाव शहरसे ६ कोस उत्तर-पूर्व लखनऊके रास्ते पर स्थित है। जनसंख्या प्रायः २६०० है। पहले यहां तहसील की एक सदर कचहरी थी। चैत्रमासके शेषमें दुर्गा और कुशाग्रीदेवीके उद्देश्यसे एक भारी मेला लगता है। लखनऊ और कानपुरसे बहुत लोग इस मेलेमें जुटते हैं।

७ पुर्णिया जिलेका एक ग्राम। यह पुर्णियासे १० कोस गङ्गाके किनारेसे ६ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। इस ग्रामके दूसरे किनारे गङ्गाके तीर पर अवस्थित सुप्रसिद्ध साहबगञ्ज है। राजमहलसे पूर्णिया तक जो सड़क गई है वह पहले डाकुओंसे भरी रहती थी। इस कारण उन्हें दमन करनेके लिये राजमहलके नवाबने यह शहर बसा दिया है। यहां प्राचीन किलेका भग्नावशेष देखनेमें आता है। चावल, पटसन, तमाकू, नील और तेलहन अनाजकी यहांसे रफ्तनी होती है।

नवाबजादा (फा० पु०) १ नवाबका पुत्र, नवाबका बेटा। २ वह जो बहुत शौकीन हो।

नवाबपसन्द (फा० पु०) भादोंके अन्त या क्वारके आरम्भमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

नवाबी (हिं० स्त्री०) १ नवाबका पद। २ नवाब होनेकी दशा। ३ नवाबोंका शासनकाल। ४ नवाबका काम। ५ नवाबोंकी सी हुकूमत। ६ एक प्रकारका कपड़ा जिसे पहले अमीर लोग पहना करते थे। ७ बहुत अधिक अमीरी या अमीरोंका-सा अपव्यय।

नवायस् (सं० क्ली०) नवभागा आयसा यत्र। औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चीतामूल और विडङ्ग प्रत्येक एक एक तोला, लोहा नौ तोला इन्हें जलसे पीस कर गोली बनाते हैं। १ रत्तीसे ले कर क्रमशः ८ रत्ती तक मात्राकी व्यवस्था है। यह पाण्डु और कमलवाई रोगोंमें मधु और घीके साथ सेवनीय है। (भैषज्यरत्नावली पाण्डुरोगा०)

नवारा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बड़ी नाव।

नवारी (हिं० स्त्री०) नेवारी देखो।

नवार्चिष् (सं० पु०) नवं अर्चीषि यस्य। १ मङ्गलग्रह। (क्ली०) नवं नूतनं अर्चिः। २ नवशिखा।

नवावाद—भविष्यखण्डोक्त विहारके अन्तर्गत ग्रामविशेष। यहांके भूमिहार मण्डलेश्वर हुए थे।

नवाशहर—१ पञ्जाबके अन्तर्गत जालन्धर जिलेकी दक्षिण-पूर्व तहसील। यह अक्षा० ३०°५८´ से ३१°१७´ उ० और

देशा॰ ७१° ४०´से ७१° ११´ पू॰के मध्य सतलज नदीके उत्तरीय किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३०४ वर्ग-मील और लोकसंख्या ९८१११८ है। इसमें नवाबगंज, राहोन और बङ्ग नामके तीन शहर और २०४ ग्राम लगते हैं। मालगुजारी चार लाख रुपयेसे अधिककी है। गेहूं ज्वार चना, जौ ईख और रुई ये सब यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ ३१° ८´ उ॰ और देशा॰ ७६° ७´ पूर्वके मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५६३१के लगभग है। मुगल सम्राट बाबरके समयमें नौशेर खाँ नामक एक अफगानने इस नगरको बसाया है। यह शहर दिनों दिन उन्नति कर रहा है।

३ उत्तर-पश्चिम प्रदेशके आगरा जिलेके अन्तर्गत फिरोजाबाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ २७° १०´ उ॰ और देशा॰ ७८° २४´ पू॰, फिरोजाबादसे ३ मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या ४११४ है। यहांके अधिक व्यवसायी ही मिलनके बनिज व्यवसाय करते हैं, विलायती कपड़े मंगा कर सुलभ्य बाजार और काश्मीरमें बेचते हैं तथा काश्मीरसे भी लाते हैं।

नवाशीति (स॰ स्त्री॰) नवाधिका अशीतिः। नव अधिक अशीति संख्या, नौ और अस्सीकी संख्या, ८९।

नवासा (फा॰ पु॰) दौहित्र, बेटीका बेटा।

नवासिका (स॰ स्त्री॰) मात्रावृत्तभेद, एक प्रकारका वर्णवृत्त।

नवासी (हि॰ वि॰) १ नौ और अस्सी, एक कम नब्बे। (पु॰) २ नौ और अस्सीकी संख्या, ८९।

नवाह (स॰ पु॰) नव अहः टच समासान्तः। १ नव दिन, किसी सम्राट पक्ष मास या वर्ष आदिका नया दिन। २ नव दिनका साध्य यागादि, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त किया जाता है। ३ रामायण का वह पाठ जो नौ दिनमें समाप्त किया जाता है।

नवि (हि॰ स्त्री॰) वह रस्सी जिससे गायके पैरमें बछड़ेका गला बांध कर दूध दूहते हैं, नोई।

नविका (स॰ स्त्री॰) नवोऽस्त्यस्या इति नव ठन् टाप्, नवि नव आयति इति वा। नवमन्दवृत्ता, वह जिसमें नौ शब्द आते हों।

नविन् (स॰ स्त्री॰) १ नौ संख्याका गुणक। २ नवसंख्या-युक्त, वह जिसमें नौ संख्या हों।

नविपूजा (स॰ स्त्री॰) वैदिक छन्दोभेद, एक प्रकारका वैदिक छन्द।

नविष्टि (स॰ स्त्री॰) नवा इष्टि वेदे गवाद्यादित्वात् लोप। अभिनव इष्टिभेद।

नविष्ठ (स॰ त्रि॰) अतिशयेन नविता स्तोता इष्ठन् तृणो लोप। अत्यन्त स्तोत्रतम।

नविकवि—एक हिन्दी कवि। इन्होंने 'नवग्रिह वर्णन' पर एक ग्रन्थ बनाया है।

नवीगंज—१ युक्त प्रदेशके मैनपुरी जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा॰ २७° ११´ ५०´´ उ॰ और देशा॰ ७९° २१´ २१´´ पू॰के मध्य, ग्रैण्डट्राङ्क रोडके ऊपर अवस्थित है। जनसंख्या १६०० है। हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। यहां एक सराय है। २ बङ्गालदेशके श्रीहट्ट जिलेका एक ग्राम। यह कुशियारानदीकी बारक नामक शाखाकी बगलमें अवस्थित है। यहांसे चावल, शीतल पाटी और नाना प्रकारके तैलज पदार्थोंकी रफ्तनी होती है।

नवीन (स॰ त्रि॰) नवमेव नव ख, स्वार्थ। १ नूतन, नया। २ अपूर्व विचित्र। ३ तरुण, जवान नवयुवक।

नवीन—निम्न ब्रह्मके पेगू विभागके अन्तर्गत प्रोम जिलेकी एक नदी। उत्तर नवीन और दक्षिण नवीन नामक दो शाखाओंके मिलनेसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई है। ये दूसरे अन्तर्गत योमापर्वत पर पा-दौङ्गके उत्तरमें इसकी उत्तरी शाखा निकली है। म्यो-ला ग्रामसे चार कोस दूरमें दो शाखायें आपसमें मिल गई हैं। दक्षिणी शाखा भी इसी तरहकी दक्षिणसे उत्पन्न हुई है। प्रोम नगरके निकट यह नदी इरावतीमें मिल गई है। योमा-पर्वत परसे इसी नदी द्वारा लकड़ी बहा कर लाते हैं।

नवीन कवि—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। इनके बनाए शृङ्गाररसके सुन्दर कवित्त पाये जाते हैं।

नवीनचन्द्र राय—हिन्दीके एक कवि। सम्वत् १८८४में इनका जन्म हुआ था। ये बाल्यकालमें ही इनके पिता को ... जो जातिके इनकी शिक्षा अच्छी न हो सकी,

नवीसी (फा० स्त्री०) लिखाई लिखनेकी क्रिया या भाव। इस शब्दका प्रयोग शब्दोंके अन्तमें होता है।

नवेद (हि० स्त्री०) १ निमन्त्रण, न्योता। २ निमन्त्रण पत्र।

नवेदस (सं० त्रि०) न विपरीतं वेत्ति विद असुन् नञ्शब्दाद्यादिना, नञ् प्रकृतिभाव। विपरीत ज्ञान शून्य, मेधावी, बुद्धिमान्।

नवेला (हि० वि०) १ नवीन, नया। २ तरुण, जवान।

नवेली (हि० वि०) १ तरुणी, नई उमरकी। (स्त्री०) १ तरुणी युवती, नई स्त्री।

नवोढ़ा (सं० स्त्री०) नवा नूतना ऊढ़ा विवाहिता। १ नव विवाहिता, वधू। पर्याय—वधू, जनी, नववारका, दिवारी, नवयौवना। २ मुग्ध नायिकाभेद, साहित्यमें मुग्धाके अन्तर्गत वह नायिका जो लज्जा और भयके कारण नायकके पास न जाना चाहती हो।

नवोदक (सं० क्ली०) नव उदकम्। १ नूतन जल, नया पानी। वर्षाकालका नवोदक अर्थात् नया जल तीन दिन और दूसरे समयका दश दिन तक अपेय रहता है। २ वह जल जो नये मटकेमें रखा हो गया हो। नवोन्मत्त पौधेके पत्रमध्य द्वारा उसकी शुद्धि होती है। १ नवोदक निमित्त पार्वण श्राद्ध। तिथितत्त्वमें लिखा है कि वर्षा कालकी आरम्भमें नवोदक श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध सभी के लिए कर्त्तव्य है। 'तत्वाहृत' इस वाक्य द्वारा इसका नियम प्रतिपादित हुआ है। इस श्राद्धकालके मासकामके लिए नयोदशी आदि तिथियोंमें नहीं कर सकते।

नवोदमी जन्मदिन, नन्दातिथि अर्थात् प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी, जन्मराशि, जन्मतारा और शुक्रवार छोड़ कर अश्विनी, पुष्य, मृगशिरा, हस्ता, रेवती, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी और अनुराधा नवोदक श्राद्धके लिए प्रशस्त माना गया है।

नवोद्धृत (सं० क्ली०) नवमुद्धृतम्। १ नवनीत, मक्खन। २ नूतनोद्धृत, जो तुरन्त निकाला गया है।

नवोनसर—चैं निजनके एक राजा। इनके समय काश्मीर दिवामें ज्योतिष-विद्याकी विशेष आलोचना हुई थी। ७४७ ई०की २६वीं फरवरी बुधवारसे इन्होंने एक अब्द का प्रचार किया। इस अब्दकी गणना ३६५ दिनोंमें होती थी किन्तु प्रति चौथे वर्षमें आज कलकी जैसा एक दिन नहीं बढ़ता था।

नव्य (सं त्रि०) नूयते स्तूयते इति नु-यत् (अचो यत्। पा ३।१।९७) वा नवमेव ष्यत् (साधादिभ्यो यत्। पा ४।४।१०३) १ नूतन, नया, नवीन, ताजा। २ स्तुत्य, स्तुति करनेयोग्य। (पु०) ३ रक्तपुनर्नवा, गदहपूर्ना।

नव्यवर्द्धमान (सं० पु०) स्मृतिनिबन्धकारभेद। ये महो मोपाध्यायके पुत्र थे।

नष्पुस—पारेलिशन प्रदेशके प्राचीन राज्य समरियाकी प्राचीन राजधानी। यह नेपेलिस् शब्दका अपभ्रंश है। यहां दश प्रकारकी जातियोंकी राजधानी थी। यारदनके पूर्वभागमें इसका नाम शैशेम और उत्तरभागमें मार कर बतलाया है। यह एबल और गेरिजिम पहाड़के मध्य अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम नबुलस है। अभी यह एक छोटे ग्राममें परिणत हो गया है।

नश्वार (हि पु०) नसवार देखो।

नश्वारी (हि० स्त्री०) नसवारी देखो।

नश्य (सं० त्रि०) नश-क्विप्। १ नाशप्रतियोगी, नाशके लायक। नाशे क्विप्। २ नाश, बरबादी।

नश्यन (सं० क्ली०) नश-ल्युट्। नाशयोग्य, जिसका नाश हो, नाशके लायक।

नशा (फा० पु०) १ मादक द्रव्यके व्यवहारसे उत्पन्न होने वाली दशा। शराब, गाँजा, भांग, अफीम आदि एक प्रकारके विष हैं। इसके व्यवहारसे शरीरमें गरमी आ जाती है जिससे मनुष्यका मस्तिष्क क्षुब्ध और उत्तेजित हो उठता है। इतना ही नहीं ज्ञान या कारणशक्ति भी कम हो जाती है। इसी दशाको नशा कहते हैं। माया रखत' कोन मानसिक चिन्ताओंसे छूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करनेके लिये ही मादक द्रव्यका व्यवहार करते हैं। बहुतसे लोगोंको इन द्रव्योंका ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि बिना इसके पीये तनिक भी उन्हें चैन नहीं पड़ता। साधारण नशेकी अवस्थामें चित्तमें अनेक प्रकार की उमंगे उठती हैं, बहुत सी नई नई और विलक्षण बातें सूझती हैं तथा साथ साथ चित्त भी प्रसन्न रहता है।

लेकिन जब नशा बहुत हो जाता है, तब मनुष्य उल्टी करने लगता है अथवा बेहोश हो जाता है। २ मादक द्रव्य, नशा चढ़ानेवाली चीज। ३ धन, विद्या, प्रभुत्व या रूप आदिका घमण्ड, अभिमान, गर्व, मद।

नशाक (सं० पु०) नश्यतीति नश नाशे-आक (आकः खजादेः स च कित्। ४।२२४ इति उणादिकोषटीकाधृत सूत्र) काकभेद, एक प्रकारका कौवा।

नशाखोर (फा० पु०) वह जो किसी प्रकारके नशेका सेवन करता हो, नशेबाज।

नशिष्ठ (सं० त्रि०) नश-कर्त्तरि तृच्। नाशाश्रय, जिसका नाश हो।

नशीन (फा० वि०) बैठनेवाला, इस अर्थमें यह यौगिक शब्दोंके अन्तमें व्यवहृत होता है।

नशीनी (फा० स्त्री०) बैठनेकी क्रिया या भाव।

नशीला (फा० वि०) १ नशा लानेवाला, मादक। २ जिस पर नशेका प्रभाव हो।

नशेबाज (फा० पु०) वह जो हमेशा किसी न किसी प्रकारके नशेका सेवन करता हो, वह जिसे कोई नशा करनेकी आदत हो।

नशोहर (हिं० वि०) नाश करनेवाला।

नश्तर (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत तेज छोटा चाकू। इसका अगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः इसके सिरे दोनों ओर धार रहती है, फोड़े आदिके चीरने और फसद खोलनेमें इसका व्यवहार होता है।

नश्यत्प्रसूतिका (सं० स्त्री०) नश्यन्ती प्रसूतिं सन्ततिर्यस्याः कप्, ततष्टाप्। मृतवत्सा, वह जिसका बच्चा मर गया हो। पर्याय—नन्दू, मृतपुत्रिका।

नश्वर (सं० त्रि०) नश्यतोति नश क्वरप्। (इण् नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्। पा ३।२।१६३) नाशप्रतियोगी, नष्ट होनेवाला, जो नष्ट हो जाय।

नश्वरता (सं० स्त्री०) नश्वर होनेका भाव।

नष्ट (सं० वि०) नश-क्त। १ अदर्शनविशिष्ट, जो अदृश्य हो, जो दिखाई न दे। २ अधम, नीच, पामर। ३ अप्रचलित, जिसका प्रचार हो गया है। ४ पलायित, जो भाग गया हो। ५ नाशप्रतियोगी, जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो। ६ निष्फल, व्यर्थ। (क्ली०) ७ नाश, बरबादी।

नष्टचन्द्र (सं० पु०) नष्टो दुष्टश्चन्द्रः। सौर भाद्रमासके उभयपक्षकी चतुर्थीमें उदित चन्द्र भादों महीनेके दोनों पक्षकी चतुर्थीको दिखाई पड़नेवाला चन्द्रमा। इसका दर्शन पुराणानुसार निषिद्ध है।

रविके सिंहराशिमें जानेसे अर्थात् भाद्रमासके दोनों पक्षको चतुर्थी तिथिमें जो चन्द्र उदय होता है उसे देखना नहीं चाहिये। जो प्रमादवश देखता है, उसे कोई न कोई कलङ्क या अपवाद अवश्य लगता है। यहां तक कि नारायणने भी एक बार इस चतुर्थी चन्द्रमाको देखा था जिससे वे मिथ्यापवादग्रस्त हुए थे।

इस नष्टचन्द्रके दर्शन करनेसे इसके प्रायश्चित्त स्वरूप धार्त्तेयिका वाक्य पाठ करना होता है। उसके दूसरे दिन सवेरे पूर्व मुख वा उदङ्मुख हो कर कुश तिलादि हाथमें ले करके 'ओं अद्येत्यादि सिंहार्के चतुर्थीचन्द्रदर्शनजन्य पापक्षयकामः धार्त्तेयिका-वाक्यमहं पठिष्यामि' इस प्रकार सङ्कल्प करना होता है। बाद धार्त्तेयिका वाक्य पढ़ कर जल पीते हैं। मन्त्र—

"सिंहप्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक! मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥"

(कृत्यतत्त्व)

पुराकालमें चन्द्रमाने भाद्रमासकी चतुर्थी तिथिको ताराका हरण किया था, इसी कारण उस दिनकी चतुर्थी तिथि दुष्टा समझी जाती है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें ८० और ८१ अध्यायमें इसका विवरण विस्तृत रूपसे वर्णित है।

नष्टचित्त (सं० पु०) उन्मत्त।

नष्टचेतन (सं० पु०) अचेत, बेहोश, बेखबर।

नष्टचेष्ट (सं० त्रि०) जिसकी चेष्टा वा गति नष्ट हो गई हो, जिसमें हिलने डोलनेकी शक्ति न रह गई हो।

नष्टचेष्टता (सं० स्त्री०) नष्टा चेष्टा यस्य, तस्य भावः, तल् ततो टाप्। १ हर्ष शोकादि द्वारा सब चेष्टाओंका नाश, मूर्च्छा, बेहोशी। २ प्रलय। ३ सात्विक भावभेद, एक प्रकारका सात्विक भाव।

नष्टजन्मन् (सं० क्ली०) जारज, वर्णसङ्कर, दोगला।

जोड़नेके लिये होता है। साधारण बोलचालमें इसे शरीरतन्तु या रक्तधाहिनो नली कहते हैं। २ पतले रेशे वा तन्तु जो पत्तोंके बीच बीचमें होते हैं।

नसकटा (हिं० पु०) नपुंसक, हिजड़ा।

नसतरंग (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा जो पीतलका बना हुआ शहनाईके आकारका होता है। इसके पतले सिरे पर एक छोटासा छेद होता है। इस छेद पर मकड़ीके अण्डोंके ऊपर सफेद छत्ता रखते हैं। बाद शब्द करते समय उस सिरेको गलेकी घंटोके पासकी नसों पर रख कर गलेसे स्वर भरते हैं। इसी प्रकारके दो बाजे गलेकी घण्टोके दोनों ओर रख कर एक साथ ही बजाए जाते हैं।

नसतालिका (अ० पु०) १ फारसी या अरबी लिपि लिखनेका एक ढंग। इसमें अक्षर खूब साफ और सुन्दर होते हैं। २ वह जिसका रंग ढंग बहुत अच्छा और सुन्दर हो।

नसफाड़ (हिं० पु०) हाथियोंका एक रोग। इस रोगमें उनके पैर सूज जाते हैं।

नसर (अ० स्त्री०) १ गद्य। २ ईगल पक्षी, प्राचीन अरबियोंकी देवमूर्त्ति। अनसरिया प्रदेशका धर्म भी नसर उन्तयिर नामसे प्रसिद्ध था। नसर शब्दसे सूर्यका बोध होता है। ईगल पक्षी प्रकाश और सूर्यका चिह्न समझा जाता है। अलबेकनगरके ध्वंसावशिष्ट सूर्यमन्दिरके इष्टकादिमें ईगलवाहन सूर्यमूर्त्ति आज भी पाई जाती है।

नसर खाँ—अम्भलके एक मुसलमान शासनकर्त्ता। शेरशाहके राजत्वकालमें मुसलमानी इतिहास तारिख-इ-शेरशाहीमें लिखा है, कि शेर शम्भलाधिपति नसर खाँकी विधवा पत्नीने गहर कुशानी खाँसे विवाह कर ६० मन सोना पाया था।

नसरतगञ्ज—रोहिलखण्ड विभागके बरेली जिलेके अन्तर्गत रामनगरके उत्तरका एक ग्राम। प्रवादानुसार यही रामनगर महाभारतोक्त उत्तर पाञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्रानगरी है। यह बरेली शहरसे १०कोस पश्चिममें अवस्थित है। अहिच्छत्रा नाम आज भी सुननेमें आता है। रामनगर ग्रामके उत्तर एक बड़ा वन है। यह वन रामनगरके उत्तर आम्लपुरकोट और नसरतगञ्ज ग्रामके बीचमें पड़ता है। अभी इसी वनको अहिच्छत्रावन कहते हैं। इन सब स्थानोंमें प्राचीन नगर और दुर्गके भग्नावशेष तथा बौद्धयुगके स्तूपादिके ध्वंसावशेष यथेष्ट देखनेमें आते हैं। भग्नावशिष्ट दुर्गके दक्षिणपश्चिम कोणमें ४० फुट ऊँचा सावरी-बुरुज नामक एक स्तम्भ है, यहांकी जमीन खोदनेसे बीच बीचमें मित्र राजाओंकी मुद्रादि पाई जाती हैं, दुर्ग-भग्नावशेषके उत्तर प्राचीरके निकट एक शिवमन्दिरका खण्डहर है। केवल ६८ फुट ऊँची ईंटोंकी दीवार रह गई है। कनिंहम साहब अनुमान करते हैं कि यह मन्दिर सौ फुटसे भी ज्यादा ऊँचा था। मन्दिरका निम्नांश और हहत्लिङ्ग आज भी वर्त्तमान है। लिङ्गके टूट जाने पर भी वह अभी ८ फुट ऊँचा रह गया है। इसका घेरा ३½ फुट है इस भग्न लिङ्गको लोग अभी भीमकी गदा कहते हैं। यहां एक स्तूपके ऊपर एक बुद्धमूर्त्ति है जिसे हिन्दू लोग हिन्दू देवता समझ पूजते हैं। नसरतगञ्जमें जितने देवगण हैं वे भी बौद्ध-हिन्दू मन्दिरसे संग्टहीत हुए हैं। स्तूपके ऊपर गोलाकार ढालकी तरह जो छत थी, वह अभी भग्नस्तूपके ऊपर पड़ी हुई है। यहाके लोग उस छतको "पिसनहारोका छतर" कहते हैं। उस छतका भग्नावशिष्ट अभी जितना रह गया है उसीका व्यास १० फुट है। इससे अनुमान किया जाता है पहले यह छत ५० फुटसे कमका नहीं होगा। कनिंहमका कहना है, कि यही २५० ई०सन्के पहलेका बना हुआ अशोक-स्तूप है। इस स्तूपको युएनचुवङ्गने देखा था। नसरतगञ्जसे प्रायः एक सौ गज पूर्वको ओर एक दूसरे दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है जिसका नाम है कोटारी खेरा वा ध्वंसावशिष्ट स्तूप। यहां पहले दिगम्बर सम्प्रदायी जैनियोंका एक मन्दिर था। एक अट्पला स्तम्भमें उत्कीर्ण एक चरण लिपि देखनेसे मालूम होता है, कि महादरी नामक इन्द्रनन्दीके शिष्यने यहां पार्श्व नाथका एक मन्दिर बनवाया था। यहां नवग्रह चित्रित एक पत्थर भी पाया गया है। जैनियोंके निकट अहिच्छत्रा आज भी पवित्र तीर्थ समझा जाता है।

नसरत शाह—गौड़ेश्वर हुसेन शाहके पुत्र। हुसेन शाहके

मरनेके बाद ये बङ्गालके सिंहासन पर बैठे। पहले पहल इन्होंने अच्छी ख्याति पाई थी। आत्मीय स्वजन इनके प्रेमसे मुग्ध हो गये थे। इस समय इन्होंने मिथिला, गाजीपुर, मुङ्गेर आदिको जीत लिया था।

ये कवियों और पण्डितोंके उत्साहदाता थे। इन्हींके आदेशसे बङ्ग भाषामें महाभारतका अनुवाद किया गया था।

नसरत खाँके कहनेसे ही परागल खाँ और छोटे खाँ नामक इनके दो सेनापतियोंने कवीन्द्र और श्रीकरनन्दी द्वारा महाभारतका प्रचार कराया था। ये सब कवियोंकी पदावलीमें भी नसरतका नाम देखा जाता है।

१५२६ ई०के कुछ समय बाद बाबरने बङ्गाल पर चढ़ाई करनेका उद्योग किया था। नसरतने उन्हें दो बार शिकस्त भी दे दी थी, लेकिन कुछ फल न निकला। अन्तमें १५२९ ई०को इन्होंने बाबरके साथ सन्धि कर ली। इसी समयसे इनकी प्रकृति कुछ बदल गई। पहले जो ये साधु सज्जन थे, वे ही अब अत्याचारी हो गये। इनके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर प्रजा इन्हें मार डालनेकी कोशिश करने लगी। अन्तमें १५३२ ई०को ये किसी एक खोजाके हाथसे मार डाले गये।

गौड़का विख्यात 'सोना मसजिद' इन्हींका बनाया हुआ है। इनकी मृत्युके बाद इनके भाई महमूद शाह अपने भतीजेको मार कर आप सिंहासन पर बैठ गये।

नसल (अ० स्त्री०) खानदान, वंश।

नसवार (हिं० स्त्री०) सुंघनीके लिये तमाकूके पीसे हुए पत्ते, सुंघनी, नास।

नसहा (हिं० पु०) जिसमें नसें हों।

नसा (सं० स्त्री०) नस्-आ टाप्, यद्वा नमति कुटिलतां प्रकाशयति, नम बाहुलकात् स, ततो-टाप्। नासिका, नाक।

नसिर खाँ—१७५० ई०से ले कर १७६० ई० तक रिचार्ड बुरचियर बम्बईके गवर्नर थे। उस समय बन्दर अब्बासी नामक स्थानमें जो अंगरेज कर्मचारी कराम थे उन्हें नसिर खाँ नामक पारस्यराजके अधीनस्थ एक सामन्त राजने रामानीके निकट अपने शत्रुओं को दमन करने-का हुक्म दिया था। इन्होंने अपनेको उच्च वंशोद्भव बतलाया है।

नसिरजङ्ग—१७४८ ई०में निजाम उल्-मुल्कके मरने पर उनके द्वितीय पुत्र नसिरजङ्ग दक्षिण प्रदेशके सूबादारी मसनदके पद पर नियुक्त हुए। इन्होंने अर्काटकी लड़ाई में मरहट्टों और अंगरेजों का साथ दिया था। कुछ दिन ये अर्काटमें रहे थे। १७५० ई०में ये फ्रांसीसियोंके विरुद्ध लड़ने गये थे और वहीं कड़ापाके पठान नवाबके हाथसे मारे गये। इनकी मृत्यु पर चाँद साहब, फ्रेंच और पुदुचेरीके लोग प्रसन्न हुए थे।

नसिरपुर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत हैदराबाद जिलेका एक नगर। कहते हैं कि यह नगर ८५८ ई०में बसाया गया है।

नसिरपुर (नसरपुर)—सिन्धप्रदेशके हैदराबाद जिलेके अन्तर्गत अलाहयार तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २५ ३१ उ० और देशा० ६८ २८ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संख्या ४१११के लगभग है। दिल्लीके खिलजी वंशीय सम्राट सुलतान फिरोजशाहने १३५३ ई०में इसे बसाया था। इन्होंने गुजरातसे लौटते समय शहरपनाहके किनारे एक दुर्ग भी बनवाया था। पहले यहां तरह तरहके कपड़े बुने जाते थे पर अभी कर्ण पर सामान्य धोती साड़ी प्रस्तुत होती है। यहांका राजस्व (६०००) रु० है। शहरमें एक छोटी अदालत, अस्पताल तथा एक स्कूल है।

नसिरयार—रुहेले पठान नवाब आलम् खाँका बड़ा लड़का।

नसिरि—आसन्नवासी अफगानकी एक जाति। ये लोग ग्रीष्मकालमें टोबी और जटकोंमें रहते हैं। जाड़ा पड़ने पर सुलेमान पर्वतके नीचे दामन प्रदेशमें चले जाते हैं।

नसिरि खुसरू—हिजरी पञ्चम शताब्दीके एक कवि। अकबरके समयमें इनकी कविताका खूब आदर होता था।

नसिरुद्दीन्—मध्य एशियाके पञ्चाकी नामक स्थानके सुलतान। इनका असल नाम हुसेन खाँ था। ये एक समय अकबरको सभामें बिना आज्ञा लिये चले आये थे, इस कारण सम्राट्ने इस्मबेग मदकूरी नामक मौधली मनसबदारको इन्हें दमन करनेके लिये भेजा। इस्म बेग इन्हें अच्छी तरह परास्त करके कुछ दिन इनकी

राज्यमें ठहर गये थे। किन्तु जब वे भारतको लौट आए, तब फिर नसिरुद्दीनने खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त की और इसनकी सेनाओंको निकाल भगाया। अन्तमें इसनने आ कर पुनः इनका मान मर्दन किया।

नसिरुद्दीन् महमूद—दास राजाओंमें एक भारतीय सम्राट्। रजिया बेगमके बाद इन्होंने ही दिल्लीका सिंहासन सुशोभित किया। १२४६ ई०से ले कर १२६६ ई०के फरवरी मास तक इनका राजत्वकाल था। इनका आचार-व्यवहार उदासीन सरीखा था। राज्यकी आयमेंसे ये एक पैसा भी अपने काममें नहीं लाते थे। पुस्तकादिकी नकल करके जो कुछ उसमें मिल जाता, उसीसे अपना गुजारा करते थे। और सब राजाओंकी तरह इन्हें एकसे अधिक स्त्री या रखेली न थी। इनकी स्त्री स्वयं अपने हाथसे इनका खाना पकाती थी।

नसिरुद्दीन्-आबदाना-बिन उमर- अल् बैजभी—एक मुसलमान ऐतिहासिक। इन्होंने पारस्य भाषामें निज़ाम उत्-तवारिख नामका इतिहास रचा है। ये एक काजी थे। इन्होंने एशियाके सम्राट्, विशेषतः मुगलोंका ही विवरण विस्तार रूपसे लिखा है। सम्भवतः तान्निज नगरमें १२८६ ई०को इनकी मृत्यु हुई।

नसी (हिं० स्त्री०) कुसीकी नोक, हलके फारका अगला भाग।

नसीठ (हिं० पु०) बुरा शकुन, असगुन।

नसीनी (हिं० स्त्री०) सीढ़ी, जीना, निसेनी।

नसीपूजा (हिं० पु०) हलकी पूजा। यह पूजा बोनेके मौसिमके पीछेकी जाती है।

नसीब (अ० पु०) भाग्य, प्रारब्ध, किस्मत, तकदीर।

नसीबजला (अ० वि०) जिसका भाग्य खराब हो, अभागा।

नसीबवर (अ० वि०) सौभाग्यशाली, भाग्यवान।

नसीबा (हिं० पु०) नसीब देखो।

नसीम (अ० पु०) ठंढो, धीमी और बढ़िया हवा।

नसीराबाद—१ बङ्गाल प्रदेशके मैमनसिंह जिलेका एक सदर। यह अक्षा० २४° ४६' उ० और देशा० ९०°२४' पू०के मध्य ब्रह्मपुत्रके पश्चिम किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १४६६८ है। यहां १८६८ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। राजस्व ७००००) ई०के लगभग है। यहां कोई विशेष ऐतिहासिक घटना न घटी। प्राचीन सामग्रियोंमें अभी केवल दो मन्दिर रह गये हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत खान्देश जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २१° उ० और देशा० ७५°४०' पू०के मध्य भादलीसे २ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां प्राचीन कालकी अनेक समाधियां देखनेमें आती हैं। सातमाल पर्वतके भीलोंने ब्रटिश आधिपत्यके पहले इस शहरमें कई बार ऊधम मचाया था। १८०१ ई०में लुम नामक एक प्रसिद्ध लुटेरेने इसे अच्छी तरह लूटा। १८०२ ई०में यहां एक भयानक दुर्भिक्ष भी पड़ा था, शहरमें रूईका एक कारखाना और छः स्कूल हैं।

३ बलुचिस्तानके सीबी जिलेका एक उपविभाग और तहसील। यह अक्षा० २७°५५' और २८° ४०' उ० तथा देशा० ६७°४०' और ६८°२०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८५२ वर्गमील और जनसंख्या ३५७१२ है। इसमें एक शहर और १७० ग्राम लगते हैं।

४ बम्बईके लरकाना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७°१२' और २७°३२' तथा देशा० ६७°३२' और ६८ ६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५६५५४ है। इसमें कुल ६५ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे अधिकका है। यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य धान है। इस तालुककी दक्षिणकी मट्टी खारी है, अतः वहां कोई फसल नहीं लगती।

५ राजपूतानेका एक सैन्य-निवास। यह अक्षा० २६° १८' उ० और देशा० ७४°४३' पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २२४८४ है। हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। १८१८ ई०में आक्टरलोनीने यह निवास संस्थापित किया है।

६ सिन्धुदेशके अन्तर्गत शिकारपुर जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण प्रायः ३४३ वर्गमील है। इसमें ८ विभाग और ५४ ग्राम लगते हैं। इसके प्रधान नगरका नाम भी नसीराबाद है। मीर नसिर खांने तलपुरसे प्रायः ४० वर्ष पहले इस नगरको बसाया था। यहां एक उत्तम दुर्ग है।

पान द्वारा यदि गलेको नाली प्रभृति विशोधित हो जाय, तो पाणिपात द्वारा गलदेश, कपोलदेश और ललाटदेश स्निग्ध और मृदु करके वायु, आतप और रजोहीन गृहमें रोगीको उत्तानभावसे सुला दे। उसका हस्तपद प्रसारित, मस्तक किञ्चित् विलम्बित और चक्षु वस्त्रसे आच्छादित रहे। वामहस्तकी प्रदेशिनी द्वारा नासाग्रको थोड़ा उन्नमित करके पकड़े और पीछे दक्षिण हस्त द्वारा नासिकाके विशुद्ध स्रोतके मध्य निरवच्छिन्न भावसे स्नेह नस्यको दे दे; देनेके समय इस बात पर विशेष ध्यान रहे कि वह चक्षु तक न पहुंच जाय। स्नेहावसेचन करनेसे शिर:कम्प, क्रोध, भाषण, क्षवथु वा हास्य नहीं करना चाहिए। इसका परिमाण प्रदेशिनीके दोनों पर्वों में निःसृत अष्टबिन्दु प्रथम मात्रा, शुक्ति परिमाण मध्यमात्रा और करतल परिमित तृतीय मात्रा हैं। रोगीके बलके अनुसार इन सब मात्राओंका प्रयोग करना चाहिये। स्नेह-नस्यका किसी तरह गलेके नीचे जाना अच्छा नहीं है। प्रयोजित स्नेह शृङ्गाटकमें प्लावित हो कर जब मुखमेंसे निकलता है, तब उसे फिर धारण न कर निष्ठीवन कर दे, ऐसा नहीं करनेसे कफ उत्क्लिष्ट हो जाता है। इस प्रकार स्नेहका प्रयोग कर चुकने पर गला, कपोल आदि स्थानोंमें स्वेदका प्रयोग करके धूमपान करे और अभिष्यन्दी द्रव्य भक्षण करे। इस समय रोगीको रज, धूम, स्नेह, आतप, मद्यपान, शिरःस्नान और क्रोधका परित्याग करना चाहिए।

अब शिरोविरेचनके योग और अभियोगका फल लिखा जाता है। उपयुक्त परिमाणमें सेवित होनेसे मस्तककी लघुता, स्वच्छन्दसे निद्रा, प्रबोध विकारको शान्ति, इन्द्रियोंकी शुद्धि और मनका सुख ये सब क्रियायें होती हैं। अधिक परिमाणमें सेवित होनेसे कफप्रसेक, मस्तककी गुरुता और इन्द्रिय विभ्रम होती है। मूर्द्धदेशके अति स्निग्ध होने पर रुक्ष क्रिया कर्त्तव्य है। अति अल्प परिमाणमें सेवित होनेसे इन्द्रियका वैगुण्य, रुक्षता और रोगकी अशान्ति ये सब लक्षण देखनेमें आते हैं। ऐसी हालतमें फिरसे नस्यका प्रयोग करना उचित है। शिरोविरेचनार्थ स्नेहका परिमाण रोगीके बलके अनुसार चार, छः और आठ विन्दु निर्दिष्ट हुआ है।

शास्त्रज्ञोंने नस्य प्रयोगके भी शुद्ध, हीन और अभियोग ये तीन लक्षण बतलाये हैं। यह उपयुक्तरूपसे संशोधित होने पर मस्तककी लघुता, स्रोतपथकी शुद्धि, व्याधिजय, मन और इन्द्रियकी प्रसन्नता, शिरःशुद्धि ये सब लक्षण होते हैं। मस्तकके हीनरूपसे शोधित होने पर कण्डू, उपदेह, गुरुता और स्रोतपथमें कफका संचय आदि लक्षण तथा अतिशोधित होने पर मस्तुलुङ्ग, स्राव, वायुवृद्धि, इन्द्रियविभ्रम, मस्तककी शून्यता आदि लक्षण देखनेमें आते हैं। हीन और अतिशुद्धिको जगह कफवातनाशक प्रक्रिया करनी होती है। मस्तकके सम्यक् विशोधित होने पर उस पर घृतसेचन कर्त्तव्य है। वायुकर्त्तृक देह अत्यन्त अभिभूत होने पर एक दिनमें, दो दिनमें, सप्ताहमें वा पुनः पुनः अथवा दिनमें दो बार नस्य प्रयोग किया जा सकता है।

शिरोविरेचनकी तरह अवपीड़ भी अभिष्यन्दरोगमें तथा सर्पदंशनजन्य अचैतन्यमें प्रयोज्य है। शिरोविरेचक द्रव्योंमेंसे कोई द्रव्य पीस कर चूर्ण करे। चित्तविकार, कृमि और विषाभिपन्नरोगीके नासारन्ध्रमें नलके द्वारा उस चूर्णका प्रयोग करे। क्षीण व्यक्तिके रक्तपित्तरोगमें शर्करा, इक्षुरस, दुग्ध, घृत और मांसरस इनमेंसे किसी एकका नस्य प्रयोग हितकर है। कृश, दुर्बल, भीरु, सुकुमार और स्त्रियोंकी शिरःशुद्धिके लिए औषधके चूर्णके साथ पक्कस्नेह अर्थात् पकाए हुए तैल आदिका प्रयोग करे।

भुक्त, अपतर्पित, अति तरुण, प्रतिश्यायी, गर्भिणी, पीतस्नेह, पीतोदक, पीतमद्य, अजीर्ण, क्रुद्ध, विषार्त्त, तृषित, शोकाभिभूत, श्रान्त, बालक, वृद्ध, वेगावरोधित और शिरःस्नानाभिलाषी इन सब व्यक्तियोंको नस्यप्रयोग न करना चाहिये। जिस दिन आकाश मेघाच्छन्न रहे, उस दिन भी नस्य प्रयोग विधेय नहीं है।

नस्य वा धूम हीनमात्रा, अतिमात्रा, शीतल, उष्ण वा सहसा प्रदत्त होनेसे वा प्रयोगकालमें मस्तकके अति विलम्बित रहनेसे वा विचलित होनेसे अथवा निषिद्धभावमें युक्त होनेसे व्यापद होता है। शिरोविरेचनमें दो प्रकारसे व्यापद होता है—दोषके उत्क्लेश और क्षीणताके कारण। उत्क्लेशके कारण होनेसे शमनशोधनी द्वारा

और ज्वरके कारण होनेसे बृंहणीय द्रव्य द्वारा प्रतिविधान करना विहित है।

प्रतिमर्श चौदह कालमें प्रयोज्य है, यथा प्रातःकाल-में निद्राभङ्गके बाद, दन्तधावनके बाद, घरसे बाहर निकलनेके समय, मूत्रपुरीषत्यागके बाद, कवलग्रहण और अञ्जन प्रयोगके बाद, व्यायाम, व्यवाय वा पथ भ्रमणके बाद, अपराह्णकालमें, वमनकालमें और दिवा निद्राके बाद तथा साय कालमें। इन सब समयोंमें प्रयोग करनेसे निम्नलिखित फल होते हैं। निद्राभङ्गमें सेवन करनेसे रातको नासारन्ध्रमें सञ्चितमल परिष्कार होता है और मन प्रफुल्ल रहता है। दन्तप्रक्षालनके बाद सेवन करनेसे दन्त दृढ़ होते हैं और मुखमेंसे सुगन्ध निकलती है। घरसे निर्गमकालमें सेवन करनेसे रजोधूम आदि नासारन्ध्रमें प्रविष्ट नहीं होते। मलमूत्रावसानमें प्रयोग करनेसे आँखका भारीपन जाता रहता है। अपराह्णकालमें सेवन करनेसे स्रोतसमूहकी विशुद्धि और लघुता होती है। वमनकालमें सेवन करनेसे स्रोतोवलग्न कफ धोया परिष्कृत हो कर अन्नकी रुचि होती है। दिवानिद्राके बाद सेवन करनेसे निद्राजन्य गुरुत्व और मलनाश होता है तथा चित्तकी एकाग्रता उत्पन्न होती है। साय कालमें सेवन करनेसे सुखसे निद्रा और प्रबोध होता है।

ईषत् उच्छिङ्घित अर्थात् नस्यको सांस भरके खींच लेनेसे यदि वह मुख तक पहुंच जाय, तो उसे प्रतिमर्श कहते हैं। इसमें सेवनपरिमाणका भेद है।

नस्य ग्रहण करनेसे स्कन्धसन्धिके ऊर्ध्वगत रोगोंकी शान्ति होती है, इन्द्रिय निर्मल होती है, मुख सुगन्धित होता है, हनु, दन्त, शिर, ग्रीवा, बाहु और वक्षमें ताकत पहुंचती है तथा वलिपलित, खालित्य आदि रोग नहीं होते।

नस्यके पक्षमें कफजन्य रोगमें तैल, वायुजन्य रोगमें वसा, पित्तमें घृत और वायुयुक्त पित्तरोगमें मज्जा प्रयोज्य है। (सुश्रुत चिकित्सितस्थान ४० अ०)

नासिकापाद्य अर्थात् जो औषध नाकमें प्रयोग की जाय, उसीका नाम नस्य है। घृत, तैल और चूर्ण आदि जो सब औषध नासिकामें व्यवहृत होती हैं, उन्हींको नस्य कहते हैं।

"नस्यकृत् यन्मते नीरैर्नासामाथ्रं तदौषधम्।
नावनं नस्य कर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्॥"

(चरक)

चरक-सूत्रस्थानके पञ्चम अध्यायमें नस्य विषयका विस्तृत विवरण लिखा है।

"दिवस एव नस्य रात्रौ चात्युत्कटे गदे।"

(चरक चिकि० ५ अ०)

दिनमें ही नस्य लेना प्रशस्त है, यदि पीड़ाकी अतिशय वृद्धि हो तो रातको भी ले सकते हैं। शिरोरोगमें ही नस्य विशेष उपकारी है।

भैषज्यरत्नावलीमें नस्यका विषय इस प्रकार लिखा है—सैन्धवलवण, श्वेतमरिचका बीज, श्वेतसर्षप और कुठका बराबर बराबर भाग ले कर एक साथ मिलावे और छागमूत्रमें उसे पीस कर नस्य दे। इससे तन्द्रा नष्ट होती है। मधुकसार, सैन्धवलवण, वच, मिर्च और पीपरके समभागको पीस कर जलके साथ नस्य देनेसे रोगी चैतन्यलाभ करता है।

पिप्पलीमूल, सैन्धवलवण, पिप्पली और मधुकसार का समभाग चूर्ण और उतना ही मिर्च चूर्ण, दोनोंको एक साथ मिला कर कुछ गरम जलके साथ नस्य प्रदान करनेसे रोगी बहुत जल्द चैतन्यलाभ करता है और तन्द्रा, प्रलाप तथा मस्तकका भार जाता रहता है।

लहसुन और मिर्चके समभागको पीस कर कपड़ेमें बांध कर नस्य लेनेसे [illegible] नष्ट होती है। काली सुरसीके डिम्बके तत्तोमका नस्य लेनेसे दुःसाध्य सान्निपातिकज्वर भी अतिशीघ्र प्रशमित होता है।

शिरीष पुष्पके रसमें हरिद्रा और दारुहरिद्राका चूर्ण तथा घृत मिश्रित करके नस्य ग्रहण करनेसे चातुर्थक ज्वर दूर हो जाता है।

बकपुष्प उसके पत्तोंके रसका नस्य लेनेसे चातुर्थक ज्वरकी शान्ति होती है। (भैषज्यरत्नावली ज्वराधि०)

पद पीनसरोगमें पाठादितैलका नस्य ग्रहण करनेसे यह अति शीघ्र उपशमित होता है। व्याघ्रीतैलका नस्य भी पूतिनासारोगमें हितकर है। त्रिकटु, विड़ङ्ग, सैन्धव, वृहतीफल, सोहिञ्जनके बीज और दन्तीमूल प्रत्येक २ तोलाको पीस कर १ सेर तेल और ४ सेर

गोमूत्रमें पाक करके नस्य लेनेसे पूतिनासारोग नष्ट हो जाता है। इन्द्रयव, हिङ्गु, मिर्च, लाक्षारस, कट्फल, त्रिकटु, वच, सोहिञ्जनकी छाल और विडङ्ग इनके द्वारा नस्य लेना प्रशस्त है।

कटु तैल १ सेर, गोमूत्र ४ सेर, लाक्षारस ४ सेरमें इन्द्रयव, हिंगु, मिर्च, कट्फल, त्रिकटु, वच, सोहिञ्जनको छाल और विडङ्ग कुल मिला कर १ सेरको पाक कर नस्य लेनेसे पीनस और पूतिनासारोग उपशमित हो जाता है।

अपराजिता फलके रसका नस्य लेनेसे अथवा उसकी जड़ कानमें बांधनेसे शिरःपीड़ाकी शान्ति होती है। मिर्च और भृङ्गराजके नस्यसे भी सिरका दर्द दूर होता है। सोंठको पीस कर दूधके साथ नस्य लेनेसे नाना दोषोत्पन्न शिरःपीड़ाकी निवृत्ति होती है।

तिलतैल ४ सेर, छागदुग्ध ४ सेर, भीमराजके रस १६ सेरमें एरण्डमूल, तगर-पादुका, शुल्फा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, गुड़त्वक्, विड़ङ्ग, यष्टिमधु और सोंठ प्रत्येक ६ तोला ३ माशा और २ रत्तीको चूर कर पाक करे। पीछे इसका नस्य लेनेसे शिरका रोग दूर होता है, केश शिथिल और दन्तादि दृढ़ हो कर दृष्टिशक्ति और बाहुबलकी वृद्धि होती है।

कौड़ीकी भस्म २॥ तोला, सोहागेकी खोई २॥ तोला, मिर्च ४॥ तोला और विष १॥ तोला इन सब द्रव्यों को स्तन्यदुग्धमें मर्दन कर नस्य लेनेसे शिरोरोग प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना० नासारोग और शिरोरोगाधिकार) २ बैलको नाकको रस्सी, नाथ।

नस्यदान (सं० पु०) नस्य रखनेका आधार, सुंघनी की डिबिया, नासदान। भारतवासी नस्य रखनेके लिए नाना प्रकारके नस्यदान बनाते हैं। कैथके भीतरसे गूदा निकाल कर उस खोखले भागके ऊपर तरह तरह की खोदाई करके एक प्रकारका सुन्दर नस्यदान प्रस्तुत करते हैं। साधारणतः काठका खोखला डिम्बाकृतिका बना करके लोग उसीमें नस्य रखते हैं। इसमें एक छेद होता है जो ठेपीसे बन्द रहता है। नस्य निकालते समय इस ठेपीको निकाल लेते और फिर बन्द कर देते हैं। कहीं कहीं शम्बूकके खोखलेमें भी नस्य रखा जाता है। अभी जर्मनी, अष्ट्रिया, इङ्गलेण्ड आदि स्थानोंसे पेस्ट बोर्ड, हड्डी और काठ आदिके तरह तरहके नस्यदान बन कर आते हैं। शौकीन आदमी प्रायः इन्हींका व्यवहार करते हैं। धनी लोग सोने चांदीका नासदान काममें लाते हैं।

नस्यधानी (सं० स्त्री०) नस्याधार, सुँघनी रखनेका बरतन, नासदानी।

नस्या (सं० स्त्री०) नासिकायै हिता यत् (शरीरावयवात्। पा ५।१।६) १ नासिका, नाक। २ नासाछिद्र, नाकका छेद।

नस्याधार (सं० पु०) नस्यस्य आधारः ६ तत्। वह पात्र जिसमें सुँघनी रखी जाती है, नासदानी।

नस्योत (सं० त्रि०) नस्यया नासारज्ज्वा उतः। नथित, वह पशु जिसकी नाकमें रस्सी आदि डालनेके लिये छेद किया गया हो।

नहँ (हिं० पु०) संयुक्त प्रदेशमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया चावल।

नह (सं० अव्य०) न च हच। प्रत्यारम्भ।

नहछू (हिं० पु०) नखछौर, विवाहकी एक रस्म। इसमें वरकी हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है।

नहट्टा (हिं० पु०) नखक्षत, नाखूनसे की हुई खरोंच।

नहन (हिं० पु०) पुरवट खींचनेकी मोटी रस्सी, नार।

नहपान—वर्त्तमान जूनागढ़के निकट अर्थात् सौराष्ट्रराज्यमें किसी समय क्षत्रप उपाधिकारी राजा राज्य करते थे। इन राजाओंके दो स्वतन्त्र वंशोंका परिचय पाया गया है जिनमेंसे खहरात वंशीयगण पहले और चष्टान-वंशीयगण पीछे राज्य करते थे। चष्टानवंशके आदिपुरुष चष्टानने जब राज्य ग्रहण किया, तब उससे कुछ पहले खहरातवंशीय नहपान क्षत्रप राज्य करते थे। इनके समयकी मुद्रा पाई गई है। ये अन्ध्रराज गौमतीपुत्रसे मारे गये। क्षत्रप (Satrap) शब्दका अर्थ सामन्त भूपति है, कोई कोई अनुमान करते हैं, कि खहरातवंशीय क्षत्रपगण शक-राजाओंके अधीन सामन्तराज थे। क्षत्रप और रुद्रदामा देखो। नहपानके पिताका नाम दिनिक था। डा० भाण्डारकरका मत है, कि गुजरातमें

नहपानकी राजधानी थी। ई०सन्‌के पहले ५०से ले कर १२० ई०के अन्दर नहपान वर्त्तमान थे।

इनके जमाई उषवदात (ऋषभदत्त) पश्चिम गङ्गाके पश्चिम कोङ्कण प्रदेशके शासनकर्त्ता थे। इन्हींने सोमनाथ पत्तनमें अनेक दानादि किये थे। नहपानके समय नासिक-मोलीय पायसने सुन्दरको सनमोट गुफाओंके मध्य एक गुहामण्डप निर्माण किया, जिसमें सन्यासी लोग रहते थे। इनके राजत्वकालके ४६वें वर्षमें गुहामण्डप और उसके पासका एक जलाधार बनाया गया था। वह गुफा आज भी वर्त्तमान है तथा उसके निर्माणकालकी उत्कीर्ण लिपि अब भी अच्छी तरह नजर आती है। गुफामें जो स्तम्भ लगे हुए हैं, वे देखनेमें बहुत मनोरम लगते हैं। नासिक देखो। बहुतेरेका कहना है, कि जिस सम्वत्‌को विक्रम सम्वत् कहते हैं वह इन्हीं नहपानका चलाया हुआ है। शिलालिपि देखो।

नहय—मध्य प्रदेशान्तर्गत कोवट देशान्तर्गत एक ग्रामविशेष। चन्द्रवंशमें जब विमल गोत्र राजा राज्य करते थे, उस समय विजयदत्त नामक एक राजपुत्रने इस देशमें आ कर युद्ध किया। युद्धके समय जिस स्थान पर उनका घोड़ा मारा गया, वही स्थान 'नहय' या 'नहवि' ग्राम नामसे प्रसिद्ध है। सर्पाघातसे जब विजयदत्तकी मृत्यु हुई, तब यह ग्राम तहस नहस हो गया। (मल्ल प०)

नहर (फा० स्त्री०) जल बहानेके लिए खोद कर बनाया हुआ रास्ता। यह खेतोंकी सिंचाई या यात्रा आदिके लिये तैयार की जाती है। बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियोंके समान हुआ करती हैं और उनमें बड़ी बड़ी नावें भी चलती हैं। कभी कभी दो झीलों या बड़े जलाशयोंका पानी मिलानेके लिये भी नहरें काटी जाती हैं।

नहरनी (हिं० स्त्री०) १ नाखून काटनेका एक औजार। यह औजार लोहेका एक लम्बा गोल टुकड़ा होता है और इसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है। इससे नाखून काटे जाते हैं। २ इसी प्रकारका एक औजार जिससे घोड़ोंके टाप छीले जाते हैं।

नहरम (हिं० स्त्री०) भारतकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। पहाड़ी झरनोंमें यह अधिकतासे होती है।

नहरी (फा० स्त्री०) वह जमीन जो नहरके पानीसे सींची जाय।

नहरुआ (हिं० पु०) शरीरके भीतरी भागमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। पानीके साथ एक विशेष प्रकारका कीड़ा शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है, उसीसे इस रोगकी उत्पत्ति है। इसमें पहले किसी स्थान पर सूजन होती है। बाद छोटासा घाव होता है और तब उस घावमेंसे डोरेकी तरहका कीड़ा धीरे धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गजों लम्बा होता है। इस रोगसे कभी कभी पैर आदि अङ्ग बेकाम हो जाते हैं।

नहरूआ (हिं० पु०) नहरुआ देखो।

नहला (हिं० पु०) १ ताशके खेलमें वह पत्ता जिस पर नौ चिह्न या बूटियां हों। २ नगीने बनानेका एक प्रकारका औजार जो बरमेकी तरहका होता है।

नहलाई (हिं० स्त्री०) १ नहलानेकी क्रिया या भाव। २ वह धन जो नहलानेके बदलेमें दिया जाय।

नहलाना (हिं० क्रि०) स्नान कराना, नहवाना।

नहवाना (हिं० क्रि०) नहलाना देखो।

नहसुत (हिं० पु०) १ नखकी रेखा, नाखूनका निशान। २ पलाशकी तरहका एक पेड़ जिसे करहद भी कहते हैं। करहद देखो।

नहां (हिं० पु०) १ धुरी पहनाई जानेवाला पहियेके ठीक बीचका छेद। २ घरके पानीका धावन।

नहान (हिं० पु०) १ नहानेकी क्रिया। २ स्नानका पर्व।

नहाना (हिं० क्रि०) १ स्नान करना। शरीरमें जितने रोमकूप हैं, नहानेसे उन सबका मुंह खुल और साफ हो जाता है तथा शरीरकी थकावट भी दूर हो जाती है। भारतवर्ष सरीखे गरम देशोंमें लोग नित्य सवेरे उठ कर शौच आदिसे निवृत्त हो कर स्नान करते हैं और कभी प्रातःकाल तथा सन्ध्या दोनों समय स्नान करते हैं। लेकिन ठंढे देशोंके लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताहमें एक या दो बार नहाते हैं। २ सराबोर हो जाना, बिलकुल तर हो जाना। इस अर्थमें 'नहाना' शब्दके साथ प्रायः 'उठना' या 'जाना' संयोज्य क्रिया लगाई जाती है। ३ रजोधर्मसे निवृत्त होने पर स्त्रीका स्नान करना।

नहानी (हिं० स्त्री०) १ रजस्वला स्त्री। २ स्त्रीका रजस्वला होना।

नहार (फा० वि०) जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो, बासी मुंह।

नहार—बम्बई प्रदेशके रेवाकाण्ठके मध्य पाण्डुमेहरागणका एक छोटा राज्य। भूपरिमाण ३ वर्गमील है। इसके प्रधान ग्रामका नाम भी नहार है। इस राज्यके दो अधिकारी हैं जिनकी उपाधि ठाकुर है। राज्यकी आय छः सौकी है। बड़ोदाके गायकवाड़को ३५) रु० करमें देने पड़ते हैं।

नहारी (फा० स्त्री०) १ जलपान, कलेवा, नाश्ता। २ वह गुड़ मिला आटा जो घोड़ेको सवेरे अथवा आधा रास्ता पार कर लेने पर खिलाया जाता है। ३ मुसलमानोंके यहां बननेवाला एक प्रकारका शोरवेदार सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ सवेरे खमीरी रोटी खाई जाती है।

नहि (सं० अव्य०) न च हि च। निषेध, कभी नहीं, अभाव। पर्याय—अ, नो, न, अन, अना, ना।

नहिअन (हिं० पु०) बिछियाकी तरहका एक गहना जो पैरकी छोटी उंगलीमें पहना जाता है।

नहिक—अरबके प्राचीन पौत्तलिक धर्मके अन्तर्गत देवताविशेष। इनका दूसरा नाम है सुहादनीर। अमरवीन लुहाईने जो तीन देवमूर्तियां प्रचलित कीं उनमेंसे ये दूसरे हैं।

नहियां (हिं० स्त्री०) नहिअन देखो।

नहिरनी (हिं० स्त्री०) नहरनी देखो।

नहीं (हिं० अव्य०) एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या अस्वीकृति प्रकट करनेके लिये होता है।

नहुष (सं० पु०) नह्यति इति कर्त्तरि कर्मणि वा उषच्। (पुनहिकलिभ्य उषच्। उण् ४।७५) १ नागभेद, एक नागका नाम। २ चन्द्रवंशीय राजभेद, चन्द्रवंशके एक राजाका नाम।

चन्द्रवंशीय राहुकी लड़की प्रभाके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ये नहुष प्रथम थे। इनके शेष चार भाइयोंके नाम क्रमशः वृद्धशर्मा, रभ, रजि और अनेना थे। (हरिवंश १८ अ०)

चन्द्रवंशीय आयु राजाके पुत्र, पुरूरवाके पौत्र। इनकी माताका नाम स्वर्भानवी और स्त्रीका नाम अशोकसुन्दरी था। इनके छः पुत्र थे जिनके नाम ये हैं,—यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति और कृति। इन्होंने तुण्ड नामक एक दैत्यका वध किया था। ये बड़े न्याय परायण और प्रबल-पराक्रान्त राजा थे। इनके सुशासनसे डकैतोंका नाम-निशान तक भी न था। इन्होंने यज्ञ, तपस्या, वेदपाठ, इन्द्रियनिग्रह और पराक्रम द्वारा त्रैलोक्यका ऐश्वर्य प्राप्त किया था। एक समय अज्ञान वश इन्होंने गोवध किया था। इस पर महर्षियोंने इनके इस गोवध पापको एक सौ एक व्याधिरूपमें विभक्त कर पापमुक्त किया था। किसी समय महर्षि च्यवन प्रयागतीर्थमें जलके अन्दर तपस्या कर रहे थे; धीवरोंने इन्हें मछलीके साथ पकड़ राजाके हाथ बेच डाला। पुराणमें एक जगह और लिखा है, कि जब इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उस समय इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी। उसके भयसे इन्द्र १००० वर्ष तक कमलनालमें छिप कर रहे थे। उस समय इन्द्रासन पर जब कोई न रहा, तब गुरु वृहस्पतिने नहुषको योग्य जान कुछ दिनोंके लिये इन्द्रपद दिया था। यहां इन्द्राणी पर मोहित हो कर इन्होंने उसे अपने पास बुलाना चाहा। तब वृहस्पतिकी सलाह ले कर इन्द्राणीने कहला भेजा कि, "यदि पालकी पर बैठ कर सप्तर्षियोंके कन्धे पर हमारे यहां आओ, तो हम तुम्हारे साथ चलें।" यह सुन कर राजाने तदनुसार ही किया और घबराहटमें आ कर सप्तर्षियोंसे कहा—सर्प, सर्प अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। इस पर अगस्त्य मुनिने इन्हें शाप दे दिया कि, 'जा सर्प हो जा'। तब वे वहांसे पतित हो कर बहुत दिनों तक सर्प योनिमें रहे।

महाभारतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है—पाण्डवगण जब द्वैतवनमें रहते थे उस समय एक दिन भीमसेन शिकारको बाहर निकले। वहां किसी महाबलिष्ट सर्पने उन्हें पकड़ लिया। भीमके आनेमें विलम्ब होता देख युधिष्ठिर धौम्य पुरोहितके साथ उनकी तलाशमें निकले और जहां वे सर्पसे पकड़े गये थे वहां ही पहुंच गये। सर्प बहुत बड़ा था; गिरिगुहा ऊपरसे उसके शरीरको ढकी हुई थी। शरीरका

उसका भिन्न भिन्न रंगोंसे सुशोभित था। कान्ति सोनेकी सी थी, मुख गुहाकार और चतुर्दंष्ट्रायुक्त था। युधिष्ठिरने अपने प्रिय भाईको सांपसे घिरा देख कहा, "तुम किस प्रकार इस आफतमें फंस गये?" भीमने उत्तर दिया, 'ये नहुष नामक राजर्षि हैं ब्राह्मणोंके शापसे सांप हो गये हैं।' इस पर युधिष्ठिरने सांपको सम्बोधन कर कहा 'तुम कौन हो, देवता हो, या दैत्य हो, वा उरग हो? सच सच कहो। तुम भीमसेनको क्यों निगल रहे हो? ऐसी कौनसी वस्तु है जिसके देनेसे तुम प्रसन्न हो सकते हो? ऐसा कौनसा उपाय है जिससे तुम इसे छोड़ सकते हो?"

इसके उत्तरमें सर्पने कहा, "हे अनघ! मैं तुम्हारे पूर्व पुरुष सोमवंशीय आयु राजाका पुत्र हूं। सोमसे निम्न पञ्चम पुरुषमें नहुष राजा नामसे प्रसिद्ध था। मैंने यज्ञ, तपस्या, स्वाध्याय, दम और विक्रमसे सहजमें त्रैलोक्यका ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था। उस समय वैसा ऐश्वर्य पा कर मुझमें कुछ घमण्ड आ गया। तब मैंने अपनी शिविका ढोनेके लिये हजारों ब्राह्मणोंको नियुक्त किया था। पूर्व कालमें मैं स्वर्गके दिव्य विमान पर चढ़ कर इधर उधर घूमा करता था, अभिमानसे मत्त हो कर किसीकी परवाह नहीं करता। ब्रह्मर्षि, देव, गन्धर्व, राक्षस और पन्नगगण सभी त्रिलोकवासी मुझे कर देते थे। मुझमें ऐसी दृष्टि-शक्ति थी कि जब मैं कभी किसी प्राणीको एक बार देख लेता, तब उसी क्षण उसका तेज हरण कर लेता था। हजारों ऋषि मेरी शिविका ढोते थे, इसी दुर्नीतिसे मैं भ्रष्ट हो गया। एक समय अगस्त्य मुनि मेरी शिविका ले जा रहे थे कि उस समय मेरे पैर उनके शरीरमें छू गये। इस पर वे बहुत बिगड़े और "तुम ध्वस्त हो जाओ', 'तुम सर्प हो जाओ' ऐसा शाप दे दिया। उसी समय मैं उस शापसे श्रीभ्रष्ट हो कर विमान परसे औंधे मुंह गिर पड़ा। जब मैंने अपनेको सर्पके रूपमें देखा, तब अगस्त्य मुनिकी नाना प्रकारसे स्तुति की। अगस्त्यने सन्तुष्ट हो कर मुझसे कहा कि, धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। तुम्हारे घोर अभिमान स्वरूप पापका क्षय हो जानेसे पुनः तुम पुण्यफल प्राप्त करोगे। किन्तु इतना होने पर भी मैं ज्ञानशून्य नहीं हुआ था। तुम मेरे कुछ प्रश्नोंके सम्यक उत्तर दे कर अपने भाईको छुड़ा ले जा।" जब युधिष्ठिर ने प्रश्न पूछनेके लिये उससे कहा, तब सर्पने इस प्रकार प्रश्न किया ब्राह्मण कौन है और वेद कौन है? उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा, 'सत्य, दान, क्षमा, सौजन्य, अक्रूरता तपस्या और दया ये सब जिनमें विद्यमान हैं वे ही ब्राह्मण हैं—जो सुख दुःख रहित हैं और जिन्हें जाननेसे मनुष्यका शोक दूर हो जाता है वे ही परब्रह्म वेद हैं।' नागराजने और भी कई प्रश्न किये थे जिनका उत्तर युधिष्ठिरने सम्यक् रूपसे दे दिया। इस पर सर्परूपी नहुषने संतुष्ट हो कर कहा, 'यदि सभी मनुष्य शूर और बुद्धिमान् हो और ऐश्वर्यमद उन्हें मोहित करता हो, तो ऐश्वर्य सुखमें समासक्त सभी पुरुष मोहसे मुग्ध हो सकते हैं। इसका प्रथम उदाहरण मैं ही हूं। महाभाग! तुम्हारा भाई निरापद है और तुमसे मेरा शाप दूर हो गया। अत तुम्हें धन्यवाद है। इतना कह कर नहुषने सर्परूपका परित्याग करके दिव्य-शरीर धारण किया और उसी समय वे स्वर्ग को चले गये। (भारत आदि, वन, शान्ति और अनु॰ प॰, भागवत, पद्मपु॰)

ऋक्संहितामें भी ये आयुके पुत्र और ययातिके पिता माने गए हैं। (ऋक् १।३१।११ १०।६३।१)

२ सूर्यवंशीय अम्बरीषके एक पुत्रका नाम। इनके पुत्रका नाम ययाति था। (रामायण आर॰ ७० अ॰)

३ मनुपुत्र मानवनहुष एक ऋषि। इन्होंने ऋक्संहिताके ८ मण्डलके १०१ सूक्त बनाए हैं।

(कात्यायनकी ऋग्वेदानुक्रमणिका)

४ कुशिकवंशीय एक ब्राह्मण राजा। सह्याद्रि खण्डमें पाठारेय जातिके विवरणमें लिखा है कि कुशिक राजाके पुत्र नहुष, नहुषके पुत्र आह्लादित और आह्लादितके पुत्र कुषिकन थे। यही लोग कोशिकराज वा दौर्मराज नामसे प्रसिद्ध हैं। कुशिकवंशी कौशिक देवी दुर्गा मानी जाती हैं, इस लिये यह वंश दौर्ग कहलाता है।

६ राजर्षिभेद एक राजर्षिका नाम। ७ सर्पभेद, सर्पका नाम। ८ परमेश्वर। ९ स्वयं विष्णुका नामान्तर। १० मनुष्य, आदमी।

नहुषाख्य (सं० स्त्री०) नहुष आख्या यस्य। तगरपुष्प।

नहुषात्मज (सं० पु०) नहुषस्य आत्मजः। नहुष राजाके पुत्र, राजा ययाति।

नहुष्य (सं० त्रि०) मनुष्य सम्बन्धी।

नहूर (हिं० स्त्री०) तिब्बतमें मिलनेवाली एक प्रकारकी भेंड। ये कभी कभी नेपालमें भी आ जाती हैं। जब वर्फ अधिक पड़ने लगता है, तब इनके झुण्ड पर्वतकी चोटीसे उतर कर सिन्धुनदीके किनारे तक भी आ जाते हैं।

नहूसत (अ० पु०) १ खिन्नता, उदासीनता, मनहूसी। २ अशुभ लक्षण।

नांउं (हिं० पु०) नाम देखो।

नांगा (हिं० वि०) १ नंगा देखो। (पु०) २ एक प्रकारके साधु जो नंगे ही रहते हैं।

नांगो (हिं० वि०) नंगो देखो।

नांद (हिं० स्त्री०) पशुओंको चारा आदि देनेका मिट्टीका एक बड़ा और चौड़ा बरतन, हौदी।

नांदोड़—बम्बईके रेवाकान्थ एजेन्सीके अन्तर्गत राजपीपला राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २१° ५४´ उ० और देशा० ७३° ३४´ पू०, सूरतसे ३२ मील पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या ११२२६ है। कहते हैं, कि १३०४ ई०में मुसलमान-शासनकर्ताओंने नांदोड़के प्रधानको यहांसे निकाल भगाया और नांदोड़ पर अपना पूरा दखल जमा लिया। पीछे मुसलमानोंके अधःपतन होने पर १८३० ई०में नांदोड़ पुनः उनके हाथ आ गया। यहां सूतेका मोटा कपड़ा तैयार होता है।

ना (सं० अव्य०) एक शब्द जिसका प्रयोग अस्वीकृति या निषेध सूचित करनेके लिए होता है, नहीं, न।

नाइत्तिफाकी (फा० स्त्री०) मेलका अभाव, विरोध, फूट, मतभेद।

नाहन—पञ्जाबके अन्तर्गत समूर नामक देशीय राज्यकी राजधानी। यह पार्वत्य राज्य है और हिमालयके ऊपर सिमलासे २० कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यह बहुत परिष्कार नगर है। यहांके गृहादि पत्थरके बने हुए हैं। राजप्रासाद नगरके बीचमें दण्डायमान है। १८१४ ई०के नेपाल-युद्धमें यह नगर अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया। गोरखा लोगोंने इसे समूरके राजासे ले लिया था। युद्धके समाप्त हो जाने पर यह फिर राजाको दे दिया गया। समूर देखो।

नाइन (हिं० स्त्री०) १ नाई जातिकी स्त्री। २ नाईकी स्त्री।

नाइं (हिं० स्त्री०) १ समान दशा, एकसी गति। (वि०) २ समान, तुल्य।

नाई (हिं० पु०) नापित, हज्जाम।

नाईपांडे—कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका एक भेद। लगभग चार सौ वर्ष व्यतीत हुए कि मुसलमान लोगोंके साथ मदारपुरके अधिपति भुमिहार ब्राह्मणोंका भीषण युद्ध छिड़ा। युद्धमें ब्राह्मण परास्त हुए और सबके सब कट मरे। केवल एक अनन्तराम ब्राह्मणकी स्त्री जो गर्भिणी थी बच गई थी। मुसलमानोंके उपद्रवके भयसे वह स्त्री स्रोना नामक किसी नाईके साथ उसकी ससुरालमें जा बसी। युद्धमें जो उसके पति, पुत्र, देवर आदि मारे गए थे, उनसे वह बहुत दुःखित रहती थी और भोजन नहीं करनेके कारण वह दिनों दिन दुर्बल और शक्तिहीन हो चली। गर्भके दिन पूर्ण होने पर बहुत कष्टसे उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव करनेके बाद वह ब्राह्मणी इस लोकसे चल बसी। नाईने उसकी क्रिया ब्राह्मण द्वारा कराई और बालकका जातसंस्कार भी ब्राह्मणोंकी रीतिके अनुसार कराया। बालकका नाम रखा गया गर्भू। गर्भूने जब आठवें वर्षमें कदम रखा, तब उस नाईने अपने पुरोहित सुखमणि तिवारीको वह बालक समर्पण कर दिया; क्योंकि उनके एक भी सन्तान न थी। सुखमणि तिवारीजीने उस गर्भू बालकका यज्ञोपवीत वेद रीतिसे किया और उसे वेदाध्ययन भी कराया। काश्यप उसका गोत्र रखा गया। गर्भूके वंशमें कटोरी और अस्तुरेकी पूजा आज भी शुभकार्यमें होती है। यह कटोरी-अस्तुरेका पूजन उस नाईके उपकारके स्मरणका हेतु है।

इसके दो भेद हो गए हैं। जो पढ़े लिखे मनुष्य थे, वे तो अपनेको ब्राह्मण समझ कर कान्यकुब्जोंमें मिल गए और जो पढ़े लिखे न थे, वे एक अस्तुरे और कटोरीका पूजन करते करते परस्पर स्वजाति वर्गकी हजामत भी करने लगे, वही नाईपांडे नामसे प्रसिद्ध हुए। इस

प्रकार परस्पर हजामत करते करते ये लोग अन्य उच्च जातियोंकी भी अन्य नाइयोंकी तरह हजामत करने लगे। अन्तमें इस प्रकार करते करते अपनी असलियतको भूल कर अपनेको नाई ही समझने लगे। परन्तु इनके नाममें इनकी ब्राह्मणत्वका सूचक "पांडे" शब्द ज्यों का त्यों बना रहा। इस उपाधिसे ये लोग ब्राह्मण समझे जाते हैं। ये लोग केवल हजामत ही नहीं करते, बल्कि कुछ चीनी बनाते, कुछ सेवावृत्ति और कुछ भिक्षावृत्ति करते हैं। युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद कानपुर तथा प्रयाग आदि जिलोंमें ये लोग अधिक संख्यामें रहते हैं।

नाकत (हिं० पु०) अन्न वस्त्रसे भूतप्रेत भगानेवाला मनुष्य, ओझा।

नाकन (हिं० स्त्री०) नाक रेखा।

नाउम्मेद (फा० वि०) निराश।

नाउम्मेदी (फा० स्त्री०) निराशा।

नाक (हिं० पु०) नाई देखो।

नाकद (फा० वि०) अशिक्षित, बिना सिखाया हुआ। अपढ़।

नाक (सं० पु०) नक सुखमिति अकं दुःखम्, तन्नास्त्यत्रेति नञ्कृत्वादिना निपातनात् प्रकृतिभाव। १ स्वर्ग, जहां दुःख नहीं भविष्यत्में दुःखकी सम्भावना नहीं, उसी स्थानका नाम नाक है। २ अन्तरीक्ष आकाश। ३ अस्त्रपातविशेष, अस्त्रका एक आघात, जो इस अस्त्रसे विद्ध होता है, उसकी अल्प आयु होती है।

नाक (हिं० स्त्री०) १ नासा, नासिका। नासिका देखो। २ कफ़के जैसे लोगों आदिका मल जो नाकसे निकलता है। रेंट। ३ लकड़ीका वह डंडा जिस पर चढ़ा कर बरतन बनाये जाते हैं। ४ कारीगरोंसे बनी हुई एक चिपटी लकड़ी जो अपने मूंढ़ेके आगे निकले हुए बेलनके सिरे पर लगी रहती है और जिसे पकड़ कर चरखा घुमाते हैं। ५ प्रतिष्ठाकी वस्तु शोभाकी वस्तु। ६ प्रतिष्ठा, इज्जत, मान। ७ मगरकी जातिका एक जन्तु। मगर और नाकमें अन्तर यह है कि यह उतनी लम्बी नहीं होती, पर चौड़ी अधिक होती है। मुंह भी इसका अधिक चिपटा होता है और उस पर चढ़ा या उभार नहीं होता। पूंछमें कांटे स्पष्ट नहीं होते। यह समीप पर मगरसे अधिक दूर तक जा कर जानवरोंको पकड़ ले जा सकती है। परन्तु तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी छोटी नदियोंमें यह बहुत पाई जाती है।

नाक—चालुक्य राजवंशी एक राजपुत्र। ये चालुक्य राज प्रथम चालुमिदेव और प्रथम चालुन्दके भाई थे। निजाम राज्यके अन्तर्गत वर्त्तमान एतगुर्ग नगरमें इनकी राजधानी थी।

नाकचर (सं० पु०) नाके स्वर्गे अन्तरीक्षे वा चरति चर-ट। १ स्वर्गचर देवता और ग्रहादि, आकाशमें विचरण करनेवाले देवता और पक्षी आदि। २ पितृदेवभेद।

नाकड़ा (हिं० पु०) नाकका एक रोग। इसमें नाकके बांसेके भीतर जलन और सूजन होती है और नाक पक जाती है।

नाकतीर्थ—नारायणतीर्थके निकट एक तीर्थका नाम।

नाकनटी (सं० स्त्री०) स्वर्गकी नर्तकी, अप्सरा।

नाकनाथ (सं० पु०) नाकस्य स्वर्गस्य नाथः ६-तत्। इन्द्र।

नाकनायक (सं० पु०) नाकस्य नायकः। इन्द्र।

नाकनायक पुरोहित (सं० पु०) नाकनायकस्य पुरोहितः ६-तत्। वृहस्पति।

नाकपाल (सं० पु०) नाकं पालयति पाल अच्। देवता।

नाकपुर—अयोध्याके अन्तर्गत फैजाबाद जिलेका एक नगर। यह फैजाबादसे २६ कोस दूर तमसा नदीके किनारे अवस्थित है। तीन सौ वर्ष पहले मशहूद नामक किसी मनुष्यने इसे बसाया। शायद पहले इसका नाम नकीपुर था, पीछे अपभ्रंश हो नाकपुर हो गया है।

नाकपृष्ठ (सं० क्ली०) स्वर्गलोक।

नाकबुद्धि (हिं० वि०) जिसका विवेक नाक ही तक हो, तुच्छबुद्धिवाला, ओछी समझका। स्त्रियोंकी निन्दामें लोग कहते हैं, कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो, तो वे सत्यानाश कर जाय।

नाकरा—रैबाबाड़कायो लोगोंकी एक शाखा। ये लोग नायक और नायकी नामसे भी प्रसिद्ध हैं। "काली प्रजा" नामसे भी ये लोग पुकारे जाते हैं। नोड़ देखो।

नाकलोक (सं० पु०) स्वर्गलोक, आकाशलोक।

नाकवनिता (सं० स्त्री०) नाकस्य वनिता ६-तत्। स्वर्गीय स्त्री, अप्सरा।

नाकसेवक (सं० पु०) इन्द्र।

नाकसद् (सं० पु०) नाके स्वर्गे सीदति सद क्विप्। स्वर्गवासी, देवता।

नाका (हिं० पु०) १ प्रवेशद्वार, मुहाना। २ वह मुख्यस्थान जहांसे किसी नगर बस्ती आदिमें जानेके मार्गका आरम्भ होता हैं, गली या रास्तेका आरम्भ स्थान। ३ नगर दुर्ग आदिका प्रवेशद्वार, फाटक। ४ जुलाहोंका एक औजार जो आठ गिरह लम्बा होता है और जिसमें तानेके तागे बांधे जाते हैं। ५ सूईका छेद। ६ वह प्रसिद्ध स्थान जहां निगरानी रखने या किसी प्रकारका महसूल आदि वसूल करनेके लिए सिपाही तैनात हो। ७ मगरकी जातिका एक जलजन्तु, नाक।

नाकापगा (सं० स्त्री०) नाकस्य स्वर्गस्य आपगा नदी। स्वर्गनदी, मन्दाकिनी।

नाकाबंदी (हिं० स्त्री०) १ प्रवेशद्वारका अवरोध। २ फाटक आदिका छेंका जाना। (पु०) ३ वह सिपाही जो फाटक पर पहरेके लिए खड़ा किया गया हो। ४ सिपाही, चौकीदार, पहरेदार।

नाकाबिल (फा० वि०) अयोग्य।

नाकारा (फा० वि०) बुरा, खराब, निकम्मा।

नाकिन् (सं० पु०) नाकः स्वर्गः वासस्थानत्वेनास्त्यस्य ति नाक-इनि। देवता।

नाकिनाथ (सं० पु०) नाकिनां स्वर्गवासिनां नाथः। इन्द्र।

नाकिस (अ० वि०) निकम्मा, बुरा, खराब।

नाकी (हिं० पु०) देवता।

नाकु (सं० पु०) नम्यतेऽनेनेति नम-ड (फलिपाटिनमिमनिजनामिति। उण् १।१८) १ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। २ पर्वत, पहाड़। ३ वल्मीक, दीमककी मट्टीका ढूह, बेमौट। ४ मोटा, टीला।

नाकुल (सं० पु०) नकुलस्य गोत्रापत्यमित्यण्। १ नकुलपुत्र, नेवलेकी सन्तति। (क्ली०) २ शैवशास्त्रविशेष, शैव लोगोंके एक शास्त्रका नाम। ३ रास्ना। ४ सेमरका मूसला। ५ चव्य। ६ यवतिक्ता। (त्रि०) ७ नकुलसम्बन्ध, नेवलेके ऐसा।

नाकुल (नाकुर)—१ युक्त-प्रदेशके सहारनपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ३४ से ३०° १० उ० और देशा० ७७° ७ से ७७° ३४ पू०के मध्य अवस्थित है। यह तहसील चार परगने ले कर बनी है जिनके नाम ये हैं,—सुलतानपुर, सरसावा, नाकुर और गङ्गोह। जनसंख्या प्राय: २०३४९४ है। इसमें ३९४ ग्राम और ८ शहर लगते हैं। कहते है, कि ४र्थ पाण्डव नकुलने यमुनाके र किनारे अपने नाम पर नाकुल नामका एक नगर बसाया था, शायद इसीसे इस प्रदेशका नाम नाकुर वा नकुर पड़ा। यहां एक सुन्दर जैनमन्दिर है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९° ५६ उ० और देशा० ७७° १८ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ५०२० है जिसमेंसे हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है। यहां एक अस्पताल, सराय और स्कूल है।

नाकुलि (सं० पु०) नकुलस्येदं अपत्यं वा अत इञ्। १ नकुल सम्बन्धी। २ नकुलापत्य, नेवलेकी सन्तति।

नाकुली (सं० स्त्री०) नकुलेन दृष्टा, पीता वा नकुल-अण्-ङीप्। १ कुकुटीकन्द, एक प्रकारका कन्द। यह सब प्रकारके विषों, विशेष कर सर्पके विषको दूर करती है। इसके दो भेद हैं, एक नाकुली और दूसरी गन्ध-नाकुली। गुण दोनोंका एकसा है। गन्धनाकुली नाकुलीसे अच्छी होती है। पर्याय—सर्पगन्धा, सुगन्धा, रक्तपत्रिका, ईश्वरी, नागगन्धा, अहिभुक्, सरसा, सर्पादनी, व्यालगन्धा। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, त्रिदोष और विषनाशक। २ रास्ना। ३ चविका, चव्य। ४ यवतिक्तलता, यवतिक्ता। ५ श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। (त्रि०) ६ नेवला सम्बन्धी। ७ नकुल नामक पाण्डवका बनाया हुआ।

नाकुलान्ध्य (सं० क्ली०) दृष्टिको खर्वता।

नाकुसद्मन् (सं० पु०) सर्प, सांप।

नाकेदार (हिं० पु०) १ फाटक पर रहनेवाला सिपाही। २ वह कर्मचारी जो आने जानेके प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी प्रकारका महसूल आदि वसूल करनेके लिये तैनात हो। (वि०) ३ जिसमें नाका या छेद हो।

नाकेबन्दी (हिं० स्त्री०) नाकबन्दी देखो।

नाकेश (सं० पु०) स्वर्गके अधिपति, इन्द्र।

नाकेश्वर (सं० पु०) नाकस्य ईश्वरः। इन्द्र।

नाकोदर (नकोद)—१ पञ्जाबके अन्तर्गत जलन्धर जिलेकी तहसील। यह अक्षा० ३० ५६´ से ३१ १९´ उ० और देशा० ७५ ५´ से ७५ ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २२२०१२ है। इसमें ३११ ग्राम लगते हैं। आय चार लाख रुपयेसे अधिककी है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१ ८´ उ० और देशा० ७५ २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८८५८ है। यह एक बहुत प्राचीन शहर है। कहते हैं, कि पहले हिन्दू-वंशके राजाओंके अधिकारके समय यह नगर वर्त्तमान था। कोई राजपूत सरदार मुसलमान हो गया था और उसीने पहले पहल इसे अपने अधिकारमें किया था। जहांगीरके समय यह स्थान उसी राजपूतवंशीय मुसलमान शासनकर्त्ताको जागीरके रूपमें दे दिया गया। सिख सरदार तारासिंहने यहांसे मुसलमान शासनकर्त्ताको निकाल कर इसे अपने अधिकारमें कर लिया। पीछे पेंढा नामक किसी व्यक्तिने यहां एक दुर्ग बनवाया, उस समय समूचा प्रदेश पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। पञ्जाब-केसरी रणजित्‌सिंह इसे १८२१ ई०में इसे लेते। यहांके व्यवसायमें अनाज, चीनी और तमाकू प्रधान है। नगरके बाहर दो सुन्दर मसजिद हैं जो जहांगीरके समयमें बनाई गई हैं। इन मसजिदोंमें बहुत प्राचीन कालकी अनेक सुन्दर तसवीरें सुरक्षित हैं।

इन दो मसजिदोंमेंसे एकमें महम्मद मूमेनी नामक एक व्यक्तिकी कब्र है। १६१२ ई०में जहांगीरके शासन-कालमें उनकी मृत्यु हुई थी। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंघम अनुमान करते हैं, कि ये ही भारतीय ई०-सबकरोंके लिखित निजाम तम्बूवाला महम्मद मुमीन हाकिम होंगे। यहांके लोग भी उस कब्रको उस्तादकी कब्र कहते हैं। दूसरी मसजिदमें हाजी जमाल नामक एक व्यक्तिकी कब्र है। हाजीजमालको लोग उक्त "उस्ताद"के एक छात्र मानते हैं। १६५० ई०में उनकी मृत्यु हुई थी। कोई कोई कहते हैं, कि ये दो शाहजहांके धर्मोपदेष्टा थे। यहां १८६० ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी अस्पताल है।

नाकौकस् (सं० पु०) नाक ओक आवासस्थान यस्य। देवता, स्वर्गवासी।

नाक्षत्र (सं० क्ली०) नक्षत्रस्येदं नक्षत्र-अण्। १ नक्षत्र सम्बन्धीय। २ नक्षत्रघटित चान्द्रादि परिवर्त्त नामक कालरूप दिनभेद। नक्षत्र द्वारा परिमित समयका नाम नाक्षत्र काल है। यह नाक्षत्रकाल दो तरहसे लिया जाता है। प्रथम नक्षत्रसे ले कर शेष नक्षत्र तक २७ नक्षत्रोंके भोग द्वारा जो नाक्षत्रकाल पूरा होता है, उसे नाक्षत्रमास कहते हैं अथवा प्रथमसे शेष पर्यन्त २७ नक्षत्रोंका भोग जब शेष हो जाता है तब नाक्षत्रमास होता है। यह नाक्षत्रमास नाक्षत्रमास आदिमें प्रयोजनीय है।

एक नक्षत्रको किसी निर्दिष्ट स्थानसे पुनः उसी स्थान पर आनेमें जो समय लगता है, उसको नाक्षत्र-अहो-रात्र कहते हैं। इसी प्रकार तीस दिनोंका जो महीना होता है, उसे नाक्षत्रमास और १२ महीनोंका जो वर्ष होता है उसे नाक्षत्रवर्ष कहते हैं। आयु-गणना नाक्षत्र मासानुसार की जाती है।

सत्ताईस नक्षत्रात्मक नक्षत्र मासमें यदि मङ्गल वा शनिवारमें जन्मनक्षत्र पड़े, तो उस मासका नाम कष्टप्रद है। यह मास कष्टदायक माना जाता है।

नाक्षत्रिक (सं० पु०) नक्षत्रादागतः, नक्षत्र-ठञ्। नाक्षत्र मास।

नाक्षत्रिकी (सं० स्त्री०) नाक्षत्रिक-ङीप्। नक्षत्रदशा, मनुष्योंकी एक दशाका नाम।

सत्ययुगमें स्वप्नदशा, त्रेतामें अष्टोत्तरीदशा, द्वापरमें योगिनी और कलिकालमें नाक्षत्रकी दशा होती है।

दशा देखो।

नाखनथोम—काम्बोडियाके अन्तर्गत प्राचीन नगर ओङ्कोर या ओङ्कार नगरका नामान्तर। श्याम देशीय भाषामें इसका अर्थ होता है प्रधान नगर। काम्बोज देखो।

नाखर्न वट—काम्बोडियाकी प्राचीन राजधानी ओङ्कोर नगरके बाहर सियाम्नदीके समीप तालिसाप नामक एक ह्रद है। यह ह्रद ६० कोस लम्बा है। इसका विस्तार

कहीं कहीं १५से ३० कोस तक है। इस झदके उत्तरी किनारे एक विस्तीर्ण समतल क्षेत्र है। उस क्षेत्रमें अनेक प्राचीन कीर्त्तियोंके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। काम्बोजगण काश्मीर प्रदेशसे भाग कर जब काम्बोडियामें रहने लगे थे, तब इस देशमें नागपूजा प्रचलित हुई। १० वोंसे १४वीं शताब्दीके मध्य यहां अनेक मन्दिरादि बनाए गये जिनमेंसे नाखन-वटका मन्दिर ही सबसे श्रेष्ठ है। यह मन्दिर तालिसाव झदके किनारे ओङ्गोर नगरसे २ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। मन्दिरकी भूमि चौकोन है और चारों ओर आध कोस तक दीर्घ है। मन्दिर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है और वास्तुतत्त्वके लिये विशेष प्रयोजनीय है। इसके चारों ओर २२० गज विस्तृत एक खाई है। पश्चिमकी ओर प्रधान प्रवेशद्वार है जो छः सौ फुट ऊँचा है। कुछ आगे जा कर एक दूसरा क्रूशाकार उच्च पथ है। इसके दोनों बगल दो छोटे छोटे मन्दिर हैं। थोड़ी दूर और जाने पर मूलमन्दिरका वहिःप्राचीर पाता है। यह वहिःप्राचीर १५ फुटके लगभग ऊँचा है। इसके एक ओरकी लम्बाई ६५० फुट और चौड़ाई ५७० फुट है। इसके बीचकी जमीन ३ लाख ७० हजार वर्गफुट है। इसमें तीन प्रवेशद्वार लगते हैं। हरएक ओर ऊंचा स्तम्भ दण्डायमान है। इन सब स्तम्भोंमें बरामदे लगे हुए हैं। इन सब बरामदोंके कारुकार्य और निर्माणकौशल ही इस मन्दिरके विशिष्टत्व निर्देशक और प्रधान शोभावर्द्धक हैं। वहिःप्राचीर पार करने पर एक दूसरा प्राचीर मिलता है, फिर उसके बाद उसी तरहका एक और प्राचीर है। ये तीनों प्राचीर एक ऊँचाईके नहीं हैं, वरं क्रमोच्च हैं। शेष अन्तःप्राचीरकी ऊंचाई २० फुट है। इन तीनों प्राचीरमें तीन प्रवेशद्वार हैं। रामेश्वर आदि स्थानोंके भारतीय मन्दिरोंके कारुकार्य सुदृश्य होने पर भी वे विशेष शिल्पकौशलपूर्ण नहीं हैं। उन सब मन्दिरोंमें अच्छे अच्छे चित्र नहीं दिये गये हैं, जो कुछ हैं भी वे सुप्रकणासे नहीं हैं; लेकिन नाखनवट मन्दिरके कारुकार्यमें उद्भावनाकौशल, चित्रकौशल और शिल्पकौशल पूर्ण मात्रामें विराजित हैं। उक्त प्राचीरोंमें झरोखा एक भी नहीं है। ये बड़े बड़े पत्थरोंसे बने हुए हैं। वे सब पत्थर खरोंच कर और काट कर इतनी खूबीसे मिलाये गये हैं कि मालूम नहीं पड़ता इसके जोड़के मुंह कहां हैं। समूची दीवारमें सप्तशीर्ष सर्पमूर्त्ति अङ्कित हैं। दीवारका वैसा चरमोत्कर्ष भास्करशिल्प और कहीं भी देखा नहीं जाता। यहां तक कि इस मन्दिरके अन्यान्य स्थानोंका शिल्पचातुर्य भी सबको मात किए हुए है। प्राचीरमें रामायण-महाभारतीय युद्धादिकी छवि इस प्रकार खींची हुई हैं, कि वे मानो अब भी जीवित हैं। एक दूसरी जगह स्वर्ग, नरक और पृथ्वीकी छवि उत्कीर्ण है। कूर्मावतार और समुद्रमन्थनकी छवि भी भलीभांति खोदी हुई है, किन्तु वह अधूरा ही है।

मध्य खण्डमें प्रवेश करनेसे ही प्रधान मन्दिर मिलता है। इस मन्दिरमें पांच शिखर हैं। प्रत्येक शिखर १०० फुट ऊँचा है। सद्दरीके जैन मन्दिरके साथ इसका आकार बहुत कुछ मिलता जुलता है। उन पांच शिखरके मध्य चार जलाशय हैं। कभी कभी उन जलाशयोंमें इतना जल भर जाता है, कि वह नीचे गिर कर मन्दिरका निम्न अंश कुछ बरबाद कर देता है।

उन सब स्तम्भोंका शीर्ष और निम्न भाग देखनेसे मालूम होता है, कि वे रोमक डोरिय श्रेणीके स्तम्भोंके जैसे हैं। भारतवर्षमें उस तरहके स्तम्भ कहीं नहीं मिलते। काश्मीरके नागमन्दिरमें जो स्तम्भ लगे हुए हैं, वे ही ग्रीक-डोरिय श्रेणीके हैं। यहां इस प्रकारके स्तम्भोंकी संख्या १५३२ है। इसकी गठन-प्रणाली देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर तुराणीय भास्कर द्वारा बनाया गया है। इसमें स्त्रियोंकी जो मूर्त्तियां खोदी हुई हैं, वे तातारीय-सी प्रतीत होती हैं, क्योंकि उनकी नाक चिपटी है। मन्दिरका प्राचीन सर्पदेवता तहस नहस हो गया है। पीछे यह बौद्धोंके अधिकारमें आ गया। उनके अधिकारमें आने पर भी इसमें सर्वत्र सर्प-चिह्न-दिखाई देते हैं।

यहां अशोकके विषयमें बहुतसी दन्त कहानियां सुनी जाती हैं। बुद्धघोषके आगमनके सम्बन्धमें भी प्रवाद है। १२८५ ई०में कोई चीन परिव्राजक इस मन्दिरके अस्तित्व और सौन्दर्यकी बातें लिख गये हैं। इस नगरसे ७॥ कोस पूर्व पतन-ता-फ्रोम (ब्रह्मपत्तन)

ब्रह्माने वासुकि आदि नागोंको बुलवाया और अत्यन्त क्रोधके साथ शाप दिया कि, "तुम लोग जिस प्रकार प्रति दिन मेरी सृष्टिका नाश कर रहे हो, उसी प्रकार कल्पान्तरमें सुदारुण मातृशापसे तुम लोग भी क्षयको प्राप्त होओगे।" नागोंने ब्रह्माके मुंहसे उक्त शापको सुन भयभीत हो उनके चरणोंकी वन्दना को और स्तव करने लगे. "ब्रह्मन्! आपहीने हम लोगोंको कुटिल और विषोल्वण बनाया है। अब आप हम लोगोंके लिए पृथक् स्थान निर्दिष्ट कर दीजिए, हम लोग वहीं पर सुखसे अवस्थान करेंगे।" तब ब्रह्माका क्रोध शान्त हुआ उन्होंने नागोंके लिये पाताल, वितल और सुतल इन तीन लोकोंमें रहनेका आदेश दिया और कहा कि "जो लोग कालको प्राप्त हुए हैं, तुम लोग उन्हीं मनुष्योंको भक्षण कर सकते हो। परन्तु जो लोग मन्त्रोषध और गारुडमण्डल धारण करते हैं, उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते।" इस प्रकार ब्रह्माका शाप और प्रसाद प्राप्त कर नागोंने पातालका आश्रय लिया। (वराहपु०)

कद्रुतनयोंने माताके आदेशसे उच्चैःश्रवाकी पूंछ कृष्णवर्ण करना स्वीकार न किया था, इस कारण उसीके शापसे वे जनमेजयके सर्पसत्रमें नष्ट हुये थे। प्रायः नागोंके नाश प्राप्त होने पर आस्तीकगण उनका उद्धार करते हैं। जनमेजय, आस्तीक और कद्रु देखो।

ये नागगण भूमिके नीचे रामणीयक (रमणक) द्वीपमें रहते थे। गरुड़ने इन लोगोंके लिए अमृत आहरण कर अपनी माता विनताका दास्य मोचन किया था। इन्द्रके शापसे सर्पगण गरुड़के भक्ष्य बन गये। इन नागोंके गरुड-आहृत अमृतको कुश पर रख स्नान पूजादिके लिए चले जाने पर इन्द्रदेवने उसे हरण कर लिया। नागोंने स्नानादिसे लौट कर देखा तो वहां अमृत नहीं। तब से जिस कुशासन पर अमृत रख गए थे, उस कुशासनकी अवहेलना करने लगे जिससे उनकी जिह्वाके दो खण्ड हो गए। तभीसे सर्पोंकी दो जिह्वायें हो गई हैं। (भारत)

नाना पुराणोंमें बहुसंख्यक नागोंका उल्लेख है, जिनमेंसे कुछ प्रधान प्रधान नागोंके नाम दिये जाते हैं। यथा—अकर्कर, अनिल, अपराजित, अश्वतर, आपूरण, आप्त, आर्यक, उग्रक, उपनन्द, उहस्त, एलापत्र, कम्बल, करवीर, कर्कोटक, कर्कट, कर्कर, कर्दम, कलशपोतक, कल्माष, कालीयक, कुकुन, कुकुर, कुञ्जर, कुठर, कुण्डोदर, कुमुद, कुमुदाक्ष, कुलक, कुलीर, कुष्माण्डक, कुहर, खगक, कैलासक, कोटरक, कोणपाशन, क्षेमक, खगजय, ज्योतिष्क, तित्तिरि, दधिमुख, दिलीप, धारण, नन्द, नन्दक, निष्ठानख, निष्ठरिक, नील, पद्म, पद्मद्वय, पिङ्गल, पिञ्जरक, पिठरक, पिण्डारक, पुण्डरीक, पुष्प, पुष्पदंष्ट्र, पूर्णभद्र, प्रभाकर, मणि, मणिनाग, मणिभद्र, महापद्म, महोदर, माल्यपिण्डक, मुखर, मुद्गरपिण्डक, मुद्गरपर्णक, मूषिकाद, वधिरान्ध, बहुमूलक, वामन, वालिशिख, वाह्यकुण्ड, विमलपिण्डक, विरज, विरस, विश्वक, बिल्वपत्र, बिल्वपाण्डर, विशुण्डि, वृत्त, शङ्ख, शङ्खपालक, शङ्खपिण्ड, शङ्खमुख, शङ्खशिरा, शावर्त, शालिपिण्ड, शिखी, शिरोपक श्वेतक, सम्वर्तक, सम्वृत्त, सुमनोमुख, सुमुख, सुरसा, सुरामुख, सुवाहु, हरिद्रक, हलिक, हस्तिपद, हस्तिपिण्ड, हस्तिभद्र, हेमगुह, आदि।

विविध पुराणोंमें इन सब अनेक बातोंका विवरण तथा अन्यान्य अनेक नागोंका उल्लेख पाया जाता है।

नागोंमें अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कर्कोटक और शङ्ख ये आठ प्रधान नाग अष्टनाग नामसे प्रसिद्ध हैं। मनसाकी पूजा करते समय इनकी पूजा की जाती है।

कमल और अश्वतर इन दो नागोंको सरस्वतीके वरसे सप्तस्वर राग, मूर्च्छना आदि सङ्गीताङ्गका ज्ञान हो गया था। (मार्कण्डेयपुराण)

कालियवंशजात नागोंको हनन करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है। यदि कोई कालियपादपद्म-चिह्न स्थानमें दण्डाघात करें, तो उसे द्विगुण ब्रह्महत्याका पातक लगता है। उसके घरसे शीघ्र ही लक्ष्मी दूर हो जाती हैं।

> "मद्वंशजातान् सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः।
> ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम्॥
> पद्मपादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताडनम्।
> द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्बिषम्॥
> लक्ष्मीर्गमिष्यति तद्गेहाद् शापं दत्वा सुदारुणम्।
> वंशापर्ययेषां हानिर्भविता तस्य निश्चितम्॥"
>
> (ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्णज० १९ अ०)

वासुकि आदि नाग महादेवके भूषण हैं, अर्थात् इन सब नागोंको महादेव अलङ्कार स्वरूप धारण करते हैं।

"वासुक्याद्यास्तु ये सर्पा यथा स्थानवते हरम्।
भूषयन्ति स्वस्य शिरो वाहादिषु तुरम्॥"

नवीन गृहादि बनानेमें पहले नागशुद्धि देखनी चाहिये। नागशुद्धिके बिना गृहादि प्रस्तुत करनेसे नाना विघ्न उपस्थित होते हैं। नागशुद्धि देखो।

१३ देहभेद। १४ पर्वतविशेष। (भारत)

"माहन्द्रोऽथ मलयो व शैलागस्त्वथापरः।
काश्मरपाख्य तथा श्वेते केसराचलः॥"

(विष्णु० २।२।८)

१५ ज्योतिषोक्त करणविशेष। यह करण यात्रा आदि शुभकार्यमें शुभ समझा जाता है। इस करणमें उत्पन्न बालक कुशील, जिसकी मति विकृत और अर्थ सहम होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

१६ राजभेदविशेष, एक राजका नाम। नाग्न्य देखो।

नाग—एक वैयाकरणका नाम। भीमपदचरितमें इन का मत है।

नागक (स० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम।

नागकन्द (स० पु०) नाग इव कन्द मूल यस्य। हस्तिकन्द।

नागकन्द (नरकन्द)—पञ्जाबके कुमारसैन राज्यका एक गिरिपथ। शतद्रु शिमलासे उत्तर पश्चिमकी ओर यह पथ ३१ १६´ उ० और देशा० ७७ ११´ पू०के मध्य समुद्र पृष्ठसे ८. १६ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। शिमला वासी चिरतुषाराहत पर्वतमालाकी सुन्दर शोभाको देखनेके लिये इसी राह हो कर जाते आते हैं। यहां यात्रियोंकी सुविधाके लिये एक सुन्दर डाकबङ्गला भी बना दिया गया है।

नागकन्यका (सं० स्त्री०) नागानां कन्यका ६ तत्। सर्पों की कन्या।

नागकन्या (स० स्त्री०) नाग जातिकी कन्या। पुराणोंमें नागकन्याएं बहुत सुन्दर बतलाई गई हैं।

नागकर्ण (स० पु०) नागस्य गजस्य कर्ण तदाकारः पर्णोऽस्य। रक्त एरण्डवृक्ष, लाल अण्डीका पेड़। २ हस्तिकर्ण, पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। ३ हाथीका कान।

नागकर्णी (स० स्त्री०) १ भाण्डकर्णी लता। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता।

नागकिञ्जल्क (स० स्त्री०) नागकेशर किञ्जल्कमो यस्य। नागकेशर पुष्प, नागकेशर।

नागकुमारिका (स० स्त्री०) नागस्य कुमारीव कन् टाप पूर्व-ह्रस्वय। १ गुड़ची, गुरच, गिलोय। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

नागकेशर (स० पु०) नागप्रिय केशरो यस्य। नागेश्वर, एक छोटा सदाबहार पेड़ जो देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। पर्याय—चाम्पेय नागर, काञ्चनाह्वय, केसर, नागकेसर किञ्जल्क, नागकिञ्जल्क, नागीय, काञ्चन, सुवर्ण, हेमकिञ्जल्क, रुक्म, हेम, पिञ्जर, फणिकेसर, पन्नगकेसर। पुष्पका गुण—कषाय, उष्ण लघु, तिक्त, कफ, वस्ति, वात आमय, कण्ठ और शीर्षरोगनाशक। जब यह शब्द क्लीवलिङ्ग होता है, तब नागकेसर पुष्पका बोध होता है।

पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रानुसार इसका साधारण नाम मेसुआ (Mesua) है। यह हिन्दुस्तानमें उत्पन्न होता है। पत्तियां इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं जिससे इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है। लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटनेवालेकी कुल्हाड़ियोंकी धारें मुड़ मुड़ जाती हैं। इसीसे इसे वज्रकाठ (Iron wood) भी कहते हैं। कि इसमें इञ्जिनियरिङ्ग कामोंके लिए इसकी लकड़ी बहुत व्यवहृत होती है। यह पेड़ भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है यथा, नागकेसर, नाकास (हिन्दी और फारसी), नागेश्वर, नागकेसर और नागचांपा (बङ्गाल और उड़ीसा), नाहोर (आसाम), नाग चम्पा, सोरुलाचम्पा (बम्बई और महाराष्ट्र), नाङ्गाल साम्पु, नाङ्गल, शिरुनामम्पु, नागप्पु (तामिल), नाग केसरम्, नागपुष्पम् (तेलगू), नागसम्पिगे (कनाड़ी), हिन्दुवम्पम, वेलुचम्पकम् (मलय), केङ्गो (मग), केङ्ग (ब्रह्म), नान्-दियनो, ना (सिंहल)।

पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रोंमें वैज्ञानिक सूक्ष्म सूक्ष्म प्रभेद ले कर इसके कई भेद बतलाए हैं,—१ Mesua ferrea (साधारण नागेश्वर), २ M speciosa (सिंहल और सिंहलमें उत्पन्न), ३ M coromondeliana

(दाक्षिणात्यमें उत्पन्न, इसके पत्ते और फूल बहुत छोटे होते हैं), ४ M. Roxburghii (प्रकृत Iron-wood), ५ M. Salicina, ६ M. Walkerians, ७ M. Pulchella, ८ M. Sclerophylla और ९ M. Nagana ।

हिमालयके पूरबी भाग, पूरबी बङ्गाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदिमें इसके पेड़ बहुतायतसे मिलते हैं। इसमें चार दलोंके बड़े और सफेद फूल गरमियोंमें लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी महक होती है। इसके प्रत्येक फलमें दो बीज रहते हैं। जब फल पक जाता है, तब बीज उसे फाड़ कर बाहर गिर पड़ता है। बीजसे तेल निकलता है जो चर्मपोड़ामें बहुत उपकारी माना जाता है। इसके सूखे फूल औषध मसाले और रंग बनानेके काममें आते हैं। कच्चे फलसे एक प्रकारकी तैलाक्त राल निकलती है।

रंग—नागकेशरके फूलसे भारतवर्षमें एक प्रकारका रंग बनता है, जिससे रेशम रंगा जाता है।

तेल—सिंहलमें इसके बीजसे एक प्रकारका गाढ़ा तेल निकलता है जो दीया जलाने और दवाके काममें आता है। तेलका रंग पीला होता है। कनाड़ामें यह चार रुपये मनके हिसाबसे बिकता है।

औषध—कविराज लोग बहुतसे रोगोंमें इसके फूल व्यवहृत करते हैं। कई जगह तो दवाको सुगन्धित करनेके लिए ही इसे काममें लाते हैं। यह सङ्कोचक है। पाकाशयघटित रोगोंमें यह बहुत उपकारी है। प्यास और अधिक पसीना निकलने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। मक्खन और चीनीके साथ इसके फूलोंको पीस कर यदि रक्तस्रावी अर्शकी वलिमें अथवा हाथ पैरमें जब जलन मालूम पड़े, उस समय उसमें इसका प्रलेप देनेसे वह बहुत जल्द आराम हो जाता है। सांपके काटनेमें भी इसके फूल और पत्तोंका रस बहुत उपकारी है।

राल—इसके कच्चे फलोंसे एक प्रकारकी तैलाक्त राल टपकती है। उस रालको तारपिन तेलके साथ मिला कर एक प्रकारका वार्निश तैयार करते हैं। रेशे और छालसे भी इसी प्रकारकी राल निकलती है। यह राल कच्चे जलमें नहीं मिलती, सिद्ध करने पर मिल जाती है।

दिनाजपुर, रङ्गपुर और उत्तर बङ्गालमें इसके फलके छिलकेका तेल घाव पर लगाया जाता है जो उसके लिए रामबाण-सा काम करता है। चर्मरोगमें यह तेल विशेष लाभदायक है। इसकी छाल और रेशेसे जो क्वाथ बनाया जाता है, उसका सेवन करनेसे चिरकालके रोगीका रोग दूर हो जाने पर उनकी दुर्बलता जाती रहती है। काठका स्वाद तीता होता है। इसके फल लोग खाते भी हैं।

यह पेड़ देखनेमें बहुत सुन्दर होता है तथा इसकी मंहक भी अच्छी होती है। इस कारण संस्कृतके कवियोंने कामदेवके पांच शरोंमेंसे इसे भी एक शर माना है।

नागकोविल—तामिल प्रदेशकी एक प्रकारकी नागपूजा। मदुराके निकटवर्त्ती वैगै नदीके किनारे जो सांपका मन्दिर है, वहां यह उत्सव खूब धूमधामसे मनाया है। इसमें बहुतसे यात्री जमा होते हैं। नागपूजा देखो।

नागक्षत्रिय—नागवंश देखो।

नागक्षेत्र—नागाह्वय देखो।

नागखण्ड (सं० पु०) पुराणानुसार जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भारतवर्षके नौ खण्डों या भागोंमें एक।

नागगन्धा (सं० स्त्री०) नागस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः। नाकुलीकन्द, नकुलकन्द।

नागगति (सं० स्त्री०) ग्रहकी एक गति। यह गति उस समय होती है, जब वह नक्षत्र अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें रहता है।

नागगर्भ (सं० क्लो०) नागः सीसकं गर्भं उत्पत्तिकारणं यस्य। सिन्दूर।

नागचन्द्र—एक कनाड़ी जैनग्रन्थकार। इन्होंने १० काण्डोंका जो जिनस्तोत्र बनाया है, वह बहुत प्रसिद्ध है।

नागचम्पक (सं० पु०) वनचम्पकवृक्ष।

नागचम्पा (हिं पु०) नागकेसरका पेड़।

नागचूड़ (सं० पु०) नागः सर्पः चूड़ायां यस्य। शिव, महादेव।

नागच्छत्रा (सं० स्त्री०) नागस्य फणेव छत्रं छादनं पत्रे यस्याः। १ नागदन्ती। २ नागवल्ली।

नागदलोपम (सं० क्लो०) नागदलस्य ताम्बूलस्य उपमा यत्र। परुषफल, फालसा। पर्याय—अल्पास्थि, परुषक, मृदुफल, परापर, परुष, नीलचर्म, गिरिपिलु, पारावत, नीलमण्डल। कच्चे फलका गुण—उष्ण, अम्ल, पित्तकर और लघु। पके फलका गुण—मधुर, शीतल, विष्टम्भी, धातुवर्द्धक, हृदयका हितकारक, पिपासा, पित्त, दाह, तृष्णा, ज्वरक्षय, क्षत, विसर्प और वातनाशक।

(भावप्रकाश)

नागदा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हड़।

नागदास—शैशुनागवंशज एक राजा। बारह वर्ष राज्य कर चुकने पर अर्थात् बुद्धनिर्वाणके ५८ वर्ष बाद इन्होंने स्थविर शोणक उपसम्पदा प्राप्त की।

नागदुमा (हिं० वि०) जिसकी पूंछका सिरा सर्पके फन-की तरहका हो। ऐसा हाथो ऐबो समझा जाता है।

नागदेव—१ अणहिलवाड़के चालुक्य-राजवंशके आदि पुरुष मूलराजके एक पौत्र। ये १०१० ई०में वर्त्तमान थे। २ एक शास्त्रग्रन्थकार। इनके बनाए हुए आचार-दोपिका और निर्णयतत्त्व नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं। ३ चित्त-सन्तोषविंशितकके प्रणेता। ४ त्रिविक्रमभट्ट-प्रणीत दमयन्तीकथा नामक चम्पूकाव्यके टीकाकार। ५ एक ज्योतिषिक ग्रन्थकार। इन्होंने "प्रथिततिथि-निर्णय", "मुहूर्त्तदीपक", "मुहूर्त्तसिद्धि", "रत्नदीपक", "संक्रान्ति फल" और "होराप्रदोप" नामक ग्रन्थ बनाए हैं। ६ ओरङ्गल नामक स्थानके गणपति-वंशीय अन्तिम राजा। इनका नामान्तर विनायक है। १३७१ ई०में वाह्मणोराजके साथ इनका युद्ध हुआ था। उसी युद्धमें ये मारे गये।

नागदेवभट्ट—१ आचारदीप नामक शास्त्रग्रन्थके प्रणेता। आचारदीप और निर्णय-तत्त्वकारप्रणोत आचार-दोपिका ये दोनों एक हैं, वा दो, मालूम नहीं।

नागदौन (हिं० पु०) सिमले और हजारेमें मिलने-वाला एक प्रकारका पहाड़ी पेड़। इसकी लकड़ी भीतर-से सफेद और मुलायम होती है और विशेषतः छड़ियां बनानेके काममें आती है। लोगोंका विश्वास है, कि इस लकड़ीके पास सांप नहीं आते। २ नागदौना।

नागदौना देखो।

नागदौना—१ एक प्रकारका कण्टकीवृक्ष। इसका वैज्ञानिक नाम पाश्चात्य उद्भिद् शास्त्रानुसार Artiemisia Vulgaris है। स्थानभेदसे इसके नाम—नागदौना (बङ्गाल), नागदौना, माजतरी, मागुर (हिन्दी), ततोर, याञ्जिर, तर्खा, (पञ्जाबी), बुई मादरान, अफसुनन्तिन् (पञ्जाबी बाजारमें इसी नामसे खरीदा और बेचा जाता है), तिता पात (नेपाल), नागदमनी, ग्रन्थीपर्णी (संस्कृत)। मन्द्राजमें नागदौना और ग्रन्थिपर्णीमें प्रभेद है। वहां नागदौनाको मारिकुयन्दु (तामिल) और दवनासु (तैलगू और कर्णाट) कहते हैं। पारसी और अरबीमें इसीका नाम मार्जानजोश है। जो ग्रन्थीपर्णी है, उसे तामिल, तैलगू, कर्णाटी आदि मन्द्राजी भाषामें मनि-पत्तरि, अरबी और पारसीमें अफसुस्ताइन कहते हैं। अङ्गरेजीमें इसे Worm-wood कहते हैं। पश्चिम हिमालय, खासिया पहाड़, मणिपुर और उत्तर ब्रह्मके पर्वत पर यह बहुता-यतसे पाया जाता है।

इसमें डालियां और टहनियां नहीं होतीं। जड़के ऊपरसे ग्वार पाठेकी-सी पत्तियां चारों ओर निकलती हैं। ये पत्तियां हाथ हाथ भर पर और दो ढाई अङ्गुल चौड़ी होती हैं। जिस तरह ग्वारपाठेकी पत्तियोंमें गूदा नहीं होता, उसी तरह इसमें भी। पत्तियोंका रंग गहरा हरा होता है, पर बीच बीचमें हलकी चित्तियांसी होती हैं। नागदौनेकी जड़ कन्दके रूपमें नीचेकी ओर जाती है। यह चरपरा, कड़ुआ, हलका, त्रिदोषनाशक, कोठेको शुद्ध करनेवाला, विषनाशक तथा सूजन, प्रमेद और ज्वरको दूर करनेवाला माना जाता है। २ एक प्रकार-का कड़ुवा और कटीला दौना। इसके पेड़ लम्बे लम्बे होते हैं। इसकी सूखी पत्तियां लोग कागजों और कपड़ों की तहोंके बीच इसलिये रख देते हैं, कि कीड़े उन्हें चाट न जांय।

नागद्रह—उज्जयनीके अन्तर्गत नागझारी नदीका नामा-न्तर।

नागद्रुम (सं० पु०) १ सेंहुड़, थूहर। २ नागफनी।

नागद्वीप—विष्णुपुराणोक्त भारतवर्षके नौ भागोंमेंसे एक भागका नाम, सिंहल द्वीपका एक अंश।

नागधर (सं० पु०) महादेव, शिव।

नागध्वनि (सं॰ स्त्री॰) मिश्ररागिणीविशेष, एक संकर रागिणी जो मल्लार और केदार वा तथा अथवा कानड़े और सारंगके योगसे बनी है। स्वरग्राम—

"नि सा ऋ ग म प ॰ : : ।"

मतान्तरसे यह उड़ावसम्पन्न है, रि प वर्जित है। यह वीररसमें साथ दिनको गाया जाता है। स्वरग्राम—

"स ॰ ग म ॰ ध नि सा : : ।"

नागध्वनिकानड़ा—मिश्ररागविशेष। यह अठारह कानड़ोंमेंसे एक है। इसका यह कानड़ाके समय अर्थात् रातके ११से १२ दण्डके मध्य गाया जाता है। यह कानड़ा और सारङ्गके योगसे उत्पन्न हुआ है। स्वरग्राम—

नि सा ऋ ग म प ॰ । (सङ्गीतर॰)

नागनगर (स॰ क्लो॰) नागाधिष्ठित नगरम्। भोगवती नगर। इस नगरका अधिपति नाग है।

नागनदी—१ विहारप्रदेशके दक्षिण रामटेकके निकटवर्ती एक नदीका नाम। यह नदी जङ्गलके बीच हो कर बही गई है। इसके किनारे कौ-ग्राम पड़ता है। यहां किसी समय कीर्त्ति नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने भीमको युद्धमें पराजय किया था।

नागनल—कृष्णा जिलेके बापतला तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां ११० वर्षके दो प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें बहुतसी लिपियां भी उत्कीर्ण हैं, लेकिन वे अस्पष्ट हैं।

नागनाथ (स॰ पु॰) नागानां नाथः ६-तत्। नागोंके अधिपति।

नागनाथ—१ गणिततत्त्व चिन्तामणिके प्रणेता लक्ष्मीदासके प्रतिपालक। २ पर्वप्रदीप नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता। ३ माधवकरनिदानके 'निदान-प्रदीप' नामक टीकाकार। ये कृष्ण पण्डितके पुत्र और योगचन्द्रिकाके प्रणेता लक्ष्मण के गुरु थे।

नागनामक (स॰ क्लो॰) सीसक, सीसा।

नागनामन् (स॰ पु॰) नागान् नामयति नामि-ल्युट्। तुलसी।

नागनायक (स॰ पु॰) नागानां नायकः ६-तत्। नागों का नायक शेष आदि।

अनन्त, वासुकि, पद्म महापद्म, तक्षक, कर्कोट, कुलिक और शङ्ख ये आठ अष्टनाग माने जाते हैं। यही नागों के नायक अर्थात् प्रधान हैं। अष्टनागों की पूजा करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है।

नागनामा (स॰ पु॰) १ श्वेत तुलसीक्षुप, सफेद तुलसी। २ कृष्ण तुलसीक्षुप, काली तुलसीका पेड़।

नागनायक—पूनाप्रदेश जब देवगिरीके यादवों के हाथ था, उस समय मराठी वा कोली जातिके सरदार इस देश पर कई एक कालोंमें स्वाधीन हो गए थे। नागनायक उन्हींमेंसे एक थे।

नागनासा (स॰ स्त्री॰) हस्तिशुण्ड, हाथीकी सूंड़।

नागनिर्यूह (स॰ पु॰) नाग इव निर्यूहः। नागदन्त।

नागपुर—बम्बई प्रदेशके धारवार जिलेके अन्तर्गत बङ्का पुरके समीप एक ह्रद। इसमें एक बांध दिया हुआ है जो १४०० फुट लम्बा है। इसका जल चारों ओर पत्थर की दीवारसे घिरा हुआ है। बांधके ऊपर आने जाने के लिए २४ फुट चौड़ा एक रास्ता है। ह्रद, कभी भरता नहीं है। वर्षाके बाद का मास तक इसमें जल रहता है, पीछे सूख जाता है।

नागपञ्चमी (स॰ स्त्री॰) नागप्रिया पञ्चमी, वा नागपूजार्थ पञ्चमी। आषाढ़ मासकी कृष्णापञ्चमी। इस पञ्चमी तिथिमें मनसा और नागपूजा की जाती है इसीसे इस पञ्चमीका नाम नागपञ्चमी पड़ा है।

जब विष्णु शयन करते हैं, उस समय कृष्णापञ्चमी तिथिको सूही (सीज)के पेड़को स्थापना करके मनसा और नागपूजा करनी होती है। मनसादेवीको पूजा और उन्हें प्रणाम करनेसे सांपका भय नहीं रहता। इस पूजामें घी और दूधका नैवेद्य लगता है।

इस दिन अपने घरमें नीमकी पत्तियां रखनी चाहिये और ब्राह्मण तथा बान्धवोंके साथ मिल कर उन्हें खाना चाहिये।

वराह पुराणमें लिखा है, कि पञ्चमीको नागगण ब्रह्माका शाप और प्रसाद पाते हैं, इसीसे यह तिथि इन-को बहुत प्रिय है। इस तिथिको दुग्ध द्वारा नागों को स्नान करानेसे सर्पका भय नहीं रहता। इस दिन अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म तक्षक कुलीर, कर्कोट और शङ्ख इन आठ प्रकारके नागों की पूजा की जाती है। अष्ट-नागके सिवा और भी कितने नागोंके नाम तिथितत्त्वमें दिखनेमें आते हैं। यथा—

शेष, पद्म, महापद्म, कुलिक, शङ्खपालक, वासुकि तक्षक, कालिय, मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनञ्जय। (गरुड़पुराण) अनन्त, शङ्ख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शङ्खक, कालिय, तक्षक, पिङ्गल और मणिभद्रक इन सब नागोंकी पूजा करनेसे दष्टमुक्त होता है अर्थात् पहले दंशित होनेके बाद पीछे मुक्त हो कर स्वर्ग लाभ होता है।

भारतवर्षके प्रायः सभी देशोंमें यह व्रत किया जाता है। स्त्रियां ही विशेष कर यह व्रत करती हैं। अन्यान्य स्त्री-व्रतकी तरह यह व्रत भी उनके लिये सुलभ है। बम्बईकी प्रभुकायस्थ-रमणियां यह व्रत जिस प्रकारसे करती हैं, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है,—

व्रतके दिन प्रभुरमणियां एक काठकी चौकीमें चन्दन या सिन्दूर लगा कर ८ सांपोंके चित्र अङ्कित करती हैं। इनमेंसे दो बड़े होते हैं और सात छोटे। इनके पाद-मूलमें एक दूसरे पूंछहीन सांपका चित्र बना होता है। उनके पास ही हाथमें दीप लिये एक स्त्रीकी मूर्त्ति भी वहां खड़ी रहती है और एक प्रस्तर-खण्ड तथा सर्पविवर भी बनाया रहता है। विवाहिता स्त्रियां प्रत्येक सांपके चित्र पर भुना हुआ अनाज, उरद, केला, नारियल आदि रख छोड़ती हैं। पास ही पत्तेके दोनेमें दूध भी दे देती हैं। तदनन्तर वे फूल-चन्दन और सिन्दूर द्वारा उनकी पूजा करती हैं। पूजा हो जाने पर सब कोई मिल कर सांपोंसे प्रार्थना करती हैं कि उनके बाल बच्चोंका सांप कोई अनिष्ट कर न सके और घरसे सांपका भय भी न रहे। बाद गृहस्थी कन्या वधू आदिको एकत्र कर व्रतकी कथा कहने बैठती हैं। कथा इस प्रकार है,—

किसी मण्डलके सात पुत्रवधू थीं। छोटी वधूके न बाप था न मा थी। घरमें सबोंसे छोटी होनेके कारण घरके सभी काम-काज उसे ही करने पड़ते थे। एक दिन सब कोई मिल कर तालावमें स्नान करने गईं। वहां छः बड़ी पितृमातृहीना सातवीं बहूको सुना सुना कर कहने लगीं कि उन लोगोंके बाप भाई सब कुछ हैं; वे समय समय पर उन्हें निमन्त्रण दे कर बुला ले जाते हैं।

यह सुन कर छोटी वधू लज्जित हो रही। जहां ये सब बातें होती थीं, उसके पास ही एक सर्पविवर था। विवरवासी सर्प और सर्पीने उन लोगोंकी सब बातें सुन लीं। उस समय सर्पी गर्भिणी थी। सर्पने कहा, 'इस अवस्थामें तुम्हारी सेवाके लिये एक आदमीकी जरूरत है। इसलिए इस पितृमातृहीना मनुष्य कन्याको यहां ले आता हूं। मैं अपनेको उसका भाई बतला कर तुम्हारे पास उसे ले आऊंगा और तुम्हारे प्रसवकाल तक यहां रख कर पीछे भेजवा दूंगा।' इस पर सर्पी राजी हो गई। बाद एक दिन छोटी बहू गाय चरानेके लिए बाहर निकली। इसी समय उस सर्पने एक दिव्य युवक-मूर्त्ति धारण कर उसके समीप आ कर कहा, 'बहन! मैं तुम्हारा भाई हूं। दूर देश चला गया था, इस कारण इतने दिनों तक मैंने तुम्हारी कुछ भी खोज-खबर न ली। जब तुम बहुत छोटी थी उसी समय मैं परदेश चला गया था। सुतरां तुमने मुझे कभी नहीं देखा। जो कुछ हो, एक दिन तुम्हारी ससुराल जा कर तुम्हें अपने यहां ले आऊंगा। तुम आनेके लिए तैयार हो रहना।' एक दिन घरके जब सब कोई खा चुके थे, तब उसने जूठा अन्न उठा कर कहीं रख दिया और आप बरतन मलने तथा स्नान करनेके लिए बाहर चली गई। इसी बीच वह सर्पी आ कर उस जूठे अनाजको खा गई। जब वह स्नान कर लौटी और उस जूठे अनाजको कहीं न देखा, तब खानेवालेको गाली न दे कर बहुत विनीत स्वरसे कहा,—'अहा! जिसे ऐसी भूख लगी थी, जिसने जूठा खा लिया उसकी भूख शान्त हो जाय।' उसकी मीठी बात सुन कर सर्पी बहुत खुश हुई और उसी दिन उस वधूको अपने घर लानेके लिए उसने अपने स्वामीसे अनुरोध किया। पूर्वसा रूप बना कर वह सांप उस मण्डलके घर गया और अपनेको छोटी वधूका भाई बतला कर अपना परिचय दिया। पीछे उस सर्पने जब उसे अपने घर ले जानेकी इच्छा प्रकट की, तब घरवालोंने भी आज्ञा दे दी। छोटी बहू बिना किसी प्रकारका सन्देह किये अपने नूतन भाईके साथ चली गई। राहमें सर्पने उस वधूको अपना प्रकृत परिचय दिया और कहा, 'गर्त्त-प्रवेश करते समय मैं

लब्बई नामक एक श्रेणीके मुसलमान अधिक संख्यामें यहां वास करते हैं। ये लोग अरबी और हिन्दूके मेलसे उत्पन्न हुए हैं। यही लोग नगरका अधिकांश वाणिज्य कार्य चलाते हैं। अभी इनमेंसे कुछ लोग ब्रह्म और मलय प्रायद्वीपमें जा कर रहने लगे हैं।

इस बन्दरमें ८० फुट ऊँचे श्वेत स्तम्भके ऊपर चतुर्थ श्रेणीका श्वेत आलोक गृह (Light house of white light) है। इसके पार्श्वस्थ नागोर नामक बन्दर भी इस नगरका अन्तर्निविष्ट समझा जाता है।

यहां बहुत प्राचीन १४ मन्दिर हैं जिनमेंसे १२ शिवमन्दिर और २ विष्णुमन्दिर हैं। कैलासनाथ स्वामीके मन्दिरकी दीवारमें ओलन्दाजी भाषामें जो एक शिलालेख देखा जाता है, वह १७७७ ई०में मृत एक ओलन्दाजके स्मरणार्थ खोदा गया था। यहां पहले चीना पागोड़ा नामक एक स्तम्भ था। अंगरेज गवर्नमेण्टने सेण्टजासेफ कालेजके पादरियोंके कहनेसे १८६७ ई०में उसे तोड़ फोड़ डाला। चीनपागोड़ाका प्रकृत नाम जिनपागोड़ा है। एक समय यहां जैनधर्म खूब चढ़ा बढ़ा था। स्थानीय लोग जिनपागोड़ाको 'पुदुवेलि गोपुर' और अंगरेज लोग कृष्ण पागोड़ा (Black pagoda) कहते थे। स्तम्भ तोड़नेके समय व्रजधातुकी एक प्रतिमा पाई गई है जिसे कोई तो बौद्ध और कोई शैव प्रतिमा समझते हैं। प्रतिमाके निम्न भागमें प्राचीन तामिलाक्षरमें उत्कीर्ण लिपि है। वटेभियाकी चित्रशालिकामें दो रौप्यफलक हैं। इसमेंसे एक तञ्जोरके अन्तिम नायक विजयराघव द्वारा प्रदत्त नेगापाटम् दानका दानपत्र है और दूसरा महाराष्ट्र-राज एकोजी द्वारा प्रदत्त उस दानका प्रतिपोषक अनुज्ञापत्र।

रामञ्ञदेशके राजा धर्मचेटो (धर्मश्रेष्ठी)ने सिंहलसे महाविहार सम्प्रदायकी बौद्ध रीतिनीतिका प्रचार अपने राज्यमें करना चाहा। इसके लिये उन्होंने सिंहलराज भुवनैकबाहुके समीप २४ स्थविर एवं चित्रदूत और रामदूत नामक दो दूत भेजे। लौटते समय जम्बूद्वीप और सिंहलद्वीपके बीच सिला (?) स्थानमें जब उनका जहाज पहुंचा, तब एक भारी तूफान आया और पर्वतसे य... जहाज टकरा कर चूर चूर हो गया। आरोहिगण काठ आदिका बेड़ा बना कर किसी तरह जम्बूद्वीपके किनारे पहुंचे।

सिंहल-राजदूतके पास जो कुछ भेंटके सामान थे उनके खो जानेसे वे यहींसे वापिस चले गये। चित्रदूत और उनके साथी स्थविरगण पैदल ही नागपत्तनको पहुंचे। यहां उन स्थविरोंने पदरिका नामक बौद्धाश्रयका दर्शन किया और गुहामध्यस्थ बुद्धमूर्त्तिकी पूजा की। चीनदेशाधिपति महाराजके आदेशसे वह मूर्त्ति बनवाई गई थी। वह स्थान, जहां उक्त मूर्त्ति स्थापित है, समुद्रके किनारे पड़ता है। कहते हैं, कि दन्तकुमार और हेममाला (पति-पत्नी)के तत्त्वाधानमें जब बुद्धदन्त सिंहलको लाया गया, तब पहले वह इसी स्थान पर रखा गया था।

यह नागनाथ नामक एक प्राचीन नागमन्दिर है जिसमें नागनाथ अनन्तकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। उस प्रतिमाके निकट एक वृहत् वल्मीक स्तूप है। लोग कहते हैं, कि उस वल्मीकमें वास्तुदेवता रहते हैं, इस कारण नैवेद्यादि उसीके निकट चढ़ाया जाता है। यहां "गङ्गाद्रुम" नामक १७० फुट ऊँचा जो एक इष्टकस्तम्भ है वह जैन या बौद्धोंका बनाया हुआ है।

नागपत्तनसे ५ मील पूर्व-उत्तरमें समुद्रके किनारे नागोर नामका एक स्थान है जहां कादेरविलियर सैयद, उनके लड़के महम्मद यसुफ सैयद और पुत्रवधू जोहार बीबीके प्रसिद्ध समाधिगृह विद्यमान हैं। इस अञ्चलके क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी कादेरविलियरकी श्रद्धाभक्ति करते तथा उनकी समाधि देखने आते हैं।

नागपत्तनका पेरुमलस्वामी और कायारोहणस्वामीका मन्दिर बहुत मशहूर है। प्रवाद है, कि सत्ययुगमें ब्रह्मा दक्षिणसमुद्रके किनारे महाविष्णुके उद्देश्यसे तपस्या करते थे। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर विष्णुने उन्हें दर्शन दिये। ब्रह्माने उसी समय वहां एक विष्णुमन्दिर बनवा दिया। उसी मूर्त्तिका नाम अभी पेरुमलस्वामी पड़ा है। कायारोहण स्वामीकी शक्तिका नाम नीलायताक्षी है। स्मार्त्त-ब्राह्मण लोग उनकी विशेष भक्ति और सम्मान करते हैं।

नागपत्नी (सं० स्त्री०) सत्रणाकन्द।

नागपत्रम् (सं॰ क्लो॰) ताम्बूल दल, पानका पत्ता।

नागपत्रा (सं॰ स्त्री॰) नागदमन पत्र यस्याः, टाप्। १ नागदमनी।

नागपत्री (सं॰ स्त्री॰) नागवत् पत्र यस्याः ङीप्। लक्ष्मणा-कन्द नामक नामका कन्द।

नागपद (सं॰ पु॰) नागवत् पद स्थान यस्य। १ षोडश प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे दूसरा रतिबन्ध। (क्ली॰) २ हस्तिपद, हाथीके पैर।

नागपर्णी (सं॰ स्त्री॰) १ ताम्बूल, पान। २ नागवल्लीलता।

नागपाल—काश्मीरके एक राजा। ये सोमपालके सहोदर भाई थे।

नागपाश (सं॰ पु॰) नागः पाश इव। १ वरुणके एक अस्त्रका नाम। इस अस्त्रसे वे शत्रुओंको बांध देते थे। रामायणमें लिखा है, कि इन्द्रजित्‌ने इन्हें यह अस्त्र प्राप्त किया था। प्रायः सभी पुराणोंमें इस अस्त्र का उल्लेख देखनेमें आता है। तन्त्रमें लिखा है कि काई भीरेकी बन्धनका नाम नागपाश है। नागपाशसे बन्धन करनेसे कोई फिर बाहर न था है, ऐसा बोध होता है।

नागपाशक (सं॰ पु॰) नागपाश इव इति कन्। रतिबन्धविशेष।

नागपुत (सं॰ पु॰) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम (Bauhinia Anguina)

नागपुर (सं॰ क्ली॰) नागानां पुरं ६ तत्। १ पाताल। २ देशविशेष, एक देशका नाम। भविष्यपुराणमें इस देशका उत्पत्ति विवरण जो लिखा है वह इस प्रकार है— जब महा महादेवकी जटासे निकल कर हिमकूट विमा-लय पर्वतको लांघ कर आई, तब कवोल नामक एक दानव पर्वतके रूपमें मार्ग रोकनेके लिये खड़ा हो गया। भगीरथने कौशिकको प्रसन्न करके उनसे एक नागवाहन प्राप्त किया। उस वाहनने पर्वतरूपी देत्यको विदीर्ण कर डाला। जिस स्थान पर वह देत्य विदीर्ण किया गया उसका नाम नागपुर रखा गया। ३ हस्तिना-पुरका नामान्तर।

नागपुर—१ मध्यप्रदेशका उत्तरीय विभाग। यह अक्षा॰ १८° ४२´ से २२ २४´ उ॰ और देशा॰ ७८ १ से ८१°३ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४१२१ वर्ग-मील और लोकसंख्या प्रायः २७०११८५ है। इस विभागके उत्तर छिन्दवाड़ा, सिवनी और मण्डला जिला। पूर्वमें रायपुर जिला कवार्धा और खैरागढ़ नाइकेर नामक तीनों देशीय राज्य, दक्षिणमें निजामअधिकृत प्रदेश और पश्चिममें बेरारके अन्तर्गत अमरावती तथा बुल-दाना जिला है। इस विभागमें विभिन्न गोंड़, बैगा, वयार, कोड़ु, कोल, भील आदि असभ्य जातियोंका वास है। हिन्दूमें कृषिजीवि कुर्मी को संख्या सबसे अधिक है। इस विभागमें २४ शहर और ७८८८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा॰ २०° ३१´ से २१ ४४´ उ॰ और देशा॰ ७८ १५´ से ७९ ४०´ पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके पूर्वमें भण्डारा, उत्तरमें छिन्दवाड़ा और सिवनी, दक्षिण-पश्चिममें वर्धा, दक्षिण पूर्वमें चान्दा और पश्चिममें बेरार पड़ता है। सतपुरा पहाड़के निम्न समतलक्षेत्रमें यह जिला अवस्थित है। उत्तर, पश्चिम और पूर्वमें इस जिलेका सीमांश सच्छ उच्च पर्वतमाला विस्तृत है। इस पर्वतमालासे समूचा जिला तीन समतल विभागोंमें बँट गया है। दक्षिण-पूर्वके समतलमें भन्दारनदीको अववाहिका है। पिल्लापर शिखरके पश्चिममें वर्धानदीको अववाहिका और यहां नदीको उपनदियां बाम और मदारसे भी यथेष्ट जलसञ्चय होता है। पूर्वीय समतलक्षेत्रमें वेणगङ्गाकी उपनदियां कनहानसे इसका अंश बन जाता है। इस जिलेके पिल-कापर (१८८८ फुट) दमनोनी (१२०० फुट) और रामटेक (१३०० फुट ऊंचा) नामक तीन प्रधान पहाड़ हैं। रामटेक पहाड़ घोड़ेके नालके जैसा देखनेमें लगता है। इसके ऊपर प्राचीन दुर्ग और प्राचीन मन्दिरादि बने हुए हैं। ग्रीष्मऋतुमें यहां भारतवर्षके अन्य स्थानों से अधिक गरमी पड़ती है। उस समय यहांका ताप परिमाण ११६ हो जाता है।

इतिहास—अत्यन्त प्राचीनकालमें इस देशमें गोली जातिके सरदार राज्य करते थे। देशीय गाथामें इन सरदारोंकी वीरगाथा वर्णन किया तो तरह किया गया है। १६वीं शताब्दीके पहलेका कोई विश्वस्त इतिहास नहीं मिलता। उस समय देवगढ़के गोंडराज्यमें यह जिला अधिष्ठित था। उसी समय बख्त नामक राजगोंड़ जातिके एक राजा

घाट पर्वंतके नीचेका शासन करते थे; सम्भवत: ये देवगढ़के गोंडराजके भाई थे। इन्होंने ही भोयगढ़ पर्वंत-का प्राचीन दुर्ग बनवाया। छिन्दवाड़ासे पहाड़ी राहकी रक्षाके लिए यह दुर्ग बनाया गया था। शायद इस प्रदेश-में जो सब गोंडदुर्गके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं वे भी इन्हींके अथवा इनके वंशधरोंके समयके बने हुए हैं। प्राय: १७०० ई०में बख्त् बुलन्द नामक एक मुसलमान राजाके समय देवगढ़ राज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। दिल्लीके साथ जबसे राजाकी सन्धि हुई, तबसे इस देशमें बहुतसे हिन्दू मुसलमान आ कर रहने लगे। उन्होंने ही नागपुर नगरको बसाया। पीछे उनके लड़के चांद सुलताननें इस नगरमें राजधानी कायम की। १७३८ ई०में चांद सुलतानके मरने पर वली शाह नामक बख्तबुलन्दके एक दासीपुत्रने सिंहासन पर दखल जमाया। चांद सुलतानकी विधवा पत्नीने अपने बाल बच्चोंके लिए रेवारके रघुजी भोंसलासे सहा-यता मांगी। वलीशाह युद्धमें मारे गये। पीछे विधवा रानीके लड़के बुरहानशाह और अकबर शाह यहां राज्य करने लगे। कुछ दिन बाद दोनों भाइयोंमें एक बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई जिसमें बुरहानशाहने १७४३ ई०में रघुजी भोंसलाकी सहायतासे सफलता प्राप्त की।

अकबरशाह हैदराबादको भाग गए और वहीं उन्हों-ने विष खा कर आत्महत्या कर डाली। रघुजी भोंसला-ने इस बार जो बुरहानशाहकी सहायता की थी, वह निस्वार्थ भावसे नहीं, बल्कि अपना मतलब साधने के लिए। उन्होंने राज्यशासनका कुल अधिकार अपने हाथमें ले लिया और बुरहानशाहको नाममात्रका राजा बना कर कुछ वृत्ति कायम कर दी। बाद नागपुर राज-धानीमें रह कर भोंसलाने देवगढ़का अधिकांश अपने राज्यमें मिला लिया।

१७४४ ई०में रघुजीने रेवारसे ले कर कटक तकके कर वसूल करनेकी सनद पेशवासे जबरदस्ती ले ली। १७५६ ई०में रघुजीकी नागपुरमें मृत्यु हुई।

पीछे रघुजीके पुत्र जनोजी नागपुरमें राज्य करने लगे। छत्तिशगढ़ और चन्दा रघुजीके छोटे लड़के माधोजी-के हाथ लगा।

पेशवा और निजाममें जब विवाद छिड़ा था, तब जनोजी कभी एक पक्षको और कभी दूसरे पक्षकी सहा-यता कर रुपया संग्रह करने लगे।

१७६५ ई०में निजाम और पेशवा जनोजीके इस व्यवहार पर बहुत बिगड़े और दोनोंने मिल कर जनोजी पर आक्रमण कर दिया तथा नागपुर शहरमें आग लगा दी। जनोजी अधिकांश रुपये उन्हें लौटा देनेको बाध्य हुए। इसके चार वर्ष बाद जनोजी और पेशवामें एक सन्धि हुई जिसमें भोंसलाको पेशवाकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मरनेके पहले जनोजीने माधोजीके लड़के रघुजीको पोष्यपुत्र बनाया। जनोजीके मरने पर माधोजी अपने पुत्रको ले कर नागपुर पहुंचे भी न थे, कि उनके पहले प्रथम रघुजीके भाई सबाजीने शून्यसिंहासन अधिकार कर लिया। पांचगांव नामक स्थानमें दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। रणक्षेत्रमें माधोजीने अपने हाथसे भ्रातृ-वध कर पुत्रका राज्य निष्कण्टक किया। माधोजीने अपना अवशिष्ट जीवन नागपुर राज्यके अभिभावकके रूपमें बिताया। १७७७ ई०में माधोजी अंगरेजोंके साथ सन्धिसूत्रसे आबद्ध हुए। १७८८ ई०में माधोजीका देहान्त हुआ। इसी समयसे नागपुर प्रदेशमें सुचारुरूपसे शासन-कार्य चलाने लगे।

द्वितीय रघुजी अन्तमें सिन्धियाके साथ मिल कर अंगरेजोंके विरुद्ध डट गये। असाई और आरगांवमें युद्ध हुआ। देवगांवकी सन्धिके अनुसार रघुजी प्राय. एक तृतीयांश राज्यसे हाथ धो बैठे और सदाके लिये रेसि-डेण्ट रखनेको बाध्य हुए। १८१६ ई०में द्वितीय रघुजीके मरने पर उनके अन्ध और पक्षाघातग्रस्त पुत्र पारसोजी राजा हुए सही, लेकिन राज्य भोग कर न सके। उनके एक भतीजे अप्पासाहब और विधवा पत्नीमें राज्या-धिकार ले कर विवाद शुरू हुआ। अन्तमें अंगरेजोंने अप्पा साहबको राजा बनाया। अप्पा साहबने पारसोजीको विष खिला कर मरवा डाला। राजसिंहासन पर बैठनेके साथ ही वे अंगरेजोंका उपकार भूल गए और पेशवा-का साथ दिया। रेसिडेण्टने आत्मरक्षाके लिये थोड़ीसी सेना ले सीताबल्दी दुर्गको अधिकार कर लिया। १८१७ ई०में नागपुरकी मराठी सेनाने इन्हें बहुत तङ्ग किया

और योंहि भोंसलावंशको कुल को लोप किया। अप्पासाहब इस उपद्रवके मूल कारण थे, यह उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जो कुछ हो, जब बोर्डो और अंगरेजी सेना रेसिडेण्टको रक्षाके लिये पहुंची, तब रेसिडेण्टने राजा से आत्मसमर्पण करने और सम्पूर्ण सामग्रीको अर्पण कर देनेके लिये अनुरोध किया।

अप्पासाहबने आत्मसमर्पण किया नहीं, किन्तु सैन्यसामग्रीको ओर कुछ भी ध्यान न दिया। अन्तमें नागपुरमें लड़ाई छिड़ गई जिसमें महाराष्ट्रोंको हार हुई। अंगरेजोंने पुनः अप्पा साहबको गद्दी पर बिठाया। इस समय आपकोंको विष देनेकी बात खुल गई और अंगरेजोंके विरुद्ध जो नवीन षड़यन्त्र कर रहे थे, वह भी सब किसीको मालूम हो गया। इस पर अंगरेजोंने उन्हें कैद कर लिया। किन्तु अप्पासाहब बहुत चालाकी से महादेव पर्वतके समीप भाग गये और वहांसे सीधे पञ्जाबको चले गए।

२य रघुजीके एक शिशु पौत्र ३य रघुजी नामसे सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। १८५३ ई०में अपुत्रक अवस्थामें इनका देहान्त हुआ और यह राज्य वृटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा। १८६१ ई०में यहां कमिश्नर नियुक्त हुए।

इसमें १२ शहर और ११८१ ग्राम लगते हैं। शहरमें ८ ही प्रधान हैं, यथा—नागपुर शहर कामठी, उमरेर, खापा, रामटेक, नरखेर, मोहपा, कलमेश्वर और सोनेर। जनसंख्या प्रायः ७५१८४४ है जिनमेंसे ब्राह्मण, कुनबी और महाराष्ट्रोंकी संख्या अधिक है। ज्वार और रूई ही यहांकी प्रधान उपज है। डिपटी कमिश्नर और उनके कुछ तहसीलदारों द्वारा विचारकार्य सम्पन्न होता है। विद्यामें भी यह जिला बढ़ा चढ़ा है। यहां ५ हाई स्कूल, ६६ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, १० वर्नाक्यूलर स्कूल और १८० प्राइमरी स्कूल हैं। इसके अलावा मोरिस नामका एक कालेज है जिसमें कानून भी पढ़ाया जाता है। यहां दो मिशन विद्यालय भी हैं।

२ नागपुर जिलेके मध्यकी एक तहसील। यह अक्षा० २० ३६´ उ० और २१ २१´ उ० तथा देशा० ७८ ४४´ और ७९ १८´ पूर्वके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८०१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८६११० है। इसमें ४ शहर और ४२७ ग्राम लगते हैं। यहां ११ दीवानी और ११ फौजदारी अदालत, ९ थाना तथा ६ चौकी हैं।

३ नागपुर जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१ ९´ उ० तथा देशा० ७९ ७ पूर्वके मध्य अवस्थित है। यह शहर नाग नामकी नदीके किनारे बसा हुआ है इसीसे इसका नागपुर नाम पड़ा है।

जनसंख्या लगभग १२७७३६ है। यहां हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमान जातिके लोग रहते हैं। गेहूं, चावल, देशी और विलायती कपड़े तथा रेशम और मसालेकी आमदनी होती है। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें गोण्ड राजा बख्तबुलन्दसे यह शहर बसाया गया। धीरे धीरे यह भोंसलाके अधीन आया। यहां चीफ कमिश्नरको अफसरी, छोटी अदालत, तहसीलकी सर्टिफिकेटकी अदालत, पुलिस, कारागार, अस्पताल, पागलखाना, कुष्ठाश्रम, लीटलफ्लो-आतुरालय और अनेक विद्यालय हैं। इसके अतिरिक्त तीन सराय और धर्मशालाएं हैं। शहरमें कितने अच्छे अच्छे बने हुए भोंसलाका प्रासाद, तोपखाना, महाराजबाग, तुलसी बाग आदि मनोहर स्थान देखने योग्य हैं। भोंसला राजाओंके समय यहां अनेक उद्यान लगाए गए थे। उद्यानके सिवा उनके बनाए हुए जुम्मा तालाब, अम्बा झारी और तेलिङ्गखेरी नामक तीन जलाशय भी नजर आते हैं। शहरको आबहवा स्वास्थ्यजनक है।

नागपुरगम् (स० क्ली०) सीस धातु, सीसा।

नागपुरी—नेपालके स्वयम्भूक्षेत्रके अन्तर्वर्ती एक अत्यन्त प्राचीन बौद्ध देवमन्दिर। यहां नाग और अष्टनागकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। स्वयम्भूपुराणके मतानुसार नेपाल के शिव गुप्तनामके समय शान्तिकरने इन मूर्त्तियोंकी स्थापना की थी।

नागपुष्प (स० पु०) नागस्य वल्लिभ' मदगन्धयुक्त' पुष्प यस्य। १ पुन्नागवृक्ष। २ नागकेशर। ३ चम्पक, चंपा।

नागपुष्पक (स० पु०) १ श्वेतपिण्डतक, सफेद कडवा पिंड। २ स्वर्णयूथिका, पीली जूही। ३ कृष्णाप्रक। ४ पुन्नाग वृक्ष। ५ नागकेशरवृक्ष।

नागपुष्पफला (सं० स्त्री०) नागस्य नागकेशरस्येव पुष्प-फले यस्याः । कुष्माण्डो ।

नागपुष्पा (सं० स्त्री०) १ नागदमनी, नागदौना । १ २ मनःशिला ।

नागपुष्पिका (सं० स्त्री०) नागस्य पुष्पमिव पुष्पं यस्याः कप् टापि अत इत्वम् । १ स्वर्णयूथी पुष्पवृक्ष, पीली जूही । २ नागदमनी, नागदौना ।

नागपुष्पी (सं० स्त्री०) नागस्य नागकेशरस्य पुष्पमिव पुष्पं यस्याः ङीष । १ नागदमनी । २ स्वर्णयूथिका, पीली जूही । ३ मेढ़कशृङ्गी, मेढ़ासींगी ।

नागपूजा—भारतवर्षमें सब जगह नागपूजा प्रचलित है । केवल भारतमें नहीं, बल्कि दूसरे देशोंमें भी नागपूजा-की प्रथा देखनेमें आती है । ईसा जन्मके २००० वर्ष पहले यह पूजा यहूदियोंमें शुरू हुई थी । रोमनगरसे १६ मील दूरवर्त्ती लानुवियम् नामक स्थानमें एक निविड़ अन्धकारमय निकुञ्ज था जिसे लोग सतीकी अधिष्ठात्री देवी जुनो (Juno) कुञ्ज कहते थे । उसके पास ही एक वृहदाकार अजगरका वास था । रोमकगण उस अज-गरकी यथेष्ट भक्ति करते थे । प्रायः सभी हिन्दू विषधर फणीकी पूजा करते हैं और कभी कभी भारतवर्षके नाना ग्रामवासी हिन्दू रमणियां नागपूजाके लिये वन जाती हैं ।

हिन्दू जिस तरह मनुष्यकी मृतदेहका सत्कार करते हैं, उसी तरह अनेक स्थानोंमें निहत सर्पका भी सत्कार किया जाता है । हिन्दू, बौद्ध, जैन आदिकी देव-देवियोंकी प्राचीन मूर्त्तियोंके मस्तक पर छत्रा-कारमें सर्पफण देखनेमें आते हैं । कहीं तो ९ सर्प-फण, कहीं कहीं ७, कहीं ८ वा ११ सर्पफण फैले हुए रहते हैं ।

प्रायः सभी पौराणिक ग्रन्थोंमें सर्प अमरत्वका निद-र्शनस्वरूप माना गया है । सर्पोंके शरीरसे जो बार बार केंचुल निकलती है और नए विषका जो आविर्भाव होता है उससे यह अनुमान किया जाता है कि सर्प चिर-यौवन तथा चिरजीवि है । इजिप्ट और ग्रीसके इतिहासमें भी नागोंके अनेक उपाख्यान लिखे हैं ।

गरुड़के साथ नागोंकी जो युद्धकथा सुनी जाती है और गरुड़ने जो नागदमन किया था, पाश्चात्य पण्डित लोग उसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं । गरुड़ विष्णु-उपासकके दृष्टान्तस्वरूप है और नागगण कहनेसे शाक्य मुनिके प्रतिष्ठित बौद्ध-धर्मावलम्बी मनुष्योंका बोध होता है । गरुड़ने सचमुच नाग जय किया था, अर्थात् प्रबल वैष्णवधर्मने तेजहीन बौद्धधर्मको परास्त किया था ।

महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है, कि परी-क्षितके पुत्र जनमेजयने सर्पयज्ञ किया था । उस यज्ञमें राजा जनमेजयने प्रायः सभी सर्पोंको विनष्ट कर डाला था । यदि सचमुच देखा जाय, तो उक्त ऐतिहासिक घटना तदानीन्तन एक यथार्थ घटनाका आभास ले कर वर्णित हुई है । जब जनमेजयने नागपूजा बन्द कर दी, उस समय स्थानीय कुसंस्कारको दूर करके वेदके सना-तन धर्मने उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया ।

काश्मीर प्रदेशमें सबसे पहले नागपूजा और मनसा-पूजा प्रचलित थी । अबुलफजलने कहा है, कि ई० सन्-के ३५०।४०० वर्ष पहले काश्मीर अञ्चलके प्रायः सात सौ स्थानोंमें नागपूजा होती थी । उस समय सारे भारत-वर्षमें नागपूजाकी प्रथा प्रचलित थी ।

कहीं तो जीवित गोखुर सर्पको और कहीं खोदित प्रतिमूर्त्तिकी पूजा होती है । प्रायः प्रत्येक घरमें मनसा-देवीके प्रतिरूप मनसाका एक पेड़ रहता है । कई जगह उसी पेड़की पूजा होती है । कहीं कहीं तो ऐसी प्रतिमूर्त्ति है कि एक सर्प अपना फण फैलाए हुए है और कहीं अष्टनागकी प्रतिमूर्त्ति उत्कीर्ण है । अधि-कांश जगह दो सर्प एक साथ मिले हुए देखे जाते हैं ।

दाक्षिणात्यमें सब ही जगह जहां सांप रहता है वहां पुजारी जाते और सिन्दूर लगाते हैं । चीनीमिश्रित गेहूं और हलदीके चूर्णसे वहां सांपका चित्र अङ्कित करते हैं और सुगन्धित फूलकी माला गूँथ कर उसी जगह लटका देते हैं ।

महाराष्ट्र रमणियां नागपूजाके दिन एक साथ मिल कर नागमन्दिर जाती हैं और एक दूसरेका हाथ पकड़ कर गीत गाती हुई मन्दिरका प्रदक्षिण करती है । बाद वे अपने अपने अभीष्ट वरके लिए प्रार्थना करती हैं और भूमिष्ठ हो उन्हें प्रणाम करती हैं । श्रावण मासमें नाग-

पञ्चमी नामका एक हिन्दू पर्व है। उस दिन हिन्दू लोग सब कोई तमाममें बाहर निकलते हैं और सँपेरेकी सहायतासे सर्प पकड़ कर घर लाते हैं। बाद वे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा कर उन्हें दूध और अन्यान्य द्रव्य खाने देते हैं। उस दिन बम्बई प्रदेशके प्रत्येक हिन्दू मकान काठ अथवा कागजमें सर्पकी मूर्त्ति अङ्कित कर उसे दीवारमें लटका देते हैं और उसकी अर्चना करते हैं। एलोराके गुहामन्दिरमें इस प्रकारको नागपूजाका प्राचीन निदर्शन देखनेमें आता है। इन्द्रसभाके पश्चिम दीवारमें एक बैठक साँपकी मूर्त्ति अङ्कित है। साँप जिस प्रकार गणपतिके भक्त है, उसी प्रकार शिव भी है। सर्पउपासकका कहना है, कि ये सब साँप महादेवकी ओर जा रहे हैं और जब उन्हें कहा जाता है, कि वहां जानेमें बहुत दिन लगेंगे, तब वे बहुत अप्रसन्न होते पड़ते हैं।

कागज पर अङ्कित शिवलिङ्गके ऊपर जो सर्पमूर्त्ति है उसके फन ऊपरकी ओर फैले हुए हैं। कागज पर जो शिवमूर्त्ति है वह व्याघ्रचर्मके ऊपर बैठे हुए है और उनके मस्तक पर सर्प अपना फन फैलाए हुए है तथा शेष अङ्ग उनके गलेमें लिपटा हुआ है। कहते हैं, कि समुद्रमन्थनके समय जो विष निकला था, महादेव उसे पी गए थे। उस यन्त्रणासे बेचैन हो कर ज्वाला निवारणके लिए उन्होंने सर्पको अपने गलेमें लिपटा लिया था। भगवान् विष्णु जब अनन्तशय्या पर सोए हुए थे, तब सर्पने अपनी फन फैला कर उन्हें छाया की थी। उन्होंने अपनी फनको तब तक फैलाए रखा था, जब तक भगवान्ने दूसरा अवतार न लिया।

दक्षिण भारतमें मङ्गलुरके पश्चिमोत्तर सुब्रह्मण्यदेवी का एक मन्दिर है। उस मन्दिरमें मट्टीकी बनी हुई एक प्रतिमूर्त्ति स्थापित है। अधिवासिगण नागोंके उद्देश्यसे उक्त सुब्रह्मण्यकी पूजा करते हैं। आज भी वहां नागपूजा-पद्धति पूर्ववत् प्रचलित है।

१८३१ ई०को अहमदनगरमें एक दिन पौर्णमासी तिथिको किसी घरसे दस सर्प बाहर निकले। आश्चर्यका विषय था, वे सब सर्प युगल अवस्थामें जा रहे थे। इस प्रकार नागमिथुन देख कर एक यूरोपीय युवक बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उन्होंने यह आश्चर्य घटना अपने एक मित्रसे कह सुनाई। इस पर उनके मित्रने कहा, 'महाशय! मैंने भी एक दिन दो सर्पोंको युगल अवस्थामें देखा था। उस समय मैं खिड़की ऊपर भार दे कर छीपे खड़े हो गए। भारतवासी इस अवस्थाको साँपका नाच कहते हैं। उनका विश्वास है, कि इस अवस्थामें साँपका देखना सौभाग्यसूचक है। इस समय यदि कोई एक नवीन कपड़े उन्हें ढक दे, तो उसे अशेषमङ्गल प्राप्त होते हैं। बाद उस कपड़ेको ला कर घरमें रखनेसे लक्ष्मी चिर दिन तक उसके घरमें आबद्ध रहती हैं।'

हिन्दू साधारणतः सर्पका विनाश करना नहीं चाहते, सर्प देखनेसे वे दूसरा रास्ता पकड़ लेते हैं। आधुनिक अंगरेजी भाषाज्ञ हिन्दू युवक प्राचीन प्रथाओंका उल्लङ्घन कर साँपों के प्राणनाश कर डालते हैं। किन्तु प्राचीन कालमें हिन्दू कभी सर्पोंके प्राणनाश नहीं करते थे। किसी समय एक अहमदके घरमें दो अतिथि पहुंचे। घरका मालिक ब्राह्मण बनिया बाजारका सौदा करने गया था और उसकी स्त्री जल लानेके लिए बाहर गई थी। जब वे दोनों अतिथि अभ्यागतोंके बरामदेमें बैठे हुए थे उसी समय एक बड़ा भीषण सर्प उनके सामने पहुंच गया। उसे देखनेके साथ ही उनमेंसे एकने उठके उसका धड़ दबाया और दूसरा डंडा ले कर ज्यों ही उसे मारनेके लिए उद्यत हुआ, त्यों ही ब्राह्मण बनियेकी स्त्री जो जल ले कर पीछेसे आ रही थी, चिल्ला उठी, "महाशय! ठहर जाइये, ठहर जाइये! इसका प्राणनाश मत कीजिये। यह सर्प हम लोगोंके पूज्य देव हैं। ये मेरी सासके शरीर पर चढ़ जाते और श्वसुरका नाम ले कर कहते हैं, कि उन्होंने ही नर देहत्याग कर सर्प देह धारण की है। एक दिन इन्होंने हमारे किसी एक पड़ोसीको काटा, जब विष झाड़नेके लिये ओझा बुलाये गये, तब इन्होंने कहा, मेरे पुत्रके साथ इसने विवाद किया था, इस लिए मैंने इसे काटा है। यदि यह मेरे पुत्रके पास कभी न झगड़े, तो मैं उसे छोड़ सकता हूं, अन्यथा नहीं। तभीसे जब उक्त अजगर किसीके घर जाता है तब कोई उसे कठोर वचन नहीं कहता। कुछ दिन हुए हम लोग इसे इस स्थान दूर छोड़ आये थे। किन्तु आश्चर्यकी बात है कि उतना

दूरसे वह फिर यहां लौट आया। मैंने कई बार इसके शरीर पर पैर रखा है, लेकिन इसने कुछ भी मेरा अनिष्ट नहीं किया। जब कभी मैं जल लाने बाहर जाती हूं, तब मेरी सन्तान इससे कान पकड़ कर खेला करती है।" *

यह सुन कर उन दो अतिथियोंने उस सर्पको छोड़ दिया और बहुत विनीत भावसे उससे प्रार्थना की।

कुछ दिन बाद एक बिड़ालने उस सर्पको मार डाला। गृहस्वामीने उसको मृतदेहका अग्निसंस्कार किया और चितानलमें चन्दनकाठ, नारियल और घी फेंक दिया। ऐसी प्रथा आज भी बहुत जगह प्रचलित है।

नागपूजा तमाम प्रचलित नहीं थी, पृथ्वी पर ऐसे कम स्थान थे जहां नागपूजा होती थी। समस्त एशियाके केवल चीन देशमें कहीं कहीं यह पूजा प्रचलित नहीं थी। इसके सिवा अफ्रिका, कालदीया, पालेस्तिन, वाविलन, पारस्य, काश्मीर, काम्बोज, तिब्बत, भारतवर्ष, लङ्काद्वीप आदि सभी स्थानोंमें तथा यूरोपके अन्तःपाती अनेक स्थानोंमें यहां तक कि अमेरिकामें भी कहीं कहीं नागपूजाका प्रचार था, इसका स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है।

राजपूत लोग सर्प देवताकी प्रतिमूर्त्ति जो बनाते हैं, उसमें आधा मनुष्यका आकार रहता है। दिवदोरस-ने स्कितीय (शक) जातिकी सर्प-जननीकी आकृति भी इसी प्रकार बतलाई है। हिन्दुओंके मतसे मनसादेवी नागमाता मानी जाती है। उसके भाई अनन्तनाग सर्पोंके राजा हैं। अनन्तका अर्थ सीमारहित है। सर्पों की गोलाकार अवस्थामें रहनेसे ही उक्त नाम पड़ा है।

यद्यपि कहीं ऐसा भी उल्लेख है, कि क्षीरोदशायी विष्णुको अनन्तनागने अतलस्पर्श समुद्रके बीच आश्रय दिया था, तो भी पुराणमें एक जगह लिखा है, कि अनन्तनाग ही स्वयं विष्णु हैं। अर्थात् उसी अनादि महापुरुष विष्णुका दूसरा नाम 'अनन्त' है।

जिस प्रकार हिन्दुओंमें सूर्यके पुत्र अश्विनिकुमार-द्वय देववैद्य कह कर प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार ग्रीक और रोमकोंमें एसकुलपियस् (Esculapius) देव वैद्य माने जाते हैं। इनके हाथोंका दण्ड दो सर्पोंसे वेष्टित है। फिनिकियोंके नागदेवताका नाम है एसमन्, मिश्र वासियोंका हार्मिस् (Hermes), कालदियोंका ओब, वाविलनवासीका बेल इत्यादि विभिन्न देशोंमें नागदेव विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं।

लङ्काद्वीप तथा गुजरातवासी आराधना तथा मूसोंका नाश करनेके लिये अपने अपने घरमें साँप रखते हैं। गुजरातवासी कोई भी साँप नहीं मारता, लेकिन कभी कभी उसे पकड़ कर गाँवके बाहर छोड़ आता है। सिंहलमें कीड़ा आदि मारनेके लिये साँप पाया जाता है। बहुत प्राचीन कालसे ले कर अलेक-सन्दरके समय तक टायरे नामक सर्पका विशेष आदर होता था। यद्यपि आज कल वहां नागपूजा नहीं होती, तो भी एक समय ओफाइट (Ophites), निकोलेटन (Nicoletans) और नष्टिक (Gnostics) नामक ईसाई सम्प्रदायोंमें नागपूजा प्रचलित थी। ओफाइट लोग सर्पको ईसासे बढ़ कर भक्ति करते थे। वे बकसेमें सजीव सर्पको पकड़ कर रखते और उसीको ईश्वर मानते थे। पोलण्ड देशमें उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम समय तक भी नागपूजा होती थी। संसारमें जितनी जातियां हैं वे सर्पोंके प्रति श्रद्धा और भक्ति जो करती थीं, वह निम्नलिखित घटनाओंसे स्पष्ट जाना जा सकता है। पृथ्वीके बहुतसे असाधारण लोगोंने सर्पसे जन्म-ग्रहण किया है, उनमेंसे कितने अपना परिचय दे गये हैं। रोमक-सेनापति सिपियो (Scipio Africanus) नागकी सन्तान माने जाते हैं। Augustusका कहना है, कि उनकी माता अटिया (Atia) नामक सर्पसे गर्भ-वती हुई थी। बहुतोंका विश्वास था, कि अलेकसन्दर नागनन्दन थे।

इन्दोर (Endor)की स्त्रियां ओबकी उपपत्नी मानी जाती हैं। इसराइलके राजा योथमने नागपूजाके लिये सर्प देवताका एक मनोहर मन्दिर बनवाया था।

एसिया माइनरकी कितनी प्राचीन मुद्राओं पर सर्पकी आकृति देखी जाती है। ईसा जन्मके बाद

* Balfour's Cyclopaedia of India Vol III (Serpent worship) द्रष्टव्य।

ग्रीक देशमें Esculapius के इष्टदेवहित होनेसे सर्प देवताके समान सम्मानित होते थे। कहते हैं, कि रोमनगरमें २९० ई०में जब प्लेगकी बीमारी फैली, तब ग्रीससे एक जीवित सर्प वहां लाया गया था। नगरके सभी मनुष्यों ने तथा राजसभाके सदस्योंने मिल कर यथाविधि सम्मानपूर्वक उसकी अभ्यर्थना की थी। इस घटना के बाद एक दिन रोमनगरके किसी स्थानमें एक सर्प देखा गया। यह सर्प बहुत आश्चर्य अवस्थामें वहां रहता था। यही देख कर रोमवासी उस स्थानको पुण्यक्षेत्र मानने लगे हैं।

पद्मपुराण और गरुड़पुराण इन दो पुराणोंमें कालिय नागका विवरण है। श्रीकृष्णने ही यमुनाजलमें इसे मारा था। भारतवर्षमें आज भी कालिय नागकी पूजा होती है। श्रावण मासकी शुक्लापञ्चमीको नागपञ्चमी होती है। भारतवर्षके उत्तरमें महाराष्ट्रमें और दक्षिणमें नाग पञ्चमीके बदले नागचौथी उत्सव प्रचलित है। यह उत्सव श्रावण मासकी कृष्णा चतुर्थीमें होता है, इसीसे इसका यह नाम पड़ा है। नागचौथी व्रत भारतवर्षके कई स्थानोंमें होता है। नागपञ्चमी पूजाके दिन हिन्दू रमणियां स्नान कर बहुमूल्य वसन भूषणोंसे सज्जित हो कर नागपूजा करने बाहर निकलती हैं। बाद जहां नाग मूर्त्ति स्थापित रहती है, वहां जा कर दूध, पिष्टक, फल, मूल, पान, सुपारी आदिका भोग लगाती हैं और नाना प्रकारकी पुष्प-मालाएं अर्पण करती हैं। इस दिन पूजा करनेके बाद वे नागराजसे अपने अपने अभीष्ट वरके लिये प्रार्थना करती हैं।

हिन्दुओंका विश्वास है, कि नागपूजा करनेसे कोढ़, आंखका जाना, भस्मादोष आदि रोग जाते रहते हैं। किसी ब्राह्मणने ढोलका नगरमें एक पुराना घर खरीदा था। उसने उस घरको ध्वंस कर वहां एक नया घर बनाना चाहा। जब वह जमीन खोदने लगा, तब उसने बहुत धन और सर्पमुद्राविशिष्ट एक कलसीको वेष्टन किये हुए एक प्रकाण्ड अजगर सर्प देखा। रातको उसे स्वप्न हुआ "तुम इस भस्ममन्दिरकी मरम्मत मत करो। यह सम्पत्ति मेरी है और मैं ही इसकी रक्षा करता हूं। यदि तुम मेरी बातका उल्लंघन करोगे, तो मैं तुम्हारा सत्यानाश कर डालूंगा।" पीछे ब्राह्मणने उठ कर सांपके शरीर पर गरम तेल डाल दिया और उस भस्ममन्दिरको तहस नहस करके धन रत्न अपने साथ ले बहुत आनन्दसे घर आया। इसका फल यह हुआ कि उस ब्राह्मणके एक भी पुत्र न हुआ और जो एक लड़की थी उसे भी कोई सन्तान न हुई। यहां तक कि जिन्होंने उस धनका थोड़ा भाग लिया था अथवा जो उसके कर्मचारी और सहायक हुए थे अथवा जिन्होंने उसके कुलपुरोहितका काम किया था, वे सबके सब निःसन्तान हुए। १८९० ई०में यह घटना हुई थी। मन्द्राजके निकट तिर्चेहुर, पेराम्बर, वासरपाड़ी और पश्चिमघाटमें बहुतसे नागमन्दिर देखनेमें आते हैं। कितने हिन्दू यात्री पश्चिमघाटके सुवर्ण मन्दिरमें जा कर रहते हैं और आते समय वहांसे अपने साथ कीचड़ लाते हैं जिसे कन्याएं तिलक लगाती और कुष्ठरोगी अपने शरीर पर लेपते हैं।

फारगुसन साहबने लिखा है, कि वृक्षपूजा और नाग पूजा सभी मनुष्यजातिका आदिधर्म है। जहां नरबलि दी जाती थी, वहां भी नागपूजाका प्रचार था। मैक्सिको और दाहोमी नामक देशोंमें नागपूजा सर्वसाधारणका प्रिय धर्म था। दाहोमी नागपूजाका एक प्रधान स्थान है। यहां आज भी नागपूजा पूर्ववत् बहुत समारोहसे होती है।

१८७२ ई०में मन्द्राजनगरमें किसी एक असाधारण श्रीसम्पन्न ब्राह्मणके एक कन्या उत्पन्न हुई। गर्भधारण-कालमें एक सर्प देखा गया था, इस कारण उस लड़की का नाम "नागम्मा" रखा गया। ये सब घटनाएं देख कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतवर्षमें नागपूजा का प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा था। बौद्ध तथा जैन धर्म-ग्रन्थोंमें भी नागपूजाका उल्लेख है।

नागनूत (सं० पु०) कचनारकी जातिकी एक लता जो सिक्किम, आसाम और बरमामें बहुत होती है।

नागपत्र (सं० पु०) वृक्षविशेष एक पेड़का नाम।

नागफनी (हिं० स्त्री०) १ सिरके आकारका एक बाजा। इसका व्यवहार नैपालमें अधिक होता है। यह तांबेका बना होता है। इसकी ध्वनि उतनी मीठी नहीं होती। २ थूहरकी जातिका एक पौधा। इसमें टहनियां नहीं

होतीं। साँपके फनके आकारके गूदेदार मोटे दल एक दूसरेके ऊपर निकलते चले जाते हैं। ये दल कुछ नीला-पन लिये हरे और काँटेदार होते हैं। काँटे बड़े विषैले होते हैं। दलोंके सिरे पर पीले रंगके बड़े बड़े फूल लगते हैं। पुष्पका निम्नांश छोटी गुल्लीके रूपका होता है। उसमें लाल रंगका रस भी भरा रहता है। जब फूल झड़ जाते हैं, तब यही गुल्ली बढ़ कर गोल फलके रूपमें परिणत हो जाती है। ये फल खानेमें खटमीठे होते और दवाके काममें आते हैं। इन फलोंका अचार और तरकारी भी बनती है। इसके पौधे किसी स्थानको घेरनेके लिये बाड़ोंमें लगाए जाते हैं। काँटोंके कारण इन्हें पार करना कठिन होता है। ३ एक प्रकार का गहना जो कानोंमें पहना जाता है ४ नागे साधुओं का कौपीन।

नागफल (सं० पु०) नागस्य पुन्नागस्येव फलं यस्य। पटोल, परवल।

नागफांस (हिं० पु०) नागपाश देखो।

नागफेन (सं० पु०) अहिफेन, अफीम।

नागबधू (सं० स्त्री०) नागानां बधूः ६ तत्। नागोंकी स्त्री।

नागबधूप्रिय (सं० पु०) सल्लकी निर्यास, धूना।

नागबन्धक (सं० पु०) वह जो जंगली हाथी पकड़ता हो।

नागबन्धु (सं० पु०) नागस्य हस्तिनो बन्धुरिव तत्पोषकत्वात्। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। २ उदुम्बरवृक्ष, डूमरका पेड़। ३ नागोंका मित्र।

नागबल (सं० पु०) नागानां हस्तिनामयुतस्य बलं यस्य। १ भीमका एक नाम। भीमको दश हजार हाथियोंका बल था। इसका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—एक समय दुर्योधनने इन्हें विष खिला कर नदीमें फेंक दिया और वे नागलोकमें पहुँच गये। नागलोकमें गिरने पर नागोंने उन्हें खूब डसा जिससे उनके शरीरस्थ स्थावर विषका प्रभाव उतर गया और वे स्वस्थ हो कर उठ बैठे। बाद उनके शरीरमें जितने बन्धन लगे हुए थे सबोंको उन्होंने बातकी बातमें तोड़ डाला। नागोंने इनको अलौकिक शक्ति देख वासुकिके पास यह खबर भेजवा दी। पीछे वासुकिने आ कर भीमसेनके दर्शन किये। इस समय कुन्तीके पिताके मातामह आर्यक नामक एक नागराज थे। इन्होंने दौहित्रके दौहित्र भीमको पहचान कर उनका आलिङ्गन किया। इस पर वासुकि बहुत प्रसन्न हुए और भीमको धनरत्नादि देना चाहा। पर आर्यकने कहा, 'जब आप प्रसन्न हैं, तो धनको इसे कोई जरूरत नहीं। बल्कि ऐसा वर दीजिए जिससे यह बहुत बलवान हो जावे। इस कुण्डमें सहस्र हाथियोंका बल है, अतः यह बालक जहाँ तक इसका जल पी सके वहाँ तक पीनेकी आज्ञा दीजिये।' इस पर वासुकि राजी हो गये। भीम पूर्वकी ओर मुँह कर एक निश्वाससे उस कुण्ड का सब रस पान कर गये। रस पी कर वे आठ दिन तक सोए रहे।

बाद भुजङ्गोंने भीमसेनसे कहा, 'तुमने नागदत्त जो वीर्यकर रसपान किया है, उससे तुम्हारे शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल होगा।' भीमका नागबल नाम पड़नेका यही कारण है। (भारत १।१२८ १२८ अ०) (त्रि०) २ हस्तितुल्य बलयुक्त, जिसे हाथियोंके समान बल हो।

नागबला (सं० स्त्री०) नागस्येव बलं यस्याः। बलाभेद, गुलसकरी, गंगेरन। (Sid alba) पर्याय—अतिबला, महाबला, गाङ्गेरुकी, झषा, ह्रस्वगवेधुका, गोरक्षतण्डुला, भद्रोदनी, खरगन्धा, चतुःपला, महोदया, महापत्रा, महाशाखा, महाफला, विश्वदेवा, अनिष्टा, देवदन्ता, महागन्धा, घण्टा। गुण—कषाय, उष्ण, गुरु, ग्राही, वृष्य, स्निग्ध, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, उदर, कण्डू, कुष्ठ, वात, व्रण, क्षत, चर्मरोग और पित्तनाशक, आयुर्वृद्धिकर, क्षीण और क्षयरोगमें हितकर है।

नागबलाघृत (सं० क्ली०) चक्रदत्तोक्त पक्वघृतभेद।

नागबलातैल (सं० क्ली०) १ तैलविशेष, एक प्रकारका तेल जो वातरक्तमें काम आता है। २ तिलतैल, तिलका तेल।

नागबुद्ध (सं० पु०) एक बौद्धधर्म-प्रचारक। इनका दूसरा नाम नागबोध है।

नागबुद्धि (सं० पु०) एक वैद्यशास्त्रके प्रणेता। इनका दूसरा नाम नागबोधि है।

नागबेल (हिं० स्त्री०) १ पानकी बेल। २ कोई सर्पाकार बेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय। ३ घोड़ेकी आड़ी तिरछी चाल।

२ मैथिल ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी।

३ गुजराती बनियोंकी एक श्रेणी।

नागर—१ उत्तर बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह पूर्णियाके दिनाजपुर जिलेमें प्रवेश कर प्रायः ८० मील दक्षिणकी ओर जा करके महानन्दामें मिली है। वर्षाकालमें बोझसे लदी हुई बड़ी बड़ी नावें इसमें जाती आती हैं। उत्तरांशमें इस नदीका गर्भ प्रस्तरमय है, किन्तु दक्षिणांशमें बालुकामय। इसके किनारेकी पार्श्वस्थ जमीन आबाद नहीं होती।

२ उत्तर बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह बगुड़ा जिलेके उत्तरसे निकल कर राजशाही जिलेमें प्रवेश करती है। पीछे यहांसे २० मील जा कर गुड़ नामक आत्रेयी-प्रमुखाग्रमें मिल गई है।

३ जब्बलपुर और मण्डला जिलेके मध्य विस्तृत गिरिमाला। नर्मदाकी उपत्यका इसके नीचे अवस्थित है।

नागर—मन्नाव परगने और भागलपुरवासी एक श्रेणीके कृषिजीवी। ये लोग पांच शाखाओंमें विभक्त हैं—वीसौत्, पुस्नेगृप, नागर गो, दशोतिया और मरनागर। इन सबोंका केवल एक गोत्र काश्यप है। प्रथम दो शाखा छोड़ कर एक दूसरेमें आदान प्रदान हुआ करता है। बहुविवाह उतना प्रचलित नहीं है। पर हां, प्रथमा स्त्रीके वन्ध्या होने पर अन्य स्त्री ग्रहण की जा सकती है। दूसरे दूसरे नीच हिन्दुओंके जैसा इनके विवाहादि होते हैं। सिन्दूरदानही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विधवा सगाई कर सकती है।

इनके पुरोहित ब्राह्मण होते हैं। समाजमें ये बहुत हीन समझे जाते हैं, पर दुसाधकी अपेक्षा ये लोग कुछ श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मण अथवा जलाचरणीय किसी दूसरी जातिके लोग इनके हाथका जल नहीं पीते और न किसी काममें ही लाते हैं। इनमेंसे बहुत कुछ ऐसे हैं जिनको अपनी अपनी जमी है। अधिकांश मजदूरी करके अपना गुजारा करते हैं। सारे बङ्गालमें प्रायः चालीस हजार नागरोंका वास है।

नागर—राजपूतानेके जयपुरके अधीन उनियारा राज्यके अन्तर्गत ध्वंसावशिष्ट एक प्राचीन नगर। यह उनियारासे ७२ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

प्रवाद है, कि मान्धाताके पुत्र मुचुकुन्दने यह नगर बसाया है। प्रत्नतत्त्वान्वेषी कार्लाइल साहब यहांसे प्रायः ६००० प्राचीन मुद्राएं संग्रह कर गये हैं, उनमें प्रायः ४० प्राचीन राजाओंके नाम लिखे हैं। जो सब मुद्राएं बहुत प्राचीन कालकी हैं वे छेनीसे गढ़ी हुई हैं और उनके बादकी प्राचीन मुद्राओं पर मोहरछाप अङ्कित हैं। इनमेंसे किसी किसी मुद्राके ऊपर 'जय मालवानां' ऐसा लिखा हुआ है। इनके सिवा चष्टनराज नहपानकी मुद्रा भी पाई गई है। पुराविदोंका अनुमान है, कि यह नगरी ईसा जन्मसे बहुत पहले स्थापित हुई थी। बाद किसी नैसर्गिक आग्नेय उत्पातसे यह ८वीं या ९वीं शताब्दीमें विध्वस्त हो कर भूगर्भशायी हो गई है। अभी जहां कर्कोटगिरिमाला विस्तृत है वहांसे प्रायः ३।४ वर्गमील भूभागमें उक्त प्राचीन नगरी अवस्थित थी। कर्कोटगिरिके पास बसे होनेके कारण कोई कोई इसे कर्कोटनगर भी कहते थे।

प्रवाद है, कि यहां कर्कोट नागवंशीय पराक्रान्त नागराजगण बहुत काल तक राज्य कर गए हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि वे शक थे, क्योंकि यहांसे जितनी मुद्राएं पाई गई हैं, उनमें मोविगर, मोविपत्र और मोविरक्ष अङ्कित हैं।

वर्त्तमान शहर बहुत दिनों का नहीं है। कोई कोई कहते हैं कि प्राचीन नगरकी पश्चिममें इसीका उपकरण ले कर वर्त्तमान शहर बनाया गया है।

वर्त्तमान शहरमें कई एक प्राचीन मन्दिर हैं। यहांसे जो प्राचीनतम शिलालिपि आविष्कृत हुई है, उसमें १०८० सम्वत् अङ्कित है। प्राचीन नगरकी ओर भी कई मन्दिरोंकी दीवार देखनेमें आती हैं। यहांका मुचुकुन्द मन्दिर स्थानीय लोगोंके निकट बहुत पवित्र माना जाता है। यहांसे १६२० सम्वत्‌में उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है।

करीब ७८ वर्ष हुए मीणाके हमलेसे वर्त्तमान शहर प्रायः जनशून्य हो गया है। अभी शहरकी अवस्था और आयव्यय बहुत शोचनीय है। (विस्तृत विवरण Cunningham's Archaeological Survey Reports, Vol. VI p 162 195 देखो।)

नागर—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सं० १६४२में हुआ था। इनके बनाए हुए कुछ कवित्त हजारामें है। इनकी कविता अच्छी होती थी; उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"आधी रात चान्दनी छाय रही।
अति सुकुमारी लड़ेती प्यारी प्रीतम उर लपटाय रही॥
मनसों मन नैनसों नैना तनसों तन उरझाय रही।
नागरिया नागर दोउ राजत लाजत मृदु मुसकाय रही॥"

नागरक (सं० त्रि०) नगरे भवः कुत्सितो प्रवीणो वा वुञ्। १ चौर, चोर। २ शिल्पी, कारीगर। नगर शब्दका अर्थ जहां कुत्सित और प्रवीण होता है वहां वुञ् प्रत्यय लगता है। ३ रतिबन्धविशेष। ४ नागरशब्दार्थ।

नागरकोइल—त्रिवाङ्कुड़राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ८° १२´ उ० और देशा० ७७° २८´ ४४" पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान त्रिवाङ्कुड़की प्राचीन राजधानी और वर्त्तमान सदर कोटानगरका उपकण्ठ माना जाता है। यहां विद्यालय और मुद्रायन्त्रालय है। त्रिवाङ्कुड़में केवल इसी स्थानसे संवादपत्र प्रकाशित होता है। जनसंख्या प्रायः १११८७ है, जिसमें हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है।

नागरकोमति—तेलङ्गकी कोमनिजातिकी एक श्रेणी। कोमति देखो।

नागरक्त (सं० क्ली०) नागकृतं रक्तम्। १ सिन्दूर। २ सर्प या हाथीका रक्त।

नागरखण्ड (सं० क्ली०) नागरं नाम खण्डम्। स्कन्दपुराणके अन्तर्गत स्वनामख्यात खण्डभेद। इस नगरखण्डके प्रतिपाद्य विषय सभी नारदीयपुराणोंमें इस प्रकार लिखे हैं—

"अतःपरं नागराख्यः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते॥" (नारदपु०)

पहले इसमें लिङ्गोत्पत्ति है, पीछे हरिश्चन्द्रोपाख्यान, विश्वामित्रमाहात्म्य, त्रिशङ्कुका स्वर्गगमन, तारकेश्वरका माहात्म्य, वृत्रासुरवध, नागबिल, शङ्खतीर्थ, अचलेश्वरवर्णन, चमत्कारपुरवृत्तान्त, गयशीर्ष, बालशाख्य, बालमण्ड, मृगाह्वय, विष्णुपद, गोकर्ण, युगरूपसम्प्राप्ति, सिद्धेश्वरवर्णन, नागस, सप्तार्षेय विवरण, अगस्त्यविवरण, भ्रूणगर्त्त, मलेश, शार्मिष्ठ, सोमनाथ, जमदग्निवधाख्यान, निःक्षत्रियकथन, रामह्रद, नागपुर, जललिङ्ग, यज्ञभूमि, मुण्डीरादि तीन काकवृत्तान्त, मतोपविनय, बालखिल्य-विवरण, गरुडीशाप, सप्तविंग सोमप्रासाद, अम्बावृद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्मकुण्डक, गोमुख, लोहयष्ट्याख्य, अजापालेश्वरी, शानैश्चर, राजवापी, रामेश, कुशेशाख्य और लवेशाख्य आदि लिङ्गविवरण, अष्टषष्टि समाख्यान, दमयन्तीका स्त्रीजातक, रेवती, भट्टिकातीर्थोत्पत्ति, क्षेमङ्करी, केदार, शुक्लतीर्थ, मुखारकतीर्थ, सत्यसन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पलाकथा, जटेश्वर याज्ञवल्क्य, गौर्य, गाणेश, वास्तुपदाख्यान, अजागृहकथा, सौभाग्यअन्धुक, शूलेश और धर्मराजकथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान, गाणपत्यत्रय, जाबालिचरित, मकरेशकथा, कालेश्वर्य्यन्धकाख्यान, अप्सरःकुण्ड, पुष्पादित्य, रोहिताश्व, नागरोत्पत्तिकीर्त्तन, भृगुचरित, विश्वामित्रकथा, सारस्वत, पिप्पलाद और कंसारीशवर्णन, ब्रह्माके यज्ञचरित, सावित्री-आख्यान, रैवत, भर्तृयज्ञाख्य, प्रधानतीर्थदर्शन, कौरव, हाटकेश्वर, प्रभासक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, धर्मारण्य आदिका विवरण, वाराणसी, द्वारका, अवन्तीवर्णन, वृन्दावन, खाण्डव और द्वैतवनवर्णन, कल्प, शाल और नन्द ये तीन ग्राम, असि, शुक्ल और पिटसंज्ञ ये तीन तीर्थ, श्री, अर्बुद और रैवत ये तीन पर्वत, गङ्गा, नर्मदा और सरस्वती इन तीन नदियोंका विवरण, शङ्खतीर्थ, बालमण्डन, हाटकेश, क्षेत्रफलप्रद, विवरण, साम्बादित्य, श्राद्धकल्प, यौधिष्ठिर और अन्धकविवरण, जलाशयोत्कर्ष, चातुर्मास्य, अशून्यशयन व्रत, मङ्कलेश, शिवरात्रि, तुलापुरुष, पृथ्वीदान, वामकेश, कपालमोचनेश्वर, पापपिण्ड, सप्तलिङ्ग और युगमानादि कीर्त्तन, दानमाहात्म्यकथन और द्वादशादित्यकीर्त्तन। नागर ब्राह्मणोंका विवरण इसमें विस्ताररूपसे लिखा गया है, इसीसे इसका नाम नागरखण्ड पड़ा है।

नागरघन (सं० पु०) नागर एव घनः मुस्ता। नागर मुस्ता, नागरमोथा।

नागरङ्ग (सं० पु०) नागस्य नागसम्भूतस्य सिन्दूरस्येव रङ्गोयस्य। वृक्षविशेष, नारंगीका पेड़। (Citrus Aurantium) पर्याय—नारङ्ग, नार्यङ्ग, नागर, ऐरावत, नागरक, वक्त्राधिवासो, सुरङ्ग, त्वक्गन्ध, नारङ्गी, नारङ्गक, नादेया, गोरस। इसमें मोठे, सुगन्धित और रसीले फल लगते

नागराजपल्ली—कर्णा जिलेके नरसरवापेटसे ८ कोस दक्षिण-में अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां नाग, विष्णु और हनुमान्का मन्दिर है। उन सब मन्दिरोंमें उत्कीर्ण प्राचीन कालकी शिलालिपियां भी देखी जाती हैं।

नागरादिक्काथ (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, खसखसकी जड़, बेलका छिलका, मोथा, धनिया, मोचरस और वाला इनका समान समान भाग ले कर काढ़ा बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे सभी प्रकारका ज्वर और दारुण अतीसार नष्ट होता है।

नागराद्यचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, अतीस, मोथा, धवका फूल, रसाञ्जन, इन्द्रजौ, अकवन, बेलसोंठ, कुटकी इनका बराबर बराबर भाग चूर्ण करते हैं। इसका अनुपान मधु और चावलका जल है। ६ वा ८ गुण जलमें चावलको रातमें भिगो रखना चाहिये। पीछे उसी जलके साथ सेवन करनेसे रक्तयुक्त पैत्तिक-ग्रहणीरोग जाता रहता है।

नागराद्यमोदक (सं० पु०) मोदक औषधभेद।

नागराह्व (सं० क्ली०) नागरेति आह्वा यस्य। शुण्ठी, सोंठ।

नागरिक (सं० त्रि०) १ नगर सम्बन्धी, नगरका। २ नगरमें रहनेवाला, शहराती। ३ चतुर, सभ्य। (पु०) नगर-निवासी, शहरका रहनेवाला आदमी।

नागरी (सं० स्त्री०) नगरे भवा, नागर अण्-ङीप्। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर। २ विदग्धनारी, चतुर स्त्री, प्रवीण स्त्री। ३ नागरपत्नी, नागर ब्राह्मणकी स्त्री। ४ अक्षर-भेद, भारतवर्षकी वह प्राचीन लिपि जिसमें संस्कृत और हिन्दी लिखी जाती है। देवनागरी देखो। ५ पत्थर-की मोटाईकी एक बड़ी माप। ६ पत्थरकी बहुत मोटी पटिया, बड़ा भोट। (त्रि०) ७ नगरभव, जो शहरमें उत्पन्न हो।

नागरी—१ उत्तर आर्काट जिलेके मध्यवर्ती एक गिरि-माला। यह गिरिमाला पश्चिमघाट पर्वतके दक्षिण-पूर्वमें फैली हुई है। यहां पीले, सफेद आदि नाना वर्णोंके पत्थर पाये जाते हैं। भूतत्त्वविदोंने स्थिर किया है, कि इसकी गठन उपसमाधा अन्तरीपके पर्वतकी तरह है।

२ उक्त गिरिमालाका प्रधान शृङ्ग। यह अक्षा० १३° २२' ५३" उ० और देशा० ७९° ३८' २२" पू०के मध्य अवस्थित है। यह समुद्रपृष्ठसे २८२४ फुट ऊंचा है। समुद्रकूलसे ५० मील दूरमें होनेके कारण जब आकाशमें बादल नहीं रहता, तब वहांसे यह साफ साफ देखनेमें आता है। इसके नीचे नागरी ग्राम अवस्थित है। उसके पास ही मन्द्राज रेलवेकी नागरी नामक एक स्टेशन है। उक्त ग्राममें धानकी फसल अच्छी लगती है।

३ राजपूतानेके चित्तौर नगरसे ५ कोस उत्तरमें अवस्थित एक क्षुद्र नगर और अत्यन्त प्राचीन शहरका ध्वंसावशेष। प्रवाद है, कि राजा हरिचांदने यह नगर बसाया था। इसका प्राचीन नाम है ताम्रवती नगरी। यहांसे अशोकके समयकी ब्राह्मी अक्षरमें उत्कीर्ण अनेक मुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। इसके सिवा यहां ढाई हजार वर्षकी प्राचीन हिन्दुओंकी छेनीसे काटी हुई मुद्राएं और बौद्धस्तूपके भग्नावशेष पाये जाते हैं। कितने प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष और भास्करकर्म उक्त नगरका परिचय देते हैं। जब यह स्थान गहलौतोंके हाथ आया, तब यहांकी जितनी प्राचीन देखने योग्य वस्तुएं थीं, सभी चित्तौर लाई गईं। (Cunningham's Archæological Survey Reports, Vol VI. p. 196-226.)

नागरीकन्या (सं० क्ली०) बन्ध्या कर्कोटी, वह ककड़ीकी लता जो फलती फुलती कुछ भी न हो।

नागरीट (सं० पु०) नागरीमिटति इट गतौ क। १ लम्पट, व्यभिचारी। २ जार, दोगला। ३ नागरीकृत मङ्गलध्वनि।

नागरीदास—एक हिन्दी-कवि। आप वृन्दावनके निवासी तथा स्वामी पीताम्बरदासजीके शिष्य थे। आपने सम्वत् १८२०में स्वामीजीके पदनकी टीका रची है। इसमें स्वामी हरिदास, बिहारिनिदास, विट्ठलविपुल, सरसदास, नरहरिदास तथा स्वयं आपके पदोंकी टीका विस्तृतरूपसे की गई है। यह फूलस कैप सांचीके ३२४ पृष्ठोंमें है। इनकी कविता-गरिमा साधारण श्रेणीकी कही जा सकती है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"माई इन आंखियन लगन लगाई।
पैले ही जाय आप ही उरझी फिर मोको उरझाई॥
बिन देखे मुखकमल कहोनो मोपै रहो न जाई।
नागरीदास दई बिन पावक कैसे रहत छुपाई॥"

नागरङ्ग (सं० पु०) नागं रङ्गति शाङ्गर्यं न प्राप्नोतीति रङ्ग गती बाहु० न प्रत्ययेन साधुः। नारङ्ग, नारङ्गी।

नागरक्तमसम् (सं० क्ली०) हरिताल।

नागरेणु (सं० पु०) नागस्य सीसकस्य रेणुः। सीसक भस्म, सिन्दूर।

नागरिक (सं० त्रि०) नगरे भव नगरेशाय वा नगर ठक्। नगर सम्बन्धी, नगरका।

नागरोत्था (सं० स्त्री०) नागरादुत्तिष्ठति उद्-स्था क। नागरमुस्ता, नागरमोथा।

नागर्य (सं० क्ली०) नागरस्य भाव ष्यञ्। १ बुद्धिमानी, चतुराई। २ नागरिकता, शहरातीपन।

नागल (हिं० पु०) १ हल। २ जूएकी रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं।

नागलक्षण (सं० क्ली०) नागानां सर्पाणां लक्षण। सर्पोंके भेदादि ज्ञापक चिह्नभेद।

नागलक्षणका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—नाग उसके शरीरादि, नागादि, दशस्थान मर्म, सूतक और दष्ट चेष्टा ये सब नागोंके प्रधान लक्षण हैं। शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोट, पद्म, महाम्बुज, शङ्खपाल और कुलिक ये आठ श्रेष्ठ नाग हैं। इनमेंसे प्रत्येक दोके क्रमशः हजार, आठ सौ पांच सौ और १० मस्तक हैं तथा प्रत्येक दो दो करके यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजाति है। इनके पांच सौ वंश हैं और पीछे उनसे असंख्य हो गये हैं। फणी, मण्डली और राजिल ये क्रमशः वात, पित्त और कफात्मक हैं। इनमेंसे चतुष्क वातजात दोषमिश्र नागगण दर्वीकर नामसे प्रसिद्ध हैं।

नागोंके चक्र, लाङ्गल, छत्र और स्वस्तिक चिह्न होते हैं। गोनस नागगण दीर्घ और मन्दगामी होते तथा नाना प्रकारके मण्डलाकारमें रहते हैं। राजिल नागगण स्निग्ध, ऊर्ध्व और वक्रभावसे नाना रङ्गोंमें चित्रित होते हैं। व्यन्तर नागगण मिश्र चिह्नविशिष्ट होते हैं तथा ये भू, जल, अग्नि और वायुके भेदसे चार प्रकारके माने गये हैं। इनके फिर २६ भेद हैं। गोनसगण १६ प्रकारके, राजिल १३ प्रकारके और व्यन्तरगण २१ प्रकारके हैं। जो सब सर्प ऋतुकालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें व्यन्तर कहते हैं।

नागिनियोंके आषाढ़ादि तीन मासोंमें गर्भ रहता है। चार मास तक गर्भ धारण करके वे २४० डिम्ब प्रसव करती हैं उनमेंसे वे पु और नपुं सब बच्चोंको निगल जाती हैं, केवल नागकन्या जीवित रहती है। कच्च-सर्पोंके ७ दिनमें आंख फूटती है। एक मासके बाद हो वे बाहर निकलने लगते हैं। १२ दिनमें उन्हें ज्ञान होता है, सूर्यके दर्शन करनेसे ही उनके दांत निकलते हैं। इनमेंसे किसीके १२ दिनमें और किसीके २१ दिनमें चार बड़े दांत होते हैं। कराली, मकरी कालरात्री और यमदूतिका नामक सर्पोंके दांतमें विष होता है। ये सब बाईं और दाहिनी तरफ हो कर चलते हैं। ६ मासके बाद वे खुल निकलते हैं। नागकी परमायु १२० वर्ष है। दिन और रातको यथाक्रम सूर्यादि ग्रहाधिपति होते हैं। इनमेंसे कुछ तो प्रतिवारके और सभी कुलिक सन्ध्या समयके अधिपति होते हैं। (अग्निपु० १०३ अ०)

पूर्वोक्त नागलक्षण—दंशन और उसकी चिकित्सादिका विस्तृत विवरण अग्निपुराणके १०४, १०५, १०६, १०७, अध्यायमें लिखा है,—

जितने नाग हैं, वे सभी अपनी प्रकारके हैं। उनमेंसे दर्वीकर २६ प्रकारके, मण्डली २२, राजिमन्त १०, दैवरथ १ और निर्विष १२ प्रकारके हैं। वैकरञ्ज जातिसे सात प्रकारकी चित्राकी उत्पत्ति हुई है। ये मण्डली और राजिमन्त दोनों गुणविशिष्ट हैं।

जिन सब सर्पोंके मस्तक पर रथाङ्ग, लाङ्गल, छत्र, स्वस्तिक या अङ्कुश आदि चिह्न होते हैं, उन्हें दर्वीकर कहते हैं। ये फणविशिष्ट और शीघ्रगामी होते हैं। जो विविध प्रकारके मण्डलाकारोंमें चित्रित स्थूल, मन्दगामी और दीप्तसूर्यके समान आभाविशिष्ट होते हैं, उन्हें मण्डली कहते हैं। जिन सब सर्पोंके शरीरमें चमक दमक रहती तथा जिनके ऊपर नीचे तमाम भिन्न भिन्न वर्णोंसे चित्रित रहते हैं, वे राजिमन्त कहलाते हैं। जिनके शरीरसे अच्छी गन्ध निकलती है तथा जो सोनेके समान चमकते हैं वे ब्राह्मण जातिके; जो स्निग्धवर्णविशिष्ट और जल्दी कुपित हो जाते हैं, वे क्षत्रिय जातिके, जिनका शरीर धूम्रवर्ण, लोहित, धूम्र वा कबूतरके जैसा तथा वज्रकी तरह मजबूत होता है, वे वैश्य

जातिके और जो महिष, हस्ती अथवा अन्य किसी प्रकार-के वर्ण विशिष्ट होते तथा जिनकी केंचुल बहुत कड़ी होती, वे शूद्रजातिके माने जाते हैं।

दर्वीकरके काटनेसे वायु, मण्डलीके काटनेसे पित्त और राजिमन्तके काटनेसे श्लेष्म कुपित हो जाता है। जो सब नाग असवर्णके समागमसे उत्पन्न होते हैं, उनके विषसे दो दोष कुपित हो जाते हैं। उन दोषोंके लक्षणका विचार कर नागोंके मातापिताकी जाति जानी जाती है। रातके शेष भागमें चित्राजाति और अवशिष्ट भागमें मण्डलीजाति तथा दिवाभागमें दर्वीकर जाति इधर उधर विचरण करती है। दर्वीकरके तरुण, मण्डलीके वृद्ध और राजिमन्तके मध्यवयस्क होने पर भी यदि वे काटें, तो मृत्यु अवश्य होती है।

यदि सर्पादि नकुल द्वारा आकुलित हों अथवा जल वा आघातसे अभिहत हों तथा कृश, बालक और वृद्धसे डरते हों, तो जानना चाहिये कि उन सर्पोंमें बहुत कम विष है।

जिस प्रकार वीर्य समूचे शरीरमें फैला हुआ है, उसी प्रकार विष भी सर्पोंके शरीरमें व्याप्त है। जब कभी वे गुस्सा करते हैं, तब उनके दाँतोंसे विष झड़ने लगता है। जब तक वे अपना फन उठा कर नहीं काटते हैं, तब तक उनका विष भीतरसे नहीं निकलता।

सुश्रुतमें कल्पस्थानके ३, ४ और ५ अध्यायमें नाग-लक्षण, दंशन और उसकी चिकित्सा आदिका विषय विस्ताररूपसे वर्णित है। सर्प देखो।

नागलता (सं० स्त्री०) नागः सर्पस्तद्वत् लता। नाग दीर्घा लता, पानकी लता।

नागलपल्ली—एक प्राचीन ग्राम। यह इल्लोरासे २१ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके उत्तर पूर्व अनेक निम्न गिरिश्रेणी नजर आती हैं। इन सब पहाड़ोंकी पश्चिम बगलमें एक उपत्यका है, जहां बहुतसे गर्त्त देखनेमें आते हैं। उन सब गर्त्तोंमें देवमन्दिर प्रतिष्ठित हैं।

नागलपुर—मन्द्राजके चेङ्गलपट्ट नामक जिलेकी मध्यवर्त्ती एक क्षुद्र गिरिश्रेणी। यह अक्षा० १३° २४´ से २१° २०´ ४०´´ उ० और देशा० ७९° ४८´ से ७९° ५१´ ५०´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह उत्तरमें सातियावाद-गिरि और पश्चिममें नागरी-गिरिपुञ्जके साथ संयुक्त है। यह पहाड़ साधारणतः १८०० फुट ऊंचा है और इसकी सबसे बड़ी चोटी २५०० फुटकी है। इस पहाड़के ऊपर तीन गिरिपथ हैं।

नागलुति—नन्दिकटकुबसे ५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां दो मन्दिर भग्नावस्थामें पड़े हैं उनमेंसे प्रज्ञिना नामक एक मन्दिरमें १५४० ई०की खोदी हुई शिलालिपि है। उस शिलालिपिमें विजय नगरके राजा सदाशिवके दानका विषय लिखा है।

नागलोक (सं० पु०) नागानां लोक ६-तत्। नागाधिष्ठित लोक, पाताल।

पाताललोकमें नागगण रहते हैं, ब्रह्माने उन्हें यहां रहने कहा था। एक एक पाताल दश हजार योजन विस्तृत है। पाताल सात हैं, अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, ६ठ सुतल और सातवां पाताल। ये सात पाताल अच्छी अच्छी अट्टालिकाओंसे सुशोभित हैं। यहांकी भूमि सफेद, काली, लाल, पीली, शर्करा, शैली और काञ्चनी होती है। यहां दानव, दैत्य, यक्ष और महानाग सभी प्रकारकी जातियोंका वास है। नारदने एक बार नागोंकी आवासभूमिका परिभ्रमण करके स्वर्गलोकमें जा कर कहा था, कि पाताल स्वर्गलोकसे भी रमणीय है। (विष्णुपु० २।५ अ०)

नागवंश (सं० पु०) १ नागोंकी कुल परम्परा। २ शक जातिकी एक शाखा। पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार आर्य जातिके भारतवर्ष पर अपनी गोटी जमानेके पहले इस देशमें नागवंशके राजा शासन करते थे। इस वंशने भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंका तथा सिंहलका शासन किया था। इसके विषयमें अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। ब्रह्माण्डादि पुराणोंमें लिखा है, कि नाग-वंशीय सात राजा मथुरापुरीका भोग करेंगे, पीछे गुप्त-राजगण राजा होंगे। नवनागकी जितनी मुद्राएं पाई गई हैं, उन पर वृहस्पतिनाग, देवनाग, गणपतिनाग आदि नाम खादे हुए हैं। इससे साफ साफ मालूम होता है, कि नागवंशीय राजगण पहली और दूसरी शताब्दीमें राज्य करते थे। (Coins of the Nine Nagas, in Asiatic Society of Bengal, Pt. 1.

राजनिर्घण्टमें इसके तीन भेद बतलाये गये हैं, अम्लवाटी, श्रीवाटी और सप्तमी।

अम्लवाटीका गुण—कटु, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, मुखशोधक, विदाह, पित्त और अन्वकोपन, विष्टम्भकारक तथा वातनाशक।

श्रीवाटीका गुण—मधुर, तीक्ष्ण और वात, पित्त तथा कफनाशक, सरस, रुचिकर और शीतल।

सप्तमीका गुण—मधुर, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, पाचन, गुल्म, उदराध्माननाशक, रुचिकर और दीपन।

गुहागर नामक स्थानमें इसे समशिरा कहते हैं। इसका गुण—चूर्णके साथ रुचिकारक, सुगन्धित, तीक्ष्ण, मधुर, अति क्षय, सन्दीपन, पुंस्त्वकर, बलकारक, विरेचन मुखसुगन्धिकारक, स्त्रियोंके लिये सौभाग्य-वर्द्धनकर, मदकारक, गुल्म और आध्माननाशक है।

आन्ध्रदेशमें यह पुष्कलिका नामसे प्रसिद्ध है। इसका गुण—कषाय, उष्ण, कटु, पित्त और वातनाशक है। इस देशमें दीर्घफला नामक एक और प्रकारकी नागवल्ली है जो द्वेषणीय, कटु, तीक्ष्ण, क्षय, कफ और वातनाशक, रुचिकर, दीपन और पाचन मानी जाती है।

विशेष विवरण ताम्बूल शब्दमें देखो।

नागवार (फा० वि०) १ असह्य, जो सहा न जाय। २ अप्रिय, जो अच्छा न लगे।

नागवारिक (सं० पु०) नागस्य गजस्य वा सर्पस्य वारो वारणं प्रयोजनमस्य ठक्। १ हस्तिपालक, माहुत। २ गरुड़। ३ मयूर, मोर। ४ राजकुञ्जर। ५ यूथस्थित गजराज।

नागवास (सं० पु०) नागानां वासः वसस्थानं। १ वह स्थान जहां नागगण रहते हों। २ नेपालकी उपत्यकाके एक ह्रदका नाम।

नागविथा (सं० स्त्री०) १ नागछत्र। २ नागदन्ती।

नागविल (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नागवीट (सं० पु०) नाग इव व्येटति वि-इट-क। लम्पट, धूर्त्त।

नागवीथी (सं० स्त्री०) नागस्येव वीथी पन्थाः। १ शुक्रग्रहको चालमें वह मार्ग जो स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रोंमें हो। दक्षिण, उत्तर और मध्यम मार्गोंमेंसे प्रत्येकमें तीन तीन वीथी होती हैं। तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथी मानी गई है। इनमेंसे अश्विनी, कृत्तिका और याम्या नागवीथी है। २ कश्यप मुनिभेद, कश्यपकी एक लड़कीका नाम। ३ धर्मकी एक कन्या जिसकी उत्पत्ति यामिसे मानी जाती है।

नागवृक्ष (सं० पु०) नागाख्यो वृक्षः। नागकेशरवृक्ष, नागकेसरका पेड़।

नागहन्ता (सं० स्त्री०) वृश्चिकालोलुप, बरघंटा नामकी लता।

नागशत (सं० पु०) नागानां शतं यत्र। पर्वतभेद, एक पर्वतका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

नागशुण्डी (सं० स्त्री०) नागस्य शुण्डवत् आकृतिरस्यस्येति, अच ततो गौरादित्वात् ङीष्। १ डङ्गरीफल, एक प्रकारकी ककड़ी। २ हस्तिशुण्डि नामक क्षुप। ३ ताम्रवल्ली।

नागशुद्धि (सं० स्त्री०) नागानां शुद्धिः। नागोंकी शुद्धि। नया घर बनानेमें नागशुद्धिका विचार किया जाता है।

फलितज्योतिषके ग्रन्थोंमें लिखा है कि भादों, आसिन और कातिक इन तीन महीनोंमें नागोंका सिर पूरबकी ओर, अगहन, पूस और माघमें दक्षिणकी ओर; फागुन, चैत और बैशाखमें पश्चिमकी ओर तथा जेठ, असाढ़ और सावनमें उत्तरकी ओर रहता है। पहले पहल नींव डालते समय यदि नागोंके सिर पर आघात पड़े, तो घर बनवानेवालेकी मृत्यु, पीठ पर पड़े, तो स्त्री-पुत्रकी मृत्यु और यदि जंघा पर आघात पड़े, तो अर्थकी हानि होती है। पेट पर आघात पड़नेसे शुभ होता है। इसीसे नागशुद्धिका विचार कर नींव डालना उचित है।

नागश्रीवल्लभ (सं० पु०) सर्जकी निर्यास।

नागसत्व (सं० पु०) मेषशृङ्गी, मेढ़ासींगी।

नागसम्भव (सं० क्ली०) सम्भवत्यस्मात् सम्भवः नागवत् सम्भवो यस्य। सिन्दूर।

नागसम्भूत (सं० क्ली०) नागात् सीसकात् वासुक्यादितो वा सम्भूतं। १ सीसकसम्भव, सिन्दूर। २ मुक्ताफलभेद, एक प्रकारका मोती जिसके विषयमें प्रसिद्ध है कि यह वासुकि, तक्षक आदि नागोंके सिरमें होता है।

तक्षक और वासुकि-वंशके जितने पन्नग हैं, उनके

'हमने ऐसा योगी कभी कहीं पर आज तक नहीं देखा। ये लोग अपने धर्मका पालन तो करते नहीं, केवल इधर उधर वृथा चक्कर लगाते हैं। कहनेके तो ये लोग शिवभक्त और प्रधान गुरु हैं, पर इहभूमि इनके योगसाधनका स्थान है, माया भण्ड इनका देवता है। क्या कभी दत्तात्रेयने घर नष्ट किया था? क्या शुकदेव ने समस्त सैन्य ग्रहण की थी? क्या नारदमुनिने कभी दन्द्वकका व्यवहार किया था? क्या कभी व्यासदेवने तुरही नामक बाजा बजाया था? जो धनुर्द्धारी हैं, वे किस प्रकार यतिश्रेष्ठ हो सकते? जिनके पास लोभ है वे किस प्रकार साधु कहला सकते? क्या ही लज्जाका विषय! वे लोग स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं, घोड़े, ऊँट आदि संग्रह करते हैं, अनेक ग्राम अधिकार कर बैठे हैं और धनी कहलाते हैं। पासमें यदि दवात रहे, तो स्याहीसे वस्त्र अवश्य मैला होगा।' (रिपै नि ६८)

वैष्णवोंके साथ नागाओंका विवाद चिरप्रसिद्ध है। कुम्भमेलाके समय हरिद्वारमें गङ्गास्नान करनेके लिये दूर दूर देशोंसे असंख्य मनुष्य एकत्रित होते हैं। इस मेलेमें वैरागियोंके साथ इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करती थी जिसमें बहुतसे वैरागी मारे जाते थे।

पारसिक भाषामें लिखा हुआ दाबिस्तान नामक एक ग्रन्थ है जिसमें लिखा है, कि हरिद्वारमें वैरागियोंके साथ नागाओंकी लड़ाई अकसर हुआ करती है। इस लड़ाईमें वे सैकड़ों वैरागियोंके प्राण नाश करते हैं। बाद वे प्राणके भयसे अपनी मालाको तोड़ कर दोनों कानोंमें कुण्डल पहन लेते हैं। उक्त ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि जलाली और मदारी नामक दो मुसलमान सम्प्रदायोंके साथ संन्यासियोंकी जो लड़ाई होती है, उसमें हजारों मुसलमान मारे जाते हैं और उनके पुत्रगण शैवधर्म ग्रहण करते हैं। १७६० ई०की बात है, कि हरिद्वारमें शैव संन्यासियोंने अठारह हजार वैरागियोंके प्राण नाश किये थे।

नागा संन्यासियोंका ऐसा उग्रस्वभाव देख कर हिन्दू-राजगण उन्हें सेनापद पर नियुक्त करते थे। जयपुरमें आज भी नागासेना मौजूद है।

नागा लोग जिस विभूति-पुञ्जकी पूजा करते हैं, उसे गोला कहते हैं। इनके कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरञ्जनी और निर्वाणी ये ही दो मुख्य हैं। भिन्न भिन्न अखाड़ोंका गोला भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, जैसे निरञ्जनी अखाड़ेका गोला चक्राकार और निर्वाणीका चतुष्कोण। प्रायः जितने नागी देखे जाते हैं, वे इन्हीं दो अखाड़ोंके हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें कहीं कहीं पटन अखाड़ेके भी नागा विद्यमान हैं।

नागा—एक प्रकारकी स्वाधीन पार्वती जाति। आसामके पूर्व नागापर्वत और उसके पार्श्ववर्त्ती देश ही इनकी आवासभूमि है। कछाड़के उत्तरसे ले कर डिहिङ्ग नदी तक इस जातिके लोग देखनेमें आते हैं। इसका 'नागा' नाम क्यों पड़ा, इसके उत्तरमें कोई कोई कहते हैं 'नंगा' शब्दसे इसकी उत्पत्ति हुई है। फिर किसी किसी विद्वान्का मत है, कि 'नाग' अर्थात् सर्पसे यह असभ्यजाति नागा कहलाने लगी है। (अङ्गामीनागा देखो।)

नागाजातिके नाना सम्प्रदाय हैं जिनमेंसे पांच प्रकारके सम्प्रदाय अङ्गरेजाधिकृत स्थानोंमें पाये जाते हैं। उनके नाम ये है—अङ्गामी, रेङ्गमा, कछा, लोटा और सेमा। सभी नागा सम्प्रदाय उसी एक लोहित्य-जातिसे उत्पन्न हुए हैं और आदिम अवस्थामें इनके आचार-व्यवहार प्रायः एक-से थे। किन्तु अभी विभिन्न नागा सम्प्रदायोंकी भाषामें इतनी पृथकता हो गई है, कि एक दिनके दूरवर्त्ती स्थानमें जो नागा रहते, वे भी एक दूसरेकी बोली समझ नहीं सकते।

ये लोग देखनेमें उतने सुन्दर तो नहीं लगते, लेकिन खराब भी नहीं हैं। इनके शरीरका रंग ताम्रवर्ण, नाक चिपटी और गण्डदेश कुछ ऊंचा होता है। ये बहुत बलवान् और साहसी होते हैं। युद्धमें तथा शिकारमें ये लोग बड़े ही सिद्धहस्त हैं। इन लोगोंमें प्रधान दोष यह है, कि आपसमें हमेशा लड़ते झगड़ते रहते हैं। गुस्सेकी हालतमें ये स्त्री और बालककी भी जान लेनेमें बाज नहीं आते। जब कोई उनके साथ बुराई करता है, तब वे उसे कभी नहीं भूलते और मौका आने पर बदला लिये विना छोड़ते नहीं हैं।

ये लोग पहाड़ पर घर बना कर रहते हैं। घरके चारों ओर शत्रुका आक्रमण रोकनेके लिये दीवार खाई

नाम नागापहाड़ पड़ा है। यह जिला प्रायः वन, पर्वत और नदीसे परिपूर्ण है। जङ्गलसे दारचीनी आदि नाना प्रकारके सुगन्धित मसाले, मोम तथा रुई आदिको आमदनी होती है। जङ्गलमें हाथी, गैंडा, भैंस, बाघ, चीता और नाना प्रकारके हरिण पाये जाते हैं। यहांकी प्रधान नदियोंके नाम देय, धानेश्वरी और यमुना हैं। शासनकार्यकी सुविधाके लिए यह जिला उपविभागोंमें विभक्त है, यथा कोहीमा और मोकोकचुङ्ग। कोहिमामें एक डिपटी कमिश्नर और उनके एक सहकारी अङ्गरेज रहते हैं; कलकत्तेकी हाईकोर्टके साथ इस जिलेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। केवल खूनी मामला जिसमें अङ्गरेज अभियुक्त होते हैं हाईकोर्टमें पेश किया जाता है। जबसे यह जिला वृटिश गवर्नमेण्टके हाथ आया है, तब यहां विद्याकी खूब उन्नति हो रही है। स्कूलके अलावा यहां ३ अस्पताल भी हैं।

नागाभिभू (सं॰ पु॰) बुद्धका नामान्तर बुद्धदेवका एक नाम।

नागाराति (सं॰ पु॰) नागानां अराति शत्रुः। १ वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ा, बांझ खखसा।

नागार्जुन (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक बोधिसत्व। ये राजा था। इनके समयमें इस देशमें बौद्धधर्म खूब फैल गया था।

नागार्जुन—विदर्भनगरवासी एक ब्राह्मण। किसी किसीके मतसे ये सौ वर्ष पूर्व और किसी किसीके मतसे ईसासे १५०-२०० वर्ष पीछे हुए थे। इन्होंने आर्यजातिके निकट बौद्धधर्मके आध्यात्मिक वा निगूढ़ रहस्यकी विशेष रूपसे व्याख्या की। उनकी वक्तृता और सुन्दर तर्कशक्तिके प्रभावसे प्राचीन आर्य-जातिने साधारण बौद्धधर्मका परित्याग कर तत्त्वपूर्ण बौद्धधर्मका अवलम्बन किया। सात वर्ष तक ये बहुत तन मनसे इस धर्मका प्रचार करते रहे। अन्तमें भारतके प्रधान भूपति ब्राह्मणधर्मावलम्बी भोजभद्रको अपने धर्ममें लाये। तिब्बतमें लामा पुस्तकालयमें एक बहुत प्राचीन पुस्तक है, जिसमें भोजभद्र ईसासे ५६ वर्ष पहले हुए, ऐसा लिखा है।

जिस दिन भोजभद्रने स्वयं बौद्धधर्मका अवलम्बन किया था उस दिन उनकी सभामें दश हजार ब्राह्मण मौजूद थे। वे सब नागार्जुनकी सुन्दर धर्मव्याख्या और सारगर्भ धर्मतात्पर्य सुन कर विमोहित हो गये और उसी समय सिर मुड़वा कर बौद्धधर्ममें दाखिल हुए। नागार्जुनके पहले यद्यपि बौद्धधर्मके सारमर्मकी व्याख्या बहुतोंने आरम्भ कर दी थी, तो भी बौद्धधर्मको दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुनने ही दिया। इन्हींके द्वारा सभ्य और पठितसमाजमें बौद्धधर्मका जितना प्रचार हुआ उतना और किसीके द्वारा नहीं। इनके ग्रन्थका नाम माध्यमिकसूत्र है। इसके अलावा बौद्धधर्म-सम्बन्धी इन्होंने और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। माध्य-मिकसूत्रको इन्होंने दो भागोंमें विभक्त किया। एक भागका नाम है सम्वृति सत्य और दूसरेका परमार्थ-सत्य। सम्वृतिसत्यमें मायाका मूलतत्त्व और परमार्थसत्यमें समाधि वा चिन्ता द्वारा महात्मा किस प्रकार ज्ञान सकते हैं, यह लिखा है। महात्मा ज्ञान लेने पर माया दूर हो जाती है। माध्यमिक-दर्शनका सिद्धान्त यही है, कि साधारण नीतिधर्मके पालनसे ही प्राणी पुनर्जन्म-से रहित नहीं हो सकता। निर्वाण-प्राप्तिके लिए दान-शील, शान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणोंके द्वारा आत्माको पूर्णत्वको पहुंचाना चाहिए। ये कहते थे, कि विष्णु, शिव, काली, तारा इत्यादि देवी देवताओं-की उपासना सांसारिक उन्नतिके लिए करनी चाहिए। नागार्जुनने बौद्धधर्मको जो रूप दिया वह 'महायान' कहलाया और उसका प्रचार बहुत शीघ्र हुआ। धर्म-शास्त्रमें ये जैसे अद्वितीय असमानगामी थे, चिकित्सा-शास्त्रमें भी वैसे ही सिद्धहस्त थे।

१०वीं शताब्दीको गौड़ राज्यमें नयपाल नामक राजाकी सभामें चक्रपाणि नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी बनाई हुई चिकित्सासंग्रह नामक पुस्तकमें नागार्जुनकृत नागार्जुनाञ्जन और नागार्जुनयोग औषधका उल्लेख है। चक्रपाणिने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगरके स्तम्भके ऊपर नागार्जुनकृत औषधका व्यवस्था-समूह खोदा हुआ था। किंवदन्ती है, कि नागार्जुन इसी प्रकार कई जगह स्तम्भोंमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंकी अनेक व्यवस्थाएं लिख दिया करते थे। उनका

नागाह्वयम् (सं० क्ली०) नागकेसर।

नागाह्वा (सं० स्त्री०) नागं नागकेशरं आह्वयते स्पर्द्धते इति आ ह्वे-अच्-टाप्। १ लक्षणकन्द। २ नागवल्लीलता।

नागिन् (सं० पु०) नागोभूषणत्वेनास्त्यस्य इनि। सर्पभूषण शिव, महादेव।

नागिन् (हिं० स्त्री०) १ नागकी स्त्री, सांपकी मादा। ऐसा प्रसिद्ध है, कि नागिनमें बहुत विष होता है, इसीसे कुटिल और दुष्टा स्त्रीके लिये इस शब्दका प्रयोग करते हैं। २ बैल, घोड़े आदि चौपायोंकी पीठ पर रोओंको एक विशेष प्रकारकी भौंरी जो अशुभ मानी जाती है। ३ रोओंको लम्बी भौंरी जो पीठ या गरदन पर होती है। स्त्रियोंमें ऐसी भौंरीका होना कुलक्षण समझा जाता है।

नागिनी (सं० पु०) १ नागदन्ती क्षुप। २ लक्षणाकन्द।

नागी (सं० स्त्री०) नागस्य पत्नी ङीष्। १ नागपत्नी, सांपकी स्त्री। २ वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ा।

नागीगायत्री (सं० स्त्री०) २४ वर्णोंका एक वैदिक छन्द। इसके प्रथम दो चरणोंमें नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरणमें केवल छः वर्ण।

नागीय (सं० पु०) नागकेशर।

नागुला (सं० पु०) १ नेवला। २ नकुली नामक जड़ी।

नागेनहल्ली—एक स्थान जो बेल्लरी जिलेके रायदुर्ग से १८ मील पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है।

नागेन्द्र (सं० पु०) नाग इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात् उपमितसमास। १ ऐरावत। २ शेष, वासुकि आदि नाग ३ बड़ा हाथी। ४ बड़ा सर्प।

नागेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजाका नाम। नेपाल देखो।

नागेश (सं० पु०) नागानां ईशः ६-तत्। १ अनन्त, शेषनाग। २ प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण, नागेशभट्ट। (क्ली०) ३ शिवलिङ्गभेद, एक शिवलिङ्गका नाम। ४ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नागेशभट्ट—एक अद्वितीय वैयाकरण। इनके पिताका नाम शिवभट्ट और गुरुका नाम हरिदीक्षित था। शृङ्गवेरीराज इनके प्रतिपालक थे। इनके पौत्र मणिराम १८०४ ई०में विद्यमान थे। यों तो इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थ बनाए हैं लेकिन निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रधान हैं—

१ अलङ्कारसुधा (कुवलयानन्दटीका), २ अशौचनिर्णय, ३ अष्टाध्यायी पाठ (पाणिनीय), ४ आचारेन्दुशेखर, ५ इष्टकालनिर्णय, ६ कात्यायनीतन्त्र ७ काव्यप्रदीपोद्द्योत (काव्यप्रदीपकी टीका), ८ गुरुमर्मप्रकाश (रसगङ्गाधरटीका), ९ चण्डीटीका, १० चण्डीस्तोत्रप्रयोग-विधि, ११ तर्कभाषाकी टीका, १२ तात्पर्य-दीपिका, १३ तिङन्त संग्रह, १४ तिथीन्दुशेखर, १५ तीर्थेन्दुशेखर, १६ धातुपाठवृत्ति, १७ नैरर्णिवादार्थ, १८ पदार्थदीपिका (न्याय), १९ परिभाषेन्दुशेखर, २० पातञ्जलिसूत्रवृत्तियोग, २१ पातञ्जलिसूत्रवृत्तिभाष्यछाया-व्याख्या, २२ प्रभाकरचन्द (तत्त्वदीपिकाकी टीका), २३ प्रयोगशरणि (तन्त्र), २४ प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, २५ प्रायश्चित्तेन्दुशेखर-सारसंग्रह, २६ महाभाष्यप्रदीपोद्योत, २७ रसतरङ्गिणीटीका २८ रसमञ्जरीप्रकाश (रसमञ्जरीटीका), २९ रामायणटीका, ३० लक्षणरत्नमालिका (धर्मशास्त्र), ३१ विषमपदी (शब्दकौस्तुभ-टीका) ३२ वेदसूक्तभाष्य, ३३ वैयाकरणकारिका, ३४ वैयाकरणभूषण, ३५ वैयाकरण-सिद्धान्त-मञ्जूषा, ३६ व्याससूत्रेन्दुशेखर, ३७ शब्दरत्न, ३८ शब्दानन्तसागरसमुच्चय, ३९ शब्देन्दुशेखर, ४० संस्काररत्नमाला, ४१ लघुसांख्यसूत्रवृत्ति, ४२ सापिण्डीमञ्जरी, ४३ सापिण्ड्यदीपिका, ४४ स्फोटवाद और ४५ नागोजीभट्टीय व्याकरण।

नागेश्वर (सं० पु०) १ वृक्षविशेष, नागकेसर। २ शेषनाग। ३ ऐरावत।

नागेश्वररस (सं० पु०) औषधविशेष, वैद्यकमें एक प्रसिद्ध रसौषध। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गन्धक, सीसा, रांगा, मैनसिल, नौसादर, यवक्षार, सज्जी, सोहागा, लोहा, तांबा, अभ्रक इन सबको बराबर ले कर थूहरके दूधमें मलते हैं। फिर पीसे, अडूसे और दन्तीके क्वाथमें मल कर उरदकी दालके बराबर गोली बनाते हैं। इसका अनुपान पानका रस है। इसके सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, शोथ और आध्मानरोग प्रशमित होता है। (भैषज्यर० गुल्मरोगा०)

नागेसरी (हिं० वि०) नागकेसरके रंगका, पीला।

नागोजी (सं० पु०) दारुकवनस्थ शिवलिङ्गभेद।

लिया था। कुठारगढ़के बाहर एक स्थान लाखुरा नामसे प्रसिद्ध है। लाखुराका दूसरा नाम लचाहार भी है। प्रवाद है, कि यहांके राजाने इस स्थान पर एक लाख वृक्ष लगाये थे और एक लाख ब्राह्मण-भोजन कराये थे। इसीसे इसका नाम लाखुरा पड़ा है। गञ्जसे जो सड़क नाचना तक गई है, वह जङ्गलसे परिपूर्ण है।

नाचना ग्राममें दो मन्दिर हैं, एक पार्वतीका और दूसरा चतुर्मुख महादेवका। पार्वतीमन्दिरमें अभी कोई मूर्त्ति स्थापित नहीं है; किन्तु महादेवके मन्दिरमें एक प्रकाण्ड चतुर्मुख शिवलिङ्ग देखनेमें आता है यह लिङ्ग प्राय: ४ हाथ ऊंचा है और इसका मस्तक बहुत बड़ा है। इसके चारों मुख पर बहुत सुन्दर चार शिरस्त्राण हैं। उन शिरस्त्राणोंमें मनोरम कारुकार्य अब तक भी अक्षतभावसे वर्त्तमान हैं, इससे जाना जाता है कि इस प्रतिमूर्त्ति पर विद्वेषी मुसलमानोंकी आंखें नहीं पड़ी थी। उक्त दोनों मन्दिर निविड़ जङ्गलसे ढका हुआ है।

पार्वतीमन्दिरका निर्माण कौशल और कारुकार्य देख कर आश्चर्य होना पड़ता है। गुप्तराजाओंके समयमें मन्दिरादि और प्रस्तरखोदित मूर्त्तियां जिस ढंगसे बनाई जाती थीं, वे दोनों मन्दिर और दीवारकी तसवीरें भी ठीक उसी ढंगसे बनाई गई हैं। जिस द्वारसे मन्दिरमें प्रवेश होना पड़ता है, उसके ऊपर मकरपृष्ठ पर गङ्गाकी मूर्त्ति और कच्छपपृष्ठ पर यमुनाकी मूर्त्ति स्थापित है। यह अट्टालिका दो तलेकी है और चौकोन है, सामनेमें एक प्रवेशद्वार है। द्वितीय तलके बहिर्भाग और अन्तर्भाग दोनों ही साफ सुथरे हैं। प्रकोष्ठकी दीवारमें पहले दो छिद्र थे और उन्हीं छिद्रों हो कर सूर्यकी किरण भीतर जाती और मन्दिरको आलोकित करती थी। आलोकपथकी एक बगल मनुष्य मूर्त्ति और दूसरी बगल सिंहमूर्त्ति थी। लाखुरामें एक शिलालिपि पाई गई है। मालूम होता है, कि यह असंलग्न शिलालिपि अवश्य ही उक्त दो मन्दिरोंमेंसे एक की होगी। उस लिपिमें वाकाटकाधिपति महाराज पृथ्वीसेनके पादानुध्यात व्याघ्रदेवका नाम खुदा हुआ है।

व्याघ्रदेव जयनाथके पिता थे। जयनाथ १७४ और १७७ गुप्तसम्बत्में जीवित रहे। सुतरां १४० और १५० गुप्तसम्बत् में उनके पिताका होना साबित होता है। यह पार्वती-मन्दिर यद्यपि उतना प्राचीन नहीं हो सकता है तो भी उसके निर्माण-कौशल देख कर यह अवश्य प्रतीत होता है, कि वह गुप्तराजाओंके समयमें बनाया गया होगा।

चतुर्मुख महादेवके मन्दिरके साथ पार्वती मन्दिर-का कुछ भी सादृश्य नहीं है। केवल इसका एक दरवाजा पूर्वोक्त मन्दिरके दरवाजेके जैसा है और एक पूर्ववत् चौकोन अट्टालिका है। इसका शिखर बहुत ऊंचा है। मन्दिरके बाहरमें भी नाना प्रकारकी छवि हैं। एक स्थानमें चार सिंहमूर्त्ति भग्नावस्थामें भानुके ऊपर बैठी हुई है। यह मन्दिर ६ठी और ७वीं शताब्दी-के पहलेका नहीं है।

नाचना (हिं० क्रि०) १ चित्तकी उमङ्गसे उछलना, कूदना तथा इसी प्रकारकी और चेष्टा करना। २ भ्रमण करना, चक्कर मारना, घूमना। ३ इधरसे उधर फिरना, दौड़ना धूपना, स्थिर न रहना। ४ सङ्गीतके मेलमें तालस्वरके अनुसार हावभाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकारकी और चेष्टाएं करना। ५ क्रोधमें उद्विग्न और चञ्चल होना, क्रोधमें आ कर उछलना कूदना। ६ थर्राना, कांपना।

नाच-महल (हिं० पु०) नृत्यशाला, नाचघर।

नाचरंग (हिं० पु०) आमोद प्रमोद, जलसा।

नाचार (फा० वि०) १ असहाय, विवश, लाचार। २ व्यर्थ, तुच्छ।

नाचारी (फा० स्त्री०) लाचारी देखो।

नाचिकेत (सं० पु०) १ अग्नि। २ नचिकेता, उद्दालक ऋषिके एक पुत्रका नाम। ३ नाचिकेतोपाख्यान।

महाभारतमें यह उपाख्यान इस प्रकार लिखा है—

नचिकेता महाप्रभावशाली उद्दालकके पुत्र थे। एक समय उद्दालक नदीके किनारे कुश, पुष्प और फलादि भूल आये थे। घर आ कर उन्होंने अपने पुत्रसे वे सब वस्तु वहांसे लानेको कहा। जब नचिकेता नदीके किनारे पहुंचे, तब वे सब चीजें उन्हें न मिलीं और वे घरको लौटे। उद्दालक पुत्रका खाली हाथ देख बहुत बिगड़े और 'बहुत शीघ्र तुम्हें यमदर्शन हो' ऐसा अभिशाप दिया। उद्दालकके इतना कहते न कहते नचिकेताको

प्राणवायु उड़ गई और वे भूमि पर गिर पड़े। पुत्रको मरा देख उद्दालक बहुत विलाप करने लगे। क्रमशः दिन और रात बीत गई, नचिकेता उसी अवस्थामें पड़े रहे। पीछे प्रातःकाल होने पर वे अचिरात् पुनः जीवित हो उठ कर खड़े हो गये। इस समय वे बहुत दुर्बल हो गये थे और उनके शरीरसे दिव्यगन्ध निकलती थी। उद्दालकने बहुत प्रसन्न हो पुत्रसे कहा 'वत्स! तुम अपने प्रभावसे उसी यमलोकोंको देख आए। तुम्हारी यह देह मानवदेह नहीं है।' पिताके इतना कहने पर नचिकेताने अन्यान्य ऋषियोंके सामने उन्हें सम्बोधन करके कहा, "पिता! मैंने आपके आदेशसे यमके घर जा कर सहस्रयोजन विस्तीर्ण सुवर्णकी तरह उज्ज्वल यमसभा देखी। वहां यमने मुझे देख कर बैठनेके लिए एक आसन दिया। मैंने धर्मराजसे कहा,—मैं आपके राज्यमें आया हूं, अभी मैं जिस लोकके उपयुक्त हूं, उसी लोकमें मुझे भेज दीजिए। इस पर यम बोले,—आपके पिता हुताशनके समान तेजस्वी हैं, उन्होंने 'यमदर्शन करो' ऐसा आपसे कहा था सो आपने यमदर्शन कर लिया। अभी आप यहांसे जा सकते हैं। इस पर मैंने बहुत अनुनय विनती कर उनसे प्रार्थना की, कि मैं पुण्योपार्जित लोकोंके दर्शन कर घर लौटूंगा, अभी नहीं। तब धर्मराजने मुझे एक उत्कृष्ट रथ पर बिठा वहां भेज दिया। वहां पहुंच कर मैं क्या देखता हूं कि पुण्यात्माओंके लिये नाना प्रकारकी नदियां हैं, रत्न हैं और रहनेके लिए सुसज्जित घर भी हैं। वहां जितने प्रकारके उत्तम स्थान हैं उनमेंसे धेनुदानकारीका स्थान ही सबसे उत्तम है। धर्मराजने मुझे उपदेश दिया है गोदान ही एकमात्र श्रेष्ठ है अतएव आप बिना सोचे विचारे गोदान करने लग जांय। बाद समस्त पुण्योपार्जित लोकोंके दर्शन और यमराजको प्रणाम कर आपके समीप पहुंचा हूं।"

(भारत अनुशासन० ७१ अ०)

कठोपनिषद्‌में नचिकेताका विवरण इस प्रकार लिखा है,—अत्यन्त धार्मिक वाजश्रवस नामक कोई राजा थे। उनका दूसरा नाम था गौतम। उन्होंने विश्वजित् नामक एक यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें दक्षिणास्वरूप सर्वस्व धन देना होता है। राजाके नचिकेता नामक एक पुत्र था। यज्ञके समाप्त हो जाने पर राजा ऋत्विकों को दक्षिणा-स्वरूप गौ विभाग करके दे रहे थे। नचिकेता उस समय बहुत बच्चे थे। राजाको वे सब दान करते देख कर नचिकेताके हृदयमें श्रद्धाका संचार हो आया। ऋत्विक्‌को गऊ गोदान देते देख उसने पिताके पास जा कर कहा, 'पिता! क्या किसी ऋत्विक को मुझे दक्षिणास्वरूप देंगे?' इस प्रकार नचिकेताके दो तीन बार कहनेसे राजा बहुत गुस्सा गए और बोले, 'जा, मैंने तुझे यमको दिया।' पीछे राजाने सत्यका पालन करते हुए पुत्रको यमसदन भेज दिया। नचिकेता यमलोक जा कर वहां तीन रात तक ठहरे, उस समय यम ब्रह्मलोकको गए थे। इस कारण यमके साथ उनको भेंट न हुई। बाद जब यम ब्रह्मलोकसे लौटे, तब उन्होंने देखा कि नचिकेता तीन दिनसे अनाहारी अवस्थामें है। इस पर उन्होंने नचिकेतासे कहा, 'तुमने तीन दिनसे कुछ भी खाया नहीं है, अतः तीन जो वर चाहो, वह मांगो।'

यमराजके वचन सुन कर नचिकेताने प्रार्थना की, 'प्रभो! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो यही वर दीजिए जिससे कि मेरे पिता गौतमके मन्युकी शान्ति हो अर्थात् मैं यमलोकमें आ कर किस प्रकार रहता हूं, सब जो चिन्ता उनके हृदयमें जागृत होगी वो दूर हो जाय; वे मुझ पर पूर्ववत् प्रसन्न रहें और जब मैं आपके हाथसे मुक्त हो कर घर जाऊं, तो मेरे पिताको एक ऐसी स्मृति हो जाय, कि मानो मैं अभी यमसदनसे आ रहा हूं।' यमने ये सब स्वीकार कर लिये। पीछे नचिकेताने दूसरा वर यह मांगा कि स्वर्गलोकमें जो जीवगण, वे मर्त्यलोककी तरह वहां भी क्षुत्पिपासा, जरा मृत्यु और शोकान्वित हो कर दुःखसे अवस्थान करें। यमने दूसरा वर भी दे दिया। अन्तमें नचिकेताने तीसरे वरके लिए इस प्रकार प्रार्थना की, 'मेरे मनमें एक विशेष संशय है वह यह है कि जब मनुष्य मर जाता है, तब शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इन सबके अतिरिक्त जीवात्मा एक और पदार्थ है लेकिन जीवात्मा नहीं है, कोई ऐसा भी बतलाते हैं, सो क्या बात है, मुझे आप साफ बतला दीजिए जिससे मेरा यह संशय जाता रहे।' यम नचिकेताको ऐसी चित्तनिग्रह देख कर बड़े ही

विस्मित हो गये और तरह तरहके ऐश्वर्यादिका प्रलो-भन दिखाते हुए जिससे यह वर न मांगे, ऐसी कोशिश करने लगे। लेकिन नचिकेताने कहा, 'मैं ऐश्वर्य ले कर क्या करूंगा। यही वर जो मैंने मांगा, एकमात्र अभि-लषणीय है।' इस पर यमने नचिकेताकी विषयविरक्ति, चित्तशुद्धि और मोक्षके प्रति ऐकान्तिकी इच्छा जान कर परमात्माके विषयमें उपदेश देते हुए कहा, 'तुम पर-मात्माको जो जानना चाहते हो, यह बहुत कठिन विषय है। मायिक संसारमें वे आच्छन्नभावमे अवस्थान करते हैं, यह केवल ज्ञानसे जाना जाता है। वे अत्यन्त दुर्ज्ञेय और अनादि हैं। अध्यात्मयोग द्वारा उन्हें जान कर विद्वान् लोग हर्ष और शोकसे मुक्त हो जाते हैं। विषयसे चित्तको आकर्षण करके उसे आत्मामें अर्पण करनेका नाम अध्यात्मयोग है।' इस प्रकार यमने तरह तरहके उपदेश दे कर नचिकेताके परमात्म-विषयमें जो सन्देह था, उसे दूर कर दिया। यमने आत्माके विषयमें जो सब गूढ़ उपदेश दिये थे, उन्हें देवता लोग भी नहीं जानते थे।

यमने तीन वरके अतिरिक्त एक और वर दिया था जो इस प्रकार है—नचिकेत शब्दसे अग्निका बोध होता है, अग्नि स्वर्गके सोपान-स्वरूप हैं, वह अग्नि आजसे तुम्हारे ही नामसे पुकारी जायगी। इसके सिवा इन्होंने नचिकेताको तरह तरहकी विचित्र रत्नमालाएं दी थीं।

समस्त कठोपनिषद्‌में यम और नचिकेताका वृत्तान्त लिखा गया है। डाक्टर रोअर साहब (Dr. Roer) इस नचिकेताके साथ यूरोपीय प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो (Plato)की तुलना कर गये हैं।

नाचिकेता (सं० पु०) नाचिकेत देखो।

नाचीज (फा० वि०) १ तुच्छ, पोच। २ निकम्मा।

नाचीन (सं० पु०) १ दक्षिणमें अवस्थित एक देश। २ इस देशके राजा।

नाज (हिं० पु०) १ अन्न, अनाज। २ खाद्य द्रव्य, भोजन-सामग्री, खाना।

नाज़ (फा० पु०) १ ठसक, नखरा, चोचला, हाव-भाव। २ घमण्ड, अभिमान, गर्व।

नाज़नीं (फा० स्त्री०) सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत।

नाज़बू (फा० स्त्री०) मरुवेका पौधा।

नाज़ाँ (फा० वि०) गर्वित, घमण्ड करनेवाला।

नाजायज (अ० वि०) जो नियम विरुद्ध हो, अनुचित, जो जायज न हो।

नाजिम (अ० पु०) १ भारतवर्षके मुसलमानी राज्यकालमें वह प्रधान कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश या राज्यके समस्त प्रबन्धका भार रहता था। यह राजपुरुष उस देशका कर्त्ता-हर्त्ता होता था और उसकी नियुक्ति सम्राट्‌की ओरसे होती थी। (वि०) २ प्रबन्धकर्त्ता।

नाजिमउद्दौला—मीरजाफरके पुत्रका नाम। ये भाईमें अकेले थे। अतः पिताके मरने पर अंगरेजोंने इन्होंको उत्तराधिकारी बनानेका विचार किया। जब इनकी उमर बीस वर्षकी थी, तब ये नवाबी पद पर प्रतिष्ठित हुए। केवल २ वर्ष राज्यके बाद १७६५ ई०में इनका देहान्त हुआ। लार्ड क्लाइवने इनके हाथसे राजस्व वसूल करने-का भार ले लिया था। इन्हें मन्त्रिसभाके आज्ञानुसार सभी कार्य करने होते थे। राजा दुर्लभराम, जगत्‌सेठ, और महम्मद रेजा खां उस सभाके अन्यतम सभ्य थे। कम्पनीके एक कर्मचारी मुर्शिदाबादमें रह कर इन लोगोंको कार्य-प्रणालीकी देख-भाल किया करते थे। नाजिमउद्दौला वार्षिक ५३८६१३१) रु० राजशासनादि के लिये पाते थे। ये बहुत विलासी थे।

नाजिमउल्मुल्क—मुर्शिदाबादके एक नवाब। ये १७८६ ई०में नवाबी पद पर अभिषिक्त हुए।

नाजिर (अ० वि०) १ दर्शक, देखनेवाला। (पु०) २ निरीक्षक, देख-भाल करनेवाला। ३ ख्वाजा, महल्लदरा।

नाजिरुद्दीन्—अयोध्याके एक नवाब। १८३० ई०में जब इनके पिता गाजिउद्दीन्‌का शरीरावसान हुआ, तब ये ही नवाब बन बैठे। अयोध्याके प्रधान मन्त्री आगा-मीरके साथ पहलेसे ही इनका विवाद चला आ रहा था। नवाबीपद ग्रहण करनेके बाद इन्होंने मन्त्रीके प्रति बाह्य सद्भाव दिखलाया तो सही, लेकिन थोड़े ही दिनोंके अन्दर उनका गुप्त उद्देश्य प्रकट हो गया। ये मन्त्रीको कार्यच्युत करके उसकी सम्पत्ति जब्त कर लेनेकी चेष्टा करने लगे। मन्त्रीके जो जमीन जामिनमें थी ये उसे भी हड़प करनेकी कोशिश करने लगे। लेकिन वृटिश गवर्नमेण्टने ऐसा न होने दिया।

नाजिमउद्दौला—रोहिलखण्डके एक शासनकर्त्ता। अली मुहम्मदके शासनकालमें ये रोहिलखण्ड आ कर पहले सामान्य सैनाओंके पद पर नियुक्त हुए। धीरे धीरे सैनिक विभागमें उच्च पद पाते हुए अन्तमें राजा बन गये। उस समय इनकी उपाधि 'खाँ' थी। पीछे अपनी साहस और पराक्रमका परिचय दे कर इन्होंने १७५० ई०में 'उद्दौला' की उपाधि पाई।

१७६१ ई०में महाराष्ट्रों और अहमदशाह अब्दालीके साथ जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें ये भी मौजूद थे। युद्धके बाद ये पुनः अमीर-उल-उमरावके पद पर नियुक्त हुए। इस समय इनके हाथ दिल्लीनगरका शासनभार और राजपरिवारका तत्त्वावधान भार सौंपा गया। इन्होंने नजीबाबाद नामका एक नगर बसाया और यहीं १७७० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

नाजिम—दाक्षिणात्यकी भूतयोनिविशेष। यहांके लोगोंका विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य हमेशा रोगी अथवा बहक बहके, शरीरको इधर उधर हिलावे डुलावे आंखोंमें अनिच्छा प्रकट करे, तो जानना चाहिए कि उसके शरीरमें भूतने आश्रय लिया है। उनका कहना है, कि सभी मनुष्यों को भूत लग सकता है, लेकिन पुरुषकी अपेक्षा छोटे बच्चोंको और छोटे बच्चों की अपेक्षा स्त्रियोंको अधिकको सम्भावना रहती है। विशेषतः स्त्रियोंको सन्तानकालमें और बालक बालिकाओंको जन्मसे ले कर बारह वर्ष तककी उमरमें भूतोंका अधिक डर रहता है। ये भूत प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं, एक घरभूत और दूसरा बाहरी भूत। यदि घरमें सभी इच्छायें पूर्ण होनेके पहले किसीकी मृत्यु हो जाय, तो वह घरभूत होता है। इस प्रकारका भूत कभी कभी अपना नाम 'सम्बन्ध' बतलाता है, अर्थात् परिवारके साथ उसका सम्बन्ध है। यह भूत बिना कारणके किसीको कुछ नहीं करता, लेकिन अपने परिवारके लोगोंके प्रति अत्याचार किया करता है।

बाहरके भूतोंमें निम्नलिखित भूत प्रसिद्ध हैं। यथा—अपाहुय, अहरस, ब्रह्मपुरुष, ब्रह्मराक्षस, अथवा खबिस, उड़ेल चन्दवाई, दखिल, डाकन, असिन्, काग्न, महमोषा, मस्कोवा, मुञा, नाजिम् इत्यादि।

यदि किसी मुसलमानकी उसका मनोरथ पूर्ण हुए बिना मृत्यु हो जाय, तो उसकी आत्मा भूतयोनिमें जन्म ले कर 'नाजिम्' नामसे प्रसिद्ध होती है। नाजिम् एक बार जब किसीके हृदयमें अधिकार कर लेता है, तब उसे भगाना कठिन हो जाता है। केवल मुसलमान ओझा इसे भगा सकते हैं।

नाजुक (फा० वि०) १ सुकुमार, कोमल। २ पतला, महीन, बारीक। ३ सूक्ष्म, गूढ़। ४ थोड़ी आघात लगनेसे भी जिसके टूटनेका डर हो, थोड़े ही आघातसे नष्ट हो जानेवाला। ५ जिसमें हानि या अनिष्टकी आशङ्का हो।

नाजुकदिमाग (फा० वि०) १ जो रुचिके प्रतिकूल थोड़ी सी बात भी न सह सके, जो जरा सी बात पर नाक भौं सिकोड़े। २ तुनकमिजाज, चिड़चिड़ा।

नाजुकबदन (फा० वि०) १ कोमल और सुकुमार शरीर का। २ छींटकी तरहका एक महीन कपड़ा। ३ एक प्रकारका गुलशब्बो।

नाजुकमिजाज (फा० वि०) नाजुकदिमाग देखो।

नाजो (फा० स्त्री०) १ नाज करनेवाली स्त्री, ठसकवाली स्त्री। २ लाड़ली प्यारी स्त्री।

नाट (सं० पु०) नटस्येदं अण्। १ नृत्य, नाच। २ देशविशेष, नाट, एक देशका नाम जो पहले कर्णाटकके पास था। ३ रागविशेष, एक रागका नाम। इसे कोई मेघरागका और कोई दीपकरागका पुत्र मानते हैं। इस रसमें वीररस गाया जाता है। (त्रि०) ४ नाटदेश-वासी उस देशका रहनेवाला।

नाटक (सं० त्रि०) नट-ण्वुल्। १ नर्त्तक, नाट्य पर अभिनय करनेवाला। (पु०) २ कामाख्या-पर्वतके निकटस्थित पर्वतभेद एक पहाड़ जो कामाख्या पर्वतके समीप अवस्थित है। इस पर्वत पर महादेव और पार्वती रहती हैं। ३ रङ्गशालामें नटोंकी आकृति, हावभाव, वेश और वचन आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन, वह दृश्य जिसमें स्वांगके द्वारा चरित्र दिखाए जायं। ४ गद्य पद्य और प्राकृत भाषादिमय ग्रन्थविशेष, वह ग्रन्थ या काव्य जिसमें स्वांगके द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो, दृश्यकाव्य, अभिनयग्रन्थ। पर्याय—रूपक महाकाव्य।

नाटकका विषय साहित्यदर्पणके षष्ठाङ्कमें इस प्रकार लिखा है—नाटकको गिनती काव्योंमें है। काव्य दो प्रकारके माने गये हैं—दृश्य और श्रव्य। जो काव्य अभिनीत होता है, अर्थात् रङ्गमञ्च पर नटगण खेलते हैं, उसीका नाम दृश्यकाव्य है। नाटक दृश्यकाव्यका एक अङ्ग है। यह दृश्यकाव्य महामुनि वाल्मीकिके समकालिक भरतमुनिसे सृष्ट हुआ है। कहते हैं, कि भरतमुनिने यह ब्रह्मासे सीख कर गन्धर्व और अप्सराओंको सिखाया था। धीरे धीरे इसका प्रचार सारे संसारमें हो गया।

अग्निपुराणमें भी नाटकके लक्षणादिका निरूपण है। उसमें एक प्रकारके काव्यका नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्णके दो भेद हैं—काव्य और अभिनेय। 'सामने लाने' अर्थात् दृश्य सम्मुख उपस्थित करनेको अभिनय कहते हैं। इस अभिनयके चार भेद हैं—सत्त्व, वाक्य, अङ्ग और आहरण। अग्निपुराणमें दृश्यकाव्य वा रूपकके २७ भेद कहे गये हैं—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य और प्रेङ्खण। सामान्य और विशेष लक्षणकी गति दो प्रकारकी है; सामान्य लक्षण सबमें रहेगा और विशेष लक्षण कहीं कहीं। पूर्वरङ्गके निवृत्त होनेसे देश, काल, रस, भाव, विभाव, अनुभाव, अभिनय और अङ्कस्थिति ये सब सामान्य पदवाच्य हैं। नाट्य और उसका उपाय त्रिवर्गका साधन है। पूर्वरङ्ग प्रभृति उसकी इति-कर्त्तव्यता यथाविधि करनी होती है। पूर्वरङ्गके बत्तीस अङ्ग हैं। देवता और गुरुका नमस्कार तथा स्तुति और गो-ब्राह्मण राजाके आशीर्वादादि ग्रहण करनेका नाम नान्दी है। नान्दीके बाद सूत्रधारको रूपक करके गुरुपूर्वक्रमसे वंशप्रशंसा और कविका यशोकीर्त्तन, पीछे काव्यका सम्बन्ध और अर्थनिर्देश करना चाहिये। नटी, विदूषक और पारिपार्श्विक ये सब मिल कर मनोहर वाक्य द्वारा सूत्रधारके साथ जो आलाप करते हैं, उसका नाम है आमुख वा प्रस्तावना। प्रस्तावनाके तीन भेद हैं, प्रवृत्तक, कथोद्घात और प्रयोगातिशय। जिस प्रस्तावनामें सूत्रधार उपस्थित कालका अवलम्बन करके वर्णन करते हैं, पात्रके उस आश्रयमें प्रवेश करनेको प्रवृत्तक कहते हैं। जिसमें सूत्रधारके वाक्य और वाक्यांश अर्थ ग्रहण करके पात्र प्रविष्ट होता है, उसका नाम कथोद्घात है। जिसमें सूत्रधार प्रयोग-समूहमें प्रयोगकी वर्णना करता है और तदनुसार पात्र प्रविष्ट होता है, उसे प्रयोगातिशय कहते हैं।

किसी इतिवृत्तका अवलम्बन करके नाटकादिको वर्णना करनी होती है, इसीसे इतिवृत्त ही नाटकका शरीर माना गया है। सिद्ध और उत्प्रेक्षित ये दो इतिहासके प्रभेद हैं। इनमेंसे आगमदृष्ट जो है, वही सिद्ध है और जो कविप्रणीत है, यह उत्प्रेक्षित। नाटकमें बोज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पांच प्रकृति हैं अर्थात् इनसे प्रयोजनसिद्धि होती है। इन पांचों प्रकृतिका नाम कोई कोई पञ्चचेष्टा बतलाते हैं। प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति, सद्भाव और नियमिताफलप्राप्ति ये पांच प्रकारके फलयोग हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष, निर्वहण ये पांच प्रकारकी सिन्धियां हैं। जो बात मुंहसे कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धिका प्रथम कारण हो, उसे बीज कहते हैं। जहां नाना प्रकारके अर्थ और रससे बीजकी उत्पत्ति हो तथा काव्यमें वह शरीरानुगत रूपसे विद्यमान रहे, वही मुख कहलाता है। इष्टार्थकी रचना, वृत्तान्तका अनुपक्षय, प्रयोगको रागप्राप्ति, गुह्यका गोपन, आश्चर्य आख्यान, प्रकाश्यका प्रकाश ये सब वर्णना जिसमें पाई जायँ, वह अङ्गहीन नरके जैसा नाटक और काव्यादिमें शोभा नहीं देता। देशसमूहके मध्य भारतवर्ष और कालसमूहके मध्य सत्यादि युगत्रय है। नाट्यमें देशकालभेदसे प्राणधारियोंमें सुखदुःखादिका वर्णन करना होता है और इसमें नृत्य, गीत तथा शृङ्गारादि रस वर्णनीय है। (अग्निपु० ३३८ अ०)

अग्निपुराणके मतसे नाटकके जो सब लक्षण लिखे गये, उनसे नाटकका विषय भलीभांति समझमें नहीं आता। किन्तु साहित्यदर्पणकारोंने जो सब लक्षण बतलाये हैं, उनसे नाटकका विषय सम्यक्‌रूपसे जाना जाता है।

पहले लिख चुके हैं कि दृश्यकाव्यके अन्तर्गत नाटक है। यह अभिनेय है अर्थात् अभिनय करके सामाजिक गणोंको दिखाना होता है। एक नट रामका रूप धारण करके रामवृत्तान्तका वर्णन करने लगा। उस समय नाट्यदर्शक लोगोंको राम समझ कर अवस्थानुसार हर्ष और शोकादि प्रकट करने लगे। नट अन्य रूप धारण करके अभिनय करता है इस कारण उसका नाम रूपक रखा गया है। अवस्थानुरूप अनुकरणका नाम अभिनय है। यह अभिनय चार प्रकारका है—आङ्गिक, वाचिक आहार्य और सात्त्विक। जो अभिनय अङ्गको चेष्टासे किया जाता है, उसे आङ्गिक, वचनोंसे जो किया जाता है, उसे वाचिक, भेष धारण कर जो किया जाता है उसे आहार्य तथा भावोंसे उद्भूत कम्प स्वेद आदि द्वारा जो अभिनय होता है, उसे सात्त्विक कहते हैं।

यह अभिनेय दृश्यकाव्य दो प्रकारका है—रूपक और उपरूपक। रूपकके दस भेद हैं—रूपक नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग समवकार, डिम ईहामृग, अङ्कवीथी और प्रहसन। उपरूपकके अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

जनसाधारण अभिनेय काव्यमात्रको ही नाटक कहते हैं लेकिन यथार्थमें वह नहीं है। नाटक दृश्यकाव्यके अन्तर्गत है। पर हां, नाटक अभिनेय काव्यमें सर्वप्रधान है। ऊपरमें रूपक और उपरूपकके जो सब नाम बतलाये हैं उनमेंसे सबोंका लक्षण भिन्न भिन्न है, लेकिन सभी नटसे किये जाते हैं। नाटकके जितने लक्षण बतलाए गये हैं, उनमेंसे प्रायः अनेक लक्षण अन्यान्य रूपक और उपरूपकमें रहते हैं तथा उनके अलावा और भी कितने विशेष लक्षण देखे जाते हैं।

यथाक्रमसे दृश्यकाव्यके कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं। नाटक-लक्षण—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्।

पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रन्तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्॥"

(साहित्यद० ६।२०० प०)

किसी एक ख्यातवृत्त अर्थात् प्रसिद्धवृत्तान्तका अवलम्बन करके नाटक लिखना चाहिए अर्थात् रामायण, महाभारत या कोई पुराण और बृहत्कथा आदि जितने ग्रन्थ चिरमान्य हैं उन सब ग्रन्थोंसे एक वृत्तान्त ले कर नाटक तैयार करना चाहिये। कपोलकल्पित वृत्तान्त होनेसे वह नाटक नहीं कहला सकता। नाटक पञ्चसन्धियुक्त विलास, नाना प्रकारकी सम्पत्ति, विभूति, सुख दुःख तथा नाना प्रकारके रसोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें पांचसे ले कर दस तक अङ्क होने चाहिये। नाटकका नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंशका कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि अर्थात् दुष्यन्तके जैसा नृपति या रामचन्द्रके जैसा अलौकिक क्षमताशाली राजा अथवा श्रीकृष्णके जैसा महापुरुष होना चाहिये।

नाटकमें प्रधान या अङ्गी रस शृङ्गार और वीर है। अन्य रस गौण रूपमें आते हैं। शान्त, करुणा आदि किसी रसको प्रधान करें तो वह नाटक नहीं कहला सकता। सन्धिस्थलमें कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिये। उपसंहारमें मङ्गल भी दिखाया जाना चाहिये। वियोगान्त नाटक संस्कृत अलङ्कारशास्त्रके विरुद्ध है। चार या पांच मनुष्योंको प्रधान व्यक्ति कार्यमें रखना चाहिये। अङ्क गोपुच्छके जैसे होने चाहिये अर्थात् गोपुच्छ जिस प्रकार पहले मोटा और पीछे पतला होता गया है, उसी प्रकार सभी अङ्कोंको बड़ा छोटा बनाना चाहिए। ५से ले कर १० तकके अङ्कसे काम चल सकता है। प्रायः सभी नाटकोंमें ७ अङ्क देखनेमें आते हैं। अभिज्ञानशकुन्तल और उत्तररामचरित आदि प्राचीन सभी नाटक सात अङ्कोंमें समाप्त हैं। इन सब अङ्कोंमें गर्भाङ्क करना होता है।

अङ्क—जहां पर नाटकीय इतिवृत्तके एक अंश का शेष होता हो, वहां परिच्छेदकी कल्पना करनी चाहिए। उसी परिच्छेदका नाम अङ्क है। एक अङ्कके शेष होने पर सभी नट रङ्गभूमिसे चले जाते हैं। पीछे नये नये नट आ कर अभिनयका आरम्भ करते हैं। इस अङ्कमें नायकके चरित्रका वर्णन रसभावादि द्वारा उज्ज्वल रूपसे करना चाहिए। जिन सब पदोंका प्रयोग करना होगा, उनका अर्थ साफ साफ समझमें आ जाना चाहिए। छोटे छोटे गद्ययुक्त वाक्यका प्रयोग करना चाहिए। अत्यन्त समास-बहुल वाक्य और अधिक पद्य-प्रयोग दोषावह है।

नाटककी अवतारणा करनेमें पहले पूर्वरङ्ग, पीछे सभापूजा अर्थात् सभास्थित लोगोंकी प्रशंसा, बाद कवि-संज्ञा अर्थात् नाटकका कथन और प्रस्तावना करनी चाहिए। इसी प्रस्तावना द्वारा पात्रप्रवेश अर्थात् प्रकृत रूपसे नाटकका आरम्भ होता है। रङ्गालयकी विघ्नशान्ति के लिए जो क्रिया अभिनयके पहले की जाती है, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं। इस पूर्वरङ्गका नाम मङ्गलाचरण है। इस पूर्वरङ्गके प्रत्याहारादि अर्थात् ध्यान धारणा आदि अनेक अङ्ग हैं। ये सब अङ्ग रहने पर भी रङ्गालयमें विघ्न-शान्तिके लिए नन्दीपाठ अर्थात् देव, द्विज, नृप आदिका आनन्दजनक स्तव करना चाहिए। जिसमें देवता, ब्राह्मण और नृपादिको शुभानुध्यानपरा स्तुति रहती है, उसका नाम नान्दी है। नान्दी, 'नन्दयति' इति व्युत्पत्ति द्वारा नान्दी शब्द बना है। आनन्द देनेवाली स्तुतिका नाम नान्दी है। यह नान्दी माङ्गल्य शङ्ख, चन्द्र आदिकी सूचक होनी चाहिए। इस नान्दीमें बारह वा अठारह पद होने चाहिए। सुप् अथवा तिङ् विभक्त्यन्त पदको पद कहते हैं अर्थात् पहले एक ऐसे वाक्यकी रचना करनी चाहिए जिसमें देवताओंकी स्तुति और राजाओं-के मङ्गल वर्णित रहे और जिसमें ८ वा १२ पद हों। जहां पर नान्दी ८ पदोंमें समाप्त होती है, वहां वह अष्ट-पदा और जहां १२ पदोंमें समाप्त होती है, वहां द्वादश-पदा कहलाती है।

सूत्रधार रङ्गभूमिमें उपस्थित हो कर अभिप्रेय अभि-नय कार्यकी विघ्नपरिसमाप्तिके लिए जो मङ्गलाचरण करता है, उसीका नाम नान्दी है। स्तवादि द्वारा देव-ताओंको आनन्दित अर्थात् प्रसन्न करता है। इसीसे इस मङ्गलाचरणका नाम नान्दी रखा गया है। नाटकादि ग्रन्थके आरम्भमें जो एक या एकसे अधिक श्लोक रहते हैं, वह नाटककी नान्दी नहीं है।

नाट्यशास्त्रमें नान्दीके जो सब लक्षण बतलाए गए हैं, वे सब श्लोक उन सब लक्षणोंके नहीं हैं। यथार्थमें वे सब श्लोक ग्रन्थकारके मङ्गलाचरण हैं। 'नान्द्यन्ते सूत्र धारः' यहींसे ग्रन्थका आरम्भ होता है। ग्रन्थारम्भमें मङ्गलाचरणका होना आवश्यक है, इस कारण कवि लोग स्वप्रणीत नाटकके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण लिख देते हैं। 'नान्द्यन्ते' नान्दीके बाद अर्थात् अभिनय आरम्भ करनेसे पहले देवता प्रणामादिरूप नान्दी कीर्तन करके ग्रन्थारम्भ करना होता है। यह नान्दी नाटकका अङ्ग नहीं है। अभिनेतृ-वर्गके अधिकारी सूत्रधारका काम करते हैं। यह काम समाप्त करके वे कहते हैं 'अलमतिविस्तरेण' अधिक कहनेकी जरूरत नहीं अर्थात् नान्दीका अधिक आडम्बर करके समय नष्ट करना निष्प्रयोजन है।

नट पहले पूर्वरङ्गका शेष कर चला जाता है। बाद सूत्रधार आता है। इसे स्थापक भी कहते हैं। यह भी नाटकीय वस्तु, बीज, मुख और पात्र आदिको प्रवेश करा कर चला जाता है, अर्थात् रङ्गमञ्च पर आ कर उसे पहले काव्यार्थ सूचक मधुर श्लोक द्वारा रङ्ग प्रसादित करना चाहिए। बाद जो नाटक खेला जायगा, उसका वंश और प्रशंसा आदि कर देनी चाहिए। यथा—

"श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी।
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्॥"
(रत्नावली)

रत्नावलीमें लिखा है, कि "कवि श्रीहर्ष अति सुदक्ष थे, यह सभा भी गुणग्राहिणी है, पृथिवीतल पर वत्सराज-चरित्र अत्यन्त मनोहारी है और हम लोग भी नाट्यकार्यमें दक्ष हैं।" इस वाक्यसे सबोंका गुण गाया गया।

उसके बाद नट, नटी, विदूषक, पारिपार्श्विक वा सूत्रधार ये लोग परस्पर जो कथोपकथन करते हैं, उससे प्रकृत वृत्तान्त जाना जाता है। इसीको प्रस्तावना कहते हैं। सूत्रधार रङ्गभूमिमें प्रविष्ट हो कर नान्दीके बाद

"इदं कार्यमुपक्षिप्य कार्यान्तरसमाश्रयम् ।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ॥"

(साहित्य०)

तृतीय पताकास्थान—अलक्ष्य कार्यका सूचक होनेसे तृतीय पताकास्थान होता है।

चतुर्थ पताकास्थान—सुश्लिष्ट एवं द्वयर्थयुक्त वर्णना-में किसी अर्थान्तरके उसका सूचक होनेसे चतुर्थ पताकास्थान होता है।

नाटकमें नायक या रसके अनुचित या विरुद्ध जो सब वर्णना हैं, उनका परित्याग करना उचित है। अथवा किसी दूसरे स्थान पर ऐसे भावकी योजना करनी चाहिए।

"यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा ।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ॥"

(साहित्य०)

यथा, रामचन्द्र द्वारा छिपके वालिवध, इस प्रकारकी घटना आदिको विरुद्ध वस्तु कहते हैं। उदात्तराघव नाटकमें रामचन्द्र द्वारा वालिवध-वृत्तान्त परिकीर्त्तित हुआ है।

नाटकीय इतिवृत्तका नीरस अंश जब प्राकृत प्रस्ताव में वर्णित होता है, तब वह सामाजिक-वर्गका विरक्तिकर हो सकता है। यही कारण है कि नाटक कर्त्ताओंने अप्रधान व्यक्तिके मुखमें उस अंशका संक्षेप से कीर्त्तन करके सरस-अंशका अवतरण किया है। नाटकके ऐसे अंशको विष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक अङ्कको प्रस्तावनाके बाद होता है। यह अङ्कके आदि में अवस्थित रहता है। नाटकमें प्रवेशक वर्णना करनी होती है।

प्रवेशकलक्षण—प्राकृतभाषा रचित कथाविभागका नाम प्रवेशक है। इस प्रवेशकको उभयाङ्कके मध्य और शेषको विष्कम्भके मध्य जानना चाहिए।

चूलिका—यवनिकाके मध्यस्थित सभी मनुष्य जिस अर्थकी सूचना दे देते हैं, उसका नाम चूलिका है।

अङ्कावतार—अङ्कावसानमें सूत्रधार जिस अङ्कको अवतारणा करते हैं उसे अङ्कावतार कहते हैं। जो अङ्क समाप्त हो रहा था, उस अङ्कमें जो सब नट अभिनेता थे, उन्हीं मेंसे कोई अभिनेता इस अङ्कावतारकी सूचना दे दे। इसको गर्भाङ्क कहते हैं। किन्तु पाश्चात्य नाटक-समूहमें देखा जाता है, कि कई एक गर्भाङ्क मिल कर एक अङ्क होता है। यह अङ्कावतार ठीक उस तरहका नहीं है। यह अङ्कावतार प्रति अङ्कमें करना नहीं होता किसी किसी अङ्कमें इसे सन्निवेश कर सकते हैं। अङ्कके मध्य अङ्क रखनेके कारण इसका नाम गर्भाङ्क रखा गया।

अङ्कमुख—जिस अङ्कमें सब अङ्कोंकी घटनाएं सूचित रहती हैं उसे अङ्कमुख कहते हैं, उसका दूसरा नाम बीजार्थख्यापक भी है।

नाटकमें प्रधान व्यक्तिको वध वर्णना नहीं करनी चाहिए और न रस तथा वस्तुका भी परस्पर तिरोधान करना चाहिए। अर्थात् रसमें इतिवृत्तमात्र और इतिवृत्त में रसयोग जिससे हो, उसी भावसे वर्णना करनी चाहिए।

नाटकमें प्रयोजन सिद्धिके कारण ५ हैं—बीज, बिन्दु पताका, प्रकरी और कार्य। इन पांचोंका यथायोग्य स्थानमें वर्णन करना चाहिए। जो बात मुंहसे कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धिका प्रथम कारण हो, उसे बीज कहते हैं; जैसे वेणीसंहारनाटक में भीमके क्रोध पर युधिष्ठिरका उत्साहवाक्य द्रौपदीके केशमोचनका कारण होनेसे कारण बीज है। नाटकके यथायोग्य स्थानमें बीजकी वर्णना करनी होती है।

बिन्दु—अन्यार्थसमूहका विच्छेद होनेसे परवर्त्ती घटनाके साथ जो सम्बन्ध रहता है, उसका नाम बिन्दु है, अर्थात् कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्यके उसका सम्बन्ध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनकी दूसरे वाक्यके साथ असङ्गति न हो, वही 'बिन्दु' कहलाता है।

बीचमें किसी व्यापक-प्रसङ्गके वर्णनको पताका कहते हैं—जैसे उत्तरचरितमें सुग्रीवका और अभिज्ञानशाकुन्तलमें विदूषकका चरित-वर्णन। पताका नायकका स्वकीय अनुगामी नहीं है। एक देशव्यापी चरितवर्णनको प्रकरी कहते हैं। आरम्भ की हुई क्रियाकी फलसिद्धिके लिए जो कुछ किया जाय उसे कार्य कहते हैं, जैसे, राम[illegible] रावणका वध।

नाटकमें फलाभिलाषोकी ५ अवस्थाओंका वर्णन करना चाहिए। यथा—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

प्रधान फलसिद्धिके लिये जो अत्यन्त औत्सुक्य है, उसे आरम्भ कहते हैं।

प्रधान फलप्राप्तिके लिए अतित्वरान्वित जो व्यापार है, उसका नाम यत्न है। विघ्न और विघ्ननाश द्वारा जो फलप्राप्तिकी सम्भावना है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं।

सभी विघ्नोंके अपाकृत होनेसे निश्चित जो फलप्राप्ति है, उसका नाम नियताप्ति है और जब सभी फललाभ एककालीन होते हैं, तब ऐसी अवस्थाको फलागम कहते हैं।

नाटकमें जो वर्णनीय विषय है उसमें यथाक्रमसे इन्हीं पांच विषयोंकी वर्णना रहेगी अर्थात् क्रम क्रमसे इसी प्रकार ५ भागोंमें विभक्त कर वृत्त समाप्त करना चाहिए।

नाटककी मुखसन्धिमें अर्थात् पहले आरम्भयोगिनी अवस्थाकी वर्णना, प्रतिमुखसन्धिमें यत्नयोगिनी अवस्थाकी वर्णना, गर्भसन्धिमें प्रत्याशा-योगिनी अवस्थाकी वर्णना, विमर्षसन्धिमें नियताप्ति-योगिनी अवस्थाकी वर्णना और उपसंहृति सन्धिमें फलप्राप्तिकी वर्णना करनी होती है। अर्थात् क्रमश: इसी प्रकार आरम्भ करके उपसंहार करना होता है। उपसंहारमें सब प्रकारके सम्पत्लाभकी वर्णना करनी होती है। नाटकमें इस प्रकारके वर्णनीय विषय ५ भागोंमें विभक्त हुए हैं,—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष और उपसंहृतिसन्धि। इनके लक्षण यथाक्रमसे लिखे जाते हैं।

जिस अंगमें नाना अर्थ और नाना रसादिको सम्भावना हो, उसे मुखसन्धि कहते हैं। अर्थात् पहले नाना प्रकारके रसादि वर्णनच्छलसे मूलवर्णनीय विषयका आरम्भ कर देना होगा। जिस प्रकार रत्नावलीमें नाना रसादि वर्णन प्रसङ्गमें रत्नावली और वत्सराजका एक दूसरेके प्रति अनुराग; शकुन्तलामें जिस तरह दुष्मन्त और शकुन्तला दोनोंके दर्शनमात्रसे ही आनुरक्ति, यही मुखसन्धिमें आरम्भ करना होता है।

मुखसन्धिमें आरम्भ हो कर प्रधान फलके लक्ष्यके जैसा जो प्रकाश है, उसे प्रतिमुखसन्धि कहते हैं। प्रतिमुखसन्धिमें ईषत् प्रकाशयुक्त जो मूलवृत्तान्त रहता है उसमें कहीं तो बिलकुल तिरोभावयुक्त और कहीं अनुसन्धानयुक्त जो सम्यक् भावप्रकाश है, उसका नाम गर्भसन्धि है। गर्भसन्धिमें प्राप्त मूलकारणके अभिसम्पात आदि द्वारा अन्तराययुक्त होनेसे वह विमर्षसन्धि कहलाता है।

चारों ओर विनिवेशित समस्त अर्थ एक प्रयोजनसे उपस्थित होता है अर्थात् नायक सभी प्रकारकी अर्थसम्पत्ति लाभ करता है, इसीको उपसंहृतिसन्धि कहते हैं अर्थात् उपसंहारमें सभी प्रकारका मङ्गल प्राप्त होता है, ऐसी वर्णना करनी होगी। जो सब नायक विरहकातर थे, उन्हें विरहिणीसे भेंट करा कर अर्थसम्पत्तिलाभका वर्णन करना आवश्यक है। इस उपसंहारमें वियोगवर्णना नहीं करनी चाहिये।

पहले नाटककी दश अङ्गवर्णना करनी चाहिये। यथा—उत्क्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना और उद्भेद। सन्दर्भ प्रतिपादित अर्थकी समुत्पत्ति अर्थात् संक्षिप्त भावसे उत्पादनका नाम उत्क्षेप है। संक्षिप्तभावसे उत्थित अर्थका बाहुल्यरूपसे विस्तारका नाम परिकर है। पूर्वविस्तृत वर्णनके निश्चयरूपसे संकीर्तन करनेका नाम परिन्यास है। पहले वृत्तान्तका संक्षेपरूप वर्णन, पीछे बहुलीकरण, बहुलीकरणके बाद निश्चय कथन इन तीन अङ्गोंकी अलग अलग वर्णना करनी होगी। गुणसमूहवर्णनका नाम विलोभन है। कर्त्तव्यार्थके निश्चयको युक्ति कहते हैं। सुखलाभका नाम प्राप्ति है। मूलकारणका आगमन अर्थात् प्रधान लक्ष्यरूपसे कीर्त्तनका नाम समाधान है। सुखदुःखमिश्रित कार्यका नाम विधान और औत्सुक्ययुक्त वाक्यका नाम परिभावना है। वीजार्थके अर्थात् प्रकृत वर्णनीय विषयके अङ्कुरोदयको उद्भेद कहते हैं। ये दश अङ्ग मुखसन्धिमें वर्णनीय हैं।

प्रति मुखसन्धिमें तेरह अङ्ग रहते हैं—विलास, परिसर्प, विधूत, तापन, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, विरोध, पर्युपासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार। सुरतसम्भोग-विषयमें सस्पृह प्रयोगका नाम विलास है।

यथा—शकुन्तलामें राजा दुष्मन्त शकुन्तलाको लक्ष्य

प्रेरक कहते हैं,—"प्रिया शकुन्तलाकी मांगा मैंने लिये अत्यन्त सुलभ तो नहीं है, लेकिन उसे देखनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। असम्भाव्य होने पर भी कामदेव स्त्री-पुरुषके बीच अनुराग उत्पन्न कराते हैं।" यहां पर दुष्मन्तके सुरतविषयक चेष्टाका वर्णन करनेसे ही विलास हुआ।

अभिलषित व्यक्तिके दर्शन नहीं होनेसे उसके अन्वेषणका नाम परिसर्प है। उसके कृतानुनयका अर्थात् आदिमें अनुनय करनेसे उसे स्वीकार नहीं करनेका नाम विधूत है। इष्ट वस्तुका जब कोई उपाय देखा नहीं जाता तब तापन अर्थात् ताप होता है। परिहास-वाक्यको नर्म कहते हैं। परिहासजात धैर्यका नाम नर्म द्युति है, विपद्भासिका नाम विरोध, कृतानुनयका नाम पर्युपासन, प्रकर्षपूरक वाक्यका नाम पुष्प, प्रवल वचनका नाम वज्र, प्रसन्नता-सम्पादनका नाम उपन्यास और चातुर्वर्ण्यके मिलनका नाम वर्णसंहार है। नाटकके प्रति मुखसन्धिमें उक्त तेरह अंगोंको यथाक्रमसे वर्णना करनी चाहिये।

नाटककी गर्भसन्धिमें तेरह अङ्ग वर्णनीय हैं—अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, प्रार्थना, आक्षिप्ति तोटक, अधिबल, उद्वेग और विद्रव।

व्याजाश्रय-वाक्यवर्णनका नाम अभूताहरण, यथार्थ कथनका नाम मार्ग, वितर्कयुक्त वाक्यका नाम रूप, उत्कर्षयुक्त वचनका नाम उदाहरण, निर्विकार चित्तमें तत्त्वोपलब्धि अर्थात् यथार्थानुभवका नाम क्रम, प्रियवाक्य और दानद्वारा वश करनेका नाम संग्रह, चिह्नद्वारा साध्यज्ञानका नाम अनुमान रति अर्थात् अनुराग, हर्ष और उत्सव आदि द्वारा जो प्रार्थना की जाती है उसका नाम प्रार्थना, गुप्तार्थकथनका नाम क्षिप्ति, सक्रोध वाक्य प्रयोगका नाम तोटक कपटता द्वारा अभिप्रायके अनुमानका नाम अधिबल और अनिष्टाशङ्का तथा शत्रुभयसे जो भय उत्पन्न होता है उसका नाम विद्रव है।

नाटककी विमर्शसन्धिमें भी निम्नलिखित तेरह अङ्गोंकी वर्णना करनी चाहिये। यथा—अपवाद, सम्फेट, व्यवसाय, द्रव, द्युति, शक्ति, प्रसङ्ग, खेद, प्रतिषेध विरोधन प्ररोचना, विमर्श, आदान और छादन। अब इनका लक्षण यथाक्रमसे लिखा जाता है।

दोषकथनका नाम अपवाद क्रोधपूर्वक कथनका नाम सम्फेट, प्रतिज्ञा अर्थात् कार्यनिर्देश और साधन निर्देशमें उपायका नाम व्यवसाय, शोकवेगादि द्वारा उत्पन्न गुरु लोगोंके व्यतिक्रमका नाम द्रव, भर्त्सन और भयप्रदर्शन द्वारा उत्तेजनका नाम द्युति, विद्वेषके प्रशमनका नाम शक्ति, मन और चेष्टासमुत्पन्न श्रमका नाम खेद, अभीष्ट विषयके प्रतीघातका नाम प्रतिषेध, जो कार्य प्रायः ध्वंस सा हो गया था, उसकी प्राप्तिका नाम विरोधन, उपाय द्वारसे अर्थ विषय प्रदर्शित होनेका नाम प्ररोचना, कार्य समूहके उपक्रम ग्रहण करनेका नाम आदान और कार्यवशतः अपमानादिके सहनका नाम छादन है।

उपसंहृतसन्धिमें अर्थात् उपसंहारमें चौदह अङ्गोंकी वर्णना करनी होती है। यथा—सन्धि, निरोध ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, कृति, प्रसाद, आनन्द, समय उपगूहन, भाषण, पूर्ववाक्य, काव्यसंहार और प्रशस्ति ये ही चौदह अङ्ग हैं। इनका लक्षण यथाक्रमसे लिखा जाता है।

बीज अर्थात् विषयके उद्घाटनका नाम सन्धि कर्त्तव्य कार्यके अन्वेषण अर्थात् नाटकीय प्रधान कर्त्तव्यके अनुसन्धानका नाम निरोध, प्रधान कर्त्तव्यकार्यके उपन्यास अर्थात् कीर्त्तनका नाम ग्रथन है। वेणीसंहारमें इसका उदाहरण यों है—भीम पाञ्चालीको सम्बोधन कर कहते हैं, 'हे पाञ्चालि! मेरे जीवन रहते दुःशासन कर्षित विपर्यस्त वेणीको तुम अपने हाथसे संहार नहीं कर सकती, मैं स्वयं उसका संहार कर देता हूं।' वेणीसंहार नाटकमें वेणीसंहार प्रधान कर्त्तव्य कार्य है,—यहां पर उसका कीर्त्तन होनेसे ग्रथन वचनका समावेश हुआ। अनुभूतार्थके कथन अर्थात् ज्ञातकार्यके कथनको निर्णय और कुत्सासूचक वाक्य कथनको परिभाषण कहते हैं। लब्ध-विषयोंका स्थायीरूपसे स्थिरीकरणका नाम कृति, शुश्रूषादिका नाम प्रसाद, अभिलषित व्यक्तिके प्राप्तिसम्बलित मनकी प्रीतिका नाम आनन्द, सब प्रकारके दुःखोंका अपगमका नाम समय, अद्भुत प्राप्ति अर्थात् आश्चर्य

भाव—विचलन प्रभृतिके समागमका नाम उपगूहन, प्रियवाक्यकथन और दानादिका नाम भाषण, पूर्ववाक्यके समुचित प्रत्युत्तरदानका नाम पूर्ववाक्य है, अर्थात् नाटकके प्रारम्भके पहले कटूक्तिका प्रयोग किया है, पीछे उनमेंसे प्रधान व्यक्तियोंको समुचित शान्तिविधान करके उस वाक्यके यथोचित उत्तरदानको पूर्ववाक्य कहते हैं। अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका नाम काव्यसंहार है अर्थात् अन्तिम दृश्यमें जो सब मङ्गल अभिलषणीय हैं, जिसके साथ जिसका मिलान होना आवश्यक है, उसीको उपसंहार कहते हैं।

अनन्तर—राजा, देश वा ब्राह्मण आदिको शान्तिसूचक प्रार्थनाका नाम प्रशस्ति है। नाटकीय विषयका उपसंहार हो जानेसे राजाओंकी मङ्गलसूचक प्रार्थना करनेके बाद अभिनेताको रङ्गमञ्चसे चला जाना चाहिये।

नाटकके पूर्वलिखित ६४ प्रकारके अङ्ग हैं। पञ्चसन्धिमें यथाक्रमसे यही सब अङ्गविन्यास करने होते हैं। रसके अनुरोधसे जब कोई अङ्ग निर्दिष्ट सन्धिमें वर्णित न हो कर अन्य सन्धिमें वर्णित हो, तो वह दोषावह नहीं होगा। पहले रसकी ओर भलीभांति लक्ष्य करना चाहिये। रसभङ्ग करके अङ्गादिका प्रयोग सुसङ्गत नहीं है।

नाटकमें यथाविधि सब अङ्गोंका प्रयोग करनेसे ६ प्रकारके फल प्राप्त होते हैं—इष्टार्थरचना, आश्चर्यलाभ, वृत्तान्तविस्तर, रागप्राप्ति, प्रयोगके मध्य अर्थात् वृत्तान्तके मध्य गोप्यका गोपन और प्रकाश्यका प्रकाशन। अङ्गोंके यही छः प्रकारके फल हैं।

जिस तरह अङ्गहीन मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता, उसी तरह अङ्गहीन काव्यका भी अभिनय आदिमें प्रयोग करना सुसङ्गत नहीं है। नायक और प्रतिनायक सन्धिका अङ्ग करके सम्पादन करे, उसके अभावमें पताकादि और पताकादिके अभावमें बीज आदिका सम्पादन करना चाहिये।

पहले जो सब लक्षण बतलाये गये हैं, शास्त्रकी मर्यादाको रक्षा करनेके लिये उसका अलग अलग विन्यास करना उचित नहीं, लेकिन रसका अनुगामी हो कर जहां जिस अङ्गका वर्णन करनेसे रसकी कोई क्षति न हो, बल्कि उसका उत्कर्ष हो, ऐसे भावमें अङ्गादि संस्थापन करनेको 'इष्टार्थ रचना' कहते हैं। रस कार्यके प्राणस्वरूप है, उसका विनष्ट अर्थात् रसभङ्ग करके अङ्गादिका प्रयोग करना सुसङ्गत नहीं है।

जो सब वृत्तियां जिन सब रसोंके साथ विरुद्ध हैं, उन्हें परित्याग करना चाहिए।

शृङ्गाररस-वर्णनमें कौशिकी वृत्ति, वीररसमें सात्त्वती, रौद्र और वीभत्सरसमें आरभटी, इसके सिवा अन्य रसमें भारती वृत्ति होगी। यही चार वृत्तियां नाटककी जननी-स्वरूप हैं, अतः इन्हीं चार वृत्तियोंमें नाटककी रचना करनी चाहिये।

सभी नायिकाओंके मनोहर वेशभूषासे विभूषिता, उनके साथको सहचरियोंके भी नृत्य-गीत और कामोपभोगके उपचार तथा मनोहर विलासयुक्त वर्णनाका नाम कौशिकी है। इसके चार अङ्ग हैं—नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ।

सामाजिक वर्गके मनोरञ्जनकर चतुरताके साथ क्रीडनका नाम नर्म है। यह नर्म तीन प्रकारका है—शुद्धहास्यविहित, सशृङ्गार हास्यविहित और सभयहास्यविहित।

सुखकर भयान्त नव सङ्गमका नाम नर्मस्फूर्ज है। भावादि अर्थात् आकार, इङ्गित और चेष्टा द्वारा भावाभिव्यक्ति अल्पमात्राके सूचित शृङ्गारको नर्मस्फोट कहते हैं। नायक-नायिकाके प्रथम दर्शनसे वा गुणावली सुन कर एक दूसरेके प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे नर्मस्फोट कहते हैं। नायकका गुप्तभावसे जो व्यवहार करता है उसका नाम नर्मगर्भ है। जिस प्रकार मालती-माधव नाटकमें माधवने सखीका रूपधारण कर मालतीको मरणेच्छासे उसे निवृत्त किया था। इसी प्रकार वर्णनको नर्मगर्भ कहते हैं।

सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, सरलता, आनन्द, शोकराहित्य, चमत्कारित्व और अल्पशृङ्गारयुक्त वर्णनका नाम सात्त्वती वृत्ति है। अर्थात् शौर्य आदिकी वर्णनासे सात्त्वती वृत्ति कह सकते हैं। इस वृत्तिके चार भेद हैं—उत्थापक, संघात्य, संलाप और परिवर्त्तक।

शत्रुके उत्तेजनकारी वाक्यका नाम उत्थापक है।

अन्यान्य लक्षण प्रायः नाटकसे हैं। फर्क इतना ही है, कि इसमें वृत्त लौकिक वा कविकल्पित होगा अर्थात् इस प्रकरण नामक नाटकको रचना करनेसे इसका वृत्तान्त लोकप्रसिद्ध वा कविकल्पित होना आवश्यक है। इसका प्रधान शृङ्गार रस होना चाहिए। इसका नायक धीरप्रशान्त है अर्थात् नाटकके जैसा उच्च श्रेणीका व्यक्ति नहीं है। जिसके दया दाक्षिण्य प्रभृति लौकिक साधारण गुण हैं, उसीको धीरप्रशान्त कहते हैं। यह नायक मन्त्री, ब्राह्मण अथवा सम्भ्रान्त-वणिक् और धर्मकामार्थ पर होगा तथा स्वर्गसाधनभूत आश्रयधर्म और स्त्री पुत्र एवं धनादि विषयोंमें सर्वदा तत्पर रहेगा।

नायिका भेदसे इस प्रकरणको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। किसी प्रकरणमें नायिका कुलजा अर्थात् कुलीना होगी, किसीमें भद्रवंशकी प्रतिपालिता कामिनी वा सहचरी होगी और किसी प्रकरणकी नायिका वेश्या एवं प्रथम दो प्रकारकी अर्थात् कुलजा और वेश्या नायिका हो सकती है तथा इसमें कितव, द्यूतकार, विट, चेट आदि परिचारक होंगे।

मृच्छकटिक, मालतीमाधव आदि प्रकरण लक्षणाक्रान्त हैं। प्रकरणमें समाजकी प्रतिकृतिकी वर्णना कर सकते हैं। मृच्छकटिक नाटकमें नायक ब्राह्मण और नायिका वेश्या, मालतीमाधवमें अमात्य नायक तथा 'पुष्पभूषित' प्रकरणमें वणिक् नायक है।

भाण—इसमें धूर्त्तचरित्र और उसकी नाना प्रकारकी दशावर्णना होगी। यह एक अङ्कमें पूरा होगा। इसमें एक नट अर्थात् नायक मात्र अभिनय क्रीड़ा करेंगे। यह नट रङ्गभूमि पर आ कर नाना स्वरों और नाना प्रकारके भाव भङ्गियोंमें विविध व्यक्तियोंको सम्बोधन करके सभासदोंको प्रसन्न करेंगे। यह नायक आकाश भाषित सुन कर उत्तर प्रत्युत्तर देंगे। इनकी भाषा विशुद्ध संस्कृत होगी। सौभाग्य और शौर्यवर्णना द्वारा शृङ्गार या वीर रसकी सूचना करनी चाहिये। लीलामधुकर और सारदातिलक आदि भाण श्रेणीभुक्त हैं।

व्यायोग—इसका इतिवृत्त पुराणादि प्रसिद्ध होगा। यह गर्भसन्धि और विमर्ष सन्धिहीन होगा और एक अङ्कमें पूरा होगा। स्त्री छोड़ कर दूसरे कारणसे युद्ध-वर्णना करनी होगी। इसका नायक अलौकिक क्षमताशाली पुरुष होगा। हास्य, शृङ्गार और शान्तरस भिन्न रस इसका नायक होगा। सौगन्धिकहरण, धनञ्जय विजय आदि व्यायोग श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

समवकार—इसका वृत्त ख्यात होगा। देवता और असुरोंका युद्ध-वर्णन ही इसका प्रधान उद्देश्य रहेगा। यह आद्योपान्त वीररससे भरा रहेगा। नाटकोक्त पञ्चसन्धिमेंसे इसमें चार सन्धि सन्निवेशित करनी चाहिए। केवल विमर्षसन्धि निषिद्ध है। नायक धीरोदात्त होगा, प्रत्येकका फल भिन्न भिन्न होगा। उष्णिक् और गायत्री-छन्दमें यह रचा जायगा। वीररस ही इसमें प्रधान है। हस्ती रथादिसे परिपूर्ण युद्धविषय तुमुलसंग्राम और नगरादि ध्वंसका उत्तम रूपसे वर्णन होना चाहिए। यह तीन अङ्कोंमें सम्पूर्ण होगा। 'समुद्रमन्थन' नाटक इसी समवकार श्रेणीके अन्तर्गत है। यह नाटक अभी दुष्प्राप्य है।

डिम, वीर और भयानक रसप्रधान रूपक है। यह चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। असुर वा देवता इसके नायक हैं। डिम देखो।

ईहामृग—यह चार अङ्कोंमें पूरा होता है और करुणरसप्रधान है। देव देवी इसके नायक-नायिका हैं। प्रेम और कौतुक वर्णन इसका प्रधान उद्देश्य है। ईहामृग देखो।

अङ्क—यह अङ्करूपक एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। किसी प्रसिद्ध वृत्तान्तको ले कर इसकी रचना की जाती है। यह करुणरस प्रधान है। इसमें भूरि शृङ्गार और अन्यान्य रसोंका समावेश होना चाहिए। 'शर्मिष्ठा-ययाति' एक अङ्कनामक रूपक है।

वीथि—इसके सभी लक्षण भाणसे हैं। यह भी एक अङ्कमें पूरा होता है। दशरूपकके मतानुसार इसमें दो अङ्क होने चाहिए।

प्रहसन—यह हास्यरसप्रधान रूपक है और एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। समाजकी कुरीतिका संशोधन और रहस्यजनकका विवरण करना इसका मुख्य उद्देश्य है। राजा, राजपारिषद्, धूर्त्त, उदासीन, भृत्य

और वेश्या ये सब प्रहसनके पात्र होंगे। इसमें नीच जातीय पुरुषगण स्त्रियोंकी तरह प्राकृत भाषामें कथोपकथन करेंगे। हास्यार्णव कौतुक सर्वस्व और धूर्त-समागम आदि प्रहसन ये प्रमुख हैं।

यही दस प्रकारके रूपक हैं जिनका विवरण संक्षिप्तभावसे लिखा गया। अभिनेय अन्य भावका भी जनसाधारण नाटक समझते हैं। इस कारण यहां पर उनका लक्षण देना दोषावह नहीं होगा।

उपरूपक—यह १८ प्रकारका है। प्रत्येकका विवरण संक्षिप्तभावसे लिखा जाता है। विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

नाटिका—नाटिका देखो।

त्रोटक—यह ५से ९ अङ्कोंका हो सकता है। पार्थिव और अपार्थिव इसके प्रधान वर्णनीय विषय हैं। विक्रमोर्वशी आदि त्रोटक ग्रन्थ हैं।

गोष्ठी—एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसके नायक-प्रसङ्गमें ९।१० पुरुष और ५।६ स्त्री हैं। 'रैवतमदनिका' नाटक गोष्ठीके अन्तर्गत है।

सट्टक—इसमें एक आदर्श भक्त आद्योपान्त प्राकृत भाषामें रचा जायगा। 'कर्पूरमञ्जरी' इसीके अन्तर्गत है।

नाट्यरासक—एक अङ्कमें समाप्त होता है। वर्णनीय विषय प्रेम और कौतुक है। इसमें शुरूसे आखिर तक नृत्य और सङ्गीत रहेगा। नर्मवती और विलासवती आदि नाट्यरासक हैं।

प्रस्थान—यह प्रायः नाट्यरासक सदृश है। किन्तु इसके नायक और नायिका आदि नीच जातिके होंगे। यह भी ताललय-सम युक्त सङ्गीतसे परिपूर्ण है और दो अङ्कोंमें समाप्त होता है।

उल्लाप्य—एक अङ्कमें पूरा होता है। इसका इतिवृत्त पौराणिक होगा। प्रधान वर्णनीय विषय प्रेम और हास्य रस है। बीच बीचमें सङ्गीत होगा। 'देवीमहादेवम्' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

काव्य—एक अङ्कमें परिपूर्ण होता है। इसमें प्रेम विषयकी वर्णना होगी। बीच बीचमें सङ्गीत और कविता रहेगी। 'यादवोदय' एक काव्य नामक उपरूपक है।

प्रेङ्खण—एक अङ्कमें पूरा होता है। यह वीररस प्रधान होगा। नीच श्रेणीका व्यक्ति इसका नायक होगा। 'वालिवध' इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

रासक—यह हास्यरसोद्दीपक रूपक है और एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसमें अभिनेता ५ हैं। नायक नायिका ये दोनों उच्च वंशके होंगे। नायिका बुद्धिमती होगी और नायक मूर्ख होगा। 'मेनकाहित' एक रासक है।

संलापक—एकसे चार अङ्कोंमें पूरा होता है। इसका नायक प्रचलित धर्मके विरुद्ध मतावलम्बी होगा। अधिकांश जगह युद्धादिकी वर्णना रहेगी। 'मायाकापालिक' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

श्रीगदित—एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसकी नायिका लक्ष्मी है, अधिकांश जगह सङ्गीत होगा। 'क्रीड़ारसातल' इसी श्रेणीमें अन्तर्भुक्त है।

शिल्पक—इसमें चार अङ्क होते हैं। श्मशान इसका स्थल है। नायक ब्राह्मण है और प्रतिनायक चण्डाल। ऐन्द्रजाल और आश्चर्य घटनाका वर्णन करना इसका प्रधान उद्देश्य है। 'कनकावतीमाधव' इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

विलासिका—एक अङ्कमें समाप्त होता है। प्रेम और कौतुक इसका वर्णनीय विषय है।

दुर्मल्लिका—यह हास्यरसप्रधान है और चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। "बिन्दुमती इस श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

हल्लीश—एक अङ्कमें पूरा होता है। इसका आद्योपान्त सङ्गीत और नृत्यसे भरा रहता है। अभिनय कालमें एक पुरुष और ८।१० स्त्रियोंकी आवश्यकता है। यह बहुत कुछ अपेरा (Opera)से मिलता जुलता है। 'केलि-रैवतक' इसीके अन्तर्गत है।

भाणिका एक अङ्कमें पूरा होता है। हास्यरस इसका प्रधान वर्णनीय विषय है। 'कामदत्ता' भाणिकाके ही अन्तर्गत है।

दस प्रकारके रूपक और अठारह प्रकारके उपरूपकका विषय लिखा गया। ये सभी प्रकारके दृश्य काव्य नटसे अभिनीत होते हैं इसीसे ये नाटकमें सन्निविष्ट किए गए।

संस्कृत अलङ्कार-शास्त्रमें जो सब लक्षण लिखे हैं, वही सब लक्षण यहां लिखे गए।

संस्कृत नाटक जिस प्रणालीसे लिखा जाता है, यूरोपीय नाटक उस प्रणालीसे नहीं लिखा जाता। हम लोगोंके देशमें भी जितने नाटकोंका प्रचार हुआ है और हो रहा है वे भी संस्कृत नाटकके आधार पर नहीं लिखे जाते। ये सब नाटक यूरोपीय नाटकके जैसे हैं। इसी कारण यूरोपीय नाटकके कुछ लक्षण और विवरण यहां लिख देना परमावश्यक है।

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे नाटक शब्दका प्रकृत अर्थ इस प्रकार है—भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका आपसमें जो ओजस्वी वाक्यालाप होता है, वह उनका अभिनय है; अर्थात् कोई व्यक्ति यदि उनके प्रतिनिधि-रूपमें वे सब आलाप उन्हीं सब भावोंमें प्रकाश करे और उसके अभिनयसे यदि मूल घटनाका विवरण अनुमेय हो, तो उसीको नाटक कहते हैं। साधारण प्रश्नोत्तर (Dialogue), महाकाव्य (Epic) और गीतकाव्य (Lyric)के साथ नाटकका कुछ प्रभेद है। साधारण कथावार्त्ता वा कथोपकथनमें कथकके मनमें शोक, दुःख आदिका उच्छ्वास नहीं होता। किन्तु नाटकमें भावस्रोत अत्यन्त स्पष्ट है तथा घटनावलीका शेषफल बहुत सहजमें समझा जाता है। इसीसे अन्यान्य काव्यों-की अपेक्षा नाटक (दृश्यकाव्य)का आदर बहुत ज्यादा है। महाकाव्य (Epic poetry)में नाम्नोल्लिखित व्यक्तिगण प्रायः रसपूर्ण वाक्यालापमें नियुक्त देखे जाते हैं और वह महाकाव्य केवल वर्णनसे परिपूर्ण रहता है। गीतिकाव्य (Lyric poetry)में अनेक समय वे सब नियम देखे जाते हैं। महाकाव्य यदि तेजःपूर्ण कथा-वार्त्तासे पूर्ण रहे और जब उद्दिष्ट कार्य वर्णना स्रोत की उपेक्षा करके परिस्फुट प्रकाशित हो, तो वह नाटक कहला सकता है। नाटक प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है, वियोगान्त (Tragedy) और हास्योद्दीपक (Comic)। वियोगान्त नाटक उत्सुक मनको आन-न्दित करना है अर्थात् जिस घटनाका आरम्भ सुन कर उसका शेष फल भी जाननेकी उत्सुकता होती है, उसे रोकनेकी चेष्टा ही नाटकका उद्देश्य है। हास्योद्दीपक नाटकमें केवल हास्योद्दीपन करना ही उद्देश्य है।

मनुष्य स्वभावतः अनुकरणप्रिय होते हैं। इस अनुकरणप्रियतासे ही नाटककी सृष्टि होती है। बाइबलकी आदिपुस्तकमें नाटकके भावमें बातचीत (Dramatic dialogue) करनेसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। उस ग्रन्थमें गीतिकाव्यके भी अनेक दृष्टान्त देखनेमें आते हैं। यथा—सोलेमनका गान।

विद्वान् लोग ग्रीकवासियोंको ही प्रथम नाटकके रचयिता बतलाते हैं और एथेन्सनगरमें नाटकने पूर्णत्व प्राप्त किया ऐसा उन लोगोंने स्थिर किया है। किन्तु प्रथमावस्थामें वहां दियनिसस् (Dionysus) देवके उद्देशसे जब कोई उत्सव होता था तब समय समय पर नाटक खेला जाता था। पुराकालीन ग्रीकपण्डितोंका कहना है, कि समवेतसङ्गीत (Choral song)से इसकी उत्पत्ति है। अरिष्टटल् (Aristotle) कहते हैं, कि बाकस (Bacchus) देवके उद्देशसे जो सब गायक गान करते थे, वे ही गायक इस नाटकके स्रष्टा हैं।

यद्यपि आरियन (Arian)ने ईसा-जन्मके ५८० वर्ष पहले करुणरसपूर्ण (Tragedy) नाटकका आविष्कार किया है, तो भी इस Tragedy शब्दका मूल अर्थ ले कर बहुतोंने इसको एक प्रकारकी दूसरी व्याख्या की। उस ट्राजेडी शब्दका धातुगत अर्थ है, Tragos goat छागल और Ode a song गान। इस अर्थसे वे अनुमान करते हैं, कि जब किसी बकरे या भेंड़की बलि दी जाती थी, तब पुरातन नाटक जनताको अभिनयके रूपमें दिखलाया जाता था। अथवा अभिनेतृगण भेंड़के चर्म द्वारा शरीर ढक कर अभिनय करते होंगे, इसीसे उक्त नाटकका नाम Tragedy पड़ा है। इसी प्रकार (Comedy) शब्दका अर्थ है Komos a revel आमोदकारी अथवा Kome—a village ग्राम। सुतरां Comedyका धातुगत अर्थ होता है आमोदकारियों वा पल्ली-ग्रामवासियोंका गान; क्योंकि उक्त आमोद-कारिगण सदर रास्तेके ऊपर नाटकाभिनयको समता दिखलाते थे।

ईसा-जन्मके ५३६ वर्ष पहले थेस्पिस् (Thespis)-ने अभिनयके समय सम्यक् रूपसे कथावार्त्ताकी प्रथा चलाई और गानके मध्य एक अभिनेताको नियुक्त किया।

फ्रायनिकस (Phrynichus)ने ५१२ ई०के पहले थेस्पिस्‌के उस एकमात्र अभिनेताको अभिनेत्रीके कार्यमें नियुक्त किया। फ्रायनिकस्‌से एस्‌कायलस (Aeschylus)के पहले तक ट्राजेडी नाटकके विषयमें किसी दूसरेने कोई विशेष उन्नतिसाधन न किया।

सुसेरियन (Susarion) नामक उद्यमी जब ग्रीस होते हुए आ रहे थे, तब ईसा जन्मके ५८० वर्ष पहले उन्होंने अपने समयको दोषावलीको विद्रूप करनेके लिये वहां रङ्गमञ्च पर जो अभिनय किया था, उन्होंसे (Comedy)की सृष्टि हुई।

गम्भीर भाव वा माधुर्यसे परिपूर्ण होनेके कारण Tragedy नाटक सबसे सुशिक्षित और सभ्य अधिवासियोंका तथा Comedy नाटक हास्यरस और रसिकतासे पूर्ण रहनेके कारण असभ्य लोगोंका अत्यन्त प्रिय हो गया है। धीरे धीरे इस विद्रूपात्मक नाटकका सबमें भी आदर होने लगा है और एपिकारमस (Epicharmus), अरिष्टफिनिस (Aristophanes) आदि कितनोंने इस Comedyके अभिनयार्थ अनेक ख्यातनामा अभिनेता नियुक्त किये। उस समय Tragedyका अभिनय करते समय अभिनेतृगण बड़े बड़े नकाब द्वारा मुख ढक कर, मनुष्यचरित्रमें जितने महत् सद्‌गुण होते थे, उन्हें व्यक्त करनेकी चेष्टा करते थे। इसी प्रकार Comedyके अभिनेतृगण तुच्छ और नित्य गुलकपाडुका तथा विकटाकार नकाब पहन कर मनुष्यजातिकी निन्दा करते थे।

ग्रीक लोगोंने Comedyको तीन भागोंमें विभक्त किया है—पुरातन, मध्य और नूतन। इसी नूतन Comedy से आधुनिक हास्योद्दीपक नाटककी सृष्टि हुई है। आधुनिक Comedy यथार्थमें पुराकालीन Tragedy और Comedyके मेलसे उत्पन्न हुआ है। पुरातन Comedy Tragedyके ठीक विपरीत है। इस पुरातन और नूतन Comedyकी सृष्टि होनेके मध्ययुगमें मध्य Comedy प्रकाशित हुआ। सम्भवतः पिलोपनिसीय युद्ध शेष होनेके बाद ही Comedyका मध्ययुग आरम्भ हुआ है। Comedyके समयसे ही प्रकृत ग्रीक Tragedy आरम्भ हुआ है। एस्‌कायलस आप ही अखाड़ा कर (Rehearsal room)में अभिनेताओंको अभिनय करनेकी रीतिनीतिकी शिक्षा देते थे। सफोक्लिस (Sophocles)ने रङ्गमञ्चकी यथेष्ट उन्नति की और एक अतिरिक्त नेताको नियुक्त किया। युरीपिदिस (Euripides) Tragedyके अनेक उत्कर्ष साधन कर गये हैं।

पूर्वोक्त व्यक्तियोंके बाद ग्रीसमें Tragedyका एक प्रकारसे लोप हो गया, ऐसा कह सकते हैं। उसके बादसे Tragedy वक्तृता (Rhetoric)में परिणत हुआ।

रोममें नाटकका प्रचार बहुत पहलेसे था, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। रोमके स्थापित होनेसे ३८१ वर्ष पीछे जब वहां भयानक महामारी उपस्थित हुई उस समय एट्रुरियनके निकटसे ही इन लोगोंने पहले पहल अभिनयका भाव ग्रहण किया। प्लूटस (Plautus) और टेरेन्स (Terence)के सिवा यहां मिलनान्त नाटक (Comedy) लेखक और किसी दूसरेका नाम नहीं मिलता। इन दो लेखकोंने ग्रीक लोगोंसे Tragedyका भाव ग्रहण किया है। उनके समयकी एक भी पुस्तक अभी नहीं मिलती। केवल सिनिका (Seneca) नामक एक छोटी पुस्तक देखनेमें आती है जिसमें केवल १० गौरव नाटक हैं।

रोममें जब देवोपासना बहुत प्रबल हो उठी थी, उस समय समस्त नाटक व्यवहारसे विमुख हो गये थे। यहां तक कि, जब वहां खृष्टधर्मका प्रचार हुआ, तब जो लोग रङ्गालय पर अभिनय करते थे, वे बेपटिज्म (ईसाई) होनेसे वञ्चित हुए। रोमके जुलियसने जब इस धर्मका आईन प्रचलित किया, तब आपलीनारई (Apollinarii) और ग्रेगरी (Gregory of Nazianzen)ने बाइबलसे दो एक घटनाका अवलम्बन कर धर्मसम्बन्धीय नाटककी अवतारणा करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु यथार्थमें वह कार्यके रूपमें परिणत नहीं हुआ।

इस प्रकार मध्ययुगमें (प्रायः ११वीं शताब्दीका समय) नाटक जब धीरे धीरे विलुप्त हो गया, तब इटलीके अधिवासिगण प्रथम नाटकके प्रचार करनेमें कृतकार्य हुए। इटलीमें १४वीं शताब्दीको पहले पहल आधुनिक नाटक मुद्रित हुआ जिसका नाम रखा गया

सफोनिषवा (Sophonisba)। इसके लेखक ट्रिसिनो (Trissino) थे। पीछे अन्यान्य अनेक Tragedy और Comedyके लेखकोंने क्रमशः कई एक पुस्तकोंकी रचना की।

१७वीं शताब्दीमें रिनासिनि (Rinuccini)ने उक्त नाटकके गीतोंमें बहुत कुछ हेरफेर करके गीताभिनय (Melo-drama)की सृष्टि की।

मिलन (Milan)के समयसे रवेणा (Ravana)-के समय तक Tragedy और Comedyका बिलकुल आदर नहीं था। गीतिनाट्य (Music Opera)का उस समय अच्छा आदर होने लगा। धीरे धीरे बहुतोंने अच्छे अच्छे नाटक लिख डाले हैं।

नाटकके विषयमें स्पेनका कोई पुरातन इतिवृत्त नहीं मिलता। पर हां, लपेज-डि-भेगा (Lopez de-Vega), काल्डिरण (Calderon) आदि कितने व्यक्तियोंके लिखित नाटकोंका उल्लेख मात्र मिलता है।

फरासीसियोंके मतसे नाटकमें प्रधानतः तीन गुणोंका होना आवश्यक है जिनका नाम है ऐकमत्य (Unity)-स्थापन।

(क) नाटकमें एकमात्र विषय (plot) रहेगा। यदि उसमें छोटी छोटी घटनावलीको संयोजित करनेकी आवश्यकता हो, तो उसे इस प्रकार सन्निविष्ट करना उचित है जिससे वह मूल घटनाको परिपोषक हो।

(ख) सारी घटनाएं एक जगह संघटित होना आवश्यक है।

(ग) सारी घटनाओंका एक ही दिनमें और एक ही कारणसे होना उचित है।

जोडेलो (Jodelle)ने पहले पहल यथारीति पांच अङ्कोंका एक Tragedy नाटक प्रस्तुत कर उसे फ्रान्सके राजा द्वितीय हेनरीके सामने खेला। उनके बाद कर्णेलो (Carneille), मलियर (Moliere), रेसिनी (Racine) और भलटेयर (Voltaire) आदि कितने ऐसे हुए जिन्होंने Tragedy लिख कर ख्याति लाभ की। किन्तु उक्त नाटक लिख उन्होंने स्पेन, इटली और लेटिनोंके नाटकोंका अनुकरण किया है।

जर्मनीमें लेसिं (Lessing), गेटे (Goethe), सिलर (Schiller) आदि अनेक लेखकोंने अत्युत्कृष्ट नाटक लिखकर Tragedy लिखनेकी क्षमताकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु कबसे यहां नाटकका लिखना आरम्भ हुआ, उसका जानना बहुत कठिन है।

इङ्गलैण्डीय धर्ममन्दिरमें पहले पहल नाटक अभिनय प्रदर्शन (Dramatic exhibition) आरम्भ हुआ था या नहीं, इस विषयमें सन्देह हो भी सकता है। लेकिन वहांके धर्मयाजक (Clergy) जो उक्त अभिनयका स्वयं सम्पादन करते थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पुरोहित लोग (Ecclesiastics) अक्सर धर्म-पुस्तकमेंसे दो एक घटनाओंका अवलम्बन कर दो एक पुस्तक लिखा करते थे और अपने आप ही उसका अभिनय भी किया करते थे। उस प्रकारकी पुस्तक साधारणतः दो श्रेणियोंमें विभक्त होती थी। एक श्रेणीकी पुस्तक अलौकिक घटनासमूह (Miracle)के आधार पर रची जाती थी और दूसरी नीतिगर्भ (Moral)-के गल्पके भाव पर। बाइबलकी अद्भुत घटनाओं वा महात्माओंके आधार पर प्रथमोक्त पुस्तकावली और घटनावलीके साथ काल्पनिक दृश्य (Imaginary features)-के संयोगसे द्वितीय प्रकारकी पुस्तक लिखी जाती थी।

यूरोपमें धर्मसंस्कार (Reformation) प्रवर्त्तनके बहुत पहलेसे इस प्रकारकी अभिनयप्रथा प्रचलित थी और उक्त धर्मसंस्कार द्वारा भी उसका ध्वंस नहीं हुआ। १६वीं शताब्दीके मध्यभागसे प्राचीन ढंगसे नाटक लिखनेकी श्रद्धा लोगोंकी कम हो गई और नई प्रणाली-से नाटक लिखे जाने लगे। इङ्गलैण्डमें १५५०को एक Comedy पुस्तक मिलती है जिसका नाम है राल्फ रष्टर डष्टर (Ralph Roister Doister)। निकोलस उदल (Nicolas Udall) नामक एक शिक्षक उसके प्रणेता हैं इसके दश वर्ष बाद नर्टन (Norton) और लार्ड बुकहार्ष्ट (Lord Buckhurst)ने पहले पहल Tragedy लिखी। वह पुस्तक अमित्राक्षरच्छन्द-में लिखी गई और उसका नाम रखा गया गर्बुडक (Gorbudoc)। किन्तु वह पुस्तक नीरस, कठिन और अलङ्कारयुक्त वर्णनासे परिपूर्ण थी। शेक्सपीयरके समय तक नाटकको इसी प्रकारकी अवस्था थी। विसप हिलका

गामर गार्टनस् निड्ल् (Bishop Stills' Grammer Gurtons Needle) भी रयष्टर डयष्टरकी अपेक्षा उत्कर्षतासे लिखी नहीं गई।

मारलो (Marlow ने सबसे पहले रङ्गमञ्चके ऊपर अमित्राक्षरनाटकको अभिनय प्रथाका प्रचार किया। पीछे शेक्सपीयरने नाटक लिखनेकी शक्तिकी पराकाष्ठा दिखाई। उनके बाद बिलमोंने मित्राक्षर और अमित्राक्षर छन्दमें अनेक नाटक लिखे हैं।

चीनके अधिवासी बहुत प्राचीनकालसे नाटकका खूब आदर करते आ रहे हैं। वे लोग नाटककी प्रधान धर्मरक्षाकी चेष्टा नहीं करते। उनका नाटक पांच अङ्कों में अथवा एक प्रस्तावना और ४ अवकाशों (Break)में पूरा होता है। वे लोग अभिनयके साथ सङ्गीतकी योजना करते हैं और नाटकस्थ अध्याय परस्पर मिल रखते हैं। देशके आचार, व्यवहार, रीति, नीति आदिका वर्णन करना ही उनके नाटकका मुख्य उद्देश्य है और नाटक की घटना भी स्वकपोल-कल्पित और सुयोगसे पूर्ण रहती है।

यूरोपीय नव्यसमाजका पूर्ववर्णित इतिहास पढ़नेसे बहुतसे लोग कहते हैं कि ग्रीससे ही नाटकका प्रथम सूत्रपात हुआ। प्रसिद्ध जर्मन-पण्डित वेबर (Weber) ने लिखा है, 'कालिदासके ग्रन्थमें ग्रीकदासी (यवनी)-का उल्लेख प्रियदर्शीकी शिलालिपिवर्णित प्राकृतभाषाकी अपेक्षा आतिप्राचीन प्राकृत भाषाका प्रयोग इत्यादि प्रमाणोंसे यह बोध होता है, कि ईसा जन्मके कई शताब्दी बाद ये सब नाटक रचे गए हैं(१)।

किन्तु हम पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुवर्ती न हो सके। ग्रीसदेशमें जब नाटकका नाम तक भी न था उससे बहुत पहलेसे ही 'नटधर्म' वा नाटक प्रचलित हुआ है। रामायण, महाभारत, हरिवंश आदि प्राचीन ग्रन्थों में नाटकका प्रयोग यथेष्ट है(२)। पहले ही लिखा जा चुका है, कि हिन्दूशास्त्रके मतानुसार भरतमुनिने ही पहले पहल नाट्यशास्त्र प्रकाश किया। अभी देखते हैं, कि पाणिनि मुनिने शिलालिन् और कृशाश्व नामक दो नटसूत्रकारों का उल्लेख किया है (१)।

शिलालि और कृशाश्वने नटसूत्रका प्रचार किया। ऐसा कहनेसे शैलाल और कार्शाश्व शब्द द्वारा नटका बोध होता है। कात्यायनने वार्त्तिकमें "शैलाल" शब्द प्रकाशित किया है।

नटसूत्रकार शिलालिका नाम शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ-ब्राह्मण (१३।२।३।१), सामवेदीय अनुपदसूत्र (४।१, ३।५, ७।५) आदि अत्यन्त प्राचीन वैदिकग्रन्थोंमें देखा जाता है। विख्यात ज्योतिर्विद् शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने गणना करके बतलाया है, कि चार हजार वर्ष पहले शतपथ-ब्राह्मण रचा गया है (२)। इस हिसाबसे साबित होता है, कि नटसूत्रकार शिलालि चार हजार वर्ष पहले विद्यमान थे। उनके समय ग्रीसमें किसी प्रकारका नाटक प्रचलित न था।

शैलूष शब्दसे नटका बोध होता है। वाजसनेय संहितामें लिखा है—

"नृत्ताय सूतं गीताय शैलूष (३) धर्माय सभाचरं॥"

(३०।६)

इससे देखा जाता है, कि नटका व्यवहार वैदिक समयसे भारतवर्षमें प्रचलित है।

बौद्धोंके प्राचीन धर्मग्रन्थमें भी नाटकका उल्लेख देखनेमें आता है। जिस समय भगवान् बुद्ध राजगृहमें उपस्थित थे, उस समय मौद्गल्यायन और उपतिष्य नामक उनके दो शिष्योंने भगवानके सामने अभिनय किया था (४)।

---

(१) Dr Weber's Sanskrit Literature, p. 203

(२) रामायण १।१५।८, २।६९।४, मार्कण्डेयपु० ९०।४। महाभारत वन० १५ अ०। हरिवंशमें है—

"रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकीकृतम्॥"

(हरिवंश ८६।७२)

(१) "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।"

(पा ४।३।११०)

'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। (पा ४।३।१११)

(२) Indian Antiquary, Dec 1895

(३) "शैलूष नट"—महीधर

(४) Asiatic Researches Vol XX, p. 50. अध्यापक लासेनने लिखा है, "In the oldest Buddhistic writings the witnessing of plays is spoken of as something usual." (I. AK. II, p. 81.)

डाक्टर वेबरके स्वीकार नहीं करने पर भी अध्यापक विलसन आदि ख्यातनामा पण्डितोंने एक वाक्यसे ऐसा स्वीकार किया है, कि भारतीय नाटक भारतवासीका अपना है। नाटकके सम्बन्धमें हिन्दूगण किसी दूसरी जातिके निकट ऋणी नहीं है। विलसन साहबने साफ साफ लिख दिया है—

"Whatever may be the merits or defects of the Hindu drama, it may be safely asserted that they do not spring from the same parent, but are unmixedly its own. The nations of Europe possessed no dramatic literature before the fourteenth or fifteenth century, at which period the Hindu drama had passed into its decline." (७)

प्राचीनकालके हिन्दूराजगण नाटकाभिनयमें उत्साह दिया करते थे। कितने तो स्वरचित नाटक स्वयं खेल कर जनताको प्रसन्न करते थे। उनमेंसे कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन और शाकम्भरीके अधिपति चाहमानवंशीय विग्रहपाल अग्रणी हैं। अजमीरके तारागढ़ पहाड़के एक कोनेमें एक मसजिद है जो प्राचीन हिन्दू-प्रासादके उपकरणसे बनाई गई है। उस मसजिदमें पत्थरके ऊपर दो प्राचीन संस्कृत नाटक खुदे हुए हैं जिनमेंसे एक महाकवि सोमदेवरचित 'ललितविग्रहराजनाटक' है और दूसरा महाराजाधिराज विग्रहपाल रचित 'हरकेलिनाटक'। शेषोक्त नाटक १२१० सम्वत्में (११५३ ई०में) रचा गया है। उक्त दो नाटकोंमें अनेक ऐतिहासिक कथाएं हैं। हिन्दूराजगण नाटकका किस प्रकार आदर करते थे, वह उक्त खोदितलिपि देखनेसे ही जाना जाता है (८)। इस प्रकारका निदर्शन संसारमें और कहीं भी नहीं है।

संस्कृत नाटकमें नाटकावतार देखनेमें आता है जो कविके अद्भुत कवित्व शक्तिका परिचय है। उत्तररामचरितनाटकमें इस प्रकारका नाटकाभिनय देखनेमें आता है। कविने इसके मध्य रामसीताका मिलन दिखलाया है। महाकवि शेक्सपीयर भी सुप्रसिद्ध 'हैमलेट' नामक नाटकमें इस प्रकारका नाटकावतरण करके अपने असाधारण रचनाकौशलका परिचय दे गये हैं।

कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष आदि प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने जो सब नाटक प्रणयन किये हैं, वे प्रत्येक सर्वप्रधान कवियोंके नाटकके जैसे उत्कृष्ट हैं, यह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना होगा। दशरूप, साहित्यदर्पण, साहित्यसार और कुवलयानन्द आदि ग्रन्थोंमें जिन सब नाटकोंका उल्लेख है, अभी उनका अधिकांश दुष्प्राप्य है; तो भी यदि उनका अनुसन्धान किया जाय, तो कमसे कम ५।६ सौ संस्कृत नाटक अवश्य मिल सकते हैं। कुछ दिन पहले विद्वान् लोग नाटकका कुछ भी आदर नहीं करते थे। यहां तक कि सर विलियम जोन्सको छोड़ भी नाटकका प्रकृत विवरण भलीभांति समझा न सके थे। राधाकान्त नामक एक ब्राह्मणने नाटक अङ्गरेजी अभिनयके सदृश है ऐसा समझा दिया था। इस देशके लोग पहले अन्यान्य नाटकोंकी अपेक्षा प्रबोध-चन्द्रोदय नाटकको खूब तन मनसे पढ़ा करते थे। पीछे वैष्णवगण भक्तिरसप्रधान चैतन्यचन्द्रोदय, ललितमाधव, विदग्धमाधव, दानकेलिकौमुदी आदि नाटक पढ़ने लगे। किन्तु कालिदास भवभूति आदि प्रधान कवियोंके दृश्यकाव्यसे वे बिलकुल पराङ्मुख थे।

यूरोपमें नाटक खेला जाता है, इसीसे वहां नाटकका खूब प्रचार है। हम लोगोंके देशमें प्रसिद्ध नाटक अभिनयके लिये ही रचा जाता था। भवभूतिने नाट्यकारोंके अनुरोधसे कालप्रियनाथ महादेवके यात्रा-महोत्सवमें अभिनयके लिये उत्तरचरितकी रचना की। मातृगुप्तकी सभामें अभिनयके लिये हयग्रीववध नाटक रचा गया।

किन्तु आजकल रङ्गालयमें अर्थात् थियेटरमें जैसा अभिनय होता है, पहले वैसा अभिनय होता था वा नहीं, उसका निर्णय करना कठिन है।

सङ्गीत-दामोदरमें इसका विषय यत्सामान्य लिखा है। रङ्गालय प्रस्तुत करनेके विषयमें वे इस प्रकार

(७) H, H, wilson's Theatre of the Hindus, Vol 1, preface, p XI.

(८) उक्त दो शिलालिपियोंमें खोदित नाटकका कुछ अंश Indian Antiquary, Vol. XX. p, 205ff मुद्रित हुआ है।

२ रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम। यह नटनारायण, हम्बीर और अहीरी रागके योगसे बनती है और सम्पूर्ण जातिकी मानी जाती है। इसका स्वरग्राम यह है—"सा रे ग म प ध नि सा ।"

मूर्त्ति—

"विरं नटन्ती शुभवंशदण्डी विचित्ररत्नाभरणा कराग्री।
सुगीतनाद्यैः कृतसद्वयाना नाटी सुनाटी परिगानगीता ॥"

ये नटनारायणकी स्त्री हैं। नारदमतसे इन्हें कर्णाटकी स्त्री बतलाया है और हनुमन्मतानुसार ये दीपककी स्त्री मानी जाती हैं।

नाटित (सं० त्रि०) नट-णिच्-क्त। १ कृताभिनय, जिसका अभिनय किया गया हो। (पु०) २ अभिनय।

नाटितक (सं० क्ली०) नाटित स्वार्थे कन्। नटकृत्य, वह जो अभिनय करता हो।

नाटेय (सं० पु०) नट्या अपत्यम्। नटी-ढक्। नटीकी सन्तति।

नाटेर (सं० पु०) नट्याः अपत्यं नटी-ढ्रक्। नटीसुत, नटीकी सन्तान।

नाटोर—१ बङ्गाल प्रान्तके अन्तर्गत राजशाही जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ७´से २४° ४८´ उ० तथा देशा० ८८° ५१´से ८९° २१´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४२२३८८ और भूपरिमाण लगभग ८१६ वर्गमील है। इसमें ११ शहर और १७२७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° २६´ उ० और देशा० ८८° १´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८६५४ है। पहले यही स्थान जिलेका प्रधान सदर था। लेकिन यहांकी आबहवा अच्छी न होनेके कारण रामपुर-बोलियामें सदर उठ कर चला गया। यहां १८६८ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां उपविभाग सम्बन्धीय कार्यालय और एक छोटा कारागार है जिसमें केवल १२ कैदी रहे जाते हैं।

इतिहास—लस्करपुर परगनेके नाटोर मौजेमें कामदेवराय नामक एक ब्राह्मण रहते थे। ये पहले बारईहाटीके तहसीलदार थे। इनके तीन पुत्र थे, रामजीवन, रघुनन्दन और विष्णुराम। तृतीय पुत्र पिताके जीते-जी इस लोकसे चल बसे। द्वितीय पुत्र रघुनन्दन पुटिया-राजवंशोद्भव दर्पनारायणके यहां मुख्तारका काम करने लगे। धीरे धीरे ये मुसलमानी आईनसे अच्छी तरह जानकार हो कर नवाब मुर्शिदकुलीखांके दीवान भी हो गए थे। नवाब साहबने इनके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो कर इन्हें मन्दाज परगनेका जमींदार बनाया और साथ साथ राजाकी उपाधि भी दी। ये ही नाटोर राजवंशके आदि राजा हैं। पीछे रघुनन्दनने मन्दाज परगना अपने बड़े भाई रामजीवनके हाथ सौंप दिया। रामजीवनने १७१४ ई०में राजाकी उपाधि पाई। धीरे धीरे ये रामकृष्ण आदि अन्यान्य जमींदारोंकी विषय-सम्पत्ति खरीद कर अपने राज्यकी उन्नति करने लगे। १७०६ ई०में दिल्लीके सम्राट् बहादुरशाहने राजा रामजीवनको 'राजाबहादुर'की सनद और बाईस खिल-अत दी, तथा राजछत्र, दण्ड आदि व्यवहार करनेका आदेश दिया।

राजा रामजीवन और राजा रघुनन्दन दोनोंके पास राज्यरक्षाके लिए सेना थी। ये दोनों स्वयं दीवानी और फौजदारीका विचार करते थे। बाद जब निःसन्तानावस्थामें दोनोंकी मृत्यु हुई, तब राजा रामजीवनकी पत्नीने रामकान्तरायको गोद लिया। दुःखका विषय, कि ये भी बिना कोई सन्तान छोड़े परलोकको सिधारे। इनकी स्त्रीका नाम रानी भवानी था। स्वामीके मरनेके बाद ये ५८ वर्ष तक और जीती रहीं। इनकी यशोकीर्त्ति बङ्गालमें सब जगह फैली हुई है। इन्होंने काशीमें अनेक मन्दिर, घाट और धर्मशाला आदिका निर्माण किया था। इसके अतिरिक्त बङ्गदेशके उत्तर पश्चिम अञ्चलमें और अन्यान्य स्थानोंमें पुष्करिणी खनन, पान्थनिवास और अन्नसत्र स्थापन आदि अनेक प्रकारके सत्कार्यकी बातें सुनी जाती हैं। ब्राह्मण और गोस्वामीको भी इन्होंने अनेक निष्कर जमीन दान दी थीं।

रानी भवानी देखो।

रानी भवानीने महाराज रामकृष्णको गोद लिया था। बालिग होने पर इन्होंने सम्राट् शाहआलमसे 'महाराजाधिराज पृथ्वीपति बहादुर'की उपाधि पाई थी। अपनी स्वाधीनताकी अक्षुण्ण रखनेमें अपनेको असमर्थ देख इन्होंने वैराग्य-अवलम्बन किया। इनके दीवान

आदि जितने कर्मचारी थे, वे सब कोई उनका राज्य हड़प करने लगे। पीछे महारानीने महाजनोंसे फिरसे राज्य भार ग्रहण करना चाहा, किन्तु कम्पनीने उनका आवेदन ग्राह्य न किया।

१८८५ ई०में महाराज रामकृष्णकी मृत्यु हुई। पीछे उनके दो लड़के महाराज विश्वनाथ और शिवनाथने राज्यशासन सुचारुरूपसे किया। ये दोनों विलासी थे। महाराज विश्वनाथकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। उनकी पत्नी महारानी श्याममणिने महाराज गोविन्दचन्द्रको गोद लिया। बालिग होते न होते वे अकाल कालके गालमें चल बसे। बाद महाराज जगदिन्द्रनाथ राय राजा हुए। फिलहाल यहाँकी आय पहलेसे बहुत कम गई है।

नाट्य (सं० क्लो०) नटानां कार्यं नट-ष्यञ्। (कर्मो गोत्र-चिद-चादिक ष्यञ्। पा ५।१।१२८) १ नृत्य गीत और वाद्य तीनोंका काम। इसका नामान्तर तौर्यत्रिक है।

नटकर्मका नाम नाट्य है अर्थात् नटों द्वारा जो नाच-गान आदि किया जाता है, उसे ही नाट्य कहते हैं। अभिनयको नाट्य कह सकते। २ नटसमूह। ३ नाट्यारम्भक शुभ नक्षत्र वह नक्षत्र जिसमें नाट्यका आरम्भ किया जाता है। अनुराधा, धनिष्ठा पुष्या, हस्ता चित्रा स्वाती ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रोंमें नाटक आरम्भ करना चाहिए।

नाट्यशास्त्रकी उत्पत्तिका विषय सङ्गीतदामोदरमें इस प्रकार लिखा है—पूर्व समयमें एक दिन इन्द्रने ब्रह्मासे नाट्यशास्त्र बनानेका अनुरोध किया था। ब्रह्माने इस प्रकार अनुरुद्ध हो कर सभी वेदोंसे सार ले कर पञ्चम नाट्यवेद बनाया। यह उपवेद या गन्धर्ववेद नामसे प्रसिद्ध है। महादेवने पहले पहल यह उपवेद ब्रह्माको सिखलाया था, बाद ब्रह्माने भरतको। भरतमुनिसे ही इस संसारमें नाट्यशास्त्रका प्रचार हुआ है। शिव, ब्रह्मा और भरतमुनि इसके मूल माने जाते हैं।

(सङ्गीतदामोदर)

देवर्षि और राजा आदिके पूर्व चरितकी आलोचना करके नाट्यमन्दिरमें यह अभिनीत होता है। इस अभिनयसे चतुर्वर्ग फल लाभ होते हैं। नाट्य सभीका चित्तरञ्जक है। जो मनुष्य जो भाव पसन्द करता है वह उसी भावको नाट्य द्वारा साफ साफ अनुभव कर सकता है। इस कारण सर्वमनोरञ्जक नाट्य किसको अच्छा नहीं लगता। ४ चेष्टाके द्वारा प्रदर्शन, नकल स्वांग। ५ स्वांगके द्वारा चरित्रदर्शन, अभिनय।

नाट्यकार (सं० पु०) नाटक करनेवाला, नट।

नाट्यधर्मिका (सं० स्त्री०) नाट्ये धर्मीप्रवर्तका क्रियाया इति ठन्। दर्शमास आलोक तोय विभक्त्य नटकृत्य भाव भाग और बाजेके रूपमें नटकर्म।

नाट्यप्रिय (सं० पु०) नाट्य प्रिय यस्य। महादेव, शिव।

नाट्यमन्दिर (सं० पु०) नाट्यशाला।

नाट्यरासक (सं० पु०) एक प्रकारका उपरूपक दृश्यकाव्य। इसमें सिर्फ एक ही अङ्क होता है। नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, उपनायक पीठमर्द होते हैं। इसमें अनेक प्रकारके गान और नृत्य होते हैं।

नाट्यशाला (सं० स्त्री०) नाट्यस्य नृत्यगीतादेः शाला गृह। १ प्रासादद्वार समीप गृह, वह घर जो राजभवनके दरवाजेके पास हो। २ वह स्थान जहाँ पर अभिनय किया जाय, नाटकघर।

नाट्यशास्त्र (सं० पु०) १ नृत्य, गीत और अभिनयकी क्रिया। भाव्य देखो। २ एक प्राचीन ग्रन्थ जिसकी रचना भरतमुनिने की।

नाट्यालङ्कार (सं० पु०) नाट्यस्य अलङ्कार। नाटकका रूपकहेतु वह विशेष अलङ्कार जिसके आनेसे नाटकका सौन्दर्य अधिक बढ़ जाता है। सङ्गीतदामोदरमें ऐसे अलङ्कारोंकी संख्या ३८ और साहित्यदर्पणमें ३३ मानी गई है। इनके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

१ आशी—अभिलषित नामकी सूचनाको आशी कहते हैं। २ आक्रन्द—शोक करके विलापका नाम आक्रन्द है। ३ कपट—अपूर्व अन्यरूप ग्रहण करनेको कपट कहते हैं। ४ अक्षमा—अपमान अन्यमान और परिभव सह्य नहीं करनेका नाम अक्षमा है। ५ गर्व—अहङ्कारके साथ वाक्यप्रयोगका नाम गर्व है। ६ उद्यम—कार्यारम्भका नाम उद्यम है। ७ आश्रय-ग्रहण

वशतः उत्कृष्ट अवलम्बनको आश्रय कहते हैं। ८ उपा-सन—जो अपनेको साधु समझता है, लेकिन वह यथार्थमें साधु नहीं है, ऐसे व्यक्तिके प्रति जो उपहास किया जाता है, उसे उपासन कहते हैं। ९ स्पृहा—रमणीय वस्तुके मनोहारित्वका अवलोकन करके उस वस्तुको पानेकी इच्छाका नाम स्पृहा है। १० क्षोभ—दहने तिरस्कार करके पीछे मनमें जो दुःख होता है, उसका नाम क्षोभ है। ११ पश्चात्ताप—मोह वा अनवधानताप्रयुक्त अवज्ञात विषयका जो ताप है, उसे पश्चात्ताप कहते हैं। १२ उपपत्ति—कार्यसिद्धिके लिए कारणोपन्यासको अर्थात् हेतु दर्शनको उपपत्ति कहते हैं। १३ आशंसा—अभीष्ट लाभके विषयमें मनके व्यापारको आशंसा कहते हैं। १४ अध्यवसाय—प्रतिज्ञात विषयमें दृढ़तर प्रयत्नका नाम अध्यवसाय है। १५ विसर्प—अनिष्ट फलप्रद प्रारब्धका नाम विसर्प है। १६ उल्लेख—कभी कार्य ग्रहण करने-का नाम उल्लेख है। १७ उत्तेजन—स्वकार्य सिद्धके लिए जो प्रयोग किया जाता है, उसका नाम उत्तेजन है। १८ परीवाद—भर्त्सनाको परीवाद कहते हैं। १९ नीति—शास्त्रानुसार कथनको नीति कहते हैं। २० अर्थविशे-षण—कथित विषयके तिरस्काररूपसे बार बार कहनेका नाम अर्थविशेषण है। २१ प्रोत्साहन—उत्साहयुक्त वाक्य द्वारा किसी मनुष्यको प्रोत्साहित करनेका नाम प्रोत्सा-हन है। २२ साहाय्य—विपद्‌कालमें आनुकूल्य करनेका नाम साहाय्य है। २३ अभिमान—अहङ्कारका नाम अभि-मान है। २४ अनुवृत्ति—विनयपूर्वक अनुसरणका नाम अनुवृत्ति है। २५ उत्कीर्त्तन—अतीत वृत्तान्त कहनेका नाम उत्कीर्त्तन है। २६ याच्ञा—स्वयं जा कर अथवा दूत द्वारा किसी प्रकारकी प्रार्थना करनेका नाम याच्ञा है। २७ परिहार—अनुष्ठित अनुचित कार्यको परिहार कहते हैं। २८ निवेदन—अवज्ञात विषयके कर्त्तव्य निश्चयका नाम निवेदन है। २९ प्रवर्त्तन—कार्यका साधुरूप आचरणका नाम प्रवर्त्तन है। ३० आख्यान—पूर्ववृत्तान्त-कथनका नाम आख्यान है। ३१ युक्ति—कार्यावधारणका नाम युक्ति है। ३२ प्रहर्ष—अति आनन्दका नाम प्रहर्ष है। ३३ शिक्षा—उपदेश देनेका नाम शिक्षा है। (साहित्यद० ६ परि)

नाट्योक्ति (सं० स्त्री०) नाट्ये नृत्यगीतादौ या उक्तिः। १ नाटकविषयक वाक्य, वे विशेष विशेष सम्बोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियोंके लिए नाटकोंमें आते हैं। जैसे, ब्राह्मणके लिए आर्य, क्षत्रियके लिए महाराज, सखीके लिए हला, नीच व्यक्तिके लिए हण्डा, चेटीके लिए हञ्जा, स्वामीके लिए आर्यपुत्र, राजश्यालकके लिये राष्ट्रीय, समान मनुष्यके लिए हंहो, राजाके लिए देव, सार्वभौमके लिए भट्ट, भगिनीपतिके लिये आवुत्त, वेश्याके लिए अज्जुका, विद्वान् व्यक्तिके लिए भाव, जनक-के लिए आवुक, कुमारके लिए युवराज अथवा भर्त्तृ-दारक, राजाके लिए देव वा भट्टारक, राजकन्याके लिये भर्त्तृदारिका, कृताभिषेका रानीके लिये देवी, अन्य राज-पत्नियोंके लिए भट्टिनी, माताके लिए अम्बा, बालाके लिये वास, पूज्यव्यक्तिके लिए मारिष और ज्येष्ठा भगिनीके लिये अत्तिका इत्यादि।

नाठा (हिं० पु०) वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो।

नाड (सं० पु०) नाल खण्ड। नाठ देखो।

नाड़ (हिं० स्त्री०) ग्रीवा, गर्दन। नार देखो।

नाड़पित् (सं० स्त्री०) कण्वमुनिका आश्रम।

नाड़ा (हिं० पु०) १ सूतकी वह मोटी डोरी जिससे स्त्रियां घांघरा या धोती बांधती हैं, इजारबंद, नीवि। २ लाल या पीला रंगा हुआ गंडेदार सूत जो देवताओं को चढ़ाया जाता है।

नाडि (सं० स्त्री०) नाडयतीति नड भ्रंशे नड-णिच्-इन्। नाड़ी।

नाड़िक (सं० क्ली०) नाड़िरिव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) कन्। १ कालशाक, एक प्रकारका साग जिसे पटुआ भी कहते हैं। २ नाडी। ३ घटिका, दण्ड।

नाड़िका (सं० स्त्री०) नाड़ी एव स्वार्थे कन् टाप्। १ पट्‌चण, घड़ी। पर्याय—साधारिका, घटिका। २ काल-शाक, एक प्रकारका साग।

नाड़िकेल (सं० पु०) नारिकेल, रस्य डुलम्। नारिकेल, नारियल।

नाड़िचीर (सं० क्ली०) नाड़िरिव चीरं यत्र। निर्वेष्टन, नली।

नाड़िन्धम (सं॰ पु॰) नाड़ीं धमति नाड़ी ध्मा-खश्, ततो मुमागमः पूर्वह्रस्वश्च। १ स्वर्णकार, सोनार। अधमोत्तमविरोधात् पुरुषं दुर्नियामे नाड़ीं धमनि उन्नाययति इति। (त्रि॰) २ प्राणघातक, प्राणको अन्त करनेवाला। ३ भयप्रदर्शनकारी जिसे देखने से नाड़ी छिन्न जाय, डरानेवाला, भयङ्कर। ४ नाड़ि चालनाकारी, नाड़ियोंको हिलानेवाला। ५ नलीको फूंकनेवाला।

नाड़िन्धय (सं॰ पु॰) नाड़ीं धयतीति धेट् पाने खश् ततो मुमागमः। नाड़ीपात्रकर्त्ता नल द्वारा पीनेवाला।

नाड़िपत्र (सं॰ क्ली॰) नाड़िरिव पत्र यस्य। नाड़ीच शाकभेद, एक प्रकारका साग।

नाड़िया (हिं॰ पु॰) चिकित्सक, वैद्य।

नाड़ी (सं॰ स्त्री॰) नाड़ि-ङीष्। १ नाल, डंठल। इकारान्तोंको भी नाड़ी कहते हैं। २ शिरा। ३ गण्डदूर्वा, गांडर घास। ४ कुहनचर्या। ५ षट् क्षणकाल।

शिराके नाड़ीका पर्याय—धमनि, शिरा, नाड़ि नालि, धमनी, सिरा, धरणी, धरा, तन्तुकी, जीवितज्ञा, शिरा।

देहस्थित शिराओंको नाड़ी कहते हैं। सुश्रुत, भाव प्रकाश और तन्त्रशास्त्रमें इसका विशेष विवरण लिखा है—

"सार्द्धत्रिकोटी नाड़ीनामाकरस्य चकेवलम्।
कथेव योऽनुमिच्छामि तद्दस्व मयि प्रभो॥"

(तोड़लतन्त्र ८ उ॰)

भगवतीने महादेवसे पूछा था 'इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियां के आयत हैं अर्थात् इस शरीरमें नाड़ीकी संख्या साढ़े तीन करोड़ है। इन सबका विवरण जाननेकी मेरी उत्कट इच्छा है, अतएव आप बतला कर मेरे इस कौतूहलको शान्त कीजिये।' इस पर शिवजीने कहा था, "शरीरमें जिस जिस स्थानमें नाड़ियां हैं, उनका हाल कहता हूं, सुनो। लोमकूपमें ७५ लाख नाड़ी हैं, हाथ, मुंह और पैरमें ९ लाख, उदर और नाभिदेशमें ९ लाख। समस्त नाभिमें ८ लाख, पार्श्वदेश, चर्म और समस्त सन्धि स्थानमें ८ लाख नाड़ियां हैं। इन सब नाड़ियोंमें इड़ा पिङ्गला, सुषुम्ना, चित्रिणी और ब्रह्म नाड़ी ये पांच नाड़ियां तथा कुहू, शङ्खिनी, गान्धारी हस्तिजिह्विका, नहिंसी और जिह्वा ये ग्यारह नाड़ियां सुषुम्नासे उत्पन्न हुई हैं। शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ नाड़ी है, उन्हें स्थूल और सूक्ष्म समझना चाहिये। ये सब नाड़ियां नाभिदेशसे निकल कर तिर्यक् और ऊर्ध्व भावसे सारे शरीरमें फैल गई हैं। नाभिकन्द ही इन सब नाड़ियोंका मूल है। इन सब नाड़ियोंमें ७२ हजार स्थूल नाड़ी हैं। शरीरमें जो नाड़ी धमनी कह लाती है, वे पञ्चेन्द्रियकी गुणवाहिनी और अन्या हैं। इनमेंसे ७ सौ सूक्ष्म नाड़ी हैं। ये सब नाड़ियां अन्नादि का रस समूचे शरीरमें वहन करती हैं और शरीरको पुष्ट बनाये रखती हैं। मकड़ीके चारों तरफ जिस तरह उसका जाला रहता है, उसी तरह नाड़ियां भी समूचे शरीरमें फैली हुई हैं। इन ७ सौ नाड़ियोंमें २४ परिस्फुट हैं। पुरुषकी दाहिनी ओरकी और स्त्रीकी बाईं ओरकी नाड़ी देख कर परीक्षा करनी चाहिये।"

नाड़ीको शिरा कहते हैं। इसका विषय भावप्रकाश और सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—शिरा या नाड़ीकी संख्या ७ सौ है। जलप्रणाली द्वारा जिस प्रकार उद्यान अथवा खेत सींचा जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर इन सब नाड़ियोंसे रसासिक्त होता है। इससे अङ्ग प्रत्यङ्गको आकुञ्चन प्रसारणादिके कार्य सम्पन्न होते हैं। वृक्षपत्रके मध्यस्थित डण्ठलसे जिस प्रकार शाखाप्रशाखा-विशिष्ट सूक्ष्म सूक्ष्म शिरायें चारों ओर निकल कर पत्तेको ढके रहती हैं, उसी प्रकार नाभिदेशसे नाड़ी अर्थात् शिरायें निकल कर और शाखाप्रशाखामें विभक्त हो कर चारों ओर शरीरमें फैली हुई हैं।

शरीरकी समस्त शिरायें नाभिमूलमें संलग्न हैं। जिस प्रकार चक्रके मध्यस्थित नाभिदेशके चारों ओर आरे लगे हुए हैं नाभिके चारों ओर भी उसी प्रकार शिरायें लगी हुई हैं।

मूल शिरा ४० हैं जिनमेंसे वायुवाहिनी १०, पित्तवाहिनी १०, कफवाहिनी १० और रक्तवाहिनी १० हैं। वायुवाहिनी नाड़ीकी संख्या १७५ है। वायुका स्थान पक्वाशय है। पित्तवाहिनी नाड़ी १७५ है। आमाशय और पक्वाशयके मध्यस्थानको पित्तस्थान कहते हैं। कफवाहिनी नाड़ी १७५ है। आमाशय ही श्लेष्माका

स्थान है। रक्तवाहिनी नाड़ी १७५ है। यह यकृत् और प्लीहाके स्थानमें अवस्थित प्रत्येक बाहु और पदमें वायु वाहिनी नाड़ियां पचीस पचीस करके रहती हैं। कोष्ठदेशमें ३४, उसके मध्य मलद्वार और मेढ्रदेशमें ८, दोनों बगलमें दो दो करके ४, पीठमें ६, उदरमें ६, वक्षमें १० स्कन्धसन्धिके ऊपरी भागमें ४१, उसके मध्य ग्रीवादेशमें १४, दोनों कानोंमें ४, जिह्वामें ९, नासिकामें ६, दोनों चक्षुमें ८ ये १७५ वायुवाहिनी शिराएं हैं। जिस प्रकार वायुवाहिनी शिरायें विभक्त हैं, उसी प्रकार अन्यान्य शिराओंको भी जानना चाहिये। केवल अन्तर इतना ही है, कि पित्तवाहिनी, रक्तवाहिनी और श्लेष्मवाहिनी शिराएं दोनों चक्षुमें दश दश करके और दोनों कर्णमें दो दो करके रहती हैं। इस प्रकार ७०० शिरायें शरीरके भीतर अवस्थित हैं।

वायु जब अपनी शिराके मध्य विचरण करती है, तब शारीरिक यन्त्रक्रियाका व्याघात नहीं होता और न बुद्धिशक्ति ही मोहप्राप्त होती है। इस कारण नाना प्रकारकी गुणोत्पत्ति हुआ करती है। वायुके अपनी शिरामें कुपित रहनेसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। पित्तके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे शरीरकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, अन्नमें रुचि और शरीरमें स्वास्थ्य प्राप्त होता है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण भी उत्पन्न होते हैं। पित्तके अपनी शिरामें कुपित रहनेसे भांति भांतिके पित्तरोग हुआ करते हैं।

श्लेष्माके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे शरीरकी चिक्कणता, बल, स्फूर्तिभाव, सन्धिस्थानकी दृढ़ता होती है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु यदि यह शिराके मध्य कुपित रहे, तो श्लेष्मजन्य नाना प्रकारके रोग होते हैं। रक्तके अपनी शिरामें सञ्चरण करनेसे सब धातुओंकी पुष्टि, शरीरके वर्ण और स्पर्शज्ञानकी तीक्ष्णता होती है तथा अन्यान्य प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। रक्तके अपनी शिरा कुपित रहनेसे रक्तजन्य नाना प्रकारके रोग हुआ करते हैं।

जिन सब शिराओंकी बात कही गई, वे केवल पित्त अथवा केवल श्लेष्मा वहन करती हैं, सो नहीं। क्योंकि समस्त दोष कुपित और वर्द्धित हो कर जब शरीरके मध्य फैल जाते हैं, तब वे दोष एक दूसरेकी शिरामें प्रवेश कर सञ्चरण करते हैं। जो सब शिरायें वायु द्वारा पूर्ण होती हैं, वे अरुण वर्णकी; पित्तवाहिनी शिराएं उष्ण और नीलवर्णकी; कफवाहिनी शिराएं शीतल और गुरु तथा रक्तवाहिनी शिरायें रक्तवर्णकी और न अधिक ठंडी हैं और न अधिक उष्ण।

इन सब शिराओंमें जब कोई शिरा विद्ध हो जाती है, तब शरीरकी विकलता होती है, केवल विकलता ही नहीं, मृत्युकी भी सम्भावना हो जाती है।

इन अवेध्य शिराओंका विषय संक्षिप्त तौरसे लिखा जाता है। हाथ और पैरमें ४००, कोष्ठदेशमें १३६, मस्तकमें ६४, इनके मध्य हाथ और पांवमें १६ और कोष्ठदेशमें ३२ तथा मस्तकके ऊपरी भागमें ५०, इन सब शिराओंको विद्ध करना कर्त्तव्य नहीं है। हाथ और पैरमें जो एक सौ शिराएं कही गई हैं उनमेंसे जलधरा शिरा एक, उर्वी नामक मर्मस्थानमें स्थित दो और लोहिताक्ष नामक मर्मस्थानमें एक हैं, प्रत्येक हाथ और पैरमें उसी प्रकार चार चार करके १६ अवेधा शिरायें हैं।

पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थलमें अवेध्य शिराएँ ३२ हैं जिनमेंसे विटप और कटिक-तरुण नामक मर्मद्वयमें ८ हैं, प्रत्येक पार्श्वमें जो आठ आठ करके शिराएँ हैं, उनके मध्य भी ऊर्ध्वगामिनी दो, उभयपार्श्वमें पार्श्वसन्धिस्थित दो हैं, पृष्ठदण्डके दोनों ओर जो २४ शिराएँ हैं उनमेंसे दो दो करके चार बृहती नामक शिरा, उदरस्थ शिराके मध्य मेढ्रदेशमें रोमराजीके दोनों बगल दो दो करके चार हैं। वक्षःस्थलमें जो ४० शिराएँ हैं उनमेंसे हृदयदेशमें दो दो करके छः, स्तनमूल, स्तनरहित, अपलाप और अपस्तम्भ इन चार मर्मस्थानोंमें ८, पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थित शिराओंमेंसे ३२ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिए। स्कन्धसन्धिके ऊपरी भागमें १६४ शिराएँ हैं जिनमेंसे कण्ठ और ग्रीवादेशमें ५६ हैं। इन ५६के मध्य कण्ठनाड़ीके दोनों बगल शिरामातृक ८, नीला दो, मन्या दो, कृकाटिक नामक मर्ममें दो, और विधुर नामक मर्ममें दो, ग्रीवादेशस्थ इन १६ शिराओंको विद्ध करना कर्त्तव्य नहीं है। हनुद्वयके दोनों बगल आठ आठ करके शिराएँ हैं जिनमेंसे दो दो करके चार सन्धिधमनी अवेध्य हैं।

जिह्वामें ३६ सिराएं हैं जिनमेंसे रसवाहिनी दो और वाग्वाहिनी दो ये चार सिराएं अवेध्य हैं।

नासिकामें एक और नेत्रकी ५६ सिराओंमेंसे अपाङ्ग नामक एक एक करके दो सिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। आवर्त्त करके मर्ममें दो, अपनी नामक मर्ममें एक और शङ्ख नामक मर्मद्वयमें दश सिराओंमेंसे शङ्खसन्धिके स्थानमें एक एक करके दो सिराए अवेध्य हैं।

मस्तक देशमें बारह सिराएं हैं जिनमेंसे उत्क्षेप नामक मर्ममें दो, प्रत्येक सीमन्तमें एक एक करके पांच और अधिपति नामक मर्ममें एक सिरा है। ये सब अवेध्य हैं।

पत्रके मूलसे जिस तरह चक्राकारसे शाखा-प्रशाखा निकल कर उसको व्याप्त रखती है, उसी तरह नाभि-मूलसे सिराएं निकल कर देहमें व्याप्त और फैली हुई हैं। (सुश्रुत)

सिरा, धमनी, स्रोत आदि सभी नाड़ीके भेद हैं। धमनीका विषय धमनी और स्रोतमें तथा सिराका विषय सिरा शब्दमें देखो।

सुश्रुताचार्यके मतसे नाभिदेश ही सिरा और धमनीका मूल है। तन्त्रशास्त्रमें भी ऐसा ही लिखा है। किसी किसी तन्त्रमें ऐसा देखनेमें आता है, कि समस्त नाड़ियां मेरुदण्डसे निकली हैं।

"ह्रीं ह्रीं त्रिपञ्चधे नाड्यो चतुर्भिः प्रतिष्ठिता।
मेरुदण्डे स्थितास्ता वै सूर्य अभिमताः ॥" (तन्त्र)

मेरुदण्डकी प्रत्येक ग्रन्थिमें दो दो करके नाड़ियां निकल कर अङ्ग प्रत्यङ्ग और चली गई हैं। आधुनिक शारीर व्यवच्छेद विद्यामें ऐसा ही देखनेमें आता है। आयुर्वेदमें भी, मेरुदण्डके ऊर्ध्वके अधोभागमें नाड़ियां लक्षित हैं, ऐसा कहा है। यथा—

"कर्णमूलमधः प्राप्य तृणधारं कन्धरम्।
धमन्यास्त्वङ्कुरे शरीरे मध्य सिरा ॥" (सुश्रुत)

इस प्रकार शरीरके अन्तर्गत मस्तिष्क, मेरुदण्ड और तदन्तर्गत सिराओंके विषयमें आधुनिक पण्डितोंके साथ एक मत दिखनेमें आता।

सुश्रुताचार्यका अभिप्राय—गर्भस्थ बालकको शरीर गठन और वर्द्ध-पोषणमें जिस रसका प्रयोजन पड़ता है, जननीके शरीरसे उसी रस ग्रहण करनेके लिये जो नाड़ी है वह बालककी नाभिदेशमें संलग्न है। इस कारण नाभिको ही समस्त नाड़ियोंका मूल बतलाया गया है।

हठयोगमें भी नाड़ीका विषय विशेषरूपसे लिखा है। किस नाड़ीके किस समयमें किस भावसे बहनेसे शुभ और अशुभ फल होता है उसका विषय हठयोगमें वर्णित है। हठयोग शब्द देखो।

नाड़ीप्रकाशमें नाड़ी देखनेका नियम इस प्रकार लिखा है। इसी नाड़ीकी गति द्वारा शरीरका जो शुभाशुभ फल जाना जाता है, उसका विषय यहां संक्षिप्त भावसे लिखा जाता है—

'वामभागे स्त्रिया योज्या नाड़ी पुंसस्तु दक्षिणे।
इति प्रोक्ता मया देवी सर्वदेहेषु देहिनाम् ॥" (नाड़ीप्र०)

स्त्रियोंकी बाईं ओरकी और पुरुषोंकी दाहिनी ओरकी नाड़ीकी परीक्षा करनी चाहिये। अङ्गुष्ठमूलमें जीवसाक्षिणी जो धमनी है, उसकी गतिके अनुसार देहधारियोंका सुख और दुःख जाना जाता है अर्थात् नाड़ी देख कर शरीरकी सुस्थता और अस्वस्थताका ज्ञान हो जाता है।

वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व सन्निपात, साध्य और असाध्य विकार नाड़ी द्वारा जाना जा सकता है।

नाड़ीपरीक्षाका समय।—प्रातःकालमें आचारपूत और सुखोपविष्ट हो कर सुखासीन व्यक्तिकी नाड़ी परीक्षा करनी चाहिये। जो नाड़ीकी परीक्षा करेंगे, उन्हें और जिसकी नाड़ी देखी जायगी, उसे भी स्थिर भावसे बैठना चाहिये। प्रातःकाल ही नाड़ी परीक्षाका उपयुक्त समय है। मध्याह्न कालादिमें चपलता अधिक रहती है, इस कारण उस समय नाड़ी देखना प्रशस्त नहीं है।

नाड़ी देखनेका निषिद्धकाल।—सद्यःस्नात, सद्यःभुक्त, क्षुधातृष्णातुर, आतपसेवी (जो तुरत धूप और आगके पाससे आया हो), तैलाभ्यङ्ग लिप्त, निद्रावसानकाल और भोजन करनेके बाद नाड़ी परीक्षा नहीं करनी चाहिये।

वायु, पित्त और कफ ये तीन नाड़ियां यथाक्रम बहती

हैं। पहले वातनाड़ी, बीचमें पित्तनाड़ी और अन्तमें श्लेष्मनाड़ी प्रवाहित होती है। शरीरके सुस्थ रहनेसे नाड़ी स्वच्छ अर्थात् जड़तारहित होती है। इसमें विशेषता यह है, कि प्रातःकालमें नाड़ी स्निग्ध, दो पहरमें उष्ण और सायंकालमें कुछ वेगयुक्त होती है। शरीरके सुस्थ रहनेसे नाड़ीकी गति इसी प्रकार होती है।

शरीर यदि अस्वस्थ रहे, तो नाड़ीकी विशेषरूपसे परीक्षा करनी चाहिये। किस किस दोषकी अधिकता होनेसे शरीर अस्वस्थ हो जाता है, वह इसी नाड़ी द्वारा जाना जाता है।

वायुकी अधिकता होनेसे नाड़ी वक्रगति, पित्तकी अधिकतासे चञ्चल और श्लेष्माका प्रकोप होनेसे नाड़ी स्थिर होती है अर्थात् वायुकी अधिकता हो कर जिस समय शरीर अस्वस्थ हो जाता है, उस समय नाड़ीकी गति वक्र, पित्तमें चञ्चल और श्लेष्मामें स्थिर होती है। मिश्र-दोषमें नाड़ीकी गति भी मिश्र हुआ करती है। यही एक प्रकारकी साधारण नाड़ीगति है।

जिस समय पित्तकी अधिकता होती है, उस समय नाड़ी काक, लावक और भेकादिकी चाल-सी चलती है, श्लेष्माकी अधिकतामें राजहंस, मयूर, पारावत, कपोत, गज और वराङ्गनाकी तरह तथा वायुकी अधिकतामें नाड़ी वृश्चिक गतिकी तरह चलती है।

द्वन्द्वज नाड़ीगति।—जिस समय नाड़ी कभी तो सांप-की तरह और कभी भेदकी तरह चलती है, उस समय समझना चाहिये कि वायु और पित्तका प्रकोप है। जब यह कभी सांपकी तरह, कभी राजहंसकी तरह चले, तो वातश्लेष्मका प्रकोप और जब कभी भेककी तरह अथवा मयूरकी तरह चले, तो पित्तश्लेष्मका प्रकोप समझना चाहिए।

त्रिदोषज नाड़ीगति।—यदि नाड़ी कभी उरगादि-गति, कभी लावकादि अथवा हंसादिकी तरह गति-विशिष्ट हो, तो त्रिदोषकुपित हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। इस त्रिदोषमें नाड़ीकी गति कभी तेज और उसी समय कभी मन्द हो जाती है।

जिस समय नाड़ी पित्तादि गतिक्रमसे अर्थात् वायु, पित्त और कफके अनुसार चलती है, उस समय रोगीको सुखसाध्य समझना चाहिए। जिस समय नाड़ी धीरे धीरे अथवा शिथिलभावसे चले अथवा कभी अत्यन्त व्याकुल में रह रह कर लयप्राप्त हो जाय और फिर उसी समय अत्यन्त सूक्ष्मनाड़ीका अनुभव हो, तो रोगीको असाध्य जानना चाहिए अर्थात् उसकी मृत्यु निकट आ गई, ऐसा अस्थिर करना चाहिए। जिसकी नाड़ीकी गति रथचक्रकी तरह चले अर्थात् कोई नाड़ी स्थिर न रहे, तो रोगको असाध्य जानना चाहिए। जिसका शरीर अत्यन्त उत्तप्त लेकिन नाड़ी शीतल अथवा नाड़ी उत्तप्त और शरीर शीतल हो, तो उसकी अवश्य मृत्यु होगी, इसमें संशय नहीं।

त्रिदोषमें मृत्युके समय भी नाड़ी निश्चल हो कर स्पन्दित होती है। जो नाड़ी अत्यन्त उच्च, अथवा अत्यन्त स्थिर, सूक्ष्म अथवा वक्रगतियुक्त हो, तो उस रोगको असाध्य जानना चाहिए।

मूर्च्छा, शोक, भय आदिमें नाड़ी त्रिदोषजकी तरह चलती है। किन्तु वह स्थायी नहीं है, मूर्च्छाका ह्रास हो जानेसे क्रमशः नाड़ी स्वाभाविकी चालसे चलने लगती है। जब तक नाड़ी स्वस्थानच्युत न हो जाय, असाध्य होनेपर भी तब तक चिकित्सा करना विधेय है।

जिस समय जिस रोगीकी नाड़ी मशीलतावत् क्षय और मसृण हो जाती है, वक्रगतिसे चलने लगती है, कभी सर्पगतितुल्य अत्यन्त पुष्ट हो कर फिर क्षीण हो जाती है, उसकी उस मासके अन्तमें मृत्यु अवश्य होती है।

जिसकी नाड़ी थोड़े ही समयके भीतर यदि कभी अतिवेगवान् और कभी शान्त हो जाय और उसे यदि शोथ न रहे, तो उसकी मृत्यु सात दिनमें होगी, ऐसा जानना चाहिये।

ज्वररोगमें नाड़ीगति।—ज्वर होनेसे नाड़ी उष्ण और वेगयुक्त होती है। पित्त छोड़ कर उष्ण नहीं हो सकता, उष्णता ही ज्वरका प्रधान लक्षण है। इससे ज्वर होनेसे ही पित्तप्रकोप हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। वायुकी अधिकता हो कर ज्वर होनेसे नाड़ी वक्र और धावमान होती है। सहज वातजज्वरमें नाड़ी सौम्य, सूक्ष्म, स्थिर और मन्द, तीव्रमारुत ज्वरमें स्थूल और कठिनभावमें

शीघ्रगामी तथा श्लेष्मप्रकोपमें नाड़ी तन्तुसम मन्द और शीतल होती है।

पित्तज्वरमें नाड़ी द्रुत, सरल, दीर्घ और शीघ्रगामी होती है।

द्वन्द्व ज्वरमें नाड़ीगति।—वात और पित्तके दूषित होनेसे नाड़ी चञ्चल, तरल, स्थूल और कठिन; वात श्लेष्म-ज्वरमें ईषदुष्ण और मन्द तथा पित्तश्लेष्मामें नाड़ी सूक्ष्म, शीतल और स्थिर होती है।

भूतज्वरमें नाड़ी बहुत तेजसे चलती है। व्यायाम, भ्रमण चिन्ता, भय और शोकमें नाड़ीकी गति नाना प्रकारकी हो जाती है। कुछ समय बाद वह नाड़ीगति सुखकी तरह चलने लगती है।

अजीर्णरोगमें नाड़ी कठिन, जड़, प्रबल, द्रुत वक्र और शीघ्रगामी होती है। मन्दाग्नि और धातुके क्षीण होनेसे नाड़ी धीरे धीरे चलने लगती है। (नाड़ीप्रकाश)

यूरोपियोंके मतसे शरीरके अन्दर छोटी बड़ी जितनी धमनियां या शिराएं हैं उनका साधारण नाम नाड़ी है। समस्त शिराएं अपेक्षाकृत स्थूल हैं, उनके मध्य हो कर रक्तस्रोत बहता है, इस कारण गतिका अनुभव सहजमें किया जाता है। विशेषतः हाथके मणिबन्धकी निकटस्थ शिराएं जैसी स्थूल हैं, वैसी ही भासमान (Superficial) हैं। इनको निकटस्थ अस्थि (Radical bone)के ऊपर रखके दबाना बहुत सहज है, इसी कारण शारीरिक शुभाशुभ अवस्थाका निर्णय करनेके लिए साधारणतः इन शिराओंकी गतिकी परीक्षा की जाती है। नाड़ी (Pulse) कहनेसे अभी व्यवहार के अनुसार इसी मणिबन्धके निकटस्थ हाथकी शिराका बोध होता है।

नाड़ी वा शिरा अत्यन्त स्थितिस्थापक है। इस कोषोंके हृदाशय (Heart)से धमनीके छिद्रमें रक्तस्रोत हमेशा प्रविष्ट होता है।

जिस समय इस प्रकार रक्त प्रविष्ट होता है, उस समय शिराएं स्थूल होती हैं, किन्तु तत्पश्चात् ही पुनः उनकी स्थितिस्थापकताके गुणसे पूर्वकी तरह सङ्कुचित अवस्थामें परिणत हो जाती है।

नाड़ी वा धमनीके इस प्रकार आकुञ्चन और प्रसा-

रणका नाम नाड़ीकी गति है। सूक्ष्म शिरामें इस गति का अनुभव करना कठिन है।

डाक्टर लोग नाड़ीको इस गतिके परिमाण (beat)-के निर्णय द्वारा तथा यथासम्भव उसकी निम्नोक्त कई एक अवस्थाएं देख कर चिकित्सा किया करते हैं।

१। नाड़ीको गतिका नियम अर्थात् कभी तो नाड़ी प्रबलवेगसे कभी मृदुभावसे और कभी सविराम भावसे चलती है।

२। कभी नाड़ी स्थूल (Full) और कभी सूक्ष्म अवस्थामें रहती है।

३। नाड़ीकी दुर्बलता वा तरलता।

४। नाड़ीका काठिन्य (Tension)।

उन लोगोंका मत है, कि अवस्थाके साथ साथ नाड़ीकी गतिमें भी अन्तर देखा जाता है। शिशु जब मातृगर्भमें रहता है, उस समय नाड़ी * प्रति मिनटमें १३०से १५० बार धड़कती (beat) है। उसके भूमिष्ठ होनेके साथ ही उसकी नाड़ीकी गति १३०से १४० बार हो जाती है। जब उसकी उमर दो वर्षकी होती है, तब १००से ११५ बार, सात वर्षसे ले कर चौदह वर्ष की उमरमें ८०से ९० बार, चौदहसे इक्कीस वर्षकी उमरमें ७५से ८५ बार और इक्कीससे साठ वर्षकी उमरमें नाड़ी प्रति मिनटमें ७०से ७५ बार धड़कती है। इससे भी अधिक उमरके व्यक्तियोंकी नाड़ीगति क्रमशः कम होती है। किन्तु सभी समय यह नियम लागू नहीं है। युवकोंमें कभी कभी किसीकी नाड़ी ६० बारसे भी कम हो जाती है। किसीकी नाड़ी तो ४० बारसे अधिक आन्दोलित होती ही नहीं। फिर किसीकी नाड़ी १०० बार धड़कती हुई देखी गई है। अतः उन्हें किसी प्रकारकी पीड़ा है इसका अनुभव नहीं किया जा सकता।

फिर स्त्री पुरुषके भेदसे नाड़ीकी गतिमें प्रभेद देखा जाता है। युवतियोंकी नाड़ी युवकोंकी नाड़ीसे मिनट में १०से १४ बार अधिक आघात करती है। डाक्टर गाइ (Dr Guy)का कहना है, कि अवस्थाभेदसे नाड़ीकी गतिमें भी अन्तर पड़ जाता है अर्थात् २० वर्ष-

---

* यहां पर मणिबन्धकी निकटस्थ नाड़ीका आघात (beat) समझना चाहिये।

का कोई स्वस्थ युवक जब बैठा रहता है, तब उसकी नाड़ी साधारणतः ७० बार, जब खड़ा रहता है, तब ८१ बार और जब सो जाता है, तब ६६ वार आघात करती है। इतनी ही उमरकी युवतीकी नाड़ी उक्त अवस्थाओंमें क्रमशः ८४, ८१ और ७८ बार धड़कती है। जाग्रत् अवस्थाकी अपेक्षा निद्रितावस्थामें नाड़ीकी गति बहुत कम होती है। पीड़ा होने पर रोगविशेषमें १५०से २०० बार और २०से ३० वार तक भी नाड़ी धड़कती है।

असमानगति विशिष्ट नाड़ीको दो श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं। एक श्रेणीमें कभी कभी नाड़ी दूसरीकी अपेक्षा बहुत शीघ्र शीघ्र और कभी बहुत धीरे धीरे चलती है।

दूसरी श्रेणीमें कभी कभी नाड़ी कुछ भी आघात नहीं करती। किन्तु कुछ देर बाद धक धक करने लगती है। एक ही व्यक्तिमें ये दो प्रकारकी गतिविशिष्ट नाड़ियां लक्षित होती हैं। केवल कठिन रोग होने पर नाड़ीकी ऐसी अवस्था देखी जाती है, सो नहीं। कितने लोगोंकी स्वाभाविक नाड़ीकी गति ही इस प्रकारकी है। दुर्बलताके कारण भी किसीकी नाड़ीकी इसी प्रकारकी अवस्था हो जाती है। किन्तु मस्तिष्कको पीड़ा और हृद्रोग होनेसे ही साधारणतः नाड़ीकी ऐसी अवस्था हुआ करती है।

रक्तके परिमाणकी कमी वेशीके अनुसार नाड़ीको कभी परिपूर्ण वा स्थूल और कभी अपरिपूर्ण वा सूक्ष्म कह सकते हैं।

रक्तादिकी अत्यन्त अधिकता होनेसे अथवा हृत्-पिण्डके वामकोष्ठ (left ventricle of the heart)-के बहुत काल तक क्रमागत जोरसे कुञ्चित होनेसे तथा सम्भवतः नाड़ीका आवरण शिथिल होनेसे नाड़ीकी पूर्वोक्त अवस्था होती है। साधारणतः रक्तका अभाव होनेसे, हृत्पिण्डके निस्तेज भावमें कार्य करनेसे, शिरा-मण्डलीमें रक्तके अधिक जमनेसे अथवा अधिक ठण्ढ लगनेसे नाड़ी सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त होती है।

नाड़ीको दाबनेसे यदि उसकी गति रुक न जाय, तो उसे कठिन (Hard) नाड़ी कहते हैं। नाड़ीके कठिन होनेसे रक्तको निकाल (Venesection) देना उचित है। नरम नाड़ी दुर्बलताकी सूचक है। हृत्पिण्डमें नाड़ीके मध्य जिस वेगसे रक्त प्रचलित होता है, तदनुसार नाड़ीकी सबलता वा दुर्बलताका ज्ञान होता है अर्थात् रक्त यदि प्रबल वेगसे चालित हो, तो नाड़ी भी घन घन आघात करती है और तब उस नाड़ीको सबल नाड़ी कहते हैं। यदि रक्त मृदुभावसे चालित हो, तो नाड़ी भी धीरभावसे आघात करती है और उस समय नाड़ीको दुर्बल नाड़ी कहते हैं। किन्तु यह दुर्बलता या सबलता बहुत कुछ रक्तके परिमाणके ऊपर निर्भर करती है। सबल नाड़ी साधारणतः शरीरकी सुस्थता ज्ञापक है, किन्तु किसी कारणवश यदि हृत्पिण्डका वाम प्रकोष्ठ (left ventricle of the heart) बहुत पुष्ट हो जाय, तो सभी समय नाड़ीकी सबल अवस्था देखी जाती है ; यहां तक कि साधारण शक्तिका ह्रास होनेसे भी नाड़ीकी दुर्बलता लक्षित नहीं होती। नाड़ीको गतिके अवस्थानुसार यह भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारी जाती है। शिरा देखो।

नाड़ीक (सं० त्रि०) नाड़ीव कायति कै-क। १ शाक-विशेष, पटुआसाग। पर्याय—पट्टशाक, नाड़ीशाक। गुण—रक्तपित्त-नाशक, विष्टम्भी और वातप्रकोपक। (भावप्र०)

नाड़ीकपालक (सं० पु०) नाड़ीनां नाड़ीवन्नालानां कलापः समूहो यत्र, कप्। सर्पाचीलता, भिड़नी नामकी घास।

नाड़ीकूट (सं० क्ली०) नाड्या रेखाभेदेन कूटं नक्षत्रकूटं ज्ञाप्यं यत्र। विवाहाङ्ग नाड़ीचक्रसूचित नक्षत्रसमूह, नाड़ी-नक्षत्र। विवाह देखो।

नाड़ीकेल (सं० पु०) नारिकेलः पृषोदरादित्वात् साधु। नारिकेल, नारियल।

नाड़ीगति (सं० स्त्री०) नाड़ीनां गतिः ६-तत्। नाड़ीकी गति इससे शरीरका शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। नाड़ीज्ञ व्यक्ति नाड़ीकी गति देख कर शारीरिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्यका विषय कह सकते हैं। नाड़ी देखो।

नाड़ीच (सं० पु०) नाड्या चीयते चि वाहुलकात् ड। शाकविशेष, पटुआसाग। पर्याय—केचुक, पेचुली, पेचु, विश्वरोचन। यह नाड़ीशाक दो प्रकारका होता है,

कटु, खा और मीठा। कटु खा नाम रक्तपित्त, कृमि और कुष्ठनाशक तथा मीठा नाम शीतल, स्निग्ध, कफ और वातनाशक होता है।

नाड़ीचक्र (सं॰ क्लो॰) नाड़ीचक्रमिव यस्य स्थान। १ नाभिस्थल स्थित चक्रभेद हठयोगके अनुसार नाभिदेश में कल्पित एक अण्डाकार गांठ जिससे निकल कर सब नाड़ियां फैली हैं। २ ज्योतिषिमें अशुभभेदज्ञापक चक्रभेद, फलितज्योतिषमें नक्षत्रोंके उन भेदोंको सूचित करनेवाला कोष्ठ या चक्र जिन्हें नाड़ी कहते हैं।

विवाह देखो।

नाड़ीचरण (सं॰ पु॰) नाड़ीमात्रं चरणो यस्य। पक्षी, चिड़िया।

नाड़ीजङ्घ (सं॰ पु॰) नाड़ीवत् जङ्घा यस्य। १ काक, कौवा। २ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। ३ बक विशेष, एक बगलेका नाम। महाभारतमें इस बगलेका उल्लेख पाया है। यह बक कश्यपका पुत्र था और इन्द्रद्युम्न सरोवरके किनारे रहता था। यह महाप्राज्ञ था, बकोंका राजा था और ब्रह्माका अत्यन्त प्रियपात्र तथा दीर्घजीवी था। यह राजधर्मा नामसे प्रसिद्ध था।

नाड़ीतरङ्ग (सं॰ पु॰) नाड्यां नाड्यां तरङ्गः यस्य। १ काकोल। २ हिण्डक। ३ रतिहिण्डक।

नाड़ीतिक्त (सं॰ पु॰) नाड्या तिक्त। नेपालनिम्ब, नेपालको नीम। नेपालनिम्ब देखो।

नाड़ीदेह (सं॰ त्रि॰) नाड़ीमात्रो देहो यस्य। १ अति क्षय, अत्यन्त दुबला पतला। (पु॰) २ भृङ्गी, शिवका एक द्वारपाल।

नाड़ीनक्षत्र (सं॰ क्लो॰) नाड़ीस्थितं नक्षत्रम्। अपाङ्गी चक्र और नवनाड़ी चक्रस्थित नक्षत्रसमूह, वर वधूकी अथवा वैठानेके लिये कल्पित चक्रोंमें स्थित नक्षत्र। जिस नक्षत्रमें मनुष्यका जन्म होता है उस, तथा उससे दसवें सोलहवें अठारहवें, तेईसवें और पचीसवें नक्षत्रको नाड़ी नक्षत्र या नाड़ी कहते हैं। जन्मनाड़ीको आद्य, दसवींको कर्म, सोलहवींको सांघातिक अठारहवींको समुदय तेईसवींको विनाश और पचीसवींको मानस कहते हैं।

नाड़ीपरीक्षा (सं॰ स्त्री॰) १ मणिबन्धस्थित नाड़ीके घात प्रतिघात द्वारा शरीरका अवस्थानिर्णय, शरीरके शुभाशुभका ज्ञान जो नाड़ीकी गति द्वारा किया जाता है। २ एक वैद्यक ग्रन्थ।

नाड़ीप्रकाश (सं॰ पु॰) एक वैद्यकग्रन्थ। शङ्करसेनने इसकी टीका बनाई है।

नाड़ीमण्डल (सं॰ पु॰) विषुवद्रेखा।

नाड़ीयन्त्र (सं॰ क्लो॰) नाड़ीव नालीव यन्त्रम्। सुश्रुतोक्त शल्योद्धारणार्थ यन्त्रभेद, सुश्रुतके अनुसार शस्त्र चिकित्सा या चीरफाड़का एक औजार। यह बीस प्रकारका होता है। यह यन्त्र कई कामोंमें आता है। इसके एक और मुंह रहता है। यह शरीरको नाड़ियों या स्रोतोंमें घुसी हुई चीजको बाहर निकालनेके काम में आता है। शिरा, धमनी, मलद्वार आदि शरीरमें जितने स्रोत अर्थात् द्वार हैं, उनके मुंहके अनुसार अथवा स्थानविशेषके प्रयोजनानुसार इस यन्त्रकी लम्बाई और चौड़ाई होती है।

नाड़ीवलय (सं॰ क्लो॰) नाड्याः घटिकायाः ज्ञानार्थं वलय वलयाकार यन्त्रम्। सिद्धान्तशिरोमणिवर्णित यन्त्रभेद, काल या समय निश्चित करनेका एक यन्त्र, एक प्रकारकी घड़ी। सिद्धान्तशिरोमणिमें इसका पूरा ब्योरा दिया गया है।

नाड़ीविग्रह (सं॰ पु॰) नाड़ीमात्रो विग्रहो यस्य अति कृशत्वात् तथात्व। अतिकृश अर्थात् बहुत दुबला पतला शिवके एक अनुचरका नाम।

नाड़ीव्रण (सं॰ पु॰) नाड़ीव लम्बो व्रणः। सर्वदा गलद् व्रण वह घाव जिसमें भीतर ही भीतर नलीकी तरह छेद हो जाय और उसमेंसे बराबर मवाद (पीब) निकला करे। माधवकर निदानमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

> "यः शोथमाममिति पक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
> यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
> अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
> स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः॥
> तस्यातिमात्रगमनात् गतिरिष्यते तु।
> नाड़ीव यद्वहति तेन मता तु नाड़ी॥"
>
> (माधवकर निदान)

भावप्रकाशमें इस नाड़ीव्रणका विषय इस प्रकार

लिखा है,—जो सब मनुष्य अज्ञानतावशतः पक्कव्रणको अपक्क जान कर मवाद (पोप) नहीं निकालते और अहित आहार-विहारकारी व्यक्ति गम्भीर अथवा अत्यधिक पूयसंयुक्त व्रणकी उपेक्षा कर पूयस्राव नहीं वारते, उनका वह सञ्चित पूय (पोव) त्वक, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोठ और मर्मस्थानको विदारण कर भीतरमें प्रवेश कर जाता है और बहुत दूर चला जाता है, इस कारण सर्वदा पोप निकलती रहती है। सछिद्र नलादि नाड़ीकी तरह प्रवाहित है, इस कारण इसे नाड़ीव्रण कहते हैं।

नाड़ीव्रण पांच प्रकारका है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और शल्यज।

वातिक नाड़ीव्रणका लक्षण—वातजन्य नाड़ीव्रण कर्कश, सूक्ष्म छिद्रविशिष्ट और वेदनायुक्त होता है। वातकी इससे सफेन पोप बहुत निकलती है। पित्तजन्य नाड़ीव्रणमें पिपासा, ज्वर और दाह होता है तथा उसमे दिनके समय अधिक परिमाणमें पूयस्राव होता है।

कफजन्य नाड़ीव्रण शुक्लवर्ण और पिच्छिल होता है। इससे भी पोप अधिक निकलती है। यह वेदना-हीन और कण्डुयुक्त होता है।

त्रिदोषज नाड़ीव्रणमें उक्त वातादि तीनों दोषोंके समस्त लक्षण तथा दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, और मुखशोष उत्पन्न होता है। यह रोग कालरात्रिकी तरह अत्यन्त भयङ्कर और प्राणनाशक है।

शल्यज नाड़ीव्रणका लक्षण—विपथगामी शल्य जब त्वक्‌ मांसादिके मध्य प्रविष्ट हो कर अदृश्यभावसे रहता है, तब शीघ्र ही नाड़ीव्रण उत्पन्न होता है, इसे शल्यज नाड़ीव्रण कहते हैं। इससे हमेशा वेदनाके साथ मथित रक्तमिश्रित अथच सफेन उष्णस्राव निकलता रहता है

नाड़ीव्रणका असाध्य और यत्नसाध्य लक्षण—त्रिदोषज नाड़ीव्रण असाध्य और अन्यान्य दोषोंसे उत्पन्न तथा शल्यज नाड़ीव्रण यत्नसाध्य है।

नाड़ीव्रणकी चिकित्सा।—वातज नाड़ीव्रणमें पहले उपनाह (पुलटिस) दे कर व्रणस्थानको कोमल बनावें, पीछे समस्त नाड़ियोंको काट डालें। अनन्तर अपामार्गके फलको भलीभांति पोस कर सैन्धव नमकके साथ क्षत-स्थानको भर दें और ऊपरसे पट्टी बांध दें। दूसरे दिन उसे पञ्चमूलोके काढ़े से धो डालें। बाद हिंस्राद्य-तैलका व्यवहार करनेसे व्रणका शोधन, रोपण और पूरण हो जाता है। इस तैलको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—तैल ऽ४ सेर, कल्कार्थ जटामांसी, हरिद्रा, कटकी, वच, गोजिह्वा और बिल्वमूल सब मिला कर एक सेर; जल १६ सेर सबको यथाविधान पाक करनेसे हिंस्राद्य-तैल तैयार हो जाता है।

पित्तज नाड़ीव्रणमें दुग्ध और घृत संयुक्त उत्कारिका द्वारा पुलटिस देनी होती है। बाद व्रणस्थान जब कोमल हो जाय, तब शस्त्र द्वारा नाली काट डालते हैं। अनन्तर तिल, नागकेशर, दन्ती और मञ्जिष्ठाको अच्छी तरह पीस कर क्षतस्थानको भर देते और पट्टी बांध देते हैं। दूसरे दिन हलदी, गुलञ्च और नीमके काढ़े से क्षतस्थानको साफ करते हैं। बाद उस स्थान पर श्यामा-घृतका प्रयोग करनेसे कोष्ठगत नाड़ीव्रण अच्छा हो जाता है। श्यामाघृतको प्रस्तुत प्रणाली—घृत ऽ४ सेर, कल्कार्थ अनन्तमूल, निशोथ, त्रिफला, हरिद्रा, लोध और कुटज सब मिला कर एक सेर तथा गायका दूध १६ सेर। यथा-नियम पाक करनेसे श्यामाघृत प्रस्तुत होता है।

कफज नाड़ीव्रणमें पहले कुलथी, उरद, सफेद सरसों, सत्तू और बिल्व द्वारा पुलटिस दे कर व्रण स्थानको मुलायम बनाते हैं। मुलायम हो जाने पर उस स्थानकी नाड़ीको शस्त्र द्वारा काट डालते हैं। बाद नीम, तिल, चीता, दन्ती, सौराष्ट्रमट्टी और सैन्धव नमकको पोस कर क्षतस्थानको भर देते हैं और ऊपरसे पट्टी बांध देते हैं। दूसरे दिन करञ्ज, नीम, जाती, अकवन आदिके रससे क्षतस्थानको धो डालते हैं। बाद स्वर्जिकाद्यतैलका व्यवहार करनेसे यह कफज नाड़ीव्रण प्रशमित हो जाता है। इसमें सैन्धवाद्य तैल भी विशेष उपकारी है।

स्वर्जिकाद्यतैल—तैल ऽ४ सेर; कल्कार्थ स्वर्जिका-क्षार, सैन्धव, दन्ती, चीता, यूथी, शैवाल और अपाङ्ग बीज सब मिला कर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर। अनन्तर यथाविधान पाक करना होता है।

सैन्धवाद्यतैल—तैल ऽ४ सेर; कल्कार्थ सैन्धव, आकन्द, मिर्च, चीता, भृङ्गराज, हरिद्रा और दारुहरिद्रा

मधु मिला कर एक सेर। इस तैलका प्रयोग करनेसे वातज और कफज नाड़ीव्रण भी अच्छा हो जाता है।

शल्यज नाड़ीव्रण—शस्त्र द्वारा शल्य बहिर्गत कर व्रणस्थानको शोध निकाल देनी चाहिये। बाद नीम और तिलको पीस कर अधिक परिमाणमें घृत और मधुसे व्रणस्थानको भर करके ऊपरसे पट्टी बांध देनी चाहिये। इसमें कुम्भिकाद्यतैलका प्रयोग करनेसे सद्य फल प्राप्त होता है।

थूहर और आकनके दूध तथा दारुहल्दी द्वारा बत्ती प्रस्तुत कर उसका प्रयोग करनेसे सर्वप्रकारक नाड़ीव्रण अवश्य ही आरोग्य हो जाते हैं। अमलतासका पत्ता, हलदी और कुट इन सबका चूर्ण ८ माशा, मधु ४ तोला और गोमूत्र ८ तोला इन सबको एकत्र पाक कर बत्ती बनाते हैं। बाद इसका प्रयोग करनेसे व्रणशोधित होता है और नाड़ीव्रण नष्ट हो जाता है।

मधु और सैन्धवकी बत्ती बना कर उसे नाड़ीमें प्रवेश करानेसे नाड़ीव्रण नष्ट हो जाता है। दुष्टव्रणमें जो सब तैल कहा गया है नाड़ीव्रणमें भी उसी तैलका प्रयोग करनेसे व्रण प्रशमित हो जाता है। जातिपत्र, आकन्दका मूल, गोमासुरम कटकरञ्जका बीज, दन्तीमूल, सैन्धव सौवर्चल, चीता और यवक्षार इन सब द्रव्योंको थूहरके दूधमें पीस कर बत्ती बनाते हैं। इसका प्रयोग करनेसे नाड़ीव्रण अतिशीघ्र आराम हो जाता है। शूकरकी विष्ठाको जला कर स्याही बनाते हैं। बाद हरिद्रा, पारसीक, मरीच, रेणुका मल्लिकाबीज और तैलको उसमें मिला कर नाड़ीव्रणमें प्रयोग करनेसे बहुत फायदा होता है।

कर्पूरके रस और सिन्दूरके कल्क द्वारा सरसों तैल पाक करके प्रयोग करनेसे नाड़ीव्रण दूर हो जाता है।

भल्लातकाद्यतैल, सर्जिकाद्यतैल और सप्ताङ्गगुग्गुल नाड़ीव्रणमें विशेष उपकारी है। शरीरशोधन सब प्रकारके शोधन और रोपणादि क्रिया भी नाड़ीव्रणमें कर्त्तव्य है।

कृश, दुर्बल और भयभीत व्यक्तियोंकी नाड़ीको तथा मर्माश्रित नाड़ीको क्षारसूत्र द्वारा छेदन करना चाहिये। ऐसी हालतमें शस्त्रप्रयोग करना बिलकुल निषेध है। एषणी द्वारा शोथको गतिका अनुसन्धान कर सूईके छेदमें तागा पिरोते हैं। बाद शोथके एक प्रान्तभागमें उसे चुभो कर बहुत जल्द बाहर निकाल लेते हैं। पीछे उस क्षारसूत्रके दोनों प्रान्तको एक साथ कस कर बांध देते हैं। यदि उसमें छिद्र न हो, तो क्षारके बलाबलको निरीक्षण करके दूसरे बार क्षारसूत्र प्रविष्ट कर अच्छी तरह बांध देते हैं। जब तक उस शल्यमें छिद्र न हो जाय, तब तक इसी प्रकार करते रहना चाहिये। इसके क्षारसूत्रसे छिन्न हो जाने पर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। (भावप्र० चतुर्थ० नाड़ीव्रणाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें नाड़ीव्रणकी बहुत सी औषधियां लिखी हैं।

नाड़ीशाक (सं० पु०) नाड़ीचकाख्य शाक। नाड़ीक पटुआ साग।

नाड़ीशुद्धि (सं० स्त्री०) नाड़ीनां शुद्धिः ६-तत्। नाड़ी-शोधन। हठयोगमें इसका विषय लिखा है।

नाड़ीशोधनतैल (सं० क्ली०) तैल औषधभेद।

नाड़ीस्वरसञ्चार (सं० पु०) नाड़ीषु स्वरसञ्चारः ७-तत्। नाड़ीभेदसे वायुको गमनरूप गतिभेद। स्वरोदय और पवनविजयमें इसका विषय विस्ताररूपसे लिखा है। जब वाम नासिका ईड़ानाड़ी हो कर जब अधिक वायु निकलता है तब उसे चन्द्रोदय और जब दक्षिणको ओर पिङ्गलानाड़ी हो कर निकलता है, तब उसे सूर्योदय कहते हैं अर्थात् वाम नासिका द्वारा अधिक श्वास निकलनेको चन्द्रोदय और दक्षिण नासिका द्वारा निकलनेको सूर्योदय कहते हैं। स्वरोदयग्रन्थमें लिखा है, कि यात्रादि अथवा और किसी दूसरे शुभकार्यका फल नासिकाकी ईड़ा और पिङ्गलानाड़ीकी गतिके अनुसार जाना जाता है।

यात्राकाल, विवाहसमय वस्त्र और अलङ्कार पहननेके समय तथा अन्य शुभकार्यमें चन्द्र शुभ है। उस समयमें यदि वामनासापुटमें वायुका सञ्चार अधिक हो तो वे सब कार्य शुभ होते हैं। विवाद, द्यूत, युद्ध, स्नान, भोजन, मैथुन, व्यवहार भय और भङ्ग इन सब विषयोंमें सूर्यनाड़ी प्रशस्त मानी गई है। इस समय दक्षिण नासिकामें वायुका सञ्चार अधिक होनेसे ये सब कार्य फलीभूत होते हैं। (स्वरोदय)

मोहन, शान्तिकार्य, दिव्यौषधि, रसायन, विद्यारम्भ और सभी स्थिरकार्य चन्द्रोदयमें अर्थात् जब वामनासिका द्वारा अधिक वायु निकले, तब फलीभूत होते हैं। यात्रा-कालमें जब जिस नासिकापुट हो कर अधिक वायु निकले, तब पहले वही पद आगे रख कर चलना चाहिये। ऐसा करनेसे कार्यकी सिद्ध होती है।

नाडीस्नेह (सं० पु०) नाड्यामेव स्नेहो यस्य। १ नाड़ी-मात्रसार, वह जो बहुत पतला हो। २ शिवके एक द्वार-पालका नाम।

नाड़ीहिङ्गु (सं० पु०) नाड़ीप्रधानं हिङ्गु। १ हिङ्गु-भेद, एक प्रकारकी हींग या गोंद। पर्याय—पलाशाख, जन्तुका, रामठी, वंशपत्री, पिण्डाह्वा, सुवीर्या, हिङ्गु-नाड़िका। गुण—कटु, उष्ण, कफ और वातजन्य पोड़ा-नाशक, विष्ठा, विबन्ध, दोष और आनाहरोग-शान्ति-कर। (राजनि०) २ एक प्रकारका वृक्ष जिसमेंसे एक प्रकारकी हींग या गोंद निकलता है। यह गोंद औषध-के काममें आता है। इस वृक्षकी पत्तियां बटमोगराकी पत्तियोंसे मिलती जुलती हैं। फूल सफेद और फल पोस्तेके ढेंढके समान होते हैं।

नाड़दाना (हिं० पु०) बैलोंकी एक जाति जो मैसूरमें होती है। इस जातिके बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती और मजबूत अधिक होते हैं।

नाणक (सं० क्लो०) अणति शब्दायते इति अन खुल् न-आणकम्। १ मुद्राचिह्नित निष्कादि, सिक्का। २ धातु। ३ निष्क।

नाणकपरीक्षा (सं० स्त्री०) धातु-परीक्षा।

नाणकपरीक्षी (सं० पु०) धातुपरीक्षक, वह जो धातुकी परख करता हो।

नात (हिं० पु०) १ नातेदार, सम्बन्धी। २ नाता, सम्बन्ध।

नातपूता—बम्बई प्रदेशके सोलापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १०° ५३´ ४०´´ उ० और देशा० ७४° ४७´ ३६´´ पू०के मध्य पण्ढरपुर शहरसे ४२ मील उत्तर पश्चिम तथा सतारासे ६६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। पूनासे सोलापुर तक जो राजपथ गया है, उसी पर यह नगर अवस्थित है। कहते हैं, कि ब्राह्मणी-राजके मन्त्री मालिक-सुन्दरने यह नगर बसाया।

नातरु (हिं० स्त्री०) अन्यथा, और नहीं तो।

नातवां (फा० वि०) दुर्बल, अशक्त, क्षीण, निर्बल।

नाता (हिं० पु०) १ कुटुम्बकी घनिष्टता, ज्ञातिसम्बन्ध, रिश्ता। २ सम्बन्ध, लगाव।

नाताकत (फा० वि०) जिसे ताकत या बल न हो, निर्बल, कमजोर।

नातिदीर्घ (सं० त्रि०) न अति दीर्घः। जो अधिक लम्बा न हो।

नातिन (हिं० स्त्री०) लड़कोंकी लड़की, बेटोंकी बेटी।

नातिशीतोष्ण (सं० त्रि०) शीतश्च उष्णश्च न-अति शीतोष्णं। अधिक शीतल भी नहीं और अधिक उष्ण भी नहीं, जो न तो ज्यादा ठंढा हो और न ज्यादा गरम हो।

नाती (हिं० पु०) लड़की या लड़केका लड़का, बेटी या बेटेका लड़का।

नाते (हिं० क्रि० वि०) १ सम्बन्धसे। २ हेतु, वास्ते, लिए।

नातेदार (हिं० वि०) सम्बन्धी, रिश्तेदार, सगा।

नाथ (सं० क्लो०) नम-ड्न्। वाहुलकात् अन्तलोप आत्वञ्च। १ विचित, अनूठा। २ प्रज्ञ, विद्वान्, जानकार। ३ शिव, महादेव।

नाथ (सं० पु०) नाथति ईश्वरोभवतीति नाथ ऐश्वर्ये अच्। १ ऐश्वर्ययुक्त, प्रभु, स्वामी, अधिपति, मालिक। पर्याय—अधिप, ईश, नेता, परिवृढ़, अधिभू, पति, इन्द्र, स्वामी, आर्य, प्रभु, भर्त्ता, ईश्वर, विभु, ईशिता, इन, नायक। २ वह रस्सी जिसे बैल, भैंसे आदिकी नाक छेद कर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिससे वे वशमें रहें। ३ एक प्रकारके मदारी जो सांप पालते और नचाते हैं।

नाथ—१ मत्स्येन्द्रनाथके अनुयायी योगियोंकी एक उपाधि, गोरखपन्थी साधुओंकी एक पदवी जो उनके नामोंके साथ ही मिली रहती है। २ एक कविका नाम। १००० ई०में ये फजलअली खांके सभासद थे। किसी किसीका कहना है 'नाथकवि' और ये दोनों एक ही व्यक्ति थे। नाथकवि देखो। ३ माणिकचन्द्रके एक सभा-सद। १७४६ ई०में इनका जन्म हुआ था।

नाथकन्य—नेपालके अन्तर्गत एक नगर। एक समय यहां

महामारीका भारी प्रकोप था। बचनेका कोई उपाय न देख अधिवासियोंने देवराज इन्द्र तथा अन्यान्य देवताओंकी आराधना की। किन्तु उससे कोई फल न मिला। अन्तमें वे लोग गुरुकी शरणमें पहुंचे जिन्होंने उन्हें इस भयानक महामारीके फंदेसे बचा लिया।

नाथकवि—एक प्रसिद्ध कवि। १६८८ ई०में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। ये 'दान' नामक पुस्तक बना गए हैं। इनकी रची हुई ऋतुसम्बन्धीय कवितायें बहुत मनोहर हैं।

नाथज्ञान (सं० पु०) नाथका अनुसन्धान करना।

नाथकुमार (सं० पु०) एक कविका नाम।

नाथता (हिं० स्त्री०) स्वामित्व, प्रभुता।

नाथत्व (सं० क्ली०) नाथ भावे त्व। प्रभुत्व, प्रभुता।

नाथद्वार—राजपूतानेके उदयपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २४ ५६´ उ० और देशा० ७३ ४८´ पू० बनास नदीके किनारे अवस्थित है। 'नाथद्वार' शब्दका अर्थ ईश्वरका द्वार होता है। यहां एक कृष्णमूर्त्ति है और उसीसे ही इसका नाम नाथद्वार पड़ा है।

मथुरा जिलेमें हिन्दुओंके जितने कृष्णमन्दिर हैं उनमेंसे नाथद्वारके 'श्रीनाथ' अथवा 'नाथजी'का मन्दिर ही सबसे प्रसिद्ध है। कृष्णमन्दिरके अतिरिक्त और भी अन्य सात देवताओंके मन्दिर हैं।

औरङ्गजेबने जब मथुराकी सब कृष्णमूर्त्तियोंको तोड़नेका विचार किया, तब सन् १६७१ ई०में उदयपुरके महाराणा राजसिंह श्रीनाथजीकी मूर्त्तिको मथुरासे उदयपुरकी ओर ले कर धूमधामसे चले। इस स्थान पर जब रथ पहुंचा, तब पहिया कीचड़में धंस गया। लोगोंने कहा, कि श्रीनाथजीकी इच्छा इसी स्थान पर रहनेकी है। महाराणाने एक बड़ा मन्दिर बनवा कर मूर्त्ति यहीं स्थापित कर दी। यही स्थान नाथद्वार नामसे प्रसिद्ध है। इसके आसपासके स्थानोंमें कहीं भी प्राणि हत्या अथवा कैदीको बन्द करनेकी प्रथा नहीं है। भिन्न भिन्न देशोंके हिन्दू-यात्री विशेषतः वल्लभाचार्यके सम्प्रदायभुक्त मनुष्य इस तीर्थमें यात्रा करते हैं।

नाथनगर—भागलपुर जिलेके अन्तर्गत एक पल्लीग्राम। यह भागलपुर शहरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। ई० आई० रेलवेका यहां इसी नामका एक स्टेशन भी है। यहां टसरके अच्छे अच्छे कपड़े तैयार होते हैं जो भागलपुर तथा अन्यान्य देशोंमें भेजे जाते हैं। इसके पास ही भागलपुरके टी० एन० जुबली कालेज पड़ता है।

नाथना (हिं० क्रि०) १ बैल, भैंसे आदिकी नाक छेद कर उन्हें वशमें लानेके लिए रस्सी डालना, नकेल डालना, नाक छेदना। २ किसी वस्तुको छेद कर उसमें रस्सी या तागा डालना। ३ कई वस्तुओं या किसी वस्तुके कई भागोंको छेद कर रस्सी या तागेके द्वारा एकमें जोड़ना, नत्थी करना। ४ लड़ीके रूपमें जोड़ना।

नाथमल्ल—एक संस्कृत भाषाके पण्डित। इन्होंने 'पिशाचवाक्कुवचन' नामक ग्रन्थ बनाया है।

नाथविद् (सं० त्रि०) आश्रयदाता, शरण देनेवाला।

नाथविन्दु (सं० त्रि०) आश्रय देनेवाला अथवा जिसे आश्रय देनेकी क्षमता हो।

नाथहरि (सं० पु०) नाथं हरति स्थानात् स्थानान्तरं नयति नाथ हृ इन्। पशु, मवेशी।

नाथिन् (सं० त्रि०) प्रभुयुक्त, जिसे कोई आश्रय देनेवाला हो।

नाथूरामचौबे—हिन्दीके एक कवि। आपने सम्वत् १८७४में 'चित्रकूटशतक' नामक एक ग्रन्थ दोहोंमें रचा। आपकी कविता अच्छी होती थी; उदाहरणार्थ कुछ नीचे देते हैं,—

"चित्रकूट सब ठाव बर, करि अवधको धाम।
जाय तहां वन कामदहि भजे सदा रघुनाथ॥
चित्रकूट सब ठावरा, पापपुञ्ज हरि लेत।
जिन जिन उनको वश करत, राम भगतिको देत॥"

नाथोक—एक कविका नाम। संस्कृत 'पदावली' इन्होंकी बनाई हुई है।

नाद (सं० पु०) नद शब्दे भावे घञ्। १ शब्द, आवाज। २ अनुस्वारसदृशार्द्धचन्द्राकृतिवर्णभेद, अनुस्वारके समान उच्चारित होनेवाला वर्ण। इसके पर्याय—अर्द्धेन्दु, अर्द्धमात्रा, कलाधारि, सदाशिव, चतुरार्ध, तुरीया, बिन्दुनादका और दल है। (वीजवर्णाभिधा०) ३ ब्रह्मस्वरूप योगविशेष।

"सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद्बिन्दुसमुद्भवः॥
नादो बिन्दुश्च बीजञ्च स एव त्रिविधो मतः।
भिद्यमानात् पराद्बिन्दोरुभयात्मा रवोऽभवत्॥
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माऽभवत् परम्॥"
(भागवत)

परमेश्वरके सच्चिदानन्दरूप विभवसे शक्ति, शक्तिसे नाद और नादसे बिन्दु उत्पन्न हुआ है। बिन्दु ही प्रणव है और इसीको बीज कहते हैं।

अलङ्कारकौस्तुभके द्वितीय स्तवकमें इस प्रकार लिखा है—

"नाभेरूर्द्ध्वं हृदे स्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्त्तितः॥"
(अलङ्कारकौस्तुभ २ स्तवक)

नाभिदेशके ऊर्ध्व हृदय-स्थानसे ब्रह्म रन्ध्रान्तमें प्राण संज्ञक वायु शब्द उत्पन्न करती है, इसी शब्दको नाद कहते हैं।

सङ्गीतदामोदरमें लिखा है—आकाशस्थित अग्निसे मरुत् निकला है, यह मरुत् नाभिके ऊर्ध्व देशमें सम्यक्-रूपसे उच्चारित हो कर जब मुखमें परिस्फुट होता है, तब उसे नाद कहते हैं। यह नाद तीन प्रकारका है—प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसम्भव। जो देहादिसे उत्पन्न होता है, उसे प्राणिभव; जो नाद वीणासे उत्पन्न होता है, उसे अप्राणिभव और जो वंशादिसे उत्पन्न होता है, उसे उभयभव कहते हैं।

"आकाशाग्निमरुज्जातो नाभेरूर्द्ध्वं समुच्चरन्।
मुखेऽभिव्यक्तिमायाति यः स नाद इतीरितः॥
स च प्राणिभवोऽप्राणिभवश्चोभयसम्भवः॥"
(सङ्गीतदामो०)

ब्रह्माका जो स्थान कहा गया है, जो ब्रह्मग्रन्थिपदवाच्य है, उसके मध्य प्राण अवस्थित है। इस प्राणसे वह्निकी उत्पत्ति हुई है। वह्नि और मारुतके संयोगसे नाद उत्पन्न हुआ है। इस नादके बिना गीत, स्वर और रागादि कुछ भी सम्भव नहीं, इसीसे जगत्को नादात्मक माना है। अतएव बिना नादके ज्ञान और शिव कुछ भी प्राप्त नहीं होता। एकमात्र नाद ही परज्योति है और हरि स्वयं नादरूपी हैं।

"यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रन्थिश्च यो मतः।
तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्वह्नि समुद्भवः॥
वह्निमारुतसंयोगान्नादः समुपजायते॥
न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना रागस्तस्मान्नादात्मकं जगत्॥
न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परं हरिः॥"

नाद सङ्गीतका प्राणस्वरूप है। सङ्गीतदर्पणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—गीत, नृत्य और वाद्य नादात्मक है। नाद द्वारा सभी वर्ण परिस्फुट होते हैं, वर्णसे पद और पदसे वाक्य बना है। यही वाक्य सब कोई सब समय व्यवहृत करते हैं। इस प्रकार जगत् नादात्मक है। यह नाद दो प्रकारका है,—आहत और अनाहत। इनमेंसे आहत नादकी मुनिगण उपासना करते हैं। यह गुरूपदिष्ट मात्रका ही मुक्तिप्रद है। आहतनाद श्रुति आदिसे उत्पन्न हुआ है। यही नाद धर्मार्थकाममोक्षका एकमात्र साधन है। सरस्वतीके अनुग्रहसे कम्बल और अश्वतर नामक नागद्वयने नाद-विद्या प्राप्त कर महादेवका कुण्डलत्व प्राप्त किया था। पशु, शिशु और मृग ये सब नाद द्वारा सन्तुष्ट होते हैं। नाद माहात्म्यकी व्याख्या करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है।

सङ्गीतदर्पणमें लिखा है, कि नादरूपी समुद्रके पर-पारसे सरस्वती अवगत नहीं हैं। इसी कारण सरस्वती आज भी मज्जनके भयसे वक्षःस्थलमें तुम्बी धारण करती हैं।

"नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बं वहति वक्षसि॥"
(सङ्गीतद०)

नादोत्पत्तिप्रकार।—आत्मासे प्रेरित चित्त देहस्थित अग्निको आघात करता है। पीछे वह अग्नि ब्रह्म-ग्रन्थिस्थित प्राणको प्रेरण करती है। वह प्राण अग्नि प्रेरित हो कर क्रमशः ऊर्ध्वपथ पर विचरण करते करते नाभिमें पहुंच कर वहां अति सूक्ष्म, हृदयमें सूक्ष्म, गल-देशमें पुष्ट, शीर्षदेशमें अपुष्ट और वदनमें कृत्रिम ये पांच

प्रकारके नाद उत्पन्न करते हैं। अर्थात् अति सूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट और कृत्रिम ये पाँच प्रकारके नाद हैं। फिर भी कहा है कि नकारका नाम प्राण है और दकारको अग्नि कहते हैं। प्राण और अग्निके संयोगसे इसकी उत्पत्ति हुई है, इसीसे इसका नाम नाद पड़ा है।

यह नाद योगियोंके ध्येय है। इसका विषय हठयोग दीपिकाके इसी अध्यायमें विस्तृतरूपसे लिखा है। इस नादका अभ्यास कर योगी सुखलाभ करते हैं। जो सब मूढ़ व्यक्ति तत्त्वबोधमें अशक्त हैं, उन्हींको यह नादोपासना करनी चाहिये। गोरक्षनाथने ऐसा उपदेश दिया है—

'अशक्यतत्त्वबोधानां मूढ़ानामपि च मतम्।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनमुच्यते॥'
(हठयोगप्र० ४।६५)

श्रीआदिनाथने सपादकोटि भी प्रकारका निरूपण किया है जिनमेंसे यह नादोपासना एक प्रधानतम है।

जो नादोपासना करना चाहते, उन्हें पहले मुक्तासन पर स्थित हो शाम्भवीमुद्राका अवलम्बन करना चाहिये और उस समय एक चित्त हो कर अन्तःस्थ नाद दाहिने कानसे सुनना चाहिये। इस समय श्रवणपुट, नयन युगल, घ्राण और मुख निरोध करनेकी शिक्षा है। प्रथमतः योगकी चार अवस्थाएं हैं, यथा—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। इसकी प्रथमावस्थामें देहमें किसी प्रकारका आघात नहीं होने पर भी विचित्र ध्वनि सुनी जाती है जिससे आनन्द प्राप्त होता है।

जब नादका अच्छी तरह अभ्यास किया जाता है तब नाना प्रकारके महान् नाद सुने जाते हैं। क्रमशः अभ्यास करते करते वह सूक्ष्मतम होता है। पहले समुद्र गर्जन या मेघध्वनि, भेरी, झर्झर आदि शब्दकी तरह मध्यममें मर्दल, शङ्ख, घण्टा-ध्वनि या शब्द, अन्त समयमें किंकिणी, वंश, वीणा और भ्रमरध्वनिवत् शब्द सुना जाता है। इस प्रकार नाना प्रकारकी ध्वनियोंमेंसे जिससे चित्तविक्षेप आवर्जित हो, उस नादका लक्ष्य करके उसमें ही चित्तको सुस्थिर करना चाहिये। चित्तके नादासक्त होने पर फिर वह विषयमदमें विमोहित नहीं होता, भ्रमरी आदि ही समयसे मत्त चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार चित्त एकाग्र हो कर नादका अनुसन्धान करता है। नादसे चित्त प्रवर्तित होता है और फिर नादमें ही लीन हो जाता है।

ध्वनिके अन्तर्गत ज्ञेय और ज्ञेयके अन्तर्गत मन है। क्रमशः मन जब विष्णुके परमपदमें लीन होता है तब वही निरालम्ब परब्रह्म है। ऐसी अवस्थाको योगकी परमावस्था कहते हैं। सर्वदा इस प्रकार नादानुसन्धान करनेसे पापसमूह नष्ट होता है चित्त और प्राण निरञ्जनमें लीन रहते हैं। उस समय शङ्ख, दुन्दुभि आदिका कुछ भी शब्द सुनाई नहीं देता। चिन्ता दूर हो जाती है सभी अवस्थाओंका तिरोधान होता है, देह काठकी तरह हो जाती है योगी मृतवत् हो जाते हैं। ऐसी अवस्था होनेसे ही मुक्ति मिलती है, ऐसा जानना चाहिये। (हठयोग० ४ अ०)

४ स्वनामप्रसिद्ध मुनिविशेष। ये ईश्वर मुनिके पुत्र थे। इन्होंने न्यायतत्त्व और योगरहस्य नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। दक्षिणप्रदेशमें इनकी जन्मभूमि थी। ५ खोता। ६ वर्णोंके उच्चारणमें एक प्रयत्न। इसमें कण्ठको न तो बहुत अधिक फैला कर और न संकुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। ७ [illegible]।

नादज (सं० त्रि०) नादात् जायते जन-ड। नादसे जो उत्पन्न हो।

नादता (सं० स्त्री०) नादस्य भावः नाद-तल् टाप्। शब्दत्व, शब्दका गुण।

नादनघाट—वर्द्धमान जिलेके कालना महकमेका एक ग्राम यह स्थान वाणिज्यके लिए प्रसिद्ध है।

नादना (हिं० क्रि०) १ शब्द करना, बजना। २ चिल्लाना गरजना। ३ प्रफुल्लित होना लहलहाना, महकना।

नादपुराण (सं० क्ली०) उपपुराणभेद, एक पुराणका नाम।

नादमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राभेद तन्त्रकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथकी मुट्ठी बांध कर अंगूठेको ऊपरको ओर उठाए रखना पड़ता है।

नादली (फा० स्त्री०) जहर मोहरा नामक पत्थरकी चौकोर टिकिया। इस पर कुरानकी एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे रोग बाधा दूर करनेके लिये ताबीजकी तरह पहनते हैं, हौलदिली। आयतका आरम्भ 'नाद

अलियन' इस वाक्यसे होता है, इसीसे यन्थको नादलो कहते हैं। हकीमोंका कहना है कि उक्त पत्थरमें कलेजे-को धड़क आदि दूर करनेका विशेष गुण है। छाती पर उसका संसर्ग रहनेसे होलदिल तथा दिल धड़कनेको बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगोंका विश्वास है, कि बिजलीका असर भी, जहां यह पत्थर रहता है, वहां नहीं होता।

नादवत् (सं० वि०) शब्दयुक्त, जिसमें शब्द हो।

नादविन्दूपनिषद् (सं० स्त्री०) आथर्वण उपनिषद्भेद।

नादसुर—भोरराज्यके कोङ्कण विभागके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १८° ३४´ उ० और देशा० ७३° २१´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पहाड़के ऊपर अनेक प्राकृतिक और कृत्रिम कूप हैं। इनमेंसे एक कूपकी दोवारके ऊपर पालिभाषामें दो छव शिलालिपि हैं।

नादसेन—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। इनके बनाए हुए कवित्त सरस और मधुर होते थे। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"रैन बिताय आए हो मोहन कहां जागे रंग रागे।
कौन त्रिया संग मिलस्य रहे हो होरी खेल कहां पागे॥
तोतरात बतरात बैन न हू न आवत आलस्यवश अनुरागे।
नादसेन मनके मतवारेसे आए भाग्य हमारे जागे॥"

नादान (फा० वि०) मूर्ख, अनजान, नासमझ।

नादानी (फा० स्त्री०) अज्ञान, नासमझी।

नादार (फा० वि०) १ जो अपने पास कुछ नहीं रखता हो, जिसके पास कुछ न हो, अकिञ्चन, कंगाल। २ गंजीफेके खेलमें बिना रंग या मीरकी बाजी।

नादारी (फा० स्त्री०) निर्धनता, गरीबी।

नादि—जहानूगीरके एक सेनाध्यक्षका नाम। १०२६ हिजरीमें इनका देहान्त हुआ।

नादिक (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

नादिग—एक श्रेणीका नापित। बम्बई प्रदेशमें सब जगह इस श्रेणीके नापित देखनेमें आते हैं। इनके चार सम्प्रदाय हैं—लिङ्गायत, मराठा, राजपूत और सज्जन।

प्रत्येक सम्प्रदायकी भाषा, पोशाक, रीतिनीति और धर्म पृथक् पृथक् है। इन लोगोंकी प्रधान उपजीविका चौरकर्म है। किन्तु अभी कुछ खेतीबारी भी करने लग गये हैं।

लिङ्गायत सम्प्रदायके नापित प्रधानतः बीजापुरमें रहते हैं। वे लोग हरपदम्‌वन्नको अपना पूर्वपुरुष मानते हैं। पहले ये लोग लिङ्गायत छोड़ कर और किसीकी हजामत नहीं करते थे। किन्तु अभी वह नियम उठा दिया गया है, क्योंकि उससे भलीभांति गुजारा नहीं होता था। इनके प्रधान उपास्य देवता मल्लिकार्जुन, बासवन्न आदि हैं। इनके पुरोहित जङ्गम कहलाते हैं। ये लोग शिवरात्रि, नागपञ्चमी आदि हिन्दूपर्वका पालन करते हैं।

नादिगर—दाक्षिणात्यवासी एक श्रेणीके नापित। धारवार जिलेमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। मराठा, लिङ्गायत, मुसलमान और भारतवर्षके कितने परदेशी इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त हैं। इनमेंसे लिङ्गायत श्रेणीको संख्या ही अधिक है।

नादित (सं० वि०) शब्द करता हुआ, बजाया हुआ।

नादिन् (सं० वि०) नद-णिनि। शब्दकारी, शब्द करने-वाला। २ बजनेवाला। (पु०) ३ कालञ्जर गिरिमें उत्पन्न जातिस्मर मग मृग। इसका विषय हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—

विश्वामित्रके पुत्र गर्गके निकट वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्त्ती नामके सात शिष्य पढ़ते थे। ये लोग प्रतिदिन सवत्सा दुग्धवती कपिलाको चरानेके लिये जङ्गल जाया करते थे। एक समय उन्हें रास्तेमें भूख लगी और वे गुरुकी गाय मार डालनेको तैयार हो गये। इस पर कवि और खसृम नामक दो साथियोंने उन्हें इस कामसे रोका और बहुत कुछ समझाया भी। किन्तु उन क्षुधातुरोंने एक भी न सुनी और पितृश्राद्धके उद्देशसे गाभीको मन्त्रपूत कर मार ही डाला। बाद वे सबके सब गुरुके पास गये और उनसे बोले, कि आपकी गायको बाघने मार डाला। जब गुरुको मालूम हुआ, कि इन सातोंने ही गायको मार कर खा लिया है, तब उन्होंने शाप दिया जिससे वे सबके सब उसी समय पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद इस पापसे उन सातोंने कालञ्जर पर्वत पर मृगयोनिमें जन्म लिया।

ये भी जातिस्मर हैं। विशेष विवरण हरिवं० २१।२९ अध्यायमें देखो।

नादिम (अ० वि०) लज्जित ।

नादिया (हिं० पु०) १ नन्दी। २ वह बैल जिसे योगी ले कर भीख मांगते हैं। ऐसे बैलोंको कोई न कोई विशेष अङ्ग निकल आता है जिससे लोगोंको कुतूहल होता है।

नादिर (फा० वि०) अद्भुत, अनोखा।

नादिरशाह—फारसके अन्तर्गत खुरासान नामक स्थानमें नादिरशाहका जन्म हुआ था। इनका आदि नाम था नादिरकुली खां। कोई कोई इन्हें तहमस्पकुली खां (फारसके अफगानीय योद्धा) कहते थे। मिरजामहदीखां-लिखित नादिरशाहके जीवन चरितके पढ़नेसे मालूम होता है कि तुर्कोंके साथ इसलाम धर्मीय राज्यकालमें सात जातियां खुरासानमें आ कर बसी थीं। उनमेंसे 'अफसर' एक है। नादिरशाह इसी 'अफसर'की 'करकालो' शाखामें उत्पन्न हुए थे। इनके भविष्य जीवनके शौर्य और वीर्यको देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि आपने 'अफसर' शब्दको सार्थक किया था।

आपके बाल्यजीवनकी क्रियाकलापोंसे ही यह मालूम हो जाता है कि आप परिणाममें असाधारण कीर्त्ति अर्जन कर जगत्के सम्मुख मनुष्योंको चमत्कृत करेंगे।

नादिरकुली एक सामान्य गड़ेरियेके लड़के थे। जैसे नेपोलियन बोनापार्ट जिस प्रकार सामान्य दरिद्रके घरमें जन्म ले कर विशाल फरासीसी राज्यके सिंहासन पर बैठे थे, उसी प्रकार इन्होंने भी गड़ेरियेके घरमें जन्म ले कर फारस, अफगानिस्तान आदिके सिंहासन अधिकार किए थे। सत्रह वर्षकी उम्रमें उजबक नामके एक व्यक्तिने इन्हें कारारुद्ध कर रखा था। चार वर्ष बड़े कष्टसे बिता कर सुचतुर नादिर कौशलसे वहांसे भाग गए। इसके बाद वे अपने देश खुरासान पहुंचे और वहां आपने राजाके अधीन नौकरी कर ली। इस समय नादिरने विशेष रणपाण्डित्यका परिचय दे तातारोंको परास्त कर दिया। परन्तु खुरासानके राजा आपके गुणकी कुछ कदर न कर सके और न आपको कुछ पुरस्कार ही दिया गया। आशानुयायी पुरस्कार न पानेसे आपके हृदयमें अन्य भावोंका उदय हुआ। अधीनता अब अच्छी न लगी।

वीरपुरुषके हृदयमें स्वाधीनताकी स्पृहा उदित हुई। आपने पिताकी भेड़ बेच कर कुछ रुपये इकट्ठे किए और कुछ अपने साहसिक वीरोंको भी एकत्र किया। उनको साथ ले कर आप दस्युवृत्ति करने लगे। धीरे धीरे अनुमान १००० अनुचर आपके दलभुक्त हो गए। उनको प्राणोंकी ममता न थी विपत्तिकी आशङ्का न थी। दया धर्म किस चिड़ियाका नाम है ये नहीं जानते थे। निराश्रय निरुपाय यात्रियोंके धनादि लूट कर अपने आदमियोंको बांट देना, यही नादिरका काम हो गया।

१७२२ ई०में फारसके राजा हुसेनशाहने खिलजोंके राजा महमूदको खुरासान सौंप दिया। इस समय इस्पाहान भी उनके हाथ आ गया। परन्तु हुसेनके पुत्र शेख शाह तहमस्प इस्पाहनसे भाग कर बैयिमरूदकी तोरस निभृत स्थानमें कालातिपात करने लगे। सम्राट्-पुत्र नादिरशाहके शरणापन्न हुए। नादिरने विपुलविक्रमके साथ शत्रुओं पर आक्रमण कर उनसे खुरासान छीन लिया और १७१० ई०में इस्पाहान नगरमें तहमस्पको फारसके सिंहासन पर बिठा दिया। इस तरह बहुतसे खिलजो और महमूदके पुत्रोंको मार कर नादिर तुर्कोंकी ओर चल दिए। इन्होंने तुर्कियोंसे तावरेज छीन ले लिया और अब्दालियोंके विद्रोहका दमन किया। सारे अफगानी इनके अधीन हो गए और इन्होंके मतको मानने लगे। इसके कुछ समय बाद इन्होंने मुलतान अधिकार किया। अब दक्षिणने भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और सब इनके अनुगत अनुचर हो गए।

नादिरकुलीने अफगानिस्तानसे लौट कर देखा, कि तहमस्पशाहने तुर्कियोंके साथ सन्धि कर ली है। तहमस्पशाहकी यह राजकीय अक्षमता इनको सह्य न हुई। इन्होंने इसी बहानेसे उन्हें सिंहासनसे उतार दिया और १७३२ ई०में अपने कर्मचारियोंके शिशु पुत्रको राजगद्दी पर बिठा कर स्वयं राज्यशासन करने लगे। इसी समय 'शाह' अर्थात् 'राजा'की उपाधि दे कर पुत्रको ३य अब्बासके नामसे अभिषिक्त किया। इस वर्ष साधारणको वाञ्छित योग्य

सर्दी उपाधि प्राप्त करनेसे पहले इन्हें तुर्की और रूसोंके साथ बहुत युद्ध-विग्रह करना पड़ा था। उन लोगोंने फारसके जितने भी स्थान अधिकार किए थे, उन सबको अपने कब्जेमें कर इन्होंने तुर्कियोंके साथ (१७३६ ई०में) सन्धि स्थापन की थी। इसी साल इनके शिशु-पुत्रका वियोग हुआ था। पीछे नादिरके हृदयमें, कैसी आशाका सञ्चार हुआ था, यह सहजमें ही समझा जा सकता है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे आन्तरिक भावको छिपा कर बाहरसे 'राजा'की उपाधि ग्रहण करनेमें अनिच्छा प्रकट करने लगे थे। परन्तु उमराव लोग उनके मनके भावको समझ गए और सबने उन्हें 'शाह' मान लिया।

कहा जाता है, कि मोघानके समतलक्षेत्रमें समस्त राज-कर्मचारियोंने मिल कर लक्षाधिक प्रजाकी उपस्थितिमें उन्हें राजमुकुट पहनानेकी इच्छा प्रकट की थी। पहले तो इन्होंने स्वीकार नहीं किया; पर बादमें जब यह मालूम हुआ कि तमाम फारसमें सुन्नीमतका प्रचार हो जायगा, तब उन्होंने उक्त प्रस्तावको स्वीकार कर राजमुकुट ग्रहण किया। यह घटना ई० सन् १७३६ की २६ फरवरीके सुबह ८ बजके २० मिनट पर हुई थी।

इस प्रकार उन्नति सोपानको अतिक्रम करते हुए नादिरशाह अपने चिराभिलषित स्थान पर पहुंचे। अब युद्धके सिवा ऐसे उच्च आसनकी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं, ऐसा सोच कर आप बहु बल संग्रह पूर्वक दिग्विजयके लिए निकले। प्रथम ही कन्दहार पर आपकी दृष्टि पड़ी। अस्सी हजार सेनाके साथ आपने कन्दहार अवरोध किया। उस समय अबदलियोंने इनको यथासाध्य सहायता पहुंचाई थी। परन्तु कन्दहार जीतना सहज बात न थी। इतनी सुविधाएं होने पर भी आपको एक वर्ष तक अवरोध कायम रखना पड़ा था और बहुत बार वहांसे दूर भी हटना पड़ा था। अन्तमें नगरवासियोंके हतोत्साह हो (१७३८ ई०में) आत्मसमर्पण करने पर, उन्हें वशमें लानेके लिए उनमेंसे बहुतोंको आपने अपने सैन्य-विभागमें नियुक्त कर लिया और सबके साथ अच्छा व्यवहार करने लगे।

जिस समय नादिरशाह अफगानोंके साथ युद्ध कर रहे थे, उस समय आपने भारतके अधीश्वर महम्मदशाहको दूत द्वारा कहला भेजा कि, "भागे हुए अफगानोंको भारतमें स्थान न मिलना चाहिये।" परन्तु पारस्यराजकी प्रार्थना उन्होंने ग्राह्य न की। और तो क्या, उनका एक दूत भी रास्तेमें अफगानों द्वारा मारा गया। इस तरहका गर्हित व्यवहार देख कर नादिरशाह मारे क्रोधके आग बबूला हो गये। उन्होंने भागनेवाले अफगानोंको भगा कर गजनी और काबुल पर कब्जा कर लिया (१७३८ ई०में) और दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए।

इस समय भारतकी अवस्था शोचनीय थी। मुगलसम्राट्की दुर्बलताके कारण मराठोंका आधिपत्य यथेष्ट रूपमें वृद्धिको प्राप्त हुआ था। महम्मदशाह राज-कार्यसे पराङ्मुख और व्यसनासक्त थे। नादिरशाहकी आगमनागङ्का क्षण भरके लिए भी उनके हृदय पटलमें उदित न हुई थी। इधर नादिरशाह मार्गमें एक छोटी सेनाको परास्त कर निर्विघ्नतया सिन्धुनदी तक अग्रसर हो गये। वहांसे नावोंका पुल बना कर पञ्जाबमें आ गये और दिल्लीसे १०० मीलकी दूरी पर पड़ाव डाल दिया।

१७३८ ई०में करनालमें भारतकी सेनाके साथ इनका युद्ध शुरू हुआ। युद्धका परिणाम क्या हुआ, यह सहज ही मालूम हो सकता है। बीस हजार मुगल-सेना युद्धक्षेत्रमें सदाके लिए सो गई। प्रधान सेनापति खान्-इ-दौरान मारे गये और अयोध्याके राज-प्रतिनिधि कैद कर लिये गये।

महम्मदशाहने जब देखा, कि नादिरशाहके साथ युद्धमें जीतना टेढ़ी खीर है, तब उन्होंने पारस्यराजकी अधीनता स्वीकार कर ली और आसफ-जाहको उनके पास भेजा तथा पीछेसे पारिषदोंके साथ स्वयं भी नादिरशाहके समक्ष उपस्थित हुए।

नादिरशाह महम्मदशाहके साथ दिल्लीके राजप्रासादमें रहने लगे और उनकी सेनाको उन्होंने नगरमें शान्ति और प्रजाओंकी रक्षाके लिए नियुक्त किया। दूसरे दिन अफवाह फैल गई कि नादिरशाह मर गये। यह सुन कर अविवेचक व्यक्तियोंने पारस्य-सेना पर सहसा आक्रमण किया और प्रायः सात सौ सैनिकोंको यमपुरी भेज दिया।

नादिरशाह स्वयं उपस्थित हो कर विद्रोह-दमनके लिए बीचबीचमें कोशिश करने लगे; पर किसी तरह भी उपद्रव शान्त न हुआ। चारों ओरसे उन पर लगातार पत्थर और तीरोंकी वर्षा होने लगी। नादिरशाहको लक्ष्य करके किसीने एक गोली छोड़ी। सौभाग्यवश वह बादशाहको देहमें न लग कर पार्श्ववर्ती एक उमरावको लगी। इस घटनासे नादिरशाहकी सुप्त हुई क्रोधाग्नि फिरसे भभक उठी। वे धैर्य न रख सके। उन्होंने आदेश दिया—"सबको मार डालो!" बस फिर क्या था; शोणितप्रिय निष्ठुर सैनिकगण आबालवृद्धवनिता सब तरहके मनुष्योंकी हत्या करने लगे।

सैनिकोंके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि जल रही थी। लुण्ठन किया और पाशवप्रवृत्ति अधिकतर प्रबल हो गई थी। नगरमें आग लगा कर वे नगरवासियोंको पाषाण चित्तसे शाणित तरवारका शिकार बनाने लगे। 'नादिर नामा'में लिखा है, कि इसमें १०००० आदमी मारे गये थे। परन्तु अन्यत्र इस विवरणमें १२००००से भी अधिक आदमी मारे गये थे। सुबहसे ले कर शाम तक यह भयानक हत्याकाण्ड जारी रहा था।

नादिरशाह इस प्रकारका निष्ठुर आदेश दे कर आप मसजिदमें जा बैठे थे। ऐसी अवस्थामें उनके सामने जाय ऐसा साहस किसको था? परन्तु महम्मदशाह डरते डरते उनके पास पहुंच गये और विनीतभावसे उनसे प्रार्थना की "मेरे अधिकृतोंकी रक्षा करनी होगी।" नादिरशाहने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हत्याकाण्ड बन्द करनेके लिए आदेश दिया। आज्ञा पाते ही सुशिक्षित सेना इस निष्ठुर कार्यसे विरत हुई। इसके बाद नादिरशाहने राजकोषका धनरत्नादि तथा मयूरासन ग्रहण किया और जनसाधारणको मृत्युका भय दिखा कर अपरिमित अर्थ संग्रह किया। इस तरह आपने भारतवर्षसे प्रायः ८८ लाख रुपये वसूल किये। इसके सिवा वे स्वर्णमुद्रा, रौप्यमुद्रा, मणिमुक्ता, हाथी, घोड़े और कारुकार्यपटु शिल्पियोंको साथ ले चले। महम्मदके साथ सन्धि की, कि सिन्धुनदका पश्चिम पार नादिरशाहके दखलमें रहेगा। इस प्रकार तैमूर के वंशकी एक कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह कर नादिरशाहने महम्मदको दिल्लीके सिंहासन पर बिठाया और अपने हाथसे उन्हें रत्नालङ्कारसे विभूषित कर राजमुकुट पहनाया। वीरवर नादिरशाह अट्ठावन दिन दिल्लीमें रहे थे और फारसको लौटते समय महम्मदशाहको राजनीति विषयक नाना शिक्षाएं दे गये थे।

भारतवर्षसे लौटने पर फारसकी प्रजाने हर्षसे बड़ा उत्सव प्रकट किया था। उनकी आशा निष्फल न हुई। तीन वर्षके लिए नादिरशाहने कर माफ कर दिया। इसके बाद नादिरशाहने खीवा, बुखारा और खारिजम राज्य अधिकार किया। पांच वर्षके भीतर इन्होंने पांच राजाओंको परास्त किया था।*

ये अफगानिस्तानियोंके हाथसे सिर्फ फारसको मुक्त करके ही शान्त न हुए थे। उत्तरमें अक्सस नदी और पूर्वमें सिन्धुनद तक आपने पारस्य-राज्यकी सीमा विस्तृत की थी। तुर्कियोंसे इनका विषम विद्वेष था। उन्हें दमन करनेके लिए इन्होंने तीन बार युद्धयात्रा की थी। वे ताब्रीज और यूफ्रेटिस नदीके पार न बढ़ सके, यही इनका अफसोस था। इसी लिए अन्य किसी युद्धमें प्रवृत्त होनेके पहले लेजगी तातारोंने नादिरके भाई इब्राहिमकी हत्या की थी। नादिर उन्हींको प्रतिहिंसामें प्रवृत्त हुए थे।

नादिरशाह पारसिकोंका भी पूरा विश्वास न कर सकते थे; और तो क्या, वे अपने ज्येष्ठ पुत्र रेजाकुली पर भी अधिकतर सन्दिग्ध रहते थे। कहा जाता है, कि एक दिन नादिरशाह जङ्गलमें शिकार खेल रहे थे, कि इतनेमें एक गोली आ कर उनके शरीरमें लग गई। अवश्य ही यह कार्य किसी गुप्तचर द्वारा हुआ होगा, किन्तु इन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रकी आंखें उपाड़ लेनेके लिए हुक्म दिया। सभासदोंने बहुत कुछ अनुनय विनय किया—क्षमा मांगी, पर आपने एकको भी न सुनी; बल्कि उनका क्रोध और बढ़ाव्यवहार पहलेकी अपेक्षा सौ गुना बढ़ गया। नगरमें नरमुण्डोंके ढेर लग गये। शोणितस्रोत प्रवाहित होने लगा। उन्मादित

* अफगानिस्तानके दो राजा महमूद और हुसेन, बुखाराके एक राजा अबुल फैज़, खीवाके एक राजा एलबर्स और दिल्लीके बादशाह महम्मद।

चक्षुओंकी ढेरी लग गयी। प्रजा-साधारण जीवनकी आशा छोड़ कर विषयसुख ही किसी तरह समय बिताने लगे। नगर मरुभूमिमें परिणत हो गया।

जीवनकी शेष अवस्थामें शारीरिक अस्वस्थताके कारण नादिरके रोगकी मात्रा इतनी बढ़ गई कि आखिरको वह उन्मत्ततामें परिणत हो गई। एक दिन कहीं जाते जाते सहसा आप घोड़ेसे उतर पड़े और सैन्यदलके बाहर भागने लगे; किन्तु कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ हो गये। मस्तिष्कके चाञ्चल्यवश आपने अफगानोंको राजकार्यमें तथा युद्धमें नियुक्त करनेके लिए आह्वान किया। इन निष्ठुर अत्याचारोंके कारण प्रजा इनसे बहुत नाराज हो गई। उमरावोंके षड़यन्त्रसे १७४७ ई०में रविवार तारीख १० मईको रातको उन्हींके निकट-सम्बन्धी अलीकुली खाँने उनके वासभवनमें प्रवेश कर दुर्दान्त नादिरशाहको दुनियांसे सदाके लिए विदा कर दिया। ये ही अलीकुली खाँ "आदिलशाह" नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठे थे और इन्होंने नादिरशाहके तेरह पुत्र-प्रपोत्रोंका प्राणसंहार किया था। सिर्फ रेजाकुली खाँका चौदह वर्षका पुत्र शाहरुख बच गया था।

नादिरशाही (फा०स्त्री०) १ ऐसा अंधेर जैसा नादिरशाहने दिल्लीमें मचाया था, भारी अन्धेर या अत्याचार। २ नादिरशाहके ऐसा, बहुत ही कठोर और उग्र।

नादिरी—एक कवि। इनके विषयमें केवल इतना ही पता लगता है, कि १००० हिजरीमें ये भारतवर्षको आये थे। दाघिस्तानीने लिखा है, कि इस नामके तीन कवि थे। १म समरकन्दवासी जो हुमायूंके शासनकालमें भारतवर्ष आये। २य सुस्तारके नादिरी और ३य स्यालकोटके नादिरी।

नादिरी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारकी सदरी या बंडी जो मुगल बादशाहोंके समयमें पहनी जाती थी। इसके किनारे पर कुछ काम होता था। इसे कभी कभी खिलअतमें दिया करते थे। २ गञ्जीफेका वह पत्ता जो खेलके समय निकाल कर अलग रख दिया जाता है।

नादिहंद (फा० वि०) जिससे रकम वसूल न हो, न देनेवाला।

नादिहंदी (फा० स्त्री०) अदातव्यता, किसीको कुछ न देनेकी प्रवृत्ति।

नादेन्दल—कृष्णा जिलेके नरसरावुपेत तालुकमें ८ मील पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां बहुतसे मन्दिर हैं और पत्थरखण्ड पर खुदा हुई देवदेवियोंकी भी अनेक मूर्त्तियां देखनेमें आती हैं।

नादेय (सं० क्ली०) नद्या नादस्य वा इदं तत्र भवं वा नदी वा नद-ढक्। १ सैन्धवलवण सेंधा नमक। २ सौवीराञ्जन, सुरमा। ३ काशतृण, कांस नामकी घास। ४ अम्बुवेतस, जलबेंत। (त्रि०) ५ नदीसम्बन्धी, नदीका। ६ नदीमें होनेवाला।

नादेयी (सं० स्त्री०) नदी-ढक, ततो ङीप्। १ अम्बुवेतस, जलबेंत। २ भूमिजम्बूक, भुइंजामुन। ३ वैजयन्तिका, वैजयन्ती। ४ नागरङ्ग, नारङ्गी। ५ जवा, अड़हुल। ६ व्यड्गुठ। ७ अग्निमन्थ, अंगेथू। पर्याय—जय, न्यावर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, वैजयन्तिका। ८ नागरमुस्ता, नागरमोथा। ९ वाराहीकन्द। १० भूम्यामलकी, भुइंआंवला। ११ एरण्डवृक्ष, अंडीका पेड़।

नादेश्वर (सं० क्ली०) काशीस्थित शिवलिङ्गभेद, काशीके एक शिवलिङ्गका नाम।

नादेहंद (हिं० वि०) नादिहंद देखो।

नादोम्पुर—चट्टग्रामका एक प्रधान बन्दर।

नादोल—जोधपुरके अन्तर्गत देसुरी जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° २२´ उ० और देशा० ७३° २७´ पू०के मध्य राजपूताना-मालवा रेलवेको जवाली स्टेशनसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ३०५० है। महमूदकी सोमनाथ-यात्राके समय नादोलके राजा राय लाखाने अन्यान्य राजाओंके साथ मिल कर उन्हें रोकनेकी कोशिश की थी। यहां महावीरका एक बड़ा ही मनोहर मन्दिर और 'चन्द्र बावड़ी' नामका एक प्रकाण्ड जलाशय है।

चौलुक्यवंशीय राजाओंने बहुत जमीन दान की थीं जिनमेंसे कुमारपाल प्रदत्त शासनका नाम 'नादोल' है।

नादौन—१ पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलान्तर्गत हमीरपुर तहसीलका एक राज्य। भूपरिमाण ८७ वर्गमील है। यहांके प्रधान राजा संसारचांदके पोते हैं। संसारचांदके जारज

नहीं हो सकता।" वैद्य गिर्धकी धर्मसंगिक वाक्य-परम्पराको सुन कर बिलकुल मुग्ध हो गया और कालू को समझा दिया कि इनको एकान्तवास करना ही नानकके लिए परम औषध है।

सात वर्षकी उम्रमें नानक पहले पहल विद्यालयमें भेजे गए। विद्यालयमें पण्डितजी महाशय जब धर्म-सम्बन्धी उपदेश देते थे, तब आप उसे बड़े आग्रहसे सुनते थे और कभी ईश्वरके विषयमें ऐसे प्रश्न किया करते थे कि शिक्षक भी अति कष्टसे उनकी मीमांसा नहीं कर सकते थे। नानकके हृदयमें 'एकमेवाद्वितीयम्' यह विश्वास बचपनमें ही बद्धमूल हो गया था। सयरुल-मुताख्रिरोनके प्रणेताके मतसे, नानकने एक मुसलमान मौलवीके पास विद्या सीखी थी। वे मौलवी तलवन्दीमें ही रहते थे और मुसलमान धर्मशास्त्रमें उनका विशेष अधिकार था।

नानकने जीवनका अधिकांश समय निर्जनवास और धर्मचिन्तामें व्यतीत हुआ था। सहचरों और साधारण लोगोंसे पृथक् रहनेके उद्देश्यसे वे बहुत छोटेपनसे ही समय समय पर घर छोड़ कर गहन काननमें जा छिपते थे। कभी कभी यह काननवास इतना दीर्घकाल-व्यापी होता था, कि माता पिता यह समझ लिया करते थे कि पुत्र या तो मार्ग भूल गया है, या हिंसक जन्तुओं-के पेटमें चला गया है। परन्तु पीछे जब विशेष खोज की जाती थी, तब उन्हें फकीरके वेशमें निश्चित-भावसे भ्रमण करते पाया जाता था।

नानक जब नौ वर्षके हुए, तब पिताने उनका हिन्दुशास्त्र-सम्मत उपवीत संस्कार करानेके लिए पुरोहित और बन्धुबान्धवोंको आमन्त्रित किया। सबके उपस्थित होने पर उपनयनका पूर्वकर्त्तव्य अनुष्ठित हुआ। बादमें पुरोहितने नानकको उपवीत धारण करनेके लिये आदेश दिया। नानकने कहा, "उपवीत धारण करनेसे मेरी अवस्था तनिक भी उन्नत न होगी।" इस विषयमें उन्होंने दर्शन-सम्मत बहुत तर्क-वितर्क किया और ब्राह्मणोंको उनके तर्कसे निरुत्तर हो जाना पड़ा। सिक्खोंके धर्मग्रन्थमें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"मनुष्य ईश्वरका नाम जप कर आत्माकी उन्नति बनावें। उनके लिए प्रशंसा ही श्रेष्ठ उपवीत है। जिन्होंने एक बार ऐसा उपवीत धारण किया है, वे ईश्वरके निकट पहुंचनेके अधिकारी हैं और उस उपवीतको वे कभी तोड़ नहीं सकते।"

नानककी उमर जब पन्द्रह वर्षकी हुई, तब पिताने उन्हें दूकानदारी सिखानेके अभिप्रायसे ४०) रु० दे कर बाला नामक एक नौकरके साथ नमक खरीदने भेज दिया। नानक अपने पिताके कथनानुसार किसी ग्राममें नमक खरीदने चल दिए। चलते चलते रास्तेमें उन्हें भूखे फकीरोंका एक दल नजर आया, नानकका हृदय दयासे पसीज गया। उन्होंने उन चालीस रुपयोंसे खाद्यपदार्थ खरीद कर फकीरोंको भोजन कराया। इस तरह रुपये बरबाद करते देख नौकरने उन्हें फटकार लगाई। नानक-ने कहा—"मैंने वह चीज खरीदी है, कि जिसका फल दूसरे जन्ममें भोगूंगा। मनुष्यके साथ क्रय-विक्रय करने-की अपेक्षा ईश्वरके साथ क्रय-विक्रय करनेमें कहीं अधिक लाभ होता है।"

नानक घर लौट कर पिताके डरसे एक पेड़की डालियोंके बीच जा छिपे। कालूने रुपयोंकी बरबादी-का हाल सुन कर नानकको पीटना शुरू कर दिया। पीछे रायबुलारने अपनी तरफसे ४०) रु० दे कर कालू-का क्रोध शान्त किया। जिस वृक्षमें नानक छिप गये थे, उसका नाम 'मालसाहब' है। पिता द्वारा बार बार मार खाने पर भी नानक अपनी दानशीलताको न छोड़ सके। मौका पाते ही ये घरसे रुपये पैसे ले कर दरिद्रोंको दान कर दिया करते थे। इनके पिताने किसी समय सुलतानपुरमें इन्हें एक दाल-चावलकी दूकान करवा दी थी। किन्तु नानकने दूकानका सामान फकीरोंको बांटना शुरू कर दिया। जहां आपने दूकान खोली थी, उस स्थानका नाम है 'हाटसाहब'। नानकके शिष्यगण अब भी उस स्थानकी तथा उनकी बाट-तराजू वगैरहकी भक्तिभावसे पूजा किया करते हैं।

सांसारिक द्रव्यादिकी रक्षाके विषयमें नानककी ऐकान्तिक शिथिलता देख कर पिताने उस अनास्थाको दूर करनेके अभिप्रायसे सोलह वर्षकी उमरमें आपका

विवाह कर दिया। गुरुदासपुर जिलेमें बटालाके अन्तर्गत पक्खोकेमें रहनेवाले खत्री व मोल मूलाकी कन्या सुलक्खनीके साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। परन्तु इससे भी उनके पिताकी मनसा पूरी न हुई। विवाह हो जाने पर भी नानक अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिको छोड़ न सके। नानकी नामक नानकको एक बहन थी। जयराम नामक एक क्षत्रियके साथ उनका विवाह हुआ था। ये जयराम दिल्लीके बादशाह बहलोल लोदीके आत्मीय नवाब दौलत खाँ लोदीके अधीन कार्य करते थे। पञ्जाब के कपूरथलाके निकटवर्त्ती सुलतानपुर नामक स्थानमें दौलत खाँकी विशाल जागीर थी। उक्त नवाबके अधीन कार्य करनेके अभिप्रायसे नानक जयरामके पास भेजे गये। नवाबने आप पर अनिविभागकी रक्षाका भार अर्पण किया। किन्तु आप इतनी उदारताके साथ दरिद्रोंको दान करने लगे कि थोड़े ही समयमें उक्त अतिथिशालाकी तमाम चीजों का खातमा हो गया। जो कुछ हो, थोड़े ही समयमें आप यहाँका काम छोड़ कर चले आये।

दौलत खाँके अधीन कार्य करते समय, २२ वर्षकी उमरमें आपके प्रथम पुत्र हुआ, जिसका नाम रक्खा गया श्रीचन्द। इसके चार वर्ष बाद लक्ष्मीदास नामका दूसरा पुत्र हुआ। लक्ष्मीदास जिस समय पैदा हुआ था, उस समय आप फकीरके वेशमें देश भ्रमणको निकले थे। मरदाना नामक एक वीणा बजानेवाला, लहना (जो कि अन्तमें नानकके उत्तराधिकारी हुए), बाला और रामदास ये चार व्यक्ति आपके सहचर थे।

ईश्वरकी प्रशस्तिके लिए नानक जिन पद्यों को रचना करते थे अथवा शिष्यों को उपदेश रूपमें जो कुछ कहते थे, मरदाना उसे वीणा बजा कर गाया करते थे। कहा जाता है, कि आपने धर्मप्रचारके उद्देश्यसे भारतवर्ष, फारस, काबुल और एशियाके अन्यान्य स्थानों में, और तो क्या मक्का तक परिभ्रमण किया था।

नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर चुकनेके बाद आप गुजरानवालाके अन्तर्गत एमनाबाद नामक स्थानमें लाल नामक सूत्रधारके साथ कुछ दिनों तक रहे। मरदाना जब परिवारके लोगों को देखनेके लिये अपने घर लौटे, तब रायबुलारने नानकके आगमनकी खबर सुन मरदानाको अपना दर्शनेच्छा ज्ञापन की। नानकके थोड़े दिन बाद तलवन्डी ग्रामको लौटने पर उनके पिता, माता, ससुर, काका और अन्यान्य आत्मीयगण वहाँ आ कर उन्हें पुनः गृहस्थ बनानेके लिए नाना तरहकी कोशिशें करने लगे। परन्तु वे बिन्दुमात्र भी विचलित न हुए। उन्होंने उपदेशरूपमें जो बातें कही थीं, उनके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं—

१। "क्षमा मेरी मा है, धैर्य मेरा पिता है और सत्य चचा है। इनकी सहायतासे मैंने मनःसंयम सीख लिया है।"

२। "साधू! यह उपदेश सुनो —जो शील व सार सत्यनके आधार हैं, वे क्या कभी दुखी हो सकते हैं?"

३। "हे भ्राता! सुशीलता मेरी सहचरी है, प्रधान प्रेम पुत्र है; अविच्युता मेरी कन्या है, इन लोगोंके सहवासके मैं बड़े सुखसे जीवनयापन कर रहा हूं।"

४। "शान्तिता मेरी चिरसङ्गिनी (स्त्री) है; विनम्रता मेरी दासकन्या है। ये हो मेरी अति प्रिय और आत्मीय हैं। ये प्रति क्षण मेरे साथ रहती हैं।"

५। "जिस एक एव अद्वितीय ईश्वरने सृष्टि बनाया है, वे हो मेरे प्रभु हैं। जो व्यक्ति उस ईश्वरको आत्म समर्पण न करके अन्यकी खोज करता है उसको यातना सहनी पड़ती है।"

रायबुलार आपको इस सारगर्भित वक्तृताको सुन कर तथा आपके पाण्डित्य और धर्मानुचिन्तन भावको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यही कारण था, कि आपको तलवन्डीग्राममें रखनेके लिए उन्होंने बहुत-सी जमीन दी थी, परन्तु नानकने उसे लिया नहीं। आपके अथाने थोड़ी सा रोजगार करनेके लिये रुपये दिये, वह भी आपने न लिए और कहने लगे—"शास्त्रपथका अनुसरण कर सत्यरूप अर्थका व्यवसाय कीजिये। अपने आनेके लिए सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिए। इन बातों को असार अवज्ञा न समझियेगा। ईश्वरके राज्यमें जानेके लिए मार्ग प्रस्तुत कीजिए, कारण वहाँ जानेसे निरसुख भोग कर सकेंगे।"

तदनन्तर आप पुनः देशपर्यटनके लिए निकले थे

और वङ्गदेश तथा यहांकी गिरि श्रेणियोंमें परिभ्रमण किया था। इस गिरि-भ्रमणके समय प्रसिद्ध योगिवर गोरखनाथके साथ आपकी भेंट हुई थी। अफगानिस्तानमें भ्रमण करते समय मरदानाको मृत्यु हो गई। फिर आप वताला नामक स्थानको लौट कर तलवन्दीकी तरफ रवाने हुए। इतनेमें रायवुलार और कालूकी भी मृत्यु हो गई। मरदानाके पुत्र शाहजादा साहबको साथ ले मुलतानमें तालम्बा नामक स्थानमें उपस्थित हुए। वहां कुछ डकैतोंने शाहजादाको पकड़ कर कैद कर लिया। नानकने अपनी यक्त्र,नागशक्तिके प्रभावसे उन्हें मुग्ध कर अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया। वहांसे वे काबुल और कन्दहारको गये। कहा जाता है, कि मार्गमें उन्होंने हाथोंसे पदत-स्खलित एक विशाल भूखण्डको थाम लिया था। पर्वत पर उनके हाथोंका चिह्न अङ्कित हो गया था। आज भी उक्त स्थान विद्यमान है, लोग उसे 'पञ्जासाहब' कहते हैं। काबुलसे लौट कर आप फिर कुछ दिनों तक अपने मित्र श्रामनाबादनिवासी सूत्रधर लालूके साथ रहे थे। इस समय आपके शिष्योंकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। सब आपको सिद्ध पुरुष और महाधर्माध्यक्ष समझते थे। समयके परिवर्त्तनके साथ साथ आपकी अवस्थामें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया था। अब समाज और परिवारवर्ग पर आपकी पहलेकी तरह अश्रद्धा वा घृणा न थी।

कुछ दिन लालूके साथ एकत्र वास करनेके बाद, उनको छोड़ कर और बालाको साथ ले आप गुरुक्षत-मेला देखनेके लिये मुलतान चल दिये। वहां इकट्ठे हुए लोगोंके समक्ष आपने अपने धर्मका सारमर्म कहा। दिल्लीके अधीश्वर इब्राहिमलोदीके करदारोंने वफलता सुन कर आपके विरुद्ध सम्राट्‌के पास आवेदन पत्र लिख भेजा। इब्राहिम उक्त सम्वाद पा कर क्रुद्ध हुए और नानकको दिल्ली पकड़वा बुलाया और उनका धर्ममत वेद तथा कुरानके मतसे शून्य है, इस अपराधमें उन्हें कारारुद्ध कर रखा। नानकको सात महीना कैद रहना पड़ा था। बादमें मुगलवंशीय बाबरशाहके भारत पर आक्रमण कर १५२६ ई०में पानीपथमें इब्राहिमको पराजित और निहत करने पर नानकको मुक्ति मिली। उसके बाद आप सिन्धुदेश चले गए। वहां वहराम नामक एक शिक्षित मुसलमानके साथ आपका धर्मसम्बन्धी तर्क वितर्क हुआ था। उस समय आप "प्राग" नामकी एक पुस्तक लिख रहे थे।

कहा जाता है, कि नानकने सिंहल-भ्रमण किया था और सिंहलराज शिवनाथ और अन्यान्य बहुत-से व्यक्तियोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया था। आप सिंहलमें दो वर्ष पांच महीने रह कर स्वदेशको लौटे थे।

नानकके इस्तामबुल-भ्रमण और तुरुष्कराजके साथ साक्षात्‌के विषयमें एक प्रवाद है। तुरुष्कराज अत्यन्त अर्थलोभी और प्रजापीडक थे। किन्तु नानकके उपदेश-से उन्होंने अपना तमाम रुपया फकीरों और दीन-दुःखियोंको दे दिया था तथा प्रजापीडनका अभ्यास सदाके लिए छोड़ दिया था।

नानकने अपना शेष जीवन ईरावती नदीके किनारे (गृहादि निर्माणपूर्वक) बिताया था। आप अपने परिवारके कर्त्ता हुए थे। आपके घरमें सब जातिके लोगों-को आश्रय मिलता था। आप स्वयं फकीरके वेशमें रहते हुए भी बहुसंख्यक लोगों पर प्रभुत्व करते थे। प्रायः सभी आपको धर्मोपदेष्टा समझ कर सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। आपका खर्च राजाओंसे किसी प्रकार भी कम न था। वहां आपने एक अतिथिशाला खोली थी, जहां बहुसंख्यक दरिद्र प्रतिपालित होते थे। ईरावतीके किनारे अब भी आपका वह निवासभवन विद्यमान है, जो कि 'डेरा बाबानानक'के नामसे प्रसिद्ध है।

नानकने जालन्धर जिलेमें करतारपुर नगर संस्थापन कर वहां एक धर्मशाला बनवायी थी। सिख लोग उसे पवित्र स्थान मानते हैं। इसी स्थानमें १५३८ ई०में ७१ वर्षकी उमरमें आपका देहावसान हुआ था। इस दीर्घ समयमें आप लोकहित कार्यमें व्याप्त थे। जीवनके शेष ४० वर्ष ५ मास ७ दिन तक आप "गुरु" नामसे प्रसिद्ध हुए थे। करतारपुरमें स्मरणचिह्न-स्वरूप आपका एक समाधिमन्दिर बनाया गया था। उस जगह प्रति वर्ष नानकके मृत्यु-दिवसमें बहुतसे लोग इकट्ठे हो कर उत्सव करते थे। ईरावतीके स्रोतसे अब वह मन्दिर टूट गया है।

टन करते थे, तो भी भिन्न भिन्न स्थानीय और नाना जातीय विभिन्न प्रकृतिके मनुष्योंके संसर्ग और आलाप परिचयसे इनके संशय और समाजके ऊपर अश्रद्धाका बहुत कुछ ह्रास हो गया था। अन्तमें वे कर्त्तास्वरूपमें परिवारवर्गके साथ रहने लगे। वे उपदेश दिया करते थे, कि ईश्वरकी उपासनाके लिये संसारका त्याग करना निष्प्रयोजन है। ईश्वरके सामने फकीर और राजामें कुछ फर्क नहीं; जो जहां जिस अवस्थामें रहता है, सभोंके प्रति उनकी समान दया है। नानकप्रणीत "ग्रन्थ" नामक पुस्तकमें उनके धर्मका सारमर्म सविस्तार वर्णित है, इसे 'आदिग्रंथ' कहते हैं। इनके उत्तराधिकारियोंमेंसे गुरुगोविन्द नामक एक व्यक्तिने उक्त पुस्तकका द्वितीय खण्ड प्रणयन किया है। किन्तु इस पुस्तकमें उनके शिष्योंका 'धर्मप्रचारके लिये युद्धकी आवश्यकता है" ऐसा मन्तव्य प्रवर्त्तित हुआ है।

उनमें अमानुषिक क्षमता है, ऐसा समझ कर नानक यद्यपि कभी भी अहङ्कार या भान नहीं करते थे, तो भी उनके शिष्य उनकी भूयसी अनैसर्गिक क्षमताका उल्लेख किया करते हैं।

नानकके शिष्यगण उन्हें जो ईश्वरके जैसा मानते थे, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। एक दिन किसी व्यक्तिने स्वर्गसे नानकको पुकार कर समीप आनेको कहा। इस पर नानक आश्चर्यान्वित हो बोले, "हे ईश्वर! आपके सामने ठहरनेकी मुझमें क्या शक्ति है?" इस दैववाणीने उन्हें आंख मूंद लेनेको कहा। नानकने जब अपनी आंखें मूंद लीं, तब वे अपनेको ईश्वरके सामने उपस्थित देखते हैं। पीछे ईश्वरने उन्हें आंख खोल लेनेको कहा। नानकने वैसा ही किया और 'उत्तम' यह शब्द पांच बार उच्चारित होते सुना। इसके बाद "उत्तम किया है, शिक्षक" यह बात इन्होंने सुनी। तदनन्तर ईश्वरने बातचीत करते समय इनसे कहा था, 'मनुष्य-जातिके शिक्षकरूपमें तुमने कलियुगमें जन्म लिया है और उन्हें धर्म तथा अच्छे रास्ते पर ले जाना ही तुम्हारा कार्य है।'

एक और दूसरा प्रवाद यों है—नानकने एक दिन प्याससे व्याकुल हो अपने बुढ्ढ नामक गो-रक्षकको निकटवर्त्ती पुष्करिणीसे जल लाने कहा। 'उस पुष्करिणीमें कुछ भी जल नहीं है' उसके ऐसा कहने पर नानकने कहा, "तुम जा कर देखो, यह सूखी नहीं है; जल अवश्य है।" बुढ्ढ जल लाने गया और पुष्करिणीको जलपूर्ण देख बड़ा ही आश्चर्यित हुआ। पीछे बुढ्ढने जल ला कर नानकको दिया और उनका शिष्यत्व स्वीकार भी कर लिया। इसी जगह गुरु-अर्जुनने एक पुष्करिणी खोदवाई जिसका नाम रखा गया "अमृतसर।" नानकके सम्बन्धमें इस प्रकारके और भी अनेक प्रवाद सुने जाते हैं।

आमनाबादके जङ्गलमें किसी स्थान पर नानक सोया करते थे। वहां पत्थर और कङ्कड़ स्तूपाकारमें विद्यमान था। नानक इस स्तूपाकार प्रस्तरराशिको वेदि वा मन्दिरस्वरूप जान वहां धर्मसम्बन्धीय वक्तृता करते थे। यह जगह अभी 'रोरिसाहब' नामसे प्रसिद्ध है।

वे सुल्तानपुरके समीप विपाशा नदीमें अनाहार तीन दिन तक ईश्वरध्यानमें निमग्न थे। जिस वृक्षके नीचे वे बैठते थे, वह "बाबाका पेड़" और जिस जगह स्नान करते थे, वह "शान्तिघाट" नामसे मशहूर है।

जब सम्राट् बाबरने पञ्जाब पर चढ़ाई की, तब नानक अपने शिष्योंके साथ पकड़े गए और सम्राट्के समीप लाये गए। इनके साथ बातचीत करते समय विद्वान् सम्राट् बड़े ही प्रसन्न हुए और इन्हें उपहार देनेका निश्चय किया; किन्तु नानकने यह कह कर उसे लेना नहीं चाहा कि, "ईश्वरकी उपासनाके फलसे मेरे मनमें जो आनन्द विद्यमान है, वही मेरा अमूल्य पुरस्कार है और जो ईश्वर सभोंके प्रभु हैं, उन्हींको सन्तुष्ट करना ही मेरा परम उद्देश्य है। अतएव यह ईश्वरसृष्ट राजा परितुष्ट हो वा न हो, इसके लिये मुझे जरा भी चिन्ता नहीं।"

एक दिन बाबरके नौकर उनके लिये अति सुगन्धित और सुसेव्य जल लाए। बाबरने उसमेंसे थोड़ा पी कर अवशिष्टांश नानकको पीने दिया। इस पर नानकने कहा था,—जो मनुष्य ईश्वर-चिन्तामें मत्त हैं, उसको इस जलसे कुछ भी फायदा नहीं हो सकता।

यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि बाबरने अपनी स्वहस्त-लिखित जीवनीमें सिखधर्म-संस्थापक नानकका

स्त्रियां राज्यके लिए आपसमें लड़ने लगीं। अन्तमें सर जङ्ग बहादुर खां के० सी० आई० ई० यहांके प्रबन्धकर्त्ता बनाये गए और इनके उत्तम प्रबन्धसे यह राज्य उन्नत हो उठा। वर्त्तमान राजा मुहम्मदसादोक खां १८०२ ई०में सिंहासन पर बैठे।

२ उक्त प्रदेशके बहराइच जिलेकी एक तहसील। इसमें नानपार, चर्दा और धर्मनपुर ये तीन परगने शामिल हैं। यह अक्षा० २७° ३८´ से २८° ५४´ उ० और देशा० ८१° ३´ से ८१° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०५० वर्गमील और जनसंख्या ३२५५८७ है। इसमें एक शहर और ५४६ ग्राम लगते हैं तथा इसके उत्तर-पूर्व और उत्तरमें जङ्गल भी देखनेमें आता है।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २७° ५२´ उ० और देशा० ८१° ३०´ पू०, बङ्गाल और नार्थ-वेष्टर्न रेलपथ पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या १०६०१ है। प्रवाद है, कि निधाई नामक एक तेलीने इसे बसाया था। लगभग १६३० ई०में एक अफगानने शाहजहान्से इस नगरके साथ साथ चार और ग्राम पाये थे। उन्होंने ही वर्त्तमान नानपार राज्य बनाया। इसमें अनेक कार्यालय, दो स्कूल और एक अस्पताल है।

नानपुरकोली—तिरहुत जिलेके मुजफ्फरपुरका एक ग्राम। यह मुजफ्फरपुरसे पुपरी तक जो रास्ता गया है, उसी पर अवस्थित है। यहांसे मुजफ्फरपुर ३२ मील दूरमें है। किसी समय यहां जमींदार रुद्रप्रसादका वासस्थान था।

नानपेरिस्त (अं० पु०) एक प्रकारका छोटा टाइप।

नानबाई (फा० पु०) वह जो रोटियां पका कर बेचता हो।

नानभट्ट—एक संस्कृत कवि। इनके पुत्रका नाम रङ्गलाल और पौत्रका बालकृष्ण था। बालकृष्णके पुत्र रङ्गनाथने विक्रमोर्वशीटीका बनाई है।

नानस (हिं० स्त्री०) सासकी माता, ननिया सास।

नानसरा (हिं० पु०) पति या स्त्रीका नाना, ननिया ससुर।

नाना (सं० अव्य०) न-नाञ्-प्रत्ययः। १ अनेकार्थ, अनेक प्रकारके, बहुत तरहके। २ अनेक, बहुत। ३ उभयार्थ। ४ विनार्थ।

नाना—बालाजीराव पेशवा साधारणतः इसी नामसे प्रसिद्ध थे।

नाना—१ पूनाके मध्य एक पहाड़ो रास्ता। दाक्षिणात्यसे कोङ्कण इसी राह हो कर जाना होता है। इस राहके समीप 'नानाका अगूठा' नामक एक छोटा पहाड़ नजर आता है। वणिक् लोग नाना प्रकारके द्रव्यादि ले कर इसी राह हो कर आते हैं।

२ एक प्रकारका पेड़ जो बिलकुल सीधा और लम्बा होता है तथा अधिक मोलमें बिकता है।

३ १८८४ ई०में पूना अठारह भागोंमें विभक्त हुआ था जिनमेंसे एकका नाम 'नाना' है। 'नाना' अथवा 'हनुमान' खण्डकी लम्बाई १०४० गज और चौड़ाई ५०० गज है। लोकसंख्या छः हजारके लगभग है। यह स्थान अत्यन्त उन्नतिशील है। दिनों दिन नई नई अट्टालिकाएं शहरकी शोभाको बढ़ाती हैं। यहांके पारसियोंका अग्न्यागार, घोड़पड़ेका प्रासाद, विठोबाका मन्दिर और रोमनकैथलिकका गिरजा देखने योग्य है।

नाना (हिं० पु०) १ मातामह, माताका पिता, माका बाप। (क्रि०) २ नीचा करना। ३ डालना, फेंकना। ४ प्रविष्ट करना, घुसाना।

नाना (अ० पु०) पुदीना।

नानाकन्द (सं० पु०) नाना बहवो कन्दा यस्य। १ पिण्डालु। २ बहुमूल। (वि०) ३ बहुमूलयुक्त।

नानाघाट—१ पूनामें नाना नामक जो गिरिश्रेणी देखी जाती है, उसके ऊपरका एक रास्ता। जाटगढ़से यह गिरिपथ दो मीलकी दूरी पर अवस्थित। यहां शिव और दुर्गाकी प्रतिमूर्त्ति पत्थर पर खुदी हुई हैं। इस गिरि-श्रेणीमें १२५ गुफाएं हैं जिनमें ३५ शिलालिपियां खुदी हुई हैं। ये सब लिपियां पढ़नेसे जाना जाता है, कि जुन्नर बौद्ध लोगोंका एक प्रधान स्थान था।

२ पूना जिलेका एक ग्राम। यहां पर्वतकन्दरामें एक मन्दिर है जिसमें पालिभाषामें उत्कीर्ण एक शिला-लिपि देखनेमें आती है। उस शिलालिपिमें जो तारीख लिखी हुई है, उससे पता लगता है, कि यह लिपि ईसा-जन्मके बहुत पहले की खुदी हुई है।

नानात्मवादिन् (सं० वि०) नानात्म-वद-णिनि। बहु आत्मावादी, जो अनेक आत्मा स्वीकार करते हैं। इन लोगोंका मत है, कि आत्मा एक नहीं है, अनेक है।

प्रतिदेहमें एक एक पृथक् आत्मा है। सांख्यदर्शनमें यह मत मीमांसित हुआ है। इन्होंने प्रमाण द्वारा यह स्थिर किया है, कि आत्मा किसी हालतसे एक नहीं हो सकती। मान लिया जाय कि जन्म, मृत्यु और करण अर्थात् आत्मा यदि एक हो तो एकके जन्मसे समय सभी का जन्म और एककी मृत्युके समय सभी की मृत्यु हो सकती है, लेकिन ऐसा नहीं होता। इन्हीं सब कारणों से यह निश्चय है, कि आत्मा एक नहीं है अनेक है। यह नानात्मवाद वेदान्तदर्शनमें खण्डित हुआ है।

सांख्य देखो।

नानादरबारी—एक राजविद्रोही ब्राह्मण। १८१८ ई०के आरम्भमें कोली भील दल बांध कर नर्मदाके नाना स्थानोंमें लूट मार मचाया करते थे। अन्यान्य अनेक जातियोंने इस विद्रोहमें साथ दिया था। भाऊखरी, चिमनाजी यादव और नानादरबारी नामक तीन ब्राह्मण इस विद्रोहके नेता थे।

नानादिग्देश (सं० पु०) दिग्‌का देशाक, नानादिग्देशा। अनेक दिक और अनेक देश।

नानादीक्षित—काशीवासी एक महाराष्ट्रीय पण्डित। ये ब्रह्मानन्दके शिष्य थे। ब्रह्मानन्दकी वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावलीके आधार पर इन्होंने एक टीका लिखी थी।

नानाध्वनि (सं० पु०) वाद्यघोषादि शब्द।

नानान्द (सं० पु०) ननान्दुरपत्यम् शिवादित्वात् अण्। ननान्दाका अपत्य, ननदकी सन्तति।

नानान्द्रायण (सं० पु०) ननान्दुर्‌ अपत्ये ननान्द करिता दित्वात् फक्। ननान्दाका युवा अपत्य।

नानाप्रकार (सं० त्रि०) बहुविध, अनेक प्रकार।

नानाफड़नवीस—महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ। १७६२ ई०में आप पूनाके पेशवा माधवरावके कारकुन नियुक्त हुए थे। उस समय आपका नाम था बालाजी जनार्दन भानु। १७६७ ई०में आपको फड़नवीसका पद मिला था।

१७७४ ई०से १८०० ई० तक नाना फड़नवीस पूनाके मन्त्रिपद पर नियुक्त थे। उस समय पूनामें विख्यात आठ राजनीति-विशारदोंके नाम सुननेमें आते थे जिनमें नाना फड़नवीस और हरिपन्त फड़केका नाम विशेष प्रसिद्ध था। रघुनाथराव जिस समय हैदराबादके निजाम अलोकी गति रोकनेकी चेष्टा कर रहे थे, उस समय नाना फड़नवीस और अन्यान्य मन्त्रियोंने रघुनाथराव का पक्ष छोड़ दिया था। उस समय नारायणरावकी विधवा स्त्री गङ्गाबाई गर्भवती थीं। नाना फड़नवीस और हरिपन्त फड़के उन्हें ले कर पूनासे पुरन्दर चले गए। उन लोगोंका यह अभिप्राय था कि उन रानीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होने पर उसे पूनाका राजा बनावेंगे। प्रवाद है कि गङ्गाबाईके साथ और भी कई गर्भवती स्त्रियां थीं। ऐसा करनेका उद्देश यह था कि कदाचित् रानीका गर्भ नष्ट हो जाय तो उनकी सन्तानमेंसे किसी को रानीका गर्भजात पुत्र बतलाया जा सकता है।

इसी समय पूनामें ब्राह्मण अमात्योंका आधिपत्य विशेष रूपसे था। रघुनाथराव इन ब्राह्मणोंके, अति अप्रिय हो गए थे। १७७५ ई०में भारतेश्वर गवर्नमेण्टने कर्नल अपटोन (Colonel Upton)को बम्बई गवर्नमेण्ट और महाराष्ट्र अमात्योंके बीच सन्धि स्थापनके लिए भेजा। १७७६ ई०में सन्धि हो गई। यह सन्धि पुरन्दरमें हुई थी। १७७८ ई०में पुनः पूनाके मन्त्रियोंमें परस्पर विवाद उपस्थित हुआ। नाना फड़नवीसके ज्ञातिभ्राता मुराबा फड़नवीस विशेष दक्षताका परिचय देने लगे, जिससे नाना फड़नवीसकी ईर्षा प्रबल हो उठी। आप उनकी क्षमताको नष्ट करनेके लिए प्रयत्न करने लगे। परन्तु रघुनाथरावके पक्षके लोगोंने मुराबाका पक्ष ग्रहण न किया। गङ्गाबाईकी मृत्युके बाद सखारामकी नाना फड़नवीस पर सन्देह होने लगा और वे पुनः रघुनाथरावको शासन-कर्ता बनानेके प्रस्तावका समर्थन करने लगे।

अङ्गरेज-गवर्नमेण्टसे नाना फड़नवीसका अत्यन्त विद्वेष था। इसीलिये फरासीसियोंके साथ उनका सद्भाव हो गया था। मुराबाको पदच्युत करनेके लिये नाना फड़नवीसने यद्यपि चेष्टा की थी, किन्तु उनका यह प्रयत्न सफल न हुआ। अन्तमें तुकतुर फड़नवीसके बखाराम बापू द्वारा मुराबाको अपने दलमें मिला लिया।

इस समय फरासीसी-दूत सेण्ट लूबो (St. Lubin) पूनाके दरबारमें रहते थे। अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने उनकी उपस्थितिमें आपत्ति की; नाना फड़नवीसने उन्हें

विदा कर दिया। परन्तु वेस्ट लूँ वोको कह दिया गया, कि यदि वे एक दल फरासीसी सेना ले कर आ सकें, तो महाराष्ट्रगण उन्हें आश्रय देनेके लिये तैयार हैं। इधर अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने जब महाराष्ट्रके बीचसे सेना ले कर जाना चाहा, तो इन्होंने उन्हें भी निर्विघ्नतया जानेकी परवानगी दे दी और साथ ही उनकी गति रोकनेके लिए गुप्त रीतिसे महाराष्ट्रीय कर्मचारियों तथा बुन्देलखण्डके शासनकर्त्ताको परामर्श दिया।

१७९५ ई०में माधवराव बीस वर्षके हो गये थे। किन्तु नाना फड़नवीसने उन्हें पूर्ववत् शासनाधीन रखा, किसी प्रकारकी स्वाधीनता नहीं दी। यहां तक कि अन्यान्य जितने भी प्रधान व्यक्ति कारारुद्ध थे, उन पर भी नानाका विशेष लक्ष्य रहा। १७८४ ई०में (युद्धारम्भसे पहले) इन्होंने रघुनाथरावके पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा और उनके वैमात्रेय भ्राता अमृतरावको निजाम अलीके साथ नासिकसे यमुनागढ़ भेज दिया। वहां उन लोगोंको विशेष सतर्कताके साथ नजर बन्द रखा गया। इस निष्ठुर व्यवहारसे सर्वसाधारण जनता इन पर अत्यन्त असन्तुष्ट हो गई थी। उन्नीस वर्षकी उमरमें बाजीराव धनुर्विद्या, अश्वचालना आदिमें देशविख्यात हो गये थे। उनकी गुणगाथा सुन कर माधवराव उन पर मुग्ध हो गये और दोनों मिल कर स्वाधीन भावसे राज्यशासन करेंगे, ऐसा सङ्कल्प कर लिया। यह बात बाजीरावको भी मालूम पड़ी। दोनों एक दूसरे पर आकृष्ट हो गए। किन्तु दोनों ही अधीन थे, कोई भी अपने मनकी बात एक दूसरेको कह नहीं सकते थे। इसी बीचमें बाजीरावने अपने रक्षक बलवन्तरावकी मारफत माधवरावके पास सम्वाद भेजा। नाना फड़नवीसको यह बात मालूम हो गई; उन्होंने बलवन्तरावको दुर्गमें बन्दी कर रखा और माधवरावका अत्यन्त तिरस्कार किया। माधवरावने दुःखित हो छतसे गिर कर आत्महत्या कर ली। मरते समय वे कह गये थे कि "बाजीराव मेरे राज्यके अधिकारी होंगे।"

अनन्तर नाना फड़नवीसने माधवरावके उक्त अभिप्रायको प्रकट न कर चापतासम्पन्न मन्त्रियोंसे कहा, "बाजीरावके राजा होने पर यथेष्ट विपत्तियोंकी आशङ्का है। अङ्गरेजोंके साथ बाजीरावकी जैसी घनिष्ठता है, उससे साफ झलकता है कि बाजीरावके राजा होने पर अङ्गरेजोंके आधिपत्यकी वृद्धि होगी।" कुटिलबुद्धि नाना फड़नवीसने ये कारण दिखा कर माधवरावकी पत्नीको दत्तक ग्रहण करनेकी सलाह दी। उस नाबालिगकी तरफसे नाना फड़नवीस ही राज्य शासन करेंगे, इस प्रस्ताव पर सब सहमत हो गये। बाजीरावको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने उपायान्तर न देख दौलतराव सिन्धियाकी शरण ली और कहा कि "यदि मुझे आप पेशवा बनानेमें सहायता देंगे, तो आपको भी चार लाख रुपयेकी सम्पत्ति उपहारस्वरूप दूंगा।" नाना फड़नवीसको मालूम पड़ते ही उन्होंने परशुराम भाऊको बुलाया और परस्पर परामर्श किया कि सिन्धियाके पास जा कर बाजीरावको पेशवा बनानेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। तदनुसार परशुरामने जुन्नर जा कर अपना अभिप्राय कह सुनाया। बाजीराव इस प्रस्तावसे सन्तुष्ट हो गये। पूना आ कर उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया और फड़नवीसको मन्त्रियोंमें शीर्षस्थान प्रदान किया। सिन्धियाके मन्त्री बालोबा तातिया बाजीरावके इस व्यवहारसे सन्तुष्ट न हुए और बहुसंख्यक सेना ले कर पूनाकी ओर अग्रसर हुए। नाना फड़नवीस इस संवादको सुन कर कुछ भीत हुए और सतारा भाग गये। बलोबा तातियाने प्रस्ताव किया कि माधवरावकी पत्नी बाजीरावके भाई चिमनाजीको दत्तक ग्रहण करें और परशुराम भाऊ उनके मन्त्री हों।

इसी समय नाना फड़नवीस सतारासे मन्त्रीको पोशाक ले कर पूनाकी ओर आ रहे थे। रास्तेमें उन्हें मालूम हुआ कि परशुराम बाजीरावको हस्तगत नहीं कर सके हैं। इनके मनमें सन्देह हो गया; आप पोशाकको भेज कर सताराके अन्तर्गत वाँई नामक स्थानमें रह कर बाट देखने लगे। इतनेमें परशुराम भाऊने चिमनाजीको पूनाका पेशवा बना दिया और इन्हें पूना आनेके लिए संवाद भेजा। आपने उत्तरमें कहला भेजा कि परशुरामके ज्येष्ठ पुत्र हरिपन्त यहां आ कर पहले सब बन्दोबस्त कर जांय। हरिपन्त दूतके वेशमें न आ कर ४।५ हजार अश्वारोहियोंके साथ वहां उपस्थित हुए।

आपने कहा, कि "मेरे शरीर अथवा सम्पत्ति पर कोई भी किसी तरहका हस्तक्षेप न कर सकेंगे, यदि अङ्गरेज-गवर्न मेण्ट इसमें जामिन हों, तो मैं मन्त्रिपद ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत हूं।" नानाफड़नवीसके भयके कारणों को दूर करनेके लिए एक दिन रातको बाजीराव उनके पास पहुंचे और नाना प्रकारसे उन्हें समझा कर बिना जामिनके कार्य ग्रहण करनेके लिए अनुरोध किया। १७९८ ई०को अक्तूबर मासमें वृद्ध ब्राह्मण नानाफड़-नवीसने पुनः मन्त्रिपद ग्रहण किया। कुछ दिन बाद ही उन्होंने सुना कि फिर उन्हें कैद करनेके लिए कोशिश की जा रही है। इसके बाद जब आपने बाजीरावको विश्वासघातकता दोषसे दोषी ठहराना चाहा, तब बाजीरावने सब बातें नामञ्जूर कीं और जिसने यह वे-जड़ संवाद दिया था, उसे यथाविधि दण्ड दिया। अब आप विशेष सन्तोषके साथ अपना कर्त्तव्य पालन करने लगे। बाजीराव अबसे आपहीके परामर्शानुसार समस्त कार्य करने लगे। इस समय इन वृद्ध मन्त्रीने बहुतसे गुरुतर कार्य कौशलसे सम्पन्न कर अपनी विलक्षण राजनीतिज्ञताका परिचय दिया था। क्रमशः वार्द्धक्यने आप पर पूरा कब्जा जमा लिया। १८०० ई०को १३वीं मार्चको निःसन्तान अवस्थामें आप परलोक सिधारे।

नानाफड़नवीस।

आपकी मृत्युके बाद आपकी पत्नी लुधड़नाविशिष्ट यत्सामान्य धनसम्पत्तिका भोग कर रही थीं, उस पर बाजीराव और सिन्धियाकी नजर पड़ी। वे दोनों इस सम्पत्तिको लेनेके लिए आपसमें लड़ मरे।

नाना फड़नवीस कृशकाय, क्षीण और दीर्घकाय पुरुष थे। आपकी कार्य कलापोंको देख कर यह स्पष्ट ही प्रतीत होने लगता है कि आप एक गम्भीर और अनुसन्धित्सु राजनीतिज्ञ थे। आपके मुखमण्डल पर बुद्धिका प्राखर्य सर्वदा झलका करता था। आप सत्य-व्रती, मितव्ययी, दानशील और श्रमतत्पर व्यक्ति थे। आप अङ्गरेजोंकी सरलता और शूरवीरताका सम्मान करते थे। परन्तु राजकार्यके सम्बन्धमें उन्हें अज्ञ समझते थे और उन पर विलक्षण हिंसाभाव रखते थे। जीवनके शेषभागमें आपने अपने इष्टसिद्धि पर विशेष लक्ष्य न रख साहस और सरलताके साथ एक देशहितैषीके समान कार्य किया था। आपके साथ पेशवा-राज्यकी सुशासन-प्रणाली भी अन्तर्हित हो गई, इसमें सन्देह नहीं।

नानारूप (सं० क्ली०) नाना रूपाणि कर्मधा०। १ बहु-विधरूप, नाना प्रकारको शक्ल। (त्रि०) नाना रूपाणि यस्य। २ अनेक प्रकार। पर्याय—विविध, बहुविध, पृथग्विध।

नानार्थ (सं० त्रि०) नाना अर्था यस्य। १ अनेकार्थ शब्द, जिन सब शब्दोंके दो वा दोसे अधिक अर्थ होते हैं। २ नानाप्रयोजनयुक्त। (पु०) ३ बहु प्रयोजन।

नानावर्ण (सं० त्रि०) नानावर्णा रूपाणि यस्य। बहुविध शुक्लादिवर्ण। पर्याय—चित्र, किर्मीर, कल्माष, शबल, एत, कर्बूर, विचित्र, शारङ्ग, कब्बर, कर्म्मीर और चित्रल। २ ब्राह्मण, क्षत्रियादि वर्णयुक्त।

नानाविध (सं० त्रि०) नाना विधाः प्रकारा यस्य। बहुप्रकार, अनेक तरहके।

नानाशब्दसंग्रह (सं० पु०) नाना शब्दानां संग्रहः। अनेक शब्दोंका संग्रह अभिधान, शब्दकोष।

नानाशस्त्र (सं० पु०) बहुविध अस्त्र, अनेक प्रकारके हथियार।

नानाशास्त्र (सं० क्ली०) अनेक प्रकारकी विद्या।

नानाशास्त्रज्ञ (सं० त्रि०) नाना शास्त्रं जानाति इति नानाशास्त्र ज्ञा-ड। विविध-विद्याविशारद, जो अनेक शास्त्रोंमें पारदर्शी हों।

नानासाहब—पेशवा बाजीरावके उत्तराधिकारी दत्तक-पुत्र। इनका यथार्थ नाम धुन्धूपन्त था। पेशवा बाजीराव-के (ता० १ जून सन् १८१८ ई०) भारतीय अङ्गरेज सेनानायक मलकमके समक्ष स्वेच्छा-पूर्वक आत्मसमर्पण करनेके बाद गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके आदेशानुसार, वे कानपुरसे १२ मीलकी दूरी पर बिठूरनगरमें परिवार सहित निरापद रहने लगे। गवर्मेण्टने उनके भरण पोषणके लिये ८ लाख रुपयेकी वृत्ति और बिठूरमें एक जागीर दी थी। जागीरके अधिवासिगण फौजदारी और दीवानी मुकदमोंके लिए ब्रिटिश-शासनसे विमुक्त थे। बाजीरावको, विलायतके साथ सन्धि-पत्रके लिए अनुसार चलते चलते अन्तिम दशा उपस्थित होने पर चिन्ता हुई कि उनको विपुल सम्पत्तिका उत्तराधिकारी कौन होगा? अन्तमें दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका निश्चय कर उन्होंने गवर्मेण्टको अपना मन्तव्य लिख कर भेजा जिसका आशय था कि उनके मरनेके बाद उन्हींके द्वारा गृहीत धुन्धूपन्त पेशवा उत्तराधिकारी हो कर उनकी वार्षिक वृत्तिके उत्तराधिकारी होंगे। इसके उत्तरमें गवर्मेण्टने कहा, कि उनकी मृत्युके बाद उनके परिवारवर्गके भरण पोषणके विषयमें सुव्यवस्था कर दी जायगी। इसके कई वर्ष बाद १८५१ ई०में २८ जनवरीको पेशवा का देहान्त हो गया। उनके इच्छा-पत्रानुसार उनके दत्तकपुत्र धुन्धूपन्त या नानासाहब पेशवाकी गद्दी पर बैठे और सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

बाजीरावकी मृत्युके समय नानासाहबकी उम्र २७ वर्षकी थी। इस थोड़ीसी उम्रमें ही आपने अपनी शान्त प्रकृति, न्यायपरता, उदारता और शिष्टाचारके कारण सभीके हृदयों को आकृष्ट कर लिया था। इसके सिवा आप ब्रिटिश-गवर्मेण्टके कमिश्नरके परामर्शके बिना कभी कोई कार्य नहीं करते थे। बाजीराव अपनी मितव्ययिताके कारण समय समय पर गवर्मेण्टको प्रचुर अर्थ-सहायता पहुंचाया करते थे। मरते समय गवर्मेण्टके पास वे १० लाख रुपये नकद तथा अन्यान्य बहुमूल्य द्रव्यादि छोड़ गये थे। उनकी मृत्युके बाद यह सम्पत्ति नानासाहबके हाथ लगी। परन्तु बाजीरावको दास दासी और परिवारवर्ग-को ले कर अधिक होने और उनके भरण पोषणका भार नानासाहब पर पड़नेके कारण, नानासाहबने उस प्रचुर अर्थको भी थोड़ा समझ पितृप्राप्य वृत्ति पानेके लिए कम्पनीको एक आवेदन-पत्र भेजनेका निश्चय कर लिया। इस समय आपके लोकान्तरित पिताके विश्वस्त मित्र सूबेदार रामचन्द्र बन्धु-पुत्रकी सहायताके लिए उपस्थित हुए और इस प्रकार आवेदनपत्र लिख कर कम्पनीके पास भेजा,—

"उदाशय कम्पनी जिस प्रकारसे भूतपूर्व महाराज का रक्षणावेक्षण करती आई है उससे नानासाहब वर्त्तमान आवेदनके सम्बन्धमें सम्पूर्ण आपद और समस्त अनुकूल चिन्ताओंसे शून्य हुए हैं। वे अब सिर्फ ब्रिटिश-गवर्नमेण्टकी दयाके आधार पर जीवन निर्भर कर कालातिपात करनेके लिए कटिबद्ध हुए हैं। गवर्नमेण्ट-की ममता और अनुग्रहको देखने पर वे सन्तुष्ट होंगे और भविष्यमें भी उनकी इस हितचिन्ताका ह्रास न होगा।"

बिठूरके तत्कालीन ब्रिटिश कमिश्नर मार्शल साहबने नानासाहबका आवेदन-पत्र उच्च पदाधिकारियों-के पास भेज दिया और उनसे अभिमत मांगा। परन्तु उत्तरपश्चिमके तत्कालीन गवर्नर लार्ड टमसनने इस प्रस्तावका अनुमोदन न किया। विशेषतः लार्ड डल-हौसी उस समय भारतके गवर्नर जनरल पद पर अधि-ष्ठित थे इस लिये सविचारक व योगकी तरह टमसन का आदेश ही अब न अपरिवर्तित रहा। डलहौसीने साफ शब्दोंमें कह दिया कि "पेशवा ३१ वर्ष तक वार्षिक ८ लाख रुपये और जागीरका उपस्वत्व भोगते आये हैं। इस लम्बे समयमें उन्हें प्रायः ढाई करोड़ रुपये मिले हैं। उन्होंने गवर्मेण्टका कोई उपकार ग्रहण नहीं किया। उनका कोई औरसपुत्र भी मौजूद नहीं है। वे परिवार प्रतिपालनके लिये २८ लाख रुपयेकी सम्पत्ति छोड़ गये हैं। अतएव इतनी सम्पत्ति ही उनके परिवार के भरण-पोषणके लिये पर्याप्त है। गवर्मेण्ट पर उनके लिए दावा नहीं कर सकते।"

डलहौसीका यह आदेश शीघ्र ही बिठूर पहुंचा। जिस महाराष्ट्र पेशवाने कभी भी अपने अङ्गरेज-अधिन

अर्थ और सैन्यसामन्त द्वारा गवर्मेण्टकी सहायता पहुंचानेमें कोई भी बात उठा न रक्खी थी, आज बड़े लाट डालहौसीने स्वेच्छापूर्वक उन्हीं अति विश्वस्त अमायिक समदुःखभागी पेशवा बाजीरावके दत्तकपुत्रको पैतृक वृत्तिभोगके लिये अनुपयुक्त ठहरा दिया। बाजीरावकी मृत्युके बाद उनके परिवार-प्रतिपालनके लिए गवर्मेण्टने जो व्यवस्था करनेके लिए वचन दिया था, आज उस धर्मकी रक्षाके लिए सूक्ष्म विचार कर नाना साहबका आवेदन-पत्र अग्राह्य किया गया। नाना साहबकी वृत्ति बन्द हो गई। हां, टमसन साहब बिठुर की जागीर पर हाथ न फेर सके, इस लिये वह नाना साहबके अधीन रह गई। परन्तु वहांके अधिवासीका विचार-भार गवर्मेण्टने अपने हाथमें ले लिया।

इस तरह विना दोषके और अन्यान्यरूपसे पैतृक सम्पत्तिसे वञ्चित हो कर नानासाहबने भारत गवर्मेण्टका मुखापेक्षी न हो सीधा इङ्गलैण्डीय डिरेक्टर सभामें आवेदन करानेका निश्चय कर लिया। शीघ्र ही आवेदन पत्र लिखवा कर तैयार किया गया और वह यथारीति भारत गवर्मेण्टकी मारफत विलायत भेजा गया। इस आवेदन-पत्रमें नानासाहबने अपनी प्रभूत विद्याबुद्धि और सूक्ष्मदर्शिताका परिचय दिया था। उनकी युक्तियां बहुत सारवान् हुई थीं। परन्तु वह सारवान् पत्र भी डिरेक्टरोंको असार प्रतीत हुआ। उन लोगोंने गवर्नर जनरलका पक्ष खींचा और वही कायम रक्खा, परन्तु नानासाहब सहजमें हताश होनेवाले न थे; उन्होंने पुनः आवेदन पत्र भेजा। अबकी बार डिरेक्टरोंने भारत-गवर्मेण्टको इस आशयका पत्र लिखा कि "आवेदनकारीको कह दिया जाय कि उनकी पैतृक वृत्ति पुरुषानुक्रमिक नहीं है। इस लिए उस पर उनका कोई दावा नहीं है। उनका आवेदन-पत्र सम्पूर्णरूपसे अग्राह्य हुआ।" इस कठोर आदेशके बिठुरमें घोषित होनेसे पहले ही नानासाहब अपने आवेदन-पत्रकी पैरवीके लिये अंग्रेजी-भाषाभिज्ञ आजिमउल्ला नामक एक मुसलमान युवकको विलायत भेज चुके थे। १८५६ ई०की ग्रीष्मऋतुमें आजिमउल्ला इङ्गलैण्ड पहुंचे और एक अङ्गरेजकी सहायतासे वहां नानासाहबका पक्ष समर्थन करनेमें प्रवृत्त हुए। परन्तु डिरेक्टरोंके सामने आजिमउल्लाका समस्त प्रयत्न और चेष्टाएं बिलकुल व्यर्थ हुईं।

इस प्रकार नानासाहब बहुत प्रयत और चेष्टा करने पर भी पैतृकवृत्ति लाभमें कृतकार्य न हो सके, किन्तु तो भी वे अङ्गरेजोंके साथ सद्भाव रखनेमें रत्तीमात्र भी उदासीन न हुए। उनका विशाल राजप्रासाद अङ्गरेज अतिथियोंके लिये सर्वदा खुला रहता था। विशेष अङ्गरेज अतिथिगण आपकी परिचर्यासे यथोचित सन्तुष्ट हो कर सर्वत्र आपका सुयश फैलानेमें कुण्ठित न होते थे। कभी कभी उक्त अतिथियोंको आप अर्थ द्वारा सहायता कर अपनी उदारताका परिचय देते और किसीको रुग्ण या पीड़ितावस्थामें देखने पर तत्क्षणात् उसकी सुचिकित्सा कराते थे। इस लिये बहुतसे अङ्गरेज कर्मचारी आपका अत्यन्त सम्मान करते थे।

यौवनके प्रारम्भमें कार्यकुशली होने पर भी नानासाहबके उदार हृदय पर कभी कभी अलसताका आधिपत्य हो जाया करता था। अन्यान्य समस्त गुणोंके होते पर भी उनमें एक महत् दोष यह था कि वे तादृश दूरदर्शी और अभिज्ञ न थे और सर्वदा दूसरोंके प्रदर्शित मार्ग पर चलते थे। यह एक दोष ही उनके सब गुणोंका प्रतिबन्धक हो गया था। इसी एक दोषने उन्हें राजासे रंक, अति विश्वस्त मित्रसे विश्वासघातक शत्रुरूपमें परिणत कर दिया था।

पहले ही कहा जा चुका है कि आजिमउल्ला नानासाहबके पक्षसमर्थनके लिये विपुल अर्थ संग्रहपूर्वक इङ्गलैण्ड गये थे। किन्तु वहां जिस कार्यके लिये गये थे उसमें असफलता प्राप्त होने पर वे अपनी सुन्दर गठन और प्रेमालापगुणसे वारविलासिनियोंको आकृष्ट करनेमें प्रवृत्त हो गए। अन्तमें तुरुष्क होते हुए भारतको रवाने हुए। तुरुष्क आ कर देखा कि क्रीमियाके युद्धमें समस्त यूरोप भूमिकम्पकी तरह काप रहा है। मुसलमान-दूत इस अभूतपूर्व युद्धको देखनेकी इच्छासे कौतूहलवश क्रीमियाके समराङ्गणके सम्मुखीन हुए। वहां उन्होंने देखा कि दुर्दान्त फरासीसियोंके भीषण अग्निपात सदृश तोपोंके गोलोंसे सैकड़ों अङ्गरेज एक साथ

व्यक्तिने कहा—"अफसर लोग अस्त्रागार धनागार-रक्षक सिपाहियोंको अलग कर उनकी जगह अङ्गरेजोंको रखनेके लिए आमादा हो रहे हैं।" उन लोगोंने मेरठकी घटनाका उल्लेख करते हुए यह भी कहा कि "टोटा काममें लानेसे इनकार करने पर, वहांके सिपाही दश वर्षके लिए कैदमें डाल दिए गए हैं और जञ्जीरोंसे बांध कर उनसे सड़क बनानेका काम लिया जा रहा है।" इत्यादि।

इस तरहकी अफवाह पर विश्वास कर सिपाही लोग पहलेसे ही उत्तेजित थे। जब उनसे कोषागार रक्षाका भार ले लिया गया, विशेषतः प्राचीरवेष्टित स्थान जब तोपों द्वारा सुरक्षित किया गया और उसमें समस्त यूरोपीय अङ्गरेज-महिलाओं और बालक-बालिकाओंको लाया गया, तब सिपाहियोंकी हृदय-चुल्लीमें निहित क्रोधाग्नि और भी जोरसे धधकने लगी। वे क्रमशः अधिकतर उग्रता और अवाध्यताका परिचय देने लगे। मुसलमान लोग मसजिदमें उपस्थित हो परामर्श करने लगे। २४ मईको इन लोगोंका प्रसिद्ध पर्व ईदका दिन था। इस लिए अङ्गरेज कार्यकर्ताओंको उस दिन कुछ गड़बड़ी होनेकी सम्भावना थी। किन्तु वह दिन भी निरापद बीत गया। यूरोपीय लोग उपस्थित विपत्तिसे मुक्त होनेके लिए जितनी ही कोशिश करने लगे, सिपाही लोग उतने ही उत्तेजित होने लगे। अङ्गरेजोंको आत्मरक्षार्थ नितान्त व्यस्त देख उन लोगोंके हृदयमें युगपत् भय और आशाका सञ्चार होने लगा। वे सोचने लगे, कि उन पर शीघ्र ही विपत्ति आनेवाली है। साथ ही उन्हें आशा भी होने लगी कि जिनको वे अब तक साहसी और कार्य-निपुण समझते आए थे, वे भी जब प्रतिमुहूर्तमें अधीर और कर्त्तव्यशून्य हो कर साधारण मनुष्योंकी तरह हो रहे हैं, तो ऐसी डरपोक जातिको परास्त करना कुछ असम्भव बात नहीं है। ऐसा सोच कर वे अङ्गरेजोंको अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखने लगे। धीरे धीरे जब अङ्गरेजी सेना और तोपें यथास्थान बैठाई जाने लगीं, तब अधिनायकके प्रति सिपाहियोंकी श्रद्धा और अनुरक्ति शिथिल होने लगी। अङ्गरेज लोग सिपाहियोंको अपना शत्रु समझने लगे और सिपाही लोग भी अङ्गरेजोंको। इस तरह भय, निराशा और उत्तेजनामें ही मईका महीना बीत गया।

बहुत दिन पहलेसे ही सिपाहियोंका औद्धत्य देखनेमें आ रहा था, किन्तु प्रकाश्यमें अब तक गवर्नमेण्टके विपक्षमें किसी प्रकारका विरुद्धाचरण न करते थे, सेनापति हुइलरने सिपाहियोंका पूर्वकथित गर्वित वाक्यावलीको तुच्छ समझा और आत्मरक्षामें कुछ शिथिल-प्रयत्न होने लगे। परन्तु दूरदर्शी लार्ड कैनिंगको भारतके राजनीतिक गगनमें छोटे छोटे मेघोंके सञ्चार दिखाई देने लगे और उनका परिणाम अच्छा न होगा, यह बात भी उन्हें मालूम थी। पूर्वोक्त सिपाहियोंका उत्ते-जना और गर्वित वाक्यावली उस घनीभूत मेघमालाका वज्रनाद मात्र था, यह बात भी उनसे छिपी न थी; किन्तु हुइलरके हृदयमें यह बात बिल्कुल भी स्थान न पा सकी। सेनापति हुइलरने लारेन्सकी सहायताके लिए लखनऊ सेना भेजनेका निश्चय कर गवर्नर जनरलको इस आशयका पत्र लिखा कि "कानपुरके सिपाही शीघ्र ही शान्त हो जायेंगे, ऐसी उम्मेद है। मैं बहुत दिनसे उनका अधिनायक हूं, इस लिये वे मेरी परवाह न कर अन्य स्थानोंके सिपाहियोंके उदाहरणका अनुसरण नहीं कर सकते। हां, इतना अवश्य है कि परस्परका मनो-मालिन्य दूर न होने तक हम लोग महिलाओं और बालक-बालिकाओंको ले कर प्राचीरवेष्टित सुरक्षित स्थानमें रहेंगे। जब तक सम्पूर्ण सैन्य-मण्डलीमें शान्ति स्थापित न हो, तब तक इसी स्थानमें रहनेकी वासना है।"

इसके बाद ही बनारससे आयी हुई ८४ नं० सेना लारेन्सकी सहायतार्थ लखनऊ भेजी गई। इधर सिपाही लोग अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये पहलेसे ही मौका देख रहे थे। इस समय बिठुरराज दलबल सहित नवाब-गञ्जमें ठहरे हुए थे। पूर्वोक्त आजिमउल्ला आदि भी उनके साथ थे। सिपाहियोंने अब दूत द्वारा आजिम-उल्लाको अपना अपना मत जतला दिया। आजिम-उल्लाने भी उनका पक्ष समर्थन कर नानासाहबको अपने पक्षमें लानेका भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रवाद है, कि बिठुरराज नानासाहब इस अयथा-प्रस्तावसे प्रथमतः किसी तरह भी सहमत न हुए थे;

भस्मीभूत होने लगे। इसतरह नानासाहबप्रमुख सिपाहियोंके नवाबगञ्जसे कल्याणपुर नामक स्थानमें उपस्थित होने पर आजिमउल्ला प्रथम घटनास्थलमें अवतीर्ण हुए। उन्होंने अब देरी न कर नानासाहबको यह समझाना शुरू कर दिया कि 'सिपाहियोंके साथ दिल्ली जानेसे और वहां मुगलराजके साथ मिलनेसे, अङ्गरेजोंको पराजित और मुगलराजको स्वाधीन कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उससे आपको क्या अभीष्ट-सिद्धि होगी? या तो आपको मुगल-राजकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी या मुगलराजके प्रभावमें सिपाही लोग आपको छोड़ देंगे और फिर आप इन्हीं दशामें मुगल-राजके कैदियोंकी संख्या बढ़ावेंगे। हां, यदि आप दिल्ली न जा कर कानपुरमें ही रहें, तो कानपुरमें जितनी भी थोड़ी बहुत अङ्गरेजी सेना है, उसको आसानीसे परास्त कर अपनी स्वाधीनता घोषित कर सकते हैं और क्रमशः दल-पुष्टि कर भविष्यमें युद्धार्थ उपस्थित अङ्गरेजोंको भारतसे भगा कर, थोड़े ही दिनोंमें समस्त भारतके एकछत्र राजा हो सकते हैं। फिर आपको सामान्य ८ लाख रुपयेकी वृत्तिके लिये अङ्गरेजोंकी खुशामद न करनी पड़ेगी।'

नानासाहब।

शेषोक्त वाक्योंने नानासाहबके हृदयको सम्पूर्ण रूपसे आकृष्ट किया। वे अब स्थिर न रह सके। वैर निर्यातनकी वासना उनके हृदयमें प्रबल वेगसे उद्दीप्त हो उठी। इसमें और भी एक कारण था। वह यह कि वे समझते थे कि इलाहाबाद, लखनऊ आदि गङ्गाके तीरवर्त्ती स्थान (उस समय) जैसे विपर्यस्त हैं, उससे सहजमें अङ्गरेजोंकी सहायतार्थ और सेना कानपुर नहीं आ सकती, सुतरां कानपुरकी नगण्य अङ्गरेजोंको परास्त

हो, तो "सिपाही विद्रोह" शब्द देखो। अन्तमें दिग्विजय सिंहके अनुयायी वे अज्ञान हवेलाकके हस्तगत हुए।

इससे कुछ पहले नानासाहबको सावन्दाके अपमानमें बिठूर जाना पड़ा था। वहां जा कर १ली जुलाईको आप पेशवाके पद पर बैठे। अजी मुल्ला नामक एक मुसलमान कानपुरके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। नानासाहबने राज्याभिषेक कारण पूर्ववत् बहुत आमोद-आह्लादमें कुछ समय बिता दिया। इसके बाद अंगरेजोंको आगमन वार्त्ता चारों तरफ फैलने लगी। इस समय नानासाहब कानपुरके एक मुसलमानकी एक बड़ी भारी सरायमें उपयुक्त मालिकोंके साथ वास करते थे। इस सरायके पास ही गङ्गाके किनारे बीबीगढ़ नामका एक मकान था। वहां फतहगढ़के बन्दियोंको आबद्ध रखा गया था। अनेक दूसरे भी अंगरेज बालक-बालिकाओं आदिमें कानपुरके अंगरेज बालकमें था रहे थे, वे भी इस कोठरीमें बन्द कर लिये गये थे। इस तरह अहोरात्र लोगों गङ्गामें करीब दो सौसे भी अधिक व्यक्ति अवरुद्ध होनेके कारण उसने अन्धकूपका रूप धारण कर लिया और वह मानो सिपाहियों की नृशंसताका परिचय देने लगा। नानासाहबकी आन्तरिक इच्छा न होने पर भी मन्त्रियों के अनुरोध हो जानेके भयसे उन्हें अंगरेजों को इस दशामें रखनेके लिए बाध्य होना पड़ा था।

कानपुरके पतन संवादको सुन कर अंगरेज अब निश्चिन्त न रह सके; रैनल्ड पहलेसे ही कानपुरकी रक्षाको हो चुके थे, सेनापति हवेलाक भी सैन्य-सामन्त ले कर रैनल्डकी सहायताको चल दिये। १४ जुलाईको रातको इन दोनों दलोंमें परस्पर भेंट हो गई। दूसरे दिन ये लोग फतेपुरसे ४ मीलकी दूरी पर बेलिन्दा नामक स्थानमें उपस्थित हुए और सेनाको भोजन बनाने जानेका हुक्म दिया। इतनेमें एक गोला आ कर वहां गिरा। इसलिए भोजन छोड़ ये युद्धके लिए तैयार होने लगे।

अंगरेजोंके आनेकी खबर सुन नानासाहबने मन्त्रियों के साथ परामर्श करके निश्चय कर लिया कि सेनापति टीकासिंह सेनाको चलावेंगे और ज्वालाप्रसाद तथा साहबों का इन्तजाम करेंगे। ज्वालाप्रसाद ८ जुलाईको १५०० प्यादे और गोलन्दाज, ५०० घुड़सवार और १५०० इरियाग्रन्द फौज ले कर इलाहाबादकी ओर अग्रसर होने लगे। टीकासिंह इसके पहले ही रिसालेका भार ग्रहण किया था। इन लोगोंने फतेपुर पहुंच कर अंगरेजी सेना पर तोपें छोड़ी थीं उनमेंसे एक गोला उनके पासमें आ कर गिरा था।

सेनापति हवेलकके अधीन १४०० ब्रटिश सेना और ५०० देशी फौज थी। अंगरेजोंकी बन्दूकें बहुत अच्छी थीं, जिससे वे ९०० गजकी दूरी तक विपक्ष दलमें लक्ष्य भेद करते रहे किन्तु सिपाहियोंकी बन्दूकें वैसी न थीं, इस लिए वे पराजित हो कर इतस्ततः भाग गए। इस तरह फतेपुरके युद्धमें पराजय होनेके बाद सिपाहियोंमेंसे बहुतोंने शत्रुता छोड़ दी बहुतेरे स्थानान्तरको भाग गए और बाकी लोग नानासाहबकी सेनामें जा कर मिल गये। अशिक्षित सिपाहियोंने जातिनाशके भयसे उत्तेजित हो कर अंगरेजोंको मार कर जैसा औद्धत्य प्रकट किया था फतेपुरके युद्धमें जयी होनेके बाद शिक्षित और सुसभ्य ब्रटिश-सेनाओंने भी उनसे अधिकतर अभद्रता दिखानेमें कसर न रखी। उन लोगोंने फतेपुर और उसके निकटवर्त्ती स्थान तलवार चला कर प्रायः जनशून्य कर दिये। फतेपुर हस्तगत होने पर हवेलक कानपुरकी ओर अग्रसर होने लगे।

फतेपुरकी पराजयकी खबर सुन कर नानासाहबने बहुत से असामन्तों के साथ अपने भाई बालारावको अंगरेजोंके विरुद्ध भेजा। कानपुरसे २२ मीलकी दूरी पर आयोंग नामक स्थानमें उन्होंने पड़ाव डाला। १५ जुलाईको सेनापति हवेलकसे उनका सामना हुआ। इस युद्धमें सिपाहियोंने असमत पराक्रम दिखाया था, परन्तु अंगरेजोंकी बढ़िया बढ़िया तोपों और बन्दूकोंके सामने उनका पराक्रम व्यर्थ गया। अंगरेजोंकी जीत तो हुई, पर उसके बाद पाण्डुनदीका पुल पार करते समय अंगरेजोंके साथ सिपाहियोंका एक भीषण युद्ध हुआ। इसमें भी अंगरेजोंकी जीत हुई। इसके बाद प्रसिद्ध कानपुरके युद्धमें जयी होने से अंगरेजोंके हृदयमें वास्तवमें ब्रटिश-राज्यको चिरस्थायी रखनेकी आशाका सञ्चार हुआ।

इस युद्धमें नानासाहब स्वयं रणभूमिमें उपस्थित थे।

करने पर तोपमें उड़ने जा कर विद्रोहियोंको भारतसे दूर कर दिया। इस समय तोपमें उड़नेको दो पत्र मिले, जिनमें एक बालारावका था। बालारावने अपने कार्योंके अनुताप प्रकट करते हुए लिखा था कि कानपुरके हत्याकाण्डके विषयमें वे बिलकुल निर्दोष हैं। दूसरा पत्र नानासाहबका लिखा हुआ था, उन्होंने कम्पनीकी शासन प्रथाओं पर दोषारोप करते हुए प्रश्न किया था कि—"अङ्गरेजों को भारतमें आने और हमें विद्रोही कहनेका क्या अधिकार था ?"

इसके उपरान्त, तांतियाटोपेने महाराष्ट्रियों को नाना साहबके पक्षके पुनः पक्षधारण करनेके लिए विशेष चेष्टा की थी और क्रमशः अगहसे सेना इकट्ठी कर नाना-साहबके अनुकूल युद्ध करनेकी कोशिश भी की थी। किन्तु वे सतकार्य न हो सके। धीरे धीरे सिपाहियों की आशा पर पानी फिर गया। चारों तरफ अंग्रेजोंकी पताका उड़ने लगी। अङ्गरेजोंके सौभाग्य गगनने निर्मलतर भाव धारण किया। चारों ओर शान्ति स्थापित होनेकी सम्भावना हो चली। १८५८ ई०की १८वीं अप्रेलको तांतियाटोपेकी फांसी होनेके बाद नानासाहबकी मान्यमणी हमेशाके लिये अन्तर्हित हो गई।

इसके बाद नानासाहबका कोई विश्वासयोग्य संवाद नहीं मिला। बहुत जगह बहुतसे नानासाहब पकड़े गये और बहुतसे मारे भी गये, परन्तु अन्तमें विशेष अनुसन्धान करने पर मालूम हुआ है कि उनमेंसे कोई भी नानासाहब नहीं थे।

नानि—अबिसीनियाकी एक शाखा नदी जो सोमा नदीमें गिरती है।

नानिक—हुर्दै मनपगडकी चन्द्रवंशजातिकी एक शाखा।

नानिया—एक श्रेणीका ब्राह्मण। उत्तर-पश्चिम प्रदेश और बिहारमें ये लोग वास करते हैं।

नानिहाल (हि० पु०) नानीका घर, नाना नानीके रहनेका स्थान।

नानी (हि० स्त्री०) मातामही, माताकी माता, माकी मा। इस शब्दके आगे 'याद' प्रत्यय लगा कर अगम्य सूचक विशेषण भी बनाते हैं, जैसे नानिया याद।

नानुकार (हि० पु०) अस्वीकार, इनकार, नाहीं।

नानोर—अहमदाबाद जिलेका एक परगना।

नानोली—पूना जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह तिलि गांवसे १ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांसे १ मील उत्तरमें पहाड़के ऊपर बहुत सी गुहाएं देखनेमें आती हैं।

नानोरहाट—त्रिपुराकी गोमती नदीके किनारे एक नगर।

नान्त—राजपूतानेके कोटा राज्यान्तर्गत शादपुर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५ १२´ उ० और देशा० ७५ ३८´ पू०के मध्य, कोटा नगरसे ६ कोस दूर उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें यह ग्राम कोटाके नाना फौजदारको जागीर स्वरूप दिया गया था। प्रधानकर्त्ता जालिमसिंहके समयमें यह उन्नति को चरम सीमा तक पहुंच गया था, किन्तु आज कल इसकी अवनति हो देखी जाती है।

नान्तरीयक (सं० क्ली०) न अन्तरा बिना भवं अन्तरा छ अव्ययत्व ठिलोपः, ततो नार्थे नञ्। १ अवश्यम्भावी, होनहार।

नान्द (सं० क्ली०) नन्द-घञ्। हर्ष। स्तोत्र।

नान्दगांव—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत नासिक जिलेका एक महकूमा।

२ उक्त महकूमेका एक प्रधान नगर। यह नासिक नगरसे ६० मील उत्तरमें अवस्थित है।

३ मध्य प्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत एक करद राज्य। यह राज्य ५ परगनोंमें विभक्त है जिनमेंसे दक्षिण भागका नाम नान्दगांव है। नागपुर-छत्तीसगढ़-रेलपथ इस राज्य हो कर गया है। इसलिये यह अभी उन्नत दशाको प्राप्त है।

नान्दन—१ अमरावतीका एक उद्यान। २ नन्दन कानन।

नान्दस—बम्बई प्रदेशके महीकान्थाके अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

नान्दिक (सं० पु०) तोरणद्वार पर मङ्गल चिह्नस्वरूप स्थापित स्तम्भविशेष।

नान्दिकर (सं० पु०) नान्दीं करोतीति कृ-ट प्रत्यय। नाटकमें नान्दीपाठक सूत्रधार।

नान्दी (सं० स्त्री०) नन्दन्ति देवा यत्र नन्द-घञ्, पृषो-दरादित्वात् वृद्धिः ङीप्। १ समृद्धि, अभ्युदय। २ वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका सूत्रधार नाटक आरम्भ करनेके पहले पाठ करता है, मङ्गलाचरण। संस्कृत नाटकोंमें विघ्न-शान्तिके लिये इस प्रकारके मङ्गल-पाठको चाल है। साहित्यदर्पणके अनुसार नान्दी आठ या बारह पदोंकी होनी चाहिये। लेकिन भरत मुनिने यह दश पदोंको भी लिखी है। यह पाठ मध्य-स्वरमें होना चाहिये।

नान्दीक (सं० पु०) नान्द्यै कायति कै-क। १ तोरण-स्तम्भ। २ नान्दीमुखश्राद्ध।

नान्दीकर (सं० त्रि०) नान्दीं करोतीति कृ-ट। नान्दी-श्लोकपाठकारी, नान्दीश्लोकका पाठ करनेवाला। इसका पर्याय—नान्दीवादी है।

नान्दीघोष (सं० पु०) नान्द्यै घोषः। भेर्यादि शब्द, दुन्दुभि आदिका शब्द।

नान्दीपट (सं० पु०) नान्द्याः वृद्धयर्थः पटः। कूपादि मुखबन्धनवस्त्र, कुएंका ढकना।

नान्दीपुर (सं० क्ली०) नान्द्यै पूः अच् समासान्तः। अप्राक्‌स्थपुरभेद।

नान्दीपुरी—गुर्जर-राजधानी भडोंच नगरके जाह्नेश्वर कटकके बाहरमें अवस्थित एक नगर। यहां गुर्जर राजाओंका एक दुर्ग है।

नान्दीमुख (सं० पु०) नान्द्यै वृद्धयर्थं मुखं यस्य। १ कूपादि-मुखबन्धन, कुएंका ढकना। २ वृद्धिश्राद्धभोजी पितृगण।

"नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही॥" (विष्णुपु०)

पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धमातामह ये ६ वृद्धिश्राद्ध भोजन करते हैं।

नान्दीमुख श्राद्धको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं, वृद्धिके लिए यह श्राद्ध किया जाता है, इसीसे इसको वृद्धिश्राद्ध भी कहते हैं। रघुनन्दनने आभ्युदयिक शब्दका इस प्रकार अर्थ किया है,—

इष्टवस्तुके लाभका नाम अभ्युदय है, इस अभ्युदयके लिए पितृगणके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम आभ्युदयिक है। यह आभ्युदयिक भूत और भविष्यत्‌के भेदसे दो प्रकारका है। अभ्युदय होगा, इस उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम भविष्यत् है, यथा विवाह प्रभृति। विवाहादिकी जगह विवाह होनेके पहले विवाह होगा, इसी उद्देशसे श्राद्धानुष्ठान किया जाता है, इस कारण इसका नाम भविष्यत् रखा गया है। अभ्युदय होनेके बाद जो श्राद्ध किया जाता है, उसे भूत कहते हैं, यथा—पुत्रजन्मादि।

जिस दिन विवाह आदि होंगे, आभ्युदयिककर्त्ता उसके पूर्व दिन यथाविधि संयम करते हैं, बाद दूसरे दिन यथास्थानमें प्रातःकृत्यादि करके नान्दीमुख श्राद्धका अनुष्ठान करते हैं। निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—

पुत्र कन्याका जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, यज्ञ, पुंसवन, तड़ागादि-प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्न प्राशन इत्यादिमें नान्दीमुख श्राद्ध करना ही चाहिए। वृद्धि हुई हो, तो इस श्राद्धका करना अवश्य कर्त्तव्य है। जिस कार्यसे अभ्युदय या वृद्धिकी सम्भावना हो, उसमें भी इसे करना चाहिए। पितृगण अपने वंश धरोंके अभ्युदयवशतः यह श्राद्ध भोजन कर बहुत प्रसन्न होते हैं, इसीसे इसको नान्दीमुखश्राद्ध कहते हैं। अपनी वृद्धि देखकर जो वृद्धिश्राद्ध नहीं करते, उनके सब कार्य निष्फल और हीन होते हैं तथा उनकी गिनती असुरोंमें की जाती है।

"वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः।
तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः॥" (शातातप)

बोपदेव और कालादर्शके मतानुसार निम्नलिखित कार्योंमें नान्दीमुखानुष्ठान विधेय है। सीमन्त, व्रत, चूड़ा, नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, स्नान, गर्भाधान, विवाह, यज्ञ, तनयोत्पत्ति, प्रतिष्ठा, पुंसवन, गृहप्रवेश, पुत्रादिका मुखावलोकन, आश्रम-स्वीकार, राज्याभिषेक और प्रथम ऋतुदर्शन इन सब कार्योंमें नान्दीमुखश्राद्ध करना चाहिये।

"कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः।
नामकर्मणि बालानां चूड़ाकर्मादिके तथा॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही॥" (श्राद्धतत्त्व)

नान्दीश्राद्धमें प्रतिमा वा पट पर षोड़शमातृका अङ्कित करके पूजा करनी होती है। षोड़शमातृका-पूजा के पहले गणपतिपूजा करनी चाहिये। गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, आत्मदेवता और कुलदेवता ये १६ कुलमातृका वा षोड़शमातृका हैं। इनकी पूजाके बाद घरकी दीवारमें घृत द्वारा ५ वा ७ वसुधारा देनी चाहिए। इसके अनन्तर यथाविहित श्राद्ध करते हैं। (निर्णयसिन्धु) श्राद्धतत्त्वमें इसकी व्यवस्थादिका विषय लिखा है। अन्यान्य विवरण श्राद्धप्रयोग वृद्धिश्राद्ध शब्दमें देखो।

नान्दीमुखी (सं° स्त्री°) नान्द्यै वृद्ध्यर्थं मुखं यस्याः ङीप्। १ सामगीतकी वृद्धिश्राद्धभोजि मातृगण। २ कुधान्यविशेष, एक प्रकारका खराब धान। ३ छन्दो-विशेष, एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। ४ अवन्तीनगरवासिनी मुनिकन्या। ये कृष्णलीला दर्शनके लिए व्रजवासिनी हो कर पौर्णमासीके आश्रममें रहती थीं।

(वृन्दावनली० भक्तमा०)

नान्दीवादिन् (सं° त्रि°) नान्दीं वदतीति नान्दी-वद-णिनि। १ नान्दीश्लोकपाठकारी, नान्दीश्लोक पढ़ने-वाला। २ नान्दीवादनशील, दुन्दुभि बजानेवाला।

नान्दीश्राद्ध (सं° क्ली°) नान्दीनिमित्तं नान्द्यर्थं वा श्राद्धम्। नान्दीमुखश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध। नान्दीमुख देखो।

नान्दूरा—बरारके बुलढाना जिलेका मल्कापुर तालुकान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २०° ४८´ उ० और देशा० ७६° ३१´ पू०के मध्य, बम्बईसे ३२४ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या ६६६८ है। इसमें नान्दूर, बुजुर्ग और नान्दूरखुर्द ये तीन शहर लगते हैं।

नान्देर—दाक्षिणात्यमें अहमदनगरसे २० कोस पूर्वमें अवस्थित एक स्थान। यहां अकबरके शासनकालमें अह-मदनगरके शासनकर्त्ता खानखानाके पुत्र मिर्जा एरिचके साथ, कुतबशाही और आदिलशाही राज्यके अन्तर्गत जितने राज्य हैं, वहांके शासनकर्त्ता मालिक अम्बरका तुमुल-संग्राम हुआ था। युद्धमें मालिक अम्बरकी हो हार हुई थी।

नान्नूर—वीरभूम जिलेका एक ग्राम। यह सिवड़ीसे १२ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहां कवि चण्डिदासका जन्म हुआ था।

नान्यदेव—नेपालके कर्णाटकवंशीय प्रथम राजा। इन्होंने जयदेवमल्ल और आनन्दमल्लको परास्त कर नेपालके समी र ज्य जीत लिये थे और भाटगांव नामक स्थानमें ५० वर्ष तक राज्य किया था।

नाप (हिं° स्त्री°) १ किसी वस्तुका विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निर्दिष्ट विस्तारका कितना गुना है, परिमाण, माप। २ विस्तार-का निर्धारण, नापनेका काम। ३ वह निर्दिष्ट लम्बाई जिसे एक मान कर किसी वस्तुका विस्तार कितना है, यह स्थिर किया जाता है, मान। ४ निर्दिष्ट लम्बाईकी वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लम्बी, चौड़ी आदि है, मानदण्ड, नपना, पैमाना।

नापजोख (हिं° स्त्री°) नापतौल देखो।

नापतौल (हिं° स्त्री°) १ नापने और तौलनेकी क्रिया। २ परिमाण या मात्रा जो नाप या तौल कर स्थिर की जाय।

नापना (हिं° क्रि°) १ अन्दाज करना, कोई वस्तु कितनी है, इसका पता लगाना। २ किसी वस्तुका विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तारका कितना गुना है, किसी वस्तुकी लम्बाई, चौड़ाई आदिकी परीक्षा करना, मापना।

नापल—औदिच्यसहस्र ब्राह्मणोंकी एक जाति। इनके विषयमें ऐसा लेख मिलता है कि गुजरात देशमें एक धर्मात्मा राजा रहते थे जिनका यह नियम था कि "यदि ब्राह्मणोंके बालक विद्यामें परीक्षोत्तीर्ण हो कर अपनी स्त्री सहित जा कर राजाको आशीर्वाद दें, तो उन्हें दक्षिणामें ग्राम दिया जाय।" तदनुसार दो औदीच्य ब्राह्मणोंके बालक जब विद्यामें परीक्षोत्तीर्ण हो चुके, तब ग्राम-दक्षिणाप्राप्तिकी इच्छासे वे सोचने लगे, "हमारे स्त्री नहीं है, वरन् हम तो ब्रह्मचारी हैं और राजा विना गृहस्थके ग्राम नहीं देंगे, अतः क्या होना चाहिये?" अन्तमें दो कन्याएं साथ ले पति पत्नी स्वरूप वे राजदरबारमें पहुंचे। आशीर्वाद देनेके बाद

उनमेंसे एकको बोरसद और दूसरेको नापद ग्राम इनाममें मिला। राजदरबारसे विदा हो कर जब वे दोनों कुमार राहमें आ रहे थे, तब उन्होंने अन्य जातिकी स्त्रियोंसे जो साथ जाती थीं, कहा, 'आप दोनों अपना अपना घर चली जावें, हम लोगोंका कार्य सिद्ध हो गया।' इस पर वे बोलीं, 'आप यदि अपनी भलाई चाहते हों तो हमसे विवाह कर लीजिये अन्यथा यह बात राजासे कह दूंगी।' उन दोनोंने डरके मारे उन्हें अपनी स्त्री बना लिया। अतः जिनको बोरसद ग्राम मिला था उनकी सन्तान बोरसद और जिन्हें नापद गांव मिला था उनकी सन्तान नापद कहलाई।

नापसन्द (फा॰ वि॰) जो पसन्द न हो, जो अच्छा न लगे, अनसुहाता।

नापाक (फा॰ वि॰) १ अशुद्ध, अशुचि, अपवित्र, भ्रष्ट। २ मैलाकुचैला।

नापाकी (फा॰ स्त्री॰) अपवित्रता, अशुद्धता।

नापाकम् (स॰ क्ली॰) परलोक।

नापाचार्य—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसे फुटकर गीत तथा सरस और सुमधुर कवित्तकी रचना की।

नापाद—बम्बई प्रदेशके कयरा जिलेके आनन्द तालुकान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा॰ २२ २८´ उ॰ और देशा॰ ७२ ५८´ पू॰ आनन्द रेलवे ष्टेशनसे ८ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या १०५१ है। इसके उत्तरमें १०० गज गोलाकार एक सुन्दर तालाब है। जिसको तभी यहाँ नरपालो नामक एक पठानने बनवाया था। यह तालाब ईंटोंकी दीवारसे अष्टकोणके आकारमें घिरा हुआ है। गांवके पूर्व उस पठानका बनाया हुआ एक कूप भी है जिसकी १८६८ ई॰में बड़ौदाके एक सौदागरने मरम्मत की थी।

नापायदार (फा॰ वि॰) १ क्षणभंगुर, जो टिकाऊ न हो। २ जो दृढ़ या मजबूत न हो।

नापायदारी (फा॰ स्त्री॰) १ क्षणभंगुरता, अस्थायित्व। २ अदृढ़ता।

नापित (स॰ पु॰) न आप्नोति स्वच्छतामिति न आप-तन् इट् च (नञापः इट् च। उण् ३।८७) वर्णसङ्करजातिविशेष नाई, हज्जाम। कुबेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्रीके संयोगसे इस जातिकी उत्पत्ति है।

"कुबेरिनः पट्टिकायां नापित सम्भवः॥"

(परशुराम)

पराशर पद्धतिमें भी यह मत समर्थित हुआ है। किन्तु विवादार्णवसेतुके मतसे इस जातिको क्षत्रियके औरस और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न बतलाया है।

"आर्धिकः कुलमित्रञ्च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥"

(मनु ४।२५३)

शूद्रोंमें नापितादि भोज्यान्न हैं। गोप और नापित ये लोग सत्शूद्रमें गिने जाते हैं। पराशरपद्धतिमें एक जगह और लिखा है—

"शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
संस्कृतस्तु भवेद्दासोऽप्यसंस्कृतस्तु नापितः॥" (पराशर)

ब्राह्मणसे शूद्रकन्याको गर्भजात सन्तान यदि ब्राह्मणसे संस्कृत न हो, तो उसे नापित और संस्कृत पुत्रको दास कहते हैं। इसके पर्याय ये हैं—क्षुरी, मुण्डी, दिवाकीर्त्ति, अन्तावसायी क्षौरी, [illegible], नखकुट्ट, ग्रामणी, चण्डिल, मुण्ड और भाण्डपुट। (अमर, शब्दर॰, जटाधर)

नापितजाति मनुष्योंमें बहुत धूर्त समझी जाती है।

"नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणाञ्चैव वायसः।
दंष्ट्रिणाञ्च शृगालस्तु श्वेतभिक्षुस्तपस्विनाम्॥"

(पञ्चतन्त्र ३।७१)

क्षौरकर्म ही इस जातिकी उपजीविका है। अशौच कालमें जब तक वे क्षौरकर्म नहीं करते, तब तक शुद्धि नहीं होती है। तन्त्रके मतसे इनकी स्त्रियां कुलनायिका हो सकती हैं।

"नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना॥"

(तन्त्रसार)

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि हस्तानक्षत्रमें शनिके रहनेसे नापितका अमङ्गल होता है। (ज्योतिस्त॰ १०।८) नापितजाति वृश्चिकलग्नके अधीन है। (ज्योतिस्त॰ ११।२)

बङ्गालमें ८से १० वर्ष तककी अवस्थामें ये लोग अपनी कन्याओंका विवाह करते हैं। घटक पहले विवाहका सम्बन्ध स्थिर करता है, बाद वरपक्षके एक या अधिक लोग कन्याके घर जाते हैं और कन्याको देख कर विवाहका कन्यापण स्थिर कर आते हैं। यह पण

अयन मानते हैं। कोई कोई उन्हें 'नृरि' से भी उत्पन्न कहते हैं। आधुनिक नर्त्तकोंका कहना है, कि भरद्वाज मुनिके औरस और एक नर्त्तकीकी कन्याके गर्भसे उनकी उत्पत्ति है।

नापितशाला (सं॰ स्त्री॰) नापितस्य शाला। क्षौरगृह, वह स्थान जहां हजामत की जाती हो।

नाफरमां (फा॰ पु॰) मुश्कबिलाका एक भेद जो कुछ मीठापन लिये होता है।

नाफा (फा॰ पु॰) मृगमदकोष, कस्तूरीकी थैली जो मृगोंकी नाभिमें होती है।

नाबदान (फा॰ पु॰) वह नाली जिससे हो कर घरका गलीज मैला पानी आदि बाहर निकल जाता है।

नाबालिग (फा॰ वि॰) अप्राप्तवयस्क जो पूरा जवान न हुआ हो। कानूनमें कुछ बातोंके लिये २१ वर्ष और कुछके लिए १८ वर्षसे कम अवस्थाका मनुष्य नाबालिग समझा जाता है।

नाबालिगी (फा॰ स्त्री॰) नाबालिग रहनेकी अवस्था।

नाबूद (फा॰ वि॰) जिसका अस्तित्व न रहा हो, नष्ट, ध्वस्त।

नाभ (सं॰ स्त्री॰) नभ क्विप्-क्विप्। आकाशकी कालिका, चन्द्रमाकी दीप्ति।

नाभ (सं॰ पु॰) सूर्यवंशीय नृपभेद, सूर्यवंशके एक राजाका नाम।

नाभ (हिं॰ स्त्री॰) १ नाभि, ढोंढी, तुंदी। २ शिवका एक नाम। ३ अस्त्रोंका एक संहार।

नाभक (सं॰ क्ली॰) नभ-ण्वुल्। वनतिक्तक वर्त्तकी वृक्ष।

नाभस (सं॰ पु॰) १ तत्त्वज्ञातकोक्त स्वर्ग और तदादि स्थानमें दर्शित षड्भेद द्वारा योगभेद। लग्न आदि स्थानोंमें ग्रहविशेषके रहनेसे यह योग होता है। तत्त्वज्ञातकमें इसका विषय विस्तारक्रमसे लिखा है। २ उत्पातविशेष एक प्रकारका उपद्रव। प्रकृतिका अन्यथाघटन ही उत्पात है। मनुष्योंके अतिचारण द्वारा पापसञ्चय कारण उपसर्ग होता है। देवताओंमें मनुष्योंके अपव्यवहारसे विरक्त हो कर इस प्रकारके उत्पातोंकी सृष्टि की है।

उत्पात तीन प्रकारका है—दिव्य, आन्तरीक्ष (नाभस) और भौम। ग्रह, नक्षत्र आदिका उत्पात दिव्य और गन्धर्व पुर तथा इन्द्रधनु आदि आन्तरीक्ष उत्पात है। किसी किसीका मत है, कि आन्तरीक्ष उत्पात शान्ति द्वारा दब जाता है। किन्तु दिव्य उत्पात कभी शान्त नहीं होता। (बृहत्स॰ ४६ अ॰)

नाभा—१ पञ्जाब-गवर्मेण्टके अधीन शतद्रुनदीतीरस्थ एक देशीय राज्य। यह अक्षा॰ ३० ८से ३० ४२´ उ॰ और देशा॰ ७५ ५०´ से ७६ १८´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९६६ वर्गमील है। वर्त्तमान राजवंश सिन्धुदेशीय जाटवंश सम्भूत फुलके प्रथमपुत्र तिलकसे उत्पन्न है। तिलकने नाभा राज्यमें एक ग्राम बसाया। झिन्दके राजा भी इस ही वंशके हैं और पटियालाके राजा फुलके द्वितीय पुत्र रामसे उत्पन्न हुए हैं। आद्युक्त तीन वंश ही इसी कारण 'फुलकियन वंश' नामसे प्रसिद्ध हैं। पञ्जाबके गौरवसूर्य रणजित्सिंह जब यमुनाके उत्तरांशमें अपनी कोठी जमानेकी फिक्रमें थे, तब नाभाके राजाने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगी थी। तदनुसार १८०८ ई॰के मई मासमें यह राज्य वृटिश शासनाधीन हुआ। वृटिश गवर्मेण्टके एकान्त अनुरक्त राजा यशोवन्तसिंहकी मृत्युके बाद उनके पुत्र राजा देवेन्द्रसिंह राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। किन्तु सिख युद्धके समय वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध हो गए थे, इस कारण वृटिश सरकारने उन्हें वार्षिक ५००००) की वृत्ति दे कर पदच्युत कर दिया और उनके लड़के भरपूरसिंहको सिंहासन पर बिठाया। ये अङ्गरेजोंके अत्यन्त विश्वस्त थे और सिपाही विद्रोहके समय इन्होंने अर्थ और सैन्य द्वारा उनको काफी सहायता पहुंचाई थी। इस कारण अङ्गरेज गवर्मेण्टने सन्तुष्ट हो कर उन्हें कनकार राज्य प्रदान किया था जिसकी वार्षिक आय १०६०००) रु॰ की थी। पीछे उन्होंने बावपुर जिलेके अन्तर्गत कनौद और बढ़वाना परगनेके कुल ध म ८१०५००) रु॰ नजर दे कर गवर्मेण्टसे ग्रहण किए। १८६३ ई॰में उनकी मृत्यु हुई। बादमें उनके भाई भगवानसिंह राजा हुए। उनके कोई सन्तान न थी इस कारण १८७१ ई॰में जब उनका देहान्त हुआ तब १८६० ई॰के मईकी सनदके मतानुसार झिन्दके जागीरदार हीरासिंह

कोंकिका विवाह करने लगी। कुछ समय बाद इन्हें भल-न्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे माताने 'तुम पुविमोपाल हो' ऐसा कहा।

नाभाग वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्वको प्राप्त हुए थे। क्षत्रियवंशीय प्रमतिके शापसे राजा नाभ वैश्यत्वको प्राप्त हुए थे पीछे प्रमतिने प्रसन्न हो कर इनसे कहा था 'यदि कोई क्षत्रिय तुम्हारे कन्याका यथापूर्वक पाणिग्रहण कर ले, तो तुम फिर क्षत्रिय हो सकते हो।' नाभागने इस वृत्तान्तसे अवगत हो कर पुनः क्षत्रियत्वको प्राप्त किया था। इनके पुत्र भलन्दन राज्याधिकारी ठहराये गये थे।

(मार्कण्डेयपु० ११३-११५ अ०)

नाभागारिष्ट (सं० पु०) वैवस्वतमनुके एक पुत्रका नाम।

नाभादास (नाभाजी)—भक्तमालके रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव कवि। अग्रदास पवहारी रामानन्दाचार्यके शिष्य थे। नाभादास उन्होंके प्रशिष्य और अग्रदासके शिष्य थे। इनका दूसरा नाम था नारायण दास। दाक्षिणात्यमें लगभग १६०० ई०को एक डोमके घर इनका जन्म हुआ था। प्रवाद है कि ये जन्मान्ध थे। जिस समय इनकी उम्र पांच वर्षकी थी, उस समय भारी अकाल पड़ा था और इनके मातापिता इन्हें एक जङ्गलमें छोड़ गये थे। दैवात् उसी समय अग्रदास और कील नामक दो वैष्णव इस निराश्रय बालकको ऐसी अवस्था देख विगलित हो गए। कीलने अपने कमण्डलुसे जल ले कर इनकी आंखों पर छिड़कनेसे ही इनकी दोनों निमीलित नेत्र प्रस्फुटित हुए। बाद वे अपनी कुटी पर इन्हें ले गए। यथासमय इन्होंने अग्रदाससे दीक्षा ग्रहण की। अधिक उम्र होने पर, अग्रदासके कहनेसे ही इन्होंने १०८ छप्पय छन्दोंमें 'भक्तमाल' नामक साधु लोगकी प्रशंसा की। यह अपूर्व ग्रन्थ कठिन व्रजभाषामें लिखा हुआ है। इनके शिष्य नारायणदासने (शाहजहान्‌के राजत्वकालमें) इसे पुनः संशोधन कर प्रकाश किया था। किन्तु जनसाधारण इस कठिन पुस्तकको भलीभांति समझ नहीं सकते थे। प्रियदासने 'कवित्त' छन्दमें, अविकापास निवासी काना जी नामक एक कायस्थने (१७११ ई०में) 'भक्तउरवसी' नामक टीका और बाद १८४४ ई०में तुलसीराम अगरवालाने 'भक्तमालप्रदीपन' नामक ग्रन्थ भक्तमालका उर्दूमें अनुवाद कर प्रकाशित किया। गौड़ीय वैष्णवोंके निकट भक्तमालका विशेष आदर हुआ था। इस पुस्तकके सङ्कलनमें इन्हें बहुतेरी मेहनत करनी पड़ी थी।

नाभानेदिष्ट (सं० पु०) वैवस्वत मनुके पुत्र और सूक्त-द्रष्टा एक ऋषि। (ऐतरेय ब्राह्मण ५।१४)

नाभावर्त (हिं० स्त्री०) वह भौंरी जो घोड़ेकी नाभिके नीचे हो। इस प्रकारका घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

नाभि (सं० पु०) नह्यते बध्यते विषयादौ मिति नह बन्धे नह इञ् भश्चान्तादेशः (नहोभश्च, उण् ४।१२५) १ मुख्य-नृप, प्रधान राजा। २ चक्रमध्य, पहियेका मध्यभाग, नाह। ३ क्षत्रिय। ४ निकटतमजाति गोत्र। ५ गोत्र। ६ व्यक्ति या वस्तु। ७ महादेव। (पु० स्त्री०) ८ प्राणियों, ढोंढी, तुन्दी। पर्याय—नाभी, तुन्दकूपी, जठरावर्त, तुन्दिका, तुण्डी, तुन्दकूपिका, तुन्दि।

विष्णुकी नाभिदेशसे कमलज ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे। गर्भस्थ बालककी सातवें मासमें नाभि निकलती है। नाभिमें मणिपुर नामक शतदल पद्म है।

तन्त्रमें लिखा है, कि नाभिदेशमें मणिपुर नामक पद्म है। यह पद्म महापद्माकार है, मेघ और विद्युत्‌के समान आभायुक्त तथा बहुत तेजोमय है। उस पद्ममें दस दल हैं जिनमें ड से फ तक दस अक्षर हैं। महादेव त्रिक-दर्शनके लिये उस पद्ममें अधिष्ठित हैं।

८ अग्नीध्रके पुत्र। भागवतमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

अग्नीध्रके औरस और पूर्वचित्तिके गर्भसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे नाभि बड़ा था। अग्नीध्रकी मृत्युके बाद नाभिने मेरुतनया मेरुदेवीका पाणिग्रहण किया। पीछे ये पुत्रकी कामनासे मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्त हो भगवान्‌के उद्देश्यसे यज्ञ करने लगे। भगवान् इस यज्ञसे नितान्त प्रसन्न हो चतुर्भुज मूर्त्तिमें आविर्भूत हुए। ऋत्विकगण भगवान्‌को चतुर्भुज मूर्त्तिमें अवतीर्ण होते देख नाना प्रकारसे स्तव करने लगे। बाद नाभिने 'आपके सदृश हमें एक पुत्र मिले' यही वर उनसे मांगा।

भगवान्‌ने ऋत्विकोंसे कहा, "तुमने जो वर मांगा

है, वह नितान्त सुलभ नहीं है। राजाके हमारे सदृश एक पुत्र हो, यही तुम लोगोंकी प्रार्थना है। किन्तु मेरा द्वितीय नहीं है, मैं ही अपना द्वितीय हूं। अतः किस प्रकार राजाके मेरे सदृश पुत्र होगा? जो कुछ हो, ब्राह्मणका वाक्य मिथ्या होना उचित नहीं। क्योंकि ब्राह्मण देवतुल्य और मेरे मुखस्वरूप हैं। जब मेरा द्वितीय नहीं, तब मैं ही स्वयं नाभिकी सन्तान हो कर अवतीर्ण होऊंगा।" यह वर दे कर भगवान् अन्तर्हित हो गये।

कालक्रमसे मेरुदेवी गर्भवती हुईं। यथासमय उनके गर्भसे भगवान् शुक्लमूर्त्ति ऋषभरूपमें अवतीर्ण हुए। यह पुत्र उत्पन्न हो कर तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कान्ति और यश आदि गुणोंमें सर्वप्रधान हुए। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण नाभिने इसका नाम ऋषभ रखा। नाभि यथासमय ऋषभदेवको राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर आप महिषी मेरुदेवीके साथ बदरिकाश्रमको चल दिये और वहां नरनारायणके उद्देश्यसे कठोर तपस्या करने लगे। (भागवत ५।२४ अ०)

नाभिके उद्देशसे महर्षिगण दो श्लोकोंका पाठ किया करते थे---

'राजर्षि नाभिके सदृश कोई भी कर्म नहीं कर सकता। जिस कर्मसे भगवान् स्वयं उनके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे, वह कर्म मनुष्यमात्रका असाध्य है। नाभिको छोड़ कर ब्रह्मतेजःसम्पन्न वैसा कौन है जिसके यज्ञमें पूजित हो कर ब्राह्मणोंने मन्त्रबलसे यज्ञेश्वर भगवान्‌को दिखाया था?" (स्त्री०) १०,कस्तूरिकामद।

नाभिकण्टक (सं० पु०) नाभेः कण्टक इव। आवर्त्त, निकली हुई तुन्दी या ढोंढी।

नाभिकपुर (सं० क्ली०) उत्तरकुरुस्थित एक नगर।

नाभिका (सं० स्त्री०) नाभिरिव कायतीति नाभि-कै क-टाप्। कटभीवृक्ष।

नाभिगुडक (सं० पु०) नाभिका आवर्त्तभेद, तुन्दीका उभरा अंश।

नाभिगुप्त (सं० पु०) प्रियव्रत राजाके पौत्र जिनके नाम पर कुशद्वीपके बीच एक वर्ष हुआ। (भाग० ५।२०।१५)

नाभिगोलक (सं० पु०) नाभिका आवर्त्तविशेष, तुन्दीका उभरा अंश।

नाभिच्छेदन (सं० पु०) तत्कालके उत्पन्न बच्चेके नाल काटनेकी क्रिया।

नाभिज (सं० पु०) नाभौ विष्णोर्नाभौ जायते जन-ड। चतुर्मुख ब्रह्मा। विष्णुकी नाभिसे ब्रह्माकी उत्पत्ति है।

नाभिनाड़ी (सं० स्त्री०) नाभेर्नाड़ी ६ तत्। नाभिमें स्थित नाड़ीभेद, नाभिकी नाड़ी जो गर्भकालमें माताकी रसवहा नाड़ीसे जुड़ी रहती है।

नाभिनाल (सं० क्ली०) नाभिस्थितं नालम्। नाभिस्थित नाल।

नाभिनाला (सं० स्त्री०) नाभिस्थिता नाला। नाभी-सम्बन्धी नाड़ी। इसका पर्याय—अमला है।

नाभिपाक (सं० पु०) बालरोगभेद, बालकोंका एक रोग जिससे नाभिमें घाव हो जाता और वह पक जाता है। हरिद्रा, लोध, प्रियङ्गु और यष्टिमधुके साथ सिद्ध तैल अथवा उनका चूर्ण नाभि पर लगानेसे वह रोग बहुत जल्द आराम हो जाता है।

नाभिभू (सं० पु०) नाभौ भूरुत्पत्तिर्यस्य। ब्रह्मा।

नाभिल (सं० त्रि०) दीर्घनाभियुक्त, उभरी हुई नाभिवाला, निकली हुई तुंदीवाला।

नाभिवर्द्धन (सं० क्ली०) नाभेस्तत्स्थनाड्या वर्द्धनं छेदनम्। नाड़ीछेदन, नाल काटनेकी क्रिया।

नाभिवर्ष (सं० पु०) नाभेरग्नीध्रपुत्रस्य वर्षः। जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमेंसे एक भारतवर्ष। अग्नीध्र राजाने अपने नौ पुत्रोंको जम्बूद्वीपके नौ खण्ड दिए। नाभिको जो खण्ड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। अनन्तर नाभिके पौत्र भरतके नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभशोथ (सं० पु०) बालरोगभेद। बालकोंकी नाभिमें यदि सूजन पड़ जाय, तो एक खण्ड मट्टीको आगमें गरम कर उसे दूधमें बार बार डुबोते हैं और सूजन स्थान पर स्वेद देते हैं। ऐसा करनेसे नाभिकी सूजन जाती रहती है। (भैषज्यर० बालरोग)

नाभिसम्बन्ध (सं० पु०) नाभेरकत्र गर्भजातनाड्याः सम्बन्धः। गोत्रसम्बन्ध।

नाभी (सं० स्त्री०) नाभि-बाहुलकात् ङीष्। नाभि देखो।

नाभील (सं० क्ली०) नाभीं लाति ला-क। १ नारियोंका

मङ्गप, जिसको की कटिके नीचेका भाग। २ नाभीगाम्भीर्य, नाभिकी गहराई, नाभिका गड्ढा। ३ कच्छ, बड़। ४ मर्माधक, तु दीका गमरा भाग।

नाभ्य (सं॰ त्रि॰) नाभौ भवमिति नाभि यत्। १ नाभि सम्बन्धी। (पु॰) २ महादेव, शिव।

नाम क़र (फा॰ वि॰) नपुंसक, जो मर्द न हो, जो साहस न रखता हो।

नाम (सं॰ अव्य॰) नमयतीति नामर्थऽणीज वा नम विच बाहुलकात् ड। १ प्राकाम्य। २ सम्भावना ३ क्रोध। ४ उपगम। ५ कुत्सन। ६ विस्मय। ७ स्मरण। ८ विकल्प। ९ विभक्तिहीन शब्दको नाम, लिङ्ग, वा प्रातिपदिक कहते हैं। यह नाम पांच प्रकारका है—कृदन्त, तद्धित, तद्धितान्त, समासज और मन्त्रानुकरण। १० संज्ञा, देवदत्त प्रभृति शब्द। जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे पृथक् किया जाता है, वह उस व्यक्तिविशेषका नाम है। शास्त्रमें लिखा है कि अपना नाम, गुरुका नाम, कृपणका नाम, ज्येष्ठ-पुत्र और कलत्रका नाम मरते समय भी न लेना चाहिए। ११ चढ़ीव।

नाम (हिं॰ पु॰) १ वह शब्द जिससे किसी वस्तु व्यक्ति या समूहका बोध हो, किसी वस्तु या व्यक्तिका निर्देश करनेवाला शब्द। २ प्रसिद्धि, अच्छा नाम, सुनाम।

नाम—दक्षिणप्रदेशमें हिन्दू लोग कपालमें जो तिलक या चिह्न लगाते हैं, उसे 'नामम्' या 'नाम' कहते हैं। वैष्णवजाति भी जो कपालमें तिकोना चिह्न धारण करती है, वह भी 'नाम' कहलाता है। कोई कोई शाह वर्ष एक खड़ी रेखाएं कपालमें खींचते हैं और उनके बीच बीचमें विन्दु या गोलाकार चिह्न रख देते हैं। कुछ ऐसे शाह हैं जो चक्राकार, त्रिशूलाकार, डाभके जैसा हलायुध, अर्धपिण्ड आकृति तथा दूसरे प्रकारका चिह्न धारण करते हैं। इसका सूक्ष्म अग्र भौंहेकी ओर झुका रहता है जिसे तिरुनाम या पवित्र नाम कहते हैं। यह तिलकचिह्न विष्णुका प्रतिरूप स्वरूप है जो तीन रेखाओंसे बना होता है। इसके मध्यकी रेखा लोहित और दोनों पार्श्वकी रेखा श्वेत वर्णविशिष्ट होती है। यह चिह्न लगानेके लिये जिस महीका व्यवहार होता है उसका नाम भी 'नाम' है। विशेष विवरण तिलकमें देखो।

नामक (सं॰ त्रि॰) नामसे प्रसिद्ध, नाम धारण करनेवाला।

नामकरण (सं॰ क्ली॰) नाम्नः करणं यत्र। संस्कार विशेष, दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे एक।

इसका विषय स्मृतिमें इस प्रकार लिखा है,—

जातबालकका ग्यारहवें या बारहवें दिनमें नामकरण करना चाहिए। ग्यारहवें दिनके नामकरणको ही उत्तम बतलाया है। ग्यारहवें दिनमें यदि नामकरण न कर सकें, तो बारहवें दिनमें कर सकते हैं।

गर्भाधानसे ले कर द्विजकी जितने संस्कार हैं, उनमेंसे नामकरण पञ्चम संस्कार है। जातकर्मके बाद यह नामकरण करना होता है। असमर्थ व्यक्ति ग्यारहवें दिनका परित्याग कर बारहवें दिनमें नामकरण नहीं कर सकते। गोभिल-गृह्यसूत्रके मतसे जन्मसे ग्यारहवें दिनमें, शतरात्रमें या संवत्सरमें नामकरण करना होता है। इसके सिवा जो दूसरा दूसरा समय बतलाया गया है, वह केवल असमर्थ व्यक्तियोंके लिये है न कि समर्थके लिये। समर्थ व्यक्तियोंको मुख्य समयका कदापि उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। नामकरणमें ग्यारहवां दिन ही मुख्य समय है और बारहवां आदि दिन गौण। क्षत्रिय और वैश्यादिके नामकरणका काल इस प्रकार है। क्षत्रियोंके लिये तेरहवां दिन, वैश्योंके लिए सोलहवां दिन और शूद्रोंके लिये बीसवां दिन नामकरणके लिए प्रशस्त है। नामकरण पिताका ही कर्त्तव्य है। पिता यदि विदेशमें रहें, तो वहांसे लौट कर उन्हें नामकरण करना चाहिये। पिताके नहीं रहने पर अन्य कोई कुलवृद्ध नामकरण कर सकते हैं। स्वगृह्योक्तविधानुसार नामकरण करना होता है।

गोभिल-गृह्यसूत्रमें नामकरणप्रणाली इस प्रकार लिखी है,—

कुमारको शुचिवसन पहना कर माता वामभागसे उपविष्ट हो पिताके हाथमें उसे दे दे। पीछे पत्नी पूर्व-देशसे पतिकी परिक्रमा कर उसके सामने खड़ी हो जाये। पति यथाविधि वेदमन्त्रका पाठ कर पत्नीके हाथ

छिलोंका घी बहुत उम्दा होता है और दूसरे दूसरे देशों में भेजा जाता है।

नामकीर्त्तन (सं॰ पु॰) ईश्वरके नामका जप या कथा रूप, भगवान्‌का भजन।

नामधाम (सं॰ पु॰) नाम और पता।

नामधेय (सं॰ त्रि॰) नामग्रहणाति यह सब्‌। १ नाम मात्र। मात्रे मच्‌। (पु॰) २ नामधेय।

नामग्राहम् (सं॰ अव्य॰) नाम-ग्रह-णमुल्। नामधारण कर।

नामज़द (फा॰ वि॰) १ जिसका नाम किसी कामके लिये निश्चित कर लिया गया हो या चुन लिया गया हो। २ प्रसिद्ध, मशहूर।

नामदार (फा॰ वि॰) प्रसिद्ध, नामी।

नामदार खाँ—बेरारके अन्तर्गत एलीचपुरका एक शासन कर्त्ता, सलावत् खाँके पुत्र। पिताके मरने पर ये एलीच पुरके शासनकर्त्ता हुए। इन्होंने अपनी बुद्धिके बलसे एलीचपुरमें प्रायः दो लाख रुपयेकी सम्पत्तिकी वृद्धि की थी। पीछे नवाबकी उपाधि धारण कर १८४१ ई॰में इनका देहान्त हुआ। बादमें उनके लड़के इब्राहिम खाँ उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

नामदेव—एक दिवमाड़, नामदेवजीके दीक्षित। इनकी कथा भक्तमालमें इस प्रकार लिखी है। ये कृष्णके उपासक थे, इसके इनमें बाल्यावस्थासे ही कृष्णमें सच्ची भक्ति थी। नामदेव कुछ दिनोंके लिए बाहर गए और अपनी दौहित्र नामदेवसे कृष्णकी प्रतिमाको प्रति दिन दूध चढ़ानेके लिए कहते गए। नामदेवने मूर्त्तिके आगे दूध रखा और पीनेकी प्रार्थना की। जब मूर्त्तिने दूध न पिया, तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान्‌ने प्रकट हो कर उनके हाथसे दूध ले कर पी लिया। नामदेव जब लौट कर आए, तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ।

धीरे धीरे यह बात बादशाहके कानों तक पहुंची और उन्होंने नामदेवको बुला कर करामात दिखानेके लिये कहा। किन्तु नामदेवने स्वीकार नहीं किया। एक दिन एक ब्राह्मणका एक गायका बछड़ा मर गया और वह उसके शोकमें बहुत व्याकुल हुई। उस समय राजाने नामदेवसे कहा, 'यह गाय अपने बच्चेके लिये रोती है, क्या इसके दुःखसे तुम्हें जरा भी दया नहीं आती?' इस पर नामदेवने उस बछड़ेको जिला दिया। किसी समय एक बनियेने तुलादान धर्ममें उन्हें स्वर्णदान करनेकी इच्छासे बुलाया। नामदेवने तुलसीके एक पत्ते पर कृष्ण नाम लिख कर पलड़े पर रख दिया और तत्परिमित सोना देनेको कहा। बनियेके भण्डारमें जितने गहने थे सभी दिए गये, लेकिन वह पलड़ा नहीं उठा। इस पर कृष्णनाम-माहात्म्य देख कर वह बनिया उनसे कृष्णनाममें दीक्षित हुआ। एक समय नामदेव रङ्गनाथ ठाकुरके पिछवाड़ेमें बैठ कर हरिकीर्त्तन कर रहे थे। कहते हैं, कि उस समय रङ्गनाथ मन्दिरका दरवाजा उनकी ओर हो गया था। भक्तमालमें इस प्रकारकी अनेक अद्भुत घटनाओंका उल्लेख देखनेमें आता है।

नामदेव—महाराष्ट्रीय एक प्रसिद्ध साधुकवि। इनके पिताका नाम दामासेठी और माताका नाम गोनाई था। बहुत दिन तक उन्हें कोई सन्तान न होनेके कारण उन्होंने विठोबा देवके निकट उपासना की थी। कहते हैं, कि दामासेठी एक दिन सवेरे जब भीमा नदीमें स्नान कर घर लौट रहे थे, तब रास्तेमें उन्हें बारह वर्षका लड़का यही नामदेव मिला। घरमें ला कर बहुत यत्न-पूर्वक वे नामदेवका भरण-पोषण करने लगे। नामदेव आप कहा करते थे, कि मैं अपनी माता गोनाईकी प्रथम सन्तान हूं। उनके पिता जातिके छिम्पि अर्थात् दर्जी थे। उनकी स्त्रीका नाम था राजाई।

बचपनसे ही नामदेव विठोबाके मन्दिरमें जा कर उनकी उपासना किया करते थे। वे सांसारिक विषयों पर बिलकुल विरक्त रहते थे। कुलनोंकी भांति गनेमें ... कर रात दिन विठोबाके ध्यानमें मग्न रहते और ताली बजा बजा कर गान करते थे। कहते हैं, कि वर्त्तमान समयमें विठोबाको प्रसन्न रखनेके लिए ढाक और करताल ले कर जो नहीतनका आरम्भ हुई है तथा पण्ढरपुरमें विठोबाके देवमन्दिरमें आषाढ़ और कार्त्तिक मासमें देवदर्शनके लिए जो यात्री आया करते हैं, वह नामदेवके समयसे ही आरम्भ हुआ है। उनकी मृत्यु कब हुई, मालूम नहीं। पर हां, अपनी मृत्यु

ज्ञानदेवकी मृत्युके उपलक्षमें इन्होंने जो गाथा बनाई, उससे अनुमान किया जाता है, कि १३०० ई० तक ये विद्यमान थे। ज्ञानदेव देखो।

इनकी रची हुई कविताएँ अत्यन्त प्राञ्जलभाषामें लिखी हैं और कई जगह व्यङ्गोक्ति पूर्ण भी है। ये सभी कविताएं भक्तिपक्षमें लिखी गई हैं। महाराष्ट्रगण आज भी उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

नामदेव नीलारि—जातिविशेष। ये लोग साधारणतः हुवली, करजगी, कोड़, नवलगुगु, रानीवेन्नूर और रण नामक स्थानोंमें रहते हैं। सूतेको नीले रङ्गमें रंगाना ही इनको उपजीविका है। इन लोगोंकी उपाधि वगाड़े, वसमें, नद्दरी और पल्ली है। परिश्रमी होने पर भी ये लोग बड़े अपरिष्कार होते हैं। ये लोग सूता रंगा कर बाजारमें बेचते हैं। कोई कोई तो स्वयं अपने घरमें ही उन सूतोंसे कपड़ा बुनता है। हिन्दू-पर्वके दिन ये कोई काम काज नहीं करते। ये लोग धार्मिक होते, ब्राह्मणोंकी भक्ति करते और उन्होंसे पौरोहित्य कराते हैं। पण्ढरपुर और गोकर्ण नामक स्थान ही इनके प्रधान तीर्थ हैं। ये लोग अपने गुरुको नागनाथ कहते हैं जो इनके स्वजातीय होते हैं। धर्मोपदेश देनेके लिए वे नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हैं, साथमें शिष्य भी रहते हैं। किन्तु वे कभी भी दूसरेको अपने धर्ममें लाने-की चेष्टा नहीं करते। इस जातिमें बाल्यविवाह, बहु-विवाह और स्त्रीत्यागकी प्रथा प्रचलित है। किन्तु स्त्रिया स्वामीके जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकती हैं। इनकी जातीय-एकता बहुत प्रबल है। सामाजिक झगड़ा पञ्चायतसे तय होता है। जो पञ्चायतके फैसले-को नहीं मानता, वह जातसे अलग कर दिया जाता है। ये लोग अपने लड़कोंको पाठशाला भेजते हैं सही, लेकिन वे पैतृकव्यवसायके सिवा और दूसरा कोई व्यवसाय नहीं करते।

नामदेव सिम्पी—महाराष्ट्रवासी एक श्रेणीका दर्जी। ये लोग प्रसिद्ध पण्ढरपुरस्थ विठोवाके उपासक नामदेवको अपना आदि पुरुष मानते हैं। बम्बई प्रेसिडेन्सीमें प्रायः सब जगह इनका वास है। अहमदनगर जिलेके नामदेव सिम्पियोंमें साधारणतः पुरुष लोग अपने नामके साथ "शेट" शब्दका प्रयोग करते हैं।

इनकी वंशगत उपाधि अवसरे, वगड़े, वकरे, बार-बार, बारटेक, बसाने, चोक, डेग्र इत्यादि हैं। एक उपाधिधारी लोगोंमें विवाह शादी नहीं होती। निजाम-राज्यके अन्तर्गत तुलजापुरकी देवी, नासिकके सप्तशृङ्ग, पूना जिलेके जेजूरी नामक स्थानोंके खण्डोवा और पण्ढरपुरके विठोवा इनके उपास्य देवता हैं।

ये लोग प्रधानतः शाण्डिल्य और माहेन्द्र-गोत्रधारी होते हैं। इनका रंग काला है, शरीरको गठन देखनेसे ही ये मजबूत मालूम पड़ते हैं। इनकी भाषा मराठी है।

ये लोग साधारणतः समूचा सिर मुँड़ा लेते हैं, केवल बीचमें कुछ बाल रहने देते हैं। पुरुष सामान्य कोट और चादरका व्यवहार करते हैं तथा स्त्रियां बढ़िया बढ़िया साड़ी और अङ्गरखा पहनती हैं। इनके पुरोहित सिर पर पगड़ी पहने रहते हैं।

ये लोग अत्यन्त परिश्रमी, परिष्कार, परिच्छन्नता प्रिय, मितव्ययी और अतिथिप्रिय होते हैं। लेकिन जुआ-चोरोंमें ये अव्वल दर्जेके हैं।

सुईका काम ही इनका पुरुषानुक्रमिक व्यवसाय है। कोई कोई नौकरी तथा मजदूरी करके अपना पेट पालता है। स्त्रियां घरको काम करती हैं और पुरुषोंको सिलाईके काममें मदद भी देती हैं। ये लोग मराठी कुणवियोंकी अपेक्षा जातिमें कुछ हीन हैं। नामदेवकी तरह ये लोग भी वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। सब कोई गलेमें तुलसीको माला पहनते हैं और प्रतिवर्ष आषाढ़ तथा कार्त्तिक मासमें पण्ढरपुरस्थ विठोवाके दर्शनके लिये जाते हैं।

ये लोग हिन्दू-पर्वका ही पालन करते हैं और संयम उपवासादि भी किया करते हैं। भविष्यवाणी और जादू-गरके ऊपर इनकी पूरी श्रद्धा है और भूत प्रेतमें ये लोग विश्वास रखते हैं। बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाहकी प्रथा खूब प्रचलित है। ये लोग सन्तानादि भूमिष्ठ होनेके बाद पञ्चमरात्रिमें षष्ठीदेवीकी चांदीकी एक प्रतिमूर्त्ति बना कर पूजा करते हैं और पान, सुपारी, हल्दी, चन्दन, पांच प्रकारके फलका नैवेद्य लगाते हैं। उक्त देवीकी एक दूसरी प्रतिमूर्त्तिके मध्य एक तार घुसेड़ कर उसे नवजात शिशुके गलेमें लटका देते हैं।

सन्तान भूमिष्ठ होनेके बादसे तीन दिन तक मधु और थोड़ा तेल पानीमें मिला कर उसे पिलाते हैं, चौथे दिनमें माताका दूध पीने देते हैं। इस समय ये लोग १२ दिन तक अशौच मानते हैं। तेरहवें दिनमें षष्ठी माताके नामसे थाली पर फूल पान, दही मिला हुआ चावल और उपवीत आदि पूजोपकरण द्वारा पांच मिला को पूजा करते हैं। उसी दिन आत्मीय पड़ोसी आ कर बच्चेका नाम रखते हैं।

बालक दशवें वर्षके भीतर और बालिकाएं युवती होनेके पहले ब्याही जाती हैं। वर पक्षवाले पहले विवाहका प्रस्ताव करते हैं। विवाहके पहले दिन वरका पिता कन्याको एक साड़ी, एक कुर्त्ती और एक जोड़ा चांदीका कंगना उपहार देता है और स्वजातीय लोगके सामने कन्याके कपालको सिन्दूरसे रंगा कर उसके हाथमें मिठाई अर्पण करता है। बाद सबको पान सुपारी आदि बांट कर वरका पिता भोजन करता है। तदनन्तर वर और कन्याका पिता वरकन्याका जन्मपत्र ले कर ज्योतिषीके पास जाता है और विवाहका शुभ दिन स्थिर करा लेता है। शुभ दिनमें जब कन्याको उबटन लग जाती है, तब उस उबटनमेंसे कुछ अंश ले कर वरको लगानेके लिए उसके घर भेज दिया जाता है। उसी दिन वरके यहांसे रोटी, दाल और गुड़ एक थालीमें रख कर कन्याके घर भेजा जाता है। बाद साधारण विवाह प्रथाके अनुसार विवाहकार्य सम्पन्न होता है। विवाहके समय वर और कन्याकी माता हाजिर नहीं होती। वरकी माता उस दिन कन्याके घर आ कर पुत्रवधूका मुखावलोकन करती है और उसे चीनी मिश्रित दूध पीनेको देती है। दूसरे दिन वर, वधू स्वजातीय प्रथाके अनुसार बाहर टहलने निकलते हैं साथ साथ बाजा भी बजता है। बाद लौटने पर वर वधू गरम जलसे नहलाया जाता है और गोद पर बिठा कर उसे पांच प्रकारके फल तथा नाना द्रव्य खानेको दिया जाता है।

ये लोग शवदाह नहीं करते। इनकी जातीय पञ्चायत बहुत प्रबल है। सामाजिक विवादकी मीमांसा पञ्चायतसे होती है। जो पञ्चायतका नियम पालन नहीं करता, उसे अर्थदण्ड होता है। बार बार नियम भङ्ग करनेसे जातिच्युत होना पड़ता है। इनके लड़के विद्या भ्यास तो करते हैं, लेकिन अपना जातीय पेशाके सिवा दूसरा कोई पेशा नहीं करते।

बम्बईके नामदेवसिम्पी दो भागोंमें विभक्त हैं। एक सम्प्रदायका नाम है 'नामदेवसिम्पी' और दूसरेका 'लिङ्गायत सिम्पी'। इनको आचार व्यवहारमें स्थानभेदसे फर्क पड़ता है। पूर्वोक्त सम्प्रदाय आश्विनमासमें नवरात्र पूजाके समय मद्य पीता और मांस खाता है।

शेषोक्त सम्प्रदायकी भाषा कनाड़ी है। पुरुष सोनेकी कण्ठी पहनते हैं।

पूनाके सिम्पी अनेक भागोंमें विभक्त हैं। पर इनका आचार व्यवहार बहुत कुछ एक दूसरेसे मिलता जुलता है।

नामद्वादशी (स० स्त्री०) नाम्न्या द्वादशी। व्रतविशेष। यह व्रत अगहन मासको शुक्लद्वादशी तिथिको किया जाता है। इस व्रतमें गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवताओंकी पूजा होती है। इस व्रतके करनेसे स्त्रियां सौभाग्यवती होती हैं।

"गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्ति सरस्वती।
मंगला वैष्णवी लक्ष्मी शिवा नारायणी क्रमात्॥
नामद्वादश्यामारभ्य पूर्वंच लभते फलम्॥"

(देवीपुराण)

नामधन (स० पु०) एक सङ्करराग। यह राग मल्लार, शङ्कराभरण, विभावन सुहे और केदारेके योगसे बना माना जाता है।

नामधराई (हि० स्त्री०) अपकीर्त्ति, निन्दा, बदनामी।

नामधातु (स० पु०) नाम पूर्वको धातु। सुबन्त नामक प्रकृतिक प्रत्ययान्त धातुभेद। जैसे सब सुबन्तपद बादके प्रत्यय द्वारा जो धातु संज्ञा होते हैं उन्हें नामधातु कहते हैं। यथा—पुत्रकाम्य 'आत्मन' पुत्रमिच्छति, पुत्र इस सुबन्तके उत्तर काम्य प्रत्यय हुआ। यहां पर पुत्रकाम्य नामधातु है। नामधातुके उत्तर भी धातुवत् सब कार्य होंगे। सुबन्तसे उत्तर कोई प्रत्यय होनेसे वो नामधातु होगा, सो नहीं। निर्दिष्ट कुछ ऐसे प्रत्यय

निमित्तक प्रत्यय होते हैं जिनको धातुसंज्ञा होती है। यह धातुसंज्ञक पद ही नामधातु है।

नामधाम (हिं० पु०) नाम और पता, नाम ग्राम, पता ठिकाना।

नामधारक (सं० त्रि०) नाममात्रं धरति न तदर्थं करोति धृ-ण्वुल्। नाममात्रधारक, केवल जिसो नामको धारण करनेवाला, नाममात्रका। जो सब ब्राह्मण वेद-पाठ आदि अपने कर्म न करते हों, उन्हें नामधारक कहते हैं।

"अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकः।
परिवर्त्तं न तेषां वै षट्सुगुणितेष्वपि॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकः॥"
(पराशर)

वेदादि पाठ नहीं करनेवाले ब्राह्मण, काष्ठनिर्मित हस्ती और चर्मनिर्मित मृग ये तीन केवल नामधारक हैं।

नामधारी (हिं० वि०) नामधारण करनेवाला, नाम-वाला, नामक।

नामधेय (सं० क्ली०) नामैव नामधेय (भागरूपनामभ्यो धेयः। पा ५।४।२५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या धेयः। १ नाम शब्दार्थं, नाम। २ नामकरण। (त्रि०) ३ नामवाला, नामका।

नामन् (सं० क्ली०) म्नायते अभ्यस्यते यत् तत्, म्ना-अभ्यासे इति मनिन् (नामन् सीमन् व्योमन्निति। उण् ४।१५०) इति निपातनात् साधुः। १ संज्ञा। पर्याय—आख्या, आह्वा, अभिधान, नामधेय, आह्वान, लक्षण, व्यपदेश, आह्वय, संज्ञा, गोत्र, अभिख्या। २ प्रातिपदिकरूप शब्दभेद।

नाम और धातु यह दो प्रकारकी प्रकृति है। प्राति-पदिक नाम पदवाच्य है। इसके चार भेद हैं,—रूढ़, लक्षक, योगरूढ़ और यौगिक। सङ्केतयुक्त नाम रूढ़पदवाच्य है और इसीको संज्ञा कहते हैं।

यह संज्ञा निमित्तिकी, पारिभाषिकी और औपाधिकी है। यह नाम पांच प्रकारका है—उणाद्यन्त, कृदन्त, तद्धितान्त, समासज और शब्दानुकरण। प्रातिपदिक देखो।

कलिकालमें केवल परमेश्वरका नाम कीर्त्तन ही मुक्तिलाभका प्रधान उपाय है।

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥"
(विष्णुपुरा०)

३ उदक, जल, पानी।

नामनामिक (सं० पु०) नाम्नि नामः नमनः प्रह्वता अस्त्यस्य ठन्। परमेश्वर।

"जितमानसितं नामनामिकं" (भारत शान्ति० ४० अ०)

नामनिवेश (सं० पु०) नामस्मरण।

नामनिशान (फा० पु०) चिह्न, पता, ठिकाना।

नामलेवा (हिं० पु०) विनय और भक्तिपूर्वक नाम स्मरण करनेवाला, नाम लेनेवाला, जपनेवाला।

नाममात्र (सं० त्रि०) नाम संज्ञैव मात्रा यस्य। स्वयोग्य-हीन, संज्ञामात्रधारी। जो पहले धनी था, पीछे गरीब हो गया है उसे नाममात्र कहते हैं।

"यथा काकयवाः प्रोक्ता यथाऽरण्यभवास्तिलाः।
नाममात्रा न सिद्ध्यन्ति धनहीनास्तथा नराः॥"
(पञ्चतन्त्र)

नाममाला (सं० स्त्री०) नाम्नः माला ६-तत्। कोषभेद।

नाममुद्रा (सं० स्त्री०) नामाक्षरस्य मुद्रा यत्र। अङ्गुरी-यकभेद। अङ्गुरीमें अङ्कित नामाक्षर (Monogram)।

नामयज्ञ (सं० पु०) नाम मात्रेण यज्ञः नामप्रसिद्धये वा यज्ञः। यज्ञविशेष, वह यज्ञ जो केवल नाम या धूम-धामके लिये किया जाय। मैं एक ऐसा यज्ञ कर रहा हूं, जैसा कोई दूसरा नहीं कर सकता, इस प्रकार नामके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसीका नाम यज्ञ है।

"आत्मसम्भाविताःस्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥"
(गीता १६।१७)

मैं कुलीन हूं, मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है, मैं यज्ञानुष्ठान करूंगा, दान करूंगा, आमोद करूंगा, इस प्रकार अज्ञानविमोहित और अहङ्कार बल, दर्प, काम, क्रोध और असूयापरवश हो कर दम्भके साथ अवधिपूर्वक जो यज्ञ किया जाता है, उसीका नाम नामयज्ञ है। जो

वे नामापराधी होते हैं। तीर्थस्थानकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। गङ्गा, सरस्वती, श्रीमद्भागवत, महाभारत, गुरु, मन्त्र और महाप्रसाद इन सबकी भी निन्दा करनेसे नामापराधी होना पड़ता है। सज्जन मात्रकी ही निन्दा दोषावह है, साधुनिन्दा सर्वदा वर्जनीय है, करनेसे नामापराधी होना पड़ता है। जो वैष्णवोंकी सेवा नहीं करते, वे भी नामापराधी होते हैं। वैष्णवोंके प्रति शठता, विष्णु, गुरु, पिता और माता एवं ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेसे भारी दोष लगता है। (पाद्म: उ० १०१ अ०)

नामापराधिन् (सं० त्रि०) नामापराधोऽस्यस्येति इनि। नामापराधकृत्, जो नामापराध करते हैं। प्रमादवश नामापराध करनेसे नामकीर्त्तन करना चाहिए, इससे नामापराधकृत दोष जाता रहता है।

नामालूम (फा० वि०) अज्ञात, जो मालूम न हो।

नामावली (सं० स्त्री०) १ नामोंकी पंक्ति, नामोंकी सूची। २ वह कपड़ा जिस पर चारों ओर भगवान्‌का नाम छपा होता है और जिसे भक्त लोग ओढ़ते हैं, रामनामी।

नामिक (सं० त्रि०) १ नामसम्बन्धी। २ संज्ञासम्बन्धी।

नामित (सं० त्रि०) झुकाया हुआ।

नामिन् (सं० त्रि०) १ नतार्थबोधक। २ दन्त्यवर्ण स्थानमें मूर्द्धन्यादेश।

नामी (हिं० वि०) १ नामवाला, नामधारी। २ प्रसिद्ध, विख्यात, मशहूर।

नामीगिरामी (फा० वि०) प्रसिद्ध, विख्यात।

नामुनासिब (फा० वि०) अनुचित, अयोग्य, गैरवाजिब।

नामुमकिन (फा० वि०) असम्भव, जो कभी न हो सके।

नामूसी (अ० स्त्री०) अप्रतिष्ठा, बेइज्जती, बदनामी, निन्दा।

नामेहरवान (फा० वि०) अकृपालु, जो मेहरवान न हो।

नाम्रा (सं० त्रि०) नामवाला, नामधारी।

नाम्य (सं० त्रि०) झुकाने योग्य।

नाय (सं० पु०) नीयतेऽनेनेति नी करणे घञ् (श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे। पा ३।३।२४) १ नय, नीति। २ उपाय, युक्ति। ३ नेता, अगुआ।

नायक (सं० पु०) नयति प्रापयतीति नी-ण्वुल्। १ नेता, अगुआ। २ श्रेष्ठ पुरुष, जननायक। ३ हारमध्य मणि, मालाके बीचका नग। ४ सेनापति। ५ शृङ्गारसाधक, साहित्यमें शृङ्गारका आलम्बन या साधक रूपयौवन-सम्पन्न पुरुष अथवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदिका मुख्य विषय हो। प्रथमतः यह नायक तीन प्रकारका है, पति, उपपति और वैशिक। विधिपूर्वक पाणिग्रहणकारीका नाम पति है। अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठके भेदसे पति चार प्रकारका है।

नायकके आठ सात्त्विक गुण हैं, यथा—स्वेद, स्तम्भ, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

नायकको दश दशाएँ हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकीर्त्तन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और निधन।

साहित्यदर्पणमें लिखा है कि दानशील, कृती, सुश्री, रूपवान् युवक, कार्यकुशल, लोकरञ्जक, तेजस्वी, पण्डित और सुशील ऐसे पुरुषको नायक कहते हैं। नायक चार प्रकारके होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त। जो आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गम्भीर, महाबलशाली, स्थिर और विनयसम्पन्न हो, उसे धीरोदात्त कहते हैं, जैसे राम, युधिष्ठिर आदि। मायावी, प्रचण्ड, अहङ्कार, दर्प और आत्मश्लाघायुक्त नायकको धीरोद्धत कहते हैं, जैसे भीमसेन। निश्चिन्त, मृदु, और नृत्यगीतादिप्रिय नायकको धीरललित कहते हैं। त्यागी और कृतीनायक धीरप्रशान्त कहलाता है। इन चारों प्रकारके नायकोंके फिर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ ये चार भेद किए गए हैं। धीरोदात्तादि सभी नायक चार चार प्रकारके हैं। जो सब स्त्रियों पर समान प्रीति रखता हो, उसे नायक; जो अपराध करने पर भी नहीं डरता, तिरस्कारसे भी नहीं लजाता, दोष दिखला देनेसे भी झूठ बोलना नहीं छोड़ता, उसे धृष्टनायक; जो एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त रहता, उसे अनुकूलनायक और जो बाहरसे तो प्रेम दिखाता और भीतरसे अन्याय करता है, उसे शठनायक कहते हैं। यह १६ प्रकारका नायक उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन

प्रकारका है। कुल मिला कर ८८ प्रकारके नायक हैं। विट, चेट और विदूषक इत्यादि नायकके सहायक और नर्म सचिव हैं।

शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य, तेज, ललित और औदार्य ये आठ नायकके सत्त्वज गुण हैं। शौर्य, कार्यकुशलता, सत्य, महोत्साह, नीचोंके प्रति घृणा और स्पर्धा नायकके इन सब गुणोंका नाम शोभा है। विलासके समय दृष्टि, धीरगति, मनोहर और सस्मित वाक्यको विलास कहते हैं। विकारके कारण रहते भी चित्तका उद्वेग नहीं होनेसे माधुर्य कहलाता है। भय, शोक, क्रोध और हर्षादिसे चित्तकी निर्विकारताका नाम धैर्य है। पराकृत अधिक्षेप और अपमान प्रभृतिका प्राण जाने पर भी नहीं सहन करनेका नाम तेज है। वाक्य और वेशमें मधुरता और शृङ्गारचेष्टितका नाम ललित है। प्रियभाषण, दान और शत्रुके प्रति मित्रके समान व्यवहारका नाम औदार्य है। ६ सङ्गीतकलामें निपुण पुरुष, कलावन्त। ७ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। ८ राग विशेष, एक राग जो दीपक रागका पुत्र माना जाता है।

नायक—हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें होती थी। दिग्विजयभूषण नामक ग्रन्थमें इनके बनाये पद्य पाये जाते हैं।

नायकमल—एक संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थके रचयिता। अभिनवगुप्त आदि आलङ्कारिकोंने इनका उल्लेख किया है।

नायकवंश—दाक्षिणात्यके मध्यवर्ती मदुराका एक पराक्रान्त राजवंश। विजयनगरके सेनापति वा नायकसे इस वंशकी उत्पत्ति है, इसीसे इसके वंशधर "नायक" उपाधिसे भूषित हैं। १५५८ ई०में विजयनगरके सेनापति पाण्ड्यराज्यको जीत कर मदुरा राज्यमें शासन करते थे। इस वंशके स्वाधीनभावसे राजत्व करने पर भी ये लोग विजयनगरके राजाको अपना अधीश्वर मानते थे। इस वंशकी तालिका नीचे दी गई है—

१ विश्वनाथ नायक
(१५५९-१५६३ ई०)
|
२ कुमार कृष्णप्प
(१५६३-१५७३)
|
३ कृष्णप्प पेरिय (वीरप्प) — विश्वनाथ
(दोनोंने मिल कर १५७३-१५९५)
|
४ लिङ्गप्प वा कुमार कृष्णप्प — विश्वप्प (विश्वनाथ)
(दोनोंने मिल कर १५९५-१६०२)
|
५ मुत्तु कृष्णप्प
(१६०२-१६०९)
|
६ मुत्तु वीरप्प (१६०९-१६२३) — ७ तिरुमल नायक (१६२३-१६५९) — कुमारमुत्तु
|
८ मुत्तु अलकाद्रि (मुत्तु वीरप्प)
(१६५९-१६६०)
|
९ चोक्कनाथ (चोक्कलिङ्ग) — १० मुत्तु लिङ्ग
पत्नी मङ्गम्माल
(१६६०-१६८२)
|
११ रङ्गकृष्ण मुत्तु वीरप्प
(१६८२-१६८९)
|
१२ विजयरङ्ग चोक्कनाथ
(१७०४-१७३१)
महिषी मीनाक्षी
(१७३१-१७३६)

इस नायकवंशका आदि इतिहास उतना स्पष्ट नहीं है। १५२८ ई०में जब तीन नायक मदुराका शासन करते थे, उस समय वा उससे कुछ समय बाद चन्द्रशेखर नामक एक पाण्ड्यवंशीय राजकुमार मदुराके सिंहासन पर बैठे। इस समय तञ्जोरके चोलराज वीरशेखरने पाण्ड्यराज्य पर चढ़ाई कर दी। चन्द्रशेखर विजयनगरको भाग गये और वहांके राजाकी शरण ली। सदाशिव रायके पदाभिषिक्त रामराजने चोलोंको दमन करनेके लिये कोटिय-नागम नायक नामक सेनापतिको भेजा। सेनापतिने मदुरा पर अधिकार जमा लिया किन्तु वे पाण्ड्यराजको सिंहासन पर न बिठा कर स्वयं राजकार्य चलाने लगे। विजयनगराधिप रामराज इस पर बहुत बिगड़े और नागम नायकके पुत्र विश्वनाथको पिताके विरुद्ध भेजा। पिता पुत्रसे पराजित हुए। विश्वनाथ

चन्द्रशेखर पाण्ड्यको कठपुतली सरीखा सिंहासन पर बिठा कर स्वयं राज्य शासन करने लगे। मदुरामें सुप्रसिद्ध सहस्रस्तम्भमण्डपके प्रतिष्ठाता आर्यनायक वा आर्यनाथने विद्रोहके समय विश्वनाथको काफी सहायता पहुंचाई थी। अभी वे ही विश्वनाथके प्रथम मन्त्री और प्रधान सेनापति बने। विश्वनाथने उन्हें "दलवाय"की उपाधिसे भूषित किया। इस समय मदुरा-राज्यमें चारों ओर शान्ति विराजती थी, नगरकी रक्षाके लिये चारों ओर दुर्ग बने थे, मन्दिरादि नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे, कृषिकार्य त्रिशिरापल्ली तक विस्तृत था, उसके लिये स्थान स्थान पर खाई और नहर खुदी हुई थी। विश्वनाथने तञ्जोरराजको कह कर त्रिशिरापल्लीके बदलेमें वल्लमनगर ले लिया। इसके कुछ समय बाद आर्यनाथ तिन्नेवल्ली प्रदेशमें बन्दोबस्त करनेके लिये गये। वहां पञ्चपाण्डव नामक पराक्रान्त पांच सामन्तोंने आर्यनाथके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। विश्वनाथ सेनापतिको सहायता पहुंचानेके लिये दलबलके साथ स्वयं वहां गये। किंवदन्ति है, कि उन पञ्चपाण्डवोंके वीर्यप्रभावसे शत्रुकी सेना तितर बितर हो गई। इस पर विश्वनाथने सामन्तोंको ललकार कर कहा, 'सैकड़ों योद्धाओंका रक्तपात करनेका क्या प्रयोजन? आओ, तुम लोग पांच और हम अकेला युद्ध करें। जो परास्त होगा, उसीको यह देश छोड़ देना पड़ेगा।' इस पर पञ्चपाण्डव बोले, 'ऐसा नहीं, हममेंसे भी किसी एकको चुन कर युद्ध करो। उसकी हार होनेसे ही हम लोग अपनी हार समझेंगे।' अन्तमें जब विश्वनाथने उनमेंसे एकको युद्धमें मार डाला, तब शेष चार बिना कुछ कहे सुने देश छोड़ कर चले गये। इस प्रकार विश्वनाथ नायक उस विस्तीर्ण भूभागके एकछत्र अधिपति हुए। उन्होंने राज्यका सुशासन करनेके लिये ७२ सामन्तोंको ७२ देश शासन करनेके लिये दिये। १५६२ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके पुत्र कुमार-कृष्णप्प राज्याधिकारी हुए।

इस समय आर्यनाथने मुसलमानोंको दमन करनेके लिये उत्तराञ्चलकी यात्रा की। इस सुयवसरमें पोरलिग इम्बिछि-नायक विद्रोही हो उठे। किन्तु शीघ्र ही विद्रोह शान्त किया गया और विद्रोही नायक मारे गए। उस समय आर्यनाथ ही राज्य भरके सर्वेसर्वा थे। उन्होंने कितने ही हितकर कार्य किए तथा अनेक हिन्दू-देवमन्दिर बनवाये।

प्रवाद है, कि कुमार कृष्णप्पने सिंहल पर धावा मारा। युद्धमें सिंहलराज मारे गए और सिंहल-राज्य कुमारके हाथ आ गया। कुमार कृष्णप्पने कण्डिको जीत कर वहां अपने सालेको अभिषिक्त किया और आप अपने राज्यको लौट आये। १५७३ ई०में उनका देहान्त हुआ।

बाद उनके पुत्र कृष्णप्प और विश्वनाथ दोनों मिल कर राज्यशासन तो चलाने लगे, पर वे दोनों आर्यनाथके सामने बतौर कठपुतलो थे। इस समय 'महाबिलिवन' नामक एक सामन्तराज विद्रोही हुए थे। किन्तु वे शीघ्र ही परास्त हुए। इसी समय त्रिचिनापल्ली और चिदम्बरम् दुर्गादि द्वारा सुरक्षित किया गया। १५९५ ई०में कृष्णप्पकी मृत्यु होने पर उनके दो पुत्र कृष्णप्प लिङ्गप्प और विश्वप्प राज्याधिकारी हुए। उनके शासनकालमें मदुरा-राज्यकी श्रीवृद्धि हुई थी। १६०० ई०में प्रसिद्ध आर्यनाथ इस लोकसे चल बसे। अनन्तर विश्वप्प और लिङ्गप्पका भी क्रमशः (१६०२ ई०में) देहान्त हुआ। पोछे उनके चचा कस्तुरी रङ्गप्पने बलपूर्वक राज्यको अपना लिया। किन्तु सात दिनके भीतर वे मार डाले गए और लिङ्गप्पके पुत्र मुत्तु कृष्णप्प राजसिंहासन पर बैठे।

मुत्तु कृष्णप्पने रामनादके प्राचीन मरुवबंशीय सेतुपतियोंको पुनः स्वराज्यमें बसाया। उनके समय रावर्टडि-नविलियसके अधीन जेसुट पादरीगण मदुरामें प्रबल हो उठे थे। अनेक नीचजाति ईसाधर्ममें दीक्षित हुईं। (क्रिश्चान शब्द देखो।)

१६०८ ई०में तीन पुत्र छोड़ कर मुत्तु कृष्णप्प परलोकको सिधारे। इन तीनोंके नाम थे मुत्तुवीरप्प, तिरुमल और कुमारमुत्तु।

मआलिनउल-मलातिन नामक इतिहासके रचयिता महम्मद शरीफने लिखा है कि उक्त मदुरा-राजके साथ साथ उनकी सैकड़ों महिषियां सती हुई थीं।

मुत्तुवीरप्पके राजत्वकालमें तञ्जोरके साथ युद्ध छिड़ा था। इस समय महिसुरसे कुछ सेना आ कर मदुराको

मदुरापति उस पर इतना आसक्त हो गए थे, कि अपने भाई मुत्तु अळकाद्रिके ऊपर सब राजकार्यका भार सौंप कर आप त्रिचिनापल्लीमें रह उस रमणीके साथ आमोद-प्रमोदमें दिन व्यतीत करने लगे। मन्त्रियोंने अळकाद्रिके साथ षड़यन्त्र रच कर उन्हें स्वाधीन राजा होनेके लिए उत्तेजित किया। इधर (१६७६ ई०में) शिवाजीके वैमात्रेय भाई एकोजीने तञ्जोरके एक पलायित राजकुमारके साथ मिल कर सारे मदुरा-राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस घोर सङ्कटके समय भी चोक्कनाथके होश ठिकाने न आए। वे रमणीके प्रेममें उन्मत्त हो कर सुखसे सोते थे। किन्तु जब उन्होंने सुना, कि अब उनका कोई निस्तार नहीं है, तब तञ्जोरसे मुसलमानोंको निकाल भगानेके लिए आपने अस्त्रधारण किया। इस समय महिसुर राजाने मदुरा जीतनेकी चेष्टा की। उधर शिवाजी भी दाक्षिणात्य पर अधिकार जमानेके लिए प्रभूत सेनाओंको साथ ले अग्रसर हो रहे थे। किन्तु उस समय कोलरुन नदीमें बाढ़ आ गई थी, जिससे बहुतसे देश जलप्लावित हो गये, अतः वे वहांसे लौट आनेको बाध्य हुए। शिवाजीके चले जाने पर मुसलमान लोग अच्छा मौका देख शिञ्जीमें शिवाजीके सेनापति पर एकाएक टूट पड़े। किन्तु हार उन्हींको हुई। इस समय चोक्कनाथने तञ्जोर पर चढ़ाई कर दी। मालूम नहीं, वे किस कारणसे शिञ्जी पर आक्रमण न कर त्रिचिनापल्लीको लौट आए। इस समय महिसुरराज मदुराके अन्तर्गत दो दुर्गों पर अधिकार कर नाना स्थानोंमें लूटमार मचाते थे। चोक्कनाथके मन्त्री गोविन्दप्पने भी इसी सुअवसरमें कौशलक्रमसे चोक्कनाथको कैद कर उनके छोटे भाई मुत्तु लिङ्गप्पको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया (१६७७ ई०में)।

मुत्तु लिङ्गप्पने राजा हो कर रुस्तम् नामक एक मुसलमानको अपना दुर्गरक्षक बनाया। इस व्यक्तिने विश्वासघातकतापूर्वक दुर्गको अपने अधिकारमें कर चोक्कनाथको छोड़ दिया और उन्हें फिरसे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। उसी मुसलमान दुर्गरक्षकने दो वर्ष तक राज्य किया। इस समय महिसुरराज, रामनादके मड़वगण, महाराष्ट्रगण और तञ्जोरके मुसलमान सेनापतिगण मदुराको हड़प करनेके लिए अग्रसर हुए थे। महिसुरके सेनापतिने रुस्तमको पराजित किया और मार डाला। अब चोक्कनाथ स्वाधीन तो हो गए, लेकिन महिसुरके सेनापति दुर्गको घेरे ही रहे। उस समय उन्होंने और कोई उपाय न देख शिवाजीके पुत्र शम्भुजीसे सहायता मांगी। शम्भुजीके सेनानायक अस्सुर मल्लने आ कर महिसुरके सेनानायकको परास्त कर कैद किया। अस्सुरमल्लके यत्नसे महिसुराधिकृत अनेक देश लौटा लिए गए। किन्तु सुचतुर महाराष्ट्रसेनापतिने उन सब देशोंमें चोक्कनाथका कुछ भी अधिकार रहने न दिया। इस पर चोक्कनाथको बहुत दुःख हुआ, इसी चिन्तामें उनके प्राण भी निकल गये। बाद उनके पन्द्रह वर्षके लड़के कुमार रङ्गकृष्ण मुत्तु वीरप्प (१६८२ ई०में) राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। वे बहुत साहसी और वीर थे। उनके प्रतापसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर महाराष्ट्र सेनानायक दुर्गावरोध छोड़ कर देशको लौट गये। रङ्गकृष्णने अपने बाहुबलसे एक एक कर समस्त नष्ट दुर्गोंको अपने अधिकारमें कर लिया और महिसुरकी सेनाओंको मदुराराज्यसे निकाल भगाया। वे कभी भी मन्त्रियों पर विश्वास नहीं करते और स्वयं राजकार्य देखनेके लिये देश देश घूमा करते थे। किसीका कुछ दोष पा लेने पर वे उसे उचित दण्ड देते थे। साथ साथ कार्यक्षम व्यक्तिको उपयुक्त पारितोषिक भी दिया करते थे। ऐसे राजा इस वंशमें कोई भी न हुए थे। १६८८ ई०में वसन्तरोगसे इनकी मृत्यु हुई। मरते समय उनकी एक स्त्री गर्भवती थी। कुछ दिनके बाद ही उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु प्रसूति भी उसके चौथे ही दिन पञ्चत्वको प्राप्त हुई। मृत राजाकी माता मङ्गम्मालने अपने पौत्रको तीन महीनेकी अवस्थामें राज्याभिषिक्त किया और उसकी नाबालिगी तक आप राजकार्य देखने लगी। इस बुद्धिमती रमणीके सुशासनसे प्रजा बहुत खुश रहती थी, चारों ओर शान्ति भी विराजती थी। इन्होंने, त्रिचिनापल्लीसे मदुरा तक जो सड़क गई है, उसकी दोनों बगल तरह तरह वृक्ष लगवाये और बीच बीचमें पथिकाश्रम भी खोल दिये।

मङ्गम्मालमें एक विशेष गुण यह था, कि वे सभी

धर्मावलम्बियोंको एक नजरसे देखती थीं। हिन्दू हो चाहे ईसाई दोनोंका समान आदर करती थीं। १६८९ ई०में रामनादके सेतुपतिने बहुत कष्ट दे कर जेसुइटपुरुष डि ब्रिटोके मस्तक काट लिये। इस पर मङ्गम्माल सेतुपतिके ऊपर बहुत बिगड़ीं। १६८९ ई०में उनको सेना त्रिवाङ्कुरके पर दखल करने गई और वहीं पराजित हुई। इस कारण मङ्गम्मालने त्रिवाङ्कुरके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। कोई कहते हैं, कि उस युद्धमें मदुराकी जीत हुई थी और फिर कोई त्रिवाङ्कुरके राजाको जीत बतलाते हैं। १७०० ई०में तुलजाजीके पोलन्दाओंने नायकराजके निकट सूबा निजामतका अधिकार लाभ किया था। इस समय तञ्जोरके साथ भी दो एक बार संघर्ष उपस्थित हुआ था, उस समय मदुरा राजसभामें यूरोपीय धर्मयाजक बुचेट (Bouchet)की खूब खातिर हुई थी। मदुरा सेनापति दलवाय नरप्पयने तञ्जोरराज्यको अच्छी तरह लूटा। तञ्जोरके प्रधान मन्त्रीने रिश्वत दे कर मदुराके सैन्य सर्मको वशीभूत कर लिया। १७०१ ई०में मदुरा और तञ्जोरने मिल कर महिसुरराज्य पर चढ़ाई कर दी, लेकिन किसीकी हार जीत न हुई। दूसरे वर्ष दल वाय नरप्पय सेतुपतिके साथ युद्धमें पराजित और निहत हुए। १७०४-५ ई०में नायक राजकुमारकी नाबालिगी जब दूर हुई, तब राजकार्यका कुल भार उन्हीं पर सौंपा गया। सुयोग देख कर धूर्त मन्त्रियोंने मङ्गम्माल पर मिथ्या दोषारोपण किए। उपमन्त्रियोंके नायकराजने उनकी मूल्याभिसन्धि समझे बिना मातामहीको कैद कर लिया। कारागारमें मङ्गम्मालने भूखों रह कर प्राणत्याग किया। दुष्टोंके उन विदुषी रमणीके चरित्रमें मिथ्या दोषारोपण करने पर भी मदुराकी प्रजा आज भी उन्हें माताकी तरह मानती है और उनकी सुख्याति गान करती है। विजयरङ्गके राजत्वकालमें अराजकतावस्थाके समय (१७०८ ई०में) और उसके दूसरे वर्ष जो दुर्भिक्ष पड़ा था उसमें प्रजाके कष्टकी सीमा न थी। यह दुर्भिक्ष लगातार दस वर्ष तक रहा था। १७२० ई०में पदुकोटा के तोण्डमान सेतुपतिकी अधीनताका परित्याग करते हुए विद्रोही हो गए। सेतुपति उनका दमन करने गए और आप भी मारे गए। अब रामनादका सिंहासन ले कर बहुत विवाद उठा। रामनादके अधीन शिवगिरि प्रदेश तञ्जोर-राज्यभुक्त हुआ और शेष अंश परवर्ती सेतुपतिके हाथ रहा। १७३१ ई०में विजयरङ्गकी निःसन्तान अवस्थामें मृत्यु हुई। उनकी विधवा रानी मीनाक्षी देवीने मदुराका शासनभार ग्रहण किया। उन्होंने बङ्गारु तिरुमलके पुत्रको गोद लिया। सुयोग देख कर बङ्गारु तिरुमलने मदुरा पानेकी खूब कोशिश की। उन्होंने त्रिचिनापल्लीमें रानीके प्राण संहार करनेके लिए षड्यन्त्र रचा था किन्तु आशा पर पानी फिर गया। १७३५ ई०में सफदरअली खाँके अधीन मुसलमानोंने मदुरा तञ्जोर, त्रिवाङ्कुर आदि राज्यों पर चढ़ाई कर दी। इस समय बङ्गारु-तिरुमलने सफदरअलीको रिश्वत दे कर वशीभूत कर लिया और उसके द्वारा अपनेको राजा घोषित कराया। इस पर रानी भयभीत हो गईं और प्रभूत अर्थ द्वारा चाँदसाहबको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। अब बङ्गारु तिरुमल त्रिचिनापल्लीको छोड़ कर मदुराकी ओर भाग गए। चाँदसाहब भी चल दिए, किन्तु १७३६ ई०में वे फिर त्रिचिनापल्लीमें आ कर डट गए। रानी मीनाक्षी सम्पूर्णरूपसे चाँदसाहबके अधीन हो गई। चाँदसाहबने बङ्गारु तिरुमलके विरुद्ध सेना भेजी। बङ्गारु युद्धमें पराजित हुए और शिवगङ्गा प्रदेशको भाग गए। अभी चाँदसाहब ही मदुराका सिंहासन अधिकार कर बैठे। रानी मीनाक्षीने हताश हो कर आत्महत्या कर डाली। इस प्रकार नायकवंश यवनाधीन हुआ।

नायका (हिं० स्त्री०) १ वेश्याकी मा। २ कुटनी, दूती।

नायकाधिप (सं० पु०) नायकस्य अधिप ६ तत्। नृप, राजा।

नायकी (सं० पु०) एक रागका नाम।

नायकीकान्हड़ा (हिं० पु०) एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

नायकीमल्लार (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

नायकोट (नयाकोट)—नेपालके अन्तर्गत एक जिला और नगर। यह काठमण्डूसे १० मील पश्चिम-उत्तरमें विस्तृत है। नगर उस जिलेके उत्तरप्रान्तमें बसा हुआ है। यह

रेजोंके साथ युद्ध होनेके पहले तक वर्त्तमान राजवंश शीत कालमें इसी नयाकोटमें रहते थे। पहाड़के ऊपर अवस्थित होनेके कारण चारों ओरके स्थानसे यह स्थान बहुत ऊँचा है। नयाकोटका समतलक्षेत्र समबाहु त्रिभुजा-सा है। इसके दो ओर नदी और तीसरी ओर पहाड़ है। यह स्थान चैत्रसे कार्त्तिक तक अत्यन्त अस्वास्थ्य-कर रहता है। इस समय मलेरियाका प्रकोप बहुत देखा जाता है। यहांके जङ्गलमें तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं। पार्वतीय, नेवार आदि जातियां यहां वास करती हैं।

नायङ्गू—कोचीनको उत्तरांशनिवासी एक जाति जो वर्त्तमान समयमें उत्कृष्ट मानी जाती है।

नायङ्गूपालेम्—नेल्लूर जिलेके दरशी नामक स्थानसे १० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। इसके पूर्वमें एक पहाड़ है जिसमें १५१८ सम्वत्की उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखनेमें आती है।

नायत (हिं० पु०) वैद्य।

नायन (हिं० स्त्री०) नापितका काम करनेवाली स्त्री, नाईकी स्त्री।

नायब (अ० पु०) १ किसीकी ओरसे काम करनेवाला, किसीके कामकी देख-रेख रखनेवाला, मुनीब, मुख्तार। २ सहायक, सहकारी।

नायबी (अ० स्त्री०) १ नायबका काम। २ नायबका पद।

नायर—१ दाक्षिणात्यकी प्रसिद्ध योद्धाजाति। नायूर देखो। २ बड़ी नाव।

नायिका (सं० स्त्री०) नयति या नी-ण्वुल्, टाप्, अत इत्वञ्च। १ दुर्गाशक्ति, दुर्गादेवीकी आठ शक्तियोंका नाम अष्टनायिका है। इस अष्टनायिकाका यथाविधान पूजन करना होता है।

"ततोऽष्टनायिकादेव्या यत्नतः परिपूजयेत्॥
उग्रचण्डां प्रचण्डांच चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्॥
अतिचण्डांच चामुण्डां चण्डां चण्डवतीस्तथा॥
पंचोपचारैः संपूज्य भैरवानमध्यदेशतः॥"

(ब्रह्मव० प्रकृतिख० ६१ अ०)

२ शृङ्गाररसावलम्बन-विभावरूपा नारी, वह स्त्री जो शृङ्गाररसका आलम्बन हो अथवा किसी काव्य, नाटक आदिमें जिसके चरित्रका वर्णन हो। नायिका तीन प्रकारकी है—स्वीया, परकीया और सामान्यवनिता। नायिका शृङ्गाररसकी आधारस्वरूप है। जो स्वामीके विषयमें अत्यन्त अनुरक्त रहती है उसका नाम स्वीया है। यह स्वीया फिर तीन प्रकारकी है—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

साहित्यदर्पणमें नायिकाका विषय इस प्रकार लिखा है। प्रथमतः नायिका तीन प्रकारकी है, स्वीया, अन्या और साधारण। नायकके जो सब साधारण गुण लिखे गए हैं, नायिकाके भी वे ही सब गुण रहेंगे। इनमेंसे जो विनय और सरलतादियुक्ता तथा पतिव्रता और सर्वदा गृहकार्यमें निरत रहती है, उसे स्वीया-नायिका कहते हैं। यह स्वीया नायिका मुग्धा, मध्या और प्रगल्भाके भेदसे तीन प्रकारकी है। प्रथमावतीर्ण-यौवना, मदनविकारवती, रतिविषयमें प्रतिकूला, पतिके प्रति मानविषयमें मृदु और अत्यन्त लज्जावतीको मुग्धा-नायिका कहते हैं। विचित्र सुरतयुक्ता और जिसका यौवन तथा मदन प्रवृद्ध हुआ हो, जो वाक्य ईषत् प्रगल्भ और मध्यम लज्जावती हो उसे मध्या कहते हैं। समस्त रतिकार्यमें कुशल, कामान्धा, गाढ़तारुण्य, प्रगल्भा, भावोन्नत और अल्पलज्जायुक्त होनेसे उसे प्रगल्भा नायिका कहते हैं। फिर मध्या और प्रौढ़ाके धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद किये गये हैं। प्रियमें पर स्त्री-समागमके चिह्न देख धैर्यसहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्रीको धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्रीको अधीरा तथा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्रीको धीराधीरा कहते हैं। धीरा नायिका देखो।

परकीयानायिका प्रौढ़ा और कन्यका यह दो प्रकारकी है। उत्सवादिमें निरता, कुलटा और लज्जाविहीनाको प्रौढ़ा नायिका और जिसका विवाह नहीं हुआ हो, जो नवयौवना और लज्जावती हो उसे कन्यका कहते हैं।

धीरा, कलाप्रगल्भा और वेश्या होनेसे उसे सामान्य नायिका कहते हैं। यह सामान्य नायिका निर्गुणमें द्वेष नहीं करती और न अधिक गुणमें अनुरक्त ही रहती है। यह केवल वित्तमात्रका अवलोकन कर बाहरसे प्रेम

दिखलाती है, विलज्ञास होने पर पुरुषको वशमें लाकर निकाल देती है। तत्पर पक्षु, मूर्ख, सुखप्राप्तधन, जिससे धन मांगने पर तुरत मिल जाय, क्लीव और ग्रामनाम से सब मनुष्य प्रायः इसके प्रिय होते हैं। यह नायिका मदनायत्ता और कहीं कहीं सत्यानुरागिणी होती है। यह चाहे रक्ता हो या विरक्ता इसमें रति-सुखम है। इसके भी फिर ८ भेद कहे गए हैं यथा— स्वाधीनभर्त्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता विप्रलब्धा, प्रोषितभर्त्तृका, वासकसज्जा और विरहोत्कण्ठिता।

कान्त रतिके गुणसे आकृष्ट हो कर जिसका साथ परित्याग नहीं करता और जो विचित्र विभ्रमासक्ता है उसे स्वाधीनभर्त्तृका कहते हैं।

प्रिय अन्यसम्भोगचिह्नित हो कर जिसके पार्श्वमें आगमन करे और जो ईर्षाकषायिता हो उसे खण्डिता नायिका कहते हैं। जो मन्मथमद मदा हो कर कान्तको अभिसार करावे वा स्वयं अभिसरण करे उसे अभिसारिका कहते हैं। क्षेत्र, उद्यान, भग्न देवालय, दूतीगृह, वन, श्मशान, नदी प्रभृतिके तट और अन्धकार स्थान, ये ही आठ अभिसार करानेके स्थान माने गये हैं।

जो क्रोधपूर्वक चाटुकार प्राणनाथको परित्याग कर दुःखमें सन्तप्त रहती है उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं।

प्रिय सङ्केतस्थानका निर्देश कर पीछे उस स्थान पर नहीं आता और इस कारण जो नितान्त अपमानिता होती है उसे प्रोषितभर्त्तृका-नायिका कहते हैं।

जो प्रियके समागत होगा, ऐसा जान अपने घरमें तथा मदनको सजाती है उसे वासकसज्जा कहते हैं। जिसके प्रियका आना निश्चय था किन्तु किसी कारण वश वह न आ सका, उस विरहातुराको उत्कण्ठिता नायिका कहते हैं। इत्यादि नाना प्रकार नायिकाके भेद हैं, विस्तार हो जानेके भयसे कुल नहीं लिखे गये।

इन सब नायिकोंके अष्टाईस स्वभाव अलङ्कार हैं। इनमेंसे भाव हाव और हेला ये तीन अङ्गज; शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये ७ अयत्नसिद्ध हैं। शोभा विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध्य विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अठाईस प्रकारके अलङ्कार स्वभावज कहलाते हैं।

निर्विकार चित्तमें प्रथम विक्रियाका नाम भाव है। अभिमत नायकको देख कर नायिकाके हृदयमें जो भाव उपस्थित होता है। भ्रूनेत्रादि विकार द्वारा सम्भोगेच्छा प्रकाश और यदि अल्प परिमाणमें विकार लक्षित हो, तो उसे हाव; जिस समय नायिकाके अत्यन्त विकार लक्षित हो, उसे हेला; रूप और यौवनगत जो सौन्दर्य है एवं भोगादि द्वारा जो अङ्गभूषण है उसे शोभा कहते हैं।

मदनवर्द्धित द्युतिका नाम कान्ति और अतिविस्तीर्ण कान्तिका नाम दीप्ति है। सभी अवस्थामें मधुरताको रमणीयता कहते हैं। भयशून्यका नाम प्रागल्भ्य, सर्वदा विनयका नाम औदार्य और आत्मश्लाघारहित अचपल मनोवृत्तिका नाम धैर्य है। अङ्ग, वेश, अलङ्कार, प्रेमवाक्य आदि द्वारा प्रियका अनुकरण करनेसे उसे लीला कहते हैं। प्रियसन्दर्शनादिके लिये गमन, स्थान आसन आदिके वैशिष्ट्यका नाम विलास, कान्ति वृद्धि होती है ऐसे अलङ्काररचनाका नाम विच्छित्ति, अत्यन्त गर्ववशतः प्रिय वस्तुमें अनादरका नाम विव्वोक, प्रियजनके सङ्गमादि हर्षजनित हास्य, अनद्गुरोदन, भय, मान, श्रम, आदिके सम्मिलनका नाम किलकिञ्चित, प्रिय-कथाप्रसङ्गसे प्रियतमको कथा आदिमें कर्णकण्डूयनादिका नाम मोट्टायित, प्रियतमसे केश स्तन और अधरादिके ग्रहणसे आनन्द और हस्तादिका जो कम्प होता है। उसका नाम कुट्टमित, प्रियतमके आगमन पर अस्थानमें अलङ्कार धारणका नाम विभ्रम है। सुकुमारता वशतः अङ्गविक्षेपको ललित। यौवनकालमें गर्वजात विकारको मद; बोलनेके समय लज्जावशतः अकथनको विहृत; प्रियविरहमें कन्दर्पविकारचेष्टितको तपन, जानी हुई वस्तुको अनजान बतला कर प्रियतमसे पूछने को मौग्ध्य; प्रियतमके समीप भूषणकी अर्द्धरचना, प्रियतमके प्रति निरीक्षण और मन्द मन्द रहस्यालाप को विक्षेप; रमणीय वस्तु देख कर औत्सुक्यको कुतूहल; यौवनप्रतापजात निरर्थक हास्यको हसित; प्रियके

समीप अति अल्प कारणसे भयविह्वल हो जानेको चकित और विहारकालमें प्रियतमके साथ क्रीड़ाको केलि कहते हैं। नायिकाओंके ये सब स्वभावज अलङ्कार हैं। ये सब अनुरागचिह्न मुग्धा और कन्यकानायिकाके जानने चाहिये। यथा—यह नायकके दर्शनसे हो अत्यन्त लज्जित होती है, सिर उठा कर देख नहीं सकती, प्रच्छन्न भावसे अर्थात् भ्रमण करते करते वा वक्रभावसे प्रियतमको देखती है; प्रियतमसे वार वार पूछो जाने पर अधोमुखी हो कर मन्द मन्द भावमें उत्तर देती है, जिससे दूसरा कोई उसको बोलोको सुन न सके, इस पर भी विशेष ध्यान रखती है।

सब प्रकारको नायिकोंके ये सब अनुरागचिह्न जानने चाहिये। यथा—ये प्रियतमके पास रहनेमें बहुमान समझती हैं, प्रियतमके विलोकनपथ पर विना अलङ्कृता हुए नहीं चलतीं। कोई कोई वस्त्रपरिधान अथवा केशबन्धनके बहाने बाहुमूल, स्तन और नाभि दिखाती है, प्रियतमके भृत्योंको वशीभूत और बन्धुके प्रति अत्यन्त सम्मान करती हैं। ये सखियोंके निकट प्रियतमका गुणकीर्त्तन और प्रियको अपना धन दिया करती हैं। प्रियतमके सो जाने पर आप सोती हैं। प्रियके सुख पर सुखी और दुःख पर दुःखी; प्रियको दूरसे देखनेसे भी उसके दृष्टिपथ पर अवस्थान, प्रियतमके सामने कामावेशके साथ आलाप, प्रियतमको किसी बात पर हास्य करके कर्णकण्डूयन, केशबन्धन और मोचन, कन्यापुत्रादिको चुम्बन, सखीके कपाल पर तिलक, पादाङ्गुष्ठ द्वारा भूमिलिखन, प्रियतमके प्रति सकटाक्ष निरीक्षण, स्वकीय अधरदंशन, मुखको नीचे किये प्रियके साथ वाक्यालाप, प्रियतम जहां रहता है, वहां कोई बहाना कर वार वार जाना, प्रियके कोई वस्तु देने पर उसे अङ्गमें लगा कर वार वार निरीक्षण, प्रिय-समागममें अतिहृष्टा, विरहमें मलिना और कृशा, प्रियचरित्रमें बहुमान, निद्रिता हो कर अपाङ्गपरिवर्त्तन, सर्वदा अनुरक्त, सत्य और मधुरवाक्यकथन। इनमेंसे नवोढ़ा अत्यन्त लज्जावती, मध्यमा मध्यमलज्जा और परकीया नायिका लज्जाहीना होती है। नायिकाओंके यही सब अनुरागके लक्षण बतलाये गए हैं। (साहित्यद० ३ परि०)

नायिकाचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधिभेद। यह औषध स्वल्प, मध्यम और बृहत्के भेदसे तीन प्रकारकी है।

स्वल्प नायिकाचूर्ण—पञ्चलवण प्रत्येक डेढ़ तोला, त्रिकटु प्रत्येक दो तोला, गन्धक एक तोला, पारद आध तोला इन सबको एकत्र कर भलीभांति पीसते हैं। मात्रा एक माशासे ले कर आधा तोला तक हो सकती है। यह चूर्ण अग्निवृद्धिकारक और ग्रहणीरोगनाशक है।

मध्यम नायिकाचूर्ण—पूर्वोक्त औषधके परिमाणके दूना होनेसे यह नायिकाचूर्ण होता है। इसके सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ, अतीसार, ग्रहणी, कास, श्वास, शूल ज्वर, प्लीहा और आमवात आदि रोग जाते रहते हैं।

बृहन्नायिकाचूर्ण—चितामूल, त्रिफला, त्रिकटु, विड़ङ्ग, हरिद्रा, भिलावा, यमानी, हिङ्गु, पञ्चलवण, कज्जल, वच, कुट, मोथा, अभ्र, गन्धक, यवक्षार, सार्चिक्षार, सोहागा, वनयमानी, पारद और गजपिप्पली सबको बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पीसते हैं। इसकी गोली यथायोग्य मात्रामें सेवन करनी चाहिये।

नार (सं० क्लो०) नाराणां समूहः, नर-अण्। १ नरसमूह, मनुष्योंकी भीड़। २ सद्योजात गोवत्स, तुरतका जन्मा हुआ गायका बछड़ा। ३ जल, पानी। ४ शुण्ठी, सोंठ। (त्रि०) ५ नरसम्बन्धी, मनुष्यसम्बन्धी। ६ परमात्मासम्बन्धी।

नार (हिं० स्त्री०) १ ग्रीवा, गरदन, गला। २ जुलाहोंकी ढरकी, नाल। ३ नाला। ४ बहुत मोटा रस्सा। ५ सूतकी डोरी जिससे स्त्रियां घांघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोतीकी चुनन बांधती हैं, नारा, नाला। ६ जूआ जोड़नेकी रस्सी या तस्मा। ७ चरनेके लिये जानेवाले चौपायोंका झुण्ड।

नार—बम्बई प्रदेशके बड़ोदा राज्यके अन्तर्गत पेटलद महकूमेका एक नगर। यह अक्षा० २२° २८´ उ० और देशा० ७२° ४५´ पू० के मध्य अवस्थित है। यहां अङ्गरेजी विद्यालय और दो धर्मशालायें हैं।

नारक (सं० पु०) नरक एव प्रज्ञादित्वादण्। १ नरक। २ नरकस्थ प्राणी, नरकमें रहनेवाला जीव।

दलबलके साथ पहुँच गये और दोनोंने मिल कर पार करके शासनकर्त्ताके विरुद्ध युद्धयात्रा की। पीछे पारकर जीत कर जब वे लौट रहे थे, तब राहमें ही दोनोंमें विवाद उपस्थित हुआ। इसका प्रतिशोध लेनेके लिए बालाजीने जाम तथा उनके और पांच भाइयोंको मार डाला। केवल उनके छोटे भाई जाम अवढ़ाने किसी तरह भग कर अपनी जान बचाई थी। जाम अवढ़ाने विपुल सैन्यसंग्रह कर पावरगढ़के विरुद्ध यात्रा की और काठी लोगोंको वहांसे मान नामक स्थानमें मार भगाया। कहते हैं, कि यहां बालाजीके सामने सूर्यदेवने आविर्भूत हो उन्हें फिरसे युद्ध करनेका आदेश दिया तदनुसार बालाजीने पुनः लड़ाई ठान दी और जाम-अवढ़ाको अच्छी तरह पराजित किया। बाद जाम अवढ़ा कच्छको भग दिये। तभीसे काठी लोग सूर्यदेवके उपासक हैं और बालाजीका वंश वाला कहलाता है।

उक्त-वंशने सम्वत् १४८० तक माननगरमें वास किया। पीछे बालाजीके तीन पुत्र चितलका साम्राज्य जीत कर आत्मीय स्वजन और स्वजातिगणके साथ वहां रहने लगे। वेरावलजीके द्वितीय पुत्र खुमानजीसे नागपाल नामक एक पुत्र था। यथासमय नागपालके दो पुत्र हुए, मानसुर और खाचर। मानसुरका वंश खुमान नामसे प्रसिद्ध है। मानसुरके पुत्र नागसुर आवर कुण्डला जीत कर अपने परिवारवर्गके साथ वहां वास करने लगे। ये ही आवर कुण्डलाके खुमान-काठियोंके आदिपुरुष हैं। उनसे वर्त्तमान खाचर-काठी, उनके पुत्र हेमानन्दके प्रथम पौत्र पाञ्चसे समाग्रिय, डाण्टा और थोवालिया उत्पन्न हुए हैं। द्वितीय पौत्र नागसुरके काल और नागपाल नामक दो पौत्र थे। नागपालसे वर्त्तमान भड़ली और खम्बालाख्य मखानो जातिकी उत्पत्ति हुई है। काठियोंमें काल अत्यन्त विख्यात थे। उन्होंने सम्वत् १५४२में अपने नाम पर कालासर नामक ग्राम बसाया। उनके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि वे शिवजी-की सहायतासे विपुलराज्यके अधिकारी हुए थे। काल-खाचरके चार पुत्र थे—सामट, ठिगो, जावर और सेज। जावरका वंश कुण्डलिया नामसे प्रसिद्ध है। ठिगोके दो पुत्र थे, दान और लख। दानका वंश ठिवानी और लखका वंश लखानो कहलाता है। पालियाके तालुकदार ठिवानी और यशदनके तालुकदार लखानो वंशके हैं। सामटके चार पुत्र थे; राम, नाग, देवाइट और सजाल। चोठिलाके राजा यश परमार गुगलियानाकी स्त्रियोंके प्रति बहुत अत्याचार करते थे, इस कारण गुगलियानाके अधिवासियोंके अनुरोधसे सामटने खाचरको मार डाला और चोठियालाको जीत कर परमारोंको स्थानच्युत किया। १६२२ सम्वत्के चैत्र मासमें यह घटना घटी थी। बाद नाग खाचर चोठिलाके सिंहासन पर बैठे। असीम साहससे मुलो परमारोंके विरुद्ध युद्ध कर धराशायी हुए। अनन्तर उनके भाई राम चोठिलाके राजा बने। किन्तु परमारोंके साथ उनका लगातार युद्ध चलता रहा जिससे राजाका धनागार शून्य हो गया। रामके वंशधर रामानो नामसे प्रसिद्ध हैं। सजालखाचरसे शूरगानो और ताजपरा काठी तथा नागखाचरसे नागानी और कालानीको उत्पत्ति हुई है। बोटाद और गढ़वाके अधिवासी गढ़ड़ाद्वारा देशा इटव अज्ञात है। चोटिलाके शासनकर्त्ता राम खाचरके छः पुत्र थे—चोमल, योगी, नान्ह, भोम, यश और कापड़ो। चोमलका वंश हड़मतिराय और योगीका वंश गिरासियागण उमारदाय कहलाता है। भादरके काठिया लोग भोमके नामानुसार भोमानी नामसे प्रसिद्ध हैं और यशानी लोग यशसे उत्पन्न हुए हैं। छठे पुत्र कापड़ीने धान्धुका नामक स्थान जीत कर वहांके अजमेर और मुसलमानोंको मार भगाया। कापड़ी खाचरके ७ पुत्र थे—१ नागाजन, २ यश, ३ वस्त, ४ हरसुर, ५ देवाइत, ६ हिभ और ७ वालेर। इनमेंसे नागाजन अत्यन्त विख्यात थे। उनके दो पुत्र थे, लाख और मुलुखाचर। उनकी कन्या प्रेमावाईके साथ गुगलियानाके बभानो धान्धलका (१७१२ सम्वत्में) विवाह हुआ था। मुलुखाचरने मेजाकपुरमें राजधानी बसाई। पीछे उन्होंने आनन्दपुर जीत लिया। लाख-खाचर सापुरके राजा हुए और क्रमशः उन्होंने मेवाशा और भादलाको अपने अधिकारभुक्त किया। मुलुखाचरके तीन पुत्र थे—१ वाजसुर, २ राम, ३ सादुल। आनन्दपुरके वर्त्तमान तालुकदार रामवंशोद्भूत हैं। बोटापू

तुर्कविपक्षादिके कारण होविका जनशून्य हो गया और बहुत समय तक भग्नावस्थामें रहा। अनन्तर भाटुल पुत्र कामदत्तदत्त और रामगुप्तने उस स्थानमें पुनः बहुत से लोगोंको ला कर बसाया। कात्यायनकी औरस और ब्रह्मचारिणीके गर्भसे भीम, कामप और माल नामक तीन पुत्र तथा कबानी भीमको वरुणके गर्भसे सुर, वीर, काच और भोज नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। कामप और भीम नादलामें वास किया, सुर भादुर होआड़ोमें, और समझा और पिमानीमें तथा भोज पठानकोटमें जा कर रहने लगे थे। सुरके भैरो और माल नामक दो पुत्र थे जो अपने पिताकी मृत्युके बाद १०८१ सम्वत्में (१०२८ ई०में) होआड़ोके राजा हुए।

नारद (स० पु०) नार परमात्मविषयक ज्ञान ददाति दा-क अथवा नार नरसमूह यति खण्डयति कलहेन दो-क, वा नार अम पितृभ्यो ददाति दा-क। स्वनामख्यात मुनिविशेष, एक देवर्षि। नामनिरुक्ति—

'नारं पानीयमित्युक्तं तत्पितृभ्यः सदा भवान्।
ददाति तेन ते नाम नारदेति भविष्यति॥'
(वामन)

नारका अर्थ जल है, पितृगणको सर्वदा जल दान देनेके कारण इनका नाम नारद पड़ा है।

प्रायः सभी पुराणोंमें नारदका थोड़ा बहुत उल्लेख देखनेमें आता है। श्रीमद्भागवतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है—

एक समय वेदव्यास अपनेको हीन समझ कर बहुत उदास हो बैठे थे। इसी बीचमें नारदमुनि वहां आ पहुंचे। वेदव्यासने पाद्यादि द्वारा उनका पूजन किया। तब नारदने वेदव्याससे कहा 'महाभारतका वर्णन तथा परब्रह्मका स्वरूप जानते हुए भी तुम क्यों इस प्रकार उदास बैठे हो?' इस पर व्यासदेव बोले, 'मेरा मन किसीसे परितृप्त नहीं होता।' यह सुन कर नारदने कहा, 'तुमने भगवान्का निर्मल यश वर्णन नहीं किया। इसका कारण तुम्हें ऐसा अवसाद उत्पन्न हुआ है। भगवान्का निर्मल यश वर्णन करनेसे यह अवसाद दूर हो जायगा। मेरा पूर्वजन्मविवरण जाननेसे तुम्हारा यह भ्रम जाता रहेगा। मैं अपना पूर्वजन्मवृत्तान्त कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो,—

मैं पूर्वकल्पमें अर्थात् गतजन्ममें किसी वेदवित् ब्राह्मणको एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। वर्षाकालमें योगी लोग चार मास तक एक जगह रहते हैं। उस समय मेरी माने उनकी शुश्रूषाके लिये मुझे नियुक्त किया। मैं बालचापल्य, क्रीड़ा और लोभादिका परित्याग कर सर्वदा उनका अनुवर्ती रहता था। यद्यपि ऋषि समदर्शी होते हैं, तो भी मेरे प्रति उनकी विशेष कृपा रहती थी।

एक दिन उनकी आज्ञासे मैंने उनका जूठा प्रसाद खाया। खानेसे हो मेरे सब पाप दूर हो गये। चित्तको शुद्धि हुई और उनके धर्ममें मेरी रुचि हो गई। वे लोग प्रति दिन हरिकथा गान करते थे जिसे सुननेका हमें भी सौभाग्य प्राप्त होता था। श्रद्धापूर्वक प्रति दिन हरिकीर्त्तन सुनते सुनते श्रीकृष्णमें मेरा अनुराग उत्पन्न हो गया। भगवान्के प्रति श्रद्धा होनेसे ही मेरे उज्ज्वल ज्ञानका उदय हो आया। इसी ज्ञानसे प्रपञ्चातीत परब्रह्मस्वरूप आत्मामें अपनी अविद्या द्वारा जो यह स्थूल और सूक्ष्म देह कल्पित हुई है उसे जान गया। इस प्रकार शरत् और वर्षा इन दो ऋतुओंमें सायं, प्रातः और मध्याह्न कालको महात्मा मुनियोंसे हरिका निर्मल यश त्रिविध रूपसे सुनते सुनते मेरे मनमें रजस्तमोनाशिनी हरिभक्ति उत्पन्न हुई। मैं जो इस प्रकार भक्तिसम्पन्न, विनययुक्त, निष्पाप, श्रद्धान्वित और संयतेन्द्रिय हो उन ऋषियोंकी सेवा शुश्रूषा किया करता था, उसके फलस्वरूप जब वे वर्षावसान पर पर्यटनको निकले, तब दीनवात्सल्यके गुणसे उन्होंने साक्षात् भगवत्‌कर्त्तृक कथित गुह्य ज्ञानका उपदेश हमें दिया। उस ज्ञान द्वारा मैं सृष्टि स्थित्यादिके विधानकर्त्ता भगवान् वासुदेवकी माया जानने लगा। सर्वनियन्ता पूर्णरूप परब्रह्ममें जो कर्मार्पण है, वही आध्यात्मिकादि तापत्रयको महौषध है।

मेरे विद्योपदेशक ऋषियोंके दूरदेश जानेके बाद मैं निरावयभावसे रहने लगा। मेरी माता एकपुत्रा थी, साथ साथ पराधीना भी थी। यद्यपि मेरे भरण पोषणकी इच्छा रखती थी, पर मुझे पालन करनेमें बिलकुल असमर्थ थी। उस समय मेरी अवस्था केवल पांच वर्षकी थी।

एक समय मेरी माता रातको किसी कारणवश घरसे बाहर निकली। राहमें उन्हें किसी दुष्ट सर्पने डँस लिया जिससे वह पञ्चत्वको प्राप्त हुईं। उनकी मृत्युको भगवान्‌का अनुग्रह समझ कर मैं उत्तर-दिशाको चल दिया। इस प्रकार नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हुए मैं एक निविड़ अरण्यमें पहुँचा। इस समय मैं बहुत थक गया था, इन्द्रियां शिथिल हो गई थीं; अतः एक ह्रदमें स्नान और जलपान कर कुछ सुस्थ हुआ। पीछे उस निर्जनवनमें एक पीपल वृक्षके तले बैठ गुरु मुखसे जैसा सुना था, बुद्धिद्वारा अपने हृदयस्थ परमात्म-की उसी प्रकार चिन्ता करने लगा। भक्तिवशीभूत चित्त द्वारा भगवान् हरिके चरणारविन्दका ध्यान करनेसे मेरी दोनों आंखें डब डबा आईं। क्रमशः हृदयमें हरि आविर्भूत हुए। उनके दर्शनसे मैं आनन्द-सागरमें गोते मारने लगा। तब परमानन्दप्रवाहमें लीन हो फिर मैंने आत्मा और परमात्माको देख न पाया। उस समय आनन्दमय हो जानेसे ध्याता और ध्येय एक हो गया था। बाद और किसीका अनुभव न हुआ। बहुत समय तक भगवान्‌का वह रूप न देख मैं बहुत व्याकुल हो गया। फिर दूसरी बार मैंने मनःसमाधान किया, पर अभीष्ट सिद्ध न हुआ। निर्जन वनमें बैठ कर भगवद्दर्शनार्थ इस प्रकार बारम्बार यत्न करते रहनेसे ईश्वरने सुमधुरवाणी द्वारा सान्त्वना दे कर मुझसे कहा 'नारद! इस जन्ममें अब तुम्हें मेरे दर्शन नहीं हो सकते। क्योंकि अवशेन्द्रिय कुयोगियोंको मैं अपना दर्शन नहीं देता। पर एक बार मैंने जो अपना रूप तुम्हें दिखाया, वह केवल मेरे प्रति तुम्हारे अनुरागकी वृद्धिके लिए। क्योंकि मुझमें अनुराग होनेसे साधुजन क्रमशः काम क्रोधादिका परित्याग कर सकते हैं। बहुत दिन तक साधुसेवा द्वारा यदि मुझमें अपनी बुद्धि दृढ़ कर सको, तो इस निन्दनीय लोकका परित्याग कर मेरा पार्षद हो सकते हो। मुझमें एक बार बुद्धि निबद्ध हो जाने-से फिर कभी उसका विच्छेद नहीं होता। मेरे अनु-ग्रहसे प्रलयके बाद भी तुम्हारी स्मृति बनी रहेगी।' इतना कह कर भगवान् अन्तर्हित हो गए।

अनन्तर मैं भी लज्जाका परित्याग कर अनन्तरूप उस भगवान्‌का गुह्यनाम जपने और उनके शुभकार्य-का स्मरण करने लगा। बाद मैं पृथ्वी-पर्यटनको बाहर निकला और मत्सरशून्य हो कर कालकी प्रतीक्षा करने लगा।

पीछे यथायोग्य समयमें मेरी मृत्यु आ पहुंची। अन-न्तर भगवान्‌ने पूर्वप्रतिश्रुत विशुद्ध सत्त्वरूप पार्षद शरीर मुझमें जोड़ दिया और मेरी यह पाञ्चभौतिक देह पतित हुई।

जब भगवान् कल्पावसानमें इस विश्वका संहार कर समुद्र जलमें सोये थे, तब मैं उनके निश्वासयोगसे उनके भीतर प्रविष्ट हुआ था। सहस्र युगके बाद प्रलयावसान हुआ, तब भगवान् निद्रासे उठे और पुनर्वार सृष्टि करने-की इच्छा प्रकट की। इस समय उनकी इन्द्रियसे मरीचि, अत्रि प्रभृति ऋषिगण उत्पन्न हुए, मेरी भी उसी समय उत्पत्ति हुई। तभीसे मैं अखण्डित ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर विष्णुकी कृपासे त्रिलोकीके बाहर भीतर भ्रमण करने लगा; कहीं भी रोकटोक नहीं। स्वरब्रह्मसे विभूषित देवताकी दी हुई इस वीणाको ले कर हरिकथाका गान करते हुए तमाम पर्यटन करता हूं। जब मैं हरिगुण-गान करता हूं, तब वे मेरे हृदयमें विराजते हैं।

(भागवत १।६ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे, नारद ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। ये ब्रह्माके कण्ठसे उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माने इन पर तथा इनके भाइयों पर सृष्टिकार्यका भार सौंपा। किन्तु जब नारदने देखा कि इस तरह काममें फँसे रहनेसे ईश्वरका ध्यान अच्छी तरह नहीं कर सकते, तब उन्होंने यह कार्य करनेसे अनिच्छा प्रकट की। इस पर ब्रह्माजी बहुत बिगड़े और नारदको शाप दिया। नारद पितृशापसे गन्धमादन-पर्वत पर गन्धर्वयोनिमें जन्म ले उपवर्हण नामसे विख्यात हुए। इस जन्ममें इन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथकी ५० कन्याओंसे विवाह किया। इन पचासोंमेंसे माला-वती प्रधान थीं। एक दिन ये ब्रह्माकी सभामें रम्भाका नृत्य देखते देखते इतने कामातुर हो गए, कि इनका वीर्य स्खलित हो गया। इस पर ब्रह्माने इन्हें शाप दिया जिससे ये गन्धर्वदेहका त्याग कर नरलोकमें उत्पन्न हुए। उस समय कान्यकुब्ज देशमें द्रुमिल नामक एक गोपराज

परिणत हो गये। विष्णु भी अन्तर्हित हो गये। इसी समय तालध्वज नामक राजा आ पहुंचे और इन्हें अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। बारह वर्ष तक स्वामीके साथ सुखपूर्वक रहनेके बाद इन्हें गर्भका सञ्चार हुआ। यथासमय इन्होंने एक अलाबू (कद्दू) प्रसव की। उस अलाबूसे गान्धारीके भी पुत्रोंके जैसे पञ्चागत् पुत्र उत्पन्न हुए। क्रमशः वे सब पुत्र महाबल पराक्रान्त हो उठे। धीरे धीरे उनके भी अनेक पुत्रादि हुए। अन्तमें वे सबके सब राज्य पानेके लिये कुरुपाण्डवोंकी तरह आपसमें लड़ने झगड़ने लगे। युद्धमें एक एक करके सब मारे गये। यह देख कर ये बहुत दुःखित हुईं और स्वामीके साथ विलाप करने लगीं। इस समय भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मणवेशमें और अन्यान्य देवगण द्विजवेशमें वहां पहुंचे और बहुत कुछ इन्हें समझाया बुझाया, लेकिन जरा भी उन्हें शान्त कर न सके। पीछे भगवान्‌ने नारदको उसी सरोवरमें स्नान करा कर पुनः पूर्व स्वरूप प्रदान किया। उस समय विष्णुने नारदसे मायाका स्वरूप पूछा था जिसे नारदने हंस हंस कर कह दिया था।

किसी समय भगवान् विष्णुने कौशिकको प्रसन्न करनेके लिए तुम्बुरुको सभामें गान करने कहा। नारद भी उस सभामें उपस्थित थे। तुम्बुरुका गान सुन कर ये जल उठे और विष्णुके उपदेशसे गानशिक्षाके लिये उलूकेश्वरके निकट चल दिए। सहस्र वर्ष तक गान सीखनेके बाद इनके मनमें कुछ अहङ्कार हो आया। तुम्बुरुको परास्त करनेके लिए ये उसके घरकी ओर रवाना हुए। वहां पहुंच कर इन्होंने अनेक विकृताकार स्त्रीपुरुष देखे। जिज्ञासा करने पर उन लोगोंने कहा, 'हम लोग राग और रागिणी हैं। आपके गानसे ही हम लोगोंकी ऐसी दशा हो गई है। तुम्बुरु पुनः गान द्वारा हम लोगोंको शान्ति देंगे, इस कारण यहां पड़े हैं।' नारद उनकी बात सुन कर लज्जित हो गए और नारायणके निकट उपस्थित हुए। नारायणने नारदका आक्षेप सुन कर कहा था, 'तुम अब भी गीतशास्त्रमें पारदर्शी नहीं हुए हो; मैं जब यदुवंशमें कृष्णके रूपमें जन्म लूंगा, उस समय यदि तुम मेरे पास आओगे, तो मैं गानशिक्षाका उपाय बतला दूंगा।'

इस समय नारद जब अम्बरीषराजकी कन्या श्रीमतीसे विवाह करने गए, तब ये बहुत अप्रतिभ हुए थे। (श्रीमती देखो।)

पीछे यदुवंशमें श्रीकृष्णके अवतीर्ण होने पर नारद गान सीखनेके लिए उनके पास गए। उस समय श्रीकृष्णने नारदको यथाक्रम जाम्बवती और सत्यभामाके निकट दो वर्ष तक गान सिखलाया। किन्तु नारद किसी तरह स्वरायत्त कर न सके। पीछे रुक्मिणीके निकट दो वर्ष तक गान सीखनेके बाद इन्होंने स्वर और वीणायोगकी शिक्षा प्राप्त की। अन्तमें भगवान्‌ने स्वयं उन्हें अनुत्तम गानयोग सिखलाया। इस समय नारदकी तुम्बुरुके ऊपर जो ईर्षा थी, वह तिरोहित हो गई। इस गानशिक्षासे नारद ब्रह्मानन्दमें विभोर हो हरि-गुणगान करते हुए इस संसारमें विचरण करने लगे। (भागवत, ब्रह्माण्ड०, विष्णु०, वराह०, भविष्यपु०, अद्भुत-रामा०)

हरिवंशमें भी नारदको ब्रह्माका पुत्र बतलाया है। ब्रह्मा जब प्रजासृष्टिके लिए उद्यत हुए, तब उन्होंने पहले पहल मरीचि, अत्रि आदिको उत्पन्न किया, पीछे उनसे सनक, सनन्द, सनातन, सनत्कुमार, स्कन्द, नारद और रोपात्मक रुद्रदेवने जन्मग्रहण किया। (हरिवंश १ अ०)

ब्रह्माके मानसपुत्र नारद सप्तर्षियोंमेंसे एक हैं।

ब्रह्माने अपने पुत्रों पर प्रजासृष्टिका भार सौंपा था। पीछे वे सबके सब नारदके वाक्यसे विनष्ट हो गए। इस पर ब्रह्माने इन्हें शाप दिया था, 'तुम सर्वदा तीनों लोकोंमें भटकते रहोगे, कभी भी एक जगह स्थिर नहीं रह सकोगे।'

"तस्माल्लोकेषु ते मूढ़ न भवेद् भ्रमतः पदम्॥"

(विष्णुपु० १।१५अध्याय टीका)

इस लोगोंके पुराणसमूहमें नारद अतुलनीय व्यक्ति माने गए हैं, नारदके साथ ही नारदकी तुलना की जाती है। ऐसा कोई पुराण तथा काव्य नहीं, जिसमें नारद न हों। शिवके विवाहमें नारद घटक थे, वामनके उपनयनमें नारद उद्योगी थे, ध्रुवकी तपस्यामें नारद मन्त्रदाता थे, दक्षके दर्पनाशमें भी नारद उपस्थित थे। काव्यादिमें भी जहां जो प्रधान वर्णनीय है, उसमें नारद ही हैं। माघमें—शिशुपालके अत्याचारसे संसार जो

उत्पीड़ित था, नारद उसके उपाय विधाता थे। नैषधमें दमयन्तीके विवाहके समय नारद देवताओंके दूत थे। इत्यादि प्रायः सभी विषयोंमें नारद विद्यमान थे। इनका स्वभाव कलह प्रिय भी कहा गया है, इसीसे इधरकी उधर लगानेवालेको "नारद" कह दिया करते हैं। वेदमें इन्हें एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि बतलाया है। कात्यायनकी सर्वानुक्रमिकामें लिखा है, कि वे काश्यप पिताके ष्म मण्डलके ११वें सूक्त और नवम मण्डलके १०४वें और १०५वें सूक्तके ऋषि थे।

२ मालवोपस्थ पर्वत विशेष। ३ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। ४ प्रजापतिभेद, एक प्रजापतिका नाम। ५ काश्यपमुनिपत्नीजात गन्धर्वभेद, काश्यपमुनिकी स्त्रीसे उत्पन्न एक गन्धर्व। ६ चौबीस बोधोंमेंसे एक।

नारद—नैपालके बौद्धोंका कहना है, कि पुराकालमें काश्यप बुद्धके समयमें नारद नामक एक मनुष्य उत्पन्न हुए थे। ज्यों ज्यों उनकी उमर बढ़ती गई, त्यों त्यों वे समझने लगे, कि ब्रह्माके आमोद आह्लादको भोग किसीसे भी परित्यक्त होने को नहीं, इसीसे वे हिमालय पर्वत पर जा कर रहने लगे थे। अन्तमें योगबलसे उन्होंने अलौकिक घटनाओंका साधन करनेको सीखा था। किन्तु उन्हें विभाग प्रकाशमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त नहीं कर सकनेके कारण इन्द्र रूप और मातलिको साथ ले कर उनको शिष्यार्थी गए। इन्द्रकी कन्या शिरी नारदजी प्रेमपाशमें फँस गई थी। ये लोग नारद को बुद्ध और शिरीको बुद्धकी स्त्री बतलाते मानते हैं।

(महावस्तवदान)

नारद—ब्रह्मदेशके रामपाड़ो जिलेकी तीन भिन्न भिन्न नदियोंके नाम। इनमेंसे पहली नदी रामपुर-जोधापियाके कुछ दूरमें गङ्गासे निकल कर पुठियाके निकट मूसा खाँसे मिलती है और दूसरी मूसा खाँसे निकल कर नाटोरके मध्य होती हुई पूर्वकी ओर चली गई है। इसकी एक प्रधान शाखा नारद नाम धारण कर दक्षिणकी ओर बहती है। दूसरी नारदनदीमें वर्ष भर नाव आती जाती है।

नारदकुण्ड—वृन्दावनस्थित लीला-स्थानविशेष। यह गोवर्द्धनके सन्निहित कुसुम सरोवरके पास है। यहीं नारदने ध्यान करके हरिसाधन किया था, इसीसे इसका नाम नारदकुण्ड पड़ा है। (भक्तमाल, श्रीकृष्णजन्मखण्ड)

नारदपञ्चरात्र (स॰ क्ली॰) नारदकृत पञ्चरात्रतन्त्रभेद। इसमें पाँच विषय प्रतिपादित हुए हैं—अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। यही पाँच प्रकारकी उपासना है। देवतास्थान मार्जनादि द्वारा इस प्रकारको अभिगमन, गन्धपुष्पादि द्वारा पूजा करनेको उपादान देवतापूजाको इज्या, अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजपको स्वाध्याय और अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजप, स्तोत्रपाठ नामकीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासको योग कहते हैं। यही पाँच विषय नारदपञ्चरात्रके प्रधान वर्णनीय विषय हैं।

नारदपुराण (स॰ क्ली॰) महापुराणभेद, अठारह महापुराणोंमेंसे एक। महामुनि वेदव्यास इस पुराणके रचयिता हैं। इसमें सनकादिने नारदको सम्बोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है, इसीसे इसका नाम नारदपुराण पड़ा है। इस पुराणके प्रतिपाद्य विषय बृहन्नारदीय पुराणके ८६ अध्यायोंमें इस प्रकार लिखे हैं— यह पुराण पूर्व और उत्तर दो भागोंमें विभक्त है। इसमें श्लोक संख्या २५००० हजार है। पूर्वभाग चार पादोंमें विभक्त है, जिनमेंसे प्रथम पादमें सूतशौनक-सम्वाद सृष्टिका संक्षेपवर्णन और नाना प्रकारकी धर्म-कथाएँ वर्णित हैं। द्वितीय पादमें मोक्षधर्म कथनमें मोक्षोपाय निरूपण वेदाङ्गकथन, सनन्दन कर्त्तृक नारदके प्रति शुकोत्पत्तिकथन महातन्त्रमें पशुपाशविमोचन मन्त्र शोधन दीक्षा, मन्त्रोद्धार, पूजाप्रयोग, कवच, विष्णुके सहस्रनाम और स्तोत्र, गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्तिका क्रमशः उपाख्यान-कथन; तृतीयपादमें नारद और सनत्कुमार-सम्वाद, पुराण-लक्षण प्रमाण, दानकाल-कथन और चैत्रादि मासकी प्रतिपदादि तिथिका व्रत विस्तार कथन और चतुर्थपादमें सनातन कर्त्तृक नारदके प्रति ब्रह्माख्यान-कथन सम्यक् रूपसे वर्णित है। उत्तर भागमें एकादशीव्रतविषयक प्रश्न, वशिष्ठ और मान्धाता का सम्वाद, रुक्माङ्गदकी कथा मोहिनीकी उत्पत्ति और सम्वाद, मोहिनीके प्रति वसुका शाप और उद्धार गङ्गा की कुमकथा, गयायात्रा, काशीमाहात्म्य पुरुषोत्तम माहात्म्य और तीर्थयात्रा तथा प्रयागस्थ धर्मकथाएँ,

प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, हरिद्वारमाहात्म्य, कामोदा-आख्यान, बदरीतीर्थमाहात्म्य, कामाख्या-माहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराण-आख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादकी तपस्या, गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्य, लक्षणका-आख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदामाहात्म्य, अवन्तीमाहात्म्य, मथुरामाहात्म्य, वृन्दावनमाहात्म्य, ब्रह्माके निकट वसुका गमन और मोहिनीचरित्रकथन आदि विषय वर्णित हैं। जो इस पुराणको सुनता है या सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। यह पुराण यदि पूर्णा तिथिमें सप्तधेनुयुक्त करके किसी उत्तम ब्राह्मणको दान दिया जाय, तो अशेष फल मिलता है।

इसकी अनुक्रमणिका सुननेसे वा सुनानेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

"यः शृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स याति ब्रह्मणो धाम नात्रकार्या विचारणा॥
यस्त्वेतदिह पूर्णायां धेनूनां सप्तकान्वितम्।
प्रदद्यात् द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च॥
यथानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत्।
शृणुयाद्वैकचित्तेन सोऽपि स्वर्गं गतिं लभेत्॥"
(बृहन्नारदीयपु० ९६ अ०)

२ उपपुराणभेद, बृहन्नारदीय नामक एक उपपुराण।

नारदशिक्षा (सं० स्त्री०) नारदकृत वर्णोच्चारण-शिक्षाभेद।

नारदसंहिता (सं० स्त्री०) धर्मशास्त्रभेद, एक धर्मशास्त्रका नाम।

नारदा (सं० स्त्री०) १ इक्षुमूल, ईखकी जड़। २ मूर्वा।

नारदिन् (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

नारदीय (सं० क्ली०) नारदस्येदं नारद छ। १ वेदव्यासकृत नारदके प्रति सनकादिके उपदेशात्मक महापुराणभेद। (त्रि०) २ नारदका, नारद सम्बन्धी।

नारदेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

नारना (हिं० क्रि० वि०) थाह लगाना, पता लगाना।

नारफिक (अ० पु०) नारफाक देशमें मिलनेवाली विलायती घोड़ोंकी एक जाति। इस जातिके घोड़े डील डौलमें बड़े सुन्दर और मजबूत होते हैं।

नारवेकार—रामापुर, बेलगाम, चिकोड़ी परगनेमें तथा धारवाड़ आदि स्थानोंमें ये लोग अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनमेंसे अनेक गयासे आ कर यहां बस गये हैं। ये लोग अपनेको वैश्य बतलाते हैं इनमें कोई श्रेणी-विभाग नहीं है। इन लोगोंकी भाषा कोङ्कणी और मराठी है।

ये लोग देखनेमें सुश्री लगते हैं। इनमेंसे जो धनी हैं, वे बढ़िया बढ़िया कपड़ा पहनते और जो गरीब हैं वे मराठी वेशमें रहते हैं। ये लोग साधारणतः घी और कपड़ेका व्यवसाय करते हैं। कोई कोई मिठाई तैयार कर बेचता भी है। लेकिन अधिकांश खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं, सन्तानके भूमिष्ठ होनेके १२वें दिनमें उसका नाम रखते हैं। २से ५ वर्षके मध्य सन्तानका मस्तक मुंड़ाते हैं और विवाहके समय उपनयन होता है। पुरुष बीस वर्षके पहले और कन्या ऋतुस्नाता होनेके पहले व्याही जाती है। इनमें विधवा-विवाहकी प्रथा नहीं है। ये लोग साधारणतः शैव होते हैं और महादेव, गणपति, भगवती, कृष्णा-देवी आदि देव-देवियोंकी पूजा करते हैं।

महाराष्ट्र ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। ये लोग हिन्दूशास्त्रोक्त व्रतका पालन करते हैं तथा वाराणसी, गोकर्ण, महाबालेश्वर आदिको तीर्थस्थान मानते हैं। आपसका झगड़ा गांवके प्रधानसे निपटाया जाता है। शङ्केश्वर स्वामी प्रति वर्ष इनके गांवोंमें जाते हैं, उस समय गुरुतर विषयोंकी मीमांसा होती है, जैसे—विधवाका गर्भ, अविवाहिता स्त्रियोंका द्वितीय संस्कार, एक साम्प्रदायिक व्यक्तियोंका अन्य नीच जातिके लोगोंके साथ खान पान इत्यादि। ये लोग अपने लड़कोंको अङ्गरेजी पढ़नेके लिये स्कूल भेजते हैं। इस जातिकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होती जा रही है।

नारवेवार (हिं० पु०) आंस नाल, नाल और खेड़ी आदि, नारापोटी।

नारमन (अ० पु०) १ फ्रान्सके नारमण्डी प्रदेशका निवासी। २ जहाजका रस्सा बांधनेका खूंटा।

नारवे—यूरोपका एक देश। नौरवे देखो।

नारसिंह (सं० क्ली०) नरसिंहमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। १ नरसिंहचरिताख्यान उपपुराणभेद, एक

उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतारकी कथा है।
नारसिंहपुराण देखो।

२ नरसिंहरूपधारी विष्णु। तैत्तिरीय आरण्यकमें इनको गायत्री इस प्रकार लिखी है—

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि।
तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्॥" (तैत्तिरीय आ० १०।१।७)

३ तन्त्रभेद, एक तन्त्रका नाम।

नारसिंह—सौविमौर्ट्यितामण्ड में वर्ष सुनिमोवक एक राजा। इनके पिताका नाम गोपाल था।
(समाधिव० १।२३।११७)

नारसिंह—१५वीं और १७वीं शताब्दीमें विजयनगर राज्य इसी नामसे पुकारा जाता था। उस समयको लिखी हुई फारसी पोर्तुगीज और अङ्गरेजी आदि पुस्तकोंमें विजयनगर राज्यका नारसिंह नाम देखनेमें आता है। १४९१ ई०में वारसमुद्रके महाराज अंशके अधःपतन होने पर विजयनगरके राजाओंने यह राज्य बसाया। १४८७ ई०में विजयनगरका राजवंश जब विलुप्त हो गया, तब नरसिंह नामक एक तैलङ्ग राजकुमार राज्याभिषिक्त हुए। १५०८ ई० तक वे यहां राज्य करते रहे। उन्हींके नाम पर यह राज्य 'नारसिंह' नामसे प्रसिद्ध हुआ था।

नारसिंहवपुस् (सं० पु०) नरसिंहरूपी विष्णु।

नारसिंही (हिं० वि०) नरसिंहसम्बन्धी।

नारा (सं० स्त्री०) नरस्य सूनिरिय, नर-अण्(तस्येदम् पा ४।३।१२०) ततष्टाप्। जल, पानी।

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥"
(मनु० १।१०)

इस श्लोककी टीकामें कुल्लूकने 'नारा' शब्दको व्युत्पत्तिको लक्ष्य किया है, नर-अण् इसके बाद टाप् करके 'नारा' शब्द हुआ है, अण् प्रत्यय करनेसे टाप् न हो कर ङीप् होता है, यह साधारणविधि है। यहां पर ऐसा होनेसे नारा न हो कर नारी ऐसा पद होना चाहिये। किन्तु वेद और स्मृतिके प्रयोगमें विकल्पसे एक पक्षमें टाप् हो कर नारा पद सिद्ध हुआ।

नारा (हिं० पु०) १ कुसुम्भवस्त्र, लाल रंगा हुआ सूत जो पूजनमें देवताओंको चढ़ाया जाता है, मौली। २ सूतकी डोरी जिससे स्त्रियां घांघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोतीकी चुनन बांधती है, इजारबन्द, नीवी। ३ वह रस्सी जो हलके जूएमें बंधी रहती है। ४ दक्षिणा-पथ बहनेवाली प्राकृतिक नाम छोटी नदी।

नाराच (सं० पु०) नारं नरसमूहमाचामतीति आ-चम-ड। (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१) १ सर्व्वत्र प्रकार लौहमय बाण, वह तीर जो सारा लोहेका हो। पर्याय—प्रक्ष्वेडन, लौहनाल।

जिस बाणका सर्वाङ्ग लोहेका होता है, उसीका नाम नाराच है। शरमें चार पङ्ख लगे रहते हैं और नाराचमें पांच। ये पङ्ख शरवाणसे कुछ मोटे और बड़े होते हैं। नाराचबाणका चलाना बहुत कठिन है। २ दुर्दिन, ऐसा दिन जिसमें बादल घिरा हो, अन्धड़ चले तथा इसी प्रकारके और उपद्रव हों। ३ छन्दोविशेष, एक वर्ण-वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और चार रगण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और तारका भी कहते हैं। ४ षोडश मात्राओंका एक छन्द।

नाराचघृत (सं० क्ली०) १ घृतौषधभेद, वैद्यकमें एक घृत जो घीमें चीतेको जड़, त्रिफला, सटकटैया, वायविडङ्ग, पुष्करका मूल, निसोथकी जड़ आदि डाल कर बनाया जाता है। प्रतिदिन दो तोला सेवन करनेसे वात, गुल्म, प्लीहा, उदावर्त्त, अर्श, भगन्दर आदि रोग जाते रहते हैं। इसका अनुपान उष्णजल, हृतयुक्त यवागू और जाङ्गलमांसका शोरबा है।

प्रस्तुतप्रणाली—घृत एक सेर, काढ़ेके लिये थूहरका दूध, दन्तीमूल, त्रिफला, विड़ङ्ग, भटकटैया, निसोथ चीतेको जड़ प्रत्येक १ तोला ४ माशा २ रत्ती। व्यवहार मात्रा १ तोला और अनुपान उष्णजल है। इसके सेवन करनेसे उदरामय अच्छा हो जाता है।

२ उदररोगका घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये चीता, गीतामूल, चई, विडङ्ग, त्रिफला, निसोथ, पटोल, त्रिकटु, वनयमानी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा दन्तीमूल प्रत्येक दो तोला, गोमूत्र ४ सेर, थूहरका दूध ४ पल, जल १६ सेर। इस घृतको इच्छानुसार करते हैं। इसके सेवन करनेसे उदरी और आमवात आदि रोग बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं।

हुआ है, कि आत्मासे ही आकाश उत्पन्न हुआ है।

"आत्मन आकाशः सम्भूतः" (श्रुति)।

'नर आत्मा तस्मो जातानि आकाशादीनि नाराणि तानि कार्य्याणि अयनं यस्य व्याप्नुते नारायणः' (भाष्य)

जिससे सभी तत्त्व उत्पन्न हों और जिसमें फिर लीन हो जावें उसीका नाम नारायण है।

"नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः।
तान्येवायनं यस्य तेन नारायणः स्मृतः॥" (महाभारत)

अयनशब्दादिति वा प्रलय 'यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' इति श्रुतिः। मनुमें लिखा है—

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥"

(मनु १।१०)

नर शब्दसे परमात्माका बोध होता है और इसी नरसे सबसे पहले जलकी उत्पत्ति है, इसीसे जलको नारा कहते हैं। नारा ब्रह्मरूपमें अवस्थित परमात्माका सर्व प्रथम अयन या आश्रय है, इस कारण ब्रह्माको नारायण कहते हैं। जो कुछ देखा जाता है या सुना जाता है, उन सब वस्तुओंके भीतर और बाहर नारायण अवस्थित है, अर्थात् नारायण जगत्‌के समस्त वस्तुओंमें सर्वत्र विद्यमान हैं।

"यच्च किञ्चिज्जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥"

किसी मन्वन्तरमें भगवान् विष्णु नर नामक ऋषिसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण भगवान्‌का नाम नारायण हुआ है। (भरतटीकामें भरत)

"नारं मोक्षवं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्।
ततोऽपि भवेद् यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः॥"

(ब्रह्मवै॰ श्रीकृष्णज॰ १०८ अ॰)

नार शब्दका अर्थ मोक्ष और अयन शब्दका अर्थ अभिलषित ज्ञान है, जिनसे मोक्ष और ज्ञानविषयक ज्ञान हो, उन्हें नारायण कहते हैं। और भी लिखा है—

"नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्।
यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः॥"

(ब्रह्मवै॰ श्रीकृष्णज॰ १०८ अ॰)

पापियोंको नारा कहते हैं, अयन शब्दका अर्थ गमन है, जिससे पापीको गति हो, उसे नारायण कहते हैं।

इस प्रकार नारायण शब्दकी नामनिरुक्ति अनेक प्रकारसे लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे अधिक नहीं लिखा गया। जिससे यह जगत् और सभी भूत उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाते हैं, वही भगवान् परब्रह्म नारायण हैं। वैदिक मतसे ये प्रथम पुरुष हैं। (शतपथब्राह्मण १२।३।४।१, शाङ्खायनश्रौतसूत्र १६।१३।१)

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे नारायणकी दो मूर्त्ति हैं, द्विभुज और चतुर्भुज। वैकुण्ठमें चतुर्भुज मूर्त्ति है और गोलोकमें द्विभुज मूर्त्ति। महालक्ष्मी और सरस्वती चतुर्भुज नारायणकी पत्नी हैं तथा गङ्गा और तुलसीदेवी द्विभुज नारायणकी।

"श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयं॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मी सरस्वती।
गङ्गा च तुलसी चैव देवी नारायणप्रिया॥"

(ब्रह्मवै॰ प्रकृतिख॰ ४१ अ॰)

नारायणका नामोच्चारण करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। तीन सौ कल्प तक गङ्गादितीर्थमें स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, एक बार नारायणका नाम लेनेसे भी उतना ही फल मिलता है। नारायण, अच्युत, वासुदेव और अनन्त इन सबका नामोच्चारण करनेसे मोक्षलाभ होता है।

जो 'नारायण' यह शब्द उच्चारण करते हैं, उन्हें नरककी कथा कभी सुननी नहीं पड़ती।

"नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढाः पतन्तीह किमद्भुतम्॥"

(महाभारत)

नारायणकी पूजा करनेमें निम्नलिखित रूपसे ध्यान करना होता है।

ध्यान—"ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥" (कालिमाहात्म्य)

प्रति दिन नारायणकी पूजा प्रत्येक ब्राह्मणका अवश्य

कर्त्तव्य है। शालग्रामशिलापूजाको नारायणपूजा वा विष्णुपूजा कहते हैं। शालग्रामपूजा और विष्णुपूजा देखो।

कौन कौन काम करनेसे नारायणकी प्रीति वा अप्रीति होती है, क्रियायोगसारमें उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

"कर्मणा येन विप्रेन्द्र तुष्टिमें इह जायते।
क्रोधस्त तत् समस्तं ते कथयामि समासतः॥"
(क्रियायोगसार १८ अ०)

विष्णु भगवान् कहते हैं, जिस कर्मसे मैं प्रसन्न हो सकता हूं, उसका विषय संक्षेपमें कहता हूं। सर्व-भूतोंमें दया, निरहङ्कार, मेरे उद्देशमें भक्तिपूर्वक धर्म-कार्यानुष्ठान, यथार्थ वाक्यकथन, मिष्ट वस्तु विष्णुके उद्देश्यसे निवेदन, जिसका मान और अपमान एक-सा है और जो मुझे सर्वभूतोंमें विद्यमान मानते हैं, जो परहिंसा-विहीन हैं, जो सब काम सोच विचार कर करते हैं, गो और ब्राह्मणहितैषी, शास्त्रनियम-परि-पालयिता, उपकारकी आशा न रखते हुए दान और मेरे उद्देश्यसे वित्तदान, यही सब मेरे प्रिय हैं। नारायणके अप्रीतिकर कार्य—हिंसा, क्रोध, असत्य, अहङ्कार, क्रूरता, परनिन्दा, परवर्त्तन, विध्वंसन, पिता, माता, भ्राता, पत्नी और भगिनीका त्याग, गुरुजनके प्रति कटु-वाक्यप्रयोग, गुरुजनके प्रति अवज्ञा, चाहे जिस उपायसे हो दम्पतीके मध्य मनोभङ्गकरण, परद्रव्यहरण, आगम-छेदन, जलाशय नष्टकरण, ग्रामनाश, परश्री देख कर आकुलता, पापचर्य्याश्रवण, अनाथ व्यक्तिका द्वेषकरण, विश्वासघातकता, गोवीर्यहनन, वृषलीपति, अश्वत्थनाश, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादिमें भेदबोध, वेदनिन्दा, एका-दशीमें आहार, परदारासक्ति, पापमन्त्रपाठन, मित्रद्रोह, घातकीनाश, दिनको स्त्रीसङ्गम, रजस्वला-सम्भोग, व्रतस्था सम्भोग, अमावस्याको रात्रिमें भोजन, अमा-वस्यामें आमिषभोजन, तैलमर्दन और स्त्रीसम्भोग, वैष्णवनिन्दा ये सब कार्य नारायणके अप्रीतिकर हैं।
(क्रियायोगसार १८ अ०)

कालिकापुराणमें चतुर्भुज मूर्त्तिका ध्यान इस प्रकार है—

"शङ्खचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं नवनिर्मीटाम्बुजच्छविम्॥
गरुडोपरिशुक्लाब्जपद्मासनगतं हरिम्।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं वनमालाधरं परम्॥
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्।
निराकारं ज्ञानगम्यं साकारं देहधारिणम्॥
नित्यानन्दं निरानन्दं सूर्यमण्डलमध्यगम्।
मन्त्रेणानेन देवेशं विष्णुं भज शुभानने॥"
(कालिकापुराण २२ अ०)

तैत्तिरीय आरण्यकमें नारायणको गायत्री है—

"नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥" (१०।१।६)

ज्ञानपूर्वक वा अज्ञानपूर्वक नारायणका नाम लेनेसे भवबन्धन दूर होता है। भागवतमें लिखा है—'कान्य-कुब्ज देशमें अजामिल नामक एक ब्राह्मणने किसी एक दासीके साथ विवाह कर लिया। अतः सर्वदा दासीके संसर्गसे वे दूषित हो गये और उनके सभी सदाचार विनष्ट हुए। कालक्रमसे उनके दश पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे छोटे पुत्रका नाम नारायण था। उस पुत्रके प्रति उनका हृदय हमेशा आकृष्ट रहता था। अजामिलको जब अन्तिम काल उपस्थित हुआ, तब यमदूतगण भयङ्कर-रूप धारण कर उनके समीप आए। अजामिलने इन्हें देख भयसे व्याकुल हो नारायण नामक पुत्रको बुलाया। मरते समय 'नारायण' ऐसा नाम सुननेसे ही विष्णुदूतोंने यमदूतोंको निकाल भगाया और उस ब्राह्मणको वे विष्णुलोकमें ले गये। इस अजामिलने पापकर्मा होने पर भी पुत्रका नाम नारायण रखा था और सर्वदा उसीका नाम लिया करता था, जिससे अन्तमें यह पापरहित हो विष्णुलोकको प्राप्त हुआ।' (भागवत ६।१ अ०)
विष्णु देखो।

२ दुर्योधनको सैन्यविशेष, दुर्योधनको एक सेनाका नाम। ३ धर्मपुत्र ऋषिविशेष, धर्मके पुत्र एक ऋषि।

"धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्त्यां
नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः।" (भाग० २।७।६)

४ कृष्णयजुर्वेदके अन्तर्गत उपनिषद्विशेष। मुक्ति-कोपनिषद्में इस उपनिषद्का नामोल्लेख देखनेमें आता है।

शङ्कराचार्यने इस उपनिषद्का भाष्य और आनन्द-गिरिने उसकी टीका प्रणयन की। नारायण और शङ्करानन्दने इस उपनिषद्की दीपिका बनाई है।

नारायण—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य नाम हैं –

१ एक वैदिक पण्डित। इन्होंने अग्निष्टोमप्रयोग आचार-चतुर्दशीपरिशिष्ट, कौतुकरक्षणप्रयोग चयन पद्धति, जीवच्छ्राद्धप्रयोग, महारुद्रपद्धति, रुद्रपद्धति, रुद्र जपविधि हविर्यज्ञप्रयोग, व्याकोपाकर्मप्रयोग आदि ग्रन्थ बनाए हैं।

२ एक ज्योतिर्विद्। इन्होंने अमृतकुम्भ, करणावर, चमत्कारचिन्तामणि और उसकी टीका लिखी है।

३ एक विख्यात दार्शनिक, रत्नाकरके पुत्र और रामेन्द्र-सरस्वतीके शिष्य। ये समस्त आथर्वण उपनिषदोंकी दीपिका बना गये हैं जिनमेंसे अथर्वशिखा, अथर्वशिरा अमृतनाद, अमृतबिन्दु, आत्मबोध आत्मविद्या आनन्द वल्ली, आरुणेय, ऐतरेय, काठक, कालाग्निरुद्र, कृष्ण, कृष्णतापनीय, कैनेषित, कैवल्य, क्षुरिका गणपतिपूर्वतापिनी, गर्भ, गारुड़, गोपालतापनीय, गोपीचन्दन, चूलिका, जाबाल, तेजोबिन्दु तैत्तिरीय द्वितीय ध्यानबिन्दु नादबिन्दु, नारसिंह नारायण नीलरुद्र नृसिंह, परमहंस, पिण्ड प्रणव, प्रश्न। प्राणाग्निहोत्र, ब्रह्मबिन्दु, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मोपनिषद् भगवती, महानारायण, महोपनिषद्, माण्डूक्य, मुण्डक मैत्रेयी, योगतत्त्व योगशिखा, रामतापनीय, नारद पूर्वतापिनी, श्वेताश्वतर, शौनक षट्चक्र संन्यास, हंस और हंस आदि उपनिषदोंकी दीपिका मिलती है। इन सब दीपिकाओंमें नारायणके पाण्डित्यका यथेष्ट परिचय है।

४ अध्यात्मचिन्तामणिव्याख्यानके रचयिता।

५ कुमारसम्भव और रघुवंशकी 'भावदीपिका' नामक टीकाकार।

६ गणकभावाभावसाधनमालाके रचयिता।

७ बहुभाषाक्षत कमलैक नामक ग्रन्थकी टीकाकार।

८ चक्रदर्पणके रचयिता।

९ तत्त्वविवरण नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

१० दमयन्तीरोत्पत्ति चम्पूकी दीपिकाकार।

११ दिनकरमीमांसा नामक स्मार्त्तग्रन्थकार।

१२ देवीमाहात्म्यके एक टीकाकार।

१३ धर्मप्रबोधिनी नामक नव्यस्मृतिके संग्रहकार।

१४ राघवेन्द्रके शिष्य, न्यायमन्यायमञ्जरीके एक टीकाकार।

१५ प्रश्नोत्तरविमार्गिणी नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

१६ पार्थव्याख्यादीपमालाके प्रणेता।

१७ भक्तिभूषणसन्दर्भ और भक्तिसागर नामक भक्ति ग्रन्थके रचयिता।

१८ गोविन्दपुरनिवासी एक मीमांसक। खण्ड-देवकी भाट्टदीपिकाके आधार पर इन्होंने भाट्टन्याय-द्योतकी रचना की।

१९ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने महाभाष्य प्रदीप-विवरण बनाया है।

२० मार्कण्डेयनिबन्ध नामक धर्मशास्त्रके संग्रहकार।

२१ तैत्तिरीय विवरण-रचनाके रचयिता।

२२ विष्णुस्मृति और विष्णुभाष्यके रचयिता।

२३ गोविन्दपुर-निवासी एक शाब्दिक। इन्होंने पाणिनि व्याकरणको शब्दभूषण नामक टीका लिखी है।

२४ शारदातिलकतन्त्रके एक टीकाकार।

२५ शिवगीताका तात्पर्यबोधिनी नामक टीकाकार।

२६ स्मृतिरत्नाकरो नामक व्यवहारग्रन्थके रचयिता।

२७ सापिण्ड्यप्रतिबाधिके रचयिता।

२८ सोमप्रयोगके टीकाकार।

२९ हितोपदेशके रचयिता। इन्होंने पञ्चतन्त्रके आधार पर उक्त ग्रन्थ लिखा है।

३० टापरग्रामके एक ज्योतिर्विद्। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम हरि था। इन्होंने १५७१ ई०में मुहूर्त्त मार्त्तण्ड और उसकी टीका तथा सुगमप्रदर्पण नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थ लिखा है।

३१ एक वैदिक पण्डित। ये कृष्णके पुत्र और श्रीपतिके पौत्र थे। १५७२ ई०में इन्होंने आश्वलायन-गृह्यसूत्रभाष्य रचा है।

३२ भीमवमिश्रके छन्दोगपरिशिष्टकी परिशिष्टप्रकाश नामक टीकाकार। इनके पिताका नाम गोप, पितामह

का नाम उमापति और प्रपितामहका नाम गदाधर था।

३३ एक ज्योतिर्विद्, दादाभाईके पुत्र और माधवके पौत्र। इन्होंने ताजिकसार सुधानिधि तथा होरासार सुधानिधिकी रचना की है।

३४ नृसिंहके पुत्र। इन्होंने १७५७ ई०में पाटी गणितकी रचना की है।

३५ मलयवासी पशुपतिके पुत्र। ये शाङ्खायन-श्रौत-सूत्रकी पद्धति और शाङ्खायन-सूत्रके प्रैषाध्यायका भाष्य बना गये हैं।

३६ माधवकृत गोत्रप्रवरके एक टीकाकार। इनके पिताका नाम मण्डूरि रघुनाथ था।

३७ एक प्रसिद्ध टीकाकार। इनके पिताका नाम रघुनाथ दीक्षित और माताका नाम बालकृष्णा था। इन्होंने उत्तररामचरित, काव्यप्रकाश, मालतीमाधव, राघवविनोद, वासवदत्ता, विद्धशालभञ्जिका, हनुमन्नाटक आदि ग्रन्थोंकी टीका बनाई है। इनके अपेक्षित व्याख्यान नामक उत्तररामचरितकी टीका पढ़नेसे जाना जाता है, कि ये शुकदेव नामक एक व्यक्तिके निकट रहते थे और १६३० ई०में विद्यमान थे।

३८ ग्रहणलिखनानुक्रम नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम राम था।

३९ एक संस्कृत नाटककार। इनके पिताका नाम लक्ष्मीधर था। इन्होंने कमलाकण्ठिरव नाटक लिखा है। ये काञ्चिदेशके ब्रह्मदेशाग्रहारमें रहते थे।

४० एक भक्तिग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम लक्ष्मभट्ट और पितामहका नाम कनाईभट्ट था। इन्होंने काशीपति हरिदासके आदेशसे १६०८ ई०में पूर्णानन्द-प्रबन्धकी रचना की है।

४१ शाङ्खायनश्रौतसूत्रके पद्धतिकार। इस ग्रन्थमें इनकी वंशावली यों लिखी है—गुर्जरवासी चण्डाह्व, तत्पुत्र वामन, तत्पुत्र आदित्य, तत्पुत्र जनार्दन, तत्पुत्र नीलकण्ठ, तत्पुत्र भानु, तत्पुत्र जगन्नाथ, तत्पुत्र श्रीपति और श्रीपतिके पुत्र यही नारायण थे।

४२ ओंकारग्रन्थके प्रणेता, हरिभट्टके पुत्र।

४३ अद्वैतकालानल नामक मध्वमतप्रतिपादक ग्रन्थके रचयिता।

४४ अर्गला, कीलक, देवीकवच आदि स्तोत्रोंके एक टीकाकार।

४५ वैशम्पीय जातकपद्धतिके एक टीकाकार।

४६ न्यायसुधाके एक टीकाकार।

४७ मोक्षधर्म नामक धर्मशास्त्र-संग्रहकार।

४८ सुन्दरराजके शिष्य, सूर्यसिद्धान्तके एक टीकाकार।

४९ सैवनपद्धति नामक संग्रहकार।

५० एक सामुद्रिक। ये ताजिकतन्त्रसारकी टीका बना गये है।

नारायण—काण्वायनवंशके ३य राजा। इन्होंने गुजरात घटोत्कच पर चढ़ाई की थी।

नारायण—१ एक प्रसिद्ध हिन्दी कवि। ये सुललित कवितामें शिवराजपुरके चन्देल-राजाओंका इतिहास लिख गये हैं।

२ एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसी सुन्दर कवितायोंकी रचना की। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं.—

"बंसिया काहेको बजाई सोवत जगाई मोरी नींद गंवाई।
चौंक उठी घरसों चली, जब उमगे दोऊ नैन।
कुंज कुंज पूंछत सखी, कौन बजावत बैन॥
कोऊ तो देहो बताई॥
बंसी ही गंसी लगी, बेधन कियो शरीर।
नन्दमहरको लाड़लो, हरे हमरी पीर॥
यह दुख सह्यो न जाई॥
एक कहै सुनरी सखी, खोटी जात अहीर।
कहबेको मनमोहना, हैगो बड़ो बे पीर॥
घर घर करे छल छाई॥
मोरमुकुट शिर पर धरे, गल डाले बनमाल।
त्रिभंगी आइ मरो, देखत रूप विशाल॥
ढूंढ़े हूं नहीं पाई॥
कित जाऊं पाऊं श्यामको, दीज्यो मोहे बताय।
दास नारायण चरण तर, रहूं सदा लपटाय॥
अबतो दरस देखाई॥"

नारायणआचार्य—१ एक संस्कृत कवि। कार्त्तवीर्यार्जुनसपर्या और उसके टीकाकार। २ तीर्थप्रबन्धकाव्य और रुक्मिणीविजयकाव्यके भावप्रकाशके टीकाकार। ३ स्फुटदर्पण नामक ज्योतिष ग्रन्थके रचयिता।

नारायणकण्ठ—प्रसिद्ध वैयाकरण, रामकण्ठके पौत्र और विद्याकण्ठके पुत्र। इन्होंने मृगेन्द्र और मृगेन्द्रोत्तर नामक ग्रन्थकी टीका रची है।

नारायण कर्णदेव—विद्यामतत्त्व नामक वेदान्तिक ग्रन्थकार।

नारायणकवि—चन्द्रकला नामक संस्कृत नाटककार।

नारायणक्षेत्र (सं० क्ली०) नारायणका क्षेत्र। महाप्रवाहसे चतुर्हस्त परिमित दूर पर्यन्त स्थान, गङ्गाके प्रवाहसे चार हाथ तककी भूमि।

"प्रवाहमवधि कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्।
तत्र नारायणः स्वामी नान्यस्वामी कदाचन॥"
(ब्रह्मपुराण)

इस क्षेत्रके स्वामी स्वयं नारायण हैं। इस स्थान पर दान देना या लेना निषिद्ध है।

नारायणक्षेत्रमें दीक्षा देवपूजा श्राद्ध, तर्पण परोपकार, स्तवपाठ और मौनव्रत करना चाहिए। यहां मोक्षलाभ परिवर्जनीय है। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३१ अ०)

नारायणगञ्ज—१ बङ्गाल प्रान्तके ढाका जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २३° ३३´ से २३ ११´ उ० तथा देशा० ९०° २० से ९०° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६६०७१२ है। इसमें एक शहर और २१०० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक शहर। यह अक्षा० २३° ३७´ उ० और ९०° ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग २४४७२ है। ढाका शहर यहांसे ८ मील दूर पड़ता है। मोगलोंके बनाये हुए कितने दुर्ग इसके निकटवर्ती स्थानोंमें आज भी वर्तमान हैं। यहांसे थोड़ी ही दूर पर कदम रसूल नामक मुसलमानोंका तीर्थस्थान है। नारायणगञ्ज पटसनके लिए प्रसिद्ध है।

नारायणगढ़—मेदिनीपुरके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यहां प्राचीन हिन्दूकीर्त्ति आज भी विद्यमान है।

नारायणगार्ग्य—नृसिंह गार्ग्यके पुत्र। इन्होंने आश्वलायनश्रौत और गृह्यसूत्रका भाष्य, आश्वलायन गृह्यकारिकाका भाष्य, आश्वलायन-सूत्रपद्धति और श्रौतसूत्रविधि बनाई है।

नारायण गोस्वामी सुधांशु—प्रश्नदीपक नामक ज्योतिषके ग्रन्थकार।

नारायणगौड़—मिश्ररागविशेष। यह षड्जमें गौड़, नट और गौड़मल्लारसे उत्पन्न हुआ है। (सङ्गीतरत्ना०)

नारायणचन्द्र चूड़ामणि—वैयाकरण भर्तृहरिके एक टीकाकार।

नारायणचक्रवर्त्ती—१ भागवतपुराणके एक विख्यात टीकाकार। २ शान्तितत्त्वामृत नामक स्मार्त्तके ग्रन्थकार। ३ एक संस्कृत अभिधानके रचयिता। ४ पदार्थकौमुदीके प्रणेता।

नारायणचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—अजवाइन, हवुषा, धनिया, त्रिफला, कालाजीरा, सफेद जीरा, पिप्पलीमूल, अजगन्धा, कचूर, वच, सोया, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीता, यवक्षार, सज्जीखार, पुष्करमूल, कुट, पञ्चलवण और विड़ङ्ग इन सब द्रव्योंको बराबर बराबर भाग, दन्ती ३ भाग अर्थात् उक्त एक भागका तिगुना निसोथ २ भाग, इन्द्रायणकी २ भाग, सातला ४ भाग इन सबका चूर्ण एकत्र कर अनुपानविधिसे सेवन करनेसे निम्नलिखित रोग जाते रहते हैं। यह चूर्ण उदररोगमें तक्रके साथ, गुल्मरोगमें बेरके काढ़ेके साथ, आनाह वातमें सुराके साथ वातरोगमें प्रसन्नाके साथ विट्‌भेदमें दधिमण्डके साथ, अर्शरोगमें दाड़िमके काढ़ेके साथ और अजीर्ण रोगमें उष्ण जलके साथ खानेसे ये सब रोग जाते रहते हैं। भगन्दर, पाण्डु, कास श्वास, गलरोग हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ठ अग्निमान्द्य, ज्वर स्थावरजङ्गमविष, मूलविष, गरदोष और कृत्रिम विषमें यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे विरेचन हो कर विशेष उपकार होता है। (भावप्रकाश उदररोगाधि)

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—त्रिवृत् विड़ङ्गबीज इन्द्र यव मैनफल, ककोल, अमलतास, यष्टिमधु, मिलित प्रत्येकका चूर्ण समान, उतनाही कुटकी लाक्षा चूर्ण, इन्हें एक साथ मिलानेसे नारायणचूर्ण बनता है। इसका अनुपान मधु और मद्य है। इसके सेवन करनेसे रक्तातीसार, शोथ, ज्वर, तृष्णा, कास पाण्डुरोग, हिक्का आदि रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० अतीसाराधि०)

नारायणघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—

घृत ५५ सेर, क्वाथके लिये पीपल ५२ सेर, जल २० सेर, शेष ५ सेर, गुलञ्चरस ४ सेर, आँवलेका रस ७॥ सेर, चूर्णके लिये दाख, आमलकी, पटोलपत्र, सोंठ, कटकी, वच प्रत्येक १ पल, इन सबको यथाविधान पाक करनेसे यह घृत प्रस्तुत होता है। इसके पान करनेसे अम्लपित्त, दाह और वमि रुक जाती है।

(भैषज्यरत्ना० अम्लपित्ताधि०)

नारायणछलारी—१ छलारी नृसिंहके पुत्र। इन्होंने स्मृतिसार और स्मृतिसंग्रहकी रचना की है।

नारायण तीर्थ—वासुदेवतीर्थ और रामगोविन्दतीर्थके शिष्य और ब्रह्मानन्द सरस्वतीके गुरु। इन्होंने तत्त्वचन्द्र नामक सांख्यकौमुदीकी टीका, न्यायकुसुमाञ्जलि कारिकाकी व्याख्या, भक्तिचन्द्रिका नामक शाण्डिल्यसूत्र की व्याख्या, भक्त्याधिकरणमाला और उसकी टीका, योगचन्द्रिका, योगसूत्रवृत्ति, वेदस्तुतिकी टीका, वेदान्त-विभावनाटीका, सांख्यचन्द्र नामक सांख्यकारिकी टीका, सिद्धान्ततत्त्वविन्दुकी व्याख्या, तत्त्वचिन्तामणि दीधितिकी टीका और न्यायचन्द्रिका नामक भाषापरिच्छेदकी टीका प्रणयन की है।

२ शिवरामतीर्थके एक शिष्यका नाम। इन्होंने भाट्टप्रकाशिका नामक मीमांसा ग्रन्थकी रचना की है।

३ बालबोधिनी नामक शङ्कराचार्यरचित आत्मबोधके एक टीकाकार।

४ दक्षिण-मूर्त्ति-स्तोत्रके व्याख्याकार।

नारायणतीर्थस्वामी—गङ्गालहरी और उसकी टीकाके रचयिता।

नारायणतैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद, आयुर्वेदमें एक प्रसिद्ध तैल। यह तैल स्वल्प, वृहत् और मध्यमके भेदसे तीन प्रकारका है। यथा—नारायणतैल, मध्यमनारायणतैल और महानारायणतैल।

नारायणतैलकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल १६ सेर, क्वाथके लिये विल्वमूलकी छाल, गनियारीमूलकी छाल, सोनापाठा मूलकी छाल, पटोलमूलकी छाल, पालिधा-मूलकी छाल, अश्वगन्धा, वृहती, कण्टकारी, गन्धभद्रा, गोक्षुर, पुनर्णवा, प्रत्येक दश दश पल; जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर; कल्कके लिये शुलफा, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वच, रक्तचन्दन, तगरपादुका, कुट, इलायची, शालपाणि, चक्रकुल्या, रास्ना, अश्वगन्धा, सैन्धव, पुनर्णवा-मूल, प्रत्येक दो दो पल, शतमूलीका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर। इन सबको यथानियमसे पाक करनेसे नारायणतैल तैयार होता है। यह तैल पान, अभ्यङ्ग और वस्तिक्रियामें प्रशस्त है। इसके व्यवहार करनेसे पङ्गुता, अधोवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोष, सकम्पनगति, इन्द्रिय-दौर्बल्य, शुक्रक्षाम, वधिरता, अन्त्रवृद्धि आदि रोग तथा स्त्रियोंके गर्भग्रहणव्याघात रोग जाते रहते हैं।

मध्यम नारायणतैल। प्रस्तुत प्रणाली—क्वाथके लिये विल्व, अश्वगन्धा, वृहती, गोक्षुर, सोनापाठा, पालिधा, कण्टकारी, पुनर्णवा, गनियारी, गन्धभद्रा, पटोल इन सबको मृदु ५२॥ सेर; पाकके लिये जल ५१२ सेर, शेष १२८ सेर, गाय वा बकरीका दूध ३२ सेर, तिलतैल भी ३२ सेर; कल्कके लिये रास्ना, अश्वगन्धा, मौरी, देवदारु, कुट, शालपाणि, चक्रकुल्या, अगुरु, नागेश्वर, सैन्धवलवण, जटामांसी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शैलज, रक्तचन्दन, कुट इलायची, मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु तगरपादुका, मोथा, तेजपत्र, भृङ्गराज, जीवक, ऋषभक, काकली, क्षीरकाकली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, वाला, वच, पलाशमूल, श्वेतपुनर्णवा प्रत्येक दो दो पल, गन्धके लिए कपूर, कुङ्कुम और मृगनाभि सब मिला कर ३ पल। यथानियम पाक कर इस तैलका सेवन करनेसे पङ्गुता, अधोवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोष, सकम्पनगति, इन्द्रियदौर्बल्य, शुक्रक्षाम, वधिरता आदि रोग विनष्ट होते हैं। इससे स्त्रियोंका गर्भग्रहणव्याघात भी जाता रहता है। यह तैल वात-व्याधि-अधिकारमें अति प्रशस्त औषध है।

महानारायणतैल। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर; क्वाथके लिये शतमूली, शालपाणि, चक्रकुल्या, कचूर, वच, एरण्डमूल, कण्टकारीमूल, नाटाकरञ्जमूल, गोरक्ष-चक्रकुल्याका मूल, प्रत्येक दश दश पल; पाकके लिये जल ६० सेर, शेष १६ सेर, गाय और बकरीका दूध आठ आठ सेर, शतमूलीका रस ४ सेर; कल्कके लिये पुनर्णवा, वच, देवदारु, शुलफा, रक्तचन्दन, अगुरु,

मन्दिर हैं। उन सब मन्दिरोंमें शिलालिपियां देखी जाती हैं।

२ उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें बलिया जिलेके अन्तर्गत एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम। यह गङ्गापुरसे आध कोस दूर गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां चीनपरिव्राजक यूएन-चुवङ्गने नारायणदेवका मन्दिर देखा था। उस मन्दिर-का भग्नावशेष अब भी देखनेमें आता है।

नारायणपेट—हैदराबाद राज्यके महबूबनगर जिलान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० १६° ४५´ उ० और देशा० ७७° ३५´ पू० के मध्य महबूबनगरसे ३६ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या १२०११ है। यहां बढ़िया रेशमी तथा सूती साड़ी प्रस्तुत होती और दूर दूर देशोंमें भेजी भी जाती है। यहां एक मुनसिफ' कचहरी, डाकघर, अस्पताल और बालक तथा बालि काओंके लिए पृथक् पृथक् स्कूल है।

नारायणपोवर—एक प्रसिद्ध व्यक्ति। सतारा जिलेके पिम्पोड़बुद्रुच नामक स्थानमें कृषकवंशमें इनका जन्म हुआ था। ८ वर्षकी अवस्थासे ये विषैले भयङ्कर सांपों-को पकड़ा करते थे। इसी कारण लोग इन्हें नारायणका अवतार मानते थे और कहा करते थे कि ये बहुत जल्द अङ्गरेजोंको भारतवर्षसे निकाल भगावेंगे। बहुतसे रोगी आरोग्य प्राप्तिकी कामनासे इनके समीप आया करते थे। सांपके काटनेसे ही इनकी मृत्यु हुई।

नारायणप्रिय (सं० पु०) नारायणस्य प्रियः, नारायणः प्रियः यस्य इति वा। १ शिव, महादेव। २ पीतचन्दन। ३ महदेव।

नारायणबन्दीजन—हिन्दीके एक कवि। ये काकूपुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे और इनका जन्म सं० १८०८में हुआ था। इन्होंने शिवराजपुरके चन्देल राजाओंकी वंशावली बनाई है।

नारायणभट्ट—१ भास्करभट्टके पुत्र, रूपसनातनके शिष्य। पुराणमें वृन्दावनके बारह वनोंका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अभी जो अनेक वनोंके नाम पाये जाते हैं और हिन्दू तीर्थयात्रिगण जहां पुण्यलाभकी-आशासे वर्षा जाया करते हैं, प्रसिद्ध वैष्णवभक्त इन्हीं नारायणभट्टके यत्नसे उन सब पुण्यभूमिके नामकरण हुए हैं। अभी वृन्दावनमें जो वनयात्रा और रासलीला होती है, वह भी इन्होंसे प्रचारित हुई है। इन सब स्थानोंके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिए इन्होंने १५५३ ई०में व्रजभक्तिविलास नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की है। व्रजभक्ति विलास पढ़नेसे मालूम होता है, कि पर-महंस-संहिताके आधार पर उक्त ग्रन्थ रचा गया है। व्रज वासियोंका कहना है, कि वर्षाणके निकटवर्त्ती ऊँचा-गांव नामक स्थानमें नारायण रहते थे, किन्तु व्रजभक्ति विलासमें इन्होंने अपनेको श्रीकुण्ड (वा राधाकुण्ड)वासी बतलाया है। श्रीचैतन्यदेवने वृन्दावनके लुप्ततीर्थका उद्धार करनेके लिये लोकनाथ गोस्वामीको भेजा था। वे अपने जीवनका अधिकांश समय वृन्दावनमें बिता कर उन सब लुप्तस्थानोंका निर्णय करनेमें समर्थ हुए थे। नारायणभट्टने रूपसनातन और लोकनाथकी सहायतासे उन सब स्थानोंका नाम रक्खा था। इनके व्रजभक्ति-विलासमें इस प्रकारके १३३ वनोंका उल्लेख है जिनमेंसे ८१ यमुनाके दाहिने किनारे और ४२ बायें किनारे पड़ते हैं।

२ गोकुलवासी एक विख्यात पण्डित। वल्लभाचार्यने बचपनमें इनसे संस्कृत काव्य और दर्शन शास्त्र सीखा था।

नारायणभट्ट—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं—

१ इनका दूसरा नाम नित्यानन्द था। ये श्रीनिवास-विद्यानन्दके शिष्य थे। इन्होंने कल्पलता और तारा पद्धति नामक दो संस्कृत ग्रन्थ बनाए हैं।

२ एक ज्योतिषी। इन्होंने समरसिंहरचित ताजिक-तन्त्रसारकी 'कर्मप्रकाशिका' नामक टीका लिखी है।

३ करेलवासी एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने कोटि-विरह, सुभगसन्देश, स्वाहासुधाकर और धातुकाव्य नामक कुछ काव्य नारायणीय स्तोत्र और प्रक्रियासर्वस्व नामक संस्कृत व्याकरण रचा है।

४ एक टीकाकार। इन्होंने गृहप्रवेशप्रकरण, गोचर-प्रकरण, यात्राप्रकरण और विवाहप्रकरण आदि ग्रन्थोंकी टीका की है।

५ जानकीपरिणय नामक नाटककार।

पहले नारायणबलि दे कर पीछे पर्ण-नरदाह करना होता है। अनन्तर श्राद्धादि विधेय है। यह नारायणबलि मृत्युके दिनसे एक वर्ष बाद करनी होती है।

आत्महननका प्रायश्चित्त, तदनन्तर नारायणबलि, उसके बाद पिण्डोदकक्रिया और वृषोत्सर्गादि करने होते हैं।

"कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि।
नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हा भयान्नरैः॥
पिण्डोदकक्रियाः पश्चात् वृषोत्सर्गादिकञ्च यत्।
एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा॥
इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये न मूढ़ा विषादिनः।
घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये॥"
(हेमाद्रि)

आत्मघातियोंके दाहादि करनेसे अर्थात् जो दहन और वहनादिका कार्य करते हैं उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है। यहां तक कि आत्मघातीके लिये अश्रुपरित्याग भी शास्त्रानुमोदित नहीं है। जो वैधपूर्वक आत्म हनन करते हैं, उनको नारायणबलि नहीं देनी होती। उनको यथाविधि उदकादि क्रिया होगी और जिनकी दैवात् मृत्यु हुई है, उनके लिए भी यह अविधेय है। दैवहतोंके लिए प्रायश्चित्त वा नारायणबलि विधेय नहीं है। केवल जो बुद्धिपूर्वक आत्महत्या करते हैं, उनको परशुद्धिके लिए नारायणबलि विधेय है अथवा गया जा कर पिण्ड देनेसे उद्धार हो सकता है।

"गोब्राह्मणहतानाञ्च पतितानां तथैव च।
ऊर्द्ध्वं संवत्सरात् कुर्यात् सर्व्वमेवौर्द्ध्वदैहिकम्॥"
(हेमाद्रि)

"नारायणबलिः कार्यः लोकगर्हाभयान्नरैः।
तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद् यमः॥"
(छागलेय)

इसी नारायणबलि द्वारा आत्मघातीकी विशुद्धिता होती है, दूसरे प्रकारसे नहीं।

नारायणबलिका विधान हेमाद्रि आदिके मतानुसार निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—शुक्ल एकादशीके दिन नारायणबलि देनी होती है। जो नारायणबलि देते हैं, उन्हें पहले दक्षिणमुख बैठना चाहिए। पीछे विष्णुकी प्रेतकी कल्पना कर पुरुषसूक्त अथवा 'वैष्णव' मन्त्रसे तर्पण करना चाहिये। मन्त्र—

"अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव॥"

अनन्तर सङ्कल्प करना होता है, यथा—'विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुक गोत्रस्य अमुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थं और्ध्वदैहिक सम्प्रदानलयोग्यता सिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये।' इस प्रकार सङ्कल्प करके पांच घड़ा स्थापन करते हैं जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत इन पांचोंकी प्रतिष्ठा करते हैं। इनमेंसे विष्णुकी मूर्त्ति सोनेकी, रुद्रकी तांबेकी, ब्रह्माकी चांदीकी, यमकी लोहेकी और प्रेतकी मूर्त्ति दाभकी होनी चाहिये।

"विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा।
ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लौहमयो भवेत्।
प्रेतो दर्भमयः कार्यः॥" (निर्णयसिन्धु)

अथवा पूर्वोक्त सभी मूर्त्तियां केवल सोनेकी बना कर स्थापन कर सकते हैं। पीछे उन सब देवताओंका षोड़शोपचारसे और पुरुषसूक्तसे पूजन कर अग्निस्थापन करते हैं तथा यथाविधि चरुपाक करके पुरुषसूक्त द्वारा 'नारायणायेदं' इस मन्त्रसे होम करते हैं।

पीछे देवताओंके आगे दक्षिणाग्रदर्भसे प्रेतको विष्णुरूपमें स्मरण कर प्रेतका नाम और गोत्र उच्चारण करते हैं। बाद मधु, घृत और तिलयुक्त दश पिण्ड और यज्ञोपवीत प्रभृति दे कर 'अमुक गोत्र अमुकशर्मन् प्रेतविष्णुरूपायते पिण्डः उपतिष्ठतां' इस प्रकार कुश और पुरुषसूक्त द्वारा अभिमन्त्रण करते हैं। पीछे 'यत्ते यम' इत्यादि मन्त्रसे पिण्डका अनुमन्त्रण, शङ्खोदकसे अभिषिञ्चन और अर्चन कर 'अमुक शर्माणं अमुक गोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि' इस प्रकार पुरुषसूक्तमन्त्रसे तर्पण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मादि पञ्चदेवताको आमान्न देना होता है। मन्त्र—

'ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव स किंकरः।
बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम्॥"

मिताक्षरामें इस प्रकार लिखा है—पूर्वोक्त प्रति देवताके उद्देशसे विविध फल शक्कर, मधु, गुड़ और

नारायणस्मृति—हेमाद्रि और माधवाचार्यधृत एक प्राचीन धर्मशास्त्र।

नारायणस्वामी—दाक्षिणात्यके पश्चिमांशमें विस्तृत एक धर्मसम्प्रदाय। गुजरात और काठियावाड़में इस सम्प्रदायके बहुसंख्यक लोग देखनेमें आते हैं। किस प्रकार इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई उसका परिचय संक्षेपमें देते हैं,—

नारायणस्वामी नामक एक सरवरिया ब्राह्मण इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि नारायणस्वामी नारायणके पूर्णावतार थे। द्वापरयुगमें भगवान् नारायण कठोर तपस्या कर रहे थे। संयोगवश दुर्वासाऋषि वहां आ पहुंचे। नारायण और उनके पार्श्ववर्त्ती ऋषिगण ध्यानमग्न थे। अतः दुर्वासाकी ओर एक बार भी उन्होंने आंख न फेरी। अतिथिसत्कार न हुआ, ऐसा देख कर दुर्वासामुनि बहुत बिगड़े और उन्होंने नारायण तथा ऋषिगणको शाप दिया, "तुम लोगोंने मेरी अवहेला की, इस कारण तुम लोग कलियुगमें भूमण्डल पर अवतीर्ण होगे।"

तदन्तर कलियुगमें सहजानन्दने नारायणरूपमें और ऋषियोंने उनके साङ्गोपाङ्ग हो कर जन्म ग्रहण किया।

निष्कुलानन्द साधु रचित भक्तचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखा है—

अयोध्याके अन्तर्गत छपिया नामक क्षुद्रनगरमें १८३७ सम्वत्के चैत्रमासकी शुक्लनवमीमें नारायणस्वामी उत्पन्न हुए। उनके पिताका नाम हरिप्रसाद था और माताका बाला। लेकिन ज्ञानोदयके मतसे उनके पिताका नाम धर्मदेव और माताका नाम प्रेमवती वा भक्ति था। वे सावर्णगोत्रज और सामवेदके कौथुमी शाखाध्यायी थे। ये अपने पिताके मध्यम पुत्र थे। इनके बड़े भाईका नाम रामप्रताप और छोटेका इच्छाराम था। बचपनमें सभी इन्हें घनश्याम वा हरिकृष्ण कहा करते थे। उपनयनके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करना होता है। इस प्रथाके अनुसार घनश्याम ब्रह्मचारी हो गये। इनके मामाने इन्हें बहुत कुछ समझाया बुझाया, पर इन्होंने एक न सुनी और संसारको बिलकुल परित्याग कर दिया। वे एक दिन भगवत्प्रेममें मस्त हो कर घरसे निकल पड़े, मामा उन्हें पकड़ लानेके लिये उनके पीछे पीछे चले। बारह कोसका रास्ता तय करनेके बाद जब घनश्यामने देखा, कि मामाने अब तक भी उनका पीछा नहीं छोड़ा है, तब उन्होंने घूम कर उनसे कहा, 'आप मेरा पीछा क्यों कर रहे हैं। मेरे भाग्यमें संसारी सुख नहीं बदा है, अतः मैं संसारमें लौट कर न जाऊंगा।'

जिस दिन वे ब्रह्मचारी हुए, उसी दिन उन्हें एक गुरु मिल गए। यथासमय ये गुरुसे दीक्षित हुए। ग्यारहवें वर्षकी अवस्थामें ये केदार बदरिकाश्रम आदि तीर्थदर्शनको चल दिए। रामेश्वरके दर्शन कर ये दाक्षिणात्यके निविड़ वनमें पहुंचे और वहां सूर्यकी आराधना करने लगे। सूर्यने उन्हें दर्शन दे कर कहा, 'तुम जिस किसी कार्यका अनुष्ठान करोगे वही फलीभूत होगा।' बाद घनश्याम 'नीलकण्ठ ब्रह्मचारी' नामसे नाना तीर्थोंमें पर्यटन करने लगे।

१८५६ सम्वत्को जब इनकी उमर १८ वर्षकी थी, तब ये जूनागढ़के निकटवर्त्ती लोज नामक ग्राममें पहुंचे। उस समय वहां मुक्तानन्दप्रमुख रामानन्दमतावलम्बी प्रायः पचास साधु रहते थे। युवक नीलकण्ठके साथ रामानन्दियोंका अच्छी तरह परिचय हो गया। मुक्तानन्दके गुरु रामानन्दसे घनश्यामने सम्वत् १८५७को ११वीं कार्त्तिकको उपदेश ग्रहण किया। उस समयसे इनका नाम सहजानन्द हुआ।

बीस वर्षकी अवस्थासे सहजानन्द धर्मप्रचारमें प्रवृत्त हुए। धीरे धीरे इनके अनेक शिष्य हो गए। इन्होंने समाधिके बलसे एक ऐसी ज्योतिः प्राप्त कर ली थी, कि इनको देखनेसे ही इनके शिष्यगण इन्हें शङ्खचक्रगदापद्मधारी श्रीकृष्ण मानते थे। इनके गुरु रामानन्दने लोगोंके मुखसे यह वृत्तान्त सुन कर पहले तो इनकी इस अमानुषिक शक्ति पर विश्वास न किया, किन्तु पीछे परीक्षा करनेसे उनका भी संदेह दूर हो गया। वे सहजानन्दको अपनी गद्दी पर बिठा कर स्वर्गधामको सिधारे।

पीछे सहजानन्दने कच्छदेशमें जा कर बहुसंख्यक भक्त और कुनबी जातिको अपने मतमें दीक्षित किया। जिन सब कुनबियोंने उनका धर्ममत ग्रहण किया, उनके

पूर्वपुरुषोंने जाति त्याग नहीं करने पर भी मुसलमानी आचारका अवलम्बन किया था। वे लोग पितृश्राद्ध नहीं करते थे। मरनेके बाद जलाते नहीं, गाड़ देते थे। अभी सहजानन्दके उपदेशसे कुनबी लोग पुनः श्राद्ध और दाहादि कार्य करने लगे हैं।

सहजानन्दने अहमदाबादमें जा कर इस बातका प्रचार किया, 'कि नाना प्रतिमापूजाका कोई प्रयोजन नहीं, एकमात्र नारायणकी सेवा करनेसे ही मुक्तिलाभ होता है।' उनके मुखसे यह प्रतिमापूजाका निन्दावाद सुन कर ब्राह्मणोंने पेशवाके यहां उन पर अभियोग चलाया। अन्ततः बाध्य हो कर सहजानन्दको अहमदाबाद छोड़ना पड़ा।

पीछे इन्होंने अहमदाबादके निकट जेतलपुरके गाड़कमान नामक ग्राममें तथा नरियादके निकटवर्त्ती डभण ग्राममें 'महारुद्र' नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया था। जब ये जेतलपुरमें रहते थे, तब इनके उपदेशसे कितने लोग साधु हो गए थे।

१८५८ सम्वत्‌को भावनगरराज्यके अन्तर्गत गढ़ड़ा नामक स्थानमें जा कर इन्होंने काठिसरदार दादा-खमन काचरको दीक्षित किया। यहां सहजानन्द कुछ काल तक काठिसरदारके भवनमें रहे थे। ८०० स्त्रियोंने यहां इनका शिष्यत्व भी स्वीकार किया। जिनमेंसे १५० रमणियां 'सांख्ययोगी' या सन्यासिनी हुई थीं।

पीछे इन्होंने अपने प्रधान प्रधान शिष्यों को अहमदाबाद, सुरत, नरियादके निकट, बड़ताल, जेतलपुर, धोलका, भुजके आदि स्थानोंमें भेज कर लक्ष्मीनारायणके मन्दिर बनवाए। इनमेंसे अहमदाबादके स्वामी-नारायणका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

इसी समयसे सहजानन्दस्वामी नारायण नामसे प्रसिद्ध हुए। इस समय इनके लाखसे अधिक शिष्य थे। भक्तोंका विश्वास था, कि स्वामी नारायण श्रीकृष्णके अवतार हैं। १८२५ ई०की २६वीं मार्चको खृष्टानपुङ्गव बिशप हिबरके साथ इनकी मुलाकात हुई। बिशपसाहब स्वामी नारायणके विषयमें बहुत-सी बातें लिख गए हैं।*

जब स्वामीजी बिशपके साथ मुलाकात करने आये थे, उस समय उनके साथ सौ सवार अश्वारोही और बहुत-से अस्त्रधारी पदाति थे। उस समय स्वामीजीके सब बाल सफेद हो गए थे, सफेद दाढ़ी छातीके ऊपर तक आ गई थी। वे हरदम सिर पर पगड़ी रखा करते थे। उनकी उज्ज्वल कान्ति देख कर बिशपकी उनके प्रति विशेष श्रद्धा हो गई थी। एक दिन बिशपने जब उनका मत सुनना चाहा था, तब स्वामीजीने कहा था, 'भुवनके सृष्टिकर्त्ता ईश्वर एक ही हैं, दो नहीं। जो उनको शुद्ध प्रेम भावसे चिन्ता करते हैं, उन्हींके हृदयमें वे वास करते हैं। सारा संसार उन्हींके नियमों पर चल रहा है। मैं उन्हींको श्रीकृष्ण मानता हूं। वे दो भुज हैं। आप जो रूपमूर्त्ति देख रहे हो, यथार्थमें वह ईश्वरकी मूर्त्ति नहीं है। उस ईश्वरको सहजमें पानेके लिए हम लोग इस कमनीय मूर्त्तिकी पूजा करते हैं। वही ईश्वर मानवके परित्राणके लिए यहूदी, मुसलमान हिन्दू आदि सभी जातियोंमें अवतीर्ण हुए हैं। भक्तोंके उद्धारके लिये इस रूपमें भी वे अवतीर्ण हुए थे। ईश्वरके निकट जातिभेद कुछ भी नहीं है। सभी एक जाति और एक वर्णके हैं। परस्त्रीकातरता और धन लोभ महापाप है। मैं अपने शिष्यों को इस महापापसे बचनेका उपदेश देता हूं। जीवहत्या भी महापाप है। सब लोगोंमें दया दिखलाना ही श्रेष्ठ धर्म है।'

१८८६ सम्वत्‌ (१८२९ ई०)को गढ़ड़ाग्राममें स्वामीजीने काठिसरदारके द्वार पर एक बड़ा मन्दिर बनवाया। उसी वर्ष ज्येष्ठ मासकी शुक्ल दशमीको वे स्वर्गधामको सिधारे। शिष्योंने उनकी खड़ाऊंकी पादुका उस मन्दिरमें पूजाके लिए स्थापन की। इसके सिवा स्वामीजीने जहां जहां धर्मप्रचार किया था, वहां वहां उनके शिष्योंने स्मारक स्वरूप "चौरा"का निर्माण किया है।

उनकी मृत्युके बाद भी गुजरात और काठियावाड़के हजारों मनुष्य उनके मतानुवर्त्ती हुए हैं। इन सब लोगों को स्वजातीय लोगोंसे कितने कष्ट भोगने पड़े हैं, वह वर्णनातीत है। कितनोंने तो अपने प्राण भी निछावर कर दिये हैं, तो भी स्वामीजीके प्रति अपनी अटल भक्तिसे डिगे न थे।

* Bishop Heber's Journal, (4th ed.) Vol. II. p. 110-114 F.

अन्य विश्वाससे हजारों मनुष्य स्वामी नारायणका मत मानते हैं और उसी मतके अनुसार धर्मानुष्ठान भी करते हैं।

स्वामी नारायण 'शिक्षापत्र' नामक २१२ श्लोकोंका एक उपदेशग्रन्थ और ५०० श्लोकोंकी उसकी टीका लिख गये हैं। इसके सिवा इन्होंने इस सम्प्रदायका मत विस्तृत भावसे समझानेके लिये 'सत्सङ्गजीवन' नामक एक वृहत् ग्रन्थ बनाया है जिसमें २४००० श्लोक हैं।

१८२१ ई०में जब इनका मत बहुत दूर तक फैल गया, तब इन्होंने अयोध्यासे रामप्रताप और इच्छाराम-को बुलवाया था। उन्होंने अपनी गद्दी दो भागोंमें विभक्त कर दी थी, उत्तरभाग और दक्षिण भाग। उत्तर-भागका गद्दी अहमदाबादमें और दक्षिणभागकी वड़तालमें प्रतिष्ठित है। इनकी मृत्युके बाद रामप्रतापके पुत्र अयोध्याप्रसादने उत्तरभागमें और इच्छारामके पुत्र रघु वीरने दक्षिणभागमें आचार्यपद प्राप्त किया। बाद अयोध्याप्रसादके पुत्र केशवप्रसाद अहमदाबादको गद्दी पर और रघुवीरके भतीजे भगवान्प्रसाद वड़तालका गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए।

नारायणावली—और्द्ध्वदैहिक क्रियाविशेष। दाक्षिणात्यमें श्रीवगोस्वामी इसका पालन करते हैं। उनका कहना है, कि शङ्कराचार्यने यह संस्कार प्रवर्त्तन किया है।

नारायणाश्रम (सं० क्लो०) नारायणस्य आश्रमम्। तीर्थ-भेद, एक तीर्थका नाम।

नारायणाश्रम—नृसिंहाश्रमके शिष्य। इनके बनाये हुए अद्वैतदीपिका-विवरण, भेदधिक्कारसत्क्रिया, नारायणा-श्रमीय आदि संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं।

नारायणास्त्र (सं० क्लो०) नारायणस्य अस्त्रम्। विष्णुका अस्त्रभेद। शंख, चक्र, गदा और खड्ग ये सब नारायणके अस्त्र हैं।

नारायणी (सं० स्त्री०) नारायणस्येयमिति अण् ङीप्। १ दुर्गा।

"सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥"
(मार्कण्डेयपु० ८१।९)

देवीपुराणमें भगवतीके नारायणी नाम पड़नेके विषयमें लिखा है, कि देवी भगवती नार अर्थात् जल वा नरसमूहकी आश्रयस्वरूपा हैं, इस कारण वे नारायणी कहलाती हैं। देवी चराचर सभी जगत्में परिव्याप्त हैं। २ लक्ष्मी। नाम-निरुक्ति इस प्रकार है—

"यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः।
शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता॥"
(ब्रह्मवै० प्रकृतिख० ४५ अ०)

यश, तेज, रूप और गुण आदिमें नारायणको तुल्या है और नारायणकी शक्ति है, इसीसे लक्ष्मीको नारायणी कहते हैं।

"नारायणार्द्धाङ्गसम्भूता तेन तुल्या च तेजसा।
सदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता॥"
(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्म० २७ अ०)

३ शतावरी, सतावर। ४ गङ्गा। ५ मुद्गलमुनि-पत्नी, मुद्गलमुनिकी स्त्रीका नाम। ६ श्रीकृष्णकी सेनाका नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्रके युद्धमें दुर्योधनको सहायताके लिये दिया था। (पु०) ७ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

नारायणी—मध्यप्रदेशमें गीर्वाण तहसीलके अन्तर्गत एक स्थान। यह खांदासे १० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां ५ देवमन्दिर हैं।

नारायणीतन्त्र—एक प्राचीन तन्त्र। तन्त्रसार, आगमतत्त्व विलास, प्राणतोषिणी आदि ग्रन्थोंमें यह तन्त्र उद्धृत हुआ है।

नारायणीय (सं० वि०) नारायणस्येदं नारायण-छ। १ नारायणसम्बन्धी। (पु०) २ महाभारतका एक उपाख्यान। इसमें नारद और नारायण ऋषिकी कथा है। यह विषय शान्तिपर्वमें ३३६से ले कर ३४८ अध्याय तक लिखा है। ३ तत्प्रतिपादक उपनिषद्भेद।

नारायणेन्द्रसरस्वती—१ पूर्णचन्द्रोदय नामक वेदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। २ शतपथब्राह्मणके एक भाष्यकार।

नारायणेन्द्रस्वामी—शङ्कराचार्य विरचित पञ्चरत्नके एक टीकाकार।

नारायणोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

नारायण देखो।

नारायंस (सं० पु०) नरैराशंस्यते आ-शन्स कर्मणि

धिष्, नराशंस पितर देवाममद्य पत्र। १ पितृगणका सोमपान-साधन चमस, वह चमस जिसमें पितरोंको सोमपान दिया जाता है। २ पितरोंके लिए चमसमें रखा हुआ सोम। ३ तर्पित पितर। ४ मन्त्रभेद, वेदोंके वे मन्त्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्य आदिकी प्रशंसा होती है, प्रशस्ति, दानस्तुति। इस मन्त्रके देवता रुद्र हैं।

नाराशंसी (सं॰ स्त्री॰) १ मनुष्योंकी प्रशंसा। २ वेदमें मन्त्रोंका वह भाग जिसमें राजाओंके दान आदिकी प्रशंसा है।

नारिक (सं॰ त्रि॰) १ जलीय जलका, जलसम्बन्धी। २ आत्मसम्बन्धी, आध्यात्मिक।

नारिकल—मन्द्राज प्रदेशके अधीन कोचीन राज्यके अन्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह अक्षा॰ १०° २´ १०´´ उ॰ और देशा॰ ७६° १२´ पू॰में मध्य, कोचीन शहरसे डेढ़ कोस पश्चिममें अवस्थित है।

नारिकेर (सं॰ पु॰) नारिकेल शब्द देखो। नारिकेल, नारिकल।

नारिकेल (सं॰ पु॰) किस न केरे ओलति न मार्गे यस्य पृषोदरादित्वात् साधु। स्वनामख्यात वृक्षविशेष नारियल। (Cocos nucifera) पर्याय—लाङ्गली, नाड़िकेल नारिकेर, नालिकेरो, नारीकेल, नालिकेरी नारिकेलि, महाकुम्भ, शिरस्फल, नारिकेल रसफल सुतुङ्ग, कूर्चशिखर दृढ़नील, नीलतरु, मङ्गल्य, उच्चतरु, तृणराज, स्कन्धतरु, दाक्षिणात्य, दुरारोह, त्र्यम्बकफल स्कन्धफल, कूपमोदक तृणवृक्ष, ध्वज सदाफल, शिराफल, करकाम्भस पयोधर, सकूर्च, कौशिकफल, फलमुण्ड, बराफल, मुण्ड-फल विश्वामित्रप्रिय नारकेल, सुमङ्गल, पत्रसर।

(राजनि॰ अमर॰ भावप्र॰)

यह वृक्ष भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है। पश्चिमाञ्चलमें नारेल या नारियल, बङ्गालमें नारिकेल या नारकल, अण्डामानमें काव और पश्चु भाषामें तुना, गुजरातमें नारियेर, नारियल या त्रोपरा, बम्बई अञ्चलमें नारेल, नार या नराळ, महाराष्ट्रमें नारेला नारेलमाड़, शिंडिम्मार, द्राविड़में तेंगा, तेंग, तेंगाय, तेलगूमें नारिकडम् टेंकायचेट्टु, ग्रन्थ,

नारिकडम् कनाड़ामें तेंगिनमरा, मलयालममें नार, अरबमें जौजहिन्द अन्नरातुन नारजिल, कोकोस, फारसमें दरख्ते नारगिल, सिंहलमें ताम्बिली और ब्रह्ममें ओन या उन् लिन् कहते हैं।

यह पेड़ खजूरको भांति लम्बा होता है और कभी कभी पचास हाथ ऊपरको ओर जाता है। इसके पत्ते खजूरके जैसे पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। फूल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली शाखाओंमें मञ्जरीके रूपमें लगते हैं। फल गुच्छोंमें लगते हैं जो बारह चौदह अङ्गुल तक लम्बे और छः सात अङ्गुल तक चौड़े होते हैं। फल देखनेमें लम्बोतर और तिकोने दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशेदार छिलका होता है जिसके नीचे कड़ी गुठली और सफेद गिरी होती है। यह गिरी खानेमें बहुत मीठी होती है। नारियल गरम देशोंमें हो समुद्रका किनारा लिए हुए होता है। भारतके आस पासके टापुओंमें यह बहुत होता है। भारतवर्षमें समुद्र तटसे अधिकसे अधिक सौ कोस तक नारियल अच्छी तरह उत्पन्न होता है उससे आगे यदि लगाया भी जाता है तो किसी कामका फल नहीं लगता। मलबार, करमण्डल उपकूल अमेरिका और अफ्रिका द्वीपमें भी यह पेड़ बहुत लगता है। महासागरके लाक्षाद्वीप पुञ्जमें और निकोबरद्वीपमें नारियलका पेड़ जगह जगह अधिक संख्यामें देखनेमें आता है। अभी अन्दामानद्वीप-में भी इसकी खेती होने लगी है। अन्दामानसे भी ३०।४० कोस उत्तर नारिकेल-द्वीपपुञ्जमें (Cocos) यह बिना चेष्टाके उत्पन्न होता है। एम डि कैनडालो (M De Candolle) का कहना है कि, "सम्भवतः भारतीय द्वीप समूह ही इसका आदिम उत्पत्तिस्थान है और भारतवर्ष सिंहल तथा चीन देशमें आजसे तीन हजार वर्ष पहले नारियलका पेड़ बिलकुल नहीं था।"

नारियलके रोपनेकी प्रणाली।—पके हुए फलोंको ले कर पञ्च या छेड़ महीने घरमें रख छोड़े। फिर बरसातमें डाढ़ हाथ गहरे खोद कर उनमें उन्हें गाड़ दे। थोड़े ही दिनोंमें अंकुर फूटेंगे और पौधे निकल आयेंगे। पूसमें चैत तथा सावनसे भादो मास तक इसके रोपनेका समय है।

रोपते समय नारियलके ऊपरी भागमें करीब दो इञ्च जगह छोड़ दे और उन्हें एक फुटकी दूरी पर बैठावे। गड्ढेमें राख और नमक ऊपरसे डाल दे। नमक खारका काम करता है और नारियलके बीचमें जो कीड़े रहते हैं उन्हें मार डालता है। बीच बीचमें जल भी सींचना होता है। ऐसा करनेसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर नारियलका कल्ला बाहर निकल आता है। फिर छः महीने या एक वर्षमें इन पौधोंको खोद कर जहां लगाना हो, लगा दे।

दूसरी बार रोपनेके लिये जो नया गड्ढा खोदा जाता है वह यदि जमीन उर्वरा हो तो छोटे-से हो काम चल सकता है। किन्तु जमीन यदि अच्छी न हो, तो गड्ढेको एकसे दो गज चौड़ा और दो-से तीन फुट गहरा बनावे। जमीन यदि शीतल कर्दमयुक्त हो, तो गड्ढे खोद कर उसमें राख और खार ऊपरसे डाल दे। जमीनके दल दल होनेसे गड्ढेके चारों ओर दीवार खड़ा कर दे।

इन सब गड्ढोंमें १६।१७ हाथकी दूरी पर कल्ला रोपे। जमीन विशेषसे दूरीमें पार्थक्य भी हुआ करता है। गड्ढेमें कल्ला बैठा कर उसके चारों बगलकी सरसभूमिको पत्रावरण द्वारा ढक दे। वह जमीन यदि स्वाभाविक अनुर्वर हो, तो उसमें लवण, राख, सड़ी मछली, छागविष्ठा और अन्यान्य शुष्कखार प्रथम एक वर्ष तक देना होता है। एक वर्षके बाद उसमें नया पत्ता निकलने लगता है। इस समय भी पौधेके चारों बगल राख बिछा दे, तो बहुत अच्छा। प्रति वर्ष वर्षाके पहले इसी प्रकार करना होता है। ४ वर्षके बाद लगभग १२ पत्ते निकल आते हैं और धड़ देखनेमें आता है। पांचवें वर्षमें वह धड़ साफ साफ नजर आता है और २४ पत्ते निकल आते हैं। इसके पांच वर्ष बाद ही फल फलने लगता है। वह पेड़ जब बड़ा हो जाय और उसे यदि दूसरी जगह उखाड़ कर लगाना चाहे, तो एक बड़ा गड्ढा बना कर और उसमें लवण और कुछ खार देनेके बाद पेड़ लगाना होता है। पेड़ उखाड़ते समय यदि कुछ रेशे कट भी जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पूर्वोक्त प्रकारसे जो पेड़ लगाया जाता है, उसमें वर्ष भर में ५०से २०० तक नारियल फलते हैं।

जो जमीन निम्न और बालुकाविशिष्ट हो तथा जहां सामुद्रिक वायु बहती हो, वहां उत्कृष्ट और अधिक परिमाणमें नारियल उपजते हैं। निम्नोक्त प्रकारको जमीनमें जो नारियलके पेड़ लगाये जाते हैं वे अच्छे नहीं होते।

१। काली और बालुका मिश्रित जमीन।

२। बालू और कीचड़मिश्रित लौहवत् कठिन जमीन।

३। ऊपर कीचड़ और नीचे बालू।

४। कीचड़ और बालूमिश्रित तथा पथरीली जमीन।

५। वह जमीन जहां मवेशी हमेशा पेशाब करते हैं।

किन्तु बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़ प्रदेशके गोपनाथ नामक स्थानमें जो नारियलका पेड़ उत्पन्न होता है, वह साधारणतः पहाड़ पर ही हुआ करता है।

महिसुरमें ४ प्रकारके नारियल पेड़ देखे जाते हैं।

१। लोहितवर्ण-विशिष्ट।

२। लोहित और सबूजमिश्रित।

३। सबूजवर्णका।

४। गाढ़ा सबूज वर्णका।

इनमेंसे लोहित वर्णका नारियल अत्यन्त सुस्वादु होता है।

बम्बई प्रदेशमें कई जगह नारियलसे शराब तैयार करते हैं। इसीसे यहां थोड़े ही परिश्रममें नारियल उत्पन्न होता है। मन्द्राज, महिसुर और बम्बई आदि स्थानोंमें भी नारियलका यथेष्ट आदर होता है। बङ्गदेशमें खजूरके पेड़से शराब तैयार होती है, नारियलसे नहीं। इसीसे मालूम होता है, कि यहां कोई भी यत्नपूर्वक नारियलकी खेती नहीं करता। नोआखाली, बाखरगञ्ज, यशोर और २४ परगनेमें नारियलके यथेष्ट पेड़ देखे जाते हैं।

सिंहलमें ५ प्रकारका नारियल होता है।

१। टेम्बिली—इसका वर्ण कमलानीबूके जैसा और आकृति बादाम-सी चिपटी होती है।

२। टेम्बिलीसे इसका आकार अपेक्षाकृत गोल।

३। इसका आकार कद्दूपिण्डके जैसा और वर्ण पीताभ।

४। साधारणतः यह नारियल सब जगह बाजारमें बिकता है।

५। राजा व छिमकी जैसा छोटा नारियल। इस प्रकारका नारियल बहुत कम देखा जाता है, लेकिन इसका स्वाद होता है बहुत मीठा।

नारियल पेड़में अनेक कुलक्षण होते हैं। जमीन यदि अत्यन्त उर्वरा हो, तो उसमें एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है। उस कीड़ेका मस्तक आमाकुल धूसरवर्णका होता है। ये सब कीड़े पेड़के ऐसे छेद कर प्रवेश करते हैं और धड़ भेद कर बाहर निकल आते हैं। अन्तमें वह पेड़ मर जाता है। आमलकियोंसे भी कीड़े कई प्रकारके होते हैं। इनसे बचनेको प्रधान औषध लवण है। इसके ऊपर लवण डालनेसे लवण अथवा उसका जल उसके भीतर प्रवेश करता है जिससे कीड़े बाहर निकलने लगते हैं अथवा वहीं मर जाते हैं।

इस वृक्षके अग्रसे कभी कभी एक प्रकारका निर्यास या गोंद निकलता है जो देखनेमें स्वच्छ और कुछ लाल वर्णका होता है। नारियलके छिलके और डंठलसे रंग तैयार होता है जो कपड़े आदि रंगनेके काममें आता है।

नारियलसे जो दूध प्रस्तुत होता है उसे चूने या अन्य रंगके साथ मिला कर यदि उससे दीवार रंगाई जाय तो दीवार बहुत चकमकाने लगती है और वह रंग भी दीर्घस्थायी होता है।

नारियलके छिलकेसे रस्सी, गद्दी और कोड़ेका मात्र बनता है। कोचीन, मन्द्राज, लाक्षाद्वीप, मलबार, सिंहल, सिंहापुर आदि स्थानोंमें नारियलका छिलका बहुत अधिक उत्पन्न होता है। नारियलको यदि बढ़िया रस्सी बनाना चाहे तो जो नारियल एक वर्षका हुआ है उसे जहां तक हो सके शीघ्र ले। पीछे उसके छिलकेको लवणमिश्रित ६से १८ मास तक पानीमें भिगोए रखे। बाद मुगर आदि द्वारा उसे पीटनेसे और धूपमें सुखानेसे रेशे या तार तैयार हो जाते हैं। इस तारसे जो रस्सी बनाई जाती है वह देखनेमें सुन्दर और शुभ्रवर्णकी होती है। लाक्षाद्वीप आदि स्थानोंमें इसी नियमसे रस्सी आदि बनाते हैं। लेकिन किसी किसीका कहना है कि इस प्रकार जो रस्सी बनाई जाती है वह दीर्घस्थायी नहीं होती।

मलबार उपकूल आदि स्थानोंमें मद्य तैयार करनेके लिये जिन नारियलके पेड़ोंमें छेद कर देते हैं उनका छिलका उत्कृष्ट और मजबूत नहीं होता। भारत भरमें मन्द्राज प्रदेशमें ही सबसे अधिक नारियलकी रस्सी बनाई जाती है। १९वीं शताब्दीके मध्यभागमें पहले पहल यूरोपमें नारियलकी रस्सीकी रफ्तनी हुई थी।

नारियलके पत्तोंसे चटाई, परदा और टोकरी आदि बनती हैं। प्रत्येक पत्तेके बीचमें जो सख्तशलाका रहती है, उससे झाड़ू भी प्रस्तुत होती है। किसी किसी द्वीपके लोग पत्तोंसे छोटी अथवा तिरपाल बनाते हैं। पत्तियां कागजके काममें भी आती हैं।

साधारणतः नारियलसे रस्सी, तेल, चीनी, मिठाई और शराब प्रस्तुत होती है। इसका तेल बहुत फायदामन्द है। नारिकेलतैल देखो।

कच्चा नारियल शैत्यकारक, फूल मद्दीपक और तैल गुणविशिष्ट माना गया है। सुतरां नारियल सब समय औषधमें व्यवहृत होता है। दूध भी औषधके काममें आता है। इसकी अनगिनत उपकारिताके विषयमें किसी किसी डाक्टरका कहना है, कि अपरिपक्व नारियलका जल या दूध सुगन्धविशिष्ट, पिपासानाशक, शैत्यप्रद और पित्तज्वर तथा प्रस्रावको बढ़ानेके लिए विशेष उपकारी है। अधिक पीने पर भी यह जल कोई नुकसान नहीं करता। किसी किसीके मतसे यह रक्तपरिष्कारक माना है। नारियलकी गरी पुष्टिकारक, स्निग्ध गुणविशिष्ट और मूत्रकारक है। इसका दूध ४से ८ औन्स प्रतिदिन दो तीन बार करके सेवन करनेसे यक्ष्मारोग और धातुविकृतरोग जाता रहता है।

इस दूधमें क्षार भी यथेष्ट है, यह छोटे छोटे बच्चोंको भी पिलाया जा सकता है। अधिक दूध जुलाबका काम करता है।

नारियलकी गरी और तेलमें भिन्न भिन्न द्रव्य मिला कर भिन्न भिन्न प्रकारको औषध प्रस्तुत करते हैं। बच्चेके दांतोंके भीतर यदि घाव हुआ हो, तो कच्चे नारियलके रससे वह अच्छा हो जाता है।

नारियलकी कोंपल अति सुस्वादु होती है और त्वग्-वस्थामें पित्तनाशक है। पक्के नारियलको गरी, भुना हुआ चावल और शर्कराके योगसे एक प्रकारका मिष्ट द्रव्य प्रस्तुत होता है।

नारियलका ताजा रस ताड़ीके समान व्यवहृत होता है। इस रसको कुछ काल तक आंच पर चढ़ानेसे उसका जलांश वाष्प हो कर उड़ जाता है और जो रस बच जाता है वह चीनीके जलके समान मीठा होता है। यदि जलका भाग बिलकुल ही जला दिया जाय, तो उसमें चीनी-सा मिठास आ जाता है। इसी प्रकार नारियलका गुड़ और नारियलकी मिस्री प्रस्तुत होती है। नारियलका हुक्का भी बनता है। पानके साथ सुपारीके बदलेमें नारियलकी मुलायम गरी खाई जाती है।

आयुर्वेदके मतसे इसका गुण—नारियलका फल शीतल, तैलाढ्य, दुर्जर, वस्तिशोधन, विष्टम्भी, तृषा, बृंहण, बलकारी, पित्तज्वर, पित्तदोष और दाहनाशक माना गया है। पुरातन वा जीर्ण नारियल पित्तकर, भारी, विदाही और विष्टम्भी है। नवीन फलका जल शीतल, हृदयका हितकारक, दीपन, वीर्यवर्द्धक और हलका है। इसमें विसूचिका, तृष्णा, परिणामशूल, अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डु, पित्त और पिपासानाशक गुण है। इसका स्वाद भी बहुत मीठा है। गरीका गुण—कोमल, शीतल, वस्तिशोधक, शुक्रल और वातपित्तनाशक है। पक्क नारियलका गुण—किञ्चित् पित्तकर, रुच्य, मधुर और शीतल। नारियलकी कोंपल कषाय, स्निग्ध, मधुर, बृंहण और भारी। कोमल नारियलकी गरी पित्तज्वर और मूत्रदोषनाशक मानी गई है। नारियलके जलसे प्यास बुझ जाती है। इसमें शीतल, हृद्य, दीपन और शुक्रवृद्धिकर गुण है। कच्चा नारियलका जल प्रायः विरेचन होता है। पित्तज्वरमें कोमल नारियल और उसका जल बहुत फायदामन्द है। नारियल इस लोगोंका एक प्रधान खाद्य है। अष्टमी तिथिमें नारियल खाना निषिद्ध बतलाया है, किन्तु महाष्टमीके दिन देवीका प्रसाद नारियल खा सकते हैं। जो मोहवश अष्टमीके दिन नारियल खाता है वह मूर्ख होता है। कोजागरा रात्रिमें नारियलका जल पी कर जागरण करना विधेय है।

'नारिकेलोदकं पीत्वा कोजागर्ति महीतले।"
(तिथितत्त्व)

कांसेके बरतनमें यदि नारियलका जल रखा जाय, तो वह मद्यके समान हो जाता है। इसीसे कांसेके बरतनमें नारियलका जल नहीं पीना चाहिये।

"नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु।
गव्यञ्च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना॥"
(कर्मलोचन)

नारियलसे अनेक प्रकारका खाद्य प्रस्तुत होता है। पक्के नारियलको पीस कर उसे घी, दूध और गुड़के साथ मिलानेसे स्वादिष्ट खाद्य तैयार होता है। यह खाद्य लड्डू, चिउड़ा आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

नारिकेलचोरी (सं० स्त्री०) नारिकेलोद्भवा चोरी। नारियलके जलसे प्रस्तुत एक प्रकारका खाद्य-द्रव्य। प्रस्तुत प्रणाली—नारियलकी गरीका छोटा छोटा खण्ड बनावे। पीछे उसे गो-दुग्ध, चीनी और गव्य-घृतके साथ मिला कर मृदु अग्निके उत्तापसे पाक करे। इस प्रकार जो सामग्री प्रस्तुत होती है उसे नारिकेलचोरी कहते हैं। गुण—स्निग्ध, शीतल, अत्यन्त पुष्टिकारक, गुरु, मधुर रस, शुक्रवर्द्धक और रक्तपित्त वायुनाशक।

नारिकेलखण्ड (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—सुपक्क नारियलके शस्यको शिला पर पीस कर उसे वस्त्रसे निचोड़ लेते हैं। बाद उसमेंसे ४ पल ले कर आध पाव घीमें उसे भून लेते हैं। अनन्तर चार सेर नारियलके जलमें आध सेर चीनी मिला कर उसे छान लें। इस जलमें नारियलकी गरीको पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर उसे उतार लें और धनियां पीपर, मोथा, वंशलोचन, जीरा, कृष्णजीरा प्रत्येक आध तोला; दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर प्रत्येक एक माशा; इन सबका चूर्ण बना कर उसमें डाल दें। इस औषधके सेवन करनेसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षयरोग, रक्तपित्त, शूल और वमि दूर हो जाती है। इससे पुरुषत्वकी वृद्धि भी होती है।

बृहन्नारिकेलखण्ड। प्रस्तुत प्रणाली—आठ पल नारिकेल-मज्जाको शिला पर अच्छी तरह पीस कर उसमेंसे ५ पलको घीमें बघार लें। पीछे सोलह सेर नारियलके जलमें दो

और दोनों डाल कर उसे छान ले। अनन्तर उसमें भुना हुआ नारिकेल-शस्य आठ पल, सोंठ चूर्ण चार पल और चूर्ण दो सेर मिला कर धीमी आंचमें पाक करे। बाद प्रक्षेपार्थ त्रिकटु, मोथा, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, धनिया, पीपर, गजपीपर और जीरा प्रत्येकका चूर्ण चार पल ले कर इसमें डाल दे और अच्छी भांति चला कर नीचे उतार ले। इसकी सेवन-मात्रा अर्द्ध तोला है। इससे शूल, अम्लपित्त और क्षयरोग आदि जाते रहते हैं। यह औषध बलपुष्टिकर, वृष्य और उत्तम वाजीकरण है।

(भैषज्यरत्ना० शूलाधिकार)

भावप्रकाशमें नारिकेलखण्डकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—

चार पल नारियलको एक पल गव्य-घृतमें भून कर उसे नारियलके जल और गव्यदुग्धके साथ पाक करे। पाक समाप्त हो जाने पर उसे उतार ले और ठण्डा हो जाने पर उसमें निम्नलिखित चूर्ण डाल दे।

चूर्ण यथा—धनिया, पीपर, मोथा, दारचीनी और नागकेशर प्रत्येक आध तोला ले कर उसका चूर्ण बनावे और उसमें डाल दे। इसे अग्निके बलाबलके अनुसार एक पल अथवा आध पल मात्रामें प्रतिदिन सेवन करे। इससे पुष्टत्व, निद्रा और बलकी वृद्धि होती है तथा रक्तपित्त, अम्लपित्त, परिणामशूल और क्षयरोग नष्ट हो जाते हैं।

बृहन्नारिकेलखण्ड-प्रस्तुत प्रणाली—अच्छी भांति पीसा हुआ एक प्रस्थ नारियल, आध आढ़क बीजरहित कुष्माण्डको एक कुडव गव्य घृतमें भून ले। पीछे उसमें एक आढ़क गव्यदुग्ध और दो प्रस्थ चीनी डाल कर उसे धीमी आंचमें पाक करे। अच्छी भांति पाक हो जाने पर उसे उतार ले और जब ठण्डा हो जाय तब निम्न लिखित चूर्ण डाल दे। चूर्ण यथा—छोटी इलायची, धनिया, [illegible], पितपापड़, मोथा, सुगन्धवाला, वन-कपासकी जड़, रक्तचन्दन, [illegible], केशर, दारचीनी, तेजपत्र और कपूर प्रत्येक चार चार तोला ले कर उनके चूर्णको उसमें मिला दे और उसे एक नवीन बरतनमें रख छोड़े। इसकी सेवन-मात्रा एक पल ४ अथवा रोगीके अग्नि-बलको विवेचना कर यथामात्रामें प्रातःकालमें सेवन करावे। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त, ऊर्ध्व पित्त रक्तपित्त, अरुचि वातरक्त, पिपासा दाह पाण्डु, रोग, कामला, क्षय और परिणामशूल आरोग्य हो जाता है। प्राचीन कालमें भगवान् अश्विनीकुमारने इसे बनाया है। यह सर्वप्रधान शरीरका उपचयकारक, बलवर्द्धक और पुष्टत्व, निद्रा तथा बलप्रदायक है।

नारिकेलतैल (सं० क्लो०) नारिकेलफलसम्भव तैल। नारियलका तेल। वैद्यकके मतसे इसका गुण—[illegible], गुरु, वीर्यधातुका पोषक, वात और पित्त-नाशक, मूत्राघात प्रमेह श्वास कास, [illegible], वृद्धि रोगमें हितकर और वातनाशक है।

प्रस्तुत प्रणाली—पके नारियलको इकट्ठा कर उनके छिलकेको अलग कर दे। उसके बीचमें सफेद जो पदार्थ है उसे कटारीसे काटने पर उसके भीतर शुक्ल वर्णका एक प्रकारका कठिन पदार्थ मिलेगा। इसीका नाम नारियलकी गरी है। इसी गरीसे तेल तैयार होता है। भारतवर्षमें निम्नलिखित उपायसे नारियलसे स्वच्छ और वर्णहीन तेल बनाया जाता है। पहले नारियलकी गरीको धूपमें कुछ काल तक सुखा कर पीछे उसे किसी एक यन्त्र द्वारा पीस लेते हैं। तदनन्तर उस पीसी हुई गरीको जलके साथ मिला कर उबालते हैं। ऐसा करनेसे तेल जलके ऊपर बहने लगता है। यह तेल बहुत परिष्कार और तरल होता है। साधारणतः नारियलकी गरीको कोल्हूमें डाल कर पेषण क्रिया द्वारा नारियलतेल तैयार होता है।

कहीं कहीं नारियलकी गरीको आगमें या धूपमें अच्छी भांति सुखा लेते हैं और पीछे उसे कोल्हूमें पीस कर तेल तैयार करते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न उपायोंसे नारियलसे तेल निकाला जाता है। नातिशीतोष्ण देशमें नारियलका तेल मक्खनकी तरह गाढ़ा और शुभ्र होता है।

ग्रीष्मप्रधान देशोंमें नारियल-तेलका रङ्ग शुभ्र और जलके समान तरल होता है। जब तक यह ताजा रहता है, तब तक इससे सुगन्ध निकलती है किन्तु पुराना हो जानेसे हो कर उग्र गन्धविशिष्ट हो जाता है। दाक्षिणात्यमें घरोंमें तेलके बदले इसी तेलको काममें लाते

हैं और कहीं कहीं प्रदीपमें, चित्रकार्यमें, साबुन तैयार करनेमें तथा शरीरमें लगानेके काममें व्यवहृत होता है जब यह बहुत ताजा रहता था, तब यह औषधमें भी काम आता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सी और त्रिवाङ्कुरमें नारियल तेलका व्यवसाय खूब चलता है। मालद्वीप और लचा-द्वीपमें यह तेल नहीं होता है।

नारियल-तेलका आपेक्षिक गुरुत्व ८८२ है। परीक्षा करके देखा गया है, कि नारियल तेलमें कितने कठिन और वाष्पीय अम्ल मिले हुए हैं। ग्लोसिरिन अम्ल इसका एक प्रधान अङ्ग है। इस तेलको अन्य द्रव्योंमें मिला कर नाना प्रकारकी औषध प्रस्तुत करते हैं।

नारिकेलद्वीप—प्राचीन संस्कृत साहित्यवर्णित एक द्वीप। कथासरित्सागर पढ़नेसे जाना जाता है, कि भारतीय वणिक् समुद्रपथ द्वारा इस द्वीपमें आते जाते थे। यह द्वीप कहां है? इस विषयमें मतभेद है। कोई कहते हैं, कि अन्दामान द्वीपके निकट नारियलके वृक्षसे घिरी हुई जो छोटी द्वीपावली नजर आती है, वही नारिकेल-द्वीप है। फिर कोई वर्त्तमान मालद्वीपको नारिकेल-द्वीप बतलाते हैं। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग इस द्वीपमें गए थे। उनके वर्णनसे ज्ञात होता है, कि सिंहलद्वीपसे (१००० लोग) प्रायः १०० कोस दक्षिणमें नारिकेलद्वीप अवस्थित है। इस हिसाबसे उपरोक्त दोनों स्थानको प्राचीन नारिकेलद्वीप नहीं कह सकते। कोई कोई इसे सुमात्राद्वीपके दक्षिणमें अवस्थित बतलाते हैं।

१६०८-८ ई०के मध्य कप्तान किलिंने सुमात्राके दक्षिणमें इस द्वीपका आविष्कार किया। आविष्कर्त्ताके नाम पर यह किलीं नामसे प्रसिद्ध है सही, लेकिन स्थानीय लोग इसे 'कोको' अर्थात् नारिकेलद्वीप ही कहते हैं। युएनचुवङ्गके वर्णनसे यही नारिकेलद्वीप समझा जाता है।

१८२३ ई० तक इस द्वीपका विशेष विवरण कुछ भी ज्ञात नहीं जाता। पीछे अलेकजण्डर हेयर अनेक मलयदेशीय स्त्री और पुरुषके साथ यहां रहने लगे। पाछे और भी कई एक द्वीप स्थापित हुए। दक्षिण किलिं, उत्तरकिलिं, सेलिम, वेरियल, रस, वाटर, साइ रेक्चन और प्रायः २० छोटे छोटे द्वीप इसी किलिं द्वीपके अन्तर्गत हैं। अक्षा० ११´ ५०´´ द० और देशा० ८६´ ५१´ ३´´ पू०के मध्य उत्तरकिलिं द्वीप अवस्थित है। इन सब द्वीपोंमें जो बड़े बड़े द्वीप हैं उनमें बारहों मास विशुद्ध जल रहता है। यहां नारियल, सूअर और अन्यान्य गृहपालित पशु तथा ईख मिलती है। ऐडमिरल फिजरयका कहना है कि इस द्वीपका केकड़ा नारियल और मछली प्रधान खाती है। कुत्ता मछली पकड़ता है, मनुष्य कच्छपकी पीठ पर चढ़ता है। अधिकांश समुद्र पक्षी वृक्ष पर और इन्दूर प्रायः बड़े बड़े तालके पेड़ पर रहते हैं। यहां सब समय भूमिकम्पका डर बना रहता। दक्षिण किलिं द्वीपमें ८ मील लम्बा और ६ मील चौड़ा एक अल्पगभीर ह्रद है। इस ह्रदका जल स्थिर रहता और इसके चारों ओर नारियलके दरख्त देखे जाते हैं। यहां नारियल-भक्षक, 'विलुसलेट्रो', 'दस्यु' आदि नाना प्रकारके केकड़े पाये जाते हैं।

नारिकेललवण (सं० क्ली०) लवणौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—जल और छिलकेके साथ नारियलके मध्य सैन्धव नमक भर कर दग्ध करते हैं। बाद उसमेंसे नमक निकाल कर ४ माशेकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल है। इस औषधके सेवन करनेसे सब प्रकारके परिणामशूल विनष्ट होते हैं।

नारिकेलामृत (सं० क्ली०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—सुपक्व नारिकेल शस्यको शिला पर पीस कर कपड़ेमें छान लेते हैं। बाद चार सेरके अन्दाज ले कर चार सेर घीमें उसे बघारते हैं। अनन्तर पाकार्थ नारियलका जल ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आंवलेका रस ७४ सेर, चीनी १२० सेर, सोंठ चूर्ण ७२ सेर इन सबको एक साथ पकाते हैं। पासन पाक हो जाने पर प्रक्षेपार्थ त्रिकटु, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर प्रत्येक १ पल, आंवला, जीरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा प्रत्येक ६ तोला, शीतल होने पर आध सेर मधु उसमें डाल देते हैं। मात्रा १ तोलासे २ तोला तक, और अनुपान दुग्ध तथा मूंगका जूस है। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त और सब प्रकारके शूल जाते रहते हैं। यह अग्निसन्दीपनकर, रसायन, सब प्रकारके मूत्रदोष,

रक्तपित्त और शोफ आदि रोग नाशक है।
(भैषज्यरत्ना० शूलाधिकार)

नारिकेलि (सं० स्त्री०) नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़।

नारिकेलोदक (सं० क्ली०) नारिकेलजल, नारियलका पानी।

नारियल (हिं० पु०) १ खजूरकी जातिका एक पेड़ जो खम्भेके रूपमें पचास साठ हाथ तक ऊपरको चला जाता है। विशेष विवरण नारिकेल शब्दमें देखो। २ नारियलका हुक्का।

नारियलपूर्णिमा (हिं० स्त्री०) बम्बई प्रान्तका एक त्योहार। इसमें लोग नारियल ले कर समुद्रमें फेंकते हैं।

नारियली (हिं० स्त्री०) १ नारियलका खोपड़ा। २ नारियलका हुक्का। ३ नारियलकी ताड़ी।

नारो—वर्त्तमान तिब्बतके उत्तर-पश्चिमांशवर्ती एक जनपद। गढ़वाल और कुमायूनसे मध्य हो कर जो ३ गिरिपथ भोटकी ओर गये हैं, उन्हींके प्रान्तसीमामें यह जनपद अवस्थित है। भोटदेशवासी चीनके राजप्रतिनिधिगण सुपन या तुरुष्क सेनाकी सहायतासे इस प्रदेशका शासन करते हैं। यहां तातार घोड़ेका मांस खाते हैं। यह प्रदेश बहुत ऊंचा और अनुर्वर है। सिन्धुनदप्रवाहित पथ छोड़ कर यहां बहुत लोगोंका वास है। तिब्बती लोग इस स्थानको नारी खोरसम और हिमालयवासी हिमदेश कहते हैं। कहा जाता है, कि पूर्व समयमें यहां नारी या स्त्री ही शासन करती थी।

नारी (सं० स्त्री०) नृर नर वा धर्म्या, नृ नञ् (नृनरयोर्वृद्धिश्च। ४।१।७३ इति वार्त्तिकोक्त्या अञ्) ततो ङीन् (शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। पा ४।१।७३) स्त्री। पर्याय—योषित्, स्त्री, अबला, योषा, सीमन्तिनी, वधू, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला, प्रिया, रामा, जनि, जनी, योषिता, जोषित्, जोषा जोषिता, धनिका, महेलिका महेला शर्वरो, वोवोष्, सिन्दूरतिलका, सुभ्रू। पञ्चसायकके मतसे स्त्रियां प्रधानतः चार जातियोंमें विभक्त हैं, यथा—पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी।

"पद्मिनी चित्रिणी चैव शङ्खिनी हस्तिनी तथा।
पद्मको चात्मो नार्यो रुद्रौ ज्ञेया विशेषतः॥"
(रतिमञ्जरी)

पद्मिनी प्रथम मानस पुरुषसे, चित्रिणी मृगसे, शङ्खिनी वृषभसे और हस्तिनी अश्वसे परितुष्ट रहती है। ये सब स्त्रियां बाला, तरुणी प्रौढ़ा और वृद्धाके भेदसे चार प्रकार की हैं। १६ वर्ष तककी स्त्रीको बाला ३० वर्ष तककी तरुणी, ५० वर्ष तककी प्रौढ़ा और उसके बादकी स्त्री को वृद्धा कहते हैं। रतिविषयमें बालाको प्राणदायिनी, तरुणीको प्राणहारिणी, प्रौढ़ाको रोगकारिणी और वृद्धा को मृत्युदायिनी बतलाया है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें सब नारी तीन प्रकारकी मानी गई है, यथा—साध्वी, भोग्या और कुलटा। जो परलोकका भय रखती, अपने यश और कामसे रक्षणतः सर्वदा स्वामीकी सेवा करती है, उसे साध्वी; जो भोगवस्तुकी प्रार्थी हो कर काम के रससे पतिकी सेवा करती है उसे भोग्या कहते हैं। जब तक भोग्यानारीको अभिलषित वस्त्र और अलङ्कार आदि मिलते, तब तक वह वशमें रहती है। कुलटा नारी कुलाङ्गारकी जैसी होती है। यह हमेशा स्वामीकी कपटरूपसे सेवा करती है, भक्ति जरा भी उसमें चित्त नहीं रहता। यह सर्वदा कामातुर हो कर नये नये यारोंकी प्रार्थना करती है। इस प्रकारकी नारी अपने यारोंके लिए स्वामी तकको भी मार डालनेमें नहीं हिचकती। जो इस नारी पर विश्वास रखते हैं, उनका जीवन निष्फल है। इसका स्वभाव—हृदय छुरे धारके जैसा, कार्यसिद्धिके लिए वाक्य अमृतोपम, मधुरा बातोंमें वाक्य विषतुल्य प्रकृति कुत्सित और अभिप्राय दुर्बोध होता है। यह अत्यन्त मायाविनी और साहसमें प्रथमा होती है। इसका काम पुरुषसे ८ गुना, आहार दूना, निष्ठुरता चौगुनी और क्रोध दश गुना अधिक है। जितने प्रकारकी नारियां बतलाई गई हैं, सभी दोषकी आकर हैं। इनके साथ किसी प्रकारकी क्रीड़ा या सुख की सम्भावना नहीं। इनके साथ सम्भोग करनेसे अशुचि, अत्यन्त प्रीति करनेसे अपयश, कलहसे मानहानि, सहवाससे पौरुष नष्ट और विश्वास करनेसे सर्वनाश होता है। जब तक धनयौवनादि है तब ही तक ये वशीभूत रहती हैं। रोगी, निर्धन और वृद्ध होनेसे ये बात तक भी करना नहीं चाहतीं। (ब्रह्मवै० प्रकृति० २३ अ०)

मनुका मत है, कि नारी यदि यथानियमसे प्रति

पालित हों, तो वे कल्याणकारी और श्रीवृद्धिप्रदायिनी होती हैं।

नारियोंको सम्मानपूर्वक भोजन वस्त्रादि द्वारा सर्वदा भूषित करना कल्याणकामी पिता, भ्राता, पति और देवरोंका अवश्य कर्त्तव्य है। जिस वंशमें स्त्रियोंका सम्यक् आदर है, देवता वहां प्रसन्न रहते हैं और जिस परिवारमें स्त्रियोंका मान नहीं, उनको यागादि सभी क्रियायें निष्फल हैं। जिस परिवारमें नारी सर्वदा दुःखसे रहती है, उस परिवारका बहुत जल्द नाश होता है। स्त्रियां दुःख पा कर जिस वंशको अभिशाप देती हैं, वह वंश अभिचारहतके जैसा शीघ्र ही नाश हो जाता है। जो मनुष्य श्रीवृद्धिकी कामना करते, उन्हें चाहे विविध सत्कार्यकालमें हो, चाहे उत्सवकालमें हो हो, भोजन, वस्त्र और भूषणादि द्वारा नारियोंका आदर करना अवश्य कर्त्तव्य है। (मनु ३।५५-६०)

नारियोंके ६ कार्य दोषावह हैं, यथा—पान, दुर्जनसंसर्ग, पतिविरह, भ्रमण, परघरमें निद्रा और वास।

"पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट्॥"
(हितोपदेश १।१३२)

स्त्रियोंकी किसी समय स्वाधीनता नहीं है। मनुमें लिखा है, कि नारी चाहे बालिका हों, चाहे युवती वा वृद्धा हों, किसी समय उन्हें स्वतन्त्रभावसे कार्य करना उचित नहीं है। इन्हें बाल्यावस्थामें पिताके वशमें, यौवनमें स्वामीके वशमें, स्वामीके मरने पर पुत्रके वशमें रहना चाहिए। ये कभी भी स्वाधीनभावसे रह नहीं सकतीं। इन्हें हमेशा प्रफुल्लचित्तसे कालयापन करना चाहिए। नारियोंको गृहकर्ममें दक्षता, गृहसामग्रीको साफ सुथरा रखनेमें होशियार होना एकान्त आवश्यक है। (मनु ५।१४६-१५०)

स्वामिगृहमें वास, स्वामिसेवा और गृहकार्यमें तत्परता आदि नारियोंका ब्रह्मचर्य माना गया है। स्वामी छोड़ कर इन्हें कोई पृथक् यज्ञ नहीं है, स्वामीकी अनुमति लिये बिना ये कोई व्रत उपवासादि नहीं कर सकतीं। एक स्वामी-सेवा करनेसे ही सब व्रतोंका फल मिलता है।

सामुद्रिक शास्त्रके मतमें—निम्नलिखित चिह्नादि द्वारा नारियोंका शुभाशुभ जाना जाता है;—जिस नारीके पैरमें वज्र, पद्म और हलका चिह्न हो, वह दासी होने पर भी रानीके समान है और नित्य राजभोगमें जीवन व्यतीत करती है। नारियोंकी जांघ रोमशून्य, सुगोल और सरल होनेसे, घुटनोंका संयोगस्थल उच्चनीचताविहीन होनेसे तथा दोनों घुटनेके समान होनेसे शुभ होता है। स्त्रियोंका ऊरु हाथीकी सूंड़के जैसा स्थूल, सरल, समान, सुवर्त्तुल, सुन्दर, कोमल और सुशीतल होनेसे शुभ समझा जाता है। किन्तु जांघमें यदि रोएं हों, तो अशुभ होता है। दोनों स्तन लोमविहीन, स्थूल, सुवर्त्तुल, कमलकोरकवत् क्रमशः शेषमें सूक्ष्म, कठोर, उन्नत, अविरल और परस्पर समान, ग्रीवादेश कम्बु और शङ्खके जैसा तीन रेखाविशिष्ट तथा वक्षःस्थल लोमशून्य हो, तो शुभलक्षण जानना चाहिये।

जिन स्त्रियोंके अधर और ओठ कुछ लाल, मुख अण्डेके जैसा गोल और मांसल, दन्त कुन्दपुष्पवत् उज्ज्वल और सुदृश्य, वाक्य कोकिल अथवा हंसके जैसा, नासिका समान और परिमित रन्ध्रविशिष्ट होनेसे शुभावह होता है। जिस कामिनीका केशकलाप स्वभावतः स्नेहयुक्त, कृष्णवर्ण, कोमल और कुञ्चित हो तथा मस्तक, हस्त और चरण समभागोंमें विभक्त हों, वह स्त्री सौभाग्यवती समझी जाती है।

जिस नारीके हाथ वा पैरमें अश्व, गज, बिल्वतरु, यूप, वाण, यव, तोमर, ध्वजा, चामर, माला, क्षुद्र पर्वत, कर्णभूषण, वेदिका, शङ्ख, छत्र, कमल, मीन, स्वस्तिक, चतुष्पथ, सर्पफणा, उत्तमरथ और अङ्कुश आदि जो कोई चिह्न हो, वह स्त्री राजमहिषी होती है। जिनका मणिबन्ध निगूढ़ हो, हस्त पद्मके अभ्यन्तर भागके जैसा सुदृश्य हों, करतल न तो निम्न और न उन्नत हो, वे सब स्त्रियां अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी समझी जाती हैं।

नारियोंके ऊर्ध्व रेखा रहनेसे उन्हें सब प्रकारका सौभाग्य लाभ होता है। जो रेखा मणिबन्धसे निकल कर करतलके मध्यभाग होती हुई मध्यमाङ्गुलि तक चली गई है, उसे ऊर्ध्वरेखा कहते हैं। जिसके अङ्गुष्ठके नीचेकी रेखा अल्प छिन्नभिन्न भावमें रहे, उसकी आयु थोड़ी

पर दक्षिणावर्त्त मण्डल हो, वह नारी राजमहिषी होगी अथवा राजगद्दी पर अभिषिक्त हो कर राजकार्य चलावेगी, ऐसा समझना चाहिये। करतल पर शङ्ख, छत्र और कच्छपका चिह्न रहनेसे वह नारी राजमाता होती है। जिस नारीके अंगुष्ठमूलसे ले कर एक रेखा कनिष्ठांगुलिके मूल तक चली गई हो, वह पतिघातिनी होती है। जिस नारीके चक्षु गोचक्षुके समान और पिङ्गलवर्णके होते हैं, वह बहुत गर्विता समझी जाती है। कबूतरके जैसा चक्षु होनेसे दुःशीला और रक्तवर्णके होनेसे पतिघातिनी, कोटर-नयना होनेसे दुष्टा, गजचक्षु होनेसे अप्रशस्तलक्षणा और वामचक्षु तिरछा होनेसे पुंश्चली और दक्षिण चक्षु तिरछा होनेसे वन्ध्या होती है। जिसके भ्रूकी बगलमें वा ललाट पर मसा हो, वह नारी राज्यभोग करती है। वाम कपाल पर मसा होनेसे स्त्री सौभाग्यवती समझी जाती है। जिसके शरीर पर तिल अथवा कोई दूसरा ही चिह्न हो, वह सौभाग्यवती; जिसके दक्षिणस्तन पर तिलचिह्न हो, वह चार कन्या और दो पुत्रकी माता तथा जिसके वामस्तन पर तिल वा रक्तवर्णका कोई दूसरा चिह्न हो, वह नारी एक पुत्र प्रसव कर विधवा हो जाती है। जिस नारीके गुह्यदेशके दक्षिण पार्श्वमें तिलचिह्न हो, वह राजमहिषी होती है और उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह भी राज्यभोग करता है। यदि किसी नारीको नाभिके नीचे तिल वा मसा हो, तो वह सौभाग्यशालिनी होती है।

जिस नारीका ललाट, उदर और भग ये तीनों अंग लम्बे हों, वह श्वशुर, पति और देवर इन तीनोंको संहारकारिणी होती है। स्त्रियोंमें यह भारी दोष समझा जाता है।

जो नारी गौरवर्णा हो और जिसके बाल बहुत बारीक हों, वह आठ पुत्र प्रसव करती है और विपुल सुखसौभाग्यशालिनी होती है।

कच्छपपृष्ठवत् विस्तृत और हस्तिस्कन्ध सी उन्नत योनि हो नारियोंको मङ्गलदायक होती है। योनिका वामभाग उन्नत होनेसे पुत्रका जन्म होता है। जो योनि दृढ़, अवयवमें विस्तृत, परिमाणमें वृहत् और उन्नत, उपरिभाग पर मूषिकगात्रवत् विरल रोमयुक्त, मध्यभाग पर अप्रकाशित, दोनों पार्श्वमें मिलितप्राय, गठन और वर्णमें कमलदलके जैसा क्रमशः नीचेकी ओर सूक्ष्म, आकृतिमें पीपल पत्रके जैसा त्रिकोण, ये सब लक्षण मङ्गलकर और सुप्रशस्त माने जाते हैं। (सामुद्रिक)

गरुड़पुराणमें भी नारियोंके शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार लिखे हैं :—

जिस कामिनीका केश आकुञ्चित, मुख मण्डलाकार और नाभि दक्षिणावर्त्त हो, वह कुलवर्द्धिनी होती है। जिस रमणीको देहकान्ति सोनेकी तरह समुज्ज्वल और हस्त रक्तपद्मके जैसे हों, वह पतिव्रता और सहस्र नारियोंमें प्रधाना होती है। जिसका मुख पूर्णचन्द्रके जैसा मनोहर, देहप्रभा नवोदित सूर्यकी तरह लाल, नेत्रद्वय विशाल, ओष्ठ विम्बफलके जैसे रक्तवर्ण हों, वह नारी चिरकाल तक सुखभोग करती है, इत्यादि। (गरुड़पुराण) विस्तारके भयसे और अधिक न लिखा गया। २ गुरुत्रयपादक छन्दोभेद।

नारीकवच (सं॰ पु॰) नार्याः कवचः सन्नाह इव यस्य। सूर्यवंशीय मूलकराज। ये राजा अश्मकके पुत्र और सौदासके पौत्र थे। जब परशुराम क्षत्रियोंका नाश कर रहे थे, तब इन्हें स्त्रियोंने घेर कर बचा लिया था, इसीसे यह नाम पड़ा। इन्हींसे क्षत्रियोंका फिर वंश विस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल (सं॰ पु॰) नारिकेल देखो।

नारीच (सं॰ क्ली॰) नाड़ी च ह्रस्व-रत्वम्। शाकविशेष, नालिताशाक। यह शाक दो प्रकारका है, तिक्त और मधुर। तिक्तका गुण—रक्त, पित्त, क्रिमि और कुष्ठनाशक तथा मधुरका गुण पिच्छिल, शीतल, विष्टम्भी और कफवातकर है।

नारीतरङ्गक (सं॰ पु॰) नारीं तरङ्गयति चञ्चलचित्तां करोति, तरङ्ग करोति णिच्-ण्वुल्। नारीचित्तचञ्चलकारक, स्त्रियोंके चित्तको चंचल करनेवाला पुरुष, जार, व्यभिचारी।

नारीतीर्थ (सं॰ क्ली॰) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां पांच अप्सराएं ब्राह्मणके शापसे जलजन्तु हो गई थीं। अर्जुनने इनका शापसे उद्धार किया था।

(भारत १।२२६।२७)

पर दक्षिणावर्त्त मण्डल हो, वह नारी राजमहिषी होगी अथवा राजगद्दी पर अभिषिक्त हो कर राजकार्य चलावेगी, ऐसा समझना चाहिये। करतल पर शङ्ख, छत्र और कच्छपका चिह्न रहनेसे वह नारी राजमाता होती है। जिस नारीके अंगुष्ठमूलसे ले कर एक रेखा कनिष्ठांगुलिके मूल तक चली गई हो, वह पतिघातिनी होती है। जिस नारीके चक्षु गोचक्षुके समान और पिङ्गलवर्णके होते हैं, वह बहुत गर्विता समझी जाती है। कबूतरके जैसा चक्षु होनेसे दुःशीला और रक्तवर्णके होनेसे पतिघातिनी, कोटर नयना होनेसे दुष्टा, गजचक्षु होनेसे अप्रशस्तलक्षणा और वामचक्षु तिरछा होनेसे पुंश्चली और दक्षिण चक्षु तिरछा होनेसे वन्ध्या होती है। जिसके भ्रूकी बगलमें वा ललाट पर मसा हो, वह नारी राज्यभोग करती है। वाम कपाल पर मसा होनेसे स्त्री सौभाग्यवती समझी जाती है। जिसके शरीर पर तिल अथवा कोई दूसरा ही चिह्न हो, वह सौभाग्यवती, जिसके दक्षिणस्तन पर तिलचिह्न हो, वह चार कन्या और दो पुत्रकी माता तथा जिसके वामस्तन पर तिल वा रक्तवर्णका कोई दूसरा चिह्न हो, वह नारी एक पुत्र प्रसव कर विधवा हो जाती है। जिस नारीके गुह्यदेशके दक्षिण पार्श्वमें तिलचिह्न हो, वह राजमहिषी होती है और उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह भी राज्यभोग करता है। यदि किसी नारीको नाभिके नीचे तिल वा मसा हो, तो वह सौभाग्यशालिनी होती है।

जिस नारीका ललाट, उदर और भग ये तीनों अंश लम्बे हों, वह श्वशुर, पति और देवर इन तीनोंको संहारकारिणी होती है। स्त्रियोंमें यह भारी ऐब समझा जाता है।

जो नारी गौरवर्णा हो और जिसके बाल बहुत बारीक हों, वह आठ पुत्र प्रसव करती है और विपुल सुखसौभाग्यशालिनी होती है।

कच्छपपृष्ठवत् विस्तृत और हस्तिस्कन्ध सी उन्नतयोनि जो नारियोंको मङ्गलदायक होती है। योनिका वामभाग उन्नत होनेसे पुत्रका जन्म होता है। जो योनि दृढ़, अवयवमें विस्तृत, परिमाणमें महत् और उन्नत, उपरिभाग पर मूषिकगात्रवत् विरल रोमयुक्त, मध्यभाग पर अप्रकाशित, दोनों पार्श्वमें मिलितप्राय, गठन और वर्णमें कमलदलके जैसा क्रमशः नीचेकी ओर सूक्ष्म, आकृतिमें पीपल पत्रके जैसा त्रिकोण, ये सब लक्षण मङ्गलकर और सुप्रशस्त माने जाते हैं। (सामुद्रिक)

गरुडपुराणमें भी नारियोंके शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार लिखे हैं ;—

जिस कामिनीका केश आकुञ्चित, मुख मण्डलाकार और नाभि दक्षिणावर्त्त हो, वह कुलवर्द्धिनी होती है। जिस रमणीकी देहकान्ति सोनेकी तरह समुज्ज्वल और हस्त रक्तपद्मके जैसे हों, वह पतिव्रता और सहस्र नारियोंमें प्रधाना होती है। जिसका मुख पूर्णचन्द्रके जैसा मनोहर, देहप्रभा नवोदित सूर्यकी तरह लाल, नेत्रद्वय विशाल, ओष्ठ बिम्बफलके जैसे रक्तवर्ण हों, वह नारी चिरकाल तक सुखभोग करती है, इत्यादि। (गरुड़पुराण) विस्तारके भयसे और अधिक न लिखा गया। २ गुरुत्रयपादक छन्दोभेद।

नारीकवच (सं० पु०) नार्याः कवचः सन्नाह इव यस्य। सूर्यवंशीय मूलकराज। ये राजा अश्मकके पुत्र और सौदासके पौत्र थे। जब परशुराम क्षत्रियोंका नाश कर रहे थे, तब इन्हें स्त्रियोंने घेर कर बचा लिया था, इसीसे यह नाम पड़ा। इन्हींसे क्षत्रियोंका फिर वंश विस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल (सं० पु०) नारिकेल देखो।

नारीच (सं० क्ली०) नाड़ी च उस्य-स्लम्। शाकविशेष, नालिताशाक। यह शाक दो प्रकारका है, तिक्त और मधुर। तिक्तका गुण—रक्त, पित्त, क्रमि और कुष्ठनाशक तथा मधुरका गुण पिच्छिल, शीतल, विष्टम्भी और कफवातकर है।

नारीतरङ्गक (सं० पु०) नारीं तरङ्गयति चञ्चलचित्तां करोति, तरङ्ग णिच् ण्वुल्। नारीचित्तचञ्चलकारक, स्त्रियोंके चित्तको चंचल करनेवाला पुरुष, जार, व्यभिचारी।

नारीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां पांच अप्सराएं ब्राह्मणके शापसे जलजन्तु हो गई थीं। अर्जुनने इनका शापसे उद्धार किया था।

(भारत १।२२५-२७)

नारीदूषण (सं॰ क्ली॰) नारीणां दूषणं, ६-तत्। नारियोंका दोषभेद। स्त्रियोंके लिये छह कार्य अत्यन्त दूषणीय हैं, सुरापान, दुष्ट लोगोंका संसर्ग, पतिविरह, भ्रमण, दूसरेके घरमें सोना और रहना।

'पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥' (मनु)

नारीमय (सं॰ त्रि॰) नारी स्वरूपे मयट्। नारीस्वरूप, नारी।

नारीमुख (सं॰ पु॰) नाडीमुखं प्रधानं यत्र, कूर्म्म रत्नम्। बृहत्संहिताके अनुसार कूर्म्मविभागके नैऋतकोण और एक देश।

नारीयान (सं॰ क्ली॰) नार्य्या यानम्। नारियोंका यान, पालकी, डोली, जनाना सवारी आदि।

नारीष्ट (सं॰ त्रि॰) नारीणां इष्टः प्रियः। १ नारियोंका प्रिय जो स्त्रियोंके मनमाफिक हो। (स्त्री॰) २ मल्लिका, चमेली।

नारीह (सं॰ स्त्री॰) नार्यां सदाशुकवे लिहति ध्यान्‌र, बलम्। गन्धर्व भेद, एक गन्धर्वका नाम।

नारूकोट—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके पाँचमहल जिलेके अधीन एक देशीय राज्य। भूपरिमाण १४३ वर्गमील है। यहाँ कोलि और नायकड़ नामक दो जातिके लोग रहते हैं। यहाँका राजा भी कोलि जातिका है। नायकड़ोंने भीलोंके साथ मिल कर कई बार यहाँ उपद्रव मचाया था, अभी वे शान्त भावसे रहते हैं। यह देश छोटे छोटे पहाड़ों और निविड़ जङ्गलोंसे घिरा है। यहाँ पुष्करिणी और कूपके सब सुस्वादु जल तथा धानमें अल्प परिमाणमें सोना मिलता है। यह राज्य पहले नायकड़ाके हाथमें था, किन्तु १८५७ ई॰में महाविद्रोहके समय नायकड़ाने अङ्गरेजोंमें सहायता की थी और राज्यका अधिक लाभ अङ्गरेज-गवर्मेण्टको अर्पण किया। तभीसे यह राज्य अङ्गरेजोंका देय-रैयतमें है। १८६८ और १८६९ ई॰में यहाँ पुनः राजविद्रोह उपस्थित हुआ और नायकड़ोंने राज्यशासनको पीड़ा दी। जम्बुघोड़ा इस राज्यके मध्य एक प्रधान स्थान है जहाँके अधिपति वा सरदार भीमसर नामक ग्राममें रहते हैं। यह राज्य ब्रिटिश-गवर्मेण्ट द्वारा शासित होता है। १८९८ ई॰के पत्रानुसार राज्यका आधा भाग उक्त सरदार या शासनकर्त्ताओंको करस्वरूप अर्पण किया गया। यहाँ एक औषधालय और देशीय विद्यालय है।

नारुन्तुद (सं॰ त्रि॰) न अरुन्तुदः। अनाहत, जिसके शरीर पर किसी प्रकारका आघात न लग सके।

नारू (हिं॰ पु॰) १ जूँ, ढील। २ एक रोग। इसमें शरीर पर विशेषतः कटिके नीचे तथा हाथ आदिमें फुनसियाँ-सी हो जाती हैं और उन फुंसियोंसे सूत-सा निकलता है। यह सूत वास्तवमें कीट होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथकी लम्बाईका हो जाता है। जब ये कीड़े स्नायुतन्तुओंमें होते हैं, तब नारू या नहरुआ होता है, जब रक्तकी नलियोंमें होते हैं, तब श्लीपद या फील पाँव रोग होता है। इस प्रकारका रोग प्रायः गरम देशोंमें ही होता है।

नारूके कीड़े कई प्रकारके होते हैं। बहुतसे कीड़े जीवधारियोंके शरीरके भीतर रहते हैं और कुछ तालाबों और समुद्रके जलमें भी पाये जाते हैं। विर्द्धका कीड़ा इन्होंकी जातिका होता है। ये कीड़े यद्यपि पेटमें के सूतसे सूक्ष्म होते हैं पर इनके शरीरकी मज्जा सुधोंकी अपेक्षा अधिक पुष्ट रहती है। इन्हें सुख होता है, अण्डज व बच्चा होता है, इनमें भी कुभेद होता है।

नारेय (सं॰ पु॰) सनातिपुत्र भद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

नारोजीदादाभाई—१८२५ ई॰को बम्बई नगरमें पारसिक वंशमें इनका जन्म हुआ था। जब ये केवल चार वर्षके थे, तब ही इनके पिता नौरोजी पालनजी परलोक सिधारे। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। बचपनसे ही ये बड़े बुद्धिमान् और चतुर निकले। यही कारण था कि इनके चाचा और माताने इनको विद्याके लिए कुछ भी यत्न न किया। विद्या सीखनेके लिये वे पहले पहल एलफिन्स्टन कालेजमें भर्ती हुए। यहाँ निज अध्यवसाय और बुद्धिबलसे थोड़े ही दिनोंमें विद्वान् बन गए।

इसी कालेजमें इनका विद्याभ्यास शेष हुआ। पीछे आईन सीखनेके लिए इनको विलायत जानेकी बातचीत होने लगी, किन्तु किसी कारणसे इनका जाना बन

गया। बाद ये एक स्कूलमें मदरसाके प्रथम शिक्षकके पद पर नियुक्त हुए। इसके कुछ दिन पीछे इन्होंने एलफिन्‌स्टोन कालेजमें अङ्क और दर्शनशास्त्रके शिक्षकका पद ग्रहण किया। शिक्षक होने पर भी दादाभाइ अपना समय निर्दिष्ट कार्यमें न लगा कर जनसाधारणके हितकर प्रस्तावके उद्भावन करने और उसे कार्यमें परिणत करनेकी चेष्टामें बिताते थे। बम्बई शहरमें पहले पहल जितने बालिका-विद्यालय स्थापित हुए, वे इन्होंके ऐकान्तिक यत्नसे बने हैं और चिरकाल तक बने रहेंगे। बालकोंका साहित्य और दर्शन-सभा इन्होंके प्रयत्नसे इतनी उन्नत हो गई है।

चार पांच वर्ष तक ये गुजरातकी "ज्ञानविस्तारिणी-सभा"के सभापति रहे। वहां वे 'समाचारदर्पण' नामक दैनिक सम्वादपत्रमें "मर्केंटिस और डायजिनिसका कथोपकथन" शीर्षक प्रबन्ध लिखा करते थे। बाद १८५१ ई०में इन्होंने खुदसे 'रस्त गुफ़्तर' नामक एक सम्वादपत्र निकाला और पारसियोंमें आप ही 'एकेश्वर उपासकोंका पथप्रदर्शक" नामक एक नूतन पारसी सभाके प्रथम सम्पादक हुए। इस कार्यमें हाथ डाल कर इन्होंने सभाका उद्देश्य बहुत कुछ सफल कर दिया था। इन्होंने सर्वदेशीय स्त्रियोंकी पूर्वकालीन अवस्थाका विषय लिखा और उसे सम्वादपत्रमें प्रकाशित कर दिया।

व्यवसायके कारण १८५५ ई०में नारोजीने प्रथम इङ्गलैण्डकी यात्रा की। चाहे व्यवसायके कारण हो या न हो, इङ्गलैण्डके साथ भारतका सम्बन्ध दृढ़ करना ही उनकी विलायत यात्राका प्रधान उद्देश्य था, इसमें सन्देह नहीं। पीछे वे वहांसे आवश्यक पड़ने पर ही भारतवर्ष आते थे, अन्यथा नहीं।

इंगलैण्ड जा कर भारतके तत्त्वान्वेषणके विषयमें और भारतके सम्वादपत्रके प्रति अङ्गरेजोंका मन आकर्षण करनेके लिये वे विशेष चेष्टा करने लगे। वे बम्बई और अन्यान्य स्थानोंके बन्धु-बान्धवोंके पुत्रोंको अपने साथ विलायत ले गये थे और वहां अभिभावकके रूपमें उनकी सहायता आदि करते थे। वे अत्यन्त सत्यवादी थे। एक बार इन्होंने अपने किसी एक बन्धुको तीन लाख रुपये दे कर ऋणमुक्त किया था। इसमें इनकी सब पूंजी गायब हो गई। १८६८ ई०में जब ये बम्बई लौटे, तब बम्बईकी सभाने इन्हें एक अभिनन्दनपत्र, रुपयेसे भरी हुई एक थैली और उनकी प्रतिमूर्त्ति उपहारमें दी। इस धनसे वे पुनः व्यवसाय करने लगे। १८७२ ई०में इन्होंने बम्बईकी म्युनिसिपलिटीके संस्कारके विषयमें विशेष परिश्रम किया था। १८७४ ई०में दादाजी बड़ोदाके दीवान नियुक्त हुए। एक वर्षके बाद ही इन्होंने इस पदका परित्याग किया। १८७५ ई०में ये बम्बईकी म्युनिसिपलिटीके सभ्यपद पर निर्वाचित हुए। दश वर्षके बाद ये बम्बई-आईन-प्रणयन-सभाके सभ्य हुए। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने विलायतकी पार्लियामेण्ट-सभाके सभ्य होनेकी कामनासे वहांकी यात्रा की। १८८६ ई०में इन्होंने फिन्सबारीके हलबरन विभागके लिए जो दरखास्त पेश की, वह पार्लियामेण्टके उदारनीतिक मेम्बरोंसे स्वीकृत हुई। १८९२ ई०में इन्होंने ही सबसे पहले भारतवासियोंके मध्य पार्लियामेण्टमें प्रवेशाधिकार प्राप्त किया था। दो वर्ष बाद ये भारतकी जातीय महासमितिके सभापति हो कर भारतवर्षको लौटे। भारतवासियोंने बड़े सम्मानके साथ उनकी अभ्यर्थना की थी। वे बड़े उद्यमशील और स्वदेशवत्सल थे।

नारोजी पण्डित—विश्वनाथ पण्डितके पुत्र। इनके बनाये हुए लक्षणरत्नमालिका नामक धर्मशास्त्र, लक्षणशतक-काव्य और सूक्तिमालिका नामक संस्कृत कवितामें ग्रन्थ पाये जाते हैं।

नारीवाल—पञ्जाबके स्यालकोट जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३२° ५' ३०" और देशा० ७४° ५३' पू०, स्यालकोट शहरसे ३५ मील दक्षिणपूर्व रावीनदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या ५ हजारके लगभग है। प्रायः पांच सौ वर्ष हुए बाजवा जांसी नारूने यह नगर बसाया था। उन्होंके नाम पर नगरका नाम नारीवाल पड़ा है। चमड़ेके व्यवसायके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। यहां अति उत्कृष्ट घोड़ेका साज और जूता तैयार होता है। शहरमें पञ्जाबी एङ्ग्लो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, थाना, मुन्सफी अदालत और सराय है।

मन्दरके बाहर एक गिर्जा अवस्थित है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

मार्त्तिक (सं० त्रि०) मत्त क्षेदादित्वात् ठञ्। मत्तक मत्तसंयोग, जो खूब नाचनेके आदि हो।

नार्थब्रुक (North brook)—लार्ड मेयोकी मृत्युके बाद १८७२ ई०की ३री मईको लार्ड नार्थब्रुक गवर्नर जनरल और राजप्रतिनिधि हो कर भारतवर्षमें आए। उस समय उनकी उम्र ४६ वर्षकी थी। इससे पहले इन्होंने उच्च उच्च राजकार्योंमें नियुक्त हो कर राजनीति विषयमें विशेष अभिज्ञता लाभ की थी। कलकत्तेमें आ कर वे अपना शासन विषय जानने और जिससे उनका शासनकाल शान्तिपूर्ण और समृद्धिसम्पन्न हो उसके लिये विशेष ध्यान देने लगे।

इस समय मध्य एशियामें रूसियाकी ओर लक्ष्य रखना भारत शासनकर्त्ताओंका एकमात्र कर्त्तव्य हो गया था। रूसियावासी जिस अभिप्रायसे भारतके सीमान्तकी ओर आ रहे थे उससे नार्थब्रुकके शान्तिपूर्ण शासनमें बाधा पड़ जानेकी सम्भावना थी। रूसियाने खीवाको जीत लिया। खीवाके खाँने नार्थब्रुकसे सहायताके लिए प्रार्थना की किन्तु वे राजी न हुए। उस समय मध्य एशियाके अधिवासियोंने समझ लिया कि अङ्गरेज लोग रूसियासे डरते हैं, इस समय रूसियावासी यदि चाहें, तो अङ्गरेजोंसे भारतवर्ष छीन सकता है।

नार्थब्रुकके शासनकालका आरम्भ उतना शान्तिमय न था। उस समय भी लार्ड मेयोकी शोचनीय मृत्यु जनताके मनमें जागरूक थी। सीमान्तप्रदेश क्रमशः जटिलरूप धारण करते जा रहे थे और उस समय दुर्भिक्षके लक्षण भी नजर आने लगे। किन्तु लार्ड नार्थब्रुक इन सब भयानक समयोंमें तनिक भी भयभीत वा विचलित न हो कर प्रशान्तचित्तसे अपने कर्त्तव्य पर डटे रहे। वे न तो आडम्बरप्रिय थे और न अनर्थक व्यय युद्ध आक्रमणादि द्वारा राज्यका खर्च ही बढ़ाना चाहते थे। इस प्रकारसे तथा अन्यान्य अनेक सद्गुणों द्वारा उन्होंने थोड़े ही दिनके भीतर प्रजामण्डलका अनुराग अपनी ओर खींच लिया था।

किन्तु मनुष्य कितना ही सावधान क्यों न हो जाय, तो भी वह दैवीविपद उल्लंघन नहीं कर सकता। १८७३ ई०में अनावृष्टिके कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे बङ्गाल और बिहारमें हाहाकार मच गया। भारतवर्षके जैसा बहुजनाकीर्ण स्थानमें दुर्भिक्षके समान दुःखदायी और कुछ भी नहीं है। इससे एक सौ वर्ष पहले भी दुर्भिक्ष पड़ा था, उसमें लाखों आदमी भूखों मरे थे। १८६६ ई०में उड़ीसा दुर्भिक्षकी कथा उस समय लोग भूले नहीं थे। ऐसी अवस्थामें फिर दूसरा दुर्भिक्ष उपस्थित! इस कारण देशके लोग व्याकुल हो उठे।

लार्ड नार्थब्रुक और तत्कालिक बङ्गालके लेफ्टेनेण्ट गवर्नर सर जार्ज कैम्बेल दोनोंने मिल कर दुर्भिक्षको दमन करनेमें कुछ भी कसर उठा न रखी। गवर्मेण्टकी ओरसे प्रचुर अन्न खरीदा गया और स्थान स्थान पर साहाय्यभण्डार भी खोला गया। फिर १८७४ ई०में लोगोंको दूसरे दुर्भिक्षका सामना करना पड़ा। इस सालका दुर्भिक्ष और सालसे भी कहीं बढ़ा चढ़ा था। यह दुर्भिक्ष मई मासमें प्रकाशित हुआ था। इस बार गवर्मेण्टने २० लाख ९० हजार मनुष्योंको भोजन दिया था जिसमें १ करोड़ मन अनाज खर्च किये गये थे।

इसी मई मासमें सुलक्षण भी दिखाई देने लगा। थोड़ा पानी पड़ जानेसे धान्य बोया गया जिससे लोगोंके मनमें कुछ आशाका सञ्चार हुआ। उसी जगह थोड़ा बहुत धान और हैमन्तिक धान्य उत्पन्न हुआ। सर्वथा निश्चित होते न होते दुर्भिक्ष भी अन्तर्हित हो गया। लार्ड नार्थब्रुककी चेष्टा और परिश्रम सार्थक हुआ। उन्होंने असंख्य लोगोंकी प्राणरक्षा करके अनन्त कीर्त्ति और अक्षय पुण्यलाभ किया है। वे दूसरेके जैसा केवल देशके शासनकर्त्ता ही नहीं थे बल्कि देशके पालनकर्त्ता भी थे।

लार्ड नार्थब्रुक केवल अङ्गरेजाधिकृत भारतके सुशासनके लिये यत्नवान् थे, सो नहीं। देशीय राजाओंके आचरणके प्रति भी इनका विशेष ध्यान था। १८७४ ई०में दुर्भिक्षसे जब वे उसे दमन करनेमें लगे हुए थे, उस समय भी वे गायकवाड़के अत्याचारकी बातें सुन कर उन्हें सतर्क करनेसे बाज नहीं आए थे। किन्तु गायकवाड़ मल्हाररावने उस ओर कर्णपात न किया।

जब गायकवाड़के विरुद्ध अभियोग प्रमाणित हुआ, तब नार्थब्रुकने उन्हें पदच्युत करके उनके स्थान पर गायकवाड़वंशीय एक कुमारको अभिषिक्त किया। इनमें राज्यका लोभ लेशमात्र भी न था, अगर रहता तो ऐसे सुयोगमें वे बरोदाराज्यको स्वराज्यभुक्त कर सकते थे।

१८७५ ई०के मध्यभागमें आसाम सीमान्त पर कुछ गोलमाल उपस्थित हुआ। आसामके पार्वतीय प्रदेशोंमें नागाजाति वास करती है। अङ्गरेजाधिकृत राज्यके निकटवर्ती नागालोग अपेक्षाकृत शान्तप्रकृतिके हैं, किन्तु दूरस्थ पार्वतीय प्रदेशोंके नागा अतीव दुर्दान्त, असभ्य और द्वन्द्वप्रिय हैं। १८७२ और १८७३ ई०में नागोंके साथ सीमान्त विवाद मिटानेके लिये दो अङ्ग-रेज कर्मचारी भेजे गये। नागोंके राजाने क्रमागत उन दोनों कर्मचारियोंके साथ विरुद्धाचरण किया था। पीछे नागा लोगोंने उनमेंसे एककी हत्या भी कर डाली थी। १८७४ ई०में तेलिजो नदी और उसके निकटवर्त्ती प्रदेशोंका पर्यवेक्षण करनेके लिये हलकोम साहबके अधिनायकत्वमें कुछ लोग भेजे गये। नागा लोगोंने विश्वासघातकतासे लेफ्टेनेण्ट हलकोम और ७० मनुष्यों-को मार डाला।

जब यह सम्वाद कलकत्ता पहुँचा, तो यहांसे बहुत जल्द एक दल अङ्गरेजी सेना नागोंके विरुद्ध भेजी गई। उन्हें वहां पहुंचनेमें सात दिन लगे थे। कुछ काल तो नागोंने बड़ी वीरतासे लड़ाई की, लेकिन अङ्गरेजी सेनाके सामने उनकी वीरता किसी कामकी न थी। बाद अङ्गरेजी सेना उनके अनेक ग्राम तहस नहस करके तथा अनेक गवादि, शस्य और अन्यान्य सामग्री ले कर कलकत्तेको वापिस आई।

१८७५ ई०के प्रारम्भमें ही एशियाकी सीमान्तसमस्या-ने गुरुतर आकार धारण किया। रूसियाने खोकन्द राज्य पर अधिकार जमा लिया। इस समय अङ्गरेजाधिकृत भारतवर्ष और रूसाधिकारमें केवल बुखारा और खीवाका स्थानिक अंश ही व्यवधान रहा। रूसिया जिससे अग्र-सर न हो सके, इसके लिए विविध चेष्टायें होने लगीं। अन्तमें यह स्थिर हुआ कि रूसवासी अक्सू नदी पार नहीं कर सकते हैं।

लार्ड नार्थब्रूकके शासनके समय महाराणी विक्टोरियाके ज्येष्ठ पुत्र प्रिन्स-आफ-वेल्स भारतवर्ष आए थे। उनका इस देशमें आनेकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी। पीछे १८७५ ई०-की २२वीं अक्टूबरको युवराजके भारतवर्ष आनेका प्रस्ताव पास हुआ। इङ्गलैण्डके किसी किसीने इस प्रस्ताव-का अनुमोदन तो नहीं किया, लेकिन उनका शुभागमन सुन कर भारतवर्षीय प्रजाके आनन्दकी सीमा न रही। इन्हें पूरी आशा थी कि राजकुमारके इस देशमें आनेसे राजा और प्रजाके बीच सौहार्द्यबन्धन दृढ़ हो कर वर्ण-गत विद्वेषभाव जाता रहेगा। १२वीं अक्टूबरको युव-राज लन्दनसे रवाने हुए और १४वीं नवम्बरके चार बजे दिनको बम्बई पहुंचे। उनकी अभ्यर्थनाके लिये नार्थब्रूक और बम्बईके गवर्नर सर फिलिप वोडहाउस वहां उपस्थित थे। युवराजका भारतवर्षमें आना देशके लिए एक सुखका दिन था। सभी राज्य अकृत्रिम आनन्द-में बहने लगे। चार मास तक भारतवर्षके नाना स्थानों-में पर्यटन और परिदर्शन करके १३वीं मार्चको राज-कुमार स्वदेशको लौट गये।

केवल चार वर्ष तक भारतवर्ष पर शासन करके नार्थब्रूकने पदत्याग किया था। उष्णप्रधान देशोंके जलवायु और राजकार्यको गुरुतर चिन्तासे उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था। इसके सिवा इङ्गलैण्ड-की मन्त्रिसभाके साथ किसी किसी विषयमें इनका मत-भेद होने लगा। मन्त्रिसभाके साथ मनोमालिन्य ही उनके पदत्यागका एक प्रधान कारण था।

१८७६ ई०की १५वीं अप्रिलको लार्ड नार्थब्रूक कल-कत्तेको परित्याग कर सेनामेरिस नामक जहाज पर चढ़ स्वदेशको चल दिए। उनके शासनके प्रारम्भमें दुर्भिक्षसे देशकी अवस्था मलिन तो अवश्य हो गई थी, लेकिन बहुत यत्नसे उस मालिन्यको दूर कर, जाते समय वे खिलखिलाते हुए देशको देखते गये थे।

नार्थब्रूकने किसी गुरुतर युद्धकार्यमें हाथ न डाला था। युद्धके मध्य केवल एक वर्ष तक उन्हें भीषण दुर्भिक्षके साथ युद्ध करना पड़ा था। उस युद्धमें वे विजयी निकले थे इन्होंने परराज्य हरण करके वृटिश-राज्यके कलेवरकी वृद्धि नहीं की। वे एक जनप्रिय

वंशसे प्रतिपालित होता और मातुलकी अन्त्येष्टिक्रिया और श्राद्धादिका अधिकारी होता है।

इस जातिमें यह भी एक विशेषता है, कि युवतियां श्वशुरालय नहीं जातीं और न स्वामीके साथ विभिन्न स्थान ही रहती हैं। वे आजीवन मातृगृहमें ही रहती हैं। उनके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह मातुलका उत्तराधिकारी होता है। यथार्थमें जब किसी नायरके भांजा या भांजी नहीं रहते, तब वह उत्तराधिकारविहीन समझा जाता है। उन्हें वे पोष्यपुत्रकी तरह मानते हैं। ये लोग पोष्यभगिनी भी ग्रहण करते हैं और उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता उसे अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं।

पुत्र हो, चाहे कन्या हो अभी स्वहस्तामिनीके अधीन रहते हैं और तारवदजनसे शासित पालित होते हैं। पुत्र जब वयोवृद्ध होता है, तब मातुलसे उत्तराधिकारको हैसियतसे भी कुछ उपार्जन करता, वही उसका निजस्व है, दूसरेके धनमें उसका कुछ भी अधिकार नहीं। कन्याकी सम्पत्ति भी उसके अधिष्ठानमें तारवदको हो जाती है और घरमें जो बड़ा रहता है, वही उस सम्पत्तिकी देखभाल करता है। वह कार्याध्यक्ष माना जाता है, सभी कार्य उसीके हस्ताक्षर पर होते हैं। किन्तु वह सम्पत्ति दूसरेके हाथ बचा देनेका उसका कोई अधिकार नहीं है।

इन लोगोंमें ऐसी प्रथा रहने पर भी स्वहविवाह भ्रूणहत्यादि पाप कभी सुननेमें नहीं आता।

नायरोंका कहना है, कि परशुरामने जब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर डाला था, तब क्षत्रियरमणियाने ब्राह्मणको नियोग कर सन्तान उत्पादन की थी। सम्भवतः उसी परम्पराके अनुसार यहांके नायर वा क्षत्रियकुलमें आज भी यह प्रथा प्रचलित है।

अभी इस जातिके लोग अंग्रेजी शिक्षासे सुशिक्षित हो कर नाना कामोंमें आने जाने लगे हैं। सुतरां युवतियां अपना 'तारवद' कुछ दिनके लिये परित्याग कर दूसरे देशमें पतिका अनुसरण करती हैं। किन्तु इस प्रकारकी संख्या अधिक नहीं है। कारण इन लोगोंमें नियम है कि कोई युवती दक्षिण मलवारकी सीमा 'कोरपुझा' नदी पार नहीं कर सकती। अभी कभी उसका कुछ दोषकारी वह नदी पार भी कर जाता है लेकिन युवतियां कभी भी नहीं।

सन्तानके भूमिष्ठ होने पर उसका मातुल ही जातकर्मादिसम्पन्न करता है। नामकरणादि तारवदके स्त्रियों द्वारा ही होते हैं। बालक जब बारह वर्षका होता है, तब कहीं कहीं उसका यज्ञोपवीत संस्कार होता है। इस समय पूर्वकालमें सभी अस्त्र धारण करते थे। अभी ब्रिटिशशक्ति अवलम्बन करनेके कारण कोई भी अस्त्र नहीं लेता। जिन तारवदके पुरुषगण रूमियाके में निज-हात करते आ रहे हैं, उनके भागिनेयगण इस प्रकारकी प्रथाका पालन करते हैं।

नायरोंका महावीर गिने जाते हैं। दाक्षिणात्यके इतिहासलेखक कर्णल विलक्सने लिखा है - "The Nairs, or military class, are perhaps not exceeded by any nation on earth in a high spirit of independence and military honour" *

ये लोग वीर होने पर भी निर्दोष नीच जातिके ऊपर अस्त्र चलानेमें बाज नहीं आते। यही नायर जीवनका प्रधान दोष है। पहले यहां नायरोंके राह चलते समय क्या मजाल है कि कोई उनके आगे दिखावे। नीच शूद्र बेचारे तो इन्हें दूरसे देख कर ही भाग से कर भागते हैं †। अभी ब्रिटिश गवर्मेण्टके सुशासनसे और पादरियोंकी शिक्षा प्रभावसे नायरोंका उद्धत स्वभाव बहुत कुछ दूर हो गया है। अब ये बाकी नायर लोग भी अनुचित रीतिसे विवाह करने नहीं पाते।

जिस समय दाक्षिणात्यमें अंग्रेज और फरासीसोंमें घोर विवाद चल रहा था उस समय इसी नायर सिपाहीके कौशलसे अंग्रेजोंको जीत हुई थी ‡। हैदरअलीने इन्हें अनेक बार दमन करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु एक बार भी वे कृतकार्य न हुए।

इनका वेशभूषा उतना आडम्बर नहीं होता। स्त्री पुरुष दोनों ही अङ्गुरीयके जैसा अलङ्कारविशेषका

* Wilks Historical Account of India, Vol I p. 4/0.

† Buchanan's Journey through Mysore &c. Vol. II p. 44.

‡ Orme's Military Transactions, Vol. 1, p. 400.

व्यवहार करते हैं। स्त्रियां कभी भी अपने शरीरको ढके न रखतीं। लेकिन अभी अङ्गरेजी-शिक्षाके गुणसे जब वे घरसे बाहर निकलती है, तब एक रुमालसे नितम्ब और वक्षस्थल ढक लेती हैं। बचपनसे ही ये कान छिदा कर मोटी मोटी कनेठियां पहनती हैं। किसी किसी रमणी के कानमें डेढ़ इञ्चका मोटा रिंग देखा गया है। स्वर्ण-हार, वलय, चूड़ी, अङ्गुरीय और कमरबन्द इनके प्रधान अलङ्कार है।

स्त्रियां अपने बालको बड़े यत्नसे रक्षा करती हैं किसी किसीका बाल घुटना तक लटका रहता है।

नायर लोग अभी अङ्गरेजी-शिक्षाके प्रभावसे कोट और कमीज पहनने लगे हैं। लेकिन कानमें अब तक भी कनेठी और कमरबन्द पहनते ही हैं। ये लोग सिरका सब बाल मुँड़वा कर केवल सामनेमें थोड़ी शिखा रख छोड़ते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही शुद्धाचारसे रहते है, इसमें सन्देह नहीं।

नार्षद (सं० पु०) नृषद ऋषिका पुत्र।

नाल (सं० पु०) नलतीति नल बन्धे नल-ण। (ज्वलिति-कसन्तेभ्यो ण। पा ३।१।१४०) १ उत्पलादिका दण्ड, कमल, कुमुद आदि फूलोंकी पोली लंबी डंडी, डाँड़ी। २ काण्ड, पौधेका डंठल। (क्लो०) ३ हरिताल, हरताल ४ लिङ्ग। (पु०) नल-घञ्। ५ जलनिर्गम, जल बहने-का स्थान। ६ जलमें होनेवाला एक पौधा। ७ एक प्रकारका बांस जो हिमालयके पूर्वभाग, आसाम और बरमा आदिमें होता है, टोली, फफोल। ८ गेहूं, जौ आदिकी पतली लंबी डंडी जिसमें बाल लगती है। ९ नली, नल। १० बन्दूकको नली, बन्दूकके आगे निकला हुआ पोला डंडा। ११ सुनारोंकी फुकनी। १२ जुलाहों-को नली जिससे वे सूत लपेट कर रखते हैं, छुंछा, कैंड़ा, छुच्छा। १३ वह रेखा जो कलम बनाते समय छीलने पर निकलता है। १४ रक्तको नलियों तथा एक प्रकार-के मज्जातन्तुसे बनी हुई रस्सीके आकारकी वस्तु। यह एक ओर तो गर्भस्थ बच्चेकी नाभिसे और दूसरी ओर गोल थालीके आकारमें फैल कर गर्भाशयकी दीवारसे मिली होती है। इस नालके द्वारा गर्भस्थ शिशु माताके गर्भसे जुड़ा रहता है। गर्भाशयकी दीवारसे लगा हुआ जो उभरा हुआ थालीकी तरहका गोल छत्ता होता है उसमें बहुत-सी रक्तवाहिनी नसें चारों ओरसे अनेक शाखा प्रशाखाओंमें आ कर छत्तेके केन्द्र पर मिलती हैं जहांसे नाल शिशुकी नाभिकी ओर गया रहता है। इस छत्ते और नालके द्वारा माताके रक्तके योजक द्रव्य शिशुके शरीरमें आते जाते रहते हैं जिससे शिशुके शरीरमें रक्तसञ्चार, श्वास प्रश्वास और पोषणकी क्रियाका साधन होता है। यह नाल पिण्डज जीवों हीमें होता है। इसीसे वे जरायुज कहलाते हैं। मनुष्योंमें बच्चा उत्पन्न होने पर यह नाल काट कर अलग कर दिया जाता है।

नाल (अ० पु०) १ लोहेका वह अर्द्ध चन्द्राकार खण्ड जिसे घोड़ोंको टापके नीचे या जूतोंकी एड़ीके नीचे रगड़से बचानेके लिये जड़ते हैं। २ तलवार आदिके म्यानकी साम जो नोक पर मढ़ी होती है। ३ कुण्डलाकार गढ़ा हुआ पत्थरका भारी टुकड़ा जिसके बीचोबीच पकड़ कर उठानेके लिये एक दस्ता रहता है। इसे बलपरीक्षाके लिये कसरत करनेवाले उठाते हैं। ४ लकड़ीका वह चक्कर जिसे नीचे डाल कर कूएंकी जोड़ाई की जाती हैं। ५ वह रुपया जिसे जुआरी जुएका अड्डा रखने-वालेको देता है। ६ जुएका अड्डा।

नाल—सूक्तिकर्णामृतधृत एक संस्कृत कवि।

नाल—बम्बई प्रदेशके अधीन खान्देशके अन्तर्गत एक सामान्य भीलराज्य। यहांसे काठके धड़की रफ़नी होती है।

नालक (सं० पु०) कलाय, उरद।

नालकटाई (हिं० स्त्री०) १ हालके उत्पन्न बच्चेकी नाभिमें लगी हुए नालको काटनेकी क्रिया। २ नाल काटनेकी मजदूरी।

नालकनाद—कूर्गराज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। राजा दह-बीर-राजेन्द्रके समयमें यहां कूर्गराज्यकी राजधानी थी। कूर्गकी वर्त्तमान राजधानीसे यह स्थान २४ मील दूरमें पड़ता है।

नालकी (हिं० स्त्री०) इधर उधरसे खुली पालकी जिस पर एक मिहराबदार छाजन होती है। व्याहमें इस पर दूल्हा बैठ कर जाता है।

नालन्द—मगधके अन्तर्गत एक प्राचीन बौद्धक्षेत्र और

हटिश सरकारको कर-स्वरूप देने पड़ते हैं। यहांको प्रधान उपज गेहूं, जौ, ज्वार और अफीम है।

नालायक (अ० वि०) अयोग्य, निकम्मा, मूर्ख।

नालि (सं० स्त्री०) नालयतीति नल-णिच्-इन्। १ नाड़ी, शिरा। २ पद्म आदिका नाल, डांड़ी। ३ शाकभेद, एक प्रकारका साग।

नालिक (सं० पु०) नल एव नालस्तद्विशेषः, स मोक्षणत्वेनास्त्यस्येति ठन्। १ महिष, भैंसा। (क्ली०) नालमस्त्यस्येति। २ पद्म, कमल। नालः कार्यसाधनत्वेनास्त्यस्येति ठन्। ३ अस्त्रविशेष, एक प्रकारका हथियार। बन्दूकके जैसा इसको भी नलीमें कुछ भर कर चलाते थे। ४ रक्तगन्धबोल। ५ नाड़ीशाक एक प्रकारका साग। ६ चर्मकषा।

नालिका (सं० स्त्री०) नाला एव, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। १ नाला, छोटी नाल या डंठल। २ नाली। ३ जुलाहोंकी नली जिसमें वे लपेटा हुआ सूत रखते हैं। ४ नालिताशाक, पटुआ साग। ५ एक प्रकारका गन्धद्रव्य। ६ चर्मकषा।

नालिकेर (सं० पु०) नारिकेल, लरयोरैक्यात् रस्य लः लस्य रश्च। १ नारिकेल, नारियल। इस शब्दका कहीं कहीं क्लीवलिङ्गमें भी व्यवहार होता देखा जाता है। नारिकेल देखो। २ कूर्मविभागके अग्निकोणस्थित देशभेद। (वृहत्सं० १४ अ०)

नालिकेरी (सं० स्त्री०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग।

नालिजङ्घ (सं० पु०) द्रोणकाक, डोमकौवा।

नालिता (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात शाकभेद, एक प्रकारका पटुआ जिसके कोमल पत्तोंका साग होता है।

नालिनी (सं० स्त्री०) नाकके एक छेद अर्थात् नथनेका तान्त्रिक नाम।

नालिश (फा० स्त्री०) १ किसीके विरुद्ध अभियोग, फरियाद।

नाली (सं० स्त्री०) नालि वाहुलकात् ङीष्। १ शाककदम्बक, करेमूका साग जिसके डण्ठल नलीकी तरह पोले होते हैं। २ हस्तिकर्णवेधनी हाथियोंका कनछेदनी। ३ पद्म, कमल। ४ घटीयन्त्र, घड़ी। ५ नाड़ी, रक्त आदि बहनेकी नली, धमनी। ६ मनःशिला।

नाली (हिं० स्त्री०) १ जल बहनेका पतला मार्ग, गड्ढा जिसमें हो कर जल बहता हो। २ गलीज आदि बहनेका मार्ग, मोरी, पनाला। ३ डंड करनेका गड्ढा जिसमेंसे हो कर छाती निकल जाय। ४ वह गहरी लकीर जो तलवारके बीचोबीच पूरी लम्बाई तक गई होती है। ५ घोड़ेकी पीठ पर गड्ढा। ६ बैल आदि चौपायोंको दवा पिलानेका चोंगा, ढरका।

नालीक (सं० पु०) नाल्या नलयन्त्रात् कायति शब्दायते कै-क। १ शर, वाण। लघु वाणका नाम नालीक है। यह वाण नलयन्त्र द्वारा फेंका जाता है। पर्वतके ऊंचेसे ऊंचे गह्वरमें और दुर्गयुद्धमें यह वाण काममें लाया जाता है। (क्ली०) २ शल्याङ्ग। ३ पद्मसमूह। न-अलीकमिति। ४ सत्य। ५ मृणाल।

नालीकिनी (सं० स्त्री०) नालीकमस्त्यस्य इति नालीक-इनि, ङीप्। पद्मसमूह।

नालीघटी (सं० स्त्री०) नाड़या दण्डकालस्य शोधनार्थो घटी इत्यस्य न। दण्डादि ज्ञापक घटीभेद, एक प्रकारकी घड़ी जिससे दण्डादिका पता लग जाता है।

नालीप (सं० पु०) कदम्बक, एक प्रसिद्ध वृक्ष, कदम्ब।

नालीव्रण (सं० पु०) नालीगतो व्रणः। नाड़ीव्रण, नासूर।

नालुक (सं० वि०) १ क्षय, दुबला। २ जिसके मुखमें नाल पड़े। (पु०) ३ गन्धभेद, एक गन्धद्रव्य।

नालोट (हिं० वि०) बात कह कर पलट जानेवाला, मुकर जानेवाला, इनकार करनेवाला।

नाल्यपुष्पी (सं० स्त्री०) महाशणक्षुप, एक प्रकारका पटसन।

नाल्व (सं० वि०) नलस्यादूर देशादि, मह्वाशादित्वात् ण्य। नलके समीपका।

नाव (हिं० स्त्री०) लकड़ी लोहे आदिकी बनी हुई जलके ऊपर तैरने या चलनेवाली सवारी, जलयान, किश्ती। विशेष विवरण नौका शब्दमें देखो।

नावक (फा० पु०) १ एक प्रकारका छोटा वाण, खास तरहका तीर। २ मधुमक्खीका डङ्क।

नावक (हिं० पु०) केवट, मांझी, मल्लाह।

नावघाट (हिं० पु०) नावोंके ठहरनेका घाट, नदी, झील

आदिके किनारेका वह स्थान जहाँ नावें ठहरती हों।

नाधनम् (स० स्त्री०) नस्य, नस फुँकनी।

नाधना (हिं० क्रि०) १ जुताना, नधाना। २ प्रविष्ट करना, जुड़ाना। ३ डालना, फँसना, मिलाना।

नावमिक (स० त्रि०) नवम्-ठक्। नवम संख्यायुक्त, जिसमें नौ हों।

नावयज्ञिक (स० पु०) नवयज्ञस्य तत्प्रतिपादकग्रन्थस्य व्याख्यानो ग्रन्थ ठञ्। १ नवयज्ञप्रतिपादक व्याख्यान ग्रन्थविशेष।

नावरा (हिं० पु०) दक्षिणमें होनेवाला एक पेड़। इसकी लकड़ी बहुत साफ, चिकनी और मजबूत होती है। मेज कुरसी आदि सजावटके सामान इससे बहुत अच्छे बनते हैं।

नावी (हिं० पु०) वह रकम जो किसीके नाम लिखी हो।

नावा (स० स्त्री०) नौका।

नावाकिफ (फा० वि०) अनभिज्ञ, अनजान।

नाविक (स० पु०) नावा तरतीति नौ ठन्। कर्णधार, माँझी मल्लाह।

जो डाँड़, पाल आदि यन्त्रोंकी सहायतासे नदी आदिमें नाव चलाता है, उसीका साधारण नाम नाविक है। नाविक लोगोंका विश्वास भूल कर भी नहीं करना चाहिए। नदी, खाई आदि जलस्रोत हो कर जानेमें दार्शनिक यन्त्रकी जरूरत नहीं पड़ती। सुतरां उस गमनागमनका कोई विशेष नियम लिपिबद्ध करना आवश्यक है। केवल नाविक या मल्लाहके थोड़ा दूर दर्शन और बहुदर्शिता रहनेसे हो वे सहज और निर्विघ्नतापूर्वक उन सब जलस्रोतोंमें आ जा सकते हैं। किन्तु सामुद्रिक नाविकोंको शिक्षित दक्ष और बुद्धिमान होना आवश्यक है। इसी कारण यहाँ पर समुद्रमें गतिविधिका नियम और प्रथाओं आदि संक्षेपमें दी जाती है।

अति प्राचीन कालमें भारतवासी और इजिप्टवासीके पहले पहल समुद्रमें जाने आनेका प्रमाण मिलता है। मिश्रवासी अर्णवपोतकी सहायतासे भारतवर्षमें वाणिज्य करने आते थे। पुराकालीन समुद्रनाविकोंमेंसे फिनीशीय लोग ही विशेष प्रसिद्ध हैं। वे अपने परिचित सभी जातियोंके मध्य समुद्रयानयोगसे व्यवसाय करते थे। इनका टायर नामक बन्दर पृथ्वी भरमें सबसे प्रधान वाणिज्यबन्दर समझा जाता था। पहले इन्होंने कई एक जहाज प्रस्तुत किए। उन्हीं जहाजोंकी सहायतासे वे ब्रिटिशमें उपनिवेश स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे। फिनीशीय-उपनिवेशमें कार्थेज बहुत प्रसिद्ध था। कार्थेजके अधिवासी लोग यूरोप और अफ्रिकाके पश्चिम उपकूलस्थ जितने स्थान हैं, वहाँ जहाजकी सहायतासे वाणिज्य करते थे। इसके बाद ग्रीकलोग नाव चलानेमें अग्रसर हुए। वे अपने आर्गो नामक जहाज पर चढ़ कर कलखिससे स्वर्णमय मेषकी लोम लाते थे, यह बात सबको विदित है। ग्रीकोंके बाद रोमवासियोंने जहाज बनाने और चलानेकी विद्या सीख कर अलेक्जन्द्रिया नामक बन्दर स्थापन किया। इस बन्दरके स्थापित होनेसे ही कार्थेजका पूर्व गौरव जाता रहा। अलेक्जन्द्रिया बन्दर एक समय जनपद और वाणिज्य विषयक उन्नतिके पृथ्वी भरमें सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया था। रोमके ध्वंसके बाद कुछ दिनके लिये यूरोपमें नाव चलानेकी विद्याशिक्षा और परिचालन आदिका अधःपतन हुआ। पीछे जिनोआवासी जहाज चलानेमें विशेष पटु निकले। जिनोआके बाद भेनिसके लोगोंने समुद्रयानकी उन्नतिमें खूब सफलता पाई। इस समय 'हैनसैटिकलीग' नामक एक दल बणिकने वाणिज्य व्यवसायके लिए भारतवर्ष और अमेरिकाके नाना स्थानोंमें नाविकोंके नाव चलानेके अनेक नियम लिपिबद्ध किए जो आज भी 'हैनसैटिकलौस' नामसे प्रसिद्ध है। उस समयसे ले कर वर्त्तमान समय तक नाविक विद्याके विषयमें जो उन्नति साधित हुई है, अपर्याप्त-स्थानमें उसका विवरण लिपिबद्ध करना सहज नहीं है। जहाज गठन-प्रणालीकी उन्नति और जहाज चालित होनेके लिए अग्निमययन्त्रका प्रचलन और नये नये यन्त्रोंका आविष्कार होनेसे जो समुद्रमें आने जानेके लिये जो विशेष सुविधा हुई है उसमें जरा भी सन्देह नहीं। प्राचीनकालमें डाँड़ चलानेवाले जहाजके टाटा तलके ऊपर बैठ कर डाँड़ चलाते थे। किसी किसी जहाजमें दो तीन सौ पाटातन रहते थे। सुतरां जहाजकी गति मनुष्यके सामर्थ्यके ऊपर निर्भर रहती थी। अभी

पाटाननके बदले पालका व्यवहार होने लगा है। जिस ओरसे हवा चलती है, उस ओर पाल और डांड़ द्वारा बहुत तेजीसे वे नाव ले जाते हैं। फिर वाष्पीय कलका आविष्कार हो जानेसे दिनों दिन समुद्रयात्रामें विशेष सुविधा होती जा रही है। पूर्वकालमें नाविकोंका जहाज चलानेका काम बहुत असुविधाजनक था। अभी एकमात्र दिग्दर्शनयन्त्रका आविष्कार हो जानेसे वह असुविधा बहुत कुछ जाती रही। पूर्व समयमें नाविकगण दिनको सूर्यकी ओर और रातको ध्रुवतारा (North Star)की ओर लक्ष्य करके जहाज चलाते थे। कुहेरा वा मेघाच्छन्न आकाशके दिन वे भूल कर भी जहाज नहीं चलाते थे। दिग्दर्शनयन्त्रकी सृष्टि हो जानेसे अभी सूर्य वा अन्यग्रह उपग्रहके उदयके आसरे ठहरना नहीं पड़ता है। दिग्दर्शनयन्त्रके हो जानेसे भी उत्कृष्ट मानचित्रके अभावमें बहुत दिनों तक नौयात्राकी कोई विशेष सुविधा देख नहीं पड़ती थी। उस समयका मानचित्र भ्रमसे परिपूर्ण था। पीछे मारकेटर प्रणीत मानचित्रका प्रचार हो जानेसे प्राचीनकालकी जहाज चलानेकी नियमावली और युक्ति बहुत कुछ बदल गई है। अनन्तर लगारिथमकी तालिकाके प्रस्तुत हो जानेसे जहाजचालनोपयोगी सब प्रकारका बड़ा बड़ा अङ्क बनानेका विशेष सुभीता हो गया है। सेक्सटाण्ट, कोयाड्रण्ट और दिग्दर्शनकी सहायतासे सूर्य और अन्यान्य ग्रहोंकी ऊंचाई तथा चन्द्र और दूसरे दूसरे ग्रहोंको परस्पर दूरीका स्थिर करना अनायास सिद्ध हो गया है। इसके अलावा नाविक लोगोंके पास लगारिथम-तालिका और नौ-पञ्जिका रहती है। सब यन्त्रों और मानचित्र आदिकी सहायतासे नाविकगण अपने अपने जहाजका अक्षांश और देशांश स्थिर कर लेते हैं तथा जहाज परसे दूरवीक्षण द्वारा जो बन्दर वा अन्तरीप नजर आता है उसकी भी अक्षरेखा और द्राघिमा अपना मानचित्र देख कर ठीक करते हैं। मानचित्रसे केवल इतना ही काम नहीं लेते, बल्कि समुद्र-पथमें कहां पहाड़ है उसे भी मानचित्रमें देख कर उस राहको छोड़ देते और निःसन्देहचित्तसे दूसरी राह हो कर जहाज आदि ले जाते हैं जिससे उसका कुछ भी नुकसान नहीं होता। इसके सिवा कितने नैसर्गिक व्यापारके प्रति नाविकोंको लक्ष्य रखना पड़ता है। क्योंकि सामान्य सहायता ही नाविकोंके लिये विशेष कार्यकारी है, नहीं तो साधारण भूल हो जानेसे ही जहाज टूट फूट जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं। स्रोतके बलके प्रति समुद्र जलके रंगके प्रति (समुद्रतीरके निकटस्थ जलका रंग गभीर जलके रंगकी अपेक्षा भिन्न रहता है) तथा पक्षीके गमनागमनके प्रति नाविकोंका विशेष लक्ष्य रहता है। तूफान आदिका निरूपण करनेके लिये उनके पास हमेशा वेरोमीटर रहता है। इन सब अत्यावश्यक यन्त्रोंकी सहायतासे अभी समुद्रयात्रा बहुत सहज हो गई है।

भारतवासी प्राचीनकालमें जिस जहाज पर समुद्र-यात्रा करते उसे 'यानपात्र' कहते थे। इस 'यानपात्र'का बहुत लम्बा चौड़ा विवरण है, लेकिन विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा गया। चीनवासी भी जिस जहाज पर समुद्रमें जाते थे, वह 'यानक' वा 'याङ्क' कहलाता था।

नाविकविद्या (सं॰ स्त्री॰) नौका, जहाज आदि चलानेकी विद्या। नाविकको इस विद्यामें विशेष पारदर्शी होना उचित है।

नाविन् (सं॰ त्रि॰) नौरस्त्यस्य व्रीह्यादित्वात् पक्षे इनि। पोताध्यक्ष, नाविक, कर्णधार, मांझी।

नावी (सं॰ स्त्री॰) श्रेणीबद्ध नौका, जहाज प्रभृति।

नाविल (अं॰ पु॰) उपन्यास।

नावोपजीवन (सं॰ पु॰) नावा उपजीवनमस्य आर्षे अलुक् समास। नौकाचालनोपजीवि जातिभेद, एक प्रकारकी जाति जिसका पेशा नाव, जहाज आदि चालन है। महाभारतमें इस जातिका उल्लेख देखनेमें आता है।

"निषादो मद्गुरं सूते दासं नावोपजीवनम्।"

(भारत अनु॰ ४८ अ॰)

नावोपजीवी (सं॰ पु॰) वह जाति जो नाव जहाज आदि चला कर अपनी जीविकानिर्वाह करता हो।

नाव्य (सं॰ त्रि॰) नावा-तार्य्यं नौ-यत् (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) १ नौकागम्य देशादि, नौकादि विना जिसका पार करना कठिन हो। (पु॰) नवस्य भावः ष्यञ्। २ नूतनत्व, नयापन। ३ तरुणावस्था, जवानी।

नाभ्युदक (सं॰ क्लो॰) 'नाभिसितमुदकम्,' नाभि पर्य्यन्तम् नाभिदघ्नसमाप्ति यावदुदकम्। १ नाभिपरिमित जल, नाभिभर पानी। २ अग्निहोत्रार्थ अग्निस्थापनार्थ स्थापित जल। यह जल पीना निषेध है।

नाश (सं॰ पु॰) नश भावे घञ्। १ ध्वंस, नियम, बरबादी। २ अदर्शन, गायब होना। ३ पलायन, भाग जाना। ४ परित्याग।

वस्तुका नाश होता है, इसे सांख्यकारगण स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि कारणमें लयका नाम नाश है। वस्तु जब कारणमें लीन हो जाती है तब उसे नाश कहते हैं। सूक्ष्म कारणमें लीन होनेसे सूक्ष्मता के हेतु उसकी उपलब्धि नहीं होती। 'नाशः कारणलयः' (सांख्यसूत्र) कारणमें लय नाश है अर्थात् सूक्ष्मीभूत होनेका नाम आत्यन्तिक नाश है। कार्य कारणमें लीन होता है, दूसरी बार उस कारणसे कार्य हुआ करता है, किन्तु आत्यन्तिक नाश होनेसे फिर उससे कार्योत्पत्ति नहीं होती।

नैयायिक लोग नाशको ध्वंसाभाव मानते हैं। यह अभाव नित्य है।

समस्त विषयोंकी चिन्ता करते करते पुरुषको आसक्ति उत्पन्न होती है। इसी आसक्तिसे अभिलाष, अभिलाषसे क्रोध क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे विनाश उपस्थित होता है।

असदाचरण, पारदार्य अभक्ष्यभक्षण अतीतकर्मा चरण अर्थात् शास्त्रानुसार नहीं चलना, ये सब कार्य करनेसे बहुत जल्द कुल नाश होता है। ब्राह्मण और उपवको पितको भिक्षा देनेसे भी कुलनाश शीघ्र होता है।

विनाश होनेका पूर्व लक्षण मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जब पुरुष अपने आचार व्यवहारका परित्याग करते हैं तब देवता भी उन्हें परित्याग करते हैं। उस समय नाना उपसर्ग उपस्थित होते हैं। यह उपसर्ग तीन प्रकारका है—दिव्य, आन्तरीक्ष और भौम। ग्रह और नक्षत्रजनित दिव्य उपसर्ग; उल्कापात, निर्घात आदि आन्तरीक्ष और भूकम्प, जलाशयादिका दूषित होना भौम उपसर्ग है। ये सब उत्पात देखनेसे समझना चाहिए, कि नाश पहुंच गया है।

नाशक (सं॰ त्रि॰) नाशयतीति नश-णिच् ण्वुल्। १ ध्वंसक, नाश करनेवाला, बरबाद करनेवाला। २ वध करनेवाला मारनेवाला। ३ दूर करनेवाला, न रहने देनेवाला।

नाशकारी (हिं॰ वि॰) नाश करनेवाला।

नाशन (सं॰ त्रि॰) नाशयतीति नश-णिच्-ल्यु। १ नाशक, नाश करनेवाला। (क्ली॰) २ उच्छेदन विलोपन।

नाशपाती (तु॰ स्त्री॰) काश्मीर, हिमालयके किनारे पर्वत, दक्षिणमें नीलगिरि, बंगलोर आदिमें तथा भारतवर्षमें थोड़े बहुत सब स्थानोंमें मिलनेवाला एक पेड़। यह मझोले डीलडौलका होता है। इसके पत्तकी मिलती सेबमें होती है। इसकी पत्तियां अमरूदकी पत्तियोंके समान बड़ी पर चिकनी और चमकीली होती हैं। इसमें सफेद फूल लगते हैं, लेकिन फूलोंके केसर लम्बे बैंगनी होते हैं। इसके फल गोल होते और उनके गूदेकी बनावट कुछ दानेदार होती है। बीज गूदेके भीतर बीचोबीच चार छोटे कोशोंमें रहते हैं। फलका अधिकांश श्वेत कठिन गूदा ही होता है इससे इसके कटे हुए टुकड़े मिश्रीके टुकड़ोंके समान जान पड़ते हैं। काश्मीरकी नाशपाती और स्थानोंसे बड़ी अच्छी होती है और नाख या नाखकी नामसे प्रसिद्ध है। नाशपाती यूरोप और अमेरिकाके प्रायः उन सब स्थानोंमें होती है जहां सरदी अधिक नहीं पड़ती। वहां इसकी लकड़ी पर नक्काशी होती है और उससे अनेक सामान बनते हैं। आयुर्वेदमें नाशपातीको अमलस्वच बतलाया है। यह वातवर्द्धक मधुर, भारी, रोचक तथा पित्तवातनाशक माना गया है। सेब और नाशपाती एक ही जातिके पेड़ हैं।

नाशयित्री (सं॰ स्त्री॰) नाशकर्त्री, नाश करनेवाली।

नाशवान् (सं॰ त्रि॰) नश्वर, अनित्य, नाशको प्राप्त होनेवाला।

नाशित (सं॰ त्रि॰) विनाशित, जिसका नाश किया गया हो।

नाशिन् (सं॰ त्रि॰) नाशः अस्त्यर्थे इति नाश इनि। १ नाशविशिष्ट, नष्ट होनेवाला। २ नाशक, नाश करनेवाला।

नासिर-ई-खुसु—एक पारसिक कवि। ये हिजरी पञ्चम शताब्दीमें वर्त्तमान थे। ये भावुक कवि और मुसलमान-धर्मावलम्बी सियासम्प्रदायके थे। सम्राट् अकबरशाहके शासनकालमें इनकी कविताका खूब आदर होता था। इनके बनाये हुए ग्रन्थोंमें फरहङ्ग-इ जहाङ्गीरी उल्लेखयोग्य है।

नासिर-उल्-मुल्क—पीरवान्प्रदेशवासी एक मुल्ला। जब बैराम खाँ कन्दहारमें रहते थे, तब ये खाँ साहबके विशेष अनुरक्त थे। इनका असल नाम पीरमहम्मद था। जब अकबर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे, तब ये बैरामकी सहायतासे अमीरके पद पर प्रतिष्ठित हुए। इसके कुछ दिन बाद पीरमहम्मदने अलवरराज हाजी खाँके विरुद्ध युद्धयात्रा की। युद्धमें हाजी खाँ नौ दो ग्यारह हो गये इस पर इन्होंने अलवर और देवलीसचारी नामक स्थान सरकारी राज्यमें मिला लिये और हीमूके पिताको पकड़ कर उसे इस्लामधर्ममें दीक्षित होनेके लिए अनुरोध किया। अस्वीकार करने पर पीरमहम्मदने उसे मार डाला और लूटका माल अपने हाथ ले कर अकबरके समीप पहुंचे।

देवली सचारीमें हीमूकी जन्मभूमि थी। इस युद्धमें हीमूको परास्त कर इन्होंने नासिर-उल्-मुल्ककी उपाधि प्राप्त की। उक्त उपाधिसे भूषित हो कर ये इतने गर्वित हो गये थे, कि अपने एकमात्र आश्रयस्वरूप बैरामको अवज्ञा करनेसे बाज नहीं आए। अन्तमें शेख गदाईके कहनेसे बैरामने इन्हें बियानादुर्गमें बन्द कर रखा; पीछे इन्हें तीर्थयात्रा करनेकी अनुमति दी। बियानासे गुजरात जाते समय राहमें इन्हें आधमखाँसे प्रेरित एक पत्र मिला। उस पत्रके मर्मानुसार ये कुछ काल तक रणस्तम्भगढ़में ठहरे। जब इन्होंने सुना कि बैरामखाँके अनुचरोंने उनका पीछा किया है, तब वे फिर गुर्जरकी ओर चल दिये। बैरामके इस असद्व्यवहारसे अकबर शाह बहुत दुःखित और क्रोधान्वित हुए। पीरमहम्मदको जब मालूम हुआ कि बैरामकी लाञ्छना और अपमानना हुई है, तब वे पुनः दिल्लीको लौटे। इस बार सम्राट् अकबरने इन्हें खाँकी उपाधि दी। ९६८ हिजरीमें ये सम्राट्के आदेशसे मालवकी ओरमें गये। यहां ये अपने सहयोगी आधमकी सहायतासे मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। ९६८ हिजरीमें बाजबहादुरने मालव पर चढ़ाई कर दी। दोनोंमें घनघोर युद्ध हुआ। बाजबहादुर परास्त हुए और इन्होंने उनका बीजागढ़ अपना लिया। पीछे खान्देश जा कर इन्होंने बुरहानपुरकी राजधानीमें लूटमार मचाई और लूटका माल ले कर वहांसे चम्पत हो गये। राहमें बाजबहादुर इन पर टूट पड़े। ये जान ले कर भागे, किन्तु भागते समय नर्मदा नदीके जलमें इनके प्राण नष्ट हुए।

नासिर-उद्दीन् महम्मूद—दिल्लीके दासवंशीय राजाओंमेंसे नवम राजा। हिजरी ६४४से ६६४ अथवा १२४६से १२६५ ई० तक इन्होंने शासन किया। ये दिल्लीके सुलतान अलतमसके सबसे छोटे लड़के थे।* १२४६ ई०में इनके भतीजे अलाउद्दीन् सुमायुदके गुप्तभावसे मारे जाने पर ये दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। इनका अधिकांश समय विद्याभ्यासमें व्यतीत होता था। राजकार्य-परिचालनका भार बलबनके हाथ सौंपा गया था। नन्दनदुर्ग (देवकाली)-जय, राजपूतानेके अन्तर्गत नरवारराज चौचाहड़देवके विरुद्ध युद्ध, चाहड़देवकी पराजय और नरवारदुर्गका अधिकार, नागोरमें इजउद्दीन् बलबन्का विद्रोह ये सब घटनायें इन्होंके शासनकालमें घटी थीं। १२५६ ई०में जब मीरटके राजपूतगण विद्रोही हो उठे थे, तब बलबन्ने बहुत वीरताके साथ उनका दमन किया था। इस समय जङ्गीसखाँके पौत्र पारस्यराज हुलाकूने दिल्लीमें एक दूत भेजा।

बहुत दिन रोगग्रस्त रह कर अन्तमें १२६५ ई०के शेषभागमें इनका प्राणान्त हुआ। ये अत्यन्त मितव्ययी और परिश्रमी थे। यहां तक कि जब पाठाभ्याससे इनका मन ऊब जाता था, तब वे अपने हाथसे कुरान लिखने बैठ जाते थे। अन्यान्य राजाओंकी तरह इनके अनेक स्त्रियां वा बेगम न थीं। इनके केवल एक स्त्री थी जो इनका खाद्य पकाती तथा शय्यारचना आदि

* एलफिनष्टन्, मार्शमैन, बिमारिज और राबर्ट सिवल आदि ऐतिहासिकोंने इस नासिर-उद्दीन्को अलतमसका पौत्र बतलाया है। किन्तु तबकात-इ-नासिरी नामक सामयिक इतिहासमें ये अलतमसके कनिष्ठ पुत्र माने गये हैं।

कार्य किया करती थी। फिरिश्ताने लिखा है, 'एक दिन सम्राट्के लिये रोटी पकाते समय बेगमका हाथ जल गया। इस समय बेगमने सम्राट्के सामने एक दासीकी सहायता मांगी। इस पर सम्राट्ने धर्म नष्ट हो जानेके डरसे बेगमका प्रस्ताव नामञ्जूर किया और साथ साथ उपदेश दिया कि 'सहिष्णुताके साथ अपना कर्त्तव्य कर्म करनेसे अन्तमें ईश्वरका अनुग्रह प्राप्त होता है।' उनकी ऐसी ईश्वरभक्ति और आत्मश्लाघना देख कर ज्ञात होता है, कि इन्होंने अपना सारा जीवन धर्मकर्ममें ही व्यतीत किया था, राजकार्य देखनेका इन्हें कुछ भी अवकाश नहीं मिलता था।

नाशुक (सं० त्रि०) अनुद्योत, नश्वर, नष्ट होनेवाला।

नाश्ता (फा० पु०) प्रातःकालका अल्पाहार, जलपान कलेवा।

नाश्य (सं० त्रि०) नश-ण्यत्। अ नशनीय नाशके योग्य।

नाषिक (सं० त्रि०) नष्ट हुए आमिषे नाशं ति बाहुलकात् ठन्। १ नष्ट प्रायः, नष्ट होने योग्य। २ जिसकी बहुत नष्ट हुई हो।

नाष्टृ (सं० त्रि०) नश-णिच्-तृच्। नाशक, नाश या बरबाद करनेवाला।

नास (हिं० स्त्री०) १ वह द्रव्य जो नाकमें डाला जाय, वह औषध जो नाकसे सूंघी या सूंघी जाय। २ सुंघनी।

नासकाट्यपुर—नेपालके अन्तर्गत पाटन (ललितपत्तन) प्रदेशके मध्यवर्त्ती एक प्राचीन नगर। इसका प्राचीन नाम कीर्त्तिपुर है। कीर्त्तिपुर नामक यहांके एक छोटा प्राचीन राज्य था जो पीछे पाटन प्रदेशके अधीन हुआ। चन्द्रगिरिपर्वतके नीचे यह राज्य अवस्थित है।

इसके पश्चिममें इन्द्रस्थान और दक्षिणमें महाभारत नामक प्रदेश है। नगरसे उत्तर १॥ कोसकी दूरी पर काठमाण्डू पड़ता है। कीर्त्तिपुर नगर वाग्मतीकी एक उपनदीके किनारे अवस्थित है। यह कभी भी बड़ा नगर नहीं था। पर हां, इसकी अवस्थिति या दुर्भेद्यतावशतः नेपालके प्राचीन इतिहासमें यह बहुत प्रसिद्ध है। किसी समय पृथ्वीनारायणकी विपुल सेना इस उपत्यकामें तीन बार परास्त हुई थी। १७६२-६७ ई०के युद्धमें नेवार लोग तीन वर्ष तक गोरखाओंका सामना करते रहे; तीन वर्षके बाद नेवारोंके परास्त होने पर भी गोरखाओं-को दुःख और अन्याय्य उपद्रव सहन करना न पड़ा था। पीछे सदय व्यवहारका लोभ दिखला कर और अनुग्रहका बहाना कर वे देशमें प्रविष्ट हुए थे। देशमें प्रवेश कर उन्होंने देशवासियोंकी नाक और होंठ एक बार काटे थे, तभीसे नगरका प्राचीन नाम कीर्त्तिपुर बदल कर 'नासकाट्यपुर' रखा गया। यहांके प्राचीन दरबार और मन्दिरादिके भग्नावशेष आज भी देखनेमें आते हैं। १५१५ ई०में यहां हरगौरी मूर्त्तिका एक मन्दिर बनवाया गया था जिसका खण्डहर अब तक भी वर्त्तमान है। १५१३ ई०का बना हुआ भैरवका मन्दिर ज्यों का त्यों विद्यमान है। यहां अनेक यात्री एकत्रित होते हैं। यह मन्दिर नेपाल भरमें अत्यन्त प्रसिद्ध है। मन्दिरमें एक व्याघ्रमूर्त्ति चित्रित है, इसीसे इसका व्याघ्रभैरव नाम रखा गया है। १६६५ ई०में शिरिझा नेवारसे निर्मित गणेशमन्दिर भी उल्लेख योग्य है। इसके तोरणके ऊपरी भागमें अंकित बगलमें गरुड़ारूढ़ा वैष्णवी देवी, दाहिनी बगलमें मयूरासीना कौमारीदेवी, महिषारूढ़ा वाराहीदेवी, प्रेतासना चामुण्डादेवी, वैष्णवीकी बगलमें हस्त्यारूढ़ा इन्द्राणीदेवी और इन्द्राणीकी भी बगलमें सिंहारूढ़ा महालक्ष्मीमूर्त्ति खड़ी है। गणेशमूर्त्तिके ऊपरी भागमें मध्यस्थल पर भैरवमूर्त्ति, उनके दक्षिणमें ब्रह्माणी और उत्तरमें रुद्राणी है। इन सब मूर्त्तियोंको अष्टमातृका कहते हैं। नगरके दक्षिणमें चिलन्देव नामका एक बौद्धमन्दिर है।

नासत्य (सं० पु०) नास्ति असत्यं यस्य (नभ्राण्नपादिति। पा ६।३।७५) इति नञो प्रकृतिभावः। अश्विनीकुमार द्वय। ये देवताओंमें शुद्ध गिने जाते हैं। जहां नासत्य शब्दसे अश्विनीकुमारका बोध होगा, वहां यह शब्द द्विवचनान्त होता है।

नासत्या (सं० स्त्री०) अश्विनीनक्षत्र।

नासपाल (फा० पु०) १ कच्चे अनारका छिलका जो रङ्ग निकालनेके काममें आता है। २ कच्चा अनार। ३ एक प्रकारकी आतिशबाजी।

नासपाली (फा० वि०) नासपालके रङ्गका, कच्चे अनारके छिलकेके रङ्गका।

नासमझ (हिं॰ वि॰) निर्बुद्धि, बेवकूफ, जिसे बुद्धि न हो, जिसे समझ न हो।

नासमझी (हिं॰ स्त्री॰) मूर्खता, बेवकूफी।

नासा (सं॰ स्त्री॰) नासते शब्दायते इति नास-अ (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) ततष्टाप्, वा नास्यतेऽनया नास करणे घञ्, टाप्। १ नासिका, नाक। गर्भस्थ शिशुको ५ महीनेमें नाक उत्पन्न होती है। नासिका देखो। २ द्वारोपरिस्थित काठ, द्वारके ऊपर लगी हुई लकड़ी, भरेटा। ३ वासकवृक्ष, अड़ूसा। ४ नासारन्ध्र, नाकका छेद, नथना।

नासागतरोग (सं॰ पु॰) नासागत रोगविशेष, नाकके भीतरका एक प्रकारका रोग। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—

नासारोग ३१ प्रकारका है। यथा—अपीनस्य, पूतिनस्य, नासापाक, शोणितपित्त, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतिनाह, परिस्रव, नासाशोष, चार प्रकारका अर्श, चार प्रकारका शोफ, सात प्रकारका अर्बुद और पांच प्रकारका प्रतिश्याय।

इन ३१ प्रकारके रोगोंका यथायथ लक्षण लिखा जाता है। नासारन्ध्ररोध, धूपन, पुनः पुनः पचन, क्लेदजनन और गन्धरसको अनुपलब्धि ये सब रोग होनेसे अपीनस रोग समझा जाता है। यह वातश्लेष्मजन्य प्रतिश्यायके साथ समान लक्षणविशिष्ट है।

गलदेश और तालुमूलमें दोष विदग्ध हो कर जब मुख और नासिकासे दुर्गन्ध वायु निकलती है, तब उसे पूतिनस्यरोग कहते हैं।

नासाग तरल कर्टक मर्मस्थानमें बलवान् पाकके उत्पन्न होनेसे नासापाक रोग समझा जाता है। इस रोगमें क्षत और क्लेद होता है। दोष (पित्त, शोणित और श्लेष्मा)के विदग्ध होनेसे अथवा ललाटदेश आहत-प्रयुक्त नासिकासे रक्तमिश्रित पीपके निकलनेसे पूयरक्त रोग होता है।

नासारन्ध्रमें मर्मस्थानके दूषित होनेसे जब नासारन्ध्रसे कफप्रयुक्त वायु शब्द करती हुई निकलती है, तब उसे क्षवथुरोग कहते हैं।

तीक्ष्ण शिरोविरेचनप्रयोग वा कटुद्रव्यके आघ्राण, सूर्यनिरीक्षण अथवा सुवादि-द्वारा तरुणास्थि नामक मर्मके उद्घाटित होनेसे क्षवथु (छिक्का) होता है, इससे पित्ततप्त मूर्द्धदेशमें सञ्चित हो कर गाढ़ विदग्ध लवण-रसविशिष्ट कफ मूर्द्धदेशसे नाक हो कर निकलने लगता है। इसीको भ्रंशथु रोग कहते हैं।

नासारन्ध्रसे जब धूमकी तरह वायु निकलती है और नासारन्ध्र प्रदीप्तकी तरह जलने लगता है, तब उसे दीप्त रोग कहते हैं।

उदानवायु जब कफसे ढक जाती है और स्रोत-मार्गमें विकृत रह कर घ्राणपथको आवृत करती है, तब उसे नासाप्रतीनाहरोग कहते हैं।

नासिकासे अजस्र विशेषतः रातको यदि निर्मल जलकी तरह आस्राव निकले, तो वह नासापरिस्राव-रोग कहलाता है। घ्राणरन्ध्रस्थित श्लेष्मा जब वात-पित्तसे शुष्क हो जाय और कष्टसे श्वासक्रिया हो, तो उसे नासापरिशोष कहते हैं। प्रतिश्यायादिका विषय पीछे लिखा जायगा।

इसकी चिकित्सा।—पूतिनस्यरोगमें नाड़ीस्वेद, स्नेहस्वेद, वमन और शंसनका प्रयोग करना चाहिए। तीक्ष्णरस-योगमें लघु अन्न, अल्प भोजन, उष्णोदक पान और उपयुक्त कालमें धूम पान कर्त्तव्य है। हिंगु, त्रिकटु, इन्द्रयव, शिवाटी, लाक्षा, कुङ्कुम, कटफल, कुठ, वच, इलायची, विड़ङ्ग और करञ्ज इन सब द्रव्योंको गोमूत्रके साथ सरसोंके तेलमें पाक कर नस्यका प्रयोग करना चाहिए।

नासापाकरोगमें नाकके बाहर और भीतर पित्त-नाशक विधान कर्त्तव्य है। पीछे रक्तका भलीभांति साफ कर क्षीरवृक्षके छिलकेका घीके साथ परिषेचन और प्रलेप देना उचित है।

पूयरक्तरोगमें नाड़ीव्रणको तरह चिकित्सा करनी होती है। वमन करा कर अवपीड़न, तीक्ष्णद्रव्यका धूम और शोधनी द्रव्यके चूर्णनस्यका प्रयोग करे। क्षवथु रोगमें मूर्द्धदेशमें स्वेदप्रयोग और स्निग्धधूम आदि अन्यान्य वायुरोगोंको हितकर विधिका प्रयोग करे। दीप्तिरोगमें पित्तजन्य रोगके प्रतीकारको विधिके अनुसार क्रिया करनी उचित है। प्रतीनाहरोगमें स्नेहपान ही प्रधान है और स्निग्धधूम तथा शिरोविरेचनका भी प्रयोग

हितकर माना गया है। अणुतैल और अम्बाम्ब आयुर्वेदोक्त दवा भी इस रोगमें फायदामन्द है। नासास्रावरोगमें तीक्ष्ण अवपीड़नका नासारन्ध्रमें नस्य द्वारा प्रयोग करे और दिनरात तथा विस्तरके साथ मांस और घृतधूमका सेवन करावे। नासाशोषरोगमें क्षीर, घृत और अणुतैलका नस्य लेना ही सर्वोत्कृष्ट है। घृतपान, मांसरसके साथ भोजन, स्नेहसेंक और स्नैहिक धूम भी प्रयोज्य है। प्रतिश्यायरोगका विवरण प्रतिश्याय शब्दमें देखो। (सुश्रुत उत्तर० २२ २३ अध्याय)

भावप्रकाशमें भी नासारोगका विषय लिखा है जो इस प्रकार है। सुश्रुतमें नासागतरोग ३१ प्रकारका बतलाया गया है किन्तु भावप्रकाशके मतसे वह ३४ प्रकारका है।

यथा—पीनस, पूतिनस्य, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतीनाह, परिस्राव, नासाशोष, पांच प्रकारका प्रतिश्याय, सात प्रकारका अर्बुद, चार प्रकारका अर्श, चार प्रकारका शोथ और चार प्रकारका रक्तपित्त।

जिस रोगमें नाक रुक्ष हो जाय, कफसे बन्द हो जाय तथा शुष्क या कफसे क्लिन्न और सन्तापयुक्त हो जाय एवं नाकमें रसका बोध न रहे उसे पीनस या अपीनस कहते हैं। यह पीनसरोग वातश्लेष्मिक प्रतिश्यायकी तरह लक्षणविशिष्ट होता है।

दूषित पित्त रक्त और कफसे गला और तालुमूलगत वायु यदि पूतिभावापन्न हो जाय तथा मुख और नाकसे दुर्गन्ध निकले तो उसे पूतिनस्य कहते हैं।

जिस रोगमें घ्राण संचितपित्तके बलवान् होनेसे नाकमें बहुतसे फोड़े हो जाय और उन सब फोड़ोंके पक जानेसे दुर्गन्धित पीप निकले, तो उसे नासापाक कहते हैं।

रक्तपित्तको अधिकताके कारण अथवा ललाटमें अभिघातादिके कारण नाकसे रक्तमिश्रित पीप निकले तो उसे पूयरक्त कहते हैं।

घ्राणाश्रित शृङ्गाटकमर्मके दूषित होनेसे नाक हो कर कफके साथ अति शब्दयुक्त वायु निकलती है। इस प्रकारके लक्षणविशिष्टरोगको क्षवथु कहते हैं। तीक्ष्ण या कटुद्रव्यके अतिरिक्त भक्षण करनेसे या उग्र गन्ध सूंघनेसे किंवा सूर्य निरीक्षण करनेसे अथवा सूत्रादि द्वारा नासा अग्रास्थि और शृङ्गाटकमर्मके घर्षित होनेसे आगन्तुज क्षवथु (छींक) उत्पन्न होता है।

पूर्वसञ्चित शिरोगत गाढ़ा लवणरसात्मक और विदग्ध कफ जब पित्तसे तापित हो कर नाकसे गिरने लगे तब उसे भ्रंशथुरोग कहते हैं।

जिस रोगमें नाकके भीतर जलन हो और उससे धूम सदृश वायु निकले वह दीप्तिरोग कहलाता है।

वायुके साथ कफ मिल कर जब नासारन्ध्रको बन्द कर दे तब उसे प्रतीनाहरोग कहते हैं।

नाकसे पीला या सफेद गाढ़ा अथवा पतला दोष का स्राव हो, तो उसे नासास्राव कहते हैं।

नासाश्रित श्लेष्मा जब वायुसे शोषित और पित्तसे अत्यन्त परितप्त हो जाय और श्वास लेनेमें कष्ट मालूम पड़े, तब उसे नासाशोष कहते हैं।

प्रतिश्यायका विवरण प्रतिश्याय शब्दमें देखो।

पहले पीनसादिके लक्षण लिखे जा चुके हैं। अब इनकी चिकित्साका विषय लिखा जाता है। मस्तककी गुरुता, अरुचि, नाकसे पतलास्राव, स्वरभङ्ग और बार बार निष्ठीवन हो, तो उसे अपक्वपीनस कहते हैं। इस अपक्व पीनसको कफान्वित होता जब गाढ़ा हो कर नासारन्ध्रमें संलग्न हो जाय और स्वर प्रसन्न तथा श्लेष्माका वर्ण विशुद्ध मालूम पड़े, तब उसे पीनसपक्व समझना चाहिये। सब प्रकारके पीनसरोगमें दधि और गुड़के साथ मिर्चका चूर्ण सब समय खिलाना फायदामन्द है।

वटपत्र, पुष्करमूल, कर्कटशृङ्गी त्रिकटु दुरालभा और कालाजीरा इन सब द्रव्योंके चूर्ण अथवा क्वाथको अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे पीनस और स्वरभेद आदि रोग जाते रहते हैं।

त्रिकटु, चिता, तालीशपत्र तिन्तिड़ीक, अम्लवेतस चई और कालाजीरा इनका समान भाग इलायची और दारचीनी चतुर्थांश, इन सबके चूर्णमें दूना पुराना गुड़ मिला कर उसे यथामात्रामें सेवन करनेसे पीनस आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधका नाम व्योषादिवटी है।

अपामार्ग, दन्ती, वच, शोभाञ्जन, तुलसी, त्रिकटु,

और सैन्धव इनके चूर्ण द्वारा तैल पाक कर नस लेनेसे पूतिनासारोग दूर हो जाता है।

शोभाञ्जनका बीज, बृहतीबीज, दन्तीबीज, त्रिकटु और सैन्धव इनके कल्क तथा बिल्वपत्रके रस द्वारा तैल पाक कर उसका सेवन करनेसे भी पूतिनासारोग शान्त हो जाता है। घृत, गुग्गुल और मोमको मिला कर उसका धूम प्रयोग करनेसे चवथु और भ्रंशथु नष्ट हो जाता है। सोंठ, कुट, पीपर, बिल्वमूल और द्राक्षा इन सब द्रव्योंके क्वाथ और कल्क द्वारा तैल वा घृत पाक कर उसका नस लेनेसे चवथुरोग दूर हो जाता है। दीप्तिरोगमें नीम और रसाञ्जनका नस लेना तथा अल्प स्वेद दे कर दुग्ध और जलका परिषेचनपूर्वक मूंगके जूसके साथ सेवन करना चाहिये। नासास्रावरोगमें दोनों नासारन्ध्रमें चूर्ण नस्य और नाड़ी द्वारा प्रदेय अवपीड तथा देवदारु और चिता द्वारा तीक्ष्ण धूम और छागमांस हितकारक है।

(भावप्र० नासारोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इस प्रकार लिखा है—सब प्रकारके पीनसरोगोंमें पहले निर्वातगृहमें अवस्थान, स्नेह, स्वेद, धूम और गण्डूषकी व्यवस्था करनी उचित है। इस रोगमें गुरु और उष्ण वस्त्र द्वारा मस्तक आच्छादन एवं लघु उष्ण, लवणरस और स्निग्ध द्रव्यका भोजन करना आवश्यक है। पञ्चमूलसिद्ध, दुग्ध, चितामूल, हरीतकी, घृत, पुरातनगुड़ और षड़ङ्गयूष ये सब पीनसनाशक है। व्योषाद्यचूर्ण, पाठादितैल, व्याघ्रीतैल भी नासारोगमें हितकर है। नाकमें यदि कृमि हो जाय, तो कृमिनाशक औषधको गोमूत्रमें पीस कर नाकमें प्रयोग करे और कृमिनाशक औषधको सिद्ध कर उससे नाक साफ करे। नासिका सम्बन्धीय अन्य रोगोंको दोषानुसारसे यथाविधि चिकित्सा करनी चाहिये। पुरातनगुड़ १०० पल, क्वाथके लिये चितामूल ५० पल, जल ५० सेर, शेष १२॥ सेर, गुलञ्च ५० पल, जल ५० सेर, शेष १२॥ सेर; इन सब द्रव्योंको एकत्र कर उसमें गुड़ घोल दे, पीछे छान कर हरीतकीका चूर्ण ८ सेर दे कर पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर उसमें सोंठ, पीपर, मिर्च, दारचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल और यवक्षार ४ तोला डाल दे। दूसरे दिन उसमें १ सेर मधु मिलावे। अग्निके बलका विचार कर २ तोलेसे ४ तोला तक इस औषधके सेवनका परिमाण है। इसके सेवन करनेसे नासारोग आदि जाते रहते हैं। इस औषधका नाम चित्रक-हरीतकी है। (भैषज्यरत्ना० नासारोगाधि०)

नासाग्र (सं० क्ली०) नासायाः अग्रं। नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग।

नासाछिद्री (सं० स्त्री०) छिद-भावे क्त, नासायां छिद्रं छिद्रो यस्याः, ङीष्। पूर्णिका पक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया जिसकी चोंचका दोहरी होना माना जाता है।

नासाज्वर (सं० पु०) वह ज्वर जो नाकके भीतर प्याजकी गांठकी तरहका फोड़ा होनेसे होता है। इस ज्वरमें सिर और रीढ़में बड़ा दर्द होता है। नासाज्वर हुआ है वा नहीं, यदि जानना हो, तो नासिकेके मूलमें हाथकी कनिष्ठाङ्गुलि रख कर ब्रह्माङ्गुलिसे नाक छूनी चाहिए। छूते समय यदि पीठ तथा गुह्यमें दर्द मालूम पड़े, तो नासाज्वर हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। जब वह फोड़ा पक जाय, तब कुछ दूबको नाकके पुटमें घुसेड़ कर उसे चारों तरफ घुमावे। ऐसा करनेसे घासके आघातसे रक्तकोष फट कर दूषित रक्त निकल जायगा और दर्द तथा ज्वर दब जायगा।

नासादारु (सं० क्ली०) द्वारोर्ध्वस्थित काठ, द्वारके ऊपर लगी हुई लकड़ी, भरेटा।

नासानाह (सं० पु०) नासिकारोगभेद, नाककी एक बीमारी। इसमें वायुके साथ कफ मिल कर नाकके छेदको बन्द कर देता है। नासागतरोग देखो।

नासान्तिक (सं० त्रि०) नासिका पर्यन्त, नाक तक।

नासापरिशोष (सं० पु०) सुश्रुतोक्त नासागतरोगभेद। नासागतरोग देखो।

नासापाक (सं० पु०) नासारोगभेद, नाककी एक बीमारी। इसमें नाकमें बहुतसी फुंसियाँ निकलनेके कारण नाक पक जाती है।

नासापुट (सं० पु०) १ नासिकाका मध्यगतरोग, नाकके भीतर होनेवाला एक रोग। २ नाकका वह चमड़ा जो छेदोंके किनारे परदेका काम देता है, नथना।

नासावेध (सं० पु०) नाकका वह छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है।

नासायोनि (स० पु०) वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर उद्दीपन हो, सौगन्धिक नपुंसक।

नासारक्तपित्त (स० स्त्री०) पित्तविकारके कारण नाकसे रक्तका गिरना। नासाक्षतरोग देखो।

नासारोम (स० पु०) नाकमें होनेवाला रोम। नासाग्ररोम देखो।

नासार्श (स० स्त्री०) नाकके भीतर फोड़ाका होना। नासार्बुद देखो।

नासाशु (स० पु०) १ कट्फल, कायफल। २ कातोफलक।

नासावंश (स० पु०) नासा नथुनाओंके बीच एक ऊंचा स्थान। नासाग्रस्थित मध्यभाग, नाकके ऊपर बीचो-बीच गई हुई उठती हड्डी, नाकका बांसा।

नासाविवर (स० स्त्री०) नासाका विवर। नासिका छिद्र, नाकका छेद।

नासासंवेदन (स० पु०) संविद्यतेऽनेनेति सं विद ल्युट्, नासायां संवेदनः। काकोडुम्बरिका, काकवेल, चिटपिटा चिचड़ी।

नासास्राव (स० पु०) नासारोगभेद, नाकका एक रोग जिसमें नाकसे पीब और पीला मवाद निकला करता है।

नासिक—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १८° ३३´ और २०° ५३´ उ० तथा देशा० ७३° १६´ और ७५° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें खान्देश जिला पूर्वमें निजामराज्य दक्षिणमें अहमदनगर और पश्चिममें थाना जिला, धरमपुर और सुरगानराज्य है। जिलेके विचारविभागका सदर नासिकमें ही है। सारा जिला अधित्यका होकर समुद्रतटसे कहीं १९०० और कहीं २००० फुट ऊंचे पर अवस्थित है। इसका पश्चिमांश डांग और पूर्वांश देश कहलाता है। इस अंशमें अनेक समतल क्षेत्र हैं जो कृषियोग्य और उर्वरा हैं। नासिककी प्रधान नदी ताप्ती और गोदावरी है। इसके अलावा गोदावरीकी और भी कई एक शाखा नदियां नासिकके दक्षिणमें और ताप्तीकी उपनदियां उत्तरमें प्रवाहित हैं। यहांके प्रायः सभी पर्वत पूर्वपश्चिममें लम्बायमान हैं। केवल सह्याद्रि पहाड़ उत्तर-दक्षिणमें चला है। महाराष्ट्रोंके साथ जिस समय युद्ध होता था, उस समयके बनाए हुए अनेक दुर्ग यहां विद्यमान हैं। ये सब दुर्ग विगत कालके महाराष्ट्र गौरवका परिचय देते हैं यहां खनिज पदार्थ प्रायः कुछ भी देखनेमें नहीं आता। साधारणतः यहांकी जमीन पथरीली है। नासिक जिलेमें वृक्षादिकी संख्या अधिक नहीं है। जङ्गली जन्तुओंमें बाघ, भालू और नाना जातीय हरिण देखनेमें आते हैं।

दूसरी शताब्दीके पहलेसे ले कर दूसरी शताब्दीके अन्त तक बौद्धधर्मावलम्बी अन्ध्रभृत्यवंशधर इस जिलेके शासनकर्ता वा राजा थे। प्राचीन हिन्दुओंमेंसे चालुक्य, राठोर, चन्देल और देवगिरिके यादववंशी यहां रहनेका काफी प्रमाण मिलता है। मुसलमानोंके शासनकालमें (१२९५से १७६० ई० तक) यह स्थान पहलेसे देवगिरि (दौलताबाद)के शासनकर्त्ता तुगलकोंके सामन्तराज, अहमदनगरके निजाम शाहीवंश और औरङ्गाबादके सुबेदारके अधीन रहा। पीछे १७६०से १८१८ ई० तक महाराष्ट्रोंने इस पर अपना पूरा अधिकार जमाया। तदनन्तर यह वृटिश गवमेंटके शासनाधीन हुआ। अंगरेजोंके अधिकार होनेके साथ ही उन्होंने यहां भी इतना कर लगाया जिससे यहांके सबके सब बागी हो गये। पीछे १८५७ ई०में भागोजीके अधीन रोहिला, अरबी और भीलोंने मिल कर भारी उपद्रव शुरू कर दिया था। यहांके लोग साधारणतः नासिक शहरमें रहना पसन्द करते हैं। सह्याद्रि तराई प्रदेशमें जो सब लोग रहते हैं, उनमेंसे कितने ऐसे हैं जो एक जगह अधिक दिन नहीं रहते। स्थान परिवर्तन कर रहना ही इन लोगोंका अभ्यास है। क्योंकि वहांकी जमीन हर दूसरे वर्षमें फसल देती है। ग्रीष्मकालमें ये लोग वनमें जा कर लकड़ी काटते और उसे बाजारमें ला कर बेचते हैं। जब अनाज नहीं मिलता, तब महुए, फल और उसका मूल खा कर जीवन बसर करते हैं। पहाड़ी जातियोंमें भील, कोली, ठाकुर, वारली और काठकरी प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे कोली लोग सबसे सभ्य हैं और काठकरी सबसे दरिद्र। मुसलमान और मारवाड़ी दूसरी जगहसे आ कर यहां बस गये हैं। नासिक जिलेमें वर्ष भरमें केवल एक ही बार फसल

नासिकाके छिद्राभ्यन्तरमें है। मुखके ऊपर नासिकाका जो अंश उन्नतभावसे देखनेमें आता है, उसका काम केवल गन्धपरिपूर्ण वायुको शरीरके भीतर लाना है नासिकामें जितने प्रकारके यन्त्र हैं उनमेंसे शैङ्घाण स्नायु सबसे विशेष आवश्यक है। वह स्नायु मस्तिष्कके शैङ्घाणकन्द (Bulb)से निकल कर नासिकाभ्यन्तरस्थ अस्थिविशेषके मध्य होती हुई (Ethmoid bone) उक्त अस्थि और अन्य एक अस्थि (Terbinated bone)के विस्तृत अंशके मध्य शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हुई है। इस स्नायुका घ्राणग्राह्य सुखसमूह एक अत्यन्त सूक्ष्म चर्मके ऊपर अवस्थित है। वह चर्म समस्त नासारन्ध्रमें सूतकी तरह फैला हुआ है और हमेशा कफ द्वारा सरस रहता है। भिन्न भिन्न जीवोंकी घ्राणशक्ति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। कीट और अन्यान्य अनेक क्षुद्र क्षुद्र जीवोंकी जो घ्राणशक्ति है, वह साफ साफ देखनेमें आती है। किन्तु जिस यन्त्र द्वारा वे इसका अनुभव करते हैं, वह स्थान भी अज्ञात है। उच्चतर जीवोंके मध्य पूर्वोक्त दो प्रकारके अस्थिविस्तारसे न्यूनाधिक्यके अनुसार घ्राणशक्तिका व्यतिक्रम देखनेमें आता है। अन्यान्य जीवोंके साथ तुलनामें मनुष्यकी उक्त दो अस्थियोंका विस्तार बहुत कम है। उन सब जीवोंमेंसे कितने ऐसे जीव हैं जिनकी उक्त दो अस्थियां मुखके भीतरकी ओर बहुत दूर तक लम्बमान हैं और उन अस्थियोंका पतला स्तरसमूह शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त है तथा एक दूसरेसे जुड़ कर बड़े आयतनका हो गया है। लेकिन प्रत्येक विभिन्न प्रकारके जीवोंके गन्ध लेनेके विषयमें एक प्रकारकी नैसर्गिक क्षमता देखी जाती है। जैसे, तृणभुक् जन्तुओंके भिन्न भिन्न तृणोंको गन्धका भलीभांति अनुभव कर सकने पर भी जैवद्रव्यको गन्ध-अनुमान-शक्ति उनमें कुछ भी देखनेमें नहीं आती। फिर मांसभोजिगण शेषोक्त द्रव्यकी गन्धके सिवा अन्य गन्धका अनुभव नहीं कर सकते। जिस जीवके जीवन धारणके लिये निज द्रव्यकी आवश्यकता है, उस द्रव्यके अन्यान्य इन्द्रियोंके अन्तरालमें रहने पर भी घ्राणेन्द्रिय अनायास ही उसका अस्तित्व निर्णय कर सकती है। मनुष्यजाति यद्यपि अनेक द्रव्योंकी गन्ध अनुभव कर सकती है, तो भी किसी द्रव्यकी अति सामान्य गन्धकी उसकी घ्राणेन्द्रिय ग्राह्य नहीं कर सकती। मनुष्य और अन्यान्य जीवोंके मध्य गन्ध-अनुभव-शक्तिकी जो इतनी पृथक्ता देखी जाती है, उसका एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य गन्धग्रहणशक्तिका अधिक अभ्यास नहीं करते। अमेरिका और एशियाके उत्तर भागके शिकारियोंकी घ्राणशक्ति इतनी प्रबल है, कि उनके शिकारी कुत्तोंकी घ्राणशक्तिकी अपेक्षा उनकी घ्राणशक्ति उतनी कम नहीं है।

पूर्वोक्त शैङ्घाण स्नायु (Olfactory nerves)की गन्ध अनुभव शक्तिके सिवा यन्त्रणा वा अन्य किसी प्रकारके चैतन्यलाभ करनेकी क्षमता नहीं है। घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रियके साथ इस प्रकार संलग्न है कि साधारणतः जो हम लोगोंको घ्राणेन्द्रियका उपयोगी है, वह शरीरपोषक है और जो घ्राणेन्द्रियका अहितकर है, वह शरीरका अपचयकारक है, इसी घ्राणेन्द्रिय द्वारा अनेक जीवजन्तु अपना अपना खाद्य चुन लेते हैं।

नासिकाग्र (सं० क्लो०) नासिकायाः अग्रं। नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला भाग।

नासिकापाक—नासापाक देखो।

नासिकापुट—नासापुट देखो।

नासिकामल (सं० क्लो०) नासिकायाः मलम्। नासास्थित मल, पोटा, नेटा। पर्याय—शिङ्घाणक, शिङ्घाण, शिङ्घण और सिंहान।

नासिकाशब्द (सं० पु०) नाकका शब्द, वह आवाज जो नाकके द्वारा उत्पन्न हो।

नासिक्य (सं० क्लो०) नासिका एव नासिका स्वार्थे ष्यञ्। १ नासिका, नाक। २ दक्षिण देशभेद, दक्षिणका एक देश, नासिक। ३ अश्विनीकुमारद्वय। इस अर्थमें यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है। (त्रि०) ४ नासाभव, नाकसे उत्पन्न।

नासिक्यक (सं० क्लो०) नासिक्यमेव नासिक्य स्वार्थे कन्। नासिका, नाक।

नासीर (सं० क्लो०) नास शब्दे भावे क्विप्, नासा शब्देन ईर्त्ते गच्छतीति ईर गतौ क। १ सेनानायकके आगे चलनेवाला दल यह जयनाद उच्चारण करते चलता है,

इसीसे इसका नाम नांदोर पड़ा है। (त्रि०) २ पानी चलनेवाला।

नाहर (सं० पुं०) बांध, कोठे आदिके भीतर दूर तक गया हुआ नलीके जैसा छिद्र जिससे बराबर सवाद निकला करता है और जिसके कारण घाव जल्दी अच्छा नहीं होता, नाड़ीव्रण।

नास्ति (सं० अव्य०) न अस्ति, अस्तीति विभक्तिप्रतिरूपकमव्यय 'सुप्सुपेति नञ्शब्देन समासः।' अविद्यमानता नहीं।

नास्तिक (सं० पुं०) नास्ति परलोक ईश्वरो वेति मतिर्यस्य इति ठक्। (अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः। पा ४।४।६०) अथवा नास्ति परलोको यज्ञादिफलं ईश्वरो वा इत्यादि वाक्येन वायति शब्दायते इति कै क। पाषण्ड, ईश्वर-नास्तित्ववादी। जो ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, उन्हें नास्तिक कहते हैं। वेदाप्रामाण्यवादी अर्थात् जो वेदका प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते, हिन्दूमात्रके मतसे वे भी नास्तिक कहलाते हैं।

"योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥"

(मनु २।११)

जो द्विज हेतुशास्त्र अर्थात् तर्कविद्याका आश्रय ले कर धर्मके मूलस्वरूप वेद और श्रुतिको अमान्य करते हैं, वे सब वेदनिन्दक नास्तिक कहलाते हैं। ऐसे मनुष्योंके साथ यजनयाजनदान प्रतिग्रहादि किसी विषयमें कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। नास्तिक शब्दके पर्याय ये हैं—बार्हस्पत्य चार्वाक और लौकायतिक।

नास्तिक ६ प्रकारका है—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक चार्वाक और दिगम्बर। चार्वाक, बौद्ध और जैनों हो हिन्दूशास्त्रकारगण नास्तिक बतलाते हैं।

सर्वदर्शनसंग्रहमें नास्तिकके मत वर्णनको जगह बौद्धोंका मत ही वर्णित हुआ है।

नास्तिकगण जो प्रत्यक्ष प्रमाण है, केवल उसीको स्वीकार करते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणके अतिरिक्त और कोई प्रमाण स्वीकार नहीं करते। ये लोग जो अनुमानके

सिवा और कुछ भी नहीं मानते, यह भाव सभी दर्शनोंमें वर्णित हुआ है।

चार्वाकके मतसे—आत्मा या परकाल कुछ भी नहीं है। इस मतसे स्थूलदेह ही आत्मा है, देहनाशके साथ ही आत्माका नाश हुआ करता है। चार्वाकने, वेदका प्रामाण्य स्वीकार करनेकी बात तो दूर रहे, निन्दाके तौर पर कहा है, कि भण्ड, धूर्त और राक्षस इन तीनोंने मिल कर वेदकी रचना की है। अश्वमेधयज्ञमें यजमानपत्नी अश्वलिङ्ग ग्रहण करे, इत्यादि विषय भण्ड-रचित, स्वर्गनरकादि धूर्त-प्रणीत और मद्यमांसादिका विषय निशाचरकल्पित है। इसी मतका प्रतिपादन करके चार्वाक नास्तिक नामसे अभिहित हुए हैं।

चार्वाक देखो।

जो ईश्वरका अस्तित्व और वेदका प्रमाण स्वीकार नहीं करते वे ही नास्तिक हैं इस व्युत्पत्तिके अनुसार चार्वाक ही प्रकृत नास्तिक कहलाते हैं।

सर्वदर्शनसंग्रहकारने माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक इन चार भेदोंसे बौद्धको ही नास्तिक बतलाया है। यथार्थमें ये लोग नास्तिक हैं, या नहीं इसका निर्णय करना कठिन है। जगत् सृष्ट है या अनादि। ईश्वर हैं या नहीं, बौद्ध लोग इन सब गूढ़ रहस्योंकी आलोचना नहीं करते; इन लोगोंका कहना है, कि जो कुछ है, सब प्रत्यक्ष है। यही स्वीकार कर नामरूपकी आलोचनासे ही बौद्धदर्शन समाप्त है। इस मतमें जगत्को दुःखमय माना है। दुःखका कारण क्या है, किस उपायसे दुःखका विनाश होता है, इन्हीं सब प्रश्नोंकी मीमांसामें बौद्धदर्शन सम्पूर्ण होता है। किन्तु यदि गौर कर देखा जाय, तो मालूम पड़ता है कि बौद्धदर्शन आत्माका अस्वीकार करता है। ये लोग अन्यान्य दर्शनोंके जैसा कर्म और कर्मफलका स्वीकार करते हैं। कर्म और वासना पुनर्जन्मका कारण है। वासनाके निराश होनेसे जन्म नहीं होता, वासनाके रहनेसे ही जन्म होगा। ये लोग आत्माका तो स्वीकार नहीं करते, लेकिन पुनर्जन्म मानते हैं। इनका यह मत विरुद्ध जान पड़ता है। किन्तु आत्माके नहीं रहने पर भी बौद्धमतसे

रूपमें जन्म जन्मान्तर रह सकता है। इसीसे आत्माका स्वीकार नहीं करने पर भी जन्मान्तरका स्वीकार किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं। इसे प्राचीन बौद्धमत जानना चाहिये। वेदान्तदर्शनमें शङ्कराचार्यने बौद्धमत-खण्डनकी जगह लिखा है, कि बुद्धदेवके एक होने पर भी उनके शिष्योंके बुद्धिदोषसे उनका मत अनेक प्रकारका हो गया है। उनके शिष्योंमेंसे जिसने जैसा समझा था, उसने उसी प्रकारका सिद्धान्त ग्रन्थ प्रस्तुत किया। प्रथमतः इनमेंसे तीन प्रकारके वादी देखनेमें आते हैं। कोई कोई सर्वास्तित्ववादी है, कोई केवल विज्ञानास्तित्ववादी है और कोई सर्व शून्यवादी। जो सर्वास्तित्ववादी हैं, उनका कहना है, कि सब कुछ है, घटपटादि बाह्यपदार्थ भी है, ज्ञानादि अन्तरके पदार्थ भी है, बाहरमें भूत और भौतिक, अन्तरमें चित्त और चैत्त है। द्वितीय दलका कहना है, कि बाहरमें कुछ भी नहीं है, सब कुछ भीतरमें है। जो कुछ भीतर है, वही बाहरके जैसा प्रतीयमान होता है। तृतीय दल कहता है, कि अन्तरका विज्ञान भी असत् है। इनके मतसे भूत और रूपादि ग्राहक चक्षुप्रभृति भौतिक है, भूत, पार्थिव, जलीय, तैजस तथा वायवीय परमाणुभूतपदवाच्य है, ये यथाक्रमसे खर, स्नेह, उष्ण और चञ्चल स्वभावान्वित हैं। इन सब परमाणुओंने परस्पर संघातप्राप्त हो कर परिदृश्यमान पृथिव्यादिका उत्पादन किया है। रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार ये पांच स्कन्ध हैं। ये सब अध्यात्म अर्थात् आन्तर माने जाते हैं। इन लोगोंका मत है, कि संघातजनक सभी पदार्थ अचेतन हैं। परमाणु भी अचेतन हैं और स्कन्ध भी। भोग करता है, शासन करता है और नियम चलाता है, ऐसा कोई स्थिरचेतन नहीं जो उनके प्रभावसे वे सब परमाणु संहत होते हों। विज्ञानके सिवा वे कोई स्थिर चेतन-आत्मा और ईश्वर नहीं मानते। उनका कहना है, कि परमाणु और स्कन्धका कर्त्ता और अध्यक्ष नहीं है। वे स्वतःप्रवृत्त तथा कार्योन्मुख होते हैं और स्वकार्यसाधन करते हैं। बौद्धदर्शन देखो।

दिगम्बरगण भी नास्तिक माने जाते हैं। वेदान्तदर्शनमें ये सब मत खण्डित हुए हैं। यहां तक कि वैशेषिकदर्शन अर्द्धवैनाशिक (अर्द्धनास्तिक) माना गया है।

पाश्चात्य दर्शनविद्वानोंमेंसे जनष्टुआर्ट मिल और वेन आदि नास्तिक हैं। पाश्चात्य दर्शन देखो।

नास्तिकता (सं॰ स्त्री॰) नास्तिकस्य भावः भावे तल्, ततो टाप्। नास्तिकका धर्म, नास्तिकका भाव, ईश्वर, परलोक आदिको न माननेकी बुद्धि।

नास्तिकदर्शन (सं॰ पु॰) नास्तिकोंका दर्शन, दर्शनदोष।

नास्तिक्य (सं॰ क्लो॰) नास्तिकस्य भावः ष्यञ्। नास्तिकता, ईश्वर परलोक आदिमें अविश्वास।

नास्तितरु (सं॰ पु॰) सहकारतरु, आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

नास्तिता (सं॰ स्त्री॰) नास्ति तल्-टाप्। नास्तित्व, अविद्यमानता।

नास्तिद (सं॰ पु॰) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

नास्तिवाद (सं॰ पु॰) नास्तीति वादः। नास्तिकोंके वितर्क और पक्ष समर्थनमें वादानुवाद।

नास्य (सं॰ वि॰) नासायां भवं शरीरावयवत्वात् यत्। १ नासाभव, नासिकासे उत्पन्न। २ नासिकासम्बन्धी, नाकका। (क्लो॰) ३ बैलकी नाकमें लगी हुई रस्सी।

नाह (सं॰ पु॰) नह बन्धने भावे घञ्। १ बन्धन। २ कूल, किनारा। ३ हिरन फंसानेका फन्दा।

नाह (सं॰ पु॰) नाभि, पहियेका छेद।

नाहक (अ॰ क्रि॰ वि॰) निष्प्रयोजन, बेमतलब, व्यर्थ, बेफायदा।

नाहन—१ पञ्जाबके अन्तर्गत एक देशीय राज्य।

सिरमूर देखो।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा॰ ३०° ३३ उ॰ और देशा॰ ७७° २०′ पू॰के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ६२५६ है। शिमला पहाड़से यह ४० मील दक्षिणमें पड़ता है। भारतीय राजधानियोंमें इस स्थानका दृश्य बहुत सुन्दर और मनोहर है। यह शहर एक ऊंचे पहाड़के ऊपर बसा हुआ है। कहते हैं, कि राजा कर्मप्रकाशने १६२१ ई॰में इसे बसाया। नेपालयुद्धके समय १८१४ ई॰में यह शहर अङ्गरेजोंके

४ कृषि व्यवसायी सम्प्रदायोंमेंसे प्रायः १६००० लोगों का वास है जिनमेंसे अधिकांश वन्नू और सिन्धु नदीके चारों ओर बस गये हैं। इनकी पाविन्द नामकी एक और शाखा है जो खुरासान और देराजातमें व्यवसाय करती है।

निआमत (अ० स्त्री०) अलभ्य पदार्थ, अच्छा और बहुमूल्य पदार्थ।

निआमतउल्ला—मखजन इ अफगानी और तारीख-इ-खां जहान् लोदी नामक दो पुस्तकके प्रणेता। ये दिल्लीश्वर जहांगीरके नकलनवीस थे।

निआमतपुर—महिसुर राज्यके अन्तर्गत सिमोगा जिलेका एक पल्लीग्राम। यह अक्षा० १४° ८ उ० और देशा० ७५° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। पार्वत्यप्रदेश और समतल शिववासियोंका यह प्रधान व्यवसाय स्थान है। यहांके प्रायः सभी व्यवसायी लिङ्गायत सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। इसके चारों ओर तरह तरहका अनाज, धोनी और सुपारी उत्पन्न होती है।

निउगिनी—न्यू गिनी देखो।

निउजिलैण्ड—न्यूजीलैण्ड देखो।

निउटन आइजक—न्यूटन आइजक देखो।

निउ-फाउण्डलैण्ड—न्यूफाउण्डलैण्ड देखो।

निंटो (निइटी) आसामके अन्तर्गत एक नदी। यह श्रीहट्ट जिलेके प्रान्तस्थित पर्वतमालासे निकल कर पूर्वकी ओर इरावती नदीमें जा मिली है। माघमासमें भी इसका विस्तार आठ सौ गजसे कम नहीं रहता। यहांसे अमरापुर जानेका एक सीधा रास्ता चला गया है। तुम्मुरके पास इस नदीके किनारे वृहत्शालवन है।

निंदरना (हिं० क्रि०) निन्दा करना, बदनाम करना, बुरा कहना।

निंदाई (हिं० स्त्री०) १ खेतके पौधोंके पासकी घास, तृण आदिको उखाड़ कर वा काट कर अलग करनेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निंदाना (हिं० क्रि०) निराना देखो।

निंदासा (हिं० वि०) जिसे नींद आ रही हो, उनींदा।

निः (सं० अव्य०) एक उपसर्ग। निस देखो।

निःआरिया (नियारिया)—नीच श्रेणीका हिन्दू। बागमतोअञ्चलमें इनका वास है। ये लोग सुनारों या जौहरियोंके यहांसे राख, कूड़ा करकट आदि खरीद कर ले जाते और उसमेंसे माल निकाल कर अपना गुजारा करते हैं। नियारिया देखो।

निःकपट (सं० वि०) निष्कपट देखो।

निःकाम (सं० वि०) निष्काम देखो।

निःकारण (सं० वि०) कारणशून्य, अनिमित्त।

निःकासन (सं० क्ली०) निःसारण, वहिष्करण, अपसारण।

निःकासित (सं० त्रि०) निःसारित, निष्काषित, वहिष्कृत।

निःक्रामित (सं० वि०) निष्क्रामित, वहिष्कृत।

निःक्षत्र (सं० वि०) निर्नास्ति क्षत्रियो यत्र। क्षत्रियरहित स्थान, क्षत्रियशून्य देशादि।

निःक्षत्रिय (सं० वि०) क्षत्रिय शून्य देशादि।

निःक्षिप्त (सं० वि०) निर्-क्षिप्-क्त। प्रक्षिप्त, जो फेंका गया हो।

निःक्षेप (सं० पु०) निर्-क्षिप भावे घञ्। १ अर्पण, गच्छित रखनेकी क्रिया या भाव। २ अठारह विवादोंमेंसे एक विवाद। विश्वासपूर्वक अपना द्रव्य दूसरेके पास न्यास वा गच्छित रखनेका ही नाम निःक्षेप है। वीरमित्रोदयमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

"स्वद्रव्यं यत्र विस्रम्भात् निःक्षिपत्यविशङ्कितः।
निःक्षेपो नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः॥"
(नारद)

अपना द्रव्य निःशङ्कचित्तसे विश्वासपूर्वक दूसरेके पास रखनेको निःक्षेप कहते हैं। पण्डितगण इसे व्यवहारपद कहा करते हैं; अर्थात् गच्छित द्रव्य आवश्यकतानुसार यदि न मिले और जिसके पास गच्छित रखा है, वह यदि फिर उसे न लौटा दे, तो इन सब कारणोंके लिये राजा विचार करते हैं इसीसे इसको व्यवहारपद कहा गया है। इसका दूसरा नाम न्यास है,—

"राजचौरादिकभयाद्दायादानां वञ्चनात्।
स्थाप्यतेऽन्यगृहे द्रव्यं न्यासः स परिकीर्त्तितः॥"
(वृहस्पति)

राजा, चोरादि तथा बन्धुबान्धवोंके भयसे दूसरेके घरमें जो सब द्रव्य रखे जाते हैं उन्हींको न्यास कहते हैं।

मनुने इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—सत्कुलजात, सदाचारसम्पन्न धर्मज्ञ सत्यवादी, बहुपरिवार, धनवान् और सम्भ्रान्त मनुष्यके निकट बुद्धिमान् लोग गच्छित रखें और इसी गच्छित रखनेको निःक्षेप कहते हैं। जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथ जो द्रव्य रखता है, लेते समय उसे उसी प्रकार वही द्रव्य देना चाहिये। निःक्षेपकारीके सिर्फ एक बार माँगनेसे ही निःक्षिप्त वस्तु दे देनी होगी, यदि वह न दे तो विचारकर्त्ताको इसका विचार करना चाहिये। इसमें यदि उपयुक्त साक्षी न मिले, तो न्यायाभीष्ट वयस्क और रूपवान् चर द्वारा छल करके हिरण्यादि द्रव्य उसी व्यक्तिके पास रखवावे। बाद निःक्षेपकारी चरके निःक्षिप्त वस्तु माँगने पर, वह यदि उस गच्छित द्रव्यको, जिस प्रकार जिस भावसे दिया गया था, उस प्रकार और उसी भावसे लौटा दे, तो उसे निर्दोष समझना चाहिये। परन्तु वह व्यक्ति यदि उस दूतको निःक्षेप द्रव्य न दे, तो राजा उसे पकड़वा मँगावें और दोनों निःक्षेप वस्तु दिलवा देवें। निःक्षेप और उपनिधि गच्छितकारीके रहते उसके लड़के वा भाई उत्तराधिकारीको देना उचित नहीं। कारण लड़केके मर जाने पर, अथवा उसकी [illegible] हो गच्छितद्रव्य समर्पण करनेसे उसके नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। अतः ऐसे समयमें उसे देना अच्छा नहीं। मृतनिःक्षेपकके पुत्रादि उत्तराधिकारियोंके पास, जो व्यक्ति गच्छित धन स्वयं ही ला कर समर्पण करे, राजा वा निःक्षेपकके बन्धुवर्ग उसके पास और भी गच्छित धन है, ऐसा अनुयोग नहीं कर सकते। यदि वे करें, तो राजाको कपटव्यवहारका परित्याग कर प्रीतिके साथ उस धनके पानेकी चेष्टा करनी चाहिये और गच्छित रखनेवालेके चरित्रका विचार कर सान्त्वनावाक्यसे कार्यसाधन करना उचित है।

मुद्राङ्कित उपनिधि,—जिसमें मुद्राएं दी गई हैं, उसमेंसे कुछ लौटा देनेसे गच्छित रखनेवाले पर कोई दोष मढ़ा नहीं जा सकता। निःक्षिप्त द्रव्य चोरके चुरा लेने जल द्वारा नष्ट हो जाने या आगमें जल जाने पर उसका वह जिम्मेदार नहीं हो सकता। किन्तु उस द्रव्यमेंसे यदि वह कुछ ले ले तो वह उसका दायी अवश्य हो सकता है। निःक्षेपके अपहरणकारीका और जो बिना निःक्षेप किये ही उसका दावा करे ऐसे व्यक्तिका दैविक शपथादि तथा सब प्रकारके उपाय द्वारा विचार करना चाहिये। जो निःक्षेप अर्पण न करे और जो बिना निःक्षेपके उसका दावा करे, राजा इन दोनोंको सुवर्ण-चोरकी तरह शास्ति दें। अथवा गच्छित वा रक्षित द्रव्यानुयायी धन दण्ड करें। (मनु ८ अ०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—कुछ विशेष ध्यान न कर जो धन वस्तु करण्डपेटिकादिमें बन्द रख कर दूसरेके पास रखी जाती है, उसीको निःक्षेप वा उपनिधि कहते हैं। जिसके पास जो द्रव्य रखा जायगा, उसको उसी प्रकार वह द्रव्य लौटा देना उचित है। वह धन यदि राजा, चोर वा दैवोपद्रवसे विनष्ट हो जाय तो फिर लौटाना नहीं होगा। किन्तु स्वामकारीके उस द्रव्य माँगने पर यदि गच्छित रखनेवाले न दे और उसके किसी प्रकारके उपद्रव करनेसे वह नष्ट हो जाय तो राजाको चाहिये कि उसके मूल्यके बराबर उसे अर्थदण्ड करे। जो मनुष्य अपनी इच्छासे इस द्रव्यका उपभोग करे या वाणिज्य द्वारा अपना काम चलावे, राजाको उसकी शक्तिके अनुसार दण्ड देना चाहिये। उपभोग करनेसे महीनेमें सैकड़े पाँच भाग हिसाबसे, वाणिज्य करनेसे इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण समेत सूद देने होंगे। (याज्ञवल्क्य ८० २ अ० निक्षेपप्र०)

वीरमित्रोदयमें निःक्षेप, उपनिधि और न्यास इन तीनोंके पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं। गृहस्वामीके सामने धन कुछ गिन कर जो रखा जाय उसे निःक्षेप और बिना गिने गृहस्वामीकी अनुपस्थितिमें वा उसके लड़केके हाथ जो रखा जाय, उसे न्यास तथा मुद्राङ्कित कर वा सन्दूकमें ताला भर कर जो रखा जाता है, उसे उपनिधि कहते हैं।

पहले जो सब दत्तादिका विषय लिखे गये हैं, वही इन तीनोंमें भी जानना चाहिए।

"असंख्यातमविज्ञातं समुद्रं यन्निधीयते,
तज्जानीयादुपनिधिं निक्षेपं गणितं विदुः॥"
(नारद)

वीरमित्रोदयमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तारके भयसे यहां नहीं दिया गया।

निःछन्न (सं० त्रि०) निश्छल देखो।
निःपक्ष (सं० त्रि०) निष्पक्ष देखो।
निःपाप (सं० वि०) निष्पाप देखो।
निःप्रभ (सं० त्रि०) निर् निर्गता प्रभा यस्य। प्रभाशून्य, जिसमें ज्योति न हो, जिसमें चमक दमक न हो।
निःप्रयोजन (सं० वि०) निष्प्रयोजन देखो।
निःफल (सं० त्रि०) निष्फल देखो।
निःशङ्क (सं० त्रि०) निर्नास्ति शङ्का यस्य। १ शङ्का रहित, निर्भय, भयशून्य, निडर। २ जिसे किसी प्रकारका खटका या हिचक न हो।
निःशब्द (सं० त्रि०) निर्गतः शब्दो यस्मात्। शब्दरहित, जहां शब्द न हो या जो शब्द न करे।
निःशलाक (सं० त्रि०) निर्गता शलाका यस्मात् शलाकाया निर्गतो वा। निर्जन, एकान्त, सुनसान।
निःशल्या (सं० स्त्री०) निर्गतं शल्यं यस्याः। १ दन्तीवृक्ष। (त्रि०) २ शल्यारहित। ३ खटकनेवाली चीजसे मुक्त, प्रतिद्वन्द्वरहित, निष्कण्टक।
निःशूक (सं० पु०) निर्गतः शूकोऽस्मात्। सुण्डशालि, एक प्रकारका धान।
निःशेष (सं० त्रि०) निर्गतः शेषो यस्मात्। १ समस्त, सम्पूर्ण, समूचा, जिसका कोई अंश रह न गया हो २ समाप्त, पूरा, खतम।
निःशेषित (सं० त्रि०) निःशेषोऽस्य सञ्जातः, तारकादित्वादितच्। निःशेषप्राप्त, जो समाप्त हो चुका हो।
निःशोध्य (सं० त्रि०) निर्गतं शोध्यं यस्मात् शोध्यान्निर्गतमिति वा। शोधित, सोधा हुआ, साफ किया हुआ।
निःश्रयणी (सं० स्त्री०) निर्निश्चित श्रीयते आश्रीयते अनयेति, श्रि-करणे ल्युट्, टित्त्वात् ङीप्। काष्ठघटित सोपान, काठ या बांस आदिकी सीढ़ी। पर्याय—निःश्रेणी, अधिरोहिणी, निःश्रेणी।
निःश्रयिणी (सं० स्त्री०) निःश्रयति आश्रयति प्राङ्गणादिस्थानमिति, श्रि-णिनि-ङीप्। निःश्रयणी, काठकी सीढ़ी।
निःश्रेणि (सं० स्त्री०) निर्निश्चिता श्रेणि सोपानपंक्तिः यत्र। १ अधिरोहिणी, काठकी सीढ़ी। २ खर्जुरोवृक्ष, खजूरका पेड़। (पु०) ३ घोटकविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। जिस घोड़ेके ललाट देश पर तीन भौंरी रहे, उसे निःश्रेणी कहते हैं। इस तरहका घोड़ा राष्ट्रवृद्धिकर माना जाता है।
निःश्रेणिका (सं० स्त्री०) निःश्रेणिरिव कायतीति, कै-क-टाप्। १ तृणविशेष, एक प्रकारकी घास। पर्याय—श्रेणीवला, निरमा, वनवर्बरी। गुण—नीरस, उष्ण, पशुओंका बलनाशक। निःश्रेणिरेव स्वार्थे कन्। २ अधिरोहिणी, सीढ़ी।
निःश्रेणी (सं० स्त्री०) निःश्रेणि कृदिकारादिति वा ङीप्। १ निःश्रयणी, सीढ़ी। २ खर्जुरीवृक्ष, खजूरका पेड़।
निःश्रेयस (सं० क्ली०) निर्निश्चितं श्रेयः ततोऽच् समासान्तः (अचतुरविचतुरेति। पा ५।४।७७) १ मोक्ष, मुक्ति।

"वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥"
(मनु १२।८३)

वेदाभ्यास, तपस्या, इन्द्रियसंयम, अहिंसा और गुरुसेवा ये सब मोक्षकर हैं। २ मङ्गल, कल्याण। ३ विज्ञान। ४ भक्ति। ५ अनुभाव। (पु०) निर्निश्चितं श्रेयो मङ्गलं यस्मात्। ६ शिव, महादेव।
निःश्वास (सं० पु०) निर् श्वस-भावे घञ्। प्राणवायुका नाकसे निकलना या नाकसे निकाली हुई वायु, सांस।
निःषम (सं० अव्य०) निर्गतं समं यत्र (तिष्ठद्गुप्रभृतीनिच। पा २।१।१७) इति समासः ततो षत्वम्। १ निन्दा। पर्याय—गर्ह्य, दुःषम। २ शोक, चिन्ता, गम।
निःसन्धि (सं० त्रि०) निष्क्रान्तः सन्धेः सुश्लिष्टत्वात्। १ सन्धिशून्य, जिसमें कहींसे छेद आदि न हो। २ दृढ़, मजबूत। ३ कसा हुआ, गठा हुआ।
निःसामन् (सं० त्रि०) निष्क्रान्तः साम्नः ततो समासः षत्वञ्च। सामरहित।
निःसंशय (सं० त्रि०) शङ्कारहित, जिसमें सन्देह न हो।
निःसङ्कल्प (सं० वि०) इच्छारहित।
निःसङ्कोच (हिं० क्रि० वि०) विना सङ्कोचका, बेधड़क।
निःसङ्ग (सं० त्रि०) निर्नास्ति सङ्गो यत्र। १ मेलनरहित विना मेल या लगावका। २ जिसमें अपने मतलबका कुछ लगाव न हो। ३ निर्लिप्त।

बुद्धि द्वारा विविच्यमान पदार्थोंका स्वभाव निश्चित नहीं किया जा सकता। अतएव वे सब स्वभाव निरभिलाप्य और निःस्वभाव हैं, ऐसा दिखलाया गया है।

शून्यवादि बौद्धोंके मतसे वस्तुका स्वरूपत्व स्वीकृत नहीं होता। उन्होंने निःस्वभावको ही स्वभावका कारण बतलाया है।

निःस्वार्थ (सं० त्रि०) १ जो अपना अर्थ साधन करनेवाला न हो, जो अपना मतलब निकालनेवाला न हो। २ जो अपने अर्थ साधनके निमित्त न हो, जो अपना मतलब निकालनेके लिये न हो।

निकच्छ (सं० अव्य०) कच्छस्य समीपम्, सामीप्यार्थे अव्ययीभावः। पश्चिमापर सन्धिसमीप।

निकट (सं० त्रि०) नि-समीपे कटतीति नि-कट-अच्। अदूर, पासका, समीपका। पर्याय—समीप, आसन्न, सन्निकट, सनीड़, अभ्यास, सवेश, अन्त, अन्तिक, समर्याद, सदेश, अभ्यस, अभ्यर्ण, सविधा, उपकण्ठ, अभित।

वैदिक पर्याय—तलित्, आसात्, अम्बर, ओवंस, अस्तमोक, आक, उपाक, अर्वाक, अन्तमान, अवम, उपम।

निकटता (सं० स्त्री०) निकट-तल टाप्। सामीप्य, समीपता।

निकटपना (हिं० पु०) सामीप्य, निकटता।

निकटवर्त्तिन् (सं० त्रि०) निकटे वर्त्तते वृत-णिनि। समीपस्थ, निकटस्थ, पासवाला, नजदीकका।

निकटवर्त्तित्व (सं० क्लो०) निकटवर्त्तिनो भावः त्व। निकटवर्त्ति का भाव।

निकटस्थ (सं० त्रि०) निकटे तिष्ठति स्था-क। समीपस्थ, जो निकटका हो, पासका। २ सम्बन्धमें जिससे बहुत अन्तर न हो।

निकटसम्बन्धीय (सं० त्रि०) निकट सम्पर्कीय, निकट सम्बन्धविशिष्ट, नजदीकी रिश्तेदार।

निकटागत (सं० त्रि०) उपस्थित, अभ्यागत, समागत, जो नजदीकमें आ पहुंचा हो।

निकटागमन (सं० क्लो०) निकटे आगमनम्। उपसन्नता, उपस्थिति।

निकन्दन (सं० पु०) नाश, विनाश।

निकती (हिं० स्त्री०) छोटा तराजू, कांटा।

निकन्दरोग (सं० पु०) एक योनिरोग। योनिकन्द देखो।

निकम्मा (हिं० वि०) १ जो कोई काम धन्धा न करे, जिससे कुछ करते धरते न बने। २ जो किसी कामका न हो, जो किसी काममें न आ सके, वेमसरफ, बुरा।

निकर (सं० पु०) निकरोतीति वराप्नोतीति नि-कृ-अच्। १ समूह, झुण्ड। २ सार। ३ राशि, ढेर। ४ न्यायदेय धन। ५ निधि।

निकर्त्तन (सं० क्लो०) नि-कृत ल्युट्। १ छेदन, काटनेकी क्रिया। (त्रि०) २ छेदनकारी, काटनेवाला।

निकर्त्तव्य (सं० क्लो०) नि-कृत-तव्य। छेदनीय, वह जो काटने योग्य हो।

निकर्मा (हिं० वि०) जो काम न करे, जो कुछ उद्योग धंधा न करे।

निकर्षण (सं० क्लो०) निर्नास्ति कर्षणं यत्र। १ सन्निवेश। २ पत्तनादिमें परिच्छन्न प्रदेश, नगरके बाहर खेलने धूपनेका मैदान। ३ शहरके बाहर विहरणभूमि, घरके बाहरका आंगन। ४ सन्नीवस्थता, नजदीकी। ५ प्राङ्गणादिका सन्निवेश। (त्रि०) ६ कर्षणरहित।

निकलंक (हिं० वि०) दोषरहित, निर्दोष, वेदाग।

निकलंकी (हिं० पु०) विष्णुका दशवां अवतार जो कलिके अन्तमें होगा। कल्कि अवतार।

निकल (अं० स्त्री०) एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक, संखिया आदिके साथ मिली हुई खानोंमें मिलती है। अग्निसे इसे शुद्ध और परिष्कृत करने पर यह ठीक चांदीकी तरह चमकती है। यह बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहेकी तरह चुम्बकशक्तिको ग्रहण करती है।

इसका भारीपन ८·२८ है। जर्मनवासी क्रनष्टाड-ने सबसे पहले १७५१ ई०में इस धातुका पता लगाया। इसे साफ करनेकी प्रणाली आज भी किसीको अच्छी तरह मालूम नहीं। पर हां, इङ्गलैण्डके बर्मिंङ्हम शहरके लोग खड़ि और क्लोराइड-आफ-केलसियमके सहयोगसे अग्निके उत्तापमें इस मिश्रित धातुको गलाते हैं। पीछे उस मैलरहित परिष्कृत पदार्थको चूर्ण कर फिरसे आग पर चढ़ाते हैं। ऐसा करनेसे धातुगत आर्सेनिक

पिघल जाता है। अवशिष्ट चूर्णको हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें गला कर उसमें क्लोरिन गास चलाकर छान देते हैं। बाद उस द्रवलोहको अविशुद्ध चूर्ण करके पुनः चूनेके रस (milk of lime)में डुबो देते हैं। ऐसा करनेसे जो चूर्ण नीचे जम जाता है वह शुद्ध कर साफ हो जाता है। उस तरल पदार्थमें केवल कोबाल्ट और निकल मिली रहती है जो सलफिउरेटेड हाइड्रोजन नामसे पुकारी जाती है। इसमें क्लोराइड आफ-चारम देनेसे कोबाल्ट नीचे जम जाती है। उस समय उसमें केवल निकल मिली रहती है। उस निकलयुक्त तरल पदार्थमें चूनेका रस (milk of lime) देनेसे केवल निकल धातु बच जाती है। यह परिष्कृत धातु चांदीकी तरह चमकती और झुकती तथा लोहेकी तरह मुड़ती है। ११० डिग्री (फारनहिट) तापमें उत्तप्त करनेसे इसकी आकर्षण शक्ति कम हो जाती है। साधारण जल वायुसे इसको कुछ भी खराबी नहीं होती। उत्तप्त वायुसे यह आक्सिडाइज हो जाती है। तांबेके साथ इसे मिलानेसे यह विलायती (German silver) चांदीके रूपमें हो जाती है। अलुमीनमके साथ इसे मिलानेसे इसमें कुछ कड़ापन आ जाता है। यह धातु कंधार, राजपूताना, तथा सिंहलद्वीपमें थोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलनेके कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इसीसे छोटे सिक्के बनानेके काममें यह लाई जाती है।

निकलना (हि॰ क्रि॰) १ निर्गत होना, भीतरसे बाहर आना। २ व्याप्त या ओतप्रोत वस्तुका अलग होना, मिली हुई, सनी हुई या पैवस्त चीजका अलग होना। ३ गमन करना, जाना, गुजरना। ४ अतिक्रमण करना, एक ओरसे दूसरी ओर चला जाना पार होना। ५ उत्तीर्ण होना, किसी अंशको आगेके पार होना। ६ प्रादुर्भूत होना, उत्पन्न होना, पैदा होना। ७ आरम्भ होना, छिड़ना। ८ स्पष्ट होना प्रकट होना, खुलना। ९ भिन्नमेंसे अलग होना, पृथक् होना। १० उदय होना, जैसे, चन्द्रमा निकलना। ११ प्रमाणित होना, निश्चित होना ठहराया जाना। १२ किसी एक ओरको बढ़ा हुआ होना। १३ उपस्थित होना, दिखलाई देना। १४ खपना, बिकना। १५ बच जाना, अपनेको बचा जाना। १६ प्रमाणित होना, सिद्ध होना, साबित होना। १७ अपनी कही हुई बातसे अपना सम्बन्ध न बताना, बद कर नहीं करना। १८ प्राप्त होना सिद्ध होना, सरना। १९ प्रचलित होना, जारी होना। २० लकीरके रूपमें दूर तक जानेवाली वस्तुका विस्तार होना, फैलाव होना, जारी होना। २१ किसी प्रश्न या समस्याका ठीक उत्तर प्राप्त होना, हल होना। २२ लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तुका आरम्भ होना। २३ मुक्त होना, छूटना, अलग होना। २४ आविष्कृत होना, नई बात का पता होना। २५ शरीरके ऊपर उत्पन्न होना। २६ लगाव न रखना किनारे हो जाना। २७ हट जाना, मिट जाना दूर होना, जाता रहना। २८ प्राप्त होना, पाया जाना। २९ फट कर अलग होना उचड़ना। ३० हिसाब किताब होने पर कोई रकम जिम्मे ठहरना। ३१ प्रस्तुत हो कर सर्वसाधारणके सामने आना, प्रकाशित होना। ३२ घोड़े, बैल आदिका सवारी ले कर चलना आदि सीखना, शिक्षित होना। ३३ व्यतीत होना बीतना, गुजरना।

निकलवाना (हि॰ क्रि॰) निकालनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

निकष (सं॰ पु॰) निकषति विलिखति स्वर्णादिकं यस्मिन् नि-कष-घ। (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) १ कसौटी, इस पर सोना आदि परखा जाता है। २ कसौटी पर चढ़ानेका काम। ३ हथियारों पर सान चढ़ानेका पत्थर।

निकषण (सं॰ क्ली॰) नि-कष-ल्युट्। १ घर्षण, घिसने या रगड़नेका काम। २ कसौटी पर चढ़ानेका काम। ३ सान पर चढ़ानेका काम।

निकषा (सं॰ स्त्री॰) निकषति हिनस्तीति कष हिंसे पचाद्यच्, ततष्टाप्। १ रावणमाता। यह सुमालिकी कन्या और विश्रवाकी पत्नी थी। इसके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे। (अव्य॰) २ निकट, समीप। ३ मध्य, बीच। इस शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है।

निकषाश्मन (सं॰ पु॰) निकषाय पाषाण। निकषका मुख, पत्थर।

निकषोपल (सं० पु०) निकषनाम उपलः। १ प्रस्तरभेद, कसौटी। २ शाण, सान।

निकस (सं० पु०) निकसति पिनष्टि स्वर्णादिकं यत्र नि-कस-घ। निकष, कसौटी।

निकसना (हिं० क्रि०) निकलना देखो।

निकाई (फा० स्त्री०) १ भलाई, अच्छापन, उम्दगी। २ सौन्दर्य, खूबसूरती, सुन्दरता।

निकाज (हिं० वि०) निकम्मा, बेकाम।

निकाना (हिं० क्रि०) निराना देखो।

निकानोर—ई० सन्के ३०५ वर्ष पहले अन्तिगोनसके प्रतिनिधि। इन्होंने मिडिया, पार्थिया, एसिया और सिन्धुनद तकके देशों पर अपना अधिकार जमा लिया था।

निकाम (सं० क्ली०) कम इच्छायां नि-कम-घञ्। १ इष्ट, अभिलषित। २ पर्याप्त, यथेष्ट, काफी। ३ अतिशय, बहुत।

निकाम (हिं० वि०) १ निकम्मा। २ बुरा, खराब। (क्रि० वि०) ३ व्यर्थ, निष्प्रयोजन, फजूल।

निकामन् (सं० त्रि०) नि-कम बाहुलकात् मनिन्। अतिशय अभिलाषयुक्त।

निकाय (सं० पु०) निचीयते इति निचि-घञ्, आदेशश्च-क। १ समूह, झुण्ड। २ समानधर्मी व्यक्तिसमूह, एक ही मेलकी वस्तुओंका ढेर, राशि। ३ लक्ष्य। ४ निलय, वासस्थान, घर। ५ परमात्मा।

निकाय्य (सं० पु०) निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकमिति नि-चि-ण्यत् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। गृह, आलय, घर।

निकार (सं० पु०) नि-कृ-घञ्। १ पराभव, हार। २ अपकार। ३ अपमान। ४ मानहानि, अवमानना, अनादर। ५ तिरस्कार, लाञ्छना। ६ धान्यादिका ऊर्ध्वक्षेपण। ७ खलीकार, धिक्कार।

निकार (हिं० पु०) निष्कासन, निकालनेका काम। २ निकास, निकलनेका द्वार। ३ ईखका रस पकानेका कड़ाहा।

निकारण (सं० क्ली०) निकारयति क्लिश्यात्यनेनेति। नि कृ-णिच्-ल्युट्। मारण, वध।

निकारिन् (सं० पु०) वधकरणशील, जिनका स्वभाव वध करना हो।

निकाल (हिं० पु०) १ निकास। २ पेंचका काट, वह युक्ति जिससे कुश्तीमें प्रतिपक्षीको घातसे बच जांय, तोड़ा। ३ कुश्तीका एक पेंच। इसमें अपना दहना हाथ जोड़की बाईं ओरसे उसकी गरदन पर पहुंचा कर अपने बायें हाथसे उसके दाहने हाथको ऊपर उठाते हैं और फिर फुरतीके साथ उसके दहिने भाग पर झुक कर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियोंसे भिड़ाते तथा अपना बायां हाथ उसकी दहनी जांघमें बाहरकी ओरसे डाल कर उसे चित कर देते हैं।

निकालना (हिं० क्रि०) १ निर्गत करना, भीतरसे बाहर लाना, बाहर करना। २ प्रादुर्भूत करना, उपस्थित करना, मौजूद करना। ३ निश्चित करना, ठहराना। ४ व्यक्त करना, खोलना, प्रकट करना। ५ आरम्भ करना, छेड़ना, चलाना। ६ किसी ओरको बढ़ा हुआ करना। ७ गमन करना, ले जाना, गुजर कराना। ८ अतिक्रमण करना, एक ओरसे दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना। ९ सबके सामने लाना, देखमें करना। १० व्याप्त या ओतप्रोत वस्तुको पृथक् करना, मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीजको अलग करना। ११ ऊपर ऋण या देना निश्चित करना, रकम जिम्मे ठहराना। १२ प्रकाशित करना प्रचारित करना। १३ सिद्ध करना, फलीभूत करना। १४ किसी प्रश्न या समस्याका ठीक उत्तर निश्चित करना, हल करना। १५ लकीरकी तरह दूर तक जानेवाली वस्तुका विधान करना, जारी करना, फैलाना। १६ संकट, कठिनाई आदिसे छुटकारा करना, बचाव करना, निस्तार करना। १७ फलीभूत करना, प्राप्त करना, सिद्ध करना। १८ बेचना, खपाना। १९ नौकरीसे छुड़ाना, बरखास्त करना, कामसे अलग करना। २० फंसा, बंधा, जुड़ा या लगा न रहने देना, अलग अलग करना, छुड़ाना। २१ मेल या मिले जुले समूहमेंसे अलग करना, पृथक् करना। २२ घटाना, कम करना। २३ पास न रखना, दूर करना, हटाना। २४ निर्वाह करना, चलाना। २५ आविष्कृत करना, नई बात प्रकट करना, ईजाद करना। २६ सुईसे बेल बूटे बनाना। २७ घोड़े बैल आदिको सवारी ले कर चलना या गाड़ी आदि खींचना सिखाना, शिक्षा देना।

निकुञ्जवन—तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। श्रीवृन्दावन धामके इस निकुञ्जवनमें श्रीकृष्णचन्द्रजो श्रीराधिकाके साथ विहार करते थे। वृन्दावन देखो।

निकुञ्जिकाम्ला (सं० स्त्री०) निकुञ्जिका कुञ्चोद्भवा अम्ला। कुञ्चिकावृक्षभेद, कुञ्जके वृक्षका एक भेद। पर्याय—कुञ्जिका, कुञ्चवल्ली। इसका गुण श्रीवल्लीके समान है।

निकुम्भ (सं० पु०) नि-कुभि-अच्। १ दन्तोवृक्ष। २ कुम्भकर्णका एक पुत्र जिसे हनुमान्ने मारा था। यह रावणका मन्त्री था। ३ दानवभेद, एक असुरका नाम। ४ प्रह्लादके एक पुत्रका नाम। ५ हर्यश्व राजाके पुत्रका नाम। ६ विश्वदेवभेद, एक विश्वदेव। ७ कुरुसेनापतिके अन्तर्गत नृपभेद, कौरव सेनापतियोंमेंसे एक राजा। ८ कुमारानुचरभेद, कुमारका एक गण। ९ राक्षसेश नामक शिवके एक अनुचरका नाम। १० जमालगोटा। ११ जलवेतस, जलवेत।

निकुम्भ—१ सूर्य वंशीय एक राजा। अयोध्यामें इनको राजधानी थी, इनके वंशमें मान्धाता, सगर, भगीरथ, रघु और श्रीरामचन्द्र उत्पन्न हुए थे। निकुम्भके प्रपितामह कुवलयाश्वने धुन्धु नामक दैत्यका वध करके धुन्धुमारकी उपाधि ग्रहण की और इसी नाम पर राजपूतानेमें धुन्धार (जयपुर) राज्य बसाया। इनकी वंशावली निकुम्भ नाम धारण कर यहां वास करती है। अयोध्याका वंश अभी रघुवंश नामसे प्रसिद्ध है। मान्धाता और सगरके साथ हैहय और तालजङ्घोंका नर्मदा नदीके किनारे तुमुल संग्राम हुआ था। तभीसे यहां इस वंशकी एक शाखा वास करती आ रही है। टॉडका कहना है, कि निकुम्भके वंशधर बहुत दिनों तक मण्डलगढ़ जिलेमें रहे थे। मेवातके अन्तर्गत अलवार और इन्दोर इन्हींका बसाया हुआ है, ऐसी जनश्रुति है। अमनेरमें इनकी राजधानी थी। मुसलमानोंके आक्रमणके बाद मध्यप्रदेशमें केवल खान्देशके चारों ओर तथा अलवारमें इनका आधिपत्य फैला हुआ था। हुसेनखांके पूर्व पुरुष अलावलखांने उत्तर अलवारवासी निकुम्भोंका अधिकार छीन लिया था।

२ दैत्यविशेष। यह सप्तपुरीका राजा था। इसने श्रीकृष्णके मित्र ब्रह्मदत्तकी कन्याओंका हरण किया था इस कारण यह श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया।

निकुम्भाख्यबीज (सं० क्ली०) निकुम्भाख्यस्य दन्तिका वृक्षस्य बीजवत् बीजं यस्य। जयपाल, जमालगोटा। जयपाल देखो।

निकुम्भित (सं० क्ली०) नृत्यविषयक अष्टोत्तरशत करणान्तर्गत नृत्यविशेष।

निकुम्भिला (सं० स्त्री०) १ लङ्काके पश्चिम एक गुफा। २ गुफाकी देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्धकी यात्रा करता था।

निकुम्भी (सं० स्त्री०) निकुम्भ गौरादित्वात् ङीष्। १ दन्तोवृक्ष। २ कट्फल। ३ कुम्भकर्णकी कन्या।

निकुरम्ब (सं० क्ली०) निकुरतीति नि-कुर बाहुलकात् अम्बच्। समूह, झुण्ड।

निकुलीनिका (सं० स्त्री०) निपात, पतन, गिराव।

निकुही (हिं० स्त्री०) एक चिड़ियाका नाम।

निकूल (सं० पु०) नरमेधयज्ञके अन्तर्गत षष्ठयूपमें पशुओंके वधोद्देश्य देवताभेद, वह देवता जिसके उद्देश्यसे नरमेधयज्ञ और अश्वमेधयज्ञमें छठे यूपमें पशुहनन होता था।

निकृत (सं० त्रि०) नि कृ-क्त। १ प्रत्याख्यात, निकाला हुआ। २ शठ, नीच। ३ वञ्चित, जो ठगा गया हो। ४ लाञ्छित, बदनाम। ५ तिरस्कृत।

निकृतन (सं० पु०) गन्धक।

निकृति (सं० स्त्री०) नि-कृ-क्तिन्, १ भर्त्सन, तिरस्कार। २ अपकार। ३ दैन्य। ४ पृथ्वी। ५ शठता, नीचता। ६ माध्यासे उत्पन्न धर्मपुत्र एक वसु। ७ क्षेप।

निकृतिन् (सं० त्रि०) शठ, नीच, दुष्ट।

निकृत्त (सं० त्रि०) नि-कृत-क्त। खण्डित, मूलसे छिन्न, जड़से कटा हुआ।

निकृत्तमूल (सं० पु०) निकृत्तं मूलं यस्य। वह वृक्ष जिसका मूल छिन्न हो गया हो।

निकृत्या (सं० स्त्री०) निठुरता, शठता, नीचता।

निकृत्वन् (सं० त्रि०) छेदक, काटनेवाला।

निकृन्तन (सं० त्रि०) निकृन्तति कृत-ल्युट। १ छेदनकारी, काटनेवाला। (क्ली०) कृत-ल्युट्। २ छेदन, खण्डन।

निकृष्ट (सं० त्रि०) नि-कृष-क्त। अधम, नीच, तुच्छ, बुरा।

कुछ मिलती जुलती है, पर निकोवरवासियोंको आँख देखनेसे ये बिलकुल एक दूसरेसे पृथक् प्रतीत होते हैं। इनका वर्ण ताँबेके जैसा और शरीरकी गठन-प्रणाली बहुत अच्छी है। ये बहुत लम्बे नहीं होते; इनकी आँख चीना-सी, नाक छोटी और चिपटी, मुँह बड़ा, होंठ मोटी, कान लम्बे, बाल काले और लम्बे तथा सामान्य डाढ़ी होती है।

निकोवरवासी जिन सब ग्रामोंमें वास करते हैं, वे प्रायः समुद्रके किनारे अवस्थित हैं तथा प्रत्येक ग्राममें १५से २० घर हैं। प्रत्येक घरमें २० वा उससे अधिक मनुष्य रहते हैं। मट्टीके ऊपर करीब १० फुट ऊँची खूँटी गाड़ देते हैं जिसके ऊपर वे घर बनाते हैं। इनके घरोंका आकार गोल और झरोखा एक भी नहीं रहता घरके नीचे एक प्रकारका दरवाजा रहता है।

निकोवरवासी साधारणतः मत्स्यजीवी हैं। शूकर, गृहपालित पशुपक्षी, कच्छप, मत्स्य, नारिकेल, जामुन, नाना प्रकारके फल और मैलोरी नामक वृक्षके फलकी रोटी ही इनकी प्रधान खाद्य है। ये लोग बहुत आलसी, डरपोक, विश्वासघातक और सुराप्रिय होते हैं। पूर्व समयमें इनमेंसे अनेक चोरी डकैती करके अपना गुजारा करते थे; किन्तु जबसे यह द्वीप अंगरेजोंके हाथ लगा, तबसे उन्होंने शान्तभाव धारण कर लिया है।

निकटवर्त्ती द्वीपवासी एक दूसरेकी बोली नहीं समझते। ये लोग कुसंस्काराच्छन्न होते, भूतों पर विश्वास करते तथा शवको गाड़नेके पहले उसे कई दिन गांवमें रख छोड़ते हैं। इन लोगोंको कोई लिखित भाषा नहीं है। बहुत प्राचीन कालमें यहां लिखित भाषाके बदले सूर्य, चन्द्र, थाली, लोटा, मनुष्य आदिकी प्रकृतिके चित्र द्वारा अक्षरके कार्य साधित होते थे।

ये लोग एक समय बहुविवाहको घृणा करते हैं। स्त्रीपरित्यागकी प्रथा इनमें प्रचलित है। इनमेंसे प्रत्येक अपनेको प्रधान समझता है। यद्यपि दो एक मनुष्य बड़प्पनके कारण बहुतोंसे माननीय हो भी सकते हैं, तो भी वे किसीके ऊपर अपना रोबदाब जमा नहीं सकते।

यहां कृषिकार्यकी कुछ भी चर्चा नहीं है। पर हां, खाद्यके लिए केला, मीठा नीबू (sweet lime), जामुन तथा तरह तरहके फलके पेड़ अवश्य लगाते हैं।

१८६८ ई०में भारतगवर्मेण्टने निकोवर द्वीपको अधिकारभुक्त कर अन्दामानके अध्यक्ष (Superintendent)के शासनाधीन कर दिया। १८७२ ई०में यह द्वीप अन्दामानके चीफ-कमिश्नरके अधीन हुआ और १८८६ ई०में समस्त निकोवर-द्वीप-पुञ्ज अंगरेज गवर्मेण्टके उपनिवेशमें गिना जाने लगा।

यहांका जलवायु अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। मलेरिया ज्वरका प्रकोप यहां खूब देखा जाता है। ऋतुमें वर्षा ही प्रधान है। ग्रेट निकोवरके वनमें एक असभ्यजाति वास करती है। अन्यान्य अधिवासियोंके साथ उनके आकार या चरित्रगतमें कोई सादृश्य नहीं है। सम्भवतः वे अष्ट्रेलियाकी आदिम असभ्यजातिमेंसे होंगे।

निकोश्य (सं० पु० क्ली०) यज्ञीय पशुकी उदरस्थित नाड़ीका अंशविशेष, यज्ञपशुके पेटकी एक नाड़ी।

निकोसना (हिं० क्रि०) १ दांत निकालना। २ दांत पीसना, कटकटाना, किचकिचाना।

निकोसियर—युवराज अकबरके पुत्र। ये पहले राज-विद्रोही हुए थे, पीछे राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर थोड़े ही समयके अन्दर यमराजके मेहमान बने।

निकौनी (हिं० स्त्री०) १ निराई, निरानेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निक्का (हिं० वि०) छोटा, नन्हा।

निक्रमण (सं० क्ली०) नितरां क्रमते यत्र नि-क्रम आधारे ल्युट्। स्थान, जगह।

निक्रीड़ (सं० पु०) १ कौतुक, क्रीड़ा, तमाशा। (क्ली०) २ सामभेद।

निक्वण (सं० पु०) क्वण शब्दे नि-क्वण-अप। १ वीणाध्वनि, वीनकी झनकार। २ किन्नर प्रभृतिका शब्द। पर्याय—निक्वाण, क्वाण, क्वण, क्वणन, प्रक्वाण, प्रक्वण, सुक्वण, सुक्वण। (भारत)

निक्वाण (सं० पु०) नि-क्वण-घञ्। निक्वण।

निक्षण (सं० पु०) चुम्बन।

निक्षा (सं० स्त्री०) निक्ष-अच्-टाप्। निख्या, जूँका अंडा, लीख।

निक्षिप्त (सं० त्रि०) नि-क्षिप क्त। १ त्यक्त, फेंका हुआ।

हो" ऐसा वर दिया और अनङ्गपालको लक्ष्योंसे कहा। "तुम्हारा एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा मारी बड़ा होगा।" इसके अनन्तर दानवराजने आयो का कर अपना शरीर १०८ खण्डोंमें काट कर गङ्गामें डाल दिया। उनकी शिरःास्थिसे एक क्षत्रिय भाट और १० खण्डोंसे १० क्षत्रिय और पत्नीमें उत्पन्न हुए। इन बीस क्षत्रियोंमें सोमेश्वर प्रधान थे। सोमेश्वरके पुत्र विख्यात दिल्लीश्वर पृथ्वीराज हुए। दूसरे दूसरे पत्नोंसे किसीने कन्नौजमें, किसीने परिहारमें, किसीने भाडारमें, किसीने नागोर आदि स्थानोंमें जन्मग्रहण किया। इन लोगोंके आदेशप्रजात चांद कवि इसी वंशके भाटोरमें उत्पन्न हुए थे। (पृथिराज-रासया)

निगमागम (स० पु०) वेदशास्त्र।

निगमिन् (स० पु०) नि-गम इनि। वेदविद्, जो वेद जानते हों।

निगर (स० पु०) नि-गृ-अप्। (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) १ भोजन। २ एक बरवका तौलमें ११ मोती चढ़े, जो उन मोतियोंके समूहका नाम निगर है।

निगर (हि० वि०) १ सब, सारे। (पु०) २ निकर देखो।

निगरण (स० क्ली०) नि-गृ-ल्युट्। १ भक्षण, भोजन। (पु०) २ गला। ३ होममें धुम्र। इसे काम पर न करनेसे 'निगरण' शब्द भी होता।

निगरां (फा० पु०) १ निरीक्षक, निगरानी रखनेवाला। २ रक्षक।

निगरा (हि० वि०) जिसमें जल न मिलाया गया हो, खालिस।

निगराना (हि० क्रि०) १ निर्णय करना निबटाना। २ अलग करना, छाँट कर अलग अलग करना या होना। ३ साफ करना या होना।

निगरानी (फा० स्त्री०) निरीक्षण, देखरेख।

निगलना (हि० क्रि०) १ गलेके नीचे उतार देना, घोंट जाना गटक जाना। २ खा जाना। ३ अपना या धन पचा जाना।

निगह (फा० स्त्री०) दृष्टि, नजर, निगाह।

निगहबान (फा० पु०) रक्षक।

निगहबानी (फा० स्त्री०) रक्षा, देखरेख, रखवाली, चौकसी।

निगाद (स० पु०) नि-गद् विकल्पे घञ् (नौ गदनदपठस्वनः। पा ३।३।६४) निगद, भाषण, कथन।

निगादिन् (स० त्रि०) नि-गद् णिनि। वक्ता।

निगार (स० पु०) नि-गृ-घञ्। भक्षण, भोजन।

निगार (फा० पु०) १ चित्र, नक्काशी, बेलबूटा। २ एक फारसी राग।

निगाल (स० पु०) निगार रस्य लः। १ भोजन। २ अश्वगलदेश, घोड़ेके गलेका वह भाग जहां लगाम बांधी जाती है।

निगाल (फा० पु०) १ एक प्रकारका पहाड़ी बांस जो हिमालयमें पैदा होता है। इसे कोई रिंगाल भी कहते हैं। २ घोड़ेकी गरदन।

निगालवान् (स० पु०) निगालोऽस्त्यस्येति, निगाल मतुप्, मस्य वः। अश्व, घोड़ा।

निगालिका (स० स्त्री०) आठ अक्षरोंको एक वर्णवृत्ति, इसके प्रत्येक चरणमें जगण रगण और लघुगुरु होते हैं। इसे प्रमाणिका' और नागस्वरूपिणी' भी कहते हैं।

निगाली (हि० स्त्री०) १ बांसकी बनी हुई नली, निगाल। २ हुक्केकी नली जिसे मुंहमें रख कर धुआं खींचते हैं।

निगाह (फा० स्त्री०) १ दृष्टि, नजर। २ ध्यान, विचार, समझ। ३ परख, पहचान। ४ देखनेकी क्रिया या ढङ्ग, चितवन, तकाई। ५ कृपादृष्टि, मेहरबानी।

निगिन (हि० वि०) अत्यन्त मोचनीय, जिसका बहुत लोभ हो, बहुत प्यारा।

निगु (स० पु०) निगम्यते विषयीक्रियतेऽनेनेति नि-गम बाहुलकात् डु। १ मल, मल करना। २ मन। ३ मूल। ४ मनोज्ञ। ५ चित्रकर्म।

निगुई—गुजरातके मध्यवर्ती एक ग्राम। इसके पूर्वमें फलद्र-मडु, पश्चिममें विसाल ग्राम और उत्तरमें दहिमली ग्राम पड़ता है। राजा २य दद्दने यह ग्राम कन्नौजसे आए हुए प्रसिद्ध आम्रदेवी ब्राह्मण मह मादववो पश्चिदोक्त और पञ्चान्य धर्मादिक कर्तव्यसाधनके लिये दान किया था।

है; क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरणसे अर्थ सिद्ध हो गया, तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहलेसे नियमको मान लेने पर है।

(१३) जहां व्यर्थ पुन: कथन हो वहां पुनरुक्त होता है।

(१४) चुप रह जानेका नाम अननुभाषण है। जहां वादी अपना अर्थ साफ साफ तीन दफा कहे और प्रतिवादी सुन और समझ कर भी कोई उत्तर न दे वहां अननुभाषण नामक निग्रहस्थान होता है।

(१५) जिस बातको सभासद् समझ गए हों उसी को तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे, तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।

(१६) जहां पर पक्षका खण्डन अर्थात् उत्तर न बने वहां अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१७) जहां प्रतिवादी इस तरह टालटूल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूंगा' वहां विक्षेप होता है।

(१८) जहां प्रतिवादीके दिए हुए दोषको अपने पक्षमें अङ्गीकार करके वादी विना उस दोषका उद्धार किए प्रतिवादीसे कहे, कि 'तुम्हारे कथनमें भी तो यह दोष है' वहां मतानुज्ञा नामक निग्रह स्थान होता है।

(१९) जहां निग्रहस्थानमें प्राप्त हो जानेवालेका निग्रह न किया जाय वहां पर्यनुयोज्योपेक्षण होता है।

(२०) जो निग्रहस्थानमें न प्राप्त होनेवालेको निग्रह-स्थानमें प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रह-स्थानमें गया समझना चाहिये।

(२१) जहां कोई एक सिद्धान्तको मान कर विवादके समय उसके विरुद्ध कहता है, वहां अपसिद्धान्त नामक निग्रह स्थान होता है।

(२२) हेत्वाभास देखो।

निग्रही (हिं० वि०) १ रोकनेवाला, दबानेवाला। २ दमन करनेवाला, दण्ड देनेवाला।

निग्रहीतव्य (सं० त्रि०) नि-ग्रह-तव्य। निग्रहणीय, जो सजा देनेके योग्य हो।

निग्राभ (सं० पु०) १ निग्राह, आक्रोश, शाप। २ शत्रुके विषयमें अपकर्ष।

निग्राभ्य (सं० त्रि०) निग्राह्य, ग्रहीतव्य, ग्रहण करने-योग्य, लेनेके काबिल।

निग्राह (सं० पु०) नि ग्रह-घञ्। (आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः। पा ३।३।४५) निग्रह, आक्रोश, शाप।

निग्राह्य (सं० त्रि०) नि-ग्रह-ण्यत्। निग्रहणीय, ग्रहण करनेके योग्य।

निग्रो—एक प्रकारकी असभ्य जाति। अफ्रिकामें इनका आदिम वास था। वर्त्तमान समयमें ये पृथ्वीके अधिकांश स्थानोंमें फैल गये हैं। इनमेंसे मलय उपद्वीप, पूर्वभार-तीय द्वीपावली, अन्दामान आदि स्थानोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं।

मलयजाति और पपुयाजातिके साथ इनका आकार बहुत कुछ मिलता जुलता है। प्रधानतः निग्रोजाति दो भागोंमें विभक्त है—१ खर्वाकार निग्रो और २ वृहत्‌काय निग्रो। खर्वाकार निग्रोकी लम्बाई ५ फुटसे कमकी नहीं है, किन्तु वृहदाकृति निग्रोमेंसे कोई कोई ६ फुटसे अधिक लम्बा होता है। प्रथम श्रेणीके निग्रो क्षीणकायके होते, नाक चिपटी, दाढ़ी बहुत छोटी, बाल घुंघुराले और आंखें बहुत छोटी छोटी होती हैं। द्वितीय श्रेणीके निग्रो देखनेमें भयङ्कर लगते हैं। उनके प्रकाण्ड कृष्णवर्ण शरीर, बड़ी बड़ी आंखें, कुञ्चित बाल और सूक्ष्म नासिकाग्र देखनेसे वीरके हृदयमें भी भयका सञ्चार हो जाता है। दोनों प्रकारके निग्रो गाढ़ कृष्णवर्ण और विलक्षण साहसी होते हैं। इनमेंसे बहुतेरे ऐसे थे जो जलपथ पर दस्युवृत्ति करके अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। कोई कोई मुसल-मान बादशाहके अधीन सैनिक विभागमें काम भी करते थे। शिकार आदि अन्यान्य साहसिक कार्य करनेमें ये बड़े सिद्धहस्त हैं। हरिण, शूकर इत्यादि जङ्गली जन्तुओंका शिकार कर अपना पेट पालते हैं।

अफ्रिकामें निग्रोकी संख्या प्रायः २० लाख है। अमेरिकामें ये कम संख्यामें पाये जाते हैं। लोहित सागर और पारस्यउपसागरके तीरवर्ती स्थानोंमें तथा मलय उपद्वीपमें कमसे कम ५० लाख निग्रो रहते हैं।

हटेण्टट, काफ्रि और निग्रीटा ये तीन निग्रोजातिकी विभिन्न शाखाएं हैं। इसके अलावा अन्दामानद्वीपके पूर्व-में लगभग बारह प्रकारके निग्रो देखे जाते हैं। इनके

आघातप्रकार और रीतिनीतिमें बहुत कुछ प्रभेद देखा जाता है। विशेष विवरण कादम्ब शब्दमें देखो।

निघोष (हिं॰ पु॰) राजा ययातिके एक मंत्रीका नाम।

निघ (सं॰ पु॰) निहन्यते निर्विशेषेण या उच्चावे आरोहे इति नि हन निपातनात् साधुः। (निघो निमित्तम्। पा ३।३।८७) समविस्तार दैर्घ्य पदार्थ, वह वस्तु जिसकी चौड़ाई एक सी हो।

निघण्ट (सं॰ पु॰) निघण्टु, सूचीपत्र।

निघण्टिका (सं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कन्द, गुलञ्च।

निघण्टु (सं॰ पु॰) निघण्टति ग्रथ्नाति इति दोषो कुमत्व येन साधुः (मगय्यादयश्च। उण् १।३८) १ नामसंग्रह। जैसे वैद्यकका निघण्टु। २ अभिधानविशेष। इसमें वैदिक शब्दोंका अर्थ लिखा है। ३ पदार्थवाची पर्याय शब्द जिसमें लिखित हैं उन्हें निघण्टु कहते हैं। अमरकोष, वैजयन्ती और हलायुध आदि ग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न स्थान पर नाम संग्रह है, उस उस स्थानको भी निघण्टु कहते हैं।

निघण्टु तीन अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें पृथिव्यादि लोक और दिक्कालादि द्रव्यविषयोंके नाम, द्वितीय अध्यायमें मनुष्य और तदवयवादि द्रव्यविषय और तृतीय अध्यायमें मनुष्य तथा उनके धर्मधर्मादि द्रव्य और सत्वादि धर्मविषय निबद्ध हैं। यास्कने निघण्टुकी जो व्याख्या लिखी है वह निरुक्तके नामसे प्रसिद्ध है। यह निघण्टु अत्यन्त प्राचीन है, क्योंकि यास्कसे पहले भी शाकपूणि और औपमन्यव नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारतमें काश्यपको निघण्टुका कर्त्ता लिखा है। ४ निर्घण्ट, सूचीपत्र।

निघण्टुराज (सं॰ पु॰) नरहरिकृत राजनिघण्टु।

निघरघट (हिं॰ वि॰) १ जिसका कहीं घर घाट न हो, जिसे कहीं ठिकाना न हो जो घूम फिर कर कहीं आवे वहांसे दुतकारा या हटाया जाय। २ निर्लज्ज, बेहया।

निघरा (हिं॰ वि॰) जिसके घरबार न हो, निगोड़ा।

निघर्ष (सं॰ पु॰) नि-घृष भावे घञ्। घर्षण, घिसना रगड़ना।

निघर्षण (सं॰ क्ली॰) नि घृष-ल्युट्। घर्षण, घिसना, रगड़ना।

निघस (सं॰ पु॰) अद भक्षणे नि-अद-अप्, ततो घसादेशः (घञपोश्च। पा २।४।३८) आहार, भोजन।

निघात (सं॰ पु॰) नि हन भावे घञ्। १ आघात, प्रहार। २ अनुदात्त स्वर। ३ अन्य स्वर द्वारा अन्य स्वरका हनन।

निघाति (सं॰ स्त्री॰) निहन्यतेऽनया नि-हन-क्तिन् कुत्वञ्च (वति हनि-भ्यामिति। उण् ४।१२४) १ लौहघातिनी, लौहमयदण्ड। २ वह लोहेका पाट जिस पर हथौड़े आदिका आघात पड़े, निहाई।

निघाती (सं॰ त्रि॰) १ आघातकारी, मारनेवाला। २ वध करनेवाला।

निघासन—१ युक्तप्रदेशके खेरी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा॰ २० ३१ और २८ ४२´ उ॰ तथा देशा॰ ८० १८ और ८१ १८´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२१७ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८८११३ है। इसमें ४८६ ग्राम और दो शहर लगते हैं। इसके उत्तरमें आधीन नेपाल राज्य पूर्वमें नानपाड़ा तहसील, दक्षिणमें लिखनम और लोहापुर तहसील तथा पश्चिममें लखीमपुर तहसील है। खेरी जिलेमें यह सबसे बड़ी तहसील है। फिरोजाबाद, धौरहरा, निघासन, खैरीगढ़ और पालिया ये पांच परगने इसके अन्तर्गत हैं।

२ खेरी जिलेका एक परगना। इसके उत्तरमें खैरीगढ़ है, पूर्वमें धौरहरा, दक्षिणमें भूर और पश्चिममें पालिया है। सरयू नदी इस परगनेमें बहती है।

निघुष्ट (सं॰ क्ली॰) निघुष्यतेस्मेति, नि-घुष भावे क्त। घुष्ट घोषण।

निघृष्व (सं॰ पु॰) घृषु संघर्षे नि-घृष-क्वन् अस्य नेट् साधुः (कर्षे निघृष्वरिम्योति। उण् १।१५५) १ खुर। २ वायु। ३ चक्र। ४ मार्ग। ५ वराह। ६ क्षुद्र।

निघ्न (सं॰ त्रि॰) निहन्यते निरुध्यते इति नि-हन कर्मणि क। १ अधीन, आयत्त, वशीभूत। २ आहत, ताड़न किया हुआ। ३ अवलम्बित, निर्भर। ४ गुणित गुणा किया हुआ। (पु॰) ५ सूर्यवंशीय राजा अनरण्यका पुत्र। ६ एक राजा जो अनमित्रका पुत्र था।

निघ्नक (सं॰ पु॰) हस्तिनापुरके राजा जो धर्मनेत्रक-

के पुत्र थे। हस्तिनापुरको जब गङ्गा बहा ले गई, तब इन्होंने कौशाम्बीमें राजधानी बसाई।

निचन्द्र (सं० पु०) दानवभेद, एक दानवका नाम।

निचमन (सं० क्ली०) अल्प परिमाणमें पान, थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय (सं० पु०) नि-चि-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) १ समूह। २ अवयवादिका लक्षण। ३ निश्चय। ४ निचीयमान, अवयवादि द्वारा वर्द्धमान। ५ सञ्चय।

निचयक (सं० त्रि०) निचये कुशलः आकर्षादित्वात् कन् निचयकुशल।

निचयात्मक (सं० त्रि०) सान्निपातिक।

निचला (हिं० वि०) १ नीचेका, नीचेवाला। २ अचल जो हिलता डोलता न हो। ३ स्थिर, शान्त, अचपल।

निचलौल—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत महाराजगञ्ज तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° १८' उ० और देशा० ८३° ४४' पू० गोरखपुर शहरसे ५१ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १५६४ है यहां ईंटके बने हुए एक प्रकाण्ड दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

निचाई (हिं० स्त्री०) १ नीचापन, नीचा देखनेका भाव। २ नीचेकी ओर दूरी या विस्तार। ३ नीचता, ओछापन, कमीनापन।

निचान (हिं० स्त्री०) १ नीचापन। २ ढाल, ढालुवांपन, ढलान।

निचाय (सं० पु०) नि-चि परिमाणाख्यायां घञ्। राशीकृत धान्यादि, धान आदिका ढेर।

निचिंत (हिं० वि०) चिन्तारहित, सुचित, बेफिक्र।

निचि (सं० पु०) नि चि बाहुलकात् डि। गोकर्णशिरोदेश, कानोंके सहित गायका सिर।

निचिकी (सं० स्त्री०) निचिना कायति शोभते इति कैक, गौरादित्वात् ङीष्। उत्तमा गामि, अच्छी गाय।

निचित (सं० त्रि०) निचीयते स्मेति नि-चि-क्त। १ पूरित। २ व्याप्त। ३ रचित, सञ्चित। ४ सम्य. उपार्जित। ५ सङ्कीर्ण। ६ निर्मित, तैयार।

निचिता (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

निचिर (सं० क्ली०) नितरां चिरः प्रादिसमासः। १ अत्यन्त चिरकाल। २ चिरकालवर्त्ती।

निचुक्कण (सं० त्रि०) १ गर्जन। २ बड़बड़ाना।

निचुड़ना (हिं० क्रि०) १ रससे भरी या गीली चीजका इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपक कर निकल जाय, दब कर पानी या रस छोड़ना, गरना। २ भरे या समाये हुए जल आदिका दाब पा कर अलग होना या टपकना, छूट कर चूना, गरना। ३ रस या सारहीन होना। ४ शरीरका रस या सार निकल जानेसे दुबला होना, तेज और शक्तिसे रहित होना।

निचुम्पुन (सं० पु०) निचमनेन पूर्यते ततो पृषोदरादित्वात् साधुः। १ समुद्र। २ अवभृथ, वह शेष कर्म जिसके करनेका विधान मुख्ययज्ञके समाप्त होने पर है।

निचुल (सं० पु०) नि-चुल-क। १ हिज्जलवृक्ष, ईंजड़का पेड़। २ वेतसवृक्ष, बेंत। ३ निचोल, आच्छादन वस्त्र।

निचुल—एक कवि। महाकवि कालिदासकृत मेघदूतकी टीकामें मल्लिनाथने इनका उल्लेख किया है। ये कालिदासके समसामयिक और बन्धु थे। इनकी उपाधि कवियोगीन्द्र थी।

निचुलक (सं० क्ली०) निचुल इव प्रतिकृतिः कन् (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) १ निचोलक, कञ्चुक, अंगा। २ हिज्जलफल, ईंजड़का फल।

निचृत् (सं० स्त्री०) दोषयुक्त छन्द।

निचेकाय (सं० पु०) वह जिसकी प्रत्येक तह सजाई गई हो।

निचेतृ (सं० त्रि०) नि-चि-तृण्। लब्ध वस्तुका सञ्चयकर्त्ता।

निचेय (सं० त्रि०) नि-चि-यत्। आचीयमान, जो जमा किया जाय।

निचेरु (सं० पु०) नि-चर बाहुलकात् उन् आदेरेश्च। नितरां चरणशील, अत्यन्त विचरणशील, वह जो हमेशा घुमता फिरता हो।

निचोड़ (हिं० पु०) १ वह वस्तु जो निचोड़नेसे निकले, निचोड़नेसे निकला हुआ जल रस आदि। २ सार वस्तु, सार, सत। ३ मुख्य तात्पर्य, कथनका सारांश, खुलासा।

निजमतावलम्बिन् (सं० त्रि०) आत्ममतवादी, जो केवल अपने मतका अवलम्बन करता हो।

निजमुक्त (सं० त्रि०) स्वभावमुक्त, नित्यमुक्त।

निजस्व (सं० क्लो०) निजस्य स्वं। निजधन, स्ववित्त, अपनी सम्पत्ति, अपना धन।

निज़ा (अ० पु०) विवाद, झगड़ा।

निजात्मानन्दनाथ—एक ग्रन्थकार। इन्होंने श्रीविद्या-पूजापद्धति नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

निजात्मानन्द प्रकाश—एक संस्कृत ग्रन्थकार, नृसिंहके शिष्य। इनका बनाया हुआ 'महात्रिपुरसुन्दरीपादुका-शंनक्रमोत्तम' नामक ग्रन्थ मिलता है।

निज़ाम (अ० पु०) १ बन्दोबस्त, इन्तज़ाम। २ हैदराबादके नवाबोंका पदवीसूचक नाम। आसफजाहीवंशके संस्थापकने 'निज़ाम-उल-मुल्क'की उपाधि पाई थी।

विशेष विवरण निज़ामराज्यमें देखो।

निज़ाम अलीखाँ—दाक्षिणात्यमें निज़ाम-राज्यके प्रतिष्ठाता निज़ाम-उल्-मुल्क-आसफ जाहके चतुर्थ पुत्र। ये हैदराबादके सिंहासन पर चतुर्थ निज़ाम बन कर बैठे। पिताकी मृत्युके बाद पेशवाने जब इनके भाई सलावत-जङ्ग पर आक्रमण किया, तब १७५१ ई०में निज़ाम बुरहनपुरसे अहमदनगरकी ओर चल दिये। राहमें उनकी सेनाने रंजनगांव और तेलीगांवधमधेरी नामक स्थान लूटा। यहां महाराष्ट्रोंके साथ निज़ाम-सेनाका घनघोर युद्ध छिड़ा। युद्धमें पराजित हो कर निज़ामने पूनाके निकट भीमा नदीके तीरवर्त्ती कोरेगांव नामक स्थानमें भाग कर अपनी जान बचाई। वे बेरारके शासनकर्त्ता थे। १७५७ ई०में रामचन्द्र यादोन जब पेशवा बालाजी बाजीरावकी सेनासे अपनी राजधानी सिन्दखेरनगरमें नजरबन्द किये गये, तब निज़ाम-अलीने जा कर उनकी रक्षा की थी। १७५८ ई०में निज़ाम दलबलके साथ अकोला पहुंचे और नगरमें लूट मार मचाने लगे। जानूजी भोंसलासे युद्धमें परास्त हो कर बुरहानपुरमें भाग आये और पुनः उनके विरुद्ध यात्रा कर युद्धविजयी हुए थे।

इस समय निज़ामके सेनापति कावीजङ्गने पेशवासे कुछ रिशवत ले कर अहमदनगर-दुर्ग उन्हें छोड़ दिया। इसी सबबसे निज़ामके साथ पेशवाका युद्ध छिड़ा। पेशवाने १७६० ई०में भीमा तीरवर्त्ती पेडगाव-दुर्ग पर अपना कब्जा जमाया और अहमदनगरसे १६० मील दक्षिण-पूर्व उदयगिरि नामक स्थान पर निज़ामको परास्त करके उनसे अहमदनगर और दौलताबाद छीन लिया। १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रगण जब हतबल हो गये, तब निज़ामने पुनः प्रवरा और गोदावरी नदीके सङ्गमस्थान पर निविसाम तालुकके अन्तर्गत हो कर मन्दिरको तहस नहस कर डाला।

जानूजीको परास्त कर निज़ामने औरङ्गाबादको जीत लिया और वहांसे वे हैदराबादकी ओर अग्रसर हुए। १७६१ ई०में वे अपने भाई सलाबतको राज्यच्युत और कारावद्ध कर निज़ामराज्यके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इसके बाद वे इष्ट इण्डिया-कम्पनीसे सैन्य-साहाय्य पानेके लिये उक्त कम्पनीको उत्तर सरकारके चार विभाग देनेके लिये राजी हुए। इस समय दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र और फरासीसोंकी तूती बोल रही थी; इस कारण अङ्गरेज कम्पनीने यह दान लेना अस्वीकार किया। १७६२ ई०में उन्होंने पुनः जानूजी भोंसलाके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। पीछे उन्होंने पूना पर चढ़ाई कर उसे ध्वंस कर डाला और नगरका कुछ भाग जला भी दिया। घर लौट कर उन्होंने अपने भाई सलाबतका प्राण-नाश किया।

१७६६ ई०में कम्पनीको दिल्लीश्वरसे उत्तर सरकारके ५ विभागके अधिकारकी सनद मिली। अपने अधिकारको जमाये रखनेके लिये कम्पनीने कोण्डपल्ली-दुर्गमें घेरा डाला। इसी वर्ष १२ नवम्बरको हैदराबादके साथ निज़ामकी सन्धि हुई जिसमें यह स्थिर हुआ कि कम्पनीकी वार्षिक ८ लाख रु० मिलनेसे वह निज़ामअलीको युद्धके समय सहायता पहुंचाती रहेगी और वह सरकारी राज्य अङ्गरेजके अधिकारमें रहेगा। इसी साल निज़ामने अङ्गरेजोंकी सहायतासे बंगलूर पर (१७६७ ई०में) अपना दखल जमाया और पोलिगारोंका दमन किया। निज़ाम अङ्गरेजों और महाराष्ट्रोंकी सहायतासे हैदर-अली पर टूट पड़े। पीछे वे अङ्गरेजोंसे छल करके हैदर-अलीके साथ मिल गये। १७६८ ई०में अङ्गरेजोंके साथ

शान्तिस्थापन करनेके लिए उन्होंने १ली मार्चको पुनः अङ्गरेजोंके बन्धुताके चिह्नस्वरूप वार्षिक ५ लाख रु० दे कर दिवोको प्रदत्त सनदकी शर्त को कायम रखा। अङ्गरेज यथा समय निज़ामको कर नहीं देते थे, इस कारण निज़ामने पुनः १७८० ई०में हैदरअलीके साथ मित्रता कर ली।

इस समय दाक्षिणात्यमें टीपू सुलतानका प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस कारण १७८८ ई०में निज़ामने दूत भेज कर उन्हें निषेध किया कि वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं कर सकते। टीपू सुलतानने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया और वे युद्धके लिये तैयार हो गये। १७९० ई०में निज़ाम और अङ्गरेज उनका सामना करनेके लिये अग्रसर हुए। इस समय नाना फड़नवीस भी महाराष्ट्रीय सेनाको साथ ले उनको सहायताके लिये आ पहुंचे। निज़ामने टीपूको परास्त कर कड़ापा जिलेको जीत लिया। उसी वर्ष टीपूने उनसे मेल करके कड़ापाके अन्तर्गत गुरमकोण्डा-दुर्ग भी उन्हें दे दिया। बाद निज़ामने उक्त दोनों स्थान उस रैमण्ड साहबको पारितोषिकके रूपमें दे दिया; क्योंकि उन्होंने निज़ामकी यथेष्ट सहायता की थी। इस पर मन्द्राज सरकार बहुत असन्तुष्ट हुई और कड़ापा पर आक्रमण करनेका भय दिखा कर उन्होंने रैमण्डको उक्त स्थान छोड़ देनेको कहा।

इस समय महाराष्ट्रोंके अभ्युत्थानसे वे दिनो दिन हतोत्साह होने लगे। एक एक करके उन्होंने अधिकांश प्रदेश महाराष्ट्रोंके हाथ सुपुर्द किया। जो कुछ अंश उनके पास बच रहे, उनके लिये वे पेशवाको कर देनेको बाध्य हुए।

माधवरावके राजत्वकालमें जानूजी भोंसले गोपाल राव और अन्यान्य महाराष्ट्र-सरदारों की उदासीनता तथा अपने दीवान विट्ठलसे उत्तेजित हो निज़ाम अली पूनाको लूटनेके लिए अग्रसर हुए। माधवरावके प्रधान प्रतिनिधि और मन्त्री रघुनाथराव भयभीत हो पूनासे भाग गये। निज़ामअलीने नगरमें प्रवेश किया और उसे तहस नहस कर डालनेमें एक कसर उठा न रखी। बादमें लौट कर जब वे गोदावरी नदी पार करके थोड़ी दूर आगे बढ़े थे उस समय रघुनाथरावने अच्छा मौका देख उन पर गोला बरसाना शुरू कर दिया। इससे निज़ामकी प्रायः ७००० मुसलमान सेना विनष्ट हो गई और आपने किसी तरह भाग कर आत्मरक्षा की। हैदराबादनगरमें उनकी राजधानी थी।

पेशवाने जब निज़ामसे अधिक कर मांगा, तब वे उन पर टूट पड़े और युद्धके लिये तैयार हो गये। १७९१ ई०में माधोजी सिन्धियाकी मृत्यु होने पर महाराष्ट्र सचिव नाना फड़नवीसकी क्षमता और भी बढ़ गई। दौलतराव सिन्धिया और तुकोजी होलकर इस समय पूनामें थे। उन्होंने नानाको जहां तक हो सका उत्तेजित किया। बरारके राजा, गोविन्दराव गायकवाड़ और अन्यान्य महाराष्ट्र सरदारोंने जयकी आशा रखते हुए नानाफड़नवीसका साथ दिया।

निज़ाम मञ्जरा नदीके किनारे होते हुए विदर्भसे अग्रसर हुए। अहमदनगरसे ५१ मील दक्षिण-पूर्व खड़ौदा नामक स्थानमें जब वे पहुंचे, तब हरिपन्त फड़केके पुत्र बाबारावने उन पर आक्रमण किया और अच्छी तरह परास्त किया। १७९५ ई०में इस खड़ौदा युद्धमें महाराष्ट्रोंसे परास्त होने पर मुगलसेनाने परान्दाको ओर यात्रा की। इस समय महाराष्ट्रोंने पुनः आक्रमण किया। निज़ामने उन पर चढ़ाई करनेके लिए फ्रान्सीसी अफसरोंको रैमण्ड साहबके साथ भेज दिया। इधर पठान सरदार खानोंने भी निज़ाम पर हमला कर दिया। लेकिन आप हो परास्त हो जान ले कर भागे।

१७९९ ई०में टीपूके मरनेके बाद श्रीरङ्गपत्तननगर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। पीछे १८०० ई०में अङ्गरेजोंके साथ निज़ामको जो सन्धि हुई उसमें यह शर्त लिखी हुई थी कि निज़ामकी सहायताके लिये अङ्गरेजी सेनाकी संख्या बढ़ाई जाय और जो कोई राजा उनके राज्य पर चढ़ाई करेंगे अङ्गरेज उन्हें दमन करनेसे बाज नहीं आवेंगे। इस वर्द्धित सेनाके खर्चके लिये निज़ामने कड़ापा आदि कई जिले अङ्गरेजोंके हाथ लगा दिये।

१८०१ ई०की ६ठी अगस्तको निज़ाम अलीका हैदराबादमें देहान्त हुआ। पीछे उनके बड़े लड़के मिर्ज़ा

सिकन्दरशाह राज्याधिकारी हुए। ४२ वर्ष राज्य कर चुकनेके बाद उन्होंने कई बार अङ्गरेजों और महिसुर-राजके साथ मित्रता की थी। इससे अनुमान किया जाता है, कि वे चञ्चल प्रकृतिके थे और कोई कार्य दृढ़तासे नहीं करते थे। अङ्गरेजोंके साथ दोस्ती रहने पर भी वे उन पर विश्वास नहीं रखते थे।

निजाम उद्दीन्—फरगणाके एक सुपरिचित वीरपुरुष। इनके भाईका नाम शमसुद्दीन् था। दोनों भाई महम्मदबख्तियारके अधीन 'जानबाज' सैनिकका काम करते थे।

निजामउद्दीन् नन्दायाम—१४६० ई०में ये सिन्धुप्रदेशके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। कन्दाहारके तुर्क लोग बार बार सिन्धुदेश पर आक्रमण करते थे और इन्हें भक्कर दुर्ग तथा अपने राज्यका उत्तरांश छोड़ देना पड़ा था। इस प्रकार निरुत्साह हो कर १४८२ ई०में इनका देहान्त हुआ।

निजाम-उद्दीनखाँ—कसूरके शासनकर्त्ता। महाराज रणजित्सिंहने इनके विरुद्ध सरदार फतेसिंहको भेजा था।

पहले इन्होंने महाराजकी अधीनता स्वीकार करना न चाहा। पीछे अपने अभ्युदयके लिए इन्होंने खूब पश्चात्ताप किया और अपने भाई कुतबुद्दीन्को महाराजके समीप भेजा। कुतबुद्दीन्ने महाराजके पास जा कर भाईके प्रतिनिधिस्वरूप क्षमाप्रार्थना की। निजामउद्दीन्ने यह भी स्वीकार किया कि कुतबुद्दीन एक दल सेना ले कर लाहोरराजका अनुगमन करेंगे। विश्वासके लिये इन्होंने दो पठान सरदार वासल खाँ और हाजीखाँको लाहोरमें आवद्ध रखा। अनन्तर महाराजने एक हाथी और घोड़ा पारितोषिकमें दे कर कुतबको विदा किया। इस प्रकार निजाम-उद्दीन् रणजित्सिंहके अधीन कसूरका भोग निर्विघ्नतापूर्वक करने लगे।

इसी बीच इनके साले वासलखाँ, हाजीखाँ और नाजीबखाँकी जागीर पर इनकी दृष्टि पड़ी और अन्तमें इन्होंने उसे अपने दखलमें कर ही लिया। तदनन्तर उन तीनोंने मिल कर छिपके इन्हें मार डाला। १८०२ ई०में निजाम उद्दीन्के मरने पर उनके भाई कुतब उद्दीन् उनके स्थान पर बैठे।

निजामउद्दीन् अहमद, ख्वाजा—तबकात्-इ-अकबरी नामक पारस्यग्रन्थके रचयिता, हिराटवासी ख्वाजा महम्मद मुकीमके पुत्र। इनके पिताकी बाबरशाहसे विशेष जान पहचान थी। बाबरके मरनेके बाद हुमायून् जब गुजरात जीत रहे थे, उस समय ये उनके सहचरके रूपमें आए हुए थे। अन्तमें इन्हें दिल्लीश्वर अकबरशाहके अधीन नौकरी मिली।

कुछ समय बाद ये अकबर शाहके अधीन गुजरातके बक्सि वा सेनाध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। इसी समय इन्होंने १५८३ ई०को तारीख-इ निजामी वा तबकात्-इ-अकबरी नामक इतिहासकी रचना की। इस पुस्तकमें १३३८से १५८४ ई० तक भारतके स्वाधीन राजाओंका संक्षिप्त इतिहास वर्णित है।

ये ऐतिहासिक बदाउनीके बन्धु और आश्रयदाता थे। १५८४ ई०में इरावती नदीके किनारे इनका प्राणान्त हुआ। इनकी कब्र लाहोर नगरमें जो इनका उद्यान था उसीमें बनाई गई थी।

निजाम-उद्दीन् औलिया, शेख—एक मुसलमान फकीर। ये सकरगञ्जके शेख फकीर-उद्दीन्के शिष्य और सैयद अहमदके पुत्र थे। बदाउन जिलेमें १२३६ ई०को इनका जन्म हुआ था। ये मुसलमान सम्प्रदायके मध्य विशेष श्रद्धाभाजन और विख्यात साधु समझे जाते थे। १३२५ ई०के अप्रिल मासमें दिल्ली राजधानीमें इनकी मृत्यु हुई। गयासपुरमें उनकी कब्रके ऊपर जो स्मृतिस्तम्भ स्थापित है वह मुसलमान-समाजमें तीर्थस्थान समझा जाता है। समय समय पर मुसलमानगण फकीर होनेकी इच्छासे इस समाधिमन्दिरमें आ कर वास करते हैं। आज भी मुसलमानगण मानसिक देनेके लिए पर्वके दिन इस समाधिमन्दिरमें आते और नमाज पढ़ते हैं।

निजाम उद्दीन्, शेख—दिल्लीवासी एक विख्यात मुसलमान फकीर। निजामाबादमें इनका जो समाधिमन्दिर है उसमें पारस्यभाषामें उत्कीर्ण १५६१ ई० वा ८६८ हिजरीको एक शिलालिपि मिलती है।

निजामउद्दीनपुर—तिरहुतके अन्तर्गत एक परगना। इस परगनेमें ८ जमींदारी लगती हैं। सीतामढ़ीमें इसकी सदर अदालत है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें कन-

होती और चमड़ा। दक्षिण और पश्चिममें अधिकांश स्थिया नदी प्रवाहित है। सीतामढ़ीसे नेपाल तकका रास्ता इसी परगनेके मध्य हो कर गया है।

निज़ाम-उद्दौला, नवाब—बङ्गालके शासनकर्त्ता मीरजाफर अलीके ज्येष्ठ पुत्र। ये १७६१ ई०में बङ्गालके शासनकर्त्ता हुए थे। इनका असल नाम नज्मुद्दौला और इनकी माताका नाम मन्निबेगम था। १७६६ ई०में इनकी मृत्यु हुई, पीछे इनके भाई सैफुद्दौलाने बङ्गालका राज्यभार ग्रहण किया।

निज़ाम-उल्-मुल्क बेहरी—एक ब्राह्मण सन्तान। ये विजय नगरके अन्तर्गत गोदावरी नदीके उत्तरीय किनारे पाथरी नामक ग्राममें रहते थे। बचपनमें हो ये दाक्षिणात्यके बाह्मनीवंशीय सुलतान अहमदशाहको सेनाके बन्दी हुए। पीछे सुलतानके आदेशसे इस्लाम धर्ममें दीक्षित हो ये राजपरिवारके क्रीतदासोंके साथ रहने लगे। सुलतानके ज्येष्ठ पुत्रके शिक्षकसे इन्होंने अरबी और फारसी भाषामें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की। १४६१ ई०में सुलतान महम्मदशाह २य जब दाक्षिणात्यके सिंहासन पर बैठे, तब ये एकबरदारीके पद पर नियुक्त हुए। ये राजाके बाज-पक्षीके प्रतिपालक थे, इस कारण लोग इन्हें बेहरी कहा करते थे। धीरे धीरे ये तैलङ्गके शासनकर्त्ता हो गए। १४८२ ई०में गवन्दके मरने पर ये उनके पुत्र महमूदके राज्यभारपरिचालनके लिए मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुए। इनके कार्यसे सन्तुष्ट हो कर सुलतानने १४८२ ई०में बीड़, अहमदनगर आदि स्थान इन्हें जागीरके रूपमें दिये। पीछे इन्होंने जागीरका कार्यभार अपने बड़े लड़के मालिक अहमद पर सौंप दिया और अपनी क्षमताको अप्रतिहत रखनेके लिए मालिक काजी तथा मालिक आइन नामक दो मालिकोंको दौलताबादके शासनकर्त्ता और तब्बरदार नियुक्त किया। वे इतने क्षमताशाली हो उठे थे, कि कभी कभी सुलतानके आदेश तकको भी उल्लङ्घन कर डालते थे। १४८८ ई०में विदर्भ राजभवनमें वे गुप्तभावसे मार डाले गए।

पिताके मरने पर अहमद स्वाधीन भावसे अपनी जागीरका रक्षणावेक्षण करने लगे। पीछे १४९० ई०में सुलतानकी प्रभुताकी उपेक्षा करके अहमदने निज़ाम-उल्मुल्क बेहरी नाम धारण कर अपनेको अहमदनगरराज्य बतलाते हुए तमाम घोषणा कर दी। ये ही प्रसिद्ध निज़ामशाहीवंशके प्रतिष्ठाता थे। निज़ामशाही देखो।

निज़ाम-उल्-मुल्क—दिल्लीश्वर सुलतान शमसुद्दीन अलतमशके प्रधान वज़ीर। ६२५ हिजरीमें ये सम्राट्‌को आज्ञासे मालदुर्ग जीतनेको गए और उसे जीत कर दिल्लीको वापिस आए। सम्राट्‌ने इन्हें कमाल-उद्दीन मह-मद-ई-आबु सैयद जुनायदीको उपाधिसे भूषित किया। सुलतान रुक्नुद्दीनके राजत्वकालमें बदायन, मुलतान, हांसी और लाहोर आदि स्थानोंके शासनकर्त्ता जब विद्रोही हो उठे, तब ये डर कर राजधानीसे गीव भागे नामक स्थानमें भाग गये। यद्यपि ये फिर कोल प्रदेशमें आ कर रहने लगे। यहां भी इन्हें चैन न पड़ा और भाग कर ये मालिक इज-उद्दीन महम्मद सलारीको शरणमें पहुंचे। इनके मरनेके बाद अलतमशकी कन्या सुलतान रजिया दिल्लीके सिंहासन पर बैठी। इस पर ये महम्मद सलारी, अलाउद्दीन जानी तथा और कुछ लोगोंके साथ दिल्लीद्वार पर पहुंचे और बहुत ऊधम मचाने लगे। इस कारण दोनों पक्षोंमें कुछ दिनों तक युद्ध भी चला, इस युद्धमें रजियाकी जीत हुई और वह अब निष्कण्टक हो कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठी। उस समय रजियाके मन्त्रियोंने इन्हें सलाह दी, कि यदि कौशलसे निज़ाम आदिको राजधानीमें बुला कर कैद कर लें, तो निश्चय है, कि उपद्रव बहुत कम हो जायगा। अन्तमें वैसा हो हुआ भी। निज़ामदलके अलाउद्दीन जानी, मालिक सैफुद्दीन कुची और उनके भाई रजियाके इस सुचतुर कौशलसे मार डाले गये और कुछ कारागारमें ठूंस दिये गये। किन्तु निज़ाम उल् मुल्कने सरमूर कर दारके पार्वत्य प्रदेशमें भाग कर जान बचाई। वहीं पर १२३८ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

निज़ाम-उल्मुल्क आसफजाह—दाक्षिणात्यमें निज़ामराज्यके प्रतिष्ठाता। इनका असल नाम चीनकुलीच खां था। इनके पिता गाज़ीउद्दीन खां फिरोजजङ्ग सम्राट् आलमगीरके विशेष विश्वास पात्र थे और उन्होंने सम्राट्‌के अधीन कार्य करके विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी।

सम्राट् फर्रुखसियरके राजत्वकालमें ये पहले पांच

हजारोसे सातहजारो मनसबदारके पद पर नियुक्त हुए। इसके कुछ समय बाद ये दाक्षिणात्यके सूबेदारके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। यही पद इनके भविष्यत् जीवनमें निजामराज्यकी प्रतिष्ठाका सूचना करता है। हैदराबादमें इनको राजधानी थी।

दाक्षिणात्यका सूबेदारीपद और निजाम-उल्-मुल्क बहादुर फतेजङ्गकी उपाधि पा कर कुलोचखां अभिमानसे भर आये और महाराष्ट्रोंको लूटने तथा उनसे चौथ वसूल करनेको इच्छासे औरङ्गाबादकी अग्रसर हुए। यहां पहुंच कर इन्होंने अपने अभिप्रायकी सिद्धिके लिए वहांके फौजदार और जिलेदारोंको इस विषयमें एक पत्र लिखा। उन लोगोंके अस्वीकार करने पर इन्होंने १७१३ ई०में महाराष्ट्रोंके साथ लड़ाई ठान दी। लड़ाईमें पराजित हो कर वे वहांसे नौ दो ग्यारह हो गये। इस समय ये मुरादाबादके फौजदार नियुक्त हुए, किन्तु थोड़े ही समयके अन्दर इन्हें यह काम छोड़ देना पड़ा था। कुछ समय बाद ये पाटन और मालवराज्यके सूबेदार हुए। इस प्रकार अपनी उन्नति कर इन्होंने दाक्षिणात्यमें अपनी क्षमताको जड़ मजबूत रखनेके लिये १७१७ ई०में 'आसीरगढ़' दुर्गको जीत लिया।

निजामको इस क्रमिक उन्नतिको देख कर अब्दुल्लाखां और दाक्षिणात्यके अमीर उल-उमरा हुसेनअलीखां नामक दो सैयद भाई बहुत ही जल उठे और जहां तक हो सका उनको बुराईमें लग गये। निजामको क्षमताको खर्व करनेके लिये हुसेनअलीने अपने सेनापति दिलावर अली बक्शी और राजा भीम तथा गजसिंहसे सहायता पा कर निजामके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। इस युद्धमें दिलावरकी हार हुई और निजाम १७२० ई०में बुरहनपुर नगर पर अधिकार कर बैठे। इसी युद्धमें दिलावरको मृत्यु हुई।

दाक्षिणात्यमें इस प्रकार अफगानोंको वशीभूत कर ये औरङ्गाबादकी ओर चल दिये और वहां शासनकार्यका सुबन्दोबस्त करके दिल्लीको लौटे। राहमें आलम अली खांने उन पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें आलमको ही हार हुई और वे मारे गये। इस प्रकार दाक्षिणात्यमें मनसुरोको निष्कण्टक कर ये १७२१ ई०में अपनी राजधानीमें पहुंचे। यहां सम्राट्ने इनकी खूब खातिर की।

सैयद दोनों भाइयोंके मरने पर १७२२ ई०में सम्राट्ने इन्हें आमन्त्रित कर अपना वजीर बनाया और साथ साथ उक्त मान्यके चिह्नस्वरूप योग्य परिच्छद, एक खंजर, मणि-मुक्ताखचित एक कमरदाम तथा बहुमूल्य एक होरेकी अंगूठी दी। इस समय मालव और अहमदाबादवासी तथा दाक्षिणात्यके महाराष्ट्रगण विद्रोही हो उठे। उन्हें दमन करनेके लिये इन्होंने अपने लड़के गाजीउद्दीनको अपने पद पर प्रतिनिधिरूपमें नियुक्त कर दाक्षिणात्य जानेकी इच्छा प्रकट की। इन्होंने सम्राट्से प्रार्थना करके सूबा हैदराबादमें नियुक्त नाजिम मुबारिजखांको ७ हजारी पदकी और इसके बाद उन्हें मुल्क मुबारिजखां बहादुर हिजबरजङ्गकी उपाधि दिलाई। जो मुबारिज इतने दिनों तक विश्वासके साथ निजामके अधीन कार्य करता था, वह आज इस प्रकारके सम्मानलाभसे गर्वित हो उठा और अपनेको दाक्षिणात्यका सूबेदार मान कर निजामकी अधीनता उच्छेद करनेके लिये अग्रसर हुआ।

निजामके मालवकी ओर यात्रा करने पर उनके शत्रुपक्षीय लोग सम्राट् महम्मदशाहके निकट उनकी झूठी शिकायत करके कान भरने लगे। इसका यह फल हुआ, कि करम उद्दीनखां नामक एक व्यक्ति वजीर चुने गये। बादमें जब निजामको मालूम हुआ कि वजीरीपद छीन कर किसी दूसरेको दे दिया गया है, तब उन्होंने दिल्लीकी पदोन्नतिकी आशा छोड़ दाक्षिणात्यमें निजामराज्य स्थापन करनेका संकल्प किया।

मालवमें पहुंचनेके साथ ही निजामने मुबारिजको एक पत्र लिखा और निजाम द्वारा वे जो उपकृत हुए हैं उनका भी उल्लेख करते हुए उलाहना दिया। मुबारिजने भी बहुत लगती बातोंमें उन्हें जवाब दिया। दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। औरङ्गाबादसे ४० मील दूर बरारके अन्तर्गत 'सकर खेलड़ा' नामक स्थानमें लड़ाई होने लगी। दाउदखांपानीके भाई बहादुरखांने आ कर मुबारिजका साथ दिया। दोनों ही युद्धमें पराजित हुए और मुबारिज सपुत्र मार डाले गये। ख्वाजा अहमदखां नामक उनका एक पुत्र आघात पा कर युद्धक्षेत्रसे भाग गया और

महम्मद अमर दुर्गमें जा कर आश्रय लिया। निज़ामने औरङ्गाबादसे हैदराबादको ओर अग्रसर हो कर इस बालकको सर्व और जागीरसे च्युत कर दिया। पीछे इन्होंने उसे सुबामें डाल कर दुर्गको नाको से ली और आप दुर्ग पर अधिकार कर बैठे।

निज़ाम अपने जीते जी कभी भी दिल्लीके सम्राट्‌के अधीन विश्वासी न हुए। दिल्लीश्वर महम्मदशाहने यद्यपि वज़ीरका पद इनसे छीन भी लिया था, तो भी उनकी बुराईको ओर इनका तनिक भी ध्यान न था। दिल्लीके राजकीय कार्यके काल जिस कर्ममें इन्होंने हस्तक्षेप किया था, उसमें *तैमूरवंशका गौरव नष्ट हो गया था।* दाक्षिणात्यका शासनभार ग्रहण करने पर भी दिल्लीके साथ इनका कुछ भी सम्बन्ध न था। सम्राट् महम्मदशाहने प्रसन्न हो कर इन्हें 'आसफ जाह'की उपाधि दी और साथ साथ मणिमुक्ता तथा बहुतसे हाथी भी दिये। इतना ही नहीं, सम्राट्‌ने इन्हें पुनः अहमदाबाद राज्यके सूबेदारके पद पर नियुक्त किया।

नादिरशाहने जब भारत आ कर भटक पर अधिकार जमाया उस समय निज़ाम सम्राट् महम्मदशाहके वज़ीर उल-सुलतान थे। अमीर उल-उमरा खाँ दौरानकी मृत्यु होने पर वे मीरबख्शी के पद पर नियुक्त हुए। जब नादिरशाहने दिल्लीकी ओर मुँह फेरा, तब निज़ाम खाँ-दौरानकी पोशाक पहन कर उनके सामने जा पहुँचे। इस समय बुर्हान-उल्-मुल्क नामक एक मनुष्यने विश्वासघातकता कर और ईर्ष्यापरतन्त्र हो नादिरसे जा कहा कि, "खाँ-दौरान जैसे उपयुक्त व्यक्ति और कोई देखनेमें नहीं आता, सुतरां निज़ाम जो उनके पदको आकांक्षा करता है, यह अन्याय है। यदि उनके सुबामें डाल कर निज़ाम और महम्मदशाह कैद कर लिये जांय, तो सम्भव है कि आप राज्यभर हो सकते हैं।" उसकी मन्त्रणासे मुग्ध हो नादिरशाहने जब महम्मदको अपनी छावनीमें आनेका निमन्त्रण किया, तब सम्राट् भी दलबलके साथ वहां पहुँच गये। नादिरने सम्राट्‌से विनयपूर्वक कहा, "आप अपने नौकरोंको लौट जाने कहें और जितने मान्य गण्य हैं, वे आपके साथ रह कर *मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।*" दूसरे दूसरे व्यक्तियोंके चले जाने पर नादिरने पूर्व परामर्शानुसार सम्राट्, निज़ाम, अमीर खाँ, इसहाक खाँ, जावेद खाँ, फिरोज़ खाँ और अमात्यवर्गोंको कैद कर लिया।

इसके बाद नादिरशाहने एक दिन विश्वासघातक बुर्हानको बुला कर कहा, 'तुमने जो सम्राट्‌से पांच करोड़ मुद्रा देनेका कहा था, सो कहाँ है लाओ। तीन दिनके अन्दर जमा नहीं करोगे, तो तुम्हारे साथ कांपनी, याद रहे।' निज़ाम उस मुहूर्त भी उसी जगह उपस्थित थे। नादिरने बहुत क्रोधमें आ कर दोनोंको अनेक कटु वचन कहे। चतुर चूड़ामणि निज़ामने अच्छा अवसर देख बुर्हानको विश्वासघातकताका बदला लेनेके लिये अपनी आन्तरिक भावको भी छिपा रखा और उसे बड़ा धक्का कर कहा नादिरने बहुत मर्मभेदी बातें कह कर हम लोगोंका अपमान किया है। अतः अभी नादिरके हाथसे मरनेकी अपेक्षा आत्महत्या कर प्राणत्याग करना श्रेय है। इस प्रकार समझा कर दोनोंने आत्महत्या करनेका संकल्प किया। रातमें जाते समय दोनोंने प्रतिज्ञा की, कि घर पहुँचनेके साथ ही विष खा कर देहत्याग करेंगे। घर पहुँच कर निज़ामने अपना अभिप्राय सब किसीसे कह दिया। बाद वे एक बरतनमें शरबत डाल कर उसे पी गये और अपनेको एक कपड़ेसे ढक कर सो रहे। बुर्हान यह रहस्य कुछ भी नहीं जान सके और पूर्व प्रतिज्ञानुसार उन्होंने विष खा कर प्राणत्याग किया।

कोई कोई कहते हैं कि बुर्हानके साथ निज़ामको कोई शत्रुता न थी। जब नादिरशाह भारतवर्षमें आ कर सम्राट् महम्मदशाहके साथ लड़ रहे थे तब उस युद्धमें निज़ाम और बुर्हान दोनों उपस्थित थे। उसी युद्धमें बुर्हानकी मृत्यु हुई थी। नादिरशाह देखो।

नादिरशाहके चले जाने पर अमीरखाँने वज़ीरका पद और इसहाक खाँने खानसामाकी दीवानीका पद पाया। ये दोनों सम्राट्‌के बड़े प्रियपात्र हो उठे। इस पर निज़ामने पुनः अपनी चतुरता दिखलानेकी चेष्टा की। जब इनके प्रभाव पर सबके सब असन्तुष्ट हो गये, तब ये दिल्ली छोड़ कर निजपत्तनमें आ कर रहने लगे। पश्चात् सम्राट्‌की मातामही मिहर-परवरके कहनेसे अमीरखाँ बार बार इन्हें पुनः राजधानीमें लौटा लाये।

निजाम उल मुल्कने अपनी अमलतीमें राज्यशासनके नियमोंमें बहुत कुछ हेरफेर किया। महाराष्ट्रीयगण जागीरदारोंसे जो 'चौथ' वसूल करते थे, उसे इन्होंने बन्द कर दिया और यह नियम जारी किया कि उतनी रकम वे हैदराबादके राजकोषसे पावेंगे। दूसरी जगह कहीं भी वे चौथ वसूल नहीं कर सकते। इसके अलावा महाराष्ट्रसरदार छोटे छोटे जमींदार वा निरोह प्रजासे जो सैकड़े पीछे १०) रु०के हिसाबसे 'सरदेशमुखी' कर वसूल करते थे। उसे भी इन्होंने बन्द कर दिया। इस प्रकार इन्होंने कमाई सरदार, गुमस्ता और राहदारी सभी कार्य उठा दिये। पहले जो मनुष्य राहदारीका काम करता था, उससे पथिक और व्यवसायी लोग बहुत तंग रहते थे। निजामने इस प्रथाको सदाके लिये बन्द कर दिया था जिससे लोग बिना किसी रोक टोकसे मनमाना विचरण कर सकते थे। महम्मदशाहकी मृत्युके ३७ दिन बाद १७४८ ई०की २२वीं मईको वे इस लोकसे चल बसे। बुर्हानपुरनगरमें शाहबुर्हान-उद्दीन्-गरीबके समाधि मन्दिरमें इनकी कब्र बनाई गई थी।

निजामके छः पुत्र थे,—गाजीउद्दीन्, नासिरजङ्ग, सलावतजङ्ग, निजामअली, बसालतजङ्ग और मुगलअली।

इन्होंने 'दीवान आसफ-निजाम-उल-मुल्क' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। वह ग्रन्थ टोपू सुलतानके पुस्तकालयमें रखा गया था।

निजामत्—शासनसंक्रान्त विचारालय।

निजामपत्तन—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत समुद्रतीरस्थ एक बन्दर। यह अक्षा० १५° ५४′ ३″ उ० और देशा० ८०° ४२′ ३५″ पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान लवणकी आढतके लिये विशेष प्रसिद्ध है। नमकके सिवा यहांसे काठ भी मछलीपत्तनको भेजा जाता है। अंग्रेजोंने सबसे पहले भारतके पूर्वी किनारे इस बन्दरमें वाणिज्य आरम्भ किया। १६११ ई०को २६वीं अगस्तको उन्होंने यहांसे पण्यद्रव्य अपने मुल्कमें भेजा। १६२१ ई०में एक कारखाना भी खोला गया। उत्तर सरकारका अंश बतला कर निजामने इसे फरासीसियोंको दे दिया। निजाम सलाबतजङ्गने १७५८ ई०में यह बन्दर अंग्रेजोंको अर्पण किया। फिरिस्ता इस बन्दरका उल्लेख कर गए हैं। ओलन्दाजोंकी मालय-सेनाने यहां बहुतसे अंग्रेजोंका संहार किया।

निजामपुर—चट्टग्रामका एक बन्दर।

निजामबाई—दिल्लीश्वर बहादुरशाहकी महिषी और सम्राट् जहान्दरशाहकी माता।

निजामबाद—आजमगढ़का एक शहर। यह प्राचीन नगर जिलेके सदरसे ८ मील पश्चिममें अवस्थित है। मुसलमान राजाओंके पहिले यह हिन्दुओंके अधिकारमें था। निजामउद्दीन् नामक एक मुसलमान फकीरकी कब्र यहां देखनेमें आती है। कब्रके ऊपर पारस्यभाषामें उत्कीर्ण १५६१ ई०की एक शिलालिपि है। प्रवाद है, कि उक्त निजामउद्दीन्से नगरका नाम 'निजामबाद' पड़ा है।

निजाम मूर्त्तजाखां, सैयद—एक मुसलमान सेनापति। इनके पिताने किसी ब्राह्मण कन्याके रूप पर मोहित हो कर उससे विवाह कर लिया था। उसी ब्राह्मण-कन्याके गर्भसे मूर्त्तजा उत्पन्न हुए थे। वे अपने पिताके अत्यन्त प्रिय थे। सम्राट् शाहजहान्के राजत्वके पहले वर्षमें इन्होंने पिताके जरिए ३ हजारी सैन्याध्यक्षका पद पाया था। पिताके मरने पर इन्होंने मूर्त्तजाखांकी उपाधि ग्रहण की।

दाक्षिणात्य प्रदेशमें सम्राट्के अधीन कार्य करते हुए इन्होंने वहांका विद्रोह निर्मूल कर दिया था। पीछे ये लखनऊके फौजदार हुए। सम्राट् शाहजहान्के राजत्वके २४वें वर्षसे इन्हें बिहारोप्रदेशसे राजस्वसे २० लाख रुपये वार्षिक वृत्ति मिलने लगी।

निजामराज्य (हैदराबाद)—दक्षिण भारतका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० १५° १०′ से २०° ४०′ उ० और देशा० ७४° ४०′ से ८१ ३५′ पू०के मध्य अवस्थित है। बेरारके साथ मिल कर राज्यकी आकृति असमकोण चतुर्भुज-सी है। यह राज्य दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर पूर्वमें प्रायः ४७५ मील लम्बा और उतना ही चौड़ा है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें मध्यप्रदेश, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत राज्य, पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत राज्य है। बेरारको अलग कर लेनेसे अवशिष्ट निजामराज्यके पूर्व विभागमें खम्मेत्, नलगोण्ड, महबूबनगर और नगरकर्णूल

रहता उसे निजामको लौटा देती है, यहांकी राजस्व-यमूलको विधि साधारणप्रथासे कुछ विपरीत है। जहां पर जो फसल उत्पन्न होती है, प्रजा उस फसलका आधा अथवा उसका प्रकृत मूल्य करस्वरूप देती है।

हैदरावाद गवर्मेण्टको एक स्वतन्त्र टकसाल है जहां हालिसिक्का नामक एक प्रकारको मुद्रा बनती है। यह मुद्रा आकारमें छोटी होने पर भी वजन और मोलमें सरकारी सिक्केको समान है। पूर्व समयमें इस राज्यके नाना स्थानोंमें भिन्न भिन्न आकृतिका सिक्का बनता था और टकसालको संख्या भी अधिक थी।

तुर्कीवंशीय आसफ जाह जो मुगल सम्राट् औरङ्ग-जेबके विख्यात सेनापति थे, बहुत दिनोंसे दिल्ली राजधानीमें रह कर इन्होंने युद्ध और राजनीति-विषयमें असाधारण क्षमता दिखलाई थी और १७१३ ई०में निजाम उल मुल्कको उपाधि पा कर ये दाक्षिणात्यके सूबेदार वा शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त हुए। उन्हींके समयसे यह उपाधि उनको वंशगत हो गई है।

इस समय मुगल-राज्यमें अन्तर्विवाद चल रहा था और महाराष्ट्रगण कई बार इस पर आक्रमण कर चुके थे। अतः आसफ जाहने अपनी स्वाधीनताकी घोषणा करनेका अच्छा अवसर देखा। पीछे १७४८ ई०में वे स्वाधीन राजा बन गए और हैदराबादमें राजधानी बसाई गई। आसफ जाहके मरने पर राज्य पानेके लिए उनके उत्तराधिकारिगण आपसमें लड़ने लगे। आसफ के द्वितीय पुत्र नासिरजंग उनके मरते समय राजधानी हैदराबादमें थे। मृत्यु-संवाद सुननेसे ही इन्होंने धनागार अपने कब्जेमें लिया। सेना भी बहुत आसानीसे इनके अधीन हो गई और इन्होंने यह घोषणा कर दी, कि मरते समय पिता बड़े भाईको उत्तराधिकारीसे वञ्चित कर गए हैं। मुजफ्फरजंग आसफ जाहकी एक प्रिय कन्यासे उत्पन्न हुए थे। कहते हैं, आसफ जाह मरते समय उन्हींको अपना उत्तराधिकारी बना गए थे, अभी वे भी राजा होनेके लिये कोशिश करने लगे। ऐसे समयमें अङ्गरेज और फरासीसीने दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभुत्व स्थापन करना चाहा। अङ्गरेजोंने नासिरजंगका और फरासीसियोंने मुजफ्फरजङ्गका साथ दिया। थोड़े ही दिनोंके भीतर फरासीसी-कर्मचारियोंके मनोमालिन्य हो जानेसे वे मुजफ्फरजंगको छोड़ कर चले गए। इस समय मुजफ्फर निःसहाय हो गए; अतः नासिरजंगने उन्हें कैद कर लिया। किन्तु नासिरजंग थोड़े ही दिनके अन्दर मारे गये। अब मुजफ्फरजङ्गने अपनेको दाक्षिणात्यका सूबेदार बोल दिया। मुजफ्फर भी बहुत दिन तक उस सुखका भोग कर न सके। एक दल पठानसेनाने उनकी जान ले ली। कहते हैं, मुजफ्फर जब राजा होनेके लिये लड़ रहे थे, तब इन्हीं पठानोंने उनको यथेष्ट सहायता पहुंचाई थी। किन्तु राजा होनेके बाद मुजफ्फरजंगने कुछ भी कृतज्ञता न दिखलाई थी और न उन्हें कुछ पुरस्कार ही दिया। इस पर वे बहुत कुपित हुए और इन्हें मार डाला। इस समय पुनः राज्यमें अराजकता फैल गई। फरासीसियोंने मुजफ्फरजंगके शिशुपुत्रकी उपेक्षा कर नासिरजंगके भाई सलाबतजंगको गद्दी पर बिठाया। इसके कुछ दिन बाद ही आसफ जाहके प्रथम पुत्र गाजी-उद्दीन् राज्य पानेकी कोशिश करने लगे। किन्तु अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई और सलाबतजंग ही एकछत्र निजाम हो कर फरासीसियोंके मन्त्रणानुसार राज्य करने लगे। इस समय फरासीसियों और अङ्गरेजोंमें जो लड़ाई आ रही थी वह और भी बढ़ गई। किन्तु अङ्गरेजगौरव क्लाइवके साहस और समरनैपुण्यसे फरासीसी व्यतिव्यस्त हो कर अपने अपने उपनिवेशकी रक्षाके लिये सलाबतको छोड़ चले गये।

इस समय सलाबतने अङ्गरेजोंके साथ सन्धि कर ली और उसी सन्धिके मर्मानुसार उन्होंने फरासीसियोंको अपने राज्यसे निकाल भगाया। १७६१ ई०में सलाबत् अपने भाई निजामअलीसे राज्यच्युत हुए और १७६३ ई०में मार डाले गये। १७६६ ई०में निजाम अलीके साथ अङ्गरेजोंको इस शर्त पर एक सन्धि हुई, कि निजाम अली अङ्गरेजोंको सरकार प्रदेश दे देंगे और जरूरत पड़ने पर एक दल सेना दे कर अङ्गरेज निजामको सहायता करेंगे; किन्तु जब सेनाकी आवश्यकता न होगी, तब वार्षिक नौ लाख रु० कर देंगे। निजाम भी अपनी सेनाओंसे अङ्गरेजोंकी सहायता करने राजी हुए और

यह भी स्थिर हुआ, कि निजामके साथ जबतक न जब तक सद्व्यवहार करेंगे, तब तक उनका अधिकृत कारबार प्रदेश अङ्गरेज गवर्मेण्ट नहीं ले सकती। इस घटनाके कुछ दिन बाद ही निजामअलीने मन्त्रिवरके रोका हैदरअलीका साथ दिया तथा और भी कई तरह विश्वासघात करके पूर्व सन्धि तोड़ डाली। अनन्तर १७६८ ई०की सन्धि द्वारा पुन अङ्गरेजोंके साथ निजामअलीकी दोस्ती हुई। इस बारकी सन्धिमें यह भी लिखा था, कि अङ्गरेज और कर्णाटकके नवाब निजामका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए सर्वदा दो दल सिपाही और अङ्गरेज चालित छः कमान प्रस्तुत रखेंगे। जब तक वे निजामके कार्यमें लगी रहेंगी, तब तक निजाम उनका सारा खर्च देते रहेंगे। १७८९ ई०में लार्ड कर्नवालिसने निजामको इस आशय पर एक पत्र लिखा, कि १७६८ ई०की सन्धिके अनुसार अङ्गरेज गवर्मेण्ट निजामके कार्य करनेके लिये जो सेना भेजेगी, उसे निजाम अङ्गरेजके मित्र-राजाओंके विरुद्ध नियोग नहीं कर सकते। दूसरे वर्ष हैदरअलीके पुत्र टीपू सुलतानके साथ जब युद्ध छिड़ा तब निजाम, पेशवा और अङ्गरेज गवर्मेण्टने आपसमें सन्धि कर ली। कुछ वर्ष बाद निजाम और मराठेमें जब लड़ाई छिड़ी, तब निजामने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगी। किन्तु इससे पहले ही महाराष्ट्रोंके साथ अङ्गरेजोंकी सन्धि हो चुकी थी। अतः अङ्गरेज गवर्नर जनरल सर-जान शोर निजामको मदद देनेके लाचार हुए। निजामने लाचार हो कोई राह न देख मराठोंसे सन्धि कर ली। इस कारण कुछ दिन तक अङ्गरेजोंके साथ उनका मनोमालिन्य चलता रहा था। पीछे लार्ड वेलेस्ली जब गवर्नर जनरल हो कर आए, तब उन्होंने १७९८ ई०में निजामके साथ पुनः सन्धि कर ली। इस समय यह स्थिर हुआ, कि छः हजार सिपाही और उपयुक्त कमान निजामके कार्यमें नियुक्त होगी और निजाम उनके खर्चके लिए २४१७१००) रु० देंगे।

तदनन्तर टीपूकी मृत्युके साथ साथ जब श्रीरङ्गपत्तनका अधःपतन हुआ तब उनका राज्य अङ्गरेज और निजामने आपसमें बांट लिया। निजामके भागमें जो हिस्सा पड़ा वह निजामाधिकृत जिला कहलाने लगा।

निजाम अलीखांका १८०३ ई०में देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के सिकन्दरजाह राजगद्दी पर बैठे। १८२२ ई०में अङ्गरेजोंके साथ इनकी एक सन्धि हुई जिससे इन्हें जो चौथ देना पड़ता था वह बन्द कर दिया गया। १८२९ ई०में सिकन्दरजाहके मरने पर उनके लड़के नासिर-उद्दौला उत्तराधिकारी हुए। सेनाका खर्च देनेके लिये निजामको जो रुपये देने पड़ते थे, वह कई वर्षोंसे बाकी पड़ गया था। अतः १८५३ ई०में नासिर उद्दौलाने अङ्गरेजोंके साथ एक सन्धि कर ली और पचास लाख रुपये देनेका एक इकरार नामा लिख दिया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने भी निजामके लिये अपने खर्चसे दो हजार अश्वारोही और पांच हजार पदातिक तथा चार कमान रख दी। निजाम उनके खर्चके लिये रुपये नकद तो नहीं दे सके लेकिन उन्होंने बरार, ओसमानाबाद और रायचुर दोआब अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिये।

१८५७ ई०में नासिर उद्दौलाकी मृत्यु हुई और उनके लड़के अफजल उद्दौला राजसिंहासन पर बिठाए गए। सिपाहीविद्रोहके समय बहुतसे विद्रोहियोंने उन्हें घेर लिया था लेकिन अपने विश्वस्त मन्त्री सालारजङ्गकी सलाहसे उन्होंने अङ्गरेजोंके प्रति पूरी सहानुभूति दिखाई और विद्रोहदमनमें काफी सहायता भी पहुंचाई थी। इस पर ब्रिटिश सरकार इन पर बहुत प्रसन्न हुई और १८६० ई०में एक सन्धि कायम की। इस सन्धिके अनुसार अङ्गरेजोंने बरार छोड़ कर ओसमानाबाद और रायचुर दोआब निजामको लौटा दिया, इतना ही नहीं, पचास लाख रुपयेका जो कर्ज था उसे भी उद्धार कर दिया। १८६१ ई०में अफजल-उद्दौला G O S I बनाये गये।

१८६९ ई०में अफजलउद्दौलाकी मृत्यु होने पर उनके लड़के मीर महबूब अलीखां गद्दी पर बैठे। इस समय उनकी अवस्था केवल तीन वर्षकी थी। पीछे बालिग होने पर १८८४ ई०में लार्ड रिपनने इन्हें राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। सर सालारजङ्ग (२य) मन्त्री और महाराज सर कृष्णप्रसाद बहादुर पेशकार बनाये गए। १९०२ ई०में बरारके कुछ निर्दिष्ट जिलेका वार्षिक पचीस

लाख रु० ले कर निजामने इस्तमरारी वा सर्वकालिक पट्टा लिख दिया। निजामके पास ७१ बड़ी कमान, ६५४ छोटी कमान, ५५१ गोलन्दाज, १४०० अश्वारोही, १२७७५ पदातिक सैन्य और बहुसंख्यक शिक्षित सेना है।

निजामराज्यकी राजधानी हैदराबादमें है जिसकी परिधि ६ मीलसे कम नहीं होगी। यह नगर प्राचीर द्वारा वेष्टित है। यहांके प्रायः अधिकांश अधिवासी साहसी और युद्धप्रिय हैं, हैदराबादके चारों ओर नाना गिरिमाला रहनेके कारण नगरकी स्वाभाविक सुन्दरता बहुत मनोहर है। यहांकी जुमामसजिद सर्वत्र मशहूर है। शहरके चारों ओर सुन्दर सुन्दर हर्म्य और मनोहर उद्यान विद्यमान हैं। यहांका कालेज या 'चार-मिनार' बहुत आश्चर्यजनक है। यह मकान ४ प्रकाण्ड गुम्बजके ऊपर दण्डायमान है और नगरकी प्रधान प्रधान ४ सड़कें इसी स्थान पर आ कर मिली हैं। अभी यह गुदामके काममें आ गया है। विशेष विवरण हैदराबाद शब्दमें देखो।

निजाम शक—एक मुसलमान जलवाही (भिश्ती)। पटना नगरके समीप शेरशाहके साथ युद्धमें परास्त हो कर भागते समय सम्राट हुमायूं चौसानदीमें डूब गये थे। इस समय यह शक नदीसे जल ले जा रहा था। इसकी नजर सम्राट पर पड़ी और बुरी दशामें उन्हें देख यह झट उनके पास गया और वहांसे उन्हें किनारे उठा लाया। सम्राट् प्राण पा कर उसे अपने साथ आगरे ले गए और कृतज्ञता दिखानेके लिये उसे वहांके सिंहासन पर बिठा आध दिनके लिये राजा बनाया। इसी आध दिनके भीतर इसने अपने नाम पर चमड़ेके सिक्के चलाये, अमीरकी उपाधि पाई तथा प्रचुर धनरत्न दान किये।

निजाम-शाह—दाक्षिणात्यके निजामशाही राजवंशके प्रतिष्ठाता। ये ब्राह्मणीवंशके राजमन्त्री निजाम उल् मुल्क बेहरीके पुत्र थे। इनका असल नाम अहमदशाह था। पिताके मरने पर इन्होंने ब्राह्मणीराजकी अधीनता त्याग कर दी और १४८० ई०को अहमदनगरमें स्वाधीनभावसे अपनेको राजा बतला कर घोषणा कर दी। उस समयसे ले कर दाक्षिणात्यमें निजाम-शाही राजाओंने १६२६ ई० तक शासन किया। इन्होंने मरते समय (१५०८ ई०) तक राज्य किया था।

निजामशाह वाह्मणी—दाक्षिणात्यके वाह्मणी-राजवंशका एक बालक राजा। १४६१ ई०में जब इनके पिता हुमायूं शाहकी मृत्यु हुई, तब ये दाक्षिणात्यके सिंहासन पर बैठे। इनकी माता विदुषी, साथ साथ चालाक भी थीं। उन्होंने मन्त्रियोंसे बुला कर कहा, 'मेरे पुत्रकी उमर अभी केवल आठ वर्षकी है—बहुत बच्चा है, इस कारण इसकी अभिभावकरूपमें मैं राजकार्य चलाऊंगी और मन्त्रणागृहमें वा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जहां राज्यसम्बन्धीय किसी प्रकारका विचार होगा, मेरा पुत्र वहां उपस्थित रहेगा।'

बालक निजाम बचपनसे ही उत्साही, तेजस्वी और अपनी माता तथा दूसरे दूसरे परामर्शदाताओंके निकट विशेष विनयी थे। उनके पिताके अत्याचारसे प्रजा जो बहुत तङ्ग आ गई थीं, इनके तथा उनकी माताके ऐसे विनय और प्रजावत्सलतासे वे सबके सब सन्तुष्ट हो गईं। इस समय राज्यशृङ्खल दृढ़ करनेके लिये बरारके शासनकर्त्ता महमूद-गवान वजीरके पद पर और तैलङ्गके शासनकर्त्ता ख्वाजाजहान् वकील उस-सल्तनत् नियुक्त हुए।

बालक और स्त्री द्वारा परिचालित राज्य उतना क्षमतापन्न नहीं हो सकता, यह सोच कर उड़ीसा और तैलङ्गके हिन्दूराजाओंने निजामके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी और दोनों ही विदर्भके समीप परास्त हुए। पीछे मालवराज महमूद खिलजीने जब वाह्मनी-राज्य पर आक्रमण किया, तब बालक निजामने उनके साथ भी विदर्भके समीप लड़ाई ठान दी। इस बार निजामकी ही हार हुई। बाद रानी पुत्र निजामको ले कर फिरोजाबाद चली गईं और वहींसे गुजरातमें दूत भेज कर सहायता मांगी। गुजरातके शासनकर्त्ता महमूदशाहकी सहायतासे मालवराज परास्त हो कर स्वराज्यको लौट आये। १४६२ ई०में मालवराज महमूद खिलजीने पुनः दौलताबाद होते हुए वाह्मणी राज्य पर धावा मारा। इस बार भी वे पराजित हो आश्रय लेनेको बाध्य हुए। इन सब युद्धोंमें बालक निजाम स्वयं उपस्थित थे। १४६३ ई०को विवाहरातमें निजामशाहकी मृत्यु हुई।

निज़ाम-शाही—दाक्षिणात्यमें जब बाह्मणी राज्य अधः-पतनको प्राप्त हुआ, तब उसके पांच छोटे छोटे राज्य संगठित हुए। १ला आदिलशाही, २रा कुतबशाही, ३रा निज़ामशाही, ४था इमादशाही और ५वां बरिदशाही राज्य। इनमेंसे निज़ामशाही राज्य विजयनगरमें सुलतान अहमदशाह किसी ब्राह्मणसन्तानसे १४९० ई०में स्थापित हुआ। इसकी राजधानी अहमदनगरमें थी। १५७२ ई०में बरारका इमादशाहीराज्य अहमदनगरके राज्यभुक्त हुआ। १४९० ई०से १५९६ ई० तक निज़ाम शाहीने राज्य किया था। निज़ामशाह देखो।

वर्त्तमान अहमदनगरका प्राचीन नाम बाग अर्थात् बागान है। यहां पर अहमदने ब्राह्मणोंकेनाको सम्पूर्ण रूपसे परास्त कर सूबाको छोड़े थे। पीछे राजकीय क्षमता ग्रहण कर इन्होंने अपने मस्तकके ऊपर श्वेतवर्ण छत्रातप धारण किया और १४९४ ई०में अहमद सूबाके राजधानी बना कर बादशाह हो गये।

अहमदनगरके राजाओंसे यह देश भिन्न भिन्न विभागों अथवा सरकारोंमें विभक्त हुआ। प्रत्येक विभाग सुबा, परगना, करयात्, सम्मत्, महाल और तालुक तथा कहीं कहीं देश और प्रान्त नामसे विभक्त हुआ था। उच्च पदस्थ हिन्दू कर्मचारीको राजा, नायक और रायकी उपाधि मिलती थी तथा कितने ही हिन्दू सैन्यदलमें नियुक्त होते थे।

अहमदनगरके द्वितीय राजा बुरहान निज़ामने १५०८से १५५३ ई० तक शासन किया।

हुसेन निज़ाम-शाह (१५५३-६५ ई० तक) अहमदनगरके तृतीय राजा थे। १५६२ ई०में जब विजयनगरके राम राजा और बीजापुरके अली आदिलशाहने उनका पीछा किया, तब वे जुन्नर पहाड़ पर जा छिपे थे। पश्चात् इन्होंने १५६४से १५६८ ई०के मध्य देशकी विशेष उन्नति की थी।

१५८९ ई०में २य बुरहान निज़ामके लड़के बहादुर जिनकी उमर बहुत थोड़ी थी, चावन्दग्राममें कारारुद्ध हुए। कुछ वर्ष बाद वे ही शासन पर बिठाए गए। १६०० ई०में अहमदनगर मुगलोंके हाथ लगा। १६०१-ई०में मालिक अम्बरने सुलतान निज़ाम (२य)को सिंहा-सन पर अधिष्ठित कर विशेष क्षमता और आधिपत्य प्रकट किए। १६०७-१६२६ ई० तक मालिक अम्बर नाममात्रके राजा रहे, पीछे अहमदनगर राज्य अपनी स्वाधीनता खो कर दिल्लीश्वरके अधीन हो गया। १६३१ ई०में सुलतान निज़ाम कारारुद्ध और निहत हुए। पीछे उनके पुत्र सिंहासन पर बिठाए गए।

निज़ामाबाद—१ हैदराबाद राज्यके गुलशनाबाद सूबेका एक ज़िला। यह पहले इन्दोर ज़िला कहलाता था। इसके उत्तर नान्देर और अदीलाबाद, पूर्व करीमनगर, दक्षिण मेदक और पश्चिममें नान्देर है। भूपरिमाण ३९८८ वर्गमील और जनसंख्या ६९०१४० है। पूर्व और पश्चिमकी ओर पर्वतश्रेणी देखी जाती है। यहांकी सबसे बड़ी नदी गोदावरी नान्देर और अदीलाबादकी सीमाको निर्धारित करती हुई बह गई है। इसके अलावा और कई एक नदियां इस ज़िले हो कर बहती है।

यहां बहुत तरहकी लकड़ी पाई जाती है और घने घने जङ्गल भी देखनेमें आते हैं। इन जङ्गलोंमें बाघ, भालू, चीता, भेड़िया जङ्गली सूअर हरिण और नील-गाय आदि भी पाई जाती हैं। यहांकी आबहवा गर्मीमें जाड़ेकी अपेक्षा कुछ अच्छी रहती है और फिर वर्षाऋतु-में बिलकुल ही खराब हो जाती है तथा नाना प्रकारकी बीमारियां फैल जाती हैं। यहां हिन्दूकी संख्या ही सबसे अधिक है और आधेसे अधिक मनुष्य तेलगु भाषा बोलते हैं। राजस्व साढ़े सोलह लाख रुपयेसे भी अधिक है।

२ उक्त ज़िलेका एक तालुक। यहांका भूपरिमाण ३३० वर्गमील और जनसंख्या ७१६८१ है। इसमें एक शहर और १०७ ग्राम लगते हैं जिनमें १८ जागीर हैं। यहांकी आय लगभग दो लाख पचास हज़ार रु०की है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८ ४०´ उ० और देशा० ७८ ६´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां ज़िलेका एक अदालत, एक स्कूल, अस्पताल और एक डाकघर है। यहां बहुत तरहके कारखाने भी देखनेमें आते हैं। शहरके दक्षिण-पश्चिममें एक पहाड़के ऊपर रघुनाथदासका बनाया हुआ एक मन्दिर था जो अभी किलेके रूपमें परिणत हो गया है।

निजामाबादी—बङ्गालदेशवासी 'गौड़कायस्थ' जातिकी एक शाखा। दिल्लीश्वर बल्लबनके पुत्र नासिर-उद्दीन्‌ने लगभग ६०० वर्ष हुए इन्हें बंगाल देशसे ले जा कर पश्चिमाञ्चलके इलाहाबाद सूबेके अन्तर्गत निजामाबाद, मदोई, कोली आदि स्थानोंमें कानूनगोके पद पर नियुक्त किया। सम्भवतः निजामाबाद ग्राममें रहनेके कारण इन गौडीय कायस्थोंका निजामाबादी नाम पड़ा है। अभी इनमेंसे अधिकांश सिख सम्प्रदायभुक्त हो कर नानकशाहके शिष्य हो गये हैं। भटनागर देखो।

निजामि-गणजाभि—एक विख्यात मुसलमान कवि, इन्होंने गञ्जा नामक स्थानमें जन्मग्रहण किया था। ये साहित्यानुरागी वहराम खाँकी राजसभामें रहते थे। इन्होंने ८।१० ग्रन्थ बनाये हैं जिनमेंसे ५ अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ 'खामसा' नामसे पण्डित-समाजमें परिचित हैं। पांचोंके नाम ये हैं, मखजानउल्-असवार, लइली-व-मजनून्, खुसरो-वसीरीन्, इक्‌बाइकर और सिकन्दरनामा। शेषोक्त ग्रन्थमें १२०० ई०में ग्रीकराज अलेकसन्दरके पूर्वदेश-जयका विषय लिखा है। खुसरो वसरी और इक्‌बाइकर नामक ग्रन्थ-रचनामें इन्हें १४ निष्कर ग्राम पारितोषिकमें मिले थे। उक्त ग्रन्थोंके अलावा इन्होंने २०००० श्लोकोंका एक दीवान् लिखा था, इनकी मृत्युके विषय कुछ मतभेद देखा जाता है। कोई कोई इनकी मृत्यु ११८० ई०में, १२०० ई०में और कोई १२०८ ई०में बतलाते हैं।

निजि (सं० त्रि०) निज शुद्धौ कि। शुद्धियुक्त, जो शुद्धिके सहित हो।

निजिमत् (सं० त्रि०) निजि-मतुप्, मस्य व। शुद्धिमान्, शुद्धियुक्त।

निजिघृक्षु (सं० त्रि०) निग्रहीतुमिच्छुः नि-ग्रह-सन्, ततो उ। जो निग्रह करनेमें इच्छुक हो, जो दूसरेको कष्ट पहुंचानेमें हरवक्त तैयार हो।

निजुर् (सं० स्त्री०) हत्या, विनाश।

निझरना (हिं० क्रि०) १ लगा या अटका न रहना, झड़ जाना। २ अपनेको निर्दोष प्रमाणित करना, दोषसे मुक्त बनना, हाथ झाड़ कर निकल जाना, सफाई देना। ३ लगी हुई वस्तुके झड़ जानेसे खाली हो जाना। ४ सार वस्तुसे रहित हो जाना, खुब हो जाना।

निझाना (हिं० क्रि०) आड़में छिप कर देखना, झांक झूंक करना, ताक झांक करना।

निझोटना (हिं० क्रि०) झपटना, खींच कर छीनना।

निझोल (हिं० पु०) हाथीका एक नाम।

निटर (हिं० वि०) जो उपजाऊ न रह गया हो, जिसका जोर मर गया हो, जिसमें कुछ दम न हो।

निटल (सं० पु०) नि-टल-अच्। कपाल, मस्तक।

निटलाक्ष (सं० पु०) निटले भाले अक्षि यस्य, अच् समासान्तः। शिव, महादेव।

निटोल (हिं० पु०) टोला, मुहल्ला, पुरा, बस्ती।

निठल्ला (हिं० वि०) १ जिसके पास कोई काम धन्धा न हो, खाली। २ बेकार, बे-रोजगार। ३ निकम्मा, जो कोई काम धन्धा न करे।

निठल्लू (हिं० वि०) निकम्मा, जो कोई काम धन्धा न करे।

निठाला (हिं० पु०) १ ऐसा समय जब कोई काम धन्धा न हो, खाली वक्त। २ वह समय जिसमें हाथमें कोई काम धन्धा या रोजगार न हो, वह वक्त या हालत जिसमें कुछ आमदनी न हो, जीविकाका अभाव।

निठुर (हिं० वि०) निर्दय, क्रूर, जो पराया कष्ट न समझे, जिसे दूसरेकी पीड़ाका अनुभव न हो।

निठुरता (हिं० स्त्री०) निर्दयता, हृदयकी कठोरता, क्रूरता।

निठुराव (हिं० पु०) निर्दयता, निठुराई।

निठौर (हिं० पु०) १ बुरी जगह, कुठांव। २ बुरी दशा, बुरा दांव।

निडर (हिं० वि०) १ जिसे डर न हो, जो न डरे, निर्भय। २ साहसी, हिम्मतवाला। ३ धृष्ट, ढीठ।

निडरपन (हिं० पु०) निर्भयता, निडर होनेका भाव।

निड़ीन (सं० क्ली०) नीचैर्डीनं पतनमस्त्यस्मिन्। पक्षियोंकी गतिविशेष, चिड़ियोंकी एक चाल।

निढाल (हिं० वि०) १ अशक्त, सुस्त, शिथिल, पस्त, गिरा हुआ। २ उत्साहहीन, सुस्त, मरा हुआ।

निण्डिका (सं० स्त्री०) मटर। पर्याय—सतीला, तिपुटी।

निण्य (सं० त्रि०) अन्तर्हित, गायब, लापता।

नित (हिं० अव्य०) १ प्रतिदिन, रोज। २ सर्वदा, हमेशा।

नितम्नी (सं॰ स्त्री॰) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा।

नितम्ब (सं॰ पु॰) नितरां तम्यति आकाङ्क्षयति कामुकोऽस्मिन् इति नि-तम्ब-घञ्, वा नितम्बति पीड़यति नायकचित्तमिति तम्ब अच्। १ स्त्रीकटि, कटिपश्चाद्भाग कमरका पिछला उभरा हुआ भाग, चूतड़। २ स्कन्ध, कंधा। ३ कूल, तट, किनारा। ४ पर्वतका कटक पहाड़का ढालुआँ किनारा। ५ कटिभाग, चूतड़।

नितम्बदेश (सं॰ पु॰) पश्चाद्देश, पिछला भाग।

नितम्बिन् (सं॰ त्रि॰) नितम्ब अस्त्यर्थे इनि। नितम्बयुक्त, जिसे चूतड़ हो।

नितम्बिनी (सं॰ स्त्री॰) अतिशय शस्तो नितम्बोऽस्त्यस्या इति नितम्ब-इनि ङीप्। १ प्रशस्त नितम्बविशिष्टा, सुन्दर नितम्बवाली स्त्री सुन्दरी। २ स्त्री, औरत। (त्रि॰) ३ सुन्दर नितम्बवाली।

नितम्भु (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

नितराम् (सं॰ अव्य॰) नि-तरप्, ततो आमु प्रत्यय। सर्वदा अनवरत, हमेशा।

नितल (सं॰ क्ली॰) नितरां तलं अधोभागो यस्मिन्। सप्त पातालके अन्तर्गत पातालविशेष सात पातालोंमेंसे एक।

नितार्ई—आसाम प्रदेशके गारोपहाड़ जिलेकी एक छोटी नदी। यह तुरानगरसे निकल कर दक्षिणकी ओर नाना स्थानोंमें बहती हुई मैमनसिंह जिलेकी बाढ़ नदीमें आ मिली है।

नितान्त (सं॰ त्रि॰) नितान्यतीति तम-क्त दिर्घ, ततो दीर्घ (अनुनासिकस्येति। पा ६।४।१५) १ अतिशय, बहुत, अधिक। २ सर्वथा, बिलकुल, एकदम, निरा निपट।

निठुराई (हिं॰ स्त्री॰) निर्दयता, क्रूरता, हृदयकी कठोरता।

नित्य (सं॰ त्रि॰) नियमेन भव नि-त्यप (अव्ययात्त्यप्। पा ४।२।१०४) १ सतत लगातार। पर्याय—अनारत, अश्रान्त, सन्तत, अविरत, अनिश, अनवरत, अजस्र, प्रसक्त, धारक, ध्रुव। २ प्रतिदिनका, रोजका। प्रति दिन शास्त्रानुसार जो सब कार्य्य किये जाते हैं उन्हें नित्य कहते हैं। ३ अविच्छिन्न पारम्पर्य, जिसकी परम्परा विच्छिन्न न हो जैसे वर्ण। सभी वर्ण नित्य हैं। वर्ण

का नित्यत्व यदि स्वीकार न किया जाय, तो इनका एक भाव रहना सम्भव नहीं। मान लिया एक वर्ण उच्चारित हुआ, उसी समय उसका ध्वंस हो गया, उससे एक भी शब्द न निकला। किन्तु वर्ण नित्य है, यदि ऐसा स्वीकार करें, तो कोई वर्ण विच्छिन्न नहीं होता, क्योंकि वर्ण समूहके एकत्र होनेसे शब्दार्थका कोई व्याघात नहीं होता। ४ उत्पत्ति, विनाशरहित, जिसका कभी नाश न हो, चिरस्थायी। जिसका किसी समय किसी प्रकारका परिणाम न हो, वही नित्य है। सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ही एक मात्र नित्य हैं। इसके सिवा जितनी चीजें नजर आती हैं, वे अनित्य हैं, यों कहिये कि संसार ही अनित्य है। "ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यम्" (वेदान्तसा॰)। ब्रह्मके सिवा अन्य कोई नित्य नहीं है। न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे परमाणु नित्य पदार्थ है। किन्तु वेदान्तदर्शनमें यह मत खण्डित हुआ है।

सावयव द्रव्यके सभी अवयव विभाग करते करते जहां विभागका शेष होगा या जिसका विभाग और हो नहीं सकता, वही परमाणु है। यह परमाणु नित्य है, निरवयव सावयव है। इसकी उत्पत्ति और लय है। परमाणुराशि ही मूल भौतिक पदार्थोंको उत्पादक है। नैयायिकोंका यह मत नितान्त भ्रान्तिमूलक है, कारण परमाणु सभी प्रवृत्तिस्वभाव वा निवृत्तिस्वभाव अथवा उभयस्वभाव या अनुभयस्वभाव, इन चार प्रकारके स्वभावोंमेंसे एक प्रकारके स्वभावविशिष्ट हैं, यह स्वीकार करना होगा। किन्तु इन चार प्रकारमेंसे कोई प्रकार प्रमाणसाध्य नहीं है। प्रवृत्तिस्वभाव (सृष्टिकार्यमें उन्मुख) होनेसे प्रलय नहीं हो सकता। निवृत्तिस्वभाव होनेसे सृष्टि नहीं हो सकती। एक और प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों स्वभाव रह नहीं सकते। निःस्वभाव होनेसे नैमित्तिक प्रवृत्ति निवृत्ति हो सकती है सही, लेकिन उस मतमें समस्त निमित्त (काल अदृष्ट, ईश्वरेच्छा) नित्य और नियत सन्निहित हैं। सुतरां इसमें भी नित्य प्रवृत्तिकी और नित्य निवृत्तिकी आपत्ति हो सकती है।

परमाणुमें रूपादि है, यह स्वीकार करनेसे ही पर

माणुमें अणुत्व और नित्यत्व इन दोनोंका वैपरीत्य पाया जाता है। वैशेषिकोंके मतानुयायी परमाणु परमकारणापेक्षा स्थूल और अनित्य है सही, लेकिन उन लोगोंका ऐसा मत नहीं है।

रूपादि रहनेसे उसमें जो स्थूलत्व और अनित्यत्व है, वह सभी जगह देखनेमें आता है। जितने रूपादिविशिष्ट वस्तु हैं, सभी स्वकारणापेक्षा स्थूल और अनित्य हैं। जैसे, वस्त्र सूत्रकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है, फिर सूत्र भी अंशकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य हैं। अंश और अंशुतर अंशतमकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है। वैशेषिकोंका परमाणु भी रूपादिविशिष्ट है। सभी परमाणु रूपादिमान् हैं, इसीसे उनका कारण (मूल) है। अतएव परमाणु उस कारणकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है, यह सहजमें अनुमान किया जाता है। वैशेषिकोंके मतसे कारणपरिशून्यभाव पदार्थ नित्य है। वैशेषिकोंके इस नित्यत्वका लक्षण अणुमें असम्भव है। क्योंकि अणुमें भी कारणका रहना अनुमान द्वारा सिद्ध होता है। इनके मतमें नित्यत्वका अन्य कारण लिखा है, वह यह है—अनित्य क्या है? अनित्य विशेषप्रतिषेधका अभाव है। विशेष शब्दका अर्थ जन्यवस्तु है। जो सब वस्तु उत्पन्न होती हैं, वही विशेष पदवाच्य हैं। यह विशेष पदार्थका अभाव है। जो जन्य नहीं है, उसीमें अनित्यशब्द व्यवहृत हुआ है। वही व्यवहार परमाणुकी नित्यताका अन्यतम कारण है, अर्थात् अनित्यशब्द द्वारा नित्यता सिद्ध होती है। वैशेषिकोंके मतमें यह जो नित्यत्वसाधक कारण है, उसमें भी असंशयितरूपसे परमाणुकी नित्यता साधित नहीं होती। क्योंकि इस मतसे 'अनित्य' शब्द सप्रतियोगी अर्थात् सापेक्ष हैं। यदि कहीं भी नित्यकी प्रसिद्धि रहे, तभी उसकी अपेक्षा वा उसकी प्रतियोगितासे नित्य शब्दका व्यवहार हो सकता है। यदि नित्य कह कर प्रसिद्ध ऐसी कोई वस्तु न रहे, तो अनित्य इस प्रकार समास वा योगशब्द हो ही नहीं सकता। सुतरां यह जानना होगा कि एक सर्वप्रसिद्धसर्वकारण, परम और प्रसिद्ध नित्य है।

वही नित्य पदार्थ परमाणु का भी कारण है, उसका दूसरा नाम ब्रह्म है। परमाणु और वह परमकारण ब्रह्मकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है। (वेदान्तद० २ अ०)

एक मात्र परब्रह्म ही नित्य है, वे ही सभीके कारण हैं, उन्हींसे इस संसारकी उत्पत्ति होती है, उन्हींमें सब स्थित है और पीछे उन्हींमें लीन होते हैं।

सांख्यके मतसे पुरुष नित्य और प्रकृति नित्या है। वेदान्तदर्शनमें यह प्रकृतिवाद भी निराकृत हुआ है। वेदान्त देखो। (पु०) ६ समुद्र, सागर। (अव्य०) ७ प्रतिदिन, रोजरोज।

नित्यकर्मन् (सं० क्ली०) नित्यं कर्म। विहित कार्यभेद, यह धर्मसम्बन्धी कर्म जिसका प्रतिदिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। जो सब कार्य नहीं करनेसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है, उसीका नाम नित्यकर्म है, जैसे सन्ध्या, यह शास्त्रमें लिखा है। यदि उस कार्यका अनुष्ठान न किया जाय, तो प्रत्यवाय (पाप)का भागी होना पड़ता है।

"नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमितिकन्तथा।
गृहस्थस्य त्रिधा कर्म तन्निशामय पुत्रक॥
पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं तव।
नैमित्तिकं तथा चान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्॥"
(श्राद्धतत्त्वधृत मार्कण्डेयपु०)

गृहस्थोंके लिए तीन कर्म बतलाए गये हैं—नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक। पञ्चयज्ञादि कार्य नित्य, पुत्रजन्मप्रभृति जात नैमित्तिक और पर्व श्राद्धादि नित्य-नैमित्तिक है। पंचयज्ञ आदि कार्य सभी गृहस्थोंके नित्यकर्म हैं, नैमित्तिक और काम्य कर्मके अतिरिक्त जिन सब कार्योंका विषय शास्त्रमें लिखा है, वही सब कर्म नित्य है। यह नित्य कर्म प्रत्येक व्यक्तिका अवश्य कर्त्तव्य है। समर्थ व्यक्ति यदि नित्य कर्मका अनुष्ठान न करे, तो पतित होता है। जो एक पक्ष तक नित्य कर्मका त्याग करता है, वह प्रायश्चित्त भोगी होता है। एक वर्ष तक जिसने नित्यकर्मका परित्याग किया है, ऐसे व्यक्तिका मुख देखनेसे पाप होता है। यदि दैवात् उसकी भेंट हो जाय, तो सूर्यदर्शन और यदि उसे स्पर्श करे, तो स्नान कर लेना चाहिए।

कब किस हालतमें नित्यकर्म वर्जित है, उसका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—जानुका

कार्य देश यदि व्याप्त हो जाय, तो नित्यकर्म और यदि अशौचादिसे व्याघात हो, तो नैमित्तिक कर्म नहीं करना चाहिये। घोरकर्म वा मैथुनमें धूमोद्गार उठनेसे वा वमन होनेसे नित्यकर्म निषिद्ध है। अजीर्ण होने पर अथवा कोई वस्तु खाने पर नित्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। जननाशौच वा मरणाशौच होने पर नित्य कर्म वर्जित है। फल मूलादि जो औषधके लिए कल्पित हैं, उन्हें भोजन कर नित्यकर्म किया जा सकता है किन्तु औषधमिश्र फलादि का जलपान कर नित्यकर्म नहीं करना चाहिए। अमोघा, गुरुपात, कृमि तथा यक्ष्मादि रोगोंका नाम सुन कर उनके द्वारा कर्म करनेसे नित्यकर्मका अधिकार नहीं रहता। गुरुनिन्दा करनेसे वा अपने हाथसे ब्राह्मणको प्रहार करनेसे वा रक्तपात होनेसे नित्य कर्मानुष्ठान विधेय नहीं है।

(अग्निपु० १५ अ०)

सभोंके नित्यकर्म यदि अक्षमताके कारण असम्पन्न हो, तो भी उसकी निष्पत्ति होती है, अर्थात् कार्यकी सिद्धि अवश्य होती है।

विधिपूर्वक नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेसे, प्रतिदिन जो पाप किया जाता है, वह नष्ट होता है। पञ्चसूना दोष प्रतिदिन जो पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उस पञ्चयज्ञ द्वारा पञ्चसूनाकृत पाप जाते रहते हैं। इसी कारण हर एकको नित्य कर्मका करना अत्यावश्यक है।

वेदोक्त नित्यकर्मके तथा स्नातक व्रतके नहीं करनेसे अशौचादि उपवासरूप प्रायश्चित्त लेना पड़ता है।

"वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥"

(मनु० ११।२०४)

प्रतिदिन जो कार्य किया जाता है, उसे नित्यकर्म वा प्रात्यहिक कर्म कहते हैं। नित्यकर्ममें कौन कौन कार्य करना उचित है वह आह्निकतत्त्वमें विस्तृतरूपसे लिखा है। प्रातःकालसे ले कर पुनः प्रातःकाल तक जो जो कार्य अनुष्ठेय हैं वे ही उसमें वर्णित हैं इसी कारण उसका आह्निकतत्त्व नाम रखा गया।

पहले प्रातःकृत्यका अनुष्ठान आवश्यक है।

"ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत [illegible] ॥"

(आह्निकतत्त्व)

ब्राह्म मुहूर्त्तमें जाग कर देवता, द्विज और ऋषियोंका स्मरण करना चाहिये। रात्रिके पश्चिम याम अर्थात् शेष चार दण्डको ब्राह्ममुहूर्त्त कहते हैं। उस समय जग कर सारी चिन्तायें त्यागके पहले सुप्रसन्नचित्तसे प्रधान प्रधान देवगण, ऋषिगण और अन्य जो कुछ प्रातः-स्मरणीय हैं उनका स्मरण करना कर्त्तव्य है। इनके स्मरण करनेसे चित्त प्रसन्न और प्रशान्त होता है।

"ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतु
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥"

(आह्निकतत्त्व)

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, रवि, शशी, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु और केतु ये सभी हमारे सुप्रभात करें। विशेष विवरण प्रातःकृत्यमें देखो।

पश्चात् उठ कर विण्मूत्रोत्सर्ग, शौच, आचमन और दन्तधावन करके प्रातःस्नान विधेय है। प्रातःस्नान समाप्त कर प्रातःसन्ध्या और जो आग्निक हैं उन्हें होम करना चाहिये। इन सब कार्योंको प्रथम यामार्द्धके अन्दर करना चाहिये।

पीछे द्वितीय यामार्द्धमें वेदाभ्यास करना होता है। अनन्तर समिध, कुश और पुष्पादि तोड़ना विधेय है। तृतीय यामार्द्धमें पोष्यवर्गके अर्थसाधनमें लग जाना आवश्यक है। माता, पिता, गुरु, आत्मीय स्वजन, होमद्रव्य, अभ्यागत, अतिथि और अग्निकी गिनती पोष्यवर्गमें की गई है। इसी तृतीय यामार्द्धमें इनके प्रतिपालनका उपाय करना होगा।

चतुर्थ यामार्द्धमें स्नान, तर्पण, सन्ध्योपासना, ब्रह्मयज्ञ और देवपूजा विधेय है।

पञ्चम यामार्द्धमें वैश्वदेवादि समाप्त कर अर्थात् देवता, पितृ और मनुष्य तथा कीटादिको अन्नादिका विभाग कर तब आप भोजन करना चाहिये।

षष्ठ और सप्तम यामार्द्ध इतिहास और पुराणादि पढ़नेमें व्यतीत करना चाहिये।

अष्टम यामार्द्धमें लोकयात्राके लिये जो सब कार्य आवश्यक हैं, उन्हें करना चाहिये, पीछे सायंसन्ध्या

विधेय है। सायंसन्ध्या कर चुकने पर रात्रिकृत्य करना होता है। एक प्रहर रात्रि तक दिवाभागमें भ्रमप्रमादवशतः जो सब कार्य नहीं किये गये, उन्हें कर डालना चाहिए। (आह्निकतत्त्व)

अनन्तर यथाविधि भोजनादि करके शयन करना चाहिये। आह्निकतत्त्वमें शयन और दारोपगमनविधि भी लिखी है। तत्तद् शब्द देखो।

आजकल बहुत थोड़े ऐसे हैं जो उक्त नियमोंका पालन करते हैं। पूर्व समयमें हिन्दूमात्र ही इस नियमके अनुसार चलते थे।

नित्यकिशोर—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने बहुतसे स्फुट पदोंकी रचना की है।

नित्यक्रिया (सं० स्त्री०) नित्यकर्म, जैसे, स्नान, संध्या आदि।

नित्यचौर (सं० क्लो०) नित्यं कालाकालभावतो राग-प्राप्तत्वात् सदातनं चौरम्। नैमित्तिकचौर, अवैध केशादि छेदन। जिन सब दिनों और समयोंमें चौरकर्म निषिद्ध बतलाया है, उन सब दिनोंमें यदि चौरकार्य किया जाय तो वही नित्यचौर कहलाता है।

"बृहोदिते तिथावृक्षे बुधेन्द्वोर्दिवसे नरः।
नित्यक्षौरं प्रकुर्वीत जन्ममासे न तु क्वचित्॥"
(ज्योतिःसागरसार)

जन्ममासमें कभी भी चौरकार्य नहीं करना चाहिये। चौरकार्यमें भाद्र, पौष, चैत्र और जन्ममास निषिद्ध है। बुध और सोमवार छोड़ कर अन्य वारको निन्दनीय बतलाया है। नन्दा, रिक्ता, पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी छोड़ कर अन्य तिथियोंमें चौरकार्य करा सकते हैं। रेवती, अश्विनी, पुष्या, ज्येष्ठा, श्रवणा, स्वाती, हस्ता, मृगशिरा, शतभिषा, पुनर्वसु और चित्रानक्षत्रमें चौरकार्य प्रशस्त है। पर इसमें विशेषता यह है, कि राजा ब्राह्मणके आदेशसे, विवाहमें, मृतसूतिकाशौचमें, बन्धमोचनमें, यज्ञकर्ममें और परोक्षाकार्यमें यदि निषिद्ध दिन भी क्यों न हो, तो भी और कर्म कर सकते हैं तथा विष्णुका नाम, आनर्त्तपुर वा पाटलीपुत्र, पुरी, अहिक्षत्रा-नगरी और दिति तथा अदितिका स्मरण कर चौरकार्य किया जा सकता है। (ज्योतित०)

नित्यग (सं० पु०) आयु, उमर, जिन्दगी।

नित्यगति (सं० पु०) नित्यं गतिर्यस्य। सदागति, वायु, हवा।

नित्यता (सं० स्त्री०) नित्यस्य भावः नित्य तल्-टाप्। नित्यत्व, नित्य होनेका भाव, अनश्वरता।

नित्यदा (सं० अव्य०) नित्य दाच्। सर्वदा, सब समय, हमेशा।

नित्यदान (सं० क्लो०) नित्यं दैनन्दिनं दानं। प्रतिदिन कर्त्तव्य दान, वह दान जो प्रतिदिन किया जाता है।

"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमिष्यते।
अहन्यहनि यत् किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तत् स्याद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥"
(गरुड़पु०)

नित्य, नैमित्तिक और काम्य यही तीन प्रकारका दान है। इनमेंसे प्रतिदिन किसी उपकारकी प्रत्याशा न कर जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है उसे नित्यदान कहते हैं। यह दान अत्यन्त प्रशस्त है, निष्काम भावसे प्रतिदिन दान करना ही नित्यदान है।

नित्यनर्त्त (सं० पु०) महादेव, शिव।

नित्यनाथ—हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। इन्होंने मन्त्र-खण्ड-रसरत्नाकर नामक एक ग्रन्थ बनाया है।

नित्यनाथसिद्ध—एक ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम शम्भुगुप्त था। इनके बनाए हुये अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, यथा—१ रसरत्नसमुच्चय, २ इन्द्रजालतन्त्र, ३ कामरत्न, ४ तन्त्रकोष, ५ वन्ध्यावली, ६ मन्त्रसार, ७ रसरत्नाकर, ८ सिद्धखण्ड, ९ सिद्धसिद्धान्तपद्धति। कहीं कहीं इनका नाम नित्यानन्द वा नेमनाथसिद्ध भी लिखा गया है।

नित्यनियम (सं० पु०) प्रतिदिनका बंधा हुआ व्यापार, रोजका कायदा।

नित्यनैमित्तिक (सं० क्लो०) नित्यञ्च तन्नैमित्तिकञ्चेति। नित्यत्व-नैमित्तिकत्व-कर्मभेदयुक्त।

"नित्यं नैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादिपण्डितैः।"
(श्राद्धत०)

पर्व श्राद्धादि कार्य नित्यनैमित्तिक पदवाच्य है, क्योंकि इन सब कार्योंमें नित्यत्व और नैमित्तिकत्व दोनों

की है। पञ्चयज्ञ और प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्त्तव्य है और किसी निमित्त (जैसे ग्रहणादि) से भी किये जाते हैं, इसलिए नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यपरिवृत (स॰ पु॰) एक बौद्धाचार्य।

नित्यपुष्पा यज्ञ (स॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कामपूर्ण तामील।

नित्यप्रलय (स॰ पु॰) नित्यः प्रात्यहिकः प्रलयः कर्मधा॰ प्रलयविशेष। प्रलय चार प्रकारका है—नित्य, प्राकृत नैमित्तिक और आत्यन्तिक। इनमेंसे सुषुप्तिको नित्य प्रलय कहते हैं। जब नींद आती है तब किसी विषयका ज्ञान नहीं रहता। प्रलयकालमें जिस प्रकार कार्यका बोध नहीं होता, उसी प्रकार निद्रावस्थामें किसी कार्यका ज्ञान नहीं रहता है इसी कारण इसे प्रलय कहते हैं। सुषुप्तिकालमें धर्माधर्म आदि कारणरूपमें अवस्थित रहते हैं। सुषुप्तिके अवसान पर अर्थात् नींद टूट जाने पर ये सब कार्य होने लगते हैं। अग्निपुराणमें लिखा है, कि प्रतिदिन प्राणियोंका जो लय अर्थात् नाश होता है, उसे नित्य प्रलय कहते हैं। विशेष विवरण प्रलय शब्दमें देखो।

नित्यभाव (स॰ पु॰) नित्यका भाव, अनन्त।

नित्यमय (स॰ त्रि॰) नित्य-मयट्। नित्यस्वरूप, अनन्त।

नित्यमुक्त (स॰ पु॰) नित्य मुक्त। सब समय बन्धशून्य परमात्मा।

"मद् देवो न कर्मोऽस्मि मुक्तो नाहं न लोकवान्।
इत्थितात्मस्वरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥"
(शाङ्करतत्त्व)

नित्ययज्ञ (स॰ पु॰) नित्यानुष्ठेयो यज्ञः। प्रतिदिन अनुष्ठीयमान अग्निहोत्रादि यज्ञ। नित्य यज्ञानुष्ठानमें किसी प्रकारके फलकामकी आकाङ्क्षा नहीं रहती। पञ्च यज्ञ साग्निक ब्राह्मणोंको प्रतिदिन करना होता है।

नित्ययुक्त (स॰ त्रि॰) सब दा काममें नियुक्त, जो हमेशा काममें लगा रहता हो।

नित्ययौवन (स॰ त्रि॰) नित्य यौवन यस्य। १ स्थिर यौवन जिसका यौवन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे। (स्त्री॰) २ द्रौपदी।

नित्ययौवना (स॰ स्त्री॰) १ कामिनी। (पु॰) २ नित्य समागम।

नित्यवर्ष—राष्ट्रकूट वंशीय एक राजा। राष्ट्रकूट देखो। अगस्त्यने दो विवाह किए थे, पहली स्त्री लक्ष्मीके गर्भसे नित्यवर्षने जन्मग्रहण किया।

नित्यवर्ष—२य नित्यवर्ष 'कोटोम वा खोट्टोग' नामसे प्रसिद्ध थे। २य अमोघवर्षके दो पुत्र थे जिनमें बड़ेका नाम नित्यवर्ष अथवा कोट्टिग वा खोट्टिग और छोटेका कृष्ण हर्ष वा अमर था। कोट्टिग बिना कोई सन्तान छोड़े इस लोकसे चल बसे थे। राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

नित्यविलस्त (स॰ पु॰) १ नित्यभोग। (स्त्री॰) २ दारिद्र।

नित्यवैकुण्ठ (स॰ पु॰) नित्य सनातनो वैकुण्ठः। विष्णुका स्थानविशेष।

"ऊर्ध्वे भवति वैकुण्ठे नित्यवैकुण्ठ एव च।
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत्॥
ईश्वरेच्छाकृतश्चैव निर्लक्ष्यश्च निराश्रय।
आकाशवत् सुविस्तारश्चतुरस्त्र स्वनिर्मितः॥"
(ब्रह्मवै॰ प्रकृति॰ १० अ॰)

आकाशमण्डलमें बहुत ऊपर आकाशवत् अत्यन्त विस्तृत नित्यवैकुण्ठ नामक स्थान है यहीं भगवान नारायणका वासस्थान है। यहां नारायण चतुर्भुजरूपमें वनमालादिविभूषित हो कर लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसीके साथ रहते हैं। नन्द, सुनन्द और कुमुद आदि पार्षद भी यहां बराबर मौजूद रहते हैं।

नित्यशः (स॰ अव्य॰) नित्य शस् प्रत्यय। १ प्रतिदिन, रोज। २ सर्वदा, सदा, हमेशा।

नित्यसत्त्वस्थ (स॰ त्रि॰) नित्य सत्त्व यत् सत्त्वं तत्र तिष्ठति स्था क। नित्य धैर्यावलम्बी, सत्त्वगुणावलम्बी। जब रजः और तमोगुण सत्त्वसे अभिभूत होता है, तब उसे नित्यसत्त्वावस्था कहते हैं। इस अवस्थामें जो अवस्थित रहते हैं, उन्हें नित्यसत्त्वस्थ कहते हैं।

"निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्"। (गीता)

नित्यसम (स॰ पु॰) गौतमसूत्रोक्त जात्युत्तरभेद, न्यायमें जो २४ जाति अर्थात् केवल साधर्म्य और वैधर्म्यसे असुक्त उत्तर कहे गये हैं उनमेंसे एक। यह असुक्त उत्तर जो इस प्रकार किया जाय, कि अनित्य वस्तुओंमें भी अनित्यता नित्य है अतः धर्मके नित्य होनेसे धर्मी

भी नित्य हुआ। जैसे, किसीने कहा, शब्द अनित्य है क्योंकि वह घटके समान उत्पत्ति-धर्म वाला है। इसका यदि कोई इस प्रकार खण्डन करे, कि यदि शब्दका अनित्यत्व नित्य है, तो शब्द भी नित्य हुआ और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्वके अभावसे शब्द नित्य हुआ। इस प्रकारका दूषित खण्डन नित्यसम कहलाता है।

नित्यसमास (सं० पु०) समासभेद, कुशब्द और आदि शब्दके साथ जहां समास होगा, वह नित्यसमास होता है।

नित्यस्तोत्र (सं० त्रि०) १ सर्वदा प्रशंसित, जिसकी हमेशा तारीफ की जाय। २ सर्वदा पठनीय स्तोत्र।

नित्यहोम (सं० पु०) नित्यं प्रत्यहं कर्त्तव्यो होमः। द्विजोंका प्रतिदिन कर्त्तव्य होम। साग्निक ब्राह्मण प्रतिदिन जिस होमविधिका अनुष्ठान करते हैं, उसे नित्य होम कहते हैं। जब तक जीवन है, तब तक होम करना चाहिये।

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' (श्रुति)

नित्या (सं० स्त्री०) नित्य-टाप्। १ देवीकी शक्तिभेद, पार्वती। इनके मन्त्रादि तन्त्रसारमें लिखे हैं। २ मनसादेवी। ३ एक शक्तिका नाम।

नित्यानध्याय (सं० पु०) नित्यं सर्वथा यथातथा अनध्यायः अध्ययनाभावः। सर्वदा वर्जनीय वेदपाठकालादि, ऐसा अवसर चाहे वह जिस वार या जिस तिथिको पड़ जाय जिसमें वेदके अध्ययन अध्यापनका निषेध हो।

'इमान्नित्यमनध्यायनधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम्॥'
(मनु ४।१०१)

अध्ययनशील शिष्य और वेदाध्यापक गुरुको नित्य-अनध्यायका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना चाहिये। नित्य अनध्याय-समूहका विषय इस प्रकार है—

जब पानी बरसता, बादल गरजता और बिजली चमकती हो या आंधीके कारण धूल आकाशमें छाई हो या उल्कापात होता हो, तब अनध्याय रखना चाहिये। (मनु ४ अ०) विशेष विवरण अनध्याय शब्दमें देखो।

नित्यानन्द (सं० पु०) सदानन्द, वह जो सदा आनन्द रहे।

नित्यानन्द—इस नामके कितने कवियों और शास्त्रकारोंके नाम पाए जाते हैं। यथा—

१ वाल्मीकिके शिष्य और जातकार्णवपद्धतिके प्रणेता।

२ श्रीनिवास विद्यानन्दके शिष्य और ताराकल्पलताके प्रणेता। इनका दूसरा नाम नारायणभट्ट था।

३ पुरुषोत्तमाश्रमके शिष्य। इनकी उपाधि आश्रम थी। इन्होंने ब्रह्मसूत्रवृत्तिन्यायसंग्रह, मिताक्षरा (छान्दोग्योपनिषट्टीका), मिताक्षरा (वृहदारण्यकटीका), शिक्षापत्री और सत्कर्मव्याख्यान-चिन्तामणि आदि ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

४ देवदत्तके पुत्र। इन्होंने इष्टकालशोधन और निषेकविचारसिद्धान्तराजकी रचना की है।

५ अद्वैततत्त्वदीपके प्रणेता।

६ क्रमदीपिका, तन्त्रनेय, सिद्धसिद्धान्तपद्धति और सुन्दरीपूजातन्त्र आदि ग्रन्थोंके रचयिता।

७ हिन्दीके एक कवि। इनकी गणना उत्तम कवियोंमें की जाती थी। सं० १७५४के पूर्व इन्होंने बहुतसी सुमधुर और सरस कविताओंकी रचना की। इनका नाम सूदनने सुजानचरित्रमें लिखा है।

नित्यानन्दघोष—एक बङ्गाली कवि। प्रायः तीन सौ वर्षसे अधिक हुए इन्होंने बङ्गलाभाषामें अष्टादशपर्व महाभारत प्रकाश किया।

नित्यानन्ददास—एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव कवि। ये पदकर्त्ता बलरामदास नामसे मशहूर थे। इनके पिताका नाम श्रीखण्डनिवासी आत्मारामदास और माताका नाम सौदामिनी था। ये अपने मातापिताके एकलौते लड़के थे। पदकल्पतरु आदि संग्रह पुस्तकोंमें आत्मारामदासकृत कुछ पदावली पाई जाती है। पदकल्पतरुकी कविवन्दना पदकर्त्ता बलरामदासको 'कविनृपवंशज' (कविराज) बतलाया है। नरोत्तमविलास आदि ग्रन्थोंमें इनका नाम बलराम कविराज लिखा है और वैष्णववन्दनामें ये 'सङ्गीतकारक' और 'नित्यानन्द-शाखाभुक्त' माने गये हैं। इन्होंने प्रेमविलास नामक एक काव्यकी रचना की है जो २० अध्यायोंमें समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थमें श्रीनिवास और श्यामानन्दकी कथा ही विशेषरूपसे वर्णित है। करीब चार सौ वर्ष हुए इन्होंने प्रेमविलासकी रचना की।

नित्यानन्दनाथ—श्राकरणपद्धतितन्त्रके प्रणेता।

नित्यानन्द प्रभु—राढ़देशमें कलनाके २ कोस दक्षिण प्राचीन एकचाका ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम हड़ाई पण्डित और माताका पद्मावती था। इनका आदि नाम था कुबेर। चैतन्यसम्प्रदायी वैष्णवों का कहना है, कि नित्यानन्द बलरामके अवतार थे।

नित्यानन्द दिन प्रतिदिन शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे। इनके अद्भुत बाल्यजीवनका विवरण चैतन्य भागवतमें है। ये भगवान्‌के लीलानुरूप खेल खेलते थे। अड़ोसपड़ोस इनका खेलना देख बड़े ही विस्मित होते और कहते थे, कि इस बालकने किससे इन सब खेलों की शिक्षा पाई है? स्वयं इनके पिता इनका खेल देख आश्चर्यित हो रहते थे। आश्चर्यित होनेका और भी एक कारण था, वे जिस समय जो खेल खेलते थे, उस समय उसी भावमें आविष्ट हो जाते थे।

जिस दिन वे लक्ष्मणके शक्तिशेल लगनेका खेल खेलते, उस दिन बड़ी भारी विपद् आ पड़ती थी। शक्तिशेलके आघातसे वे वज्राहतकी तरह पृथ्वी पर गिर पड़ते और मूर्च्छित हो जाते थे। यह मूर्च्छा खेलका मूर्च्छा नहीं, भावकी मूर्च्छा थी। एक दिन वे बालकों के साथ खेल रहे थे, कि इतनेमें इनको मूर्च्छा आ गई। इनको मूर्च्छित देख इनके साथ खेलनेवाले दूसरे बालकोंने चारों ओर खबर दी। बाद प्रवीण व्यक्तिगण आये और इनके मातापिता भी पागलकी तरह क्रीड़ा-स्थानमें आ पहुंचे, सैकड़ों चेष्टाएं की गईं, बहुत तरह की ओषधियोंका प्रयोग किया गया, किन्तु नित्यानन्दकी मूर्च्छा न छूटी। सब कोई रोने लगे।

बाद किसी एक आदमीने एक बालकको बुलाया और उसे अभयदान दे पूर्वापर कथा पूछी। उस बालकके बोलते न बोलते नित्यानन्दकी शिक्षा उसे याद आ गई और वह आनन्दित हो बोल उठा, 'अभी नित्यानन्दको जीवित करता हूं।' तब वह बालक हनुमान्‌का रूप धारण कर गन्धमादन लानेको चला। उसके गन्धमादन लाने पर एक दूसरे बालकने (पूर्व शिक्षानुसार) वैद्य बन कर उस ओषधको नित्यानन्दकी नाकके पास रखा अनेक चेष्टा करने पर भी जो मूर्च्छा नहीं छूटी थी, वह सामान्य चेष्टासे ही जाती रही।

नित्यानन्द आनन्दके मग्नस्वरूप थे। इनके माता पिताकी बात तो दूर रही, यहां तक कि ग्रामवासिगण क्षणभर भी इन्हें न देख चारों ओर शून्य ही शून्य देखने लगते थे। इनका रूप जैसा अपरूप था विद्याशिक्षा भी वैसी ही अद्भुत थी। जब ये बारह वर्षके हुए तब इनके विवाहकी बात होने लगी। बहुतोंने अपनी अपनी कन्या इन्हें अर्पण करनी चाही। यह देख इनकी माता बहुत आनन्दित हुई। किन्तु वह आनन्द शीघ्र ही निरानन्दमें परिणत हो गया। अग्रहायण मासके अन्तिम (१४९० ई०)में एक उदासीन, अत्यन्त तेजस्कर आकृति वाले मनुष्य इनके पिता हड़ाई पण्डितके यहां अतिथि हुए। प्रस्थानके समय उन्होंने हड़ाई पण्डितसे नित्यानन्दकी भिक्षा मांगी। उन्होंने अतिथिको विमुख न कर अत्यन्त दुःखित हो पुत्रको अर्पण किया और वे इस धर्मसङ्कटमें विपन्नगामी न हों, इसलिये भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे। जब उनकी माता पद्मावतीको यह खबर लगी, तब उन्होंने भी वैसा ही किया।

इनके मातापिताका हृदयपिण्ड छिन्नविच्छिन्न हो गया—और अधिक सह न सके। जिस समय नित्यानन्द घरसे बाहर निकले, उसी समय इनके मातापिता जहां थे, वहीं मूर्च्छित हो पड़े रहे उन्हें फिर भी पूर्व ज्ञान न हुआ और वे पागलकी भांति रहने लगे।

जो कुछ हो, नित्यानन्द फिर घर न लौटे। इन्होंने अवधौतिक संन्यासाश्रम अवलम्बन किया। इनके गुरुका नाम था लक्ष्मीपति। बीस वर्षकी उम्र तक इन्होंने तीर्थाटन किया। श्रीमन्महाप्रभुके गुरु ईश्वरपुरी उस समय वृन्दावनमें थे। उन्होंने देखा कि, एक तरुण संन्यासी पागलकी भांति श्रीकृष्णके अन्वेषणमें घूम रहा है। ईश्वरपुरीने इनका भाव समझ कर इन्हें पूछा, "ठाकुर! यहां क्या देखते हो, तुम्हारे स्वामीने नवद्वीपमें शचीके घर जन्म लिया है। वहां जाओ, वे तुम्हारी ही अपेक्षा करते हैं।" यह सुन कर नित्यानन्द नवद्वीपकी ओर चल दिए।

जिस प्रकार समुद्रमें नदी मिलती है वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, किन्तु उसकी स्वतन्त्रता नहीं रहती उसी प्रकार नित्यानन्दकी जब नन्दन-आचार्यके घर पर

महाप्रभुसे भेंट हुई, तब इनको स्वतन्त्रता जाती रही।

श्रीमहाप्रभु स्वयं सन्यासी थे, उनके प्रधान प्रधान पार्श्वगणोंमेंसे प्रायः अधिकांश ही संन्यासी थे। इससे यह फल हुआ, कि मनुष्योंका गार्हस्थ्य आश्रमके ऊपर विराग उत्पन्न हो गया। धीरे धीरे झुण्डके झुण्ड अनधिकारी मनुष्य संन्यासी होने लगे; अब इस प्रवाहको रोकना चाहिये। महाप्रभुने देखा, कि नित्यानन्दके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है—इनके उदाहरणसे ही मनुष्य सुखी हो सकते हैं। तब महाप्रभुने इनके दोनों हाथ पकड़ कर इनसे कहा, 'भाई! जीवके उद्धारके लिये ही तुम्हारा अवतार है, उनकी भलाईके लिये तुम विवाह करो और वे देखें, कि विवाह करनेसे ही धर्म नहीं होता, सो नहीं।' यद्यपि यह कार्य नितान्त अनभिप्रेत था, तो भी इन्होंने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। यथासमय ये गौड़ आये।

ये घूमते घूमते अम्बिका गये। जो कोई इनका मनोमोहनरूप देखता, वही सुखी हो जाता था। यहां सूर्यदास पण्डितसे इनकी मैत्री हो गई। सूर्यदासके अनेक यत्न करने पर ये उनके घर गये। उनकी पत्नीने इनके असामान्यरूपदर्शनसे मुग्ध हो इन्हें कन्यादान करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु सूर्यदास लोकलज्जासे विशेषतः आत्मीय स्वजनोंकी असम्मति देख अज्ञातकुलशीलको कन्यादान न कर सके।

नित्यानन्द वहांसे विदा हो गङ्गाके किनारे आ कर रहने लगे। दैवात् एक दिन सूर्यदास अपनी कन्या वसुधाकी मृतदेह ले सत्कार करनेके उद्देशसे गङ्गाके किनारे आये। नित्यानन्दने मृतदेह देख सूर्यदासको कहा, "यदि आप इस कन्याके साथ मेरा विवाह कर देनेकी प्रतिज्ञा करें, तो मैं इसे जीवित कर सकता हूं।" सूर्यदासके स्वीकार करने पर उन्होंने उसे जिलाया। सूर्यदास कन्या ले कर घर आये और शुभ दिनमें महा समारोहसे उसका विवाह नित्यानन्दके साथ कर दिया।

इस प्रकार चिर उदासीन अवधूत गृही हुए। कुछ दिन बाद वसुधाके गर्भसे वीरभद्र नामका एक लड़का पैदा हुआ और इन्होंके वंशमें खड़दहके गोस्वामियोंकी भी उत्पत्ति हुई।

नित्यानन्दकी और सब लीलाएं विस्ताररूपसे यहां नहीं दी गईं। चैतन्यचन्द्र देखो। इन्होंने १४५६ शकमें देहत्याग किया।

नित्यानन्द मनोभिराम—एक ग्रन्थकार। ये ग्रेव थे। वचनार्थ नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है।

नित्यानन्दरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—हिङ्गुलोत्थ-पारद अर्थात् हिङ्गुल द्वारा शोधित पारा, गन्धक, तांबा, कांसा, रांगा, हरताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीकी भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लौह, विड़ङ्ग, पञ्चलवण, चई, पिपरामूल, हबुषा, वच, कचूर, अकवन, देवदारु, इलायची, विदड़क, निशोथ, चितामूल, दन्तीमूल इन सब द्रव्योंका बराबर बराबर भाग ले कर उसे हरीतकीके काढ़ेसे पीसते हैं। बाद दश रत्ती परिमाणकी एक एक गोली बनाते हैं। प्रातःकाल इसका सेवन करनेसे कफवातोत्थ अथवा रक्त-मांसाश्रित श्लीपदरोग नष्ट हो जाते हैं। इसका अनुपान शीतल जल है। यह श्लीपदाधिकारकी उत्तम दवा है तथा अर्बुद, गण्डमाला, वातरक्त, कफवातोद्भवरोग, अन्त्रवृद्धि, वातकफ, गुदरोग और कृमि आदि रोगोंमें विशेष उपकारी है। श्लीपदरोगमें इसके सिवा और कोई औषध है ही नहीं। इससे अग्निवृद्धि होती है। श्रीमान् गहननाथने संसारकी भलाईके लिये इस औषधका आविष्कार किया है। (भैषज्यर० श्लीपदा०)

नित्यानन्दशर्मा—इन्होंने उपवासनातत्त्व नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

नित्यानन्दानुचर—अपरोक्षानुभूतिटीकाके प्रणेता।

नित्यानन्दाश्रम (सं० पु०) एक टीकाकार।

नित्यानन्द देखो।

नित्यानित्यवस्तुविवेक (सं० पु०) नित्यश्च अनित्यश्च नित्यानित्ये ते च ते वस्तुनी नित्यानित्यवस्तुनी तयोः विवेकः। नित्यानित्यवस्तुका विवेक। वेदान्तमतसे ब्रह्मविद्याको जाननेमें नित्यानित्यवस्तुविवेक आवश्यक है, यह वस्तु नित्य है, यह वस्तु अनित्य है, इसका सम्यक् विवेक वा ज्ञान होनेको नित्यानित्यवस्तुविवेक कहते हैं। ब्रह्म ही एकमात्र नित्यवस्तु हैं। ब्रह्मके अतिरिक्त जो कुछ नजर आता है, वह अनित्य है, इस

प्रकारके ज्ञानका नाम नित्यानित्यवस्तुविवेकज्ञान है।

नित्यानित्यवस्तुविवेकज्ञान ही मुमुक्षुओंका प्रधान सोपान है। जिस प्रकार अनताको मरुमरीचिकामें जलभ्रान्ति होती है उसी प्रकार अविद्याधिष्ठित लोकको ब्रह्ममें जगद्भ्रान्ति होती है। यह जगत्प्रपञ्च मिथ्या है ब्रह्म ही सत्य है। मुमुक्षुको पहले यही ज्ञान उपार्जन करना होता है। यह ज्ञान जब दृढ़ हो जाता है, तब नित्यानित्यवस्तुविवेक हुआ है, ऐसा जानना होगा। यह नित्यानित्यवस्तुविवेक लाभ करनेमें शम, दम उपरति और तितिक्षा इन चार साधनोंमें सम्पन्न होना चाहिए। इन सब साधनों द्वारा चित्त निर्मल होनेसे "मैं" यह जो ज्ञान है तथा उसका अवलम्बन जो देह, इन्द्रिय और मन है, सभी भ्रान्तिमात्र है, इसमें सन्देह नहीं। सुतरां मैं-ज्ञान और मैं-ज्ञानका अवलम्बन सभी रज्जुसर्पवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं। ब्रह्ममें यह ज्ञान जब परिव्याप्त होता है, तब आपसे आप "अहं" ऐसा ज्ञान इन्द्रिय मन इन सबको त्याग कर ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

यह ज्ञानके प्रवाहमान होनेसे ही तत्त्वज्ञान होता है और ज्ञानसे ही मुक्ति होती है। अतएव नित्या-नित्यवस्तुविवेक ही तत्त्वज्ञानका प्रधान साधन है।

पहले जिससे नित्यानित्यवस्तुविवेक हो, उसीके लिये चेष्टा करना एकमात्र विधेय है। (वेदान्तसार)

नित्यानित्यसंयोगविरोध (सं॰ पु॰) नित्यका अनित्यका एकत्र न होनेसे विरोध। नित्य और अनित्य वस्तुका एकत्रावस्थानरूप विरोध, भाव और अभावका एकत्राव स्थानरूपविरोध, अर्थात् नित्यवस्तुमें अनित्यवस्तु नहीं रह सकती भावपदार्थके साथ एकत्रावस्थान सम्भव नहीं।

नित्यानुचर (सं॰ त्रि॰) रक्षाकारी, प्रतिपालक, बचाने वाला।

नित्याभियुक्त (सं॰ त्रि॰) नित्य अभियुक्तात् युक्त योगी व्यापार। योगविशेष जो केवल वायु पीकर ही भोजन करके रहे जितनेमें देह रक्षा होती रहे और सब त्याग करके मोक्ष साधन करे।

नित्यामरेश्वरी (सं॰ स्त्री॰) नित्या सदावस्था प्रसिद्ध भैरवी। भैरवीविशेष।

नित्यारिस (सं॰ स्त्री॰) नियत आर्द्रिक रूप उदक पान पंचका काष्ठपात्रयुक्त।

नित्योदितघण्ट (सं॰ पु॰) बोधमत्स्यभेद।

नित्योदितरस (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शोधित रस, ताम्र, लोह, अभ्र, विष, गन्धक, इन सब द्रव्योंका समान भाग और उतना ही मिलावा, सबको एक साथ पीस कर मोम और मानकच्चूके रसमें ३ दिन तक छोड़ देते हैं। बाद मटर भरकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान घृत है। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारका अर्श रोग जाता है। (भैषज्यर॰ अर्शोऽधि॰)

निथरना (हिं॰ क्रि॰) १ पानी या और किसी पतली चीजका स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय स्थिर कर साफ होना। २ घुली हुई चीजके नीचे बैठ जानेसे जलका अलग हो जाना, पानी छन जाना।

निथार (हिं॰ पु॰) १ घुली हुई चीजके बैठ जानेसे अलग हुआ साफ पानी। २ पानीके स्थिर होनेसे उसके तलमें बैठी हुई चीज।

निथारना (हिं॰ क्रि॰) १ घुली हुई वस्तुको नीचे बैठा कर ऊपरसे पानी अलग करना, पानी छानना। २ पानी या और किसी पतली चीजको स्थिर करना जिससे उस-में घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय, स्थिर कर साफ करना।

निथालना (हिं॰ क्रि॰) निथारना देखो।

निद् (सं॰ स्त्री॰) निदि-क्विप् बाहुलकात् न लोपः। १ विष। (त्रि॰) २ निन्दक, निन्दा करनेवाला।

निदघु (सं॰ पु॰) निदात् विषात् हन्ति पलायते इति हा बाहुलकात् कु प्रत्ययेन साधु। १ मनुष्य। (त्रि॰) निर्भीक दह्युर्वध। २ दहुरोगरहित, जिसे दादका रोग न हो।

निदग्ध (सं॰ पु॰) निश्चित दग्ध।

निदर्शक (सं॰ त्रि॰) निदर्शयतीति नि-दृश-णिच्-ण्वुल्। निदर्शनकारी, दिखानेवाला।

निदर्शन (सं॰ क्ली॰) निदर्श्यतेऽनेनेति नि-दृश ल्युट्। १ उदाहरण, दृष्टान्त। २ प्रकाशित करनेका कार्य, दिखानेका काम।

निदर्शना (सं० स्त्री०) निदर्शयतीति नि-दृश-णिच् ल्युट्-टाप्। काव्यालङ्कारविशेष, एक अर्थालङ्कार जिसमें एक बात किसी दूसरी बातको ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है। इसका लक्षण—

"सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्।
यत्र विम्बानुविम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना॥"

(साहित्यद० १०।६९९)

जहां सम्भव-वस्तुसम्बन्ध वा असम्भव-वस्तुसम्बन्ध विम्बानुविम्बत्वका बोध हो, वहां निदर्शना-अलङ्कार होता है। अर्थात् जहां सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ असम्भववस्तुसम्बन्धके प्रणिधानगम्य साम्यत्वका बोध होता है, अर्थात भलीभांति सोच विचार कर देखनेसे जहां समता बोध हो, वहां निदर्शनालङ्कार होगा। यह सम्भव-वस्तुसम्बन्धके साथ असम्भववस्तुसम्बन्धका वा सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ सम्भवस्तुसम्बन्धका प्रणिधानगम्य होनेसे होगा।

सम्भववस्तुसम्बन्धके साथ सम्भववस्तुसम्बन्धका उदाहरण—

"कोऽत्र भूमिवलये जनान् मुधा तापयन् सुचिरमेति सम्पदम्।
वेदयन्निति दिनेन भानुमानासमाद चरमाचलं ततः॥"

(साहित्यदर्पण १० परि०)

इस भूमण्डल पर ऐसा कौन व्यक्ति है जो जनताको वृथा कष्ट पहुंचा कर चिरकाल तक सुखसे रह सकता है? कोई नहीं। सूर्य सारा दिन ताप द्वारा जगत्‌को कष्ट पहुंचा कर चरमाचलको प्राप्त होते हैं। यहां पर दोनों ही सम्भववस्तुका वर्णन हुआ, पहले वाक्यमें कहा गया है, कि जनताको कष्ट दे कर चिरकाल तक सुखसे रह नहीं सकता। दूसरे वाक्यमें कहा गया, सूर्य सारा दिन जनताको कष्ट दे कर चरमावस्थाको प्राप्त होते हैं। यहां पर दो सम्भववस्तुसम्बन्धके प्रणिधान द्वारा समताका बोध हुआ, अर्थात् सूर्य जब संसारको कष्ट दे कर दुरवस्थाको प्राप्त हुए हैं, तब अनर्थक जनपीड़क भी थोड़े ही दिनके अन्दर दुरवस्थामें पतित होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार दो वर्णनीय विषयकी समताका बोध हो जानेसे, यहां पर निदर्शना-अलङ्कार हुआ। असम्भववस्तुसम्बन्धनिदर्शना दो प्रकारकी है, एक वाक्यगत और अनेकवाक्यगत्। उदाहरण—

"कलयति कुवलयमालाललितं कुटिलः कटाक्षविक्षेपः।
अधरः किसलयलीलामाननमस्याः कलानिधेर्विलासम्॥"

(साहित्यद० १० परि०)

इस कुटिल कटाक्षविक्षेप नीलोत्पलमालाका सौन्दर्य अधर-किसलयकी लीला और आननचन्द्रकी शोभा विस्तार करता है। दूसरा दूसरेका धर्म वहन नहीं कर सकता, किन्तु कविने यहां पर असम्भववस्तुका सम्भव बतला कर समताका प्रदर्शन किया है, इस कारण यहां पर निदर्शना-अलङ्कार हुआ।

अनेकवाक्यगत—

"इदं किलाव्याज मनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥"

(साहित्यद० १० परि०)

शकुन्तलाका यह स्वभावसुन्दर शरीर जिन्होंने तपःक्षम करनेकी इच्छा की है, उनका नीलोत्पलके अग्रभाग द्वारा शमीलताछेद जैसा असम्भव है, इस शकुन्तलाके शरीरको तपःक्षम करनेका प्रयास भी वैसा ही है। यहां पर पूर्वोक्त दो विषयोंका साम्य होनेसे निदर्शना-अलङ्कार हुआ।

दृष्टान्त अलङ्कारमें परस्परका समान धर्मद्वय कहे जाते हैं, किन्तु जहां साम्य प्रणिधानगम्य होगा, वहीं निदर्शना-अलङ्कार होगा, निदर्शना और दृष्टान्तमें यही प्रभेद है। (साहित्यद०)

निदाघ (सं० पु०) नितरां दह्यतेऽत्र अनेन वा नि-दह-घञ्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्। १ ग्रीष्मकाल, गरमी। २ उष्ण, ताप। ३ घर्म, घाम, धूप।

"ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव॥"

(रघु १०।८३)

निदाघकालमें ये सब वर्णनीय हैं—मल्लिकापुष्प, पाटलपुष्प, ताप, सरोवर, पथिकशोष, वायु, सेक, शक्तु, प्रपा, स्त्री, मृगतृष्णा और आम्रादि फलपाक।

(कविकल्पलता)

सुश्रुतके मतसे—निदाघकालमें मधुर और स्निग्धरस, दिवानिद्रा, गुरुपाकद्रव्यभोजन, व्यायाम, उष्ण आहार, परिश्रम, मैथुन, अतियोषण कर भोजन वा क्रिया और

पित्तकर रसका परित्याग करना चाहिये। सरोवर, नदी मनोहर वन, चन्दन, माला, पद्म, उत्पल, तालवृन्तव्यजन, शीतलस्थल, चांदनी समय बहुत कम कपड़ा पहनना, शरबत पीना और घृतयुक्त मधुररसमय पदार्थका खाना निदाघ समयमें हितकर है। रातको छुहारे साथ दूध पीना फायदामन्द है। शरीरमें चन्दन लगाना और मन्दवायु प्रवाहित स्थान पर प्रस्फुटित कुसुमविशेष शय्या पर सोना प्रशस्त है। (सुश्रु० ६४ अ०)

२ ऋतुपर्णोजात पुत्रका ऋषिके पुत्र, ऋतुपर्णके उत्पन्न पुत्रका ऋषिके एक पुत्रका नाम। (विष्णु०)

निदाघकर (सं० पु०) निदाघः उष्णः करः किरणानि यस्य। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, मदार, आक।

निदाघकाल (सं० पु०) निदाघ एव कालः, निदाघस्य कालो वा। ग्रीष्मऋतु, गरमीका समय।

निदाढ (सं० त्रि०) नि-दह-क्त। निरोधक, रोकने वाला, हिंसनेवाला।

निदान (सं० क्ली०) नि निश्चय दीयते निर्मीयते नि दा करणे ल्युट्। १ आदिकारण। २ कारण। ३ वत्सदामादि, बछड़ेका बन्धन। नि दो छेदे भावे ल्युट्। ४ कारण नाश। ५ शुद्धि। ६ तपःफलयाचन, तपके फलकी चाह। ७ अवसान, अन्त। ८ रोगनिर्णय, रोगलक्षण, रोगकी पहचान। पर्याय—रोगलक्षण, आदान, रोगहेतु।

रोग जिस कारणसे उत्पन्न होता है, उसका कारण जाननेका नाम निदान है। निदान देख कर रोग निर्णय किया जाता है। माधवकरने चरकादि ग्रन्थसे संग्रह कर 'निदान' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। ये ग्रन्थ मतसे रोगनिर्णयके लिये यही प्रशस्त ग्रन्थ है।

सुश्रुतमें निदानका विषय इस प्रकार लिखा है—सुश्रुतने धन्वन्तरिजीसे पूछा था,—देहव्यापित वायु जब विकृत हो कर कुपित हो जाती है और देहके भिन्न भिन्न स्थानमें आश्रय लेती है, तब वह वहां कौन कौन काम करती है तथा उससे कौन कौन रोग उत्पन्न होते हैं उसको कहिये। इसके उत्तरमें धन्वन्तरिने कहा था —भगवान् स्वयम्भू ही वायु नामसे प्रसिद्ध है। ये स्वतन्त्र सर्वगत और नित्य हैं। यही वायु प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका मूल है। यह शरीरके दोषोंका स्वामी और रोगोंका राजा है। यह देहमें शीघ्रकायकारी और शीघ्रविचरणशील है। वायुके कुपित नहीं होनेसे दोषधातु भी समभावसे रहते हैं, अपने अपने विषयमें प्रवृत्त होते हैं और वायुकी सभी क्रियाएं भी सरलभावसे हुआ करती हैं। यह वायु पांच है—प्राण, उदान, समान व्यान और अपान। ये ही पांचों वायु शरीरकी रक्षा करती हैं। जिस वायुका मुखमें सञ्चरण होता है उसे प्राणवायु कहते हैं। प्राण वायुसे शरीरकी रक्षा, प्राणधारण और खाया हुआ अन्न अन्दर जाता है। इसके दूषित होनेसे हिचकी, दमा आदि रोग होते हैं।

जो वायु ऊपरको ओर चलती है, उसे उदानवायु कहते हैं। इस वायुके कुपित होनेसे कन्धेके ऊपरके रोग होते हैं। समानवायु आमाशय और पक्वाशयमें काम करती है। यह वायु जठराग्नि अग्निके साथ मिल कर खाए हुए अन्नको पचाती है और तज्जनित रस समूह पृथक् करती है। इसके बिगड़नेसे गुल्म मन्दाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं। व्यानवायु सारे शरीरमें घूमती है और रसोंको सर्वत्र पहुंचाती है। इसीसे पसीना और रक्त आदि निकलता है। इसके बिगड़नेसे शरीर भरमें होनेवाले रोग हो सकते हैं। अपानवायुका स्थान पक्वाशय है। इसके द्वारा मल, मूत्र, शुक्र, आर्त्तव, गर्भ, समय पा कर खिंच कर बाहर होता है। इस वायुके कुपित होनेसे बस्ति और गुह्य स्थानके रोग होते हैं। व्यान और अपान दोनोंके कुपित होनेसे प्रमेह आदि शुक्ररोग होते हैं। सभी वायुके एक साथ कुपित होनेसे यह देह भेद कर बाहर निकल जाती है।

वायु विविध प्रकारसे कुपित हो कर जब स्थानविशेषमें आश्रय लेती है तब वमनादि रोग, मोह, मूर्च्छा, पिपासा, हृद्ग्रह और पार्श्वदेशमें वेदना उत्पन्न होती है।

पक्वाशयमें आश्रय लेनेसे अन्त्रकूज (नाड़ीका शब्द) नाभिशूल, कष्टसे मूत्रनिःसरण, आनाह और कटिदेशमें वेदना होती है। श्रोत्रप्रभृति इन्द्रियस्थानमें आश्रय लेनेसे इन्द्रियकार्यका अभाव होता है। त्वक्का आश्रय लेनेसे विवर्णता, स्फुरण, सुप्ति (त्वक्का स्पर्शाभाव)

और त्वकमें वेदना होती है। विशेष विवरण सुश्रुत निदान-स्थान देखो।

पूर्वोक्त सभी वायु कुपित हो कर हो रोग उत्पन्न करती है।

निदानमें लिखा है—

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।" (निदान)

कुपित मल अर्थात् वायु, पित्त और कफ रोगसमूहका निदान है। वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष जब कुपित होते हैं, तब शरीरमें तरह तरहके कष्ट उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जब कष्ट होता है, तब लक्षण द्वारा स्थिर किया जाता है, कि कौन दोष कुपित हुआ है। इसका पता लग जाने पर उसी दोषकी चिकित्सा करनेसे सभी उपद्रव दूर हो जाते हैं। ८ एक कीड़भिन्नु। (शब्दा०) १० अन्तमें, आखिर। (वि०) ११ अन्तिम वा निम्न-श्रेणीका, निकृष्ट, बहुत ही गया बीता, जैसे—उत्तम खेती मध्यम बान, निरघिन सेवा भीख निदान।

निदानार्थकर (सं० पु०) रोगजनक।

निदारुण (सं० त्रि०) १ भयानक, कठिन, घोर। २ दुःसह। ३ निर्दय, कठोर।

निदिग्ध (सं० त्रि०) दिह उपचये निदिह्यतेऽस्मेति दिह क्त। लेपादि द्वारा वर्द्धित, लेप किया हुआ, छोपा हुआ। इसका पर्याय—उपचित है।

निदिग्धा (सं० स्त्री०) नि दह टाप्। १ एला, इलायची। २ कण्टकारी, भटकटैया।

निदिग्धिका (सं० स्त्री०) निदिग्धा स्वार्थे-कन्, कापि अत-इत्वं। १ एला, इलायची। २ कण्टकारी, भटकटैया। पर्याय—वनाक्रान्ता, स्पृशी, व्याघ्री, भण्टाकी, निर्दिग्धिका, सिंही, धामनिका, क्षुद्रवृहती, कण्टकारी।

निदिग्धिकागण (सं० पु०) स्वल्प-पञ्चमूल।

निदिग्धिकादि (सं० पु०) जीर्ण ज्वरकी औषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—कण्टकारी, सोंठ, गुलञ्च सब मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला, प्रक्षेप पिप्पली-चूर्ण अर्द्ध तोला। जीर्ण ज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, अर्दित और पीनसरोगमें यह क्वाथ सेवनीय है। यह ऊर्ध्वशरोगका निवारण करता है, इस कारण इसके सेवनका सन्ध्या समय है। चक्रदत्तके मतसे वातिज्वरमें यह क्वाथ सायंकालमें, अन्यत्र प्रातःकालमें सेव्य है। जब पित्तकी प्रधानता देखें, तब पिप्पली चूर्णके बदले मधु डाल दें।

अन्यविध—गुलञ्च २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला, प्रक्षेपपिप्पलीचूर्ण अर्द्धतोला, अथवा बेलकी छाल, सोनापाठाकी छाल, गंभारीकी छाल, पटारकी छाल, गनियारीकी छाल सब मिला कर २ तोला, प्रक्षेपके लिये पिप्पलीचूर्ण अर्द्ध तोला। इससे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है। इसे गुलञ्चके रस, पीपरके चूर्ण और मधुके साथ सेवन करनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, कास और अरुचिकी शान्ति होती है।

प्लीहाज्वरमें अन्यविध निदिग्धिकादि—शालपर्णि, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, हरीतकी सब मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। प्रक्षेप-यवक्षार २ माशा, पिप्पलीचूर्ण २ माशा। इसका पान करनेसे प्लीहाज्वर रुक जाता है। (भैषज्यर० ज्वराधि०)

निदिध्यास (सं० पु०) निदिध्यासन।

निदिध्यासन (सं० क्ली०) पुनः पुनरतिशयेन वा निध्याय-तीति नि ध्यै सन्, ततो भावे ल्युट्। १ पुनः पुनः स्मरण, फिर फिर याद, बार बार ध्यानमें लाना।

श्रुतियोंमें दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मज्ञानके लिये आवश्यक बतलाया गया है।

गुरुमुखसे निरन्तर जो श्रुतार्थका विचार होता है उसे निदिध्यासन कहते हैं। यह चित्तकी एकाग्रता द्वारा प्राप्त होता है। पहले श्रुतिवाक्य श्रवण, पीछे मनन, बाद निदिध्यासन बतलाया गया है। यही श्रवण, मनन और निदिध्यासन एकमात्र मोक्षका उपाय है। ब्रह्मात्मज्ञानके बिना दुःखातीत होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं। "ब्रह्म ही मैं हूं" इत्याकार असन्दिग्ध अनुभवका नाम ब्रह्मात्मज्ञान है। इस ज्ञानका प्रधान उपाय श्रवण है। मनन और निदिध्यासन उसका साहाय्यकारी है। शास्त्रकथा सुननेसे ही श्रवण होता है, सो नहीं। गुरु-मुखसे शास्त्रीय उपदेशका सुनना, मनमें उसका विचारित अर्थ धारण करना, ब्रह्ममें ही सभी शास्त्रोंका तात्पर्य है, ऐसा विश्वास रखना, ये सब गुण जब सफल होते हैं, तब ही उसे श्रवण कहते हैं। सैकड़ों मनुष्य वेदान्त अध्ययन

श्रवण करते हैं, 'तत्त्वमसि' महावाक्य भी श्रवण करते हैं और उसका अर्थ आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं, इतना होने पर उन्हें तत्त्वज्ञान नहीं होता। फिर यह भी देखा जाता है, कि यद्यपि श्रवण न किया जाय तो भी तत्त्वज्ञान लाभ हो सकता है। शास्त्रसे पता लगता है, कि कपिल, वामदेव आदि जन्मज्ञानी थे। सुतरां श्रवणका फल तत्त्वज्ञान या तत्त्वज्ञान श्रवणका कार्य है, यह बात असन्दिग्धरूपसे कैसे स्वीकार की जा सकती? इसके उत्तरमें कहना यही है कि चित्तकी मलिनता और जन्मान्तरीय पाप आदि प्रतिबन्धकमें श्रवणफलतत्त्वज्ञान अवरुद्ध रहता है। प्रतिबन्धकके क्षय होनेसे ही वह उदय हो जाता है। वामदेवादि ऋषियोंका यही हुआ था। उनके पूर्वजन्मके श्रवणने इस जन्ममें प्रतिबन्धकशून्य हो कर तत्त्वज्ञान उत्पन्न किया था इसी कारण इस जन्ममें उन्हें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने नहीं पड़े थे। अतएव श्रवण ही तत्त्वज्ञानका प्रधान कारण है, मनन और निदिध्यासन उसके सहकारी कारण हैं। 'तत्त्वमसि' महावाक्य श्रवण करनेसे, उसके अर्थमें जो अविश्वास और असम्भवबोध आदि घटना होती है वह मनन द्वारा दूर हो जाती है। मननके बाद भी यदि स्पष्टरूपसे, मैं ब्रह्म हूं अन्य कुछ भी नहीं है, इसका अनुभव न हो, तो निदिध्यासनकी आवश्यकता होती है। निदिध्यासनमें चित्तविश्राम कर सकनेसे ही वह अनुभव चिरस्थिर हो जाता है। अन्यथा होनेसे नहीं होता। किसी किसी आचार्यका मत है, कि निदिध्यासन ही तत्त्वज्ञानका मुख्य कारण है, श्रवण और मनन इसका सहाय है। श्रवण देखो। २ सजातीय प्रत्ययप्रवाह। ३ अपरावृत्त बोध।

निदुगल—महिसुरराज्यके चित्तलदुर्ग जिलेके अन्तर्गत एक दुर्ग सुरक्षित पहाड़ और उस पहाड़के उत्तरकी ओर अवस्थित एक ग्राम। यह अक्षा० १४ ८´ उ० और देशा० ७७ ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। पहाड़की ऊंचाई ३७०२ फुट है। ८वीं और १०वीं शताब्दीके मध्य यह प्रदेश नोलम्ब सरदारोंके अधिकार में था। बाद यह चालुक्यके अधीन चोलसरदारोंके हाथ आया। तदनन्तर १४वीं शताब्दीमें होयसलोंने चोलोंको मार भगाया और इस पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। बाद पोलिगारोंने यहां स्वाधीन भावसे राज्य किया। उनका प्रासाद आज भी देखनेमें आता है। १७८२ ई०में टीपू सुलतानने यह स्थान अपने दखलमें कर लिया।

निदेश (सं० पु०) नि दिश घञ्। १ शासन। २ आज्ञा, हुक्म। ३ कथन। ४ सामीप्य, पास। ५ भाजन। ६ उक्ति।

निदेशी (सं० त्रि०) नि-दिश णिनि। आज्ञाकारक, आज्ञा करनेवाला।

निदेष्टृ (सं० त्रि०) निदिशतीति नि-दिश तृच्। निदेश कर्त्ता, हुक्म देनेवाला।

निद्दावोल—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेके तनुकु तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६ ५५´ २८´´ उ० और देशा० ८१ ४२´ ४१´´ पू०के मध्य मछली-पत्तनसे ४१ मील उत्तर पूर्व और राजमहेन्द्रीसे १० मील दक्षिण पश्चिममें गोदावरी और कृष्णानदीके सङ्गम पर अवस्थित है। यहां गोलकुण्डाके इब्राहिमशाहने १५५० ई०में एक दुर्ग बनवाया था।

एकादश भाग समाप्त।